



कौटलीयं अर्थशास्त्र हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक—

विद्याभास्कर वेदरत्न प्रो० उदयवीर शास्त्री,
न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तीर्थ
वेदान्तविशारद ।

प्रकाशक :—

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, अध्यक्ष
संस्कृत पुस्तकालय,
सैदापिठा बाज़ार
लाहौर ॥



अमृत प्रेम, अमृतघात भयन, लाहौर में लाला दुर्गादास
विन्टर के अधिकार से मुद्रित हुआ ॥



उपोद्घात



कॉटलीय अर्थशास्त्र, संस्कृत साहित्यमें, अपने विषयका उच्चकोटिका ग्रन्थ है। सबसे प्रथम इस ग्रन्थको सन् १९०९ ई० में, मैसूर राज्यकी ग्रन्थशालाके अध्यक्ष श्रीयुत शामशास्त्रीने प्रकाशित कराया। तथा अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगोंके सुभीतेके लिये उन्होंने इस ग्रन्थका इंग्लिश भाषामें अनुवाद भी करदिया। उसी समयसे इस दुरूह ग्रन्थको समझनेके लिये विद्वज्जन पर्याप्त परिश्रम कर रहे हैं।

शामशास्त्रीने पहिले पहिल इस ग्रन्थका इंग्लिश अनुवाद किया; इसलिये उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है, परन्तु यह कहे बिना नहीं रहा जासकता, कि उस अनुवादमें अनेक स्थलोंपर स्थलन हैं। जिनका यहां उल्लेख करना अनावश्यक है*। इस कार्यके अनन्तर इस विषयपर अनेक साप्ताहिक मासिक पत्र पत्रिकाओंमें लम्बे चौड़े विचारपूर्ण लेख समय २ पर प्रकाशित होतेरहे, परन्तु पुस्तकके रूपमें कोई महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित नहीं हुआ।

अबसे पांच बरस पहिले मैं यह विचार कर रहा था, कि इस ग्रन्थका अनुवाद करूं, जिससे सर्वसाधारणके सन्मुख यह विषय उपस्थित किया जासके, तथा इसपर और भी अच्छा विचार होसके। कुछ ही समयके अनन्तर मैंने सुना कि प्राणनाथ विद्यालङ्कार इस ग्रन्थका अनुवाद कर रहे हैं, मैं चुप होगया। और सन् १९२३ ई० में वह अनुवाद प्रकाशित होगया। उस अनुवादके देखनेपर, मैं इसका अच्छीतरह निर्णय कर सका, कि मुझे भी अपने विचार कार्यरूपमें परिणत कर देने चाहियें।

* अनुवादके समय, किसी २ स्थलपर, हमने शास्त्रीजीके अमका दिग्दर्शन कराया है। पाठक वहाँपर देखेंगे।

यद्यपि प्राणनाथ विद्यालङ्कारने अपने नियेदतमें एस बात की वड़े जोरोंपर लिखा है, कि 'डान्टर शामशास्त्रीके आंग्लभाषाके भाषान्तरको संमुख रखकर यह अनुवाद नहीं किया गया'। परन्तु दोनोंका मुकाबला करनेपर हमको यह दावा, कुछ गलत साधित हुआ है। यद्यपि विद्यालङ्कारजीने कहीं २ अपने अनुवादकी टिप्पणियोंमें शामशास्त्रीके अनुवादको अशुद्ध करनेका यत्न किया है, परन्तु वहाँपर मूलके अर्थको न समझकर आप स्वयं ही मुंहकी खा गये हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं अनुवाद करते हुए आपने पद पदपर सुवलन किया है। यदि आपके सम्पूर्ण अनुवादको सामने रखकर कहाजाय, तो बलात्कार मुंहसे ये शब्द निकल पड़ते हैं, कि यह अनुवाद, अपूर्ण तथा मूलके विपरीत और विष्टहलित भावोंसे भरा हुआ है। हमारा विचार था, कि इसतरहके कुछ स्थलोंको यहाँ उद्धृत कर दिया जाय, परन्तु स्थानाभाव और कुछ अप्रासंगिक होनेके कारण हमको अपना यह विचार शान्त करना पड़ा। परन्तु यह निश्चय है, कि बासप्रभविव्यमें, इस ग्रन्थकी विस्तृत समालोचनाके अवसरपर, ये सब ही बातें, पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कीजासकेंगी।

अस्तु, जब हमारा यह विचार होरहा था, उसी समय ह को कौटलीय अर्थशास्त्रकी एक प्राचीन टीका 'नयचन्द्रिका' उपलब्ध हुई। इस टीकाको हमने ही सम्पादन किया, और सन् १९२४ में लाहौरसे ही यह टीका प्रकाशित होगई। यद्यपि यह टीका सम्पूर्ण अर्थशास्त्रपर प्राप्त नहीं हुई, पर जितनी मी प्राप्त हुई उतनी महत्त्वपूर्ण है; उसके पढ़ने और सम्पादन करनेसे, इस ग्रन्थकी बहुतसी उलझी हुई प्रन्थियां सुलझ गईं, और हमें पूर्ण विश्वास हुआ, कि अब इस मूलग्रन्थ का अनुवाद सरलता से हो सकेगा।

इसी समयमें 'अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावलि' में कौटलीय अर्थशास्त्र की, संस्कृत भाषामें एक विशद व्याख्या प्रकाशित यह व्याख्या महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने प्राचीन टीका आधार पर लिखी है। आपने अपने इसी ग्रन्थ की भूमिकामें लिखा

है, कि उन्होंने कुछ भागपर नयचन्द्रिका, और कुछ भागपर भट्टस्वामीकी व्याख्याका अवलम्ब लेकर, तथा उनकी अपनी मातृभाषाके एक प्राचीन सम्पूर्ण अर्थशास्त्रके व्याख्यानका अवलम्ब लेकर, इस मूला' नामकी विशद व्याख्याको लिखा है।

इस सम्पूर्ण प्राचीन सामग्रीके आधारपर हमने इस अनुवादको पूरा करनेका विचार किया। इसी समय लाहौरके प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक विक्रेता-मेहरचन्द्र लक्ष्मणदासने, हमको यह कार्य बहुत जल्दी कर देनेके लिये प्रेरित किया। उसका फलस्वरूप यह अनुवाद पाठकोंकी भेंट है। इसकी उपयोगिता स्वयं पढ़कर ही पाठक जान सकेंगे।

हमारा विचार था, कि इस ग्रन्थके र. थ एक विस्तृत उपोद्घात लिखा जाय; परन्तु कौटलीय अर्थशास्त्रके सम्बन्धमें अपने उन सब विचारोंको प्रकट करनेके लिये हमें ये उपोद्घातके पन्ने कुछ थोड़े प्रतीत हुए। अब विचार होगया है, कि मूल अर्थशास्त्र पर एक विस्तृत खतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाय। उस ही में ग्रन्थकर्ता के समय, स्थान, ग्रन्थकी विशेषताएं तथा अन्य आलोचना, प्रत्यालोचना आदिका समावेश होगा।

फिर भी इस ग्रन्थके सम्बन्धमें इतना जान लेना आवश्यक है, कि यह मूलग्रन्थ विष्णुगुप्त कौटल्य (चाणक्य) का लिखा हुआ है। चाणक्य, सम्राट् चन्द्रगुप्तका प्रधान अमात्य था। इसने मगधके राजा महानन्द पद्मको, अपना तिरस्कार करनेके कारण मारकर चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्यसिंहासनपर बिठाया था। यदि अंग्रेजी गज़से नापा जाय, तो मौर्य चन्द्रगुप्तका समय ईसवी सन्से पहिले तीसरी सदी है। वही समय चाणक्यका भी समझना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह कौटलीय अर्थशास्त्र कठिन ग्रन्थ है। इसमें अनेक अप्रसिद्ध पारिभाषिक शब्द हैं। विषय-वस्तु कूट र कर भरा हुआ है। इस ग्रन्थमें ऐसे भी अनेक शब्द हैं, जिनका विचार, वर्तमान पराधीन बड़े भारतके बालकोंके हृदयमें, स्वप्नमें भी स्थान नहीं पासकता; तथा जो वर्तमान परिस्थिति

(४)

के अनुसार हमसे सर्वथा परोक्ष हो चुके हैं । यह सब कुछ होनेपर भी मैं अपनी उस पूजनीया मातृसंस्था (महाविद्यालय ज्वालापुर) का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिसके स्वतन्त्र वातावरणमें रहकर, तथा दश वर्ष तक उसकी प्रेममयी गोदमें शिक्षा प्राप्तकर, इस दुरूह कार्यके करनेमें भी सरलतासे समर्थ हो सका ।

अन्तमें मैं अपने परम मित्र साहित्यभास्कर पं० रामस्वरूप शास्त्री का यतीर्थ (हरदुआगंज निवासी), पं० यलदेव शास्त्री वी० ए० (लाहौर निवासी), तथा थीयुत प्यारेलाल दुग्गल वी० ए० (कपूरथला निवासी) का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ; और इनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ; इन्होंने अनेक स्थलोंपर ग्रन्थके सम्पन्ननेमें, मुझे बहुत सहायता दी है ।

लाहौर
आषण शुद्ध सप्तमी
मंगलवार
सं० १९८२ विक्रमी

विनीत—

उदयवीर

कौटलीय अर्थशास्त्र

प्रथम भाग ।

विषयानुक्रमणिका



विषय	पृष्ठ संख्या
१-विनयाधिकारिक	१-८८
प्रकरणाधिकरणनिर्देश	१
विद्या-समुद्देश	८
श्रयीस्थापना	१०
वार्ता और दण्ड नीति की स्थापना	१२
गृह संयोग	१४
१ इन्द्रियजय	१६
२ राजपिंक। व्यवहार	१८
३ अमात्या की नियुक्ति	२०
४ मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति	२३
५ गुप्तरीति से अमात्या के द्वादिंक, सरल तथा कुटिल भावों की परीक्षा	२६
६ गुप्तचर पुरुषों की स्थापना	२९
७ गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति	३२
८ अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्ष की रक्षा	३७
९ शत्रु के देश में कृत्य तथा अकृत्य पक्ष के पुरुषों का संग्रह	४१
१० मन्त्राधिकार	४६
११ दूत प्रणिधि	५४
१२ राजपुत्रों से राजा की रक्षा	६०
१३ भवकन्द राजकुमार का व्यवहार, तथा भवकन्द राजकुमार के प्रति राजा का व्यवहार	६७
१४ राज प्रणिधि	७२

विषय	पृष्ठ संख्या
२० निशान्त प्रणिधि	७६
२१ आत्मरक्षा	८१
२--अध्यक्ष प्रचार	८९-३४३
जनपद निवेश	८९
भूमिच्छिद्र विधान	९६
दुर्गविधान	९९
दुर्गनिवेश	१०७
सश्रिधातों का निचयकर्म	११२
समादत्तों का कर संग्रहकार्य	११७
अक्ष पटल में गार्णनियथाधिकार	१२३
अध्यक्षों के द्वारा अपहृत धनका प्रत्यानयन	१३१
उपयुक्त परीक्षा	१३९
शासनाधिकार	१४६
कोशमें प्रवेश करने योग्य रत्नों की परीक्षा	१५५
खान के कार्यों का सञ्चालन	१७३
अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष का कार्य	१८२
विदिखा में सौवर्णिक का व्यापार	१९३
कोष्ठागाराध्यक्ष	२०४
पण्याध्यक्ष	२१४
कुप्याध्यक्ष	२१९
आयुधागाराध्यक्ष	२२३
तोल माप का संशोधन	२२९
देश तथा फाल का मान	२३७
शुल्काध्यक्ष	२४६
शुल्कव्यवहार	२५२
सूत्राध्यक्ष	२५५
सीताध्यक्ष	२५८
सुराध्यक्ष	२६७

विषय	पृष्ठ संख्या
सूनाध्यक्ष	२७५
गणिकाध्यक्ष	२७८
नावध्यक्ष	२८६
गोऽध्यक्ष	२९१
अश्वध्यक्ष	३००
दस्त्यध्यक्ष	३१२
हस्तिप्रचार	३१७
रथाध्यक्ष पत्यध्यक्ष, तथा सेनापति प्रचार	३२३
गुद्राध्यक्ष और विचीताध्यक्ष	३२६
समाहर्त्ता का कार्य, गृहपति वैदेहक तथा तापसके वर्णमें गुह्यत्र	३२९
नागरिक का कार्य	३३४
३—धर्मस्थीय	१-९८
व्यवहार की स्थापना और विवाद का लेखन	१
विवाद धर्म स्थीयन, और आधिप्रेदतिक	८
विवाहित के विषय में-शुश्रूषा, भर्त्स, पारुष्य, छेप, अतिचार और उपकार-व्यवहार प्रतिषेध	१४
विवाह संयुक्त में निष्पत्तन, पथ्यनुसरण हस्त्र-प्रवास और दीर्घ प्रवास	१९
नाय विभाग	२५
भंश विभाग	२८
पुत्र विभाग	३२
गृहवास्तुक	३६
वास्तु विभाग	३६
चरागाह और खेत के माणों को रोकना, तथा नियम का उद्घोषन	४४

विषय	पृष्ठ संख्या
ऋण लेना	१०
औपनिषिक्त	१८
दासकल्प	६१
कर्मक रकल्प, सम्भूय समुत्थान	७०
क्रय विक्रय तथा अनुशय	७५
प्रतिज्ञात धनका अप्रदान, अस्वामि विक्रय, स्वस्वामि सम्बन्ध	७७
साहस्य	८३
वाक्याह्वय	८५
दण्डपाह्वय	८८
द्वय समाह्वय और प्रकीर्णक	९३

४—कण्टक शोधन ९९—१६२

काटक रक्षण	९९
व्यापारियों से रक्षा	१०६
दैवी आपत्तियों का प्रतीकार	१११
गूढा जीवियों का प्रतीकार	११६
सिद्धयेव के द्वारा दुष्टों का प्रकाशन	११९
शंका, चोरी का माल, तथा संधसे चोरों का पकड़ना	१२२
आशुमृतक परीक्षा	१६८
वाक्य कर्मानुयोग	१३२
सत्र अधिकांसी तथा उनके स्थानों की देखभाल	१३७
एकाङ्गवध और उसका निष्क्रय	१४४
शुद्ध और विप्रदण्ड	१४७
कन्या प्रकर्म	१५१
अतिचार दण्ड	१५६

५—योगवृत्त . * १६३—२०३

दण्ड प्रयोग	१६३
-------------	-----

विषय	पृष्ठ संख्या
कोशका अधिक संग्रह	१७१
श्रुत्यों का भरणपोषण	१८१
मन्त्री आदि राज कर्मचारियों का राजा के प्रति व्यवहार	१८७
व्यवस्था का पालन	१९१
राज्य का प्रतिसन्धान और एकैश्वर्य	१९७
६—मण्डलयोनि	२०४—२१४
प्रकृतियों के गुण	२०४
शाश्वत और उद्योग	२०८
७—पाद्गुण्य	२१५—३३८
छः गुणों का उद्देश्य और क्षय, स्थान तथा वृद्धि का निश्चय	२१५
संश्रय वृत्ति	२२२
सम, हीन तथा अधिक के गुणों की स्थापना और हीन के साथ सन्धि	२२५
विशेष आसन और यान	२३१
यान विषयक विचार, प्रकृतियों के क्षय, लोभ तथा, विरागके हेतु, और विजिगीषुके अनुगा- मियोंका विचार	२३६
एकसाथ प्रयाण और परिपार्णित, अपारिपार्णित तथा अपसृत सन्धि	२४४
द्वैधीभाव सम्बन्धी सन्धि और विक्रम	२५२
यातव्य सम्बन्धी व्यवहार तथा अनुग्राह्य मित्रोंके विशेष	२५९
मित्रसन्धि और हिरण्य सन्धि	२६४
भूमिसन्धि	२७२
अनवसित सन्धि	२७८

विषय पृष्ठ संख्या

कर्मसन्धि	२८५
पारिणम्राहचिन्ता	२९०
हीनशक्ति पूरण	२९९
प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्गप्रवेशके कारण, और विजित शत्रुका व्यवहार	३०५
विजेता विजिगीपुका व्यवहार	३१३
सन्धिके दृढ़करण और विश्वासके लिये रस्खेहुए राजपुत्र आदिका छुड़ाना	३१९
मध्यम, उदासीन और अन्य राजमण्डलके प्रति विजिगीपुका व्यवहार	३२९

८—व्यसनाधिकारक ३३९—३८६

प्रकृति व्यसनवर्ग	३३९
राजा और राज्यके व्यसनोंका विचार	३४९
पुरुषव्यसनवर्ग	३५५
पीडनवर्ग, स्तम्भनवर्ग, और कोशलङ्गवर्ग	३६५
बलव्यसनवर्ग और मित्रव्यसनवर्ग	३७७

९—अभियास्यत्कर्म ३८७—४५६

शक्ति, देश-कालके बलाबलका ज्ञान, और यात्राकाल सेनाओंके तैयार होनेका समय, सत्ताह गुण और प्रतिबलकर्म	३८७
पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्य और आभ्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार	३९७
क्षय व्यय तथा लाभका विचार	४०७
बाह्य तथा आभ्यन्तर आपत्तियाँ	४१८
दृश्य तथा शत्रुजन्य आपत्तियाँ	४२५
अर्थ अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियाँ और उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साध आदि उपायोंके प्रयोगविशेषसे होनेवाली सिद्धियाँ	४३१
	४४३

१०—सांग्रामिक

४५७-४९९

स्कन्धावार निवेश	४५७
स्कन्धावार प्रयाण, तथा बलव्यसन और अव- स्कन्द कालसे सेनाकी रक्षा	४६१
कूटयुद्धके भेद, अपनी सेनाका प्रोत्साहन, तथा अपनी और पराई सेनाका व्यवस्थापन	४६६
युद्ध योग्य भूमि, और पदाति, अश्व, रथ, तथा हाथी आदिके कार्य	४७७
पक्ष, कक्ष तथा उरस्य इत्यादि व्यूहविशेषोंका, सेनाके परिमाणके अनुसार व्यूहविभाग, सार तथा फलगु चलका विभाग, और पदाति, अश्व, रथ, तथा हाथियोंका युद्ध	४८२
दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहतव्यूह, इनके प्रकृति व्यूहों और विकृतिव्यूहोंकी रचना, तथा उपर्युक्त दण्डादि व्यूहोंके प्रतिव्यूहकी स्थाना	४९३

११—संघट्ट

५००-५१०

भेदके प्रयोग और उपांशुदण्ड

५००

१२—आवलीयस

५११-५४३

दूतकर्म

५११

मन्त्रयुद्ध

५१६

सेनापतियोंका वध और मित्र आदि राजमण्डलका
प्रोत्साहन

५२३

शस्त्र, अग्नि तथा रसोंका गूढप्रयोग और वीरवध,
आसार तथा प्रसारका नाश

५२९

योगातिसन्धान, दण्डातिसन्धान और एकविजय

५३५

विषय	पृष्ठ संख्या
१३—दुर्गलम्होपाय	५४४—५८५
उपजाप	५४४
योगवामन	५५०
गूढपुरुषोका शत्रुदेशमें निवास	५५२
शत्रुके दुर्गको घेरना, तथा शत्रुके दुर्गका अवमर्द	५६९
विजित दुर्ग आदिमें शान्ति स्थापित करना	५८०
१४—औपनिषदिक	५८६—६२०
परघात प्रयोग	५८६
प्रलम्भनम अद्भुतोत्पादन	५९६
प्रलम्भनमें मैपज्यमन्त्रयोग	६०५
शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर कियेगये घातक प्रयोगों का प्रतीकार	६१७
१५—तन्त्रयुक्ति	६२१—६२७
तन्त्रयुक्ति	६२१



कौटलीय अर्थशास्त्र

विनयाधिकारिक-प्रथम अधिकरण

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः
प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ॥ १ ॥
तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ॥ २ ॥

पृथिवीके प्राप्त करने और प्राप्तकी रक्षा करनेके लिये जितने अर्थ-
शास्त्र प्राचीन आचार्योंने लिखे, प्राय उन सबको ही संगृहीत करके यह एक
अर्थशास्त्र बनाया गया है ॥ १ ॥ सबसे प्रथम यह उसके प्रकरण और अधिकरणोंका
निरूपण किया जाता है ॥ २ ॥

विद्यासमुद्देशः ॥ ३ ॥ बृद्धसंयोगः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयः
॥ ५ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ६ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ७ ॥
उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ८ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः
॥ ९ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ १० ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्ष-
रक्षणम् ॥ ११ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १२ ॥ मन्त्रा-
धिकारः ॥ १३ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १४ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥ १५ ॥
अवरुद्धवृत्तम् ॥ १६ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥ १७ ॥ राजप्रणिधिः
॥ १८ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥ १९ ॥ आत्मरक्षितकम् ॥ २० ॥
इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ॥ २१ ॥

१-विद्यासमुद्देश २-बृद्धसंयोग ३-इन्द्रियजय ४-अमात्योंकी नियुक्ति
५-मन्त्री और पुरोहितोंकी नियुक्ति ६-गुहरीतितसे अमात्योंके सरल तथा कुटिल-

भावकी परीक्षा ७-गृह पुरुषोंकी स्थापना ८-गृहचरोंकी कार्योंपर नियुक्ति
 ९-अपने देशमें कृत्य और अकृत्य पक्षकी रक्षा १०-शत्रु देशके कृत्य और अकृत्य
 पक्षको वशमें करना ११-सम्प्राधिकार १२-वृत्तप्रणिधि १३-राजपुत्रकी रक्षा
 १४-अथर्वद्वारा राजकुमारका व्यवहार १५-अथर्वद्वारा राजकुमारके विषयमें राजाका
 व्यवहार १६-राजप्रणिधि १७-राज भवनकी स्थापनाका विचार १८-अपनी
 रक्षा १९-यें अठारह प्रकरण विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें हैं ॥३-२१ ॥

जनपदविनिवेशः ॥ २२ ॥ भूमिच्छिद्रविधानम् ॥ २३ ॥

दुर्गविधानम् ॥ २४ ॥ दुर्गविनिवेशः ॥ २५ ॥ संनिधातृनिच-

यकर्म ॥ २६ ॥ समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ २७ ॥ अक्षपटले

गाणनिक्याधिकारः ॥ २८ ॥ समुदयस्य युक्तापहतस्य प्रत्यानय-

नम् ॥ २९ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ३० ॥ शासनाधिकारः ॥ ३१ ॥

कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ३२ ॥ आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥ ३३ ॥

अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥ ३४ ॥ निशिक्षायां सौवर्णिकप्रचारः

॥ ३५ ॥ कौष्ठागाराध्यक्षः ॥ ३६ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ ३७ ॥

कुप्याध्यक्षः ॥ ३८ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ ३९ ॥ तुलामान-

यौतवम् ॥ ४० ॥ देशकालमानम् ॥ ४१ ॥ शुल्काध्यक्षः ॥ ४२ ॥

सूत्राध्यक्षः ॥ ४३ ॥ सीताध्यक्षः ॥ ४४ ॥ सुराध्यक्षः ॥ ४५ ॥

सूनाध्यक्षः ॥ ४६ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥ ४७ ॥ नावध्यक्षः ॥ ४८ ॥

गोऽध्यक्षः ॥ ४९ ॥ अश्वध्यक्षः ॥ ५० ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥ ५१ ॥

रथाध्यक्षः ॥ ५२ ॥ पश्यध्यक्षः ॥ ५३ ॥ सेनापतिप्रचारः ॥ ५४ ॥

सुद्राध्यक्षः ॥ ५५ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ५६ ॥ समाहर्तृप्रचारः

॥ ५७ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥ ५८ ॥

नागरिकप्रणिधिः ॥ ५९ ॥ इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ॥ ६०

१-जनपदविनिवेश २ भूमिच्छिद्रविधान ३-दुर्गविधान ४-दुर्गविनिवेश

५-संनिधाताका निचयकर्म ६-समाहर्तृके द्वारा राज्यकरका एकत्रित करना

७-अक्षपटले गाणनिक्याका अधिकार ८ अपहत राज्य धनका पुन प्राप्त करना

९-उपयुक्त परीक्षा १०- शासनाधिकार ११-कोशमें रखने योग्य रत्नोंकी

परीक्षा १२-खानके कार्योंका संचालन १३-अक्षशालामें स्वर्णाध्यक्षका कार्य

१४-विशिक्षामें सौवर्णिकका व्यापार १५-कौष्ठागाराध्यक्ष १६-पण्याध्यक्ष

१७-कृष्णाध्यक्ष १८-आयुषागाराध्यक्ष १९-तोल मापका सशोधन २०-देश तथा कालका मान २१-शुल्काध्यक्ष २२-सूत्राध्यक्ष २३-सीताध्यक्ष २४-नुराध्यक्ष २५-सूनाध्यक्ष २६-गणिकाध्यक्ष २७ नावध्यक्ष २८-गोध्यक्ष २९-अन्धाध्यक्ष ३०-हस्त्यध्यक्ष ३१-रथाध्यक्ष ३२-पायध्यक्ष ३३-सेनापतिका कार्य ३४-मुद्राध्यक्ष ३५-धिवीताध्यक्ष ३६-समाहर्त्ताका कार्य ३७-गृहपति, वेदेहक तथा तापसके वेशमें गुप्तचर ३८-नागरिकका कार्य ये सब भर्त्तास प्रकरण अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरण में हैं ॥२२-६०॥

व्यवहारस्थापना विवादपदनिबन्धः ॥६१॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ६२ ॥ दायविभागः ॥ ६३ ॥ वास्तुकम् ॥६४॥ समयस्नानपाकर्म ॥ ६५ ॥ ऋणादानम् ॥ ६६ ॥ औपनिधिकम् ॥६७॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ६८ ॥ संभूयसमुत्थानम् ॥ ६९ ॥ विक्रीत-क्रीतानुशयः ॥ ७० ॥ दत्तस्थानपाकर्म ॥७१॥ अस्वामिविक्रयः ॥ ७२ ॥ स्वस्वामिसंबन्धः ॥ ७३ ॥ साहसम् ॥ ७४ ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ ७६ ॥ द्यूतसमाह्वयम् ॥ ७७ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ ७८ ॥ इति धर्मस्थीयं तृतीयमाधिकरणम् ॥७९॥

१-व्यवहारकी स्थापना २-विवाद पदोंका विचार ३-विवाह सम्बन्धी विचार ४-दायविभाग ५-वास्तुक ६-समय (प्रतिज्ञा) का न छोडना ७-ऋण लेना ८-औपनिधिक ९-दास तथा अन्य सेवकोंका विधान १०-संभूय समुत्थान ११-क्रय विक्रय विषयक अनुशय १२-घन देनेका वचन देकर फिर न देना १३-अस्वामिविक्रय १४-स्वस्वामिसंबन्ध १५-साहस १६-वाक्पारुष्य १७-दण्डपारुष्य १८-द्यूत समाह्वर १९-प्रकीर्णक ये उर्त्तास प्रकरण धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें हैं ॥ ६१-७९ ॥

कारुकरक्षणम् ॥ ८० ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ ८१ ॥ उपनि-पातप्रतीकारः ॥ ८२ ॥ गूढार्जीविनां रक्षा ॥८३॥ सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ८४ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ८५ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ८६ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८७ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ८८ ॥ एकाङ्गवधानिष्क्रयः ॥ ८९ ॥ शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः ॥ ९० ॥ कन्याप्रकर्म ॥ ९१ ॥ अतिचारदण्डः ॥ ९२ ॥ इति कण्टकशोधनं चतुर्थमाधिकरणम् ॥ ९३ ॥

१-शिल्पियोंसे देशकी रक्षा २-व्यापारियोंसे देशकी रक्षा ३-दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार ४-गृहजीवियोंसे प्रजाकी रक्षा ५-सिद्धवेष पुरुषोंके द्वारा प्रलोभन विद्याओंका प्रकाशन ६-सन्देश, वस्तु तथा कार्यके द्वारा खोर आदिको एकदना ७-आशुमृतक परीक्षा ८-यज्ञ्य कर्मानुयोग ९-सय राजकीय विभागोंकी रक्षा १०-एक भगक छेदनका निष्कय ११-शुद्ध और चित्र दण्ड विधान १२-कन्या प्रकर्म १३-अतिचार दण्ड। ये १३ प्रकरण कण्टकरोधन चतुर्धे अधिकरणमें हैं ॥ ८०—९३॥

दाण्डकर्मिकम् ॥ ९४ ॥ कोशामिसंहरणम् ॥ ९५ ॥ भृत्या-
भरणीयम् ॥ ९६ ॥ अनुजीविवृत्तम् ॥ ९७ ॥ सामयाचारिकम्
॥ ९८ ॥ राज्यप्रतिसंधानमेकैश्वर्यम् ॥ ९९ ॥ इति योगवृत्तं
पञ्चममधिकरणम् ॥ १०० ॥

१-दाण्डकर्मिक २-कोशका समह ३-भृत्यभरणीय ४-राज्यकर्म
चारियोंका वर्ताव ५-सामयाचारिक ६-राज्यप्रतिसंधान ७-एकैश्वर्य ।
ये सात प्रकरण योगवृत्त नामक पंचम अधिकरणमें हैं ॥ ९४—१०० ॥

प्रकृतिसंपदः ॥ १०१ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ १०२ ॥ इति
मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम् ॥ १०३ ॥

१-अमार्य आदि प्रकृतियोंके गुण २-शम और व्यायाम (उद्योग)
ये दो प्रकरण मण्डलयोनि नामक षष्ठ अधिकरणमें हैं ॥ १०१—१०३ ॥

पाद्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ १०४ ॥ संश्रय-
वृत्तिः ॥ १०५ ॥ समहीनज्यायसां गुणामिनिवेशः हीनसंघयः
॥ १०६ ॥ विगृह्यासनम् संघायासनम् विगृह्य यानम् संघाय
यानम् संभूय प्रयाणम् ॥ १०७ ॥ यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता
क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः ॥ १०८ ॥
संहितप्रयाणिकम् परिपणितापरिपणितापसृताश्च संघयः ॥ १०९ ॥
द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः ॥ ११० ॥ यातव्यवृत्तिः अनुग्राह्य-
मित्रविशेषाः ॥ १११ ॥ मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंघयः ॥ ११२ ॥
सार्धिमित्रहचिन्ता ॥ ११३ ॥ हीनशक्तिपूरणम् ॥ ११४ ॥
बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तम् ॥ ११५ ॥ दण्डो-
पनायिवृत्तम् ॥ ११६ ॥ सधिकर्म सधिमोक्षः ॥ ११७ ॥ मध्य-

मचरितम् उदासीनचरितम् मण्डलचरितम् ॥ ११८ ॥ इति पाद्गुण्यं
सप्तममधिकरणम् ॥ ११९ ॥

१-पाद्गुण्यका उद्देश २-क्षय, स्थान और वृद्धिका निश्चय ३-सधयवृत्ति
४-सम, हीन और अधिकके गुणोंका अभिनिवेश ५-हीनसन्धि ६-विग्रह
करके आसन ७-सन्धि करके आसन ८-विग्रह करके आसन ९-सन्धि करके
आसन १०-सम्भूय प्रयाण ११-पातन्य और दातृके प्रति धानका निर्णय १२-
प्रकृतियोंके क्षय, लोभ और विरागके हेतु १३-सामवायिक राजाओंका विचार
१४-मिलकर आक्रमण १५-परिपणित, अपरिपणित और अपस्त सन्धि
१६-द्वैधीमाय सम्बन्धी सन्धिविग्रह १७-वातव्यवृत्ति १८-अनुग्राह्यभित्तिशेष
१९-भित्तसन्धि, शिरष्यसन्धि, भूमिसन्धि और कर्मसन्धि २०-पार्ष्णिग्राह
चिन्ता २१-हीनशक्ति पूरण २२-अथवा दातृके साथ विग्रह वरके दुर्ग प्रवेशके
कारण २३-दण्डोपनतवृत्त २४-दण्डोपनायिवृत्त २५-सन्धिकर्म २६-सन्धि
सोक्ष २७-मध्यमचारित २८-उदासीन चरित २९-मण्डलचरित । ये इन्तीस
प्रकरण पाद्गुण्यनामक सप्तम अधिकरणमें हैं ॥ १०५-११९ ॥

प्रकृतिव्यसनवर्गः ॥ १२० ॥ राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता
॥ १२१ ॥ पुरुषव्यसनवर्गः पीडनवर्गः स्तम्भनवर्गः कोशसंगवर्गः
॥ १२२ ॥ बलव्यसनवर्गः मित्रव्यसनवर्गः ॥ १२३ ॥ इति
व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ॥ १२४ ॥

१-प्रकृतिव्यसनवर्ग २-राजा और राज्यके व्यसनोंका विचार ३-
पुरुषव्यसनवर्ग ४-पीडनवर्ग ५-स्तम्भनवर्ग ६-कोशसंगवर्ग ७-बलव्यसनवर्ग
८-मित्रव्यसनवर्ग । ये सब आठ प्रकरण व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें
हैं ॥ १२०-१२४ ॥

शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् यात्राकालाः ॥ २२५ ॥ बलो-
पादानकालाः संनाहमुणाः प्रतिबलकर्म ॥ १२६ ॥ पश्चात्कोप-
चिन्ता बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपतीकारः ॥ १२७ ॥ क्षयव्यय-
लाभविपरिमर्शः ॥ १२८ ॥ बाह्याभ्यन्तराश्चापदः ॥ १२९ ॥
दुष्यशत्रुसंयुक्ताः ॥ १३० ॥ अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपाय-
विकल्पजाः सिद्धयः ॥ १३२ ॥ इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकर-
णम् ॥ १३२ ॥

१-शक्ति, देश और कालके बलाबलका ज्ञान २-यात्राकाल ३-सेनाओं के तैयार होनेका समय ४-सन्नाहगुण ५-प्रतिबलकर्म ६-पश्चात्कोपाधिस्ता ७-बाह्य और अन्त्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार ८-क्षय व्यय तथा लाभका विचार ९-बाह्य तथा अन्त्यन्तर आपत्तियाँ १०-दूप्य तथा शत्रुजन्य आपत्तियाँ ११-अर्थ, अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियाँ १२-उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साम आदि उपायोंके प्रयोग भेदसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धियाँ । ये सब वारह प्रकरण अभियास्यत्कर्म नामक नवम अधिकरणमें हैं ॥ १२५—१३२ ॥

स्कन्धावारनिवेशः ॥ १३३ ॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥ १३४ ॥

बलव्यसनासस्कन्दकालरक्षणम् ॥ १३५ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ १३६ ॥ स्वसेन्योत्साहनम् ॥ १३७ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ १३८ ॥ युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि ॥ १३९ ॥ पक्षकक्षोरस्वानां, बलाप्रतो व्यूहविभागः सारफल्गुबलविभागः पत्त्यश्वरथहस्तिद्युद्धानि ॥ १४० ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् तस्य प्रतिव्यूहस्थानम् ॥ १४१ ॥ इति सांप्रामिकं दशममधिकरणम् ॥ १४२ ॥

१-स्कन्धावारनिवेश २-स्कन्धावारप्रयाण ३-बलव्यसन, अवस्कन्दकालसे सेनाका सरक्षण ४-कूटयुद्धके भेद ५-स्वसेन्योत्साहन ६-स्वसेना और परसेनाका व्यवस्थापन ७-युद्धयोग्य भूमि ८-पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदिके कार्य ९-पक्ष कक्ष तथा उरस्य इत्यादि व्यूह विभागोंका सेनाके परिमाणके अनुसार व्यूह विभाग १०-सार तथा फाल्गु बलका विभाग ११-पदाति, अश्व, रथ तथा हाथियोंका युद्ध १२-दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, अश्वहतव्यूह, इनके प्रकृतिव्यूह और विकृति व्यूहोंकी रचना १३-उपयुक्त दण्डादि व्यूहके प्रतिव्यूहकी स्थापना । ये तेरह प्रकरण सांप्रामिक दशम अधिकरणमें हैं ॥ १३३—१४२ ॥

भेदोपादानानि उपांशुदण्डः ॥ १४३ ॥ इति संहृतमेकादशमधिकरणम् ॥ १४४ ॥

१-भेदक उपादान २-उपांशुदण्ड । ये दो प्रकरण संहृत नामक एकारद्वे अधिकरणमें हैं ॥ १४३—१४४ ॥

दूतकर्म ॥ १४५ ॥ मन्त्रयुद्धम् ॥ १४६ ॥ सेनामुख्यवधः
मण्डलप्रोत्साहनम् ॥ १४७ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासार-
प्रसारवधः ॥ १४८ ॥ योगातिसन्धानम् दण्डातिसन्धानम् एक-
विजयः ॥ १४९ ॥ इत्यावलीयसं द्वादशमधिकरणम् ॥ १५० ॥

१-दूतकर्म २-मन्त्र युद्ध ३-सेनापतिपोंका वध ४-मित्र भादि राज-
मण्डलका प्रोत्साहन ५-शास्त्र, अग्नि तथा रसोका गूढप्रयोग ६-वीवध आसार
तथा प्रसारका नाश ७-योगातिसन्धान ८-दण्डातिसन्धान ९-एक विजय ।
ये भी प्रकरण आवलीयस नामक बारहवें अधिकरणमें हैं ॥ १४५—१५० ॥

उपजापः ॥ १५१ ॥ योगवामनम् ॥ १५२ ॥ अपसर्पप्र-
णिधिः ॥ १५३ ॥ पर्युपासनकर्म अवमर्दः ॥ १५४ ॥ लब्ध-
प्रशमनम् ॥ १५५ ॥ इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम्
॥ १५६ ॥

१-उपजाप २-योगवामन ३-गूढ पुरुषोंका शत्रु देशमें निवास ४-
शत्रुके दुर्गको घेरना ५-शत्रुके दुर्गका अवमर्द ६-विजित दुर्ग भादिमें शान्ति
स्थापित करना । ये छः प्रकरण दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरणमें हैं ।
॥ १५१—१५६ ॥

परघातप्रयोगः ॥ १५७ ॥ प्रलम्भनम् ॥ १५८ ॥ स्वबलो-
पघातप्रतीकारः ॥ १५९ ॥ इत्यापनिपदिकं चतुर्दशमधिकरणम्
॥ १६० ॥

१-परघातप्रयोग २-प्रलम्भन ३-शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर किये गये
घातक प्रयोगोंका प्रतीकार । ये तीन प्रकरण आपनिपदिक चौदहवें अधिकरणमें हैं
॥ १५७—१६० ॥

तन्त्रयुक्तयः ॥ १६१ ॥ इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकर-
णम् ॥ १६२ ॥

१-तन्त्रयुक्ति । यह एक प्रकरण तन्त्रयुक्ति नामक पन्द्रहवें अधिकरण
में है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं सा-
शीति प्रकरणशतं पदश्लोकसहस्राणीति ॥ १६३ ॥

इस प्रकार सपूर्ण कौटलीय अर्थशास्त्रमें १५ अधिकरण, एकसौ पचास
(१५०) अध्याय, एकसौ अस्सी (१८०) प्रकरण, और छ हजार श्लोक हैं ।

(एक श्लोकमें ३२ अक्षर होते हैं, उनका समुदाय एक ग्रन्थ कहता है, इस प्रकार यह कौटलीय अर्थशास्त्र कुल छः हजार ग्रन्थ है। अर्थात् इसके अक्षरोंको यदि अनुष्टुप् छन्दमें बाँधदिया जाय, तो छ. हजार श्लोक बनजाते हैं) ॥ १६३ ॥

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम् ।

कौटल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थाविस्तरम् ॥ १६४ ॥

इति कौटलीये अर्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे

राजवृत्तिः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

* मुकुमारमति पुरुषमी इस शास्त्रको सरलतासे समझ सकते हैं, क्योंकि इस शास्त्रमें इस प्रकार यथार्थ अर्थ और पदोंका प्रयोग किया गया है, जिससे किसी तरहका भी सन्देह नहीं होता। ग्रन्थका अर्थ विस्तार भी नहीं किया गया, अर्थात् किसीभी अनावश्यक या अनवश्यक बातका उल्लेख नहीं किया गया। इस अर्थशास्त्रको कौटल्यने बनाया है ॥ १६४ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

पहिला प्रकरण

विद्या-समुद्देश

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः ॥ १ ॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः ॥ २ ॥ त्रयीनिशेषो ह्यान्वीक्षकीति ॥ ३ ॥

विद्या चार हैं—आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ॥ १ ॥ मनुके अनुयायी कहते हैं, कि विद्या तीन ही हैं—त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ॥ २ ॥ आन्वीक्षकी विद्या त्रयीके अन्तर्गत ही समझी जाती है, वह उससे पृथक् नहीं है ॥ ३ ॥

वार्ता दण्डनीतिश्चेति वार्हस्पत्याः । संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद् इति ॥ ५ ॥ दण्डनीतिरेका विद्यत्यांशुनसाः ॥ ६ ॥ तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिवद्धा इति ॥ ७ ॥

वृहस्पतिके अनुगामों कहते हैं, कि विद्या दो ही हैं—वार्ता और दण्डनीति ॥ ४ ॥ क्योंकि लोकयात्राविद् अर्थात् वार्ता और दण्डनीतिमें निपुण, सुष्ठुर संसारी पुरुषके लिए, त्रयी, केवल संवरण (नास्तिकतासे बचानेवाला

आवरणमात्र अर्थात् लोग उसे श्रयोके न माननेपर नास्तिक न कहने लग जाय, इसीलिये श्रयोकी सत्ता) है । यह पृथक् विद्या नहीं है ॥ ५ ॥ शुक्राचार्यके सम्प्रदायके विद्वान् कहते हैं कि—केवल दण्डनीति ही एक विद्या है ॥ ६ ॥ श्रयोके उसहीमें अन्य सब विद्याओंके योगक्षेमका निभर है ॥ ७ ॥

चतस्र एव विद्या इति कौटल्यः ॥ ८ ॥ तामिर्धर्मार्थै
यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम् ॥ ९ ॥ सांख्यं योगो लोकायतं
चेत्यान्वीक्षकी ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्यका मत है, कि विद्या चार ही हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि विद्याओंकी वास्तविकता यही है कि उनसे धर्म और अधर्मके यथार्थ स्वरूपका बोध होता है ॥ ९ ॥ सांख्य, योग और लोकायत ये आन्वीक्षकी विद्या हैं ॥ १० ॥

धर्माधर्मौ श्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम्
॥ ११ ॥

श्रयीमें धर्म और अधर्मकी, वार्तामें उचित समयपर कृपि आदिके बोधसे सुफल और न बोधसे कुफल आदिका, तथा दण्डनीतिमें सन्धि विग्रह आदिके उचित उपयोगोंका प्रतिपादन किया गया है ॥ ११ ॥

बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लोकस्योपकरोति
व्यसने ऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च
करोति ॥ १२ ॥

श्रयी आदि विद्याओंकी प्रधानता और अप्रधानताको युक्तियोंसे निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है । दुःख और सुखमें बुद्धिको ठीक रखती है । सोचने, विचारने, धोलने और कार्य करनेमें चतुराईको पैदा करती है ॥ १२ ॥

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।

आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता ॥ १३ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे आन्वीक्षकीस्थापना
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह आन्वीक्षकी विद्या, सब विद्याओंका प्रदीप, सब कार्योंका साधन-
भूत तथा सब धर्मोंका सदा आश्रयभूत मानी गई है ॥ १३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

त्रयी स्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी ॥१॥ अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः
॥ २ ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविधितिर्ज्योतिष
मिति चाङ्गानि ॥ ३ ॥

सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद ये तीनों त्रयी कहाते हैं ॥ १ ॥ अथर्ववेद
और इतिहासवेदको वेद कहते हैं ॥ २ ॥ शिक्षा, कल्प; व्याकरण, निरुक्त,
छन्दोविधिति और ज्योतिष ये छ अङ्ग हैं ॥ ३ ॥

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौ-
पकारिकः ॥४॥ स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं
दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥ ५ ॥

यह त्रयीमें निरूपण किया हुआ धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों
को अपने २ धर्ममें स्थित रखनेके कारण लोकका अत्यन्त उपकारक है ॥ ४ ॥
ब्राह्मणका अपना धर्म, पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना करना, तथा दान देना और
लेना है ॥ ५ ॥

क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च ॥६॥
वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये घ्राणिज्या च ॥ ७ ॥
शूद्रस्य द्विजातिशुभ्रपा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च ॥ ८ ॥

क्षत्रियका अपना धर्म पढ़ना यज्ञ करना, दानदेना, शस्त्रसे जखिन
निर्वाह करना, तथा प्राणियोंकी रक्षा करना है ॥ ६ ॥ वैश्यका अपना धर्म
पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, खेती और पशुओंकी रक्षा करना, तथा व्यापार
करना है ॥ ७ ॥ शूद्रका अपना धर्म, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा सुभ्रप
करना, खेती, पशुओंका पालन तथा व्यापार करना, शिल्प, गाना, वजान
तथा भाट धरण, आदिका कार्य करना है ॥ ८ ॥

गृहस्थस्य स्वर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं
देवपित्रातिथिमृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च ॥ ९ ॥

गृहस्थका अपना धर्म, अपने वर्णके अनुकूल कार्योंसे आजीविका
करना, अपने कुल आदिसे समान और भिन्न गोत्रवालोंके साथ विवाह कार्य
करना, ऋतुगामी होना, दंड, पितर, अतिथि तथा मृत्य आदि सबको देकर
पितर पंडित स्वयं भोजन करना है ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायो ऽभिकार्याभिपेका भैक्षव्रतत्वमाचार्ये
प्राणान्तिका घृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सत्रह्यचारिणिः ॥ १० ॥

ब्रह्मचारीका अपना धर्म, वेदाध्ययन करना, अग्निहोत्र तथा नित्य स्नान करना, भिक्षाधर्या, तथा वैदिक ब्रह्मचारीका जीवन पर्यन्त गुरुके समीप रहना, गुरुके न रहनेपर गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शास्त्राध्यायी के समीप रहना है ॥ १० ॥

वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाजिनधारणमग्निहोत्रा-
भिपेका देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्वाहारः ॥ ११ ॥

वानप्रस्थका अपना धर्म, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, भूमिपर शयन करना, जटा तथा मृग चर्म आदिका धारण करना, अग्निहोत्र तथा नित्य स्नान करना, देव, पितर तथा अतिथियोंकी पूजा करना, और जंगलमें होनेवाले कन्दमूल फल आदिका आहार करना है । ११ ॥

परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किंचनत्वं सङ्ग-
त्यागो भैक्षमनेकधारण्ये वासो बाह्यमाभ्यन्तरं च शौचम् ॥ १२ ॥
सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयानृशंस्यं क्षमा च ॥ १३ ॥

सन्यासीका अपना धर्म, जितेन्द्रिय होना, कामनारहित होना, किसी परसुपर अपना अधिकार न रखना, और शरीर, याणी तथा मनकी अच्छी तरह शुद्धि करना है ॥ १२ ॥ मन, वचन, कर्मसे किसी तरह भी हिंसा न करना, सत्य बोलना, पवित्र रहना, किसीसे ईर्ष्या न करना, निष्ठुर न होना और क्षमाशील होना, ये सब वर्ण और आश्रमोंके लिये साधारण धर्म हैं । इनका प्रत्येकका पालन करना चाहिये ॥ १३ ॥

स्वधर्मः स्वर्गीयानन्त्याय च ॥ १४ ॥ तस्यातिक्रमे लोकः
संकरादुच्छिद्येत ॥ १५ ॥

अपने धर्मका पालन करना स्वर्ग और मोक्षप्राप्तिका साधन है ॥ १४ ॥ अपने धर्मका उल्लङ्घन करनेपर, कर्मसाहचर्य और वर्णसाहचर्य होनेसे लोक सर्वथा उच्छिद्य हो जाता है ॥ १५ ॥

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।

स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १६ ॥

व्यवस्थितार्थमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।

त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥१७॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे विद्यासमुद्देशे

त्रयीस्थापना तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

इसलिये राजाका कर्त्तव्य है कि वह प्रजाको धर्ममार्गसे अट न होने देवे । अपने २ धर्मका पालन कराता हुआ राजा, यहा और परलोकमें सुखी होता है ॥ १६ ॥ थेरु मर्यादाके व्यवस्थित होनेपर, वर्ण और आश्रमकी टाक २ परिस्थिति रहनेपर, इस प्रकार त्रयी प्रतिपादित धर्मके द्वारा रक्षाकी हुई प्रजा सदा सुखा रहती है, कभी ह्लेशको प्राप्त नहीं होती ॥ १७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

वार्त्ता और दण्डनीतिकी स्थापना ।

कृपिपाशुपालेय वाणिज्या च वार्त्ता ॥ १ ॥ धान्यपशुहि-
रण्यकुप्यविष्टिप्रदानादापकारिकी ॥ २ ॥ तथा स्वपक्षं परपक्षं
च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् ॥ ३ ॥

कृषि, पशुपालन और व्यापार, यह वार्त्ता है । अर्थात् वार्त्ता नामक विद्यामें इन विषयोंका प्रतिपादन किया जाता है ॥ १ ॥ यह वार्त्ताविद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, तांबा आदि अनेक प्रकारकी धातु और नौकरचाकर आदिके देनेसे राजा प्रजाका अत्यन्त उपकार करनेवाली होती है ॥ २ ॥ वार्त्ता विद्याके द्वारा उत्पन्न हुए २ कोश और सेनासे, अपने और पराये सबको, राजा बशमें करलेंता है ॥ ३ ॥

आन्वीक्षकीत्रयीवार्त्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः ॥ ४ ॥ तस्य
नीतिर्दण्डनीतिः ॥ ५ ॥ अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षणी रक्षित-
निवर्धनी घृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥ ६ ॥

आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्त्ता इन सबके योग और क्षेमका साधन दण्डही है ॥ ४ ॥ उसकी (दण्डकी) नीति अर्थात् यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्रही दण्डनीति कहाता है ॥ ५ ॥ यह दण्डनीतिही अग्रास वस्तुओंको प्राप्त करनेवाली, प्राप्त पदार्थोंकी रक्षा करनेवाली, सुरक्षित पदार्थोंमें

वृद्धि करनेवाली, और वृद्धिको प्राप्त हुए पदार्थोंको उचित स्थानोंमें लगाने वाली होती है ॥ ६ ॥

तस्यामायत्ता लोकयात्रा ॥ ७ ॥ तस्माद्धोकयात्रार्थी नित्य-
मुद्यतदण्डः स्यात् ॥ ८ ॥ न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां
यथा दण्ड इत्याचार्याः ॥ ९ ॥

संसारका निर्वाह इसीके ऊपर निर्भर है ॥ ७ ॥ इसलिये संसारको
ठीक २ रास्तोपर चलानेकी इच्छा रखनेवाला राजा सदा उद्यतदण्ड रहै ॥ ८ ॥
क्योंकि दण्डके अतिरिक्त इस प्रकारका और कोई भी साधन नहीं है, जिससे
सबही प्राणी झट अपने वशमें होसकें, यह आचार्योंका मत है ॥ ९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १० ॥ तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः
॥ ११ ॥ मृदुदण्डः परिभूयते ॥ १२ ॥

परन्तु कौटल्य ऐसा नेंहा मानता ॥ १० ॥ क्योंकि वह कहता है कि
तीक्ष्णदण्ड (निष्ठुरतापूर्वक दण्ड देनेवाले) राजासे सबही प्राणी खिन्न होजाते
हैं ॥ ११ ॥ तथा जो दण्ड देनेमें कमी करता है, लोग उसका तिरस्कार करते
हैं ॥ १२ ॥

यथार्हदण्डः पूज्यः ॥ १३ ॥ सुविज्ञातश्रीतो हि दण्डः
प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ॥ १४ ॥

इसलिये राजा उचित दण्ड देनेवाला होना चाहिये । इस प्रकार दण्ड
देनेवाला राजा सदाही पूजा जाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि विधिपूर्वक दण्डसे
जानकर प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजाओंको धर्म, अर्थ और कामसे युक्त
करता है ॥ १४ ॥

दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्दानप्रस्थपरिव्राजकानपि
कोषयति किमज्ञं पुनर्गृहस्थान् ॥ १५ ॥ अद्वेषितो हि सात्स-
न्यायमुद्गावयति ॥ १६ ॥

अज्ञानतापूर्वक काम और क्रोधके यशोभूत होकर अनुचित दंगसे
प्रयुक्त किया गया दण्ड, दानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्पृह व्यक्तियोंको
भी क्षुब्ध करदेता है, फिर गृहस्थोंका तो कहनाही क्या ? ॥ १५ ॥ यदि दण्ड
का प्रयोग सर्वथा रोक दिया जाय तो जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछलि-
योंको खाजाती है, इसी तरह पलवान् व्यक्ति निर्बलोंको फट पहुँचाने लगे
॥ १६ ॥

वलीयानपलं हि प्रसते दण्डधराभागे ॥ १७ ॥ तेन गुप्तः
प्रभवतीति ॥ १८ ॥

दण्डधारण करनेवाले राजाके न होनेपर सर्वत्र भराजकता फैल जाती है । और सबल नियंत्रणको सताने लगते हैं ॥ १७ ॥ परन्तु दण्डके द्वारा सुरक्षित हुआ २ नियंत्रण भी सबल या समर्थ हो जाता है ॥ १८ ॥

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः ।

स्वधर्मकर्मभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥ १९ ॥

इति विनयाधिकारिकं प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे वार्तास्थापना

दण्डन्यायिस्थापना च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

विद्यासमुद्देश समाप्त ॥

दण्डके द्वारा राजाके पालन किये हुए चारोंवर्ण और आश्रमके सम्पूर्ण लोग, अपने धर्मकर्ममें लग हुए, बराबर उचित मार्गपर चलते रहते हैं ॥ १९ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

२ प्रकरण ।

वृद्ध-संयोग ।

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः ॥१॥ विनयमूलो दण्डः प्राण-
भृतां योगधेमानहः ॥ २ ॥ कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः ॥३॥

इसीलिये आन्विक्षकी, त्रयी और वार्ता इन तीनों विद्याओंकी स्थिति दण्डके ही अधीन है ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानपूर्वक उचित रीतिसे प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजाओंके योग और श्रेयका साधन होता है ॥ २ ॥ विनय दो प्रकारका होता है । एक कृतक अर्थात् नैमित्तिक और दूसरा स्वाभाविक । (जो परिधम करके किम्हीं कारणसे प्राप्त किया गया हो वह कृतक और जो वसनावसही स्वतः सिद्ध हो, उसे स्वाभाविक समझना चाहिये) ॥ ३ ॥

क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम् ॥ ४ ॥ शुश्रूषाश्रयण-
प्रदणधारणाविज्ञानोदापोहवचनाभिनिषिष्टबुद्धिं विद्या विनयति ने-
तरम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अच्छी किरमके पत्थर आदि द्रव्यही ज्ञानपर रक्षित जानेसे सत्कर होते हैं, मामूली पत्थर आदि नहीं ॥ ४ ॥ इसी प्रकार शिक्षाके लिये

किया हुआ, धर्मभो, शुद्धता, ध्वषण, प्रहण, धारण, विज्ञान, ऊर्ध्व, जपौह और तत्त्वाभिनिवेश आदि बुद्धिगुणोंसे युक्त सुपात्र व्यक्तिको ही शिक्षित, या विनीत बना संकता है, उपयुक्त गुणोंसे रहित कुपात्र व्यक्तिको नहीं ॥ ५ ॥

विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनेयो नियमश्च ॥ ६ ॥
वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत ॥ ७ ॥ वृत्तोपनयन-
स्त्रयीमान्धीक्षकीं च शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीतिं वक्तु-
प्रयोक्तृभ्यः ॥ ८ ॥

भित्त २ विद्याओंके अपने २ आचार्योंके अनुसारही शिष्यका शिक्षण और नियम होना चाहिये ॥ ६ ॥ मुण्डन संस्कारके अनन्तर अक्षराभ्यास तथा गिनने आदि का विधिपूर्वक अभ्यास करे ॥ ७ ॥ उपनयनके अनन्तर सदाचारी विद्वान् आचार्योंसे ग्रंथों और आन्धीक्षकीको, तथा उन २ विभागोंके अध्यायों (सीताध्यक्ष आदि) से वाचोंको, इसी प्रकार वक्ता और प्रयोक्ता अर्थात् सन्धि-विग्रह आदिके यथार्थ जानकर, तथा इनको उचित स्थानोंपर प्रयोग करनेवाले अनुभवी विद्वानोंसे दण्डनीतिको सीखे ॥ ८ ॥

ब्रह्मचर्य चापोडशाद्वर्षात् ॥ ९ ॥ अतो गोदानं दारकर्म
चास्य ॥ १० ॥ नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्धयर्थं तन्मूल-
त्वाद्विनयस्य ॥ ११ ॥

सोलहवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यका यथावत् पालन करे ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर गोदानविधि (समावर्तन संस्कार=केशान्तकर्म) पूर्वक विवाह करे ॥ १० ॥ विवाहके बाद अपने विनयकी वृद्धिके लिये सदाही विद्यावृद्ध पुरुषोंका सहवास कियाकरे, क्योंकि अनुभवी विद्वान् पुरुषोंकी संगति ही विनय का मूल है ॥ ११ ॥

पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत् ॥ १२ ॥
पश्चिममितिहासश्रवणे ॥ १३ ॥ पुराणमिति वृत्तमाख्यायिका-
दाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चैतीतिहासः ॥ १४ ॥

दिनके पहिले भागको हाथी घोड़े रथ और अस्त्र शस्त्र आदि विद्या सम्यन्धी शिक्षाओंमें व्यतीत करे ॥ १२ ॥ दिनके पहिले भागको इतिहास आदि सुननेमें व्यतीत करे ॥ १३ ॥ ब्राह्म आदि पुराण, रामायण महाभारत आदि इतिहास, आख्यायिका, उदाहरण मीमांसा, आदि मन्वादि धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ये सबही इतिहास शब्दसे समझने चाहिये ॥ १४ ॥

शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात् ॥ १५ ॥
अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च ॥ १६ ॥ श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते
प्रज्ञया योगो योगादात्मपचेति विद्यासामर्थ्यम् ॥ १७ ॥

दिन और रातके दोप भागोंको न्यून ज्ञानके ग्रहण, और गृहीत ज्ञान
के मनन या चिन्तन में व्यय करे ॥ १५ ॥ जो पदार्थ षड्वार ध्वज करनेपर
बुद्धिस्थ न हो, उस बार २ श्रवण करे ॥ १६ ॥ क्योंकि शास्त्र श्रवणसे बुद्धिका
विकास होता है, उससे योग अर्थात् शास्त्रोंमें अद्या, और योगसे मनस्विता
प्राप्त होता है, यहा विद्याका फल है ॥ १७ ॥

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः ।

अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः ॥ १८ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे बृहत्सयोग

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मुद्रिक्षाले शिक्षित या विनात राजा, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगा
हुआ, तथा प्रजाओंके शिक्षण में तत्पर रहता हुआ निष्कण्टक पृथिवीका चिर
काल तक उपभाग करता है ॥ १८ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पाचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

३ प्रकरण

इन्द्रियजय । (काम आदि छः शत्रुओंका त्याग)

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्या-
गात्कार्यः ॥ १ ॥ कर्णत्वगाक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरू-
परसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः ॥ २ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्षके त्यागसे इन्द्रियोंका जयकरे,
क्योंकि इन्द्रियोंका अपह्नी विद्या और विनयका हेतु है ॥ १ ॥ कर्ण, त्वक्, शब्द
रसन, और घ्राण इन्द्रियाका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयोंमें प्रवृत्त
न होनेदेना ही इन्द्रियजय कहाता है ॥ २ ॥

शास्त्रार्थानुष्ठानं वा ॥३॥ कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः
॥ ४ ॥ तद्विरुद्धवृत्तिस्वश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विन-
श्यति ॥ ५ ॥

अथवा शास्त्रोंमें प्रतिपादित कर्तव्योंके अनुष्ठानको भी इन्द्रियजयका
कारण समझना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रतिपादित विधेय अर्थ
इन्द्रियजयके कारण कहे गये हैं ॥ ४ ॥ शास्त्र विहित कर्तव्योंके विरुद्ध अनुष्ठान
करने वाला, इन्द्रिय परायण (इन्द्रियोंको यत्नमें न करनेवाला) राजा, सम्पूर्ण
पृथिवीका अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्राक्षणकन्यामभिमन्य-
मानः सवन्धुराद्यो विननाश ॥ ६ ॥ करालश्च वैदेहः ॥ ७ ॥
कोपाञ्जनमेजयो द्राक्षणेपु त्रिकान्तस्तालजह्वश्च भृगुपु ॥ ८ ॥

जैसे कि भोज वंशका दाण्डक्य नामक राजा तथा विदेह देशका कराल
नामक राजा कामके वशीभूत होकर द्राक्षणाकी कन्याका अपहरण करके उसके
पिताके शापसे बन्धु बान्धव और राष्ट्रके सहित नाशको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥
॥ ७ ॥ कोपके वशीभूत होकर जनमेजय द्राक्षणाके साथ कन्ह करके
उनके शापसे नष्ट होगया, तथा तालजह्व भृगुओंपर क्रुद्ध होकर उनके शापसे
मारा गया ॥ ८ ॥

लोभादौलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सोमीरश्चाजविन्दुः ॥९॥
मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छत् ॥ १० ॥ दुर्योधनो राज्यादंशं
च ॥ ११ ॥

लोभके वशीभूत होकर इला का पुत्र पुरुरवा नामक राजा चारों वर्णोंसे
अत्याचार पूर्वक घन अपहरण करता हुआ उनके शापसे नाशको प्राप्त हुआ,
और इसी प्रकार सीधीर देवाका राजा अजविन्दु भी ॥ ९ ॥ अभिमानके वशी-
भूत होकर रावण परस्त्रीको उसके शरामीके लिये न देता हुआ तथा दुर्योधन
राज्यके हिस्से को अपने भाईयोंके लिए न देता हुआ नाशको प्राप्त हो गया
॥ १०—११ ॥

मदाहुम्भोद्भवो भूताघमानी हैहयश्चार्जुनः ॥१२॥ हर्षाद्वातापि-
रगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसह्यश्च द्वैपायनमिति ॥ १३ ॥

मदके वशीभूत होकर दरमोक्षय नामका राजा सम्पूर्ण प्रजाओंका तिर-
स्कार करता हुआ नरनारायणके साथ युद्ध करके मारा गया, और इसी

प्रकार मर्दके कारण देहव देवका राजा भ्रुंन, परशुरामके हाथसे मारा गया ॥ १२ ॥
हर्षके वशीभूत होकर वातापि नामका भ्रुंन अगस्त्य ऋषिके साथ और
यादव समूह द्वैपायन ऋषिके साथ वधना करता हुआ उनके हाथसे नाशको
प्राप्त होगया ॥ १३ ॥

एते चान्ये च बहवः शत्रुपद्वर्गमाश्रिताः ।

सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेश्वरजितेन्द्रियाः ॥ १४ ॥

ये उपयुक्त और इसी प्रकारके अन्य बहुतेरे राजा, कामादि शत्रु पद्वर्ग
के वशीभूत होकर, अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखते हुए बन्धु बान्धवों
और राष्ट्रके सदित नाशको प्राप्त हो गये ॥ १४ ॥

शत्रुपद्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः ।

अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे इन्द्रियजये अरिपद्वर्गत्याग
पद्येऽध्याय ॥ ६ ॥

और हम शत्रु पद्वर्गकी छटा का, जितेन्द्रिय, जामदग्निके पुत्र
परशुरामने, तथा अम्बरीष और नाभाग (नभगा राजा का पुत्र) ने चिरकाल
तक इस पृथिवीका निष्कण्ठक उपभोग किया ॥ १५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें छटा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

(राजर्षिका व्यवहार)

तस्मादारिपद्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्यात् ॥ १ ॥ वृद्धसंयो-
गेन प्रज्ञां चारिण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं कार्यानुशासनेन
स्वधर्मस्थापनं विनयं विद्योपदेशेन लोकप्रियत्वमर्धसंयोगेन हितेन
वृत्तिम् ॥ २ ॥

हम लिखे इन काम आदि छ शत्रुभाका सर्वथा परिश्याग काके
इन्द्रियोंका जयकरे ॥ १ ॥ वृद्ध विद्वानोंके सहवास से बुद्धिको विकसित करे,
गुणधर्मोंके ज्ञान अपने और पराये राष्ट्रकी व्यवस्थाकरे देखे, उद्योगके द्वारा योग
और क्षेमका सम्पादन करे, राजकीय नियमों (कानूनों) के द्वारा अपने २ धर्म
में प्रजाका नियन्त्रण करे, विद्याके प्रचारके द्वारा प्रजाओंको विनीत और
शिक्षित बनावे, उचित पार्श्वोंमें धन आदिके देनेसे प्रजाका प्रिय बनारहे, अर्थात्

प्रजाको अपना अनुगामी बनाने रखते; और प्रजाओंके हितके साथ ही अपनी लोकयात्रा करे, अर्थात् अपने निज व्यवहारों में भी प्रजाके हितका ध्यान रखे ॥ २ ॥

एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ स्वमं
लौल्यमनृतमुद्धतवेपत्वमनर्थसंयोगं च ॥ ४ ॥ अधर्मसंयुक्तं चा-
नर्थसंयुक्तं च व्यवहारम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ परस्त्री, परद्रव्य, तथा पर
हिंसाका सर्वथा परिहाराग करे ॥ ३ ॥ अनुचित निद्रा, चपलता, मिथ्याभाषण,
उद्धतवेप, अनर्थकारी सम्पूर्ण कार्यों और इस प्रकारके पुरुषोंके सहवासको
सर्वथा छोड़ देवे ॥ ४ ॥ अधर्म और अनर्थसे युक्त व्यवहार को भी छोड़
देवे ॥ ५ ॥

धर्मार्थाधिरोधेन कामं सेवेत् ॥ ६ ॥ न निःसुखः स्यात् ॥ ७ ॥
समं वा त्रिवर्गमन्योन्यं नुबन्धम् ॥ ८ ॥ एको ह्यत्यासेवितो
धर्मार्थकामानामात्मानमितरी च पीडयति ॥ ९ ॥

धर्म और अर्थके अनुसार ही कामका सेवन करे ॥ ६ ॥ सुखरहित अर्थात्
कष्टके साथ जीवन निर्वाह न करे ॥ ७ ॥ अथवा परस्पर अनुबद्ध धर्म अर्थ और
कामका बराबर २ सेवन करे ॥ ८ ॥ क्योंकि व्यसन पूर्वक अत्याधिक सेवन
किया हुआ इनमेंसे कोई एक, आत्माको तथा शेष दोनोंको बहुत कष्ट पहुंचाता
है ॥ ९ ॥

अर्थ एव प्रधान इति कौटल्यः ॥ १० ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामा-
विति ॥ ११ ॥ मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान्वा ॥ १२ ॥

इन तीनोंमेंसे अर्थ ही प्रधान है, यह कौटल्य आचार्यका मत है ॥ १० ॥
क्योंकि धर्म और काम अर्थ मूलक ही होते हैं, अर्थात् अर्थ ही इन दोनोंका कारण
है ॥ ११ ॥ आचार्यों और जमातों को अदली मर्यादा अर्थात् सीमा बनाने ॥ १२ ॥

य एनमपायस्थानेभ्यो वारथेयुः ॥ १३ ॥ छायानालिका-
प्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः ॥ १४ ॥

जो कि आचार्य आदि इसकी सुराहियोंकी ओरसे रोक सकें ॥ १३ ॥ अन्तः पुरु
आदि एकान्त स्थानोंमें प्रमाद करते हुए राजाको, आचार्य अमात्य आदि, छाया
तथा नाडिका (देखो अध्याय १९ सूत्र ६—९ तक) आदिके विभागमें सनपका
अवश्य दिवाकर व्यथित करें ॥ १४ ॥

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।

कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिवृत्त

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ इन्द्रियजयः समाप्तः ।

जिस प्रकार गाधोका एक पहिया दूसरेकी सहायताके बिना अनुपयुक्त होता है, इसी प्रकार राज्य चक्र भी अमात्य आदिकी सहायताके बिना एकाकी राजाके द्वारा नहीं चलाया जासकता । इसलिये राजाको उचित है कि वह योग्य अमात्योंको रखे, और उनके मतको बराबर सुने ॥ १५ ॥

विनयाधिकारिके प्रथम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

४ प्रकरण ।

१ अमात्योंकी नियुक्ति ।

सहाध्यायिनोऽमात्यान्कुर्वीत दृष्टशौचसार्थ्यत्वादिति भार-
द्वाजः ॥ १ ॥ ते ह्यस्य विश्वासा मयन्तीति ॥ २ ॥

भारद्वाज आचार्यका मत है कि राजा अपने सहाध्यायियोंमेंसे ही किन्हीं को अमात्य नियुक्त करे । क्योंकि इनके इन्द्रियकी पवित्रता और कार्य करनेकी शक्ति, साथ पदनेके समयमें अच्छी तरह जानली जाती है ॥ १ ॥ और इसी लिये वे मन्त्री इस राजाके विश्वासपात्र भी होते हैं ॥ २ ॥

नेति विशालाक्षः ॥३॥ सहक्रीडितत्वात्परिमयन्त्येनम् ॥४॥
ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान्कुर्वीत समानशीलव्यसनत्वात्
॥ ५ ॥ ते ह्यस्य मर्मज्ञत्वभयान्नापराध्यन्तीति ॥ ६ ॥

विशालाक्ष इस मतको ठीक नहीं मानता ॥३॥ वह कहता है कि, अप्ययन कालमें साथ २ खेलनेके कारण वे लोग राजाका तिरस्कार कर सकने हैं ॥ ४ ॥ इसलिये जो लोग, राज के डिये हुए आचरणके समानही आचरण करनेवाले हों, उन्हींको, स्वभाव वृत्तनके समान होनेके कारण, अमात्य बनाना चाहिये ॥ ५ ॥ क्योंकि वे लोग, इस भयस कि राजा हमारे सप मर्मोंको जानता है, कभी राजाका अपराध न करेंगे ॥ ६ ॥

साधारण एष दौष इति पराशरः ॥ ७ ॥ तेषामपि मर्मज्ञत्व-
भयात्कृताकृतान्यनुवर्तेत ॥ ८ ॥

यावद्भूयो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः ।

अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम् ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य पराशर कहते हैं कि यह दौष राजा और अमात्य दोनोंके लिये समान है ॥ ७ ॥ राजा भी, इस भयसे कि अमात्य मेरे सब मर्मोंको जानते हैं, उनके अष्टे या झुरे सभी तरहके कार्योंका अनुसरण करेगा ॥ ८ ॥ क्योंकि राजा जितने भी आश्चर्योंके सामने अपनी छिपी हुई बातोंको कहदेता है इस कार्यसे गधीर हुआ २, वह उतनेही मनुष्योंके वशमें होजाता है ॥ ९ ॥

य एनमापत्सु प्राणावाधयुक्तास्वनुगृहीयुस्तानमात्यान्कुर्वति
॥ १० ॥ दृष्टानुरागत्वादिति ॥ ११ ॥

इसलिये जो पुरुष, इसकी ऐसी भयावह आपत्तियोंमें सहायता करें जिनमें प्राणोंका भी भय हो, उन्हीं पुरुषोंको अमात्य बनाया जावे ॥ १० ॥ क्योंकि इस कार्यके करनेसे राजाके प्रति उनके अनुराग का डीक २ पता लगजाता है ॥ ११ ॥

नेति पिशुनः ॥ १२ ॥ भक्तिरपा न बुद्धिगुणः ॥ १३ ॥

परन्तु आचार्य नारद इस सिद्धान्तको भी नहीं मानते ॥ १२ ॥ उनका कहना है कि अपने प्राणोंकी भी परवाह न करके राजाकी सहायता करना, यह केवल भक्ति या सेवार्थ है, इससे अमात्योंकी बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं होती, और बुद्धिसम्पन्न होना अमात्यका सर्व प्रथम गुण है ॥ १३ ॥

संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा
कुर्युस्तानमात्यान्कुर्वति ॥ १४ ॥ दृष्टगुणत्वादिति । १५ ॥

इसलिये ऐसे पुरुषोंको अमात्य बनाना चाहिये, जो कि यथाये हुए राजकीय कार्योंमें नियुक्त होकर उन कार्योंको उचित रीतिसे पूरा करें, या उसमें भी कुछ विशेष करके दिलावे ॥ १४ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे उनके बुद्धिगुण की डीक २ परीक्षा होजाती है ॥ १५ ॥

नेति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते
॥ १७ ॥ पितृपैतामहानमात्यान्कुर्वति ॥ १८ ॥ दृष्टापदानत्वात् ॥ १९ ॥

परन्तु आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) नारदके इस सिद्धान्तको नहीं मानते ॥ १६ ॥ क्योंकि वे कहते हैं कि ऐसे अमात्य, अन्य अमात्योचित गुणोंसे

रहित ही रहते हैं ॥ १७ ॥ इसलिये अमाल्य ठन्हींको बचाया जाए, जिनके पिता, पितामह आदि इस पदपर कार्य करते थके आये हैं ॥ १८ ॥ क्योंकि वे पहिले-सेही अमाल्य पदके सम्पूर्ण व्यवहारोंसे परिचित होजाते हैं ॥ १९ ॥

ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति सगन्धत्वात् ॥ २० ॥
अमानुषेष्वपि चैतद्दृश्यते ॥ २१ ॥ गावो ह्यसगन्धं गौगणभति-
क्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्त इति ॥ २२ ॥

और इसीलिये वे अपना अपकार किये जानेपर भी, अपने मासिकको सम्बन्धो या परिचिन होनेके कारण कभी नहीं छोड़ते ॥ २० ॥ यह बात पशु-ओंमें भी देखी जाती है ॥ २१ ॥ गौएँ अरुने अपरिचिन गो समूहको छोड़कर परिचिन समूहमें ही जाकर ठहरती हैं ॥ २२ ॥

नेति वातव्याधिः ॥ २३ ॥ ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिव-
त्प्रचरन्तीति ॥ २४ ॥ तस्मान्नीतिविदो नभानमात्यान्कुर्वीत ॥ २५ ॥
नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ॥ २६ ॥

परन्तु आचार्य दण्डव इस सिद्धान्तको भी नहीं मानते ॥ २३ ॥ उनका कहना है कि इसप्रकारके मन्त्री, राजाके सर्वस्वको अपने अधीन करके, राजाके समान स्वतन्त्र वृत्ति होजाते हैं ॥ २४ ॥ इसकिये नीति शास्त्रमें निपुण, नवीन पुरुषोंको ही अमाल्य नियुक्त करे ॥ २५ ॥ इसप्रकारके पहिलेसे अपरिचित अमा-ल्य, दण्ड धारण करनेवाले राजाको यमके स्थानमें समझते हुए, कभी उसका कोई अपराध नहीं करते ॥ २६ ॥

नेति बाहुदन्तीपुत्रः ॥ २७ ॥ शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु
विपादं राच्छेत् ॥ २८ ॥ अभिजनभ्राताशौचशार्थानुरागयुक्तान-
मात्यान्कुर्वीत ॥ २९ ॥ गुणप्राधान्यादिति ॥ ३० ॥

परन्तु आचार्य बाहुदन्तीपुत्र (इन्द्र) इस मतको भी नहीं मानते ॥ २८ ॥ उनका कहना है, कि नीति अदि शास्त्रोंमें निपुण भी पुरुष, अमाल्यके कार्योंसे अपरिचित होनेके कारण, उनमें असफल होसकता है ॥ २८ ॥ इस-लिये ऐसे पुरुषोंको ही अमाल्य नियुक्त किया जावे, जो कि कुलीन, बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, दूर और स्वामीमें अनुराग रखनेवाले हों ॥ २९ ॥ क्योंकि अमाल्यमें गुणोंकी प्रधानता होनी ही अत्यन्त आवश्यक है ॥ ३० ॥

सर्वमुपपन्नमिति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ कार्यसामर्थ्याद्दे पुरुष-
सामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च ॥ ३२ ॥

कौटिल्य आचार्यका मत है कि भारद्वाजके सिद्धान्तसे लगाकर अभी तक जो कुछ अमात्यके सम्बन्धमें कहा गया है वह सबही ठीक है ॥ ३१ ॥ क्योंकि पुरुषके सामर्थ्यकी व्यवस्था, उनके किये कार्योंके सफल होनेपर तथा उनके विद्या बुद्धिके बलपरही की जाती है ॥ ३२ ॥

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च ।

अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः ॥३३॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे अमात्योत्पत्तिः अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

इसलिये राजा, महाध्यायी भाविका भी सर्वथा परिवर्तन न करे, किन्तु इन सबको ही, उनको कार्य करनेकी शक्तिके अनुसार, उनके बुद्धि आदि गुण, देश, काल, तथा कार्योंको अच्छी तरह विवेचन करके अमात्य पदपर नियुक्त करे । परन्तु इनको अपना मन्त्री कदापि न बनावे । तात्पर्य यह कि सदाध्यायी आदिको उनके योग्य कार्योंपर तो नियुक्त करदे, पर उन्हें अपना मन्त्री अर्थात् सलाहकार न बनावे, मन्त्री वे ही हैं जो सर्वगुण सम्पन्न हों ॥ ३३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें आठवाँ अध्याय समाप्त ।

नौवाँ अध्याय

१ प्रकरण

मन्त्री और पुरोहितकी नियुक्ति ।

जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो धार-
यिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेश-
सहः शुचिर्मेत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचा-
पल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तव्यमात्यसंपत् ॥ १ ॥

अपने देशमें उत्पन्न हुआ २, कुलीन; जो गुराहोंसे दृष्ट हटाया जासके, अथवा जिनके बन्धु बान्धव भी धेष हों; जो हाथी घोड़े आदिपर चढ़ने, रथ चलाने युद्ध करने तथा गाने बजाने आदिकी विद्याओंमें भी निपुण हो; अर्ध शास्त्रको जानने वाला; स्वाभाविक बुद्धिमें युक्त; स्मरण शक्तिमन्त्रज्ञ; चतुर; मधुर; धीर युक्त बोलने वाला; प्रगल्भ (दुर्ग); प्रतीकार और प्रतिवाद करने में समर्थ; बरसाही तथा प्रभाव शाली; क्लेशोंको सहन करने वाला; पवित्र हृदय; सबके साथ मधुर व्यवहार करने वाला; स्वामीमें दृढ़ अनुसरण करनेवाला; शील, बल, आरोग्य तथा धैर्यशाली; निरभिमान तथा स्थिर स्वभाव वाला; सौम्य

आकृति, तथा स्त्री भूमि आदिके निमित्त सजुता न करने वाला पुरुष प्रधान-
मन्त्री होना चाहिये ॥ १ ॥

अतः पादार्यगुणहीनो मध्यमावरौ ॥ २ ॥ तेषां जनपद-
मवग्रहं चासतः परीक्षेत ॥ ३ ॥ समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्र-
चक्षुष्मतां च ॥ ४ ॥

इन सब गुणोंमेंसे चौपाई गुण जिसमें नहीं, वह मध्यम, और आधे
गुण जिसमें नहीं, वह निरुद्ध प्रधानामात्य समझा जाता है ॥ २ ॥ राजा, इन
सब गुणोंमेंसे, मन्त्रोंके निवास स्थान (उत्पत्ति स्थान) और बन्धु बान्धव आदि
का पता आत पुरुषोंके द्वारा लगावे ॥ ३ ॥ हाथी आदिकी स्वारी और शास्त्र
संपुष्पकी परीक्षा उनके सहपाठियोंके द्वारा करे ॥ ४ ॥

कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च ॥ ५ ॥ कथायोगेषु
वाग्मिन्त्रं प्रागल्भ्यं प्रतिमानर्चं च ॥ ६ ॥ आपगुस्ताह्व्रमावौ
क्लेशसहत्वं च ॥ ७ ॥ संब्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च
॥ ८ ॥ संग्रामिभ्यः शीलवलारोग्यमन्त्रयोगमस्तम्भमचापत्यं च
॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमपैरित्वं च ॥ १० ॥

प्रज्ञा, स्मरण शक्ति और चतुराईकी परीक्षा कार्योंके करनेमें ॥ ५ ॥
वाक्पटुता, प्रागल्भता तथा प्रतिभाकी जांच व्याख्यानो या सभाओंमें ॥ ६ ॥
उत्साह, प्रभाव और सद्गुण शक्तिकी परीक्षा, आपत्तिके समय ॥ ७ ॥ हृदयकी
पवित्रता, सफेते मैत्रीभाव और दृढ भक्तिकी परीक्षा व्यवहारसे ॥ ८ ॥ शील,
बल, आरोग्य, धैर्य, निरभिमानिता और स्थिर स्वभावकी परीक्षा सहवासी पुरु-
षोंके द्वारा ॥ ९ ॥ संग्रह आकृति तथा प्रीतिकी परीक्षा, स्वयं अपने अनुभवसे
राजा करे ॥ १० ॥

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ ११ ॥ स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं
परोपदिष्टं परोक्षम् ॥ १२ ॥

वर्षोंके राजाका व्यवहार प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय तीनोंही प्रकारका
होता है, इसलिये पिउले सूचोंमें, तीनोंही प्रमाणोंसे परीक्षा करनेका विधान
किया है ॥ ११ ॥ अपने आप देखा हुआ व्यवहार प्रत्यक्ष, तथा दूसरोंसे बत-
लाया हुआ परोक्ष कहाता है ॥ १२ ॥

कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम् ॥ १३ ॥ अयौगपद्यातु
कर्मणामनेकत्वाद्नेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परो-

क्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म ॥ १४ ॥

कार्योंमें, किये हुए कार्यसे न किये हुए कार्यका समझना या देखना अनुमेय ऋदाजाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि राजकीय-कार्य एक साथ नहीं, किये जा-सकते, वे बहुत प्रकारके और अनेक स्थानोंमें होनेवाले होते हैं, ठीक २ स्थान और समयोंमें अकेलाही राजा, उन सब कार्योंको नहीं कर सकता, इसलिये जिससे कि उन कार्योंके उचित देश और कालका अति क्रमण नहो, इसप्रकार राजा-अमात्योंके द्वाराही परीक्ष रूपमें उन सब कार्योंको-करवावे, -इस लिये उपयुक्त अमात्योंकी परीक्षा और नियुक्तिका विधान किया गया है ॥ १४ ॥

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं पडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्ड-
नीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रति-
कर्तारं कुर्वीत ॥ १५ ॥ तमाचार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः
स्वामिनमिव चानुवर्तेत ॥ १६ ॥

शास्त्र प्रतिपादित विद्या आदि-गुणोंसे युक्त; उद्यत कुलशील, पडङ्ग वेदमें, प्योलिप शास्त्रमें, शकुन शास्त्रमें, तथा दण्डनीति शास्त्रमें अत्यन्त निपुण; दैवी और मानुषी आपत्तियोंका अथर्ववेद आदिमें बताये हुए उपायोंसे प्रतीकार करनेवाले व्यक्तियोंको पुरोहित नियुक्त किया जावे ॥ १५ ॥ और राजा, उस पुरोहितका इस प्रकार अनुगामी भया रहे, जैसे कि शिष्य आचार्यका पुत्र पिताका और भृत्य स्वामीका अनुगामी होता है ॥ १६ ॥

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।

जयत्यलितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम् ॥ १७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः नवमोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इसप्रकार ब्राह्मण पुरोहितसे ब्रह्मया हुआ, तथा उपयुक्त गुणी मन्त्रियों का सलाहसे संस्कृत हुआ २, शास्त्रोंके अनुसार आचरण करने वाला क्षत्रियकुल; विनाही युद्धके अन्तर्गत और अलम्ब चतुर्भोंको भी अचर्यही अपने घरमें कर देता है ॥ १७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

६ प्रकरण ।

गुप्तरीतिसे अमात्योंके हार्दिक सरल तथा कुटिल
भावोंकी परीक्षा ।

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वा मात्या-
नुपधाभिः शोधयेत् ॥ १ ॥ पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियु-
क्तममृष्यमाणं राजावाक्षिपेत् ॥ २ ॥

साधारण अधिकार पदोंपर अमात्योंको नियुक्त करके, मन्त्री और पुरो-
हितके सहित राजा, उनके मनकी पवित्रताका परीक्षण वक्ष्यमाण गुप्त रीतियोंसे
करे ॥ १ ॥ राजा, बीच कुलोत्पन्न किसी अस्पृश्य ब्यक्तिके यहाँ यज्ञ करानेके
लिये या उसे पढ़ानेके लिये पुरोहितको नियुक्त करे, जब पुरोहित इस बातसे
रुष्ट होवे तो उसको उसके अधिकार पदसे गिरादेवे ॥ २ ॥

स सच्चिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत् ॥ ३ ॥ अ-
धार्मिको ज्यं राजा साधुधार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्य-
मेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः ॥ ४ ॥

इसप्रकार तिरस्त्रित हुआ पुरोहित, सत्रियों (गुप्तचरका कार्य करने वाले
पुरुष या स्त्रियों) के द्वारा शपथ-पूर्वक एक २ अमात्यको राजासे इसप्रकार भिन्न
करे ॥ ३ ॥ “ देखो यह राजा बड़ा अधार्मिक है, इसके ही वंशमें उत्पन्न हुए
किसी अन्य श्रेष्ठ सर्वपूज्य धार्मिक व्यक्तिको; अथवा समीप देशके किसी साम-
न्तको; या आटविक (जंगलके स्वामी) अथवा जिसको हम सब मिलकर
निश्रय करलें उसे, इस राजाके स्थानपर नियुक्त करना चाहिये ॥ ४ ॥

सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ५ ॥ प्रत्याख्याने शुचि-
रिति घर्मोपधा ॥ ६ ॥

यह बात और सब लोगोंको अच्छी लगी है, उन्होंने इसको स्वीकार
कर लिया है, अब यताओं गुप्तरीति इसमें क्या समझते हैं” ॥ ५ ॥ यदि यह
इस बातका समर्थन न करे, तो उसे शुचि अर्थात् पवित्र हृदय समझा जावे । यह
घर्मोपधा अर्थात् घर्मके द्वारा गुप्तरीतिसे अमात्योंकी पवित्रताका पता लगाना
कहा जाता है ॥ ६ ॥

सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकममात्यमुपजाय-
येछोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय ॥ ७ ॥

इसीप्रकार राजा, किसी अपूज्य व्यक्तिका सरकार करनेके लिये सेनापतिसे
कहे, इस बातसे सेनापति जब रष्ट होने लगे तो राजा पूरोंक रीतिसे उसका
तिरस्कार करे, और यह सत्रियोंके द्वारा एक २ अमात्यको धनका लोभ देकर
राजाका नाश करनेके लिये, राजासे उनका भेद डाल देवे ॥ ७ ॥

सर्वेपामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ८ ॥ प्रत्याख्याने शुचि-
रित्यर्थोपधा ॥ ९ ॥

और फिर पूरोंक रीतिसे कहे कि इस बातको सचने स्वीकार करलिया
है, तुम्हारा इसमें क्या समझा है ॥ ८ ॥ यदि वह इस बातका समर्थन न करे
तो उसे शुचि समझा जावे । यह अर्थोपधा अर्थात् धनका लोभ देकर गुस्तीतिमें
अमात्योंके हृदयको पवित्रताका पता लगाना कहा जाता है ॥ ९ ॥

परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमे-
कैकमुपजपेत् ॥ १० ॥ राजमहिषी त्वां कामयते कृतसमागमा-
पाया महानर्थश्च ते भविष्यतीति ॥ ११ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति
कामोपधा ॥ १२ ॥

किसी विश्वस्त साधुवेषवारेणों को अन्तःपुरमें लेजाकर उसका
अच्छोतिरस्कार करे, और फिर वह महामात्रा (अमात्यों) के पास अलङ्कार २
जाकर उन्हें राजासे भिक्ष करदेवे ॥ १० ॥ और कहे कि महारानी तुम्हें चाहती
है, तुम्हारे साथ समागम करनेके लिये सब तरहके उपाय किये हुए हैं । इमसे
तुमको धनभी बहुत मिल जावेगा ॥ ११ ॥ यदि वह इस बातका प्रत्याख्यान
करदे तो उसे शुचि समझा जावे । इसका नाम कामोपधा है ॥ १२ ॥

प्रवहणनिमित्तमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत् ॥ १३ ॥
तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात् ॥ १४ ॥ कापाटिकच्छात्रः पूर्वा-
चरुद्धस्तोपामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत् ॥ १५ ॥

नौका आदिकों सेर करनेके लिये जप कोई एक अमात्य, अन्य सब
अमात्योंको एकट्ठा करे ॥ १३ ॥ तो राजा उनके इस कार्यसे अपने उद्वेगको दिखकर
उनपर जुरमाना करके अथवा पदसे उतारकर उनका अपमान करे ॥ १४ ॥
तदनन्तर राजासे, पहिले अवकून हुआ २ कपटवेषी छात्र (छात्रके वेषमें गुस्-
धर) अर्थ और मानसे तिरस्कृत हुए एक एक अमात्यके पास जावे, और उन्हें
राजा से इसप्रकार भिक्ष करे ॥ १५ ॥

असत्प्रवृत्तोऽपि राजा ॥१६६॥ सहसैनं हत्वान्यं प्रतिपाद-
यामः ॥ १७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा । तवेति ॥१८॥ प्रत्या-
ख्याने शुचिरिति भयोपधा ॥ १९ ॥

यह राजा अत्यन्त असन्मार्गमें प्रवृत्त हुआ २ है ॥ १६ ॥ इसे सहसा
मार कर, इसके स्थानपर किसी दूसरे धार्मिक राजाको गद्दीपर बिठाना चाहिये
॥ १७ ॥ इस बातको अन्य सभी अमात्योंने स्वीकार किया है, तुम्हारी इसमें
क्या सम्मति है ॥१८ ॥ यदि 'वह इस' मन्त्रायको स्वीकार न करे तो उसे शुचि
समझा जावे । इसका नाम भयोपधा है ॥ १९ ॥

तत्र धर्मोपधाशुद्धान्धर्मस्थीपकण्टकशोधनेषु स्थापयेत् ॥२०॥
अर्थोपधाशुद्धान्समाहर्तुसंनिधातृनिचयकर्मसु ॥ २१ ॥ कामोप-
धाशुद्धान्वाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु ॥ २२ ॥

इसप्रकार परीक्षा किये हुए इन अमात्योंमेंसे जो धर्मोपधासे परीक्षा
किया गया हो, उसे धर्मस्थ (देखें तृतीय अधिकरण) तथा कण्टकशोधन
(देखें-चतुर्थ अधिकरण) कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ २० ॥ जो अर्थोपधा
शुद्ध हों, उनको समाहर्ता (हर वसूल करने वाले) और संनिधाता (कोष-
रक्ष) आदिके पदोंपर नियुक्त किया जावे ॥ २१ ॥ जो कामोपधाशुद्ध हों, उन्हें
बाहर भीतरके राजकीय कर्तव्यों तथा शिष्टोंकी रक्षापर नियुक्त किया जाय
॥ २२ ॥

भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः ॥ २३ ॥ सर्वोपधाशुद्धान्-
मन्त्रिणः कुर्यात् ॥ २४ ॥ सर्वत्राशुचीन्स्वनिद्रव्यहस्तिपनकर्मा-
न्तेषूपयोजयेत् ॥ २५ ॥

भयोपधा शुद्ध अमात्योंको राजा अपने समीपही किन्हीं कार्योंपर नियुक्त
करे ॥ २३ ॥ जो सबतरहसे परीक्षा किये गये हों; उन्हें मन्त्री बनावे ॥ २४ ॥
तथा जो सब तरहकी परीक्षाओंमें अनुचित सिद्ध हुए हों, उन्हें, खान, लकड़ी
आदिके जगल, हाथीके जगलोंमें जहां परिश्रम अधिक करना पड़े, नियुक्त
करे ॥ २५ ॥

त्रिर्गमयसंशुद्धानमात्यान्स्वेषु कर्मसु ।

अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ॥ २६ ॥

यह सब अन्य अमात्योंने व्यवस्थाकी है कि धर्म धर्म काम और भयके
इस परीक्षा किये हुए अमात्योंको उनही पवित्रताके अनुसार अपने कार्योंपर
नियुक्त किया जावे ॥ २६ ॥

न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।

शौचहेतोरमात्यानामेतत्कौटल्यदर्शनम् ॥ २७ ॥

आचार्य कौटल्यका तो अपना यह मिथ्यात्व है कि राजा, अमात्यों की परीक्षाके लिये वीथमें मदारानी या अपने आपको कभी न दाले ॥ २७ ॥

न दूषणमदुष्टस्य विषेणोवाम्ममथरेत् ।

कदाचिद्धिं प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥ २८ ॥

क्योंकि किसी शोष रहित अमात्यका उल्लिखित गुण रीतिगोसे इमप्रकार रोग जाना, कभी न, अलमें विष मिला देनेके बराबर होताता है । यह अधिक सम्भव है कि किर, विद्वान् दुभा अम ल किसी प्रकार भी न सुधारा जायके ॥ २८ ॥

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।

नारत्वान्तर्निर्वर्तत म्यिता मन्वयतां धृता ॥ २९ ॥

सम्पूर्णक गुण उपायोंमें भेदको प्राप्त करादे हुई धीर पुरुषोंकी बुद्धि, निश्चित अभिप्रेत फलको प्राप्त किये बिना किर कभी विराम नहीं लेती ॥ २९ ॥

तस्माद्वागमधिष्ठानं कृत्वा कार्यं चतुर्विधे ।

शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत मत्त्रिभिः ॥ ३० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिष्ठाने उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानां दशमो उपायः ॥ ३० ॥

इसलिये इन उपयुक्त शौच प्रदाराके गुण उपायोंमें, राजा किसी वाद्य परतुको ही लक्ष्य बनाये । और इमप्रकार गुणशरीके द्वारा अमात्योंके प्रत्येक आन्तरिक बुरे वा भले भावोंकी अभ्यन्तरी करता रहे ॥ ३० ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिष्ठानमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

७ प्रकरण ।

गुप्तचर पुरुषोंकी स्थापना ।

उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् ॥ १ ॥ का-

पट्टिकोदास्यितगूढपतिकर्तव्येदं कलापसव्यञ्जनान्सात्त्रितीक्ष्णरसदाभि-
धुक्तीम ॥ १ ॥

जिस राजाने धर्मोपधा आदि छलमूलक उपायोंसे अपने अमात्य धर्मोंकी अन्धी तरह जांच करली हो, वह गुप्तचर पुरपोंकी नियुक्ति करे ॥ १ ॥ गुप्तचरोंके कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक भेद हैं ॥ २ ॥

परमर्जः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः ॥ ३ ॥ तमर्थमानाभ्यामुत्साह मन्त्री ब्रूयात् ॥ ४ ॥ राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति ॥ ५ ॥

दूसरोंके गुप्त रहस्योंको जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ तथा छात्रवेपमें रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहाता है ॥ ३ ॥ उसको बहुतसा धन देकर ओर सत्कारके द्वारा उत्साहित करके मन्त्री कहे ॥ ४ ॥ कि "तुम राजाको और गुप्तको प्रमाणभूत मानकर, जिसकी जो कुछ हानि होती देखो, उसी समय मुझे आकर बतलाओ" ॥ ५ ॥

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः ॥ ६ ॥ स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् ॥ ७ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र तथा सन्यासी वेपमें रहने वाले गुप्तचरका नाम उदास्थित है ॥ ६ ॥ वह अपने साथ बहुतसे विद्यार्थी और धन लेकर, जहां कृषि, पशुपालन तथा व्यापारके लिये स्थान नियत किया गया हो वहां जाकर, विद्यार्थियोंके द्वारा उपयुक्त इन कार्योंको करवावे ॥ ७ ॥

कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात् ॥ ८ ॥ वृत्तिकामांश्चोपजपेत् ॥ ९ ॥ एतेनैव वेपेण सजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति ॥ १० ॥ सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ॥ ११ ॥

उस कार्यके करनेसे जो कुछ आमदनी हो, उससे सब तरहके सन्यासियोंके भोजन वस्त्र और निवास स्थानका प्रबन्ध करे ॥ ८ ॥ जो सन्यासी नित्यही इसप्रकार भोजन वस्त्र आदि लेनकी इच्छा प्रकट करें उन्हें सब तरह वसमें करके समझा देवे, कि ॥ ९ ॥ 'इसही वेपमें तुम्हें राजाका कार्य करना चाहिये; और जब तुम्हारे भले और धनका समय आवे, तो यहां उपस्थित होजाना ॥ १० ॥ इसी प्रकार प्रत्येक वर्गके सन्यासी, अपने २ वर्गके सन्यासियोंको समझावें ॥ ११ ॥

कर्मको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः ॥ १२ ॥ स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १३ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय गुरीय किसानके वेपमें रहने वाले गुप्तचरको 'गृहपतिक' कहा जाता है ॥ १२ ॥ यह कृषि कार्यके लिये निर्दिष्ट कीहुई भूमि में जाकर 'उदास्थित' नामक गुप्तचरके समानही सब कार्य करावे ॥ १३ ॥

वाणिजको वृत्तिकीर्णः प्रज्ञाशौचयुक्तो विदेहकव्यञ्जनः ॥ १४ ॥
स वाणिजर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १५ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, गुरीय व्यापारिके वेपमें रहने वाले गुप्तचरका नाम 'विदेहक' है ॥ १४ ॥ यह व्यापार कार्यके लिये निर्दिष्ट कीहुई भूमिमें जाकर, अन्य सब कार्य 'उदास्थित' नामक गुप्तचरके समानही करावे ॥ १५ ॥

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः ॥ १६ ॥ स
नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मास-
द्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात् ॥ १७ ॥ गूढमिष्टमाहारम् ॥ १८ ॥

मुण्ड अथवा जटिल वेपमें रहकर, जाविकाके लिये राजाका काम करने वाला गुप्तचर 'तापस' कहाता है ॥ १६ ॥ यह कहीं नगरके पासहो रहकर, बहुतसे मुण्ड अथवा जटिल विद्याधियोंको लेकर, हरशक या मुट्टीभर नाज महीने दो महीनेतकमें प्रकाश रूपमें खाता रहे ॥ १७ ॥ और छिपे तौरपर जो अपना शक्तिकर आहार हो उसे खाता रहे ॥ १८ ॥

विदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः ॥ १९ ॥ शिष्या-
श्चास्यावेदयेयुरसौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २० ॥ समेधाशस्ति-
भिक्षामिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञामिश्र कर्माण्यभिजने ऽवसि-
तान्यादिशेत् ॥ २१ ॥

तथा व्यापारी गुप्तचरके समीप रहने वाले कार्यकर्ता, इसको खूब अच्छी तरह धन आदि लेकर इसकी पूजा करें ॥ १९ ॥ और इसके शिष्य चारों ओर हल शतको प्रसिद्ध करदें, कि वे बड़े महात्म्य योगी हैं, तथा भविष्यमें होने वाली सम्पत्तियोंको भी यथा देते हैं ॥ २० ॥ अपनी भाषा सम्पत्तिको जाननेकी अभिलाषसे भाये हुए पुरुषोंके कुटुंबमें सम्पन्न हुए कायोंको, उनके शरीर आदि के चिन्होंको देखकर, तथा अपने शिष्योंके इशारोंके मुताबिक ठाक २ यत्ना देवें ॥ २१ ॥

अल्पलाभमग्निदाहं चौरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्ति-
ज्ञानामिदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं राजा करिष्यतीति ॥ २२ ॥
तदस्य गूढाः सच्चिणश्च संपादयेयुः ॥ २३ ॥

ज्ञान्तिकमन्त्रिपरिपदध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेपु श्रेष्ठेयदेशेप
शिल्पभाषामिजनापदेशान्मक्तिः सामर्थ्ययोगाचापसर्पयेत् ॥८॥

इन सभी आदि गुप्तचर पुरषोंको राजा, अपनेही देशमें मन्त्री, पुरो-
हित, सेनापति, युवराज, प्रतीहारी (दावारिक), अन्त पुर रक्षक, छावनी
का सस्थापक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, प्रदेश (कण्टकसोधनका अधिकारी पुरुष-
कमिश्नर), सूबेदार, नगरका मुखिया अथवा वहील, खानोंका निरीक्षक, मन्त्रि
सभाका अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक, और जगलैका अधिपति
इन लोगोंके समीप, विरयसनीय देत वेधभूषा कारीगरी भाषा तथा अभिजन
(खन्दान) से युक्त होने पर, इनकी भक्ति और सामर्थ्य को देखकर ही
रवाना करे ॥ ८ ॥

तेषां बाह्यं चारं छत्रभृद्भारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्रा-
ह्यिणः तीक्ष्णा विद्युः ॥९॥ तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १० ॥

उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर पुरुष, बाहरी उपकरण—छत्र, चमर,
स्वजन, पादुका आसन, डोली (चाम डोलिका) और घोड़े आदिको पकड़ कर
या लेकर भ्रमाद्य आदिही सेवा करें, और उनके व्यवहारोंको जानें ॥ ९ ॥
सत्रा नामक गुप्तचर पुरुष, इस प्रकार तीक्ष्ण पुरुषके द्वारा जाने हुए सब
व्यवहारोंको, स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरोंको बतला दें ॥ १० ॥

सूदारालिकस्नापकमंत्राहकास्तरकः कल्पकप्रसाधकोदकपरिचार-
का रसदाः कुब्जगामनकिरातमूकनधिरजडान्धच्छानो नटनर्त-
कगायनरादकनागजीवनकुशालयाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः
॥ ११ ॥

11 १ मन्त्रा अर्थात् चरक, सब व्यवहारोंको सूद (पाचक), आरालिक
(मांस आदि पकाने वाला), स्नान कराने वाला, हाथ पैर आदि धुवाने वाला,
विस्तार बिछाने वाला, नाई, कपड़े आदि पहनाने वाला, जल भरने वाला,
इनके भसम रसद नामक गुप्तचर पुरुष, और कुबडे, योन, किरात (जगली
आदमी), गूग, बहर, मूख, अन्ध आदिक भेसमें गुप्तचर पुरुष, तथा नट, नाचने
गाने बजाने वाला, किससे कहानी कहने वाले, बूढ़ने फाँदने, अग्नि धा, समादा
करने वाले, और सुकिया औरतें अच्छा तरह जान, अर्थात् प्रत्येक बातका पता
रुगानें ॥ ११ ॥

तं मिश्रकयं संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १२ ॥ संस्थासामन्तेवास्मिन्

संज्ञालिपिभिश्चारसंचारं कुर्युः ॥ १३ ॥ न चान्योन्यं संस्थास्ते
वा, विद्युः ॥ १४ ॥

और भिक्षुकी, उस जाने हुए तय व्यवहारको, स्थानिक कापटिक भादि
गुप्तचरोंके पास निवेदन करदें ॥ १३ ॥ संस्थाओं (कापटिक भादि गुप्तचरों) के
वियार्थी, अपने निजी संकेतके अनुसार बनाई हुई लिपियोंके द्वारा, उस जाने हुए
व्यवहारको रात्रासक पहुँचावे ॥ १३ ॥ हम बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि पर-
स्पर एक दूसरेको संस्था या संचार, तथा संस्थाओंको संचार और संचारोंको संस्था
न जानने पावें । अर्थात् गुप्तचरका कार्य करने वाला पुरख अनावश्यक अन्य गुप्तचर
व्यक्तिको न जान सके ॥ १४ ॥

भिक्षुः प्रतिपेधे द्वाः स्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पका-
रिकाः कुशीलवा दास्यो वा गतिपाठ्यत्रयभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभि-
र्वा चारं निर्हारयेद्युः ॥ १५ ॥

यदि अमास्य आदिके भीतर घरोंमें भिक्षुकीके जानेकी मनाई हो, तो
द्वारपालोंके द्वारा (पहिला द्वारपाल दूसरेको, दूसरा तीसरेको, इसीप्रकार सबसे
बाहरका द्वारपाल भिक्षुकीको बतादेवें) वह समाचार बाहर लाया जावे । यदि
यहभी सम्भव न होसके, तो अन्त पुरके परिचारकोंके माता पिता बनकर वृद्धे
स्त्री पुरख भीतर चले जावें, और वे पता लगावें । या रात्रियोंके बाल आदि
संचारन वाली स्त्रियां, गाने बजाने वाली, तथा अन्य दासियोंके द्वारा, अथवा
देशारोसे भरहुए गीत, श्लोक पाठ, बाजे तथा बत्तन या टोकरीयोंमें गूँद लेख
डालकर, या अन्य प्रकारके संकेतोंसे भीतरके समाचारोंको बाहर लाया जावे
॥ १५ ॥

दीर्घरोगोन्मादाभिरसाविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम् ॥ १६ ॥
त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः ॥ १७ ॥

अथवा किसी मरहूर रोग या पागलपनके कारणसे, अथवा कण्ठक या गूँद
देकर (जिससे कि अन्त पुरमें गलबब होजावे, उसी समय) सुपचाप गूँदपुरख
बाहर निकल जावे ॥ १६ ॥ यदि तमि गूँद पुरख, जो कि आपसमें एक दूसरेको
न जानते हों, किसी समाचारको एक तरहसे ही बतावें, तो उसे ठीक समझना
चाहिये ॥ १७ ॥

तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूर्णोदण्डः प्रतिपेधो वा ॥ १८ ॥
कण्टकशोधनोक्ताथापसर्पा परेषु कृतचेतना वसेद्युः संपातनिश्चा-
रार्थम् ॥ १९ ॥ त उभयेचेतनाः ॥ २० ॥

यदि वे बार बार परस्पर विस्व समाचार ही लावें, तो उन्हें उपाय दण्ड दिया जाय, अर्थात् अकेलेमें चुपचाप पिटवाया जाय । अथवा नौकरोंसे पृथक् कर दिया जाय ॥ १८ ॥ इन उपयुक्त गुप्तचार पुरोंके अतिरिक्त कष्टके शोधन अधिकरणमें बताये हुए गूढ पुर भी नियुक्त किये जावें । उनको दूसरे देशोंमें यहाँके अमात्य आदिके पास भेजा जावे, व उनसे वेतन लेकर उनके पासही निवास करें और उनकी सेवा करें, जिससे कि उनके सबही गुप्त समाचार सरलतासे बाहर निकाले जा सकें ॥ १९ ॥ ये गूढ पुर दोनोंही ओरसे पूरा वेतन लेने वाले होते हैं । अर्थात् विजिगीषु और शत्रु दोनोंकी ओरसे इनको वेतन मिलता है ॥ २० ॥

गृहीतपुत्रदारान्श्च कुर्यादुभयवेतनान् ।

तांश्चारिप्रहितान्निघान्तेषां शौचं च तद्विधैः ॥ २१ ॥

जिन व्यक्तियोंको दोनों ओरसे वेतन दिया जाये, उनके पुत्र और स्त्रियोंको विजिगीषु राजा, सरकार पूर्वक अपने अधीन रखे । शत्रुकी ओरसे भेजे हुए उभय वेतन (दोनों ओरसे वेतन लेने वाले) व्यक्तियोंको, राजा अच्छी तरह जाने, और उनके द्वारा अपने उभयवेतन गूढ पुरोंकी पवित्रताको भी जाने ॥ २१ ॥

एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेक्षरान् ।

उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्यपि ॥ २२ ॥

इसप्रकार शत्रु, मित्र, मध्यम और उदासीन राजाओं तथा उनके मंत्री, पुरोहित, सनापति आदि अठारह प्रकारके अनुचरोंके पास, सबही स्थानोंपर गुप्तचरोंको नियुक्त करे ॥ २२ ॥

अन्तर्गृहचरास्तेषां कुञ्जनामनवञ्चका ।

शिल्पवत्यः स्त्रियो भूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥ २३ ॥

शत्रु, मित्र आदिके घरोंमें तथा उनके मंत्री पुरोहित आदि अठारह प्रकारके अनुचरोंके भीतर घरोंमें खुफिया काम करने वाले कुबडे, चीने, नंपसक, कारीगर स्त्रियां, गूण, तथा अन्य नाना प्रकारके यद्धानोंको लेकर म्लेच्छ जातिके पुरष नियुक्त किये जाय ॥ २३ ॥

दुर्गेषु धणिजः संस्था दुर्गान्ते मिद्वतापसाः ।

कर्णसोदास्थिता राष्ट्रे राष्टान्ते प्रजनासिनः ॥ २४ ॥

दुर्गोंमें, टहरकर काम करने वाले व्यापारियोंको, दुर्गका सामापर सिद्ध तापसांका, राष्ट्रके अन्य स्थानोंमें हुएक और उदास्थित पुरोंको, तथा राष्ट्रकी सामापर गोपाकोंको गुप्तचरका कार्य सौंपा जाय ॥ २४ ॥

१. वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।-

परप्रवृत्तिज्ञानार्थं शीघ्राश्वरपरंपराः ॥ २५ ॥

वनमें, शत्रुकी प्रत्येक गति विधिकी जाननेके लिये चतुर, शीघ्र काम करने वाले श्रमण (वानप्रस्थ वृत्तिले रहने वाले) और आटाविक (अन्य जगल वाली) पुरपोंको, गूढपुरपोंका कार्य करनेके लिये बराबर नियुक्त किया जाय ॥ २५ ॥

परस्य चेतो बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।

चारसंचारिणः संस्था गूढाश्च गूढसंज्ञिताः ॥ २६ ॥

इसप्रकार छिपे हुए भी खुले तौरपर रहते हुए, ये लोग शत्रुकी धीरसे नियुक्त किये हुए सत्री तथा तोड्ग आदि गूढ पुरपोंको, तथा कापटिक, उदास्थित आदि सस्था नामक गुप्तचर पुरपोंको, समानही सुफिया पुलिसके द्वारा पहचानें । अर्थात् सस्था सस्थाओंको और सञ्चार सञ्चारोंको जाननेका यत्न करें ॥ २६ ॥

अकृत्यान्कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान्कार्यहेतुभिः ।

परापसर्पज्ञानार्थं मुरयानन्तेषु वासयेत् ॥ २७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे गूढपुरपोरपत्तौ सञ्चारोत्पत्ति

गूढपुरपप्रणिधि द्वादशो ऽध्याय ॥ १२ ॥

शत्रुके वशमें अथवा उसके सहकानेमें न आने वाले अपने राष्ट्रके मुख्य पुरपोंको, शत्रुके गुप्तचरोंको जाननेके लिये राष्ट्रकी सीमापर नियुक्त करे, और उनको यह समझा देवे कि शत्रुके जो आदमी हमारे वशमें आसकते हैं, उन्हें इन २ उपायोंसे अपने पक्षमें कर् लिया जावे ॥ १२ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें बारहवा अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय ।

९ प्रकरण ।

अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षकी रक्षा ।

अपने राष्ट्रके जो पुरप शत्रुके वशमें जाजाने वाले हों वे कृत्यपक्ष में, और जो शत्रुके वशमें न आसकें, वे अकृत्यपक्षके कहाते हैं, राजाको उचित है कि वह अपने देशके दोनों पक्षोंके मनुष्योंकी इसप्रकार देख भाल रखे, या उनकी रक्षा करे, जिससे कि वे शत्रुके वशमें कदापि न जासकें ।

कृतमहामात्रापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ॥ १ ॥ सत्त्रिणो
द्वंद्विनस्तार्थिसभांशालापूगजनसमरायेषु विवादं कुर्युः ॥ २ ॥

प्रधान अमात्य, मन्त्री, पुरोहित आदिके समीप गुप्तचरोंको नियुक्त करके फिर नगर वासी तथा जनपद निवासी पुरोंके अनुराग और अपरागको जाननेके लिये वहांपर भी गुप्तचर पुरोंको नियुक्त करे ॥ १ ॥ गुप्तचर पुर्य आपसमें झगड़ पड़े, और नदी आदिके तौरें स्थानोंमें, ब्राह्मण आदिकी सभाओंमें, भोजन तथा पीने आदिकी दूकानोंमें, राजकीय कर्मचारियोंके समूहमें, तथा अन्य नाना प्रकारके पुरोंके झुण्डोंमें, निम्नलिखत रीतिसे आपसमें विवाद करना प्रारंभ करें ॥ २ ॥

सर्वगुणसंपन्नश्चायं राजा ध्रुयते ॥ ३ ॥ न चास्य कश्चि-
द्गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान्दण्डकराम्यां पीडयतीति ॥ ४ ॥
तत्र ये ऽनुप्रशंसयुस्तानितरस्तं प्रतिषेधयेत् ॥ ५ ॥

'यह राजा सर्वगुणसम्पन्न सुना जाता है, ॥ ३ ॥ परन्तु इसका कोई गुण वास्तवता तो है नहीं, और उल्टा, नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरोंको दण्ड देकर और अच्छा तरह कर बसूल करके पीडा पहुंचाता है।' हरयादि ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन तौरें आदि स्थानों पर, उपयुक्त निन्दाके अनुसार राजाका निन्दा करने वाले अन्य पुरोंको, तथा उस पूर्वनिन्दक गुप्तचर को रोफकर दूसरा गुप्तचर कहे कि ॥ ५ ॥

मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे
॥ ६ ॥ धान्यपद्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं त्र-
कल्पयामासुः ॥ ७ ॥

देखो, पहिले प्रजामें यह अवस्था थी कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है, इसी प्रकार शक्तिशाली व्यक्ति निर्बल पुरोंको तग करते थे, सब सम्पूर्ण प्रजाने मिलकर दिवस्वान्के पुत्र मनुको अपना राजा बनाया ॥ ६ ॥ खेतीका छठा हिस्सा, व्यापारकी आगदनीका दसवां हिस्सा तथा ऋण शुल्क, राजाके लिये इतना भाग नियत कर दिया ॥ ७ ॥

तेन भूता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहास्तेषां किलिपमद-
ण्डकरा हरन्ति अयोगक्षेमग्रहाथ प्रजानाम् ॥ ८ ॥ तस्मादुञ्छ-
यद्भागमारण्यका अपि निवपन्ति तस्यैतद्भागधेयं यो ऽस्मान्गो-
पामतीति ॥ ९ ॥

उस हिस्सेको ग्रहण करते हुए राजाओंने प्रजाके योग क्षेमका भार अपने ऊपर लिया इस प्रकार राजा प्रयुक्त किये गये दण्ड और करोंसे प्रजाकी घुराहियोंको नष्ट करते हैं, तथा प्रजाके योग क्षेमका सम्पादन करते हैं ॥ ८ ॥ इसीलिये जगलमें रहने वाले ऋषि मुनिजन भी, अपन बीने हुए राजा का भी छोटा हिस्सा राजाको दे देते हैं, कि यह उस राजाका ही हिस्सा है, जो हमारी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

इन्द्रयमस्थानमेतद्राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः ॥ १० ॥ तानवमन्यमानान्दैवोऽपि दण्डः स्पृशति ॥ ११ ॥ तस्माद्राजानो नावमन्तव्या इति क्षुद्रकान्प्रतिपेधयेत् ॥ १२ ॥

ये राजा लोग प्रत्यक्षही प्रजाओंका निग्रह और उनपर अनुग्रह करने वाले होते हैं, इसीलिये ये इन्द्र और यमके समान हैं ॥ १० ॥ अतएव जो उनका तिरस्कार करता है, उसपर दैवी विपत्ति भी अवश्य आती है ॥ ११ ॥ इसलिये राजाओंका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये, इत्यादि बातें कहकर साधारण जनताको राजाकी निन्दा करने से रोक देव ॥ १२ ॥

किंप्रदन्तीं च विदुः ॥ १३ ॥ ये चात्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति तेरुपकुर्वन्ति व्यसनेऽभ्युदये वा कुपितं वन्द्युं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्त्यमित्रमाटविकं वा प्रतिपेधयन्ति तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टवं निशुः ॥ १४ ॥

गुप्तचर पुरप किंप्रदन्तीं अर्थात् अफवाहोंको भी जानें ॥ १३ ॥ जो पुरप धान्य, पशु तथा हिरण्य आदि पदार्थोंको राजाके लिये देते हैं, या व्यसन अथवा अभ्युदयके समयमें धान्य आदिके द्वारा राजाका उपकार करते हैं, या कुपित हुए वन्द्यु धान्य तथा अन्य जनताको क्रोध करने से रोक देते हैं; इस प्रकारके लोगोंकी प्रसन्नता और अप्रसन्नताको भी, मुण्ड अथवा जटिल घेपमें रहने वाले गुप्तचर जानें ॥ १४ ॥

तुष्टानर्थमानाम्यां पूजयेत् ॥ १५ ॥ अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत् ॥ १६ ॥ परस्परद्वन्द्वे भेदयेदेनान्तामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च ॥ १७ ॥

जो राजासे सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न न हों, उन्हें धन और सरकार आदिसे और अधिक सत्कृत करे ॥ १५ ॥ तथा जो प्रसन्न न हों, उन्हें प्रसन्न करनेके लिये धन आदि देवे; और साम अर्थात् मान्यतासे भी उन्हें प्रसन्न करे ॥

॥ १६ ॥ अथवा इन अप्रसन्न व्यक्तियों परस्पर हा भेद डालदे, और सामन्त आटावेके तथा उनक खान्दानो भार मिलने जुलने वाले लोगोंसे भी इनका भेद करावे । जिससे कि ये सन्तुष्ट पुरुष सामन्त आदिका बहका न सकें ।
॥ १७ ॥

तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं
ग्राहयेत् ॥ १८ ॥ निद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साध-
येत् ॥ १९ ॥

यदि फिर भी ये अप्रसन्न ही रहें, अपने वशमें न आवें, तो दण्ड सम्बन्धी अधिकारोंके द्वारा, अथवा कर सम्बन्धी अधिकारोंके द्वारा सम्पूर्ण जनपदके साथ इनका द्वेष करा दें ॥ १८ ॥ जब जनपद निवासी लोग इनसे द्वेष करने लगे, तो इनका सुपचाप बध करवा दिया जाय अथवा जनपदके शोभके द्वाराही इनका दमन किया जाय । तात्पर्य यह है कि प्रान्त निवासी जनही अपना विरोधी होनेके कारण इसको मार डालें ॥ १९ ॥

गुप्तपुनदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् ॥ २० ॥ परेषामा-
स्पदभयात् ॥ २१ ॥ क्रुद्धलुब्धमीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः ॥ २२ ॥

अथवा इन अतुष्ट पुरुषोंके पुत्र और स्त्रियोंको अपने अधिकारमें करके, उन्हें खानके काम करमें नियुक्त कर दें ॥ २० ॥ क्योंकि सम्भव है, ऐसा न करने पर ये लाग शत्रुसे जाकर मिल जाय ॥ २१ ॥ मोधी, लोभी, डरपोक और तिरस्कृत पुरुषही शत्रुके वशमें आजाने के योग्य होते हैं ॥ २२ ॥

तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमोहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिषं-
बन्धममित्राटनिकशतिसंबन्धं वा विभुः ॥ २३ ॥

इस प्रकारके लोगोंके आपसके सम्बन्धका, और शत्रुके साथ किये गये सम्बन्धका, कार्तान्तिक (पहिल कर्मोंको जानने वाला) नैमित्तिक (शुभ अशुभ शक्तियोंको जानने वाला) और मोहूर्तिक (तीनों कालोंके घृष्टान्तोंको जानने वाला) के वशमें रहने वाले गुप्तचर पुरुष जानें ॥ २३ ॥

तुष्टानर्थमानाम्यां पूजयेत् ॥ २४ ॥ अतुष्टान्सामदानभेद-
दण्डैः साधयेत् ॥ २५ ॥

जो व्यक्ति अपनेसे प्रसन्न हों, उन्हें अर्थ और सत्कारके द्वारा साकृत करे ॥ २४ ॥ और अपनेसे अप्रसन्न व्यक्तियोंको सामदान दण्ड भेद इन चारों उपायोंसे ही अपने वशमें करे ॥ २५ ॥

एवं स्वविषये कृत्यान्कृत्यांश्च विचक्षणः ।

परोपजापातसंरक्षेत्रप्रधानान्क्षुद्रकानपि ॥ २६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् राजा, अपने देशमें छोटे चड़े सभी कृत्य (शत्रुके वशमें आने वाले, मोधी लोभी आदि) और अकृत्य (किसी तरह भी शत्रुके वशमें न आने वाले) पुरुषोंको, शत्रुके बहसानेमें आनेसे रचाये ॥ २६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें लेखद्वारा अध्याय समाप्त ।

चोदहवां अध्याय ।

१० प्रकरण ।

शत्रुके देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षके पुरुषों
का संग्रह ।

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः ॥ १ ॥ परविषये
वाच्यः ॥ २ ॥

अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पुरुषोंका संग्रह कह दिया गया है ।
॥ १ ॥ अब शत्रुके देशमें, उसके कृत्याकृत्य पक्षके पुरुषोंको अपने वशमें
फैले करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा ॥ २ ॥

संश्रुत्यार्थान्विप्रलब्धस्तुल्याधिकारिणो शिल्पे घोषकारे वा
विमानितो बल्लभावरुद्रः समाहृत्य पराजितः प्रवासोपतप्तः कृत्वा
व्ययमलब्धकार्यः स्वधर्मादायाद्याद्वोपरुद्रो मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः
कुल्यैरन्तर्हितः प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः कारादिन्यस्तः परोक्तदण्डितो
मिथ्याचारवारितः सर्वस्वमाहारितो वन्धनपरिच्छिष्टः प्रवासित-
चन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ॥ ३ ॥

मोधी, लोभी, भीत (डरे हुए) और गानी पुरुषोंकी कृत्य कहाते हैं, यह
पात पहिले कही जाचुकी है । उगमेंमे पहिले मोधी वर्गको बताते हैं, अर्थात्
उन २ विशेष अवस्थाओंका निरूपण करते हैं, जिन अवस्थाओंके उपस्थित होने
पर कोई पुरुष, राजा या राज्यसे मुक्त हो सकता है;—जिसको धन देनेकी

प्रतिज्ञा करके फिर धन न दिया गया हो (अर्थात् पहिले राजाने वचन दिया कि हम तुमको धन देंगे, परन्तु फिर उस धन दिया नहीं गया, ऐसा पुरूप, राजासे हुद्द होसकता है, इसा प्रकार आगे भी समझना चाहिये), किसी प्रकारके शिल्प या उपकारके कार्यमें समान रीतिसे काम करने वाले दो पुरुषोंमेंसे एकका अधिक सत्कार करके दूसरेका अपमान किया गया हो, राजाके विधस्त भौंकारने जिसको राजकुलमें प्रवेश करनेसे रोक दिया हो, पहिले स्वयं बुलाकर फिर जिसका तिरस्कार किया हो, राजाकी आज्ञासे अत्यधिक प्रवास करनेके कारण दुःखी हुआ २, ध्यय करके भी (रिश्त=यूस देकर भी) जिसका कोई सरकारी काम पूरा न किया गया हो, जो अपने कुलप्रमागत किसी आचार (जैसे दाक्षिणार्द्र कुलोंमें अपने मामाका लडकीसे विवाह कालेनेका आचार है) के करनेसे, अथवा दायभाग लेनेसे रोक दिया गया हो, सत्कार या अधिकार पदसे जिसको गिरा दिया गया हो, राजकुलके अन्य पुरूपोंसे जो बदनाम किया गया हो, बलात्कार जिसकी स्त्री छान लागई हो, जिसको कारागारमें डाल दिया गया हो, विना विचार दूसरेके कथनमात्रसे जिसको दण्ड दिया गया हो, मिथ्या बात कहकर धर्मका आचरण करनेसे जिसको रोका गया हो, जिसका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया हो, अशक्य कार्योंपर नियुक्त करके जिसको कष्ट दिया गया हो, जिसके पुत्र या बन्धु बान्धव आदिको देशसे निकाल दिया गया हो, इसप्रकारके पुरूप राजासे हुद्द होजते हैं। इसी लिये उन्हे बड़ी आसानीसे फोड़ा जासकता है। अर्थात् शत्रुसे भेदकर अपना और मिलाया जासकता है ॥ ३ ॥

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिरुयातस्तुल्यदोषदण्डेनो-
द्विषः पर्याप्तभूमिदण्डेनोपनतः सर्वाधिकरणस्थः सा (स) इसो-
पचितार्थस्तत्कुलीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा राजदेयी चेति भीतवर्गः
॥ ४ ॥

1. इसके अनन्तर अब भीतवर्ग अर्थात् विजिगीषुसे दरे हुए पुरुषोंको बताते हैं, — जो धनके लिये स्वयं किसीकी द्विषा करके दूषित होजुका हो, (ऐसा पुरूप विजिगीषुमें इसलिये दरता रहता है, कि कहीं विजिगीषु यह खयाल न कर लये, कि जिसतरह इसने मुझसे रूपया केकर दूसरे आदमीको मार डाला है, इसी प्रकार शत्रुपक्षसे और अधिक रुपया लेकर कहीं मुझे न मार डाले; क्योंकि विजिगीषुके दिलमें येया खयाल होनेपर वह अवश्यही मेरा बध करादेगा, इसलिये दरता रहता है), अन्त पुर आदिमें विजिगीषुके विरुद्ध कार्यको करने वाला, बड़ाहत्या आदि पाप कर्मोंके कारण बदनाम हुआ २,

अपने समान अपराध करने वाले पुरपक्षे दण्डित हुआ देखकर घबड़ाया हुआ, भूमिका अपहरण करने वाला, दण्डके द्वारा वशमें किया हुआ, सब राजकीय विभागोंपर अधिकार रखने वाला, जिसके पास अकस्मात् ही अथवा अपने परिधमसे बहुत सम्पत्ति इकट्ठी होगई हो, राजकुलके दायभागी किसी व्यक्तिके पास कुछ कामनासे आश्रित हुआ २, राजा जिसके साथ द्वेष करता हो, अथवा राजासे जो द्वेष करता हो, इसप्रकारके व्यक्ति सदा विजिगीषुसे डरते रहते हैं, इनकोभी सरलतासे अपनी धोर मिलाया जासकता है ॥ ४ ॥

परिक्षीणोऽत्यात्तस्यः कदर्शो व्यसन्यत्याहितव्यग्रहारश्चेति
लुब्धवर्गः ॥ ५ ॥

जिसका सब वैभव नष्ट होगया हो, राजाने दण्डरूप या कररूपमें जिसका धन छेड़लिया हो, कृपण, स्त्री तथा मद्यादि पीनेका व्यसनी, और अपेक्षणी पुरूप लोभी होता है, ऐसे पुरपोंको धन देकर बड़ी सरलतासे वशमें किया जासकता है ॥ ५ ॥

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपाहितस्ती-
क्ष्णः साहसिको भोगेनासंतुष्ट इति मानिर्गः ॥ ६ ॥

‘मैं बड़ा विद्वान् या बड़ादुर हू । इस प्रकार अपने आपको बहुत कुछ समझने वाला, अपनी पूजा कराने की अभिलाषा रखने वाला, शत्रुकी पूजाको सहन न करने वाला, नीच पुरुषोंके द्वारा बड़ाई कर २ के किसी कार्यमें लगाया हुआ, अपनी जानकी भी कुछ परचाह न करने वाला (तीक्ष्ण), सहसा किसी कार्यमें प्रवृत्त हो जाने वाला, प्राप्त धन आदि भोग्य पदार्थों से सन्तुष्ट न होने वाला, पुरूप मानी होता है । ऐसे पुरूप सत्कारके ही द्वारा सरलता पूर्वक वशमें कर लिप्त जासकते हैं ॥ ६ ॥

तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोप-
जापयेत् ॥ ७ ॥

उन मुंड आदि कृत्यपक्षके पुरपोंमेंसे जो जिस मुण्ड या जटिल वेपधारी गुप्त पुरुषका भक्त हो, उसही मुण्ड या जटिल व्यक्तिके द्वारा उन २ उपायोंसे उसको वशमें करे । अर्थात् शत्रुमें भिन्न करके उसे अपनी धोर मिलाने का यत्न करे ॥ ७ ॥

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत्सर्वं
प्रमृद्नात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः
॥ ८ ॥

प्रतिज्ञा करके फिर धन न दिया गया हो (अर्थात् पहिले राजाने वचन दिया कि हम तुमको धन देंगे, परन्तु फिर उसे धन दिया नहीं गया, ऐसा पुरुष, राजासे क्रुद्ध होसकता है, इसा प्रकार आगे भी समझना चाहिये), किसी प्रकारके शिल्प या उपकारके कार्यों समान रीतिसे काम करने वाले दो पुरुषोंमेंसे एकका अधिक सत्कार करके दूसरेका अपमान किया गया हो, राजाके विश्वस्त नाकरनेसे जिसको राजकुलमें प्रवेश करनेसे रोक दिया हो, पहिले स्वयं बुलाकर फिर जिसका विरस्कार किया हो, राजाकी आज्ञासे अत्यधिक प्रवास करनेके कारण दु.सां हुआ २, व्यव करके भी (रिश्वत=पूंख देकर भी) जिसका कोई सरकारी काम पूरा न किया गया हो, जो अपने कुलकमागत किसी आचार (जैसे दक्षिणार्ध कुलोंमें अपने मामाका लड़कीसे विवाह करलेनेका आचार है) के करनेसे, अथवा दायभाग लेनेसे रोक दिया गया हो, सत्कार या अधिकार पदसे जिसको गिरादिया गया हो, राजकुलके अन्य पुरुषोंसे जो बदनाम किया गया हो, घलात्कार जिसकी छां छान होगई हो, जिसको कारागारमें डालदियर गया हो, बिना विचारे दूसरेके कथनमात्रसे जिसको दण्ड दिया गया हो, निष्पया घात कइकर धर्मका आचरण करनेसे जिसको रोका गया हो, जिसका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया हो, अज्ञानय कार्योंपर नियुक्त करके जिसको कष्ट दिया गया हो, जिसके पुत्र या वधु वान्धव आदिको देशसे निकाल दिया गया हो, इसप्रकारके पुरुष राजासे क्रुद्ध होजते हैं । इसी लिये उन्हे बड़ी आसानीसे फोड़ा जासकता है । अर्थात् शत्रुसे भेदकर अपनी ओर मिलाया जासकता है ॥ ३ ॥

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिरुग्रतस्तुल्यदोषदण्डेनो-
द्विप्रः पर्याप्तभूमिदण्डेनोपनतः सर्वाधिकरणस्यः सा (स) हसो-
पचितार्थस्तत्कुलीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा राजद्वेषी चेति भीतवर्गः
॥ ४ ॥

1. इसके अनन्तर अथ भीतवर्ग अर्थात् विजिगीषुसे दरे हुए पुरुषोंको घटाते हैं, :- जो धनके लिये स्वयं किसीकी हिंसा करके दूषित होशुका हो, (ऐसा पुरुष विजिगीषुमें इसलिये डरता रहता है, कि कहीं विजिगीषु यह न्यायल न कर केजे, कि जिसतरह इसने मुझसे रुपया लेकर दूसरे आदमीको मार डाला है, इसी प्रकार शत्रुपक्षसे और अधिक रुपया लेकर कहीं मुझे न मार डाले, क्योंकि विजिगीषुके दिलमें ऐसा न्यायल होनेपर वह अवश्यही मेरा बंध करादेगा, इसलिये डरता रहता है); अन्त पुर आदिमें विजिगीषुके विरुद्ध कार्यको करने वाला, मझाशया आदि पाप कर्मोंके कारण बदनाम हुआ २,

अपने समान अपराध करने वाले पुरषको दण्डित हुआ देखकर घबड़ाया हुआ, भूमिका अपहरण करने वाला, दण्डके द्वारा वशमें किया हुआ, सध राजकीय विभागोंपर अधिकार रखने वाला, जिसके पास जबरमान् ही अथवा अपने परिधमसे बहुत सम्पत्ति इकट्ठी होगई हो, राजकुलके दायभागी किसी व्यक्तिके पास कुछ कामनासे आश्रित हुआ २, राजा जिसके साथ द्वेष करता हो, अथवा राजासे जो द्वेष करता हो; इसप्रकारके व्यक्ति सदा विजिगीपुसे डरते रहते हैं, इनकोभी सरलतासे अपनी ओर मिलाया जासकता है ॥ ४ ॥

परिक्षीणो ऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति
लुब्धवर्गः ॥ ५ ॥

जिसका सब वैभव नष्ट होगया हो, राजाने दण्डरूप या कररूपमें जिसका धन छे लिया हो, कृपण, खी तथा मर्दादि पीनेका व्यसनी, और अपश्ययी पुरष छोभी होता है, ऐसे पुरषोंको धन देकर बंधी सरलतासे वशमें किया जासकता है ॥ ५ ॥

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपाहितस्ती-
क्ष्णः साहसिको भोगेनासंतुष्ट इति मानिवर्गः ॥ ६ ॥

‘मैं बड़ा विद्वान् या बहादुर हू । इस प्रकार अपने आपको बहुत कुछ समझने वाला, अपनी पूजा कराने की अभिलाषा रखने वाला, शत्रुकी पूजाको सहन न करने वाला, नीच पुरुषोंके द्वारा बड़ाई कर २ के किसी कार्यमें लगाया हुआ, अपनी जानकी भी कुछ परवाह न करने वाला (तीक्ष्ण), सहसा किसी कार्यमें प्रवृत्त हो जाने वाला, प्राप्त धन आदि भोग्य पदार्थों से सन्तुष्ट न होने वाला, पुरुष मानी होता है । ऐसे पुरष सत्कारके ही द्वारा सरलता पूर्वक वशमें कर लिए जासकते हैं ॥ ६ ॥

तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनेर्यो यद्भक्तिः कृत्यपर्क्षीयस्तं तेनोप-
जापयेत् ॥ ७ ॥

उन कुन्ड आदि शृंगपक्षके पुरषोंमेंसे जो जिस मुण्ड या जटिल वेषधारी गुप्त पुरषका भक्त हो, उसही मुण्ड या जटिल व्यक्तिके द्वारा उन २ उपायोंसे उसको वशमें करे । यथात् शत्रुसे भिन्न करके उसे अपनी ओर मिलाने का धन करे ॥ ७ ॥

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत्सर्वं
प्रमृद्वात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः
॥ ८ ॥

गुप्त पुरष, वृद्ध वर्गके पुरषको यह कहकर उसके स्वामीसे भेद डाले कि देखो जैसे मत्स्य हाथी, प्रमादी पीलवानमे चलाया हुआ, जो कुछ अपने सामने पगता है उसेही कुचल डालता है, इसी प्रकार यह, शास्त्र रूपी घञ्जुसे हीन अन्धा राजा, अपनी तरफके अन्धे मन्त्रीके साथ रहता हुआ, नगरनिवासी तथा जनपद निवासी पुरषोंको नष्ट करने के लिये तैयार हो रहा है ॥ ८ ॥

शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुममर्षः क्रियतामिति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत् ॥ ९ ॥

इसके साथ शत्रुता रखने वाले पुरषोंको प्रोत्साहन देनेसे अवश्यही इसका कुछ भयङ्कर किधा जासकता है । इसलिये राजाके प्रति प्रकोप उत्पन्न करे, यह कहकर वृद्ध वर्गका राजासे भेद डलवावे ॥ ९ ॥

यथा भीतः सर्पो यस्माद्भयं पश्यति तत्र विपमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविपमुत्सृजत्यन्यत्र गम्यतामिति भीतवर्गमुपजापयेत् ॥ १० ॥

भीत वर्गके पुरषका इस प्रकार उसके स्वामीसे भेद डलवावे, गुप्त पुरष उससे कहे कि देखो, जिस प्रकार डरा हुआ, साँप, जिपरसे भय देखता है, वहींपर अपना विष उगल देता है, इसी प्रकार इस राजाकी तुम्हारी ओरसे कुछ घंका हो गई है, और यह तुम्हारे ही ऊपर सबसे प्रथम क्रोध रूपी विष उगलने वाला है, अच्छा यही है कि तुम यहाँसे और कहीं चले जाओ । इस प्रकार भीत वर्गका भेद डलवावे ॥ १० ॥

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्य एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसंपन्नेभ्यः ॥ ११ ॥

लोभी पुरषको इस प्रकार भित्त करे, गुप्त पुरष उससे कहे कि जिस प्रकार चांडालों की गाय बर्णोंको दूध दे सकती है, ब्राह्मणोंके लिए नहीं दे सकती, इसी प्रकार यह राजा बन्धुवृद्धों और वाक्यशक्तिहीन पुरषोंके लिए ही फलदायक (या लाभदायक) हो सकता है, जो आत्मगुणोंसे सम्पन्न पुरष हैं, उनके लिये नहीं ॥ ११ ॥

असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति लुब्धवर्गमुपजापयेत् ॥ १२ ॥

किन्तु वह अमुक राजा विशेष पुरुषोंको खूब सम्मान दे, तुम्हें उसी की सेवा करनी चाहिये । इस प्रकार कहकर सुव्यवहारियोंको उसके स्वामी से भिन्न करे ॥ १२ ॥

यथा चाण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपनिषत्सु नान्येषामेव-
सयं राजा नीचोऽनीचानामेवोपभोग्यो न तस्मात्तानामार्याणाम्
॥ १३ ॥

जिस प्रकार चाण्डालोंका कुआ चाण्डालोंके लिये ही बनाया जाता है, अन्य पुरुषोंके लिये नहीं, इसी प्रकार यह नीचोंके लिये ही बनाया जाता है, अन्य पुरुषोंके लिये ही उपयोग अर्थात् सुखका साधन है, तुम्हारे जैसे अर्योंके लिये सुखका साधन नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

असौ राजा पुरुषनिशेषस्तत्र गम्यतामिति मानिष्यते
पयेत् ॥ १४ ॥

किन्तु यह अमुक राजा विशेष पुरुषोंको खूब सम्मान दे, तुम्हें उसी की सेवा करनी चाहिये । इस प्रकार कहकर मानिष्यते पुरुषोंको उसके स्वामीसे भिन्न करे ॥ १४ ॥

तथेति प्रतिपन्नांस्तान्संहितान्यणकर्मणा ।

योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान्स्वकर्मसु ॥ १५ ॥

इस प्रकार अपने स्वामीसे भिन्न हो जाने वाले पुरुषोंको, सत्य शपथ आदिके द्वारा उनसे सन्धि कर, गुप्त पुरुषों साथ २, उन्हें यथाशक्ति अपने १ कार्यों पर लगा देवे । अर्थात् जिन २ कार्यों पर वे पहिले राजाके पास लगे हुए थे, उन्हीं कार्यों पर लगा देवे, परन्तु उनके साथ गुप्त पुरुषोंको अवश्य रखे, जिससे उनकी प्रवृत्तिका पूरा २ पता लगता रहे ॥ १५ ॥

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु ।

अकृत्यान्भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत् ॥ १६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे परिषये कृत्याकृत्यपक्षोपमह
चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

इस तरह शत्रुकी भूमिमें कृत्य पक्षक पुरुषोंको साम और दानके द्वारा अपनी ओर मिलावे । परन्तु जो अकृत्य पक्षके पुरुष हों, उन्हें भेद और दण्ड के द्वारा अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे, और उनके सामने शत्रुके दोषोंको बराबर दिखाता रहे, जिससे कि वे सरलतासे भिन्न हो सकें ॥ १६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

किसीका तिरस्कार न करे, प्रत्येकके मतको अच्छी तरह सुने । यहां तक कि शासकके भी सारगर्भित वाक्यको, विचारशील राजा, स्वीकार कर लेवे ॥ २४ ॥

एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ य-
दस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत् ॥ २६ ॥

पराशर मतानुयायी आचार्य विशालाक्षके इस उपर्युक्त मतको भी स्वीकार नहीं करते । वे कहते हैं कि जो कुछ विशालाक्षने कहा है, उससे केवल मन्त्रका ज्ञान हो सकता है मन्त्रकी रक्षा नहीं हो सकती ॥ २५ ॥ इसलिये राजा को जो कार्य अभिप्रेत हो उसके समाप्त ही किसी दूसरे कार्यके सम्बन्धमें मन्त्रियों से पूछे ॥ २६ ॥

कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत्तत्कथं कर्तव्यमिति
॥ २७ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ २८ ॥ एवं मन्त्रोपलब्धिः
संगृप्तिश्च भवतीति ॥ २९ ॥

पूछनेका प्रकार यह है किसी ऐतिहासिक घटनाको सामने रखकर कहे, कि यह कार्य पहिले इसप्रकार किया गया था, यदि यह इसप्रकारसे करना होता, तो कैसे करना चाहिये था ॥ २७ ॥ इस विषयमें मन्त्री जो कुछ कहें, उसहीके अनुसार अपना कार्य करे ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे मन्त्रका ज्ञान भी होजाता है, और मन्त्रकी रक्षा भी रहती है ॥ २९ ॥

नेति पिशुनः ॥ ३० ॥ मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं
वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा ॥ ३१ ॥

परन्तु पिशुन (नारद) आचार्य पराशरके इस मतको प्राण नहीं सम-
झता ॥ ३० ॥ क्योंकि इसतरह प्रकारान्तरसे मन्त्रियोंके सम्मुख किसी बातको पूछे जानेपर, वे यही समझते हैं कि हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्योंमें भी राजा हमपर विश्वास नहीं रखता । इसलिये वे व्यवहित, पहिले हुई २ यां न हुई २ घटनाके विषयमें पूछेजानेपर अनादरसे अर्थात् उपेक्षा पूर्वकही उत्तर देते हैं । और उक्त मन्त्रको प्रकाशित भी करदेते हैं ॥ ३१ ॥

स दोषः ॥ ३२ ॥ तस्मात्कर्मसु येषु येऽभिप्रेतास्तैः सह मन्त्र-
येत् ॥ ३३ ॥ तर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रवृद्धिं गुप्तिं च लभत इति ॥ ३४ ॥

यह मन्त्रके लिये एक दोष है ॥ ३२ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि जो पुरुष जिन २ कार्योंपर नियुक्त किये हुए हैं, तथा विचार करनेके लिये राजाको आभिप्रेत भी है, उन्हीं पुरुषोंके साथ राजा मन्त्रणा करे ॥ ३३ ॥ क्योंकि

उनके साथ गुह्य मन्त्रोंको विचारता हुआ राजा मन्त्र पृथिकों भी प्राप्त करता है, और मन्त्रकी रक्षामें अष्टौत्तरह कर सकता है ॥ ३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ अनयस्या हेपा ॥ ३६ ॥ मन्त्रि-
भिस्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य नारदके भी इस मतको प्राह्य नहीं समझता ॥ ३५ ॥ क्योंकि यह कहता है कि यह नारद आचार्यने जो कुछ ऊपर कहा है, इसके अनुसार मन्त्र कभी व्यवस्थित नहीं होसकता । राजकार्य बहुत प्रकारके होते हैं, उन कार्योंपर पृथक् २ नियुक्त हुए २ अधिकारी भी बहुत होते हैं, प्रत्येकके साथ विचार करनस कभी मन्त्रकी व्यवस्था नहीं होसकती ॥ ३६ ॥ इसलिये इसी कार्यपर नियुक्त हुए २ तीन या चार मन्त्रियोंके साथ मिलकर ही मन्त्रणा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छेषु निश्चयं नाधिगच्छेत् ॥ ३८ ॥
एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहथरति ॥ ३९ ॥ द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो
द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते ॥ ४० ॥

क्योंकि एकहा मन्त्राके साथ मन्त्रणा करता हुआ राजा, कठिनतासे निश्चय करने योग्य कार्योंक भाषणनेपर अर्थका निश्चय नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ और अकेले मन्त्री अपना इच्छाके अनुसार राजाका प्रतिद्वन्द्वी बनकर प्रत्येक कार्यको करलेता है ॥ ३९ ॥ यदि कबल दो मन्त्रियोंकही साथ राजा विचार करता है, तो यह बहुत सम्भव है कि वे दोनों आपसमें मिलकर राजाको अपने धर्ममें करले ॥ ४० ॥

त्रिगृहीताभ्यां विनाश्यते ॥ ४१ ॥ त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं
क्रूरेणोपपद्यते महादोषम् ॥ ४२ ॥ उपपन्नं तु भवति ॥ ४३ ॥

अथवा यदि आपसमें उनका झगडा हो जाय, तो कार्यका ही सर्वथा नाश हो जाय । क्योंकि वे दोनों ही आपसमें झगडा करके मंत्रको फोड़ दें, या कार्यको उचित रीतिपर, झगड़ेक कारण, करें ही नहीं ॥ ४१ ॥ परन्तु तीन या चार मन्त्रियोंके सलाहकार हानपर, इस प्रकारका कोई भी अनर्थकारी महानदोष कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता । यदि किसी तरह हो भी जाये तो कठिनतासे ही होता है, शपानक नहीं ॥ ४२ ॥ फिर भी कार्यमें कोई बाधा नहीं पड़ती । यह ठीक तौरपर होता ही रहता है ॥ ४३ ॥

ततः परेषु क्रूरेणार्थनिश्चयो गम्यते ॥ ४४ ॥ मन्त्रो वा

रक्ष्यते ॥ ४५ ॥ देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा
यथा सामर्थ्यं मन्त्रयेत् ॥ ४६ ॥

यदि चारसे अधिक मंत्रों हो जायें, तो फिर कार्यका निश्चय कठिनता से ही होता है। क्योंकि बहुतसे व्यक्तियोंकी सम्मति भिन्न २ होनेपर निर्णय करना कठिन हो जाता है ॥ ४४ ॥ तथा मन्त्रकी रक्षा करना भी कठिन होता है। क्योंकि मन्त्रका बहुत आदमियोंको पता होनेपर उसके फूट जानेकी अधिक सम्भावना रहती है ॥ ४५ ॥ देश, काल और कार्यके अनुसार, एक या दो मन्त्रियोंके साथभी राजा मन्त्रणा करे। सामर्थ्यके अनुसार स्वयं अकेला भी किसी कार्यका विचारकर निर्णय कर सकता है ॥ ४६ ॥

कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपदेशकालविभागो विनिपा-
तप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः ॥४७॥ तानेकेकशः
पृच्छेत् समस्तांश्च ॥ ४८ ॥

मन्त्रके पांच अङ्ग होते हैं—(१)—कार्योंके प्रारम्भ करनेका उपाय (अपने देशमें राई परकोटा आदिक द्वारा दुर्ग आदि बनाना, तथा दूसरेके देशमें सन्धि विग्रह आदिके लिये दूत आदिकों भेजना ये कार्य कहाने हैं; इनके प्रारम्भ करनेका साधन या प्रकार, यह मन्त्रका पहिला अङ्ग है। इसी प्रकार), (२)—पुरुष और द्रव्य सम्पत्ति (पुरुष अपने देशमें, दुर्ग आदि बनानेमें अत्यन्त चतुर यदई लुहार आदि और द्रव्य लकड़ा पत्थर आदि; दूसरेके देशमें पुरुष, सन्धि आदि करनेमें कुशल दूत तथा सेनापति आदि और द्रव्य रत्न सुवर्ण आदि), (३)—देश और कालका विभाग (अपने देशमें, देश दुर्ग आदिके बनानेके लिये मनपदके बीचमें अथवा जलके किनार परका कोई उपयोगी प्रवेश, और काल सुभिक्ष दुर्भिक्ष तथा वर्षा आदि, दूसरेके देशमें, देश, सन्धि आदि करनेपर कोई उपजाऊ प्रदेश, और काल आक्रमण करने या न करनेकी अवस्था, कहाता है। इनका विभाग अर्थात् विवेचन करना मन्त्रका तीसरा अङ्ग है), (४)—विनिपात प्रतीकार (अपने दुर्ग आदिपर आने वाले या आये हुए विघ्नोंका प्रतीकार करना अर्थात् अङ्ग), तथा (५)—कार्य सिद्धि (उन्नति अथवा नति और सम अवस्था ये तीन प्रकारकी ही सिद्धि अर्थात् किसी कार्यके फल निकल सकते हैं; अर्थात् उपयुक्त प्रकारसे कार्य करनेपर अपनी उन्नति, उष्टुकी अथवा नति, अथवा दोनोंकी सम अवस्थाका होनाही कार्यसिद्धि कहाजाता है।) इसप्रकार मन्त्रके ये पांच अङ्ग होते हैं ॥ ४७ ॥ इसतरह मन्त्रके विषयमें राजा पृथक् २ एक २ मन्त्रीकी बुलाकर भी पूछ सकता है, अथवा समामे समस्त मन्त्रियोंकी बुलाकर पूछ सकता है, कि इस कार्यको किसप्रकार किया जाय ॥ ४८ ॥

हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात् ॥ ४९ ॥ अवाप्तार्थः
कालं नातिक्रामयेत् ॥ ५० ॥

युक्ति पूर्वक इनके भिन्न २ अभिप्रायोंको समझे । (कित्ती २ पुस्तकमें
“हेतुभिश्चैकैकं मतं प्राविशेद् विद्वान्” इस प्रकारका सूत्र पाठ है । उसका
अर्थ इस तरह करना चाहिये — ‘विचारशील राजा प्रत्येकके मतको समझे’ ।
अर्थ दोनों पाठोंमें एकहा है) ॥ ४९ ॥ अर्थका निश्चय करके उसको शीघ्रही
कार्यमें पारिणत करनेका यत्न करे । समयको व्यर्थ बिता देना अच्छा नहीं
होता ॥ ५० ॥

न दीर्घकालं मन्त्रयेत् ॥ ५१ ॥ न च तेषां पश्यैषामपकु-
र्यात् ॥ ५२ ॥

किसी एक कार्यको बहुत समय तक विचारते जाना भी अच्छा नहीं
होता । तात्पर्य यह है, जो कुछ करना हो, उसे शीघ्र विचार पूर्वक निश्चय
करके आरम्भ कर देना चाहिये । बहुत विचारतेही रहनेमें मन्त्र फूट जाता है,
और कार्य पूरा नहीं होता ॥ १ ॥ जिन पुस्तकोंका कभी कुछ अपकार किया
हो, ऐसे पुरपाके साथ या इनके पक्षको मानने वाले पुरुषोंके साथभी कभी
मन्त्रणा न करनी चाहिये ; क्योंकि पूरा पुरप कभी मन्त्रको गुप्त नहीं रख
सकते । (५१ और ५२ इन दो सूत्रोंके स्थान पर कित्ती २ पुस्तकमें एकही
सूत्र है, वह कुछ पाठ भेद से इस प्रकार है — ‘न दीर्घकालं मन्त्रयेत् च तेषां
च रक्षैषामपकुर्वान्’ । अर्थ इस प्रकार है — ‘दीर्घकाल तक मन्त्रणा न
करे, और उन लोगोंसे मन्त्रकी रक्षा करे, जिनका पहिल कभी कुछ अपकार
कर चुका हो ।’ अभिप्राय दोनों पाठोंमें समान है ।) ॥ ५२ ॥

मन्त्रिपरिषद्ं द्वादश्यामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ ५३ ॥
षोडशेति पार्हस्पत्याः ॥ ५४ ॥ विंशतिमित्वांश्नसाः ॥ ५५ ॥

मनुके अनुयायी कहते हैं कि एक मन्त्रिपरिषद्में बारह अमात्योंको
नियुक्त करे । अर्थात् बारह अमात्योंकी मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिये ॥ ५३ ॥
पृथस्पतिक अनुयायी कहते हैं कि एक मन्त्रिपरिषद्में से छह अमात्य होने चाहिये
॥ ५४ ॥ उदना (शुक्र) आचार्यके अनुयायियोंका सिद्धान्त है कि बीस अमात्यों
की एक मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिये ॥ ५५ ॥

यथामामर्थ्यमिति कौटिल्यः ॥ ५६ ॥ ते ह्यस्य स्वपक्षं पर-
पक्षं च चिन्तयेयुः ॥ ५७ ॥ अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठित-
विशेषं नियोगमंपदं च कर्मणां कुर्युः ॥ ५८ ॥

परन्तु कौटिल्य कहता है, कि कार्य करने वाले पुरपोंके सामर्थ्यके अनुसारही उनकी संख्या नियत होनी चाहिये ॥ ५६ ॥ उतनेही पुरुष, विजिगीषुके अपने पक्ष और परपक्षका विचार करें ॥ ५७ ॥ और जो कार्य अभीतक प्रारम्भ न किये गये हों उनका प्रारम्भ करावे; प्रारम्भ किये हुए कार्योंको पूरा करावे, जो कार्य पूरे होयुके हों उनमें और कुछ विशेषता (सफेदी कराना, तरह २ की चिप्राकारी कराना आदि) कराना हों, तो वह भी करावे । तात्पर्य यह है; कि जिस २ तरहके भी कार्य हों, उन २ विभागोंके कार्यकर्ता अपने कार्योंको अन्त तक बहुत अच्छी तरह करवावे ॥ ५८ ॥

आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्, अनासन्नैः सह पत्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत् ॥ ५९ ॥

जो मन्त्री राजाके समीपही रहते हों, राजा उनके साथ मिलकर कार्योंको देखे । परन्तु जो दूर रहते हों, उनके पास लिखित पत्र आदि भेजकर कार्यका निश्चय करे ॥ ५९ ॥

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिपट्वीणां सहस्रम् ॥ ६० ॥ स तच्चक्षुः ॥ ६१ ॥ तस्मादिमं द्वयक्षं सहस्राक्षमाहुः ॥ ६२ ॥

इन्द्रकी मन्त्रिपरिपट्वमें एक हजार ऋषि थे ॥ ६० ॥ ये ही कार्योंके निराने वाले होनेके कारण इन्द्रके चक्षुके समान थे ॥ ६१ ॥ इसलिये इस दो आंखवाले इन्द्रको भी सहस्राक्ष (हजार आंखवाला) कहाजाता है । इसीप्रकार प्रसन्न राजाको अपनी मन्त्रिपरिपट्वमें सामर्थ्यानुसार अनेक मन्त्रियोंको नियुक्त कराना चाहिये ॥ ६२ ॥

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिपदं चाहूय ब्रूयात् ॥ ६३ ॥
तत्र यद्भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ ६४ ॥

जब कोई कठिन समस्या आपड़े, या प्राणों तकका भय हो, तो मन्त्रियों और मन्त्रिपरिपट्वको बुलाकर राजा उनसे सब कुछ कहे, और उनकी सम्मति लेंगे ॥ ६३ ॥ उनमेंसे अधिक मन्त्री जिस बातको फटे, अथवा जिस उपायको सीधेही कार्यकी सिद्धि कराने वाला पतावे, राजाको चाहिये कि उसही उपायका अनुष्ठान करे ॥ ६४ ॥

कुर्वतश्चः—

नास्य गुह्यं परे विद्युः छिद्रं विद्यात्परस्य च ।

गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद्विष्वतमात्मनः ॥ ६५ ॥

इसप्रकार अपने कार्योंको करते हुए राजाके गुह्य मन्त्रोंको कोई दूसरे पुरुष नहीं जान सकते, प्रत्युत वह दूसरोंके दोषोंको जान लेता है । जिसप्रकार कछुवा अपने अङ्गोंको संकुचित करके रहता है, उन्हें फैलने नहीं देता, इसीप्रकार राजाको चाहिये कि अपने आन्तरिक भावोंको फैलने न देवे । यत्न पूर्वक उनको छिपाकर रहते ॥ ६५ ॥

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति ।

एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ६६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

जिसप्रकार वेद में पढ़ने वाला ब्राह्मण, श्रेष्ठ पुरुषोंके यहाँ श्राद्ध नहीं खासकता, इसीप्रकार जिसने शास्त्रके अंगिप्रायको नहीं सुना या जाना है, वह मन्त्रको नहीं सुन सकता । अर्थात् राजनीति शास्त्र आदिमें अत्यन्त निपुण विद्वानोंको ही मन्त्राधिकारपर नियुक्त करना चाहिये ॥ ६६ ॥

विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ।

सोलहवां अध्यायः ।

१२ प्रकरणः ।

दूतप्रणिधिः ।

उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः ॥ १ ॥ अमात्यसंपदोपेतो निस्तृ-
ष्टार्थः ॥ २ ॥ पादगुणहीनः परिमितार्थः ॥ ३ ॥ अर्धगुणहीनः
शासनहरः ॥ ४ ॥

मन्त्रके निश्चित होजानेपर ही दूतको भेजना चाहिये ॥ १ ॥ दूत तान प्रकारके होते हैं—निस्तृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहर । अमात्यके जो गुण पहिले बतलाये गये हैं, वे सम्पूर्ण गुण जिसमें हों वह निस्तृष्टार्थ नामक दूत कहाता है । इन गुणोंमेंसे चौथाई गुण जिसमें कम हों वह परिमितार्थ, और जिसमें आधे कम हों वह शासनहर कहाजाता है ॥ २, ३, ४ ॥

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत् ॥ ५ ॥ शा-
सनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यमेवमति-
संघातव्यमित्यधीयानो गच्छेत् ॥ ६ ॥

पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, पीकर खाकर और सोने विजाने आदिके सामानका अर्पणकरके ही, दूतको रायके देसकी ओर जाना

चाहिये ॥ ५ ॥ अपने स्वामीका सन्देश शत्रुसे इसप्रकार कहना चाहिये, वह इसका इसतरह उत्तर देगा, मुझे उसका इसप्रकार प्रत्युत्तर देना चाहिये, और अमुक २ प्रकारसे उसे पशमें करना चाहिये, इत्यादि बातोंका विचार करता हुआ ही दूत शत्रुके देशकी ओर जावे ॥ ६ ॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत् ॥ ७ ॥

अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापमारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत् ॥ ८ ॥

आटविक, अन्तपाल (सीमारक्षक), नगर तथा राष्ट्रमें निवास करने वाले अन्य मुरय २ व्यक्तियोंमें मित्रता उत्पन्न करे ॥ ७ ॥ अपनी और शत्रुकी, येनाओंके ठहनेके लिये युद्धयोग्य भूमि तथा अवसर आनेपर भागे जासकने योग्यभी भूमियोंका निरीक्षण करे ॥ ८ ॥

दुर्गराष्ट्रग्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत ॥ ९ ॥

और इस बातका जानना भी आवश्यक है, कि दुर्ग कितने हैं, राष्ट्रकी लम्बाई चौड़ाई कितनी है, किस २ विभागसे कितनी २ आमदनी है, धान्य या सुवर्ण आदिकी उत्पात्ति कैसी होती है, सर्वसाधारण लोगोंकी जीविका क्या है, राष्ट्रकी रक्षा किस प्रकार कीजाती है, और शत्रुके अन्दर क्या २ दोष हैं। इत्यादि सबही बातोंका बुराको पता लगाना चाहिये ॥ ९ ॥

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १० ॥ शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ प्राणाबाधे ऽपि दृष्टे ॥ १२ ॥

शत्रुके स्थानमें उसकी स्वीकृति लेकरही प्रवेश करे ॥ १० ॥ प्राणोंका भय उपस्थित होनेपर भी, अपने स्वामीके सन्देशको ठीक २ कहे ॥ ११-१२ ॥

परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरि-
प्रशं गुणकथासङ्गमासन्नमामनं सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं
च लक्षयेत्तुष्टस्य ॥ १३ ॥

यदि शत्रुकी वाणीमें सुन्नमें, ओर शक्तिमें प्रसन्नता देखे, अपने (दूतके) कथनका सत्कार, अपनी इच्छानुसार प्रश्न करना या अपना अभीष्ट (जैसा प्रश्न किया जाना दूत चाहता है, वैसाही) प्रश्न करना, अपने स्वामीका (दूतके स्वामीका) कुशल प्रश्न पूटना, उसके गुणोंका वर्णन किये जानेपर उसे ध्यान पूर्वक सुनना, अपने समीपही बैठनेके लिये आसन देना, सत्कार करना, विशेष उरतय आदिमें दूतको याद करना, और दूतके कार्योंपर विश्वास करना, इत्यादि बातोंको शत्रुमें देखे, तो दूतको समझ लेना चाहिये कि शत्रु मुझपर प्रसन्न है ॥ १३ ॥

विपरीतमतुष्टस्य ॥ १४ ॥ तं म्रूयात् ॥ १५ ॥ दूतमुखा वै
राजानस्त्रं चान्ये च ॥ १६ ॥

इससे विपरीत भाव होनेपर उसको अपनेमें अप्रसन्न समझे ॥ १४ ॥
दूत उसको (अप्रसन्न हुए शत्रुको) कहे, कि ॥ १५ ॥ आप और दूसरे सभी
राजाजन दूत मुखही होते हैं। अर्थात् वृत्तों उनके मुख होते हैं, ये उन्हींके
द्वारा अपनी सभ बातोंको एक दूसरेको सुनाते हैं ॥ १६ ॥

तस्माद्बुधतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारस्तेषामन्तावसायिनो
ऽप्यवध्याः ॥ १७ ॥ किमङ्ग पुनर्ब्राह्मिणाः ॥ १८ ॥ परस्यैत-
द्वाक्यमेव दूतधर्म इति ॥ १९ ॥

! इसलिये उन्हें बध करनेके लिये शस्त्र उठाये जानेपर भी, वे (दूत)
ठीक २ बातको कहने वालेही होते हैं। उनमें यदि कोई चाण्डाल भी इस का-
र्यको करने वाला हो, तो वहभी अवश्यही होता है। फिर ब्राह्मणका तो कहना
ही क्या ?। अर्थात् दूतका कार्य करने वाला चाहे नीच चाण्डाल भी हो, यह
भी वश्य नहीं होता ॥ १७-१८ ॥ क्योंकि जो कुछ वे कहते हैं, वह उनका
वाक्य नहीं होता, किन्तु दूसरेका ही होता है। यहाँतक दूतधर्मका निरूपण
किया गया ॥ १९ ॥

वसेदविसृष्टः प्रपूजया नोत्सिक्तः ॥ २० ॥ परेषु बलित्वं
न मन्येत ॥ २१ ॥ वाक्यमनिष्टं सहेत ॥ २२ ॥ स्त्रियः पानं
च वर्जयेत् ॥ २३ ॥ एकः शयीत ॥ २४ ॥

जबतक शत्रु राजा उसे जानेकी आज्ञा न दे, तबतक वही निवास करे;
शत्रुके द्वारा किये गये सत्कारसे गर्वित न होजावे ॥ २० ॥ शत्रुओंके बीचमें
रहते हुए अपने आपको बहुत बलवान् न समझे ॥ २१ ॥ यदि कोई बुरा वाक्य
भी अपनेमें कहे, तो उसे सहन करले ॥ २२ ॥ स्त्रीसंग तथा मद्य आदिका
पाना सर्वथा छोड देवे ॥ २३ ॥ अपने स्थानमें अकेलाही शयन करे ॥ २४ ॥

सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम् ॥ २५ ॥

योंकि मद्य आदि पीनेसे आदमी पागल होजाता है और अपनी गुप्त
बातोंको भी उगल देता है। इसीतरह सोते समय कभी २ आदमी अपने हार्दिक
भावोंके अनुसार बद्बचाने लगता है, यदि यहाँ कोई दूसरा आदमी होवे, तो
गुप्त रहस्योंको जान जाता है। इसलिये दूतको मद्य पीना और किसीके साथ
सोना अत्यन्त वर्जित है ॥ २५ ॥

कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्राणिधानं रागापरागौ भर्तरि
रन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत ॥ २६ ॥

। शत्रुके देशके कृत्यपक्ष (देशो-अधि १, अध्या १४) को शत्रुसे निष्क
करदेनेका कार्य, अकृत्य पक्षमें गूढपुर्यों (तार्क्षण, रसद् आदि) का प्रयोग,
अमात्य आदि प्रकृतियोंका राजामें अनुराग या अपराग तथा राजाके शीर्षोंको,
तापस और वैदेहक (इषापारी) के वेषमें वहा रहने वाले अपने गुप्तचरोंके द्वारा
जाने ॥ २६ ॥

तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सकपापण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा ॥ २७ ॥

तेषामसंभाषायां याचकमत्तोन्मत्तमुत्प्रलापैः ॥ २८ ॥

अथवा तापस और वैदेहकके शिष्टोंके द्वारा, या चिकित्सक तथा पापण्ड
के वेषमें रहनेवाले गुप्तचरोंके द्वारा अथवा उभयवेतन गुप्त पुर्योंके द्वारा, शत्रु
के सब कार्योंका पता लगावे ॥ २७ ॥ यदि इन लोगोंके साथभी यातथीत
करनेका अवसर न मिलसके, तो गिद्युक्त, मत्त, उन्मत्त तथा मुत्प्रलापोंके द्वारा
जितनाभी मालूम होसके शत्रुके कार्योंका पता लगावे ॥ २८ ॥

पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत ॥ २९ ॥

उपलब्धस्योपजापमुपेयात् ॥ ३० ॥

नर्दातद आदिक पावत्र तीर्थ स्थानों, देवालयां, घरके चित्रों तथा अन्य
लिखित इशारोंके द्वारा, वहाके समचार जाने ॥ २९ ॥ टाक २ समाचारोंके
मालूम हो जाने पर, उनके अनुसार यथावश्यक भेद रूप उपाय का
प्रयोग करे ॥ ३० ॥

परेण चाक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत् ॥ ३१ ॥

सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिकरं वा ॥ ३३ ॥

शत्रुके पढ़नेपर भी, अपनी अमात्य आदि प्रकृतियोंकी टाक २ अवस्था
को न बताये ॥ ३१ ॥ केवल इतना कहदे कि, आप सब कुछ जानते ही हैं, मैं
आपके सामने और अधिक क्या कह सकता हू ॥ ३२ ॥ यदि इतने उत्तरसे
शत्रु सन्तुष्ट न होवे, तो अपने अमात्य आदिकी उतनी ही हालत बतला देवे,
जितनीसे कि अपना कार्य सिद्ध होजाय । अर्थात् जिसमे अपने कार्यमें किसी
प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो ॥ ३३ ॥

कार्यस्यसिद्धाद्युपरुध्यमानस्तर्कयेत् ॥ ३४ ॥ किं भर्तुर्मे

न्यसनमामन्त्रं पश्यन् ॥ ३५ ॥ स्वं वा न्यसनं प्रतिकर्तुकामः

॥ ३६ ॥ पार्थिवग्राहसारावन्तः कोपमाटपिकं वा समुत्थानपायितु-
 कांमः ॥ ३७ ॥ मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुं कामः ॥ ३८ ॥
 स्वं वा परतो विग्रहमन्तः कोपमाटपिकं वा प्रतिकर्तुं कामः ॥ ३९ ॥
 संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभियन्तुकामः सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं दुर्ग-
 कर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः ॥ ४० ॥ स्वसैन्यानां वा व्या-
 यामदेशकालात्राकांक्षमाणः ॥ ४१ ॥ परिभवप्रमदाभ्यां वा ॥ ४२ ॥
 संसर्गानुबन्धार्थां वा ॥ ४३ ॥ मासुपेरुणद्धीति ॥ ४४ ॥

कार्यके सिद्ध होजानपर यदि शत्रु राजा दूत को अपने यहां ही रोक-
 लेता है, अर्थात् उसे अपने देशमें चलनामे की अभी अनुमति नहीं देता, तो
 दूतको विचारना चाहिये, कि यह मुझे क्यों रोक रहा है ॥ ३४ ॥ क्या हमने
 मेरे स्वामीपर, समीपमें ही आनेवाली किसी विपत्तिको जान लिया है ? ॥ ३५ ॥ या
 मेरे जानेसे पहिले मैं अपने किसी व्यसनका प्रतीकार करना चाहता है ॥ ३६ ॥
 अथवा पार्थिवग्राह (अपने स्वामीका शत्रु, अर्थात् शत्रु राजाका मित्रभूत) और
 आसौर (पार्थिवग्राहका मित्र, अर्थात् शत्रुके मित्रका मित्र, इन) को मेरे स्वामी
 के साथ युद्ध करनेके लिये उभारना चाहता है । या मेरे स्वामीके अमाल्य
 आदिको उससे कुपित कराना चाहता है, या किसी आटाविकको खर्चानेके लिये
 तैयार करना चाहता है ॥ ३७ ॥ अथवा मित्र (विजिगीषुके सामने की आरका
 मित्र) और आक्रन्द (विजिगीषुके पीछकी ओरका मित्र । यह आगे पीछकी
 कल्पना, शत्रुके देशको आगे समझकर उसीके अनुहार करनी चाहिये) को
 मारना चाहता है । किसी पुस्तकमें 'मित्रमाक्रन्दाभ्यां' इस तरहका भी पाठ
 है, उसका अर्थ इस प्रकार करना चाहिये — अर्थात् आक्रन्दोंके द्वारा मित्रको
 मरेवाना चाहता है ॥ ३८ ॥ अथवा दूसरेसे अपन ऊपर किये हुए आक्रमणका
 अपने अन्त कोप (अमाल्य आदि अपनी प्रकृतियोंके कोप) का, या अपने आट
 विकका प्रतीकार करना चाहता है ॥ ३९ ॥ अथवा मेरे स्वामीके, इसपर, इस
 उचित आक्रमणके समय को टालना चाहता है, या इसमें रुकावट डालना
 चाहता है । अथवा अपन धान्य, छोडा तांबा, तथा इसी प्रकारकी अन्य आव
 १ इयक वस्तुओंका संग्रह, दुर्ग आदि बनवाना, तथा सनाओंका संग्रह करना
 चाहता है ॥ ४० ॥ अथवा अपनी सेनाओंकी बचाव, तथा उनकी स्थितिके
 लिये उचित देश और कालकी आज्ञा कर रहा है ॥ ४१ ॥ अथवा किसी
 प्रकारके तिरस्कार, या सह्यासकी प्रीतिके कारण ॥ ४२ ॥ अथवा दियाह आदि
 किसी सन्बन्धक निमित्त, या मेरे विषयमें किसी प्रकारका श्रेय उत्पन्न करनेके

निमित्त ॥ ४३ ॥ मुझे रोक रहा है । दूत अपने रोके जानेके इन सय उपयुक्त कारणोंका अच्छी तरह विचार करे ॥ ४४ ॥

ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा ॥४५॥ प्रयोजनमित्प्रमवेक्षेत वा ॥४६॥
शासनमनिष्टमुरुत्वा घन्धवधमयादविसृष्टो व्यपगच्छेत् ॥ ४७ ॥
अन्यथा नियम्येत ॥ ४८ ॥

जब ठीक २ रोकनेके कारणका पता लग जावे, तो उसके अनुसार अपनी अनुकूलता देकर वहीं निवास करे, अथवा प्रतीक्षित होने पर वहासे चलाजावे ॥४५॥ अथवा अपने स्वामीके किसी अभीष्ट प्रयोजनका विचार करता हुआ, शत्रुके नगरमें ही रहे, और गृह पुरषोंके द्वारा अपने सय समाचारोंको राजात्तरु पहुँचाकर, राजाके द्वारा ही, इन सय बातोंका प्रतीकार करावे ॥४६॥ शत्रु राजाको सचेता अमलग कर देनेवाले, अपने (मालिकके) सन्देश को सुना कर, दूत, अपने पकड़ेजाने, या मारे जानेके भयसे शत्रु राजाकी अनुमतिके बिनाही वहासे चला जाये ॥ ४७ ॥ ऐसा न करनेपर, दूत पकड़ लिया जाता है ॥ ४८ ॥

प्रेषणं संधिपालत्वं प्रतापो मित्रसंग्रहः ।

उपजापः सुहृद्भेदो गृहदण्डातिसारणम् ॥ ४९ ॥

शत्रुके देशमें अपना सन्देश सुनाने और शत्रुका सन्देश सुननेके लिये भेजना, पहिली कीहुई सन्धिकी रक्षा करना, अरसर आनेपर अपने प्रतापका प्रकाशन करना, मित्रोंका संग्रह करना, शत्रुके कृत्यपक्षके पुरषोंमें भेद डालना, शत्रुके मित्रोंको उससे भिन्न करना, तक्षिण, रसद आदि गृहपुरषों तथा सेनाका मारा देना ॥ ४९ ॥

१ घन्धुरत्नापहरणं चारङ्गानं पराक्रमः ।

समाधिभोक्षो दूतस्य कर्म-योगस्य चाश्रयः ॥ ५० ॥

घन्धु (अर्थात् शत्रुके) तथा रत्नोंका अपहरण करना, अर्थात् उन्हें अपने अधीन करना, शत्रुके देशमें रहते हुए गुप्तचरोंके कार्योंको ठीक २ जानना, अरसर आनेपर पराक्रम दिखाना, सन्धिकी रक्षाके लिये आदि (जमानत) रूपमें रखले हुए राजकुमार आदिका छुगना, औपनिषदिक प्रकरणमें बताया हुए सारण आदिका प्रयोग करना, ये सय दूतके कर्म हैं ॥ ५० ॥

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत् ।

प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिमिः ॥ ५१ ॥

इति, विनयाधिकारिके प्रथमे, अधिकारपदे-दूतप्रतिभिः प्रोक्ष्यो अथाप ३३

राजाको उचित है कि इन सब उपयुक्त कार्योंको अपने दूतोंसे करवावे। और शत्रुके दूतोंके पीछे अपने और दूत लगादेवे, अथवा गृहपुरोंकी लगादेवे। अपने देशमें तो वे उस दूतके प्रत्येक कार्यका प्रकट रूपमें रहते हुएही पता लगाते रहें, शत्रुदेशमें उसके सेवक बनकर अदृश्य रूपमें उसकेही पास रहें, और उसके प्रत्येक कार्यका पता लगावे। इसप्रकार इन पुरुषोंके द्वारा राजा शत्रुके दूतोंके प्रत्येक कार्यकी गन्नेपणा करता रहे ॥ ५१ ॥

चिनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त ।

सत्रहवां अध्याय ।

१३ प्रकरण ।

राजपुत्रोंसे राजाकी रक्षा ।

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च ॥ १ ॥ पूर्व
दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ॥ २ ॥

अपने समीप रहने वाले पुत्र वन्धु वान्धव आदि तथा शत्रुओंसे रक्षा किया हुआही राजा, राज्यकी रक्षा कर सकता है ॥ १ ॥ राजाके लिये सबसे प्रथम विपत्तिस्थान, उसकी स्त्रियाँ और पुत्रही हैं, इसलिये प्रथम उनसेही रक्षाका उपाय करना चाहिये ॥ २ ॥

दाररक्षणं निशान्तप्रणिधिं वक्ष्यामः ॥३॥ पुत्ररक्षणम् ॥४॥

द्वियोंसे राजाकी रक्षा किसप्रकार करनी चाहिये, इस बातका निरूपण 'निशान्त प्रणिधि' (१७ प्रकरण) नामक प्रकरणमें किया जायगा ॥ ३ ॥ यहाँ पर पुत्रोंसे रक्षाका प्रश्न बताया जाता है ॥ ४ ॥

जन्मप्रभृति राजपुत्रात्रयेत् ॥ ५ ॥ कर्ककटसघर्माणो हि ज-
नकमक्षा राजपुत्राः ॥ ६ ॥

राजाको उचित है कि जन्मसे लेकर, राजपुत्रोंकी निगरानी रखे, अर्थात् उनको स्वतन्त्र न होने दे, किसी प्रकारके बन्धन आदिमें ही उन्हें रखे ॥५॥ क्योंकि राजपुत्र, कर्कटक (कुलीर=ककड़ा) के समान अपने पिताकोही खाने वाले होते हैं। यह एक प्रसिद्धि है, कि ककड़ा अपने पिताको खाता हुआ ही जीवित रहता है, इसीप्रकार राजपुत्र भी अपने पिताको नष्टकर अपना पक्षये चाहा करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामजातस्तेषे पितर्युपांशुदण्डः भेयानिति भारद्वाजः ॥७॥

भारद्वाज आचार्यका मत है, कि यदि पुत्रोंमें, पिताके प्रति स्नेह उत्पन्न न हो, तो उनका उपांशुग्रह कर देनाही श्रेयस्कर है ॥ ७ ॥

नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रवीजविनाशथेति विशालाक्षः ॥ ८ ॥
तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति ॥ ९ ॥

परन्तु हमके विरुद्ध विशालाक्ष आचार्य कहता है कि 'निरपराध वधोंका इसप्रकार उपचाप मारदेना घोरपाप और क्रूरता है, तथा ऐसा करने क्षत्रिय वंशको नाश होजाना भी निश्चित है ॥ ८ ॥ इसलिये यही उचित है कि पुत्रोंको पिताके प्रति प्रीति उत्पन्न न होनेपर समीपके किसी स्थानमें कैद करके रखा जाये ॥ ९ ॥

अहिभयमेतदिति पाराशराः ॥ १० ॥ कुमारो हि विक्रमम-
यान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात् ॥ ११ ॥ तस्मा-
दन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १२ ॥

परन्तु हमके विरुद्ध पाराशर आचार्य कहते हैं कि ऐसा करना तो सर्पके भयके समान है। अर्थात् जैसे साप, घबरे रहता हुआ भयावह होता है, इसीप्रकार, पुत्रका अपने पास कैदम रखना भा भयावह समझना चाहिये ॥ १० ॥ क्योंकि कुमार यह समझकर कि पिता अपने वधक भयसे मुझको कैद करके रखता है, धरम रहता हुआ सरलतासे एा उसके वध करनेका यत्न कर सकता है ॥ ११ ॥ इसलिये उचित यही है कि राजकुमारको राज्यकी सीमाके किसी दूरस्थित दुर्गमें रखा जाये। क्योंकि वहाँ दूर रहता हुआ वह सरलतासे पितापर आक्रमण नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

औरभ्रकं भयमतदिति पिशुनः ॥ १३ ॥ प्रत्यापत्तेर्हि तदेव
कारणं ज्ञात्वान्तपालसस्रः स्यात् ॥ १४ ॥ तस्मात्स्त्रविपयादपकृष्टे
सामन्तदुर्गे वामः श्रेयानिति ॥ १५ ॥

भारद्वाज आचार्यका मत है कि सीमास्थित दुर्गमें राजपुत्रका रखना भेदके भयके समान है, जैसे वे डा दूसरेपर आक्रमण करनेके लिये पीछेकी ओर कुछ दूर हटजाता है, इसीप्रकार सीमादुर्गस्थित राजपुत्र भा भवसर पावर राजापर आक्रमण कर सकता है ॥ १३ ॥ क्योंकि जय उसे यह मालूम होजाय कि पिताने मुझे अपने वधके भयके कारणही यहाँ कैद करके रखा है, तो अपनी कैदके इस कारणको समझकर वह अपने कार्यको पूरा करनेके लिये अन्तपालके साथ मिथत्रा कर सकता है। अर्थात् अन्तपाल (सीमा दुर्गका रक्षक) की सहायतासे वह पितापर फिरभी आक्रमण करही सकता है ॥ १४ ॥ इसलिये

राजकुमारको अपने देशसे निकालकर सामन्त (अपने समीप देशका राजा) के दुर्गमें, उसका निवास करनाही श्रेयस्कर है ॥ १५ ॥

१ वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुद्यात् ॥ १७ ॥ तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति ॥ १८ ॥

परन्तु आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) इस मतको भी ग्राह्य नहीं समझता । वह कहता है कि राजकुमारको सामन्तके दुर्गमें बसाना, मायके बड़प्पेको दूसरेके हाथमें देनेके समान है । अर्थात् जैसे बड़प्पेके, दूसरेके हाथमें चले जानेपर, वह बड़प्पेके द्वारा जब चाहे मायको दुष्ट सकता है । इसीप्रकार सामन्त भी उस पुत्रके द्वारा जब चाहे विभिन्नोपसे ह्छानुसार धन आदि लेसकता है ॥ १६, १७ ॥ इसलिये राजकुमारकी माताके बन्धुओंके पासही राजकुमारका वास कराना श्रेयस्कर है ॥ १८ ॥

ध्वजस्थानमेतदिति यातव्याधिः ॥ १९ ॥ तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकपदस्य मातृबन्धुना भिक्षेरन् ॥ २० ॥ तस्माद्ग्राम्यधर्मेणैवमवसृजेयुः ॥ २१ ॥ सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिदुहन्तीति ॥ २२ ॥

परन्तु आचार्य यातव्याधि (उद्धव) इस मतको भी हेय समझता है । वह कहता है कि राजकुमारको उसके मातृ कुलमें रखना एक ध्वजके समान है ॥ १९ ॥ क्योंकि जिसप्रकार ध्वजा (चिन्ह विशेष) को दिखाकर, अदिति (भिक्षा २ देवताओंकी प्रतिष्ठाति दिखाकर भिक्षा एकत्रित करने वाली भिक्षुकी) और कौशिक (सरेरे, सादकके परुद्धकर, उसे दिन्वा २ कर जोषिकर करने वाले) अपने जीवनका निर्वाह करनेके लिये भिक्षा एकत्रित करते हैं, इसीप्रकार राजकुमारके मातृकुलके पुरख भी उसे दिखा २ कर लोगोंसे धन इकट्ठा कर सकते हैं ॥ २० ॥ इसलिये इस राजकुमारको ग्राम्यधर्म अर्थात् खीसग आदिमें ग्राम्यकी ह्छानुसार लगा रहनेसे ॥ २१ ॥ क्योंकि वैशयिक सुखोंमें रुके हुए पुत्र, अपने पिताके साथ कमी प्रेम नहीं करते ॥ २२ ॥

जीवन्मरणमेतदिति कौटल्यः ॥ २३ ॥ काष्ठमिव हि घुणजर्ग्यं राजकुलमधिनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको कदापि उपादेय नहीं समझता, वह कहता है, कि पुत्रोंको इसप्रकार विषयोंमें फँसाकर रखना तो उन्हें जीतेही मारदेना है । अर्थात् उनका इसप्रकारका जीवन सर्वथा, मरणकेही समान है

॥ २३ ॥ क्योंकि जिसप्रकार पुण (एक प्रकारका कीटा, जो लकड़ीको भीतरसे काट २ फा निस्सत्त्व करदेता है), से काटी हुई लकड़ी शीघ्र नष्ट होजाती है, इसीप्रकार जिस राजकुलके राजकुमार शिक्षित नहीं बनाये जाते, वह राजकुल बिना किसी बुद्धादिके ही स्वयं नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

तस्मादतुमत्यां महिष्यां ऋत्विजश्चरुमैन्द्रवार्हस्पत्यं निर्वयेयुः

॥ २५ ॥ आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत ॥ २६ ॥

इसलिये राजाको यह आवश्यक है कि वह इसका प्रयत्न करदे, कि जब महाराणी ऋतुमती होये, तब ऋत्विज्, इन्द्र और वृहस्पति देवताके उद्देश्यसे चरुको सिद्ध करें। इन्द्रको ऐश्वर्यके लिये और वृहस्पतिको विद्या बुद्धिके लिये हविका देना कहागया है ॥ २५ ॥ जब महाराणी गर्भवती होजाये, (तो शिशुचिकित्सक (कौमारभृत्य), गर्भके पुष्ट करने-और सुखपूर्वक प्रसव होनेके लिये पूर्ण यत्न करे ॥ २६ ॥

प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात् ॥ २७ ॥ समर्थ

तद्विदो विनयेयुः ॥ २८ ॥

महाराणीके प्रसूता होनेपर अर्थात् पुत्र उत्पन्न होजानेपर, विद्वान् पुरोहित पुत्रका यथोचित संस्कार करे ॥ २७ ॥ तदनन्तर राजकुमारके समर्थ होजानेपर, उन २ विषयोंके निपुण विद्वान्, उसका मित्र २ प्रकारकी उचित शिक्षा दें ॥ २८ ॥

सत्त्रिणामेकश्चैनं मृगयायूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत् ॥ २९ ॥

पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणोति ॥ ३० ॥ तदन्यः सत्त्रीं प्रति-
पेधयेदित्याम्भीयाः ॥ ३१ ॥

जाम्भ आचार्यके अनुयायियाया मत है कि सत्रियोंमेंस एक इस राजकुमारको मृगया (शिकार), घृत (जुभा), गध और स्त्रियोंका प्रलोभन देवे ॥ २९ ॥ और कहे कि पितापर आक्रमण करके अपना राज्य ले लो। फिर स्वयं मौज उठाभागे ॥ ३० ॥ और दूसरा सत्री कहे कि ऐसा करना बहुत बुरा है। इस प्रकार ये सब काम करने का राजकुमारको प्रतिषेध करे ॥ ३१ ॥

महादोषमंबुद्धबोधनमिति कोटल्यः ॥ ३२ ॥ नवं हि द्रव्य

येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूपाति ॥ ३३ ॥ एवमयं नव-
बुद्धिर्यद्यदुच्यते तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति ॥ ३४ ॥ तस्मा-
द्दर्शनार्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च ॥ ३५ ॥

परन्तु आर्य आचार्यके अनुयायियोंके इस मत को कौटल्य सर्वथ हेय समझता है, वह कहता है, कि सरल स्वभाव वालकों को पिताके साथ द्रोह करना सिख ना महादोष है ॥ ३२ ॥ क्योंकि जिस प्रकार नया मृदंग (मट्टी का बतैन) भादे द्रव्य, जिस २ जल, घृत आदि वस्तुओंके साथ छुआया जाता है, उन सबको ही वह नूतता जाता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार इस सरलबुद्धि बालकको जो २ कुठ कहाजाता है, उन २ सब बातोंको वह शास्त्रके उपदेश की तरह समझता है ॥ ३४ ॥ इसलिये इस सरलबुद्धि बालकको सदा धर्म और अर्थ का ही उपदेश करना चाहिये, अधर्म और अनर्थ का कदापि नहीं ॥ ३५ ॥

मत्त्रिणस्त्वेनं तत्र स इति वदन्तः पालयेयुः ॥ ३६ ॥
यौवनोत्सेकात्परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभि स्त्रीभिरमे-
ध्याभिः शून्यागारेषु रात्राबुद्धेजयेयुः ॥ ३७ ॥

और सरस्त्री लोग, हम तेरे ही हैं, इस प्रकार कहते हुए इसकी पालना करें ॥ ३६ ॥ यदि राजकुमार यौवन मढ़से परस्त्रियोंमें अपने मनको लेजाता है, ता रात्रा, या उसके रक्षकोंको चाहिये, कि वे सदा अपवित्र रहने वाली, आर्या (अष्ट स्त्रीक समान) वेप बनाये हुई स्त्रियाके द्वारा, रात्रिके समय एकान्त स्थानमें उसे उद्दिप्त करावें । जिससे कि स्त्रिय होकर वह फिर कभी अपने मनको परस्त्रियाकी ओर न लेजावे ॥ ३७ ॥

मद्यकामं योगपानेनोद्धेजयेयुः ॥ ३८ ॥ द्यूतकामं कापटिकैः
पुरुषैरुद्धेजयेयुः ॥ ३९ ॥

यदि राजकुमार, मद्य भादि पानकी कामना करे, तो उसे मद्यमें कोई विरस (जिसका रस बहुत खराब, चिक्के उद्दिप्त कर देने वाला हो, ऐसी) वस्तु मिलाकर पिलावे, जिससे वह सिन्न होकर फिर कभी मद्य न पीवे ॥ ३८ ॥ यदि राजकुमार, जुभा खेलनेकी कामना करता हो, तो उसे कापटिक अर्थात् छल पूर्वक जुभा खेलनेमें अत्यन्त चतुर पुरपोंके साथ जुभा खिलवाकर खूब उद्दिप्त करें, जिससे कि वह फिर जुभा खेलनका नाम न ले ॥ ३९ ॥

मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः ॥ ४० ॥ पितरि
विक्रमबुद्धिं तथेत्यनुप्रापिद्य भेदयेयुः ॥ ४१ ॥

यदि वह मृगया अर्थात् शिकारकी कामना रखता हो, तो उसे, चोरोंके वध धारण किये हुए पुरपाके द्वारा अच्छीतरह सिन्न करे, जिससे कि बर्ष होकर, फिर कभी वह मृगयाका और ध्यान न दे ॥ ४० ॥ जो राजकुमार

अपने पितापरही आक्रमण करनेका विचार करे, तो पहिले उसके साथ मिलकर, अर्थात् ऊपरसे यह कहकर, कि हमभी तुम्हारे साथ हैं, जैना तुम चाहते होकर सकते हो, फिर उसको यह काम करनेसे रोक दें ॥ ४१ ॥

अप्रार्थनीयो राजा विपन्ने घातः संपन्ने नरकपातः संक्रोशः
प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति ॥ ४२ ॥

उस कार्यसे रोकनेके लिये उसको यह कहे, कि देखो राजाके साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिये, यदि तुम अपने कार्यमें सफल न होसके तो यह निश्चय रखो, कि तुम्हें मार दिया जायगा, यदि तुम अपने कार्यमें सफल हो-गये अर्थात् तुमने धोखेसे राजाको मारडाला तो निश्चयही तुम नरकमें पडोगे, सम्पूर्ण प्रजाजन तुम्हारी निन्दा करेंगे, और यह भी सम्भव है कि प्रजाजन आप-समें मिलकर दुर्गंतके साथ तुम्हें मारडालें । इसलिये तुम्हें पितृवध रूपी घोर-पाप कदापि न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा वधीयात् ॥ ४३ ॥ बहुपुत्रः प्रत्यन्त
मन्यविपयं वा प्रेपयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत् ॥ ४४ ॥
आत्मसंपन्नं सेनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत् ॥ ४५ ॥

पितामें स्नेह न रखने वाला, किन्तु पिताका प्यारा एकही पुत्र यदि हो, तो उसे कैद करलेये ॥ ४३ ॥ यदि पुत्र बहुत हों, तो उनके सीमा प्रान्त अथवा दूसरेही देशमें भेजदेये, जहाँपर कि राजपुत्रके उचित अन्न, तथा अन्य सुन्दर वस्त्र आदि सामान न मिलसके । और जहाँकी प्रजा, राजपुत्रके निमित्त किसी प्रकारका विप्लव करनेको तैयार न हो ॥ ४४ ॥ जो पुत्र आत्मसंपत्तिसे (योग्य उचित गुणसे) युक्त हो, उसको सेनापति पदपर अथवा यौवराज्य पदपर स्था-पित करे ॥ ४५ ॥

बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः ॥ ४६ ॥ शि-
ष्यमाणो धर्मार्थाबुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् ॥ ४७ ॥
उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः ॥ ४८ ॥ अपायनित्यो धर्मार्थ-
द्वेषी चेति दुर्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

राजपुत्र तीन प्रकारके होते हैं, १ बुद्धिमान्, २ आहार्यबुद्धि, ३ दुर्बुद्धि ॥ ४६ ॥ यतलाय जानेपर, जो धर्म और अर्थको अच्छीतरह समझ लेता है, तथा फिर उसपर आचरण भी करता है, वह बुद्धिमान् कहाता है ॥ ४७ ॥ जो धर्म और अर्थको समझ तो लेता है, परन्तु उसपर फिर आचरण नहीं करता,

उसे आहार्यबुद्धि कहते हैं ॥ ४८ ॥ सदा दुराह्योमं लगे रहने वाले तथा धर्म और अर्थसे द्वेष करने वाले पुत्रको दुर्बुद्धि कहा जाता है ॥ ४९ ॥

स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य प्रयतेत ॥५०॥ पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा ॥ ५१ ॥

यदि राजाका, एकही दुर्बुद्धि पुत्र हो, तो उसके पुत्रकी उत्पत्तिमें विशेष ध्यान करे। अर्थात् ऐसा ध्यान करे कि उसका पुत्र राज्यके योग्य बनसके ॥५०॥ यदि यह सम्भव न होसके, तो अपनी पुत्रीके पुत्रको इस कार्यके लिये तैयार करे। तत्पर्य यह है, कि अपनी कन्याका विवाह जिसके साथ करे, उससे यह शर्त करले कि जो पहिला पुत्र इससे होगा, उसे मैं लेलंगा, इस प्रकार उसे लेकर राज्यके योग्य बनावे ॥ ५१ ॥

वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृवन्धुकुल्यगुणवत्तमामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे वीजमुत्पादयेत् ॥ ५२ ॥ न चैकपुत्रमधिनीतं राज्ये स्थापयेत् ॥ ५३ ॥

अथवा यदि राजा वृद्ध होगया हो, या सदा बीमार रहता हो, तो अपने मातृकुलके या अपने बन्धु कुलके किसी पुरपसे, या गुणवान् सामन्तसे नेयोगके द्वारा अपनी स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करा लेवे, और उसको राज्यके लिये तैयार करे ॥ ५२ ॥ किन्तु आशिक्षित दुर्बुद्धि एक पुत्रको राजा कदापि राज्यपर स्थापित न करे ॥ ५३ ॥

बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।

अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते ॥ ५४ ॥

यदि बहुतसे पुत्रोंमेंसे एक दुर्बुद्धि हो, तो उसे अवश्यही किसी दूसरे देशमें निकाल कर रोके कर रखे। यदि राजापर कोई आपत्ति न हो, तो वह सदा अपने पुत्रोंकी दितकामनाही करता रहे। अर्थात् पुत्रोंके द्वारा पितापर कोई आपत्ति न आनेपर, पिताका भी कर्त्तव्य है कि वह पुत्रोंका हित करे, जय बहुतसे पुत्र राजाको प्यारे हों, तो उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्रकोही राज्यासनपर स्थापित करना प्रशस्त समझा जाता है ॥ ५४ ॥

कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलमक्षो हि दुर्जयः ।

अराजव्यसनावाधः शुश्रूषदावसति क्षितिम् ॥ ५५ ॥

इति विनयाधिष्ठारिके अथमे अधिकरणे राजपुत्ररक्षणं सप्तदशो अध्यायः ॥ १७ ॥

अथवा सम्पूर्ण कुलकाही राज्यपर अधिकार होवे, अर्थात् वे सब मिलकरही राज्य शासनके कार्यको चलावें। क्योंकि कुलसमुदाय राज्यका नेता हुआ

राज्यके द्वारा सरलतासे जीता नहीं जा सकता । एक और भी बात है, यदि एक ही व्यक्ति राजा होता है, तो उसपर व्यसन आनेपर प्रजाका ठीक पालन नहीं होता, और प्रजा अरथन्त पीड़ित होने लगती है, परन्तु समुदायके राजा होनेपर, यदि एकमें कोई व्यसन हो भी जाय, तो भी दूसरे व्यक्ति राज्य कार्यको यथा-विधि चलाते रहते हैं, और प्रजाकी सुखमय अवस्था पृथिवीपर निरन्तर बनीही रहती है ॥ ५५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय ।

१८-१५ प्रकरण ।

अवरुद्ध (अपने समीपसे हटकर कहीं दूसरे स्थानपर रक्खे हुए) राजकुमारका व्यवहार, तथा अवरुद्ध राजकुमारके प्रति

राजाका व्यवहार

राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत

॥ १ ॥ अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपकपातकेभ्यः ॥ २ ॥

अपने अननुरूप (जो अपनी हसिपतके मुताबिक न हो, ऐसे) कार्यमें लगाया हुआ, इसीलिये बड़ी कठिनतासे जीवन निर्वाह करने वाला राजपुत्र, अपने पिताके कथनानुसार बर्ताव करता रहे ॥ १ ॥ परन्तु यदि उस कार्यके करनेमें प्राणोंका भय हो, अमात्य आदि प्रकृतियोंके कुपित होजानेका भय हो, या कोई पातक (घोरपाप) हो, तो पिताकी आज्ञाका अनुसरण कदापि न करे ॥ २ ॥

पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत ॥ ३ ॥ पुरुषाधिष्ठितश्च संविशेषमादेशमनुतिष्ठेत् ॥ ४ ॥ अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितरुपनाययेत् ॥ ५ ॥

किसी पुण्यकार्यमें नियुक्त किया हुआ राजपुत्र, एक अधिष्ठाता (अपने नीचे रहकर सम्पूर्ण कार्यकी देग रेत करने वाले) पुरुषको राजासे मांग लेवे ॥ ३ ॥ उस पुरुषसे युक्त हुआ २, राजाकी आज्ञाको विशेष रूपसे पालन करे ॥ ४ ॥ कार्यके करनेपर जो कुछ अनुरूप फल प्राप्त हो, तथा प्रजाजन जो कुछ

भेंट आदि उसे लाकर देवे, वह उस सम्पूर्ण सामग्रीको अपने पिताके पास भिजवा देवे ॥ ५ ॥

तथाप्यतुप्यन्तमन्यस्मिन्पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्यायापृ-
च्छेत् ॥ ६ ॥ बन्धवधमयाद्वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः
सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमा-
श्रयेत् ॥ ७ ॥

यदि फिरभी पिता सन्तुष्ट या प्रसन्न न होवे, और अपने दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियोंमें ही खेह करता रहे, तो उस राजकुमारको चाहिये, कि वह जंगल में तपस्या आदि करनेको चलेजानेके लिये अपने पितासे आज्ञा लेलेवे ॥ ६ ॥ अथवा यदि अपने बाधेजाने या मारे जानेका भय हो, तो जो सामन्त, न्याय पूर्वक व्यवहार करने वाला, धार्मिक, सत्यवादी, भवञ्चक (धोखा न देनेवाला), शरणमें प्राप्त हुए पुरुषोंको आश्रय देनेवाला, तथा उनका सत्कार करनेवाला हो, उसका आश्रय लेलेवे ॥ ७ ॥

तत्रस्यः कोशदण्डसंपन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासंबन्धमटवीसंबन्धं
कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात् ॥ ८ ॥ एकचरः सुवर्णपाकमणिराग-
हेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत् ॥ ९ ॥

वहां स्थित हुआ २, धन और सेनासे युक्त होकर, वहांके किसी वीर पुरुषकी कन्याके साथ विवाह सम्बन्ध करके, और अपने पिताके देशके आठविक पुरुषोंके साथ मित्रता आदिका सम्बन्ध जोड़के, वहांके कृत्यपक्षके पुरुषोंको अपनी ओर मिलानेका यत्न करे ॥ ८ ॥ यदि राजकुमार अकेलाही रहे, अर्थात् उसे धन और सेनाकी सहायता कहींसे भी न मिलसके, तो सुवर्णपाक (लोहे आदिको पुटपाक देकर सोना बनाना=रसतन्त्र प्रयोग करना आदि) कर्मके द्वारा, मणि, रत्न, सुवर्ण, चांदी आदि विन्नेय पदार्थोंके व्यापार अथवा अन्य सामान्य पदार्थोंके व्यापारके द्वारा अपनी जीविका करे ॥ ९ ॥

पापण्डसहृद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्याविधवाद्रव्यं वा
गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसंधायाप-
हरेत् ॥ १० ॥

अथवा पाण्डुअथवा अथर्मा पुरुषोंके सगृहीत द्रव्यको, अश्रोत्रियसे अतिरिक्त पुरुषोंके भोग्य द्रव्यको, देवताके निमित्त रखले हुए द्रव्यको, या किसी धन सम्पन्न विधवाके द्रव्यको, छिपकर इनके घरमें घुसकर अपहरण करले । अर्थात् चूक प्रकारके धनको चोरी आदि करके अपने अधिकारमें करले । और जहाजसे

व्यापार करने वाले पुरुषोंके धनको भी, वेहोना करने वाली औषधि आदिका प्रयोग करके, उन्हें घोखा देकर अपहरण करलेवे ॥ १० ॥

पारप्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ११ ॥ मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टत ॥ १२ ॥

अथवा पारप्रामिक (विजिगीषु जश कहीं दूसरे गांवको जाना चाहे, तब यह वहाँपर अपना कार्य करले। देखो:—दुर्गलभोपाय अधिकरण) उपायका अनुष्ठान करे ॥ ११ ॥ अथवा अपनी माताके सेवक जनोंको अपने अनुकूल बनाकर, उनके द्वारा अपनी वृद्धिका यत्नकरे ॥ १२ ॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपापण्ड्यभिवर्षा न-
ष्टरूपस्तद्वधजनसखश्छिद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्रसाम्यां प्रहृत्य
ब्रूयात् ॥ १३ ॥

अथवा बर्दई लुहार, चित्रकार, गाने बजाने वाले, चिकित्सक (घँघ), कथा कहकर जीविका करने वाले, तथा वेदब्राह्मण पारण्डी पुरुषोंके धेपके साथ अपने असली रूपको छिपाकर, लुहार बर्दई आदि पुरुषोंके सम नहीं हुआ २, अपने पिता (राजा) के किसी छिद्र (दोष-कमजोरी) को देखकर उसकेही द्वारा, शस्त्र अथवा विष आदि रसका प्रयोग करके अर्थात् इस्तरह राजाको मारकर, अमात्य आदिले कहे, कि ॥ १३ ॥

अहमसौ कुमारः सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं
तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तेयतेनोपस्थास्य इति
॥ १४ ॥ इत्यवरुद्धवृत्तम् ॥ १५ ॥

मैं ही वह कुमार हूँ। साथ २ भोगने योग्य इस राज्यको कोई अकेला नहीं भोग सकता। इसलिये जो अमात्य आदि राजकर्मचारी पूर्ववत् अपने अधिकारोंपर रहना चाहते हैं, वे शान्त पूर्वक रहें, मैं अपने राज्यकालमें उनको दुगना वेतन और भत्ता दूंगा ॥ १४ ॥ यहाँतक अवरुद्ध राजकुमारके व्यवहारका निरूपण किया गया ॥ १५ ॥

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः ॥ १६ ॥ माता
वा प्रतिगृहीता ॥ १७ ॥

अवरुद्ध राजकुमारको, अमात्य आदि मुख्य पुरुषोंके पुत्र गुप्त पुरुषके भेसमें जाकर यह समझाकर लेआवें कि यदि तुम राजाके अनुकूल रहोगे, तो वह अवश्य ही तुम्हें युवराज बनालेगा ॥ १६ ॥ अथवा राजाके सरकृत हुई २ उसकी अपनी माता ही उसे घापस लेआये ॥ १७ ॥

त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररमाभ्यां हन्युः ॥ १८ ॥ अत्यक्तं
तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्राद्युपगृह्णा-
नयेयुः ॥ १९ ॥

यदि वह राजकुमार किसी तरहसे भी राजाके अनुकूल न होसके, तो राजाकी ओरसे परित्याग किये हुए उस राजकुमारको गूढपुरप शस्त्र अथवा विप आदि रसोंके द्वारा मार डालें ॥ १८ ॥ यदि राजाने उसको अर्भक परित्याग न किया हो, तो उसके ही समान स्वभाववाली स्त्रियोंके द्वारा, मय आदि पिलाकर, अथवा मृगया (शिकार) में भासक कराके, रात्रिमें पकडकर बांधकर राजाके समीप लेआवें ॥ १९ ॥

उपास्थितं च राज्येन ममोर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।

एकस्थमथ संरुन्ध्यात्पुत्रवान्वा प्रवासयेत् ॥ २० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे ऽवरद्वृत्तमवरद्वे च वृत्ति
अष्टादशो ऽध्याय ॥ १८ ॥

जिस समय वह राजकुमार राजाके पास आवे, तो राजा उससे कहे कि यह राज्य मेरे बाद तुम्हारा ही होगा । अर्थात् धार्मिक राजपुत्रको भविष्यमें राज्य मिल जानेके कारण सान्त्वना देवे, यदि एक ही पुत्र अधार्मिक हो तो उसे कैद करके रखे, और अन्य पुत्रोंके होनेपर उसे प्रवासित करदे, अर्थात् अपने देशसे बाहर करदे या मरवा डाले ॥ २० ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय ।

१६ प्रकरण ।

राजप्रणिधि ।

राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः ॥ १ ॥ प्रमाद्यन्तमनु-
प्रमाद्यन्ति ॥ २ ॥ कर्माणि चास्य भक्षयन्ति ॥ ३ ॥ द्विपद्भि-
श्चातिसंधीयते ॥ ४ ॥ तस्सदुत्थानमात्मनः कुर्वति ॥ ५ ॥

राजाके उन्नतिशील होनेपर उसके अमात्य आदि भृत्यवर्ग भी उन्नति-
शील होते हैं ॥ १ ॥ यदि राजा प्रमादी होजावे, तो भृत्यवर्ग भी राजकार्योंमें
प्रमाद करने लगते हैं ॥ २ ॥ और इसके कार्योंको खाजाते हैं । अर्थात् राज
कार्यको सर्वथा नष्ट करदेते हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकारका राजा शत्रुओंसे सदा

धोखा खाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा अपने आपको उन्नतिशील बनाने का यत्न करता रहे ॥ ५ ॥

नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत् ॥ ६ ॥ छायाप्रमाणेन वा ॥ ७ ॥

कार्य-विभागके सुभीतेके लिये दिन और रातको आठ आठ नाड़ियोंके द्वारा विभक्त करे । अर्थात् आठ नाड़ी (घंटी) दिनकी और आठ रातकी ॥ ६ ॥ अथवा छायाके प्रमाणसे दिनका विभाग करे । अर्थात् पुरुषकी छाया जैसे २ लम्बी या छोटी होती जाय, उसहीके अनुसार दिनका विभाग करे ॥ ७ ॥

त्रिपौरुपी पौरुपी चतुरङ्गुला चछाया मध्याह्न इति पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः ॥ ८ ॥

उसका प्रकार यह है—प्रातःकाल जब सूर्य उदय हो, उस समयसे लगाकर जबतक पुरुष की छाया तीन पुरुषोंके बराबर लम्बी रहे, यह दिनका पहिला आठवां हिस्सा है, इस छायाको त्रिपौरुपी छाया कहते हैं, इसके अनन्तर जब छाया एक पुरुषकी बराबर लम्बी रहजाय, उसे पौरुपी या एकपौरुपी छाया कहते हैं, यह दूसरा भाग है । इसके अनन्तर जब पुरुषकी छाया चार अंगुलकी रहजाय, उसे चतुरङ्गुला छाया कहा जाता है । यह तीसरा भाग है । इसके बादके समयको मध्याह्न कहते हैं । यह चौथा भाग है । इस प्रकार भाषे दिनके ये पहले चार भाग हैं, यह प्रत्येक सशुभ दिनका आठवां आठवां हिस्सा है ॥ ८ ॥

तैः पश्चिमा व्याख्याताः ॥ ९ ॥

इसहीके समान पिछले भाषे दिनके भी हिस्से करलेने चाहिये । उनका प्रकार यह है—मध्याह्नके अनन्तर जब पुरुषकी छाया फिर चार अंगुलकी होजाय, वह चतुरङ्गुला छाया, पहिला भाग समझना चाहिये । इसी प्रकार उस छायाके बढ़ते २ एक पुरुषकी बराबर होजानेपर पौरुपी और फिर तीन पुरुषकी बराबर होजानेपर त्रिपौरुपी, ये दिनके दूसरे तीसरे भाग हैं । इसके बादका चौथा हिस्सा दिनान्त कहाता है । इस प्रकार दिनके कुल आठ हिस्से होजाते हैं ॥ ९ ॥

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायच्ययी च शृणुयात् ॥ १० ॥

इस समय विभागमें से दिनके पहिले आठवें हिस्सेमें, राजा रक्षा विधान (रात्रिमें नियुक्त किये हुए रक्षा पुरुषोंके कार्य, कदाचित् रात्रिमें कोई

विशेष घटना तो नहीं होगई । इसलिये सबसे पहिले इसका जानना आवश्यक है) और गत दिवसके आय व्ययको सुने, अर्थात् उसका निरीक्षण करे ॥१०॥

द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत् ॥ ११ ॥ तृतीये स्नानभोजनं सेवेत ॥ १२ ॥ स्वाध्यायं च कुर्वीत ॥१३॥ चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत ॥ १४ ॥

दिनके दूसरे हिस्सेमें नगर तथा जनपद निवासियोंके कार्योंका निरीक्षण करे ॥ ११ ॥ तीसरे हिस्सेमें स्नान तथा भोजन आदि करे ॥ १२ ॥ और कुछ स्वाध्याय भी इसी समयमें करे ॥ १३ ॥ दिनके चौथे हिस्सेमें गत दिवसके शेष धनको संभाले और भिन्न २ कार्योंपर अण्यक्ष आदिकी नियुक्ति करनी हो तो करे ॥ १४ ॥

पञ्चमे मन्त्रिपरिपदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत् ॥ १५ ॥ चार-गुह्यबोधनीयानि च बुद्धयेत् ॥ १६ ॥ षष्ठे स्वैरविहारं मंत्रं वा सेवेत ॥ १७ ॥

दिनके पांचवें हिस्सेमें मन्त्रिपरिपदके साथ, पत्र आदि भेजकर आवश्यक विषयोंपर विचार करे ॥ १५ ॥ गुप्तचरोंके कार्य तथा अन्य जानने योग्य गुह्य बातोंकी भी इसी समयमें सुने या जाने ॥ १६ ॥ छठे हिस्सेमें इच्छानुसार विहार अथवा मन्त्रणा करे ॥ १७ ॥

सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान्पश्येत् ॥१८॥ अष्टमे सेनापति-सस्रो विक्रमं चिन्तयेत् ॥१९॥ प्रतिष्ठितेऽहनि संध्यामुपासीत ॥२०॥

सातवें हिस्सेमें हाथी घोड़े रथ तथा हथियारोंका निरीक्षण करे ॥ १८॥ आठवें हिस्सेमें सेनापतिकी साथ लेकर युद्ध आदिके सम्बन्धमें विचार करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार दिनके समाप्त होजानेपर सायंकालके समय संध्यापासना करे ॥ २० ॥

प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत् ॥ २१ ॥ द्वितीये स्नान-भोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च ॥ २२ ॥ तृतीये तृयघोषेण संविष्ट-श्चतुर्थपञ्चमौ शयीत ॥ २३ ॥

दिनमें यथोचित विभागके अनुसार कार्योंका कथन करके रात्रिके प्रथम २ भागमें क्या २ कार्य करने चाहिये, अथ इस बातका निरूपण किया जाता है:—रात्रिके प्रथम भागमें गूढपुरुषोंको देखे ॥ २१ ॥ दूसरे भागमें स्नान भोजन तथा स्वाध्याय भी करे ॥ २२ ॥ तीसरे भागमें गाने बजाने

आदिको सुनता हुआ, सो जाये, तथा पूरे चौथे और पांचवें भागमें शयन करे ॥ २३ ॥

षष्ठं तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमिति कर्तव्यतां च चिन्तयेत् ॥ २४ ॥ सप्तमे मंत्रमध्यासीत् गूढपुरुषांश्च प्रेपयेत् ॥ २५ ॥

पुनः रात्रिके छठे भागमें बाजे आदिके शब्दसे उठायी गया हुआ, बास (अर्थशास्त्र) तथा इतिकर्तव्यताका (जो कुछ कार्य दिनमें करने हों, उनका) चिन्तन करे ॥ २४ ॥ रात्रिके सातवें विभागमें, मंत्र अर्थात् गूढ बातों पर विचार करे । और गूढ पुरुषोंको जहाँ भोजना हो, वहाँ भेजे ॥ २५ ॥

अष्टम ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृहीयात् ॥ २६ ॥ चिकित्सकमाहानामिकर्महृत्तिकांश्च पश्येत् ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर आठवें हिरसेमें, ऋत्विक्, आचार्य और पुरोहितोंके साथ २ स्वस्तिरचन, तथा मांगलिक मन्त्र पाठोंके सहित आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ २६ ॥ और चिकित्सक (वैद्य), माहानसिक (पाकशालामें कार्य करने वाले रसोईयोंका निरीक्षक) तथा मीहृत्सिक (शुभाशुभ मुहूर्त आदिका बताने वाला=ज्योतिषी) को देखे । अपनी शारीरिक अवस्थाको जाननेके लिये वैद्यका, सभीष्टभोजन आदि बनानेके लिये माहानसिकका और उस दिनके कार्यके शुभाशुभका पता लेनेके लिये ज्योतिषीका प्राणः काटही राजामें मिलना अत्यन्त आवश्यक होता है ॥ २७ ॥

सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत् ॥ २८ ॥
आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान्प्रविभज्य कार्याणि सेवेत ॥ २९ ॥

बछड़े सहित गाय और बँलकी प्रदक्षिणा करके दरबारमें जावे ॥ २८ ॥ दिनरातका जो कार्य विभाग ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, उसे साधारणही समझना चाहिये, इसलिये राजा अपनी शक्ति और अनुकूलताके अनुगार दिन और रातके कार्योंको विभक्त करके यथारथि उनका अनुष्ठान कर सकता है ॥ २९ ॥

उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत् ॥ ३० ॥ दुर्दर्शो हि राजा कार्यकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते ॥ ३१ ॥ तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत् ॥ ३२ ॥

राजा, जब दरबारमें उपस्थित हो, तो किसी कार्यके लिये आने वाले पुरुषको मुझे तौरपर आनेदे । अर्थात् मेरे अगसरपर दरबारमें आनेके लिये पुरुषोंको किसीतरहकी भी दहावट न होनी चाहिये । जिससे कि प्रत्येक पुरुष सर-

लतासे राजाका दर्शन करसके ॥ ३० ॥ क्योंकि जो राजा दर्शन नहीं देता, या बड़ी कठिनतासे दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले सेवकोंके द्वारा, उसके कार्य डलट पुलट कर दिये जाते हैं। अर्थात् राजाके स्वयं दर्शन न देनेके कारण, उसके कार्य उसके समीप रहने वाले सेवकोंके द्वाराही कराये जासकते हैं, और वे इतने योग्य न होनेके कारण कार्योंमें विपर्यास करदेते हैं ॥ ३१ ॥ इसका परिणाम यह होता है, कि उस राजाके अमात्य आदि प्रकृतिजन उससे प्रकृत हो उठते हैं। राजबार्थ सिधिल होजाते हैं। अथवा राजा अपने शत्रुके बशमें घटा जाता है। अर्थात् राजाके प्रकृतिन्यसनको देखकर इसके शत्रु इसे अपने अधीन कर लेते हैं ॥ ३२ ॥

तस्माद्देवताश्रमपापण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां चालवृद्धव्या-
धितव्यसंन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् ॥ ३३ ॥
कार्यगौरवादात्ययिक्रमशेन वा ॥ ३४ ॥

इसलिये राजाको उचित है, कि देवतास्थान (देवालया आदि), आश्रमस्थान (मुनि आदिके रहनेके स्थान), पण्डस्थान (भूतों या वृद्धोंके निवास स्थान), श्रोत्रियस्थान (वेद पढ़ने वालोंके स्थान), पशुस्थान (गाय, घोड़ा हाथी आदिके स्थान) तथा इसीप्रकारके अन्य पुण्यस्थानोंके कार्योंका, और बालक, बूढ़, रोगी, दुखी अनप, तथा छियेदे भी सब कार्योंका प्रमपूर्वक, स्वयं जाकरही निरीक्षण करे। अपने आप जाकर देखनेसे राजा, उन कार्योंको विचकूल ठीक २ हालमें जान सकता है ॥ ३३ ॥ यदि इन कार्योंमेंसे कोई कार्य अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हो, अथवा जिसका समय बहुत सीतगया हो, ऐसे कार्यके लिये राजा, उपयुक्त कार्य दर्शनके क्रमको तोड सकता है, अर्थात् पहिले इन कार्योंको देखकर अन्य कार्योंको देख सकता है ॥ ३४ ॥

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।

कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वाभिजायते ॥ ३५ ॥

राजाको उचित है कि जिस कार्यके लिये बहुत समय बीत चुकाहो ऐसीही कार्यको पहिले सुन, उसका और अधिक काल अतिक्रमण न करे, क्योंकि इसप्रकार उचित कार्यकालके बीत जानेपर फिर वह कार्य कष्टसाध्य (बड़ा कठिनतामें पूरा होने वाला) अथवा सर्वथा असाध्यही होजाता है ॥ ३५ ॥

अन्नथगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।

पुरोहिताचार्यमसः प्रत्युत्थायामिवाद्य च ॥ ३६ ॥

राजा, पुरोहित तथा आचार्यके साथ २ अक्षिद्वैप्रशाला (यज्ञशाला) में उपस्थित होकर, वेध अर्थात् विद्वान् पुरुषोंके और तपस्वियोंके कार्योंको उन्हें (विद्वान् तथा तपस्वियोंको) अम्युत्थान (आदरार्थ उनके आनेपर उठकर खड़े होजाना) देकर तथा अभिवादन (प्रणाम) करके, देगे ॥ ३६ ॥

तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत् ।

मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥ ३७ ॥

तपस्वियों तथा माया प्रयोगोंको जानने वाले पुरुषोंके कार्योंका निर्णय, राजा, सम्पूर्ण वेदोंके विद्वानोंके साथ बैठकरही करे, न्यत्र अकेलाही इनका निर्णय कभी न करे, क्योंकि यह सम्भव है कि यह निर्णय उन लोगोंके विरुद्ध हो, और ये इसके कारण राजासे कुपित होजायें, तथा राजाको किसी प्रकारकी हानि पहुंचानेका यत्न करें । वेद-विद्वानोंके साथ रहनेपर उस निर्णयका उत्तरदायित्व राजाके ऊपर नहीं रहता, और वह इसीलिये उनके कोपसे रक्षित रहता है ॥ ३७ ॥

१ राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।

दक्षिणा धृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

उद्योग करना, यज्ञ करना, व्यवहारोंका निर्णय करना, दक्षिणा अर्थात् दान देना, शत्रु और मित्रोंमें गुण दोषोंके अनुसार उचित समान वस्तुओं करना, तथा यज्ञादिकी दीक्षा लेकर उसे पूर्ण करके फिर पवित्र स्नान आदि करना, ये सब राजाके व्रत अर्थात् नियम हैं । राजाको चाहिये कि वह इन सब कार्योंका यथोचित अनुष्ठान करे ॥ ३८ ॥

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ ३९ ॥

प्रजाके सुखमेंही राजाका सुख और प्रजाओंके हितमेंही राजाको अपना हित समझना चाहिये । अपने आपको प्रिय लगने वाले कार्योंका करना राजाका हित नहीं, किन्तु प्रजाओंके प्रिय कार्योंका करनाही राजाका अपना सयसे बड़ा हित है ॥ ३९ ॥

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।

अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥ ४० ॥

इसलिये राजाको चाहिये, कि वह सदा उद्योगी हुआ २, व्यवहार पदोंका निर्णय तथा अन्य राज्य सम्बन्धी कार्योंको उचित रीतिपर करे । उद्योग ही सम्पत्तियोंका मूल कारण है, और उद्योगी न होना, हर तरहके धनधनोंको उत्पन्न करदेता है ॥ ४० ॥

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाहृभते चार्थसंपदम् ॥ ४१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे राजप्रणिधिः एकोऽविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

राजाके उद्योगी न होनेपर, पहिले प्राप्त किये हुए अर्थोंका तथा मवि-
प्यमें प्राप्त होने वाले अर्थोंका भी निश्चयही सर्वथा नाश होजाता है। परन्तु
जो राजा उद्योगी होता है, वह अपने उद्योगसे, शीघ्रही अपने कार्योंके मीठे
फलको प्राप्त करलेता है, और इच्छानुसार अर्थसम्पत्तियोंको लाभ करता
है ॥ ४१ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें उद्योसवां अध्याय समाप्त ।

वीसवां अध्याय ।

१७ प्रकरण ।

निशान्तप्रणिधि ।

{ राजभवनका नाम निशान्त है । उसके सम्बन्धमें क्या कुछ करना
चाहिये, इसीका निरूपण इस प्रकरणमें किया गया है ।

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगत-
मन्तःपुरं कारयेत् ॥ १ ॥

वास्तु विद्याको जाननेवाले (गृहनिर्माण आदिको जाननेवाले=इंजिनियर)
पुरप जिस स्थानकी प्रशंसा करें, उसही स्थानमें प्राकार (परकोटा=चारों ओर
की बड़ी दीवार), परिखा (चारों ओरकी खाई), द्वार और अनेक कक्षाओं (इर्वांगियों
या परिक्रमाओं) से युक्त अन्तःपुरका निर्माण कराया जावे ॥ १ ॥

कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढभित्तिसंचारं मोहन-
गृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं वासन्नकाष्ठैचत्यदेवतापिधान-
द्वारमनेकगुरुङ्गासंचारं प्रासादं वा गूढभित्तिसौपानं सुपिरस्तम्भ-
प्रवेशापसारं वा वासगृहं यन्त्रयद्वतलावपातं कारयेत् ॥ २ ॥

अथवा कोशागारके निर्माणके अनुसार (देखो—'सञ्चिधानृनिषयकर्म'
नामक प्रकरण, अधि. २ अध्या ५) अन्तःपुरके बीचमें, राजा अपने रहनेके
एक घनवाले अथवा पहिले चारों ओर ऐसा मकान बनवावे, जिसकी भी

और रास्तेके सिलसिलेका टीक २ पता न लगे, इसीको मोहनगृह (भूलभुलैया) कहा जाता है। इसके बीचमें अपने निवासका मकान बनवावे। अथवा भूमि खुदाकर उसके भीतर मोहनगृहके बीचमें अपना वासगृह बनवावे। उस भूमिगृहके दरवाजेपर, समीपही किसी दिनाके देवालयेकी प्रसिद्ध देवता दुर्गा आदिकी मूर्ति अवश्य होनी चाहिये, तथा उसमें जाने आनेके लिये अनेक सुरङ्ग भी बनी हुई होनी चाहिये। अथवा ऐसा मडल बनवावे, जिसकी दीवारोंके भीतर छिपे तीरपर आने जानेका रास्ता हो, अथवा पोले शम्भोंके भीतरसे चढ़ने उतरने या याहर आने जानेका मार्ग हो। अथवा ऐसा वासगृह बनवावे, जिसका नीचे का भाग यन्त्रोंके आधारपरही आश्रित हो, अर्थात् यन्त्रोंके अपने हाथमें रहनेके कारण उसे इच्छानुसार रक्खा या नीचे गिराया जासकता हो ॥ २ ॥

आपत्प्रतीकारार्थमापदि वा कारयेत् ॥ ३ ॥ अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत् ॥ ४ ॥ सहाय्यायिभयात् ॥ ५ ॥

इस प्रकारके वासगृह आपत्तिके निवारणके लियेही बनाये जाते हैं। इसलिये आपत्ति आनेसे पहिलेही ऐसे स्थानोंका निर्माण राजाको करा रहना चाहिए। अथवा यदि पहिलेही निर्माण कराया हुआ न हो तो आपत्तिके उपस्थित होनेपर भी यह कार्य करालिया जावे ॥ ३ ॥ यदि राजाको इस बातका भय हो कि दूसरा मेरे समानही शास्त्रोंके तत्वका जानने वाला शत्रुराजा भी इन बातोंको जानकर इसीके अनुसार कार्य करसकता है, तो यह अपनी प्रतिभाके अनुसार इससे न्यूनया भिन्न प्रकारके वासगृहकी कल्पना करके, उसके अनुसारही कार्य करावे। तात्पर्य यह है कि यह कोई आवश्यक नहीं कि जो कुछ ऊपर वासगृहके सम्बन्धमें लिखा गया है, उसीके अनुसार कार्य करे, प्रत्युत वह अपनी बुद्धिके अनुसार इसमें परिवर्तन कर सकता है ॥ ४-५ ॥

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न दहति ॥ ६ ॥ न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ७ ॥ वैशुतेन भस्मना मृतसंयुक्तेन कनकवारिणावलिसं च ॥ ८ ॥

मनुष्यकी इष्टीमें वासके रगड़नेसे उत्पन्न होनेवाली आगके द्वारा, अन्तःपुरका स्पर्श कराते हुए, तथा इस सम्बन्धके अधर्षके मन्त्रोंका माघ २ ही उच्चारण करते हुए, याई ओरसे तीन परिक्रमा यदि अन्तःपुरकी करदी जावे तो फिर उसमें और कोई दूसरी आग असर नहीं करती। अर्थात् फिर अन्तःपुरकी और कोई दूसरी आग जला नहीं सकती ॥ ६ ॥ तथा ऐसे अन्तःपुरमें

और कोई आग जल भी नहीं सकती । इसका यही तात्पर्य है कि यदि ऐसे मकानके पास आग लाई जावे, तो वह वहा आते ही बुझ जाती है, टण्डी पड़जाती है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार बिजलीसे जले हुए पेड़ आदिकी राख लेकर, उसमें उतनीही और मिट्टी (उस मट्टीसे तात्पर्य है जो दीवारोंपर लगाई जाती है) मिलाकर धनुंके पानीके साथ गूंधकर, उसको दीवारपर लेपन किया जावे, तो भी उस मकानमें दूसरी आगका कोई प्रभाव नहीं होता । (किसी किसी पुस्तकमें 'कनकवारिणा' के स्थानपर 'करकवारिणा' पाठ है । करकका अर्थ खोला या वर्षा है । इसलिये इस पाठमें 'उम मट्टीको ओले या वर्षाके पानीके साथ गूंधा जावे' यही अर्थ करना चाहिये ॥ ८ ॥

जीनन्तीश्चेतामुष्करुपुष्पप्रन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्र-
तानेन वा गुप्तं सर्पा विपाणि वा न प्रसहन्ते ॥ ९ ॥

गिलोय, शंखपुष्पी, काली पादरी (मुष्करु) और करोंदेके पेड़पर लगे हुए बन्देकी माला आदिके लगानेसे रक्षित हुए २, अथवा सँजनेके पेड़के ऊपर पैदा हुए २ पीपलके पत्ते आदिकी माला लगानेसे रक्षित हुए २ अन्त-
पुरमें सर्प तथा अन्य विषोंका कोई प्रभाव नहीं होता ॥ ९ ॥

मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्तर्गः सर्पान्भक्षयति ॥ १० ॥ शुक्र-
शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविपशङ्कायां क्रोशति ॥ ११ ॥ क्रौञ्चो
विषाम्याशे माद्यति ॥ १२ ॥

बिलाव, मोर, नकुल (नेबला), और मृगको घरमें छोड़नेपर, ये बिलाव आदि सर्पोंको खा जाते हैं ॥ १० ॥ तोता, मना और बडा भौरा ये, भस्त्र आदिमें सर्प विषकी आशङ्का होनेपर चिहाने लगते हैं ॥ ११ ॥ क्रौञ्चपक्षी विषके समीप होनेपर विह्वल होजाता है ॥ १२ ॥

ग्लायति जीवंजीवकः ॥ १३ ॥ म्रियते मत्तकोकिलः ॥ १४ ॥
चकोरस्याक्षिणी विरज्येते ॥ १५ ॥ इत्येवं अग्निपिपसर्षेभ्यः प्रति-
कुर्वीत ॥ १६ ॥

जीवजीव (मोरके समान पलंगला पक्षी, या चकोरकी जातिका एक पक्षी विशेष) नामक पक्षी, विषको देखकर ग्लानियुक्त, अर्थात् खिन्न हर्षरहित हो-
जाता है ॥ १३ ॥ कायल पक्षी विषको देखकर मरजाता है ॥ १४ ॥ चकोर पक्षीकी आंख विषको देखकर लाल होजाती है ॥ १५ ॥ इन सब उपायोंसे विष आदिबी परीक्षा करके, राजा अपने आपको अग्नि, विष तथा सर्पोंसे बचा कर रहते ॥ १६ ॥

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्या धिवैद्यप्रत्याख्यात-
संस्था वृक्षोदकस्थानं च ॥ १७ ॥ बर्हिः कन्याकुमारपुरम् ॥ १८ ॥

राजाके पासगृहके पीछेकी ओरके कक्ष्या विभागमें अन्त पुर अर्थात् राजास्त्रियोंके रहनेका स्थान बनवाया जावे। उसके समीपही, मसूता स्त्री, बीमार, तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियोंके लिये पृथक् पृथक् तीन स्थान बनवावे। और उसके साथही छोटे २ उद्यान तथा जलाशय बनवावे ॥ १७ ॥ उससे बाहरकी ओर राजकन्याओं, तथा वीचन अवस्थाको प्राप्त न हुए २ राजकुमारोंके लिये स्थान बनवावे ॥ १८ ॥

पुरस्तादलंकारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च
॥ १९ ॥ कक्ष्यान्तरेऽन्तर्वाशिकसैन्यं तिष्ठेत् ॥ २० ॥

राजाके निवास स्थानके आगेकी ओर पहिले सुन्दर घास तथा फूलोंसे युक्त उपवन अथवा सुन्दर शोभा युक्त गडहल होता च हिये। इसके आगे मन्त्र समाना स्थान, किः उपस्थान अर्थात् दरबारका स्थान, आर इसके आगे युवा राजकुमार तथा समाहर्ता सन्निधाता आदि अध्यक्षोंके प्रधान कार्यालय होने चाहिये ॥ १९ ॥ कक्ष्याओंके बीच २ में कबुकी आदि पुरपा तथा अन्य अन्त पुररक्षक पुरपोंका समूह रहे ॥ २० ॥)

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत् ॥ २१ ॥ न
कांचिदभिगच्छेत् ॥ २२ ॥

अन्त पुरमें जाकर राजा अपने निवासके ही मकानमें, विश्वस्त किसी बूढ़ी परिचारिकाके साथ महारानीसे देखे ॥ २१ ॥ किसी रानीको लक्ष्य करके स्वयं हा उसके निवास स्थान में न जावे ॥ २२ ॥

देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान ॥ २३ ॥ मातुः
शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारुशम् ॥ २४ ॥ लाजान्मधुनेति विषेण
पर्यस्य देवी काशिराजम् ॥ २५ ॥

क्योंकि इसमें कभी २ बच्चा भोखा हो जाता है, सुना जाता है पहिले कभी भद्रसेन नामक किसी राजाके वीरसेन नामक भाईने उसकी रानीसे मिल कर, उसीके घरमें छिपकर, वहा भद्रसेन राजाको मार डाला था ॥ २३ ॥ इसी प्रकार माताकी शय्याके नीचे छिपे हुए राजपुत्रने अपने पिता कीरुश नामक राजाको मार डाला था ॥ २४ ॥ इसी तरह काशिराजकी रानीने ही स्वयं काशिराजको, रसोंमें मधुके बहावे विष मिला कर, और उसे खिलाकर मार डाला था ॥ २५ ॥

विपदिग्धेन नृपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जात्य-
मादर्शेन वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विहरयं जवान ॥ २६ ॥
तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ॥ २७ ॥

तथा विषमें बुझे हुए नृपुर (पापजेचे-पैरका आभूषण) के द्वारा वैरन्त्य राजाको उसकी अपनी रानीने, मेखला (पगड़ी-कौंधनी) की मणिके द्वारा सौवीरको, आदर्श (शीशे) के द्वारा जात्यको, और अपनी वेणी (वालोंके जूड) में शस्त्र छिपाकर विहरय नामक राजाको, उनकी अपनी २ रानियोंने ही मार डाला था ॥ २६ ॥ इसलिये राजाको चाहिये कि रानियोंके निज निवास स्थानमें रात्रिके समय कदापि न जाये । प्रत्युन उनको ही अपने निवास स्थान पर किसी विश्वस्त परिचारिका के साथ बुलवावे ॥ २७ ॥

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिपेधयेत्
॥२८॥ न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाम्याम् ॥२९॥

मुण्डी, जटी, तथा अन्य वस्त्रक पुत्पोंके साथ, और बाहरकी दासियों के साथ रानियोंका किसी प्रकारका भी संसर्ग न होने दे ॥ २८ ॥ और इनके (रानियोंके) वन्धु बान्धव भी इनको प्रसव तथा बीमारी आदिके समयके अति-रिक्त न देख सकें ॥ २९ ॥

रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालंकाराः प-
श्येयुः ॥ ३० ॥

स्नान तथा उबटन आदिसे शरीरको शुद्ध करके, तथा वस्त्र और अलं-कारों (आभूषणों) से सुसजित, होकर ही घेरवा तथा अन्य रानियां राजाको देखें ॥ ३० ॥

आशीतिकाः पुरुषाः पश्चाशत्कास्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः
स्यविरवर्षराम्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः स्थापयेयुश्च
स्वामिहिते ॥ ३१ ॥

अस्थी वर्षकी अवस्थाके पुत्प तथा पचास वर्षकी नूरी स्त्रियों मगता पिताके वेपमें, अर्थात् माता पिताकी तरह रानियोंका हित तथा पालन करनेवाले और यूरे तथा नपुंसक घरके अन्य कार्योंको करनेवाले, अवरोध अर्थात् अन्तःसुरकी रानियोंकी पवित्रता और अपवित्रताका मद्दा ध्यान रखते । तथा उनकी (रानियोंको) सदा अपने स्वामीके वक्ष्याणकी ओर ही लगाये रहते ॥ ३१ ॥

(स्वभूमौ च वसेत्सर्वः परभूमौ न संचरेत् ।

न च बालेन संसर्गं कथिदाम्यन्तरो व्रजेत् ॥ ३२ ॥

अपने २ स्थानपर ही सब (सभी, तथा अन्य अन्तःपुरके परिवारक जन) लोग रहे, दूसरेके स्थान पर आना जाना न रखें । और कोई भी भीतर का आदमी बाहरके किसी आदमीसे न मिले ॥ ३२ ॥

सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निवृद्धागमनिर्गमम् ।

निर्गच्छेदभिगच्छेद्वा गुद्रासंकान्तभूमिकम् ॥ ३३ ॥

इति दिनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्योऽध्यायः ॥ २० ॥

जो वस्तु महलके भीतरसे बाहर जाये, तथा बाहरसे भीतर आवे, यह सब अच्छी तरह देख लेनी चाहिये, और उसके आने जानेका स्थान तथा उसके सम्बन्धकी अन्य आवश्यक बातें भी पुस्तकमें लिख देनी चाहियें । तथा आने जानेवाली प्रत्येक वस्तुके ऊपर मुहर भी लगा देनी चाहिये । बिना मुहरके कोई भी वस्तु बाहर भीतर न जाने आने पाये ॥ ३३ ॥

दिनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें वीसवां अध्याय समाप्त ।

इक्कीसवां अध्याय ।

१८ प्रकरण ।

आत्मरक्षा ।

{ पुत्र और शिष्योंमें राजाकी रक्षाको निरूपण कर दिया गया है ।
अब अन्य व्यक्तियोंसे भी राजाकी रक्षा किसप्रकार होनी चाहिये,
इसका विधान किया जाता है ।

शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत ॥ १ ॥ द्विती-
यस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीपिभिर्वपश्राभ्यागातारिकैः ॥ २ ॥

प्रातः बाल विन्मरमे उठतेही राजाको, उसकी रक्षाके लिये हाथमें धनु-
ष लिये हुए शिष्योंका समूह चारों ओरमें घेर लिये । अर्थात् उसके चारों ओर
उपस्थित रहे ॥ १ ॥ जब राजा अपने बांसगृहमें निकलकर दूसरी कक्ष्या (मह-
लके दूसरे विभाग) में जावे, तो वहाँपर कुत्तों और पशुओं पदमें हुए नपुंसक
तथा अन्य गृहप्रबन्ध करने वाले पुरुष, राजाको सब ओरसे सुरक्षित रखें ॥ २ ॥

तृतीयस्यां कुञ्जवामनकिरातैः ॥ ३ ॥ चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः
संबन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्राप्तपाणिभिः ॥ ४ ॥ पितृपतामहं महा-
संबन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत ॥५॥

जब राजा तीसरी कक्ष्यामें जावे, तो वहां कुबड़े, वामन, तथा किसी श्लेच्छ जातिके पुरुष राजाकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ और चौथी कक्ष्यामें पहुंचनेपर राजाकी रक्षा, मन्त्रियों, संबन्धियों, तथा हाथमें भाले भादि लिये हुए द्वारपालोंके द्वारा हीनो चाहिये ॥४॥ वंश परम्परासे प्राप्त हुए, बड़े उच्च कुलोंमें उत्पन्न हुए २, शिक्षित, अपनेमें अनुराग रखने वाले, तथा प्रत्येक कार्यको समझने वाले पुरुषोंको, राजा अपने समीप रखे । अर्थात् ऐसे पुरुषोंको अपना देहरक्षक नियुक्त करे ॥ ५ ॥

नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम्
॥ ६ ॥ अन्तर्वेशिकसैन्यं राजानमन्तः पुरं च रक्षेत् ॥ ७ ॥

धन सम्पत्ति तथा सत्कारको न प्राप्त हुए २ विदेशी पुरुषको, तथा पहिले एकवार अपनेसे भिन्न होकर फिर आकर मिले हुए अपने देशके पुरुषको भी, राजा कदापि अपना देहरक्षक न बनावे ॥ ६ ॥ भीतर महलोंमें नियुक्त हुई २ सेना, राजा और अन्तः पुर (रानी भादि) दोनोंकी रक्षा करे ॥ ७ ॥

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादवाहुल्येन कर्म कारयेत्
॥ ८ ॥ तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्रये वयोभ्यश्च बलिं
कृत्वा ॥९॥

माहानसिक (पाकशालामें कार्य करने वाले पाचकोंका अध्यक्ष या निरीक्षक=राजाका भोजनाधिकृत पुरुष), किसी सुरक्षित स्थानमें, खानेकी हरएक चीजका स्वाद ले २ कर उन्हें अच्छीतरह तैयार करावे । अथवा हरएक चीजको स्वादु बनवावे ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजा, इसप्रकार तैयार हुए २ भोजनको, पहिले बलिवैश्वदेव करके, अर्थात् अग्नि और पक्षियों आदिको बलिदेकर फिर स्वयं खावे ॥ ९ ॥

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शुब्दस्फोटनं च विपयुक्तस्य वयसां
विपत्तिश्च ॥ १० ॥ अन्नसोष्मा मयूरग्रीवाभः सैत्यमाशुक्लिष्टस्यैव
वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च ॥ ११ ॥

विषमिश्रित अन्नको अग्निमें डालनेसे अग्निकी लपट और धुआं दोनों माले रंगके निकलते हैं, और उसमें 'घट घट' इसप्रकार शब्द भी होता है । तथा विषमिश्रित अन्न खालेनेपर पक्षियोंकी विपत्ति अर्थात् मृत्यु उपस्थित

होजाती है ॥ १० ॥ विषयुक्त अन्नकी भाव मोरकी गर्दनके समान रंगवाली होती है, तथा वह अन्न बहुत जल्दी ठण्डा होजाता है, हाथमें छूनेसे या जुरा तोड़ने मोड़नेसे ही उसका रंग बदल जाता है, उसमें गांठसी पड़ जाती है, और वह अन्न अच्छीतरह पकता भी नहीं ॥ ११ ॥

व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च काथश्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो
गन्धस्पर्शरसवधश्च ॥ १२ ॥

दाल आदि व्यञ्जन विषयुक्त होनेपर बहुत जल्दी सूखसे जाते हैं, यदि इनको फिर आगपर रखकर गरम किया जाये तो मठेकी तरह फट २ कर उखलने हैं, हाथोंका रंग कुछ कालासा, और वे फटे २ से अलहदा २ होजाते हैं । तथा दाल आदिके असली गन्ध स्पर्श और रस (स्वाद) का भी नाश होजाता है ॥ १२ ॥

द्रव्येषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनम् ॥ १३ ॥ फेनपटलसी-
मान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च ॥ १४ ॥

यदि रसेदार शाक भाजी आदिमें विष मिला हुआ हो, तो उसमें अपनी आकृति विकृत हुई २ दीखती है । अर्थात् कभी छोटी या कभी बड़ी दीखती है, टोक नहीं दीखती ॥ १३ ॥ और श्यामका समूह अलहदा तथा पानी अलहदा दीखता है, और उसके ऊपर रेतासी दीखने लगती है ॥ १४ ॥

रसस्य मध्ये नीला राजी पयसस्तात्रा मद्यतोययोः काली दग्धः
श्यामा च मधुनः श्वेता ॥ १५ ॥

घी, तैल तथा रस (ईशका रस) आदिमें विष मिला हुआ होनेपर, उसमें नीले रंगकी रेखायें दीखती हैं, दूधमें साभ्रवर्णकी (ताँपेके रंगकी तरहकी) शराब और पानीमें काले रंगकी, दहीमें श्याम और शहदमें सफेद रंगकी रेखायें दीखने लगती हैं ॥ १५ ॥

द्रव्याणामार्द्राणामाशुप्रम्लानत्वमुत्पन्नभावः काथनीलिश्या-
मता च ॥ १६ ॥

गले भक्ष्य द्रव्य अर्थात् आम अन्तर आदि फलोंके विषयुक्त होनेपर, वे (फल आदि) बहुत जल्दी सुरक्ष्य जाते हैं, अर्थात् शुद्ध हुएसे होजाते हैं; और उनमेंसे सड़े हुएकी तरह दुर्गन्ध आने लगती है, तथा पकानेपर वे फल फुट कांटे, और पन्डरके रंगकी तरह कुछ शुरशुरसे होजाते हैं ॥ १६ ॥

शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च ॥ १७ ॥ कठिनानां मृदुत्वं
मृदूनां कठिनत्वं च ॥ १८ ॥ तदम्भाशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च ॥ १९ ॥

सूत्रे हुए द्रव्योंमें विप मिलाया हो, तो उन द्रव्योंका बहुत जल्दी चूरा
सा बन जाता है। तथा रंग भी बदल जाता है ॥ १७ ॥ विप मिलानेसे कठिन
द्रव्य मृदु (मुलायम), और मृदु द्रव्य कठिन होजाते हैं ॥ १८ ॥ विपयुक्त
वस्तुके समीप रींगने वाले छोटे छोटे कीड़े (चींटी आदि) की मृत्यु होजाती
है ॥ १९ ॥

आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च
॥ २० ॥ लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता ॥ २१ ॥ लेहराग-
गौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्चेति विपयुक्तलिङ्गानि ॥ २२ ॥

विठने और ओढ़नेके कपड़ोंपर विपका योग करनेपर, कपड़ोंमें उस २
जगह कुछ काले या और भिन्न वर्णके धब्बे पड़जाते हैं। तथा उस स्थानपरसे
सूनी कपड़ोंके तन्तुओंका, और ऊनी कपड़ोंके बालोंका रुभा उड़ जाता है ॥ २० ॥
सोना चाँदी आदि धातुओंकी तथा स्फटिक आदि मणियोंकी बनी हुई वस्तुओं-
को यदि विपयुक्त का दिया जावे, तो वे ऐसी मालूम होती हैं, जैसे इनके ऊपर
कोई मैला कीचड़नी लपेट दी हो ॥ २१ ॥ तथा उनके, खिगता, कान्ति, भारी-
पन, प्रभाव (अपना कार्य करनेकी शक्ति), और स्पर्श आदि गुणोंका सर्वथा
नाश होजाता है! यहाँतक विपयुक्त पदार्थोंकी पहचानके लिये उन २ विशेष
लक्षणों या चिन्होंका निरूपण किया गया ॥ २२ ॥

विपप्रदस्य तु शुष्कश्याववक्तता वाक्सङ्गः स्येदो विजृम्भणं
चातिमात्रं वैपयुः प्रस्खलनं वाह्यविप्रेक्षणभावेणः स्वकर्मणि स्वभूमौ
चानवस्थानमिति ॥ २३ ॥

अब विप देनेवाले पुरुषको पहचानकर पकड़नेके लिये, उसके भी कुछ
चिन्ह बताते हैं:—विप देनेवाले पुरुषका मुँह कुछ सूखासा, तथा विवर्ण हो-
जाता है, बात चीत करते समय घाणी लड़खड़ाने लगती है, पसीना आजाता
है, घबड़ाहटके कारण शरीरमें जंभाई तथा कंपकपी होने लगती है, साफ़ रास्ता
होनेपर भी बेघेनाके कारण वह पुरुष बार बार गिरपड़ता है, यदि कोई आदमी
बैसेही आपसमें बात कर रहे हों, तो ध्यानसे सुनने लगता है—कहीं ये मेरी
ही तो बात नहीं कर रहे; कोई बात होनेपर झट उठे कोप आजाता है (किसी
किसी पुस्तकमें 'भावेण' की जगह 'भावेण' पाठ है, अर्थ दोनोंका एक ही है),

अपने कार्योंमें तथा अपने स्थानपर उसका चित्त स्थिर नहीं रहता, इधर उधर हड़बड़ाया हुआ घूमता रहता है ॥ २३ ॥

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ॥ २४ ॥
भिषग्भैषज्यागारादास्त्रादपिशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्या-
मात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ पानं पानीयं
चौषधेन व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

इसलिये विषविद्याको जानने वाले, तथा अन्य चिकित्सक पुरुषभी राजाके समीप अवश्य रहे । अथवा राजा अपने देह रक्षकोंमें इन पुरुषोंको भी अवश्य रखे ॥ २४ ॥ चिकित्सकको उचित है, कि वह औषधशालासे स्वयं खाकर परीक्षा काहुँदें औषधिकों लेकर, तथा राजाके सामने ही उस औषधिमें से कुछ थोड़ीसी, उसके पकाने वाले तथा पीसने वाले पुरुषको खिलाकर, एवं यथावसर स्वयं भी खाकर फिर राजाको देवे ॥ २५ ॥ इसी तरह औषधिके समान, मद्य तथा जलके विषयमें भी समझना चाहिये । अर्थात् मद्य और जल को भी पहिले परिचारक पुरुष स्वयं पीकर फिर राजाको देवे ॥ २६ ॥

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताःसमुद्रमुपकरणमन्तर्वाशि-
कहस्तादादाय परिचरैः ॥ २७ ॥ स्नापकसंवाहकास्तरकरजक-
मालाकारकर्म दास्यः कुर्युः ॥ २८ ॥

बादी मूँट पताने वाले नार्द, संयो वस्त्र अलङ्कार आदि धारण कराने वाले पुरुष; स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर तथा हाथ आदि अच्छी तरह साफ करके, मोहर लगे हुए, उतरते आदि तथा वस्त्र अलङ्कार आदिके बवसों को, महलोंके अन्दर काम करने वाले कञ्चुकी आदिके हाथसे लेकर राजाकी परिचरी (सेवा) करें ॥ २७ ॥ राजाको स्नान कराना, उसके अङ्गोंका दवाना, विस्तर आदि धिजाना, कपड़े धोना तथा माहा आदि बनाना, इन सब कार्योंको दासियों ही करें ॥ २८ ॥

ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः ॥ २९ ॥ आत्मचक्षुषि निवेश्य
वस्त्रमाल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि
स्ववक्षोयाद्गुच ॥ ३१ ॥ एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम्
॥ ३२ ॥

अथवा दासियोंकी देखरेखमें अन्य शिल्पिनी अर्थात् उत्तर कार्योंके करनेमें चतुर
कारोगर लोगही इन कार्योंको करें ॥ २९ ॥ अरुनी आँखोंसे देख कर ही दासियों उन

वस्त्र तथा माछा आदिको राजाको देवें । जिससे कि उनमें विष आदिके योग का सम्बन्ध न रहे ॥ ३० ॥ स्नानके समय उपयोग की वस्तुयें उषटन आदि, चन्दन आदि अनुलेप, तथा वस्त्र आदिको सुगन्धित करने वाले अन्य चूर्ण (पावडर) पदवास आदि, और स्नानके समय सिर आदिमें लगाने की सुगन्धित वस्तुओंको पहिले शसियां भंपनी छाती तथा बांह आदि पर लगा कर देख लेंवें, फिर राजाको उसका उपयोग करावें ॥ ३१ ॥ इससे दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुके उपयोगके विषयमें भी समझ लेना चाहिये ॥ ३२ ॥

कुशीलवाःशस्त्राभिरसवर्जं नर्मयेयुः ॥ ३३ ॥ आतोद्यानि
चैपामन्तस्तिष्ठेयुरश्वरथद्विपालंकाराश्च ॥ ३४ ॥

नट आदि अपने खेलोंमें हथियार, भाग तथा विष आदि प्रयोगके खेलोंको छोड़ कर दूसरे खेल ही राजाके सामने दिखावें ॥ ३३ ॥ नटोंके उपयोगमें आने वाले बाने आदि राज रवनम ही रखने चाहियें, अर्थात् नट अपने बाजोंको (विष आदि प्रयोगकी शङ्का होने के कारण) राजाके सामने लाकर नहीं बजा सकते, इसी तरह इनके अन्य उपयोगी सामान घोड़े रथ हाथी तथा भिन्न २ प्रकारके अलङ्कार आदि राजमवन से ही मिलने चाहियें । ॥ ३४ ॥

मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत् ॥ ३५ ॥ नावं चाप्त-
नामिकाधिष्ठिताम् ॥ ३६ ॥ अन्यनौप्रतिगद्धां वातपेगवशां च
नोपेयात् ॥ ३७ ॥ उदकान्ते सैन्यमासीत् ॥ ३८ ॥

विश्वहन प्रधान पुरुषके साथ २ ही राजा, पालकी आदि यानों तथा घोड़े आदि सज्जियों पर चढ़े ॥ ३५ ॥ तथा विश्वरज नाविकले युक्त नाका पर चढ़े, अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥ दूसरी कियो नावके साथ बन्धी हुई नावपर, और धायुके वेगसे बहने वाली नाव पर कदापि न चढ़े ॥ ३७ ॥ नावके चलने पर, नदीके दोनों तटों पर रक्षाके लिये सेना उपस्थित रहनी चाहिये ॥ ३८ ॥

मत्स्यग्राहविशुद्धमनगाहेत् ॥ ३९ ॥ व्यालग्राहपरिशुद्धमु-
द्यानं गच्छेत् ॥ ४० ॥ लुब्धकैः श्वगणिभिरपाम्स्तस्तेनव्यालपरा-
वाघमयं चललक्षपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

मछियारोंके द्वारा परिशोधित (जिसमें मछियारोंने घुस कर जल जन्तु-
ओंसे किसी प्रकार का भय न होने का निर्णय कर दिया हो, ऐसे) नदी जल में ही, स्नान करनेके लिये प्रवेश करे ॥ ३९ ॥ सप्रेतसे परितोधित उद्यानमें

ही भ्रमण आदि के लिये जाये ॥ ४० ॥ कुत्ते रखने वाले शिकारियोंके द्वारा, चौर तथा ब्याघ्र आदिके भयसे रहित हरिणोंके जंगलोंमें, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास करनेके लिये जाये ॥ ४१ ॥

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत् ॥ ४२ ॥ मन्त्रि-
परिपदा सामन्तदूतं संनद्धो ऽश्वं हास्तिनं रथं चारूढः संनद्धमनीकं
गच्छेत् ॥ ४३ ॥

राजाको देखनेके लिये नये आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वीको, शस्त्र सहित विश्वस्त पुरुषके साथ जाकर ही देखे, अर्थात् उससे मिले ॥ ४२ ॥ मन्त्रिपरिपदके साथ २ श्वी सामन्तके वृत्तले मिले । तथा युद्धोचित कवच आदि वेपको पहिन कर ही, घोड़े हाथी या रथपर सवार होकर युद्धके लिये तैय्यार हुई २ सेनाको देखे ॥ ४३ ॥

निर्याणे ऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिर-
पास्तशस्त्रहस्तप्रयोजितव्यङ्गं गच्छेत् ॥ ४४ ॥ न पुरुपसंवाधमव-
गाहेत् ॥ ४५ ॥

दूसरे देशको जाने या वहाँमें आनेके समय, हाथमें दण्ड लिये हुए रक्षक पुरुषोंके द्वारा दोनों ओरसे सुरक्षित राजमार्ग पर ही, राजा चले । तथा इस प्रकार का प्रबन्ध करे, कि जिससे मार्गमें कोई शस्त्र रहित पुरुष, सन्यासी या हल्ला लंगडा अन्नहीन पुरुष न दीखे ॥ ४४ ॥ पुरुषोंकी भीड़में भीतर कभी न घुसे ॥ ४५ ॥

यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत्
॥ ४६ ॥

किसी देवस्थान, समाज, (सभा) उत्सव, या पार्टी (प्रवहण) आदि में जाये, तो कमसे कम सेनाके दस जवान तथा उनका नायक उस स्थानमें अवश्य उपस्थित होने चाहिये । ऐसे स्थानोंमें भबेला, तथा अपने परिमित परिचारको लेकर कदापि न जाये ॥ ४६ ॥

यथा च योगपुरुषैरन्धान् राजाधितिष्ठति ।

तथायमन्यवाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान् ॥ ४७ ॥

इति विश्वयाधिकारिके प्रथमे ऽधिष्ठने आत्मरक्षितकम् पृथ्वीसो ऽध्यायः ॥ २१ ॥

पृगावता कीटकीवस्यायंश'स्यैव दिनयाधिकारिकं

प्रथममधिकरणं समाप्तम् ॥

जिस प्रकार यह प्रयत्नशील विजिगीषु राजा, अपने गृह पुत्रोंके द्वारा दूसरोंको कष्ट पहुँचाता है। इसी प्रकार दूसरोंके द्वारा प्रयुक्त किये हुए कष्टोंसे स्वयं अपनी रक्षा भी करे ॥ ४७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें इसकीसवा अध्याय समाप्त।

विनयाधिकरण प्रथम अधिकरण समाप्त।



अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण

पहिला अध्याय ।

१९ प्रकरण ।

जनपदनिवेश ।

(भूतपूर्वमभूतपूर्व वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभि-
प्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् ॥ १ ॥ शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं
पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्
॥ २ ॥

पुराने या नये जनपदको राजा, दूसरे देशसे मनुष्योंको बुलाकर अथवा अपने देशकी जन संख्याको अच्छी तरह बढ़ाकर बसावे ॥ १ ॥ जिसमें शूद्र और किमान ही प्रायः अधिक हों, ऐसे कमसे कम सौ घरों वाले और अधिक से अधिक पांचसौ घरों वाले गांवको बसावे । एक गांवका दूसरेसे एक कोस या दो कोस का फासला होना चाहिये । ये इस तरह बसाये जावें, जिससे कि अंतर आने पर एक दूसरे की सहायता कर सकें ॥ २ ॥

नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुवन्धशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सी-
मां स्थापयेत् ॥३॥ अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं चतुःशतग्राम्या
द्रोणमुखं द्विशतग्राम्या खार्वेटिकं दशग्रामीसंग्रहेण संग्रहणं स्थाप-
येत् ॥४॥ अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥ ५ ॥

नदी, पहाड़ी, जंगल, घेरके वृक्ष, खाई, सेतुवन्ध (तालाब आदि), सिंमलके वृक्ष, शमी (छोंकरा) के वृक्ष, तथा बड़ आदि वृक्षोंके द्वारा, उन गाँवोंकी सीमाकी स्थापना करे ॥ ३ ॥ आठ सौ गाँवोंके बीचमें एक 'स्था-
नीय' की स्थापना करे; चारसौ गाँवोंके समूहमें 'द्रोणमुख' दो सौ गाँवोंमें 'खार्वेटिक' (किसी पुस्तकमें 'कार्वेटिक' भी पाठ है), और दस गाँवोंका संग्रह करनेसे 'संग्रहण' नामके स्थान विशेषकी स्थापना करे ॥ ४ ॥ राजकी सीमा पर अन्तपाल नामक अध्यक्षसे अधिष्ठित दुर्गोंकी स्थापना करे ॥ ५ ॥

जनपदद्वाराप्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् ॥ ६ ॥ तेषाम-

न्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः ॥ ७ ॥

तथा सीमापरही अपने जनपदके द्वारभूत स्थानोंकी स्थापना करे, इनके अधिष्ठाता अन्तपाल ही होन चाहियें ॥ ६ ॥ उनके मध्यभागोंकी रक्षा ग्वाध, शबर, पुलिन्द (ये दोनों भील जातिया है), चण्डाल तथा अन्य जगलोंमें घूमने फिरने या रहने वाले लोग करें। अर्थात् उन स्थानों की रक्षाके लिये इन उपयुक्त जातियोंमें से ही मनुष्य नियुक्त होने चाहियें ॥ ७ ॥

ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

राजाको चाहिये कि वह ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय (वेदा-ध्यायी ब्राह्मण) को, उनके भागके लिये खत आदि भूमि देवे। परन्तु उनसे किसी प्रकारका भी कर (लगान) आदि मसूल न करे। उस भूमिको ऋत्विक् आदिको पराम्पारमें होने वाले पुत्र पीत्र आदि सबही भोगते जावें। अर्थात् राजा फिर उस भूमिको उनसे कर्मा चापिस न ले ॥ ८ ॥

अध्यक्षसंख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्वचिकित्साश्व-दमकजह्वाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानमर्जम् ॥ ९ ॥

तथा अप्यक्ष (भिन्न २ कर्षिकोंका निरीक्षण करने वाले प्रधानाधिकारी= सुवर्णाध्यक्ष आदि), और सहायक (गणक=गणना करने वाले=सरकारी दफत-रोंमें काम करने वाले क्लर्क) आदि पुरुषोंके लिये, इसी प्रकार गोप (दसगांव का अधिकारी), स्थानिक (नगरका अधिकारी पुरप), अनीकरष (हाथियोंको शिक्षा देनेमें चतुर पुरप), चिकित्सक (वैद्य), अश्वदमक (घोड़ोंको शिक्षा देने वाला), और जह्वाकरिक अर्थात् दूर देशोंमें जाने आनेसे अपनी जीविका करने वाला, इन सब पुरुषोंके लिये भा राचा क्षेत्र आदि भूमि देवे। परन्तु इन लोगोंको, अपनी भूमिको बेचनेका तथा गिरवी आदि रक्त्नेका अधिकार नहीं होता, उस भूमिका केवल भोग कर सकते हैं ॥ ९ ॥

करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यकपुरापिकाणि प्रयच्छेत् ॥ १० ॥ अ-
कृतानि कर्तृभ्यो नादेयात् ॥ ११ ॥

लगान आदि देने वाले किसानोंके लिये, जो रीतके लिये उपयोगी ठीक तैयार कीहुई जमीन दाजावे, वह जिस पुरपके नाम दीजावे, उसहीके पीघन कालतक उसके पास रहसक्ती है, तदनन्तर राचाको अधिकार है कि वह उस जमीनको, उस पुरपके पुत्रादिको देवे, अथवा अन्य किसीको ॥ १० ॥ जिन

लगान आदि देने वाले किसानोंको यजर भूमि दीगई है, और उन्होंने अपनेही परिश्रमसे उसे खेतीके योग्य बनाया है, राजाको चाहिये कि उन किसानोंसे उस जमीनको कर्मा न लेवे। ऐसी जमीनोंके ऊपर किसानोंको पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये ॥ ११ ॥

अकूपतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ १२ ॥ ग्रामभृतकवै-
देहका वा कृपेयुः ॥ १३ ॥

यदि कोई किसान जमीनमें खेती नहीं करता, और उसे वैसीही पड़ी रहने देता है, राजाको चाहिये, उससे यह जमीन छीनकर और किसी खेती करने वाले किसानको देवे ॥ १२ ॥ अथवा ऐसे किसानके न मिलनेपर उस जमीनमें गांवके अधिकारी पुरंन या व्यापारी लोग खेती करें ॥ १३ ॥

अकूपन्तोऽपहीनं दद्युः ॥ १४ ॥ धान्यपशुहिरण्यैश्चैतान-
नुगृह्णीयात्तान्यनुसुखेन दद्युः ॥ १५ ॥

यदि पांडले शरीकार करक फिर खेती न करे, तो वे उसका हर्जाना दें ॥ १४ ॥ राजाको उचित है कि यह धान्य (बीज आदिके लिये, अथवा यथावसर खानेके लिये भी), पशु और धन आदि खेतीके उपयोगी पदार्थोंके द्वारा, यथावसर किसानोंको सहायता देता रहे। फसल पैदा होनेपर किसान भी अपने सुभीतेके अनुसार धीरे २, ये सब उस्तु राजाको देवे ॥ १५ ॥

अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशशुद्धिकरौ दद्यात् ॥ १६ ॥

राजा, किसानोंके स्वास्थ्यके लिये परिमित धन देता रहे, जिससे कि सुपुष्ट किसान अधिक काम करके राजांपके यज्ञानेमें सिद्ध हों। (स्वास्थ्य बढ़ानेके लिये दिया हुआ धन 'अनुग्रह' शब्दसे यहा कहागया है, यह धन अखादे, गदका आदि निम्न ० प्रकारके शक्ति वर्द्धक व्यायामोंमें व्यय किया जावे। त्रिगडे हुए स्वास्थ्यको सुधारनेके लिये दिया हुआ धन 'परिहार' शब्दसे यहापर कहागया है; यह धन गांव २ में औषधालय आदि स्थापन करनेमें व्यय किया जावे। ये ही स्वास्थ्य संपादनके उपाय हैं।) ॥ १६ ॥

कोशोपघातिकौ वर्जयेत् ॥ १७ ॥ अल्पकोशो हि राजा
पौरजानपदानेव ग्रसते ॥ १८ ॥ निवेशसमकालं यथांगतकं वा
परिहारं दद्यात् ॥ १९ ॥

परन्तु यदि स्वास्थ्यके लिये अनुग्रह और परिहार देनेमें राजाकोशको कोई हानि पहुंचे, तो कदापि न देवे ॥ १७ ॥ क्योंकि कोश थोड़ा होनेपर

राजा फिर नगर और जनपद निवासी पुरुषोंकोही सत्ताता है अर्थात् कोश पूरा करनेको उन्हें धनादि लेनेके लिये कष्ट पहुँचाता है ॥ १८ ॥ किसी कुलके बसनेके समय, स्वस्थ्य संग्रहणकेलिये प्रतिशत धन, उसे अवश्य देते रहना चाहिये, अथवा राजकोशकी आयके अनुसार, राजा, परिहार (बिगड़े स्वास्थ्यको सुधारनेके लिये) धन अवश्य देता रहे ॥ १९ ॥

निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयात् ॥ २० ॥ आकरकर्मन्त-
द्रव्यहस्तिवनग्रजवणिकपथप्रचारान्वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च
निवेशयेत् ॥ २१ ॥

यदि पौरजनपद उस परिहारद्रव्यको चुकादेवे, तो पिताके समान राजा उनपर अनुग्रह करे । अर्थात् उनकी वृद्धिके लिये अनुग्रह धन देकरभा उनका उपकार करे ॥ २० ॥ स्थानज पदार्थोंके बेचनेके स्थान, द्रव्यधन (चन्दन आदि धनिया लकड़ियोंके उत्पत्ति स्थान), हरिवन (हाथियोंका जंगल) गाय बिल आदिकी रक्षा और उन्हें पढ़ानेके लिये स्थान, आयत नियत (विदेशका माल स्वदेशमें लाना-भ्रत, तथा स्वदेशका माल विदेशमें भेजना-निर्यात कहता है—इन्पेर्ट, एक्सपोर्ट), व्यापारके लिये स्थान, जलमार्ग और स्थलमार्ग तथा बड़े २ बाजार या मण्डियों आदिका निर्माण करावे ॥ २१ ॥

सहोदकमाहार्योदकं वा मेतुं बन्धयेत् ॥२२॥ अन्येषां वा यध्नतां
भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात् ॥ २३ ॥ पुण्यस्थानारामाणां
च ॥ २४ ॥

निम्नजल (नदी आदिये जिनमें सरा लगतार जल आता रहे, ऐसे) अथवा अनियोजन (जिनमें सरा जल न भाये, किन्तु वर्षा ऋतुमें इधर उधरके ऊँचे स्थानोंसे यहकर आया हुआ जल इकट्ठा होजावे, ऐसे) बड़े २ जलाशयोंके बांध बननाये ॥ २२ ॥ यदि अन्य प्रजाजनही इस कार्यको करना चाहें, तो उन्हें जलाशय आदिके लिये भूमि, नहर आदिके लिये मार्ग, और यथावश्यक लकड़ी आदि सामान देकर उनका उपकार करे ॥२३॥ तथा पुण्यस्थान देवालय आदि और बाग बगीचे आदि बनाने वाले प्रजाजनोंकोभी भूमि आदिकी सहायता देवे ॥ २४ ॥

संभूय मेतुबन्धादपक्रामतः कर्मकरचलीवर्दाः कर्म कुर्युः
॥२५॥ व्ययकर्मणि च मागी स्यात् ॥२६॥ न चांशं लभेत ॥२७॥

इकट्ठे मिलकर मेतुबन्ध बनाने वाले पुरुषोंमेंसे यदि कोई मनुष्य इच्छा न होनेके कारण काम न करभा चाहे तो अपनी जगह अपने हीकर तथा चिह्नोंकी

काम करनेके लिये अवश्य देवे ॥ २५ ॥ यदि ऐसा करनेमें कुछ आनाकानी करे, तो उससे, उसके अपने कामके हिस्सेका सारा खर्च लिया जावे ॥ २६ ॥ और कार्य समाप्त होनेपर उससे, उसे कुछभी फायदा न उठाने दिया जावे ॥ २७ ॥

मत्स्यश्रुतरहितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥
दासाहितकवन्धूनशृण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत् ॥ २९ ॥

इस प्रकारके चर्चे '२' जलाशयोंमें उत्पन्न होने वाली, मछली, प्लव, (कारण्डर-धतुर्की तरङ्का एक जलका पक्षी), और कमलदण्ड आदि व्यापारी वस्तुओंपर राजाकाही अधिकार रहे ॥ २८ ॥ दास (मृति लेकर सेवा करने वाले नौकर), तथा जादूतक (सामीये धनु आदि-लेकर आधिरूपसे रखे हुए) बन्धु या पुत्र आदि यदि अपने मालिककी आज्ञाका उल्लंघन करें, तो राजा उन्हें उचित शीतिसे शिक्षा देवे ॥ २९ ॥

वालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा विभृयात् ॥ ३० ॥
स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ॥ ३१ ॥ बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा
वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणान् ॥ ३२ ॥ देवद्रव्यं च ॥ ३३ ॥

बालक, वृद्धे, रोगी, दुःखी तथा अनाथ व्यक्तिओंका, राजा सदा भाग पोषण करे ॥ ३० ॥ अप्रजाता स्त्री, जिसके सन्तान न होती हो, अर्थात् बन्ध्या स्त्री) और प्रजाता स्त्रीके पुत्रादिकी, राजा सदा रक्षा करे, यदि वे अनाथ हों ॥ ३१ ॥ बालककी सम्पत्तिको, गाँवके लोग सदा बढ़ाते रहें, जब तककि वह बालक बालिग न हो जावे ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार जो द्रव्य देवताके निमित्तसे निधिन किया हुआ हो, जमेभी सदा बढ़ाते रहें ॥ ३३ ॥

अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातृनप्राप्तव्यवहारान्भागिनीः क-
न्या विधवाश्चाविभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डो अन्यत्र पति-
तेभ्यः ॥ ३४ ॥ अन्यत्र मातुः ॥ ३५ ॥

लड़के स्त्रियों, माता पिता, नाप्रालिग भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन, आदिका, जो पुत्र्य सामर्थ्य रखते हुएभी पालन पोषण न करे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय। परन्तु ये लड़के कां आदि पतित न हों, यदि किसी कारणसे पतित होगये हों, तो समर्थ सम्बन्धीको इनके पालन पोषणके लिये बाधित नहीं किया जासकता ॥ ३४ ॥ परन्तु यह प्रतिषेध माताके लिये नहीं है अर्थात् माता यदि पतित भी होगई हो तो भी उसकी रक्षा करनीही चाहिये ॥ ३५ ॥

नियोंके साथ इधर उधर जंगलमें घूमते हुए; हाथियोंके शयन स्थान, पैद (पद-पंक्ति), मल मूत्र त्यागनेके स्थान, तथा करातों (दांगों=नदीतटों) के गिराने आदिके बिन्दुओंसे, इस बातका पता लगावें, कि हाथियोंके झुंड, जंगलमें कहां २ तक घूमते हैं ॥ ११ ॥

यूथस्तरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बंध-
मुक्तं च निबन्धेन विद्युः ॥ १२ ॥

झुंडके साथ घूमने वाले, अकेले घूमने वाले, झुंडसे निकले हुए, झुंडके मालिक, ब्रह्मकृति, मत्त (मत्त), पोत (छोटी उमरके=दश वर्ष तककी अव-स्थ के), तथा बंध .२ छूटे हुए हाथीको, हस्तिवनके रक्षक पुरुष, अपनी गणना पुस्तकसे जानें ॥ १२ ॥

अनीकस्यप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान्हस्तिनो गृहीयुः ॥ १३ ॥
हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम् ॥ १४ ॥ परानीकव्यूहदुर्गस्क-
न्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति
॥ १५ ॥

हस्तिशिक्षामे सुचतुर पुराणके कथनानुसार, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हाथि-योंको, राजाके कार्यके लिये पकड़ लिया जावे ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाओंके विजयी होनेमें हाथीही एक प्रधान साधन हैं ॥ १४ ॥ बड़े २ शरीर वाले हाथी ही, शत्रुकी सेना, व्यूह रचना, दुर्ग तथा छावनियोंको कुचलने वाले होते हैं, इसलिये येही शत्रुके प्राणोंका हरण करते हैं ॥ १५ ॥

कलिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याथेति करुशजाः ।

दक्षार्णाथापरान्ताथ द्विपानां मध्यमा मताः ॥ १६ ॥

कलिङ्ग और अङ्ग देशमें उत्पन्न हुए २ हाथी, तथा पूरुबके करुश देशमें उत्पन्न हुए २ हाथी, सब हाथियोंमें उत्तम होते हैं । दक्षार्ण देशमें उत्पन्न हुए तथा पश्चिममें उत्पन्न हुए २ हाथी मध्यम समझे जाते हैं ॥ १६ ॥

सौराष्ट्रिकाः पाञ्चजनाः तेषां प्रत्यवराः स्मृताः ।

सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजथ वर्धते ॥ १७ ॥

सौराष्ट्रप्रकारे द्वितीये अधिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितस्ययोर्विंशः ॥ २३ ॥

सौराष्ट्र और पञ्चजन देशोंमें उत्पन्न हुए २ हाथी अधम समझे गये हैं, यहाँके हाथी सबसे घटिया होते हैं । परन्तु सयही तरहके हाथियोंका बल, वेग तथा तेज, उचित शिक्षाके द्वारा यथावश्यक बढ़ाया जासकता है ॥ १७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तिसरा अध्याय ।

२१ प्रकरण ।

दुर्गविधान ।

चतुर्दिशं जनपदान्ते सांपरायिकं देवकृतं दुर्गं कारयेत् ॥१॥

अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रस्तरं गुहां वा पार्वतं
निरुदकस्तम्भमिरिणं वा धान्वनं खड्गनोदकं स्तम्भगहनं वा
वनदुर्गम् ॥ २ ॥

चारों दिशाओंमें, जनपदके सीमास्थानोंमें, युद्धके लिये उपयोगी स्वाभाविक विकट स्थानोंकोही, दुर्गके रूपमें बना लेये । अर्थात् यथावसर युद्धके लिये ऐसीही स्थानोंका आश्रय लेये ॥ १ ॥ इस प्रकारके दुर्ग मुख्यतया चार तरहके होते हैं:—औदक पार्वत, धान्वन और वनदुर्ग । इनमें प्रत्येकके फिर दो २ भेद हैं; इन्हीं सबका तृतीय सूत्रमें निरूपण किया जाता है:—चारों ओर नदियोंसे घिरा हुआ बीचमें टापूके समान, अथवा बड़े २ गहरे तालाबोंसे घिरा हुआ मध्यका स्थल प्रदेश, यह दो प्रकारका औदक दुर्ग कहाता है । बड़े बड़े पर्वतोंसे घिरा हुआ, अथवा स्वाभाविक गुफाओंके रूपमें बना हुआ, यह दो प्रकारका पार्वत दुर्ग होता है । ऊँच तथा पास आदिमें रहित अथवा सर्वथा ऊपर भूमिमें बना हुआ, यह दो प्रकारका धान्वन दुर्ग कहाता है । चारों ओर दलदलसे घिरा हुआ अथवा कांटेदार घनी झाड़ियोंसे घिरा हुआ, यह दो प्रकारका वनदुर्ग कहाता है ॥ २ ॥

तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवी-
स्थानम् आपद्यपसारो वा ॥ ३ ॥ जनपदमध्ये समुद्रस्थानं
स्थानीयं निवेशयेत् ॥ ४ ॥

इन दुर्गोंमेंसे नदीदुर्ग और पर्वतदुर्ग, आपत्तिके समयमें जनपदकी रक्षाके स्थान होते हैं । धान्वनदुर्ग तथा वनदुर्ग आटविकोंकी रक्षाके लिये उप-

युक्त होते हैं । अथवा विशेष आपत्तिके समय, राजा भी भागकर इन्हीं दुर्गोंमें आश्रय लेसकता है ॥ ३ ॥ जनपदके बीचमें, धन आदिही उत्पत्तिके मुख्यस्थान स्थानीय अर्थात् बडे २ नगरोंको राजा बसावे ॥ ४ ॥

वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे हृदस्य वाग्निशोपस्थाङ्गे सर-
सस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदाक्षिणोदकं
पण्यपुटभेदनमंसर्वादिपथाभ्यामुपेतम् ॥ ५ ॥ तस्य परिरक्षास्तिस्त्रो
दण्डान्तराः कारयेत् ॥ ६ ॥

इसप्रकारके स्थानीय (बडे २ नगर), नीचे लिखे प्रदेशोंमें बसाने चाहिये — जिस प्रदेशको, वास्तु विद्या जानने वाले विद्वान् धेष्ट बतावें, अथवा किसी नदीके सगमपर, अथवा बडे २ अगाध जलवाले, या जिनमें कमल पदा होते हों, ऐसे जलाशयोंके किनारेपर बसायें । यह स्थानीय, भूमिके अंनुसार गोलाकार (वर्तुलाकार), अथवा छेत्रा या चौकोर बसाया जाना चाहिये । उसमें चारों ओर छोटी २ नहरोंके द्वारा जलप्रवाह अवश्य बहता रहना चाहिये । उसके इधर उधर उत्पन्न होने वाली विकल्प वस्तुओंका वहा स्वप्रद तथा त्रय विक्रयका प्रबन्ध होना चाहिये । जल और स्थल दोनों तरहके मार्गोंसे वहाँ आनेका सुभीता होना चाहिये ॥ ५ ॥ उसके चारों ओर एक २ दण्डके फाम लेसे तीन खाइया खुदवावे । (चार हाथका एक दण्ड होता है । देखो — प्र० ३१, देशकालमान=अधि० २, अध्या० २०) ॥ ६ ॥

चतुर्दशं द्वादशं दशेति दण्डान्विस्तीर्णाः विस्तारादग्गाधाः
पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला भूले चतुरश्राः पापाणोपहिताः पा-
पाणैकाचद्वपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः
पद्मग्राहवतीश्च ॥ ७ ॥

वे खाई प्रमश चौदह दण्ड, बारह दण्ड और दश दण्ड चौड़ी होनी चाहियें । जितनी चौड़ी हों, उससे चौथाई या आधी कम गहरी होनी चाहिये । अथवा चौथाईका तीसरा हिस्सा गहरी होनी चाहिये । नीचे तलेमें बराबर तथा पत्थर आदिसे बंधी हुई होनी चाहियें । इधर उधरके किनारे भी पत्थर अथवा ईंटोंसे मजबूत चिने हुए होने चाहियें । वहीं २ से इनको इतना गहरा खोद दिया जाय, जहाँसे स्वयही इनमें जल निकलने लगे । अथवा किसी नदी आदि से जल लाकर इनमें भर दिया जावे । इनमें जलके निकलनेका भी मार्ग अवश्य रहना चाहिये । कमल तथा नाकू आदि जलधर भी इनमें रहें ॥ ७ ॥

चतुर्दण्डावकृष्टं परिखायाः पद्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्विगु-
णविष्कम्भं खाताद्वयं कारयेत् ॥ ८ ॥

परिखा (साई) से चार दण्डके फासलेपर, छ' दण्ड ऊँचा, अवरुद्ध अर्थात् सय ओरसे दृढ़, तथा जितना ऊँचा हो उससे दुगना नीचेसे चौड़ा वय्र अर्थात् सफ़ील बनवावे, इसके बनवानेमें वही मिट्टी काममें लाई जावे, जो साईसे लोदकर बाहर फेंकी गई है ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वचयं मञ्जपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं
कण्टकिगुल्मविपवल्लीप्रतानवन्तं पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत्
॥ ९ ॥

उस वय्रके बनानेके तीन प्रकार होते हैं.—ऊर्ध्वचय, मञ्जपृष्ठ तथा कुम्भकुक्षिक; जो वय्र (सफ़ील) नीचेसे बहुत मोटा और ऊपरसे पतला हो, उसे 'ऊर्ध्वचय' बहूते है, जो ऊपर नीचे दोनों जगहसे बराबर हो, वह 'मञ्ज-पृष्ठ' तथा ऊपर नीचेसे पतला और बीचमेंसे मोटा हो वह 'कुम्भकुक्षिक' कहाता है । सफ़ीलको हाथी तथा गाय बल्लोंसे पूर चुदवाना चाहिये, जिससे कि उसकी मट्टी बैठकर वह रूख मज़बूत होजाय । तथा उसके इधर उधर कांटेदार झाड़ियाँ और जहरीली लताये लगा देनी चाहियें । यदि साईयाँकी खुदी हुई मिट्टी फिर भी यच जावे तो उससे उन गहोंको भर दिया जावे जहाँसे मकान आदि बनानेके लिये मिट्टी खोदी गई हो ॥ ९ ॥

वय्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्ता-
दूर्ध्वमोजं युग्मं वा आ चतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् ॥ १० ॥

इस वय्रके ऊपर एक प्राकार (दीवार) खड़ा करवावे, वह अपनी चौड़ाईसे दुगना ऊँचा होना चाहिये, कमसे कम बारह हाथसे लगाकर तेरह पन्द्रह आदि विषम संख्याओंमें या चौदह सोलह आदि सम संख्याओंमें अधिकसे अधिक चौबीस हाथ तक ऊँचा होना चाहिये ॥ १० ॥

रथचर्यासंचारं तालमूलमुरजकैः कपिशिर्पिकैश्चाचिताग्रं पृथु-
शिलासहितं वा शैलं कारयेत् ॥ ११ ॥

अथवा प्राकारको ऊपरसे इतना चौड़ा बनवावे, जिसपर एक रथ भासा-नीसे चलसके । ताड़वृक्षकी जड़के समान, मृदन्न वाजेके समान और बन्दरके तिरके समान आकार वाले छोटे बड़े परपरों तथा ईंटके चूरेसे, जिसके पाहर या ऊपरकी ओरका हिस्सा बनाया गया हो अथवा जो केवल बड़ी २ शिला-ओंसेही बनाया गया हो ऐसे प्राकारको वय्रके ऊपर करवावे ॥ ११ ॥

न त्वेव काष्ठमयम् ॥ १२ ॥ अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति
॥ १३ ॥ विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत्
त्रिंशद्दण्डान्तरं च ॥ १४ ॥

यह प्रकार लकड़ीका कभी नहीं बनवाना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि
इसमें अग्नि सदा सन्निरहित रहता है । अर्थात् इसमें आग लगने का भय
सदा ही बना रहता है ॥ १३ ॥ प्राकारके आगे एक अट्टालक बनवावे; जो कि
प्राकारके विस्तार या ऊंचाईके समान ही विस्तृत या ऊंचा होना चाहिये । तथा
ऊंचाईके बराबर ही जिसमें चढ़ने उतरनेके लिये सीढ़ियां (पीढ़ियां) होनी
चाहियें । एक अट्टालक का दूसरे से तीस दण्ड का फामला होना चाहिये ।
अर्थात् इनके २ फासले पर प्राकारके चारों ओर अट्टालक बनवाये जायें ॥ १४ ॥

द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलां द्व्यधायामां प्रतोलीं
कारयेत् ॥ १५ ॥ अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सपि-
धानच्छिद्रफलकसंहतमितीन्द्रकोशं कारयेत् ॥ १६ ॥

दो अट्टालकोंके बीचमें, हर्म्यकी दूसरी मंजिलके मादित, चौड़ाईसे
दो-तीही लम्बी प्रतोली (गृह विशेष) बनवाये ॥ १५ ॥ अट्टालक और प्रतोलीके
बीचमें एक हर्म्यकोश (स्थान विशेष) बनवाये । यह इतना बड़ा होना चाहिये
जिसमें तीन धनुर्वारी पुरर बँड सकें । बाहरकी ओरसे रुकावट करनेके लिये
उनके आगे एक तल्ला लगा रहना चाहिये, परन्तु उन तल्लेमें यथावश्यक
छिद्र अवश्य होने चाहियें, जिनसे ये धानुष्क (धनुर्वारी पुरर) बाहरकी
वस्तुओंको देख सकें, तथा अवसरपर बाण आदि चलासकें ॥ १६ ॥

अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारमष्ट-
हस्तायतं देवपथं कारयेत् ॥ १७ ॥ दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वा
चार्याः कारयेत् ॥ १८ ॥

प्राकारके साथ २, अट्टालक प्रतोली तथा इन्द्रकोशके बीचमें दो हाथ
चौड़ा और प्राकारके पास इससे चतुर्गुण अर्थात् आठ हाथ चौड़ा एक देवपथ
(गुप्तमार्ग) बनवाया जाये ॥ १७ ॥ एक दण्ड या दो दण्डके फामलेमें चार्या
अर्थात् प्राकार आदिपर चढ़ने उतरनेका स्थान बनवाया जाये ॥ १८ ॥

अग्राख्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च ॥ १९ ॥

न दीखने योग्य प्रदेशमें, प्राकारके ऊपरही प्रधावितिका, तथा उसके
पासही निष्कुहद्वार बनवावे । (शत्रुके द्वारा बाहरकी ओरसे बाण आदिके

छोदनेपर, उसकी मजदूरी बचनेके लिये सिपाहीके सरलतासे छिपने योग्य छोटेसे आवरणका नाम 'प्रधापितिका' है। इस आवरणमें छोटे बड़े कुछ छेद भी रहते हैं, जिनके द्वारा शत्रुकी प्रत्येक चेष्टाको भीतर बैठा हुआ सिपाही अच्छी तरहसे देख सकता है; इन्हीं छेदोंका नाम 'निष्कुहद्वार' है ॥ १९ ॥

बहिर्जानुभञ्जनीं त्रिशूलप्रकरकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिषृ-
ष्टतालपत्रशृङ्गाटकश्यदंष्ट्रार्गलोपस्कन्दनपादुकाम्बरीपोदपानकैः
छन्नपथं कारयेत् ॥ २० ॥

परिपासे बाहरकी भूमियोंमें, जानुभञ्जनी (घोंदूतक डैचे, 'लकड़ीके बने हुए लेंदे, जो रास्तेमें चलते समय घोंदूओंको तोड़नेवाले हो), त्रिशूलोंका समूह, अंधेरे गढ़े, लोहेकी शलाकाओं तथा तिनकोंसे ढके हुए गढ़े, लोहेके बने हुए कांटोंका ढेर, सांपके अस्त्रिपंजर तथा तालपत्रके समान बने हुए लोहेके जादों, तीन २ नोकवाले लोहेके नुकीले कांटों, कुत्तेकी डाढ़के समान तक्षिण लोहेकी कीलों, बड़े २ लट्टों, अथवा गिर जानेके लिये एकही पैरकी बराबर बनाये कीचड़से भरे हुए गढ़ों, तथा अग्निके गढ़ों और दूषित जलके गढ़ोंसे दुर्गके मार्गको पाट देने। तात्पर्य यह है कि खाईके बाहरकी भूमिमें, दुर्गके लिये आनेवाले रास्तेपर इन २ वस्तुओंको बिठा देवे, या भूमिमें गाड़ देवे, जिससे कि शत्रु दुर्गकी ओर न आसके ॥ २० ॥

प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीपदत्तलान्तरं
द्वारं निवेशयेत् ॥ २१ ॥ पञ्चदण्डादेकोत्तरवृद्ध्याटदण्डादिति
चतुरश्रं द्विदण्डं वा पद्भ्यागमायामादधिकमष्टभागं वा ॥ २२ ॥

जिम जगहपर दरवाजा बनानेकी इच्छा हो, वहां पहिले नीचे प्राकारके दोनों भागोंमें डेढ़ दण्ड लम्बा चौड़ा मण्डप अर्थात् चतुरासा बनाया जावे; तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोलीके समान छः खम्भे खड़े करके द्वारका निर्माण कराया जावे ॥ २१ ॥ द्वारका विस्तार पांच दण्डसे लगाकर एक, २ दण्डकी श्रद्धि करते जानेसे, अधिकसे अधिक आठ दण्डतक प्राकारके अनुसार चौकोर होना चाहिये। अथवा दो दण्डका ही दरवाजा होवे, यह भी कोई विद्वान् कहते हैं। अथवा नीचे धाधारके परिमाणसे छटा या आठवां हिस्सा अधिक करके ऊपर दरवाजा बनाया जावे ॥ २२ ॥

पञ्चदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तलोत्सेधः ॥ २३ ॥
स्तम्भस्य परिक्षेपाः पडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतु-

(१०४)

कौटलीय अर्थशास्त्र

[२ अधि०

भागः ॥ २४ ॥ आदितलस्य पञ्च भागाः शाला वापी सीमा-
गृहं च ॥ २५ ॥

नीचेके तलसे खम्भोंकी ऊँचाई पन्द्रह हाथसे लगाकर अठारह हाथतक होनी चाहिये ॥ २३ ॥ और खम्भोंकी परिधि अर्थात् मोटाई, खम्भेकी ऊँचाई का छठा हिस्सा होनी चाहिये । जितनी मोटाई हो उससे दुगुना भूमिमें गाढ़ दिया जावे, और उसका चौपाई हिस्सा, खम्भेकी ऊपरकी चूलके लिये छोड़ा जावे ॥ २४ ॥ प्रतीलिका के तीन तलोंमेंसे पहिले तलके पाच हिस्म करे । उनमेंसे बीचेके हिस्सेमें तो वापी (घावड़ी) बनवावे, उसके इधर उधर शाला और शालाके किनारोंपर सीमागृह बनवावे । (शालाओंके किनारेपर पाचवें हिस्सेमें वन हुए उस छोटे मकानको ही "सीमागृह" कहा जाता है) ॥ २५ ॥

दशभागिकौ समत्तारणौ द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरमाणि ॥ २६ ॥
हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावनन्धश्च ॥ २७ ॥

शालाके किनारोंकी ओर मुकाबलेमें दो मञ्च अर्थात् छोटे २ बैठनेके योग्य चबूतरेसे बनवावे, उनपर चोटी अर्थात् बुजिया भी होनी चाहिये । आर शाला तथा सीमागृहके बीचम आणि अर्थात् एक छोटासा दरवाजा होना चाहिये ॥ २६ ॥ हर्म्यं अर्थात् मकान की दूसरी मजिलकी ऊँचाई पहिली मजिलकी ऊँचाईसे आधी होनी चाहिये, आवश्यकतानुसार उसकी ऊँचे नाचे छोटे २ खम्भोंका सहारा होना चाहिये । (किसी २ पुस्तकमें 'आणिहर्म्य' ऐसा इकट्ठा पाठ है, यहापर आणिका अर्थ सामा करना चाहिये, अर्थात् सीमागृहके ऊपरका हर्म्य, ऐसा अर्थ होना चाहिये) ॥ २७ ॥

अर्धमास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा ॥ २८ ॥ इष्टका-
वपन्धपार्श्वम् ॥ २९ ॥ वामतः प्रदक्षिणसोपानं गृहभित्तिसोपा-
नमितरतः ॥ ३० ॥

उत्तमागार अर्थात् हर्म्यस की ऊपरकी तीसरी मजिलकी ऊँचाई डेढ़ दण्ड हानी चाहिये । (एक पास्तुक, तान दण्डका होता है, अर्धमास्तुक=डेढ़ दण्ड । यह परिमाण उसी समय समझना चाहिये, जब नीचे द्वारका परिमाण पाच दण्ड हा, उसहाक अनुसार यह बडा भी होसकता है) । अथवा द्वारका तृतीयदश परिमाण उत्तमागारका होना चाहिये ॥ २८ ॥ उत्तमागारके इधर उधरके भाग, पक्षों इतोंसे खूब मन्वृत बने हुए होने चाहिये ॥ २९ ॥ उसके

बाईं ओर चक्रदार स्त्रीद्वियां चढ़ने उतरनेके लिये होनी चाहियें । और दाहिनी ओर छिपे तौरपर भीतमें स्त्रीद्वियां बनवाई जावें ॥ ३० ॥

द्विहस्तं तोरणशिरः ॥ ३१ ॥ त्रिपञ्चभागिकौ द्वौ कवाट-
योगौ ॥ ३२ ॥ द्वौ द्वौ परिधौ ॥ ३३ ॥

द्वारका तिर अर्धात् द्वारके ऊपरका बुजं आदि दो हाथका बनाना चाहिये ॥ ३१ ॥ तीन अथवा पांच हिस्सोंके, दोनों किवाड़ या फाटक होने चाहियें । (तीन या पांच हिस्सेका अर्थ यह है, कि एक किवाड़ लम्बाईमें तीन तल्ले या पांच तल्लेका बना हुआ होना चाहियें) ॥ ३२ ॥ किवाड़ोंके पीछेकी ओर दो परिध अर्थात् अंगला होने चाहियें ॥ ३३ ॥

अरत्निरिन्द्रकीलः ॥ ३४ ॥ पञ्चहस्तमणिद्वारम् ॥ ३५ ॥
चत्वारो हस्तिपरिधा ॥ ३६ ॥

एक अरत्नि परिमाण, चौथीस अंगुल परिमाणको अरत्नि कहा जाता है इसका दूसरा नाम 'हस्त' या हाथ भी है । एक हाथ=१३ पुन्ड) की एक इन्द्रकील (चतखनी) किवाड़ोंको बन्द करनेके लिये होनी चाहिये ॥ ३४ ॥ फाटकके बीचमें एक छोटासा पांच हाथका दरवाजा होना चाहिये ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण द्वार इतना घड़ा होना चाहिये, जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें । (इस सूत्रमें 'हस्तिपरिध' शब्दका लक्षणिक अर्थ-हाथियोंके प्रवेशके लिये पर्याप्त, यही करना चाहिये) ॥ ३६ ॥

निवेशार्थं हस्तिनखः मुखसप्तः संक्रमोऽसंहायो वा भूमिमयो
वा निरुद्धके ॥ ३७ ॥ प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधा-
मुखं गोपुरं कारयेत् ॥ ३८ ॥

द्वारकी ऊंचाईसे आधी ऊंचाई वाला (अर्थात् द्वारकी ऊंचाई यदि पांच दण्ड हो तो ढाई दण्ड ऊंचा) हाथीके नाखूनके समान आवश्यकतानुसार चढ़ाव उतारवाला, दरवाजेके समान आकार वाला ही दुर्गके संचरणका मार्ग अर्थात् दुर्गपर यथावसर घूमने फिरनेका मार्ग, मजबूत लकड़ी आदि का बना हुआ, अथवा जल रहित स्थानोंमें मटीकाही होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ऊंचाई आदिमें प्राकारके समानही निकलनेका मार्ग बनवाकर, उसका तृतीयान्त, गोधा (गोह-एक जलचर प्राणी) के मुंहकी तरह आकार वाला गोपुर अर्थात् नगरद्वार बनवाया जावे-॥ ३८ ॥

प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं पुष्करिणीद्वारं चतुःशालमध्य-
धीन्तराणीकं कुमारीपुरं मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं भूमिद्रव्य-

वशेन वा ॥ ३९ ॥ त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः
कारयेत् ॥ ४० ॥

प्रकारके बीचमेंही वापी (बाघड़ी) बनाकर उसके साथही एक द्वार बनाया जावे, वापीके साथ सम्बन्ध होनेसे इस द्वारका नाम पुष्करिणीद्वार होता है। इसीप्रकार जिस दरवाजेके आसपास चार शाला बनाई जाय, और उस दरवाजेमें पहिले कहे हुए छोटे दरवाजेसे बड़ा अधिक छोटा दरवाजा लगा हो, उसका नाम कुमारीपुरद्वार होता है। जो दरवाजा दो मञ्जिलका बनाया जावे, तथा उसपर कंगूरे बगैरह लगे हुए न हों, तो उसे मुण्डकद्वार कहा जाता है। इसतरह भिन्न २ रीतिसे राजा दरवाजोंको बनवावे। अथवा वहाँकी अपनी भूमि तथा अपनी सम्पत्तिके अनुसार इनमें उचित परिवर्तन कर सकता है, अर्थात् जैसी भूमि और जितनी सम्पत्ति हो, उसीके अनुसार इनका निर्माण करावे ॥ ३९ ॥ अन्य सामान्य नहरोंसे तिहाई हिस्सा अधिक चौड़ी नहरें बनवाई जावें, जिनके द्वारा हर तरहके सामान अन्दर बाहर लाये तथा लेजाये जा सकें ॥ ४० ॥

तासु पापाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः ।

भुशुण्डीमुद्ररा दण्डचक्रयन्त्रशतमयः ॥ ४१ ॥

उन नहरोंके द्वारा कौनसे सामान लाये लेजाये जासकते हैं, इसीका निरूपण इन दो श्लोकोंमें किया जाता है.—पापर, कुद्दाल (कसी आदि भूमि खोदनेके उपकरण), कुठार, बाण, कल्पना (हाथियोंके उपकरण), भुशुण्डी (धन्दूक आदि शस्त्र)। किमी पुस्तकमें 'भुशुण्डी' के स्थानपर 'मुसण्ड' पाठ है; लंकेकी कोलोंसे युक्त, लकड़ीकी बनी हुई गदाका नाम 'मुसण्ड' है, मुद्र, डंडे (लाठी आदि), चक्र, यन्त्र, शतश्री ॥ ४१ ॥

कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः ।

उष्ट्रग्रीव्याऽग्निंसयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः ॥४२॥

इत्यभ्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गविधानं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितश्रतुर्विदाः ॥ २४ ॥

लुहारोंके काममें आनेवाला सामान, अथवा उनका बनाया हुआ सामान, तीक्ष्ण शोक वाले भाले आदि, बांस, ऊँटकी गर्दनके आकारके हाथियार, अग्नि लगाकर चलाये जाने वाले अयुध, तथा जिनका कुपाध्यक्ष प्रकरणमें विधान किया गया है, वे सब सामान। ये पदार्थ हैं जो कि नहरके द्वारा लाये लेजाये जाते हैं ॥ ४२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

२२ प्रकरण ।

दुर्गनिवेश ।

पिठले अध्यायमें परिखा, घन, प्राकार, भट्टालक, प्रतीली, इन्द्र-कोश, देवपथ आदिसे युक्त दुर्गके निर्माणके विषयमें निरूपण कर दिया गया है । अब इस बातका निरूपण किया जायगा, कि उस दुर्गमें राजमार्ग राजभवन अमारप्रभवन आदिका निर्माण किस प्रकार होना चाहिये ।

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीता इति वास्तुविभागः

॥ १ ॥

तीन राजमार्ग पूरबसे पच्छिमकी ओरको, और तीनही राजमार्ग उत्तरसे दक्खिनकी ओरको होने चाहिये । अर्थात् नगर बसानेके लिये एक स्थान केन्द्र मानकर बर्षासे पूरबकी ओर तीन मार्ग, पच्छिमकी ओर तीन मार्ग आमने सामनेही एक सीधमें होंगे । इसीप्रकार तीन मार्ग उत्तर और तीन मार्ग दक्षिणकी ओरको होने चाहिये । इसतरह लम्बे छः मार्गोंमें वास्तु अर्थात् गृहनिर्माण आदिके लिये निश्चित भूमिका विभाग करना चाहिये ॥ १ ॥

स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः ॥ २ ॥ चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः ॥ ३ ॥

इन विभागोंके अनुसार प्रत्येक दिशामें तीन दरवाजे होनेके कारण चारों ओर कुल मिलाकर बारह दरवाजे होंगे । इसप्रकार बारह द्वारोंसे युक्त, तथा उचित जल, भूमि और गुप्त मार्गोंसे युक्त यह वास्तुविभाग होना चाहिये ॥ २ ॥ चार दण्ड चौड़ी रथ्या (उपवीथिका=गोठी गली) बनानी चाहिये । (४ अरसि=१ दण्ड=२ गज । इसप्रकार गलीकी चौड़ाई ८ गज=२४ फीट हुई) ॥ ३ ॥

राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयैराप्त्रिविधैतपथाः संयानीयव्यूहश्म-
शानग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः ॥ ४ ॥

राजमार्ग; द्रोणमुख (चारसी गांवोंका प्रधानभूत केन्द्र स्थान), स्थानीय (आठसी गांवोंका प्रधानभूत केन्द्रस्थान), राष्ट्र, तथा चरगाहकी जाने वाला मार्ग और व्यापारी घंटियों (संयानीय) का मार्ग, सेनाका मार्ग, श्मशान तथा अन्य गांवोंको जाने वाला मार्ग; ये सब आठ २ दण्ड चौड़े होने चाहिये ॥ ४ ॥

चतुर्दण्डः सेतुवनपथः ॥५॥ द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः ॥६॥
पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथः ॥७॥ द्वौ क्षुद्रपशुमनुप्यपथः
॥ ८ ॥

जलाशयोंका मार्ग तथा जंगलोंका मार्ग भी चार दण्ड चौड़ा होना चाहिये ॥ ५ ॥ हाथियोंके चलनेका रास्ता, तथा खेतोंमें जानेका रास्ता दो दण्ड चौड़ा होना चाहिये ॥ ६ ॥ पांच भरसि अर्थात् ढाई गज चौड़ा रथोंका, तथा दो गज चौड़ा पशुओंका रास्ता होना चाहिये ॥ ७ ॥ दो भरसि अर्थात् एक गज चौड़ा रास्ता, मनुष्य तथा भेड़ बकरी आदि छोटे २ पशुओंके लिये होना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे ॥ ९ ॥ वा-
स्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं
वा कारयेत् ॥ १० ॥

खूब मजबूत ज़मीनोंमें राजभवनोंका निर्माण कराना चाहिये । साथमें यह भी देखलेना चाहिये कि यह भूमि चारों वर्णोंकी जीविकाके लिये भरपूरत उपयोगी है ॥ ९ ॥ वास्तुके मध्य भागसे उत्तरकी ओरके नौवें हिस्सेमें पहिले कहीं दुरंदरीतिके अनुसार (देखोः—निशान्तप्रणिधि प्रकरण) अन्तःपुरका निर्माण कराया जावे, इसका द्वार पूरब या पच्छिमकी ओर होना चाहिये ॥ १० ॥

तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चा-
वसेयुः ॥ ११ ॥ पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं
च ॥ १२ ॥

उक्त अन्तःपुरके पूर्वोत्तर भागमें अचार्य पुरोहितके स्थान यज्ञस्थान तथा जलाशय बनवाये जावें, और मन्त्रियोंके निवास स्थान भी इस ओर ही बनवाने चाहियें ॥ ११ ॥ पूर्वदक्षिण भागमें (अर्थात् अन्तःपुरके पूर्वदक्षिण भागमें) महानस (रसोई), हस्तिशाला अर्थात् हाथीकी पीठके समान चौरस सभागृह अथवा हाथियोंके रहनेकी जगह और कोष्ठागार (वास्तुभण्डार) बनवाना चाहिये ॥ १२ ॥

ततः परं गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारयः क्षत्रियाश्च
पूर्वा दिशमधिवसेयुः ॥ १३ ॥ दक्षिणपूर्व भागं भाण्डागारम-
क्षपटलं कर्मनिषद्याश्च ॥ १४ ॥ दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमा-
युधागारं च ॥ १५ ॥

उसके आगे गन्ध (सुशगु=इतर कुलेल आदि), माला, भस्त्र, तथा पी तैल आदिकी दुकानें, और मुख्य शिल्पी (कारिगर लोग) तथा क्षत्रियोंका निवास स्थान पुरषकी ओर होना चाहिये ॥ १३ ॥ दक्षिणपूरवके हिस्सेमें भाण्डागार (राजकीय कुटकर वस्तुओंके रखनेका मकान), अक्षपटल (आय-व्ययकी गणना करनेका मुख्य स्थान), तथा सोने चांदी आदिकी बनी हुई वस्तुओंके रखनेके लिये स्थान होने चाहिये ॥ १४ ॥ दक्षिणपच्छिम हिस्से में कुष्यगृह (सोने चांदीको जोड़कर अन्य सब धातुओंके रखनेके स्थान), तथा आयुधगार (शस्त्र अस्त्र आदि रखनेके स्थान) का निर्माण कराना चाहिये ॥ १५ ॥

ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककामान्तिकवलाध्यक्षाः पक्का-
न्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालापचारा वैश्याश्च दक्षिणां दिश-
मधिवसेयुः ॥ १६ ॥

इसके आगे नगरव्यावहारिक (नगरके मकान आदिका व्यापार करने वाले), कार्मान्तिक (राने आदि कार्योंके अधिकारी पुरष) तथा सेनाध्यक्ष, (अथवा इस सूत्रके "अध्यक्ष" पदको प्रत्येकके साथ जोड़ना चाहिये और फिर नगराध्यक्ष (नगरका निरीक्षक अधिकारी पुरष), धान्याध्यक्ष (अन्न आदिका निरीक्षक अधिकारीपुरष, व्यावहारिकाध्यक्ष (व्यापारियोंका निरीक्षक अधिकारीपुरष), कार्मान्तिकाध्यक्ष (रान तथा अन्य कारखानोंका निरीक्षक पुरष) और सेनाध्यक्ष; यह धर्म करना चाहिये) और पक्का हुआ अन्न बेचनेवाली दुकानें (होटल आदि) तथा शराब और मांसकी दुकानें; वैश्या तथा नट आदि और वैश्य, ये सब दक्षिण दिशाकी ओर बसाये जायें ॥ १६ ॥

पश्चिमदक्षिणं भागं सरोन्द्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च ॥ १७ ॥
पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः ॥ १८ ॥

पश्चिमदक्षिणके हिस्सेमें गधे और ऊंटोंका गुप्तिस्थान (रक्षागृह तथेले आदि), तथा कर्मगृह (ऊंट आदिके व्यापारका स्थान; अथवा ऐसी भूमि जहां नमूनोंके लिये पहिले छोटासा मकान आदि बनाकर फिर मिरा दिया जाता हो) बनवाया जाये ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तर भागमें शिबिका (पानकी) आदि धानोंके और रथ आदिके लिये मकान बनवाया जाये ॥ १८ ॥

ततः परमूर्णासुत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां
दिशमधिवसेयुः ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैपज्यगृहम्
॥ २० ॥ उत्तरपूर्व भागं कोशो गवाक्षं च ॥ २१ ॥

उसके आगे उन सूत बाँस तथा चमड़े आदिका काम करनेवाले; कवच हथियार तथा इनके भावरण (कवच) बनानेवाले और अन्य सूत भी पश्चिमकी ओर अपना निवासस्थान बनावे ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमकी ओर पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओंके रखनेका घर), तथा भौपधालयका निर्माण कराया जावे ॥ २० ॥ उत्तरपूर्वके हिस्सेमें कौश तथा गाय बैल और घोड़ोंके लिये स्थान निर्माण कराया जावे ॥ २१ ॥

ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारयो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दि-
शमधिवसेयुः ॥ २२ ॥ वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनि-
काया आवसेयुः ॥ २३ ॥

उसके आगे उत्तर दिशाकी ओर नगरके देवतास्थान तथा राजकुलके देवतास्थान, छुंहर मनिद्वार और ब्राह्मणोंके निवासस्थानोंका निर्माण कराया जावे ॥ २२ ॥ वास्तुके बीचकी खाली जगहोंमें (अर्थात् कोनोंकी छूटी हुई जगहोंमें) घोषी, दर्जी, जुलाहे आदि, तथा बाहर विदेशसे आनेवाले अन्य व्यापारी लोगों बसें ॥ २३ ॥

अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठकान् शिववैधवणाश्चि-
श्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत् ॥ २४ ॥ कोष्ठकालयेषु यथो-
देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत् ॥ २५ ॥

अपराजिता (दुर्गा), विष्णु, जयन्त, इन्द्र, इन देवताओंके स्थान तथा शिव, वैश्रवण (वरुण), आश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मादिता इन पाँच देवताओंके स्थान नगरके बीचमें ही बनवाये जावे ॥ २४ ॥ पूर्व कहे-हुए कोष्ठागार आदि स्थानोंमें भी अपने २ विचार या उस २ देशके अनुसार वास्तुदेवताओंकी स्थापना कीजावे ॥ २५ ॥

ब्राह्मेन्द्रयाम्यसनापत्यानि द्वाराणि ॥ २६ ॥ बहिः परि-
स्वायाः धनुःशतापकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः, यथा-
दिशं च दिग्देवताः ॥ २७ ॥

नगरके चारों दिशाओंके द्वारोंके भिन्न २ चार देवता होते हैं, उत्तरके द्वारका ब्रह्म देवता होता है, पूर्वका इन्द्र, दक्षिणका यम और पश्चिमका सेना-पति होता है ॥ २६ ॥ नगरके चारों ओरकी परिस्वासे बाहर सौ दण्ड (=दो सौ गज) की दूरीपर श्वेद, पुण्यस्थान, जङ्गल तथा जलदाय बनवाये जावे। और यहींपर उस २ दिशाके अनुसार भिन्न २ दिग्देवताओं (दिशाके देवताओं) की भी स्थापना कीजावे ॥ २७ ॥

उत्तरः पूर्वा वा श्मशानवाटः ॥ २८ ॥ दक्षिणेन वर्णोत्तराणाम् ॥ २९ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३० ॥

नगरके उत्तर या पूरवकी ओर श्मशान स्थान होना चाहिये ॥ २८ ॥ और दक्षिणकी दिशामें दृढ़ भादिका श्मशान होना चाहिये ॥ २९ ॥ जो इस नियमका उल्लंघन करे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥

पापण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वामः ॥ ३१ ॥ कर्मान्त-क्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत् ॥ ३२ ॥

पापण्ड (कापालिक आदि) तथा चाण्डालोंका निवासस्थान श्मशानके समीपही बननाया जाये ॥ ३१ ॥ नगरमें बगनेवाले परिवारोंके लिये निवास-भूमिका निर्णय, उनके कार्य तथा भूमिकी परिस्थितिके अनुसारही करना चाहिये । (अर्थात् व्यापार आदि कार्य और रेत आदिके न्यूनाधिक होनेके अनुसारही परिवारोंकी निवासभूमिकी न्यूनाधिकता होये) ॥ ३२ ॥

तेषु पुष्पफलवाटपण्डकेदारान्धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम् ॥ ३३ ॥

उन सेतोंमें फूलों तथा फलोंके बाग, कमल आदिके समूह, तथा अन्य शाक आदिकी बगारियां बनावे । और राजा तथा अधिकारी पुरपोंकी अनुमति लेकर अन्न तथा अन्य विविध विकेय वस्तुओंको भी उनमें पैदा करें । साधारणतया जो हलोंसे जोती जाने योग्य भूमिका, नाम 'कुल' है, इसलिये 'दश-कुलीवाट' शब्दका अर्थ—बीस हलोंसे जोती जाने योग्य भूमि, यह है । इतनी भूमिके बीचमें जलक्षेत्रके लिये एक कुआ होना चाहिये । (किन्हीं २ विद्वानोंके 'दशकुलीवाट' शब्दका अर्थ—दश बेलोंसे जोती जाने योग्य भूमि, यह किया है) ॥ ३३ ॥

सर्पिस्त्रिहृद्धान्यक्षारलवणमैपज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरतृणकाष्ठ लोहचर्माङ्गारस्नायुविपविपाणवेषुबल्कलसारदारुप्रहरणाश्मनिच - याननेकवर्षोपभोगमहान्कारयेत् ॥ ३४ ॥ नवेनानर्वा शोधयेत् ॥ ३५ ॥

घाँ, तेल, अन्न, क्षार, नमक, दवाई, सूखेशाक, भुस, सुखामांस, घास, लकड़ी (सोरता=गलाने आदिकी लकड़ी), लौहा, चमड़ा, कौयला, खायु (तंत), विप, सींग, बांस, छाल, सारदारु (दादिया मजबूत लकड़ी मकान आदिके लिये; अथवा चन्दन आदि), हथियार, कपड़ तथा पत्थर इन सबही वस्तुओंको दुर्गमें इतनी अधिक संख्यामें जमा करे, जोकि अनेक वर्षोंतक उप-

योगमें लाई जासकें ॥ ३४ ॥ जो वस्तु पुरानी होजावें, उनके स्थानपर दूसरी नई वस्तुओंको रखदिया जावे ॥ ३५ ॥

हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत् ॥ ३६ ॥ अनेक-मुख्यं हि परस्परभयात्परोपजापं नोपैतीति ॥ ३७ ॥ एतेनान्त-पालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल इन चारों प्रकारकी सेनाओंको, अनेक मुख्य अधिकारियोंके निरीक्षणमें रखे ॥ ३६ ॥ क्योंकि अनेक मुख्य व्यक्तियोंके होनेपर, एक दूसरेके भयसे, उनमेंसे कोई भी शत्रुसे जाकर नहीं मिल सकता । यदि एकही मुख्य निरीक्षक हो, तो वह अपने समान दूसरे किसीके न होनेके कारण निर्भय हुआ २ लोभ आदिके वशीभूत होकर कदाचित् शत्रुसे मिल सकता है ॥ ३७ ॥ इसी तरह अन्तपालोंके दुर्गोंका निर्माण तथा प्रबन्ध आदि भी समस्त लेना चाहिये । अर्थात् नगरके दुर्गोंके समानही जनपदकी सीमाके दुर्गोंका भी सब प्रबन्ध होना चाहिये ॥ ३८ ॥

न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान् ।

क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्या दापयेत्करान् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यप्रचारे द्वितीये अधिकरणे दुर्गनिवेशश्रुतुर्धो ऽप्याय ॥ ४ ॥

आदित पञ्चविंश ॥ २५ ॥

राजाको चाहिये कि वह नट, नर्तक, धूर्त तथा जुआरी आदिको किसी तरह भी नगरमें न बसने देवे, क्योंकि ये लोग नगर तथा जापदनिवासी पुरुषोंको अपने काम दिखाकर कुमार्गमें प्रवृत्त करानेवाले होते हैं । यदि राजा इन १ बसानाही चाहे तो जनपदके सीमाप्रान्तमें बसावे । और वहांपर रहने वाल अन्य परिवारोंकी ^{धर} इनसे भी राज्यकर वसूल किया जावे ॥ ३९ ॥

अध्यप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

२३ प्रकरण ।

सन्निधाताका निचयकर्म ।

{ सन्निधाता, भाण्डागाराधिपति या कोशाप्यक्षको कहते हैं । यह द्रव्यका किस प्रकार समझ करे, तथा किस तरह उसकी रक्षा करे, यही सब इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

संनिधाता कोशगृहं पथ्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं
बन्धनागारं च कारयेत् ॥ १ ॥

संनिधाता अर्थात् कोशाध्यक्ष कोशगृह, पथ्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओंके रखनेका घर), कोष्ठागार (स्वामि योग्य अन्न तथा घृत आदि वस्तुओंके रखनेका घर), कुप्यगृह, आयुधागार और बन्धनागार (कारागृह) का निर्माण करावे ॥ १ ॥

चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्त्रेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभ-
यतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपञ्जरं भूमिममं त्रितलमनेक-
विधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं
भूमिगृहं कारयेत् ॥ २ ॥

पानी और नमीसे अर्थात् सीलसे रहित बावड़ी (बावड़ीके समान एक गढ़ा) खुदवाकर, चारों ओरसे उसकी दीवारोंको और नीचेकी तलीको घड़ी २ शिलाओंसे चिनकर मजबूत बना दिया जावे, उससे बीचमें मजबूत लकड़ियोंके बने हुए पित्रके समान तितहा (तीन मजिल वाला), अनेक कोठरियोंसे युक्त, नीचे बीचमें तथा सयमे ऊपरके तलेमें बढिया पर्दा लगे हुए, दरवाजे वाले, यन्त्र युक्त सीढियोंके सहित (अर्थात् जिसकी सीढियोंपर विशेष नियम या समयके अनुसारही पुरख चढ़ सकता हो, अन्यथा नहीं, पैसा), तथा देवताओं की आकृतिसे युक्त किराडों वाला एक भूमिगृह बनवाया जावे ॥ २ ॥

तस्योपर्युभयतोनिपेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं
कोशगृहं कारयेत् ॥ ३ ॥ प्रासादं वा जनपदान्ते ध्रुवनिधिमा-
पदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत् ॥ ४ ॥

उसके ऊपर, दोनों ओरसे रफा हुआ (अर्थात् बाहर भीतर दोनों ओर से बन्द होनेवाला), सामने बरौन्देसे युक्त, पक्की ईंटोंसे मजबूत बना हुआ, चारों ओरसे विविधि द्रव्योंसे भरे हुए मकानोंसे घिरा हुआ कोशगृह अथवा प्रासाद बनाया जावे ॥ ३ ॥ जनपदके मध्य प्रांतमें, वर्ष्य पुरखोंके द्वारा, विपत्तिमें काम आनेके लिये एक ध्रुवनिधि (स्वामी कोश, जिसमेंसे हर समय वर्ष्य न किया जाय, ऐसे गुल राजाने) का निर्माण कराया जाय । (यह कार्य वर्ष्य पुरखोंसे इसलिये कराया जाता है, कि जिससे उनको इस कार्यके समाप्त होते ही मार दिया जाय, ताकि वे इस गुल रहस्यका किसीको पता न दे सकें) ॥ ४ ॥

पकेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं धिर्वृतस्त-
म्मापसारमुभयतः पण्यगृहं कोष्ठागारं च दीर्घबहुलशालं कक्ष्या-
वृतकुल्यमन्तः कुप्यगृहं तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं पृथग्धर्म-
स्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्ध-
नागारं कारयेत् ॥ ५ ॥

पकी इंटोंसे चिना हुआ, चारों ओर चार मकानोंसे युक्त, एक दरवाजा, अनेक कोठरियों और खनों (मज़िदों) से युक्त, चारों ओर खुले खम्भे वाले चबूतरोंसे घिरा हुआ पण्यगृह, तथा कोष्ठागार बनाना चाहिये । लम्बी २ बहुत शालाओंसे युक्त, चारों ओर कोठरियोंसे घिरी हुई दीवारों वाला, कुप्यगृह भीतरकी ओर बनाया जावे । भूमिगृहमें युक्त उस कुप्यगृहको ही आयुधागार बनाया जावे । बन्धनागारमें, धर्मस्थसे सजा पाये हुए, तथा महामात्रसे सजा पाये हुए पुरुषोंके लिये पृथक् २ स्थान बनाये जावें । (धर्मस्थ=स्ववहार निर्णैता । महामात्र=ससिधाता समाहर्ता आदि) । तथा स्त्री पुरुषोंके लिये बिककुल अल-हदा २ स्थान बनाये जावें । बाहर निकलनेके मार्ग, तथा अन्य चारों ओरके उसके स्थानोंकी अच्छी तरह रक्षा कीजावे, इसप्रकारका बन्धनागार अर्थात् कारागृह बनवाना चाहिये ॥ ५ ॥

सर्वेषां शालाखातोदपानवच्च स्नानगृहाग्निविषत्राणमार्जार-
नकुलारक्षाः स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत् ॥ ६ ॥

इन सबही कोशगृह आदि स्थानोंमें, शाला परिक्षा तथा कुओंकी तरह स्नानगृह आदिभी बनवाये जावें । तथा अग्नि और विषके प्रयोगसे इनकी रक्षा कीजावे (रक्षाका उपाय देखो —मिशान्तप्रणिधि प्रकरण) विषसे रक्षा होनेके लिये बिही और न्योले आदिका रक्षना भी उपयोगी है । तथा इन स्थानोंकी रक्षा, रक्षक पुरुषोंके द्वारा अच्छी तरह करवावे । और इनके अपने २ देवताओंकी पूजा भी करवावे । इनके देवता इसप्रकार हैं —कोशगृहका देवता कुबेर, पण्यगृह और कोष्ठागारकी देवता धी, कुप्यगृहका विश्वकर्मा, आयुधागारका यम और बन्धनागारका वरुण देवता समस्तना चाहिये ॥ ६ ॥

कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ तजा-
तकरणाधिष्ठितः पुराणं नयं च रत्नं सारं फल्गुकुप्यं वा प्रतिगृ-
हीयात् ॥ ८ ॥

कोष्ठागारमें वृष्टिको मापने वाले एक कुण्ड (गल्ल=छोटासा गढ़ा यन्त्रके समान बनाया जावे, जिसमें वृष्टिका पानी पदनेसे वृष्टिकी द्यत्ताका पता करग

जाय) की स्थापना कीजावे, इसके मुहका घेरा एक भरवि अर्थात् चौथीस अंगुल होना चाहिये ॥ ७ ॥ कोष्ठामाराध्यक्ष, उस २ वस्तुके अन्ते जानकार पुरुषोंकी सहायतासे नये और पुरानेकी विवेचना करके रख, सार (चन्दन आदि), फल्यु (वख आदि), और कुप्य (लकड़ी चमड़ा घांस आदि विविध, कोष्ठगार के लिये उपयोगी वस्तुएं) आदि पदार्थोंका समूह करे ॥ ८ ॥

तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ९ ॥ सारो-
पधा मध्यमः ॥१०॥ फल्युकुप्योपधा तच्च तावच्च दण्डः ॥११॥

यदि कोई पुरुष असली रसनी जगह कोष्ठगारमें नकली देवे, और छलसे असली रखका अपहरण करे, तो अपहरण करने और करानेवाले दोनोंको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ९ ॥ चन्दन आदि सार पदार्थोंमें छल करनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥ फल्यु और कुप्य पदार्थोंमें छल करनेपर, वह पदार्थ (उसकी तरहका दूसरा, या उसका मूल्य) लेलिया जावे, और उतनाही उसको दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

रूपदर्शकाविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १२ ॥ अशुद्धं
छेदयेत् ॥ १३ ॥ आहर्तुः पूर्वः माहसदण्डः ॥ १४ ॥ शुद्धं
पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १५ ॥ विपर्यये मूलद्रि-
गुणो दण्डः ॥ १६ ॥

सिक्कोंको परखने वाले पुत्रपाके द्वारा सिक्कोंकी शुद्धताको जानकर हिरण्य (सुवर्णका सिक्का) आदिका समूह करे ॥ १२ ॥ और जो उन सिक्कोंमेंसे नकली या मिलावटी निकले, उसे उसी समय काट देवे, जिससे कि उसका फिर व्यवहार न हो ॥ १३ ॥ इसप्रकार बनावटी हिरण्य आदि सिक्कोंको खाने वाले २ रूपकों प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ धान्याधिकारी पुत्रपशु, पूरा तथा नया अन्न लेवे ॥ १५ ॥ इससे विपरीत होनेपर उसे मूलसे (अर्थात् जितने मूल्यका वह अन्न है, उससे) दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् ॥ १७ ॥ सर्वाधि-
करणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणादिचतुष्यणाः परमपहारेषु
पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ॥ १८ ॥

इसहीके समान, पण्य, कुप्य तथा आयुधके विषयमें भी नियम सम-
झने चाहियें ॥ १७ ॥ प्रत्येक अधिकार स्थानपर काम करने वाले अधिकारी पुरपको, उसके सहायकी पुरपको, तथा इन दोनोंके नीचे काम करने वाले अन्य पुरपको, प्रथमचार किसी वस्तुका अपहरण करनेपर एक पणसे छागाकर चार

पणतक दण्ड दिया जावे । (किरी २ पुस्तकमें 'पणादिचतुष्पणा' के स्थान पर 'पणद्विपणचतुष्पणा' ऐसा पाठ है । उसका अर्थ-यमन उनकी एक पण दी पण और चार पण दण्ड दिया जावे, यह करना चाहिये) । यदि फिर भी वे अपहरण करते चले जावें, तो अपहरणके क्रमानुसार उन्हें प्रथमसाहस, मध्यम साहस तथा उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे । यदि पांचवीं बार फिर अपहरण करें, तो प्राण दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥

कौशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः ॥ १९ ॥ तद्व्याघृत्यकाराणामर्घदण्डः ॥ २० ॥ परिभाषणमविज्ञाने ॥ २१ ॥

कानाधिकारा पुरण अर्थात् कोशावच्छेद, यदि सुलग आदि लगाकर कोश का अपहरण करल, तो उस प्राणदण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ तथा उसके नीचे कार्य करन वाल अन्य परिचारक पुरणको आधा दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ यदि उन लोगका इस घातका पता न लग्य हा कि सुलग द्वारा कोशावच्छेद घन अपहरण किया है, तो उनको दण्ड न दिया जाय, किन्तु कवल निन्दा पूर्वक उपाह्वेय वचनाके द्वारा उनका भयना दजावे ॥ २१ ॥

चौराणामभिप्रधर्पणे चित्रो घातः ॥ २२ ॥ तस्मादाप्तपुरुपाधिष्ठितः संनिधाता निचयाननुतिष्ठेत् ॥ २३ ॥

यदि अन्य चार पुरण इसप्रकार भीत पाकर घन अपहरण करल, तो उनका चित्रग्रह किया जाय, अर्थात् उन्हें पहलेपूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ इसलिये सन्निधता अर्थात् कोशावच्छेदको चाहिये, कि वह आप्त (विश्वम्) पुरणसे पुन हुआ २ ही, घनतग्रह आदिका कार्य बरे ॥ २३ ॥

बाह्यमाभ्यतरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि ।

यथा पृष्ठो न सज्येत व्ययशेषं च दर्शयेत् ॥ २४ ॥

इत्यध्वक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरण सन्निधातृनिचयकर्म पद्ममोऽध्याय ॥ ५ ॥

आदित पद्मविश ॥ २६ ॥

सन्निधाताको चाहिये, कि वह बाह्य अर्थात् जनपदसे होनेवाली और आभ्यन्तर अर्थात् नगरसे होनेवाली आयको अर्द्धी तरहसे जान । यहाँतक जान कि यदि उससे सौ बपे पीछकी भी आय पूरी जाये, तो यह बिना किसी हकावटके शट कहदे । और शय बचे हुए धनको कोशमे राखा दिखता रहे ॥ २४ ॥

शध्वक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय ।

२४ प्रकरण ।

समाहर्ताका करसंग्रह कार्य ।

{ देशमें उत्पन्न होनेवाली सब तरहकी फसलोंका अध्यक्ष समाहर्ता होता है । यही उनमेंसे राजाके भद्रको (राजकरको) संग्रह करता है । आजकल समाहर्ताको कलक्टर कहा जाता है । इसीके कार्योंका निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं सनिं मेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावे-
क्षेत ॥ १ ॥

समाहर्ता, दुर्ग, राष्ट्र, सनि, मेतु वन व्रज, तथा व्यापारीभागोंका निरीक्षण करे । अर्थात् इनके विषयमें उद्योग अव्यवस्था अच्छी तरह विचार करे ॥ १ ॥

शुल्कं दण्डः पोतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः
सुरा घना सूत्रं तैलं घृतं क्षारं भौगणिकः पण्यसंस्था वेद्या घृतं
वास्तुर्कं फालक्षिलिपिगणो देवताध्यक्षो द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम्-
॥ २ ॥

शुल्क (जुगी), दण्ड (प्रथम साइम आदि), पोतव ताराज् वाट आदिका ठीक करना), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (नियत तथा बर्गोचे आदिकी सीमा, नापकर निश्चित करनेवाला अधिकारी) पुरूप=पटवारी कानूगोह आदि), मुद्राध्यक्ष मचाध्यक्ष, प्राणियवाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, तैलविक्रयी, घृतविक्रयी, क्षारविक्रयी (गुड आदिका बचनेवाला) सौवणिक (सुवर्णाधिकारी पुरूप), पण्यसंस्था (दुकान), वेद्या, घृत, वास्तुर्क (गृह निर्माण करनेवाले राज आदि), बडहं, लुहार तथा सुनार आर पथं शरी आदिका वारीक काम करनेवाले कारीगरोंका संग्रह, देकालपत्रा निरीक्षक, नगर आदिसे द्वारपाल तथा नद नर्भक आदिसे आदय धन 'दुर्ग' कहाता है अर्थात् जुगी आदि शारीय उपायोंसे राजकरके रूपमें लिया हुआ धन 'दुर्ग' कहा गया है ॥ २ ॥

सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं
विचीतं वर्तनी रज्जूथोररज्जूथ राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

सीता (कृषि=सैती), भाग (धान्य आदिका छठा हिस्ता), बलि (उपहार अथवा भिक्षा), कर (फल तथा वृक्ष आदिके सम्बन्धमें राजदेय धन),

तर (नदी आदि पार होनेका टैक्स), नाव (नौकाध्यक्षके द्वारा लभ्य धन), पट्टन (करबोले लभ्य धन), विवीत (घरागाहके द्वारा प्राप्त धन), यत्तनी (सदकोंका टैक्स), रज्जू (विषयपाल=भूमिनिरीक्षक पुरखोंके द्वारा प्राप्त धन), तथा चोररज्जू (चोरोंको पकड़नेके लिये गांवसे प्राप्त हुआ धन), ये सब धनसंग्रहके द्वार यहां 'राष्ट्र' शब्दसे कहे गये हैं ॥ ३ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधा-
तवः खनिः ॥ ४ ॥ पुष्पफचवाटपण्डकेदारमूलवापाः सेतुः ॥ ५ ॥
पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम् ॥ ६ ॥

सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत आदि मणि, मोती, मूगा, शंख, छोटा, लवण, भूमि, परधर, तथा रसधातु, ये सब पदार्थ खानसे प्राप्त होनेके कारण 'खनि' शब्दसे कहे गये हैं ॥ ४ ॥ फूल तथा फलोंके बाग, केला सुपारी आदि, अन्नके खेत, अदरक तथा हलदी आदि पस्तुओंके उत्पादस्थान, इन सबका यहां 'सेतु' शब्दसे कथन किया गया है ॥ ५ ॥ गधव आदि पशु, हरिण, दूधर निम्न २ प्रकारकी लकड़ी आदि, तथा हाथियोंके जंगलही यहां 'वन' शब्दसे समझने चाहिये ॥ ६ ॥

गोमहिषमजाविकं खरोष्टमश्वाश्चतराश्च व्रजः ॥ ७ ॥ स्थल-
पथो वारिपथश्च वणिक्पथः ॥ ८ ॥ इत्यायशरीरम् ॥ ९ ॥

गाय, भैस, बकरी, भेड़, गधा, ऊंट, घोड़े, खचर आदि 'व्रज' कहाते हैं ॥ ७ ॥ स्थलमार्ग और जलमार्गकोही यहां 'वणिक्पथ' कहा गया है ॥ ८ ॥ यही आयका शरीर है। अर्थात् राजाको जिन २ मार्गोंसे आय होसकती है, वे यही हैं। धनकी आमदनीके ये ही स्थान हैं ॥ ९ ॥

मूलं भागो व्याजी परिधः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् ॥ १० ॥

मूल (अन्न तथा फल आदिसे बेचकर प्राप्त किया धन), भाग (अन्न आदिका छटा हिस्सा), व्याजी (व्यापारियोंसे, तुला मान आदिके न्यून होनेपर, फिर न्यून न हों इसलिये दण्डरूपमें लिया हुआ आमदनीका भीसवा हिस्सा, अर्थात् प्रति सिकड़ा पांच। देखो—अधि ३ अ० १७ सू. १५), परिध (आतुरद्रव्य अर्थात् जिस द्रव्यका कोई वारिस न हो), क्लृप्त (नियत कर), रूपिक (नमकके व्यापारियोंसे लिया हुआ नमकका आठवां हिस्सा), अत्यय (धर्मरक्षीय कण्टकशोधन आदि अधिकारियोंके द्वारा अपराधियोंपर किये गये जरामांका धन), ये सब आयके स्थान, आयके मुख कहाते हैं। क्योंकि आमदनीके जितने द्वार पताये हैं, उतन सबमेंसे येही मुख्य हैं ॥ १० ॥

देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तः पुरं महानसं दूतप्रवर्तनं
कोष्ठागारमायुधागारं पुष्यगृहं कुष्यगृहं कर्मान्तो विष्टिः पच्यर्ध
रथद्विपपरिग्रहो गोमण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालनाटाः काष्ठतृणवा-
टांश्चेति व्ययशरीरम् ॥ ११ ॥

देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन (शान्ति तथा पुष्टि आदिके
निमित्त पुरोहितको दिया हुआ धन), भक्त पुर, महानस, दूतका इधर उधर
भेजना, कोष्ठागार, आयुधागार, पुष्यगृह, कुष्यगृह, कर्मान्त (कृषि आदि
ध्यापार), विष्टि (इष्टपूर्वक करायें हुए कार्यका व्यय), पैदल, घोडा, रथ, हाथी
इन चारों प्रकारकी सेनाओंका समूह, गाय, भैल, बकरी आदिका इष्य, जगली
पशु, हरिण, पक्षी तथा व्याघ्र आदि हिंसक जानवरोंकी रक्षाक स्थन, लकड़ी
घास तथा घाँचे आदि, ये सब इष्यका शरीर हैं। अर्थात् इनके निमित्त धन
इष्य करना पड़ता है। ये इष्यके स्थान हैं ॥ ११ ॥

राजवर्ष मासः पक्षा दिवसश्च व्युष्टं वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां
तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः पृथगाधिमासक इति
कालः ॥ १२ ॥

राजाके राज्याभिषेक समयसे लगाकर वर्षे मास पक्ष और दिन, इन चार
चीजोंको व्युष्ट कहा जाता है। इसका तात्पर्य यही है, कि उस राजाके समयमें
जो भी कार्य हैं, उनका लेखन आदिमें, इन चारोंका निर्देश किया जावे, जैसे
अमुक राजवर्षके अमुक मास अमुक पक्ष और अमुक दिनमें उस पुरपने इतना
धन तथा अन्य कोई पदार्थ दिया इत्यादि। राजवर्षके तीन विभाग किये जावें,
वर्षा, हेमन्त (जाडा), ग्रीष्म (गरमी)। ये तीनों ऋतु कहे जाते हैं), इस प्रत्येक
विभागमें आठ पक्ष होंगे, (वर्षा आदि एक एक ऋतु चार चार महीने
का होता है, एक महीनेमें दो पक्ष = शुक्ल और कृष्ण, चार मासकी
एक ऋतुमें आठ पक्ष हुए, उनमेंसे प्रत्येक ऋतुके तीसरे तथा सातवें
पक्षमें एव एक दिन कम माना जावे (एक पक्ष पन्द्रह दिनका होता है,
तीसरा तथा सातवा पक्ष चौदह २दिन काही माना जावे), बाकी प्रत्येक ऋतुके
छहों पक्ष पूरे (पन्द्रह २ दिनोंके) माने जावें। और इससे पृथक् एक अधि
मास (अधिकमास=मलमास) माना जावे (सौरमासके अतिरिक्त जबकि म
हीनोंकी गणना चन्द्रमाकी गतिके अनुसार की जाती है, तो प्रत्येक मासमें प्राय
दो एक दिनकी न्यूनता होती चली जाती है, चान्द्र गणनाके अनुसार हुई २
हस न्यूनताको पूरा करनेके लिये लगभग प्रत्येक डार्डे वर्षके बाद, बारह महीने

के अतिरिक्त एक तेरहवा महीना और बढ़ा दिया जाता है, इसीका नाम अधि मासया मलमास होता है । साधारण तथा राजकी व्यवहारोंके लिये यही काल समझना चाहिये ॥ १२ ॥

करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययी नीती च ॥ १३ ॥ संख्यानं प्रचारः शरीरारस्थापनभादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम् ॥ १४ ॥

समाहर्त्ताको उचित है कि यह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, तथा नीतीकी ठीक २ व्यवस्था करे ॥ १३ ॥ करणीय छ प्रकारका होता है, — पस्थान (अमुक ग्रामसे इतना धन लेना चाहिये, ऐमा निर्णय), पचार (देश अर्थात् पृथक् २ देशके अन्तर विभागोंका ज्ञान), शरीरारस्थापन (जनपद और नगरोंकी इतना आय है, इस प्रकार आयके शरीरका निश्चय), भादान (अन्न तथा हिरण्य आदिका ठीक समय पर लेलना), सर्वसमुदयपिण्ड (प्रत्येक ग्राम तथा प्रत्येक नगरमें उत्पन्न हुए धान्य आदिका पक्वित करना तथा उसकी जानकारी रखना), संजात (प्रत्येक उपायने प्राप्त किये हुए धनके परिमाणका ज्ञान रखना ये छ करणीय हैं । समाहर्त्तांक अवश्य करने योग्य कार्य होनेके कारण ये 'करणीय' शब्दमें कह गये हैं ॥ १४ ॥

कोशार्पितं राजहारः पुरव्ययश्च प्रविष्ट परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाक्षतं चापातनीयमेतत्सिद्धम् ॥ १५ ॥

सिद्ध भी छ प्रकारका होता है, कोशार्पित (खजानेमें जमा कर दिया हुआ), राजहार (राजान अपने निजी कार्योंके लिये समाहर्त्तासे लिया हुआ), और पुरव्यय (नगरके शाला निर्माण आदि कार्योंमें खर्च हुआ २), यह तीन प्रकारका धन 'प्रविष्ट' शब्दसे कहा जाता है । परमसंवत्सरानुवृत्त (पिछले साल का बचा हुआ धन, जो कि अभी प्रविष्ट नहीं हुआ, अर्थात् न खजानेमें जमा किया गया है, न राजान अपने कार्यों के लिये लिया है, और न नगरके कार्योंमें व्यय हुआ है), शासनमुक्त (जिस धनके सम्बन्धमें राजाने अभी तक अपना कोई लिखित आज्ञा नहीं दी), और मुखाक्षत (जिस धनके सम्बन्धमें राजाने मौखिक आज्ञा देदी है) यह तीन प्रकारका धन आपातनीय कहा जाता है । इस तरह तीन प्रकारका प्रविष्ट और तीन प्रकारका आपातनीय मिलकर कुल छ प्रकारका 'सिद्ध' कहा जाता है ॥ १५ ॥

सिद्धिभरुर्मयोग दण्डशेषमाहरणीयं वलारुतप्रतिस्तब्धम्-
वसृष्टं च प्रशोध्यमेतच्छेषमसारमल्पसारं च ॥ १६ ॥

छ; प्रकारका ही शेष होता है,—सिद्धप्रकर्मयोग (धान्य आदिके मिलजानेपर उन्हें अपने अधीन न करनेके लिये प्रवृत्ति करना) तथा दण्ड शेष (सेनाके उपयोगसे बचा हुआ धन) सुखपूर्वक लिये जा सकनेके कारण इन दोनोंका नाम 'आहरणीय' है । राजाके प्रिय पुरपाने बलपूर्वक अपनी इच्छा-नुसार न दिया हुआ धन (तारय यह है कि जो पुरप राजाके सुंद लगे हुए होते हैं, वे यह सोचते हैं कि समाहर्ता हमारा क्या करसकता है ? जान बूझकर राजदेय धन समाहर्ताको नहीं देते । ऐसा उन लोगोंसे प्राप्त न हुआ र धन), और अवसृष्ट अर्थात् नगरके मुखिया लोगोंने अपनी इच्छानुसार न दिया हुआ धन 'प्रशोध्य' नामसे कहा जाता है । क्योंकि इन दोनों प्रकारके धनोंको वसूल करना समाहर्ताके लिये बड़ा यत्साध्य काम है, इसलिये इनका नाम प्रशोध्य रक्ता गया है । इस प्रकार दो तरहका 'आहरणीय' दो तरहका 'प्रशोध्य' मिलकर चार तरहका ओर असार (निष्फल द्रव्य हुआ र धन) तथा अक्षय्य (बहुत व्यय करकेभी जिसका फल थोड़ाही मिलाहो) ये सब मिलाकर छ प्रकारका शेष होता है ॥ १६ ॥

वर्तमानः पर्युपितो अन्यजातश्चायः ॥ १७ ॥ दिवसानुवृत्तो
वर्तमानः ॥ १८ ॥ परममांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्यु-
पितः ॥ १९ ॥

आय तीन प्रकारका होता है,—वर्तमान पर्युपित और अन्यजात ॥ १७ ॥ जो आय प्रतिदिन हो, अर्थात् दैनिक आय, वर्तमान आय कहाता है ॥ १८ ॥ पिछले वर्षका जो धन उस समय वसूल न हुआ हो, उसका भय वसूल होना; पहिले अध्यक्षके समयमें हिसाब आदिकी गद्दबद्दीसे न मालूम हुए र धनका मालूम होजाना; अथवा शत्रुके देशसे आया हुआ धन; यह 'पर्युपित' आय कहाता है ॥ १९ ॥

नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्व पारिहीणिकमौपायनिकं डमर-
गतकस्वमपुत्रकं निधिशान्यजातः ॥ २० ॥

भूले हुए धनका फिर याद आजाना, अपनाही पुरपानेसे दण्डरूपमें लिया हुआ, करसे अतिरिक्त किन्हीं वस्तु उपायोंसे अथवा अपने प्रभुत्वके कारण प्राप्त किया हुआ धन, चौपायोंसे सस्य आदिके नष्ट किये जानेपर उसके दण्डरूपमें प्राप्त हुआ र धन, अटकके रूपमें प्राप्त हुआ धन, शत्रुसे फलह होनेपर उस शत्रुके प्रभुकी सेनासे अवहरण किया हुआ धन तथा जिम धनका कोई दायभागी न हो इस तरहका प्राप्त हुआ र धन 'अन्य जात' आयके नामसे कहा जाता है ॥ २० ॥

निक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः ॥२१॥ विक्रये
पण्यानामर्घवृद्धिरूपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वा
वृद्धिरित्यायः ॥ २२ ॥

किसी कार्यपर छगाई हुई सेनाके लिये व्यय किये जाने वाले धनमेंसे बचा हुआ धन, औपचार्य आदिके व्ययके लिये निश्चित किये हुए धनमेंसे बचा हुआ धन, तथा दुर्ग वा महलके लिये खर्च किये जाने वाले धनमेंसे बचा हुआ धन, यह 'व्ययप्रत्याय' कहाता है । यह भी एक प्रकारकी आय है ॥२१॥ आयके और भी पांच प्रकार हैं — विक्रय समयमें वस्तुओंकी कीमत बढ़-जाना, उपजा (प्रतिपिद्द वस्तुओंके बेचनेसे प्राप्त हुआ धन), बाट आदिके न्यूनधिक करनेसे अधिक प्राप्त हुआ २ धन, व्याजी (देखो—इसी अध्यायका १० वां सूत्र) और किसी वस्तुके बेचनेके समयमें खरीदारोंकी परस्पर स्पर्धासे जो मूल्य बढ़कर मिल जावे । इस प्रकार यद्वा तक आयका निरूपण किया गया ॥ २२ ॥

नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः
॥ २३ ॥ दिवसानुवृत्तो नित्यः ॥ २४ ॥ पक्षमाससंवत्सरलाभो
लाभः ॥ २५ ॥ तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति
॥२६॥ व्ययसंजातादायव्यविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति
॥ २७ ॥

अब व्ययका निरूपण करते हैं, व्यय चार प्रकारका होता है —नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ, लाभोत्पादिक ॥ २३ ॥ जो व्यय प्रतिदिन नियम पूर्वक होता हो, उसे नित्य कहते हैं ॥ २४ ॥ पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक लाभके लिये जो धन व्यय किया जाता है, उस व्ययको 'लाभ' कहते हैं ॥ २५ ॥ नित्यव्यय और लाभव्ययके साथ जो और अधिक व्यय (व्ययके लिये नियमित निर्णीत धनसे और अधिक धन, व्यय) होजावे, तो उसे पयासल्य नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक कहा जाता है ॥ २६ ॥ सब तरहके व्ययसे बचा हुआ, आय और व्ययकी अच्छीतरह गणना करके टीक २ निश्चित हुआ धन 'नीवी' कहाता है । यह दो प्रकारका होता है —प्राप्त (जो खजानेमें जमा कर दिया गया हो) और अनुवृत्त (जो खजानेमें जमा किये जानेके लिये तैयार रक्ता हो) ॥ २७ ॥

“ एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।
 हासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ॥ २८ ॥ ”
 इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे समाहर्षसमुदयमस्यापनं पद्ये उप्यायः ॥ ६ ॥
 आदितः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

बुद्धिमान् समाहर्षाको चाहिये, कि वह इमीप्रकार राजधनका संग्रह करे । और आयकी वृद्धि तथा व्ययका हास, हिसाब आदि ठीक करके दिखाता रहे । तारपर्य यह है कि वह इसप्रकारका यत्न करे, जिससे आय बराबर बढ़ती जावे और व्यय यथाशक्य कम होजाय । यदि किसी अवस्थामें व्यय अधिक करके भी भविष्यमें विशेष आयकी सम्भावना हो, तो इस तरहसे भी आयकी सिद्धि करे ॥ २८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें लडा अध्याय समाप्त ।

सातवा अध्याय ।

२५ प्रकरण ।

अक्षपटलमें गाणानिक्रयाधिकार ।

{ राजकीय धनके आय व्ययका लेखा जित स्थानमें बंठकर किया जावे, उसे 'अक्षपटल' कहते हैं । गाणानिक (गणना करने वाले झुके आदि) जो कार्य करते हैं, उसका नाम गाणानिक्य है, उसका अधिकार अर्थात् निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।

अक्षपटलमध्यक्षः ग्राह्यमुत्समुदद्भ्युसं वा विभक्तोपस्थानं नि-
 बन्धपुस्तकस्थानं कारयेत् ॥ १ ॥

अध्यक्ष (आय व्ययका प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरष), अक्षपटल (आय व्ययके प्रधान कार्यालय) का निर्माण करावे । उसका दरवाजा पूरव या उत्तरकी ओरका होना चाहिये, प्रत्येक छोटे बड़े लेखाकों (झुके) के लिये पृथक् पृथक् स्थान होने चाहिये, आय व्ययके रजिस्टारोंके रखनेका, उसमें नियमित तथा मुश्किल प्रयत्न होना चाहिये ॥ १ ॥

तत्राधिकरणानां संस्थाप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्र-
 योगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवैतनविष्टिप्रमाणं रत्न-
 सारकरगुह्युत्पानामर्षप्रतिवर्णरूपप्रतिमानमानोन्मानावमानमाण्डं

देशग्रामजातिकुलसङ्घातनां धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानं राजोपजी-
विना प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तचेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां
रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च सं-
धिविक्रमप्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्य कारयेत् ॥ २ ॥

उस अक्षपटलमें क्या २ कार्य होने चाहियें? यह बताते हैं:—द्रव्योंके उत्पात्ति स्थानोंकी नामनिर्देशपूर्वक संख्या, जनपद तथा यहाँकी हरतरहकी उपजको रजिस्टरोंमें लिखा जावे, अर्थात् अमुक जनपदमें इतने २ स्थानोंसे इतना २ धन प्राप्त हुआ। स्थान तथा हरप्रकारके कारणोंके भाग धारके सम्बन्धमें वृद्धि (व्याज), अक्ष (पुरणोंका नियुक्त करना), व्यय (धान्यदिरण्य आदिको कार्यमें लगाना), प्रयाग (तैयार हुआ २ अन्न आदिका समूह), व्याजी (देखो:—अधि० २, अध्या० ६, सूत्र १०), योग (अच्छे और बुरे द्रव्यकी मिलावट), स्थान (ग्राम आदि), घेतन, विष्टि (वेगार) आदि सब कार्योंका उल्लेख रजिस्टरमें किया जाय। रत्न सार पत्न्यु और कुप्य पदार्थोंके मूल्य, प्रत्येक वस्तुका गुण, तोल, लम्बाई चौड़ाई, ऊँचाई तथा असली मूलधनका उल्लेख रजिस्टरोंमें किया जावे। देश ग्राम जाति कुल तथा सभा सोसाईटियोंके धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा विशेष परिस्थितियोंका भी उल्लेख किया जावे। राजोपजीवी पुरुषोंके प्रग्रह (पूजा, मन्त्री पुरोहित आदिके प्रति किया हुआ विशेष सत्कार), निवासस्थान, भोग (भेंट आदि), परिहार (कर आदिका न लेना), भक्त 'उनके घोड़े हाथी आदिका खर्च देना', तथा घेतन आदिका भी उल्लेख किया जावे। महारानी तथा राजपुत्रोंके रत्न और भूमि आदिकी प्राप्ति भी उल्लेख किया जावे। राजा, महारानी, और राजपुत्रोंको निरर्थक दिये जाने वाले धनसे अतिरिक्त दिया हुआ धन, विशेष उत्सव आदिसे प्राप्त हुआ धन, तथा रोगोंको शान्त करनेके लिये जनतासे प्राप्त हुआ धन, इनको भी रजिस्टरमें लिख लिया जावे। मित्र तथा शत्रुओंके सन्धि विग्रह और उनको दिये हुए तथा उनसे लिये हुए धन आदिका भी पुस्तकोंमें उल्लेख कर लिया जावे। ये ही सब कार्य हैं, जो कि अक्षपटल अर्थात् राजकीय कार्यालयोंमें होने चाहियें ॥ २ ॥

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीची-
मुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥
उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु तज्जातिकमध्यधं कुर्यात् ॥ ४ ॥

तदनन्तर सब अधिकारों (उपस्थितियों या कार्यस्थानों) के करणीय, सिद्ध, श्रेय, आय, व्यय, नीची (देशी — विठ्ठल छडा अन्वय), उपस्थान (कार्यकर्त्ताओंकी उपस्थिति); प्रचार, चरित्र तथा संस्थान आदि सबको लिखकर राजाको दे देवे ॥ ३ ॥ उत्तम, मध्यम तथा नीच कार्योंपर उनके अनुकूलही अभ्यक्ष नियत किये जावें ॥ ४ ॥

सामुदायिकेष्वनकलसिकं यमुपहत्य न राजानुत्तप्येत ॥५॥

एकही कार्यको करनेवाले बहुतसे कर्मचारियोंमेंसे उसहीको अध्यक्ष बनाया जावे, जोकि कार्य करनेमें सबसे निपुण हो, यदि कई कर्मचारी समानही निपुण हों, तो उनमें जो गुणी हो, तथा समान गुणियोंमें भी जो यशस्वी हो (यह 'अथरुसिक' शब्दका भव है), इनमेंसे भी ऐसे पुरुषको अध्यक्ष बनाया जाय, जिसको कि भ्रष्ट होनेपर दण्ड देनेके पश्चात् राजाको अनुताप या पश्चात्ताप न हो, इसका तात्पर्य यह है कि राजा ऐसे अध्यक्ष परोंपर आश्रय अवश्य अपने निरुत्तम श्रेणियोंको नियुक्त न करे, क्योंकि किसी अवस्थामें इनको दण्ड देनेपर राजाको दुःखही होता है ॥ ५ ॥

सहग्राहियः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः ॥ ६ ॥ त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः ॥ ७ ॥

यदि कोई अध्यक्ष अपहरण किये हुए राजकीय धनको फिर न दसके, तो वह धन उसके साथी (जिनोंने अपहृत धनमें हिस्सा लिया हो), प्रतिभू (जामिन), गणक (कर्मोपजीवी-अध्यक्ष के नीचे कार्य करनेवाले अन्य कर्मचारी), उसके (अध्यक्षके) पुत्र, भाई, छी, लडकी, अपवा नीकर लोग देवें (पहिलेके न होनेपर ही दूसरे देवे। यदि उस धन राशिको एक पूरा न कर सके, तो उसी क्रमसे और दूसरे करें) ॥ ६ ॥ तीसरो जीवत (३३०) दिनतकका एक कर्मसंवत्सर समझना चाहिये। (जामिक ऋतुमें एक १ दिन कम होते जानेसे यह समय समझना चाहिये) ॥ ७ ॥

तमापाटीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात् ॥८॥ करणाधिष्ठित-मधिमासकं कुर्यात् ॥ ९ ॥

उस संवत्सरको आषाढ़ मासकी पूर्णमासी तक समाप्त हुआ समझे। यदि कोई अध्यक्ष आदि बीच में ही कार्य पर नियुक्त किया गया हो, तो उसे उतने दिनको काटकर वेतन दे दिया जाने जिसने पूरा काम किया हो, उसे पूरा वेतन दे दिया जावे ॥ ८ ॥ पतिमासमें किस पुरुषने किनका काम किया

है, इस बातका पता उपस्थितिके गणक (हाजिरीका बलक, अर्थात् सब कर्मचारियोंकी उपस्थिति का लेखक) से लेना चाहिये ॥ ९ ॥

अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारं प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहांपयति ॥ १० ॥

अध्यक्षको चाहिये कि वह सम्पूर्ण जनपदके कार्यालयोंकी व्यवस्थाका ज्ञान गुप्तचरोंके द्वारा प्राप्त करता रहे। क्योंकि देशके समाचार और उसकी पूर्व स्थिति को गुप्तचरोंके द्वारा न जानता हुआ अध्यक्ष, अपनी अज्ञानतासे धर्मोंकी रक्षामें रुकावट डालने वाला हो जाता है, अर्थात् उसकी अनवधानतासे कर्मचारियोंमें इस प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं, कि जिससे आम दनीमें रुकावट पड़जाती है ॥ १० ॥

उत्थानकृशासहत्वादास्येन शब्दादिभिन्द्रियार्थेषु प्रमादेन संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन कार्यार्थिष्वनुग्रहचुद्धिः कामेन हिंसाचुद्धिः कोपेन विद्याद्रव्यवह्यभापाश्रयादर्पेण तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लोभेन ॥ ११ ॥

१) अर्थोत्पत्तिमें बाधा डालने वाले निम्नलिखित आठ दोष हैं, —सबसे पहिला अज्ञान (जो पिछले सूत्रमें बताया जा चुका है), आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध, दर्प और लोभ, परिधर्मके दुखको न सहन करनेके कारण आलस्यके द्वारा, गाना बजाना तथा स्त्रियों में आसक्तिके कारण प्रमादके द्वारा, निन्द्य अधर्मके तथा अनर्थके कारण भयसे, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करनेके कारण कामके द्वारा, इसी तरह किसी पर क्रूरता करनेके कारण क्रोधके द्वारा, विद्या धन तथा राजा आदि का प्रिय होनेके कारण दर्पसे, तुला मान तर्कना तथा हिसाबमें गड़बड़ कर उलके कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी गण आमदनी में रुकावट डाल देते हैं ॥ ११ ॥

तेषामानुपूर्व्या यावानर्थोपघातस्तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः ॥ १२ ॥

ऐसे पुरुषोंको दण्ड दिया जाये, जो किसी प्रकार भी राजकीय धर्मका नाश करते हैं। मनु आचार्यके अनुयायियों का कथन है, कि जो कर्मचारी जितना अपरोध (धन अपहरण आदि) करे, उसको इन अज्ञान आदि दोषोंके क्रमके अनुसार एक २ गुना अधिक दण्ड दिया जाये। अर्थात् यदि अज्ञान से हानि हुई हो, तो हानि के बराबर ही उसे दण्ड दिया जाये, आलस्यके

कारण होने पर दानसे दृग्गता, प्रसादके कारण होने पर तिगुना, इसी तरह आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ १२ ॥

सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः ॥ १३ ॥ दशगुण इति बार्हस्पत्याः ॥ १४ ॥ विंशतिगुण इत्यौशनसाः ॥ १५ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ १६ ॥

परन्तु पाराशर आचार्यके अनुयायी कहते हैं, कि सब ही अपराधोंमें समानता होनेके कारण, सबको ही अठगुना दण्ड देना चाहिये ॥ १३ ॥ बृहस्पति के अनुयायी आचार्योंका सिद्धान्त है, कि सबको ही दसगुना दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ शुक्लाचार्यके शिष्य कहते हैं, कि सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिये ॥ १५ ॥ परन्तु आचार्य कौटल्यका अपना मत है, कि जो जितना अपराध करे, उसको उसके अपराधके अनुसार ही दण्ड दिया जाना चाहिये ॥ १६ ॥

गाणनिक्यान्यापाढीमागच्छेयुः ॥ १७ ॥ आगतानां समुद्र-पुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्र संभाषणरोधं कारयेत् ॥ १८ ॥

छोटे २ सब कार्यालयोंके अध्यक्ष, अपना हिसाब दिखानेके लिये, प्रतिवर्ष आपादके महानिमें प्रधान कार्यालय में आवें ॥ १७ ॥ आवे हुए उन लोगोंका, उस समय तक परस्पर भाषण न होने दे, जब तक कि उनके पास राजकीय नोहर लगे हुए रजिस्टर तथा ब्ययसे यथा हुआ शेष धन विद्यमान रहे । (अर्थात् जब उनका हिसाब जाच लिखा जाय, और याकी रकम लेली जाय तबही वे लोग आपस में मिल सकें ॥ १८ ॥

आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीवीमवहारयेत् ॥ १९ ॥ यथाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत् ॥ २० ॥

आय व्यय तथा शेष परिमाणको सुन कर, जो कुछ उनके पास शेष हो बर ले लिया जावे ॥ १९ ॥ अध्यक्षने आय धनका जितना परिमाण बताया है, यदि रजिस्टरमें उससे अधिक निकले, और इसी तरह जितना व्ययका परिमाण बताया है, रजिस्टरमें उससे कम निकले, तो यह आयकी अधिक और व्ययकी जितनी रकम कम बतलाई हो, उसका आठगुना उम अध्यक्ष पर सुर्माणा किया जावे ॥ २० ॥

विपर्यये तमेव प्रति स्यात् ॥ २१ ॥ यथाकालमनागतानामपुस्तनीविकानां वा देयदशबन्धो दण्डः ॥ २२ ॥

१ यदि इस बातका निश्चय हो जाय, कि जितनी आमदनी हुई है, उससे कुछ अधिक रकम रजिस्टरमें लिखी गई है, अथवा घस्तुत जितना ध्यय हुआ है, उससे कम ही रजिस्टरमें दर्ज किया गया है, तो इस-कारणसे दोषमें जितना अन्तर पड़े, उसके सम्बन्धमें अध्यक्षको दण्ड न दिया जाय । प्रत्युत जो आय व्ययकी न्यूनधिकता हुई है, वह उसीकी समझा जावे । अर्थात् व्यय में जो कम लिखा गया है, वह धन अध्यक्षको दे दिया जावे ॥ २१ ॥ जो अध्यक्ष, निर्दिष्ट समयमें, अथवा अपने रजिस्टर और दोष धनको लेकर हिसाब दिखानेके लिये उपस्थित न होवे, तो उसको जितना देना हो, उससे दसगुना जुमाना उत्तरपर किया जाय ॥ २२ ॥

कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिवधतः पूर्वः साहसदण्डः
॥ २३ ॥ निपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ॥ २४ ॥ प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविपममात्राः ॥ २५ ॥ पृथग्भूतो मिथ्यामादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात् ॥ २६ ॥

हिसाब देखनेके लिये, प्रधान अध्यक्षके ठीक समय पर उपस्थित हो जाने पर, जो अध्यक्ष भरता हिसाब न दिखावे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ यदि प्रधान अध्यक्ष, ठीक समय पर आकर हिसाब न देवे, तो उसे दुगुना प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ राजाके प्रधान कर्मचारी महामात्र अदि, आय व्यय तथा नीची सम्बन्धी अथवा परस्परकी सम्पूर्ण अनुष्ठान प्रवृत्तियोंका, जनपदके साथ २ (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषाको भी भरती सभामें मिलाकर उनके साथ २) अट्टी तरह समझावे । ॥ २५ ॥ जो इनमें (महामात्रोंमें) से प्रतिकूट अथवा मिथ्या बोले, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥

अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत ॥ २७ ॥ मासादूर्ध्व मासद्विद्यतोत्तरं दण्डं दद्यात् ॥ २८ ॥ अल्पशेषनीविकं पञ्चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ॥ २९ ॥

द्रव्य एकत्रित करनेका जो नियत समय है, यदि संग्रहकर्ता उस समय तक न करे, तो एक महीना और भी उसकी प्रतीक्षा करे, अर्थात् एक महीनेका अवकाश, स्रष्ट करानेके लिये और दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके न देवे, तो उत्तरपर प्रतिमासके हिसाबसे दोसौ मुद्रा जुमाना किया जावे ॥ २८ ॥ जिस अध्यक्षके पास राजदेय धन थोड़ा

ही शेष रह गया हो, उसकी केवल पाच दिन तक प्रतीक्षा करे । तदनन्तर उसे भी दृष्टनीय समझा जावे ॥ २९ ॥

कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्त-
नानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ॥ ३० ॥ .

कोशधनके साथ २ रजिस्टर आदि लाने वाले अप्यक्षको निम्नलिखित आठ बातोंसे परीक्षा किया जावे, प्रथम धर्म, अर्थात् यह देखा जावे कि यह वस्तुतः ही ऐसा धर्मात्मा है, या दूर्गम है, उसके व्यवहारको देखा जावे, आचार विचारको देखा जावे, उसकी पहिली स्थितिको देखा जावे, उसके हिसाब तथा किये हुए कार्योंको देखा जावे, उसके एक कार्यको देखकर दूसरेका अनुमान किया जावे, और गुप्तचरोंक द्वारा भी उसका परीक्षण किया जावे ॥ ३० ॥

दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत्
॥ ३१ ॥

दिन, पाच दिन, पक्ष (पन्द्रह दिन), महीना, चार महीना और साल, इस प्रकार विभाग करके आय व्यय तथा नीची का लेखा करे सात्पर्य यह है — जब वर्ष प्रारम्भ हो, एक २ दिन वी अलहदा' २ आय आदि जोड़ता रहे; जब पाच दिन हो जाय तो उसे इकट्ठा जाड़कर रखे, इसी तरह पांच पाच दिन तक के अङ्गोंको इकट्ठा जोड़कर रखता रहे, जब पन्द्रह दिन हो जाय, तो उन पांच २ दिनके तीन अङ्गोंको फिर इकट्ठा जोड़ ल, इसी तरह महीनेके बाद दो पक्षके दो अङ्गोंको, चार महीनेके बाद एक २ महीनेके चार अङ्गोंको, और सालके बाद चार २ महीनेके तीन अङ्गोंको आपसम जोड़कर इकट्ठा कर लेवे । इस प्रकार सब हिमाय साफ रहत ॥ ३१ ॥

व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिगन्धक,
प्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत् ॥ ३२ ॥

आयके लिखनेके साथ २ इन बातोंको रजिस्टरमें और दर्ज करे — व्युष्ट (राजाका धर्म, मास, पक्ष और दिन, दूखो अधि० २, अध्याय ६, सूत्र ३२), दश, काल, मुख (आयमुख और आयशरीर), उत्पत्ति (आय आदिसे उत्पन्न हुई वृद्धि), अनुवृत्ति (एक स्थानसे दूसरे स्थानमें लेजाना), प्रमाण, कर देनेवालेका नाम, दिखानेवाले अधिकारीका नाम, लेखक और लेनेवालेका नाम । इन बातोंके लिखनेके साथ २ ही आयका लेखा करे ॥३२॥

व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणज्ञापकोद्धारक-
निघातृकप्रतिग्राहकैश्च व्यर्था समानयेत् ॥ ३३ ॥

तथा इय्यके साथ इन बातोंको लिखे — व्युष्ट, देश, काल, मुख लाभ (पक्ष, मास, या वर्षमें जो प्राप्ति होवे), कारण (किस निमित्तसे इय्य हुआ है, यह कारण), देय (जो बीज दी जावे उसका नाम), योग (मिले हुए द्रव्यमें कितना अच्छा और कितना बुरा है), परिमाण, आज्ञापक (इय्य के लिए आज्ञा देनेवाला नाम), उद्धारक (द्रव्य ग्रहण करनेवाला), निधा वृक्ष (भाण्डागारिक) प्रतिमाहक (लेनेवाला ग्राहण आदि, अर्थात् वह ग्राहण है या अन्य क्षत्रियादि, यह भी लिखा जावे), इन सब बातोंके साथ २ इय्यका लेखा किया जावे ॥ ३३ ॥

व्युष्टदेशकालमुत्पानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगो-
दायकेथ नीवीं समानयेत् ॥ ३४ ॥

नीवींके साथ इन बातोंको लिख — व्युष्ट, देश, काल, मुख, अनुवर्तन रूप (उस द्रव्यका स्वरूप), लक्षण (उस द्रव्यके विशेष चिन्ह आदि), परिमाण, निक्षेपभाजन (जिस पात्रमें वह द्रव्य रक्खा जावे), गोपायक (उसका रक्षक पुरष), इन सबको लिखकर ही नीवींका लेखा किया जावे ॥ ३४ ॥

राजार्थे स्थकारणिकस्याप्रतिभततः प्रतिषेधयतो चाज्ञां निर-
न्धादायव्ययमन्यथा वा विकल्पयतः पूर्णः साहसदण्डः ॥ ३५ ॥

जो कारणिक (गणना कार्यपर नियुक्त हुआ २ पुरष, बलकं आदि), राजाके हिरण्य आदि लाभको पुस्तकमें नहीं लिखता, अथवा उसकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, तथा अन्य इय्यके सम्बन्धमें नियमसे विपरीत बहाना करता है, उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३५ ॥

क्रमानहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिसतो
द्वादशपणो दण्डः ॥ ३६ ॥

क्रमधिरुद्ध (जहा जिस वस्तुके लिखनेका क्रम है उसको छोड़कर इधर उधर लिख देना), उत्क्रम (उलट पुलट लिख देना, दो वस्तुओंको एक दूसरेके स्थानपर लिख देना), अविज्ञात (किसी वस्तुको बिना समझे जाने लिख देना), तथा पुनरुक्त (एक वस्तुको बार २ लिख देना, इत्यादि), लिखने वाले लेखकको १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥

नीवीमवलिसतो द्विगुणः ॥ ३७ ॥ भक्षयतो ऽष्टगुणः ॥ ३८ ॥
नाशयतः पञ्चवन्धः प्रतिदानं च ॥ ३९ ॥

यदि नीवींको इत प्रकार लिखे, तो द्विगुण अर्थात् २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ यदि उलट पुलट लिखकर नीवींको रखा जावे (अर्थात् गवत

करले), तो आठ गुना अर्थात् ९६ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥ यदि नीवी का नाश कर दे, अर्थात् नटनर्त्तिक आदिको देकर अपठ्यय करदे तो पांचगुना (अर्थात् ६० पण) दण्ड दिया जावे, और वह वस्तु वापस ली जावे ॥३९॥

मिथ्यावादे स्तेयदण्डः ॥ ४० ॥ पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ॥ ४१ ॥

मिथ्या बोलनेमें चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ दिसावके विषयमें पहिले किसी बातको स्वीकार न करके, पीछे स्वीकार का लेनेपर अर्थात् दिसावकी जांच के समयमें मान लेनेपर चोरीसे दुगुना दण्ड दिया जावे। पूछे जानेपर पहिले किसी बातको भूलकर, फिर पीछे सोचकर कदनेमें भी चोरीसे दुगुना दण्ड ही दिया जावे ॥ ४१ ॥

अपराधं सहेताल्पं तुप्येदल्पे ऽपि चोदये ।

महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥ ४२ ॥

द्वयध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिहरणे अक्षपटले गणनिबन्धाधिकारः

सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितोष्टाविंशः ॥ २८ ॥

राजाको चाहिये कि वह अध्यक्षके थोड़ेसे अपराधको सहन करले, और यदि वह आमदनीको पहिलेकी अपेक्षा थोड़ा भी बढ़ावे तो उसपर अवश्य प्रसन्न भयवा सन्तुष्ट होवे। महान उपकार करनेवाले अध्यक्षका जीवन पर्यन्त, हर तरहसे सरकार करता रहे ॥ ४२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

२६ प्रकरण

अध्यक्षोंके द्वारा अपहृत धनका प्रत्यानयन ।

कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥१॥ तस्मात्पूर्वं कोशमयेक्षेत ॥ २ ॥

सम्पूर्ण कार्योंका शिभर कोशपर है ॥ १ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि सबसे प्रथम वह कोशके विषयमें विचार करे, अर्थात् कोश सदा वृद्धिको ही प्राप्त होता रहे, उसका क्षय कदापि न हो, इस बातका ध्यान रखे ॥२॥

प्रचारसमृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरनिग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसंपत्पण्यवाहुल्यमुपसर्गपमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोशवृद्धिः ॥ ३ ॥

जनपदकी सम्पत्तिका बढ़ाना, जनपदके पुराने आचार व्यवहारका खयाल रखना, चोरोंका निग्रह करना, अध्यक्षोंको धनापहरण करनेसे रोकना, (अथवा प्रजासे रिश्वत आदि लेकर प्रजाको कष्ट पहुचाने वाले अध्यक्षोंसे उसकी रक्षा करना) छोटे बड़े सब तरहके अन्नोंकी उपज करवाना, जल स्थल में उत्पन्न होने वाली विनैय वस्तुओंको खूब बढ़ाना, अग्नि आदिके उपद्वोंसे स्वय तथा जनपदको बचाना, कर आदिका ठीक समय पर वसूल करना, (अथवा कर आदिसे किसीको भाफ न करना, अर्थात् सबसे ही कर आदि लेना), और हिरण्य आदिकी भेंट लेना, ये सब कोशवृद्धिके उपाय हैं, ऐसा करनेसे कोश सदा बढ़ता ही रहता है ॥ ३ ॥

प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः
परिवर्तनमपहारश्चेति कोशक्षयः ॥ ४ ॥ सिद्धीनामसाधनमनव-
तारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः ॥५॥ तत्र दशबन्धो दण्डः ॥६॥

कोशके क्षयके कारण भी आठ होते हैं,—प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन, और अपहार। अगळे सूत्रोंसे क्रमशः इन सबके-रक्षण पताते हैं—॥४॥ राजग्राह्य कर आदिका समग्र करना, समग्र करके भी उसे अपने अधिकारमें न करना, तथा अधिकारमें करके भी उसे खजानेमें न पहुचाना, यह तीन प्रकारका 'प्रतिबन्ध' होता है ॥ ५ ॥ प्रतिबन्धके द्वारा जो अध्यक्ष, कोशका क्षय करे, उसके ऊपर उस कोशसे दसगुना जुर्माना किया जावे ॥ ६ ॥

कोशद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगाः प्रयोगः पण्यव्यवहारो व्यवहारः
॥ ७ ॥ तत्र फलद्विगुणो दण्डः ॥ ८ ॥

कोशद्रव्योंसे अपने आपही लेन देन करने लग जाना 'प्रयोग' कहाता है। तात्पर्य यह है,—अध्यक्ष, कर आदि वसूल करके अपने पास रख लेता है, उस धनको किसी गुरुवको सूद पर देदेता है, जब वह धन व्याज सहित उस से वसूल हो जाता है, तो व्याज अपने पास रख लेता है, और मूलधन खजानेमें भेज देता है, इसको 'प्रयोग' कहते हैं। तथा कोश द्रव्योंका व्यापार करने लग जाना 'व्यवहार' कहाता है ॥ ७ ॥ प्रयोग तथा व्यवहारके द्वारा जो अध्यक्ष कोशका क्षय करे, उसे उस कोशधनसे दुगुना जुर्माना किया जावे ॥ ८ ॥

सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं प्राप्तं वैत्यवस्तारः ॥ ९ ॥ तत्र
पञ्चबन्धो दण्डः ॥ १० ॥

जो अभ्यक्ष, राजप्राण धनका प्रभाओंसे ग्रहण करनेका जो समय निश्चित है, उसे तो टाल देता है, और उरकोच (रिश्वत) लेनेकी इच्छासे, दूसरे समयमें प्रजाको तग करके उस धनको एकत्रित करता है, इसको 'अवस्तार' कहते हैं ॥ ९ ॥ अवस्तारके द्वारा जो कोशका क्षय करे, उसे क्षयसे पाचगुना दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

कल्मषमायं परिहापयति व्ययं वा निवर्धयतीति परिहापणम्
॥ ११ ॥ तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १२ ॥

जो अभ्यक्ष अपने कुप्रबन्धके कारण निपत आयको कम कर देता है, और व्ययको बड़ा देता है, इस प्रकारके कोशक्षयका नाम 'परिहापण' है । ॥ ११ ॥ परिहापण द्वारा जो कोशका क्षय करे, उसे क्षयसे चौगुना दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥

स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः ॥ १३ ॥ तत्र
रत्नोपभोगे घातः सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः फल्गुकुप्यो-
पभोगे तच्च तावच्च दण्डः ॥ १४ ॥

रत्न सार फल्गु कुप्य आदि राजद्रव्योंका अपने आप भोग करना, तथा अपने दृष्ट मिश्रोंसे इन वस्तुओंका भोग करना 'उपभोग' कहा जाता है ॥ १३ ॥ जो उपभोगके द्वारा कोशका क्षय करे, उसे रत्नोंका उपभोग करने पर प्राण दण्ड, सार द्रव्योंका उपभोग करने पर मध्यम साहस दण्ड, तथा फल्गु और कुप्य द्रव्योंका उपभोग करने पर वे द्रव्य वापस लिये जावें और उतना ही दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनम् ॥ १५ ॥ तदुप-
भोगेन व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

राजद्रव्योंको दूसरे द्रव्योंसे बदल देना 'परिवर्तन' कहा जाता है । अर्थात् अचछेसे किसी राजद्रव्यको अपने पास रख लेना, और उसकी जगह उस तरह का दूसरा घटिया द्रव्य रख देना 'परिवर्तन' होता है ॥ १५ ॥ परिवर्तनके द्वारा कोशका क्षय करने पर 'उपभोग' के समान ही दण्ड समझना चाहिये । अर्थात् जो रत्नका परिवर्तन करे, उसे प्राण दण्ड जो सार द्रव्यका परिवर्तन करे, उसे मध्यम साहस दण्ड आदि ॥ १६ ॥

सिद्धमायं न प्रवेशयति निवर्द्धं व्ययं न प्रयच्छति प्राप्तं नीर्वीं
विप्रतिजानीत इत्यपहारः ॥ १७ ॥ तत्र द्वादशगुणो दण्डः ॥ १८ ॥

प्राप्त हुए २ आयको जो पुस्तकमें नहीं लिखता, तथा नियमित व्यय को पुस्तकमें लिखकर भी व्यय नहीं करता, और प्राप्त हुई नौवीं का अपलाप करता है, अर्थात् अपने हाथमें होन पर भी कहता है कि मेरे पास नहीं है, यह तीन प्रकारका 'अपहार कदाता है ॥ १७ ॥ अपहारके द्वारा जो अप्यक्ष कोशक्षय करे, उसे क्षयसे बारहगुना दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥

तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत् ॥ १९ ॥ पूर्व सिद्धं पश्चादव-
तारितम् ॥ २० ॥ पश्चात्सिद्धं पूर्वमवतारितम् ॥ २१ ॥ साध्यं
न सिद्धम् ॥ २२ ॥ असाध्यं सिद्धम् ॥ २३ ॥ सिद्धमसिद्धं
कृतम् ॥ २४ ॥ असिद्धं सिद्धं कृतम् ॥ २५ ॥ अल्पसिद्धं बहु-
कृतम् ॥ २६ ॥ बहुसिद्धमल्पं कृतम् ॥ २७ ॥ अन्यत्सिद्धम-
न्यत्कृतम् ॥ २८ ॥ अन्यतः सिद्धमन्यतः ॥ २९ ॥

अप्यक्ष, चालीस प्रकारसे राजद्रव्यका अपहरण कर सकते हैं। उन चालीस उपायोंका यहाँ इसीलिय निरूपण किया जाता है, कि राजा इन सबको जानकर, अध्यक्षोंको अपहरण करनेसे रोके, और अपहृत धनको वापस लेसके ॥ १९ ॥ वे उपाय ये हैं—पहिली फसलमें प्राप्त हुए द्रव्यको, दूसरी फसल आने पर पुस्तकमें चढाना ॥ २० ॥ दूसरी फसलमें प्राप्त होने वाले राजद्रव्यकी कुठ प्रासिको, पहिली ही फसलमें, किताबमें लिख लेना, (यह कार्य राजाको घोका देनेके लिये किया जाता है, जिससे कि राजा उसे बड़ा कार्य कुशल और अपना विश्वासपात्र समझले ॥ २१ ॥ राजप्राप्त करको रिश्वत आदि लेकर छोड़ देना, अर्थात् उसे बसूल न करना ॥ २२ ॥ और जिनको राजकर भाग है, अर्थात् देवालया, और विद्वान् प्राप्ति आदि जिनको राजकर नहीं देना पड़ता, उनसे लुक छिपकर तथा धरा धमकाकर, कर बसूल कर लेना ॥ २३ ॥ कर देने वाले पुरपके कर दे देने पर भी, इसने नहीं दिया, यह कइ देना, अधवा रजिस्टरमें लिख देना ॥ २४ ॥ कर देने वाले पुरपके कर न देने पर भी रिश्वत आदि लेकर पुस्तकमें यह लिख देना, कि इसने कर दे दिया है ॥ २५ ॥ घोड़े प्राप्त हुए धनको भी, रिश्वत आदि लेकर, पूरा प्राप्त होगया है, यह किताबमें लिख देना ॥ २६ ॥ पूरे प्राप्त हुए धनको भी, घोड़ा प्राप्त हुआ है, इसप्रकार पुस्तकमें लिख देना ॥ २७ ॥ जो द्रव्य मिला है, उसकी गणना दूसरा लिख देना, (गेहूँ मिला है, जौ लिख देना) ॥ २८ ॥ एक पुरपके प्राप्त हुआ है, दूसरे पुर-
पके नाम लिख देना, (देवदत्तसे धन प्राप्त हुआ है, परन्तु यजदत्तसे रिश्वत लेकर उसके नाम लिख देना) ॥ २९ ॥ ।

देयं न दत्तम् ॥ ३० ॥ अदेयं दत्तम् ॥ ३१ ॥ काले न
दत्तम् ॥ ३२ ॥ अकाले दत्तम् ॥ ३३ ॥ अल्पं दत्तं बहुकृतम्
॥ ३४ ॥ बहु दत्तमल्पं कृतम् ॥ ३५ ॥ अन्यदत्तमन्यत्कृतम्
॥ ३६ ॥ अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम् ॥ ३७ ॥

देय वस्तुको न देना. (राजाने किसीको स्वर्ण या रजत देनेकी आज्ञा दी है, उसे स्वर्ण आदि न देना); ॥ ३० ॥ तथा कालान्तरमें अदेय (फलपु कुप्य आदि) वस्तु किसी तरहसे देना ॥ ३१ ॥ समयपर किसीको न देना (राजाने यज्ञादि करनेके लिये किसीको धन देनेकी आज्ञा दी है, उसे उस समयपर न देना) ॥ ३२ ॥ तथा रिश्वत आदि लेकर फिर पीछेसे देना ॥ ३३ ॥ फिर भी थोड़ा देकर बहुत लिया देना; (अथवा राजाने किसीको सौ मुद्रा देनेको कहा, अध्यक्षने सौकी जगह डेढ़सौ लिएकर सौ उसे देदेना, और पचास अपनेपास रख लेना) ॥ ३४ ॥ तथा बहुत देकर थोड़ा लिखना; (अथवा राजाने किसीको सौ मुद्रा देनेको कहा, किताबमें सौ लिख लेना, किन्तु उसे अस्सीही देना) ॥ ३५ ॥ और कोई द्रव्य देनेको कहा गया, तथा उसकी जगह और कुछ देदिया (राजाने किसीको सोना दे देनेकी आज्ञा दी, उसे उसकी जगह चांदी देदी गई) ॥ ३६ ॥ दूसरेको देनेके लिये कहे जानेपर, उससे दूसरेको दे देना (देवदत्तको देनेके लिये कहे जानेपर, यज्ञदत्तको रिश्वत लेकर दे देना) ॥ ३७ ॥

प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम् ॥ ३८ ॥ अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम् ॥ ३९ ॥
कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम् ॥ ४० ॥ दत्तमूल्यं न प्रविष्टम् ॥ ४१ ॥

राजप्राप्त धन वसूल करके, तथा अपने अधिकारमें करके भी उससे इन्कार करदेना अर्थात् उसे राजानेमें जमा न करना; (अथवा किसी विशेष आयश्यकताके यहांसे प्रजाओंसे धन वसूल करके भी, उसे कौशमें जमा न करना) ॥ ३८ ॥ कर न लेकरही अर्थात् कौशमें धन न जमा किये जानेपर भी, रिश्वत लेकर जमा हो गया है, इस प्रकार पुस्तकमें लिख देना ॥ ३९ ॥ यज्ञ आदि कुप्य द्रव्य, राजाकी आज्ञाने उम समय मूल्य न देकरही लेकर, फिर पीछेसे उनका थोड़ासा मूल्य कपड़ेवालेको देदेना ॥ ४० ॥ बहुतसा मूल्य देकर खरीदा हुआ कुप्य द्रव्य, उसका उतना मूल्य किताबमें न लिखना ॥ ४१ ॥

संक्षेपो विक्षेपः कृतः ॥ ४२ ॥ विक्षेपः संक्षेपो वा ॥ ४३ ॥
महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम् ॥ ४४ ॥ अल्पार्घं महार्घेण वा

॥ ४५ ॥ समारोपितो ऽर्घः ॥ ४६ ॥ प्रत्यवरोपितो वा ॥ ४७ ॥

रात्रयः समारोपिता वा ॥ ४८ ॥ प्रत्यवरोपिता वा ॥ ४९ ॥

बहुतसे मनुष्योंसे मिलकर इकट्ठा लिया जानेवाला 'कर' पृथक् २ सत्रसे बांट २ कर लेना ॥ ४२ ॥ जो पृथक् २ लेना हो, उसे सत्रसे इकट्ठा मिलकर लेना ॥ ४३ ॥ बहुमूल्य वस्तुको अल्प मूल्यकी वस्तुके साथ परिवर्तन कर लेना ॥ ४४ ॥ अथवा अल्पमूल्यकी वस्तुको बहुमूल्य वस्तुके साथ परिवर्तन करलेना ॥ ४५ ॥ बाजारमें वस्तुओंका भाव बढ़ा देना ॥ ४६ ॥ तथा इसीप्रकार वस्तुओंका भाव घटा देना; (इस तरह पणप्राप्यक्ष धन अपहरण करता है) ॥ ४७ ॥ वेतनके दिन बढ़ाकर लिख देना; (अर्थात् पांच दिनका वेतन देकर सात दिनका वेतन दिया गया है, इसप्रकार लिख देना) ॥ ४८ ॥ अथवा वेतनके दिन घटाकर देना, (अर्थात् इस दिनके वेतनकी स्वीकृति होनेपर, भृत्यको आठ दिनकाही वेतन देना) ॥ ४९ ॥

संवत्सरो मासविपमः कृतः ॥ ५० ॥ मासो दिवसविपमो वा ॥ ५१ ॥ समागमविपमः ॥ ५२ ॥ सुखविपमः ॥ ५३ ॥ धार्मिकविपमः ॥ ५४ ॥ निर्वर्तनविपमः ॥ ५५ ॥ पिण्डविपमः ॥ ५६ ॥ वर्णविपमः ॥ ५७ ॥ अर्घविपमः ॥ ५८ ॥ मानविपमः ॥ ५९ ॥ मापनविपमः ॥ ६० ॥ माजनविपमः ॥ ६१ ॥ इति हरणोपायाः ॥ ६२ ॥

(अधिक मास रहित संवत्सरको अधिक मास धाला बताकर, उस मासके लाभको स्वयं लेलेना ॥ ५० ॥ अथवा महानेके दिन घटा घटाकर, (उसके अधिक लाभको स्वयं लेलेना ॥ ५१ ॥ नौकरोंमें गड़बड़ करके धन लेना, (बहुतसे कार्य करने वाले नौकरोंमेंसे दो एकके नाम वैसेही लिखे हुए हों, उनके नामका वेतन और भत्ता स्वयं लेलेना) ॥ ५२ ॥ एक आपसुरसे हुई २ आमदनीको, दूसरे आयसुरसे प्रसिद्ध करदेना ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणादिको धर्मार्थ दिये जाने वाले धनमेंसे, कुछ उन्हें देकर शेष स्वयं लेलेना ॥ ५४ ॥ किसी कार्यके करनेमें त्रुटिल उपायसे अतिरिक्त धन घसूल करलेना, (जैसे कर उधरानेके समयमें, आज सबको करदेना पड़ेगा, ऐसी आज्ञा देकर, किन्हींसे रिश्वत लेकर उन्हें छोड़ देना, अर्थात् उसदिन उनसे कर न उधराना) ॥ ५५ ॥ बहुतसे मनुष्योंसे इकट्ठा मिलकर लिखे जाने वाले करमें, किसीसे रिश्वत लेकर उसे छोड़ देना, तथा बाकी मनुष्योंसे पूरा धन घसूल करलेना ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंकी विपमतासे धनका अपहरण करना, (जिनमें आज्ञा नान्यसे केवल

प्राह्मणही पार हुए है, उनसे शुक नहीं लिना गया, यह करकर नावध्यक्ष उस दिनवाँ आयको अपहरण कर सकता है ॥ ५७ ॥ छायनियोंमें मूल्य आदिके व्यवस्थित न रहनेसे, उसको कुछ अधिक घडाकर लाभ उठाना ॥ ५८ ॥ तोल आदिमें फर्क डालकर पापदा उठाना ॥ ५९ ॥ नापनेमें विषमता उत्पन्न करके लाभ उठाना ॥ ६० ॥ पात्र विषमक विषमतासे लाभ उठाना, (जैसे-घृतसे भरे हुए ता घड़े देदो, इसप्रकार गालिकके कहनेपर छोटे २ सौ घड़े देदोना, और बड़े २ सौ घड़े दिये हैं, यह पुस्तकमें लिख देना) ॥ ६१ ॥ यहातक अपहरण करनेके चालीस उपायोंका निरूपण किया गया ॥ ६२ ॥

तत्रोपयुक्तनिधायकनिचन्धरुप्रतिग्राहकदायकदापरुमन्त्रिवै-
यावृत्त्यकरणैकैकशां ऽनुपृच्छीत ॥ ६३ ॥ मिथ्यावादे चैषां युक्त-
समो दण्डः ॥ ६४ ॥

यदि किसी अध्यक्षके विषयमें, राजाको धन अपहरण करनेका सन्देह होजाये, तो राजा, उसके (उस अध्यक्षके) प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरष को, भाण्डागारिक (तजानची) को, लेखको, रने वालेको, कर दिलाने वाले राजपुरषको, अपराधीके सलाहकारको, तथा उस मन्त्रीके नौकरोंको पृथक् २ बुलाकर यह पूछे, कि इस अध्यक्षने धनका अपहरण किया है या नहीं ॥ ६३ ॥ यदि इनमेंसे कोई झूठ बोले, तो उसे अपराधीके समानही दण्ड दिया जा-
वे ॥ ६४ ॥

प्रचारे चावघोपयेत् अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति
॥ ६५ ॥ प्रज्ञापयतो यथोपघातं दापयेत् ॥ ६६ ॥

आर राजा सम्पूर्ण जनपदमें घोषणा बरबादेवे, कि अमुक अध्यक्ष यदि किसीको पीडा देकर धन अपहरण करे, तो वे यहा आकर सूचना देवें ॥ ६५ ॥ अपहरणकी सूचना दिये जानेपर, उस पुरषको अध्यक्षसे उतनाही धन दिलवाया जावे ॥ ६६ ॥

अनेकेषु चाभियोगेष्वपच्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्व भजेत
॥ ६७ ॥ वैषम्ये मंत्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६८ ॥

अनेक अभियोगोंके होनेपर, (अर्थात् एही समयमें यदि बहुतसे पुरुष अपना धन अपहरण किये जानेकी सूचना देवें,) यदि अभियुक्त सब अभियोगोंको स्वीकार न करे, तो एही अभियोगमें पूरी गवाही, तथा अन्य पुरे सचूत मिलनेपर सब अभियोगोंका अपराधी उसे समझा जावे ॥ ६७ ॥ यदि अभियुक्त अनेक अभियोगोंमेंसे कुछ अभियोगोंको स्वीकार करले, और

कुछ न करे; तो जिनको स्वीकार न करे, उनके लिये अपनी सफाईके गवाह, तथा अन्य सबूतोंको भी उपस्थित करे ॥ ६८ ॥

महत्यर्थापहारे चालेनापि सिद्धः सर्वे भजेत ॥६९॥ कृत-
प्रतिघातावस्थः सूचको निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत ॥ ७० ॥
द्वादशमंशं भृतकः ॥ ७१ ॥

बहुत अधिक अर्थका अपहरण करनेपर, यदि थोड़ेसे धनके भी गवाह मिल जायें, तो सम्पूर्ण धनका अपहरण करनेका अपराध, उसपर सिद्ध समझा जावे ॥ ६९ ॥ यदि धनका अपहरण करने वाले अभ्यक्षकी सूचना, कोई व्यक्ति राजाके दितकी कामनासेही देता है, (अर्थात् किसीको नुकसान पहुंचाने या द्वेषादिके कारण नहीं देता); ऐसे व्यक्तिको, अपहृत धनका ठीक पता लगानेपर, धनका छटा हिस्सा दे दिया जावे ॥ ७० ॥ यदि सूचना देने वाला व्यक्ति, उसका भृत्य हो, तो उसे उस धनका बारहवां हिस्सा देना चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत ॥ ७२ ॥
अनिष्पन्ने शरीरं द्रैरण्यं वा दण्डं लभेत ॥७३॥ न चानुग्राह्यः ॥७४॥

यदि बहुतसे धनके अपहरणका अभियोग हो, अभियोगके सिद्ध होनेपर उसमेंसे थोड़ाही धन वसूल होवे, तो सूचना देने वाले व्यक्तिको उतनेही धनमेंसे हिस्सा दिया जावे ॥ ७२ ॥ यदि अभियुक्तपर अपराध सिद्ध न हो सके, तो सूचना देने वाले पुरुषको शरीर दण्ड दिया जावे, अथवा उचित आर्थिक दण्ड दिया जावे ॥ ७३ ॥ इसप्रकारके अपराधी पर अनुग्रह कदापि न करना चाहिये ॥ ७४ ॥

निष्पत्तौ निक्षिपद्वादमात्मानं चापवाहयेत् ।

अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

इत्यभ्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे समुद्रस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनमष्टमो
अध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः एकोनत्रिंशः ॥ २९ ॥

यदि अभियोग सच्चा सिद्ध होजावे, तो सूचना देनेवाला पुरुष, अपने भापको उस अभियोगके सम्बन्धमें अलहदा कर सकता है, अर्थात् फिर सरकारही अपनी ओरसे उस मुद्दामेको चला सकती है। यदि अभियुक्त सूचना देने वाले पुरुषको रिश्वत आदि देकर फुमला लेवे, और राजाके सामने वह सच्ची २ बात न कहे, तो उसे (सूचको) प्राण दण्ड देना चाहिये ॥ ७५ ॥

अभ्यक्षन्चार द्वितीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवा अध्याय ।

२७ प्रकरण ।

उपयुक्तपरीक्षा ।

{ प्रत्येक कार्योपर नियुक्त किये गये छोटे २ अधिकारियोंको 'युक्त' कहा जाता है; जो इनके भी ऊपर निरीक्षक अधिकारी नियुक्त हों, उन्हें 'उपयुक्त' करते हैं । 'युक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें लिखले अध्यायमें कहा जा चुका है; अब 'उपयुक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा ।

अमात्यसंपदोपेताः सर्वाध्यक्षाः अक्तितः कर्मसु नियोज्याः
॥ १ ॥ कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत् ॥ २ ॥ चित्तानि-
त्यत्वान्मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥

सबही अध्यक्षोंको अमात्यके गुणोंसे युक्त होना चाहिये (अर्थात् अमा-
त्तोंके जो गुण पीछे कहे गये हैं, अध्यक्षोंमें भी वे गुण यथावश्यक अवश्य होने
चाहियें । देखा:—अधि १, अध्या. ९ सू. १'; तथा इनको (अध्यक्षोंको)
इनकी शक्तिके अनुसार इन २ कार्योपर नियुक्त किया जावे ॥ १ ॥ कार्योपर
नियुक्त किये जानेपर, राजा इनकी सदाही परीक्षा करवाता रहे ॥ २ ॥ क्योंकि
मनुष्योंके चित्त सदा पृथक् नहों रहते ॥ ३ ॥

अधसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते ॥४॥
तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदर्यं चैषु विधात् ॥५॥

देखा जाता है, कि आदर्शियोंकी भी घोड़ोंकी तरह आदत होती है;
जबतक घोड़ा अपने धानपर बंधा रहना है, यथा शान्त मालूम होता है, परन्तु
जब वह रथ आदिमें जोड़ा जाता है, तो बिगड़ जाता है यही उच्छल क्रूर म-
चता है; इसीप्रकार प्रथम शान्त श्रोत्रने जाला पुरुष भी कार्योपर नियुक्त होजा-
नेपर कभी २ विकारको प्राप्त होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाकी चाहिये, कि
वह कर्ता (अध्यक्ष), कारण (नीचे कार्य करने वाले कर्मचारी), देश, काल,
कार्य, नौकरोंका वेतन, और उदय अर्थात् लाभ, इनको अध्यक्षोंके विषयमें
अवश्य जानता रहे ॥ ५ ॥

ते यथासंदेशमसंहता अधिगृहीताः कर्माणि कुर्युः ॥ ६ ॥
संहता गक्षयेयुः ॥ ७ ॥ विगृहीता पिनाशयेयुः ॥ ८ ॥

कुछ न करे; तो जिनको स्वीकार न करे, उनके लिये अपनी सफ़ाईके गवाह, तथा अन्य सबूतोंको भी उपस्थित करे ॥ ६८ ॥

महत्पर्यापहारे चाल्पेनापि मिद्धः सर्वं भजेत ॥६९॥ कृत-
प्रतिघातावस्यः सूचकां निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत ॥ ७० ॥
द्वादशमंशं भृतकः ॥ ७१ ॥

यहुत अधिक अर्थका अपहरण करनेपर, यदि थोड़ेसे धनके भी गवाह मिल जावें, तो सम्पूर्ण धनका अपहरण करनेका अपराध, उसपर सिद्ध समझा जावे ॥ ६९ ॥ यदि धनका अपहरण करने वाले अपराधी सूचना, कोई व्यक्ति राजाके हितकी कामनासेही देता है, अर्थात् किसीको नुकसान पहुंचाने या हत्यादिके कारण नहीं देता); ऐसे व्यक्तिको, अपहृत धनका ठीक पता लगानेपर, धनका छठा हिस्सा दे दिया जावे ॥ ७० ॥ यदि सूचना देने वाला व्यक्ति, उसका भृत्य हो, तो उसे उस धनका बारहवां हिस्सा देना चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत ॥ ७२ ॥
अनिष्पन्ने शरीरं ह्यैरण्यं वा दण्डं लभेत ॥७३॥ न चानुग्राह्यः ॥७४॥

यदि बहुतसे धनके अपहरणका अभियोग हो, अभियोगके सिद्ध होनेपर उसमेंसे थोड़ाही धन बचल होवे, तो सूचना देने वाले व्यक्तिको उतनेही धनमेंसे हिस्सा दिया जावे ॥ ७२ ॥ यदि अभियुक्तपर अपराध सिद्ध न हो सके, तो सूचना देने वाले पुरुषको शरीर दण्ड दिया जावे, अथवा उचित आर्थिक दण्ड दिया जावे ॥ ७३ ॥ इसप्रकारके अपराधी पर अनुग्रह कदापि न करना चाहिये ॥ ७४ ॥

निष्पत्तौ निक्षिपद्वादमात्मानं चापवाहयेत् ।

अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

इत्यप्यक्षत्रचारे द्वितीये अधिकरणे समुद्रस्य युक्तापहतस्य प्रत्यानयनमष्टमो
ऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः एकोनविंशत् ॥ २९ ॥

यदि अभियोग सच्चा सिद्ध होजावे, तो सूचना देनेवाला पुरुष, अपने भापको उस अभियोगके सम्बन्धसे अलहदा कर सकता है, अर्थात् फिर सरकारही अपनी ओरसे उस मुद्दामेको चला सकती है। यदि अभियुक्त सूचना देने वाले पुरुषको रिश्वत आदि देकर फुसला लेवे, और राजाके सामने वह सच्ची २ बात न कहे, तो उसे (सूचकको) प्राण दण्ड देना चाहिये ॥ ७५ ॥

अप्यक्षत्रचार द्वितीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवा अध्याय ।

२७ प्रकरण ।

उपयुक्तपरीक्षा ।

{ प्रत्येक कार्योंपर नियुक्त किये गये छोटे २ अधिकारियोंको 'युक्त' कहा जाता है; जो इनके भी ऊपर निरीक्षक अधिकारी नियुक्त हों, उन्हें 'उपयुक्त' कहते हैं । 'युक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें पिछले अध्यायमें कहा जा चुका है, अब 'उपयुक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा ।

अमात्यसंपदोपेता. सर्वाध्यक्षाः शक्तित. कर्मसु नियोज्याः
॥ १ ॥ कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत् ॥ २ ॥ चित्तानि-
त्यत्वान्मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥

सबही अध्यक्षोंको अमारपके गुणोंसे युक्त होना चाहिये (अर्थात् अमा-
त्योंके जो गुण पाठे कहे गये हैं, अध्यक्षोंमें भी वे गुण यथासंभव अवश्य होने
चाहिये) । देवतो—अति १, अध्या ९ सू १), तथा इनको (अध्यक्षोंको)
इनकी शक्तिके अनुसार उम २ कार्योंपर नियुक्त किया जाये ॥ १ ॥ कार्योंपर
नियुक्त क्रिये जानेपर, राजा इनकी नगदी परीक्षा कराता रहे ॥ २ ॥ क्योंकि
मनुष्योंके चित्त सदा पुरुसे नहीं रहते ॥ ३ ॥

अथसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते ॥४॥
तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात् ॥५॥

देखा जाता है, कि आदमियोंकी भा धौड़ोंकी तरह आदत होती है;
जन्तुरु घोड़ा अपने धानपर थंथा रहना है, यही शान्त माहल्य होता है, परन्तु
जब वह रथ आदिमें जोड़ा जाता है, तो थियड़ जाता है वही उछल कूद म-
चाता है; इसीप्रकार प्रथम शान्त द्वायमें वाला पुरुष भी कार्योंपर नियुक्त होजा-
नेपर कभी २ विकारको प्राप्त होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाको चाहिये, कि
वह कर्त्ता (अध्यक्ष), कारण (नीचे कार्य करने वाले कर्मचारी), देश, काल,
कार्य, नीकरोंका वेतन, और उदय अर्थात् लाभ, इनकी अध्यक्षोंके विषयमें
अवश्य जानता रहे ॥ ५ ॥

ते यथासंदेशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः ॥ ६ ॥
संहता मक्षयेयुः ॥ ७ ॥ विगृहीता विनामक्षयेयुः ॥ ८ ॥

वे अध्यक्ष, अपने मालिककी आज्ञानुसार, एक दूसरे अध्यक्षके साथ न मिलते हुए, तथा एक दूसरेके साथ विरोध न करते हुए, अपने २ कार्योंमें तत्पर रहें ॥ ६ ॥ क्योंकि यदि वे आपसमें मिल जायेंगे, तो गुट करके राजाके धनको खायेंगे ॥ ७ ॥ और यदि आपसमें विरोध करेंगे, तो राजाके कार्योंको नष्ट करेंगे । क्योंकि - अपनेही शगुणोंमें लगे रहेंगे, राजाका कार्य नष्ट होगा । इसलिये राजाको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे कि वे न आपसमें गुट बना सकें, और न उनका आपसमें कोई राजकार्यका हानिकर विरोध हो ॥ ८ ॥

न चानिवेद्य भर्तुः किंचिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारभ्यः
॥९॥ प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद्विसवेतनव्ययद्विगुणम्
॥ १० ॥

मालिकको बिना निवेदन किये, किसी नये कार्यका वे (अध्यक्ष) प्रारम्भ करें, परन्तु जो कार्य किसी आपत्तिके प्रतिकार करनेके लिये किये जा रहे हों, उनको करनेके लिये, उसी समय राजाकी अनुमतिकी आवश्यकता नहीं, वे राजाको निवेदन किये बिना भी, किये जा सकत हैं ॥ ९ ॥ यदि वे (अध्यक्ष) अपने किसी कार्यमें प्रमाद करें, तो उनके लिये दण्डही व्यवस्था होनी चाहिये, साधारण दण्ड, उनके दैनिक वेतन व्ययके दुगुना होना चाहिये । (अर्थात् एक दिनका जितना वेतन हो, उसमें दुगुना दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सन्निधेयं वा करोति स स्थानमानौ
लभेत ॥ ११ ॥

जो इन अध्यक्षोंमेंसे, अपने मालिककी आज्ञानुसार ठीक काम करता है, तथा उससे भी अधिक और विशेष काम (जिन कार्योंके लिये मालिकने नहीं भी कहा है, ऐसे उसके हितकर कार्य) करता है, उसको विशेष उन्नति दीजावे, (अर्थात् पदके खयालमें उसकी तरफ़ी कर दी जावे) और अन्य प्रकारसे (धनादि द्वारा) भी उसका उचित सत्कार किया जावे ॥ ११ ॥

अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति ॥ १२ ॥ विपर्यये यथा-
यतिव्ययश्च न भक्षयतीत्याचार्याः ॥ १३ ॥

किन्हीं प्राचीन आचार्योंने येईमान और ईमानदार अध्यक्षोंके मिथ्य लिखित उपाय बताये हैं । वे कहते हैं, कि जिस अध्यक्षको आमदनी थोड़ी होती हो, तथा वह एवं बहुत अधिक करता हो, तो समझना चाहिये कि यह अवश्यही राजाके धनका अपहरण करता है ॥ १२ ॥ इससे विपरीत होनेपर अथवा आमदनीके अनुसार खर्च करने वाले अध्यक्षको ईमानदार समझना चाहिये, वह राजाके धनको नहीं खाता ॥ १३ ॥

अपसर्पेणैवोपलभ्यत इति कौटिल्यः ॥ १४ ॥

परन्तु आचार्य कौटिल्य दस मसको स्वीकार नहीं करता । वह कहता है कि अध्वक्षोंकी ईमानदारी और वेईमानीका पता गुप्तचारोंके द्वाराही लगाना चाहिये । क्योंकि एक बड़े परिवार वाला अध्वक्ष, स्वयं थोड़ा खर्च करता हुआभी परिवार पोषणके लिये धन अवहरण करसकता है । तथा अल्प-धिक धन उपहरण करता हुआभी कंजूम भावनी कभी अधिक खर्च नहीं करता । इसलिये आचार्योंके कथनानुसार अध्वक्षोंकी छुट्टाका डीक पता नहीं लगसकता । अतः यह कार्य गुप्तचारके द्वाराही करना चाहिये ॥ १४ ॥

यः समुद्रयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति ॥ १५ ॥ स
चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत् ॥ १६ ॥

जो अध्वक्ष समुद्र (ज्वरे का ल भ=निपमिति आय) से न्यूनता कराता है अर्थात् राजाको नियमानुसार जितनी आय होनी चाहिये, उतथें वह कमी करदेता है, तो समझना चाहिये कि वह अध्वक्ष उस राजाके धनसे ले अवश्य कुछ न कुछ खता है ॥ १५ ॥ यदि वह धन अज्ञान अर्थर प्रमाद आलस्य आदिके कारण, इसप्रकार आम्बुनीमे कमी करता है, तो वह कम हुआ २ धन उससे अपराधके अनुसार दुगना तिन १ करके दिया जाये ॥ १६ ॥

यः समुद्रयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति ॥ १७ ॥
स चेद्राजार्थमुपनयत्यल्पपराधं चारयितव्यः ॥ १८ ॥ महति
यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ १९ ॥

जो अध्वक्ष, समुद्रय दुगना इकट्ठा करता है, अर्थात् जितनी नियत आय है, उतसे दुगना वसूल करता है, समझना चाहिये, यह जनपदको खाता है, अर्थात् प्रजाको पीडा पहुंचाकरही इतना धन वसूल करता है, अन्यथा नियत आयसे अधिक कैमे प्राप्त करसकता है ॥ १७ ॥ यदि वह उस अधिक संग्रह कियेहुए धनको राजाके लिये भेजदेता है, तो उसे प्रजाको पीडा पहुंचानेके थोड़ेसे अपराधकाही दण्ड दियाजाये, जिससे कि वह फिर आगे इसप्रकार प्रजाको पीडा पहुंचाकर धन संग्रह न करे ॥ १८ ॥ यदि वह अधिक अपराध करता है, अर्थात् उस धनको राजाके पास न भेजकर स्वयं अवहरण करलेता है, तो प्रजापोदन और धनउपहरण दोनों अपराधोंका उभे उचित दण्ड दियाजाये ॥ १९ ॥

यः समुद्रयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति ॥ २० ॥
स कर्मदिवसद्रव्यमूलपुरुषनेतनापहारिषु यथापराधं दण्डयितव्यः
॥ २१ ॥

जो अध्यक्ष, धनके लिये नियत किएहुए धनको व्यय न करके छामरें शामिल करदेता है, वह पुरुषों (काम करनेवाले मजदूरों) तथा राजकार्यको खाता अर्थात् नष्ट करता है यह समझना चाहिए । तात्पर्य यह है, कि किसी कार्यको करनेके लिये नियत कियेहुए धनको व्यय न करनेसे, एक तो मजदूरोंका पालन नहीं होता, मजदूरी न मिलनेसे वे कष्ट उठाते हैं, दूसरे यह राजकार्य नहीं होता, जिसके लिये वह बजट पास किया गया है । उसका जो रु० बचता है, उसे अध्यक्ष आयकी ओर करके नियमित आदशे अधिक भायको अपनेघर रखलेता है ॥ २० ॥ ऐसा करनेवाले अध्यक्षको, उस कार्यकी हानि (कार्य करनेपर उस दिनमें जितना काम होजाय, उसके मूल्यकी कल्पना करके हानिका निर्णय कियाजाय), और पुरुषोंके वेतनका अपहरण करनेके सम्बन्धमें, अपराधके अनुसार उचित दण्ड दियाजावे ॥ २१ ॥

तस्मादस्य यो यस्मिन्नाधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो
याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत ॥ २२ ॥
मूलहरतादात्विककदर्याथ प्रतिपेधयेत् ॥ २३ ॥

इसलिये राजाका, जो जिस स्थानमें शासन करनेवाला अधिकारी अध्यक्ष नियुक्त हो, वह उन कार्यकी यथार्थताको और उसके आय व्ययकी आवश्यकतानुसार संक्षेप और विस्तारके साथ, राजासे निवेदन करे ॥ २२ ॥ और जो मूलहर, तादात्विक तथा कदर्य पुरष हों, उनकोभी उनके अपने कार्यसे सदा रोकता रहे ॥ २३ ॥

यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ॥ २४ ॥
यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद्भक्षयति स तादात्विकः ॥ २५ ॥ यो भृ-
त्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः ॥ २६ ॥

जो पुरष अपनी पितृपैतामह परम्परासे प्राप्त हुई सम्पत्तिको अन्याय पूर्वक खाता, अर्थात् उपभोग करता है, उसे 'मूलहर' कहते हैं । ऐसे पुरषोंको इन कार्योंके करनेसे रोकते रहना चाहिये, जिससे कि वे अपनी पुरानी सम्पत्तिको नष्ट न करदालें ॥ २४ ॥ जो पुरष जितना उत्पन्न परता है, उतनाही उस समय खालेता है, अर्थात् व्यय कर देता है, शेष कुछ नहीं बचाता, उसे 'तादात्विक' कहते हैं ॥ २५ ॥ तथा जो पुरष अपने भृत्यों और अपने आपको कष्ट देकर धनका समूह करता है वह 'कदर्य' कहाता है ॥ २६ ॥

स पक्षपात्क्षिदनादेयः ॥२७॥ विपर्यये पर्यादात्तम्यः ॥२८॥

यदि निषेध करने परभी मूलद्र आदि अपने कामोंको करते ही चले जाते हैं, तो उन्हें अपने बन्धु बान्धवोंकी सम्पत्ति पर दायभागका अधिकार नहीं रहता । अथवा ऐसे पुरखोंको (गिनतेकि बन्धु बान्धव हैं) आर्थिक दण्ड न दिया जाय (क्योंकि अधिक दण्ड देनेसे उनके बन्धु बान्धव आदि कुपित हो सकते हैं), किन्तु उनको केवल पदच्युत कर दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि उनके बन्धु बान्धव आदि नहीं, तो उनकी सम्पत्तिको जप्त कर लिया जावे ॥ २८ ॥

यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कर्ष्यः संनिधत्ते स्वनिधत्ते स्वस्त्रा-
वयति वा संनिधत्ते स्ववेश्मन्यनिधत्ते पौरजानपदेष्ववस्त्रावयति
परविषये तस्य सत्री मन्त्रिभिन्नमृत्यवन्धुपक्षमागतिं गतिं च
द्रव्याणामुपलभेत ॥ २९ ॥

जो कर्ष्य (कंजूम) अध्यक्ष, महान् अर्थ लाभ करता हुआ, धनको अपने घरमें भूमि आदिमें गाड़ देता है, नगरनिवासी या जनपदनिवासी पुरखोंके समीप रक्षाके लिये रख देता है, अथवा शत्रुके देशमें अपने धनको भेजकर वहाँ कहीं पर जमा करता जाता है, उस अध्यक्षके मन्त्री (सलाहकार), मित्र, मृत्य तथा बन्धु बान्धवोंको, और द्रव्योंके श्राप व्यवहारी, सत्री (गुप्त पुरुष) अवश्य देखे ॥ २९ ॥

यश्चास्य परविषयतया संचारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं
चिद्यात् ॥ ३० ॥ सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ॥ ३१ ॥

तथा इस कर्ष्ये अध्यक्षके धनको जो पुण्य शत्रुके देशमें निजराज्यके प्रबन्ध करता हो, उसके साथ मिलकर अर्थात् उसका मित्र या मृत्य बनकर सत्री इस गुप्तदृश्यको अच्छी तरह जान लेवे ॥ ३० ॥ जब सत्रीके द्वारा इसका यह गुप्तदृश्य अच्छी तरह मालूम होजावे, तो राजा शत्रुकी आज्ञाके बहानेसे इस कर्ष्यको मरवा देवे । (तात्पर्य यह है,—एक घनायटी चिट्ठी लिखवाकर, जोकि शत्रुकी ओरसे इस कर्ष्यको लिखी गई हो, उस शत्रुके देशमें अपने देशमें आते हुए किसी आदमीके हाथमें देवे, उस पुत्रको राजकी समीप अन्तपाल गिरफ्तार करके राजाके पास उपस्थित करे, तदनन्तर राजा उस चिट्ठीके आधार पर, यह कर्ष्य अध्यक्ष शत्रुके पक्ष व्यवहार रखता है, तथा वहाँ धन आदि भेजता है, इस प्रकार प्रसिद्ध करके उसको मरवा देवे ॥ ३१ ॥

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहको-
चराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः ॥ ३२ ॥

जो अध्यक्ष, व्ययके लिये नियत किएहुए धनको व्यय न करके छाभरे शामिल करदेता है, वह पुरपों (काम करनेवाले मजदूरों) तथा राजकार्यको खाता अर्थात् नष्ट करता है यह समझना चाहिये । तत्रपर्य यह है, कि किसी कार्यको करनेके लिये नियत कियेहुए धनको व्यय न करनेसे, एक तो मजदूरोंका पालन नहीं होता, मजदूरी न मिलनेसे वे कष्ट उठाते हैं, दूसरे वह राजकार्य नहीं होता, जिसके लिये वह बजट पास किया गया है । उसका जो रु० बचता है, उसे अध्यक्ष आयकी ओर करके नियमित आयसे अधिक आयको अपनेघर रखलेता है ॥ २० ॥ ऐसा करनेवाले अध्यक्षको, उस कार्यकी हानि (कार्य करनेपर उस दिनमें जितना काम होजाय, उसके मूल्यकी कल्पना करके हानिका निर्णय कियाजाय), और पुरुषोंके वेतनका अपहरण करनेके समर्थमें, अपराधके अनुसार उचित दण्ड दियाजाव ॥ २१ ॥

तस्मादस्य यो यस्मिन्नाधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो
याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीति ॥ २२ ॥
मूलहरतादात्विक्कदर्याथ प्रतिषेधयेत् ॥ २३ ॥

इसलिये राजाका, जो जित स्थानमें शासन करनेवाला अधिकारी अध्यक्ष नियुक्त हो, वह उन कार्यकी यथार्थताको और उसके आय व्ययको आवश्यकतानुसार सक्षय और विस्तारके साथ, राज्यासे निवेदन करे ॥ २२ ॥ और जो मूलहर, तादात्विक तथा कर्दय पुरप हों, उनकोभा उनके अपने कार्यसे सदा रोकता रहे ॥ २३ ॥

यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ॥ २४ ॥
यो यद्यदुत्पद्यते तच्चद्धयति स तादात्विकः ॥ २५ ॥ यो भृ-
त्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कर्दयः ॥ २६ ॥

जो पुरप अपनी पितृपितामह परम्परासे प्राप्त हुई सम्पत्तिको अन्याय पूर्वक खाता, अर्थात् उपभोग करता है, उसे 'मूलहर' कहते हैं । ऐसे पुरपोंको इन कार्योंके करनेसे रोकते रहना चाहिये, जिससे कि वे अपनी पुरानी सम्पत्तिको नष्ट न करवायें ॥ २४ ॥ जो पुरप जितना उत्पन्न करता है, उतनाही उस समय खालेता है, अर्थात् व्यय कर देता है, शेष कुछ नहीं बचाता, उसे 'तादात्विक' कहते हैं ॥ २५ ॥ तथा जो पुरप अपने भृत्यों और अपने आपको कष्ट देकर धनका समूह करता है वह 'कर्दय' कहलाता है ॥ २६ ॥

स पञ्चयाश्विनादेयः ॥२७॥ विपर्यये पर्यादासग्यः ॥२८॥

यदि निषेध करने परभी मूलदर आदि अपने कामोंको करते ही चल जाते हैं, तो उन्हें अपने बन्धु बान्धवोंकी सम्पत्ति पर दायभागका अधिकार नहीं रहता । अथवा ऐसे पुरपोंको (जिनकोके बन्धु बान्धव हैं । इस सूत्रमें 'पक्ष' शब्दका अर्थ बन्धु बान्धव है) आर्थिक दण्ड न दिया जाय (क्योंकि आर्थिक दण्ड देनेसे उनके बन्धु बान्धव आदि कुपित हो सकते हैं), किन्तु उनको केवल पदच्युत कर दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि उनके बन्धु बान्धव आदि नहीं, तो उनकी सम्पत्तिको जप्त कर लिया जावे ॥ २८ ॥

यो महत्पर्यसमुदये स्थितः कर्दर्यः संनिधत्ते स्वनिधत्ते स्वस्त्रा-
वयति वा संनिधत्ते स्ववेश्मन्यवनिधत्ते पारिजानपदेष्ववस्त्रावयति
परविषये तस्य सत्री मन्त्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमागतिं गतिं च
द्रव्याणामुपलभेत ॥ २९ ॥

जो कर्दर्य (कंजूर) अध्यक्ष, महान् अर्थ लाभ करता हुआ, धनको अपने घरमें भूमि आदिमें गाड़ देता है, नगरनिवासी या जनपदनिवासी पुरपोंके समीप रक्षाके लिये रख देता है, अथवा शत्रुके देशमें अपने धनको भेजकर वहाँ कहीं पर जमा करता जाता है; उस अध्यक्षके मन्त्री (सलाहकार), मित्र, भृत्य तथा बन्धु बान्धवोंको, और द्रव्योंके भ्राय व्ययको, सत्री (सुप्त पुरुष) अवश्य देखे ॥ २९ ॥

यश्चास्य परविषयतया संचारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं
विधात् ॥ ३० ॥ सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ॥ ३१ ॥

तथा इस कर्दर्य अध्यक्षके धनको जो पुरुष शत्रुके देशमें निजराजका प्रबन्ध करता हो, उसके साथ मिलकर अर्थात् उसका मित्र या भृत्य बनकर सत्री इस गुप्तद्वाराके अचरी तरह जान लेवे ॥ ३० ॥ जब सत्रीके द्वारा इसका यह गुप्तद्वाराके अचरी तरह मालूम होजावे, तो राजा शत्रुकी आज्ञाके बहानेसे इस कर्दर्यको मरवा देवे । (तात्पर्य यह है, — एक बनाघटी चिट्ठी लिखवाकर, जोकि शत्रुकी ओरसे इस कर्दर्यको लिखी गई हो, उस शत्रुके देशसे अपने देशमें आते हुए किसी आदमीके हाथमें देवे, उस पुरुषको राजकी समीप अन्तर्पाल निरपत्तार करके राजाके पास उपस्थित करे, तदनन्तर राजा उस चिट्ठीके आधार पर, यह कर्दर्य अध्यक्ष शत्रुसे पत्र व्यवहार रखता है, तथा वहाँ धन आदि भेजता है, इस प्रकार प्रसिद्ध करके उसको मरवा देवे ॥ ३१ ॥

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीप्राहको-
चराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः ॥ ३२ ॥

इस लिये सब अभ्यक्षोक्तों चाहिये कि वे संख्यायक (गणक=आयव्ययका लेखा करने वाला), लेखक, रुद्रक्षेक (राजकीय मुद्रा तथा अन्य मणिमुक्ता स्वर्ण आदिके खरे खोटेपनको परचानने वाला कर्मचारी), तथा नीवीप्राहक (आय व्ययसे शेष बचे हुए धनको संभालने वाला अधिकारी), तथा उत्तराध्यक्ष (यद्वा, अभ्यक्षोंके ऊपर निरीक्षण करने वाला, प्रधानाधिकारी) इनके साथ मिलकरही राजाके सब कार्योंको करें ॥ ३२ ॥

उत्तराध्यक्षाः हस्त्यश्नरथारोहाः ॥ ३३ ॥ तेषामन्तेवासि-
नश्चिग्लपशौचयुक्तास्तद्द्वययायकादीनामपसर्पाः ॥ ३४ ॥

हाथी घोड़े तथा रथों पर तयार होने वाले उत्तराध्यक्ष बनने चाहिये। (तात्पर्य यह है—जो पुरुष बृद्ध तथा अरपन्त अनुभवी हैं, बृद्ध होनेके कारण युद्ध आदिमें जानेका सामर्थ्य नहीं रखते, साधारणतया चलने फिरनेमेंभी सबारियोंका ही सहारा लेते हैं, ऐसे विशेष व्यक्तियोंको उत्तराध्यक्ष अर्थात् अन्य अभ्यक्षोंका निरीक्षण करने वाला प्रधानाध्यक्ष बनाया जावे) ॥ ३३ ॥ इन उत्तराध्यक्षोंके पास कुछ ऐसे शिष्य रहने चाहिये, जोकि आला पालन करनेमें बड़े चतुर, तथा हृदयके पवित्र हों; वे संख्यायक गणक आदि कर्मचारियोंकी प्रत्येक प्रवृत्तिको जाननेके लिये गुप्तपुरुषका कार्य करें ॥ ३४ ॥

बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत् ॥ ३५ ॥

प्रत्येक अधिकरण अर्थात् कार्यस्वाममें अनेक मुख्य पुरखोंको रक्खाजावे। जिससे कि वे एक दूसरेका भय रखने हुए राजकार्यको अच्छी तरहसे करें। तथा उन मुख्य पुरखोंकी रिगति चिरस्थायी नहीं होनी चाहिये; क्योंकि ऐसी अवस्थामें वे कर्मचारियोंसे मित्रताकर अपने दोषोंको छिपा सकते हैं, और जनता भी उनके दोषोंकी इस भयसे पकट नहीं करती, कि ये भागे इनारा कोई अपकार कर सकते हैं ॥ ३५ ॥

यथा एनास्नादयितुं न शक्यं

जिह्वातलस्थं मधु वा निपं वा ।

अर्थस्तथा ह्यर्थचरैर्गं राशुः

स्वल्पो ऽप्यनास्नादयितुं न शक्यः ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार जोंभ पर रफते हुए शहर या जहरके सम्बन्धमें कोई यह पावे कि मैं इनका स्वाद न हूँ, यह नहीं हो सकता, जोंभ पर रनसी हुई चीज का स्वाद न होने परभी स्वाद आही जाता है; ठीक इसी प्रकार राजाके अर्थ सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त हुए २ कर्मचारी, उक्त अर्थका थोड़ाभी स्वाद न छे, यह

कदापि नहीं हो सकता, वे धोड़ा बहुत कुछ न कुछ धन आदिका अपहरण अवश्य करते हैं ॥ ३६ ॥

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो
जातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः ।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः
जातुं न शक्या धनमाददानाः ॥ ३७ ॥

तथा जिम प्रकार पानीमें रहती हुई मछलियां पानी पीती हुई नहीं मालूम होतीं, इसीप्रकार अर्थकार्योंपर नियुक्त हुए २ राज कर्मचारी, अर्थोपभोग अपहरण करते हुए मालूम नहीं होते ॥ ३७ ॥

अपि शक्या गतिर्जातुं पततां ये पतत्रिणाम् ।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥ ३८ ॥

आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गतिको जाना जासकता है, परन्तु गुप्त रूपसे कार्य करते हुए अध्यक्षकी गतिको पहिचानना यदा कठिन काम है । इन दोनों श्लोकोंका तात्पर्य यही है कि जलमें मछलीके पानी पीनेके समान तथा आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गतिके समान अध्यक्षोंके द्वारा अपहरण किया जाता हुआ धन, राजाके लिये जानना दुष्कर कार्य है ॥ ३८ ॥

आस्रावपेचोपचितान्विपर्यस्येश कर्मसु ।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्धमन्ति वा ॥ ३९ ॥

इसलिये इसप्रकारके अध्यक्षोंके नियममें राजाको उचित है, कि यह पहिले, धनको अपहरण कर २ के समुद्र हुए २ अध्यक्षोंके धनको, उनकी समुद्रमें अथवा गुप्तधर्मोंके द्वारा अच्छी तरह जानकर, उनसे छीन लेवे । और उन कर्मचारियोंको उच्च पदमें पदस्थित करके नोचकार्योंपर नियुक्त करे । जिससे कि वे फिर अर्थका अपहरण न करें, तथा अपहरण किये हुए धनको स्वयं ही उगल दें ॥ ३९ ॥

न भक्षयन्ति ये त्वर्थान्न्यायतो वर्धयन्ति च ।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राजः प्रियहिते रताः ॥ ४० ॥

इसअध्यक्ष-प्रचारे द्वितीये अधिकरणे उपयुक्तपरीक्षा वचनो उच्यते ॥ ९ ॥

जो अध्यक्ष कभी अर्थका अपहरण नहीं करते, तथा सदा न्यायपूर्वक उसकी धृतिमें ही तत्पर रहते हैं; और राजाका प्रिय तथा हित करनेमें ही लगे रहते हैं; राजाको चाहिये, कि वह इसप्रकारके अध्यक्षोंको सदा उनके अधिकारपदपर बनाये रखे ॥ ४० ॥

अध्यक्षभ्रचार द्वितीय अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

२८ प्रकरण ।

शासनाधिकार ।

{ लिखित आज्ञा तथा संदेश आदिको ही 'शासन' कहते हैं । इस प्रकरणमें उसहीका निरूपण किया जायगा ।

शासने शासनमित्याचक्षते ॥१॥ शासनप्रधाना हि राजानः

॥ २ ॥ तन्मूलत्वात्संधिविग्रहयोः ॥ ३ ॥

पत्र आदिपर लिखित अर्थको ही, विद्वान् आचार्य 'शासन' कहते हैं । अर्थात् वाचनिक अर्थको कभी 'शासन' नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥ राजाजन शासनका ही विशेष आदर करते हैं, वाचनिकका नहीं ॥ २ ॥ क्योंकि सन्धि और विग्रह आदि सम्बन्धी कार्य शासन मूलकही होते हैं । (इस सूत्रमें सन्धि विग्रह पदोंको छठों गुणोंका उपलक्षण मानकर, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वेषीभाव इन छठों गुणोंका प्रदूषण कर लेना चाहिये । अर्थात् पाद्गुण्य सम्बन्धी सबही कार्य लेखद्वारा होनेपरही ठीक समझे जाते हैं) ॥ ३ ॥

तस्मादमात्यसंपदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्वार्थक्षरो लेख-
वाचनसमर्थो लेखकः स्यात् ॥ ४ ॥ सो ऽव्यग्रमना राज्ञः
संदेशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्यात् ॥ ५ ॥

इसलिये अमात्यके गुणोंसे युक्त, हर तरहके (वर्णाश्रम सम्बन्धी) आचार विचारोंको जानने वाला, शीघ्रताके साथ सुन्दर वाक्य योजना करने वाला, सुन्दर अक्षर लिखने वाला, सब तरहके लेख लिखने और पढ़नेमें समर्थ लेखक होना चाहिये । (अर्थात् षड्गुण्य सम्बन्धी शासन आदि लिखने पढ़नेके लिये इसप्रकारके लेखकको गजा नियुक्त करे) ॥ ४ ॥ यह लेखक सावधान होकर, राजाके सम्देशको अच्छी तरह सुनकर, दूसरोंके लेखके पूर्वापर अर्थोंपर विचार कर उसके अनुसार, निश्चित अर्थ वाले लेखको लिखे ॥ ५ ॥

देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य देशनामधेयोपचारमनी-
श्वरस्य ॥ ६ ॥

यह लेखपत्र यदि किसी राजाके सम्बन्धमें अर्थात् राजाके लिये लिखा जाता हो, तो उसमें उसके देश, पेश्वर्य, वंश और नामका पूर्ण कथन होना चाहिये । यदि किसी अमात्य आदिके नाम लिखा जाये, तो उसमें केवल उसके देश और नामकाही पूर्ण निर्देश होना चाहिये ॥ ६ ॥

जातिं कुलं स्थानवयः भुतानि

कर्मद्विशीलान्यथ देशकालौ ।

यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये

लैखं विदध्यात्पुरुषानुरूपम् ॥ ७ ॥

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजकाय सम्बन्धी लेखपत्रमें जाति (ब्राह्मण आदि), कुल, स्थान (अधिकारस्थान), आयु, विद्वत्ता (शास्त्रज्ञान), कार्य, धन सम्पत्ति, सदाचार, देश (निवास स्थान), काल, विवाहसम्बन्ध (विवाह आदि सम्बन्ध किन वंशोंके साथ होते हैं, इत्यादि, इसीका नाम 'यौनानुबन्ध' है), आदि इन सब बातोंको अच्छी तरह सोचकर, उन २ पुरुषों (उत्तम, मध्यम, नीच पुरुषों) के अनुकूल अवश्य लिखे ॥ ७ ॥

अर्थक्रमः संबन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वमिति
लेखसंपत् ॥ ८ ॥ तत्र यथावदनुपूर्वक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वम-
भिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः ॥ ९ ॥ प्रस्तुतस्याथस्यानुरोधादुत्तरस्य
विधानमासमाप्तेरिति संबन्धः ॥ १० ॥

अर्थक्रम, सम्बन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य, और स्पष्टता, ये छः गुण लेखके होते हैं ॥ ८ ॥ अर्थात्नुसार ठीक २ आनुपूर्वीका रखना, अर्थात् सबसे प्रधान अर्थको पहिले रखना, फिर इसके अनुसार सब बातोंका निरूपण करते जाना, 'अर्थक्रम' कहाता है ॥ ९ ॥ प्रस्तुत अर्थकी बाधा न करते हुए अगले अर्थका निरूपण करना, इसीप्रकार समाप्ति पर्यन्त करते चले जाना 'सम्बन्ध' कहाता है । तात्पर्य यह है कि अगला अर्थ पहिले अर्थका बाधक न होना चाहिये, ऐसा होनेपर ही वह अर्थ सम्बन्ध कहा जासकता है ॥ १० ॥

अर्थपदक्षराणामन्यूनान्तिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तरथोपव-
र्णनाश्रान्त इतेति परिपूर्णता ॥ ११ ॥ सुखोपनीतचार्वर्यशब्दा-

भेदानं, माधुर्यम् ॥ १२ ॥ अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम् ॥ १३ ॥
प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति ॥ १४ ॥

अर्थपद तथा अक्षराका न्यून अधिक न होना, हेतु (कारण), उदाहरण (शास्त्रीय सवाद आदिका कथन), तथा दृष्टान्त (लाकिक अर्थात् लोक प्रसिद्ध अर्थका निदर्शन) पूर्वक अर्थका निरूपण करना, और शब्द कार्पण्य या ढीले शब्दोंका प्रयोग न करना 'परिपूर्णता' कहाता है ॥ ११ ॥ सुखपूर्वक अर्थात् सरलतासे अर्थका बोधन करने वाले सुन्दर २ शब्दोंका प्रयोग करना 'माधुर्य' कहाता है ॥ १२ ॥ अग्राम्य (सम्प्रतासे भरे हुए) शब्दोंके प्रयोग करनेको ही 'औदार्य' कहते हैं ॥ १३ ॥ तथा सुप्रसिद्ध शब्दोंके प्रयोग करने का नाम 'स्पष्टता' है ॥ १४ ॥

अकारादयो वर्णाः त्रिषष्टिः ॥ १५ ॥ वर्गसंघातः पदम् ॥ १६ ॥ तच्चतुर्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति ॥ १७ ॥
तत्र नाम सत्त्वाभिधायि ॥ १८ ॥ अभिशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रिया-
चाचि ॥ १९ ॥ क्रियाविशेषकाः पादय उपसर्गाः ॥ २० ॥ अव्य-
याथादयो निपाताः ॥ २१ ॥

अकार आदि वर्ण त्रैसठ (६३) होते हैं ॥ १५ ॥ वर्णोंके समुदायको 'पद' कहते हैं ॥ १६ ॥ वह पद चार प्रकारका होता है — नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ॥ १७ ॥ सत्यको कहने वाला अर्थत् जाति गुण तथा द्रव्यका वाचक पद 'नाम' कहाता है ॥ १८ ॥ स्त्री पुरुष आदि विशेष लिङ्गों से रहित, क्रियावाचक पदको 'आख्यात' कहते हैं ॥ १९ ॥ क्रियाओंके विशेष अर्थोंका चोतन करने वाले, क्रियाओंके साथ लगे हुए प्र आदि पद 'उपसर्ग' कहाते हैं ॥ २० ॥ च आदि अव्ययोंको 'निपात' कहते हैं ॥ २१ ॥

पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्ती ॥ २२ ॥ एकपदावरस्त्रिप-
दपरः परपदार्थानुरोधेन वर्गः कार्यः ॥ २३ ॥

पूर्ण अर्थको (अर्थात् निराकांक्ष अर्थको=जिस पदसमूहके उच्चारण करदेनेपर तात्पर्यवन्धी अर्थकी आकांक्षा न रहे, ऐसे अर्थको) कहने वाले पद समूहका नाम 'वाक्य' है ॥ २२ ॥ कमसे कम एक पदपर और अधिकसे अधिक तीन पदपर, मुख्य पदके अनुसार विराम करना चाहिये ॥ २३ ॥

लेखरूपपरिमंहरणार्थ इतिशब्दो वाचिकमस्येति च ॥ २४ ॥

लेखकी परिसमाप्ति घातन करनेके लिये 'इति' शब्दका प्रयोग किया जाता है; यदि लेखमें पूरी बात न लिखी जावे, या लिखनी उचित न समझी जावे, तो अन्तमें 'चाचिकमस्य (लेखःश्रमुखाच्छ्रोतव्यम्)' ऐसा लिखदेना चाहिये; अर्थात् 'इस लेखका दोष अंश, इस पत्रको खाने वाले पुरुषके मुंहसे सुन लेना' इसप्रकार लिख दिया जावे ॥ २४ ॥

निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाख्यानमथार्थना ।

प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ॥ २५ ॥

सान्त्वमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा ।

एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः ॥ २६ ॥

निन्दा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ, प्रतिषेध, चोदना, सान्त्व (सान्त्वना) अभ्यवपत्ति, भर्त्सना और अनुनय इन तेरह बातोंमें ही पत्रसे प्रकट होने वाले अर्थ, प्रवृत्त होते हैं; अर्थात् पत्रमें इन तेरह बातोंमें ही किसी न किसीके सम्बन्धमें लिखा जाता है ॥ २५-२६ ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषप्रचनं निन्दा ॥ २७ ॥ गुणव-

चनमेतेषामेव प्रशंसा ॥ २८ ॥ कथमेतदिति पृच्छा ॥ २९ ॥

एवमित्याख्यानम् ॥ ३० ॥ देहीत्यर्थना ॥ ३१ ॥ न प्रयच्छा-

मीति प्रत्याख्यानम् ॥ ३२ ॥

'किसीके अभिजन (वंश), शरीर तथा कार्यमें दोषारोपण करना अर्थात् इनके सम्बन्धमें बुरा कहना 'निन्दा' कहाता है ॥ २७ ॥ और इन्हींके (वंश आदिके) सम्बन्धमें गुणोंका कानन करना 'प्रशंसा' कहाता है ॥ २८ ॥ यह बात कैसे हुई ? इसप्रकार पूछनेको ही 'पृच्छा' कहते हैं ॥ २९ ॥ यह इस तरह करना चाहिये' यह कहना आख्यान कहाता है ॥ ३० ॥ 'दो' इसप्रकार कहकर माँगनेका नामहो 'अर्थना' है ॥ ३१ ॥ 'नहीं देता हूँ' इसप्रकार निषेध करदेना ही 'प्रत्याख्यान' कहाता है ॥ ३२ ॥

अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः ॥ ३३ ॥ मा कार्पीरिति प्रति-

षेधः ॥ ३४ ॥ इदं क्रियतामिति चोदना ॥ ३५ ॥ योऽहं स

भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवत इत्युपग्रहः सान्त्वम् ॥ ३६ ॥

'यह आपने अपने अनुरूप (सदृश) नहीं किया' इसप्रकार साभिभाव्य घचन कहना 'उपालम्भ' कहाता है ॥ ३३ ॥ 'ऐसा मत करो' इसप्रकार

आज्ञा पूर्वक शोकना 'प्रतिषेध' कहाता है ॥ ३४ ॥ 'यह करना चाहिये' इस-
प्रकारकी प्रेरणाकोही 'चोदना' कहते हैं ॥ ३५ ॥ जो मैं हूँ वही आप हैं, जो
मेरा द्रव्य है वह आपकाही है, इसप्रकार कहकर किसीको तसल्ली देना, तथा
अपने अनुकूल बनाना 'सान्त्व' या 'सान्त्वना' कहाता है ॥ ३६ ॥

व्यसनमाहाय्यमभ्यवपत्तिः ॥ ३७ ॥ सदोपमायतिप्रदर्शन-
मभिभर्त्सनम् ॥ ३८ ॥ अनुनयस्त्रिविधो ऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषा-
दिव्यसने चेति ॥ ३९ ॥

व्यसन (आपत्ति) के समयमें सहायता काना 'अभ्यवपत्ति' कहाता
है ॥ ३७ ॥ दोष सहित भविष्यका दिखलाना, अर्थात् 'यदि तुम जल्दीही इस
प्रकार न करदोगे, तो मैं तुम्हें मरवा डूला या कारागारमें बन्द करदूंगा'
इस तरह कहना 'भर्त्सन' (घुड़कना) कहाता है ॥ ३८ ॥ अनुनय तीन प्रका-
रका होता है,—अर्थकरण निमित्तक, अतिक्रम निमित्तक तथा पुरुषादिव्यस-
ननिमित्तक, किसी अवश्यमेव करने योग्य कार्यको करनेके लिये जो मित्रकी
ओरसे अनुनय हो वह पहिला है। किसी तरह कुपित हुए २ पुरुषको शान्त
करनेके लिये जो अनुनय किया जाय वह दूसरा है। तथा पिता भाई पुत्र मित्र
आदिके मरनेके कारण आई हुई विपत्तिमें जो अनुनय किया जावे, वह तीसरा
अनुनय है। अनुनय शब्दका अर्थ अनुग्रह है ॥ ३९ ॥

प्रज्ञापनाज्ञापरिदानलेखास्तथा परीहारनिसृष्टिलेखौ ।

प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ॥४०॥

शासन अर्थत् लेखके, ये और भी निम्नलिखित आठ भेद हैं:—ज्ञा-
पन, आज्ञा परिदान, परीहार, निसृष्टि, प्रावृत्तिक, प्रतिलेख और सर्वत्रग। इन
आठोंका क्रमशः लक्षण करते हैं ॥ ४० ॥

अनेन विज्ञापितमेवमाह तदीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति ।

राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥४१॥

गुप्त राजपुरुषके द्वारा राजाको बताये जानेवा (अर्थात् किसी महामा-
त्रको कहींसे धन मिलवाना, और उरने वह अरनेही पास रखलिया; एक गुप्त
पुरुषने आकर राजाको खबर देना, तब) राजा महामात्र आदिसे कहता है, कि
यदि वह बात ठीक है, तो तुम वह धन देदो; वह राजाके सामने धन देनेकी
स्वीकृति करलेता है; इस प्रकारके लेखप्रका नाम 'प्रज्ञापन' है। यह प्रज्ञापन
नामक लेखपत्र अनेक प्रकारका होता है ॥ ४१ ॥

भर्तुराज्ञा भवेद्यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति ।

विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥ ४२ ॥

जिम लेखपत्रमें, राजाकी निग्रह या अनुग्रह रूप आज्ञा होवे । विशेष कर जो लेखपत्र भृत्योंके सम्बन्धमें लिखा जावे, वह 'आज्ञा' कहाता है ॥ ४२ ॥

यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते ।

अप्याधी परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥ ४३ ॥

जिस लेखपत्रमें उचित गुणोंसे युक्त सरकारके भाव प्रगट किये जावें, वह 'परिदान' कहाता है । यह दो अवस्थाओंमें लिखा जाता है, एक तो उस समय जब कि अपने भृत्यों का कोई बन्धुबान्धव आदि मर गया हो, और उसके कारण उन्हें व्यथा हो, दूसरा उनकी रक्षाके लिये राजा जब कभी विशेष दयाभाव प्रगट करे । ऐसी अवस्थाओंमें राजाकी ओरसे भृत्योंको लिखा हुआ इस प्रकार का लेख, उन्हें राजाके अनुकूल बना देता है ॥ ४३ ॥

जातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।

अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्जः परीहार इति व्यवस्येत् ॥ ४४ ॥

विशेष २ अतियों, ठठ २ नगरों, ग्रामों तथा देशोंपर, राजाकी आज्ञा नुसार जो अनुग्रह किया जावे, विशेष पुरष इसीका 'परीहार' कहते हैं ॥ ४४ ॥

निसृष्टिस्थापना कार्या वरणे वचने तथा ।

एषा वाचिकलेख स्याद्भवेन्नैसृष्टिकोऽपि वा ॥ ४५ ॥

किसी कार्यके काने तथा कहनेमें, किसी अत पुरुषके प्रामाण्यका कथन करना 'निसृष्टि' कहाता है । अर्थात् अनुकूल जो काम है, वही मेरा काम है, अनुकूल जो वचन है वही मेरा वचन है, इसप्रकार अपने कार्य तथा वचनमें किसी आज्ञा प्रामाणिक पुन्यका कथन करना 'निसृष्टि' है । यह दो प्रकारका है, एक वाचिक (जिसमें वचनके प्रामाण्यका कथन हो), और दूसरा नैसृष्टिक (जिसमें कार्यके प्रामाण्यका कथन किया जाय) ॥ ४५ ॥

विविधां देवसंयुक्तां तरुजां चैव मानुषीम् ।

द्विविधां तां व्यवस्यन्ति प्रवृत्तिं शामनं प्रति ॥ ४६ ॥

अनेक प्रकारकी देवी (सुभिन्न दुर्भिन्न भित्तिरुष्टि सुदृष्टे भवृष्टि भक्तिगत उदात्त आदि अनेक प्रकारकी देव सम्बन्धी), परमार्थभूत (हीक २ हालत बनाने वाली) तथा मानुषी (चौर आदिके द्वारा होने वाले डाकड़), लेखविषयक प्रवृत्ति दो प्रकारकी होती है । ताररूप यह है, कि प्रावृत्तिक (प्रवृत्ति=प्रमाचार

अर्थात् जिनके द्वारा केवल परिस्थिति की सूचना दूसरेको दी जावे, ऐसे) लेख में अनुकूल प्रतिष्ठा आपातक, चाहे वे देवसे हों या मनुष्याके द्वारा, तथा आपातग्रन्थ वास्तविक अपराधाकी उल्लेख किया जाता है; ये सब प्रकारकी प्रशस्ति दो भागोंमें विभक्त हैं, एक शुभ और दूसरी अशुभ । इसलिये प्रावृत्तिक लेखभी शुभ अशुभ रूपसे दो प्रकारकाही समझना चाहिये ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा केषं यथातत्त्वं ततः प्रत्यनुभाष्य च ।

प्रतिलेखो भवेत्कार्यो यथा राज्ञश्चस्तथा ॥ ४७ ॥

इस्य उसको बोलना, किं राज क सामने बोलना, राजकी आज्ञाके अनुसार जो उसका उत्तर लिखनावे, उसको 'प्रतिष्ठ' करते हैं ॥ ४८ ॥

यत्रेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।

सर्वत्रगो नाम भवेत्स मार्गदेशे च सर्वत्र च वेदितव्यः ॥ ४८ ॥

जिस लेखग्रन्थमें राजा, पथिकोंकी रक्षा और उपकार करनेके लिये दुर्गपाल राज्यपाल अन्वयल आदिको तथा अन्य समाहर्ता प्रशास्ता आदि अधिकारियोंको लिखता है, उस लेखका नाम 'सर्वत्रग' है, क्योंकि वह मार्ग देश तथा राज्य आदि सबही जगहोंपर लिखा जाता है ॥ ४८ ॥

उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः ॥ ४९ ॥

उपाय चार हैं, -साम दान दण्ड भेद । (इस बातको पहिले कहा ज चुका है कि सन्धिप्रतिष्ठा आदि लक्ष्मण अर्थन हैं, इसलिये लेखकको उनका ज्ञान अवश्य होना चाहिये । अब साम दान आदि उपायोंकाभी ज्ञान लेखकको होना आवश्यक है, यह बताया जायगा) ॥ ४९ ॥

तत्र साम पञ्चविधम्-गुणसंकीर्तन संयन्धोपाख्यानं परस्पर-
रोपकारसंदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिधानमिति ॥ ५० ॥

उनमें साम पाँच प्रकारका होता है - गुणसंकीर्तन, संयन्धोपाख्यान, परस्पररोपकारसंदर्शन, आयतिप्रदर्शन, तथा आत्मोपनिधान । इनका क्रमशः पृथक् २ लक्षण करते हैं - ॥ ५० ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसास्तुतिर्गुणसंकीर्तनम् ॥ ५१ ॥

अभिजन (वंश), शरीर, कार्य, स्वभाव, विद्वत्ता, तथा अन्य हाथी घोड़े रथ आदि द्रव्योंके गुण और अगुणोंको जानकर उनकी प्रशंसा या स्तुति करना 'गुणसंकीर्तन' कहाता है ॥ ५१ ॥

ज्ञातियौनमौखसौवकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं संबन्धोपाख्या-
रम् ॥ ५२ ॥

ज्ञाति (समान कुलमें उत्पन्न होना), यौनिकृतसम्बन्ध (विवाह
गदि), मुखकृतसम्बन्ध (गुरु शिष्य आदि, मुखके द्वारा अभ्ययनाभ्यापनसे
उत्पन्न हुआ २ सम्बन्ध), सुवाकृत सम्बन्ध (सुना यज्ञके एक पात्रविशेषका
नाम है, उसके द्वारा जो सम्बन्ध हो, याज्ययाजक आदि), कुलकृत
सम्बन्ध (कुलपरम्परासे चला आया हुआ सम्बन्ध), दार्दिक सम्बन्ध (स्वयं
अपने हृदयके द्वारा किया हुआ सम्बन्ध), तथा मित्रसम्बन्ध (उपकार आदिके
द्वारा हुआ २ सम्बन्ध), इन सात प्रकारके सम्बन्धोंमेंसे किसीका कथन करना
'सम्बन्धोपाख्यान' कहाता है ॥ ५२ ॥

स्वपक्षपरपक्षयोरन्योन्योपकारसंकीर्तनं परस्पोपकारसंदर्श-
नम् ॥ ५३ ॥ अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमाय-
तिप्रदर्शनम् ॥ ५४ ॥

अपने और परतैं पक्षमें, एक दूसरेका एक दूसरेके द्वारा किष्ट हुए
उपकारका कथन करना 'परस्पोपकारसंदर्शन' कहाता है ॥ ५३ ॥ इस कार्यके
पेसा करनेपर, हम दोनोंको यह फल होगा, इसप्रकार आशाका उत्पन्न करना
'आयतिप्रदर्शन' कहाता है ॥ ५४ ॥

यो ऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्य-
तामित्यात्मोपनिधानमिति ॥ ५५ ॥

जो मैं हू वही आप है, मेरा धन आपकाही धन है, आप उसे इच्छा-
नुसार अपने कार्योंमें लगा सकते हैं, इसप्रकार अपने आपको समर्पण करदेना
'आत्मोपनिधान' कहाता है ॥ ५५ ॥

उपप्रदानमर्थोपकारः ॥ ५६ ॥ शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च
भेदः ॥ ५७ ॥ वधः परिक्लेशो ऽर्थहरणं दण्ड इति ॥ ५८ ॥

धन आदिसे द्वारा उपकार करना 'उपप्रदान' या 'दान' कहाता है
॥ ५६ ॥ शत्रुके लक्ष्यमें शङ्का उत्पन्न करदेना या घमकाना 'भेद' कहाता है
॥ ५७ ॥ उसे मारदेना, तथा अन्यप्रकारसे पीडा पहुँचाना, या उसके धन
आदिका अपहरण करलेना 'दण्ड' कहा जाता है ॥ ५८ ॥

अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः मंशुव इति लेखदोषाः
॥ ५९ ॥ तत्र कालपत्रकमचारुषिपमिरागाक्षरत्यमकान्तिः ॥ ६० ॥

अकान्ति, व्याघात, पुनरक्त, अपशब्द और सल्लव ये पाच लेखके दोष होते हैं ॥ ५९ ॥ उनमेंसे स्याही पडे हुए कागजपर अथवा स्वभावसेही मालिन कागजपर लिखना, अमुन्दर अक्षर बनाना, छाटे बडे अक्षरोंका होजाना, और फीकी स्याहीसे लिखना, यह लेखका 'अकान्ति' नामक दोष कहाता है ॥६०॥

पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः ॥ ६१ ॥ उक्तस्याविशेषेण द्वितीमुच्चारणं पुनरुक्तम् ॥ ६२ ॥

पहिले लेखके साथ अगले लेखका विरोध होजाना, अथवा पहिले लेखके अगले लेखकी बाधा होजाना 'व्याघात' कहाता है ॥ ६१ ॥ जो बात पहिले कहदीगई है, उमक समानही फिर दुबारा कहदेना 'पुनरक्त' दोष कहाता है ॥६२॥ *

लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथाप्रयोगो ऽपशब्दः ॥ ६३ ॥
अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणत्रिपर्यासः सल्लव इति ॥६४॥

लिङ्ग (स्त्रीलिङ्ग पुलिङ्ग आदि), वचन (एकवचन द्विवचन आदि), काल (भूत भविष्यत् आदि), तथा कारक (कर्त्ता कर्म आदि), का अन्यथा प्रयोग करदना, अर्थात् स्त्रीलिङ्गकी जगह पुलिङ्ग, एकवचनकी जगह बहुवचन आदि विपरित प्रयोगोंका करना 'अपशब्द' कहाता है ॥ ६३ ॥ जहाँ लेखम विगम करना चाहिये वहाँ विराम न करना, तथा जहाँ न करना चाहिये वहाँ करदेना, और गुणोंका त्रिपर्यास अर्थात् अर्थक्रम आदिके अनुसार लेखका न लिखना 'सल्लव' नामक पाचवा दोष होता है ॥ ६४ ॥

सर्वशास्त्राप्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।

कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ ६५ ॥

इत्यपरक्षप्रचारं द्वितीये ऽधिकरणे शासनाधिकार दशमो ऽध्याय ॥ १० ॥

आदित्त मकार्षिण ॥ ३१ ॥

कौटल्यम सब शास्त्रोंको अच्छी तरह जानकर, और उनके प्रयोगोंको अच्छी तरह समझकर फिर राजाके लिये इस शासनविधिका उपदेश किया है ॥ ६५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें दशवा अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवा अध्याय ।

२९. प्रकरण

कोशमें प्रवेश करने योग्य रत्नोंकी परीक्षा ।

{ भाण्डाधारका नाम फोन है, भाण्ड मुक्ता आदि रत्नोंकी तथा मार फण्डु और कुप्य आदि अन्य संभाव्य द्रव्योंकी परीक्षाकाभी इस प्रकरणमें निर्दिष्ट किया जावेगा ।

कोशाध्यक्षः कोशप्रवेशयं रत्नं सारं फण्डु कुप्यं वा तस्मात्-
कर्णाधिष्ठितः प्रतिगृहीयात् ॥ १ ॥

कोशाध्यक्षको उचित है, कि वह कोशमें रत्नेन कोशय रत्न, सार, फण्डु, तथा कुप्य द्रव्योंकी, उन २ द्रव्योंका मत्त रसाधार करनेवाले भयते जानकार पुरुषसे युक्त हुआ २ ही ग्रहण करे । तात्पर्य यह है कि ये पुरुष जब रसादिकी परीक्षा करके उभे हीक पतावे, तब ही उसे कोशमें मत्त करनेकेलिये लेवे ॥ १ ॥

ताम्रपर्णिकं पाण्ड्यकवाटकं पाशिव्यं कौलेयं चार्ण्यं माहेन्द्रं
कार्दमिकं स्यात्सीयं हार्दीयं हेमवतं च मैत्तिकम् ॥ २ ॥

सभमें प्रथम मोतीकी परीक्षा बताते हैं—मोतीके दस उत्पत्ति स्थान हैं, उन स्थानोंके नामसे दस प्रकारका मोती होता है,—ताम्रपर्णिक (पाण्ड्य देशमें ताम्रपर्णी नदी है, उसके समुद्र—संगममें होनेवाला मोती 'ताम्रपर्णिक' कहाता है), पाण्ड्यकवाटक (मलयकोटि नामक पहाड़पर उत्पन्न होनेवाला), पाशिव्य पाटलिपुत्रके समीपकी पाशिका नामक नदीमें उत्पन्न हुआ २), कौलेय (बिहलद्वीपकी कुशा नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), चार्ण्य (केरलदेश के शुरभि नामके नगर के समीप चूर्णी नदी में उत्पन्न होने वाले) माहेन्द्र (महेन्द्र पहाड़के पास समुद्रमें उत्पन्न होनेवाला), कार्दमिक (क्रावस देवकी कर्दमा नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), स्यात्सीय (यवके किनारे स्यात्सी नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), हार्दीय (यवके किनारे समुद्रके पास लोहद्वय र्ण्य नामक स्थानमें उत्पन्न होनेवाला), हेमवत (हिमालय पहाड़पर उत्पन्न होनेवाला), ये दस तरहके मोती होने हैं ॥ २ ॥

शुक्तिः शुद्धः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३ ॥

मोतियोंकी उत्पत्तिके तीन कारण होते हैं—शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक, (हार्थ तांब आदिके मलक तथा अन्य साधनोंसे उत्पन्न हुए २ मोती पकी-गर्भे शंखमें यहाँ कहे गये हैं) ॥ ३ ॥

मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रकं कञ्चुकितं यमकं कर्तकं
खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्वं चाप्रशस्तम् ॥४॥

मसूरक (मसूरकी तरह आकारवाला), त्रिपुटक (तीन खंडवाला,
अथवा छोटी इलायचीके समान आकारवाला), कूर्मक (कछुपके समान आ-
कारवाला), अर्धचन्द्रक (आधे चांदके समान) कञ्चुकित (ऊपर मोटे
छिलकेवाला), यमक (जुड़ा हुआ), कर्तक (कटा हुआ), खरक (खरखरा)
सिक्थक (दागवाला), कामण्डलुक (कामण्डलुके समान आकारवाला), श्याव
(बन्दरके समान रंगवाला), नील (नीले रंगका), तथा दुर्विद्वं (वेमके
विधाहुआ, अर्थात् जिस जगहसे विधना चाहिये, उस जगहसे न विधाहुआ),
ये तेरह प्रकारके मोती दूषित समझ जाते हैं ॥ ४ ॥

- स्थूलं घृत्तं निस्तलं त्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्वं च
प्रशस्तम् ॥ ५ ॥

मोटा, गोलाकार, निस्तल (तल रहित=चिकनी जगहपर न टहरनेवाला
अर्थात् श्वेत छत्रकजावेवाला), दीप्तियुक्त, सफेद, भारी, चिकना तथा ठीक
मौकेपर विधा मोती उत्तम समझा जाता है ॥ ५ ॥

शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति
याष्टिप्रदेशाः ॥ ६ ॥

याष्टि अर्थात् लट्ट (जंजीरी=पिरोपहुए मोतियोंकी एक लम्बी शृंखला)
के पांच भेद हैं,—शीर्षक (जिसके बीचमें एक मोती बड़ा हो, तथा उसके दोनों
ओर बराबर २ के छोटे मोती लगे हुए हों), उपशीर्षक (एक मोती बड़ा
बीचमें, और उसके दोनों ओर छोटे २ बराबरके दो मोती हों, इसीतरहके
तीन २ मोतियोंके समूहसे बनी हुई, अर्थात् एक बड़े मोतीके बाद बराबर ० के
दो छोटे मोती, फिर एक बड़ा मोती, फिर दो बराबर २ के छोटे, इसी क्रमसे
बनी हुई मालाको 'उपशीर्षक' कहते हैं), प्रकाण्डक (एक बीचमें बड़ा और
उसके दोनों ओर छोटे बराबर २ के दो दो मोती हों, इसी तरहके पांच २ के
समूहसे बनी हुई, अर्थात् एक मोतीके बाद चार छोटे २ बराबरके, फिर एक
बड़ा, फिर उसके बाद चार छोटे बराबर २ के, इसी क्रमसे बनी हुई मालाका
नाम प्रकाण्डक है), अवघाटक (एक बड़ा मोती बीचमें लगाकर और उसके
दोनों ओर उत्तरोत्तर छोटे २ मोती लगाते हुए जो माला तैयार कीजावे, उसे
अवघाटक कहते हैं), और तरलप्रतिबन्ध (सब बराबर २ के मोतियोंकी माला
का नाम तरलप्रतिबन्ध है) ॥ ६ ॥

यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः ॥ ७ ॥ ततो ऽर्धं विजयच्छन्दः
 ॥ ८ ॥ शतं देवच्छन्दः ॥ ९ ॥ चतुष्पष्टिर्धरहारः ॥ १० ॥ चतु-
 ष्षाशद्रश्मिकलापः ॥ ११ ॥ द्वात्रिंशद्गुच्छः ॥ १२ ॥ सप्त-
 विंशतिर्नक्षत्रमाला ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतिर्धगुच्छः ॥ १४ ॥ विंश-
 तिर्माणवकः ॥ १५ ॥ ततो ऽर्धमर्धमाणवकः ॥ १६ ॥

एक हजार आठ (१००८) यष्टि अर्थात् लड़ोंकी माला (आभूषण विशेष) को 'इन्द्रच्छन्द' कहते हैं ॥ ७ ॥ जो इससे आधी अर्थात् पांचसौ चार (५०४) यष्टियोंकी हो, उसका नाम 'विजयच्छन्द' है ॥ ८ ॥ सौ (१००) यष्टिका नाम 'देवच्छन्द' है ॥ ९ ॥ चौंसठ (६४) का 'अर्धहार' ॥ १० ॥ चौवन (५४) का 'रश्मिकलाप' ॥ ११ ॥ यत्तीस (३२) का 'गुच्छ' ॥ १२ ॥ सत्ताईस (२७) की 'नक्षत्रमाला' ॥ १३ ॥ चौबीस (२४) का 'अर्धगुच्छ' ॥ १४ ॥ बीस (२०) का 'माणवक' ॥ १५ ॥ और उससे आधा अर्थात् दस (१०) का 'अर्धमाणवक' नाम कहा जाता है ॥ १६ ॥

एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति ॥ १७ ॥ एक-
 शीर्षकः शुद्धो हारः ॥ १८ ॥

इन्हीं इन्द्रच्छन्द आदिके बीचमें यदि मणि लगादी जावे, तो उसका 'इन्द्रच्छन्दमाणवक' आदि नाम होजाता है। इसी तरह 'विजयच्छन्दमाणवक' आदि समझना चाहिये ॥ १७ ॥ यदि इन्द्रच्छन्द आदि किसी हारमें शीर्षक नामक यष्टिके बंगमेही सम्पूर्ण मोती पुरोये हुए हों तो यह इन्द्रच्छन्द और शीर्षकको जोड़कर शुद्धहार कहाता है, अर्थात् उसका नाम 'इन्द्रच्छन्दशीर्षक शुद्धहार' यह होता है। इसीप्रकार यदि विजयच्छन्दमें सम्पूर्ण मोती शीर्षकके समान पुरोये हुए होंगे, तो उसे 'विजयच्छन्दशीर्षकशुद्धहार' कहा जायगा। इसीतरह आगेभी 'देवच्छन्दशीर्षकशुद्धहार' आदि नाम समझने चाहियें ॥ १८ ॥

तद्वच्छेपाः ॥ १९ ॥

ऊपरके सूत्र (१८) में केवल शीर्षक नामक यष्टिको लेकर कहागया। इसीतरह उपशीर्षक आदि यष्टियोंके सम्बन्धमेंभी समझना चाहिये। अर्थात् इन्द्रच्छन्द आदिमें यदि उपशीर्षकके समान मोती पुरोये हुए हों, तो यह 'इन्द्रच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार' कहलावेगा। इसीतरह विजयच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार, देवच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार, अर्धहारोपशीर्षक शुद्धहार आदि नाम समझने चाहियें। इसीतरह यदि एक प्रकारकेही समान सम्पूर्ण मोती पुरोये हों,

तो इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डक शुद्धहार भादि नाम होंगे । इसके अनुसारही एकही अवघाटक या तरलप्रतिबन्ध यष्टिके समस्त मोती पिरिये जानेपर नामोंकी कल्पना करलेनी चाहिये । अर्थात् इन्द्रच्छन्दशवघाटक शुद्धहार और इन्द्रच्छन्द तरलप्रतिबन्धशुद्धहार भादि नाम समझलेने चाहियें ॥ १९ ॥

मणिमध्योऽर्धमाणवकः ॥ २० ॥

यदि इन शुद्धहारोंके बीचमें मणि लगादी जाये, तो यह बजाय शुद्धहारके अर्धमाणवक कहलाता है, उसका नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक होगा । इसीतरह उपशीर्षक भादिकों लेकरनी नाम समझलेने चाहिये । (पहिले जो माणवकको लेकर इन्द्रच्छन्दमाणवक आदि भेद बतलाये हैं, उनमें एक शीर्षक भादिका नियम नहीं है, वे सरीर्षे हैं शुद्ध नहीं, अर्थात् उनमें शीर्षक उपशीर्षक प्रकाण्डक अदि हरतरहसे मोती पिरियेजाकरही इन्द्रच्छन्द भादिकों तैयार करालिया जाता है, उनमें यदि बीचमें मणि डालदी जावे तो यह इन्द्रच्छन्द माणवक भादि नामोंसे पुकारा जायगा । यदि शुद्ध अर्थात् जिसमें एक शीर्षक भादिका नियम है, उसमें मोतियोंके बीच में मणि लगादी जावे तो, यह न माणवक और न शुद्ध कहलावेगा, प्रयुक्त उसमें शीर्षक भादिके साथही अर्धमाणवक विशेषण लगेगा । उसका पुरा नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक, इन्द्रच्छन्दोपशीर्षकार्धमाणवक, इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डकार्धमाणवक, इत्यादि रूपसे कल्पना करना चाहिये । इसीतरह आगे विजयच्छन्द भादिकों लेकर विजयच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक, विजयच्छन्दोपशीर्षकार्धमाणवक भादि नाम समझलेने चाहियें) ॥ २० ॥

त्रिफलकः फलकहारः पञ्चफलको वा ॥ २१ ॥

यदि किसीभी मोतीकी मालामें सोनेके तीन या पांच दाने लगेहुए होंगे, तो उसका नाम 'फलकहार' होगा । (महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रोंने २० और २१ दोनों सूत्रोंको इकट्ठा करादिया है । और उसका अर्थ इसप्रकार किया है,—'अर्धमाणवक अर्थात् दस यष्टिकी (जिसका कि वर्णन १९ वें सूत्रमें होचुका है) मालामें यदि सोनेके तीन या पांच दाने हों तो उसे 'फलकहार' कहाजाता है । हमारे विचारमें यदि कौटिल्यको अर्धमाणवककाही विशेष अवस्थामें 'फलकहार' नाम रखना था, तो २० वें सूत्रमें उसे 'मणिमध्य' पद देनेकी कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि अर्धमाणवक होताही मणिमध्य है, उसका लक्षण १९ वें सूत्रमें करादिया गया है, फिर मणिमध्य विशेषण देना व्यर्थ था । इसलिये ये दो सूत्र पृथक् २ ही कीक मूलम होते हैं; इनका अर्थ ऊपर करादिया गया है) ॥ २१ ॥

सूत्रमेकावली शुद्धा ॥ २२ ॥ सैव मणिमध्या यष्टिः ॥२३॥
 हेममणिचित्रा रत्नावली ॥ २४ ॥ हेममणिमुक्तान्तरो ऽपवर्तकः
 ॥ २५ ॥ सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम् ॥ २६ ॥

शुद्ध अर्थात् एकतीपंठ आदि क्रमसे बनीहुई एकावली अर्थात् एकही लक्ष्मी मालाको 'सूत्र' कहाजाता है ॥ २२ ॥ यदि उसहीके बीचमें मणि लगादी जावे, तो उसका नाम 'यष्टि' होजायगा ॥ २३ ॥ सोनेके दाने और मणियोंसे बनीहुई चित्र मालाका नाम 'रत्नावली' होगा ॥ २४ ॥ यदि सोनेके दाने, मणि और मांती ये एक २ के बाद सिलसिलेदार गुथे हुए हों, तो उसका नाम 'अपवर्तक' होगा ॥ २५ ॥ यदि बीचमें मणि लगीहुई न होवे, मोतियोंके साथ केवल सोनेकेही दाने लगे हों, तो उसका नाम 'सोपानक' होता है ॥ २६ ॥

मणिमध्यं वा मणिसोपानकम् ॥२७॥ तेन शिरोहस्तपादक-
 टीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः ॥ २८ ॥

यदि बीचमें मणि लगादी जावे, तो उस 'मणिसोपानक' कहते हैं ॥ २७ ॥ इससे मिर हाथ पैर भार कमरकी, भिन्न २ प्रकारकी मालाओंका व्याख्यान समझलेना चाहिये । इन्हींके अनुसार उनकीभी कल्पना करलेनी चाहिये । यहीतक मातियोंके मन्वन्धमे निरूपण कियागया । अब मणिके मन्वन्धमे कहा जायगा ॥ २८ ॥

मणिः कौटो मालेयकः पारमसुद्रकश्च ॥ २९ ॥

मणियोंके तीन मुख्य उत्पत्ति स्थान हैं, इमलिप मणि तीन प्रकारकी कहीजाती है,—कौट (मलयसागरके समीप कौट नामक स्थान है, वहांपर उत्पन्न होनेवाली) मालेयक (मलय द्वेजके एक हिस्सेमें कर्णायन नामक पर्वत मान्य है, वहांपर उत्पन्न होनेवाली मणि) और पारसमुद्रक (समुद्रके पार सिंहल आदि द्वीपोंमें उत्पन्न होनेवाली मणि) ये मणियोंके तीन भेद हैं ॥२९॥

सौगन्धिकः पद्मरागोऽनवद्यरागः पारिजातपुष्पको बाल-
 सूर्यकः ॥ ३० ॥

मणियोंमें पांच प्रकारकी मणिव्यय समझा जाता है,—सौगन्धिक (सौगन्धिक नामक कमलके समान रंगवाला; यह कमल साधारणतया सायंकाल के समय खिलता है इमका रंग कुछ नीलेपनको लिपहुण लाल होता है), पद्मराग (पद्मके समान रंगवाला), अनवद्यराग (अनवद्य केसरको कहते हैं, केसरकी तरह रंगवाला), पारिजातपुष्पक (पारिजातके फूलके समान रंगवाला), तथा

बालसूर्यक (उदय हंगतेहुप सूर्यके समान अग्ण रगवाला) ये पाँच भेद मणिकके हैं ॥ ३० ॥

वैदूर्य उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुक्रप-
त्रवर्णः पुष्परामो गोमूत्रको गोमेदकः ॥ ३१ ॥

वैदूर्य जातिकी मणि आठ प्रकारकी होती है,—उत्पलवर्ण (लाल कमलके समान रंगवाला), शिरीषपुष्पक (सिरसके फूलके रगवाली), उदक वर्ण (जलके समान स्पष्ट रगवाली), वंशराग (बांसके पत्तेके समान रग वाली), शुक्रपत्रवर्ण (तोतेके पत्तोंकी तरह हरे रगवाली), पुष्पराम (हलदीके समान पीले रगवाली), गोमूत्रक (गोमूत्रके समान रगवाली), गोमेदक (गोरौघन के समान रगवाली) ये आठ भेद वैदूर्य जातिकी मणिके हैं ॥ ३१ ॥

नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो
जीमूतप्रभो नन्दकः स्रग्न्मध्य ॥ ३२ ॥

इन्द्रनील जातिकी मणिभी आठ प्रकारकी होती है,—नीलावलीय (रग सफेद होनेपरभी जिस मणिमें नीले रगकी धारायें हों), इन्द्रनील (भोरके पेंचकी तरह नीले रगवाली), कलायपुष्पक (कलाय मटरका कहते हैं, मटरके फूलके समान रगवाली), महानील (भोरके समान गहरे काले रगकी), जाम्बवाभ (जामुनके समान रगकी), जीमूतप्रभ ' मेघके समान वर्णकी), नन्दक (भीतरसे सफेद और बाहरसे नीला), तथा स्रग्न्मध्य (जिसमेंसे जल प्रवाहक समान किरण बहती हों), ये आठ भेद नीलम मणिके हैं ॥ ३२ ॥

शुद्धस्फटिकः मूलाटवर्ण शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः
॥ ३३ ॥

स्फटिक (बिलौर) जातिकी मणि चार प्रकारकी होता है,—शुद्धस्फटिक (अत्यन्त शुद्ध वर्णकी), मूलाटवर्ण (मक्खन निकाले हुए दही अर्थात् तक्र= मटाक समान रगवाली), शीतवृष्टि (चन्द्रकान्त=चन्द्रम की किरणोंके स्पर्शसे विघल जानेवाली), और सूर्यकान्त (सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होनेपर आग उगलनेवाली मणि) ये चार भेद स्फटिक मणिके हैं । यहाँतक भिन्न २ मणियोंके भेदोंका निरूपण कियागया ॥ ३३ ॥

पडश्रथतुरथो वृत्तो वा तीव्ररागसंस्थानवानच्छः स्निग्धो
गुरुरर्चिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपी चेति मणिगुणाः ॥ ३४ ॥

अथ मणिके गुणोंका कथन करते हैं,—पडभ्र (छः कोनोंवाली), चतु-
रश्र (चार कोनोंवाली), घृत (गोलाकार), गहरे रंगवाला अथवा बहुत
घमकदार, जिसकी घनावट भूषण आदिमें लगानेके योग्य हो, निर्मल, चिकना,
भारी, दीप्तिमान्ना, बीचमेंही चघल प्रभावाला, तथा जो अपनी प्रभासे पास
रखी हुई वस्तुको प्रभायुक्त या प्रकाशित करनेवाला हो; ये ग्यारह प्रकारके
गुण मणियोंमें समझेजाते हैं ॥ ३४ ॥

मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्रो लेखाकीर्ण
इति दोषाः ॥ ३५ ॥

निम्न लिखित सात प्रकारके दोषभी मणियोंमें होते हैं,—इलके रंगवाली,
इलकी कान्तिवाली, सरखी (जिमके ऊपर छोटे २ धानेसे उठे हुए हों), जिसमें
छोटे २ छेद या, कटीहुई हो, अनुपयुक्त स्थानपर या बेमौकेजिसमें छेद होगया
हो, तथा निम्न प्रकारकी रेखाओंसे घिरीहुई हो; ये सात तरहके दोष मणियोंमें
होते हैं ॥ ३५ ॥

विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो
मृगाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्पः
सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्तिचूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्र-
पुलक इत्यन्तरजातयः ॥ ३६ ॥

इन मणियोंकी अठारह अवान्तर जातियाँ और हैं,—विमलक (सफेद
और हरे रंगसे मिश्रित), सस्यक (नीला), अञ्जनमूलक (नीला और काला
मिश्रित), पित्तक (नीके पित्ताके समान रंगवाला), सुलभक (सफेद)
लोहिताक्ष (किनारोंकी ओर छाल रंगवाला और बीचमें काला), मृगाश्मक
(सफेद और काला मिलाहुआ), किमी २ पुस्तकोंमें 'लोहिताक्ष'के स्थानपर
'लोहितक' और 'मृगाश्मक' के स्थानपर 'अमृतांशुक' पाठ है; लोहितकका अर्थ
छाल और अमृतांशुकका जर्दी माइल सफेद करना चाहिये), ज्योतीरसक
(सफेद और छाल मिलाहुआ), मैलेयक (शिंशपरकके समान रंगवाला),
आहिच्छत्रक (फीके रंगवाला), कूर्प (सुरदरा, जिसके ऊपर छोटी २ चूंदसी
उठीहुई हों), प्रतिकूर्प (दागो, जिसपर धब्बे लगेहुए हों), सुगन्धिकूर्प (मूंगके
समान घर्णवाला), क्षीरपक (दूधके समान वर्णवाला), शुक्तिचूर्णक (चित्रित,
मिलेहुए कई रंगवाला), शिलाप्रवालक (प्रवालक, अर्थात् मूंगके समान
रंगवाला), पुलक (जो बीचमें काला हो), तथा शुक्रपुलक (जो बीचमेंसे
सफेद हो) ये मणियोंके अठारह अवान्तर भेद हैं ॥ ३६ ॥

श्रेयाः काचमणयः ॥ ३७ ॥

इनके अतिरिक्त जो और मणि हों, उन्हें काचमणि अर्थात् काचके समान अधम जातिकीही समझना चाहिये, वे निकृष्ट मणि होती हैं ॥ ३७ ॥

सभाराष्ट्रकं मध्यमराष्ट्रकं काश्मीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणि-
मन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ॥ ३८ ॥

अथ वज्रमणि अर्थात्; हीरेका-निरूपण किया जाता है, - सभाराष्ट्रक (विदर्भ=भरार देशमें उत्पन्न होनेवाला), मध्यमराष्ट्रक (कोसल देशमें उत्पन्न होनेवाला), कास्तीरराष्ट्रक (कास्तीरराष्ट्रमें पैदा होनेवाला), (किसी २ पुस्तकमें 'कास्तीरराष्ट्रक' के स्थानपर 'काश्मीरराष्ट्रक' पाठ है; अर्थ स्पष्ट है), श्रीकटनक (श्रीकटननामक पर्वतपर उत्पन्न होनेवाला), मणिमन्तक (उत्तरकी ओरके मणिमन्तक नामक पर्वतपर उत्पन्न होनेवाला) तथा इन्द्रवानक (कालिङ्ग देशमें उत्पन्न होनेवाला), इन निर्दिष्ट छ स्थानोंमें उत्पन्न होनेके कारण उ प्रकारका हीरा समझना चाहिये । वस्तुतः हीरेकी उत्पत्तिके औरभी अनेक स्थान हैं, इसलिये इन्हें दिग्दर्शन मात्रही समझना चाहिये ॥ ३८ ॥

खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३९ ॥

खान, कोई २ विशेष जलप्रवाह और हाथीदांतकी जड़ आदि, ये हीरेके उत्पत्ति स्थान समझने चाहियें । (खान और जलप्रवाहके अतिरिक्त जहांकहींसे भी हीरा पैदा हो, उसका नाम प्रकीर्णक होगा) ॥ ३९ ॥

मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फ-
टिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णा
॥ ४० ॥

अथ हीरेके रंगोंको बतलाते हैं,—मार्जाराक्षक (मार्जार=बिलावकी भाँसके समान), शिरीषपुष्पक (सिरसके फूलके समान), गोमूत्रक (गो मूत्रके समान), गोमेदक (गोरोगताके समान), शुद्धस्फटिक (अत्यन्त श्वेतवर्ण स्फटिकके समान), मूलाटीपुष्पकवर्ण (मूलाटीके फूलके समान), तथा मणियोंके बतलायेहुए रंगोंमेंसे किसीके समान रंगवाला हीरा होता है । ये ही हीरेके रंग होते हैं ॥ ४० ॥

स्थूलं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखितं कुभ्रामि
भ्राजिष्यु च प्रशस्तम् ॥ ४१ ॥

मोटा, घिकना, भारी चोटको सहने वाला, धराधर कोनोंवाला, पानीसे भरेहुए पीतल भाँदिके बर्तनमें हीरा डालकर उस बर्तनके द्वाराये जानेवा

वर्तनमें लकीर ढालदेनेवाला, तकनेकी तरह घूमनेवाला (तऊना चर्खामें लगी हुई उस लोहेकी शलाकाका नाम है, जिसपर सूत लपेटा जाता है), और चमकदार हीरा प्रशस्त अर्थात् उत्तम समझा जाता है ॥ ४१ ॥

नष्टकोणं निरश्रि पार्श्वोपवृत्तं चाप्रशस्तम् ॥ ४२ ॥

नष्टकोण अर्थात् शिखर रहित (कोनों से रहित), अश्रि रहित (तीक्ष्ण कोने से रहित), तथा एक ओर को अधिक निकले हुए कोनोंवाला हीरा अप्रशस्त अर्थात् दूषित समझा जाता है ॥ ४२ ॥

प्रवालकमालकन्दकं वैवर्णिकं च रक्त पद्मरागं च कर्टं
गर्भिणिकावर्जमिति ॥ ४३ ॥

प्रवाल अर्थात् मूंगा के दो उत्पत्तिस्थान हैं, इसलिये दो प्रकारका मूंगा समझना चाहिये,—आलकन्दक (अलकन्द नामका, ग्लेचुट देशोंमें समुद्रके किनारे एक स्थान है, यहाँपर उत्पन्न होनेवाला) वैवर्णिक (यूनान देशके समीप विवर्ण नामक समुद्रका एक भाग है, यहाँपर उत्पन्न होनेवाला)। लाल तथा पद्मके समान रंग, यह दो प्रकारका मूंगका रंग होता है। यह कीड़ेका खायाहुआ न होना चाहिये, तथा बीचमेंसे मोटा या उठाहुआ न होना चाहिये; अर्थात् इन दो प्रकारके दोषोंसे रहित होना चाहिये। यहाँतक रत्नोंकी परीक्षाके सम्बन्धमें निरूपण किया गया। अब इसके आगे चन्दन आदि सार पदार्थोंका निरूपण किया जायगा ॥ ४३ ॥

चन्दनं सातनं रक्तं भूमिगन्धि ॥ ४४ ॥ गोशीर्षिकं काल-
ताम्रं मत्स्यगन्धि ॥ ४५ ॥ हरिचन्दनं शुक्रपत्रवर्णमाम्रगन्धि
॥ ४६ ॥ तार्णसं च ॥ ४७ ॥

चन्दनके सातन आदि सोलह उत्पत्तिके स्थान हैं, लाल आदि नौ रंग, और भूमिगन्धि आदि छः प्रकारके गन्ध हैं, चन्दनमें गुण श्याम होते हैं, इन्हीं सब बातोंका यथाक्रम निरूपण किया जाता है—सातन देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन लाल रंगका तथा भूमिके गंधके समान गंधवाला होता है, (भूमिगन्धि=भूमिपर पहिलेही जल डालनेपर जैसा गन्ध माच्छस होता है, उसके समान) ॥ ४४ ॥ गोशीर्ष देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन कुछ काला और लाल मिले हुए रंगका होता है, तथा इसका गन्ध, मछलीके गन्धके समान होता है। (भट्टस्वामीने 'मत्स्यगन्धि' शब्दका अर्थ 'लाल करंदके गन्धके समान गन्धवाला' किया है) ॥ ४५ ॥ हरिचन्दन अर्थात् हरि नामक देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन, तीतेके पत्रके समान हरे रंगका, आमके गंधके समान गंध

वाला होता है ॥ ४६ ॥ और तृणसा नामक नदीके किनारेपर होनेवाला चन्दनभी हरिचन्दनके समानही होता है ॥ ४७ ॥

ग्रामेरुक्तं रक्तं रक्तकालं वा वस्तमूत्रगन्धि ॥ ४८ ॥ दैव-
सभेयं रक्तं पद्मगन्धि ॥ ४९ ॥ जीवकं च ॥ ५० ॥

ग्रामेरु प्रदेशमें होनेवाला चन्दन लाल रंगका अथवा लाल और काले मिलेहुए रंगका होता है; इसका गन्ध, बकरेके पेशाबके समान होता है। (किसी २ व्याख्याकारने 'वस्त' शब्दका अर्थ कस्तूरीहिरणभी किया है, तब इसके पेशाबके समान गन्ध समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ देवसभा नामक स्थान में होनेवाला चन्दन लाल रंगका, तथा पद्मके समान गन्धवाला होता है ॥ ४९ ॥ तथा जावक देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दनभी लाल रंग तथा पद्मके समान गन्धवाला होता है ॥ ५० ॥

जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम् ॥ ५१ ॥ तौरूपं च
॥ ५२ ॥ मालेयकं पाण्डुरक्तम् ॥ ५३ ॥ कुचन्दनं कालवर्णकं
गोमूत्रगन्धि ॥ ५४ ॥

जोंग देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन लाल रंगका अथवा लाल और काले मिलेहुए रंगका तथा चिकना होता है। इसका गन्ध पद्मके समानही होता है ॥ ५१ ॥ तुरूप देशका चन्दनभी जोङ्गक (जोंग देशके चन्दन) के सर्वथा समानही होता है ॥ ५२ ॥ माला स्थानके चन्दनका रंग कुछ पीला और लाल मिलाटुभा होता है। इसका गन्धभी पद्मके समान समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ कुचन्दन काले रंगका तथा गोमूत्रके समान गन्धवाला होता है। (किसी २ व्याख्याकारने गोमूत्र शब्दका अर्थ नीला कमलभी किया है ॥ ५४ ॥

कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा ॥ ५५ ॥
कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा ॥ ५६ ॥

कालपर्वत देशमें पैदा होनेवाला चन्दन रूक्ष (अर्थात् कुछ सूखा सा= खरखरा), तथा अगुरुके समान काला, अथवा लाल या लाल और काले मिलेहुए रंगका होता है। इसका गन्ध गोमूत्रके समानही समझना चाहिये। (५४ और ५५ मूल सूत्रोंके स्थानपर किसी २ पुस्तक में "कुचन्दनं कालरूक्ष-मगुरुकालं रक्त रक्तकालं वा। कालपर्वतकमनवद्यवर्णं वा" ऐसा पाठ है। इस पाठमें कुछ शब्द इधर उधर दोगये हैं, गन्ध बतलाने वाला कोई शब्द नहीं आया, जो अवश्य भाग्य चाहिये; और कोई विशेष अर्थ-भेद नहीं है। 'अनवद्यवर्ण' शब्दका अर्थ केसरके समान रंग वाला करना चाहिये ॥ ५५ ॥ कोश-कारपर्वत नामके देशमें होनेवाला चन्दन, काला अथवा चितकवरा होता है ॥ ५६ ॥

शीतोदकीयं पद्मामं कालस्निग्धं वा ॥ ५७ ॥ नागपर्वतकं
रुद्धं शैवलवर्णं वा ॥ ५८ ॥ श्याकलं कपिलमिति ॥ ५९ ॥

शीतोदक देशमें होनेवाला चन्दन पत्रके समान रंगका अथवा काला तथा स्निग्ध होता है ॥ ५७ ॥ नागपर्वत प्रदेशमें उत्पन्न हुआ २ चन्दन रुखा और जलकी काई या सिरवालके समान रंगवाला होता है ॥ ५८ ॥ श्याकल देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन कपिल (कुछ पीला और कुछ लाल मिलेहुए) रंगका होता है । इन (५६ वें सूत्र से यहाँतक बताए हुए सबही) चन्दनका गन्ध गोमूत्रके समान ही समझना चाहिये ॥ ५९ ॥

लघु स्निग्धमश्यानं सर्पिलेहलेपि गन्धगुखं त्वगनुसार्थनुल्ब-
णमविरागघुष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः ॥६०॥

चन्दनमें निम्नलिखित ये ग्यारह गुण होते हैं,—लघु (हलका होना), ध्रुवना, बहुत दिनमें सूखनेवाला, घृतके समान देशमें लगने वाला, मगोहर गन्धवाला, खालके भीतर प्रविष्ट होकर सुख देनेवाला, अनुहयण अर्थात् फटाहुआ सा न दीखनेवाला, शरीरपर लेप करलेनेपर जिसके घर्ष या गन्धमें कोई भी विकार न हो, गरमीको सहन करनेवाला (अर्थात् देहपर लेप करनेसे देहकी गरमीको शान्त करने वाला, सन्तापको हरण करने वाला, तथा स्पर्श करनेमें अत्यन्त सुखकर प्रतीत होना, ये ग्यारह चन्दन के गुण होते हैं ॥६०॥

अगुरु जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डलचित्रं वा ॥ ६१ ॥
श्यामं दोङ्गकम् ॥ ६२ ॥ पारसमुद्रकं चित्ररूपमुशीरगन्धि नव-
मालिकागन्धि वेति ॥ ६३ ॥

अथ अगरके विषयमें निरूपण किया जायगा,—जोङ्गक नामक अगर तीन तरह का होता है, काला, चितकयरा (जिसमें सफेद और काले रंगकी रेखायें सी हों), तथा जिसमें काली और सफेद दूसरी पट्टी हों । अर्थात् सफेद और काले दागों से युक्त हो ॥ ६१ ॥ इसी तरह दोङ्गक नाम का अगर काला होता है । यह दोनों ही जोङ्गक और दोङ्गक आगाम देशमें उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ समुद्र के पारका अर्थात् सिङ्गल द्वीप आदिमें उत्पन्न होने वाला अगर चित्र रूपका होता है, इनका गन्ध उशीर (खस) तथा मई चमेलीके समान होता है ॥ ६३ ॥

गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हारिप्रिमहमसंछुतधूमं समगन्धं
विर्मदसहमित्यगुरुगुणाः ॥ ६४ ॥

भारी, चिकना, मनोहर गन्धवाला, दूर तक फैल जाने वाली गन्धसे युक्त, अग्नि को सद्गन्ध करने वाला, जिसका धुआं व्याकुलता उत्पन्न करने वाला न हो, जलाते समय आगे पीछे एक जमी गन्ध का निकलना, तथा चस्त्र आदि पृष्ठ देनेपर भी गन्ध का उसी तरह बने रहना, ये अंगरके गुण होते हैं ॥ ६४ ॥

तैलपर्णिकमशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि ॥६५॥ जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ॥ ६६ ॥

अशोकग्राम (आसाम) में होने वाला तैलपर्णिक (एक प्रकारका चन्दन) मांसके समान वर्णवाला तथा पद्मके समान गन्ध वाला होता है । (व्याख्याकार भट्ट स्वामीने, ' मांसवर्णं ' शब्दका अर्थ ' हरिणकी मांसपेदी के वर्णके समान; यह किया है) ॥ ६५ ॥ जोङ्गक (अर्थात् जोङ्ग नामक, आसाम के एक आवांतर प्रदेशमें उत्पन्न होने वाला) तैलपर्णिक लाल तथा पीले मिले हुए रङ्ग का होता है, इसका गन्ध कमल के समान अथवा गो-मूत्रके समान होता है ॥ ६६ ॥

ग्रामेरुक्तं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि ॥ ६७ ॥ सौवर्णकुण्डलकं रक्तपीतं मातुलङ्गगन्धि ॥ ६८ ॥ पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीतगन्धि चेति ॥ ६९ ॥

ग्रामेरु प्रदेशमें होने वाला तैलपर्णिक चिकना तथा गोमूत्र के समान गन्ध वाला होता है ॥ ६७ ॥ आसाम के सुवर्णकुण्डल नामक स्थानमें होने वाला तैलपर्णिक कुछ लाल और कुछ पीले मिले हुए रङ्ग का होता है, तथा इसका गन्ध, मातुलङ्ग (एक तरह का नींबू) के समान होता है ॥ ६८ ॥ पूर्णक द्वीपमें उत्पन्न होने वाला तैलपर्णिक पद्मके समान अथवा मन्थनके समान गन्ध वाला होता है ॥ ६९ ॥

भद्रश्रीयं पारलौहित्यकं जातीवर्णम् ॥ ७० ॥ आन्तरवत्यमुशीरवर्णम् ॥ ७१ ॥ उभयं कुष्ठगन्धि चेति ॥ ७२ ॥

भद्रश्रीय (एक प्रकारका चन्दन । केई २ व्याख्याकार इसको कपूर भी कहते हैं) दो प्रकारका होता है, एक पारलौहित्यक और दूसरा आन्तरवत्य, आसाम प्रान्तके लौहित्य नामक नदीके पार होने वाला पारलौहित्यक कहाता है, इसका रङ्ग चमेलीके फूलके समान होता है ॥ ७० ॥ दूसरा आन्तरवत्य भी आसाम की आन्तरवती नदीके तटपर उत्पन्न होता है, तथा इसका रङ्ग खसके रङ्गके समान होता है ॥ ७१ ॥ इन दोनों का ही गन्ध कुष्ठ (कूट-पूक औषधि का नाम है) के समान होता है ॥ ७२ ॥

कालेयकः स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः ॥ ७३ ॥ औत्तरपर्व-
तको रक्तपीतक इति साराः ॥ ७४ ॥ पिण्डकाथभूमसहमविरागि
योगानुविधायि च ॥ ७५ ॥

कालेयक (दारु हल्दी या पीले चन्दन को कहते हैं), स्वर्ण भूमि
(स्थान विशेष) में उत्पन्न होने वाला, तथा चिहना और पीले रङ्ग का होता
है ॥ ७३ ॥ उत्तर पर्वत अर्थात् हिमालय पर होने वाला कालेयक लाल और
पीले मिले हुए रङ्ग का होता है । यहां तक सार वस्तुओंकी परीक्षा का
कथन किया गया ॥ ७४ ॥ तिलपिण्ड, भद्रश्रीय और कालेयक, इन
तीनोंके गुण निम्न लिखित हैं:—पीसने पर, पकाने पर, तथा भागमें जलाने
पर, गन्धमें किसी प्रकारका विकार न होना, तथा दूसरी वस्तुके साथ मिलाने
पर और देरतक रखे रहने पर भी इनके गन्ध आदिमें किसी तरहका भेद न
आना ॥ ७५ ॥

चन्द्रनागरुच्च तेषां गुणाः ॥ ७६ ॥ कान्तनायकं प्रैयकं
चोत्तरपर्वतकं चर्म ॥ ७७ ॥

इसके अतिरिक्त, चन्दन और अगरके जो गुण, पीछे बताये गये हैं,
यह भी इसमें समझने चाहिये ॥ ७६ ॥ अब फलानु पदार्थों का निरूपण किया
जाता है । उनमें सबसे प्रथम चमड़ा है, चमड़ा पन्द्रह तरह की जातियोंमें
विभक्त है । सी १००)के सूत्र तक इन्हींका क्रमशः वर्णन किया जायगा ।
उनमें से दो भेद यह हैं—कान्तनायक और प्रैयक, कान्तनायक और प्रैय देशोंमें
जो चमड़ा पैदा होता है, उसीके ये नाम हैं, यह दोनों प्रकारका चमड़ा औत्तर-
पर्वतक अर्थात् हिमालय में उत्पन्न हुआ २ कहा जाता है । इसका अभिप्राय
यह है कि ये दोनों ही देश हिमालय के ही अन्तर्गत प्रदेश हैं ॥ ७७ ॥

कान्तनायकं मयूरग्रीवामम् ॥ ७८ ॥ प्रैयकं नीलपीतं श्वेतं
लेखि विन्दुचित्रम् ॥ ७९ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥ ८० ॥

इन दोनों प्रकारके चमड़ोंमें से पहिला कान्तनायक, मोरकी गर्दनके
समान काज्जि वाला होता है ॥ ७८ ॥ और दूसरा प्रैयक नीले पीले रङ्गका
मिला हुआ तथा सफेद रङ्गका, रेखाओं वाला या बुंदोंसे विचित्रता होता है ।
॥ ७९ ॥ यह दोनों ही प्रकारका कान्तनायक और प्रैयक नामक, चमड़ा आठ
अंगुल विस्तार वाला होता है ॥ ८० ॥

विंसी महाविंसी च द्वादशगामीये ॥ ८१ ॥ अव्यक्तरूपा
दुहिलितिका चित्रा वा विंसी ॥ ८२ ॥ परुषा श्वेतप्राया महा-
विंसी ॥ ८३ ॥ द्वादशाङ्गुलायाममुभयम् ॥ ८४ ॥

द्वादश ग्राम । हिमालयमें ग्लेच्छा के बारह गाव प्रसिद्ध हैं, उन) में उत्पन्न होने वाला चमड़ा विंसी और महाविंसी नामसे कहा जाता है ॥ ८१ ॥ इन दोनोंमें से जिसका रूप (बहुत रङ्गोंके मिलनेके कारण) स्पष्टतया प्रतीत न हो, वालों वाला तथा चितकषरा सा हो, यह विंसी होता है ॥ ८२ ॥ कठोर तथा प्रायः सफेद रङ्गका चमड़ा महाविंसी कहाता है ॥ ८३ ॥ इन दोनों का विस्तार बारह २ अगुल का माना गया है ॥ ८४ ॥

श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला चारोहजाः
॥ ८५ ॥ कपिला विन्दुचित्रा वा श्यामिका ॥ ८५ ॥ कालिका
कपिला कपोतवर्णा वा ॥ ८७ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥ ८८ ॥

हिमालयके आरोह नामक स्थानमें उत्पन्न होनेवाला चमड़ा पांच प्रकारका होता है — श्यामिका, कालिका, कदली, चन्द्रोत्तरा और शाकुला ॥ ८५ ॥ कपिल रंग (सन्ध्याके समय जैसा पश्चिमकी ओर रंग दिखाई देता है), तथा यूदासे चितकषरसे रंगका चमड़ा 'श्यामिका' कहाता है ॥ ८६ ॥ 'कालिका' नामका चमड़ाभी कपिल रंगका अथवा क्यूतरके समान रंगका होता है ॥ ८७ ॥ ये दोनों प्रकारके चमड़े आठ अगुल विस्तारके समझे जाते हैं ॥ ८८ ॥

परुषा कदली हस्तायता ॥ ८९ ॥ सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रो-
त्तरा ॥ ९० ॥ कदलीत्रिमामा शाकुला कोठमण्डलचित्रा कृत-
फणिंकाजिनचित्रा चेति ॥ ९१ ॥

'कदली' नामका चमड़ा कठोर खुरदरा होता है, इसकी रज्जुवाइ एक हाथ समझी जाती है ॥ ८९ ॥ यह कदली नामक चमड़ाही यदि घाँदके समान बूँदोंसे युक्त होवे, तो उसे 'चन्द्रोत्तरा' कहा जाता है । इन दोनोंका रंग कालिकाके समानही समझना चाहिये ॥ ९० ॥ कदलीसे तीन गुना बड़ा (अर्थात् तीन हाथका) अथवा कदलीका तीसरा हिस्सा (अर्थात् आठ अगुल परिमाण का) 'शाकुला' नामक चमड़ा होता है, यह हल धन्नोंसे युक्त होता है, तथा इसमें स्वभावतः ही कुछ गाँठसी पड़ी होती है ॥ ९१ ॥

सामूरं चीनसी सामूली च बाह्वेयाः ॥ ९२ ॥ पट्विंशद-
ङ्गुलमञ्जनवर्ण सामूरम् ॥ ९३ ॥ चीनसी रक्तकाली पाण्डुकाली
वा ॥ ९४ ॥ सामूली गोधूमवर्णेति ॥ ९५ ॥

हिमालयके बाल्हेय नामक प्रदेशमें तीन प्रकारका चमड़ा होता है, सामूर, चीनसी और सामूली ॥ ९२ ॥ छत्तीस अंगुल परिमाण वाला तथा अजनके समान काले रंगका चमड़ा 'सामूर' कहाता है ॥ ९३ ॥ लाल काले अथवा पीले और काले मिलेहुए रंगका चमड़ा 'चीनसी' होता है ॥ ९४ ॥ गंधुए रंगका चमड़ा 'सामूली' कहाता है । इन दोनोंका परिमाण सामूरके समान छत्तीस अंगुल ही समझना चाहिये ॥ ९५ ॥

सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा चौद्राः ॥ ९६ ॥ सातिना कृष्णा ॥ ९७ ॥ नलतूला नलतूलवर्णा ॥ ९८ ॥ कपिला वृत्तपुच्छा च ॥ ९९ ॥ इति चर्मजातयः ॥ १०० ॥ चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुलरोम च श्रेष्ठम् ॥ १०१ ॥

उट्ट नामके जलघर प्राणीकी खाल तीन प्रकारकी होती है,—सातिना, नलतूला और वृत्तपुच्छा ॥ ९६ ॥ इनमेंसे 'सातिना' खाल काले रंगकी होती है ॥ ९७ ॥ नरसलकी खालके समान सफेद रंगकी खाल 'नलतूला' कहाता है ॥ ९८ ॥ तथा 'वृत्तपुच्छा' नामकी खाल कपिल (लाल और पीले मिलेहुए) रंगकी होती है ॥ ९९ ॥ यहाँतक चमड़ेकी भिन्न २ जातियोंका निरूपण किया गया ॥ १०० ॥ चमड़ेमेंसे सुलायम चिकना तथा अधिक बालों वाला चमड़ा उत्तम समझा जाता है ॥ १०१ ॥

शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं चायिकम् ॥ १०२ ॥ खचितं वानचित्रं खण्डसङ्घात्यं तन्तुविच्छिन्नं च ॥ १०३ ॥ कम्बलः कौचपकः कुलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणं वर्णकं तालिच्छकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं चायिकम् ॥ १०४ ॥

भेड़की ऊनसे बुनेहुए कपड़े प्रायः, सफेद, लाल, और कुछ लाल रंगके (अर्थात् जिनमें कुछ तन्तु लाल रंगके हों, और कुछ उनके साथ अन्य किसी रंगके मिले हों), होते हैं ॥ १०२ ॥ ये कपड़े बनाघटके भेदसे चार प्रकारके होते हैं,—खचित (जिनपर कसीदेका काम कियाहुआ हो), वानचित्र (बुनाघटमेंही जिनमें तरह २ के फूल पैगैरह डालदिये गये हों), खण्डसंघात्य (तरह २ की बुनाघटके छोटे २ टुकड़ोंको जोड़कर जो कपड़ा बनाया गया हो) और तन्तुविच्छिन्न (बुननेके समय कुछ तन्तुओंको छोड़कर जालीकी तरह बुनाहुआ कपड़ा), ॥ १०३ ॥ बनकर तैयार हुए २ ऊनके कपड़ोंके साधारणतया दस भेद हैं—कम्बल, कौचपक अथवा केशलक (जंगलमें काम आने वाला शिरछाण), कुलमितिका अथवा कलमितिका (शायीके ऊपर डालने-

घाला झल, अथवा हाथीपर अम्बारी रखते समय उसके नीचे पीठपर विछानेका कपड़ा), सैमिंतिका (अम्बारीके ऊपर डालनेका काले रंगका कपड़ा), सुरगास्तरण (घोड़ेकी पीठपर डालनेका कपड़ा), घण्टक (रंगाहुभा कम्बल), तलिच्छक (यहभी एक तरहका कम्बल होता है, जो विस्तरपर नीचे विछानेके काममें आता है) धारवाण (कोट कुत्ता, या खोला आदि) परिस्तोम (धारीदार इस प्रकारका बनाहुभा कम्बल जो कुल, बनावटकी विशेषता के कारण यद्वा सा मालूम पड़े), और समन्तभद्रक (धार खानेका कम्बल , ये सब कपड़े भेड़की ऊनसे तैयार कियेहुए होते हैं ॥ १०४ ॥

पिच्छलमार्द्रमिव च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १०५ ॥ अष्ट-
प्रोतिसंज्ञात्या कृष्णा भिङ्गिती वर्पवारणमपसारक इति नैपाल-
कम् ॥ १०६ ॥

चिकना, घमकदार, बारीक डोरेका, मुलायम कम्बल उत्तम समझा जाता है ॥ १०५ ॥ आठ टुकड़ोंको जोड़कर बनाई हुई, काले रंगकी 'भिङ्गिती' होती है, यह वर्षासे बचनेके काममें लाई जाती है। इसी प्रकारके एक ही सीधे (अर्थात् टुकड़ोंसे न बनेहुए) कपड़ेका नाम 'अपतारक' है। यह कपड़े नेपाल देशमें बनाए जाते हैं ॥ १०६ ॥

संपुटिका चतुरश्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलि-
केति मृगरोम ॥ १०७ ॥

छः प्रकारका कपड़ा मृगके बालोंसे बनाया जाता है,—संपुटिका (जांघिया, अथवा सुत्यन), चतुरश्रिका (किनारीसे रहित, तथा कोनोंमें नौ अंगुल परिमाणमें बेल घूंटोंसे युक्त), लम्बरा (ऊपर ओढ़नेका कपड़ा), कटवानक (मोटे सूत अर्थात् डोरेका बना हुआ कपड़ा), प्रावरक (ओढ़नेका कपड़ा, जिसके दोनों ओर किनारे हों), और सत्तलिका (नीचे बिछानेका कपड़ा), ये कपड़े, मृग अर्थात् भिन्न २ जंगली जानवरों की ऊनसे बनाये जाते हैं ॥ १०७ ॥

वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं पौण्ड्रकं श्यामं मणिलिग्धं
सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम् ॥ १०८ ॥

दुकूल अर्थात् दुशाळा, देश भेदसे तीन प्रकारका होता है,—वाङ्गक, पौण्ड्रक, और सौवर्णकुड्यक। इनमें से वाङ्गक अर्थात् बंगालमें बना हुआ दुशाळा सफेद तथा चिकना होता है। पौण्ड्रक अर्थात् पुण्ड्र देशमें बनाया

हुआ हुआला काला तथा मणिके समान सिग्ध होता है, और सौवर्णकुड्यक अर्थात् आसामके सुवर्णकुड्य नामक स्थानमें बनाया जानेवाला, सूर्यके समान चमकते हुए रंगका होता है ॥ १०८ ॥

मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च ॥१०९॥

एतेषामेकांशुकमर्धद्वित्रिचतुरंशुकामिति ॥ ११० ॥ तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम् ॥ १११ ॥

इन सबही दुशालों की बुनावट तीन प्रकारकी हो सकती है,—(१) पहिले दुशालेके साधन भूत तन्तु आदि द्रव्यों को जलसे भिगोकर, फिर उन्हे मणिबन्धसे रगड़ कर तन्तुओं को टूट बनाकर, फिर बुनावट करना, (२) ताने और बाने में दोनों ओरसे ही बराबर एकसे बारीक तन्तुओं से बुनावट करना; (३) मिले हुए तन्तुओंसे (कपास, ऊन या रेशम आदि भिन्न २ जातियोंके, अथवा सफेद नीले पीले आदि भिन्न २ रंगोंके तन्तुओंसे) बुनावट करना ॥ १०९ ॥ इन सब दुशालोंमें वही उत्तम होता है, जिसके ताने और बानेमें एकसे ही सूक्ष्म तन्तु हों, इनसे छोटे दुगने त्रिगुने तथा चौगने मोटे तन्तुओंके होनेपर, उत्तरोत्तर वह दुशाला कम कीमतका समझा जाता है । यहाँतक दुशालोंका निरूपण किया गया ॥ ११० ॥ इससे काशी प्रान्तमें तथा पुण्ड्र देशमें उत्पन्न होने वाले अर्थात् बनाये जाने वाले क्षौम (रेशमी वस्त्रों) का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये । (अर्थात् जो सूक्ष्म एकद्वरे तन्तुओंका बना हो, वह उत्तम, और इसके आगे उत्तरोत्तर स्थूल तन्तुओंके होनेसे यह कम कीमतका समझा जाता है) ॥१११॥

मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुड्यका च पत्रोर्णाः ॥११२॥

नागवृक्षो लिङ्गुचो वकुलो घटश्च योनयः ॥ ११३ ॥

मागध, पुण्ड्रक तथा सुवर्ण कुड्यक, इन तीन देशोंमें उत्पन्न होनेवाली 'पत्रोर्णा' होती है । ('पत्रोर्णा' उनके सदृश उन तन्तुओंका नाम है, जो भिन्न २ वृक्षोंके पत्तों आदि पर कीड़ोंके द्वारा उनकी लारसे बनाये जाते हैं । किसी २ व्याख्याकारने इसका अर्थ पत्ते आदिके रेशे, जो उन्हें फूटकर निकाले जाते हैं किया है) ॥ ११२ ॥ यह पत्रोर्णा निम्न लिखित चार वृक्षोंपर ही प्राय अधिकतासे उत्पन्न होती है,—नागवृक्ष (नागकेसर अथवा पानवेल आदि) लिङ्गुच (पडहर) वकुल (मौलसरी), तथा घट (बड) ॥ ११३ ॥

पीतिका नगवृक्षिका ॥ ११४ ॥ गोधूमवर्णा लैङ्गुची

॥ ११५ ॥ श्वेता वाकुली ॥११६॥ शेषा नवनीतवर्णा ॥११७॥

नागवृक्ष पर होने वाली पत्रोर्णा पीले रंगकी होती है ॥ ११४ ॥
लिकुच अर्थात् बडहर पर होनेवाली गेरुए रंगकी होती है ॥ ११५ ॥ घकुल पर
उत्पन्न होने वाली सफेद ॥ ११६ ॥ और शेष बट आदि वृक्षोंपर होने वाली
पत्रोर्णा मक्कनके समान रंगवाली होती है ॥ ११७ ॥

त्रासां सौवर्णकुट्यका श्रेष्ठा ॥ ११८ ॥ तथा कौशेयं चीन-
पट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः ॥ ११९ ॥

इन सबमें से सुवर्णकुट्य नामक देशमें उत्पन्न होनेवाली पत्रोर्णा सबसे
उत्तम समझी जाती है ॥ ११८ ॥ इसके समानही अन्य प्रदेश, तथा चीन देशमें
उत्पन्न होने वाले चीनपट्ट (चीन देशमें बने हुए रेशमी वस्त्र) भी समझ
लने चाहियें । (अर्थात् उनके भी नागवृक्ष आदि उत्पत्ति स्थान तथा फीले
आदि रंग होते हैं) ॥ ११९ ॥

माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिपकं
च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति ॥ १२० ॥

मधुरा (पाण्ड्य देशकी राजधानी, इससे सम्पूर्ण देशका ग्रहण करना
चाहिये), अपरान्तक (कोङ्कण देश), कलिङ्ग, काशी, वङ्ग, वात्स, और माहिपक
(मैसूर), इन देशोंमें उत्पन्न होने वाली कपासके कपड़े सब से उत्तम समझे
जाते हैं । यहा तक फल्यु पदार्थोंका निरूपण किया गया । ॥ १२० ॥

अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम् ।

जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च ॥ १२१ ॥

मौक्तिक से एसाकर कार्पासिक पर्यन्त जिन रत्न आदिका निरूपण इस
प्रकरणमें कर दिया गया है, तथा जिनका निरूपण अगले प्रकरणों में किया
जानेवाला है, उनसे अतिरिक्त रत्नोंक भी प्रमाण, मूल्य, लक्षण, जाति,
रूप, निधान (उनके उपयोगका प्रकार), तथा नवकर्म (खान से
निकलने पर उनके शोधन बेधन तथा घर्षण आदि का प्रकार) आदि सबके
विषयमें अवश्य ही कोशाध्यक्ष को जानकारी प्राप्त करनी चाहिये ॥ १२१ ॥

पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगृह्यमुपस्करान् ।

देशकालपरीभोगं हिंसाणां च प्रतिक्रियाम् ॥ १२२ ॥

श्रमत्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे कोशप्रवेशपरसपरीक्षा एकादशाऽध्याय ॥ ११ ॥
आदितो द्वात्रिंशत् ॥ ३२ ॥

तथा इसके अतिरिक्त पुराने रसोंका पुनः संस्कार, कर्मगुण (रसोंका छीलना, तथा उनका रंग भादि बदलना), उपस्कर (रसोंके साफ करनेके लिये अन्य उपयोगी साधन), देश कालके अनुसार उनके उपयोग तथा उनमें लगने वाले कीड़े या बूँदें आदिका प्रतीकार भी कोशाध्यक्षको अवश्य जानना चाहिये ॥ १११ ॥

अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

वारहवां अध्याय ।

३० प्रकरण ।

खानके कार्योंका संचालन ।

आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्त्वज्जसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसंपन्नः कित्ठमूपाङ्गारमस्मालिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्व वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुद्रगन्धरसं प्ररीक्षित ॥ १ ॥

आकराध्यक्ष अर्थात् खानोंके अध्यक्षको चाहिये, कि वह शुल्ब शास्त्र (जिसमें रसों आदिके सोना बनाने की विधि बतलाई गई हो, ऐसा शास्त्र), धातु शास्त्र (किसी धातुमें उचित उपार्थोंसे अधिक शक्ति उत्पन्न कर देनेकी विधि बताने वाला शास्त्र), रस (गुण रसायन आदि), पाक (सुवर्ण आदिको अग्निमें तपानेसे उनके रूपमें उत्कृष्टता उत्पन्न करनेका आदि), और मणिराग (मणियोंके वर्ण आदि बदलने) आदि के विषयमें अच्छी जानकारी प्राप्त करे । अथवा इन सब विषयोंकी जानने वाले पुराणोंके साथ रहकर, और इन रसोंका लगातार व्यापार करने वाले पुरुषों, तथा अन्य कसी बुद्धिमान, धौकरी संदासी आदि आवश्यक साधनोंको साथमें लेकर; किट्ट (लोहेका मैल), मूपा (वह वस्तु, जिसके पागमें सुवर्ण आदिको रसकर तपाया जाता है), और अंगारमस्म (रस) आदि चिन्होंकी देखकर पुरानी खानकी परीक्षा करे । तथा मही, पत्थर, रस (जल आदि) आदिमें जहाँ धातु मिली हुई मालूम हो, या उसका रङ्ग बहुत चमकता हो, या वह मही आदि बहुत भारी, अथवा तीव्र गन्धसे या तीव्र रससे युक्त हो, तो इन सब चिन्होंकी

देखकर मौजूदा खानकी जांच करनी चाहिये; अर्थात् यह समझना चाहिये; कि यहाँपर खान विद्यमान है ॥ १ ॥

पर्यतानामभिज्ञातोद्देशानां विलगुहोपत्यकालयनिगूढसाते-
ध्वन्तः प्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपकहरिद्राभेदहरितालमनः-
शिलाशौद्रिहिलुकपुण्डरीकशुकमयूरपत्र्यवर्णाः सवर्णोदकौपधी-
पर्यन्ताश्लिक्णा विशदा भारिकाश्च रसाः काश्चनिकाः ॥ २ ॥

पहिले पहिचाने हुए पहाड़ोंके गर्दों गुफाओं, सराइयों, पधरीले स्थानों तथा बड़ी २ शिलाओंसे ढके हुए छिपे छेदोंमें रहने वाले; जामुन आम तथा ताड़के फलके समान, पकी हलदी हरिताळ मनसिल राइद शिंगरफु कमल, और तोते तथा मोरके पंखोंके समान रङ्ग वाले; अपने समान वर्णके जल तथा औषधि तक फैलने वाले, धिकने पवित्र तथा भारी जलोंको देखकर यह अनुमान करना चाहिये, कि जहाँसे ये इसप्रकारके जल निकलकर बहरहे हैं, वहाँ अवश्यही सुवर्णकी खान है, अर्थात् सोनेकी खानके ये चिन्ह होते हैं ॥ २ ॥

अप्सु निष्ठयतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः ज्ञतादुपरि वैद्वारः ॥ ३ ॥

इसप्रकारके जलोंको यदि दूसरे साधारण जलमें मिलाया जाय, और वे उसमें तैलकी तरह फैल जायें, अथवा कतक (जलको स्वच्छ करने वाला एक फल=निरवसी) के फलके समान जलको स्वच्छ करता हुआ नीचे बैठ जाये; अथवा सौ पल ताँबे या चाँदीको, उसके ऊपर डाला हुआ वह एक पल जल मुनहरा यमादेवे, तो भी समझना चाहिये कि इस जलके निकालके नीचे अवश्य सोनेकी खान है ॥ ३ ॥

तद्रप्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात् ॥ ४ ॥

यदि किसी स्थानपर उसके समान केवल उग्रगन्ध या उग्ररस हो, तो समझना चाहिये कि यहाँपर शिलाजतुका उत्पत्ति स्थान है, सुवर्ण आदिका नहीं ॥ ४ ॥

पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरघातवः प्रभिन्ना नीलराजीवन्तो मुद्गमापकसरवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डाचित्रा हरिद्रा हरीतकीपत्रपत्रशैबलयकृत्सीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्चुचुवालुकालेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्तस्ताप्यमाना न

भियन्ते बहुकेनधूमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थीस्ताम्ररूप्यवेधनाः
॥ ५ ॥

पॉले रङ्गकी, तांबेके रङ्गकी अथवा दोनों मिले हुए रङ्गकी भूमिधातु (मही) और प्रस्तरधातु (पत्थर भादि), तोड़नेपर बीचमें नीलो रेखाओंसे युक्त, अथवा भूंग उड़द या तिलोंके समान धर्णके दानोंसे युक्त; अथवा दहीके कणोंके समान छोटी २ बूंदोंसे घिरी हुई, या दही के समान बड़ी २ बूंदोंसे युक्त, हलदी, हरष, कमलका पत्ता, सिरवाल, एकतु प्लीहा तथा केसरके समान धर्णसे युक्त, तथा तोड़नेपर थारिक रेतके समान रेखाओं, बूदों या रस्तिकों (त्रिभोण रूपकी त्रिभोण रेखाओं) से युक्त; छोटी २ गोळियों जैसे मोटे रेतसे युक्त; कान्ति युक्त; तपाये जानेपर न फटने वाली तथा बहुत क्षाम और पुआं देनेवाली, सुवर्णधातु होती हैं; अर्थात् इसप्रकारकी भूमिधातु और प्रस्तरधातु, तांबे तथा चांदीकी सोना बना देने वाली होती हैं । इनके मेलसे तांबा और चांदी भी सोना बन जाते हैं ॥ ५ ॥

शङ्खकर्पूरस्फटिकनवतीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीवाव-
र्णाः सस्यकगोमेदकगुडमत्स्यण्डिकावर्णाः क्रोविदारपद्मपाटलीक-
लायक्षौमातसीपुष्पवर्णाः ससीसाः साज्जनाः विस्त्रा भिन्नाः श्वे-
ताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखाविन्दुचित्रा मृदयो
ध्मायमाना न स्फुटन्ति बहुकेनधूमाश्च रूप्यधातवः ॥ ६ ॥

शङ्ख, कपूर, स्फटिक (मिर्दर), नवतीत (मरसन), कपोत (जहली कयूतर), पारावत (ग्राभीण कयूतर), विमलक (सफेद तथा लाल रङ्गका मणि), ओर मोरकी गर्दनके समान रङ्ग वाले; सस्यक (नाछे रङ्गकी मणि), गोमेदक (नौका पित्त), गुड, तथा मत्स्यण्डिका (शकर डलीदार) के समान रंग वाले; कंचनार, कमल, पाटली, मटर, क्षुमा (एक तरहकी बलसी) तथा अलसीके समान वर्ण वाले; सीसेसे युक्त, अजनसे युक्त, दुर्गन्धसे पूर्ण; तोड़े जानेपर बाहरसे सफेद मालूम होने वाले भीतरसे काले निकलें, तथा जो बाहरसे काले हों, वे भीतरसे सफेद निकलें; अथवा सपही तरह २ की रेखा तथा बूदोंसे चित्रितसे हों, मृदु, तथा तपाये जानेपर जो फटें नहीं, किन्तु बहुत क्षाम और पुआं उगले; इसप्रकारके धातु रूप्यधातु कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्त्ववृद्धिः ॥ ७ ॥

संबन्धी कहे हुए अथवा धारण कहे जाने वाले धातुओंके सम्यग्धर्म यह नियम समझना चाहिये, कि उनमें जितनी गुस्ता अर्थात् भारीपन अधिक होगा, उतनेही वे अधिक सारधान समझे जावेंगे ॥ ७ ॥

तेपामशुद्धा मूढगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षारमाविता राजवृक्षवट-
पीलुगोपित्तरोचना महिपस्वरकरभमूत्रलण्डापिण्डवद्वास्तत्प्रतीवा-
पास्तदवलेपा वा विशुद्धाः स्रवन्ति ॥ ८ ॥

इन धातुओंमेंसे जो अशुद्ध हो, अथवा अपने मल आदि दोषोंसे ही जिनका सख यथार्थ प्रकट न होरहा हो, उनका शोधन करलिया जावे । शोधन के प्रकार ये हैं — तीक्ष्ण मूत्र (मनुष्यका मूत्र अथवा हाथी घोडा गाय, गधा या बकरेका मूत्र), या तीक्ष्ण क्षार (अपामार्ग क्षार आदि) में इन धातुओंको कई बार भावना दीजावे । अमलतास, घट, पीलु (विशेष वृक्ष), शौंका पित्ता, गोरोचना, और भैंसा, तथा बालक ऊँट, इनके मूत्र और पुरीषके पिण्डके साथ मलिन धातुओंको भावना देकर शुद्ध किया जावे । अमलतास आदिके चूर्णके साथ अथवा उनसे लेप किये हुए धातु मलको नष्ट करके अपने असली रूपको प्रकट कर देते हैं । अर्थात् शुद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥

यवमापतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीरैर्वा कदली वज्र-
कन्दप्रतीवापो मार्दवकरः ॥ ९ ॥

जौ उड़द, तिल, दूध, और पीलुके क्षार, गाय तथा बकरेके दूधके साथ कदली तथा सुरण कन्दका योग करनेसे उनमें सोने और चाँदीकी भावना दिये जानेपर ये सोने और चाँदीको पट्टु बनादेते हैं ॥ ९ ॥

मधुमधुरुमजापयः सतैलं

घृतगुडकिण्वयुतं, सकन्दलीक ।

यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं

भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निपेकैः ॥ १० ॥

शहद, मुलहठी, बकरेका दूध, तेल, घृत, गुडकी शराव तथा खादरमें उत्पन्न होने वाले शहरे युक्त इन सब घस्तुओं को मिलाकर यदि तीन बारभी सोने और चाँदीमें भावना दी जावे, तो चाहे वह सोना आदि सैकड़ों हजारों तरह कटाकटा या खरखरा हो, अवश्य ही मृदु होजाता है ॥ १० ॥

गोदन्तभृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः ॥ ११ ॥ भारिकः

स्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो
लोहितो वा ताम्रधातुः ॥ १२ ॥

यदि गायक दांत और सींगको पूर्ण करके, विघले हुए सुवर्णके ऊपर धुरक दिया जावे, तो उस सुवर्णकी मृदुताका लोप होजाता है । यदांतक सुवर्ण और रूप्य धातुके सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ११ ॥ मारी, चिकना तथा मृदु प्रहारधातु (पाषाणधातु) अथवा भूमिभाग (अर्थात् भूमिधातु), ताम्रधातु अर्थात् ताम्रके कारण होते हैं । (तात्पर्य यह है कि जिन स्थानपर इंसतरदके पत्थर तथा भूभाग हों, वहाँ तांबेका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये । उसके रङ्ग चार प्रकारके बताये गये हैं,—पिहल (पीला और काल मिला हुआ, संख्याकालके समान), हरित (नीला), पाटल (सुत २ लालता), और लोहित (अर्थात् लाल) ॥ १२ ॥

काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वतराजिनद्रो वा विस्रः
सीसधातुः ॥ १३ ॥ ऊपरकर्बुरः पक्कलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः ॥ १४ ॥

जो भूमिस्थान कौएके समान काला, कबूतर- या गोरोचनाके समान वर्ण वाला, अथवा सफेद रेखाओंसे युक्त और दुर्गन्ध पूर्ण हो, वह सीसा नामक धातुका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये । अर्थात् ऐसे स्थानोंमें सीसेकी खान निकलती है ॥ १३ ॥ जो भूमिभाग, ऊपर भूमिके समान कूट २ सफेद रङ्गका हो; अथवा पके हुए ढेल्लेके समान रङ्गवाला हो, वह त्रपु अर्थात् सफेद रङ्गके सीसेका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये ॥ १४ ॥

कुरुम्वः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः
॥ १५ ॥ काकाण्डभुजपत्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः ॥ १६ ॥

मायः चिकने पत्थरोंसे युक्त, कूट सफेद तथा काल मिले हुएसे रङ्ग वाला, अथवा निर्गुण्डकी कूलके समान रङ्गवाला भूमिभाग, तीक्ष्णधातु अर्थात् छोटेका उत्पत्ति स्थान होता है ॥ १५ ॥ कौएके अण्डे तथा भोजपत्रके समान वर्ण वाला भूभाग, वैकृन्तक अर्थात् इस्पाती लोहेका उत्पत्ति स्थान होता है । यदांतक सात प्रकारकी लोहधातुओंका निरूपण कर दिया गया ॥ १६ ॥

अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवाञ्छीतस्तीव्रस्तनुरामश्च मणि-
धातुः ॥ १७ ॥ धातुसमुत्थितं तज्जातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥

स्वच्छ, (पैसा चमकता हुआ स्थान, जिनमें प्रतिबिम्ब दृश्ये), स्निग्ध (चिकना), प्रभायुक्त, अग्नि जलाने या घोट देनेपर घड़ा शब्द करने वाला, अत्यन्त दानव, फीके रङ्गवाला, भूमिभाग, मणिधातु अर्थात् मणियोंका उत्पत्ति स्थान होता है ॥ १७ ॥ मोटेसे धनव्यय तथा यत्नसे जो सुवर्ण आदि भूमिमें प्राप्त होवे, उसे किर अन्य अधिक स्थानके ही काममें लगा देवे; जिससे कि दक्षरोत्तर सुवर्ण आदिकी प्राप्ति होती रहे ॥ १८ ॥

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुसमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृपिक्रेतृणां
स्थापयेत् ॥ १९ ॥

जा सुवर्ण आदि धातु विक्रीके लिये तैयार होजावें, उनका किसी एक ही नियत स्थानसे विक्रय करवा चहिये । (इसका यही तात्पर्य मादूम होता है, कि राजकी औरसे सुवर्ण आदि खनिज पदार्थों का भिन्न २ किसी एक व्यक्ति को हा ठका ददेना चाहिये, उसही क द्वारा उन वस्तुओंका विक्रय करना उचित है) । यदि कोई व्यक्ति राजाशाके बिना ही किसी स्थानमें सुवर्ण आदिकी उत्पत्ति करके त्रय विप्रय कशन एत ता उस राजाकी औरसे दण्ड मिलना चाहिये । अर्थात् राजाकी औरसे तिन व्यक्तियों को इस कार्यके लिये आज्ञा मिल चुकी है, उनसे प्रतिरिक्त या भी इस कार्यको करे, वह दण्डनीय समझा जावे ॥ १९ ॥

आकरिकमपहरन्तमष्टगुण दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः ॥ २० ॥
स्तेनमनिसृष्टोपजीविन च वृद्ध कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ दण्डोप
कारिणश्च ॥ २२ ॥

खनिज पदार्थोंका अपहरण करने वाले कार्यकर्ता पुरुषको, उस वस्तु से आठ गुना दण्ड देना चाहिये । परन्तु रत्नाकी चोरीके लिये यह दण्ड नहीं है, भाग उसका दण्ड, वष बतलाया जावगा ॥ २० ॥ जो पुरुष चोरी करे, अथवा राजाकी अनुमतिक बिना ही खनिज मन्त्रोंका व्यापार करे, उसे पकड़ कर खानक काममें लगा दिया जावे ॥ २१ ॥ और जिस पुरुषको अदालतसे किसी अपराधमें शारातिक दण्ड दिया गया हो परन्तु किसी विशेष कारणवश उस यदि वह दण्ड न दिया जाता हो, तो इसक बदलमें उस पुरुषका भा खानके कार्य करनस लगा दिया जाय ॥ २२ ॥

व्ययक्रियाभारिकमाकर भागेन प्रकयेण वादधात् ॥ २३ ॥
लाघविकमात्मना कारयेत् ॥ २४ ॥

खानक ऊपर यदि भार ल गाका बहुत धन देना होगया हो, उस को सुकाकर ही खानकी आमदनी हा सक्ती हा अथवा यह काय भरवधिक धन स साध्य हो ता आकाराध्यक्षका चाहिये कि वह धोखा २ करके, खानोंक धन को धार २ सुका दवे । अथवा सुवर्णका वण भाग एक साथ राजाको देकर, उसक बदलमें खजानस रुपया लेकर लागाव धनका वृत्ता करदव ॥ २३ ॥ यदि भाण्ड हा धन और परिश्रमस यह काय सिद्ध शान घाला हो ता स्वय ही इस कायका पूरा करदव ॥ २४ ॥

लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसिन्धुपुर्वकृन्तकारकृटिवृत्तकंसंताललोहकर्मान्तान्कारयेत् ॥ २५ ॥ लोहमाण्डव्यवहारं च ॥ २६ ॥

लोहाध्यक्षको चाहिये कि वह अपने निरीक्षणम तीक्ष्ण, साँसा, प्रेक्षुं, वैदन्तक, आरकृट, वृत्त, कंस, ताड तथा अन्य प्रकारके लोहेके सब कार्योंको करवाये ॥ २५ ॥ तथा लोहेसे बनने वाले नितने मो पदार्थ हों, उन सबके व्यवहारको भी लोहाध्यक्ष करवाये ॥ २६ ॥

लक्षणाध्यक्षश्चतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाजनानामन्यतमं मापवीजयुक्तं कारयेत् पणमर्धपणं पादमष्टभागमिति ॥ २७ ॥

लक्षणाध्यक्ष अर्थात् टमसालके अध्यक्षको चाहिये कि चांदी तथा ताँबे के सिक्केको ताम्र रीतसे बनवाये । पहिले चांदी के सिक्केका निरूपण किया जाता है, वह चार प्रकारका होता है, पण अर्धपण पादपण, तथा अष्टभागपण । १६ माप प्रमाणका एक पण होता है, उसका चौथा भाग अर्थात् चार माप उसमें ताँबा होगा चाहिये, एक माप, लोहा राग सीसा तथा अंजन इन चारों मेंसे कोई एक चीज होनी चाहिये । याकी ग्यारह माप चाँदी होने चाहिये । इस परिमाणसे सोल्ह मापका एक पण तैयार होता है । इसी हिसाबसे अर्धपण, पादपण, तथा अष्टभागपण तैयार करावे ॥ २७ ॥

पादाजीवं ताम्ररूपं मापकमर्धमापकं कक्किणीमर्धकाकणीमिति ॥ २८ ॥ रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेद्यां च स्थापयेत् ॥ २९ ॥ रूपिकमष्टकं शतम् ॥ ३० ॥

पणके चौथे हिस्सेका व्यवहार करनेके लिये ताम्रिका एक अलहदा सिक्का बनाया जाये, इसका नाम मापक होता है । इसमें चौथाई हिस्सा चाँदी, छत्र हिस्सा लोहे आदि चारोंमें से किसीका होना चाहिये, तथा ग्यारह माप ताँबा होना चाहिये । इस प्रकार चाँदीके पणको तरह, वह ताम्रिका मापक भी सोल्ह माप परिमाणका होता है । इसी तरह इसके अर्धमापकभी तैयार करावे । पादमापक और अष्टभागमापकके लिये काकणी और कक्काकणी नामक सिक्का बनवावे । इस तरह चार चाँदीके तथा चार ताँबेके सिक्के बनाये जाते हैं ॥ २८ ॥ सिक्काकी परीक्षा करने परसे पाँदा अत्रिकारी इस बातकी व्यवस्था करदेवे कि कौनसा सिक्का चलने अर्थात् व्यवहार करनेके योग्य है, और कौनसा खजाने में जमा करदेनेके योग्य है ॥ २९ ॥ सौ पणपर, जो आठपण राज्यमाग जलनेसे लिया जाता है, उसका नाम 'रूपिक' है ॥ ३० ॥

पञ्चकं शतं व्याजीम् ॥ ३१ ॥ पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम्
॥ ३२ ॥ पञ्चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षि-
तृभ्यः ॥ ३३ ॥

सो पणपर, पाचपण राज्यभाग 'व्याजी' कहाता है ॥ ३१ ॥ तथा
सो पणके आठवे हिस्से राज्यभाग को 'पारीक्षिक' कहा जाता है ॥ ३२ ॥
यदि कोई व्यक्ति इस आठवें हिस्से, राज्यभागका अपहरण करे, तो उसे
२५ पण दण्ड दिया जावे, यदि अधिक अपहरण करे, तो इसी ही हिसाबसे
दुगुना चौगुना दण्ड दिया जावे, परन्तु सिद्धोंको बनाने वाले, खरीदने
बेचने वाले, तथा परीक्षा करने वाले अधिकारी पुरषोंके लिये यह दण्ड
नहीं है। उनके लिये, दण्डकी सारासारताको देखकर पहिलेही दण्डका विधान
कर दिया गया है ॥ ३३ ॥

खन्यध्वक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवालक्षारकर्मान्तान्कारयेत्
॥ ३४ ॥ पणनव्यवहारं च ॥ ३५ ॥

आकराध्वक्ष (खानेक अध्वक्ष) को चाहिये कि वह शङ्ख, वज्र, मणि,
मुक्ता, प्रवाल तथा सब तरहके क्षारों (यवक्षार आदि) की उत्पत्तिका प्रबन्ध
करे ॥ ३४ ॥ तथा शाल आदिक क्रय विक्रय व्यवहारका भी प्रबन्ध करे ॥ ३५ ॥

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रम्य च यथाकालं
संगृहीयात् ॥ ३६ ॥ विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीम् ॥ ३७ ॥

- लवणाध्यक्षका भाव है, कि वह तैयार किये हुए लवणको (अर्थात् खानमसे
निकालकर विक्री आदिके लिये तैयार हुए २ लवणको) और किसी खानसे
नियमित मात्राम धर्तक तौरपर प्राप्त होने वाले लवणको ठीक २ समयपर संगृ-
हीत करले ॥ ३६ ॥ और व्यापारियोंके द्वारा क्रय विक्रयका प्रबन्ध करे, विक्रयसे
जो मूल्य प्राप्त हाने, उसे, तथा रूर और व्याजीको भी संगृहीत करे ॥ ३७ ॥

आगन्तुलवणं पद्मभागं दद्यात् ॥ ३८ ॥ दत्तभागविभाग-
स्य विक्रयः पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च ॥ ३९ ॥

परदेशसे आये हुए नमकपर, उसको बेचने वाला पुरष, उसके मूल्यका
छठा हिस्सा, राजाको करके तौरपर देवे। अर्थात् छठा हिस्सा राजाको देकर देवे
॥ ३८ ॥ जो बेचने वाला पुरष, राजाके लिये छठा भाग देदेता है, तथा सोल
का भी देकर देदेता है, वही अपने मालको बेच सकता है। और उस पुरषको,
प्रतिराज पाँच, व्याजी, रूप (पारीक्षिक-सौका व्यंठियां हिसाब), और रूपिक
भी राजाके लिये देना चाहिये ॥ ३९ ॥

क्रेता शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात् ॥४०॥
अन्यत्र क्रेता पद्लतमत्ययं च ॥ ४१ ॥

उम मालको सरीदने वाले व्यापारी नियमानुसार शुल्क (टैक्स) देवे;
तथा राजाके बाजारमें बेचे जानेके कारण, उसकी जीवनके अनुसार ही उसकी
पूर्ति करे । तात्पर्य यह है कि बाजारका टैक्स भी अलहदा देवे ॥ ४० ॥
राजकीय बाजारके रहते हुए जो व्यापारी, नमकको किसी अन्य स्थानमें
सरीदता है, उससे प्रतिशत छः पण लिया जावे; तथा इससे अतिरिक्त
दण्ड और दिया जावे ॥ ४१ ॥

विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात् ॥ ४२ ॥ अनिसृष्टोपजीवी च
॥ ४३ ॥ अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः ॥ ४४ ॥

घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले व्यापारीको उत्तम साहस
दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ तथा जो पुण्य राजाकी अनुमति लिये बिना ही,
नमकको उत्पन्न करता, तथा उसका व्यापार करता है, उसको भी उत्तम
साहस्य दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ परन्तु यह नियम पानप्रस्थ अर्थात् वनमें
रहने वाले आश्रमी पुण्यके लिये नहीं है, अर्थात् राजाकी बिना अनुमतिके
भी वे स्वयं नमकको लेकर उसका उपयोग कर सकते हैं ॥ ४४ ॥

श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः ॥ ४५ ॥
अतोऽन्यो लवणधारवर्गः शुल्कं दद्यात् ॥ ४६ ॥

श्रोत्रिय (वेदोंका अध्वयन करने वाले), तपस्वी, तथा बलात्कार
कार्य करने वाले (अर्थात् अपनी इच्छा न होनेपर भी राजाकी इच्छानुसार
कार्य करने वाले=बेगारी) पुरुष, बिना शुल्कके भी, अपने उपयोग मात्रके
लिये नमक लेजा सकते हैं ॥ ४५ ॥ इससे अन्य, लवण और क्षार वर्गका
उपयोग करने वाले पुरष, लवणाध्यक्ष या कोष्ठानाराध्यक्षको शुल्क देवे ॥ ४६ ॥

एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिधमत्ययम् ।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥ ४७ ॥

इसप्रकार मूल्य, विभाग, व्याजी, परिध (पारीक्षिक), अत्यय, शुल्क,
वैधरण, दण्ड, रूप (चांदी तथा ताँबेके सिक्के), और रूपिक ॥ ४७ ॥

खनिम्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत् ।

एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंप्रहम् ॥ ४८ ॥

तथा खानोंसे निकाले हुए चारह प्रकारके घातु, और भिन्न २ प्रकारके अन्य विक्रीय पदार्थोंका संग्रह करे । इसप्रकार सबही व्यापारी स्थानोंमें प्रधान प्रधान विक्रीय वस्तुओंका संग्रह अवश्य स्थापित करे ॥ ४८ ॥

आकरप्रभवः कोशः कोशादण्डः प्रजायते ।

पृथिवी कोशदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे आकरकर्मान्तप्रवर्तनं द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदित त्रयस्त्रिंशः ॥ ३३ ॥

कोशकी उन्नति खानोंपर निर्भर है, कोशके उन्नत होनेपर सेना भी तैयार कीजासकती है, कोशसे भूषित पृथिवी, कोश और दण्ड (सेना) के द्वाराही प्राप्त कीजासकती है ॥ ४९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय

३१ प्रकरण

अक्षशालामें सुवर्णाध्यक्ष का कार्य

{ खानसे निकाले हुए सोने चादी आदि धातुओंको जिस स्थानमें सजावण करके तैयार किया जाय, उसे 'अक्षशाला' कहते हैं । इस कार्यका निरीक्षण करनेवाला जो अधिकारी पुरर होता है, उसका नाम सुवर्णाध्यक्ष है । उसके कार्यों का इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा । जिसमें सुवर्णकी नाति, वर्ण, गुण, शोधन, दोषोंकी परीक्षा, अंजन और रक्षाकरना आदि सबहीका समावेश है ।

सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्वानामसंबन्धावेशनचतुःशालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत् । १ ॥ विशिसामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्ययिकं च स्थापयेत् ॥ २ ॥

सुवर्णाध्यक्षको चाहिए कि यह साने चादीके द्वापूर कामको करवानेके लिये, एकही प्रधान द्वारसे कुछ अक्षशालाका निर्माण करवाये । इसमें चारों ओर बड़े २ चार मकान हों, जिनका आपमें एक दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध हो ॥ १ ॥ विशिसाम (सुवर्णकी सजावण करनेवाले व्यापारियोंके बाजारका नाम 'विशिसा' है), बड़े चारों ओर अर्थात् चतुर, कुली, चारों ओर विशिस्त सौवर्णिक (सुवर्णकी सजावण करनेवाले पुररों) की स्थापना करे । (सौवर्णिकके

कार्योंका निरूपण अगले प्रकरणमें किया जाएगा । यह सुवर्णोष्णके अधीन रहकरही अपना कार्य करता है, इसी बातको यहाँ बताया गया है ॥ २ ॥

जाम्बूनदं, शातकुम्भं हाटकं वैणवं मृद्गशुक्तिजं, जातरूपं
रसविद्धमाकरोद्गतं च सुवर्णम् ॥ ३ ॥

पांच प्रकारका, पांच वर्णोंसे युक्त सोना होता है, उसके तीन उत्पत्ति स्थान हैं, अर्थात् सुवर्ण सीम तरहसे उत्पन्न होसकता है । जाम्बूनद (मेरु पर्वतसे निकलनेवाली जम्बू नदीसे उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण जामुन फूलके समान वर्णवाला होता है), शातकुम्भ (शतकुम्भ नामक पर्वतमें उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण, कमलके रजके समान वर्णसे युक्त होता है), हाटक (सोनेकी खानसे उत्पन्न हुआ २ सोना, काटेदार खेतोंके फूलके समान रंगवाला होता है), वैणव (वेणु पर्वतपर उत्पन्न होनेवाले सुवर्णका रंग । कर्णिकार । वृक्षके फूलके समान होता है), और मृद्गशुक्तिज (अर्थात् स्वर्ण भूमिसे उत्पन्न होनेवाला, मनसिलके समान रंगवाला होता है), यह वर्ण भेदसे पांच प्रकारका सोना होता है । इसके तीन उत्पत्ति प्रकार हैं: जातरूप (स्वयं शुद्ध, सुवर्ण रूपमें उत्पन्न हुआ २), रसविद्ध (रसोंके घोंतसे सोना बनाया हुआ), तथा आकरोद्गत (अशुद्ध रूपमें खानोंसे निकलनेवाला) ॥ ३ ॥

किञ्जल्कवर्णं मृदु क्षिग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठम् ॥ ४ ॥
रक्तपीतकं मध्यमम् ॥ ५ ॥ रक्तमवरम् ॥ ६ ॥

कमलके रजके समान वर्णवाला, मृदु, क्षिग्ध, शब्द रहित, (किसी २ पुस्तकमें 'अनादि' शब्दके स्थानपर 'अनुनादि' पाठ है, उसका अर्थ 'लभ्य शब्द करनेवाला, करना चाहिये) और चमकदार सोना सर्वमें श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ४ ॥ लाल और पीले मिले हुए रंगका सोना मध्यम, ॥ ५ ॥ तथा लाल रंगका अवर अर्थात् निम्न समझा जाता है ॥ ६ ॥

श्रेष्ठानां पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम् ॥ ७ ॥ तद्येनाप्राप्तकं तच्च-
तुर्गुणेन सीसेन शोधयेत् ॥ ८ ॥

उत्तम जातिके सुवर्णोंमेंसे, जो सोना कृत्र पीलासा अर्थात् सुरभुरा और सफेद रहगया हो यह 'अप्राप्तक' कहाता है । तात्पर्य यह है कि संशोधन आदिके समयमें यह ठीक २ शुद्ध नहीं होता, उसमें कुछ मल आदि मिले रहते हैं, इसलिये उसे अपनी ठीक हालत तक प्राप्त न होनेके कारण अप्राप्तक कहाजाता है ॥ ७ ॥ उस सोनेमें जितना मल मिला हुआ हो, उससे चौगुना सीसा डालकर उसे शुद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥

सीमान्वयेन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्घर्मापयेत् ॥ ९ ॥ रुक्ष-
त्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निपेचयेत् ॥ १० ॥

यदि यह सीसाके मेलने फटने लगे, तो जगली कंठोंकी भागमें उसे तपाया जावे ॥ ९ ॥ यदि शोषन कालमें सुवर्णके खन्दर कुछ रुक्षता भ्रियात् खरखरापन आजानेसेही यह फटता हो, तो तैल और गोबर दोनोंको मिलाकर उसमें भावना देवे । अथवा जबतक ठीक न हाजाय, तबतक बार २ इन दोनों चीजोंमें सोनेको भिगो २ कर निकालता जावे ॥ १० ॥

आकरोद्भूतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपत्राणि कृत्वा
गण्डिकासु कुट्टयेत् ॥ ११ ॥ कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निपेच-
येत् ॥ १२ ॥

खानसे निकालेहुए सोनेकोभी सीसा मिलाकर शुद्ध किया जावे, यदि सीसेके मेलसे यह फटने लगे, तो पके हुए पत्ते उसके साथ मिलाकर किसी लकड़ीके तण्डेपर रखकर उसे खूब कुटे ॥ ११ ॥ अथवा कन्दली लता, धीयेर, और कमलकी जड़का काय बनाकर उसमें उस सानेको खूब भिगोवे, जबतक कि उसका फटना बिल्कुल दूर न होजाय ॥ १२ ॥

तुत्थोद्भूतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम् ॥ १३ ॥
श्वेतं स्निग्धं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १४ ॥

चादी चार प्रकारकी होती है,—तुत्थोद्भूत (तुत्थ नामक पर्वतपर उत्पन्न होने वाली, इसका रंग चमेलके फूलके समान होता है), गौडिक (आसाम देशमें उत्पन्न होने वाली, इसका रंग तगरके फूलके समान होता है), काम्बुक (काम्बु नामक पर्वतपर होने वाली, चादीका), तथा चाक्रवालिक (अर्थात् चाक्रवाल खानसे पैदा होने वाली चादीका रंग कुन्दके फूलके समान सफेद होता है । यह कुन्दका फूल माघके महीनेग खिलता है) ॥ १३ ॥ सफेद, स्निग्ध तथा मृदु चादी सबसे उत्तम समझी जाती है ॥ १४ ॥

विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम् ॥ १५ ॥ तत्सीसचतुर्भागेन
शोधयेत् ॥ १६ ॥ उद्भूतचूलिकमच्छं आजिष्णु दधिवर्णं च
शुद्धम् ॥ १७ ॥

इन गुणासे विपरीत अर्थात् कालापन दखाई, तथा खरखरापन, और फटे हुएसे होना, ये चादीके दोष होते हैं ॥ १५ ॥ दूषित चादीको, उससे चौथाई सीसा डालकर शुद्ध करे ॥ १६ ॥ जिसमें उद्भूतसे उठे हुए हों, तथा

जो स्वच्छ, चमकदार और वहीके समान सफेद ही, वह चांदी शुद्ध होती है ॥ १७ ॥

शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः ॥ १८ ॥ ततः शुल्बका-
कण्युत्तरापसारिता आचतुःसीमान्तादिति षोडशवर्णकाः ॥ १९ ॥

हलदीके समान स्वच्छ रंग वाले, शुद्ध सुवर्णका एक सोलह मापका वर्णक होता है; यह शुद्ध वर्णक कहा जाता है ॥ १८ ॥ फिर उसमें एक तांबेकी काकणी (मापका चौथा हिस्सा) मिलादी जावे, तथा उसकी चरावरका सोनेका हिस्सा उसमेंसे कम करदिया जावे, इसीतरह तांबेका हिस्सा मिलाने और सोनेका हिस्सा कम करनेसे सोलह वर्णक बन जाते हैं । क्योंकि यह एक एक काकणीका मेल चार मापतक ही होता है, और एक काकणी, एक मापका चौथा हिस्सा होता है, इसतरह चार मापमें सोलह काकणी होनेसे सोलह वर्णक बन जाते हैं । ये सोलहों मिश्रवर्णक कहाते हैं, एक पहिला शुद्ध वर्णक इनमें मिलानेसे सब वर्णक मिलकर सत्रह होजाते हैं ॥ १९ ॥

सुवर्णं पूर्वं निकप्य पश्चाद्वर्णिकां निकपयेत् ॥ २० ॥ सम-
रागलेखमनिमोन्नते देशे निकपितम् ॥ २१ ॥ परिमृदितं परि-
लीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात् ॥ २२ ॥

वर्णककी परीक्षा करनेके लिये, पहिले सुवर्णकी परीक्षा करे, अर्थात् उसे कसौटीपर घिसकर जांचे कि यह ठीक है, पश्चात् वर्णिकाको कसौटीपर घिसे ॥ २० ॥ घिसनेपर यदि समानही वर्ण और रेखा होवे, तथा घिसनेके स्थान ऊँचे नीचे नहीं, तो वह कसौटीपरका परखता न्याय्य अर्थात् ठीक समझा जाता है ॥ २१ ॥ यदि वेचने वाला वर्णककी उत्कर्षता बतलानेके लिये कसौटीको उसपर जोरसे रगड़ देवे, या खरीदने वाला, उसकी निकृष्टता बतलानेके विचारसे कसौटीको बहुत धीरेसे रगड़े; अथवा नाखूनके बीचमें कोई दूसरी गैरिक आदि पीतधातु रखकर उससे सोनेके साथ २ कसौटीपर रेखा करदे; तो इसप्रकार यह तीन प्रकारका कपट पूर्ण घिसना कहा जाता है । अर्थात् इसतरह कसौटीपर परखना कपट पूर्ण होनेसे उचित नहीं होता ॥ २२ ॥

जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गोमूत्रभावितेन दिग्धे-
नाग्रहस्तेन संस्पृष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति ॥ २३ ॥ सकेसरालिग्धो
मृदुर्भाजिष्णुश्च निकपरागः श्रेष्ठः ॥ २४ ॥

गोमूत्रमें भावना दिये हुए एक विशेष प्रकारके शिगरफके साथ, तथा कुछ ३ फीले रंगके हस्तालके साथ लिपटे हुए हाथके अङ्गुलीयोंसे सोनेका स्पर्श

करदेनेवा वह सोना सफेद रंगकासा होजाता है, अर्थात् उसका चमकता हुआ रंग कुछ फीकासा पड़ जाता है । सोना पुरीदने वाले व्यापारी प्रायः ऐसा करते हैं ॥ २३ ॥ बहुवर्ण केसरके समान रंग वाली, छिग्ध (चिकनी), मृदु तथा चमकदार, कर्साटीपर खिची हुई रेखा सबसे उत्तम समझी जाती है । अर्थात् कर्साटीकी रेखाका यदि ऐसा ऐसा रंग हो तो वह श्रेष्ठ समझनी चाहिये ॥ २४ ॥

कालिङ्गकस्तापी पापाणो वा मुद्गवर्णो निकपः श्रेष्ठः ॥२५॥

ममरागी विक्रयक्रयहितः ॥ २६ ॥

कलिङ्ग देशमें महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न होने वाली, अथवा तापी नामक नदीसे उत्पन्न होने वाली, मृगके समान वर्णसे युक्त, कर्साटी सबसे उत्तम होती है ॥ २५ ॥ सुवर्णके ठीक २ वर्णकी ग्रहण करने वाली कर्साटी, श्रेष्ठ तथा विक्रय करने वाले दोषों ही व्यापारियोंके लिये अनुकूल होती है ॥ २६ ॥

हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः ॥ २७ ॥

स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः ॥ २८ ॥

हाथीके चमकेके समान खरखरी तथा सूखी हुईसी, कुछ २ हरे रंगसे युक्त, मामूली सोनेके रंगको भी बढ़ाकर दिखाने वाली, कर्साटी सुवर्ण बेचने वाले व्यापारियोंके लिये हितकर होती है ॥ २७ ॥ रूढ़, परप अर्थात् कटोर या खरखरी, विषमवर्ण अर्थात् तरह २ के रंगोंसे युक्त, उत्कृष्ट सुवर्णके भी उसके असली रंगोंको न दिखाने वाली कर्साटी सुवर्ण आदि पुरीदने वाले व्यापारियोंके लिये हितकर होती है ॥ २८ ॥

भेदधिकणः समवर्णः शूद्रणो मृदुर्भाजिष्णुश्च श्रेष्ठः ॥२९॥

तापे चहिरन्तरश्च समः किञ्जल्कवर्णः कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः ॥ ३० ॥

छेद अर्थात् सोनेका कटा हुआ छोटासा टुकड़ा, चिकना, अन्दर बाहरसे एकसे रंग वाला, दिग्ध मृदु तथा चमकदार हो, तो वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ २९ ॥ उस सोनेके टुकड़े को अभिन्न तपाये जानेपर यदि वह बाहर और अन्दरसे एकसे ही रंगवाला रहे, अथवा कमल रजके समान रंगवाला, या कुरण्डक के फूलके समान रंग वाला हो, तो वह श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ३० ॥

श्यावो नीलधामातृकः ॥ ३१ ॥ तुलाप्रतिमानं पीतवाध्यक्षे

वक्ष्यामः ॥३२॥ तेनोपदेशेन रूप्यसुवर्णं दद्यादादीत च ॥३३॥

यदि तपाने पर उसके रंगमें कुछ फर्क पड़ जावे, वह कुछ २ बन्दरकेसे रंगका या नीलासा होजावे, तो समझना चाहिये कि वह सोना अप्राप्तक अशुद्ध या खोटा है ॥३१॥ सोना चांदी आदि तोलनेके प्रकारका निरूपण पीतवाप्यक्ष नामक प्रकरणमें किया जायगा ॥ ३२ ॥ उस प्रकरणमें बतलाये हुए तोलके अनुसार ही सुवर्ण लेना और देना चाहिये ॥ ३३ ॥

अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ३४ ॥ अभिगच्छन्नु-
च्छेद्यः ॥ ३५ ॥ आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत ॥३६॥

अक्षशालामें वह ही पुरप जावे, जो वहां कार्य करते हैं, बाहरका अन्य कोई पुरप वहां न जाने पाये। (यह सब सुवर्ण आदिके रक्षा करनेका विधान है) ॥ ३४ ॥ यदि निषेध करनेपर भी कोई पुरप जाता हुआ पकड़ा जावे, तो उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया जाये ॥ ३५ ॥ अक्षशालामें कार्य करने वाला पुष्पभी यदि अपने साथ सोना चांदी लेकर जावे, तो उसके अनुमारही उसे श्रुण्डित किया जावे ॥ ३६ ॥

विचितवस्त्रहस्तगुह्याः काञ्चनपृपतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मा-
यकचरकपांसुधावकाः प्रविशेषुः निष्कसेयुश्च ॥ ३७ ॥

रस आदिके योगसे सुवर्ण बनाने वाले शिल्पी, छोटी २ गोली आदि बनाने वाले, बड़े २ पात्र आदि बनाने वाले कारीगर, तथा तरद २ के आभूषण आदि बनाने वाले शिल्पी, और धौंकनी देने वाले, शाहू आदि लगा कर साफ करने वाले तथा अन्य परिचारक जनमी; अपने पहने हुए वस्त्र, हाथ तथा गुप्त स्थानों (जेब आदि, अथवा धोती आदि) की जांच कराकर ही अक्षशाला में भीतर प्रवेश करें और बाहर निकलें ॥ ३७ ॥

सर्वं चैपागुपकरणमनिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन् ॥३८॥
गृहीतं सुवर्णं धृतं च प्रयोगं करणमध्ये दद्यात् ॥ ३९ ॥ सायं
प्रातश्च लाक्षितं कर्तृकारयित्मुद्राम्यां निदध्यात् ॥ ४० ॥

इन शिल्पियोंके उपकरण अर्थात् काम करनेके औजार आदि, तथा धागे बनाने हुए अन्य आभूषण आदि कार्य, अक्षशालामें ही रखते रहें, उन्हें वहांसे बाहर कदापि न लेजाया जावे ॥ ३८ ॥ भाण्डागारसे तोलकर लिया हुआ सोना तथा उससे बनाई हुई जो चांज होवे, उसे कार्य करनेके अन्तमें, मंदार के राजकीय लेखक को उसी प्रकार ठीक २ तोलकर सुपुर्द करदेवे, और उस सब काम को राजकीय पुस्तकमें लिखा देवे, यह सब काम सुवर्णप्यक्ष को अवश्य करना चाहिये ॥ ३९ ॥ तथा सायंकाल और प्रातः काल, 'प्रति दिनके

कार्यको समाप्ति तथा प्रारम्भमें, काम करने वाले र्थावर्गिक, और कराने वाले सुवर्णोप्यक्ष की मुद्रा (मुद्र=साल) से चिन्हित करके, भंडारका लेखक, उस सुवर्णको भण्डारमें रखे तथा दवे ॥ ४० ॥

क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि ॥ ४१ ॥ क्षेपणः काचा-
र्पणादीनि ॥ ४२ ॥ गुणः सूत्रानादीनि ॥ ४३ ॥ घनं सुपिरं
पृषतादियुक्तं क्षुद्रकमिति ॥ ४४ ॥

कर्म तीन प्रकारके होते हैं, क्षेपण, गुण तथा क्षुद्रक। (यहाँपर यह भक्षशालाके कुछ भाभूषण सम्बन्धी मुख्य कार्योंका ही कथन किया गया है) ॥ ४१ ॥ का चापण अर्थात् मणि आदिका जोड़ना (भाभूषणों आदिपर जड़ाई का काम करना) 'क्षेपण' कहाता है ॥ ४२ ॥ सोनेक बनाये हुए बारीक सूत्र आदि का प्रथम करना 'गुण' कहाता है ॥ ४३ ॥ ठोस तथा पोछा, और छोटी २ धूसों या गोलियोंसे युक्त भाभूषण आदिका तयार करना 'क्षुद्रक' कर्म कहा जाता है ॥ ४४ ॥

अर्पयेत्काचकर्मणः पञ्चभागं काञ्चनं दशभागं कदुमानम्
॥ ४५ ॥ ताम्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतं
तत्साद्रक्षेत् ॥ ४६ ॥

काचकर्म अर्थात् मणिके जोड़ने की विधिक निरूपण किया जाता है — मणिके पाँचवें हिस्से नीचेके भागको, आधारभूत सुवर्णमें प्रवेश करदे। मणि को हट करानेके लिये उसके चारों ओर सोनेकी जो एक पट्टीसी लगाई जाती है, उस को कदुवान कहते हैं। मणिका जितना भाग सुवर्णके भीतर प्रवेश कर दिया गया है, उसमें आधा भाग अर्थात् दसवा हिस्सा कदुमान का होना चाहिये ॥ ४५ ॥ सुवर्णकार, संस्कृत किये जाते हुए सोने या चाँदीमें कुछ मिलावट कर सकते हैं। चाँदीके स्थानपर ताँबेसे मिली हुई चाँदी का, तथा सुवर्णके स्थानपर चाँदीसे मिले हुए सुवर्णका वे लोग उपयोग करके उतने अशक स्वयं अपहरण करसकते हैं, और वह मिश्रित सोना चाँदी, शुद्ध सोना चाँदीके समान ही प्रतीत होता है। इसलिये अप्यक्षको चाहिये कि वह इसप्रकारकी मिलावट की सदा निगरानी रखे, और यत्पूर्वक असली चीजों की रक्षा करे ॥ ४६ ॥

पृषतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिमाण्डं द्वौ वास्तुकम्
॥ ४७ ॥ चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिमाण्डम् ॥ ४८ ॥

इसके पहिले शुद्ध काचकर्मका विधान करके, अब मिश्र-काचकर्मकी विधि बताते हैं:—शुद्ध काचकर्म अर्थात् गुटिका आदिसे मिश्रत काचकर्मके किये जानेपर, उसके लिये जितना सुवर्ण लिया जायें, उसके पांच विभाग किये जायें, जिनमेंसे तीन भाग परिभाण्ड अर्थात् पद्म स्वस्तिक आदिका आकार बनानेके लिये होते हैं, और दो भाग उसका आधारपीठ अर्थात् उस घने हुए आकारकी टिकानेके लिये होते हैं ॥ ४७ ॥ यदि मणि बर्षी २ होयें, तो उस सुवर्णके सात भाग किये जायें, जिनमेंसे चार भाग वास्तुक (आधारपीठ), और तीन भाग परिभाण्डके लिये काममें लाये जायें ॥ ४८ ॥

त्वष्टृकर्मणः शुद्धभाण्डं समसुवर्णेन संगूहयेत् ॥ ४९ ॥

रूप्यभाण्डं घनं घनसुपिरं वा सुवर्णाधिनावलेपयेत् ॥ ५० ॥

चतुर्भागसुवर्णं वा बालुकार्हिमुलकस्य रसेन चूर्णेन वा चासयेत् ॥ ५१ ॥

अब त्वष्टृकर्म अर्थात् ताँबे चाँदी आदिके घनाये जाने वाले घन पत्र आदि कार्योंका प्रकार बताया जाता है:—ताँबेके पात्रके साथ समान भाग सुवर्णका पत्र चढ़ावे । अर्थात् जितने ताँबेका पात्र बना हुआ हो, उसके ऊपर उतने ही सोनेका पत्र चढ़वा देवे ॥ ४९ ॥ चाँदीके पात्रपर (अर्थात् आभूषण आदिपर), चाँदे यइ टोस हो या पोछा, चाँदीके भारसे आधे सुवर्णका उसपर पानी चढ़वादे । यदि पचास पल चाँदीका आभूषण बना हुआ हो, तो उसपर पचास पल सोनेका पत्र या पानी चढ़वादे ॥ ५० ॥ अथवा चीथा हिस्ता सोना लेकर, उसे बालू और शिगरफके चूर्ण तथा रसके साथ मिलाकर, सुपकी अग्निपर पिघलाकर चसा देवे, अर्थात् चाँदीके उस आभूषण आदिपर पानीकी तरह चढ़ादेवे । इसप्रकार सहातक बराबर आधे तथा चीथाई सुवर्णके पत्र आदिके द्वारा तीन प्रकारके त्वष्टृकर्मका निरूपण किया गया ॥ ५१ ॥

तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं समसीसातिक्रान्तं पाकपत्रपकं
सन्धविकयोज्ज्वलितं नीलपीतश्वेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृति-
र्भवति ॥ ५२ ॥

अब तपनीय कर्मका निरूपण करते हैं:—आभूषण आदिके लिये तैयार किया हुआ, कमलरज आदिके समान स्वच्छ वर्ण वाला, तथा क्षिण्य और घमकदार सुवर्ण ज्येष्ठ अर्थात् उत्तम समझा जाता है । वह सोना शुद्ध होनेके कारण, नीलपीत, श्वेत हरित तथा शुकपोत (सोतेका चच्चा) के वर्णके आभूषण आदिका प्रकृति अर्थात् कारण होता है । जो सुवर्ण अशुद्ध हो, उसे बरा-

घरका सीसा ढालकर शुद्ध किया जावे, अथवा उसके पतले २ पत्रसे बनाकर, अरणे कड़ोंकी भागमें तपाकर शुद्ध किया जावे। या सुराष्ट्र देश (सिन्धुदेश) की मट्टीके साथ रगड़कर साफ किया जावे। इसप्रकार शुद्ध करलेनेपर ही यह नील पीत आदि आभूषणोंका प्रकृति अर्थात् कारण होसकता है ॥ ५२ ॥

तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीत-
चूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ॥ ५३ ॥

इस सुवर्णके साथ फौलादी लोहा भी, नील पीत आदिका कारण होता है। वह लोहा मोर की गर्दनके समान आभा वाला होना चाहिये। तथा काटनेपर सफ़द निकले, और अत्यधिक चमकने वाला हो, उसे गरम करके चूर्ण बनाकर एक काकणी परिमाण (मापका चौथा हिस्सा) सुवर्णमें मिलादेवे, यह सुवर्णक रगको अच्छी तरह चमका देता है ॥ ५३ ॥

तारमुपशुद्धं वास्थितुथ्ये चतुः समसीसे चतुः शुष्कतुथ्ये
चतुः कपाले त्रिगोमये द्विरेणं सप्तदशतुथ्यातिक्रान्तं सैन्धविक-
योज्ज्वालितम् ॥ ५४ ॥

अथवा लोहेके स्थानपर अत्यन्त शुद्ध चादीको उसमें मिलावे, वहभी इस प्रकार नील आदिकी प्रकृति हो जाती है। हड्डीके चूरेके साथ मिली हुई मट्टीसे बना हुआ मूपा (सोना आदि पिघलानेका पात्र विशेष) में चार बार, मट्टीके बराबर मिले हुए सीसेके चूरेकी बना हुआ मूपामें चार बार, कटुशर्कराकी मूपामें चार बार, शुद्ध मट्टी की मूपामें तीन बार, गोबरमें दो बार, इस तरह कुल सत्रह बार मूपाओंमें आवलित करके और फिर खारी सुराष्ट्र देशकी मट्टीसे रगड़कर उज्ज्वलवर्ण किया हुआ, तथा संस्कृत किया हुआ रूपधातु शुद्ध हो जाता है ॥ ५४ ॥

एतस्मात्काकण्युत्तरापसारिता, आदिमापादिति सुवर्णे देयं
पेथाद्रागयोगः, श्वेततारं भवति ॥ ५५ ॥

इसमें से काकणी परिमाण (मापका चौथा हिस्सा) चादी लेकर सोने में मिलादी जावे, तथा उसमें से इतना ही सोना निकाल दिया जावे। इस तरह क्रमपूर्वक दो मापतक चादी मिलाई जासकती है, तथा उतना ही सोना उसमें से कम किया जासकता है। इस प्रकार सुवर्णमें चादीका प्रक्षेप करनेसे तथा पीछेसे रगको चमकाने वाली चीजोंका योग करनेसे यह सुवर्ण, चादीके समान अत्यधिक चमक वाला होजाता है ॥ ५५ ॥

त्रयोऽशास्तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्चेततारमूर्छितं तत् श्वेत-
लोहितकं भवति ॥ ५६ ॥ ताम्रं पीतकं करोति ॥ ५७ ॥

बत्तीस विभागोंमें विभक्त किये हुए साधारण सोनेमें से तीन हिस्से निकालकर, उनकी जगह उक्त प्रकारसे शुद्ध किये हुए उतने ही सुवर्ण को मिला दिया जावे; फिर उसमें बत्तीसवां हिस्सा शुद्ध की हुई चांदी मिलाकर भावना दी जावे, तो वह सुवर्ण सफेद और लाल मिले हुए रंगका होजाता है । (किसी २ व्याख्याकारने इसका अर्थ इस प्रकार किया है:—बत्तीस भागोंमें से तीन भाग शुद्ध सुवर्णके और बाकी चांदीके होने चाहियें, इनको मिलाकर आवत्तम करनेपर, उसका रंग सफेद और लाल मिला हुआ हो जाता है) ॥ ५६ ॥ यदि पूर्वोक्त रीतिसे ही चांदीके स्थानपर तांबेको सोनेमें मिला दिया जावे, तो वह उसके रंगको पीला बना देता है । (किसी २ व्याख्याकारने इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार किया है:—बत्तीस भाग चांदीके स्थानपर तांबे का उपयोग करके, अर्थात् चांदीके बजाय तांबा बत्तीस भाग लेकर उसमें तीन भाग शुद्ध सोना मिला दिया जावे, तो उसका रंग पीला होजाता है ॥ ५७ ॥

तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात् ॥ ५८ ॥ पीतरागं
भवति ॥ ५९ ॥

साधारण सोनेको, सुरापू देशकी खारी मिट्टीके द्वारा चमकाकर, उसमें शुद्ध हुए २ सोनेका तीसरा हिस्सा मिलादेवे ॥ ५८ ॥ ऐसा करनेसे उमका रंग पीला और लाल मिला हुआ सा हो जाता है । (किसी २ व्याख्याकार ने इन दो सूत्रोंका अर्थ इस प्रकार किया है:—शुद्ध हुए २ सुवर्ण को खारी सैन्धा मट्टीसे चमकाकर, उसमें तीसरा हिस्सा तांबा मिला दिया जावे, ऐसा करनेसे उसका रंग लाल पीला होजाता है) ॥ ५९ ॥

श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्रवर्णं करोति ॥ ६० ॥

शुद्ध चांदीके दो भाग और एक भाग सोनेका मिलाकर भावना देनेसे उमका रंग मूंगके रंगके समान होजाता है ॥ ६० ॥

कालायसस्यार्धभागाम्भ्यक्तं कृष्णं भवति ॥ ६१ ॥ प्रति-
लेपिना रसेन द्विगुणाम्भ्यक्तं तपनीयं शुकपत्रवर्णं भवति ॥ ६२ ॥
तस्यारम्भे रागविशेषेषु प्रतिवर्णिकां गृहीयात् ॥ ६३ ॥

छोटेके आधे भागसे मिला हुआ (रंग बदलनेके लिये, जितना सोना हो उसका तीसरा हिस्सा लोहा पीठे कहा गया है, उसका आधा अर्थात् छटा हिस्सा लोहेका मिला हुआ) सोना कालेसे रंगका होजाता है ॥ ६१ ॥ पिपल्ले

हुए लोहे तथा शुद्ध चांदीसे मिला हुआ दुगना सोना, तोलेके पंखेके समान वर्ण वाला होजाता है ॥ ६२ ॥ पहिले कहे हुए नील पीत आदिके प्रारम्भमें, विशेष २ रंगोंके विषयमें, न्यूनाधिकताके भेदको जाननेके लिये, प्रत्येक वर्णक का ग्रहण करलेवे ॥ ६३ ॥

वीक्षणताग्रसंस्कारं च युद्धयेत् ॥ ६४ ॥ तस्माद्ब्रजमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डबन्धप्रमाणानि चेति ॥ ६५ ॥

सोनेके रंग बदलनेमें काम आने वाले लोहे और तांबेका शुद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है; इस लिये उनके शुद्ध करने की विधि अच्छी तरह जान लेनी चाहिये ॥ ६४ ॥ उत्तम प्रकारके बज्र मणि मुक्ता प्रवाल आदिमें, असार (घटिया) बज्र मणि आदि मिलाकर कोई उनका अपहरण न करसके, तथा सोने चांदी आदिकी बननेवाली चीजोंमें कोई न्यूनाधिक मेल करके गड़बड़ न कर सके; इसलिये बज्र मणि मुक्ता आदिके सम्बन्धमें, और सोने चांदीके अभूषणों तथा पात्रों आदिके बन्ध (सोने चांदी आदिका नियमित मात्रामें मिलाना) और प्रमाणके सम्बन्धमें अच्छी तरह ज्ञानकारी प्राप्त करनी चाहिये ॥ ६५ ॥

समरागं समद्वन्द्वमशक्तं पृपतं स्थिरम् ।

सुविमृष्टमसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥ ६६ ॥

अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम् ।

मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

अभ्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे अक्षशालाया सुवर्णाभ्यक्षप्रयोदशो-

ऽध्यायः ॥ १३ ॥

आदिसश्वतुस्त्रिधाः ॥ ३४ ॥

सुवर्णके बने हुए आभूषणोंमें निम्न लिखित चौदह गुण होते हैं:— एकसा रंग होना, भार तथा रूप आदिमें एक दूसरेके समान होना, बीचमें कहीं गाँठ आदिका न होना, टिकाऊ (स्थिर होना, बहुत दिनों तक नष्ट न होना), 'अच्छी तरह साफ करके चमकाया हुआ, ठीक ढंगपर बना हुआ, विभक्त अवयवों वाला, धारण करनेमें सुखकर होना ॥ ६६ ॥ साफ सुथरा, कार्मिक-युक्त, मनोहर आकृतिसे युक्त होना, एकसा होना, मन तथा नेत्रोंको सुन्दर लगने वाला होना, ये चौदह गुण सुवर्णके बने हुए आभूषणोंमें हुआ करते हैं ॥ ६७ ॥

अभ्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय

३२ प्रकरण

विशिखामें सौवर्णिकका व्यापार ।

{ सुवर्ण का व्यापार करने वाले व्यापारियोंके बाजारका नाम विशिखा है । उसमें, सोनेका व्यापार (कार्य) करनेके लिये नियुक्त हुए २ पुरषोंके कार्यों का इत प्रकरण में विरूपण किया जायगा ।

सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः, अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम् ॥ २ ॥

सौवर्णिक (आभूषण आदिका बड़ा व्यापारी पुरष), नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरषोंके सोने चांदीके आभूषणों को, शिल्पशालामें काम करने वाले, सुनारोंके द्वारा तैयार करावे ॥ १ ॥ शिल्पियोंको चाहिये कि वे अपने नियत समय तथा वेतन आदिका निर्णय करके कार्य करें । कायकी मुरता अर्थात् कार्य की अधिकता होनेपर नियत समय आदिका निर्देश किये बिनाभी वे श्रम कार्य कर सकते हैं । तारपत्र यह है कि कार्य यथावश्यक ठीक पादेके अनुसार ही कर देना चाहिये ॥ २ ॥

कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशः तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३ ॥

कालातिपातेन पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ४ ॥

यदि कोई शिल्पी कार्यको अन्यथा करदेवे, अर्थात् उसे कुण्डल बनाने को दिये जावे; और रुचक बनादेवे, तो उसके वेतन (मजदूरी) को जब्त कर लिया जावे, तथा नियत वेतनसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ यदि कोई कारीगर ठीक आदेशपर काम करके न देवे, तो उसे नियत वेतनमेंसे पौना वेतन दिया जावे, अर्थात् वेतन का चौथाई हिस्सा जब्त कर लिया जावे । और जितना वेतन उसको दिया जावे, उससे दुगना दण्ड और अतिरिक्त दिया जावे ॥ ४ ॥

यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृहीत्युस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ ५ ॥

कारीगर श्रम जिस तरह का तथा जितना सोना चांदी आदि, आभूषण बनाने के लिये लेवे, उसी तरहका (यहांपर सुवर्णके रूप आदिकी ममानता अपेक्षित है) तथा उतने ही घनत्वका आभूषण बनाकर देदेवे ॥ ५ ॥

कालान्तरादपि च तथाविधमेव प्रतिगृहीयुरन्यत्र क्षीण-
परिशीर्णाम्याम् ॥ ६ ॥

सोना आदि देनेवाले पुरख, कालान्तरमें भी (अर्थात् जिस सुनारको उन्होंने सोना, आभूषण आदि बनानेके लिये दिया है, उसके परदेस चले जानेपर या अकस्मात् मरजानेपर, उसके पुत्रादि से) उसही प्रकारके सोनेको वापस लेवे) । यदि उनका यह सोना आदि नष्ट होगया हो, या कुछ छीज गया है, तो उसके लिये शिल्पी अवश्यही दण्डमागी होगा । तार्पर्य यह है कि परदेस जाने आदि की बाधासे यदि चांदमें कुछ विलम्ब होजाय, तो कारीगरकी वेतन हानि न कीजाय, और न उसे कोई दण्ड दिया जावे । परन्तु सुवर्ण आदिके नष्ट होजाएपर या कुछ न्यून हो जानेपर दण्ड होना आवश्यक है ॥ ६ ॥

आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात् ॥७॥

तप्तकलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः ॥ ८ ॥

निलिपयोंके द्वारा किये जानेवाले सुवर्ण (उनको संस्कृत करके कमल रजके समान बना देना , पुद्गल (आभूषण आदिका भ्रष्टार=सुवर्णसे बना हुआ पात्रविशेष), तथा लक्षण (सुद्राचिन्ह) आदिके प्रयोगोंमें, उनकी विधि तथा अन्य सबही बातोंको सौवर्णिक पुरख अच्छी तरह जाने । अर्थात् इन सबही विषयोंमें सौवर्णिक पुरखको अच्छी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये, जिससे कि उनकी देखरेखमें कार्य करते हुए शिल्पीजन, सुवर्णादिका अपहरण न कर सकें ॥ ७ ॥ अशुद्ध चांदी तथा सोनेको यदि आभूषण बनानेके लिये दिया जावे, तो सुवर्णकारको सुवर्णमें एक काकणी छीजन देनी चाहिये । अर्थात् सोलह मापक सुवर्णके पीछे एक काकणी (एक मापकका चौथा हिस्सा) सोना, आभूषण बनवाने वाले पुरखको सुनारसे कम लेना चाहिये । क्योंकि इतना सोना, शुद्ध करते समय छीजनमें निकल जाता है ॥ ८ ॥

वीक्षणकाकणीरूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य पद्भागः क्षयः

॥ ९ ॥ वर्णहीने मापावरे पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥

सोनेका रङ्ग बदलनेके लिये, एक काकणी लोहा और उससे दुगनी चांदी उसमें मिलायी जावे, इतने लोहे और चांदीकी मिलावट सोलह मापक सुवर्णमें करनी चाहिये; इतने सुवर्णमें, मिलावट (एक काकणी लोहा और दो काकणी चांदी) का छटा हिस्सा अर्थात् आधी काकणी छीजनके लिये निकाल देनी चाहिये ॥ ९ ॥ न्यूनसे न्यून यदि एक माप सुवर्णको, सुवर्णकार वर्णहीन

(अर्थात् अपनी अज्ञानतासे कान्ति रहित) बनादेवे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

प्रमाणहीने मध्यमः तुलाप्रतिमानोपधाबुत्तमः कृतमाण्डो-
पधौ च ॥ ११ ॥ सौवर्णिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो
द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ कर्तुर्द्विगुणः सापसारथेत् ॥ १३ ॥

तोलमें एक माप सोना कम होनेपर शिल्लीको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे । तरानु धाटमें यदि कोई कपट करे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे । इसी प्रकार जो पुरप, बनकर तैयार हुए २ पात्र आदिके इधर उधर परिवर्तन करनेमें छल कपट करे, उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ सौवर्णिककी अनुमतिके दिना ही अथवा अनुमति लेकर भी विशिखासे बाहर जाकर यदि कोई पुरुष भलहार आदिका निर्माण किसी शिल्पीसे करवावे, तो उसको चारह पण दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ और कार्य करने वाले कारीगर पुरुषको कराने वालेसे दुगना दण्ड दिया जावे । परन्तु यह दण्ड कार्य करने और कराने वालेको उसी समय समझना चाहिये, जब कि उनके विषयमें चोरी आदिकी आशङ्का कुछ भी न हो ॥ १३ ॥

अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत् ॥१४॥ कर्तुथ द्विशतो
दण्डः पणच्छेदनं वा ॥ १५ ॥

यदि उनपर चोरी आदिकी आशङ्काहोवे, तो कार्य करानेवाले पुरपको कण्टक-
शोधनाधिकारी (मदेष्टा) के समीप उसके अपराधका यथार्थ निर्णय करानेके
लिये लेजाया जावे ॥१४॥ और कार्य करने वाले कारीगर व्यक्तिको दोसौ पण
दण्ड दिया जावे; यदि वह इतना धन देनेमें असमर्थ हो, तो उसकी अंगुलियों
काटदी जावे ॥ १५ ॥

तुलाप्रतिमानमाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः ॥१६॥ अन्यथा
द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

सुवर्णकारोंको चाहिये, कि वे सोना आदि तोलनेके लिये कांटा और
उसके छोटे घड़े सब तरहके बाट आदि, पौतवाध्यक्षके पाससे खरीद लेंगे;
और उन्हींके अनुसार तोलने आदिका व्यवहार करें ॥ १६ ॥ यदि ये स्वयंही
कांटा आदि बनाकर उसका उपयोग करें, या पौतवाध्यक्षसे न लेकर और कहीं
से लेंलेंगे, तो उन्हें चारह पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

घनः घनसुपिरं संयूह्यमवलेप्यं संघात्यं त्रासितकं च कारु-
कर्म ॥ १८ ॥

घन (अर्थात् अंगूठी आदि ठोस आभूषण), घनमुषिर (ऊपरसे ठोस मालूम होने वाले, पर भीतरसे पोछे कड़े आदि आभूषण), संयुष्ट (जिनके ऊपर मोटा पत्र चढ़ा दिया जावे, ऐसे आभूषण आदि) अवलेप्य (जिनके ऊपर पतला पत्र चढ़ाया जावे), संघाल्य (जिस आभूषणको थोड़ा २ जोड़कर बनाया जावे, जैसे तगड़ी जंजीरी आदि) तथा वासितक (जिन आभूषणोंको रस आदिसे वासित किया जावे); ये छः प्रकारके शिल्पियोंके कार्य होते हैं ॥ १८ ॥

तुलाविषममपसारणं विस्तारणं पेटको पिङ्गयेति हरणोपायाः

॥ १९ ॥

इन कार्योंको करते हुए सुवर्णकार निम्नलिखित रीतिसे सुवर्ण आदिका अपहरण कर सकते हैं:—तुलाविषम, अपहरण, विस्तारण, पेटक और पिङ्ग ये पांच अपहरणके उपाय हैं। अगले सूत्रोंमें इन्हींका यथाक्रम विस्तार पूर्वक निरूपण किया जाता है:—॥ १९ ॥

संनानिन्युत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकडुकश्या पारिवेल्पयस्कान्ता च दुष्टतुलाः ॥ २० ॥

पहला उपाय है—तुलाविषम, अर्थात् तराजू या काटेका ठीक न होना; निम्नलिखित आठ प्रकारकी तुला विषम (अर्थात् ठीक २ न तोलने वाली, जिनके द्वारा तोलनेमें झट वेईमानी कीजासके, ऐसी) होती हैं:—संनानिनी (हलके छोड़ेसे बनाई हुई, जो अंगुली लगानेसे यथेच्छ चाहे ज़िपरको झुकाई जासके), उत्कीर्णिका (जिसके भीतर छेदोंमें छोड़े आदिका चूरा भरा हुआ हो), भिन्नमस्तका (जिसके आगेके हिस्सेमें छेद हुए २ हों, उन छेदोंको धातुकी ओर करके यदि तोला जावे, तो आगेकी ओरसे धातु, उस तराजूको पीछेकी ओर झुका देती है), उपकण्ठी (जिसमें बहुत गांठेंसी पड़ रही हों), कुशिक्या (जिसका शिब्य अर्थात् पलड़ा बहुत ही खराब हो), जिसकी डोरी आदि अच्छी न हों, लगातार हिलने वाली, ऊपर दण्डीमें अपस्कान्त मणि लगाकर बनाई हुई, ये आठ प्रकारकी तराजू दुष्ट होती हैं, इनके द्वारा सुवर्ण आदिका अपहरण किया जासकता है। इसीका नाम तुलाविषम है ॥ २० ॥

रूप्यस्य द्वौ भागावेकं शुल्बस्य त्रिपुटकम् ॥ २१ ॥ तेना-
करोद्गतमपसार्यते तच्चिपुटकापसारितम् ॥ २२ ॥

भारत द्रव्यको मिलाकर सारद्रव्यका अपहरण करलेना; इस तरहका अपसार चार प्रकारका होता है:—त्रिपुटकापसारित, शुल्बापसारित, पेशका-

सारित और हेमापसारित । इनका यथाक्रम निरूपण किया जाता है:—दो हिस्सा चाँदी और एक हिस्सा ताँबा मिलाकर जो मेल तैयार किया जावे, उसका नाम 'त्रिपुटक' है ॥ २१ ॥ शुद्ध सुवर्णमें यह त्रिपुटक मिलाकर उसमेंसे उतनाही सोना निकाल लिया जावे, और उस सोनेको किसीके छोटा पतलानेपर कह दिया जावे, कि यह तो खानसेही इस तरहका अशुद्ध सोना निकला है । इसप्रकार त्रिपुटकरके द्वारा जो अपहरण किया जाये, उसका नाम त्रिपुटकापसारित है ॥ २२ ॥

शुल्केन शुल्कापसारितम् ॥ २३ ॥ वेल्हकेन वेल्हकापसारितम् ॥ २४ ॥ शुल्वार्धसारिण हेम्ना हेमापसारितम् ॥ २५ ॥

जो केवल ताँबा मिलाकर अपहरण किया जावे, उसे शुल्कापसारित कहते हैं ॥ २३ ॥ लोहों और चाँदी मिलाकर जो मेल तैयार किया जावे, उसे 'वेल्हक' कहते हैं । फिर उस वेल्हकको सुवर्णमें मिलाकर जो सुवर्णका अपहरण किया जाता है, उसे 'वेल्हकापसारित' कहते हैं ॥ २४ ॥ ताँबेके साथ आधा सोना मिलाकर, उस मेलको फिर सोनेमें मिलाकर जो सोनेका अपहरण किया जाता है, उसे हेमापसारित कहते हैं ॥ २५ ॥

मूकमूपा पूतिकिट्टः करटकमुखं नाली संदंशो जोङ्गनी सुवर्चिकालवणम् ॥२६॥ तदेव सुवर्णमित्यपहरणमार्गाः ॥२७॥

असार द्रव्यकी मिलाने और सर द्रव्यके अपहरण करनेका उद्ग यह है:—मूकमूपा, पूतिकिट्ट (लोहे का मेल), करटकमुख (सोना आदि कतरनेकी कैंची, कतरनी या कतनी), नाली (नाल प्रसिद्ध है), संदंश (संदासी), जोङ्गनी (लोहेकी छड़सी जिससे भाग आदि कुरेदी जाय), सुवर्चिका (शोरा क्षार) तथा नमक । तात्पर्य यह है—जब शुद्ध सुवर्णको बन्द मूपामें डालकर तपाया जाता है, तब उसके मलको निकालनेके बहानेसे, शोरा या नमक आदि क्षारोंकी जगहपर, पहिलेसे तैयार किये हुए त्रिपुटक आदिके चूरेको उस तपते हुए शुद्ध सुवर्णमें डाल दिया जाता है । और फिर कतनी या संदासी आदि औजारोंके द्वारा उसमेंसे उतनाही शुद्ध सोना निकाल लिया जाता है । इस तरह सुनार, लोगोंके देखते हुए भी सोने आदि का अपहरण कर लेते हैं ॥ २६ ॥ जब कहा जाय कि तुमने यह सोना खोटा कर दिया, तो कहेंते हैं कि यह चही सोना है जो हमने आपसे लिया था, यह खानसे इसी प्रकारका निकला मालूम देता है । ये अपहरणके मार्ग हैं ॥ २७ ॥

पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूपाभेदाद्गणिष्ठा उद्ध्रियन्ते

अथवा पहिलेसेही उस भागमें भिन्न धातुओंकी धारीक बालुकासी बालुकी जाती है, और फिर मूषाको जब अग्निमें रक्खा जाता है, तो यह बहाना करके कि मूषा टूटगई है, और उसमेंसे यह पिघली हुई धातुकी बालुकासी निकलपडी है, उस सबको अग्निमेंसे उठाकर मालिकके सामनेही सोनेमें मिला दिया जाता है, और उपर्युक्त रीतिसे उतनाही सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है । यहही अपसारणका एक उपाय है ॥ २८ ॥

पश्चाद्बन्धने आचितकपत्रपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं
विस्त्रावणम् ॥ २९ ॥ पिण्डवालुकानां लोहपिण्डवालुकाभिर्वा ॥ ३० ॥

पहिले बनाईहुई चीजके पीछेसे जोड़नेमें, अथवा बहुतसे पत्रोंकी परीक्षाके समयमें, चाँदीसे सोनेका बदल लेना, अर्थात् खरे सोनेको निकाल कर खोटा सोना लगादेना ' विस्त्रावण ' कहाता है । यह विस्त्रावणका एक प्रकार है ॥ २९ ॥ सोनकी खानमें पैदा हुई २ बालुकाको, लोहेकी खानमें पैदाहुई बालुकाओंके साथ बदल देनाभी विस्त्रावण कहाता है । यह विस्त्रावण का दूसरा प्रकार है ॥ ३० ॥

गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्याजलेप्यसंघात्येषु क्रियते
॥ ३१ ॥ सीसरूपं सुवर्णपत्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमपेटकेन वद्धं
गाढपेटकः ॥ ३२ ॥ स एव पटलसंपुटेष्वभ्युद्धार्यः ॥ ३३ ॥

पेटक दो प्रकारका होता है, एक गाढ और दूसरा अभ्युद्धार्य । इस उपायका प्रयोग संयूह्य अवलेप्य तथा सघार्य कर्मोंमें किया जाता है ॥ ३१ ॥ सीसेके पत्रको सुवर्णक पत्रसे मढ़कर, तथा बीचमें अटक अर्थात् लाख आदिके रससे अच्छीतरह दडताके साथ जोड़कर जो बन्धन किया जावे, उसे ' गाढ पेटक ' कहते हैं ॥ ३२ ॥ यही बन्धन, यदि उसमें लाख आदिका रस, जोड़की दडताके लिये न लगाया जावे, और इसीलिये जो सरलतासे उत्पन्नकने योग्य हो, अभ्युद्धार्यपेटक कहाता है । इस प्रकार सारासार द्रव्योंके बराबरके सयूहनमें सुवर्ण आदिका अपहरण करलिया जाता है ॥ ३३ ॥

पत्रमाश्लिष्टं यमरूपत्रं वावलेप्येषु क्रियते ॥ ३४ ॥ शुल्वं
तारं वा गर्भः पत्राणाम् ॥ ३५ ॥

अवलेप्य कर्मोंमें एक और या दोनों ओर पतलासा सोनेका पत्र जोड़कर, उसमेंसे कुछ शुद्ध सुवर्णका अन्न अपहरण करलिया जाता है ॥ ३४ ॥ तथा अवलेप्य कर्मोंमेंही बाहर पत्र लगानेके बजाय, सुवर्ण पत्रोंके बीचमें

ताँबे या चाँदीका पत्र लगाकर उसके चराचर सोनेका अपहरण करलिया जाता है ॥ ३५ ॥

संघात्येपु क्रियते शुल्परूपसुवर्णपत्रसंहतं प्रमृष्टं सुपार्श्वम्
॥ ३६ ॥ तदेव यमकपत्रसंहतं प्रमृष्टं ताम्रताररूपं चोचरवर्णकः
॥ ३७ ॥

संघात्य कर्मोंमें, ताँबे की चीजको एक ओर सोनेके पत्रोंसे मटकर, उसे खूब चमकाकर, एक ओरके हिस्सेको खूब सुन्दर बना दिया जाता है ॥ ३६ ॥ उस ही ताँबेकी चीजके दोनों ओर सोनेके पत्र चढा दिये जाते हैं, तथा उसे अच्छी तरह साफ करके चमका दिया जाता है । ऐसा करते उससे कुछ अंश सोनेका निकाल लिया जाता है । (फोरे व्याख्याकार पहिले सूत्रमें बताये कार्य को 'सुपार्श्व' और इस सूत्रमें बताये हुए को 'प्रमृष्ट' नाम देते हैं) ॥ ३७ ॥

तदुभयं तापनिकषाभ्यां निःशब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात्
॥ ३८ ॥ अभ्युद्धार्यं चदराम्ले लवणोदके वा साधयन्तीति पेटकः
॥ ३९ ॥

अब पेटककी परीक्षा का प्रकार बतलाते हैं — गादपेटक तथा अभ्युद्धार्यपेटक इन दोनों की ही अभिमे तपाके और फसाटी पर घिसनेसे परीक्षा करे । अथवा हलकीसी घोंट देकर (जिस घोंटके देनेपर शब्द न हो), या किसी तीक्ष्ण वस्तुसे निशान देकर या रसासी रीचकर इनकी परीक्षा करे ॥ ३८ ॥ अभ्युद्धार्य पेटकको घेरीके अम्ल रसमें तथा नमकके पानीमें ढालकर भी परीक्षा किया जाता है । ऐसा करनेसे उसका रङ्ग कुछ लालसा होजाता है । यहाँ तक अपहरणके 'पेटक' नामक उपायका निरूपण किया गया ॥ ३९ ॥

घनसुपिरे वा रूपे सुवर्णमृन्मालुकाहिङ्गुलुककल्को वा तप्तो
ज्वतिष्ठते ॥ ४० ॥ दृढवास्तुके वा रूपे मालुकामिश्रजलुमान्धार-
पङ्को वा तप्तो ज्वतिष्ठते ॥ ४१ ॥

अब पांच प्रकारके पिङ्गका, तथा उसकी परीक्षाका यथाक्रम निरूपण किया जायगा — टोस अथवा षोले कडे आदि आभूषणोंमें, सुवर्णपत्र, सुवर्ण-मालुका और शिगरफका फलक अभिमे तपाकर लगा दिया जाता है । यह एक अपद्रव्य या असाहय्य है, इसको आभूषणोंमें मिलाकर, उतनाही शुद्ध सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है । (सुवर्णमृत् और सुवर्णमालुका, ये दोनों भी कोई विशेष धातु ही हैं) ॥ ४० ॥ जिस आभूषणका वास्तुक (अर्थात्

पीठबन्ध=भाधारभूत भाग) अच्छी तरह दृढ़ हो, उसमें, साधारण धातुओं-
की थालुकाकी लाल और सिन्दूरके पट्ट (कीचड़=दोनोंका एक साथ घुले हुए
होना) में मिलाकर तथा उन्हें अग्निमें तपाकर लगा दिया जाता है । और
उसकी बराबरका सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है ॥ ४१ ॥

तयोस्तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः ॥ ४२ ॥ सपरिमाण्डे वा
रूपे लवणमुल्कया कदुशर्करया तप्तमवतिष्ठते ॥ ४३ ॥ तस्य
काथनं शुद्धिः ॥ ४४ ॥

दोस पोले तथा दृढवास्तुक अलङ्कारों को अग्निमें तपाना, तथा उनपर
यथावरयक घोट देना, उनका शोधनका उपाय है ॥ ४२ ॥ बृद्धदार मणिबन्ध
आदि आभूषणोंमें, नमक को छोटा २ कंकड़ियोंके साथ लपटों वाली भागमें
तपाकर रख लिया जाता है ॥ ४३ ॥ बेरीके अम्ल रसमें डबाल कर उसकी
शुद्धि होजाती है ॥ ४४ ॥

अध्रपटलमष्टकेन द्विगुणमास्तुके वा रूपे वध्यते, तस्य
पिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति, पटलान्तरेषु
वा सूच्या भिद्यते ॥ ४५ ॥

अध्रपटल (अध्रक), अपनेसे दुगने वास्तुक (आभूषणोंके लिये तैयार
किये हुए सुवर्ण आदि) में लाल आदिके द्वारा जोड़कर रख लिया जाता है ।
उसकी परीक्षा का प्रकार यह है — उस सुवर्णके आभूषणों को, जिसमें अध्रक
मिला हुआ होवे, बेरीके अम्ल जलमें छोड़ दिया जाये, उस आभूषण का घोंडा
सा हिस्ता ही पानीमें डूबेगा, जिस ओर अध्रक होगा वह नहीं डूबेगा । यदि
अध्रपटल के स्थान पर ताम्रपटल का ही आभरण आदि में मेल किया
गया हो, तो उसकी परीक्षा किसी सूई से निशान करके ही ठीक तौरपर
हो सकती है ॥ ४५ ॥

मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुपिराणां पिङ्कः ॥ ४६ ॥
तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिरिति पिङ्कः ॥ ४७ ॥

दोस तथा पोले आभूषणोंमें मणि (काच मणि आदि), चाँदी तथा
अशुद्ध सुवर्ण का मेल करके पिङ्क नामक उपाय द्वारा शुद्ध सुवर्ण का अपहरण
किया जासकता है ॥ ४६ ॥ उसको अग्निमें तपाना तथा उसपर घोट देना ही
उसके शोधन का प्रकार है । ऐसा करनेसे उसकी घास्तविकता की परीक्षा हो
जाती है । यहीनाक पिङ्कका निरूपण किया गया ॥ ४७ ॥

तस्माद्द्वजंमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणांपुद्गल-
लक्षणान्युपलभेत ॥ ४८ ॥

इसलिये 'सौवर्णिक' को चाहिये कि वह यज्ञ मणि मुक्ता तथा प्रवाल
इन चारोंके जाति (उत्पत्ति), रूप (आकार), वर्ण (रंग), प्रमाण
(मापक आदि परिमाण), पुद्गल (आभरण), और लक्षण अर्थात् चिन्हों
को अच्छी तरह जाने । जिससे कोई भी व्यक्ति, किसी उत्तम वस्तुका अपहरण
न कर सके ॥ ४८ ॥

कृतमाण्डपरीक्षायां पुराणमाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो
हरणोपायाः ॥ ४९ ॥ परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा
॥ ५० ॥

पात्र तथा आभरण आदिके निर्माणके अनन्तर परीक्षा समयमें, उसमें
से सुवर्ण आदिका अपहरण करनेके चार उपाय होते हैं—॥ ४९ ॥ परिकुट्टन
अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन ॥ ५० ॥

पेटकापदेशेन पृपतं गुणं पिटकां वा यत्परिश्वातयन्ति तत्प-
रिकुट्टनम् ॥ ५१ ॥ यद्द्विगुणघास्तुकानां वा रूपे सीसरूपं
प्रक्षिप्याभ्यन्तरमवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम् ॥ ५२ ॥

पूछोँक पेटक उपायकी परीक्षा करनेके पहानेसे, छोटी २ गोली, कड़े
आदिका थोड़ासा हिस्सा या कुछ अधिक हिस्सा, जो किसी आभूषण आदिसे
सुनार काट लेते हैं, उसका नाम ' परिकुट्टन ' है ॥ ५१ ॥ बहुतसे पात्र आदि
को जोड़कर बनाये हुये आभूषणों में, तथा सोमेसे नदे हुए कुछ सीसेके
पात्रों को मिलाकर, फिर भीतरसे काटकर सुवर्ण निकाल लेना ' अवच्छेदन '
कहाता है ॥ ५२ ॥

यद्वनानां तीक्ष्णानोद्दिशन्ति तदुल्लेखनम् ॥ ५३ ॥ हरि-
तालमनःशिलाहिङ्गुलकचूर्णानामन्यतमैर्न कुरुविन्दचूर्णेन वा वस्त्रं
संयुज्य यत्परिमृद्नन्ति तत्परिमर्दनम् ॥ ५४ ॥

जो सुनार ठोस आभूषणोंको तीक्ष्ण औजार आदिसे खोद देते हैं, उस
' उल्लेखन ' कहते हैं ॥ ५३ ॥ हरताल, मनसिल तथा सिंगरफके चूर्णके साथ
संयोज्य कुरुबिन्द (एक तरहका परापर) के चूर्णके साथ करके को सीमेकर
उससे जो आभूषण आदिको रगड़ा जाता है, इसका नाम ' परिमर्दन ' होता
है ॥ ५४ ॥

— तेन सौवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते ॥ ५५ ॥ न चैषां किञ्चिद्वरुणं भवति ॥ ५६ ॥

— ऐसा करनेसे सोने तथा चांदीके आभरण आदि घिस जाते हैं ॥ ५५ ॥ परन्तु इनमें किसी तरहकी चोट या विकारकी प्रतीति नहीं होती ।— इस प्रकार आभूषण आदिको काटे बिना ही सुवर्णके अपहरण करनेका यह एक उपाय है ॥ ५६ ॥

भग्नसण्डघृष्टानां संयूखानां सदृशेनानुमानं कुर्यात् ॥ ५७ ॥
अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात् ॥ ५८ ॥

— यह पत्रासे बने हुए आभूषणोंके, परिकुट्टन अवच्छेदन तथा घिसनेसे जितन हिस्स का अपहरण किया गया हो, उसका अनुमान, उसका समान जातीय शय अवयवोंसे करे ॥ ५७ ॥ अवलेप्य अर्थात् जिन आभूषण आदिपर सोनेका पतला पत्र ऊपर चढा हुआ हो, उनपरसे काटे हुए सोनेके हिस्स का उतनी ही दूक दूसरे हिस्सको काटकर जाने । अर्थात् उस बटे हुए हिस्सेके परिमाणका उतने ही दूसरे हिस्ससे अनुमान करे ॥ ५८ ॥

विरूपाणा वा तापनमुदकपेपणं च बहुशः कुर्यात् ॥ ५९ ॥

— जिन आभूषण आदिमें बहुत अधिक अपद्रव्य मिलाकर उन्हें विरूप बना दिया गया हो, उनकी हानिके परिमाणका अनुमान, उनके सदृश अन्य आभूषणोंके द्वारा किया जावे । उनको अग्निमें रख तपाकर तथा फिर जलमें फेंककर उनपर बार २ चोट देना ही उनके शोधन का उपाय है । अपहरणके परिमाणको जाननेका प्रयोगन यही है, कि उसके अनुसार अपहरण करानवाले गुरपको, पूर्वोक्त प्रथमसाहस आदि दण्ड दिये जायें ॥ ५९ ॥

अवक्षेपः प्रतिमानमग्निगण्डिका भण्डिकाधिकरणी पिच्छः
सूत्रं चेष्टं चोद्धनं शिर उत्सङ्गो मक्षिका स्वकायेक्षादतिरुदकश-
रायमग्निष्ठमिति काचं विधात् ॥ ६० ॥

— पूर्वोक्त अपहरणके उपायोंके अतिरिक्त, अवक्षेप आदि अन्य उपायोंका भी निरूपण करते हैं — अवक्षेप (अपने हस्तलाघव अर्थात् चतुर्गुण से देखो हुए आदमीके सामने भी सार द्रव्य का अपहरण करके उसमें असारद्रव्य का मिला देना), प्रतिमान (बदला करनेके द्वारा अपहरण करना), अग्नि (अग्नि के बीचमें दहन करना), गण्डिका (जिसपर रखकर सोने को चोट लगाई जावे), भण्डिका (सोनेका मैल आदि रखने का पात्र, अथवा पिघले हुए सोनेके रखने का पात्र), अधिकरणी (लोहेका बना हुआ साधारण सुवर्णके

रखनेका पाय), पिंछ (मोर पेंच), सूष, (सुवर्णकी तराजू की रस्सो), चेल (वस्त्र), बोलन (कहानीके बहानेसे देखने वालेका ध्यान बटाना), शिर (शिरका खुजाना आदि), उस्संग (गोद या अन्य गुहा स्थान), मक्षिका (मक्खीके उड़ानेके बहानेसे द्रव धातु को अपने अंगसे लगा लेना, पत्तीना आदि द्रव्याणका बहाना, धौंकनी, जलका दाकोरा, अक्षिमें डाला हुआ अप-द्रव्य; ये सब अपहरणके उपाय जानने चाहियें ॥ ६० ॥

राजतानां विस्रं मलप्राहि परुषं प्रस्तीनं विवर्णं वा दुष्ट-
मिति विद्यात् ॥ ६१ ॥

जो आभूषण चांदीके बने हुए हों, उनमें पांच प्रकारके दोषके चिन्ह होते हैं:—विस्र (सीसा आदिके संसर्गसे दुर्गन्धका आने लगना), मलिन हो जाना, कठोर (अर्थात् स्पर्श करते समय परस्परता महसूस होना), कठिन होजाना (अर्थात् मृदुताका न रहना), और विवर्ण अर्थात् अपद्रव्यके मिलने से कान्तिहीन होजाना, ये पांच प्रकारके दोष चांदीके बने आभूषणोंमें अप-द्रव्य मिलानेसे होजाते हैं । (इसके शोधनका प्रकार, पूर्व अध्यायमें (अस्मि-तुल्ये चतुः समसोस चतुः' इत्यादि सूत्रसे यथा दिया गया है) ॥ ६१ ॥

एवं नयं च जीर्णं च विरूपं च विभाण्डकम् ।

परीक्षेतात्ययं चैषां यथोद्दिष्टं प्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे विशिष्टायां सौवर्णिकप्रचारे चतुर्दशो-

ऽध्यायः ॥ १४ ॥

आदितः पञ्चविंशः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार नये और पुराने, विरूप या विकृत बिये हुए पात्रों आभूषण आदि को अच्छी तरह परीक्षा करके जाने । और फिर उस मिलावटके अनुसार अपराधियोंके दण्डकी व्यवस्था करे । (लेना कि' वर्णहीने माषकावरे' इत्यादि सूत्रोंसे प्रतिपादन कर दिया गया है) ॥ ६२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवा अध्याय

३३ प्रकरण

कोष्ठागाराध्यक्ष ।

{ 'कोष्ठ' पेटको कहते हैं । उसके लिये जो धान्य, तेल, घी, नमक आदि खाने योग्य पदार्थ होते हैं, उनका भी नाम कोष्ठ है । उन पदार्थोंके समूह तथा रक्षाके लिये जो स्थान बनाये जायें, उन्हें 'कोष्ठागार' कहते हैं । और उनके अध्यक्ष का नाम कोष्ठागाराध्यक्ष होता है, उसके कार्योंका विस्तृत निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहनिकान्यजातव्ययप्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत ॥ १ ॥ सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता ॥ २ ॥

कोष्ठागाराध्यक्ष को चाहिये, कि वह सीता, राष्ट्र, क्रयिम, परिवर्तक, प्रामित्यक, आपमित्यक, सिंहनिका, अन्यजात, व्ययप्रत्याय और उपस्थान इन दस बातोंका अच्छी तरह चिन्तन करे । इन सबका यथाक्रम विवरण दिया जाता है — ॥ १ ॥ सीताध्यक्ष (धान्य आदि राजकीय करका ग्रहण करने वाला अधिकारी) के द्वारा कोष्ठागारमें पहुँचाये हुए प्रत्येक जातिके धान्यका नाम 'सीता' है । कोष्ठागाराध्यक्षको चाहिये कि वह शुद्ध और पूर्ण सीताको लेकर यथोचित कोष्ठागारमें रखे ॥ २ ॥

पिण्डकरः पद्भागः सेनाभक्तं वलिः कर उत्सङ्गः पार्श्व पारिहीणिकमौपायनिकं कौष्ठेयकं च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

पिण्डकर (उन २ गावोंसे दिया जाने वाला नियत राजकीय कर), पद्भाग (राजदेय, अन्नादिका छटा हिरसा), सेनाभक्त (सेनाके आक्रमण करनेके समयमें सेल घृत चावल नमक आदि विशेष राजदेय भाग । किसी २ व्याख्याकारम 'सैनिकों को चावल तथा अन्य हिरण्य आदि देनेके समयमें उनसे द्वारा दिये जाने वाले धनादिके कुछ अंश' ऐसा अर्थ किया है), वलि (छठे हिस्सेसे अतिरिक्त राजदेय अंश), कर (जल तथा वृक्ष आदिके सम्बन्ध का राजदेय अंश), उत्सङ्ग (राजाके पुत्र जन्मादि उत्सव होनेपर पौर जान-पदोंके द्वारा दिया हुआ विशेष धन), पार्श्व (उचित करसे अधिक ग्रहण करना; योग्यत पद्म अधिकरणके, दूसरे अध्यायमें इसका निरूपण किया गया

है), पारिहीणिक (चौपायोंसे बिगाड़े हुए धान्य आदिके दण्ड रूपमें प्राप्त हुआ २ धन), औपायनिक (भेटमें प्राप्त हुआ २ धन), और कौष्ठेयक (राजाके द्वारा बनवाये हुए तालाब और बगीचोंसे प्राप्त होने वाला), यह दस प्रकार का राश्ट्र होता है ॥ ३ ॥

धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोगप्रत्यादानं च ऋयिमम् ॥४॥
सस्यवर्णानामर्धान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः ॥ ५ ॥ सस्ययाच-
नमन्यतः प्रामित्यकम् ॥ ६ ॥

धान्यमूल्य (धान्य आदिको बेचकर मूल्य रूपमें प्राप्त हुआ २ हिरण्य आदि), कोशनिर्हार (हिरण्य आदि लेकर खरीदा हुआ धान्य आदि), तथा प्रयोगप्रत्यादान (क्याज आविसे प्राप्त हुए अधिक धान्यका कोषागारमें जमा करना), यह तीन प्रकारका ऋयिम होता है ॥ ४ ॥ मिश्र २ जातिके धान्योंसे अन्य भिन्न जातिके धान्योंका न्यूनताधिक परिमाणमें बदला करना, जैसे एक प्रस्य चावल देकर चार प्रस्य कोदों बदलेमें लेलेना, यह ' परिवर्तक ' कहा जाता है ॥ ५ ॥ अन्य भिन्न आविसे, तस्य (अन्न=अनाज) का मांगना, जो कि फिर लौटाया न जावे, उसे ' प्रामित्यक ' कहते हैं ॥ ६ ॥

तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम् ॥ ७ ॥ कुट्टकरीचकमक्तु-
शुक्तपिष्टकर्म तज्जीघनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकेविक्षूणां च
क्षारकर्म सिंहनिका ॥ ८ ॥

जो धान्य आदि, क्याज सहित लौटा देनेके वादेपर दूसरेसे मांगा जावे, उसे ' आपमित्यक ' कहते हैं ॥ ७ ॥ फूटनेका कार्य करने वाले, गुंग डडद आदिके छड़ने, औ आदिका सत्त पीसने, गले आदिके रससे सिरका या आसव बनाने, तथा गेहूं आदिका आटा पीसनेका कार्य करने वाले, अर्थात् इन कार्योंको करके अपनी जीविका करने वाले पुरुषोंसे; और तिलोंसे तेल निकालकर तथा मेहोंके बाल आदि फाटकर उनसे जीविका करने वाले पुरुषोंसे; और गधोंके रससे गुड राव शकर आदि बनाकर अपनी जीविका करने वाले पुरुषोंसे जो राजदेय भंश लिया जावे उसे ' सिंहनिका ' कहते हैं । किसी २ प्राचीन व्याख्यामें ' सिंहनिका ' पाठ है । यह प.ठ अष्टा मालम होता है ॥ ८ ॥

नष्टप्रस्मृतादिरन्यजातः ॥ ९ ॥ विक्षेपव्याधितान्तरारम्भ-
शेषं च व्ययप्रत्यायः ॥ १० ॥

नष्ट हुए २ तथा भूले हुएका नाम ' अन्यजात है ॥ ९ ॥ विक्षेपशेष (किसी कार्यको सिद्ध करनेके लिये भेरी हुई सेनाके शेषसे यथा हुआ),

व्याधितशेष (औषधालय आदिके व्ययसे बचा हुआ), तथा अन्तरारम्भशेष (भीतर दुर्ग आदिकी मरम्मतसे बचा हुआ धन), यह तीन प्रकारका 'व्यय प्रत्याय' होता है ॥ १० ॥

तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्याजी पर्युषितं प्रार्जितं चोपस्थानमिति ॥ ११ ॥

तराजू या बाटोंके भेदसे अधिक प्राप्त हुआ २ (अर्थात् भारी बाटोंसे लेकर, और हलके बाटोंसे देकर अधिक पैदा किया हुआ), अन्न आदि तोलने के बाद मुट्टी भरकर और अधिक डाला हुआ अन्न, उत्कर (धान्य आदिके देरसे, तुली हुई या गिनी हुई चीजों और वस्तु उठाकर डाल देना), व्याजी (सोलहवा या बीसवा अधिक लिया हुआ हिस्सा, जिससे कि किर तोलनमें किसी तरहकी कमी न होनाय), पर्युषित (पिछल सालका शेष) और प्रार्जित (अपनी चतुराईसे इकट्ठा किया हुआ), यह 'उपस्थान' कहता है। यद्वातक सीता आदि पदार्थोंका विवरण किया गया ॥ ११ ॥

धान्यस्नेहक्षारलवणानाम् ॥ १२ ॥ धान्यकल्पं सीताप्यक्षे
वक्ष्यामः ॥ १३ ॥ सर्पिस्तिलवसामज्जानः स्नेहाः ॥ १४ ॥ फा-
णितगुडमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराः क्षारवर्गः ॥ १५ ॥

अब इसके आगे धान्य, स्नेह (घी तेल आदि), क्षार तथा लवण, इन पदार्थोंका निपटण किया जावगा ॥ १२ ॥ इन पदार्थोंमेंसे धान्यवर्गका विस्तृत विवरण, सीताप्यक्ष नामक प्रकरणमें कहा जावगा ॥ १३ ॥ घी, तेल, वसा और मज्जा ये चार प्रकारके स्नेह होते हैं ॥ १४ ॥ गन्धेय बने हुए फाणित (राव), गुड, मत्स्यण्डिका (गुड और खाडके घीचका विकार), खाड तथा शकर आदि ये सब क्षारवर्ग हैं ॥ १५ ॥

सैन्धवसामुद्रचिडयवक्षारसौचर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः ॥ १६ ॥
शौद्रं मार्द्वीकं च मधु ॥ १७ ॥

छ प्रकारका लवण होता है,—सैन्धव (सैंधा नमक), सामुद्र (समुद्रके पानीसे बना हुआ), बिट (एक प्रकारका नमक), यवक्षार (जवाखार आदि), सौचर्चल (मजीखार आदि), और उद्भेदज (ऊपरकी महीसे बनाया हुआ नमक), यह लवणवर्ग है ॥ १६ ॥ मधु दो प्रकारका होता है,—शौद्र (भक्षियोंक द्वारा इकट्ठा किया हुआ), तथा मार्द्वीक (मुनका तथा शक्कर रससे बनाया हुआ) ॥ १७ ॥

इक्षुरसगुडमधुफणितजाम्बवपनसानामन्यतमो मेपशृङ्गीपि-
प्पलीकाथाभिपुतो मासिकः पाण्मासिकः सांवत्सरिको वा चिद्भि-
टोर्वास्तुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकाचसुतः शुद्धो वा शुक्तवर्गः ॥ १८ ॥

इक्षुरस (इंसका रस), गुड (गुड), मधु (शहद), फणित (राव),
जाम्बव (जामुन फलका रस), पनस (पनस=कटहल फलका रस), इन
छ'भूमसे किसी एकको मेपशृङ्गी (मेंडसाँगी) तथा पिप्पली (पीपल) के
कायके साथ मिलाकर, एक महीना, ३ महीना तथा एक वर्षतक बन्द करके
रखा जावे; चिद्भिट (मीठी ककड़ी), उर्वास्तु (कड़वी ककड़ी), इक्षुकाण्ड
(इंस) आम्रफल (आमका फल), तथा आमरक (आंवला) इन पाँचों
बीजोंको भी उत्तम डाले, अथवा न डाले, ऐसा करनेसे जो रस तैयार हो, उसे
निरका करते हैं । यह एक महीना छ महीना तथा सालभर समयके भेदसे
यथाक्रम अधम, मध्यम तथा उत्तम होता है । यह शुक्तवर्ग है ॥ १८ ॥

वृक्षाम्लकरमर्दात्रविदलामलकमातुलुङ्गफोलवदरसाँवीरकप-
रूपकादिः फलाम्लवर्गः ॥ १९ ॥

हमली (किसी २ ने लिखितडोक शब्दका अर्थ केवल सटाई या अमल
वैत भी किया है), करोंदा, आम, अनार, आवला, खट्टा (एक प्रकारका गोशु),
झरवेरीका बेर, पैमवी बेर, उखाव, फालमा आदि सट्टे रसके फल होते हैं ।
यह फलाम्लवर्ग है ॥ १९ ॥

दधिधान्याम्लादिः द्रवाम्लवर्गः ॥ २० ॥ पिप्पलीमरीच-
शृङ्गिबेराजजिफिरातातित्तगोरसर्पपकुस्तुम्युरुचोरकदमनकमरुव-
काशिग्रकाण्डादिः कटुकवर्गः ॥ २१ ॥ शुष्कमत्स्यमांसकन्दमूल
फलशाकादि च शाकवर्गः ॥ २२ ॥

दही, कांजी तथा आदि पदसे मठा (तफ=उठ) आदि ये पनीची
रसही चीजे होती हैं । यह द्रववर्ग है ॥ २० ॥ पीपल, मिरच, अररख, जीरा,
चिरायता, बग सरसों, धनियाँ, चोरक (चोरवेल) दमनक (काम्ता नामक
बीपधि), मरुवक (मनफल), सैजना आदि ये सब कटु (कड़वे) पदार्थ
हैं । यह कटुकवर्ग है ॥ २१ ॥ सूखी मछली, सूखा मांस, कन्द (सुण,
विदारी, सादि), मूल (मूली, गाजर आदि) फल, शाक (बधुभा, मेथी
आदि), यह सब शाकवर्ग है ॥ २२ ॥

ततो ऽर्धमापेदर्थं जाननेपदानां स्थापयेत् ॥ २३ ॥ अर्धमुप-
युञ्जीत ॥ २४ ॥ नवेन चानवं शोधयेत् ॥ २५ ॥

। रनेद्वयगैले लगाकर यही तक जितने पदार्थ बतलाये गये हैं, उन सबकी उपपत्तिमेंसे आधा, जन पदपर आधासे आनेके समयमें उपयोगमें लानेके लिये रखलेवे ॥ २३ ॥ और आधे सामानका भोजन आदिमें उपयोग करलेवे ॥ २४ ॥ जब नई फसलका नया सामान आवे, तो पुराने सामानको जगह नया भरलेवे, और पुराने सामानको उपयोगमें लेआवे ॥ २५ ॥

क्षुण्णघृष्टपिष्टभृष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च धान्यानां वृद्धि-
क्षयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत ॥ २६ ॥

बार २ बूटा हुआ, साफ किया हुआ, पीसा हुआ, भड़ आदिमें भूना हुआ, गीला, सुखाया हुआ, तथा पकाकर तैयार किया हुआ, जितना भी धान्य आदि सामान हो, उसके वृद्धि क्षय तथा वर्तमान प्रमाण (तोल आदि) को, कोष्टागाराभ्युक्ष स्वयं प्रत्यक्ष करे, अर्थात् सब चीजोंको अपने सन्मुख पुल धाकर उनके परिमाण आदिकी जांच करे ॥ २६ ॥

कोद्रवत्रीहीणामर्धं सारः ॥ २७ ॥ शालीनामर्धभागोनः
॥ २८ ॥ त्रिभागोनो वरकाणाम् ॥ २९ ॥ प्रियङ्गुनामर्धं सारः
नवभागवृद्धिश्च ॥ ३० ॥ उदारकस्तुल्यः ॥ ३१ ॥

कौड़ा और धानमेंसे आधा माल बचता है, आधा चोकर आदिका निकल जाता है ॥ २७ ॥ बकिया धानकाभी आधा हिस्सा सारभूत निकलता है, बाकी आधा ठिलके आदिमें चला जाता है ॥ २८ ॥ वरक अर्थात् लोभिया आदि भद्रका तीसरा हिस्सा चोकरका निकलता है, बाकी दो हिस्से अंशुली माल निकल आता है ॥ २९ ॥ कंगनाका आधा हिस्सा सारभूत निकल आता है । कभी २ नौवा हिस्सा इसका अधिक भाग होजाता है ॥ ३० ॥ उदारक (एक प्रकार का मोटा चावल) का कंगनाके समान ही सारभूत भाग निकलता है ॥ ३१ ॥

यवा गोधूमाश्च क्षुण्णाः ॥ ३२ ॥ तिला यवा मुद्गमापांश्च
घृष्टाः ॥ ३३ ॥ पञ्चभागवृद्धिर्गोधूमः सक्तवथ ॥ ३४ ॥ पादोना
कलायचमसी ॥ ३५ ॥

जौ शार गेहू भी फूटनेपर समान भाग ही सारभूत होजाते हैं । अर्धवत् इन्के फूटने आदिमें कोई विशेष धीजन नहीं होती ॥ ३२ ॥ तिल, जौ, घृत

उद्द दलनेपर बराबर ही रहते हैं ॥ ३३ ॥ गेहूं और भुनेहुए जौ, पीसने पांचवां हिस्सा बढ़ जाते हैं ॥ ३४ ॥ मटर पीसने पर चौथाई-हिस्सा कम जाता है ॥ ३५ ॥

मुद्गमापाणामर्धपादोनः ॥३६॥ शैम्बानामर्ध सारः ॥३७॥

भागोनः मसूराणाम् ॥ ३८ ॥

मूंग और उद्द पीसे जानेपर आठवां हिस्सा कम होजाते हैं ॥३६॥ शैब र की फली=युरती (अध्या सेम) का आधा हिस्सा सारभूत निकलता है । या चोकर निकल जाता है ॥३७॥ मसूरका तीसरा हिस्सा कम हो जाता है, तीसरे हिस्से ठीक माल निकलता है । दलने आदिके समय यह तीसरा भाग कम होता है ॥ ३८ ॥

पिष्टमामं कुल्मापाश्राध्यर्धगुणाः ॥ ३९ ॥ द्विगुणो यावकः

४० ॥ गुलाकः पिष्टं च मिद्धम् ॥ ४१ ॥

पिसे हुए कच्चे गेहूं तथा मूंग उद्द आदि पकाये जानेपर दबोड़े होते हैं ॥ ३९ ॥ कूट छड़कर पीसे हुए जौ, पकाये जानेपर दुगने होजाते हैं ४० ॥ आधे पकाये हुए चावल और सूजी आदि भी पकाये जानेपर दुगने जाते हैं ॥ ४१ ॥

कोद्रववरकोदारकप्रियङ्गुणां त्रिगुणमघ्नम् ॥ ४२ ॥ चतुर्गुणं

हीणाम् ॥ ४३ ॥ पञ्चगुणं शालीनाम् ॥ ४४ ॥

कोदों, चरक अर्थात् लोभिया आदि, उदारक और कांगनीका भात दि भन्न पकाया जानेपर त्रिगुना होजाता है ॥४२॥ मोही (विशेष चावल) गुने ॥४३॥ और शाली (यासमती आदि चावल) पांच गुने हो जाते हैं ॥४४॥

तिमितमपरात्रं द्विगुणमर्धाधिकं विरूढानाम् ॥४५॥ पञ्च-

गवृद्धिः भृष्टानाम् ॥ ४६ ॥ कलायो द्विगुणः ॥ ४७ ॥ लाजा

रुजाश्च ॥ ४८ ॥

काटनेके समयमें खेतसे जो गीलाही लिया गया हो, ऐसा अन्न; तथा घेही काटे हुए ग्रीही आदि दुगनेही बढ़ते हैं । यदि और कुछ अच्छी अव-
धमें काटे जायें, तो ढाई गुने बढ़ जाते हैं । (कित्ती २ श्यारयाकारने इसका भी अर्थ किया है;—गीले किये हुए चने आदि भन्न दुगने होजाते हैं, वे चने आदिको गीलाही काट दिया जाये, तो वे ढाई गुना बढ़ जाते हैं) ४५ ॥ यदि इनको भाड़ आदिमें भूना जाये, तो इनकी पांचवां हिस्सा वृद्धि

होजाती है ॥ ४६ ॥ सुना हुआ मटर दुगना होजाता है ॥ ४७ ॥ घानोंकी खील और मुने हुए जौ भी दुगने होजाते हैं ॥ ४८ ॥

पदकं तैलमतसीनाम् ॥ ४९ ॥ निम्बकुशाग्नक्रुपित्थादीनां पञ्च-
भागः ॥ ५० ॥ चतुर्भांगिकास्तिलकुसुम्भमधूकेद्भुदीस्नेहाः ॥ ५१ ॥

अलसीका तेल छटा हिस्सा तैयार होता है । अर्थात् जितनी अलसी हो, उसका छटा हिस्सा उसमेंसे तेल निकलता है ॥ ४९ ॥ नीम (निंबोरी), कुशा (घासकी जड़), आम (की गुठली), और कैथमेंसे पांचवा हिस्सा तेल निकलता है ॥ ५० ॥ तिल, कुसुम्भ (कसूम), महुआ, तथा इंगुदी (गोंदा = एक पेड़का नाम है) मेंसे चौथा हिस्सा तेल निकलता है ॥ ५१ ॥

कार्पासक्षीमाणां पञ्चपले पलसूत्रम् ॥ ५२ ॥ पञ्चद्रोणे
शालीनां च द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभोजनम् ॥ ५३ ॥

कपास तथा रेशममेंसे, पांच पलमेंसे एक पल सूत्र निकलता है । इस सूत्रमें ' क्षीम ' शब्दका अर्थ—' एक विदोष वृक्षकी छाल भी किया गया है ' । तात्पर्य यह है, कि कपास और क्षीम जितना हो, उसमें उसका पांचवा हिस्सा सूत्र तैयार होता है ॥ ५२ ॥ पांच द्रोण अर्थात् बीस आठक धानामें से, जब छड़ कूटकर, बारह अठक तण्डुल अर्थात् चावल रह जायें, तब यह हाथीके घच्चोंके खाने योग्य भन्न होता है ॥ ५३ ॥

एकादशकं व्यालानाम् ॥ ५४ ॥ दशकमौखाद्यानाम् ॥ ५५ ॥
नवकं साक्षाद्यानाम् ॥ ५६ ॥ अष्टकं पत्तीनाम् ॥ ५७ ॥ सप्तकं
मुख्यानाम् ॥ ५८ ॥ पदकं देवीकुमाराणाम् ॥ ५९ ॥ पञ्चकं
राज्ञाम् ॥ ६० ॥

जब, थोड़ा और साफ करके बीस आठकमेंसे ग्यारह आठक रह जायें, तो उसे दुष्ट हाथियों (मल हाथियों) के खानेके लिये उपयोग करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार दसवां हिस्सा रहनेपर उसे, राजाकी सवारीके हाथियोंके भोजनमें लगाना चाहिये ॥ ५५ ॥ और नौवां हिस्सा रहनेपर, युद्धमें काम आने वाले हाथियोंके भोजनमें उसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥ आठवां हिस्सा रहनेपर, पैदल सेनाओंके भोजनके लिये उसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५७ ॥ सातवां हिस्सा रहनेपर, उसे प्रधान सेनापतियोंके भोजनके लिये उपयुक्त करना चाहिये ॥ ५८ ॥ छटा हिस्सा रहनेपर, वह रानियों तथा राजकुमारोंके भोजनके काममें आता है ॥ ५९ ॥ तथा पांचवां हिस्सा रहनेपर, उसका राजाओंके लिये उपयोग करना चाहिये । इसप्रकार बीस आठकमेंसे, जब

साफ़ करते २ पांच आठक अर्थात् चौथाई दिस्सा रह जावे, तब यह राजाके लिये उपयोगमें लानेके योग्य होता है। ऊपर यताये हुए दिस्सोंमें भी इसी तरह समझना चाहिये ॥ ६० ॥

अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः ॥ ६१ ॥ चतुर्भागः
सूपः सूपपोडशो लवणस्यांशः चतुर्भागः सर्पिपत्तैलस्य वा
एकमर्त्यभक्तम् ॥ ६२ ॥

अथवा राजाके भोजनके लिये, और भी अधिक साफ़ करके, जब बीस आठकमेंसे एक प्रस्थ चायल रह जाय, तब उतरी उपयोग करना चाहिये। उन साफ़ किये हुए चायलोंमें एक भी दाना दूदा दुभा न होना चाहिये। साफ़ बिना दूदा एक २ दाना चुनकर बीस आठकमेंसे एक प्रस्थ भिकाल लेना चाहिये। (चार प्रस्थका एक आठक होता है, इसतरह बीस आठकके अस्सी प्रस्थ हुए, अस्सीमेंसे एक प्रस्थ चायल छानने चाहिये) ॥ ६१ ॥ प्रस्थका चौथा हिस्सा सूप (अर्थात् दाल ३ प्रस्थ होनी चाहिये), सूपका सोलहवां हिस्सा नमक, तथा सूपका ही चौथा हिस्सा ही अथवा तेल; मध्यमस्थितिसे एक पुरपका भोजन होता है। (राजाकी रसोईसे जिन परिचारक आदिको भक्षा दिया जाता है, उसका ही यह परिमाण यताया गया है) ॥ ६२ ॥

प्रस्थषट्भागः सूपः, अर्धस्नेहमवराणाम् ॥ ६३ ॥ पादोनं
स्त्रीणाम् ॥ ६४ ॥ अर्धं बालानाम् ॥ ६५ ॥

जो मध्यमस्थितिके परिचारक हों, उनके छिपू प्रस्थका छट्ठा हिस्सा दाल, और पहिलेसे आधा ही अथवा तेल होना चाहिये, शेष सामान पहिलेके बराबर ही होना चाहिये ॥ ६३ ॥ इसमें चौथाई हिस्सा कम भोजन क्रियोंके लिये होना चाहिये ॥ ६४ ॥ तथा आधा हिस्सा बालकोंके लिये होना चाहिये ॥ ६५ ॥

मांसपलविंशत्या लेहार्धकुडुबः पलिको लवणस्यांशः क्षार-
पलयोगो द्विधरणिकः कटुकयोगो दध्नार्धप्रस्थः ॥ ६६ ॥

मांसके पकानेमें, कौन २ सी चीज कितनी २ पकनी चाहिये, अब इसका निरूपण किया जाता है:—बीस पल मांसके साथ, आधी कुडुब चिकनाई (पी या सेल) डालना चाहिये; (चार कुडुबका एक प्रस्थ होता है, प्रस्थका आठवां हिस्सा आधा कुडुब हुआ); एक पल नमक डालना चाहिये, यदि नमक न हो तो एक पलही सजीराय या जरायरा आदि डाल देना चाहिये, पीपल, मिरच आदि मपाळा दो धरण डालना चाहिये; (अस्सी बंगी तरसोंका एक रूप्यमापक, और सोलह मापकका एक धरण होता है। सब परिमाणोंके जाननेके

लिये पौतचाप्यक्ष प्रकरण देखना चाहिये); और आधा प्रस्थ दो कुडुब, उतने मांसमें दही डालना चाहिये ॥ ६६ ॥

तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६७ ॥ शाकानामध्यर्धगुणः ॥ ६८ ॥
शुष्काणां द्विगुणः स चैव योगः ॥ ६९ ॥

इससे अधिक मांस पकाना हो, तो इसी हिसाबसे, सब चीजें उसमें, उचित मात्रामें डाल देनी चाहियें ॥ ६७ ॥ हरे शाक बनानेके लिये यही सब मसाला (जो मांसके लिये बताया गया है) खोदी मात्रामें डालना चाहिये । अर्थात् बीस पल हरे शाकमें देढ़ गुना उपर्युक्त मसाला डालना चाहिये ॥ ६८ ॥ सूखे शाक अथवा मांसमें बड़ा मसाला दुगना डाला जावे ॥ ६९ ॥

हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः ॥ ७० ॥ बली-
वर्दानां मापद्रोणं यवानां वा पुलाकः शेषमश्वविधानम् ॥ ७१ ॥

हाथी और घोड़ेके लिये, चावल आदिका प्रमाण, उनके अध्यक्षके प्रकरणमें, अर्थात् हस्त्यध्यक्ष तथा अश्वध्यक्ष प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ॥ ७० ॥ बैलोंके लिये एक द्रोण परिमाण उटद, तथा इतनेही, आधे उबले हुए जो जानने चाहिये, शेष सब घोड़ोंके समान ही समझना चाहिये ॥ ७१ ॥

विशेषो—घाणपिण्याकतुला कणकुण्डकं दशाढकं वा ॥ ७२ ॥

घोड़ोंकी अपेक्षा बैलोंके लिये जो विशेष है, वह भी प्रताते हैं:—सूखे हुए तिलोंके कलहके सौ पल, अथवा दूटे हुए चावलसे मिश्रित अनाजकी भूसी आदि, दस आढक होने चाहियें ॥ ७२ ॥

द्विगुणं महिपोप्राणाम् ॥ ७३ ॥ अर्धद्रोणं खरपृषतरोहिता-
नाम् ॥ ७४ ॥ आढकपेणकुरङ्गाणाम् ॥ ७५ ॥ अर्धाढकमजैल-
कवराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम् ॥ ७६ ॥

इससे दुगना सामान भैंसा और ऊँटके लिये होना चाहिये ॥ ७३ ॥ यही सब सामान, गड़हा और चीतल हिरणोंको, आधा द्रोण अर्थात् दो आढक देना चाहिये ॥ ७४ ॥ एण और कुरङ्ग जातिके हिरणोंको (एण और कुरङ्ग ये हिरणोंकी विशेष जातियाँ हैं), यही सामान एक आढक परिमाणमें देना चाहिये ॥ ७५ ॥ बकरी भेड़ तथा सूअरोंको आधा आढक देना चाहिये । चावल आदिकी कनकी और भूसी मिलाकर, इससे दुगनी अर्थात् पूरी एक आढक देनी चाहिये ॥ ७६ ॥

प्रस्थादनःशुनाम् ॥ ७७ ॥ हंसक्रीञ्चमयूराणामर्धप्रस्थः
॥ ७८ ॥ श्रेषाणामतो मृगपशुपक्षिव्यालानामेकभक्तादनुमानं
ग्राहयेत् ॥ ७९ ॥

कुत्तोंको एक प्रस्थ परिमित प्राणा देना चाहिये ॥ ७७ ॥ हंस 'क्रीञ्च'
और मोरोंको आधा प्रस्थ देना चाहिये ॥ ७८ ॥ इनसे अतिरिक्त जितने भी
जंगली या ग्राम्य पशु, पक्षी, तथा सिंह आदि हिंसक प्राणी हों, उन सबके
लिये; एक दिन खिलाकर, जितना वे खासकें, उसीके अनुसार अनुमानसे
प्राणके परिमाण आदिका निर्णय करा देवे ॥ ७९ ॥

अङ्गारांस्तुपांशोहकर्मन्तामिचित्तेष्वानां हारयेन् ॥ ८० ॥
काणिका दासकर्मकरसूपकाराणामतो ऽन्यदादनिकापूपिकेभ्यः
प्रयच्छेत् ॥ ८१ ॥

कौयले और चौकर या भूमीको, तुङ्गारों तथा मकान लीपने वाले पुरु-
षोंको देदेवे ॥ ८० ॥ धानल आदि भाजोंमेंसे छद् पट्टकर निकली हुई यारीक
कनकीको, दास (क्रीत सेवक), कर्मकर (अन्य गृह कार्य करने वाले सेवक),
तथा सूपकार (रसोईया) को देदेवे । वे उसको अपने खाने आदिके काममें
ले भावें । इससे अतिरिक्त और जो कुछ सचे, उसको साधारण भक्ष पकाने
वाले तथा पकानन आदि बनाने वाले परिचारकके लिये देदेवे ॥ ८१ ॥

तुलामानमाण्डं रोचनी दपन्मुमलोत्सलकुट्टकरोचकयन्त्र-
पक्षकशूपचालनिकाकण्डोलीपिटकमंमार्जन्यथापकरणानि ॥ ८२ ॥

पाकशालाके विशेष उपकरण (साधन=ता रसोईके कार्योंमें काम
आते हैं), निम्नलिखित हैं:—तुला (तराजू), मानभण्ड (बाट आदि; इनका
परिमाण पीतवाध्यक्ष प्रकरणमें बताया जायगा), रोचनी (दाल आदि दलने-
का चकला), दपत् (दाल या मसाला आदि पीतनेकी मिल), मूत्सल, और-
ली, कुट्टक यन्त्र (धान आदि घटनेका यन्त्र विशेष), रोचक यन्त्र (भाटा
आदि पीसनेका यन्त्र=चक्री, इसके तीन प्रकार हैं:—मनुष्यके द्वारा चलाई
जाने वाली, और बैलों तथा पानीमें चलाई जाने वाली, पहिलीको साधारण-
तथा, चक्री, और आगेकी दोनोंको घराट कहते हैं; पानीमें चलाई जाने वाली-
का नाम पनचक्री भी है); पयक (लकड़ीका बना हुआ; छिन्नका आदि
साफ करने वाला); शूर्प . सूप=छाज , चालनिका (चलनी=उलनी) कण्डोली
(धांसकी पतली लपट्टीमें बनी हुई छोटीसी टोकरा, जिसमें बाजारसे शाक

आदि लाया जासके), पिटक (पिटारी, ऐसी चीज रखनेके लिये, जिनमें हवा लगनी रहनी आवश्यक हो), और संभारिणी (झाड़ू=तुशरी) ॥ ८२ ॥

मार्जकरक्षकधरकमायककापकदायकदापकशलाकाप्रतिग्राहक-
दासकर्मकरवर्गश्च विष्टिः ॥ ८३ ॥

झाड़ू लगाने वाला, कोष्ठागारकी रक्षा करने वाला, सराजू आदि उठाकर तोलने वाला, तुलवाने वाला, इनका अधिष्ठाता, देने वाला, इसका अधिष्ठाता, बौद्ध आदिको उठाने वाला, दास (श्रूत दास), और कर्मकर, ये सब लोग विष्टि कहलाते हैं ॥ ८३ ॥

उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो मृता. क्षारस्य संहताः ।

मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च ॥ ८४ ॥

हरपथ्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे कोष्ठागाराभ्यक्ष पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥
आदित पदत्रिस. ॥ ३६ ॥

धान्य आदिको उँचे स्थानमें रखना चाहिये, जहाँ भूमिके साथ स्पर्श न होसके, क्षार अर्थात् गुड राख आदिके रखनेके लिये खूब घना फूस आदि लगाकर स्थान बनाना चाहिये, (अर्थात् ऐसा स्थान होना चाहिये, जहाँपर गुड राख आदिमें सील न पहुँच सके, चारों ओर फूस लगानेसे अच्छी गरमी बनी रहती है), स्नेह अर्थात् घृत तैल आदिके रखनेके लिये, मट्टीके (मृदबान आदि) या लकड़ीके पात्र आदि बनाने चाहियें। नमक आदिको पृथिवीपर ही रखदेना चाहिये। जिन पदार्थोंके रखनेका निर्देश नहीं किया गया है, कोष्ठागाराभ्यक्षको चाहिये, कि उनके रखनेका भी यथायोग्य प्रबन्ध करे ॥ ८४ ॥

अभ्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

सोलहवाँ अध्याय

३४ प्रकरण

पण्यध्यक्ष ।

{ विष्ठीके योग्य राजद्रव्यको 'पण्य' कहते हैं, उसके क्रय विक्रय के लिये जो पुरान नियुक्त किया जावे, उसका नाम 'पण्यध्यक्ष' है। इस प्रकरणमें राजकीय पण्यके क्रय विक्रय व्यवहारका निरूपण किया जायगा।

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथ-
चारिपथोपघातानां सारफल्वर्धान्तरं प्रियाप्रियतां च विधात् ॥
॥ १ ॥ तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान् ॥ २ ॥

पण्याध्यक्षको चाहिये कि वह स्थल और जलमें उत्पन्न होने वाले, स्थलमार्ग तथा जलमार्गसे आये हुए नाना प्रकारके पण्योंके सार तथा फल्यु मूल्यके तारतम्य को, और उनकी लोकप्रियता तथा अप्रियताको अच्छी तरह जाने । (सार और फल्युसे तात्पर्य-बहुमूल्य और अल्पमूल्य वस्तुओंसे है, उन के मूल्यकी न्यूनताधिकताके क्रमको अवश्य जाने । जिस पदार्थका विक्रय अति शीघ्र होजाये, वह लोकप्रिय, और दूसरा अप्रिय समझना चाहिये) ॥ १ ॥ इसी तरह पण्याध्यक्षको यहभी आवश्यक है, कि वह विक्षेप (संक्षिप्त द्रव्यका विस्तार), संक्षेप (विस्तृत द्रव्यका संक्षेप), क्रय (पण्यका संग्रह=उपरीदना) और विक्रय (संगृहीत पण्यका व्यय करदेना=अर्थात् बेचदेना) के उचित प्रयोग कालको अच्छी तरह पहिचाने ॥ २ ॥

यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकीकृत्यार्धमारोपयेत् ॥ ३ ॥ प्राप्ते
ध्वे वार्धान्तरं कारयेत् ॥ ४ ॥

जो केसर आदि पण्य अधिक मात्रामें हो, उस सभको इकट्ठा करके अधिक मूल्यपर चढ़ा देवे ॥ ३ ॥ जब उसका उचित मूल्य प्राप्त होजाये, तो फिर उसे हलके दामोंमें ही बेचदेवे ॥ ४ ॥

स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत् ॥५॥
परभूमिजानामनेकमुखम् ॥ ६ ॥

अपनी भूमिमें उत्पन्न हुए राजपण्योंके विक्रय आदि व्यवहारकी स्थापना, राजा एक ही नियत स्थानसे करावे । तात्पर्य यह है कि जो पण्य अपने ही देशमें उत्पन्न हो, उसका किसी एक व्यक्तिको ठेका आदि देदेवे, और उसी के द्वारा उसका विक्रय करावे ॥ ५ ॥ जो दूसरे देशमें उत्पन्न हुआ पण्य हो उसका अनेक स्थानोंसे विक्रय करावे ॥ ६ ॥

उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् ॥ ७ ॥ स्थूलमपि च
लाभं प्रजानामौपघातिकं वाटयेत् ॥ ८ ॥

अपने देश तथा परदेशमें उत्पन्न हुए २ धोनों प्रकार के पण्यों का विक्रय आदि, राजा को इस प्रकार करना चाहिये, जिससे कि प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचे ॥ ७ ॥ यदि किसी कार्यमें बहुत अधिक भी लाभ

होता है, परन्तु उस कार्यके कानसे प्रजाको कष्ट पहुंचता हो, तो राजा उस कार्य को तरक्षण रोक देवे ॥ ८ ॥

अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत् ॥९॥

जल्दी ही बिक जाने योग्य, शाक तथा दूध आदि पण्योका अधिक समय तक रोके रहना तथा शाक आदि बेचने का पहिले किन्हीं स्थितियोंको देका देकर, उनका माल न बिकनेपर ही दूसरोंको, लोभके कारण देका देनेना, यह सर्वथा अनुचित है ॥ ९ ॥

बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्थं विक्रीणीरन् ॥१०॥

भेदानुरूपं च वैधरणं दणुः ॥ ११ ॥

बहुत स्थानोंमें, अर्थात् बहुतसे स्थानियोंके द्वारा बेचे जाने वाले राजपण्यको, व्यापारी लोग मूल्य निश्चय करके बेचें, अर्थात् नियत मूल्यपर बेचें ॥ १० ॥ यदि विक्रय होनेपर मूल्यमें कुछ कमी होजावे, तो उसके अनुसारही व्यापारी लोग उस सारी कमीको पूरा करें । (इस प्रति करनेका नाम 'वैधरण' है) ॥ ११ ॥

षोडशभागो मानव्याजी ॥ १२ ॥ विंशतिभागस्तुलामानम्

॥ १३ ॥ गण्यपण्यानामेकादशभागः ॥ १४ ॥

व्यापारियोंसे कितना २ राजकीय अंश लेना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है — कितना द्रव्य व्यापारियोंके यहां मांगा जावे, उसका सोलहवा हिस्सा राजाको देना चाहिये; इसका नाम व्याजी या मानव्याजी होता है । ॥ १२ ॥ जो द्रव्य तोला जावे, उसका बीसवां हिस्सा राजाको देना चाहिये ॥ १३ ॥ जो पण्य द्रव्य गिने जावें, उनका ग्यारहवा हिस्सा राजाके लिए देना चाहिये ॥ १४ ॥

परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत् ॥ १५ ॥ नाविकसार्थवा-

हेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात् ॥ १६ ॥ अनभियोगश्चार्थेष्व-

गन्तूनामन्यत्र सभ्योपकारिभ्यः ॥ १७ ॥

परदेश में उत्पन्न हुए २ पण्यको, अन्तपाल तथा आठविक आदिके उपद्रवोंसे बचाकर, और व्याजी आदि छोड़ देनेका, वादाकरके मंगवाये ॥ १५ ॥ नाव तथा जहाज आदिके द्वारा माल लाने लेंजने वाले व्यापारियोंसे भी राजा, अपना आदेश अंश न लेवे, अर्थात् उन्हें कुछ दैस माफ करदेवे । और भविष्यत् में भी किसी प्रकारकी बाधा न पहुंचानेका वचन देदेवे ॥ १६ ॥ विदेशसे आने वाले व्यापारियों पर, उत्तमणं का भोरसे धर्म अर्थात् न्यून

सबन्धी अभियोग नहीं चलाया जाना चाहिये । अर्थात् राजा उनके सम्बन्ध में बिना ही अभियोगके फ़ौज आदि देनेकी व्यवस्था करदेवे । परन्तु जो पुरुष विदेशी व्यापारी' का उपकार करने वाले, अर्थात् कार्यमें सहयोग देने वाले तथा अन्य कर्मचारी पुरुष हों, उनका परस्पर अभियोग अवश्य हो सकता है ॥ १७ ॥

पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठद्रोण्यामेकच्छिद्रापि-
धानायां निदध्युः ॥ १८ ॥ अह्वथाष्टमे भागे पण्याध्यक्षस्यार्थ-
येयुः, इदं विक्रीतमिदं शेषमिति ॥ १९ ॥ तुलामानभाण्डकं
चार्पयेयुः ॥ २० ॥ इति स्वविषये ज्याख्यातम् ॥ २१ ॥

सरकारी माल को बेचने वाले पुरुष, बिके हुए मालकी, एकदूरी हुई २ कीमत को, एक छेद वाली लकड़ी की बन्द सन्दूकमें डालदेवे ॥ १८ ॥ और दिनके आठवें भागमें, (अर्थात् साय कालके समय, जब कि क्रय और विक्रय आदि का दैनिक व्यवहार बन्द किया जाता हो) 'इतना बेच दिया है और इतना शेष रहा है' ऐसा कहकर वह सब धन और माल पण्याध्यक्ष के सुपुर्दे करदेवे ॥ १९ ॥ तराजू तथा घाट आदि आवश्यक उपकरणों को भी उसी तरह पण्याध्यक्षके सुपुर्दे करदेवे ॥ २० ॥ यहांतक अपने देशमें, पण्य द्रव्योंके बेचने आदिकी विधिका विवरण किया गया ॥ २१ ॥

परविषये तु पण्यप्रतिपण्ययोरर्घमूल्यं चागमय्य शुल्कवर्त-
न्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत् ॥२२॥

अब परदेशमें किस तरह व्यापार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:—अपने देशके तथा परदेशके पण्य द्रव्योंके न्यून अधिक तथा समान मूल्यको और उनके पैक आदि करानेकी कीमत को अच्छी तरह जान-कर, और शुल्क (शुल्काध्यक्ष प्रकरणमें कहे हुए टैक्स आदि), वत्सनीदेय (अन्तपालने दिया जाने वाला), आतिवाहिकदेय (मार्गमें सहायता करने वाली पुलिस का देय अंश), गुल्मदेय (जंगलके रक्षकका देय अंश), तरदेय (नदी आदि पारकराने वाले नाविकका देय अंश), भक्त (भोजनका व्यय) तथा भाटक (भाड़ा) आदि इन सब तरहके खर्चों को निकालकर शुद्ध आम-दानी देखे । तत्पर्यं यह है कि सब तरहके व्ययको निकालकर फिर जो कुल पचता हो, उसपर विचार करे कि इतनी आयपर हम अपने मालको विदेश में लेजाकर, वहांके मालके मुकाबलेमें बेच सकते हैं, या नहीं ॥ २२ ॥

असत्पुदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत् ॥ २३ ॥ ततः सारपादेन स्थलव्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥

यदि इसमें कुछ लाभ न दीखता हो, तो अपने मालको विदेशमें भी लेजाकर मविष्यमें लाभकी प्रतीक्षा करते हुए, उसीके अनुसार विक्रयके द्वारा अपने लाभका विचार करे, अथवा अपने मालसे वहाँ के लोकप्रिय मालको बदलकर फिर अपने लाभको देखे ॥ २३ ॥ तदनन्तर विचारे हुए लाभका चौथा हिस्सा स्वयं करके, उपद्रव रहित स्थलमार्गसे भी कुछ व्यापार करना आरम्भ करदे ॥ २४ ॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेदनुग्रहार्थम् ॥ २५ ॥ आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत् ॥ २६ ॥

अटवीपाल (जगलका रक्षक), अन्तपाल (सोमारक्षक), नगर के मुख्य पुरुष और राष्ट्रके भी मुख्य २ पुरुषोंके साथ सगत करे, अर्थात् उनसे अच्छी तरह अपनी जान पहचान बढ़ावे, जिससे कि वे अपनेसे अनुकूल रहकर अपने व्यापारमें लाभ पहुंचा सकें ॥ २५ ॥ यदि मार्गमें अथवा रहने के स्थानमें ही कोई चोर आदि का उपद्रव होजावे तो सबसे प्रथम सार अर्थात् रथ आदि द्रव्यों को और अपने शरीर को छुड़ावे, अर्थात् इनकी रक्षा करे, यदि दोनों की रक्षा सम्भव न हो, तो रथ आदिका भी परित्याग कर अपने भापको ही बचावे ॥ २६ ॥

आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत् ॥ २७ ॥

परदेशमें व्यापार करता हुआ पुरुष जब तक अपने देशमें न लौट आवे, तब तक (अर्थात् जितनी देर परदेशमें व्यापार करता रहे उस समयमें) वहाँके राजाके जितने भी देयभण्ड हों (सरकारी टैक्स हों), उन सबको नियम पूर्वक भद्रा करता हुआ ही अपने व्यापारको चलावे; क्योंकि कहीं ऐसा न होजाय, कि थोड़ासा टैक्स न देनेके लोभमें अपना सर्वनाश होजाय ॥ २७ ॥

वारिपथे च यान्भाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्घप्रमाणयात्रा-कालमयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत ॥ २८ ॥

जलमार्गसे व्यापार करने वाले व्यापारीको, यानभाटक (नाव तथा जहाज आदिके भाड़े), पथ्यदन (मार्गमें खाने पीने का स्वयं), पण्य और प्रतिपण्यके मूल्यका प्रमाण (अर्थात् अपना, विक्रय द्रव्य और पराये विक्रय द्रव्यके मूल्यकी स्पृताधिकता-संसारतस्य), यात्राकाल (कौनसी जगह आदिमें

यात्रा करना ठीक रहेगा, भयवा किंतने दिन में यात्रा समाप्त हो सकेगी, यह बात), भयप्रतीकार (मार्गमें होने वाले घोर आदिके भयका प्रतीकार) और जिस दूसरे देशके नगरमें जाकर अपने बिक्रम माल को बेचना है, यहांके आचार व्यवहार, इत्यादि सब ही बातोंके सम्बन्धमें अच्छी तरह विचार करना चाहिये। सब बातों को अनुकूल समझ कर ही ऐसा व्यवहार करे ॥ २८ ॥

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चरित्रतः ।

यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

हरव्यवक्षमचारे द्वितीये अधिकरणे पण्याध्यक्षः षोडशो अध्याय ॥ १६ ॥

आदितः सप्तत्रित ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार न केवल समुद्रमार्गमें ही, किन्तु नदीमार्गमें भी, उन २ देशोंके चरित्र अर्थात् आचार और वनिज व्यापारको अच्छी तरह जानकर ही जिस मार्गसे लाभ हो, उसीका अनुसरण करे, थोड़ेसे लाभ या अलाभ का, तथा जिसमें प्रवास आदि का महान क्लेश हो, ऐसे मार्ग को सर्वथा छोड़देवे ॥ २९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त ।

सत्रहवां अध्याय ।

३० प्रकरण ।

कुप्याध्यक्ष ।

{ चन्दन आदिकी थडिया लकड़ी, बांस तथा छाल आदि सब 'कुप्य' कहलते हैं । इन पदार्थोंपर जो राजकीय अधिकारी पुरुष नियुक्त किया गया हो उसका नाम 'कुप्याध्यक्ष' है । इस प्रकरणमें उसकेही कार्योंका निरूपण किया जायगा ।

कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत् ॥ १ ॥ द्रव्य-
वनकर्मान्तांश्च प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्रव्यवनच्छिर्दा च देयमत्ययं
च स्थापयेदन्यत्रापद्भ्यः ॥ ३ ॥

कुप्याध्यक्षको चाहिये कि वह, भिन्न २ स्थानोंके वृक्षों तथा जंगलोंकी रक्षा करने वाले पुरुषोंके द्वारा कुप्य अर्थात् यदिया लकड़ी मंगवावे ॥ १ ॥ और लकड़ामें बनने वाले अन्य कार्योंको भी करवावे । अर्थात् लकड़ीसे जो

और चीजें बनाई जाती हैं उनको भी घनंवाये ॥ २ ॥ जो पुरण, जंगल या वृक्ष आदिको काटने वाले हों, अर्थात् यही कार्य करके अपनी आजीविका करने वाले हों, उनको वृक्ष आदि काटनेके लिये जो कुछ वेतन देना हो, यह पहिले हीसे नियत करलेना चाहिये; और आज्ञासे अन्यथा कार्य करनेपर दण्ड आदि भी नियत करदेना चाहिये । परन्तु यदि किसी आपत्तिके कारण, कार्य अन्यथा होगया हो, तो दण्ड न देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुप्यवर्गः—शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालाशिशपारिमेदराजादनशिरीषखादिरसरलतालसर्जाश्वकर्णसोमवलककशात्रप्रियकधवादिः सारदारवर्गः ॥ ४ ॥

अब इसके आगे कुप्य वर्गका निरूपण किया जाता है; कुप्य वर्गमें अनेक भावान्तर भेद हैं; उनमें सबसे प्रथम सारदारवर्ग (सबसे बढ़िया लकड़ी कौन कौनसी है, इस बात) को यताते हैं:—शाक (सामूत), तिनिश (तुन=तिवस=तैदुभा), धन्वन (पापलका वृक्ष), अर्जुन, (यह वृक्ष इसी नामसे प्रसिद्ध है), मधूक (महुआ), तिलक (फरास, इसको तालमखाना भी कहते हैं; यह वृक्ष झाडके दङ्गका होता है, पर उससे काफी बड़ा होता है), साल (यह वृक्ष इसी नामसे प्रसिद्ध है), शिशपा (शीशम=ठाली), अरिमेद (एक प्रकारके खैर वृक्षका नाम है, इसमेंसे कुछ २ दुर्गन्ध आती है), राजादन (खिरसी), शिरीष (सिरस), खादिर (खैर), सरल (एक प्रकार देवदार; सम्भवतः यह सीधा जाने वाले यूरोपियसका नाम हो), ताल (ताड़), सर्ज (पीले रङ्गका साल), अश्वकर्ण (यह भी साल वृक्षकाही एक भेद है, सम्भवतः यह बड़ा सरु हो), सोमवलक (सफेद खैर), कदा (कीकर=बयूर), भाम, प्रियक (फदंब), धव (गूलर); इन सबकी लकड़ी बहुत बढ़िया मजबूत होती है । आदि शब्दसे, अन्य इमली आदि सबही मजबूत लकड़ी वाले वृक्षोंका ग्रहण करलेना चाहिये । यह सब सारदारवर्ग है ॥ ४ ॥

उटजचिमियचापवेणुवंशसातीनकण्टकभाल्लककादिवेणुवर्गः ॥ ५ ॥ वेत्रशीकवल्लीवाशीश्यामलतानागलतादिर्वल्लीवर्गः ॥ ६ ॥

उटज (जो बहुत खोखला हो, और जिसकी गांठोंपर काँटे हों), चिमिय (ठोस तथा मुलायम छाल वाला), चाप (घोड़ासा पीला और ऊपरसे बहुत खरखराम्मा), वेणु (चिकना, यजुष यताने योग्य), वंश (लम्बी पोरियों वाला), सातीन, कण्टक (ये भी बाँसोंके भेद हैं), भाल्लक (बहुत मोटा और लम्बा तथा काँटोंसे रहित); इत्यादि ये सब बाँसोंके भेद हैं ॥ ५ ॥ वेत्र (घेंत), शीकवल्ली (बंस वल्ली=एक प्रकारकी लता), वाशी (अर्जुनके

फूलोंके समान फूल वाली एक लता), इषामलता (काली निसोत अथवा सरभार्द), नागलता (नागवल्ली=नागर पानकी बेल); आदि ये सब कृता-
ओंके भेद हैं ॥ ६ ॥

मालतीमूर्वाकेशुणगवेधुकातस्यादिवल्कवर्गः ॥ ७ ॥

मालती (चमेली), मूर्वा (मरोर फली), अर्क (आल=आक), शण (सन), गवेधुका (नागवला), भतसी (अलसी), आदि यह बदरुपर्य
हैं । अर्थात् इनकी छाल काममें आती है ॥ ७ ॥

मुञ्जवल्जजादि रज्जुभाण्डम् ॥८॥ तालीतालभूर्जानां पत्रम्
॥ ९ ॥ किंशुककुसुम्भकुङ्कुमानां पुष्पम् ॥ १० ॥

मुञ्ज (मूँज), वल्ज (लना=एक प्रकारकी घास), ये रज्जु अर्थात्
रहसी बनानेके साधन हैं ॥ ८ ॥ ताली (ताड़का एक भेद), ताल (ताड़),
भूर्ज (भोजपत्र), इनका पत्रा कागज आदि की तरह लिखने के काम में
आता है ॥ ९ ॥ किंशुक (टाक), कुसुम्भ (कसूम), कुङ्कुम (केसर), ये
सब पत्रादिके रंगनेके साधन हैं ॥ १० ॥

कन्दमूलफलादिरौपधवर्गः ॥ ११ ॥

कन्द (बिदारी सुरण आदि), मूल (जड़=पस आदि), फल (सांघला,
हरितकी आदि), ये सब औषधिवर्ग हैं ॥ ११ ॥

कालकूटवरुनामहालाहलमेपशृङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेष्टितक-
गौरार्द्रवालकमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकांकोलसारकोष्पृकादी-
नि विपाणि ॥ १२ ॥

कालकूट, वरुनाम, हालाहल, मेषशृङ्ग, मुस्ता (मोथे की तरह आकार
वाला), कुष्ठ (कूटके समान), महाविष, वेष्टितक (मूलसे पैदा हुआ, काला
और लाल रंगका), गौरार्द्र (कन्दसे पैदा हुआ, फाले रंगका), बाउक
(पीपलके आकारका), मार्कट (कन्दके समान रंगका), हैमवत (हिमालय
में उत्पन्न हुआ २) कालिङ्गक (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न हुआ २, जौ की आकृति
के समान), दारदक (दरदसे उत्पन्न होने वाला पत्रविष), अद्रोअसारक
(अद्रोअ वृक्षमें उत्पन्न हुआ २), उष्टक (कूटके भेदके समान आकार वाला)
इत्यादि ये सब विष होते हैं ॥ १२ ॥

सर्पाः कीटाश्च त एव कुम्भमता विषवर्गः ॥ १३ ॥

सर्प (साँप), कीट (घारी वाले मेंढक, छपकी आदि) आदि
जड़ औषधिवर्गिक प्रकरणमें बताई हुई विधिके अनुसार ही सीसे आदि के

घेहमें बन्द करके सरकृत किये जायें, तो विप होजाते हैं। यह विपवर्ग है
॥ १३ ॥

गोघासेरकद्वीपिशिशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरसृमरखड्ग-
गमोमृगगवयानां चर्मास्थिपित्तस्नायुस्थिदन्तभृङ्गखुरपुच्छान्यन्ये-
षां वापि मृगपशुपक्षिव्यालानाम् ॥ १४ ॥

गोह, सेरक (चन्दन गाह, सफेद खालकी गोह का नाम है, जो प्राय
स्थलमें रहती है), द्वीपी (चघेरा), शिशुमार (एक प्रकारकी बड़ी मछली),
सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, चमर (चबरी गाय), सृमर (जगली पशु जगति),
खड्ग (गेडा), गाय, हरिण और नौलगाय, इनकी खाल हड्डी पित्त स्नायु
(जिससे तात बनती है, स्नायु शब्दके आगे फिर दुषारा अस्थि शब्द आगया
है। यहाँपर इस शब्दका पाठ अनावश्यक होनेसे सदिग्ध है), दांत, सींग,
खुर, पूछ, आदि चीजें काममें आती हैं, अर्थात् गोह आदि पशुओं की खाल
आदि चीजोंको कुप्यके अन्तर्गत होनेसे अवश्य समृद्धीत करे। इनके अतिरिक्त
भीर भी जो मृग, पशु पक्षी तथा जगली हिंसक जानवर हों उनके चर्म आदि
का भी सम्राह करे ॥ १४ ॥

कालायसताम्रवृत्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि
॥ १५ ॥

कालायस (काला लोहा), ताम्रवृत्त (तांबा), कांस्य (कांसा),
सीस (सीसा), त्रपु (रांग), वैकृन्तक (एक प्रकार का लोहा), आरकूट
(पौतल), ये सब लोहेके ही भेद कहते हैं। ये सभी आकरकर्मान्त
प्रकरणमें कहे जाकर भी, यहीं कुप्यमें गणना करनेके लिये फिर कहे गये हैं ॥ १५ ॥

निदलमृत्तिकामयं भाण्डम् ॥ १६ ॥

भाण्ड अर्थात् पात्र दो प्रकारके होते हैं, एक निदलमय, दूसरे मृत्ति
कामय। जो घांसकी खपच या इसी प्रकारकी दूसरी घांसकी लकड़ियों से ही
बनाये जायें, वे पिठारी टोकरि आदि पाहिले, और मिट्टीसे बनाये जाने वाले
घड़े शकरे आदि दूसरे होते हैं। ये भी सम्राह होते हैं ॥ १६ ॥

अङ्गारतुपभसानि मृगपशुपक्षिव्यालनाटाः काष्ठमृगवाटाथेति
॥ १७ ॥

कोयले और राख आदि, मृग पशु पक्षी तथा अन्य हिंसक जगली
जानवरोंके समृद्ध, तथा एकडी और घास फूसके ढेरोंका भी कुप्य होनेके कारण
सम्राह करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १७ ॥

बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डिकाः ।

आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना ॥ १८ ॥

इत्यभ्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे कुप्याप्यक्षः समदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

आदितोऽष्टमिनाः ॥ ३८ ॥

बाहर जंगलोंके समीप तथा जनपदमें, और अन्दर दुर्ग आदिमें, पृथक् २ गाड़ी तथा एकड़ी आदिसे बनी हुई अन्य चीजें या सवारियां; सब तरहके भाण्ड (पात्र) आदिके समूह, इत्यादि सब ही आवश्यक पदार्थों का और अपनी आजीविका, तथा नगर आदिकी रक्षाके लिये अन्य आवश्यक पदार्थोंका भी; कुप्योपजीवी (कुप्यसे अपनी आजीविका करने वाले कुप्याप्यक्ष-आदि) पुरुष अच्छी तरह संभ्रम करें ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सप्तदश्यां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय

३६ प्रकरण

आयुधागाराध्यक्ष ।

आयुधागाराध्यक्षः सांग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुरामिघातिकं
चक्रयन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृत-
कर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत् ॥ १ ॥

आयुधागाराध्यक्ष, संग्राममें काम आनेवाले, दुर्ग की रक्षा के काममें आनेवाले, तथा शत्रुके नगरका विध्वंस करनेमें काम आनेवाले, सर्वतौमद्र- (मशीनगन), जामदग्नय आदि यन्त्रोंका; (किसी २ पुस्तकमें 'यन्त्रम्' के स्थानपर 'चक्रयन्त्रम्' पाठ है), शक्ति चाप आदि अन्य हथियारोंका, तथा आवरण कवच आदि और सवारी आदि अन्य साधनोंका; उन २ कार्योंको जाननेवाले कारु (मोटा काम करनेवाले कारीगर) और शिल्पी (शरीर काम करनेवाले कारीगर) पुरपोंके द्वारा निर्माण करावे । उन कारीगरोंसे प्रतिदिन कितना काम कराना चाहिये, अर्थात् यन्त्र आयुध आदि कितने तैयार कराने चाहियें, और कितने समय काम कराना चाहिये (अर्थात् कार्य करनेका समय कितना होना चाहिये); तथा उनका वेतन आदि, कितना होना चाहिये, इन सब बातोंका पहिलेहीसे निश्चय क.के फिर उन (कारीगरों) से काम कराना चाहिये ॥ १ ॥

स्वभूमिषु च स्थापयेत् ॥ २ ॥ स्थानपरिवर्तनमातपश्रवात्-
प्रदानं च बहुशः कुर्यात् ॥ ३ ॥ :

जो सामान बनकर तैयार होताजावे, उसको उसके अपने स्थानमें रखवा दियाजावे। अथवा, उस सबको अपनेही आधीन स्थानोंमें सुरक्षित रखवाया जावे ॥२॥ तथा अभ्यक्ष उनका स्थान परिवर्तन करवाता रहे, जिससे कि वे एकही स्थानमें रखे २ खास न होजायें, और बार २ उनको धूप तथा हवा देनेकामी पूरा प्रबन्ध रक्खा जावे ॥ ३ ॥

ऊष्मोपलेहक्रिमिभिरुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत् ॥ ४ ॥
जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यनिक्षेपैश्चोपलभेत ॥ ५ ॥

जो हथियार आदि गरमी, नमी, तथा कीड़े (घुन) आदिके कारण खराब होरहे हों, उन्हें घड़ासे उठवाकर इसप्रकार रखवावे, जिससे कि वे फिर खराब न होसकें ॥ ४ ॥ उनकी जाति (स्वभाव), उनका रूप (सीधा या टेढ़ा आदि), लक्षण (गाछोंमें कड़ेहुए उत्तम मध्यम आदि चिन्ह), प्रमाण (लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि), आगम (जहासे उसकी प्राप्ति हुई है), मूल्य, तथा निक्षेप आदिके सम्बन्धमें अच्छे अच्छीतरह ज्ञान प्राप्त करे ॥५॥

सर्वतोभद्रजामदम्व्यबहुमुखविश्वासघातिसह्यादीयानकपर्जन्य-
कार्धवाहूर्ध्वबाहूर्ध्वबाहूनि स्थितयन्त्राणि ॥ ६ ॥

अब यन्त्रोंके विषयमें निरूपण किया जाता है:—सर्वतोभद्र (वह यन्त्र होता है जो एक जगह रक्खा हुआ, चारों ओरको गोली फेंक करे), जामदम्व्य (जिसके बीचमें एक छेदमेंसे ही बहुत बड़े गोले निकलें), बहुमुख (किले की ऊंची दीवारोंपर बनाये हुए उस स्थान विशेष का नाम है, जिसमें बैठकर अनेक योद्धा पुरुष चारों ओरको घाणवृष्टि करसकें), विश्वासघाती (भगारके बाहर तिरछा बना हुआ यन्त्रविशेष, जो कि स्पर्श करनेपर मार डाले, इसका यह अन्वर्थनाम इसी लिये है, किजो पहलेसे कुछ न मालूम पड़े, और स्पर्श करनेपर प्राणघात करदेवे), सह्यष्टि (लम्बे २ पाँसोंसे बनाये हुए, ऊँचे अष्टाक्षक आदि दो प्रदीप्त करनेके लिये अग्नियन्त्रविशेष), यानक (पहियोंके ऊपर रखता जने वाला लम्बासा यन्त्र, जो बीचमें से कुछ चौड़ा हो, अथवा रथ आदि सवारीपर रखकर जो चलाया जावे), पर्जन्यक (अग्नि को शान्त करनेके लिये काममें आने वाला, घरणास्त्र), बाहुयन्त्र (पर्जन्यक के समान ही उससे आधा छोटा यन्त्र), ऊर्ध्वबाहु (ऊपर बना हुआ पर्जन्यकके बराबर बड़ाभारी स्तम्भ, जो समीप आने वाला को मारदेवे), अर्धबाहु (ऊर्ध्वबाहुसे आधे परिमाण वाला), यह द्वा प्रकारके यन्त्र, स्थितयंत्र कहलते हैं ॥६॥

पञ्चालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालवृन्तमुद्गर-
रगदास्पृक्तलाकुट्टालास्फोटिमोद्गाटिमोत्पाटिमशतघ्नीत्रिशूलचक्राणि
चलयन्त्राणि ॥ ७ ॥

पञ्चालिक (तीक्ष्ण मुख वाला बढिया लकड़ी का बना हुआ, जो पर-
कोटेके बाहर जलके बीचमें शत्रुको रोकनेके लिये काममें लाया जाता है),
देवदण्ड (कील रहित बड़ा भारी स्तम्भ, जो कि किलेके परकोटेके ऊपर
रक्खा जाता है), सूकरिका (सूत और चमड़ेकी बनी हुई एक बहुत बड़ी
मशकसी, जो कि बाहरसे आनेवाले बाण आदिको रोकनेके लिये गोपुर
या भट्टालक आदिपर टकदी जाती है; किसी २ ने इसका अर्थ किया है—घांससे
बनी हुई तथा चमड़ेसे ढकी हुई सूकरके समान भाकारवाली बहुत बड़ी मशकसी,
जो कि दुर्गकी रक्षामें काम आती है), मुसलयष्टि (खैरका बना हुआ, मुसल
के समान मजबूत टडा जिसके आगे एक शूल हो), हस्तिवारक (दो मुख
या तीन मुखवाला बड़ा अर्थात् द्विशूल या त्रिशूल, किसी २ ने इसका अर्थ
'हाथीको मारनेके लिये एक खास तरह का बड़ा' यह किया है), तालवृन्त
(चारों ओरको घूमनेवाला यन्त्र विशेष), मुद्गर, द्रुघण (मुद्गरके समानही
एक अन्न विशेष), गदा, स्पृक्तला (काटेवाली गदा), कुट्टाल (कसी=पायड़ा)
आस्फोटिम (चमड़ेसे ढका हुआ, चार कोनोंवाला, महीके डेले या पत्थर आदि
फेंकनेका यन्त्र), उद्गाटिम (मुद्गरके समान आकृतिवालाही एक यन्त्र विशेष),
उत्पाटिम (खम्भे आदिको उखाड़नेवाला इयेन यन्त्र), शतघ्नी (मोटी और
लम्बी २ फीलोंसे युक्त, बहुत बड़ा स्तम्भसा, जो कि किलेकी दीवारके ऊपर
रक्खा जाता है), त्रिशूल और चक्र, ये सब यन्त्र चलयन्त्र कहेजाते हैं ॥७॥

शक्तिप्रासकुन्तहाटकमिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणयक-
र्षणत्रासिकादीनि च हलमुसानि ॥ ८ ॥

शक्ति (सम्पूर्ण लोहेका बना हुआ, कनेरके पत्तेके समान मुखवाला),
प्रास (चौबीस अंगुल लम्बा दुधारा, सम्पूर्ण लोहेका बना हुआ तथा जिसके
बीचमें लकड़ी लगी हुई हो), कुन्त (सात हाथका उत्तम छ हाथका मध्यम
तथा पाँच हाथका निकृष्ट कुन्त होता है), हाटक (कुन्तके समान तीन फाँटोंवाला
हथियार), मिण्डिपाल (मोटे फलेवाले कुन्तकाही यह नाम है), शूल
(तीक्ष्ण एक मुखवाला, इसका प्रमाण नियत नहीं है), तोमर (चार हाथका
अधम, साढ़े चार हाथका मध्यम और पाँच हाथका उत्तम होता है, इसका
अगला हिस्सा बाणके समान तीक्ष्ण होता है)। वराहकर्ण (सूअरके कानके
समान मुखाकृति वाले प्रासकाही नाम है), कणय (सम्पूर्ण लोहेका बना

हुआ, दोनों भारतसे तीन २ काँटोंसे युक्त, बीचमें मूठवाला, 'यहो'बीस अंगुल
का मध्यम, 'बाईस' अंगुल का मध्यम भार चौबीस अंगुलका उत्तम होता है),
कर्पण (सामरके समान, हाथसे फेंकेजाने वाला एक बाण विशेष), ग्रासिका
(सम्पूर्ण लोहेसे बनीहुई प्रासके बराबर होती है), इत्यादि ये सब हथियार
हलमुत्त कहाते हैं, क्योंकि इनका अग्रभाग लव तीक्ष्ण होता है । लगभग ये
सब, माछोंकेही भेद हैं ॥ ८ ॥

तालचापदारवशाङ्गाणि कार्मुककोदण्डद्रूणा धनुषि ॥ ९ ॥

मूर्वाकेशणमवेधुनेणुस्नायूनि ज्याः ॥ १० ॥

ताल (ताडका बनाहुआ), चाप (विशेष प्रकारके बाँसका बना
हुआ), दारव (किसी मजबूत लकड़ीका बनाहुआ), और शाङ्ग सींगोंका
बनाहुआ), ये चार प्रकृतियोंसे धनुष बनाये जाते हैं । आकृति तथा क्रिया
भेदसे इनके पृथक् पृथक् नाम कार्मुक कोदण्ड और द्रूण ह ॥ ९ ॥ मूर्वा,
आल, सन, मवेधुका, वेणु (बाँस जो केतकीके समान होता है, इसका
फूलकर जो इसके रेशे निकलते हैं, उनकी रस्सी बहुत मजबूत बनती है),
और आयु (जिसकी नात बनती है), इन चीजोंसे धनुषकी डोरी बनानी
चाहिये ॥ १० ॥

वेणुशरशलाकादण्डासननाराचाथ इपवः ॥ ११ ॥ तेषां

मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवानि ॥ १२ ॥

वेणु (बाँस, उटज चिमिय इत्यादि), शर (नरसल आदि), शलाका
(किसी मजबूत लकड़ीकी बनाई हुई), दण्डासन (आधा लोहा और आधा बाँस
आदिका बना हुआ), नाराच (सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ), ये भिन्न २
प्रकारके बाण होते हैं ॥ ११ ॥ इन बाणोंके अग्रभाग (मुख=अगले हिस्से)
छेदने काटनेके लिये, रफ सहित आघात पहुँचानेके लिये, तथा रफ सहित
घोट पहुँचानेके लिये होते हैं । वे लोहे इष्टी तथा मजबूत लकड़ीके बनाये
हुए होते हैं ॥ १२ ॥

निस्त्रिशमण्डलाग्रासियष्टय खड्गाः ॥ १३ ॥ खड्गमहिषवार-
पविपाणदास्त्रेषुमूलानि त्सरवः ॥ १४ ॥

खड्ग (खड्गवार) तीन प्रकारके होते हैं—निस्त्रिश (जिसका अगला
हिस्सा काँची टेढ़ा हो), मण्डलाम (जिसका अगला हिस्सा कुछ २ गोलाकार
हो), तथा भसियष्टि (जिसका पतला और लम्बा भाग हो) ॥ १३ ॥
शलाकारकी मूठ निस्त्रिश अलक्षित चीजोंकी । होनी चाहिये—खड्ग (बाँस) और
'भेदके सींग, हाथीदाँत, मजबूत लकड़ियों और कोयली लव ॥ १४ ॥

परशुकुठारपट्टसखनित्रकुदालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुरकल्पाः
॥ १५ ॥ यन्त्रगोप्यणमुष्टिपापाणरोचनीद्विपदश्रायुधानि ॥ १६ ॥

पशु (फरसा), कुठार (कुट्टाबा), पट्ट (दोनों किनारोंपर जिसके त्रिशूल हा) खनित्र (कापडा=कसी), कुदाल (कुदालो=वैसाखी यह सम्पूर्ण लोहेकी बनीहुई सामनेमें चौड़े मुइकी होती है), क्रकच (आरा), काण्डच्छेदन (काण्डासिका=गडासी), यह सब क्षुरकरूप या क्षुरवर्ग कहाता है । छुरके समान सीधी धार होनेके कारण इनको यह नाम दिया गया है ॥ १५ ॥ यन्त्रपापाण (किसी यन्त्रविशेषसे फेंकाहुआ पापाण आदि), गोप्यणपापाण (गौकियोंसे फेंकाहुआ पापाण आदि । गौकिया=सूत आदिके बनेहुए एक यन्त्र विशेषका नाम है, जिसमें पत्थर आदि रखकर फिर उसे घुमाकर खेतों और धार्गीचोंमें पक्षियोंको उड़ाया जाता है), मुष्टिपापाण मुट्टीसे फेंकाहुआ पापाण आदि), रोचनी (दलनेकी यन्त्र शिला=चक्रके पाद आदि) और द्विपद (बड़े २ पत्थर=महाशिला), आदि ये सब आयुध कहाते हैं ॥ १६ ॥

लोहजालजालिकापट्टकचसूत्रकैरुटशिशुमारकखड्गिधेनुक-
हस्तिगोचर्मसुरशृङ्गसंघातं चर्माणि ॥ १७ ॥

लोहजाल (सिरके सहित सम्पूर्ण शरीरको ढकनेवाला आवरण), लोह जालिका (सिरको छोड़कर बाकी शरीर को ढकने वाला आवरण), लोह पट्ट (बाहोंको छोड़कर बाकी देहपर आजानेवाला आवरण), लोहकवच (केवल पीठ और छातीको ढकनेवाला आवरण), सूत्रकण्डूण (कपासके सूत आदिका बना हुआ कवच), और शिशुमारक (एक प्रकारकी मछली, किसीने इसका अर्थ ऊड़पिलाय भी किया है), खड्गि (गेंडा), धेनुक (गरवन्तिलगाय), हाथी तथा बैल इन पादोंके चमड़े, सुर और सोंगोंको, बड़े चातुर्पसे आपसमें मिलाकर भी कवच तैयार किया जाता है । इस प्रकार ये छ तरहके कवच तैयार किये जाते हैं ॥ १७ ॥

शिरस्त्राणकण्ठश्राणकूर्पासकञ्चुकनारवाणपट्टनागोदरिकाः;
पैटीचर्महस्तिकर्णतालमूलधमनिकाकनाटकिटिकाप्रतिहतमलाहका-
न्ताश्च आनरणानि ॥ १८ ॥

शिरस्त्राण (केवल सिरकी रक्षा करनेवाला), कण्ठश्राण (कण्ठकी रक्षा करनेवाला), कूर्पास (आधी बाहोंको आवरण करनेवाला), कञ्चुक (घोंटुओं एक शरीरको ढकनेवाला), धारवाण (पैरक ढकने तक सारी देहको ढकनेवाला)

पट्ट (जिसमें बाँहें बिलकुल न हों, तथा जो लोहेका बनाया हुआ न हो), नागोदरिका (केवल हाथकी अंगुलियोंकी रक्षा करनेवाला), ये देहपर धारण किये जानेवाले सात आवरण और होते हैं । पेटी, चर्म (चमड़ेकी बनी हुई पेटी), इस्तिकर्ण (मुह ढकनेका आवरण), तालमूल (लकड़ीकी बनी हुई पेटी), धमनिका (सूतकी बनी हुई पेटी), क्वाट (लकड़ीका बना हुआ एक विशेष पट्टा), क्तिटिका (चमड़े और बाँसको कूटकर बनाई हुई पेटी), अमतिहत (सम्पूर्ण हाथको ढकने वाला आवरण), यलाहकान्त (किनारोंपर लोहेके पत्तर से बन्धा हुआ अप्रतिहत ही यलाहकान्त कहाता है), और इसी तरहके अन्य भी शरीरका ढकन वाले आवरण होते हैं ॥ १८ ॥

हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालंकारिकं संनाहकल्पना
श्लोपकरणानि ॥१९॥ ऐन्द्रजालिकमौपनिषदिकं च कर्म ॥२०॥

१. हाथी, रथ तथा घोड़ोंकी शिक्षा आदिके साधन, अङ्कुश क्रोदे आदि; तथा सजानेके लिये अन्य पताका आदि साधन, और कवच तथा शरीरकी रक्षा करने वाले अन्य आवरण, ये सब उपकरण कहाते हैं ॥ १९ ॥ ऐन्द्रजालिक कर्म तथा औपनिषदिक कर्मको भी उपकरण कहाते हैं । (ऐन्द्रजालिक= योशीसी सनाको बहुत सनाके समान दिखा देना, अग्निके न होनेपर ही प्रचण्ड अग्निकी ज्वाला दिखा देना आदि । औपनिषदिक=औपनिषद्क अधिकरणमें बताने हुए विप्ले धुँपे तथा दूषित जल आदिका प्रयोगकर उनका प्रभाव दिखा देना) ॥ २० ॥

कर्मान्तानां च—॥ २१ ॥

इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्दयम् ।

क्षयव्ययौ च जानीयात्कुप्यानामायुधेश्वरः ॥ २२ ॥

इत्यप्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे आयुधागाराव्यक्ष अष्टादशो ऽध्याय ॥१८॥
आदिन एकोनपत्वारिंश ॥ ३९ ॥

विप्लव दो अपराधोंमें बताने हुए द्रव्योंके व्यापार आदिके विषयमें= (कर्मान्तानां कुप्यानाम्), राजाकी रथिकी, और रथिके अनुसार कार्यके प्राप्ति और पराजयमान (समाप्ति) को; उपयोग, दोष तथा लाभको; उनके क्षय और व्ययको, आयुधागाराव्यक्ष अरजी तरह समझे, कुप्याव्यक्षके लिये भी ये सब बातें जाननी आवश्यक हैं ॥ २१-२२ ॥

अप्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें अठारहवा अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय

३७ प्रकरण

तोल मापका संशोधन

पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान्कारयेत् ॥ १ ॥ धान्यमापा
दश सुवर्णमापकः पञ्च वा गुञ्जाः ॥ २ ॥ ते षोडश सुवर्णः
कर्पो वा ॥ ३ ॥ चतुःकर्प पलम् ॥ ४ ॥

पौतवाध्यक्ष (तोल मापका संशोधन करनेवाला राजकीय अधिकारी),
पौतवकर्मान्त अर्थात् तुला और कुडुब आदि घाटोंको मनवाने ॥ १ ॥ दस
धान्यमाप (ठड़के दाने) का एक सुवर्णमाप होता है; और इतने ही पांच
गुञ्जा (चौटली=रत्ती) ॥ २ ॥ सोलह मापका एक सुवर्ण अथवा एक कर्प
होता है ॥ ३ ॥ चार कर्पका एक पल होता है ॥ ४ ॥ यह सुवर्ण तोलनेके
घाटों का कथन किया गया है, इसको निम्न निर्दिष्ट रीतिसे लिखाया जासकता
है—॥ ४ ॥

१० ठड़के दाने=१ एक सुवर्णमापक अथवा ५ रत्ती
१६ मापक =१ सुवर्ण अथवा १ कर्प
४ कर्प =१ पल

अष्टाशीतिगौरसर्षपा रूप्यमापकः ॥ ५ ॥ ते षोडश धर-
णम् ॥ ६ ॥ शैब्यानि वा विंशतिः ॥ ७ ॥

सफेद सरसों (बग सरसों) के अठ्ठासी दाने की बराबर एक रूप्य-
मापक होता है ॥ ५ ॥ सोलह रूप्यमापक का एक धरण होता है ॥ ६ ॥
उसके बराबर ही बीस शैब्य होते हैं। शिबिष फलका नाम शैब्य है, दिन्दी
में सेंगरी कहते हैं, यह मूली की फलीका नाम है। यह चांदीकी तोलका
कथन किया गया। इसको इस प्रकार लिखाया जासकता है ॥ ७ ॥

८८ सफेद सरसों=१ रूप्यमापक

१६ रूप्यमापक =१ धरण=१५ अथवा २० शैब्य (मूलीके बीज)

विंशतितण्डुलं वज्रधरणम् ॥ ८ ॥

बीस चावल का एक वज्रधरण होता है। यह हीरे की तोल है ॥ ८ ॥

२० चावल=१ वज्रधरण।

अर्धमापकः मापकः द्वौ चत्वारः अष्टौ मापकाः सुवर्णां द्वौ
चत्वारः अष्टौ सुवर्णाः दश विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत् शत-
मिति ॥ ९

तोलनेके लिये बाटोंकी मर्यादा निम्न लिखित रीतिसे होनी चाहिये —
अर्धमापक (आधा मापक), मापक, दो मापक, चार मापक, आठ मापक ।
सुवर्ण, दोसुवर्ण, चार सुवर्ण, आठ सुवर्ण, दस सुवर्ण, बीस सुवर्ण, तीस सुवर्ण
चालीस सुवर्ण, सौ सुवर्ण, इस प्रकारसे सोने आदिकी ताँदके लिये ये कुँल
मिलाकर चौदह बाट हाने चाहिये । छोटेसे छोटे अर्धमापकसे लगाकर, सा सुवर्णके
बड़े बाट तक चादह बाट आवश्यक हैं ॥ ९ ॥

तेन धरणानि व्याख्यातानि ॥ १० ॥

इसी तरह धरणके बाटों की कल्पना भी करलेनी चाहिये । अर्धत्
धरण, दोधरण, चार धरण, आठ धरण, दस धरण, बीस धरण, तीस धरण,
चालीस धरण, और सौ धरण । रूप्यमापक की भी उपयुक्त रीतिसे कल्पना
करनी चाहिये — अर्ध मापक, मापक, दो मापक, चार मापक, आठ मापक,
ये बाट चाँदी आदिकी तालके लिये उपयुक्त होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि यानि वा
नोदकप्रदेहाभ्यां वृद्धि गच्छेयुरुष्णो न वा हासम् ॥ ११ ॥

तोलनके सब ही बाट लोहेके बनाये जावें, मागध या मेकल देशमें
वैशेष्य होने वाल पर्यन्त बनाये जावें । अथवा पेशी, चीनोक बनाये जावें,
जो पानी या और किसी लेपकी वस्तुके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त न होयें, तथा
गरमी पहुचनेसे कम न होजावें ॥ ११ ॥

पडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तरा दश तुलाः कारयेत्लोहपला-

दूर्ध्वमेकपलोत्तरा यन्त्रमुभयतः शिक्यं वा ॥ १२ ॥

सोना और चाँदी तोलनेके लिये निम्नलिखित सब प्रकारकी तुलाओं
का निर्माण कराया जावे, कमसे कम छः अंगुल की तुलासे लगाकर, फिर
प्रत्येकमें आठ २ अंगुल बढ़ाते चले जावें । तात्पर्य यह है — पहिले सबसे छोटी
तुला छ अंगुलकी हानी चाहिये । उसके बाद दूसरी चौदह अंगुलकी, फिर
बाईस अंगुलका, और फिर उसके बाद चौधी तीस अंगुलकी । इसी प्रकार
प्रत्येकमें आठ २ अंगुल बढ़ाते हुए, अन्तिम दसवीं तुला अठत्तर (७८) अंगुल
की हानी । इनका वजन एक पल लोहेसे लगाकर प्रत्येक तुलामें एक पल
बढ़ता जाना चाहिये । पहिली छ अंगुलकी तुला एक पलकी, दूसरी चौदह

अगुलकी दो पलकी होनी चाहिये । इसी प्रकार प्रत्येक एक २ पल बढ़ाते हुए अन्तिम अष्टम अगुलकी तुला दस पलकी होना चाहिये । इसके दोनों ओर निम्न अर्थात् पलके लगे हूँ होन चाहिये ॥ १२ ॥

पञ्चत्रिंशत्पललोहां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समवृत्तां कारयेत्

॥१३॥ तस्याः पञ्चपलिकं मण्डलं घट्ट्या समकरणं कारयेत् ॥१४॥

सोना चादीं तोलनेके लिये पिठली दस तुलाओंका निरूपण किया गया है, अब आर पदार्थोंको तोलनेके लिये दूसरी तुलाका निरूपण करते हैं —पैतीस पल छाहेकी बनी हुई, बढतर अगुल अर्थात् तीन हाथ एम्बी समवृत्ता नामक, गोलाकार तुला, अन्य पदार्थोंको तोलनेके लिये होनी चाहिय ॥१३॥ उसके बीचमें पांच पलका काटा लगाकर, ठीक मध्यमें एक चिन्ह करावाये ॥१४॥

ततः कर्णोत्तरं पलं पलोत्तरं दशपलं द्वादश पञ्चदश त्रिंश
तिरिति पदानि कारयेत् ॥ १५ ॥

उसके बाद, उस बीचके विन्दुसे लगाकर एक कर्ण, दो कर्ण तीन कर्ण तथा एक पलके चिन्ह लगावाये, और एक पलके आगे दस पल तक (अर्थात् एक पल दो पल तीन पल इत्यादि), फिर उसके बाद बारह पल पन्द्रह पल और बीस पलका चिन्ह लगावाये । तात्पर्य यह है, उस केन्द्रस्थित काटकी गोलाकार परिधिमें यथाक्रम ये सब चिन्ह लगे होन चाहियें ॥ १५ ॥

तत आशतादशोत्तर कारयेत् ॥ १६ ॥ अक्षेषु नान्दीपिनद्धं
कारयेत् ॥ १७ ॥

फिर बीस पलके आगे सौ पल तक दस दसके अन्तरसे चिन्ह लगे रहने चाहियें, अर्थात् बीस पलके बाद तीस पल, चालीस पल, पचास पल इत्यादि प्रकारसे सौ पल तक चिन्ह लगावाये ॥ १६ ॥ प्रत्येक अक्ष अर्थात् पांच पल अन्तरके चिन्हपर, पहचानके लिये नान्दीपिनद्ध अर्थात् रज्जुकेका चिन्ह लगावा देना चाहिये । (किसी २ पुस्तकमें 'नान्दीपिनद्ध' के रथापर 'नद्धीपिनद्ध' पाठ है । नद्धी रज्जुका नाम है, प्रत्येक पाचवें अक्षके साथ २ एक रज्जुके समान रेखा धनुवा दीजावे, पैरी इमका अर्थ करना चाहिये), तात्पर्य यह है, कि पाचवें, दसवें तथा पन्द्रहवें आदि अक्षोंपर पहचानके लिए एक विशेष चिन्ह लगावा देना चाहिये ॥ १७ ॥

द्विगुणलोहां तुलामतः पण्णप्त्यङ्गुलायामां परिमार्णां कार-
येत् ॥१८॥ तस्याः शतपदादूर्ध्वं विज्ञातिः पञ्चाशत् सप्तमिति
पदानि कारयेत् ॥ १९ ॥

जिस तुलाका अमीतक वर्णन किया गया है, इसको 'समवृत्ता' कहते हैं। इसमें जितना लोहा लगाया जाता है, उससे दुगुने लोहेसे बनी हुई (अर्थात् सत्तर पल लोहेसे बनी हुई) और छ-धानवें (९६) अंगुल अर्थात् चार हाथ लम्बी, ' परिमाणो ' नामक तुलोंका निर्माण करावे ॥ १८ ॥ उसके ऊपर सम वृत्ता नामक तुलाके अनुसार कर्पसे लगाकर सौ पल पर्यन्त चिन्ह करके, फिर उसके धागे, बीस, पचास तथा सौके चिन्ह और बनाने चाहिये । अर्थात् सौके भाग एकसौ बीस, एकसौ पचास और दोसौ पलके चिन्ह भार बनाये जावें ॥ १९ ॥

विंशतितौलिको भारः ॥ २० ॥

सौ पलका नाम एक तुला है, बीस तुला परिमाणका एक भार होता है ॥ २० ॥

१०० पल=१ तुला

२० तुला=१ भार

दशधरणिकं यलम् ॥ २१ ॥ तत्पलशतमायमानी ॥ २२ ॥

सोने चांदीके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको सौ पलसे अधिक तोलनेके लिये एक विशेष परिमाण बताते हैं,—पहिले बतलाये दस धरणिकका एक पल होता है ॥ २१ ॥ और उन सौ पलोंकी एक आयमानी नामक तुला होती है; (भाव अर्थात् आमदनीको तोलने वाली तुलाका नाम ही, आयमानी होता है) ॥ २२ ॥

१० धरण=१ पल

१०० पल=१ आयमानी

पञ्चपलावरा व्यवहारिकी माजन्यन्तःपुरभाजनी च ॥ २३ ॥

पाँच पाँच पल उत्तरोत्तर कम होने वाली तुला यथासंख्य ' व्यावहारिकी ' ' भाजनी ' और ' अन्तःपुरभाजनी ' कहाती है । तत्पर्यय यह है,—इन तीनों तुलाओंमेंसे पहिली तुला, आयमानीसे पाँच पल कम अर्थात् पिचानवें (९५) पलकी ही होती है, इसका नाम ' व्यावहारिकी ' है । दूसरी ' भाजनी ' नामक तुला व्यावहारिकीसे पाँच पल कम अर्थात् अग्ये (९०) पलकी होती है । इसी तरह तिसरी ' अन्तःपुरभाजनी ' और पाँच पल कम करके पिचपासी (८५) पलकी ही रहजाती है । इनमेंसे पहिली क्रम विक्रय व्यवहारमें, दूसरी श्रृंगारोंको द्रव्य देने और तीसरी रानी तथा राजकुमार आदिके द्रव्य देनेमें काममें आती है ॥ २३ ॥

तासा मर्धधरणावरं पलम् ॥२४॥ द्विपलावरमुत्तरोहम् ॥२५॥
पल्लुलावराश्रायामाः ॥ २६ ॥

इन व्यावहारिकी आदि तीनों तुलाओंके प्रत्येक पलमें उत्तरोत्तर आधा आधा धरण कम होता है । तात्पर्य यह है, आयमानी तुलामें दस धरणका एक पल होता है; उसमें आधा धरण कम करके साठेना धरण (९.३) का एक पल व्यावहारिकी तुलामें होना चाहिये, उससे भी आधा कम करके अर्धत्तनी (९) धरणका एक पल भाजनी नामक तुलामें होना चाहिये; इसी तरह अन्तःपुर-भाजनी नामक तुलामें साठे आठ (८.३) धरणका एक पल होता है ॥ २४ ॥ इसी तरह इन तुलाओंके बनानेके लिये लोहा भी, उत्तरोत्तर तुलामें पहिलीसे दो दो पल कम होना चाहिये । अर्थात् आयमानी तुला यदि पैंतीस पल लोहेकी बनाई जावे, तो व्यावहारिकी तुला तैंतीस पलकी, भाजनी इकतीस पलकी और अन्तःपुरभाजनी बन्तीस पलकी बनाई जानी चाहिये ॥ २५ ॥ इनकी लगवाई भी उत्तरोत्तर तुलामें पहिली तुलासे ४. २ अंगुल कम होनी चाहिये । अर्थात् यदि आयमानी तुला बहत्तर अंगुलकी बनाई जावे, तो व्यावहारिकी छयासठ (६६) अंगुलकी; भाजनी साठ (६०) अंगुलकी और अन्तःपुरभाजनी चौवन (५४) अंगुलकी बनाई जावे ॥ २६ ॥

पूर्वयोः पञ्चपलिकः प्रयामो मांसलोहलक्षणमणिवर्जम् ॥२७॥

काष्ठतुला अष्टहस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठिता ॥२८॥

पहिली दो तुलाओंमें अर्थात् परिमाणी और आयमानीमें, मांस लोहा ममक और मणियोंके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको तोलनेपर पांच पल अधिक तोला जाता है; इसीको ' प्रयाम ' कहा जाता है ॥ २७ ॥ भय लकड़ीकी बनी हुई तुलाका मिरूपण किया जाता है;—यह तुला आठ हाथकी होनी चाहिये; इसपर एक दो तीन आदि चिन्होंकी रेखाएँ भी अचरय होनी चाहियें । इसके पाठ आदि परस्परके बने हुए हों । मोरके पैरों के समान जिसके पैर अर्थात् आपार हों । (' मयूरपदाधिष्ठिता ' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें ' मयूरपदाधिष्ठाना ' भी पाठ है । अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ २८ ॥

काष्ठपञ्चविंशतिपलं तण्डुलप्रस्थसाधनम् ॥ २९ ॥ एष

प्रदेशो बह्वल्पयोः ॥३०॥ इति तुलाप्रतिमानं व्याख्यातम् ॥३१॥

पचीस पल ईधन, एक प्रस्थ चावलको पकानेके लिये पर्याप्त होता है ॥ २९ ॥ इसी हिसाबसे अधिक और न्यून चावल पकानेके लिये, ईधन उपयोगमें लाना चाहिये । (यद्यपि यह बात कौस्तुभशास्त्रके प्रकृतमें कही

उचित थी, परन्तु असार वस्तुओंका भी बहुत परिमित रूप्य करना चाहिये, फिर सार वस्तुओंका तो कहना ही क्या ? यह प्रकट करनेके लिये ही इसका यहाँ कथन किया गया है ॥ ३० ॥ यहाँ तक सोलह प्रकारकी तुला और चौदह प्रकारके घाटोंका निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

अथ धान्यमापद्विपलशतं द्रोणमायमानम् ॥ ३२ ॥ सप्ता-
शीतिपलशतमर्धपलं च व्यावहारिकम् ॥ ३३ ॥

अब इसके भागे द्रोण आठक आदि परिमाणोंका निरूपण किया जायगा—धान्यमापके दो सौ पलका एक आयमान द्रोण होता है; अर्थात् यह द्रोण केवल राजकीय भायको तोलनेके ही काममें लाया जाता है, (आय-
मानी तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इसका नाम आयमान है) ॥ ३२ ॥ एकसौ साठे सप्तासी (१८७ $\frac{१}{२}$) पलका एक व्यावहारिक द्रोण होता है, यह क्रय विक्रय व्यवहारके समय तोलनेके काम आता है, (व्यावहारिकी तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इसका नाम व्यावहारिक है ॥ ३३ ॥

पञ्चसप्ततिपलशतं भाजनीयम् ॥ ३४ ॥ द्विपष्टिपलशतमर्ध-
पलं चान्तपुरभाजनीयम् ॥ ३५ ॥

एकसौ विंशत्तर (१७५) पलका एक भाजनीय द्रोण होता है, यह भृत्योंके लिये द्रव्य आदि तोलनेमें काम आता है । (भाजनी नामक तुलाके साथ इसका सम्बन्ध होनेसे इसको भाजनीय द्रोण कहा जाता है) ॥ ३४ ॥ एकसौ साठे आठ (१६२ $\frac{१}{२}$) पलका एक अन्त पुरभाजनीय द्रोण होता है । इनका उपयोग, अन्त पुरके लिये सामान आदि तोलनेमें होता है । अन्त पुर-
भाजनी नामक तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इस द्रोणका नाम 'अन्त पुर-
भाजनीय' होता है ॥ ३५ ॥

तेषामाढकप्रस्थकुडुषाश्चतुर्भागाधराः ॥ ३६ ॥

इन चार प्रकारके द्रोणोंका उत्तरोत्तर चतुर्थांश कम होकर आठक प्रस्थ और कुडुषका परिमाण निश्चित होता है । तारपर्यं यह है कि द्रोणका जितना परिमाण होता है, उससे चौथा हिस्सा कम आठकका, और आठकसे चौथा हिस्सा कम प्रस्थका, तथा प्रस्थसे चौथा हिस्सा कम कुडुषका परिमाण होता है ॥ ३६ ॥

षोडशद्रोणा खारी ॥३७॥ विंशतिद्रोणिकाः कुम्भः ॥३८॥
कुम्भेर्दशमिर्बहः ॥ ३९ ॥

सोलह द्रोणकी एक खारी होती है ॥ ३७ ॥ बीस द्रोणका एक कुम्भ होता है ॥ ३८ ॥ दस कुम्भका एक 'बह' होता है ॥ ३९ ॥

१६ द्रोण = १ खारी

२० द्रोण (१३ खारी) = १ कुम्भ

१० कुम्भ = १ बह

शुक्रसारदारुमयं समं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत् ॥४०॥

अन्तःशिखं वा ॥ ४१ ॥ रसस्य तु ॥ ४२ ॥

सुरी बहिया लकड़ीका बनाहुआ, नीचे ऊपरसे बराबर, शिखरमें चतुर्भांशसे युक्त (तारपत्र यह है, नीचेके हिस्सेको तैयार करके जय उसके उपर उसका मुँह या गर्दन बनाई जाये, तो यह इस तरहकी बनीहुई होनी चाहिये, जिसमें कि नीचे असली भागमें आनेवाले मालका घोंघाई हिस्सा समाजाये । अर्थात् यदि उस सारे मानमें घीस प्रत्य- धान आसकते हैं, तो पांच प्ररूप उसकी गर्दनमें आने चाहियें, पन्द्रह प्ररूप उसके नीचेके हिस्सेमें पेसा) मान अर्थात् बनाज आदि मापनेके लिये एक वर्तन तैयार कराया जाये ॥ ४० ॥ अथवा उसकी गर्दनके हिस्सेको नीचेके भागमेंही मिला दिया जाये; (नीचेके भागसे पृथक् गर्दनको न बनाया जाये, पेटके समान नीचेके हिस्सेको ही इस प्रकार बना दिया जाये, कि उतना सम्पूर्ण अनाज उसीमें समाजाये । केवल अनाज आदिके भरने निकालनेके लिये एक मुँह रखना चाहिये ॥ ४१ ॥ रस अर्थात् घी तैल आदिके मापनेका वर्तनभी इसीतरहका (अलहदा गर्दनसे रहित) होना चाहिये ॥ ४२ ॥

सुरायाः पुष्पफलयोस्तुपाङ्गाराणां सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा वृद्धिः ॥ ४३ ॥

सुरा (शराब आदि), फल, फूल, तुप (गूरी शुभ आदि), अहार (कौयला), सुधा (चूना फलई आदि), इन छः पदार्थोंको मापनेके लिये जो वर्तन बनाये जायें, उनका ऊपरका हिस्सा नीचेके हिस्सेसे दुगुना बड़ा होना चाहिये । और इन वर्तनोंकी गर्दनभी नीचेके हिस्सेसे अलहदा बनाहुई होनी चाहिये ॥ ४३ ॥

सपादपणो द्रोणमूल्यम् ॥४४॥ आढकस्य पादोनः ॥४५॥

पणमापकाः प्रस्थस्य ॥ ४६ ॥ मापनः कुडुवस्य ॥ ४७ ॥

एक द्रोणका मूल्य सदा पण होता है । (अर्थात् जित वर्तन आदिमें एक द्रोण माल आजाये, उस वर्तनकी कीमत सदा पण होनी चाहिये) ॥४४॥ इसीतरह एक आढकका मूल्य पान पण होता है ॥ ४५ ॥ एक प्रस्थका छः

मापक ॥ ४६ ॥ और एक कुडुबका एक मापक मूल्य होता है ॥ ४७ ॥

द्विगुणं रसादीनां मानमूल्यम् ॥ ४८ ॥ विंशतिपणाः
प्रतिमानस्य ॥ ४९ ॥ तुलामूल्यं त्रिभागः ॥ ५० ॥

रस अर्थात् घी तल आदिके मापनेके बर्तनोंका मूल्य, उपर्युक्त मूल्यसे दुगना होता है । एक श्रेण घी मापनेके बर्तनका दाईं पण मूल्य होगा, इसी तरह आटकका डेढ़, प्रस्यका बारह मापक और कुडुबका दो मापक समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ चौदह प्रकारके सम्पूर्ण घाटोंका मूल्य बीस पण होता है । ॥ ४९ ॥ भार तुलाका मूल्य इससे तिहाई अर्थात् ६३ पण होता है ॥ ५० ॥

चतुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत् ॥ ५१ ॥ अप्रतिवेध-
स्यात्यय सपादः सप्तविंशतिपण ॥ ५२ ॥ प्रातिवेधनिकं काक-
णीकमहरहः पौतनांघ्यक्षाय दद्युः ॥ ५३ ॥

प्रत्येक चार चार महीनेके घाद, तुला और घाट आदिका परिशोधन कराना चाहिये ॥ ५१ ॥ जा ठीक समयपर परिशोधन न करावे, उसको सवा सप्ताहस पण दण्ड देना चाहिये ॥ ५२ ॥ व्यापारियोंको चाहिये कि वे परिशोधन के निमित्त, प्रतिदिन एक काकणी के हिसाबसे, चार महीनेकी एकसौ बीस (१२०) काकणी, पौनवाष्पक्षको दें । यह घाट आदिके परिशोधनका राजकीय टैक्स होता है ॥ ५३ ॥

द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुःषष्टिभागस्तैलस्य ॥ ५४ ॥
पञ्चाशद्भागो मानस्राजो द्रवाणाम् ॥ ५५ ॥ कुडुबार्धचतुरष्टभा-
गानि मानानि कारयेत् ॥ ५६ ॥

यदि गरम किया हुआ घी खरीदा जावे, तो उसका बर्तनवां हिस्सा, व्याजी अर्थात् अधिक लना चाहिये । भार तलके ऊपर चौसठवां हिस्सा व्याजी लना चाहिये । अर्थात् इतना भाग अधिक लना चाहिये ॥ ५४ ॥ द्रव पशुधों का पचासवां हिस्सा, तालनके समय छीजनका समझना चाहिये ॥ ५५ ॥ कुडुब आदि छोटी तालके लिये एक कुडुब, आधा कुडुब, चौपाई कुडुब और आठवां हिस्सा कुडुब, य चार घाट, और मापनेके लिये इतने २ ही के बर्तन बनाये जावें ॥ ५६ ॥

कुडुबार्धचतुराशीतिः चारकः सर्पिषो मतः ।

चतुःषष्टिस्तु तैलस्य पादश्च घटिकानयोः ॥ ५७ ॥

इत्यव्यक्षमद्य रे द्वितीये अधिकारणे तुलामानपौतव एकानांशिनो ऽप्याय ॥ १२ ॥
आदितश्चावदिता ॥ ४० ॥

घी के तोलने के लिये सौरासी कुडुबका एक 'धारक' होता है । 'और तेलके तोलने के लिये सोलह कुडुबका ही एक धारक माना गया है । इनके चौथाई हिस्सेका नाम 'घटिका' होता है । अर्थात् दक्कीस कुडुबका एक घृत घटिका, और सोलह कुडुबकी एक तैलघटिका समझनी चाहिये ॥ ५७ ॥

अध्यक्ष-प्रचारं द्वितीय अधिऋण में उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

वीसवां अध्याय ।

३८ प्रकरण

देश तथा कालका मान ।

मानाप्यक्षो देशकालमानं विद्यात् ॥ १ ॥ अष्टौ परमाणवो
रथचक्रविभुद् ॥ २ ॥ ता अष्टौ लिक्षा ॥ ३ ॥ ता अष्टौ यूकाम-
मध्यः ॥ ४ ॥ ते अष्टौ यवमध्यः ॥ ५ ॥ अष्टौ यवमध्या अङ्गुलम्
॥ ६ ॥ मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अङ्गुल्या मध्यप्रकर्षो वाङ्गुलम्
॥ ७ ॥

मानाप्यक्ष (पीतवाप्यक्ष) को चाहिये कि यह देश और कालके मान को अच्छी तरह जाने ॥ १ ॥ आठ परमाणुओं का मिलकर, 'रथके पहिये से उवाई हुई धूलका एक कण होता है ॥ २ ॥ आठ धूलकण मिलाकर एक लिक्षा होती है, ॥ ३ ॥ आठ लिक्षाका एक यूकामध्य, ॥ ४ ॥ आठ यूकामध्यका एक यवमध्य, ॥ ५ ॥ और आठ यवमध्यका एक अंगुल होता है ॥ ६ ॥ अर्थात् मध्यम पुरुष (जो न बहुत मोटा हो, और न बहुत पतला, किन्तु हिकडै बदनका आदमी हो, उस) की बीचकी अंगुलीके बीचके ही पौलकी मोटाई जितनी हो, उतना ही एक अंगुल समझना चाहिये ॥ ७ ॥

८ परमाणु = १ धूलकण

८ धूलकण = १ लिक्षा

८ लिक्षा = १ यूकामध्य

८ यूकामध्य = १ यवमध्य

८ यवमध्य = १ अंगुल

चतुरङ्गुलो धनुर्ग्रहः ॥ ८ ॥ अष्टाङ्गुला धनुर्मुष्टिः ॥ ९ ॥
द्वादशाङ्गुला वितस्तिः ॥ १० ॥ द्वायापौरुषं च ॥ ११ ॥ चतु-

दर्शाङ्गुलं शमः शलः परिरयः पदं च ॥ १२ ॥ द्विवितस्तिररतिः
प्राजापत्यो हस्तः ॥ १३ ॥

चार अंगुलका एक धनुर्मूह होता है ॥ ८ ॥ और आठ अंगुल अथवा दो धनुर्मूह की एक अनुमुष्टि होती है ॥ ९ ॥ बारह अंगुलकी एक वितस्ति (सीता=विलोपद) होती है ॥ १० ॥ छायामूर्ध्व भी बारह अंगुलका ही होता है । अर्थात् वितस्तिको छायामूर्ध्व भी कह सकते हैं ॥ ११ ॥ चौदह अंगुल परिमाणका नाम शम, शल, परिरय, आर पद है । अर्थात् चौदह अंगुल परिमाणके लिये ये चार नाम प्रयुक्त होते हैं ॥ १२ ॥ दो वितस्तिकी एक अरति, या प्रजापत्य (प्रजापति अर्थात् विरवकर्माको सम्मत) हाथ होगा है । अर्थात् इसको एक हाथ भी कहा जाता है ॥ १३ ॥

४ अंगुल = १ अनुर्मूह

८ अंगुल अथवा २ धनुर्मूह = १ धनुमुष्टि

१२ अंगुल, या ३ धनुर्मूह
अथवा १ १/२ धनुमुष्टि } = १ वितस्ति या छायामूर्ध्व

१४ अंगुल = १ शम=शल=परिरय=पद (मैर)

२ वितस्ति = १ अरति=(प्राजापत्य) १ हाथ ।

सधनुर्मूहः पौतवविधीतमानम् ॥ १४ ॥ सधनुमुष्टिः किष्कुः
कंसो वा ॥ १५ ॥

एक हाथके साथ धनुर्मूहको मिलाकर (एक हाथ=२४ अंगुल+एक धनुर्मूह=४ अंगुल=) २८ अंगुलका बना हुआ एक हाथ, पौतव (लकड़ीकी गुला आदि) और विधीत (चरागाह) के मापनेके काममें आता है । अर्थात् पौतव और विधीतको २८ अंगुलके हाथसे नापना चाहिये ॥ १४ ॥ एक धनुमुष्टि अर्थात् आठ अंगुल सहित एक प्राजापत्य हस्त, किष्कु ग्रा कस कहा जाता है ॥ १५ ॥

२८ अंगुल=१ हाथ (विधीत और पौतवके मापनेमें काम आने वाला) ;

३२ अंगुल=१ किष्कु अथवा कस ।

द्विचत्वारिंशदङ्गुलस्तक्ष्णः क्राकचिकाकिष्कुः स्कन्धावारदुर्ग-
राजपरिग्रहमानम् ॥ १६ ॥ चतु पञ्चाशदङ्गुलः कुप्यवनहस्तः ॥ १७ ॥

बयाकीस अंगुलके एक हाथका उपयोग, चदरके काममें होता है, भारत खिन्नेके कार्योंमें इसके स्थानपर किष्कु परिमाणका प्रयोग किया जाता है । प. ३५ वे

कार्य छावनी किले या राजमहलके होने चाहियें । अर्थात् छावनी आदिमें होने वाले बढईके कार्योंमें बघालीस अंगुलका एक हाथ, और लकड़ी चीरने आदिमें बत्तीस अंगुलका एक किष्कु प्रयुक्त होता है ॥ १६ ॥ कुप्य और घन (जंगल या उसकी लकड़ी आदि) के नापनेके लिये चौवन अंगुलका एक हाथ मानना चाहिये ॥ १७ ॥

४२ अंगुल=१ हाथ (छावनी आदिमें बढईके कामके लिये),

३२ " =१ किष्कु (छावनी आदिमें लकड़ी चीरनेके लिये)

५४ अंगुल=१ हाथ (कुप्य द्रव्य और जंगल सम्बन्धी कार्योंमें काम आनेके लिये) ।

चतुरशीत्यङ्गुलो ध्यामो रज्जुमानं सातपौरुपं च ॥ १८ ॥

चौरासी अंगुलका एक हाथ, ' ध्याम ' कहा जाता है । यह रस्तीके नापने और लोदे हुए कुए या खाई आदिके नापनेमें काम आता है ॥ १८ ॥

८४ अंगुलका एक हाथ=१ ध्याम (रस्ती, तथा कुए खाई आदिके नापनेके लिये) ।

चतुररत्तिर्दण्डो घनुर्नालिकापौरुपं च ॥ १९ ॥ गार्हपत्यम-
ष्टशताङ्गुलं घनुः पथिप्राकारमानं पौरुपं चाभिचित्यानाम् ॥२०॥

चार अरत्तिका एक ' दण्ड ' होता है । इसीको घनु नालिका और पौरुप भी कहते हैं ॥ १९ ॥ एकसा आठ अंगुलका एक गार्हपत्य (गृहपति अर्थात् विश्वकर्माका देखा हुआ, या निश्चय किया हुआ) घनु होता है, यह सड़क और किले या शहरके परकोटेके नापनेमें काम आता है । तथा अभि-
घयन अर्थात् यज्ञसम्बन्धी विशेष कार्योंमें भी एकसा आठ अंगुलका एक ' पौरुप ' माना जाता है ॥ २० ॥

४ अरत्ति=१ दण्ड-घनु-नालिका-पौरुप ।

१०८ अंगुल=१ गार्हपत्यघनु (सड़क और परकोटा आदि नापनेके लिये) ।

" =१ पौरुप (यज्ञसम्बन्धी कार्योंके लिये) ।

पदकंसो दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम् ॥ २१ ॥ दशदण्डो
रज्जुः ॥ २२ ॥ द्विरज्जुकः परिदेशः ॥ २३ ॥ त्रिरज्जुकं
निवर्तनम् ॥ २४ ॥

छाः कंस अर्थात् आठ मानापत्य हाथका एक दण्ड होता है; यह कृत्विक् आदि ब्राह्मणोंको दिये जाने वाले भूमि पदाथों, तथा अतिथियोंके दिसकर पदा-
थोंके नापनेमें काम आता है ॥ २१ ॥ दश दण्डका एक रज्जु होता है । (बर्हा

पर दण्ड साधारण, चार हाथका ही लेना चाहिये) ॥ २२ ॥ दो रज्जुका एक 'परिदेश' होता है ॥ २३ ॥ और तीन रज्जुका अर्थात् षेड परिदेशका एक 'निवर्त्तन' होता है ॥ २४ ॥

१ कस या आठ हाथ=१ दण्ड (ब्राह्मण आदिको भूमि देनेके का वेंमें उपयुक्त होन वाला) ।

१० दण्ड=(यहाँ एक)
दण्ड साधारण }
४ भरसिका ही } =१ रज्जु
लेना चाहिये) ।

२ रज्जु =१ परिदेश

३ रज्जु या १३ परिदेश=१ निवर्त्तन

एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः ॥ २५ ॥ द्विघनुःसहस्रं गोरु-
तम् ॥ २६ ॥ चतुर्गोरुतं योजनम् ॥ २७ ॥ इति देशमानं व्या-
ख्यातम् ॥ २८ ॥

तीस दण्डका एक निवर्त्तन होता है, उसके एक ओरको यदि दो दण्ड बचा दिये जायें, अर्थात् जिस परिमाणमें लम्बाई चौड़ाई एकसी न होकर एक ओर तीस दण्ड और एक और बत्तीस दण्ड हो, उस परिमाणका नाम 'बाहु' होता है ॥ २५ ॥ दो हजार धनुका एक गोरुत हाता है इसको एक क्रोश या कोस भी कहते हैं ॥ २६ ॥ चार गोरुतका एक योजन हाता है ॥ २७ ॥ यहाँ तक देश मानका निरूपण किया गया ॥ २८ ॥

इस सम्पूर्ण दश मानका, पीछकी अवान्तर नापों को छोड़कर, निम्न लिखित रीतिले निर्देश किया जासकता है —

- ५८ परमाणु =१ धूलीकण
- ८ धूलीकण =१ लिङ्गा
- ८ लिङ्गा =१ सूकामध्य
- ८ सूकामध्य =१ यवमध्य
- ८ यवमध्य =१ अगुल
- ४ अगुल =१ धनुर्वेद
- २ धनुर्वेद =१ धनुर्मुष्टि
- १३ धनुर्मुष्टि =१ वितस्ति=(१ विकल्पद)
- २ वितस्ति =१ 'अंजि'=(१ हाथ)
- ४ अंजि =१ दण्ड

१० दण्ड	= १ रज्जु
२ रज्जु	= १ परिदश
१३ परिदेश	= १ निवर्त्तन
६६३ निवर्त्तन,	} = १ गोरत (क्राप=कोश)
या २००० घनु (दण्ड)	
४ गोरत	= १ योजन

कालमानमत ऊर्ध्वम् ॥ २९ ॥ तुटो लवो निमेषः काष्ठा
कला नालिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास
ऋतुरयनं भवत्सरो युगामेति कालाः ॥ ३० ॥

अथ इसके आगे काल मानका निरूपण किया जायगा ॥ २९ ॥ तुट (शुद्धि), लव, निमेष, काष्ठा, कला नालिका, मुहूर्त, पूर्वभाग (पूर्वाह्न), अपरभाग (अपराह्न), दिवस (दिन), रात्रि, पक्ष (पक्षरात्र), मास, ऋतु, अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन छ महीनका एक अयन होता है) सवत्सर भार युग, ये कालके साधारणतया सगइ विभाग किय जात है ॥ ३० ॥

निमेषचतुर्भागस्तुटः, द्वौ तुटो लव ॥ ३१ ॥ द्वौ लवौ
निमेषः ॥ ३२ ॥ पञ्च निमेषा काष्ठा ॥ ३३ ॥ त्रिंशत्काष्ठाः
कला ॥ ३४ ॥

निमेष (आलका पलक मारामें जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं) का चौथा हिस्सा, अर्थात् कालका सबसे छोटा परिमाण तुट या शुद्धि होता है । या तुटका एक लव होता है ॥ ३१ ॥ दो लवका एक निमेष होता है ॥ ३२ ॥ पांच निमेषका एक काष्ठा होती है ॥ ३३ ॥ तीस काष्ठाकी एक कला होती है ॥ ३४ ॥

चत्वारिंशत्कलाः नालिका ॥ ३५ ॥ सुवर्णमापकाश्चत्वार-
श्चतुरङ्गुलायामा कुम्भच्छिद्रमाटकमम्भसो वा नालिका ॥ ३६ ॥

चालीस कलाकी एक नालिका होती है ॥ ३५ ॥ अथवा एक घड़में चार सुवर्ण मापककी बराबर चीन्हा और चार भगुल लम्बा एक छद्र बनाया जाय, अर्थात् इतने परिमाणकी एक नलीसी घड़ेमें लगायी जाय, और उस घड़ेमें एक भावक जल भर दिया जाये, उसना जल उत नलीसे जितने समयमें निकले, उतने कालको भी नालिका कहते हैं । (किसी २ पुस्तकमें इस एक घड़

के स्थानपर दो सूत्र दिये गये हैं । जिसमें 'सुवर्णमापकाश्चत्वारश्चतुरस्रगुला यामा' वहा तक एक सूत्र माना है; इसमें कोई पाठ भेद नहीं, परन्तु सूत्रके अगले भागके स्थानपर सर्वथा पाठ-भेदरूप एक दूसराही सूत्र इस प्रकारका है—'सप्तमानुवृत्तमिदं जलद्वयस्य पात्रता कालेन सति स कालो वा मालिका' । दोनों पाठोंमें अर्थ समान ही है ॥ ३६ ॥

दिनालिको मुहूर्तः ॥ ३७ ॥ पञ्चदशमुहूर्तो दिवसो रात्रिश्च
त्रै मास्याश्चयुजे च मासि भवतः ॥ ३८ ॥ ततः परं त्रिभिर्मु-
हूर्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते हसते चेति ॥ ३९ ॥

दो मालिकाका एक मुहूर्त होता है ॥ ३७ ॥ पन्द्रह मुहूर्तोंका एक दिन और एक रात होते हैं । परन्तु ये इस परिमाणके दिन रात चेतके महीनम और आधिनक महीनमें ही होते हैं । क्योंकि इन महीनोंमें दिन और रात बराबर २ हात हैं ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर छ महीनतक दिन बढ़ता जाता है, और रात्रि घटती जाती है, फिर दूसरे छ महीने तक, रात्रि घटती जाती है, और दिन घटना जाता है । यह घटना और बढ़ना तीन मुहूर्त तक होता है । अर्थात् दिन और रातमें अधिकसे अधिक तीन मुहूर्तकी न्यूनताधिकताका भेद पट जाता है ॥ ३९ ॥

छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागश्लेदः ॥ ४० ॥ पदपौरुष्यां
चतुर्दशभागः ॥ ४१ ॥ चतुष्पौरुष्यामष्टभागः ॥ ४२ ॥ द्विपौ-
रुष्यां षट्भागः ॥ ४३ ॥ पौरुष्या चतुर्भागः ॥ ४४ ॥ अष्टा-
ङ्गुलायां त्रयो दशभागाः ॥ ४५ ॥ चतुरङ्गुलायां त्रयोऽष्टभागाः
॥ ४६ ॥ अच्छायो मध्याह्न इति ॥ ४७ ॥

जब धूप घड़ीमें छाया आठ छायापौरुष्य लम्बी हो (बारह अंगुलका एक पौरुष्य होता है, आठ छायापौरुष्यमें छयागर्भे अंगुल धूप, इसलिये जब धूप घड़ी की छाया ९६ अंगुल लम्बी हो), तो समझना चाहिये कि सम्पूर्ण दिनका अठारहवाँ हिस्सा समाप्त हो चुका है (एक पूरा दिन तीन नाटिकाका होता है, उसका अठारहवाँ हिस्सा पौने दो नाटिका हुई, इतना समय बीत चुकता है, और तब अट्ठाईस नाटिका उस समय तक दिनकी बाकी रहती है) ॥ ४० ॥ इसी तरह बहुर अंगुल छाया रहनेपर दिनका चौदहवाँ हिस्सा ॥ ४१ ॥ अष्टाङ्गुलाय अंगुल छाया रहनेपर दिनका आठवाँ हिस्सा ॥ ४२ ॥ द्विपौरुष्या अंगुल छाया रहनेपर दिनका छह हिस्सा ॥ ४३ ॥ पौरुष्या अर्थात् बारह अंगुल छाया रहनेपर दिनका चार हिस्सा ॥ ४४ ॥ अष्टाङ्गुलाय अंगुल छाया रहनेपर दिनका त्रयोदश भाग ॥ ४५ ॥ चतुरङ्गुलाय अंगुल छाया रहनेपर दिनका त्रयोऽष्ट भाग ॥ ४६ ॥ अठारह अंगुल छाया रहनेपर

दिनके दस भागोंमेंसे तीन हिस्सा; (दिनके दस भाग कल्पना करके, फिर उनका तीसरा हिस्सा) ॥ ४५ ॥ चार अंगुल छाया रहनेपर, दिनके आठ हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन समाप्त हुआ २ समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ जब छाया विशुद्ध न रहे, तो पूरा मध्याह्न समझना चाहिये ॥ ४७ ॥

परावृत्ते दिवसे शेषमेवं विद्यात् ॥ ४८ ॥

मध्याह्न अर्थात् चारह बजेके बाद, उपर्युक्त छायाके अनुसार दिनका शेष समझना चाहिये । अर्थात् चार अंगुल छाया होनेपर, दिनके आठ हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन शेष समझना चाहिये । इसी प्रकार आठ अंगुल छाया होनेपर, दिनके दस हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन शेष समझना चाहिये । चारह अंगुल रहनेपर दिनका चौथा हिस्सा, चौबीस अंगुल होनेपर छठा, अड़तालीस अंगुल होनेपर आठवां, बहतर अंगुल होनेपर चौदहवां, छियासवें अंगुल होनेपर अठारहवां हिस्सा दिनका शेष समझना चाहिये । तदनन्तर दिन समाप्त हो जाता है, और रात्रिका प्रारम्भ होता है ॥ ४८ ॥

आपादे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति ॥ ४९ ॥ अतः परं श्रावणादीनां पणमासानां द्वयङ्गुलोत्तरा माघादीनां द्वयङ्गुलापरं छाया इति ॥ ५० ॥

आपादके महीनेमें मध्याह्न छाया रहित होता है ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर, श्रावणके महीनेसे लाकर छ महीनेमें मध्याह्नके समय भी दो अंगुल छाया अधिक होती है, और फिर माघ आदि छ महीनोंमें दो अंगुल न्यून हो जाती है ॥ ५० ॥

पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः ॥ ५१ ॥ सोमाप्यायनः शुक्लः ॥ ५२ ॥ सोमावच्छेदनो बहुलः ॥ ५३ ॥

पन्द्रह दिन रातका एक पक्ष होता है ॥ ५१ ॥ चन्द्रमा जिस पक्षमें बढ़ता चला जाय उसे शुक्लपक्ष कहते हैं ॥ ५२ ॥ और जिस पक्षमें चन्द्रमा घटता जाये, उसे बहुल अर्थात् कृष्णपक्ष कहते हैं ॥ ५३ ॥

द्विपक्षो मासः ॥ ५४ ॥ त्रिंशद्दहोरात्रः प्रकर्ममासः ॥ ५५ ॥ सार्धः सौरः ॥ ५६ ॥ अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः ॥ ५७ ॥ सप्तविंशतिर्नाक्षत्रमासः ॥ ५८ ॥ द्वात्रिंशत् मलमासः ॥ ५९ ॥ पञ्चत्रिंशदश्ववाहायाः ॥ ६० ॥ चत्वारिंशद्वास्तिवाहायाः ॥ ६१ ॥

दो पक्षका एक महीना होता है ॥ ५४ ॥ तीस दिन रात का एक महीना, नौकरों को घतन आदि देनेके लिये काममें छाया जाता है ॥ ५५ ॥ साठे तीस (३०-३) दिनका, एक सौर (सूर्य की गतिके अनुसार की हुई गणनाके द्वारा बना हुआ) मास होता है । (इसलिये ५४ सूत्रमें जो दो पक्ष का महीना बताया है, वहाँ चान्द्रमास ही समझना चाहिये, दो पक्षकी कल्पना चन्द्रमाके अनुसार ही की जाती है । इसके अतिरिक्त ५७ सूत्रमें चान्द्रमास की ठीक ३ गणना बताई गई है) ॥ ५६ ॥ साठे उन्तीस (२९-३) दिन का एक चान्द्रमास होता है ॥ ५७ ॥ सत्ताईस (२७) दिनका नाक्षत्रमास होता है ॥ ५८ ॥ बत्तीस (३२) दिन रातका एक मलमास होता है ॥ ५९ ॥ पैंतीस दिन रातका एक महीना, घोड़ोंपर काम करनेवाले सईस आदि नौकरों को घतन देनेके लिये काममें छाया जाता है । अर्थात् इन भूत्योंका महीना ३५ दिनका समझना चाहिये ॥ ६० ॥ इसी प्रकार जो सेवक हाथियों पर काम करने वाले हों, उनका महीना चालीस दिनका समझना चाहिये । अर्थात् इतने दिनों का एक महीना मानकर उन्हें वेतन दिया जावे ॥ ६१ ॥

द्वौ मासाश्रुतः ॥ ६२ ॥ श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः ॥ ६३ ॥
आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत् ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः
॥ ६५ ॥ माघः फाल्गुनश्च शिशिरः ॥ ६६ ॥ चैत्रो वैशाखश्च
वसन्तः ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय आपादश्च ग्रीष्मः ॥ ६८ ॥

दो महीनेका एक ऋतु होता है ॥ ६२ ॥ श्रावण और प्रोष्ठपद (अर्थात् भाद्रपद), इन दो महीनों की वर्षाऋतु होती है ॥ ६३ ॥ आश्विन और कार्तिक इन दो महीनों की शरद् ऋतु होती है ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्ष (अग्रहन-मगसिर) और पौष, इन दो महीनों की हेमन्त ऋतु होती है ॥ ६५ ॥ माघ और फाल्गुन इन दो महीनों की शिशिर ऋतु होती है ॥ ६६ ॥ चैत्र और वैशाख ये दो महीने वसन्त ऋतुके होते हैं ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय (ज्येष्ठ-जेठ) और आपाद महीनेमें ग्रीष्म ऋतु होती है ॥ ६८ ॥

शिशिरात्पुत्ररायणम् ॥ ६९ ॥ वर्षादि दक्षिणायनम् ॥ ७० ॥
द्रव्ययनः संवत्सरः ॥ ७१ ॥ पञ्चसंवत्सरो युगादिति ॥ ७२ ॥

शिशिर वसन्त और ग्रीष्म ऋतु उत्तरायण कहाती है ॥ ६९ ॥ और वर्षा शरद् तथा हेमन्त ये तीनों ऋतु दक्षिणायन कही जाती है ॥ ७० ॥ दो अयन (दक्षिणायन और उत्तरायण) का एक संवत्सर होता है ॥ ७१ ॥

पाँच संवत्सर का एक युग होता है। यहाँ तक कालमानका निरूपण किया गया ॥ ७२ ॥

कालके अवाप्तर विभागों को छोड़कर, शेष सम्पूर्ण कालमानका निम्न-लिखित रीतिसे निर्देश किया जासकता है:—

२ तुट	=	१ लव
२ लव	=	१ निमेष
५ निमेष	=	१ काष्ठा
३० काष्ठा	=	१ कला
४० कला	=	१ नाडिका
२ नाडिका	=	१ मुहूर्त्त
१५ मुहूर्त्त	=	१ दिन और रात
१५ दिन रात	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ महीना
२ महीना	=	१ ऋतु
३ ऋतु	=	१ अयन
२ अयन	=	१ संवत्सर
५ संवत्सर	=	१ युग

दिवसस्य हरत्येकं षष्टिभागमृती ततः ।

करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥ ७३ ॥

एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम् ।

श्रीष्मे जनयतः पूर्वं पश्चाद्दान्ते च पथिमम् ॥ ७४ ॥

इत्यध्यायप्रचारे द्वितीये अधिकरणे देशकालमानं विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

आदित एतच्चत्वारिंश ॥ ४१ ॥

अब दो श्लोकोंसे मूलमास या अधिमास का निरूपण करते हैं—सूर्य मनिदिन, दिनके साठवें हिस्से अर्थात् एक षटिका का छेद कर लेता है, इस तरह एक ऋतु में साठ षटिका=एक दिन, अधिक बना देता है। (इस प्रकार एक सालमें छः दिन, दो सालमें १२ दिन, और द्वाद्वी सालमें पन्द्रह दिन अधिक बना देता है)। इसी तरह चन्द्रमा भी प्रत्येक ऋतुमें एक २ दिन कम करता चला जाता है, और द्वाद्वी सालके बाद पन्द्रह दिनकी कमा होजाती है। इस प्रकार द्वाद्वी सालमें, सौर और चान्द्र गणनाके अनुसार दोनोंमें एक महीने की न्यूनताधिकता का भेद पत्र जाता है। उस समय द्वाद्वी सालके तीस महीनेके बाद, श्रीष्म ऋतुमें प्रथम मूलमास या अधिक मासकी और पाँच

सालके बाद हेमन्त ऋतुमें एक अधिमास को, सूर्य और चन्द्रमा उरपन्न करते हैं। अर्थात् साईं सालमें इनकी गणनामें जो एक महीनेका भेद पड़जाता है। उसे एक महीना और अधिक बढ़ाकर पूरा कर दिया जाता है ॥७३,७४॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें धीसत्वा अध्याय समाप्त ।

इक्कीसवां अध्याय

३९ प्रकरण

शुल्काध्यक्ष

{ राजाका दिय जाने वाले भण्ड का नाम शुल्क (चुगी टैक्स) है, इस कार्यपर नियुक्त हुए प्रधान राज्याधिकारी को शुल्काध्यक्ष कहा जाता है। उसके कार्यों का निरूपण इस प्रकरण में किया जायगा ।

शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां षज च प्राद्मुत्समुदद्मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत् ॥ १ ॥

शुल्काध्यक्ष को चाहिये कि वह शुल्कशालाकी स्थापना करावे, और उसके पूर्व तथा उत्तरकी ओर, प्रधान द्वारके समीप एक ध्वजा (पताका) लगवावे, जो कि शुल्कशालाकी चिन्हभूत हो ॥ १ ॥

शुल्कादायिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्धोपयातान्वणिजो लिखेयुः ॥ २ ॥ के कुतस्तथाः कियत्पण्याः फ चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता इति ॥ ३ ॥

{ शुल्काध्यक्ष, शुल्कशालामें चार या पांच पुरुषों को नियुक्त करे, जोकि लोगोंस शुल्क (चुगी) ग्रहण करते रहें, और जो व्यापारी आदि अपने माल को लेकर उधरस निकलें, उनके सम्बन्धमें निम्न लिखित बातोंको लिखें — ॥ २ ॥ उनके नाम जाति आदि उनका निवास स्थान (अर्थात् वे व्यापारी कहाँके रहने वाले हैं) उनका पासकी विधेय वस्तुका परिमाण, और किस स्थानमें उन्होंने अपने मालपर यहाँकी विदाप मुहर लगवाई है। (अर्थात् किंय अतःपाल आदिने उनका मालको देखकर उसपर अपनी मुहरकी है, अथवा की है या नहीं ?) ॥ ३ ॥

अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुण ॥ ४ ॥ कूटमुद्राणां शुल्काद्दे-
गुणो दण्डः ॥ ५ ॥

जिन व्यापारियोंके मालपर वह मुहर न लगी हुई हो, उनको उस देय अर्थात् दुगना दण्ड दिया जावे (जो अश, उसे अन्तपालके पास देना चाहिये था, उसीका दुगना दण्ड देना चाहिये) ॥५॥ तथा जिन व्यापारियोंने अपने मालपर नकली मुहर लगाई हो, उनको उस शुल्कसे आठ गुणा दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥

भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकाः स्थाने स्थानम् ॥ ६ ॥ राज-
मुद्रापरिवर्तने नामकृते वा सपादपणिकं वहनं दापयेत् ॥ ७ ॥

जो व्यापारी मुद्रा लेकर उसे नष्ट करदे, उन्हें तीन घटिका तक शुल्क शालाके ऐसे हिस्सेमें बैठाया जावे, जहाँपर जाने जाने वाले अन्य सब व्यापारी उनको देखे, कि इन्होंने अमुक अपराध किया है। यही उनका दण्ड है ॥ ६ ॥ राजकीय मुद्राके बदल देनेपर, अथवा विक्रीय वस्तुका नाम बदल देनेपर, पण्य को लेजाने वाले पुरुषको (अर्थात् जो पण्य विक्रीय वस्तुको लेजावे, उसे) सवा (१ १/२) पण दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

ध्वजमूलोपस्थितस्य प्रमाणमर्घ्यं च वैदेहकाः पण्यस्य न्यूः
॥ ८ ॥ एतत्प्रमाणेनार्धण पण्यमिदं कः क्रेतेति ॥ ९ ॥

व्यापारी पण्य शुल्कशालामें आगाम उपस्थित हुए पण्यके परिमाणको और मूल्यको इसप्रकार कह अर्थात् आवाज लगावे ॥ ८ ॥ इस मालका इतना परिमाण और इतना मूल्य है, इसका कोई खरीदने वाला है ? (अर्थात् जो इसको खरीदने वाला हो, वह बोले) ॥ ९ ॥

विरुद्धोपितमर्थिभ्यो दद्यात् ॥ १० ॥ क्रेतृमर्घ्ये मूल्यद्विः
सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ११ ॥

इसप्रकार तीनबार आवाज देनेपर जो खरीदना चाहे, उसे उतनेही मूल्यपर माल दिला दिया जावे ॥ १० ॥ यदि खरीदने वालोंमें आपसमें सघर्ष होजावे (अर्थात् खरीदने वाले, एक दूसरेसे बढ़कर उस मालका मूल्य लगाते जावे), तो उस मालके बोले हुए मूल्यसे जितनी अधिक आमदनी हो, वह शुल्क सहित (बुगीके साथ २) राजकीय कोशमें भेजदी जावे ॥ ११ ॥

शुल्कभयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं हुयतस्तदतिरिक्तं राजा
हरेत् ॥ १२ ॥ शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात् ॥ १३ ॥

शुल्क अधिक देनेके डरसे जो व्यापारी, अपने मालके परिमाणको और मूल्यको, कम करके बोले, तो उसके बोले हुए परिमाणसे अधिक मालको राजा केलेवे ॥ १२ ॥ अथवा उस व्यापारीसे इस अपराधमें आठ गुना शुल्क पसूक किया जावे ॥ १३ ॥

१६ ॥ १७ शस्त्र (हथियार), वर्म (साधारण कवच आदि आवरण), कवच (बाहु सिर आदि सम्पूर्ण अवयवोंसे युक्त विशेष कवच), लोहा, रथ, रत्न, धाम्य (अस्त्र आदि); तथा पशु इन आठ वस्तुओंमें से किसी एकको भी, जिसके सम्बन्धमें राजाने लाना लजाना बन्द कर दिया हो, कोई छावे लेजावे, उसकी वही पक्षी जन्त करनी जावे, और पहिले की हुई घोषणाके अनुसार उसे दण्ड दिया जाय- अर्थात् राजासे प्रतिपिद्ध-इन वस्तुओंको लाने लेजान वाला पुरुष इस प्रकार दण्डित किया जावे ॥ २६ ॥ यदि उपर्युक्त शस्त्र आदि आठ वस्तुओंमें से कोई भी वस्तु बाहरसे लाई जावे, तो वह चुगीके बिना ही बाहर (अर्थात् नगरकी अवधि के बाहर) ही बेची जा सकती है ॥ २७ ॥

१ अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं गृहीयात्पण्यवहनस्य ॥२८॥
पणिकामेकखुरस्य पशूनामर्धपणिकां क्षुद्रपशूनां पादिकामसभारस्य माषिकाम् ॥ २९ ॥ नष्टापहतं च प्रतिधिदध्यात् ॥ ३० ॥

अन्तपाल, बिक्रीका माल दाने वाली गाधी आदिसे सवा पण (१ १/२ पण) वर्तनी (मागमें रक्षा आदि करनेवाला टैक्स) लवे ॥ २८ ॥ घोड़े खर गध आदि एक खुर वाल पशुओंकी एक पण वर्तनी लवे । तथा इनसे अतिरिक्त बैल आदि पशुओंकी आधा पण, बकरी भेड़ आदि क्षुद्र पशुओंका चौथाई पण, और कधे पर भार देने वाली वी एक माष (ताबेका एक सिक्का) वर्तनी लवे ॥ २९ ॥ यदि किसी व्यापारीकी कोई चाल गट होजाये, या चारोंके द्वारा चुराली जाये, तो अन्तपालही उसका प्रबन्ध करे, सारे हुए चीजको दण्डकर, तथा चुराई हुए चीजका चोरोंको पकड़कर वापस लेकर देवे, अथवा अपरा पासस देवे ॥ ३० ॥

१ वैदेश्यं सार्थं ; कृतसारफलगुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दद्यात् प्रेपयेदध्यक्षस्य ॥ ३१ ॥ वैदेहकन्यञ्जनो वा सार्थप्रमाणं राज्ञः प्रेपयेत् ॥ ३२ ॥

विदेशम आनेवाले व्यापारी, समूहको, अन्तपाल, उनके साथ तरहके बर्तिया और घटिया मालका जाचकर, उसपर मुहर लगाकर तथा उन्हें रमदा (पास) देकर, अध्यक्ष (गुल्काध्यक्ष) के पास भेज दये ॥ ३१ ॥ व्यापारियोंके साथ, छिपे बेशम रहन वाला, राजासे नियुक्त किया हुआ गुरुपुरुष, राजाको उन सब व्यापारियोंके सम्बन्धमें पहिली गुप्तस्मसे खबर देवे ॥ ३२ ॥

१ ॥ ३३ ॥ तेन प्रवेदेन राजा ह्युल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेत्सर्व-
व्यसंख्यापनार्थम् ॥ ३३ ॥ ततः सार्थमध्यक्षो अभिगम्य, श्रुत्वात्

॥ ३४ ॥ इदममुष्यामुष्य च सारभाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगू-
हितव्यम् ॥ ३५ ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥ ३६ ॥

इसी सूचनाके द्वारा, राजा शुक्लाभ्यक्षके मास, उन व्यापारियोंके सम्बन्धमें उपयोगी सब बात लिख भेजे, जिससे कि शुक्लाभ्यक्षको राजाकी सर्व-श्रुतापर विश्वास होजाये, तथा वह राजाकी इस बातको विश्वास-पूर्वक कह सके ॥ ३३ ॥ तदनन्तर इसीके अनुसार, शुक्लाभ्यक्ष व्यापारियोंसे जाकर कहे ॥ ३४ ॥ आप लोगोंमेंसे अमुक २ व्यापारीका इतना २ पहिया माल तथा इतना पहिया माल है, इसमेंसे आपको कुछ भी छिपाना न चाहिये ॥ ३५ ॥ इसीसे राजाका इतना प्रभाव है, कि वह इस प्रकार परीक्ष वस्तुओंके सम्बन्धमें भी अपना निश्चय देसकता है । (इसप्रकार राजाकी महिमाको उनपर प्रकट करे) ॥ ३६ ॥

निगूहृतः फल्गुभाण्डं शुक्लाष्टमुणो दण्डः ॥ ३७ ॥ सार-
भाण्डं सर्वापहारः ॥ ३८ ॥

जो व्यापारी पहिया मालको छिपावे, उसे छुटकसे आठ गुना दण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ तथा जो सारभाण्ड अर्थात् पहिया मालको छिपावे, उसके उस सम्पूर्ण मालका अपहरण कर लिया जावे, अर्थात् उसे जूत कर लिया जावे ॥ ३८ ॥

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्धादफलं च यत् ।

महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्भीजं तु दुर्लभम् ॥ ३९ ॥

इत्यभ्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे शुक्लाभ्यक्ष पृथ्विसोऽध्यायः ॥ २१ ॥

आदितो द्विचतुर्विंशः ॥ ४२ ॥

राष्ट्रको पीडा पहुंचाने वाले (विप या मादक द्रव्य आदि), तथा कोई अन्य अर्थात् फल न देने वाले मालको राजा नष्ट करवा देवे । और जो प्रजाको उपकार करने वाला, तथा अपने देशमें कठिनतासे मिलने वाला, धान्य आदि या अन्य प्रकारका माल हो, उसे शुल्क रहित कर दिया जावे; अर्थात् उसपर सुगी न लीजावे, जिससे कि ऐसा माल अधिक मात्रामें अपने देशके अन्दर भासके ॥ ३९ ॥

अभ्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें इसीत्यां अध्याय समाप्त ।

जानकर, उसीके अनुसार उन्हें (विधवा आदि सूत कातने वाली स्त्रियोंको) तैल, भाँवला और उबटना पारितोषिक रूपमें देकर उन्हें अनुपूहीत करे। जिससे कि वे प्रसन्न होकर और अधिक कार्य करने के लिये प्रोत्साहित होंगे ॥ ५ ॥

तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः ॥ ६ ॥ सूत्र-
हासे वेतनहासः द्रव्यसारात् ॥ ७ ॥

कार्य करनेके दिनोंमें, दिये जाने वाले वेतनका विभाग करके कार्य करवाया जावे। अर्थात् अमुक कार्य, इतना करनेपर इतना वतन मिलेगा, और इतना कार्य करनेपर इतना। अथवा इस सूत्रका यह अर्थ करना चाहिये, तिथियों अर्थात् पर्वों या पुष्टियोंके दिनोंमेंभी भोजन दान या सरकार आदिके द्वारा उनसे कार्य करवाया जावे ॥ ६ ॥ सूत यदि उचित प्रमाणसे कम होवे, तो उस द्रव्यके मूल्यके अनुसारही वेतन कम दिया जावे। (अर्थात् सूत यदि अधिक कीमती हो तो वतन अधिक माटा जावे, भार कम कीमत होनेपर कम ॥ ७ ॥

कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुमैश्च कर्म कारयेत्प्रतिसंसर्गं च गच्छेत् ॥ ८ ॥

कार्य सिद्धिके अनुसार जिनके साथ, नियत कार्य, फाल, और वेतन आदिका निश्चय किया जायुंका है ऐसे पुरुषोंके द्वारा, तथा अन्य कारीगरोंके द्वारा, कार्य करवाया जावे। और उनसे मेल पैदा किया जावे, जिससे कि वे काम में कोई बेईमानी न कर सकें, यदि करें भी, तो सरलतासे सबकुछ मालूम होजाय ॥ ८ ॥

धौमदुकूलक्रिमितानराङ्गवकार्पाससूत्रवानकर्मान्तांश्च प्रयु-
आनो गन्धमाल्यदानैरन्यैथौपग्राहिकैराराधयेत् ॥ ९ ॥ मन्त्रा-
स्तरणप्रावरणविकल्पानुत्थापयेत् ॥ १० ॥

धौम, दुकूल, क्रिमितान, राङ्गव (रङ्ग एक प्रकारका मृग होता है, उसके बाल बंधे २ होते हैं, जिनका कपडा आदि धनाया जाता है, उसीकी उस उनके लिये यही 'राङ्गव' शब्दवा प्रयोग किया गया है), और कपास इन पाँचों चीजोंका सूत्र कतवाने और पुनश्चात्के कार्योंको कराता हुआ भव्य, कारीगरोंको गन्ध माल्य आदि देकर तथा अन्य प्रकारके पारितोषिक देकर सेवा प्रसन्न करता रहे ॥ ९ ॥ और फिर उनसे निम्न २ प्रकारके वस्त्र आस्तरण तथा प्रावरण आदि धनवावे ॥ १० ॥

१ कङ्कटकर्मान्तांश्च तज्जातकारुशिल्पिभिः कारयेत् ॥ ११ ॥

सूतके कवच आदिके कार्योंको, उन २ कार्योंमें निपुण कारीगरोंसे करवावे । (इस सूत्रमें कारु और शिल्पी दोनों पद हैं । माटा काम करने वाल कारीगरोंको 'कारु' और पारीक काम करने वाल कारीगरोंको 'शिल्पी' कहते हैं ॥ ११ ॥

२ वाश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधया न्यङ्गा कन्यका वात्मानं विभृयुस्ताः स्वदासीभिरनुसार्थं सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ॥ १२ ॥

जो स्त्रियां परदेमें रहकरही काम करना चाहें, जिनके पति परदेश में गये हुए हों, तथा अङ्गविकल और अविवाहिता स्त्रियें, जो कि स्वयं अपना पैरें पालन करना चाहें, अध्यक्षको चाहिये कि वह दासियोंके द्वारा उनसे मृत कृत्याने आदिका काम करवावे, और उनके साथ अर्जुनतरु सस्कार पूर्वक व्यवहार करे ॥ १२ ॥

३ स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युपसि माण्डवेतन-
विनिमयं कारयेत् ॥ १३ ॥ सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः ॥ १४ ॥

जो स्त्रियां मृत कालही स्वयं या दासियोंके साथ सूत्रशालामें पहुँचें, उनके घरपर कियेहुए कार्य (अर्थात् कातेहुए सूत्र आदि) को लेकर, उनका उचित वेतन दे दिया जावे ॥ १३ ॥ और वहापर (सूत्रशालामें, यदि अधिक सवेरा होनेके कारण कुछ अन्धेरासा हो, तो) प्रदीप आदिके द्वारा केवल इतना प्रकाश किया जाये, जिस से कि सूतकी अच्छी तरह परीक्षा की जासके ॥ १४ ॥

स्त्रिया मृतसदृशेन अन्यकार्यमभापायां वा पूर्वः साहस-
दण्डः ॥ १५ ॥ वेतनकालातिपातने मध्यम ॥ १६ ॥ अकृत-
कर्मवेतनप्रदाने च ॥ १७ ॥

स्त्रीका मुख देखन, अथवा कार्यके अतिरिक्त और हथर उधरकी बातचीत करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ वेतन देनेके समयका भातिकमण करनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ तथा, काम न करनेपरभी (शिद्यत आदि लेकर या अन्य किसी विशेष कारणसे) वेतन दे देनेपर मध्यम साहस दण्डही दिया जावे ॥ १७ ॥

४ गृहीत्या वेतनं कर्माकुर्वन्त्याः अङ्गुष्ठमंदंशं दापयेत् ॥ १८ ॥
भक्षितापहृतापस्कन्दितानां च ॥ १९ ॥ वेतनेषु च कर्मकराणां
प्रपराधतो दण्डः ॥ २० ॥

॥ जो भी वतन लेकरभी काम न करे, उसका भगूठा फट्टवा दिया जाय ॥ १८ ॥ और यही दण्ड उनकोभी दिया जाय, जो कि मालको खाजाय पुरालें, भयवा त्रिपारर भागजाय ॥ १९ ॥ भयवा सगही कार्य करने वाल कर्मचारियोंको अपराधक अनुसार वेतन सम्बन्धी दण्ड दियाजाय । तात्पर्य यह है, कि यह आवश्यक नहीं, कि कर्मचारियोंका दण्डदण्डही दिया जाय, किन्तु उसक स्थान पर अपराधानुसार कबल वतन दण्डभी दिया जा सकता है ॥ २० ॥

रज्जुवर्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं ससृज्येत ॥ २१ ॥ भाण्डानि च वेरत्रादीनि वर्तयेत् ॥ २२ ॥

रस्सी अदि बटकर जीविका करने वाले, तथा चमडका काम करने वाले कारीगोंक साथ, स्वयं सूत्राध्यक्ष मल जाल रक्ख ॥ २१ ॥ और उनस हर तरहके घमडे भादिक सामान तथा गाय भादि वाधनकी और भय प्रकारका हरतरहकी रहसिया आदि बनवावे ॥ २२ ॥

सूत्रवल्कमयी रज्जु वरत्रा वश्रवेणवीः ।

सांनाहा वन्धनीयाश्च यानयुग्यस्य कारयेत् ॥ २३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्विंताये ऽधिकरण सूत्राध्यक्षप्रयोगोऽध्याय ॥ २३ ॥

आदितश्रुत्वाश्वारिंसा ॥ ४४ ॥

सूत्र तथा सन आदिस बनाई जानवागी रहसिया और धैत तथा धांसोंसे उहे बूटकर बनाई जानेवाली वरत्रा (वरत=माटा रस्सा), जिस का कि उपयोग कपूच आदिके बतानेमें तथा घाडे और रथ आदिके बाधनेमें होता है, सैयार करवावे । अर्थात् सूत्राध्यक्ष, इन सब वस्तुओंको आवश्यकता अनुसार बनवावे ॥ २३ ॥

अध्यक्षप्रचार उ्तीय अधिकरणमें तेईसवा अध्याय समाप्त

चौवीसवां अध्याय

४१ प्रकरण

सीताध्यक्ष

{ कृषिकर्म अर्थात् खेताके इन ससहके कामोंको ' सीता ' कहा जाता है । इसके निरीक्षणके क्रिय जो राजकीय अधिकारी नियुक्त किया जावे, उसका नाम ' सीताध्यक्ष ' है । उसीके कार्योंका निरूपण इस प्रकरणमें किया गया है ।

सीताध्यक्षः कृपितन्त्रशुल्कवृक्षायुर्देवज्ञस्तज्जमसो वा, मर्व-
धान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाहिन्यक्षौमकार्पासवीजानि यथा-
कालं गृह्णीयात् ॥ १ ॥

सीताध्यक्ष (कृपि-विभागका प्रबन्धकर्ता=प्रधान अधिकारी) को यह आज्ञा दी है, कि वह वृषिशास्त्र, शुरुप्रशास्त्र (जिसमें भूमि आदिके पहिचानने और नापन आदिका निरूपण हो) किमी २ पुस्तकमें 'शुल्क' के स्थानपर 'गुल्म' भी पाठ है) तथा वृक्षायुर्देव (वह शास्त्र, जिससे वृक्ष आदिके सम्बन्धमें हुए तरहका ज्ञान प्राप्त किया जासके) को अच्छी तरह जाने, अथवा इन सब विद्याभासों जानने वाले पुरुषको अपना सहायक बनावे, और फिर ठीक समयपर सब तरहके अन्न, फूल, फल, शाक, कन्द, मूल वाहिन्य (येलपर लगान वाले फल पेदा आदि), क्षाम (तन जूट आदि) और कपास आदिके बीजोंका संग्रह कर ॥ १ ॥

बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दामकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वाप-
येत् ॥ २ ॥ कर्षणयन्त्रोपकरणजलीवर्द्धेपामसद्गं कारयेत् ॥ ३ ॥
कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकरज्जुवर्तकमर्पग्राहादिभिश्च ॥ ४ ॥
तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः ॥ ५ ॥

तदनन्तर उन बीजोंका अपन २ टाक समयपर बहुतपार हलोंस जोतीहुई अपनी भूमिमें, दास (उग्रदास क्रीतदास आदि), कर्मकर (वेतन आदि लेकर काम करने वाले नौकर), और कार्य करके दण्डको भुगताने वाले अपराधी पुरुषोंके द्वारा चुकावे ॥ २ ॥ खेत जोतनेके हल, तथा अन्य साधन और धैल आदिके साथ, इन कर्मचारी पुरुषोंका ससर्ग न होने दिया जाय । तात्पर्य यह है, कि इन साधनोंका ये कर्मचारी पुरुष, कार्यके समयमें ही लव, और उनका उपयोग करें, अनन्तर इनका उनसे कोई सम्बन्ध न रहे, उनकी रक्षाका प्रबन्ध करनेवाले पुरुष दूसरे होने चाहिये ॥ ३ ॥ इसी प्रकार कार, आर लुहार, चढई, रौंदनेवाले (किमी २ पुस्तकमें 'मेदक' के स्थानपर 'मेदक' पाठ भी है), रस्सी आदि बगानेवाले तथा सपेरोंसेभी इन कर्मचारी पुरुषोंका सदा ससर्ग न होना देवे, उनके सम्बन्धका जब कोई काम पड़े, तबही उनमें मिले मिलाव ॥ ४ ॥ कार आदिके किसी कार्यको ठीक न करनेके कारण यदि खेतमें कुछ नुकसान होजावे, तो उतनाही दण्ड उसको दिया जावे, अर्थात् यह नुकसानका मूल्य उससे वसूल किया जावे ॥ ५ ॥

पोडशद्रोणं जाङ्गलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानाम् ॥ ६ ॥

देशवापानामर्धत्रयोदशाश्मकानां त्रयोविंशतिरवन्तीनानाममित-
मपरान्तानां हैमन्यानां च कुल्यावापानां च कालतः ॥ ७ ॥

किन २ प्रदेशोंमें कितनी वर्षासे फसल ठीक होसकती है, इसका निरूपण करते हैं—सोलह द्रोण (घृष्टिके जलको मापनेके लिये बनायेहुए एक हाथ मुड़वोले कुण्डमें, वर्षाका सोलह द्रोण) जल इकट्ठा होनेपर समझना चाहिये, कि इतनी वर्षा मरुप्राय प्रदेशोंमें अच्छी फसल होनेके लिये पर्याप्त है। इसीप्रकार जलप्राय प्रदेशोंमें चौबीस द्रोण (अर्धर्ध=सोलह द्रोणसे, उसका आधा और अधिक=२४ द्रोण), वर्षा पर्याप्त समझनी चाहिये ॥ ६ ॥ भव देश भेदसे इस बातका निरूपण किया जाता है, कि किन २ देशोंमें कितनी २ वर्षा अच्छी फसलके लिये पर्याप्त है—अश्मक देशोंमें साठे तेरह (१३½) द्राण, मालवा प्रान्तमें तेईस (२३) द्रोण, अपरान्त अर्थात् पश्चिमके राजपूताना प्रान्तमें अपरिमित, हिमालयके प्रदेशोंमें तथा उन प्रान्तोंमें जहांपर नहर आदि बनीहुई हैं, समय समयपर उचित वर्षा होने से फसल ठीक होजाती है ॥ ७ ॥

वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोर्द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुप-
मारूपम् ॥ ८ ॥

भिन्न २ देशोंमें होने वाली वर्षाके तीन भाग करने चाहियें, उनमें से पहिला एक हिस्सा श्रावण और कार्तिकके महीनेमें बरसना चाहिये, बाकी दोनों हिस्से भाद्रों और कार (आश्विन) में बरसने चाहियें। तारपर्यं यह है, वर्षाके दिनोंमें जितनी बारिश पड़े, उसके तीन हिस्से करके, एक हिस्सा श्रावण और कार्तिकमें, और बाकी दो हिस्से भाद्रों ववार में बरसें, तो वह सवास्तर बहुत अच्छा होता है, और इस प्रकारकी वर्षा होना फसलके लिये बहुत लाभदायक है ॥ ८ ॥

तस्योपलब्धिर्घृहस्पतेः स्थानगमनगर्माधानेभ्यः शुक्रोदया-
स्तमपचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवैकृताच्च ॥ ९ ॥

इस अच्छे सालका अनुमान निम्नलिखित रीतिसे होता है—घृह स्पतिके स्थान, गमन और गर्माधानस, शुक्रके उदय, अस्त और चारसे, सूर्यके कुण्डल आदि विकारसे। तारपर्यं यह है—जब घृहस्पति मेष आदि राशियोंपर स्थित हो, और फिर मेष आदि राशियोंसे ध्रुव आदि राशिवापर सक्रमण करे, (देसा होमा घृष्टिका कारण होता है यह बात ज्योतिषशास्त्रम प्रसिद्ध है)

तथा गर्भाधान अर्थात् मंगसिर आदि छः महीनोंमें तुषार आदि देखा जावे। इस प्रकार शुक्रका उदय और अस्त, तथा आषाढ़ महीने की पंचमी आदि नौ तिथियोंमें उसका संचार होना । और सूर्य के चारों ओर मण्डल होना, ये सब अच्छी तरह वर्ण होनेके चिन्ह हैं ॥ ९ ॥

सूर्याद्वीजसिद्धिः ॥ १० ॥ बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्बकरिता
॥ ११ ॥ शुक्राद्वृष्टिरिति ॥ १२ ॥

इनमें से सूर्यपर विकार होनेपर अर्थात् सूर्यके चारों ओर मण्डलाकार घेरा सा होनेपर वीजसिद्धि अर्थात् अनाज आदिका अच्छा दाना पड़नेका अनुमान करना चाहिये ॥ १० ॥ तथा बृहस्पतिसे अनाजके बढ़नेका अनुमान किया जाता है ॥ ११ ॥ और शुक्र के उदय आदिसे वृष्टिके होनेका अनुमान किया जाता है ॥ १२ ॥

त्रयः सप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः ।

पष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥ १३ ॥

अच्छी वर्षाका होना इस प्रकार समझना चाहिये:—तीन मेघ (बादल; यहाँपर मेघ शब्दका अर्थ वर्षा मालूम होता है) लगातार सात सात दिन तक बरसते रहें, अर्थात् यदि लगातार सात २ दिन तक तीनवार बारिश पड़े; और अस्तीवार बूंद २ करके बारिश पड़े; तथा साठवार धूसरे शुष्क वृष्टि पड़े, अर्थात् बीचमें धूप हो २ कर फिर वृष्टि पड़े; तो यह इस प्रकारकी वृष्टि उचित तथा अत्यन्त लाभदायक होती है ॥ १३ ॥

वातमातृपयोगं च विमज्जन्यत्र वर्षति ।

त्रीन्करीपांश्च जनयंस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः ॥ १४ ॥

* मार्गशिराः सतुषारः सहिमः पापः समारुतो माघः ।

साभ्रः फाल्गुनमासः सपवनवृष्टिश्च यदि चैत्रः ॥

तडिद्धानिलयितुजलवृष्टितो भवति यदि च वैशाखः ।

सम्यग् वर्षति मघवान् धारणादेवसेषु वर्षति चैत् ॥

मंगसिरमें तुषार अर्थात् फोहरेका होना, पौषमें बरफका पड़ना, माघमें हवा चलना, फाल्गुनमें बादलोंका आना, और चैत्रमें हवाके साथ २ वृष्टिका होना, तथा वैशाखमें विजली चमकना बादल आना हवा चलना विजलीका गिरना बादलोंका बरसना देखकर; तथा इसीप्रकार धारणके दिनोंमें (वैशाख कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि चार तिथियोंका नाम धारण होता है) वर्षा होना देखकर यह समझना चाहिये कि इस फलकमें बारिश बहुत अच्छी होगी ।

(२६२)

कौटलीय अर्थशास्त्र

[२ अधि०

वायु और धूपको अग्रसर देता हुआ, अर्थात् इनको पृथक् २ विभक्त करके अपना काम करता हुआ, आर बीच २ में तीनवार खेत जातने का अवसर देता हुआ, मेघ जिम दशमें वरसता है, वहापर निश्चय ही फसल का अच्छा होना समझना चाहिये ॥ १४ ॥

ततः प्रभूतोदकमलोदकं वा सस्यं वापयेत् ॥१५॥ शालि-
व्रीहिं सोद्वैतिलप्रियङ्गुदारकवराकाः पूर्ववापाः ॥ १६-॥ मुद्गमा-
प्यैम्यथा मध्यवापाः ॥ १७ ॥

इस प्रकार वृष्टिके परिमाणको अच्छी तरह जाननेके बाद, फिर अधिक जलस अथवा थोड़े जलसे उत्पन्न होने वाले अन्नको बीजा जाय । अर्थात् वृष्टि आदिके अनुसार हा खताम भाज घोया जाना चाहिये ॥ १५ ॥ शाली (सार्दी घान), घोडि (गहू जो आदि धान्य) कोदा, तिल, कगनी, और लोभिया आदि, वर्षाके पहले अनाम हा बोदेन च हिये ॥ १६ ॥ मूग, उदद, और छोमो आदिको बीचमें बोना च हिये ॥ १७ ॥

कुसुम्भमसूरकुलुन्थयमगोधूमकलायातसीमर्षपाः पश्चाद्वापाः
॥ १८ ॥ यथर्तुरशेन वा राजीवापाः ॥ १९ ॥

कुसुम्भ (कुसुमा) मसूर, कुत्ती, जौ, गेहू मटर, अतसी तथा सरसा आदि अन्न को वर्षाके अग्रम घोया जाये ॥ १८ ॥ अथवा इन सबही अन्नको क्रतु अनुसार जेस उचित समझ, बोना चाहिये ॥ १९ ॥

वांपातिरिक्तमर्षसीतिकाः कुर्षुः ॥ २० ॥ स्ववीर्योपजीविनो
वा चतुर्थपञ्चमाभिका यथेष्टमनपसितं भागं दशुरन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः
॥ २१ ॥

इस तरह जिन अन्नमें बीज न थाया जासके, उनमें अधवटाईपर काम करनेवाले किसान भाज घोय ॥ २० ॥ अथवा जो पुरुष केवल अपना शारीरिक धर्म करके जीविका करनेवाले हों, ऐसे पुरुष उन जमीनोंमें खेती करें, और फसलका घोया य पांचवा दिस्ता उनको दियाजावे । तथा अधवटाईपर खेतको अन्ननेवाले किसान, उन खेतोंमें उत्पन्न हुए २ अन्नमें से, स्वामीकी इच्छाके अनुसारही उसको देव; परन्तु उनपर (किसानापर) कोई वष्ट दा, तो ऐसा न करें ॥ २१ ॥

स्वसेतुभ्यः हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पञ्चमं दशुः ॥ २२ ॥
स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम् ॥ २३ ॥ स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृती-
यम् ॥ २४ ॥

अपनाही धनलगाकर स्वयं परिश्रम करके बनाये हुए तालाब आदिसे, हाथसे जल ढोकर खेत सींचनेपर, किसानोंको अपनी उपजका पाचवा हिस्सा राजाके लिये देना चाहिये ॥ २२ ॥ इसी प्रकारके तालाबोंसे, यदि खेतसे पानी ढाकर खेतोंको सींचाजावे, ता किसान अपनी उपजका चौथा हिस्सा राजाको देवे ॥ २३ ॥ यदि छोटी २ नहर या नालिया बनाकर उनके द्वारा खेतोंको सींचाजावे, ता उपजका तीसरा हिस्सा राजाके लिये देना चाहिये । (भूमिके करने समानही यह जलवाभी कर समझना चाहिये, क्योंकि इन दोनोंपर राजाका समानही अधिकार दाखकारोंने पतया है) ॥ २४ ॥

चतुर्थ नदीमरस्तटाकूपोद्घाटम् ॥२५॥ कर्मोदकप्रमाणेन
केदारं हैमनं त्रैपिकं वा तस्यं स्थापयेत् ॥ २६ ॥

अपना धन व्यय करके अपनेही परिश्रमसे बनाये हुए तालाबोंके अतिरिक्त दूसरे नदी, सर (झील), तालाब और कुओंसे हरट आदि लगाकर यदि खेत सींचेजाय, तो उन खेतोंका चौथा हिस्सा राजाकेलिये देना चाहिये ॥ २५ ॥ खेतोंके अनुसार जलकी न्यूनताधिकताको देखकरहा, खेतोंमें जोये जाने वाले, हेमन्त ऋतु (शीत ऋतुके गहू पी आदि) और ग्रीष्म ऋतुके (गरमीके फसल तथा मका जवार आदि) अनाजाको उगावे । अर्थात् ऋतुके अनुसार तथा जलके सुभातर अनुसार ही खेतोंमें बीज डाला जावे ॥ २६ ॥

शाल्यादि ज्येष्ठम् ॥ २७ ॥ पण्डो मध्यमः ॥ २८ ॥ इक्षुः
प्रत्यवरः ॥ २९ ॥ इयवो हि ब्रह्मवाधा वयग्राहिणश्च ॥ ३० ॥

धान गेहू आदि, सब फसलाम उचाम समझे गते ह, क्योंकि इसके बीज वादिकमें परिश्रम थोडा, और फल अधिक मिलता है ॥ २७ ॥ इमीप्रकार कदली आदि, मध्यम होते हैं, क्योंकि इनके बीज आदिम थोडा परिश्रमके अनुसार फलभी थोडा ही मिलता ह ॥ २८ ॥ ईन, सस्ते ओठी फसल समझी जाती है ॥ २९ ॥ क्योंकि इसके बीजे आदिमें धन श्रम, उमके बाद मनुष्य, चूरे और अन्य चीजे आदिका बडा उपद्रव, तथा काटना पीडना और पराना, फिर कहीं फलकी प्राप्ति हाती है ॥ ३० ॥

फेनाघातो वल्लीफलाना परीनाहन्ता मृर्धाकेक्षुणां रूपपर्यन्ताः शारुमूलानां हरिणपर्यन्ताः हरितकानां पाल्यो लवानां गन्धैपज्योशीरहीवेरपिण्डालुकादीनाम् ॥ ३१ ॥

जलके किनारेका स्थान पेठा कद्दू ककड़ी तामूज आदि बोनके लिये उपयुक्त होता है। पीपल, अंगूर तथा ईंख आदि बोनके लिये वद प्रदेश भच्छा होता है, जहाँपर नदीका जल एक बार घूम गया हो। शाक मूल आदि बोनके लिये कूपके पासके स्थान, जई आदि दूरे गौत बोनके लिये झील तालाब आदिके किनारेके गीले प्रदेश, और काटे जाने वाले गन्ध, भैरव (औषधि भनिया सौंफ आदि), उशीर (खस), हीपेर (नेत्रवाला) पिण्डालुक (कचालू या शकरकन्दी आदि) आदि चीजोंको बोनके लिये वे खेत, जिनके बीचमे तालाब बने हों, उपयुक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

यथासं भूमिषु च स्थल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत् ॥३२॥

सूखी जमीनोंमें तथा जलमय प्रदेशोंमें होने वाले अनाज आदि पदार्थोंका उन २ के अपने योग्य प्रदेशोंमें ही बोया जावे। अर्थात् जो चीजें जैसी भूमिमें अच्छी पैदा हो सकती हों, उनको वैसे ही स्थानोंमें बोना चाहिये ॥ ३२ ॥

तुपारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रि-
रात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानां मधुघृतस्रकरवसाभिः शकृद्यु-
क्ताभिः कांडबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिवी-
जानां शकृदालेपः, शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशकृद्भिः काले
दौहदं च ॥ ३३ ॥

अब खेतमें बोयेजाने वाले बीजका संस्कार कैसे करना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है - धानके बीजोंको रातके समय भोसमें, और दिनके समय धूपमें सात दिन तक रक्खा जावे। कोशीधान अर्थात् मूंग उद्द आदिके बीजको, इसीप्रकार तीन दिनरात या पांच दिनरात तक भोस और धूपमें रक्खा जावे। काण्डबीज अर्थात् ईंख आदिके बीजको (काण्डबीज=जो डुकड़ेके रूपमें रखकर बोयाजावे ईंख आदि) कटी हुई जगहोंमें दाहद घी अथवा सूअरकी चरबीके साथ गोबर मिलाकर लगावेना चाहिये। तथा सूरण आदि कन्दोंके कटेहुए स्थानोंपर गोबर मिलेहुए दाहद अथवा घी से ही लेप करना चाहिये। अस्थिवीजों (अर्थात् फलके भीतरसे निकलने वाले बीज= कपास आदिके बीजों) को गोबर आदिसे छपेटकर (अर्थात् गोबरके बीचमें उनको अन्गीतरह मलकर) रक्खा जावे, फिर उनको बोयाजावे। आम कट-हल आदि वृक्षोंके बीजोंको एक गर्दमें डालकर कुछ गरमी दी जावे, फिर ठीक समयपर उनको गायकी हड्डी और गोबरके साथ मिलाकर रक्खा जावे।

इसप्रकारसे इन सब बीजोंका संस्कार करके फिर इनको पित्तमें घोना चाहिये ॥ ३३ ॥

प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत् ॥ ३४ ॥

उपर्युक्त इन सब बीजोंके बोधेजानेके बाद, जब इनमें अद्भुत निकल आवे, तब इनमें गीली छोटी मछलियोंका सात लगाकर, सेंढके दूधसे इन्हें सींचे। ऐसा करनेसे इन बीजों को कोई कीड़ा आदि नुकसान नहीं पहुंचाता ॥ ३४ ॥

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत् ।

न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैव तिष्ठति ॥ ३५ ॥

कपासके बीज अर्थात् विनीले और सांपकी केंचुली (निर्मोक=सांपके ऊपरकी झिलोसी, जो उतरकर अलहदा होजाती है) को आपसमें मिलाकर जला दिया जावे, जहांतक इसका धुआं फैल जाता है, वहांतक कोईभी सांप रह नहीं सकता। यह सर्पके प्रतीकारका उपाय है ॥ ३५ ॥

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वशुष्टिं वापयेदमुं च मन्त्रं ब्रूयात् ॥ ३६ ॥

हर एक बीजके पहिलेही बोनेके समयमें, सुवर्णके जलसे (जिस जलमें सुवर्णका संयोग करादिया गया हो) भीनीहुई पहिली बीजकी मुट्टी को बोयाजावे ! तात्पर्य यह है, कि बीजकी जो पहिली मुट्टी भरकर बोई जावे, उसको सुवर्णके जलसे भिगोकरही बोयाजावे, और उसके साथ इस मंत्रको पढ़ाजावे:— ॥ ३६ ॥

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा ।

सीता मे ऋध्यतां देवीं बीजेषु च धनेषु च ॥ ३७ ॥

प्रजापति (प्रजाओंके मालिक=प्रजाओंको जीवन देनेवाले), काश्यपके पुत्र (सूर्यके पुत्र), देव (पर्जन्य=मेघ) के लिये हमारा सदा नमस्कार हो। और 'सीता' देवी (सीता यह कृपिका ही नाम है, इस बातको पहिले लिखा जाचुका है, उसीको देवीका रूप देकर यह प्रार्थना की गई है) इनारे बीजों तथा धनोंमें सदा वृद्धिको करती रहे ॥ ३७ ॥

पण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात् ॥ ३८ ॥ सपादपणिकं मासं दद्यात् ॥ ३९ ॥ कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवतनम् ॥ ४० ॥

खेतोंकी रखवाली करनेवाले, ग्वाले, दास, तथा अन्य काम करनेवाले नौकरों के लिये, प्रत्येक पुरुषके परिश्रमके अनुसार ही भोजन आदिका प्रबन्ध किया जावे ॥ ३८ ॥ इस के अतिरिक्त इनको प्रतिमास सवापण नियत वेतन दिया जावे ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार अन्य कारीगर लोगोंके लियेभी उनके परिश्रम के अनुसार ही भोजन और वेतन दिया जावे ॥ ४० ॥

प्रशीर्णं च पुष्पफलं देवकार्यार्थं व्रीहियवमाप्रयणार्थं श्रोत्रि-
यास्तपस्विनश्चाहरेयुः ॥ ४१ ॥ राशिमूलमुञ्छवृत्तयः ॥ ४२ ॥

वृक्ष आदिसे स्वयं ही गिरेहुए फूल और फलोंको देवकार्यके लिये तथा गेहूँ जौ आदि अन्नको आम्रयण (यह एक इष्टिका नाम है, जिसको नई फसल आनेपर किया जाता है, इसको 'नवसस्येष्टि' भी कहते हैं) इष्टिके लिये, श्रोत्रिय तथा तपस्वी जन उठा लें ॥ ४१ ॥ खद्वानमें पड़ेहुए अन्नके ढेरको उठा लेनेके बाद, जो थोड़े बहुत दाने पीछे पड़े रह जायें, उनको वे लोग उठा लें, जो सिला चुगकर अपना निर्वाह करनेवाले हों ॥ ४२ ॥

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत् ।

न क्षेत्रे स्थापयेत्किञ्चित्पलालमपि पण्डितः ॥ ४३ ॥

समयके अनुसार तैयार हुए २ अन्नको, चतुर पुरुष ठीक २ सुरक्षित स्थानोंमें रखवा देवे, खेतमें पुराल तथा भुस आदि असार वस्तुओंको भी न छोड़े ॥ ४३ ॥

प्रकराणां समुच्छायान्वलभीर्वा तथाविधाः ।

न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च ॥ ४४ ॥

धान्य आदिके रखनेके स्थानको 'प्रकर' कहते हैं (किसी २ पुस्तकमें 'प्रकराणां' के स्थानपर 'प्रकाराणां' भी पाठ है), ऐसे स्थानोंको कुछ ऊंची जगहमें बनवाना चाहिये । अथवा उसी तरहके मजबूत तथा चारों ओरसे घिरेहुए अन्नागारों को बनवावे । इनके ऊपरके हिस्सोंको आपसमें मिला हुआ न रखे, आग खाली भी न रखे, तथा अच्छी तरह रद्द बनवावे जिस से कि वर्षा या आंधी आदिम अन्नको किसी तरहकी हानि न पहुँचसके ॥ ४४ ॥

सलस्य प्रकरान्कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान् ।

अनपिकाः सोदकाश्च सले स्युः परिकर्मिणः ॥ ४५ ॥

इत्यप्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे सीताप्यक्ष चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

आदित्त. पञ्चम्वारिहाः ॥ ४५ ॥

मण्डल (अक्ष और सुप्त आदिको अलहदा करनेके लिये जहाँपर, बेलोंकी पंक्ति उनके ऊपर गोलाकार घुनाई जावे, उसको यहा 'मण्डल' शब्दसे कहागया है । 'रल' शब्द केवल उस स्थानके लिये यहाँ प्रयुक्त हुआ है, जिसमें कटे हुए अनाजोंका ढेर लगा रहा हो । तारपर्यं यही है, कि ये दोनों स्थान समीप ही होने चाहियें । हिन्दीमें दोनोंके ही लिये खलवान शब्दका प्रयोग होता है) के समीप ही बहुतसे खलवानोंको बनाया जायें । खलवानमें काम करनेवाले आदमी, अपने पास भाग न रखसके, फिर भी उनके पास जलका प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये । जिससे कि समयपर अधिको सरलतासे शान्त किया जासके ॥ ४५ ॥

अध्यक्ष-प्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौबीसवां अध्याय समाप्त ।

पच्चीसवां अध्याय ।

४२ प्रकरण ।

सुराध्यक्ष ।

{ गुड़, मधु, तथा पिट्टी, इन तीन पदार्थोंसे बननेके कारण 'सुरा' तीन प्रकारकी होती है । उनके बनवाने तथा व्यापार आदि करनेके लिये जो राजकीय पुरष नियुक्त किया जाता है, उसे 'सुराध्यक्ष' कहते हैं । उसके कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

सुराध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान्दुर्गे जनपदे स्कन्धावारे वा तज्जातसुराकिण्वव्यवहारिभिः कारयेत् एकसुरामनेकमुखं वा विक्रयक्रयवशेन वा ॥ १ ॥

सुराध्यक्षका कार्य है, कि यह शराबके बनवाने और उसके विक्रय आदिके व्यवहारको, दुर्गे, जनपद अथवा छावनी में, शराबके बनाने, तथा उसके व्यापार आदिको अच्छी तरह जानने वाले पुरषोंके द्वारा करवावे । सुभीतेके अनुसार एकही बड़े ठेकेदारके द्वारा अथवा छोटे २ अनेक ठेकेदारोंके द्वारा; तथा क्रय विक्रयके भी सुभीतेको देखकर यह व्यापार करावे ॥ १ ॥

पद्लतमत्ययमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृगां स्थापयेत् ॥ २ ॥
ग्रामादनिर्णयनमसंपातं च सुरायाः, प्रमादभयात्कर्मसु निर्दि-

एतानां, मर्यादातिक्रमभयादार्याणामुत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम्
॥ ३ ॥

नियत स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें शराब बनाने खरीदने और बेचने वालोंको ६०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ शराबको, तथा उसे पक़िर मत हुए २ पुरुषोंको, गावसे बाहर तथा एक घरसे दूसरे घरमें या भीड़में न जाने दिया जावे । क्योंकि जो अध्यक्ष आदि कर्मचारी पुरुष हैं, वे ऐसा करनेसे कायोंमें प्रमाद कर सकते हैं, आर्य पुरुष अपनी मर्यादा भंग, और तीक्ष्ण अर्थात् बहोर प्रकृतिके, शूर, सैनिक आदि पुरुष, हथियारोंका अनुचित प्रयोग कर सकते हैं ॥ ३ ॥

लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्धकुडुबं कुडुवमर्धप्रस्थं प्रस्थं वेति
ज्ञातशौचा निर्द्दरेषुः ॥४॥ पानागारेषु वा पिनैयुरसंचारिणः ॥५॥

अथवा शतकीच सुहरसे पुत्र थोड़ी परिमाणमें—कुडुवका चौथा भाग, आधा कुडुब, एक कुडुब, आधा प्रस्थ, या एक प्रस्थ, शराब वे लोग लेकर सकते हैं जिनके आचार व्यवहारके सम्बन्धमें निश्चय रूपसे मालूम हो चुका हो ॥ ४ ॥ जिन पुरुषोंको शराब लेकर बाहर जानेकी आज्ञा न हो, वे शराब स्थानोंमें जाकर ही पीवें ॥ ५ ॥

निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहृतादीनामनिष्टोपगतानां च द्रव्याणां
ज्ञानार्थमस्वामिकं कृष्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यप-
देशेन ग्राहयेत् ॥ ६ ॥ अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च ॥ ७ ॥

निक्षेप, उपनिधि, पेटी आदिमें बन्द या सुला हुआ ही गिरवी रक्ता हुआ धन, प्रयोग (समानत=आधि), चोरी किया हुआ धन तथा इसीप्रकार अन्य अनिष्ट (डाक आदि) उपायसे प्राप्त किये हुए द्रव्योंके जाननेके लिये स्वामी रहित कृष्य (खद्ग आदि पदार्थ) और हिरण्य आदिको पाकर, निक्षेप्ता (जिस ने कि निक्षेप आदिके द्वारा ऊँच धन लेकर शराबपानमें भाग लेने किया है, ऐसे पुरुष) को, शराबपानसे दूसरी जगहमें किसी बहानेसे नगराध्यक्षके द्वारा पकड़वा देवे । (दूसरी जगह और बहानेसे पकड़वाना, इसी लिये कहा गया है, कि यदि शराबपानमें ही बिना किसी बहानेके उन पुरुषोंको पकड़ लिया जावे, तो दूसरे चोर डाकू आदि अपहृत धनको यहाँ न लायेंगे) ॥ ६ ॥ इसीप्रकार जो पुरुष भावसे अधिक व्यय करने वाला, तथा बिनाही आमदनी के किञ्च राशे करने वाला हो, उसे भी उपयुक्त रीतिसे पकड़वा देवे ॥ ७ ॥

न चानर्थेण कालिकां वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः
 ॥ ८ ॥ तामन्यत्र विक्रापयेत् ॥ ९ ॥ दासकर्मकरेभ्यो वा
 वेतनं दद्यात् ॥ १० ॥ वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात्
 ॥ ११ ॥

थोड़े मूल्यसे, कालान्तरमें प्राप्त होने वाले मूल्यसे अथवा कुछ कालके बाद किसी नियत समयमें व्याज सहित मिल जाने वाले मूल्यसे भी, बढिया शराबको न बेचे । किन्तु इन शर्तोंपर एरादारोंको सदा घटिया शराबही देवे ॥ ८ ॥ तथा उस घटिया शराबको भी, बढिया शराबकी बूकानसे न बिकवावे, किन्तु किसी दूसरेही स्थानसे उसकी विक्रीका प्रबन्ध करे ॥ ९ ॥ अथवा दास या अन्य छोटे कर्मचारियोंको वेतन रूपमें यह घटिया शराब देदी जावे ॥ १० ॥ परन्तु यह, ऊँट बैल आदि सवारियोंके पालन करने, या सूअर आदिके पालन पोषण करने आदि तुच्छ कार्योंके बदलेमें ही देनी चाहिये । (अर्थात् अन्य कार्योंका वेतन मुद्राके ही रूपमें अतिरिक्त दिया जावे) ॥ ११ ॥

पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्त्यृतुसुरानि कारयेत् ॥ १२ ॥ तत्रस्थाः प्रकृत्यौत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्युरागन्तुंश्च ॥ १३ ॥

शराबखानोंको निम्नलिखित शर्तसे बनवाया जावे — उनमें अनेक बक्ष्या अर्थात् दूरीदियां होनी चाहिये, सोने और पैठरके लिये भलहवा २ कमरे बने हुए हों, तथा शराब पीनेके स्थान भी पृथक् २ हों, इनमें गन्ध मात्स तथा जल आदिका पूरा प्रबन्ध हो, और इस ढगके बने हुए होने चाहिये, जिससे कि प्रायेक फलुमें सुपकर होसकें ॥ १२ ॥ शराबखानेमें रहने वाले राजकीय गुप्तपुरष; नित्य नियमसे होने वाले शराबके सर्वको, तथा किसी दिन बाहरके मनुष्य अधिक आजानेके कारण अधिक हुए २ शराबके सर्वको जानें, (तात्पर्य यह है कि स्थानीय पुरुषोंके लिये, तथा बाहरके पुरुषोंके लिये पृथक् २ शराबका कितना सर्व है, इस बातका ठीक २ पता रखना जावे) । और यह भी जानें कि बाहरसे आने वाले पुरष कौन २ हैं ॥ १३ ॥

ऋतृणां मत्तसुप्तानामलंकाराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः
 ॥ १४ ॥ तन्नाशे वणिजस्तच्च तावच्च दण्डं दद्युः ॥ १५ ॥

तथा गुप्तपुरष ही, शराब दारीद पीकर उन्मत्त होकर सोजानेवाले शराबियोंके धाम्भूपण वस्त्र और नकद मालका स्थान रखें, तथा यह भी मालम

करें कि यह कितना है ॥ १४ ॥ यदि उनके आभूषण आदि नष्ट हो जाय, अर्थात् उसी अवस्थामें चोर आदि चुरा लें, तो शरावके व्यापारी उतना माल (जितना चोरी गया है) शराबियोंको दें, और उतना ही दण्ड राजाको दें, अर्थात् राजाकी ओरसे उनपर उतना ही जुर्माना किया जाय ॥ १५ ॥

वणिजस्तु संघृतेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपा-
भिरामन्तूनां वास्तव्यानां चार्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विगुः
॥ १६ ॥

शरावके व्यापारी, पृथक् २ एकान्त कमरोंमें भेजी हुई सुन्दर सुघनुर दासियों के द्वारा उन्मत्त होकर सोये हुए बाहरसे आनेवाले तथा, नगर निवासी, ऊपरसे आर्योंके समान रहनेवाले पुरुषोंके आन्तरिक भावोंका पता लगावे ॥ १६ ॥

मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधुनामुदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं
त्रयः प्रस्थाः किण्वस्येति मेदकयोगः ॥ १७ ॥

मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु ये छः शरावके भेद हैं, इनका क्रमशः निरूपण किया जाता है:—एक द्रोण जल आधे आठक चावल और तीन प्रस्थ किण्व अर्थात् सुरापीज, (देखो इसी अध्याय का २६ सूत्र) इनको मिलाकर जो शराव बनाई जाती है, उसका नाम मेदक है ॥ १७ ॥

द्वादशाढकं पिष्टस्य पञ्च प्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वकफलपुक्तो
वा जातिसंभारः प्रसन्नायोगः ॥ १८ ॥

बारह आठक चावलकी पिष्टी और पांच प्रस्थ किण्व (सुरापीज; देखो=इसी अध्यायका २६ वां सूत्र), अथवा किण्वके स्थानपर इतना ही, पुत्रक (एक वृक्षका नाम है) की छाल और फलोंके सहित जाति-संभार (अच्छा संभार योग, यह फई चीजोंसे मिलाकर बनाया जाता है, देखो=इसी अध्यायका सत्ताहसवां सूत्र), मिलाकर प्रसन्ना योग तैयार किया जाता है; अर्थात् इन वस्तुओंसे प्रसन्ना नामक शराव तैयार होती है ॥ १८ ॥

कपित्थतुला फाणितं पञ्चतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यास-
वयोगः ॥ १९ ॥ पादाधिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्ठः ॥२०॥

त्रिकैतस्त्रप्रमाणाः फलेयदयोः विचाराणामरिष्टाः ॥ २१ ॥

कैथके फलका सार-सी पल, और राव पांचमी पल, मधु एक प्रस्थ इनको मिलाकर आसव योग तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसमें यदि कैथ आदिको सत्पाया कर दिया जाय, तो उषेत् अर्थात् अजिवा असाव नीम ज्योत्सु

और पाना कर देनेसे कनिष्ठ अर्धात् घटिया भास्य समझा जाता है । इसलिये जो परिमाण आसवका पहिले बताया गया है, वह मध्यम योग समझना चाहिये ॥ २० ॥ प्रत्येक वस्तुका अरिष्ट उसी प्रकारसे बनाना चाहिये, जो प्रकार चिकित्सकोंने उन २ रोगोंको नष्ट करनेके लिये बनाये जाने वाले अरिष्टोंका बताया हुआ है ॥ २१ ॥

मेपशृङ्गित्वदकाथाभिपुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसं-
भारत्रिफलायुक्तो वा मेरेयः ॥ २२ ॥ गुडयुक्तानां वा सर्वेषां
त्रिफलासंभारः ॥ २३ ॥

मेंटासींगीकी छालका दाय बनाकर उसमें गुडका योग देकर पीपल और मिर्चके चूर्णको मिलाया जावे, अथवा पीपल मिर्चकी जगहपर त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, भंगला) का चूर्ण मिलाया जावे, इससे जो शराब तैयार की जाती है, उसका नाम मेरेय है ॥ २२ ॥ अथवा जिन शराबोंमें गुड मिलाया जावे, उन सबमें ही त्रिफलाका योग अशुभ्य होना चाहिये ॥ २३ ॥

मृद्धीकारसो मधु ॥ २४ ॥ तस्य स्वदेशो व्याख्यानं-
कापिशायनं हारहूरकमिति ॥ २५ ॥

मुनका दार आदिके रससे जो शराब बनाई जाती है, उसका नाम मधु है, (भंगूरी शराब) ॥ २४ ॥ उसके अपने देशमें बनाये जानेके कारण दो नाम हैं— ' कापिशायन ' और हारहूरक । (कपिश नामक नदीके किनारे-पर यसे हुए नगरमें बनाये जानेसे ' कापिशायन ' और हारहूर नामक नगरमें बनाये जानेसे ' हारहूरक ' नाम पड़ा है । किसी २ पुस्तकमें इस सूत्रके ' व्याख्यानं ' पदके स्थानपर ' व्याख्यानं ' ऐसा स्पष्ट अर्थवाला पाठ है) ॥ २५ ॥

मापकलनीद्रोणमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकतण्डुलं मोरटादीनां
कार्पिकभागयुक्तः किण्ववन्धः ॥ २६ ॥

उड़का कलक (जलमें अथवा सूखी ही पिसी हुई चीजोंका नाम करके है) एक द्रोण, कच्चे अथवा पके हुए, तीन भाग अधिक (अर्थात् ३ ३ द्रोण) चावल, और मोरटा आदि वस्तुओंका (द्रव्यो-इसी अध्यायका सेतीसवां सूत्र) एक एक कप; इन सब वस्तुओंको मिलाकर किण्व नामक योग तैयार किया जाता है । इसीको मधवीज या सुरावीज कहते हैं ॥ २६ ॥

पाठालोप्रतेजोवत्येलावालुकमधुमधुरसाप्रियङ्गुदारुहरिद्रा-
मरिचपिप्पलीनां च पञ्चकार्पिकः संभारयोगो मेदकस्य प्रसन्ना-

याथ ॥ २७ ॥ मधुकरनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रमादिनी च ॥ २८ ॥

पाटा, लोथ, गजपीपल इलायची, यालुक (सुगन्धि=किमी तरहके इतर आदिकी सुगन्धि), मुलहठी, दूर्वा (दूब), केसर, दारु हजरी, मिरच और पीपल, इन सब चीजोंका पाच २ कर्प लेकर मिला लिया जावे, यह मेदक और प्रसन्ना नामक शराबमें डालनेके लिये मसाला हाता है ॥ २७ ॥ मुलहठी का काटा करके उसमें रवादार दारु मिलाकर, यदि इसको मेदक और प्रसन्ना शराबमें डाल दिया जावे, तो इनका मेदक और प्रसन्नाका रस बहुत अच्छा निस्सर जाता है ॥ २८ ॥

चोचचित्रकविलङ्गमजपिप्पलीनां च पञ्चकर्पिकः क्रमुकम-
धुकमुस्तालोघ्राणां द्विकार्पिकश्चासवसभारः ॥ २९ ॥ दशभाग-
श्रैपां वीजबन्धः ॥ ३० ॥

दालचीनी, चीता, मायाविटङ्ग, और गजपीपल इन सबका एक एक कर्प लेकर, सुफारी, मुलहठी, मोथा और लोथ, इन चीजोंका दो दो कर्प लेकर, सबको आपसमें मिला लिया जावे, यह आसव नामक शराबका मसाला समझना चाहिये ॥ २९ ॥ दालचीनी आदि वस्तुओंका दसवा हिस्सा बीजबन्ध होता है । बीजबन्धका तात्पर्य यह है, कि जिस किसी द्रव्यका भी आसव बनाया जाव, उसमें इसको अवश्य मिलाना चाहिये ॥ ३० ॥

प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः ॥ ३१ ॥ सहकारसुरा रसोत्तरा
वीजोत्तरा वा महासुरा संभारिकी वा ॥ ३२ ॥

प्रसन्ना नामक शराबका जो पाग घटाया गया है, वही योग श्वेतसुरा का भा समझना चाहिये । (किन्तु प्रसन्नाका जो पाटा लोथ आदि मसाला घटाया गया है, वह इसमें नहीं डाला जाता । किसी २ व्याख्यानकारने यह भी लिखा है, कि मसालेकी तरह बीजबन्ध भी इसमें न डालना चाहिये ॥ ३१ ॥ सुराओंके निम्न लिखित भेद भी हैं —सहकारसुरा (साधारण सुरामें आमका रस या नेल आदि मिलाकर जो तैयार की जाय), रसोत्तरा (शुद्धका सोदा डालकर जो तैयार कीजाय), बीजोत्तरा (जिसमें बीजबन्ध द्रव्योंकी अधिक मात्रा हो, इसीका नाम महासुरा भी है), और संभारिकी (जिस सुरामें मसालेकी मात्रा अधिक पड़ी हुई हो) ॥ ३२ ॥

तासां मोरटापलाशपत्रमपेगृहीकरञ्जक्षीरवृक्षकषायभाषितं
दग्धकटशर्कराचूर्णं लोघ्रचित्रकविलङ्गमसुस्ताफलमयवदारुह

रिद्रेन्दीवरशतपुण्यापामार्गनसपर्णनिम्ब्रास्फोटकलकार्ययुक्तमन्तर्नखो
मुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति ॥ ३३ ॥ फाणितः पञ्चपलि-
कश्चात्र रसवृद्धिर्देयः ॥ ३४ ॥

इन सब प्रकारकी शराबोंको निम्न लिखित रीतिसे तैयार किया जाता है—मरोरफली, पलाश (डाक), पत्तूर (लोहमारक, औषध विशेष), मेंढासींगी, करंजया, और क्षीरवृक्ष (=दूधिया पेड़, बट गूदा पिल्लन आदि) इसके काढ़में भावना दिया हुआ गरम रतादार शकरका चूरा, तथा इससे आपा-लोष, चीता, पायविदग्ग, पाठा, मोथा, कलिङ्गवय (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न हुए २ जो), दार-हल्दी, कमल, सौंफ, अपामार्ग (चिचिडा), सतपर्ण (एक वृक्ष, जिसके पत्तोंमें प्रायः सात पंखड़ियां होती हैं, इसको दिन्दीमें सातदिन या सतधित कहते हैं), नींबू, और आस्फोट (आस्फोट आरेका नाम है, सम्भव है इसी अर्थमें यह आस्फोट शब्द भी प्रयुक्त हुआ हो, ' आस्फोटा ' विष्णुग्रन्था और मोगेरको भी कहते हैं । साधारणतया शराबमें आरेके फूल डालनेका कहीं २ रियाज भी है), आदि वस्तुओंका कटक (पिपा हुआ चूरा) लेकर इन सबको मिला लिया जाये; और इस मसालेकी एक बन्दी सुई भरकर एक खारी परिमाण शराबमें डालदी जाये; इसके डालनेसे उस शराबका रस इतना निम्नरता है, कि वह शराबोंके पीने योग्य होजाती है ॥ ३३ ॥ यदि उसमें पांच पल राब और मिलादी जाये, तो उसका स्वाद भी रूप बनजाता है ॥ ३४ ॥

कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुं
लभेरन् ॥ ३५ ॥ उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहःसौरिको देयः
॥ ३६ ॥ तेष्वननुज्ञातानां प्रहवणान्तं देवसिकमत्ययं शृद्धीयात्
॥ ३७ ॥

नगर निवासी तथा जनपद निवासी पारिवारिक जन, विवाह आदि कार्योंमें श्वेतसुरा (सफेद रंगकी शराब) को, और औषधके लिये अरिष्टको अथवा अन्य मेदक आदि सुराको उपयोग करनेके लिये प्राप्त कर सकते हैं । (अथवा अपने घरमें भी इन सुराओंको बना सकते हैं, यह अर्थ करना चाहिये) ॥ ३५ ॥ यस्मिन् आदि उत्सवोंमें, अपने वस्तुजनोंके मिलनेपर, तथा देवयात्रा अर्थात् इष्टदेव आदिकी पूजाके समयमें, सुराध्यक्ष, चार दिनतक सुरा पीनेकी आज्ञा देवे ॥ ३६ ॥ उन उत्सव आदिके दिनोंमें जो पुरुष सुराध्यक्षकी अनुमति लिये बिनाही सुरा पीये, उनका उत्सवके अन्तमें प्रति दिनके हिसाबसे कुछ दण्ड दिया जाये । (किसी २ व्याख्याकारने इस सूत्रका यह भी अर्थ किया

हैं:—जो कर्मचारी उसव आदिके दिनोंमें विनाही अनुमतिके शराब पीकर उन्मत्त होजावें, और उससे राजकीय कार्यकी हानि होवे, तो उस दैनिक हानिके अनुसारही उनको दण्ड दिया जावे) ॥ ३७ ॥

सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः ॥ ३८ ॥ अराजप-
प्याः शतं शुल्कं ददुः सुरकामेदकारिष्टमधुफलाम्लाम्लशीधूनां
च ॥ ३९ ॥

सुराको पछाने तथा उसके मसाले आदिको तैयार करनेके कामपर सुरासे अनभिज्ञ स्त्रियों और बालकोंको नियुक्त किया जावे ॥ ३८ ॥ जो पुरुष स्वयं शराब बनाकर बेचें (अर्थात् उसव आदि विशेष अवसरोंपर जो स्वयं शराब बेचते हैं, जिनको सरकारकी ओरसे शराबका कोई ठेका नहीं मिला हुआ है, तात्पर्य यह है कि जो सरकारी शराब नहीं बेचते, अपनी ही बनाकर बेचते हैं) यह उसव आदिके समयमेंही होसकता है क्योंकि अन्य समयमें कोई भी पुरुष, ठेकेदारके सिवाय शराब नहीं बेच सकता) ये, सुरा (साधारण शराब, श्वेत सुरा आदि), मेदक, अरिष्ट, मधु, फलाम्ल (ताषी, या नारियलके रससे बनाई हुई शराब), और अम्लशीधु (रसोत्तरा, जो कि गुड़के सादेसे तैयार कीजाती है, देखो इसी अध्यायका बत्तीसवां सूत्र) आदि शराबोंका, पांच प्रतिशतक शुल्क दें ॥ ३९ ॥

अह्वश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः ।
तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत् ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सुराप्यक्ष पञ्चविंशो ऽध्यायः ॥ २४ ॥
आदित पद्मचक्राविशः ॥ ४६ ॥

इस शुल्कके अतिरिक्त, दैनिक विक्रय तथा वैधरण (सोल मापका आवश्यक टैक्स) को अच्छी तरह जानकर, सुराप्यक्ष सोल मापके ऊपर सोलहवां हिस्सा और नकद आमदनीपर बीसवां हिस्सा व्याजी लगावे । अर्थात् अपनी बनाई शराब बेचनेपर उनसे ये टैक्स और घसूल किये जावें; परन्तु सुराप्यक्षको चाहिये कि यह इनके साथ सदा उचित वृत्तों ही रखे ॥ ४० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पञ्चविंशो अध्याय समाप्त ।

छव्वसिवां अध्याय ।

४३ प्रकरण

सूनाध्यक्ष ।

भक्ष्य प्राणियोंके वधस्थानको 'सूना' कहते हैं; उस पर नियुक्त किये गये राजकर्मचारीका नाम 'सूनाध्यक्ष' है । उत्तम मध्यम और अधम कार्योंके अनुसारही उसके अध्यक्षोंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें पीछे कहा जा चुका है; समाहर्ता सक्षिधाता आदि उत्तम अध्यक्ष, यैतवाध्यक्ष आदि मध्यम, तथा सुराध्यक्ष सूनाध्यक्ष आदि अधम हैं । इस अध्यायमें प्रकरणानुसार सूनाध्यक्षके कार्यों का निरूपण किया जायगा ।

**सूनाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च मृगपशुपक्षि-
मत्स्यानां बन्धवधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बि-
नामभयवनपरिग्रहेषु मध्यमम् ॥ २ ॥**

सरकारकी ओरसे जिनके न मारे जानेकी घोषणा करदी गई है, और जो सरकारकी अन्तर् जंगलोंमें अथवा ऋषियोंके निवास स्थानके जंगलोंमें रहते हैं, ऐसे मृग (हरिण आदि), पशु (गैडा अना भैंसा आदि) पक्षी (मोर आदि) और मछलियोंको जो पुरुष पकड़े, या उन पर प्रहार करे, अथवा उन्हें मार डाले; सूनाध्यक्ष उसको उत्तम साहस दण्ड दिलवावे ॥ १ ॥ यदि कुटुम्बी पुरुष, अभय जंगलोंमें (जो सरकारकी ओरसे अन्तर् या सुरक्षित हैं, अथवा जिनमें ऋषियों आदिके आश्रम हैं, ऐसे जंगलोंमें) इस प्रकार मृग आदिको पकड़े उन पर प्रहार करे या उन्हें मारे, तो उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २ ॥

**अप्रवृत्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्त-
विंशतिपणमत्ययं कुर्यात् ॥ ३ ॥ मृगपशूनां द्विगुणम् ॥ ४ ॥**

जो कभी भी घातक आक्रमण न करें, अथवा जिनका चिरकालसे वध आदि न हो रहा हो, ऐसे मत्स्य तथा पक्षियोंको जो पुरुष पकड़े, प्रहार करे या मारे, उसे पीने सत्ताईस पण (२६३ पण) दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ तथा जो पुरुष, इसी प्रकारके मृग या पशुओंका वध आदि करे, उसे इससे दुगुनी अर्थात् सत्तीस पण (५३६) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥

प्रवृत्तहिंसानामपरिवृहीतानां पद्भागं गृह्णीयात् ॥ ५ ॥
 मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं मृगपशूनां शुल्कं वाधिकम्
 ॥ ६ ॥ पक्षिमृगाणां जीवत्पद्भागमभयवनेषु प्रमुञ्चेत् ॥ ७ ॥

जो पशु आदि घातक आक्रमण करने वाले हों, जिनका कोई मालिक न हो, अथवा जो सरकारी या अन्य सुरक्षित जंगलके भी न हों, उन्हें जो मारें, उनसे उसका (मारे हुए पशु आदिका) छठा हिस्सा राजकीय भंड सूनापक्षको लेलेना चाहिये ॥ ५ ॥ मछली और पक्षियोंका दसवां हिस्सा, अथवा उससे कुछ अधिक लेना चाहिये। इसी प्रकार मृग तथा अन्य पशुभोंका भी दसवां हिस्सा, अथवा उससे कुछ और अधिक राजकीय भंड शुल्क रूपमें, सूनापक्षको उन पुरुषोंसे लेना चाहिये, जो इन मृग आदिका वच करें ॥ ६ ॥ साधारण जंगलोंमेंसे पकड़े हुए पक्षी और मृगोंके जीवित छोटे हिस्सेको अभय वनोंमें (सुरक्षित जंगलोंमें) छोड़ दें ॥ ७ ॥

सामुद्रहस्त्यश्वपुरुषवृषगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादे-
 यास्तटाककुल्योद्भवा वा क्रौञ्चोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीव-
 क्षिणो मङ्गल्याश्चान्येऽपि प्राणिनः पक्षिमृगा हिंसावाधेभ्यो
 रक्षयाः ॥ ८ ॥ रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ९ ॥

किं २ प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये, अब यह निरूपण किया जाता है:—समुद्रमें उत्पन्न होनेवाले, तथा हार्थी घोड़े पुरुष बैल गधा आदि की आकृतिवाले भिन्न प्रकारके मत्स्य (जलचर प्राणी) तथा सारस (सर अर्थात् झिलोंमें होनेवाले), नदियों, तालाबों और छोटी २ नहरोंमें होनेवाले मत्स्य (यहाँ तक जलचर मत्स्य आदि प्राणियोंको घताया गया), और क्रौञ्च (कुंज, जो वारद् ऋतुमें पंक्ति बांध कर आकाशमें उड़ते हुए देखे जाते हैं), उत्क्रोशक (कुरार, छर्वाँ बाँचवाल कुछ २ काले रंगका बड़ा पक्षी), दात्यूह, (जल कीभा), हंस, चक्रवाक (चक्रवा), जीवजीवक (मोरके पंखोंके समान पंखोंवाला एक पक्षी), मङ्गलराज (मुर्गेके समान एक पक्षी जिसके सिरपर पलंगी सी होती है), चक्रोर, मत्तकोकिल, मोर, तोता, मदन (एक तरहका पक्षी), मैना, इनसे अतिरिक्त और क्रीड़ाके लिए कुक्कुट (मुर्गा) आदि प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये। अर्थात् इन उपयुक्त प्राणियोंको न कोई मार सके, और न इनपर प्रहार आदि कर सके ॥ ८ ॥ यदि सूनापक्ष इनकी रक्षा करनेमें कुछ असमर्थानता करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥

मृगपशुनामनस्थिमांसं सद्योहतं विक्रीणीरन् ॥ १० ॥
अस्थिमतः प्रतिपातं दशुः ॥११॥ तुलाहीने हीनाष्टगुणम् ॥१२॥

मृग और पशुओंका हड्डी रहित ताज़ा मांस ही बाज़ारमें बेचा जावे ॥ १० ॥ हड्डी सहित मांस देनेमें, हड्डीके बदलेका मांस और दिया जाय । अर्थात् मांसके साथ जितनी हड्डी जा रही हो, उतने अंशको पूरा करनेके लिये, उतना ही मांस खरीदारको और दिया जावे ॥ ११ ॥ यदि तोलनेमें मांस कम दिया जावे, अर्थात् मांस बेचनेवाला थोखेमे थोड़ा मांस तोले, तो जितना थोड़ा तोले, उससे आठगुना मांस वह दण्डरूपमें और देवे । उसमेंसे आठवां हिस्सा खरीदारको दे दिया जाये, और बाकी सात हिस्से सूनाध्यक्ष ले लेवे ॥ १२ ॥

वत्सो वृषो धेनुश्रृणामवध्याः ॥ १३ ॥ घृतः पञ्चाशत्को
दण्डः ॥ १४ ॥ क्लिष्टघातं घातयतश्च ॥ १५ ॥

मृग और पशुओंमेंसे बलुङ्गा, सांड (बिजार), और गाय, ये पशु कर्मा न मारने चाहिये ॥ १३ ॥ जो पुण्य इनमेंसे किसीको मारे, उसे पचास (५०) पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ अन्य पशुओंको अत्यन्त कष्ट पहुँचा कर मारनेवाले पुरुषोंके लिये भी यही (५० पण) दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥

परिहूनमशिरः पादास्थि विगन्धं स्वयंमृतं च न विक्रीणीरन्
॥ १६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

न बेचने योग्य मांसोंकी गणना इस प्रकार है—सूनासे अतिरिक्त स्थानमें मारे हुए प्राणी का मांस, तिर, पेर तथा हड्डी रहित मांस (अर्थात् जंगल में स्वयं मर कर अन्य प्राणियों से स्वाधे हुए जानवर का मांस), दुर्गन्धसे युक्त मांस, रोग आदिके कारण स्वयं मरे हुए जानवरका मांस, बाजारों में न बेचा जावे ॥ १६ ॥ जो इस नियमको न माने, उसे चारह (१२) पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

दुष्टाः पशुमृगव्याला मत्स्याश्राभयचारिणः ।

अन्यत्र शुप्तिस्थानेभ्यो वधबन्धमवामुयुः ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे सूनाध्यक्षः पद्मिस्तो अध्यायः ॥ २६ ॥

आदितः सप्तधरवारिणः ॥ ४७ ॥

अभय वनोंमें रक्षा किये जाते हुए दिसक जानवर, नीलगाय आदि पशु, मृग और श्याम तथा मत्स्य आदि प्राणी, यदि उन सुरक्षित जगलोंसे बाहर चले जावें, तो उनको मारा या बाधा जासकता है, अर्थात् उनको फिर मारने या बांधने में कोई अपराध नहीं ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें छत्रिसवां अध्याय समाप्त ।

सत्ताईसवां अध्याय

४४ प्रकरण

गणिकाध्यक्ष ।

अपने रूप सौन्दर्यसे जीविका करने वाली स्त्रियों को 'गणिका' कहते हैं । उनकी व्यवस्था करनेके लिये नियुक्त हुए राजकीय अधिकारी का नाम 'गणिकाध्यक्ष' है । इस प्रकरण में उसीके कार्योंका निरूपण किया जायगा ।

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवन-
शिल्पसंपन्नां महस्त्रेण गणिकां कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्भार्धेन प्रति-
गणिकाम् ॥ २ ॥

गणिकाध्यक्ष, रूप यौवन तथा गाने बजाने आदिकी कलाओंसे युक्त लड़कीको, चाहे वह गणिका (वेश्या) के वश, में उत्पन्नहुई हो, या न उत्पन्न हुई हो, एक हजार (१०००) पण देकर, गणिकाके कार्य पर नियुक्त करे । ॥ १ ॥ इसी प्रकार दूसरी गणिकाको भी आधा धन उसके कुटुम्भको और आधा उसको देकर उसके कार्य पर नियुक्त करे । (पहिले सहस्र में भी आधा २ बाँट कर ही गणिका और उसके कुटुम्भ को दे दिया जावे) अथवा इस सूत्र का यह अर्थ करना चाहिये—राजाको परिचर्या करना ही गणिका कुटुम्भ का कार्य है, वह कार्य आधा २ बाँट कर प्रतिगणिकाकी नियुक्ति कीजावे । अर्थात् राजपरिचर्याका आधा कार्य पहिली गणिका करे और आधा दूसरी ॥२॥

निष्पत्तिप्रतयोर्दुहिता भगिनी वा कुटुम्भं भरेत् ॥ ३ ॥
तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत् ॥ ४ ॥ तामामभावे राजा
हरेत् ॥ ५ ॥

यदि कोई गणिका अपने स्थानको छोड़कर दूसरी जगह चली जावे, अथवा मर जावे तो उसके स्थान पर उसकी लड़की या बहिन, उन २ कार्यों को करती हुई उसकी सम्पत्ति की मालिक बन जावे ॥ ३ ॥ अथवा बाहर गई हुई या मरी हुई गणिका की माता, उसके स्थान पर किसी दूसरी गणिका को नियुक्त करले; वही उन २ कार्योंको करती हुई, उसकी शेष सम्पत्तिकी मालिक बने ॥ ४ ॥ यदि इनमेंसे कोई भी न रहे, तो उस सम्पत्तिकी मालिक राजा ही समझा जावे ॥ ५ ॥

सौभाग्यालंकारवृद्ध्या सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत् ॥ ६ ॥ छत्रभृद्भारव्यजनशिविकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम् ॥ ७ ॥

सौभाग्य और अलङ्कारकी अधिकताके अनुसार ही एक हजार पण देनेके क्रमसे वाराहनाओंके तीन विभाग किये जावें,—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम । अर्थात् जो वाराहना (वैश्या=गणिका) सौन्दर्य आदि सजावटमें सबसे कम ही वह कनिष्ठ समझी जावे, उसको एक हजार पण वेतन दिया जावे; इसी प्रकार जो सौन्दर्य आदिमें उससे अधिक दो वह मध्यम, उसको दो हजार पण वेतन दिया जावे; और जो सबसे अधिक हो, वह उत्तम, उसको तीन हजार पण वेतन दिया जावे । इस तरहसे कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम तीन भेद बनाये जावें ॥ ६ ॥ इन भेदोंका प्रयोजन यही है, कि वे गणिका अपने २ पत्रके अनुसार, राजाके छत्र, भृद्भार (इतरदान या अन्य महर्घ वस्तुकी छोटीसी पेटी, जो राजाके साथ २ रहती है), व्यजन, (पेला), पालकी, पीठिका, (राजाके बैठनेका विशेष स्थान), और रथ सम्बन्धी कार्योंमें नियमानुसार उपस्थित रहें, अर्थात् भिन्न २ अवसरोंपर भिन्न २ विधिसे राजाकी उपचर्या करें । इसका विवेक इस तरह करना चाहिये— जो कनिष्ठ वारवनिता हो, वह छत्र और भृद्भार लेकर राजाकी उपचर्या करे; मध्यम, व्यजन और पालकीके साथ रहकर राजाकी सेवा करे, तथा उत्तम राजाके विशेष सिंहासन और रथ आदिमें साथ २ रहकर उसकी उपचर्या करे ॥ ७ ॥

सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात् ॥ ८ ॥ निष्क्रयश्चतुर्विंशति-
साहस्रो गणिकायाः ॥९॥ द्वादशसाहस्रो गणिकापुत्रस्य ॥१०॥
अष्टवर्षात्प्रभृति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

जय इनका रूप और यौवन टल जाय, तब इनको नई नियुक्त की हुई गणिकाओंके मातृस्थानमें समझा जाय । अर्थात् नई गणिकाओंकी माता बनकर ये उन्हें हर तरहकी शिक्षा दें, और उनको सदा राजाके अनुकूल बनाये रखें ॥ ८ ॥ जो गणिका अपने आपको राजाकी सेवासे मुक्त करना चाहे, वह उसको चौबीस हजार पण (२४०००) निष्क्य (सेवासे मुक्त होनेका मूल्य) देवे । अर्थात् वह राजाको २४००० पण देकर उसकी सेवासे मुक्त होकमती है ॥ १० ॥ यदि गणिकाका पुत्र अपने आपको राजाकी सेवासे मुक्त करना चाहे, तो उसका निष्क्य चारह हजार (१२०००) पण है ॥ १० ॥ यदि वह निष्कर देनेमें समर्थ नहीं है, तो राजाके पास आठ वर्षक कुशीलव (चारण) का काम काके, फिर अपने आपको मुक्त कर सकता है ॥ ११ ॥

गणिकादासी भ्रमभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् ॥१२॥ अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् ॥ १३ ॥

गणिकाकी दासी जब भोग योग्य उमरको छोड़ जावे, अर्थात् मृती होजावे, तब उसको कोष्ठागार या महानम (रसोई) में काम करनेके लिये नियुक्त कर दिया जावे ॥ १२ ॥ यदि वह काम न करे, और किसी एकही पुरुषकी भोग्य हो बनकर उसके घरमें रहने लगे, तो वह प्रतिमास उस गणिकाको सवा (१३) पण वेतन देवे ॥ १३ ॥

भोगं दायमायं व्ययमायति च गणिकायाः निबन्धयेत् ॥१४॥

अतिव्ययकर्म च वारयेत् ॥ १५ ॥

गणिकाध्यक्षको चाहिये, कि वह गणिकाके भोगधन (गणिकाको भोग करने वाले पुरुषसे प्राप्त हुआ २ धन), दायभाग (मातृकुलकर्मसे प्राप्त हुआ २ धन), आय (भोगसे अतिरिक्त प्राप्त होने वाला धन), व्यय और आयति (प्रभाव=आगे होने वाले असर) को परावर अपनी पुस्तकमें लिखता रहे ॥ १४ ॥ और गणिकाओंको अधिक व्यय करनेसे सदा रोकता रहे ॥ १५ ॥

मातृहस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः ॥१६॥

स्वापतेयं विक्रयमाधानं वा नयन्त्याः सपादपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १७ ॥

यदि गणिका, अपनी माताके सिवाय और किसीके हाथमें अपने आभरण आदि सौंपे, तो उसे सवा चार (४३) पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ यदि वह (गणिका) अपने कपड़े धरतन पारिवारिक परिच्छदको बेचे या गिरवी रखे, तो उसे सवा पचास (५०) पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिपणो वाक्पारुष्ये ॥ १८ ॥ द्विगुणो दण्डपारुष्ये
॥ १९ ॥ सपादपञ्चाशत्पणः पणोऽर्धपणश्च कर्णच्छेदने ॥२०॥

यदि वह किसीके साथ वाचिक कठोरताका वर्ताव करे, तो उसे चौबीस (२४) पण दण्ड दिया जाये ॥ १८ ॥ यदि हाथ पैर या कान आदिके मारकर किसीके साथ कठोरता करे, तो पहिलेसे दुगना अर्थात् अड़तालीस (४८) पण दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ यदि वह किसीका कान आदि काटछेवे, तो पैंने थावन (५१ १/२) पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः ॥ २१ ॥
सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥

यदि कोई पुरुष, कामनारहित कुमारीपर बलात्कार करे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ तथा जो कामना करने वालीही कुमारीके साथ ऐसा व्यवहार करे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥

गणिकामकामां रुन्धतो निष्पातयतो वा व्रणविदारणेन वा
रूपमुपघ्नतः सहस्रदण्डः ॥ २३ ॥

जो पुरुष, किसी कामनारहित गणिकाको बलपूर्वक रोककर अपने घरमें रक्खे, अथवा उसको मुक्त न करना चाहे, या कोई चोट अथवा घाव लगाकर उसके रूपको नष्ट करना चाहे; उस पुरुषको एक हजार (१०००) पण दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥

स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरनिष्क्रयद्विगुणात्पणसहस्रं वा
दण्डः ॥ २४ ॥

शरीरके भिन्न २ स्थानोंपर चोट पहुंचानेसे, उन २ स्थान विशेषोंके अनुसार ही इस दण्डमें (१००० पण दण्डमें) वृद्धि की जावे । यह वृद्धि निष्क्रयकी दुगना रकम तक होजानी चाहिये । (वाराणनाका निष्क्रय चौबीस हजार पण बताया गया है, उसका दुगना अड़तालीस हजार पण हुए; शरीर के किसी अवयवका उपघात करनेपर अधिकसे अधिक इतना दण्ड होसकधा है । किसी व्याख्याकारने इसका यह भी अर्थ किया है, कि दण्डवृद्धि उत्तम आदि वाराणनाओंके विचारसे करनी चाहिये । प्राचीन व्याख्याकारोंने इस सूत्रके 'पणसहस्रं वा दण्डः' इस अंशका अर्थयान नहीं किया, यह अंश मूल पुस्तकोंमें बराबर देखा जाता है; परन्तु पूर्वापरके साथ इसकी संगति मालूम नहीं होती, इसलिये यह पाठ प्रक्षिप्त ही मानना होता है) ॥ २४ ॥

प्रासाधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयत्रिगुणो दण्डः
 ॥ २५ ॥ मातृकादुहितृकारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः
 ॥ २६ ॥

जिन गणिकाओंको राजाके समीप छत्र भृङ्गार आदिका अधिकार प्राप्त हो, अर्थात् जो राजकीय चाराङ्गनायें हों, उनको मारने पाड़ने वाले पुरुषको निष्क्रयसे तीन गुना अर्थात् बहत्तर हजार (७२०००) पण दण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥ माता, लड़की, तथा रूपदासी (रूपसे आजीविका करनेके लिये दासी बनी हुई स्त्री) को मारने पीटनेपर उत्तम साहस दण्ड दियाजावे ॥ २६ ॥

सर्वत्र प्रथमे अपराधे प्रथमः ॥ २७ ॥ द्वितीये द्विगुणः
 ॥ २८ ॥ तृतीये त्रिगुणः ॥ २९ ॥ चतुर्थे यथाकामी स्यात् ॥ ३० ॥

सबहीं दण्डोंमें जो अपराध पहिलेही पहिले किया जाय, उसीके लिये निर्दिष्ट दण्डोंका विधान है । इसलिये दिखलाये हुए ये सब दण्ड, प्रथम दण्ड अर्थात् पहिले अपराधके लिये दण्ड समझने चाहियें ॥ २७ ॥ यदि कोई पुरुष उसी अपराधको फिर दुबारा करे, तो उसको निर्दिष्ट दण्डसे दुगुना दण्ड दिया जाय ॥ २८ ॥ इसी प्रकार तीसरी बार वही अपराध करनेपर, त्रिगुना दण्ड ॥ २९ ॥ आर चौथी बार उसी अपराधके करनेपर, चौगुना अथवा सर्व-स्वका अपहरण, या देशमें ही प्रवासित करदेना, आदि दण्डोंमेंसे कोईसा दण्ड इच्छानुसार दिया जावे ॥ ३० ॥

राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत
 ॥ ३१ ॥ यञ्चसहस्रं वा दण्डः ॥ ३२ ॥

जो गणिका, राजाको आज्ञा होनेपर भी, किसी पुरुष विशेषके पास न जावे, उसको एक हजार कोटि लगवाये जावे ॥ ३१ ॥ अथवा यह क्षारीरिक्त दण्ड न देकर, उसपर पाँच हजार (५०००) पण छुरमाना किया जाय ॥ ३२ ॥

भोगं गृहीत्वा द्विपत्या भोगद्विगुणो दण्डः ॥ ३३ ॥
 वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यादन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः
 ॥ ३४ ॥

यदि कोई गणिका, किसी पुरुषसे अपने भोगका वेतन लेकर फिर उसीके साथ द्वेष करे, अर्थात् उसके पास न जावे, तो उस लिये हुए भोगवेतनसे दुगुना दण्ड उसको दिया जाय ॥ ३३ ॥ यदि राजसिन्धुभोगका वेतन लेकर, गणिका उस हासको कप्य, तथा अन्य बातके बहामेंसे ही बिता देवे, तो उसको उस वेतनका आठगुना दण्ड दिया जावे । परन्तु यदि उस पुरुषको कोई ऐसा

संक्रामक रोग हो, या अन्य किसी प्रकारका उसमें दोष हो, तो सम्भोग न करनेपर भी गणिका अपराधिनी न होगी ॥ ३४ ॥

पुरुषं मृत्याश्रिताप्रतापो ऽप्सु प्रवेशनं वा ॥ ३५ ॥ गणि-
काभरणार्थं भोगं वापहरतो ऽष्टगुणो दण्डः ॥ ३६ ॥ गणिका
भोगमायति पुरुषं च निषेदयेत् ॥ ३७ ॥

जो गणिका इसप्रकार वेतन लेकर पुरुषको मारवाले, उसको उस पुरु-
षके साथही चित्तमें रखकर जीतेजी जला दिया जावे, भयवा गलेमें शिला
बांधकर जलमें डुबो दिया जावे ॥ ३५ ॥ गणिकाके आभरण, अन्य पदार्थ तथा
सम्भोगके वेतनको जो पुरुष अपहरण करे, उसे अपहृत धनसे आठगुना दण्ड
दिया जावे ॥ ३६ ॥ गणिका अपने भोग, आमदनी तथा अपने साथ सहवास
करने वाले पुरुषकी सूचना गणिकाध्यक्षको परावर देवे ॥ ३७ ॥

एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवपुत्रकसौभि-
कचारणानां स्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियो गूढाजीवाश्च व्याख्याताः
॥ ३८ ॥

नट (अभिनय करने वाले) नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन (कथा
करके जीविका करने वाले) कुशीलव (मुख्यतया नृत्य आदि दिखाकर बाने
वाले), प्लवक (रस्तीपर चढ़कर खेल दिखाने वाले), सौभिक (ऐन्द्रजा-
लिक=जादूगर), चारण (भांडू मल्ल आदि) तथा और भी जो कोई स्त्रियोंके
द्वारा अपनी जीविका कमाते हों, उनकी स्त्रियें ; और छिपकर स्वभिचार आदिसे
जीविका कमाने वाली स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी गणिकाओंके समानही सब यथो-
चित नियम बर्तें जावें । अर्थात् नट आदिकी स्त्रियोंके विषयमें जो नियम जहाँ
सम्भव हो, उसके अनुसार ही इनके साथ बर्ताव किया जावे ॥ ३८ ॥

तेषां सूर्यमामन्तुकं पञ्चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात् ॥ ३९ ॥
रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः ॥ ४० ॥

यदि नट आदिकी कोई कम्पनी किसी दूसरे देशसे तमाशा दिखानेके
लिये आवे, तो प्रत्येक तमाशा दिखानेका पांच पण टैक्स राजाको देवे ॥ ३९ ॥
रूपसे आजीविका करने वाली गणिका, अपनी मासिक आमदनीकी औसतमेंसे
दो दिनकी आमदनी, राजाको कर रूपमें देवें । तात्पर्य यह है, कि महीने भरमें
जितनी भी आमदनी हो, उसको प्रत्येक दिनपर यथावर २ बाँटकर, दो दिनका
जो कुछ बचे, उतनाही टैक्स राजाको दिया जावे ॥ ४० ॥

गीतवाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेषुमृदङ्गपरचित्तज्ञान-
गन्धमाल्यसंयूहनसंपादनसंप्राहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका
दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राह्यतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात् ॥४१॥

गाना, बजाना, नाचना, अभिनय करना, लिखना, चित्रकारी करना, वीणा वेषु तथा मृदङ्गको विशेष रीतिसे बजाना, दूसरेके चित्तको पहचानना, गन्धोंका बनाना, मालाओंका गूँथना, (गन्धसंयूहनं, माल्यसम्पादनं), पैर आदि अंगोंका दयाना (संवाहन) शरीरकी हर तरहसे वैशभूषा आदि करना, तथा घोंसठ कलाओंमेंसे अन्य भावदयक कलाओंको; गणिका, दासी (गणिकाओंसे अतिरिक्त अन्य साधारण वेश्यायें), तथा रङ्गमञ्च (स्टेज) पर अभिनय करके जीविका करने वाली स्त्रियोंके लिये सिखाने वाले आचार्यकी वृत्ति (नियोद्) का प्रबन्ध, राजा, राजमण्डल (नगर तथा ग्रामोंसे आने वाली आय) से करे ॥ ४१ ॥

गणिकापुत्रारङ्गोपजीविनश्च मुख्यान्निष्पादयेयुः सर्वताला-
वचाराणां च ॥ ४२ ॥

गणिकाओंके पुत्रों तथा मुख्य रङ्गोपजीवियों (रंग मंचपर अभिनय आदि करके जीविका करने वाले मुख्य नटों) को अन्ध सब रंगोपजीवियोंका (सर्वतालावचाराणां) प्रधान बनाया जावे । अर्थात् ये, सबके आचार्यस्थानीय रहकर कार्योंको करें ॥ ४२ ॥

संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु ।

चारधातप्रमादार्थं प्रयोज्या यन्धुवाहनाः ॥ ४३ ॥

इत्यप्यक्षप्रचारे द्वितीयऽधिकरणे गणिकाप्यक्षः सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

आदितोऽष्टावर्षिणः ॥ ४८ ॥

तरह २ के इशारे और भिन्न २ भाषाओंको जानने वाली, उन रंगोपजीवियोंकी स्त्रियाँ, राजाके द्वारा धन आदि देकर वशमें किये हुए, उनके (उन स्त्रियोंके) बन्धु बान्धवोंसे राजाकी आज्ञानुसार कार्योंमें प्रवृत्त कीहुई; अजितेन्द्रिय दृश्य पुरुषोंमें शत्रुओंके द्वारा भेजे हुए गुप्तचरोंके मारनेके लिये अथवा उनको विषयोंमें आसक्तकर प्रमादी बनानेके लिये प्रयुक्त की जायें तात्पर्य यह है कि राजा, रङ्गोपजीवियोंको यथेच्छ धन आदि देकर उनको वशमें करके, उनकी स्त्रियोंको, शत्रुके गुप्तचरोंके घप करने तथा उनको प्रमादी बनानेके कामपर नियुक्त करे, जिससे कि वे अपने कार्यको यथाविधि न कर सकें ॥४३॥

अप्यक्षप्रचारः द्वितीयऽधिकरणम् सत्ताईसवां अध्याय समाप्तः ।

अट्टाईसवां अध्याय ।

४५ प्रकरण ।

नावध्यक्ष ।

{ नौकाओंके टैक्स आदिको वसूल करने वाला, राजकीय पुरुष 'नाव-
ध्यक्ष' कहा जाता है । उसके सब कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण
किया जायगा ।

नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतरप्रचारान्देवसरोविसरोन-
दीतरांश्च स्थानीयादिप्ववेक्षेत ॥ १ ॥ तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं
दद्युः ॥ २ ॥

नावध्यक्षको चाहिये, कि वह समुद्र तटके समीपके, नदी और समुद्र-
के संगमके नौमार्गोंको; तथा बड़ी २ झील, तालाब और नदियोंके नौमार्गों-
को (नाव चलानेके मार्गोंको), स्थानीय, द्रोणमुख आदि स्थानोंमें अच्छीतरह
देखता रहे, (स्थानीय तथा द्रोण-मुख आदिका विवरण, देखो तीसरे अधि-
करणका पहिला सूत्र); अर्थात् इन मार्गोंका प्रबन्ध और निरीक्षण बराबर करता
रहे ॥ १ ॥ समुद्र, झील या नदी आदिके किनारेपर बसे हुए गांव, राजाको
कुछ नियत टैक्स देवे । (क्योंकि यहाँके लोग नाव आदिले निरन्तर व्यापार
कर सकते हैं; यदि ये लोग कुछ न देंगे, तो जनपदके अन्य नाविक व्यापारी
किस प्रकार देनेको तैयार होसकेंगे; इसलिये किनारेके गांव सदाही कुछ निय-
तकर देते रहें ॥ २ ॥

मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः ॥ ३ ॥ पत्तनानु-
वृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः ॥ ४ ॥ यात्रावेतनं राजनौभिः
संपतन्तः ॥ ५ ॥ अह्वमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः ॥ ६ ॥
स्वनौभिर्वा तरेयुः ॥ ७ ॥

मछियारे (मछली मारने वाले), अपनी आमदनी(मछली आदि जो कुछ
पकें, उस) का छठा हिस्सा, सरकारी नावपर आने जानेका भाड़ा देवे ॥ ३ ॥
समुद्र आदिके तटपर बसे हुए व्यापारी नगरोंके (अथवा दन्द्रगाहोंके) नियमके
अनुसार ही, यनिये अपने मालके मूल्यका पांचवां या छठा हिस्सा राजकीय शुल्क
(सरकारी टैक्स) देवे ॥ ४ ॥ सरकारी नावोंसे अपना माल लाने लेजानेपर, उसका भाड़ा
शुल्कइत्यादि नियमानुसार देवे ॥ ५ ॥ इसी प्रकार शंख और मोती आदिको समुद्रसे

निकालने वाले व्यापारी, नावका भाड़ा देवे; (यहाँपर कितना भाड़ा देवे, इसका कोई निर्देश नहीं है, इस लिये उनके मालके मूल्यका पाँचवां या छठा हिस्साही भाड़ा समझना चाहिये) ॥ ६ ॥ अथवा अपनी नावोंसे ही तरे; अर्थात् सरकारी नावोंका उपयोग न कर अपना नावोंसे ही सब काम लेवे ॥ ७ ॥

अध्यक्षत्वेपां खन्यध्यक्षेण ध्याख्यातः ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत् ॥ ९ ॥

शंख तथा मोती आदिके विषयमें, खन्यध्यक्षके समान ही नावध्यक्षका कार्य समझना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार खन्यध्यक्ष, खानमें उत्पन्न होने वाली वस्तुओंके व्यापार आदिका पूरा प्रबन्ध करता है, इसी प्रकार नावध्यक्ष भी मछली, शंख, मोती आदि समुद्रिक वस्तुओंके व्यापार आदिका पूरा प्रबंध करे ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्ष (नगराध्यक्ष) के नियत किये हुए, व्यापारी नगरके नियमोंको (अथवा बन्दरगाह सम्बन्धी नियमोंको) नावध्यक्ष पूरे तौरपर पालन करे । अर्थात् नगरमें आकर नागरिक नियमोंका उल्लंघन न करे ॥ ९ ॥

मूढवाताहतानां पितेवानुगृह्णीयात् ॥ १० ॥ उदकप्राप्तं पण्यमशुल्कमर्धशुल्कं वा कुर्यात् ॥ ११ ॥

दिग्भ्रम होजानेसे अथवा तूफान आदिके कारण, नष्ट होती हुई नावको, पित्तके समान अनुग्रह करके बचावे ॥ १० ॥ जलके कारण खराब हुए २ मार्गपर (अर्थात् जिस मालमें जलके कारण व्यापारीका नुकसान होगया हो, ऐसे मालपर) शुल्क (सरकारी टैक्स) न लेवे; अर्थात् उसका शुल्क माफ़ करदेवे । अथवा हानिके अनुसार, उस मालपर भाधा ही शुल्क लेने ॥ ११ ॥

यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्यपत्तनयात्राकालेषु प्रेषयेत् ॥ १२ ॥
संयान्तीर्नावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत ॥ १३ ॥ हिंस्रिका
निर्घातयेत् ॥ १४ ॥ अमित्रविपयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोप-
घातिकाश्च ॥ १५ ॥

सर्वथा शुल्क रहित तथा आधे शुल्क वाली इन नावोंको, व्यापारिक नगरोंकी ओर यात्रा करनेके समयमें भेज देवे या छोड़देवे ॥ १२ ॥ चञ्चली हुई नावोंको, जब वे शुल्क स्थानमें पहुँचें, शुल्क माँगे । अर्थात् नावके चुंगीघाके पास पहुँचनेपर उनसे सरकारी चुंगी लेली जावे । तत्पर्य यह है, कि जो नाव बन्दरगाहसे गुजर कर किसी अन्य स्थानपर जाने वाली है, उससे बन्दरगाहपर टहरने या गुजरनेकी चुंगी लेली जावे ॥ १३ ॥ जो नावें चोर और डाकुओंकी हों, उनको नष्ट करदिया जावे ॥ १४ ॥ तथा जो नाव, शत्रुके देशको जाने वाली हों, और व्यापारी नगरों या बन्दरगाहोंके नियमोंको उल्लंघन करने वाली हों, उनको भी नष्ट करदिया जावे ॥ १५ ॥

शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो
हेमन्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ धुद्रकाः
धुद्रिकासु वर्षास्नाविणीषु ॥ १७ ॥

शासक (नाव चलाने वालों में सब से बड़ा अधिकारी, जिसकी
आज्ञा के अनुसार नाव चलाई जाये), नियामक (नाव चलाने वाला),
दात्रमाहक (दाँती=रस्मी तथा लकड़ी आदि काटने के लिये आवश्यकतानुसार
कोई साधन=हाथ में लेने वाला; नावों में इसकी भी काफी जरूरत पड़ती
रहती है) रश्मिमाहक (रस्मी या पतवार आदि पकड़ने वाला), और
उत्सेचक (भीतर भरे पानी को बाहर उखींचने वाला), इन पाँच कर्मचा-
रियोंसे युक्त बड़ी २ नावों को ही, गरमी और परदे में पृथक् से बहने
वाली गइरी और बहुत बड़ी २ सिन्धु आदि नदियों में प्रयुक्त किया जाये ।
अर्थात् बड़ी नदियों में बड़ी नावों के चलने की ही आज्ञा दी जाये ॥ १६ ॥
केवल बरसात में बहने वाली (अर्थात् बरसाती) छोटी २ नदियों के लिये
छोटी नावों का पृथक् प्रबन्ध किया जाये ॥ १७ ॥

वृद्धतीर्थाश्रिताः कार्यं राजद्विष्टकारिणां तरणभयात् ॥ १८ ॥
अकाले ज्तीर्थे च तरतः पूर्वः साहमदण्डः ॥ १९ ॥ काले तीर्थे
चानिसृष्टतारिणः पादेनसप्तविंशतिपणः तरात्ययः ॥ २० ॥

इन नावों के बन्दरगाहों की बहुत सावधानता से निगरानी रखी
जाये । तात्पर्य यह है, कि प्रथम तो हा एक नावके डहरने के स्थान (स्टेशन)
नियत होवे, और दूसरे जब नाव वहाँ डहरे तब उनपर पूरा ध्यान रक्खा
जाये; जिसमें कि कोई भी राजा के साथ द्वेष करने वाला, अथवा शत्रु के
भेजे हुए तीक्ष्ण और रसद आदि पुरप, नावों से इधर उधर पार न आ जा
सके ॥ १८ ॥ इसीलिये यदि कोई नाव वाला असमय (नाव के आने जानेके
नियत समयके अतिरिक्त समयमें) या बिना ही घाट (बन्दरगाह) के नदी
आदि को पार कर रहा हो, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥
और ठीक समय में तथा घाट पर भी, बिना आज्ञा के नाव को पार लेजाने
वाले व्यक्ति को पीने सत्तारहम २६५ पण दण्ड दिया जाये ॥ २० ॥

कैवर्तकाष्ठवृणभारपुष्पफलवाटपण्डगोपालरानामनत्ययः स-
म्भाव्यदूतानुपातिनां च सेनाभाण्डप्रचारप्रयोगाणां च ॥ २१ ॥
स्वतरणैस्तरताम् ॥ २२ ॥ बीजमक्तद्रव्योपस्करांश्चानूपग्रामाणां
तारयताम् ॥ २३ ॥

धींवर (मछली आदि मारने वाले), लकड़हारे, घसियारे, माली, कृजड़े, खेतों की रखवाली करने वाले, ग्वाल, चोर आदिकी शका से किसीके पीछे जाने वाले (सम्भाव्यानुपातिना), राजदूत के पीछे शेष कार्य को पूरा करने के लिये जाने वाले (दूतानुपातिना), सेना, सैनिकसामग्री, तथा गुप्तचर पुरपोंको, असमय में या बिना घाट के ही नदी पार करनेपर भी कोई दण्ड न दिया जावे ॥ २१ ॥ इसीप्रकार जो अपनी ही नावा से नदी आदि पार करें, उनसे भी किसी तरहका दण्ड न लिया जाय ॥ २२ ॥ तथा जलमय प्रदेशों में बसे हुए गावों के, बीज (बोनेके लिये धान आदि के बीज), मत्त (कर्मचारी पुरुषोंके खाने के लिये भक्ष्य द्रव्य), अन्य द्रव्य (फूल, फल शाक आदि), और उपस्कर (मसाला आदि), इत्यादि पदार्थों को पार लेजाने वाले पुरपोंको भी किसी प्रकारका दण्ड न दिया जाय । अर्थात् ऐसे गावों में इन उपयुक्त पदार्थोंको असमय तथा बिना घाटके भी लेजाया जासकता है ॥ २३ ॥

ब्राह्मणप्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितशासनहरगार्मिण्यो नापद्य-
क्षमुद्रामिस्तरेयुः ॥ २४ ॥ कृतप्रवेगाः पारविपयिकाः सार्थप्र-
माणाः प्रविशेयुः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण, सन्यासी, बालक, वृद्ध, बीमार, शासनहर (राजाका प्लची, राजाकी आज्ञाको दूसरी जगह लेजाने वाला), तथा गर्भवती स्त्री, इनको नावप्यक्षकी मुहर देखकर ही पार कर दिया जावे । अर्थात् नदी आदि पार करनेका भाडा इनस न लिया जाय ॥ २४ ॥ परदेश से आनेवाले जिन लोगों ने, देशमें आनेकी अनुमति प्राप्त करली है, भयवा जो अनुमति प्राप्त कियेहुए व्यापारी पुरपोंके साथ हैं, वे ही लोग देशमें प्रवेश कर सकते हैं ॥ २५ ॥

परस्य भार्या कन्यां चित्तं वापहरन्तं शङ्कितमाविप्रमुद्राण्डी-
कृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योगृहीतलिङ्गिनम-
लिङ्गिनं वा प्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणं गूढसारभाण्ड-
शासनशस्त्राप्रियोगं विपहस्तं दीर्घपाधिरुममुद्रं चोपग्राहयेत् ॥ २६ ॥

किसीकी स्त्री, कन्या तथा धनका अपहरण करने वाले पुरपको, आगे कहे हुए शङ्कित आदि चिह्नोंसे पहिचानकर गिरफ्तार करलिया जाये। वे चिह्न इस प्रकार हैं — शङ्कित अर्थात् उस आदमीका चौकचा सा होना, घबराया हुआ होना, सन्तिये बहुत अधिक बोझ उठायेहुए होना, मिरपर बहुत फैलेहुए पुराण या घाम आदिके बोझमें मुह आदिको दृक्हुए होना, जव

संन्यासीका वेश बनालेना, या तत्काल ही संन्यासी वेश हो छोड़कर सादा वेश करलेना, बीमारोंके चिन्ह मालूम न होनेपर भी बीमार होनेका चहाना करना, भयके कारण मुख आदिका विकृत होना, बहुमूदय रत्न आदि द्रव्योंका बहुत छिपाना, किसी गुप्त लेख आदिका रखना, छिपे तौरपर हथियार रखना, छिपे तौरपर ही अभियोग (औपनिषदिक प्रकरणमें बताया हुआ ऐसा प्रयोग, जिसका कि कोई प्रतीकार नहीं किया जासकता) आदिका रखना, हाथ में गहरका रखना, बहुत दूरका सफर करना तथा अन्तपाल से पास लिये बिना ही सफर करना, इत्यादि चिन्होंसे अनुमान करके, स्त्री आदिके अपहरण करने वाले पुरुषको गिरफ्तार करलिया जाये ॥ २६ ॥

क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च समारो मापकं दद्यात् ॥ २७ ॥ शिरो-
भारः कायभारो नवाश्वं च डौ ॥ २८ ॥ उष्ट्रमहिषं चतुरः
॥ २९ ॥ पञ्च लघुयानम् ॥ ३० ॥ पद् गोलिङ्गम् ॥ ३१ ॥
सप्त शकटम् ॥ ३२ ॥ पण्यभारः पादम् ॥ ३३ ॥

अथ नदी आदि पार करनेका कितना भाड़ा होना चाहिये, यह बताया जाता है:—भेड़ बकरी आदि छोटे जानवर और मनुष्यका जिसके पास केवल हाथमें उठाने योग्य घोड़ा हो, एक मापक भाड़ा दिया जाये ॥ २७ ॥ सिरसे तथा पीठ आदिसे उठाने योग्य घोड़ से युक्त पुरुषका, और गाय घोड़ा आदि पशुओंका दो मापक भाड़ा दिया जाये ॥ २८ ॥ ऊंट और भैसका पार मापक ॥ २९ ॥ छोटीसी गाड़ी आदिका पांच मापक ॥ ३० ॥ मध्यम दरजेकी गाड़ीका छः मापक ॥ ३१ ॥ बड़ी बैलगाड़ीका सात मापक ॥ ३२ ॥ बीस तुला घोड़का दू पण भाड़ा दिया जाये ॥ ३३ ॥

जरदुधेनुगर्भिणीप्रष्टौहीवत्सतरीणां संमविभागं रूपशतमेकः
पालयेत् ॥ ४ ॥ घृतस्याष्टौ वारकान्पणिकं पुच्छमङ्कचर्म च
वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः ॥ ५ ॥

बूढी, दूध देने वाली, ग्याभन, पठोरी, वत्सतरी (जिसने अभी २ दूध
खोखना छोड़ा है), इन पांच प्रकारकी गायोंको बराबर २ मिलाकर पूरा सौ
करदिया जावे, अर्थात् हर तरहकी बीस २ गायोंको इकट्ठा करदिया जावे, और
उनका पालन किसी एक व्यक्तिसे कराया जावे । तात्पर्य यह है, कि इसप्रकार
सौ सौ गायोंका, एक २ आदमीको एक प्रकारसे ठेका देदिया जाये ॥ ४ ॥ और
इसके बदलेमें वह आदमी, गौओंके मालिकको प्रतिवर्ष आठ वारक घी, (घी
के तोलनेमें चौरासी कुडुबका एक वारक होता है; देखो अधि. २, अध्या. १९,
सूत्र ५७), प्रत्येक पशुके लिये एक एक पण ('पणिकं पुच्छम्' इसका तात्पर्य
यही है, कि एक पूँडेके पीठे एक पण वार्षिक; अर्थात् एक पशुका एक पण
वार्षिक; इसप्रकार सौ गायोंके सौ पण वार्षिक होंगये), और राजकीय मुद्रासे
मुद्रित मरे हुए पशुका एक भद्र चमड़ा देवे । अर्थात् आठ वारक घी, सौ पण
और एक चमड़ा मालिकको देवे । शेष सब आमदनी उसकी अपनी समझी
जावे । गौओंकी रक्षाके इस उपायको 'करप्रतिकर' कहते हैं ॥ ५ ॥

न्याधितान्यङ्गानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं
रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दशुरिति भद्रोत्सृष्टकम् ॥ ६ ॥

बामार, अङ्गविकल (कानी, बूधी, लगड़ी आदि), अनन्यदोही (अन्य
किसीसे न दुही जाने वाली, अर्थात् जिनको एकही आदमी दुह सके), दुर्दोहा
(जो वैर आदि बांधकर मुश्किलसे दुही जायें), और पुत्रघ्नी (जिनका बछड़ा
आदि मर जावे, या जो लूट्टे); इन पांच प्रकारकी गायोंको भी पहिलेकी तरह
बराबर २ मिलाकर पूरा सौ करदिया जावे, और उनको भी उसी प्रकार किसी
व्यक्तिको पालनेके लिये देदिया जावे, उनको पालने वाले पुरुष पहिलेकी तरह
हैं, उन गायोंकी ईसियतके अनुसार पूर्वोक्त घी आदिका आधा हिस्सा अथवा
निहाई हिस्सा जितना भी उचित हो, उतना ही राजकीय अंश अपने अपक्ष
को दें । गाय आदिकी रक्षाके इस उपायका नाम 'भद्रोत्सृष्टक' है ॥ ६ ॥

परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं
दशुरिति भागानुप्रविष्टकम् ॥ ७ ॥

शायुओंके छल करनेके तथा आठविकों (वनचरो=जहङ्गी पुरुषों) के
अपहरण करनेके समयमें, जो गोपालक अपनी गायोंको सरकारी चानेमें प्रविष्ट

करदे, उन प्रविष्ट हुई २ गायोंके पालनेके अनुसार ही वे गोपालक दसवा हिस्सा राजाको देंगे तत्पर्य यह है, कि जब किसी बाहरी दरसे गोपालक अपनी गायोंको सरकारी चरागाहमें ही रखें, तो वे उन गायोंकी आमदनीका दसवा हिस्सा राजाको अवश्य देंगे । गाय आदिकी रक्षाके इस उपायको 'भागानुप्रविष्टक' कहते हैं ॥ ७ ॥

वत्सा वत्सतरा दम्प्या वहिनो वृषा उक्षाणश्च पुङ्गवाः, युगवाहनशकटवहा वृषभाः सूना महिषाः पृष्टस्कन्धवाहिनश्च महिषाः वत्सिका वत्सतरी प्रष्टौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गायो महिष्यश्च, मामद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च, मामद्विमासजातानङ्कयेत् ॥ ८ ॥ मासद्विमासपर्युपितमङ्कयेत् ॥ ९ ॥ अङ्कं चिह्नं वर्णं शृङ्गान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निबन्धयेदिति ब्रजपर्यग्रम् ॥ १० ॥

बलधा (छोटा बलडा=दूध चूखने वाला), वत्सतर (बडा बलडा=जिसने दूध चूखना छोड़ दिया हो), दम्प (खलगा=जो कृषि आदिमें काम सीखने योग्य हो), बोझ ढाने वाले साड (बिजारा), और हल आदि चलानेके काममें पड़े हुए ये छ प्रकारके पुङ्गव (अर्थात् पुरुष रूप गाय=बैल) होते हैं । शुभा, हल तथा गाधी आदिमें चलाने वाले, साड (जो भैंसा दग लगाकर अच्छी नसल बनानेके लिये छोड़ दिया जाते हैं, बैलोंकी तरह उन भैंसाओंको भी साड या भैंसा साड कहा जाता है), केवल मासके लिये उपयोगमें आने वाले (सूना महिषा), और अपनी पीठ तथा कन्धेपर बोझ ढाने वाले, ये चार प्रकारके भैंसे होते हैं । बलडी (छोटी बलडी=दूध चूखने वाली), वत्सतरी (बडी बलडी=जिसने दूध चूखना अभी छोड़ा हो), पठोरी (जो ग्यासन होनेकी अभिलाषा करती हो), ग्याभन, दूध देने वाली, भषेड उमरकी (अमजाता=अभी तक जिन गायोंकी प्रजनन शक्ति नष्ट न हुई हो, ऐसी), और वास, ये सात प्रकारकी गायें और भैंसे होती हैं । उनके दो महीने या एक महीनेके लगभग पदा हुए २ वत्स और वत्सिकाभा (बलडा, बलडी या कटडा, कटिषाभा) को 'उपजा' (अर्थात् लगारा) कहते हैं । महीन या दो महीनेके बयारोंको ही, तबे हुए छोटे आदिके छलेमें दग दिया जाये ॥८॥ तथा जो गाय आदि सरकारी चरागाहमें महीना दो महीना तक रहें (जिनका कथन पिउले सातवें सूत्रमें किया गया है) चाहे उनके मांडिकोंका पता छोड़े या न लगे, इनको भी गोप्यक्ष दगवा देने ॥ ९ ॥ दगव निक स्वस्तिक आदिका चिह्न

सावधानतापूर्वक जलजन्तु भाद्रिसे रक्षा करें ॥ २१ ॥ गोपालोंको चाहिये, कि वे चौर, ब्याघ्र, साँप और नकू आदिसे परुड़े हुए पशुकी, तथा बीमारी और बुढ़ापेके कारण मरेहुए पशुकी तरकाल ही गोप्यक्षको सूचना दे दें । अन्यथा मष्ट हुए २ प्रत्येक पशुकी पूरी कीमत दें ॥ २२ ॥

कारणमृतस्याङ्गचर्म गोमहिपस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्गचर्म चाश्वखरोप्राणां बालचर्मवस्तिपित्तस्त्रायुदन्तखुरभृ-
ङ्गास्थीनि चाहरेयुः ॥ २३ ॥

वस्तुतः पशु मरगया है, इस बातका विश्राम दिलाने के लिये गोपाल, गोप्यक्षके पास लाकर गाय और भैंसका पहिले दागा हुआ चमड़ा दिखावें; इसी प्रकार बकरी और भेड़ों के चिन्हित कान लाकर दिखावें, घोड़ा गधा और जंटोंकी पूंछ तथा दागा हुआ चमड़ा दिखावें । मरेहुए पशुके बाल चमड़ा, वस्ति (सूत्राशय), पित्त, आयु (आंत), दांत खुर, साँग और हड्डी, इन सब चीजोंका संग्रह करलें । (इनका संग्रह कुप्यागारके लिये होता है, यहाँपर संगृहीत हुई २ ये चीजें यथावसर फिर काम आती रहती हैं ॥ २३ ॥

मांसमाद्रं शुल्कं वा विक्रीणीयुः ॥ २४ ॥ उदश्चिच्छ्रवराहि-
म्यो दद्युः ॥ २५ ॥ कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः ॥ २६ ॥
किलाटो घाणपिण्याकक्लेदार्यः ॥ २७ ॥ पशुविक्रेता पादिकं रूपं
दद्यात् ॥ २८ ॥

गीले धधवा सूखे कच्चे मांसका बेचदेयें ॥ २४ ॥ मडे (छाछ) को कुत्ते और सूअरोंके लिये देदिया जावे ॥ २५ ॥ कांजी (दूध या दहीको विकृत करके बनाई हुई एक विशेष खाद्य वस्तु) को सेनामें खानेके लिये लेभावें ॥ २६ ॥ किलाट अर्थात् फटेहुए दूधको, गाय भैंसोंकी सानी (गुताया) को गीला करनेके काममें लायाजावे ॥ २७ ॥ पशुओंको बेचने वाला ब्यापारी प्रत्येक पशुके पीछे ३ पण अप्यक्षको देवे ॥ २८ ॥

वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुबुः ॥ २९ ॥ शिशिरवसन्त-
ग्रीष्मानेककालम् ॥ ३० ॥ द्वितीयकालदोग्धुरङ्गुच्छेदो दण्डः
॥ ३१ ॥

घषों (सावन, भादों), शरत् (पार, कालिक), और हेमन्त (भगहन, पौष) ऋतुमें गाय और भैंसोंको, साथ प्रातः दोनों समय दुहाजावे ॥ २९ ॥ तथा शिशिर (माघ, फाल्गुन), वसन्त (चैत, वैशाख),

और प्रीथम (जेट भसाट) ऋतुमें केवल एक समय ही (रात्रिमें ही) दुहा जावे ॥ ३० ॥ इन ऋतुओंमें जो पुरुष गाय आदिको दोनों समय दुहे उसका भगूडा काट दिया जावे, यही उसका दण्ड है । (किसी २ प्राचीन व्याख्याकार ने लिखा है कि यह एक समयका दुहना किपी विशेष देशके लिये ही समझना चाहिये, क्योंकि अनेक देशोंमें, प्रीथम ऋतुम भी दो २ तीन ० बार गायका दुहाजाना देखा जाता है) ॥ ३१ ॥

दोहकालमतिक्रामतस्तत्फलहानं दण्डः ॥ ३२ ॥ एतेन नस्यदम्ययुगापिङ्गनवर्तनकाला व्याख्याताः ॥ ३३ ॥

जो पुरुष गाय आदिके दुहनेके समयका अनिक्रमण करे, अर्थात् ठीक समयपर आकर उन्द न दुहे, ता उस उम दिनका वेतन न दिया जावे ॥ ३२ ॥ इसी तरह बैलोंके साथ दालनेवाला जा पुरुष ठीक समयपर आकर नाथ न दाले, नये बैलोंको सिखानवाले उन्दे ठीक समयपर आकर न सिखावे, नये और पुराने बैलोंको एक साथ जुष्ट आदिमें जोड़नेवाले ठीक समयपर आकर उन्द न जाँडे, और उ-डे एकसाथ मिलाकर चलाना सिखानेवाले, ठीक समयपर आकर चलाना न सिखावे, तो उन्हे भी उस दिनका वेतन न दिया जावे ॥ ३३ ॥

क्षीरद्रोणे गवां घृतप्रस्थः ॥ ३४ ॥ पञ्चभागाधिको महिषी
णाम् ॥ ३५ ॥ द्विभागाधिको ऽजावीनाम् ॥ ३६ ॥ मन्थो वा
सर्वेषां प्रमाणम् ॥ ३७ ॥ भूमितृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृतवृद्धि
र्भवति ॥ ३८ ॥

एक द्रोण परिमाण गायके दूधमें से, एक प्रस्थ घी निकलता है ॥ ३४ ॥ भैंसके दूधमें से, इससे पाचवा हिस्सा अधिक निकलता है ॥ ३५ ॥ बकरी और भेड़के एक द्रोण परिमाण दूधमें से पांचके दो हिस्से अधिक एक प्रस्थ घी निकलता है ॥ ३६ ॥ वस्तुतः दहीको मथकर घी निकालने परही घीके ठीक परिमाणका निश्चय होता है । इसलिये ऊपर बताया हुआ परिमाण प्रायिकही समझना चाहिये ॥ ३७ ॥ क्योंकि विशेष २ भूमियोंमें, गाय आदिको खास तरहकी घास या पानी खिलाने विछानेसे दूध और घीकी वृद्धि हाजाती है, अथवा दूधमें घीकी वृद्धि होजाती है । (पाहल सूत्रमें गायपक्षके लिये आठ घातोंको बताया गया है, जिनपर यह अप्रक्षता करे । उनमें से आठवाँ घात "क्षीरघृतसञ्जात" है । वेतनोपग्राहिक आदिकी तरह, नाम लेकर इसका पहिले किन्हीं सूत्रोंम भी निरूपण नहीं किया गया । हमारे विचारम चाँतीसवें सूत्रसे लगाकर यहाँ तक चा कुछ दूध और घीके

सम्बन्धमें कहा गया है, वेद इसीका निरुपण समझना चाहिये, अर्थात् उपयुक्त परिमाणोंके अनुसार दूध घोंकी उत्पन्न करके अपने अधीन करना, इसीका नाम "क्षीरघृतसज्जत" समझना चाहिये । शब्दसे भी यही भाव प्रतीत होता है) ॥ ३८ ॥

यूथपृषं घृषेणायपातयतः पूर्णः साढसदण्डः ॥ ३९ ॥ घात-
यत उत्तमः ॥ ४० ॥ वर्णावरोधेन दशतीरक्षा ॥ ४१ ॥

गाय आदि पशुओंके झुण्डमें रहनेवाले सांडको जो पुरुष किसी दूसरे सांडके साथ लड़ावे, तो उस पुरुषको प्रथमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ जो उस सांडको मारे, उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये ॥ ४० ॥ वर्णके अनुसार दस २ गाय आदिकी गणनासे भी सौ गायोंके झुण्डकी रक्षा की जावे । तात्पर्य यह है, कि एक २ वर्णकी दस २ गाय इक्की कीजाये, इसी प्रकारके दस वर्णोंको मिलाकर सौ सख्या पूरी करके, उनको पहिलेकी तरह किन्हीं व्यक्तिओंके, रक्षाके लिये दे दिया जावे ॥ ४१ ॥

उपनिवेशदिग्भिर्भागे गोप्रचारान्वलान्वयतां वा गमां रक्षा-
सामर्थ्याच्च ॥४२॥ अजादीनां पाण्मापिकीमूर्णां ग्राहयेत् ॥४३॥
तेनाश्वसरोष्पूत्राहव्रजा व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

गाय आदिके जगलोंमें रहने आर चानेके लिये नियमित स्थानोंकी व्यवस्था, उनके चानेके सुभीते, उनके गोलभी तादाद और उनकी रक्ष के सांकर्यको देखकरही होनी चाहिये ॥ ४२ ॥ बकरी और भेड़ आदिकी ऊर छ मर्दानेके बाद उतारली जावे ॥ ४३ ॥ गाय भेड़के अनुपारही घोड़े, गधे, ऊँट और सूअरोंके लिये भी उचित स्थानोंकी व्यवस्था कीजावे । तथा इनकी रक्षाके लिये भी यथासम्भव उपयुक्त उपायोंकाही अवलम्बन किया जावे ॥४४॥

वलीमर्दानां नस्याश्वमद्रातिवाहिनां ययसस्यार्धभारस्तृणस्य
द्विगुणं तुला घाणपिण्याकस्य दशाढकं कगडुण्डकस्य पञ्चपालिकं
सुखलणं तैलकुडुषो नखं प्रस्थः पानं मांसतुला दधभ्राढकं
यवद्रोणं मापाणां वा पुलाकः क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः
स्नेहप्रस्थः क्षारदशफलं शृङ्गिरेरपलं च प्रतिपानम् ॥ ४५ ॥

अब इस बातको निरूपण किया जाता है, कि किस तरहके बैल आदिको कितना २ खाना देना चाहिये । बिलोंमें से जो गधे हुए हों (अर्थात् जिनकी नाक बांधकर उसमें नाथ टालदी गई हो) और जो भेड़ घोड़ोंके

समान रथ आदिमें चबनेवाले हों, उनको आधा भार (दस तुला) डेरका (अर्थात् इराध म आदिका), साधारण घाम या भुप आदि इसमें दुगना (अर्थात् घाम तुला), सानी (दाना, चाकर या अत्रमे युक्त भुप आदिक दस भाटक, पांच पल नमक, तेलका एक कुट्टा नमकमें औषधिकरन, तथा पीनक लिने तेलका एक प्रस्थ, इतना सामान आहारके लिये दिया जाता चाहिये । मांसकी एक तुला (अर्थात् १०० पल), एक भाटक दहीका, एक द्रोण जौओंका अथवा इसकी जगह इतनेही उद्द, इन सब चीजोंको मिलाकर इसका सादा (आधा पकाकर ही चाबमेदा छोटा हुआ) बनाकर दिया जाये । दूध एक द्रोण, अथवा दूधके अभावमें आधा भाटक सुरा, तेल अथवा घीका एक प्रस्थ, गुड दस पल, और सौंठ एक पल, इन चारों चीजोंको मिलाकर अग्निदहन करनेके लिये बेलोंको पिलाया जाये ॥ ४५ ॥

पादोनमश्वतरगोखराणां द्विगुणं महिपोन्द्राणां कर्मकरवली-
वर्दानां पायनार्थानां च ॥ ४६ ॥ धेनूनां कर्मकालतः फलतश्च
विधादानम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषां तृणोदकप्रकाम्यमिति गोमण्डलं
व्याख्यातम् ॥ ४८ ॥

इन सब चीजों में से चौथाई हिस्सा कम करके जितनी सुराक बने, वह खरचर तथा बड़े गधों की समझनी चाहिये । अर्थात् खरचरों और बड़े गधों को उतनी सुराक दी जाये । और उनमें १५ बें सूत्र में बताया बेलों से) दुगनी सुराक भैंसा की ऊंगों की और खेतों में काम करने वाले बेलों की समझनी चाहिये । तथा दूध देने वाली गायों को भी रामे तथा पीने की दोनों तरह की सुराक दुगनी ही देनी चाहिये ॥ ४६ ॥ इसके अतिरिक्त काम करने वाले बेलों तथा दूध देने वाली गायों की सुराक के सम्बन्ध में बेलों के कार्य करने के समय और गायों के दूध आदि की अपस्था को जानकर उसके अनु-सार ही इनकी सुराक दुगनी अथवा उससे भी अधिक समझनी चाहिये ॥ ४७ ॥ सप ही पशुओं को घास तथा जल आदि इच्छानुसार (जिसमें उनकी सबंधा वृत्ति होसके इतना) देना चाहिये । यहाँ तक गाय आदि के सम्बन्ध में निरूपण कर दिया गया ॥ ४८ ॥

पञ्चर्षभं सुराश्वानामजावीनां दशर्षभम् ।

शत्यं गोमहिपोन्द्राणां यूयं कुर्याच्चतुर्वृषम् ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयोऽधिकरणे गोप्यक्ष एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आदितः पञ्चासः ॥ ५० ॥

लम्बा सफर करने और अधिक भार उठाने के कारण थकें हुए घोड़ों के खाने के लिये, एक मस्य चिकनाई (घी अथवा तेल) के साथ २ उत्तमा ही अनुवासन (थकावट को दूर करने के लिये अनेक औषधियोंका मिश्रण; इसके दूध शुद्ध हैं, १ अनुवासन, २ निरुद्ध; जो कसैले रस वा क्षीर आदिके साथ दिया जाय, यह निरुद्ध; और जो किसी चिकनाईके साथ दिया जावे, यह अनुवासन कहाता है); दिया जावे । तथा चिकनाई का ही एक कुडुव (मस्य का चौथाई हिस्सा), नासिका में डाला जावे; इसे का आधा भर (अर्थात् दस तुला) तुण अर्थात् भुस आदि उस से दुराना (अर्थात् बाल तुला), अथवा एक जेट भर के (कौली भर के=दोनों पाहोंको फैलाकर जितना उसमें आजावे उतना) ही घाय वा जई आदिका गूटा दिया जावे ॥ २२ ॥

पादावमेतन्मध्यमावरयोः ॥२३॥ उत्तमसमो रथ्यो घृपृश्च
मध्यमः ॥ २४ ॥ मध्यमसमश्चावरः ॥ २५ ॥

यह ऊपर बताया हुआ आहार उत्तम घोड़े का समझना चाहिये; इस आहार में से चौथाई हिस्सा कम करके मध्यम घोड़े को; और उतमेंसे ही चौथाई हिस्सा कम करके अधम घोड़े को आहार दिया जावे ॥ २३ ॥ जो मध्यम घोड़ा रथ में जाता जावे, और जो सांड छोटा हुआ होवे, उनको उत्तम घोड़े के समान ही आहार दिया जावे ॥ २४ ॥ तथा जो अधम घोड़े रथ में जाते जावें, या सांड छोड़े जावें, उन्हें मध्यम घोड़े के समान आहार देना चाहिये; (मध्यम घोड़े का यह आहार जो तेईसवें सूत्र में बताया गया है) ॥ २५ ॥

पादहीनं चडवानां पारशमानां च ॥ २६ ॥ अतोऽर्धं
किन्नोराणां च ॥ २७ ॥ इति विधायोगः ॥ २८ ॥

घोड़ी तथा खर और खच्चरियोंकोभी उपर्युक्त आहारोंमें से चौथाई हिस्सा कम करके आहार दिया जावे । (तात्पर्य यह है, कि उत्तम मध्यम आदि कम से घोड़ों के जो आहार २४, २५ सूत्र में बताया गये हैं, उसी कम के अनुसार घोड़ी और खच्चरोंकोभी आहार दिये जावें) ॥ २६ ॥ इससे आधा (अर्थात् जो आहार घेंदियोंको बताया गया है, उससे आधा) आहार खच्चरोंको दिया जावे ॥ २७ ॥ इस प्रकार यहाँ तक घोड़ों के लिये भोजन आदिके प्रकारका निरूपण किया गया ॥ २८ ॥

विधापाचकस्युग्रग्राहकचिकित्साः प्रतिस्वाद्भाजः ॥२९॥
घोड़ोंके आहारको पकाने वाले, घोड़ोंके परिचारक (सरदर आदि), और घोड़ोंकी चिकित्सा करने वाले व्यक्तियोंको, घोड़ोंके आहारमेंसे मस्य हिस्सा

दिया जावे । (तात्पर्य यह है, कि जो मासिक व्यय कोछागारसे घोड़ोंके लिये लिया जाता है, उसमेंसे कुछ हिस्सा इन उपर्युक्त पुराणोंको भी दिया जावे ॥२९॥

युद्धव्याधिजराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः ॥ ३० ॥

असमरप्रयोग्याः पौरजानपदानामर्थेन वृषा वडवास्त्रायोज्याः ॥ ३१ ॥

जो घोड़े युद्धके कारण क्षीणशक्ति होचुके हैं, तथा जो बीमारी और युद्धापेके कारण क्षीणसामर्थ्य होगये हैं, और भार आदि ढोनेका काम करनेमें भी असमर्थ हैं, उन घोड़ोंको केवल उद्दरपूर्तिके लिये ही आहार दिया जावे, अर्थात् उन्हें केवल इतना ही आहार दिया जावे, जिससे कि वे भुले न मरसकें ॥३०॥ जो घोड़े शक्ति-शाली होंते हुए भी युद्धमें प्रयोग करनेके योग्य न हों, उन घोड़ोंको नगर तथा जनपद निवासी पुराणोंकी घोड़ियोंमें सन्ततिके लिये साँझ बनाकर रक्ता जावे ॥ ३१ ॥

प्रयोग्यानामुत्तमाः काम्योजकसिन्धुमारद्वजवनायुजाः ॥३२॥

मध्यमा बाह्लीकपापेयकमौर्वीरकततलाः ॥ ३३ ॥ शेषाः प्रत्य-
वराः ॥ ३४ ॥

विशेष चाल आदिकी सीधे हुए संग्रामयोग्य घोड़ोंमें काम्योजक (का-
युज देशमें उत्पन्न हुए २), सिन्धव (सिन्ध देशमें उत्पन्न हुए २), आरदज+
(आरद देशमें उत्पन्न हुए २) तथा वनायुज ४ (अरब देशमें उत्पन्न हुए
हुए) ये चार प्रकारके घोड़े सबसे उत्तम होते हैं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार बाह्लीक X

+ 'आरद' यह पञ्जाबके एक अखान्तर प्रदेशका नाम है, देवा टी०
आर० कृष्णाचार्यने महाभारतमें आये हुए मुरुष नामोंकी सूचीमें लिखा है ।
हमारा विचार है, 'आरद' देश वर्तमान काठियावाड़ होना चाहिये ।

* 'वनायु' यह अरबका प्राचीन नाम है; महाभारतमें इसका कई
स्थानोंपर उल्लेख है ।

X बाह्लीक किस देशका नाम है ! इस सम्बन्धमें दो विचार हैं:—

(१) टी० आर० कृष्णाचार्यने महाभारतकी सूचीमें बाह्लीक शब्दपर निम्न
निर्दिष्ट संक्ति लिखी है:—'त्रिपादाशतद्वानेवोर्मध्ये केकयदेशस्य पूर्वभागे
विद्यमानो देश', अर्थात् ब्रह्म और सतलज नदीके मध्यमें केकय देश-
से पूर्वकी ओर जो देश है, उसीका नाम बाह्लीक है । (वर्तमान गु-
दासपुर और होशियारपुरके उत्तरीय भाग तथा कांगड़ेके जिलेको
केकय देश कहते हैं) ।

(बावहीक नामक देशमें उत्पन्न हुए २), पापेयक † (पापेयक नामक देशमें उत्पन्न हुए २), साँवीरक (सुवीर अर्थात् राजपूतानामें उत्पन्न हुए २), और तैतल (तितल देशमें उत्पन्न हुए २), ये चार प्रकारके घोड़े मध्यम समझे जाते हैं ॥ ३३ ॥ इनसे अतिरिक्त सब जगहोंके घोड़े अधम समझे जाते हैं ॥ ३४ ॥

तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सांनाहमौपवाह्यकं वा कर्म प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥ चतुरश्रं कर्माश्वस्य सांनाहम् ॥ ३६ ॥

अब घोड़ोंके कार्य और उनकी गति आदिका निरूपण किया जायगा:—
उन घोड़ोंकी तीक्ष्ण (तीव्र गति, थोड़ासी चोटकी भी न सहन करना), भद्र (मध्यम गति, जितनी चोट लगे उसके ही अनुसार चलना) और मन्द (निकृष्ट गति, बहुत पीटे जानेपर भी धीरे २ ही चलना), गतिके अनुसार ही, उनको सांनाह्य (युद्ध सम्बन्धी कार्यों) और औपवाह्य (साधारण सवारी

(३) परन्तु महाभारतमें लिखा है.—

पश्चानां सिन्धुपष्टानां नदीना येऽन्तराश्रिताः ।
तान्धर्मवाह्यान्शुचीन् बावहीकानपि वर्जयेत् ॥

क. प. , अ. ३७, श्लो. १७ ॥

सतलज, व्यास, राषी, शैलम, सुनाच ये पाँच और छठी सिन्धु, इन छ. नदियोंके बीचमें जो देश हैं, उन्हींका नाम बावहीक है । ये देश धर्मवाह्य और अशुचि होनेके कारण वर्ज्य हैं ।

इसी श्लोककी कर्ण पर्वके ही नामसे, महाभाष्य कैटपटके व्याख्या कर नागोजी भट्टने 'पृष् प्राचां देशे' पाणि. , अ. १, पा. १, सू. ७४, की व्याख्या करते हुए इसप्रकार लिखा है:—

पश्चानां सिन्धुपष्टानामन्तर ये समाश्रिताः ।

बावहीका नाम तो देशा न तत्र दिवसं वसेत् ॥

नागोजी भट्टने इस श्लोककी व्याख्या भी यही की है, जो हम पहिले श्लोकके नीचे लिख चुके हैं । टी. भार. कृष्णाचार्यके लेखानुसार तो वर्तमान जलन्धरका जिला ही बावहीक होसकता है; हमारे विचारमें महाभारतकी ही अधिक प्रामाणिक समझना चाहिये ।

† 'पापेय' नामक देश कौनसा है, इसका ठीक २ पता नहीं लगता, हमारे विचारमें यह देश वर्तमान पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त होना चाहिये, क्योंकि इधरके घोड़े कुछ अच्छे भी समझे जाते हैं ।

या खेल कूदके) कार्योंमें प्रयुक्त किया जाये ॥ ३५ ॥ विशेषतः पुरखोंके द्वारा सिखलाये जानेपर, युद्धसम्बन्धी प्रत्येक कार्यको अच्छी तरह करलेना घोड़ेका साक्षात् कर्म कहाता है । तात्पर्य यह है, कि जो घोड़े युद्धके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं, उनको उन सब चालोंकी शिक्षा दीजाये, जिनकी कि युद्धमें आवश्यकता होती है । हर्दीका नाम साक्षात् कर्म है ॥ ३६ ॥

चल्गनो नीचैर्गतो लङ्गनो धोरणो नारोद्ग्रापवाहाः ॥३७॥
तत्रोपवेणुको वर्धमानको यमक आलीडप्लुतः (वृथाह ? पृथ ?
पूर्व) गत्रिकचाली च चल्गनः ॥ ३८ ॥

औपवाह अर्थात् सवारी या खेलमें काम आने वाले घोड़ोंकी चालके पांच भेद हैं:—चल्गन, नीचैर्गत, लङ्गन, धोरण और नारोद्ग्रा ॥३७॥ इन सबका क्रमपूर्वक निरूपण किया जाता है गोलमण्डलाकार घूमनेको चल्गन कहते हैं, यह छः प्रकारका है—औपवेणु (एक ही हाथके गोल घेरेमें घूमना), वर्धमानक (उतने ही घेरेमें कई बार घूमजाना), यमक (परापर २ के दो घेरोंमें एक साथ ही घूमजाना), आलीडप्लुत (एक पैरको सरोद्धकर और दूसरेको फैलाकर छलांग मारनेके साथ ही साथ घूमजाना), पूर्वग (शरीरके आगेके भागके आधारपर घूमजाना), और त्रिकचाली (त्रिक अर्थात् पृष्ठपक्ष और विछली दो टांग; इनके आधारपर घूमजाना); इन तरह यह छः प्रकारका चल्गन होता है ॥ ३८ ॥

स एव शिरःकर्णविशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा ॥३९॥
प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरो निपण्णः पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभर्का-
डितः शरमप्लुतः त्रितालो वाहानुवृत्तः पञ्चपाणिः सिंहायतः
स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिगितो बृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गत-
मार्गाः ॥ ४० ॥

जब कि शिर और कान में किसी प्रकारका कम्पन आदि का विकार न होने पावे तो उस चल्गन गति विशेषको ही 'नीचैर्गत' नाम से कहा जाता है । अध्याय नीचैर्गत नामक गति को भी निम्नलिखित सोलह भागों में विभक्त समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ वे सोलह प्रकार ये हैं:—प्रकीर्णक (सब चालों का एकमें ही संकर अर्थात् मिला हुआ होना), प्रकीर्णोत्तर (सब चालों के मिले हुए होनेपर भी एक चालका मुख्य होना), निपण्ण (पृष्ठ भाग को विशेष करके किसी विशेष चाल का निकालना, अर्थात् उम चाल के होनेपर पीठपर किसी प्रकार का कम्पन आदि विकार न हो), पार्श्वानुवृत्त (एक ओर के

तिरछी चाल चलना), ऊर्मिमार्ग (लड़ों की तरह ऊंचा नीचा होकर चलना), शरभमार्गित (शरभ [एक जवान हाथी] की तरह झोडा करते हुए चलना), शरभप्लुत (शरभ की तरह कूदकर चलना), त्रिताल (तीन पैरोंसे चलना), बाह्यानुवृत्त (दायें बायें दोनों ओर को मण्डलाकार चलना), पञ्चपाणि (तीन पैरों को पहिले एक साथ रखकर फिर एक पैर को दो बार रखकर चलना), सिंहायत (सिंह के समान लम्बी डग भरके चलना), स्वाधृत (एक साथ बहुत लम्बे कूदकर चलना), क्लिष्ट (बिना सवारके ही विश्वास पूर्वक चलना) छिद्रित (शरीरके अगले हिस्से को झुकाकर चलना), वृंहित (शरीरके अगले हिस्से को ऊंचा करके चलना), और पुष्पाभिवीर्ण (गन्ध के समान इधर उधर को होकर चलना) ये सब संलङ्घ प्रकार के नीचैर्गत मार्ग अर्थात् घोड़ों की ' नीचैर्गत ' नामक गति कही जाती हैं ॥ ४० ॥

कपिप्लुतो भेकप्लुत एकप्लुत एकपादप्लुतः कोकिलसंचा-
रुरस्यो वकचारी च लह्वनः ॥ ४१ ॥

कूदनेका नाम लह्वन है, यह भी सत प्रकारका होता है:—कपिप्लुत (बन्दर की तरह कूदना) भेकप्लुत (मेंढक की तरह कूदना) एणप्लुत (हरिण की तरह कूदना), एकपादप्लुत (तीन पैरों को सकोड़कर केवल एक ही पैरके सहारे कूदना), कोकिलसंचारी (कोयल की तरह कुदककर कूदना), उरस्य (सब पैरों को सकोड़कर केवल छातीके सहारे ही कूदना), और वकचारी (बगुले की तरह बीच में धीरे चलकर फिर एकसाथ अचानक कूदना), ये सात प्रकारके लह्वन हैं ॥ ४१ ॥

काङ्को वारिकाङ्को मायूरोऽर्धमायूरो नाकुलो ऽर्धनाकुलो वा-
राहो ऽर्धवाराहश्चेति धोरगः ॥ ४२ ॥ संज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र-
इति ॥ ४३ ॥

धारे २ चली जाने वाली, दुलकी सरपट भादि चालों का नाम धोरण है । इसके निम्नलिखित भाट भेद हैं:—काङ्क (कङ्क अर्थात् बगुले की तरह चलना), वारिकाङ्क (बछल या हंस भादि की तरह चलना), मायूर (मयूरकी तरह चलना), अर्ध-मायूर (कुछ कुछ मोर की तरह चलना), नाकुल (नाकुल अर्थात् नेबले की तरह चलना), अर्धनाकुल (कुछ कुछ नेबले की तरह चलना), वाराह (वाराह अर्थात् सूअर की तरह चलना), और अर्धवाराह (कुछ कुछ सूअर की तरह चलना); इन भाट प्रकार की चालोंको

घोरण कहते हैं ॥ ४२ ॥ मितलापु हुपु इशारोंके अनुसार घोड़े का चलना 'मारोष्ट्र' कहाता है । यहाँ तक औपनाद्य गतियों का निरूपण कर दिया गया ॥ ४३ ॥

पण्णव द्वादशेति योजनान्यध्या रथ्यानां, पञ्चयोजनान्य-
र्धाष्टमानि दशेति पृष्ठवाहानामश्वानामध्या ॥ ४४ ॥

रथ आदिमें जोते जाने वाले अधम मध्यम तथा उत्तम घोड़ों की यथासंख्य छः नौ तथा बारह योजन चलाया जावे; अर्थात् रथ आदि में एक बार जोसने के बाद अधिक से अधिक दूतना चलाया जावे, और फिर उनको विश्राम करने का अवसर दिया जावे । (त० गणपति शास्त्री ने इस सूत्रमें छः योजन उत्तम और बारह योजन अवन घोड़े के चलने के लिये मार्ग बतलाया है; परन्तु यह संगत नहीं मालूम होता; क्योंकि उत्तम घोड़ा तीव्रगति होनेके कारण अधिक चल सकता है; इसलिये हमारा निहंसा किया हुआ क्रम ही युक्त प्रतीत होता है) । इसी प्रकार जो पीठपर भार देने वाले घोड़े हों; उनका भी इसी क्रमसे पांच साढ़े सात और दस योजन चलने का मार्ग होना चाहिये । अर्थात् अधम घाटा पांच, मध्यम साढ़े सात और उत्तम दस योजन चलकर पुनः विश्राम लेवे ॥ ४४ ॥

विक्रमो भद्राश्वासो भारवाह इति मार्गाः ॥ ४५ ॥ विक्रमो
वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जयश्च धाराः ॥ ४६ ॥

इन तीनों तरहके घोड़ों की गति भी तीन प्रकार की होती है,—विक्रम (मन्दगति), भद्राश्वास (मध्यम गति), और भारवाह (तीव्रगति; जिस प्रकार कोई पुरुष बन्धे पर भार रखकर तेज जाता है) ॥ ४५ ॥ भिन्न २ घोड़ों के चलने का क्रम भी भिन्न २ ही होता है;—कोई २ घोड़ा लगातार धीरे ही धीरे चलता है, कोई २ शीकड़ा सा होकर इधर उधर की किरता हुआ सा चलना है, कोई २ कूद २ कर और कोई पहिले तेज तथा कोई पीछे तेज चलता है; इन सब तरह की चालों का नाम 'धारा' है । इनको धारा इसी लिये कहते हैं, कि ये घोड़ों के चलने के अपने २ ढंग (=क्रम=धारा=) हैं ॥ ४६ ॥

तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेषुः ॥ ४७ ॥ सां-
ग्रामिकं रथाश्वालंकारं च सताः ॥ ४८ ॥ अश्वानां चिकित्सकाः
शरीरहासवृद्धिप्रतीकारमृत्वाविभक्तं चाहारम् ॥ ४९ ॥ . .

समाप्ति पर, तथा घोड़े में कोई संक्रामक रोग फैलने पर अर्थात् मरा फैलने पर, उसको शान्त करनेमें तत्पर हुआ २ अश्वध्यक्ष, नीराजना नामक कर्म को करवावे ॥ ५७ ॥

अश्वक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में तीसवां अध्याय समाप्त ।

इकत्तीसवां अध्याय

४८ प्रकरण

हस्त्यध्यक्ष

{ राजकीय हाथियोंका प्रबन्ध करने वाले प्रधान अधिकारी को 'हस्त्यध्यक्ष' कहते हैं। उस ही के कार्योंका इस प्रकरण में निरूपण किया जायगा ।

हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनी-
कलभानां शालास्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वाथोगं
बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं चिकित्सकानीकस्थोपस्थयुक-
वर्गं चानुतिष्ठेत् ॥ १ ॥

हस्त्यध्यक्ष को चाहिये, कि वह हाथियों के जगल की रक्षा करे; सिखावे जाने योग्य हाथी हथिनी और उनके बच्चों के लिये शाला (गजशाला, जिसमें हाथी आदि बांधे जाते हैं), स्थान (बाहर खुले हुए में हाथी के बांधने की जगह), शय्या (उनके बैठनेका स्थान), कर्म (युद्ध सम्बन्धी आदि कार्य), विधा (पकाकर दिये जाने वाले आहार), और ववस (हरे गजों टहनी घास घूस आदि, 'ववस' शब्द हरे के लिये आता है, इसलिये जो चीजें हरे के तीरपर हाथियोंको दी जावे, उन सब का ही यश प्रहण करलेना चाहिये), इन छः चीजों के प्रमाण (परिमाण) का निर्णय करे । उन हाथी आदि को हर तरह की चाल आदि (इनका निरूपण आगे किया जायगा) सिखलाने में लगावे । उनके अग्रहारी अकृश आदि प्रत्येक साजों और समाम सम्बन्धी अलङ्कारों का प्रबन्ध करे । तथा हाथियों की चिकित्सा करने वाले राजर्विध, उनको हरतरह की शिक्षा देने वाले और अन्य टहल दफ्तारी करन वाले कर्मचारियोंका स्वयं निरीक्षण करता रहे ॥ १ ॥

हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्तिनीस्थानाधिकं
सप्रग्रीवां कुमारीसंग्रहां प्राङ्मुखीमुदङ्मुखीं वा शालां निवे-
शयेत् ॥ २ ॥

हाथीकी लम्बाई से दुगुनी ऊंची, चौड़ी तथा लम्बी (हाथीकी लम्बाई
नी हाथ मानी गई है, देखो इसी अध्याय का नौवां सूत्र; वस्तुका दुगुना
अठारह हाथ की ऊंचाई आदि होनी चाहिये-), और हथिनी के लिये उससे
छः हाथ और अधिक लम्बी, अर्थात् चौथोम हाथ लम्बी (ऊंचे और चौड़ी
उतनी ही) आगे बरांडे से युक्त, (हाथियों के बांधने के लिये जो खूटे गाड़े
जायें, उनके ऊपर एक लकड़ी तराजू के समान रखी जावे, इससे हाथी
सुरत पूर्वक बांधे जा सकते हैं, इस का नाम 'कुमारो' होता है) इस तरह
की कुमारियों का जिसमें पर्याप्त संग्रह हो, तथा पूरव या उत्तर की ओर
दरवाजों वाली शाला (गजशाला) बनवाई जावे ॥ २ ॥

हस्त्यायामचतुरश्रश्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरी-
पोत्सर्गस्थानं निवेशयेत् ॥ ३ ॥

हाथीकी लम्बाई की बराबर लम्बा चौकोर (अर्थात् गोल नहीं होना
चाहिये), तथा चिहना एक गालानस्तम्भ (हाथी के बांधने का खूटा)
बहापर गाड़ा जावे, उसके चारों ओर एक सफ़्त सा ज़मीन को दकने के
लिये लगा रहना चाहिये, (तात्पर्य यह है, कि उस खूटे को एक तरफ़ के
बीचों लगाकर फिर गाड़ा जावे, जिससे वह सफ़्त ज़मीनपर ऊपर रहे, और
खूटे की जड़ में से मट्टी आदि उग्रादकर कोई उसे ढीला न कर सके) ।
और पेशाब तथा परताने के लिये आगे से कुछ बड़ा हुआ, स्थान बनाया
जावे; जिस से कि यह स्वयं पीछे की ओर की बह जावे या सरक
जावे ॥ ३ ॥

स्थानसमस्तव्यमर्ध्वपाश्र्वां जुर्मै सांनान्द्रोस्वाद्यानां वाहिर्द-
म्यव्यालानाम् ॥ ४ ॥

उपर्युक्त स्थान के समान ही शय्या अर्थात् बैठने सोने के लिये एक
बहुतरा सा बनवाया जावे, जिसकी ऊंचाई साढ़े चार हाथ होनी चाहिये;
जो हाथी बुद्ध तथा सवारी आदि के काम में आने वाले हों उनकी शय्या
दुर्ग के भीतर ही बनवाई जावे, और जो अभी चाल आदि सीरा रहे हों,
अर्थात् त्रिगो फवायद आदि तिलाई जा रही हो, और जो हिंसक प्रकृति के
हों, उनका निवास दुर्ग से आक्षर हो कराना जावे ॥ ४ ॥

प्रथममस्रमायष्टमभागावहः खानकालौ तदनन्तरं त्रिधायाः
पूर्वाह्ने व्यायामकालः पश्चाह्णः प्रतिपानकालः ॥ ५ ॥ रात्रिभागौ
द्वौ स्वप्नकालौ त्रिभागः संवेशनैतथानिकः ॥ ६ ॥

धराधर विभक्त किये हुए दिन के आठ भागों में से पहिला और सातवां भाग हाथी के खानका उचित समय समझना चाहिये । (इससे यह बात प्रकट है, कि हाथीको दिनमें दो बार खान कराया जावे) दोनों बार खान के अनन्तर पका आहार खाने को देना चाहिये, अर्थात् दिनके दूसरे और आठवें भागमें खानेको दिया जावे । पूर्वाह्णमें अर्थात् दोपहरसे पहिले समयमें ही व्यायाम (कवायद) आदि का अभ्यास करावे; और मध्याह्नोत्तर प्रतिदिन कुछ धीमेके लिये दिया जावे ॥ ५ ॥ रात्रिके कल्पित तीन भागोंमें से दो भाग, हाथीके सोनेका समय समझना चाहिये, और सोप तीसरा भाग उठने बैठनेके लिये समझा जावे ॥ ६ ॥

श्रीष्ये ग्रहणकालः, विंशतिवर्षो ग्राह्यः ॥ ७ ॥ त्रिको मूढो
मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः ॥ ८ ॥

गरमी की मौसम में ही हाथियोंको पकड़ना चाहिए । क्योंकि उम ऋतु में गरमी अधिक होने के कारण हाथी क्षीणबल हो जाते हैं, और बड़ी सुकरता से पकड़े जा सकते हैं । वास वर्ष या उससे अधिक आयु का ही हाथी पकड़ने योग्य होता है ॥ ७ ॥ दूध पीनेवाला बच्चा (विक्र), मूढ (हथिनीके समान दातावाला, अर्थात् जिसको दांत देखकर 'यह हाथी है' इस प्रकार न पहचाना जा सके, इसीलिए इसका नाम 'मूढ' है) मत्कुण (दांतोंसे रहित, अर्थात् जिसके दांत अभी तक न निकले हों), बीमार हाथी; और गर्भिणी, तथा दूध चुखानेवाली हथिनीको न पकड़ा जावे ॥ ८ ॥

सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः प्रमाणतश्चत्वारिं-
शद्वर्षो भवत्युत्तमः ॥ ९ ॥ त्रिंशद्वर्षो मध्यमः ॥ १० ॥ पञ्चविं-
शतिवर्षो ऽवरः ॥ ११ ॥ तयोः पादावरो विधविधिः ॥ १२ ॥

सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लम्बा और दस हाथ मोटा परिमाणवाला तथा चालीस वर्षकी उमरवाला हाथी सबसे उत्तम होता है ॥ ९ ॥ तीस वर्षकी उमरका हाथी मध्यम, (इसका लम्बाई चौधार्ह आदि परिमाण इसी अभ्यासके १५वें सूत्रमें देख), ॥ १० ॥ और पच्चीस वर्षकी उमरका अधम समझना चाहिये । (इसका परिमाण भी पन्द्रहवें सूत्रमें देख) ॥ ११ ॥ मध्यम और अधमको उत्तमकी अपेक्षा यथाक्रम चौथाई हिसा कम आहार

दिया जाये अर्थात् उत्तमको जितना आहार दिया जावे, उसमेंसे चौथाई हिस्सा कम करके मध्यमको, और मध्यमके आधारमेंसे भी चौथाई हिस्सा कम करके अधम हाथीको आहार दिया जावे ॥ १२ ॥

अरत्नौ तण्डुलद्रोणोऽर्थाढकं तैलस्य सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः दश-
पलं लवणस्य मांसं पञ्चाशत्पालिकं रसखाढकं द्विगुणं वा दध्नः
पिण्डक्रेदनार्थं क्षारं दशपालिकं मद्यस्य आढकं द्विगुणं वा पयसः
प्रतिपानं गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः शिरसो ऽष्टभागः प्रादीपिकश्च
यवसस्य द्वौ भारौ सपादौ शष्पस्य शुष्कस्वार्धतृतीयो भारः
कडङ्करस्यानियमः ॥ १३ ॥

उत्तम हाथीका क्या आहार होना चाहिये, यह इस सूत्रमें बताया जाता है:—जो हाथी अन्य साधारण हाथियोंसे एक हाथ ही अधिक ऊँचा हो, अर्थात् पूरे सात हाथका ऊँचा हो (इससे अधिक नहीं) उसे एक द्रोण चावल, आधा आढक तेलका, तीन प्रस्थ घीके, दस पल नमकके, पचास पल मांस, सुद्धे दाने आदिको भिगानेके लिये एक आढक शोरवा (मांसका पका हुआ रस), अथवा उसके न होनेपर उससे दुगुना दही, दस पल क्षार अर्थात् गुद आदि, मध्यान्होत्तर पानेके लिये एक आढक मद्य अथवा मद्यके न होनेपर उससे दुगुना दूध, शरीरपर लगानेके लिये तेलका एक प्रस्थ, शिरपर लगानेके लिये एक प्रस्थका आढवां हिस्सा अर्थात् आधा छुडुप, और इतना ही तेल रातको दिया लगानेके लिये, हरेके दो भार अर्थात् चालीस तुला, हरी घासके सवा दो भार अर्थात् पचास तुला, और सूखी घासके ढाई भार अर्थात् सठ तुला, युत और पत्ते आदिका कोई नियम नहीं, यह जितने भी खाये जावे, उतने ही देने चाहिये। यह सब आहार उत्तम हाथीका है ॥ १३ ॥

सप्तारत्निना तुल्यभोजनो ऽष्टारत्निरत्यरालः ॥ १४ ॥ यथा-
हस्तमवशेषः पडरत्निः पञ्चारत्निश्च ॥ १५ ॥

आठ हाथ ऊँचे 'अष्टाराल' नामक (सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथीसे भी जो हाथी ऊँचा हो, उसको 'अत्यराल' कहा जाता है, उस) हाथीको भी सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथीकी बराबर ही आहार दिया जावे। अर्थात् इससे अधिक न दिया जावे-॥ १४ ॥ इसप्रकार ऊँचाईके हिसाबसे जो हाथी छः हाथ ही ऊँचे हों, वे मध्यम हाँते हैं, उनको उपयुक्त उत्तम हाथीके आहारसे चौथाई हिस्सा कम करके दिया जावे। इसी प्रकार जो हाथी पाँच ही हाथके ऊँचे होते-

है, वे अधम कहाँ हैं, उन्को मध्यम हाथियोंके आहारसे भी चौथाई हिस्सा कम करके दिया जावे। (म. म. गणपति शास्त्रीने, तेरहवें सूत्रमें बतलाये हुए आहारको, एक हाथकी ऊँचाईके हिसाबसे मानकर सात हाथ ऊँचे हाथीके लिये उस बतलाये हुए आहारसे सात गुना आहार कहा है; अर्थात् तेरहवें सूत्रमें जितनी तादाद आहारकी बतलाई गई है, उससे सात गुना आहार उत्तम हाथीको देना चाहिये। इसी प्रकार जो हाथी छः हाथ ऊँचा होनेके कारण मध्यम है, उसे तेरहवें सूत्रमें बतलाये आहारसे छः गुना आहार दिया जावे, और पाँच हाथके ऊँचे अधम हाथीको पाँच गुना, यह ब्याख्या उक्त शास्त्रीजीने पन्द्रहवें सूत्रकी की है। परन्तु ऐसा अर्थ करनेपर चारहवें सूत्रके साथ इसका विरोध होता है। क्योंकि वहाँपर उत्तम हाथीके आहारसे चतुर्थांश कम करके मध्यम हाथीका आहार बतलाया गया है, और उससे चतुर्थांश कम करके अधमका। इसलिये शास्त्रीजीका लेख विन्द्य मालूम होता है) ॥ १५ ॥

धीरयावासिको विक्रः क्रीडार्थं ग्राह्यः ॥ १६ ॥ संजातलो-
हिता प्रतिच्छन्ना संल्लिप्तपक्षा समकक्ष्याप्यतिकीर्णमांसा समतल्प-
तला जातद्रोणिकेति शोभाः ॥ १७ ॥

दूध पीने वाले छोटे बच्चेको केवल क्रीड़ा अर्थात् कौतुकके लिये पक-
डना चाहिये, ऐसी अवस्थामें उसको दूध और हरी २ घास या जई आदिके
छोटे २ कवल (गसा) देकर उसका पालन पोषण किया जाय ॥ १६ ॥ हा-
थियोंकी सात अवस्थाओंके अनुसार उनकी सात प्रकारकी शोभा समझी जाती
है। जब हाथीके शरीरमें दही चमड़ा ही रहजावे, और फिर थोड़ा २ रुधिर
उत्पन्न होने लगे, यह प्रथम अवस्था है इसके कारण जो शोभा ही उसको
'संजातलोहिता' नामसे कहते हैं। जिस अवस्थामें कुछ २ मांस बढ़ने लगे,
उसके कारण होनेवाली शोभाको 'प्रतिच्छन्ना' कहते हैं। जब मांस दोनोंओर चढ़जाता
है, तब उसे 'संल्लिप्तपक्षा' कहा जाता है। जब सब अवयवोंपर बराबर मांस
चढ़ जाय, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'समकक्ष्या' कहते हैं; जब शरीरपर
कहीं नीचा और कहीं ऊँचा मांस होजावे, तो उस अवस्थाकी शोभाका नाम
'प्यतिकीर्णमांसा' है। जब पीठकी हड्डीके बराबर २ पीठपर मांस चढ़जाय,
तो उस अवस्थाकी शोभाको 'समतल्पतला' कहा जाता है। तथा जब रीढ़
की हड्डीसे ऊपर उधरका मांस ऊँचा होजावे, तो उस अवस्थाकी शोभाको
'जातिद्रोणिका' कहते हैं। इस तरह ये हाथियोंकी सात प्रकारकी शोभा
'समझी जाती है ॥ १७ ॥

शोभावशेन व्यायामं भद्रं मन्दं च कारयेत् ।

मृगसंकीर्णलिङ्गं च कर्मस्वतुवशेन वा ॥ १८ ॥

हृत्स्वपक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हृत्स्वपक्ष पुकर्मितोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

भाद्रितो द्विपञ्चासः ॥ ५२ ॥

इसके अनुसार सब हाथियोंको स्थापान कराना चाहिये, अर्थात् उच्चम, मध्यम और अधम हाथियोंको जब परिश्रम (कृषाद्यद्) कराया जावे, तब उनको इन उपयुक्त अवस्थाओंपर अवश्य ध्यान रखना जावे । तथा इसी प्रकार जिन हाथियोंके अन्दर उच्चम मध्यम आदिके साङ्गोंके चिन्ह विद्यमान हों, उनको भी साङ्गाह और औपवाह आदि कार्योंमें, पूर्वोक्त अवस्थाओंके अनुसार ही परिश्रम कराया जावे । बयवा सबही हाथियोंको ऋतुओंके अनुसार साङ्गाह आदि कार्योंमें लगाया जावे ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें इकतीसवां अध्याय समाप्त ।

वत्तीसवां अध्याय ।

४८ प्रकरण

हरितप्रचार ।

{ इस अधिकरणमें दो अध्याय हैं, पिछले इकतीसवें अध्यायमें हृत्स्व-
पक्षके कार्योंका निरूपण किया गया । अब इस अध्यायमें हाथि-
योंके भेद और उनकी गतियोंके सम्बन्धमें विशेष निरूपण किया
जायगा ।

कर्मस्कन्धाः चत्वारो दम्भः सांनाह औपवाहो व्यालध

॥ १ ॥ तत्र दम्भः पञ्चविधः ॥ २ ॥

कार्य भेदमें हाथी चार प्रकारका होता है, दम्भ (दमन करने योग्य, अर्थात् शिक्षा देने योग्य), सांनाह (सुदके नाममें जाने वाला), औपवाह (सवारिका), और व्याल (अर्थात् घातक वृत्ति वाला) ॥ १ ॥ इनमेंसे दम्भ हाथी पांच प्रकारका होता है । तत्पर्य यह है कि दम्भ हाथीके पांच काम होते हैं, उन्हींके कारण उमके पांच भेद समझे जाते हैं ॥ २ ॥

स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतो ऽवपातगतो गृयगतश्चेति

॥ ३ ॥ तस्योपविचारो विक्रम ॥ ४ ॥

व भद्र इत्येव प्रकार है — एकस्मिन्वर्ग (जो अपने कर्मोंपर किसी मनुष्यको घडासके, तत्पर्यं यह है, कि जब कोई पुरष उसके कर्मोंपर चले इस समय वह किसी तरहका उपद्रव न करे, यह उसका एक काम है, ऐसा करनेपर समझना चाहिये, कि यह हाथी दम्प अर्थात् कुछ सिखलाये जाने योग्य है, क्योंकि वह फिर सरलतासे ही वश में किया जा सकता है), स्तम्भगत (जो हाथी खूप बधना सहन कासने, यह दूसरा काम है, जब हाथी को यह सदा होजाय, तब उसे दम्प समझकर आग कवायद आदि सिखानी चाहिये), वारिगत (हाथियोंके पकड़नेकी भूमि का नाम 'वारि' है, उसमें जो हाथी पहुच जाय, वह भी सरलतासे वशम हाने योग्य हो जाता है इसलिये वह भी दम्प कहाता है), अवपातगत (हाथियोंके पकड़नेके लिये जगलों में जो घास फूस से ढकेहुए गड्ढे बनाये जाते हैं, उनका नाम 'अवपात' है, जो हाथा उनमें पहुच जाते हैं, वे भी दम्प कहाते हैं, क्योंकि उनको फिर पकड़कर इच्छानुसार वशमें किया जा सकता है), और यूथगत (जो हथिनियोंके साथ बिहार करने के व्यसनी होते हैं, वे हथिनियों के झुड में भाये हुए पकड़े जाते हैं, इसलिये उनको भी दम्प कहा गया है । इसप्रकार पाँच उपायोंसे दम्प होने के कारण, दम्प हाथियोंके ही पाँच भेद कल्पित करलिये गये हैं) ॥ ३ ॥ दम्प हाथीकी परिचयां हाथीके बचके समान ही करनी चाहिये । अर्थात् जिसप्रकार हाथीके छोटे बचको दूध, हरी २ घास भोर गन्ने आदि देकर पालन पोषण किया जाता है, उसीप्रकार दम्प हाथीका भी पालन पोषण करना चाहिये ॥ ४ ॥

सांन्यासः सप्तक्रियापथः ॥ ५ ॥ उपस्थानं सेवर्तनं संयामं
वधावधौ हास्तिपुदं नागरायण सांप्राप्तिकं च ॥ ६ ॥ तस्योपवि-
चारः कक्षाकर्म ग्रैवेयकर्म यूथकर्म च ॥ ७ ॥

साध्याद्य हाथी के कार्य करनेके सात मार्ग हैं, इसीलिये साध्याद्य हाथी के सात भेद समझे जाते हैं ॥ ५ ॥ ये भेद इस प्रकार हैं — उपस्थान (आगे पीछे के अवयवोंको ऊचा नीचा करना, तथा ध्वजा, उल्का, बाँस और बरसी आदिका लापना), सवत्तन (साजाना, बढजाना, तथा भिल २ चीजोंका लपना आदि भूमि सम्बन्धी कार्य), संयान (साधा तिरछा, गोगूत्रिकारक अथवा गेलाकार अदि चातुययून गतिविशेष), वधावध (खूद, शूल, तथा शरीरके अन्य किसी अवयवस रथ घावा या आदमी आदिका मारना या पकड़ना), हरिनपुद (न्यून अधिक तथा समान शक्ति वाले हाथियोंके साथ युद्ध करना) नागरायण (नगरक दुरवाजा, दाव रा या अथवा आदि

का तोड़ना), और सौमामिक (प्रकट रूपमें युद्ध करना) । साक्षात् हाथियों के ये सात काम धताये गये हैं, इन्हींके कारण उन हाथियोंके भी सात भेद कलरना कर लिये गये हैं ॥ ६ ॥ साक्षात् हाथीकी शिक्षा देनेके समयमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि रस्सी आदि बांधने, गलेमें बन्धन डालने, तथा उसके झुंडके अनुकूल कार्योंके करनेमें उसे अत्यन्त निपुण बना दिया जाय । (प्रत्येक हाथीके अपने झुंड अर्थात् यूयका पता उनके अंगोंकी बनावटसे मालूम होसकता है) ॥ ७ ॥

औपवाह्यो ऽष्टविधः ॥ ८ ॥ आचरणः कुञ्जरोपवाह्यः धोरण
आधानगतिको यष्टुयुपवाह्यस्तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यो मार्गा-
युक्तश्चेति ॥ ९ ॥

औपवाह्य हाथी आठ प्रकारके होने हैं । (ये भेदभी उनके कार्योंके अनुसार ही कलरना किये गये हैं) ॥ ८ ॥ ये भेद इस प्रकार हैं:—आचरण (अगले तथा पिछले दिस्सेको इच्छानुसार ऊचा नीचा करना, इसप्रकार सब तरहके हाथियोंकी गतिके अनुसार कार्य करलेना; यह भी एक प्रकारकी विशेष कवायद है), कुञ्जरोपवाह्य (दूसरे हाथीके साथ २ गति करने वाला), धोरण (एक ही ओरसे सब तरहके कार्य करने वाला), आधानगतिक (दो तीन तरहकी चाल चलने वाला), यष्टुयुपवाह्य (ताड़ना करनेपर ही काम करने वाला), तोत्रोपवाह्य (काँदेदार लकड़ीसे साधना किये जानेपर ही कार्य करने वाला), शुद्धोपवाह्य (लकड़ी आदिके आघातके बिनाही केवल पैर आदिके इशारेसे सब कामों को करने वाला), और मार्गायुक्त (शिकारके सम्बन्धमें हरतरहका काम करने की शिक्षा पाया हुआ), ये आठ प्रकारके औपवाह्य हाथी कहाते हैं ॥ ९ ॥

तस्योपविचारः शरदकर्म हीनकर्म नारोष्टकर्म च ॥१०॥

उनको शिक्षा देनेके समयमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि जो हाथी मोटे (आध्प्रकृतासे अधिक मोटे) हैं उनको कृश बनाया जाय; जो मन्दाक्षि हैं उनके आक्षित्रीपनका उपाय किया जाय; तथा जो ठीक स्वास्थ्य की अवस्थामें हैं उनके स्वास्थ्य की रक्षा कीजाय, (यह सब उपाय 'शरदकर्म' शब्दकी है) । तथा जो हाथी परिश्रम न करता हो उससे परिश्रम कराया जाय, (हीनकर्म) । इसी प्रकार प्रत्येक हाथीको हरतरहके इशारोंकी भी शिक्षा दीजाय, (नारोष्टकर्म) ॥ १० ॥

व्याल एकक्रियापथ ॥ ११ ॥ तस्योपविचार आयम्यै
करक्ष कर्मशङ्कितो स्वरुद्धो विपम प्रभिन्न प्रभिन्नविनिश्चयो
मदहेतुविनिश्चयश्च ॥ १२ ॥

व्याल अथात् घातक हाथीक कार्य करनका एक हा म ग ह ॥ ११ ॥
उसका शिक्षा दनक निम्न लिखित उपय ह — उसको कोई एक हा व्यक्ति
बांधकर नियमम रख अथवा डण्डक जार पर हा उस रक्खा ज व । शिक्षाके
समय भिन्न २ रातिस उपद्रव करनक कारण इसक निम्नलिखित भद्र समझने
चाहिये — कमशङ्कित (शिक्षाक समय प्रतिकूल हा जाना) अवरुद्ध (काय
में उपयागी न हानक कारण उपक्ष किया हुआ) विपम (अपनी इच्छा
नुसार काम करनराला) प्रभिन्न (मदक दाय स दुष्ट अथात् विचलित
हुआ २) प्रभिन्नविनिश्चय (मद तथा अ हा । आदक द पस वचन हुआ २)
और मदहेतुविनिश्चय (सदा ही म रहनक कारण जिसक बिगड़नमें मदका
हेतुताका पता न लग) ॥ १२ ॥

क्रियानिपनो व्याल ॥ १३ ॥ शुद्ध सुप्रतो विपम सर्व
दोषप्रदुष्टश्च ॥ १४ ॥

साधारणतया कार्य बिगड़नेवाला हाथाका हा व्य ल कहत हैं ॥ १३ ॥
इनक निम्नलिखित विषय भद्र ह — शुद्ध (जा कवल मारनवाला हो यह
अठारह दायेंस युक्त होता है) सुप्रत (कवल चलन में गडबड करनवाला
इसमें प दह द प हाते हैं) विपम (शुद्ध अर सुप्रत दानोंके द प से युक्त)
सर्वेदोषप्रदुष्ट (पूर्वक ततीस द प और उनस अतिरिक्त अपने उनीस
मेंस युक्त अथ व आ सब तरहक द प स युक्त हा । इन सब में पोंका परि
ज्ञान इस्तिनास्त्र स ही हो सकत है) ॥ १४ ॥

तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम् ॥ १५ ॥ आलानग्रै
वेयकक्ष्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिव बन्धनम् ॥ १६ ॥

ह थियोंका बांधन तथा अ य आपरयक सब (उपकरण), सामानका
समूह हाथियोंके चतुर शिक्षकोंक कथनानुसार ही करना च द्विष्ट ॥ १५ ॥
आलान (स्तम्भ अर्थात् हाथीक बांधनका टूंग) ग्रैवेयक (गलमें बांधनकी
जड़ीर आदि) कक्ष्या (कोंदक नीचेसे बांधकी रस्ती आदि) परायण
(हाथी पर चडते समय राहारा लन की रस्ती) परिक्षेप (हाथीके पैरमें
बांधनेकी जड़ीर अदि) धार उत्तर (गलम बांधनकी दूसरी रस्ती) ह्ययादि
वस्तुमें बन्धन कहाती हैं अथ व ग हाथियोंके बांधनेके काममें आती हैं ॥ १६ ॥

अङ्कुशवेणुयन्त्रादिकमुपकरणम् ॥ १७ ॥ वैजयन्तीक्षुरप्र-
मालास्तरणकुथादिकं भूषणम् ॥ १८ ॥ वर्मतोमरशरावापयन्त्रा-
दिकः सांग्रामिकालंकारः ॥ १९ ॥

अङ्कुश, वेणु (बांस या डंडा), और यन्त्र (अम्बारी आदि) आदि
सब उपकरण कहाते हैं ॥ १७ ॥ वैजयन्ती (हाथीके ऊपर लगानेकी पताका)
क्षुरप्रमाला (नक्षत्रमाला, एक प्रकारकी विशेष माला; देखो—अधि० २,
अध्याय ११, सूत्र १३), आस्तरण (नमदा, जो अम्बारीके नीचे हाथीकी
पीठपर रखया जाता है), और कुथ (झूल) आदि पदार्थ हाथियोंके सजानेके
लिए होते हैं ॥ १८ ॥ वर्म (कनच) तोमर (चार हाथका एक हथियार
विशेष), शरावाप (तूगीर, तरकश जिसमें त्राण रखे जाते हैं), और
यन्त्र (भिन्न २ प्रकारके हथियार आदि) आदि, हाथियोंके संग्राम सम्बन्धी
अलङ्कार समझे जाते हैं ॥ १९ ॥

चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपर्कापचारिकविधापा-
चकयात्रसिकपादपाशिककुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थायिकवर्गः
॥ २० ॥

चिकित्सक (हाथियोंकी चिकित्सा करनेवाला=गजवेद्य), अनीकस्थ
(हाथियोंका शिक्षक), आरोहक (गज विषयक शास्त्रोंको जाननेवाला=
गजारोही), आधोरण (शास्त्र ज्ञानरूपक, गज विषयक कार्योंको करनेमें
कुशल), हस्तिपर्क (हाथीकी रक्षा करनेवाला), औपचारिक (हाथीको
न्हलाने धुलानेवाला), विधापाचक (हाथीके आहारको पकातेवाला),
यात्रसिक (हाथीके लिए हरा आदि लानेवाला), पादपाशक (हाथीके
पैरको बांधनेवाला अर्थात् हाथीको उसके धानपर बांधनेवाला), कुटीरक्षक
(गजशालाकी रक्षा करनेवाला), और औपशायिक (हाथीकी शयनशालाका
निरीक्षण करनेवाला), आदि गज परिचारक होते हैं । अर्थात् ये उपारह,
हाथीकी परिचर्या करनेवाले कर्मचारी होते हैं ॥ २० ॥

चिकित्सककुटीरक्षविधापाचकाः प्रथ्वादनं स्नेहप्रसृतिं क्षार-
लवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः ॥ २१ ॥ दृशपलं मांसस्थान्यत्र चि-
कित्सकैर्मयः ॥ २२ ॥ पथि व्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकि-
त्सकाः प्रतिकुर्युः ॥ २३ ॥

चिकित्सक, कुटीरक्षक, और विधापाचक, इन तीनों में से प्रत्येक, हाथीके आहारमें से एक प्रस्य अन्न, तैल या घृत आदिकी आधी अञ्जली, गुड और नमकके दो पल लेलेवें ॥ २१ ॥ तथा चिकित्सकोंको छोडकर बाकी दोनों (कुटीरक्षक और विधापाचक), मांसके दस २ पल लेलेवें ॥ २२ ॥ मार्ग चलनेसे, व्याधिसे, कार्य करनेसे, मदके कारण, तथा गुडापेके कारण जो कोई भी कष्ट हाथियोंको होजावे, चिकित्सक घडी सावधानतापूर्वक उसका प्रतीकार करें ॥ २३ ॥

स्थानस्याशुद्धिर्यवसस्याग्रहणं स्थले शयनमभागे घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थे ऽन्तारणं तरुपण्ड इत्यत्यय-स्थानानि ॥ २४ ॥ तमेपां भक्तवेतनादाददीत ॥ २५ ॥

हाथीके स्थानको साफ न करना, उसे खानको न देना, खाली भूमि पर सुलाना, चोट न पहुचाने योग्य भूमि स्थलों पर चोट पहुचाना, दूसरे अनधिकारी पुरुषको हाथी पर चढ़ामा, नियत समयसे अतिरिक्त समयमें हाथीको चलाना, दुर्गम स्थानोंमें चलाना, विना घाटके ही जलाशयमें उतार देना, तथा पेड़ोंके छुण्डोंमें हाथीको लेजाना, ये सब, कर्मचारियोंके अत्यय स्थान अर्थात् दण्डक स्थान होते हैं । तात्पर्य यह है, कि हाथीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करनेमें जिन कर्मचारियों या अप्यक्षका दोष हो, उन्हें उचित दण्ड दिया जावे ॥ २४ ॥ यह दण्ड उनके भक्त और वेतनसे काट लिया जावे ॥ २५ ॥

तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चातुर्मास्यर्तुसंधिषु ।

भूतानां कृष्णसंधीज्याः सेनान्यः शुक्लसंधिषु ॥ २६ ॥

बलकी वृद्धि और विघ्नोकी शान्तिके लिये, वर्षमें तीन बार नीराजना कर्म कराया जावे, यह चार महानेक बाद ऋतु संधिकी तिथि में कराना चाहिये; (यह तिथि आषाढ कार्तिक तथा फाल्गुनकी पूर्णमासी होगी), और कृष्ण सन्धियों में अर्थात् अमावास्या तिथियों में भूतों का बलिकर्म कराया जावे । तथा स्कन्द की पूजा भी पूर्णमासी तिथियों में कराई जावे ॥ २६ ॥

दन्तमूलपरीणाहाद्विगुणं प्रोज्झ्य कल्पयेत् ।

अब्दे द्वयर्थे नदीजानां पञ्चाब्दे पर्वतौकसाम् ॥ २७ ॥

इदं पक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणे हस्तिप्रचारो द्वात्रिंशाऽप्याय ॥ ३२ ॥

आदित त्रिपद्यात् ॥ ५३ ॥

हाथी दाँतकी जड़में जितनी मोटाई हो, उससे दुगना दाँतका हिस्सा छोड़कर, बाकी भगले हिस्सेको काट लियाजावे । इसके काटनेका समय इस प्रकार समझना चाहिये;—जो हाथी वृद्धीचर हों, उनके दाँत ढाई साल के बाद काटे जावें, और जो हाथी पर्वतोंमें रहने वाले हों, उनके दाँत पाँच सालके बाद काटे जावें ॥ २७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें वृत्तीसवां अध्याय समाप्त

तेतीसवां अध्याय

४९-५१ प्रकरण

रथाध्यक्ष पत्यध्यक्ष, तथा सेनापतिप्रचार

{ सेनामें काम भाने वाले रथोंका अध्यक्ष 'रथाध्यक्ष' और पैदल सेनाका प्रधान अधिकारी 'पत्यध्यक्ष' तथा सम्पूर्ण सेनाका प्रधान अधिकारी 'सेनापति' कहाता है, इनके कार्योंका इस अध्यायमें यथाक्रम निरूपण किया जायगा ।

अथाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः ॥ १ ॥ स रथकर्मान्तान्कारयेत् ॥ २ ॥

अथाध्यक्षके समान ही रथाध्यक्षके भी नियम समझने चाहिये; तात्पर्य यह है, कि जिस प्रकार अथाध्यक्ष, शालानिर्माण आहार आदिका सम्बन्ध और उपकरणोंका संग्रह तथा कर्मचारियोंकी नियुक्ति कराता है, इसी प्रकार रथोंके सम्बन्धमें रथाध्यक्ष भी करे ॥ १ ॥ इसके अतिरिक्त रथाध्यक्ष, पद्ये रथ बनवाने और पुराने रथों की मरम्मत कराने के कार्यों को भी करवावे ॥ २ ॥

दशपुरुषो द्वादशान्तरो रथः ॥ ३ ॥ तस्मादेकान्तरावरा आपटन्तरादिति सप्तस्थाः ॥ ४ ॥

दश पुरुषकी बाराबर (एक पुरुष परिमाण १२ अंगुलका होता है, देखो, अधि २, अध्या, २०, सू, १०, ११), ऊँचाई और बाराबर पुरुषकी बाराबर लम्बाई एक रथ की होनी चाहिये । इतने परिमाणका रथ उत्तम रथ कहाता है ॥ ३ ॥ बाराबर पुरुष अर्थात् बाराबर बिलांबद् लम्बाईमें से एक २ बिलांबद्की लम्बाई कम करके कमसे कम छः बिलांबद्की लम्बाई तक के भात प्रकारके रथ होते हैं । अर्थात् सबसे बड़ा रथ बाराबर बिलांबद् लम्बा,

फिर एक २ कम करके, ग्यारह, दस, नौ, आठ, नान तथा छः दिलायद् तक का लक्ष्य, ये सात प्रकारके रथ होते हैं, इनकी ऊचाई भी लक्ष्यार्थके अनुसार ही कम करदेनी चाहिये ॥ ४ ॥

देवरथपुष्परथसांप्राप्तिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकोश्च रथान्कारयेत् ॥ ५ ॥

भिन्न २ कार्योंमें उपयोग होनेके कारण, रथोंके निम्नलिखित नाम या भेद समझने चाहिये, :- देवरथ (यात्रा तथा उत्सव आदिमें देवप्रतिमाओं की सवारीके लिये काम में आने वाला रथ), पुष्परथ (विवाह आदि माङ्गलिक कार्योंमें उपयुक्त होने वाला), सांप्राप्तिक (युद्धमें काम आने वाला), पारियाणिक (साधारण यात्रा करनेके काममें आने वाला) परपुराभियानिक (शत्रुके दुर्ग आदिको तोड़नेके समय उपयोगमें आने वाला), और वैनयिक (घोड़े आदिको चलाना सिलखानेके काममें आने वाला), आदि रथोंका भी रक्षाध्यक्ष निर्माण करावे ॥ ५ ॥

इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वायोगं विद्यात् ॥ ६ ॥ आकर्मभ्यथ भक्तवेतनं भृता-
नामभृतानां च योग्यारक्षानुष्ठानमर्थमानकर्म च ॥ ७ ॥

रथाध्यक्षको चाहिये कि वह बाण, तुर्णार, धनुष आदि अस्त्र, तोमार गदा आदि प्रहरण, रथ आदिके ऊपर डालनेके आवरण, और लगाम बागडोर आदि उपकरणोंके घनाये जानेके सम्बन्धमें, तथा सारथि (रथ आदिको चलाने वाला), रथिक (रथ आदिको जानने वाला), और रथ्य (रथमें जोते जाने वाले घोड़े) आदिके अपने २ कार्योंमें नियुक्तिके सम्बन्धमें पूरी २ जानकारी रखे ॥ ६ ॥ और कार्यके समाप्त होनेतक, नियमित रूपसे कार्य करने वाले शिष्टियोंके भला और घेतनका; अनियमित रूपसे कार्य करने वाले, अर्थात् धोड़े ही समयके लिये नियुक्त किये हुए शिष्टियोंके निर्वाह और कार्यके योग्य धन तथा सरकार आदिका सुव्यवस्थित प्रबन्ध करे ॥ ७ ॥

एतेन पच्यध्यक्षो व्याख्यातः ॥ ८ ॥ स मौलभृतश्रेणि-
मित्रामित्राटवीचलानां सारफल्गुतां विद्यात् ॥ ९ ॥

रथाध्यक्षके व्यापारके समस्त ही परवध्यक्षका भी व्यापार समझलेना चाहिये ॥ ८ ॥ तथा इसके अतिरिक्त परवध्यक्षको चाहिये, कि वह मौल बल (मूलस्थान अर्थात् राजधानीमें होने वाली, या उसकी रक्षा करने वाली सेना) भृतबल (मौलसे अन्य घेतन भोगी सेना), श्रेणिवल (प्रान्तमें

भिन्न २ स्थानोंपर रहने वाली सेना), मिश्रबल (मिश्र राजाकी सेना), अमिश्रबल (अपने शत्रु राजाकी सेना), और अटवीयल (जंगलमें रहने वाली सेना, अथवा जंगलकी रक्षा करने वाले अधिकारियोंके उपयोगमें आने वाली सेना), इन छः प्रकारकी सेनाओंकी सारता तथा फलगुताको अच्छी तरह जाने । अर्थात् इनके सामर्थ्य या असामर्थ्य से अच्छी तरह परिचित रहे ॥ ९ ॥

निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रियुद्धव्यायामं च विद्यात् ॥ १० ॥ आयोगमयोगं च कर्मसु ॥ ११ ॥

और निम्नयुद्ध (जंगल तथा नीचे स्थानोंमें युद्ध करना), स्थलयुद्ध (मैदानमें होनेवाली लड़ाई), प्रकशयुद्ध (आग्नेय सामने भिद्युक्त होने वाली लड़ाई), कटयुद्ध (कपट पूर्वक होने वाली लड़ाई), खनकयुद्ध (खाई खोदकर होनेवाली लड़ाई), आकाशयुद्ध (हवाई जहाजोंसे होने वाली लड़ाई), दिवायुद्ध (दिनमें होने वाली लड़ाई), और रात्रियुद्ध (रातमें होने वाली लड़ाई), इन आठ प्रकारके युद्धोंमें पत्यध्यक्षको अत्यन्त निपुण होना चाहिये ॥ १० ॥ देशकालके अनुसार सेनाओंके कार्योंमें उपयोग और अनुपयोग के सम्बन्ध में भी पत्यध्यक्ष को पूरी जानकारी रखनी चाहिये ॥ ११ ॥

तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथ-
चर्यासंपुष्टश्चतुरङ्गस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात् ॥ १२ ॥

अध्यक्षके लगाकर पत्यध्यक्ष पर्यन्त, सेनाके चार अङ्गोंका जो कुछ कार्य बताया गया है, उस सब कार्यको सेनापति जाने । सेनापतिको हर तरहके युद्ध और हथियार आदिके चलाने तथा आम्बीक्षिकी भाषा शास्त्रोंमें पूर्ण शिक्षित होना चाहिये, हाथी घोड़े रथ आदिके चलानेमें भी अत्यन्त निपुण होना चाहिये । और अपनी चतुरंग सेनाके कार्य तथा स्थानके सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखनी चाहिये ॥ १२ ॥

स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसंधानं संहत-
भेदनं भिन्नबंधं दुर्गबंधं यात्राकालं च पश्येत् ॥ १३ ॥

इसके अतिरिक्त सेनापतिके ये आवश्यक कार्य हैं, कि वह अपनी भूमि, युद्धकाल ममय, शत्रुकी सेना, शत्रुके व्यूहका तोड़ना, बिखरी हुई अपनी सेनाका इकट्ठा करना, एक दूसरेकी रक्षाके लिये युद्धके हुए शत्रु बलको फोड़ना बिखरी हुए शत्रु बलका मारना, शत्रुके दुर्गको तोड़ना, और यात्रा

का समय; इन बातोंपर अच्छी तरह विचार करे, और उसके अनुसार कार्य करे ॥ १३ ॥

तूर्यध्वजपताकाभिव्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत् ।

स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः ॥ १४ ॥

इत्यध्यक्षवचारे द्वितीयेऽधिकरणे रथाध्यक्षः पर्यध्यक्षः सेनापतिप्रचारश्च त्रयास्त्रिंशो

ऽध्याय ॥३३॥ आदित चतुष्पञ्चादाः ॥५४॥

सेनाओंकी शिक्षामें तत्पर हुआ २ सेनापति, स्थान, गमन और प्रहरण के सम्बन्धमें, बाजे, ध्वजा और झडियोंके द्वारा अपनी सेनाके लिये इतारोंकी व्यवस्था करे। तात्पर्य यह है, कि युद्धके समयमें, सेनापति अपनी सेनाका संचालन करनेके लिये इस प्रकारके संकेतोंका प्रयोग करे, जिनके द्वारा, किभी तरहभी न समझ सके। ये संकेत बाजे या झडियोंके द्वारा होने चाहियें ॥१४॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तैत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

चौत्तीसवां अध्याय

५२-५३ प्रकरण

मुद्राध्यक्ष और विवीताध्यक्ष

इतिहासिक लेख आदिमें जो राजकीय चिन्ह किया जाता है, उसीका नाम 'मुद्रा' है। उसका जो प्रधान राजकीय अधिकारी हो उसको 'मुद्राध्यक्ष' कहते हैं। चरगाहका नाम विवीता है, उसके प्रधान व्यवस्थापक राजकर्मचारीको 'विवीताध्यक्ष' कहते हैं। इन दो प्रकरणोंमें दोनों अध्यक्षोंके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

मुद्राध्यक्षो मुद्रां मापकेण दद्यात् ॥ १ ॥ समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत ॥ २ ॥

मुद्राध्यक्ष, एक मापक लेकर आने जानेवाले व्यक्तिको मुद्रा देदेवे; तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष नगरमें आवें, अथवा वहांसे बाहर जावें, उनको राजकीय मुहर लगा हुआ परवाना देनेके बदलेमें उनसे एक मापक लिया जावे। यह इसीलिये होता है कि जिससे आने जानेवाले पुरखोंपर घोर, या शत्रुके घराभादि होनेकी शक्ती न की जा सके। एक मापक देकर सरकारी खजानेके लिए लिया जाता है) ॥ १ ॥ जिस आदमीके पास राज-

कीय मुद्रा हो, वही जनपदमें प्रवेश कर सकता है, और वही वहांसे बाहर जा सकता है ॥ २ ॥

द्वादशपणमुद्रो जानपदो दद्यात् ॥ ३ ॥ कूटमुद्रायां पूर्वः
साहसदण्डः ॥ ४ ॥ तिरोजनपदस्योत्तमः ॥ ५ ॥

राजाके अपने ही जनपदमें रहनेवाला यदि कोई पुरुष राजकीय मुद्रा न लेवे तो उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ यदि कपटमुद्रा (देखते से बचनेके लिए बनावटी मुहर) लेकर आना जाना चाहे, तो उस पुरुषको (यदि वह अपनेही जनपदका हो, तो) प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥ यदि वह अन्य किसी प्रदेशका हो, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥

विचीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत् ॥ ६ ॥ भयान्तरेषु च विचीतं
स्थापयेत् ॥ ७ ॥

विचीताध्यक्षका कार्य है, कि जो पुरुष मुद्रा न लेकर या कपटमुद्रा लेकर, ठीक मार्गोंसे न जाकर छिप कर जंगलोंमें होकर सफर करते हैं, ऐसे पुरपोंके समीप मुद्रा की जांच करे, अर्थात् यह देखे कि इन लोगोंके पास मुद्रा है या नहीं? यदि है तो कैसी है? ॥ ६ ॥ जिन स्थानोंमें चोर या शत्रु और उसके चर आदि पुरपोंके भाने जानेकी अधिक संका या सम्भावना हो, ऐसे ही स्थानोंमें चरागाहकी स्थापना कीजावे ॥ ७ ॥

चौरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत् ॥ ८ ॥ अनुदके
कूपसेतुवन्धोत्सान्स्थापयेत्पुष्पफलाटांश्च ॥ ९ ॥ लुब्धकश्च ग-
णिनः परिव्रजेयुररण्यानि ॥ १० ॥

चोर और हिंसक जानवरोंके दरसे, गहरी खाईयों और घने जंगलोंका परिशोध करावें, अर्थात् इन स्थानोंमें चोर या हिंसक जानवर तो नहीं रहते? इस बातकी बराबर परीक्षा करवाता रहे ॥ ८ ॥ जिन स्थानोंमें जलका अचूक प्रबन्ध न हो, वहां पक्के कुए, पक्के तालाब तथा थोड़े समयके लिये फरचे कुओंका भी प्रबन्ध करे। इसीप्रकार फूल तथा फलोंके बगीचे और प्याऊ लादिकी भी स्थापना कीजावे; अर्थात् स्थानोंकी आवश्यकताके अनुसार इनका भी प्रबन्ध किया जावे। शिकारी और गहेलिये जंगलोंमें बराबर घूमते रहें। (इनके घूमनेका मुख्य प्रयोजन, चोर तथा शत्रुओंके भाने जानेका मालम करना ही समझना चाहिये) ॥ १० ॥

तस्करामित्राभ्यागमे शङ्खदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः शैलशु-
क्षविरूढा वा शीघ्रवाहना वा ॥ ११ ॥

घोर या शत्रुओंके भाजानेवा, अन्तपालको उनकी सूचना देनेके लिये, पदाद् भयवा वृक्ष आदिवा चरकर शङ्ख या मुद्गुभिको हत्यकार बनावे, जिससे कि शत्रु या चोरोंको डर सकेतहा कुछ पना न लगे, और अन्तपालको सब तरहकी सूचना मिलजाय। भयवा शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़कर, अन्तपालके पास जाकर ही, उन सबकी उमे सूचना देवे ॥ ११ ॥

अभिवाटवीसंचारं च राजो गृहकपेतिमुद्रायुक्तैर्हरियेषुः, धूमाग्निपरंपरया वा ॥ १२ ॥

अपने जगलमें आये हुए शत्रुओंकी, रजाके सूचना देनेके लिये, राजाकी मुद्रा लगे हुए, घाके पलू कूतोंके द्वारा संचार भिजवाव। ताराय यह है कि उन सब सबोंको चिठीपर लिखकर और उसपर राजाकी मुद्रा लगाकर उन्हें, पालनू कूतोंके द्वारा राजाके पास भिजवा देवे। भयवा धूम और अग्निकी परंपरासे उस समाचारको राजतक पहुंचावे। इनका तारय यह है, कि जहां जगलमें शत्रु आदि आये हुए हों वहां पातमें ही जो विविताध्यक्ष आदि राजकर्मचारी हों, वे यदि रातका समय हो तो आग जलाई, और दिनका समय हो तो धुमा कर दें। ~~राजधानीके पाससे~~ राजधानीकी ओरको कोसभरके कासलेपर जो कर्मचारी ही वह भी इसीप्रकार अग्नि या धुंकेका संकेत करे और इसी संकेतके अनुसार परंपरासे, राजधानी तक वह समाचार पहुंचा दिया जाये ॥ १२ ॥

द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तिनीं चोररक्षणम् ।

सार्धातिवाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत् ॥ १३ ॥

हत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे मुद्राध्यक्षो विविताध्यक्ष. चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
आदित पञ्चपन्चाशः ॥ ५० ॥

विविताध्यक्षका यह भी कार्य है कि वह द्रव्यवन और हस्तिवनोंमें जो आजीव अर्थात् घास ईंधन और कोयले आदि हों, उनका प्रबन्ध करे। तथा घरेनी (दुर्गके मार्गसे यात्रा करनेका टैंकस), चोरोंसे कीदुर्ग रक्षाका टैंकस (अर्थात् चोरोंके उपद्रवसे, व्यापारियोंकी रक्षा करनेपर, उसके बदलेमें उनसे लिया हुआ टैंकस,) भयके स्थानमें होकर व्यापारियोंके सुखपूर्क यात्रा करवा देनेका टैंकस, गोरक्षाका टैंकस, तथा इन पदार्थोंके क्रय विक्रयके व्यवहारका भी प्रबन्ध कावावे ॥ १३ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौमीसवां अध्याय समाप्त ।

पैंतीसवां अध्याय ।

५४-५९ प्रकरण ।

समाहर्त्ताका कार्य; गृह-पति वैदेहक तथा तापसके
वेशमें गुप्तचर ।

{ दुर्ग, जनपद, खान, जंगल, व्रज, व्यापारी मार्ग आदि सम्पूर्ण
आयस्थानोंमें सब तरहकी आयको इकट्ठा करने वाले प्रधान राज-
कर्मचारीका नाम 'समाहर्त्ता' है । उसहीके कार्योंका पहले प्रक-
रणोंम निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें गृहपति आदिके
वेशमें रहने वाले गुप्तचरोंके कार्योंका निरूपण होगा ।

समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभा-
गेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकर-
प्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत् ॥ १ ॥ तत्प्रदिष्टः पञ्चग्रामीं
दशग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत् ॥ २ ॥

समाहर्त्ताको चाहिये, कि वह जनपदको चार भागोंमें विभक्त करके,
फिर उनमें भी ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठकी कल्पना करके (ज्येष्ठ कनिष्ठ वि-
भाग, गाँवोंकी मनुष्य-गणना और उषजके आधारपर होना चाहिये) ग्रामोंको
(ग्रामोंकी पृथक् २ मनुष्य-गणना, और सामूहिक गणना; प्रत्येक गाँवका
पृथक् २ रक्षक, और सम्पूर्ण एक वर्षका रक्षक [चित्र-सहित] तथा उषजकी
भौगोलिक परिस्थित को) ' यह इतना है ' इसप्रकार अपनी पुस्तकमें लिखलेवे ।
जो गाँव दानमें देदिये हों, अर्थात् जिनसे किसी प्रकारकी आमदनी न हो,
उन गाँवोंको अलङ्कार लिखलेवे । इसी प्रकार जो गाँव, सैनिक पुरुषोंको दें
(अर्थात् सेनामें भरती होनेके लिये प्रतिवर्ष नियत संख्यक पुरुष दें), तथा
जो धान्य (भज आदि), पशु (गाय घोड़ा आदि), हिरण्य (सोना चाँदी
या उसके सिक्के आदि), कुप्य (सोने चाँदीको छोड़कर अन्य धातु), और
विष्टि (नौकर चाकर), आदिके रूपमें प्रतिवर्ष नियत कर दें, उनको भी
पृथक् २ अपनी पुस्तकमें लिखलेवे ॥ १ ॥ समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार, पाँच २
अथवा दस २ गाँवोंका एक २ वर्ग बनाकर ' गोप ' नामक अधिकारी उनका
प्रबन्ध करे । (जनपदके चार विभागोंमेंसे एक २ विभागका प्रबन्ध करने
वाला अधिकारी ' स्थानिक ' कहलाता है । यह ' गोप ' नामक अधिकारी, उसके
भी नीचे काम करके जाता है) ॥ २ ॥

सीमापरोधेन ग्रामाग्रं कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामपण्डवाटवन-
वास्तुचैत्यदेवगृहसेतुचन्धश्मशानसत्रप्रपापुण्यस्थानावितिपाथिसं-
ख्यानेन क्षेत्राग्रं, तेन सीमां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपधिप्रमाण-
संप्रदानविक्रयानुप्रदपरिहारनिवन्धान्कारयेत् ॥ ३ ॥ गृहणाञ्च
करदाकरदसंख्यानेन ॥ ४ ॥

ग्रामोंके परिमाणको नदी पहाड़ आदिकी सीमाका निर्देश करके लिखे, अर्थात् नदी पहाड़ आदिके द्वारा उनकी सीमाका निश्चय करके फिर उनके परिमाणको किनायमें लिखे इसी प्रकार खेतोंके परिमाणको भी निम्नलिखित कृष्ट आदि अठारह वस्तुओंके साथ २ लिखे, अर्थात् खेत आदिके परिमाणका निश्चय करके, जब किताबमें उसे लिखे तो साथ ही साथ उससे सम्बन्ध रखने वाली कृष्ट आदि वस्तुओंका भी निर्देश करे । वे इस प्रकार हैं — कृष्ट (जो जमीन खेती करनेके काममें आती हो, अर्थात् जिन जमीनोंमें खेती होती हो, उनमें बने हुए खेतोंके साथ लिखादिया जाय कि इनमें खेती होती है), अकृष्ट (जहाँ खेती न होती हो । अथवा 'कृष्ट' का अर्थ कृष्टपथ्य [कठिनतासे पकने वाला] गेहूँ आदिके खेत, और 'अकृष्ट' का अर्थ अकृष्टपथ्य [थोड़ी मिट्टनतसे ही पक जान वाला] धान आदिके खेत, करना चाहिये), स्थल (इधर उधरकी भूमिसे कुछ ऊँची भूमि जो उजार बाजरा आदिके लिये उपयोगी हो), केदार (साठी आदि धानोंके खेत), आराम (बागीचोंके खेत), पण्ड (केले आदिके खेत), वाट (ईश्वर आदिके खेत), वन (ग्रामवासी पुरुषोंके लिये लकड़ीके जगल), वान्तु (भावादीकी जमीन), वैश्य (सकेतके वृक्ष), देवगृह (देवालय आदि का भूमि), सेतुचन्ध (जिसमें तालाब आदि हा), श्मशान, सत्र (अन्न देनेका स्थान), प्रपा (प्याऊ), पुण्यस्थान (तीर्थ आदि पवित्र स्थान), विधीत (चारागाह), और रथ गाड़ी तथा पैदल आने जानेके मार्ग । इसप्रकार पुस्तकमें जिस खेतके परिमाणका उल्लेख किया जाये, उसके साथही इन चीजोंमेंसे जो वस्तु हो उसका भी निर्देश करदिया जाये । इसीके अनुसार नदी पहाड़ आदि सीमाओंकी और खेतोंकी मर्यादा (अवधि, अर्थात् इनके चारों ओर क्या क्या चिह्न हैं, हमबात) का भी पुस्तकमें उल्लेख करदिया जाये, इसी प्रकार अरण्य (ऐसे जगल जो ग्रामवासियोंके किसी काममें न आते हों), खेतोंमें आने जानेके मार्ग, उनका अपना २ गृधक् परिमाण, सम्प्रदान (किस पुरुषने किसको अपना खेत जोतने आदिके लिये दिया हुआ है), विक्रय, अनुप्रद (आषाढयकता होनेपर किसान आदिको ऋण दकर उसकी सहायता करना),

और परिहार (कर आदिका छोड़ना), आदिके सम्बन्धकी भी सब बातोंका उल्लेख करदिया जावे ॥ ३ ॥ और आयाड़ीके घाँका भी, कर देने वाले तथा कर न देनेवालोंके विचारसे उल्लेख किया जावे । अर्थात् कितने घाँमें कर देने-वाले (' कर ' का अर्थ यहाँ, मकानका छियाया, और भूमिका कर दोनों प्रकारसे करना चाहिये) पुरुष रहते हैं, और कितने घाँमें कर न देनेवाले ॥ ४ ॥

तेषु चैतान्त्र्यातुर्वर्ण्यमैतान्तः कर्षकगोरक्षकवैदेहककारुकर्म-
करदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टिशुल्कदण्डं
समुत्तिष्ठतीति ॥ ५ ॥

पुनःकर्म इत्यादिना भी उल्लेख किया जावे, कि उन घाँमें इतने मक्षण, इतने क्षत्रिय, इतने वैश्य और इतने शूद्र रहते हैं; इसीसाह छियाग, गोपालक (ग्राह) व्यापारि, शिल्पी, कर्मकर (मजदूर) और दासोंकी संख्याको भी पुनःकर्म लिया जावे । फिर मण्डूयं मनुष्य, और पशुओंके जोड़को पृथक् २ लिखा जाय, अर्थात् सब मिलाकर इतने मनुष्य और इतने पशु हैं । और इनसे इतना हिरण्य, इतने गौकर चाकर, इतना वैषस और इतना दण्ड प्राप्त हुआ है । अर्थात् इन घाँमें प्रकाशसे इतनी आमदनी हुई है, यह भी पुनःकर्म लिए लिया जावे ॥ ५ ॥

कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवव्ययपरि-
माणं विद्यात् ॥ ६ ॥

ग्रामके गोप नामक अधिकारीको चाहिये, कि वह परिवारके साथ सं-
-संध रहने वाले स्त्री पुरुषोंके परिमाणको (अर्थात् एक परिवारमें कितने पुरुष
और कितनी स्त्री हैं, उनकी तादादको), तथा बालक वृद्ध (अर्थात् उस
परिवारमें कितने बालक और कितने बूढ़े हैं), उन सब पुरुषोंके वर्ण आदिके
अनुसार कार्य, उनके चरित्र, उनकी आजीविका और व्ययके सम्बन्धमें
पूरी २ जानकारी रखे । अर्थात् प्रत्येक परिवारकी उपर्युक्त परिस्थितियोंसे
पूर्ण परिचित रहे ॥ ६ ॥

एवं च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्तयेत् ॥ ७ ॥ गोप-
स्थानिकस्थानेषु प्रदेशारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्षुः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार जनपदके चौथे हिस्सेका प्रबन्ध स्थानिक (इस नामका
अधिकारी) करे ॥ ७ ॥ गोप और स्थानिकके कार्य करनेके स्थानोंमें, प्रदेश
(इस नामका कण्टक शोधनाधिकारी; देखो कण्टकशोधन, चतुर्थ अधि-
करण) भी राज्य कण्टकोंके उत्साहनेका अपना कार्य करे; और गोप तथा

स्थानिकको स्वयम् ही टैक्स भादि न देनेवाले पुरुषोंसे, टैक्स भादि भी वसूल करें। अथवा राष्ट्रमें जो बलवान् होकर राज्य सम्बन्धमें विग्रह उपरिधत करते हैं उनका दमन करे, अर्थात् उनको इस प्रकार सीधा करें, जिससे कि वे गोप और स्थानिक अधिकारियोंके भी आज्ञाकारी होजावें ॥ ८ ॥

समाहर्तृप्रदिष्टाश्च गृहपतिकव्यञ्जना येषु ग्रामेषु प्राणिहिता-
स्तेषां प्रामाणां क्षेत्रगृहकुलाग्रं विद्युः ॥ ९ ॥ मानसंजाताभ्यां
क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां गृहाणि वर्णकर्मभ्यां कुलानि च ॥ १० ॥

समाहर्ताकी आज्ञानुसार गृहपति (गृहस्थ) के वेशमें रहनेवाले गुप्तचर जिन ग्रामोंमें नियुक्त किये जावें, उन ग्रामोंके क्षेत्र (रकबा अथवा खेत भादि), घर और परिवारोंके परिमाणको अच्छी तरह जानें ॥ ९ ॥ ये गुप्तचर पुरुष, गांवके रकबे या खेत आदिकोंको उनके मान और उनकी उपजके साथ जानें; अर्थात् खेतोंके सम्बन्धमें जाननेकी यही बात है, कि उनका ठीक परिमाण कितना है और उनमें क्या २ उपज होती है। इसी प्रकार घरोंके सम्बन्धमें यह जानें, कि कौनसे घरोंसे कर वसूल किया जाता है, और कौनसे घरोंपर कर छोड़ा हुआ है। तथा कुलोंके (परिवारों के) सम्बन्धमें जानने की यह बात है, कि ये कौन वर्ण हैं (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिमें से), और क्या कार्य करते हैं ॥ १० ॥

तेषां जंघाप्रमायव्ययौ च विद्युः ॥ ११ ॥ प्रस्थितागतानां च
प्रवासावासकारणमनर्थ्यानां च स्त्रीपुरुषाणां चारप्रचारं च विद्युः
॥ १२ ॥

उन परिवारोंके सब प्राणियों की संख्या (सूत्रमें 'जंघामं' शब्द है, जंघा शब्द चलने फिरनेवालोंका उपलक्षण है, इसलिये यहाँ पर परिवारके मनुष्य और पशु भादि सबकी ही गणना अपेक्षित है) और उनके सम्बन्धसे होनेवाले आय-व्ययको भी जानें ॥ ११ ॥ अपने निवास स्थानको छोड़कर दूसरी जगह बसनेके लिए जानेवाले, दूसरे प्रदेश से उठकर यहाँ बसनेके लिये आनेवाले, पहिले यहाँसे उठकर और कहीं जाकर फिर उसी स्थानपर लौटकर आनेवाले पुरुषोंके प्रवास (अपने निवास-स्थानको छोड़कर जाना) और आवास (दूसरी जगह जाकर बसना) के कारणको जानें। राजीपयोगों कुछ भी कार्य न करनेवाले स्त्री (मच्छेकी, कुदनी भादि) पुरुषों (भौंड, लुभारी भादि) के प्रवास और आवासको भी जानें। तथा यह भी जानें, कि शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुए २ गुप्तचर कहां २ पर आना कार्य कर रहे हैं ॥ १२ ॥

एवं वैदेहकव्यञ्जनाः स्वभूमिजानां राजपण्यानां खनिसेतु-
वनकर्मान्तक्षेत्रजानां परिमाणमर्घं च विद्युः ॥ १३ ॥ परभूमि-
जातानां वारिस्थलपथोपयातानां सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च
शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः
॥ १४ ॥

इसी प्रकार व्यापारीके वेशमें रहने वाले गुप्तचर, अपने प्रान्तमें उत्पन्न
हुई राजकीय विक्रेय खनिज (खानसे उत्पन्न होने वाली), सेतुज (तालाब
आदिमें उत्पन्न होने वाली) वनज (जंगलोंमें उत्पन्न होने वाली), कर्मान्तज
(कारखाने आदिसे उत्पन्न होने वाली), और क्षेत्रज (खेतोंसे उत्पन्न होने
वाली) वस्तुओंके परिमाण और मूल्यको अच्छी तरह जानें ॥ १३ दूसरे प्रदे-
शोंमें उत्पन्न हुई २, जलमार्ग तथा स्थलमार्गसे अपने देशमें आई हुई, सार-
रूप अथवा फल्गुरूप विक्रेय वस्तुके क्रय विक्रय व्यवहारमें होने वाले परिमाण
और मूल्यको जानें । तथा यह भी जानें, कि इन विदेशी वस्तुके व्यापारियोंने
शुल्क (शुल्काभ्यक्षको दिया जानेवाला टैक्स=धुगी), वर्त्तनी (अन्तपालको
दिया जानेवाला टैक्स), गुल्मदेय (मार्ग रक्षक पुलिसका टैक्स), तरदेय
(नाव आदिसे पार होनेका टैक्स), भाग (साक्षियोंको दिया जानेवाला हिस्सा),
भक्त (व्यवहारी पुरूपके बैल आदिके भोजनका व्यय), और पण्यागार (बाज़ा-
रका टैक्स) कितना २ दिया है ॥ १४ ॥

एवं समाहर्षप्रदिष्टास्तापसव्यञ्जनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहका-
नामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ १५ ॥ पुराणचोरव्यञ्जना-
श्चान्तेवासिनश्चैत्यचतुष्पथशून्यपदोदपाननदीनिपानतीर्थाथतना-
श्रमारण्यशैलवनगहनेषु स्तेनामित्रप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशनस्थान-
गमनप्रयोजनान्युपलभेरन् ॥ १६ ॥

इसी तरह समाहर्षाकी आज्ञानुसार, तपस्वीके वेशमें रहने वाले गुप्त-
चर, विज्ञान वाले व्यापारी और अभ्यक्षोंकी ईमानदारी या बेईमानीकी जांच
रखें ॥ १५ ॥ पुराने चोरोंके वेपमें रहने वाले, उन तापस वेपधारी गुप्तचरोंके
शिव्य; देवालय, चौराहा, निर्जन स्थान (द्रव्य स्थान), तालाब, नदी, कुओंके
समीपके जल शय, तीर्थस्थान, मुनियोंके आश्रम, गरण्य पहाड़ तथा घने जंग-
लोंमें डहरकर; चोर दास्य तथा दास्यसे प्रयुक्त किये हुए तीक्ष्ण और रसद् आदि
पुरूपोंके, घडां आने डहरने और जानेके कारणोंका भरपूरतरह पता लगावे ॥ १६ ॥

भी दण्ड दिया जाय । इसी प्रकार जिस घरमें यह कार्य हो, उस घरका मालिक भी इस तरहके पुर्योंकी, गोप या स्थानिककी सूचना देकर अपराधसे मुक्त होसकता है; यदि यह सूचना न देवे, तो उसे भी अपराधीके समान ही दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

प्रस्थितागतौ च निवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यथा रात्रिदोषं भजेत् ॥ १३ ॥ क्षेमरात्रिपु त्रिपणं दद्यात् ॥ १४ ॥

घरके मालिकको चाहिये, कि वह घरसे जानेवाले या घरमें आने वाले पुरुषकी सूचना गोप आदिकी देवे ॥ १२ ॥ सूचना न देनेपर, यदि वे छोग रात्रिमें कोई चोरी आदिका अपराध करें, तो उसका भागी गृहस्वामीको होना पड़ेगा, अर्थात् गृहस्वामी उसका उत्तरदाता होगा ॥ १३ ॥ यदि वे लोग चोरी आदिका कोई अपराध न करें, तो भी जाने आनेकी सूचना न देनेके कारण गृहस्वामीको प्रतिरात्रि तीन पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवन-
श्मशानेषु सव्रणमनिष्टोपकरणमुद्गाण्डीकृतपापिन्नमतिस्वप्नमध्व-
ह्वान्तमपूर्वं वा गृह्णीयुः ॥ १५ ॥

ब्यापारी आदिके वेपमें घरे २ मागोंपर घूमने वाले घर, तथा ब्वाले लकड़हारे आदिके वेपमें रामोंको छोड़कर जगलोंमें घूमने वाले घर, नगरके भीतर या बाहर घने हुए देवाल्यों, तीर्थस्थानों, जगलों या श्मशानोंमें यदि किसी हथियार आदिके घाव लगे हुए, निषिद्ध (हथियार या विष आदि) वस्तुओंको पास रखने वाले, शक्तिले अधिक भार उठाये हुए, डरे या घबड़ाये हुए, घोर निद्रामें सोये हुए, लम्बा सफर करनेके कारण थके हुए, या अन्य किसी भजनभी आदमीको देखें, तो उसे पकड़ लेवे, अर्थात् पकड़कर नागरिक आदि किसी अधिकारीके सुपुर् करदेवे ॥ १५ ॥

एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशेशनशोण्डिकौदनिकपाकमांसिक
घृतपापण्डावासेषु विचर्यं कुर्युः ॥ १६ ॥

इसी प्रकार नगरके अन्दर, शून्य स्थानमें (अर्थात् खाली पड़े हुए मकानोंमें), शिल्परशालामें (भाषेशन), मद्यकी दुकानों, होटकों, पका मांस बेचने वालोंकी दुकाना, जुआरियोंके स्थानों तथा पाखण्डियोंके रहनेके स्थानोंमें भी, उपयुक्त हथियारके घाव वाले पुर्यों आदि का अन्वेषण किया जावे। अर्थात् गुप्त पुर्य उक्त स्थानों में उनको ढूँढकर नागरिक आदि के सुपुर्द करदे ॥ १६ ॥

अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरहश्चतुर्भागयोः ॥ १७ ॥

अष्टभागो ऽग्निदण्डः ॥ १८ ॥ बहिराधिश्रयणं वा कुर्युः ॥ १९ ॥

गरमी की मौसम में, दिनके बीचके चार भागोंमें अग्निका प्रतीकार किया जावे, अर्थात् आग्ने जलानेका निषेध किया जावे । (यह निषेध फूस आदिके बनेहुए मकानोंके लिये ही समझना चाहिये) ॥ १७ ॥ जो पुरुष इस आज्ञाका उल्लंघन करे; अर्थात् गरमीकी मौसममें दिनके दूसरे तीसरे पहर मध्याह्नके समयमें, फूसके मकानोंके अन्दर आग जलावे, उन्हें एक पणका भाठवां हिस्सा दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥ अथवा अग्नि सम्बन्धी कार्य को बाहर करे अर्थात् फूस के मकानों से बाहर खुली जगह में करे ॥ १९ ॥

पादः पञ्चघटीनां, कुम्भद्रोणीनिश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रह-
णीद्वीतीनां चाकरणे ॥ २० ॥

यदि कोई पुरुष निषिद्ध समयमें पांच घटिका पर्यन्त अग्निका कार्य करे, तो उसे चौथाई पण दण्ड दिया जावे । और उस पुरुषको भी चौथाई पण दण्ड दिया जावे, जोकि गरमीकी मौसममें अपने घरके दरवाजेके सामने, पानीसे भरे हुए घड़े, पानीसे भरी हुई द्रोणी (लकड़ीकी बनी हुई बहुत बड़ी नाँदसी), नसेनी (लकड़ी आदिकी सीढ़ी) कुहड़ाडा (भाग लगनेपर रस्ती आदि काटनेके लिये), सूय छाज, सामनेसे फैलते हुए धुतूँको रोकनके लिये), अंकुश (कौंच, लम्बे बाँस आदिमें आगे लगा हुआ लोहेका टुक; यह भाग लगनेपर भीतरसे सामान निकालनके काममें आता है), कचग्रहणी (छपरके छपरके फूसको उतारनेके लिये एक विशेष साधन), और चमड़ेकी मशकका इस्तजाम न रखे । क्योंकि गरमीमें आगसे बचनेके लिये इन चीजोंका संग्रह करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ २० ॥

तृणकटच्छन्नान्यपनयेत् ॥ २१ ॥ अग्निर्जीविन एकस्थान्

वासयेत् ॥ २२ ॥ स्वगृहप्रद्वारेषु गृहस्वामिनो वक्षेयुरसंपातिनो

रात्रौ ॥ २३ ॥ रथ्यासु कटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः ॥ २४ ॥

चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च ॥ २५ ॥

फूस और चटाईके मकानोंकी गरमीके मौसममें उठादिया जावे ॥ २१ ॥ अग्निके द्वारा जीविका करने वाले लुहार बड़ई आदिको, नगरके एक ओर एक-ट्टाही बसाया जावे ॥ २२ ॥ घरोंके मालिक लोग रात्रमें इधर उधर न जाकर अपने घरके दरवाजोंपर ही निवास करे ॥ २३ ॥ गलियों या बाजारोंमें एक

हजार जलके भरे हुए घड़ोंका सदा प्रबन्ध रहे ॥ २४ ॥ और इसी प्रकार घा-
राह, नगरके प्रधान द्वार, राजपरिमह (खजाना, कुप्यागार, कोष्ठागार, पण्य-
गार, गजशाला, अश्वशाला आदि) में भी जलके भरे हुए हजार २ घड़ोंका
प्रबन्ध करना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रदीप्तमनमिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः ॥ २६ ॥
पट्पणोऽवक्रपिणः ॥ २७ ॥ प्रमादादीसेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो
दण्डः ॥ २८ ॥ प्रादीपिकोऽग्निना वध्यः ॥ २९ ॥

यदि घरमें लगी हुई आगको देखकरभी कोई गृहस्वामी उसका प्रबन्ध
न करे, तो उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥ और ऐसा ही करनेपर
छ पण दण्ड उसको दिया जावे, जो पुरुष भाड़ा देकर उस घरमें रहता हो
॥ २७ ॥ यदि असावधानीसे अपने ही घरमें आग लग जावे, तो घरके मालि-
कोंको चैन / ५४) पण दण्ड दिया जावे । (किसी रक्षायुक्तकारने लिखा है
कि यह दण्ड उन मकानोंके रक्षकोंके होना चाहिये) ॥ २८ ॥ मकान आदिमें
आग लगाने वाले पुरुषको, यदि वह उसी समय पकड़ा जाय तो उसे प्राण
दण्ड देना चाहिये । (कालान्तरमें पकड़े जानेपर भी उसे अग्निदाह द्वारा प्राण
दण्ड देनेका विधान ' कण्टकशोधन ' अधिकरणमें किया जायगा (देखो—
अधि ४, अध्या ११. सू. २९) ॥ २९ ॥

पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः ॥ ३० ॥ पङ्कोदक-
संनिरोधे पादः ॥ ३१ ॥ राजमार्गे द्विगुणः ॥ ३२ ॥

सड़कपर, मही या कूड़ा करकट डालनेवाले पुरुषको छे (एक पणका
आठवाँ हिस्सा) पण दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥ तथा जो पुरुष, गारा कीचड़
या पानीसे सड़कको रोकके, उसे छे पण दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ जो पुरुष
राजमार्गको इस प्रकार रोकके, उसे इससे दुगना अर्थात् पहिले अपराधमें छे,
और दूसरे अपराधमें छे पण दण्ड दिया जावे ॥ ३२ ॥

पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिमहेषु पणोत्तरा विष्टादण्डाः
॥ ३३ ॥ मूर्ध्वैर्घदण्डाः ॥ ३४ ॥ भैषज्यन्याधिभयनिमित्तम-
दण्ड्याः ॥ ३५ ॥

पहिले सूत्रसे, इस सूत्रमें ' राजमार्ग ' पदकी अनुवृत्ति करलेनी चाहिये,
इसलिये राजमार्ग, पुण्यस्थान (पवित्र तीर्थस्थान) उदकस्थान (कुओं तालाब
आदि), देवगृह (देवालया), और राजपरिमह (खजाना कोष्ठागार आदि),
इन स्थानोंमें जो पुरुष विष्टा डालके, अर्थात् मलका परित्याग करे, उसे उत्तरो-

त्तर एक पण अधिक दण्ड देना चाहिये, तात्पर्य यह है, कि राजमार्गपर मल त्याग करने वालेको एक पण, पुण्यस्थानमें त्यागने वालेको दो पण, उदकस्थानमें त्यागनेपर तीन पण, इत्यादि रूपसे दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ इन्हीं उपर्युक्त स्थानोंमें मूत्र-त्याग करनेपर, अर्थात् राजमार्गपर मूत्र-त्यागनेपर ३ पण, पुण्यस्थानमें त्यागनेपर एक पण, उदकस्थानमें मूत्र त्यागनेपर ढेड़ (१½) पण, देवालयमें त्यागनेपर दो पण और राजपरिमहमें मूत्र-त्याग करनेपर ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे ॥ ३४ ॥ यदि विरिचनकी औषधका सेवन करनेके कारण, या अतीसार तथा प्रमेह आदि बीमारीके कारण, अथवा किसी विशेष भयसे, इसप्रकार उक्त स्थानोंमें मल-मूत्रका त्याग होजावे; तो उस पुरुषको दण्ड न दिया जावे ॥ ३५ ॥

मार्जारश्चनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः ॥ ३६ ॥ खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां पदपणः ॥ ३७ ॥ मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः ॥ ३८ ॥

बिलाव, कुत्ता, नेबला, और साँप, इनके मरजातेपर, इनको यदि नगरके समीप या नगरके बीचमें ही छोड़ दिया जावे, तो छोड़ने वाले व्यक्ति को तीन पण दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥ और यदि गधा, ऊँट, खच्चर तथा घड़ा आदि पशुओंके मृत-शरीरोंको इस तरह छोड़ दिया जावे, तो छोड़ने वाले पुरुषको छः पण दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार यदि मनुष्यके मृत शरीरको छोड़ा जाय, तो छोड़ने वालेको पचास पण दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥

मार्गविपर्यासे शवद्वारादन्यतः शवनिर्णयने पूर्वः साहसं दण्डः ॥ ३९ ॥ द्वाःस्थानां द्विधत्तम् ॥ ४० ॥ इमशानादन्यत्र न्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥

मुर्शोंके लेजानेके लिये जो मार्ग नियत हैं, उनसे भिन्न मार्गसे मुर्शोंके लेजानेपर, तथा नियत द्वारको छोड़कर, दूसरे द्वारसे नगरके बाहर मुर्शोंको निकालनेपर, प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ और द्वारके रक्षक पुरुषको जोकि इसप्रकार मुर्शोंको लेजानेपर न रोके, दोसी पण दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ इमशानके लिये नियत भूमिको छोड़कर, जो पुरुष मुर्शोंको दूसरी जगह गड़ें या जलायें, उन्हें बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

विपण्नालिकमुभयतोरत्रं यामतूर्यम् ॥ ४२ ॥ तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्यांशे, सपादपणमक्षणताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम् ॥ ४३ ॥ मध्यमयामिकं द्विगुणं, बहिश्चतुर्गुणम् ॥ ४४ ॥

रात्रिके प्रथम भाग और अन्तिम भागकी छः २ घटियोंको छोड़कर दोनों धार रात्रिमें बाजेका बहुत ऊंचा शब्द किया जावे। इसका तात्पर्य यह है, कि रात्रिको प्रथम छः घड़ी व्यतीत होजानेसे लगाकर अन्तिम रात्रि की जब छः घड़ी शेष रहजावें, तो इस बीच समयमें कोई भी आदमी सड़कोंपर न आवे जावे। इस बातकी सूचनाके लिये रातकी पहिली छः घड़ी बीतनेपर बाजेका ऊंचा शब्द किया जाय, इसी प्रकार जब छः घड़ी रात शेष रहजावे, तब भी उस बाजेके शब्दसे ही, उस समयके बीतनेकी सूचना देदी जावे ॥ ४२ ॥ उस रात्रिघोषकाके बाद जो आदमी, राजाके घरके पाससे गुजरता हुआ देखा जावे, उसे असमय चलनेके अपराधमें सवा (१३) पण दण्ड दिया जावे, परन्तु यह तना दण्ड निषिद्ध समयकी प्रथम और अन्तिम घड़ीके लिये ही समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो पुरुष निषिद्ध समयके मध्य घहरोंमें ही आवे जावे, उसे इसका दुगुना अर्थात् द्वाई (२३) पण दण्ड दिया जावे। ये दण्ड नगरके भीतर ही निषिद्ध समयमें चलने किरनेके हैं। जो पुरुष नगरके बाहर ऐसे समयमें आवे जावे; उसे उक्त दण्डका चौगुना अर्थात् पांच पण दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥

शङ्कनीये देशे लिङ्गं पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुञ्जीत ॥ ४५ ॥

राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥

सूतिकाचिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाभिनिमित्तं मुद्रा-
भिश्चाग्राह्याः ॥ ४७ ॥

उक्त निषिद्ध समयमें जो पुरुष शङ्कनीय स्थानों (जहांपर रहनेसे उनके ऊपर घोर आदिकी शस्त्रा कीजासके, घरके बागिचों आदिमें छिपे हुए, अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों) में पाये जावें; या जिनके पास इसी तरहकी शस्त्रा होजानेके चिन्ह विद्यमान हों, तथा जिनकी चोरी आदिका घृणान्त पहिले माहूम होसुका हो. ऐसे पुरुषोंको पकड़कर उनसे पूछा जावे, कि तुम कौन हो ? कहाये भाये हो ? किसके हो ? और यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? इत्यादि। इन बातोंका उत्तर मिलनेपर उसकी उचित व्यवस्था कीजावे ॥ ४५ ॥ यदि कोई इसप्रकारका मनुष्य सरकारी निवास आदिके स्थानोंमें प्रविष्ट होजावे, अथवा नगर रक्षाके लिये बनेहुए सफ़ाल या घुर्ने आदिके ऊपर चढ़जावे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥ यदि कोई पुरुष, निषिद्ध समयमें भी सूतिका (प्रसूता स्त्री), चिकित्सक, प्रेत (शव आदिके उठाने), प्रदीपयान (हाथमें प्रकाश लेकर जाने), नागरिकतूर्य (नागरिक पुरुषोंको सूचनाके लिये बाजा बजाने), प्रेक्षा (राजासे अनुमत

माटक आदि देखने), तथा भद्रि (भाग आदिके लग जाने) के कारण इधर उधर भाड़े जावें, तथा जिनके पास मन्त्री या 'नागरिक' आदिकी सरकारी मुहर हो, उनको न पकड़ा जावे ॥ ४७ ॥

चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेपाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च
मनुष्या दोपतो दण्ड्याः ॥ ४८ ॥ रक्षिणामवार्य वारयतां वार्य
त्रावारयतामक्षणद्विगुणो दण्डः ॥ ४९ ॥

जिन रात्रियोंमें प्रत्येक पुरपको, हरजगह घूमने फिरनेकी आज्ञा हो, ऐसी महोरसत्र आदि सम्बन्धी रात्रियोंमें, जो पुरुष प्रच्छन्नवेपमें (नयाँतु मुद्र आदिको ढककर), अथवा विपरीत वेपमें (स्त्री पुरपोंके वेपमें और पुरुष स्त्रियोंके वेपमें), घूमते हुए देखे जावें; तथा जो मनुष्य सन्वासीके वेपमें, अथवा हाथमें दण्ड या और कोई हथियार लिये हुए देखे जावें; उन्हें पकड़कर उनके अपराधके अनुसार उनको दण्ड दिया जावे ॥ ४८ ॥ जो नगररक्षक पुरुष, न रोकने योग्य आदमीको आने जानेसे रोकें, और रोकने योग्य आदमीको न रोकें, उनको अममय जाने वाले पुरुषोंके दण्डसे (देखो, इसी अध्यायका तेतालीसवाँ सूत्र) दुगना अर्थात् दण्ड (२३) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४९ ॥

स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५० ॥ अदासीं
मध्यमः ॥ ५१ ॥ कृताचरोधामुत्तमः ॥ ५२ ॥ कुलस्त्रियं वधः ॥ ५३ ॥

जो पुरुष, दूसरेकी स्त्री दासीके साथ बलात्कार गमन करें, उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥ दासीसे भिन्न गणिका आदिके साथ जो बलात्कार गमन करें, उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ जो किसीके द्वारा भार्या रूपसे स्वीकार की हुई दासी या अदासी स्त्रीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करें, उनको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥ तथा जो कुलीन स्त्रियोंके साथ इसप्रकारका वचनाव करें, उनको प्राणदण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो
दण्डः ॥ ५४ ॥ प्रमादस्थाने च ॥ ५५ ॥

चेतन सम्बन्धी तथा अचेतन सम्बन्धी, रात्रिमें किये अपराधकी सूचना, यदि कोई नगरनिवासी पुरुष, अध्यक्षको न देवे, तो उससे उसके अपराधके अनुसार दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥ और उन रक्षक पुरुषोंकी भी

रात्रिके प्रथम भाग और अन्तिम भागकी छ २ घण्टियोंको छोड़कर दोनों चार रात्रिमें बाजेका बहुत ऊँचा शब्द किया जावे । इसका तात्पर्य यह है, कि रात्रिको प्रथम छ. घड़ी व्यतीत होजानेसे लगाकर अन्तिम रात्रि की जब छ. घड़ी शेष रहजावे, तो इस बीच समयमें कोई भी आदमी सड़कोंपर न आवे जावे । इस बातकी सूचनाके लिये रातकी पहिली ०. घड़ी बीतनेपर बाजेका ऊँचा शब्द किया जावे, इसी प्रकार जब छ घड़ी रात शेष रहजावे, तब भी उस बाजेके शब्दसे ही, उस समयके बीतनेकी सूचना देदी जावे ॥ ४२ ॥ उस रात्रिघोषणाके बाद जो आदमी, रात्राके घंके पाससे गुजरता हुआ देखा जावे, उसे असमय चलनेके अपराधमें सवा (११) पण दण्ड दिया जावे, परन्तु यह रतना दण्ड निषिद्ध समयकी प्रथम और अन्तिम घड़ीके लिये ही समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो पुरुष निषिद्ध समयके मध्य घहरोंमें ही आवे जावे, उसे इसका दुगुना अर्थात् दण्ड (२२) पण दण्ड दिया जावे । ये दण्ड नगरके भीतर ही निषिद्ध समयमें चलने किरानेके हैं । जो पुरुष नगरके बाहर ऐसे समयमें आवे जावे, उसे उक्त दण्डका चौगुना अर्थात् पाच पण दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥

शङ्कनीये देशे लिङ्गं पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुञ्जीत ॥ ४५ ॥
राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥
सूतिकाचिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाग्निनिमित्तं मुद्रा-
भिक्षाग्राह्याः ॥ ४७ ॥

उक्त निषिद्ध समयमें जो पुरुष शङ्कनीय स्थानों (जहाँपर रहनेसे उनके ऊपर चोर आदिकी शङ्का कीजासके, घरके बागीचाँ आदिमें छिपे हुए, अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों) में पाये जावें, या जिनके पास इसी तरहकी शङ्का होजानेके चिन्ह विद्यमान हों, तथा जिनकी चोरी आदिका मृतान्त पहिले मालूम होचुका हो. ऐसे पुरुषोंको पकड़कर उनसे पूछा जावे, कि तुम कौन हो ? कहाँसे आवे हो ? किसके हो ? और यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? इत्यादि । इन बातोंका उत्तर मिलनेपर उसकी उचित व्यवस्था कीजावे ॥ ४५ ॥ यदि कोई इसप्रकारका मनुष्य सरकारी निवास आदिके स्थानोंमें प्रविष्ट होजावे, अथवा नगर रक्षाके लिये बनेहुए सफ़ाल या दुर्ग आदिके ऊपर चढ़जावे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥ यदि कोई पुरुष, निषिद्ध समयमें भी सूतिका (प्रसूता स्त्री), चिकित्सक, प्रेत (शव आदिके डठाने), प्रदीपयान (हाथमें प्रकाश लेकर जाने), नागरिकतूर्य (नागरिक पुरुषोंको सूचनाके लिये बाजा बजाने), प्रेक्षा (राजासे अनुमत

माटक आदि देखने), तथा अग्नि (भाग आदिके लग जाने) के कारण इधर उधर आवे जावें, तथा जिनके पास मन्त्री या 'नागरिक' आदिकी सरकारी मुहर हो, उनको न पकड़ा जावे ॥ ४७ ॥

चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेयाः प्रव्रजिता दण्डयस्त्रहस्ताश्च
मनुष्या दोपतो दण्ड्याः ॥ ४८ ॥ रक्षिणामचार्यं वारयतां वार्यं
चावारयतामक्षणाद्विगुणो दण्डः ॥ ४९ ॥

जिन रात्रियोंमें प्रत्येक पुरुषको, हरजगह घूमने फिरनेकी आज्ञा हो, ऐसी महोत्सव आदि सम्बन्धी रात्रियोंमें, जो पुरुष प्रच्छन्नवेपमें (अर्थात् झुंड आदिको ढककर), अथवा विपरीत वेपमें (स्त्री पुरुषोंके वेपमें और पुरुष स्त्रियोंके वेपमें), घूमते हुए देखे जावें; तथा जो मनुष्य सन्ध्यासीके वेपमें, अथवा हाथमें दण्ड या और कोई हथियार लियेहुए देखेजावें; उन्हें पकड़कर उनके अपराधके अनुसार उनको दण्ड दिया जावे ॥ ४८ ॥ जो नगररक्षक पुरुष, न रोकने योग्य आदमिको आने जानेसे रोकें, और रोकने योग्य आदमीको न रोकें, उनको असमय जाने वाले पुरुषोंके दण्डसे (देखो, इसी अध्यायका तेतालीसवां सूत्र) दुगना अर्थात् दार्द (२३) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४९ ॥

स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५० ॥ अदासीं
मध्यमः ॥ ५१ ॥ कृतावरौघामुत्तमः ॥ ५२ ॥ कुलस्त्रियं वधः ॥ ५३ ॥

जो पुरुष, दूसरेकी स्त्री दासीके साथ बलात्कार गमन करें, उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥ दासीसे भिन्न गणिका आदिके साथ जो बलात्कार गमन करें, उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ जो किसीके द्वारा भार्या रूपसे स्वीकार कीहुई दासी या अदासी स्त्रीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करें, उनको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥ तथा जो कुलीन स्त्रियोंके साथ इसप्रकारका वर्ताव करें, उनको प्राणदण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो
दण्डः ॥ ५४ ॥ प्रमादस्थाने च ॥ ५५ ॥

चेतन सम्बन्धी तथा अचेतन सम्बन्धी, रात्रिमें किये अपराधकी सूचना, यदि कोई नगरनिवासी पुरुष, अध्यक्षको न देवे, तो उसे उसके अपराधके अनुसार दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥ और उन रक्षक पुरुषोंको भी

उनके अपराधके अनुसार ही दण्ड दिया जावे, जों कि मद्यपान, भादि करके नगरकी रक्षा करनेमें प्रमाद करते हों ॥ ५५ ॥

नित्यमुदकस्यानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्रप्राकाररक्षाविक्षणं नष्टप्र-
स्मृतापस्तानां च रक्षणम् ॥ ५६ ॥

नागरिक अर्थात् नगरके प्रधान अधिकारीका यह कर्तव्य है, कि यह सदा उदकस्यान (नदी कूप तालाब आदि), मार्ग, भूमि (स्थल प्रदेश), छन्नपथ (सुरङ्ग आदिके मार्ग), वप्र । सफील), प्राकार (परकोटा), और रक्षा (घुंटे खाई) आदि पदार्थोंकी अच्छी तरह देख भाल करता रहे । और खोप हुप भूलेहुप तथा कहींपर स्वयं छूटे हुप भूषण, अन्य सामान, या प्राणियोंकी भी उस समय तक सुरक्षित रखे, जब तक कि उसके मालिक का ठीक र पता न लगजाय ॥ ५६ ॥

बन्धनागारे च बालवृद्धव्याधितानाथानां च जातनक्षत्रपौ-
र्णमासीषु विसर्गः ॥ ५७ ॥ पुण्यशिलाः समयानुबद्धा वा दोष-
निष्क्रयं दद्युः ॥ ५८ ॥

तथा कारागृह (जेलखाने) में बन्द हुप र बालक वृद्ध बीमार और बनावधोंको, राजाकी जन्मगांठ आदिके शुभ नक्षत्रों या पूर्णमासी पक्षों में कारागृहसे मुक्त करदिया जावे ॥ ५७ ॥ अर्थात् धर्मपूर्वक आचरण करनेवाले (अर्थात् अकस्मात् ही किसी अपराधके वश कारागारमें आएहुप) अपनी प्रतिशाभौले बंधेहुप (हम भविष्यमें फिर कभी ऐसा न करेंगे, इसप्रकारकी प्रतिशा कियेहुप), लोग अपने अपराधका निष्क्रय (बदला; अर्थात् हिरण्यके रूपमें दण्ड आदि) देकर निर्दोष होसकते हैं । फिर उनको कारा-
गृहमें छेड़नेकी आवश्यकता नहीं ॥ ५८ ॥

दिवसे पञ्चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत् ।

कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा ॥ ५९ ॥

अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने ।

पुत्रजन्मनि वा मौक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥ ६० ॥

इत्यप्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नागरिकप्राणिधिः पृथ्वीशो ऽध्यायः ॥ ३६ ॥
आदितः सप्तपञ्चाशः ॥ ५७ ॥

प्रावृत्ता कौटिलीयस्याध्यायस्य अप्यक्षप्रचारे द्वितीयमधिकरण समाप्तम् ॥ ३६ ॥

प्रतिदिन अथवा प्रति पाचवें दिन, कारागारमें भावेहुए पुरुषोंका, अपराधका निष्कय लेकर सशोधन कियाजावे । तास्य यह है कि प्रतिदिन या पांचवें दिन एसा नियम रक्खाजाव, कि उस दिन निष्कय लेकर कुठ कैदी छाँहदिये जायकरें । निष्कय तीन तरहस होसकता है—कार्य कराकर शारीरिक दण्ड दकर और हिरण्य सोन आदका सिक्का) लेकर । इन तीनोंमेंस जिस कैदीके लिय जो योग्य समझाजाव, या जिसको वह आसानीसे भुगता सके उसी निष्कयके द्वारा उसका छुटकारा होसकता है ॥ ५९ ॥ किसी नए देशके जीत लेनेपर, युवराजका अभिषेक होनेपर अथवा पुत्रका जन्म होनेपर कैदियोंको छोटा जाता है ॥ ६० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण समाप्त ।



कौटलीय अर्थशास्त्र

द्वितीय भाग ।



तृतीय-अधिकरण ।

धर्मस्थायी ।

प्रथमं अध्यायं ।

७७—५५ प्रकरण ।

व्यवहार की स्थापना और विवाद का लेखन ।

धर्मस्थास्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदमंधिमंग्रहद्रोणमुखस्थानी-
येषु व्यावहारिकानर्थान्कुर्युः ॥ १ ॥ तिरोहितान्तरगारनक्त्वारण्यो-
पध्युपह्वरकृतांश्च व्यवहारान्प्रतिषेधयेयुः ॥ २ ॥

जनपद सन्धि=सीमाप्रान्त, (जहा पर दो राजशा को अध्या गाया वर सीमा मिलती हो), सग्रहण (दस गावों का प्रधानभूत केन्द्रस्थान), द्वाण सुम् (चार सौ गावों का प्रधानभूत स्थान), ओर स्थानाय (आठ सौ गावों का प्रधानभूत), न तान तान धर्मस्थ (न्यायाध्याश=जज) साथ २ रहते हुए, व्यवहार (इकरारनामा, शर्त आदि) सम्पन्को कार्यों का प्रपन्व करे ॥ १ ॥ छिपा कर, घर के अन्दर, रात्रि में, जङ्गल में, छल कपट पूर्वक तथा गृहान्त में किये गये व्यवहारों को राजकीय नियम के विरुद्ध समझा जाये ॥ २ ॥

कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहमदण्डः ॥ ३ ॥ श्रोतृणामेकैकं
प्रत्यर्धदण्डाः ॥ ४ ॥ श्रेष्ठयानां तु द्रव्यव्यपनयः ॥ ५ ॥

इस प्रकार के व्यवहार करने वगुने वाला को प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ सुनने वालों (सुन कर साक्षी देने वालों) में से प्रत्येक को आधा दण्ड ॥ ४ ॥ और धर्तृयो (थप्पा करने वालों) को द्रव्य दण्ड (जुर्माना आदि) दिया जावे ॥ ५ ॥

परोक्षेणाधिकर्णग्रहणमवक्तव्यकरा वा तिरोहिताः सिद्धयेयुः
॥ ६ ॥ दागनिशेषोपनिधिनिगह्युक्ताः स्त्रीणामनिष्कामिनीनां

स्त्री, दास, पृथज् मंत्र, रसज्ञा, हुआ आदमी, नावालिग, अतिवृद्ध, लोक में निन्दित, संन्यासी, लंगड़े, सखे आदि तथा यीमार इनके द्वारा किये गये व्यवहार भी जायज न समझे जायें, उन व्यवहारों के अतिरिक्त कि जो राजा की ओर से इनकी इच्छा पर छोड़ दिये गये हैं ॥ १३ ॥

तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन मत्तेनोन्मत्तेनापगृहीतेन वा कृता व्यव-
हारां न सिद्धयेयुः ॥ १४ ॥ कर्तृकारयितृश्रोतृणां पृथगर्थोक्ता
दण्डाः ॥ १५ ॥

क्रोधी, दुःखी, मत्त, उन्मत्त (उन्माद रोग से रोगी) अपगृहीत (पागल, जन्नी अथवा भयराधी) इनके द्वारा किये गये वे व्यवहार भी जिनको राजा ने जनता की इच्छा पर छोड़ दिया है, जायज नहीं समझे जा सकते ॥ १४ ॥ करमे, कराने तथा सुनने वालों के लिये पृथक् २ पूर्वोक्त दण्ड समझने चाहिये ॥ १५ ॥

स्ये स्ये तु वर्गे देशे काले च स्वकरणकृताः संपूर्णचाराः
शुद्धदेशा दृष्टरूपलक्षणप्रमाणगुणाः सर्वव्यवहाराः सिद्धयेयुः ॥ १६ ॥
पथिमं त्वेषां करणमादेशाधिर्जं श्रद्धेयम् ॥ १७ ॥ इति व्यव-
हारस्थापना ॥ १८ ॥

अपनी २ जात में उचित देश वा काल में अपनी प्रकृति के अनुसार किये गये, दोष रहित संपूर्ण व्यवहार नियमानुकूल समझे जायें । यशर्तें कि उनकी सब को सूचना दे दी गई हो, और उनके रूप, लक्षण, प्रमाण तथा गुण सब अच्छी तरह देख लिये गये हों ॥ १६ ॥ अन्ततः यलाकार किये गये व्यवहारों को छोड़ कर इनके सब ही व्यवहारों को ठीक माना जाय ॥ १७ ॥ व्यवहार की स्थापना यहाँ तक समाप्त हुई ॥ १८ ॥

मंत्रत्सरमृतं मार्गं पक्षं दिवसं करणमधिकरणमूर्णं वेदका-
वेदकयोः कृतसमर्थाविस्थयोर्देशग्रामजातिगोत्रनामकर्माणि त्वा-
भिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्याश्रिवेशयेत् ॥ १९ ॥
निविष्टांश्चावेक्षेत ॥ २० ॥

अपने २ पक्ष को समर्थन करने के लिये उपाहित हुए २ आभिषेका और आभियुक्त के देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम और काम को लिख कर, ऋण के देने लेने वा चुकाने का साल, ऋतु, महीना, पक्ष, दिन, स्थान और साक्षी आदि को लिखे, तदनन्तर वार्दी और प्रतिवादी के प्रश्नों को अर्थों-

नुसार क्रम में लिखा जाय ॥ १० ॥ फिर उनको अच्छी तरह विचार पूर्वक लेते ॥ २० ॥

निम्नं पाठमुत्सृज्यान्यं पादं मंक्रामति ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तं पश्चिमेनार्धेन नाभिसंधत्ते ॥ २२ ॥ परवाक्यमनामिग्राह्यमभि-
ग्राह्यावतिष्ठते ॥ २३ ॥ प्रतिज्ञाय देशं निर्दिशेत्सुक्ते न निर्दिशति ॥ २४ ॥ हीनदेशमदेशं वा निर्दिशति ॥ २५ ॥ निर्दिष्टोद्देशादन्यं देशमुपस्थापयति ॥ २६ ॥ उपस्थिते देशे ऽर्थवचनं नैवमित्य-
पव्ययते ॥ २७ ॥ साक्षिभिरनुष्ठृतं नेच्छति ॥ २८ ॥ अमंभाष्ये
देशे साक्षिभिर्मिथः संभाषते ॥ २९ ॥ इति परोक्तहेतवः ॥ ३० ॥

जो व्यक्ति प्रकरण में आये हुए बात चीत के मिलाने को छोड़ कर दूसरी ओर जाने लगा है ॥ २१ ॥ जिसकी बातों में पूर्वापर सम्बन्ध कुछ नहीं रहता ॥ २२ ॥ दूसरे के अनभिमत वचन को मानकर उस पर इट जाता है ॥ २३ ॥ प्रण लेने आदि के स्थान को बतलाने की प्रतिज्ञा करके, पूछने पर फिर नहीं बतलाता ॥ २४ ॥ किसी मामूली स्थान का नाम ले देता है, या नहीं लेता ॥ २५ ॥ अथवा उसके बजाय किसी अन्य देश का नाम ले देता है ॥ २६ ॥ स्थान ठीक बतलाने पर प्रण लेने की बात में सुकर जाता है ॥ २७ ॥ साक्षिप्रा से कहीं गई बात को नहीं चाहता ॥ २८ ॥ और अनुचित स्थान में साक्षिप्रा के साथ मिल कर बात चीत करता है ॥ २९ ॥ यह पराजय को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् अपने पक्ष का समर्थन न कर सकने के कारण, ये सब पराजय के हेतु हैं ॥ ३० ॥

परोक्तदण्डः पञ्चव धः ॥ ३१ ॥ स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः ॥ ३२ ॥ पुरुषभृतिरष्टाङ्गः ॥ ३३ ॥ पथि भक्तमर्थविशेषतः ॥ ३४ ॥ तदुभयं नियम्यो दद्यात् ॥ ३५ ॥

परोक्त (पराजित) अपराधी को पञ्चबन्ध (दैव धन का पाचवा हिस्सा) दण्ड दिया जाये ॥ ३१ ॥ तथा स्वयंवादि (जो अपने आप ही अपनी बात को बिना साक्षी के बार २ ठीक कहता घला जाय) अपराधी को दशबन्ध (दैव धन का दसवा हिस्सा) दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥ कर्म चारियों का धेतन आठवा हिस्सा ॥ ३३ ॥ और रास्ते में रोजाना स्वर्थ से उगादह पैसे देकर किंसे गण भोजन का स्वर्थ ॥ ३४ ॥ इन दोनों तरह के त्यों को अपराधी भंग करे ॥ ३५ ॥

अभियुक्तो न प्रत्यभियुञ्जीत ॥ ३६ ॥ अन्वत्र कलहसा-
हमसार्थसमवायेभ्यः ॥ ३७ ॥ न चाभियुक्ते ऽभियोगो ऽस्ति ॥ ३८ ॥

पण्ड-पौत्रदारी, डाका, शोपारियों तथा कम्पनियों के प्रगड़ों को छोड़ कर अभियुक्त अन्य किसी धान को लेकर अभियोक्ता पर उलटा मुकदमा नहीं चला सकता ॥ ३६—३७ ॥ अभियुक्त पर भी उम ही धान को लेकर दूसरी बार मुकदमा नहीं चलाया जा सकता ॥ ३८ ॥

अभियोक्ता चेतप्रत्युक्तस्तदहरेव न प्रतिभूयात्परोक्तः स्यात्
॥ ३९ ॥ कृतकार्याविनिश्चयो ह्यभियोक्ता नाभियुक्तः ॥ ४० ॥
तस्याप्रतिभुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति ॥ ४१ ॥

अभियोक्ता, यदि किसी बात का जवाब तलब किये जाने पर, उस ही दिन उत्तर न दे देवे तो वह पराजित समझा जाय ॥ ३९ ॥ क्योंकि अभियोक्ता अपने प्रत्येक कार्य का पहिले ही निश्चय कर के श्राय श्रायर बनाता है, परन्तु अभियुक्त ऐसा नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ इसलिए यदि वह (अभियुक्त) फौरन जवाब न दे सके तो उसको तीन रात से लगा कर सात रात तक भी मोहलत दी जाये ॥ ४१ ॥

अत ऊर्ध्वं त्रिपणावराध्यं द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥
त्रिपक्षादूर्ध्वमप्रतिभुवतः परोक्तदण्डं कृत्वा यान्यस्य द्रव्याणि
स्युस्ततोऽभियोक्तारं प्रतिपादयेदन्यत्र प्रत्युपकरणेभ्यः ॥ ४३ ॥

हमके बाद भी उत्तर न मिलने पर, तीन पण से लगा कर चारह पण तक दण्ड दिया जाये ॥ ४२ ॥ देढ़ महीने तक भी उत्तर न देने पर, अभियुक्त को पराजित दण्ड (पञ्चदश रूप दण्ड) दिया जाय, और जिसकी इस्ती मशकति हो उसमें से श्याथानुसार भाग अभियोक्ता को दे दिया जाये, यदि फण शूक्ता होने में कुछ कमी रह जाय तो भी अभियुक्त के जीवन निर्वाह के लिए अत्यावश्यक उपकरण (अन्न, पस्त्र, पात्र आदिनामान) अभियोक्ता को नहीं दिये जा सकते ॥ ४३ ॥

तदेव निष्पततो ऽभियुक्तस्य कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभियोक्तु-
निष्पातसमकालः परोक्तभावः ॥ ४५ ॥

अभियोक्ता के अपराधी सिद्ध होने पर ये ही अधिकार अभियुक्त को दिये जाय ॥ ४४ ॥ परन्तु अभियुक्त के समान, अभियोक्ता को मोहलत नहीं मिल सकती । उसको फौरन ही परोक्त दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥

प्रेतस्य व्यसनिनो वा साक्षिवचनमसारमभियोक्तारं दण्ड-
यित्वा कर्म कारयेत् ॥ ४६ ॥ अधिवासकामं प्रवेशयेत् ॥ ४७ ॥
रक्षोन्नरक्षितं वा कर्मणा प्रतिपादयेत् ॥ ४८ ॥ अन्यत्र ब्राह्मणा-
दिति ॥ ४९ ॥

अभियुक्त के भर जाने या आपद्ग्रस्त हो जाने पर, अपने पक्ष को समर्थन न करने वाले अभियोक्ता को, (अभियुक्त के) माक्षियों के कहने के अनुसार दण्ड देकर अदालत उममे उचित कार्य कराये ॥ ४६ ॥ और नियमित समय तक अपने अधिकार में रखे ॥ ४७ ॥ अथवा उममे राक्षमों के विमों को दान करने वाले यज्ञादिकों को कराये ॥ ४८ ॥ यदि अभियोक्ता ब्राह्मण हो तो उससे यह कार्य न कराये ॥ ४९ ॥

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात् ।

नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्तकः ॥ ५० ॥

चारों वर्णों, चारों आश्रमों, लोकाचार, तथा नष्ट होते हुए सब धर्मों का रक्षक होने से राजा धर्म का प्रवर्तक समझा जाता है ॥ ५० ॥

धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।

विवादार्थव्यतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः ॥ ५१ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक होने से राष्ट्र के चार पैर समझे जाते हैं, इन्हीं पर राष्ट्र का निर्भर है। इनमें से सबसे अगला पिछला का बाधक है ॥ ५१ ॥

तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिणु ।

चरित्रं संप्रहे पुंसां राजामाज्ञा तु शासनम् ॥ ५२ ॥

उनमें से धर्म सत्य में, व्यवहार माक्षियों में, चरित्र पुरखों (दशप्रामी आदि में रहने वाले) की जीवन घटनाओं में, और राजाज्ञा राजकीय शासन में स्थित रहने है ॥ ५२ ॥

राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः ।

अरक्षितुर्वा क्षेप्तुर्वा भिख्यादण्डमतो ऽन्यथा ॥ ५३ ॥

धर्म पूर्ण प्रजा की रक्षा करने वाले राजा का अपना धर्म स्वर्ग प्राप्ति का साधन होता है। इसके विपरीत प्रजा की रक्षा न करने वाले तथा अनुचित पीड़ा पहुंचाने वाले राजा को कभी सुख नहीं होता ॥ ५३ ॥

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति ।

राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः ॥ ५४ ॥

पुत्र और शत्रु को उनके अपराध के अनुसार, राजा के द्वारा पुरस्कार दिया हुआ, केवल दण्ड ही इस लोक और परलोक की रक्षा करता है ॥ ५४ ॥

अनुशासनाद्धि धर्मेण व्यवहारेण संस्थया ।

न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्तां महीं जयेत् ॥ ५५ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा प्रायपूर्वक शासन करता हुआ राजा मयूमे पृथ्वी को जीते ॥ ५५ ॥

संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम् ।

यस्मिन्नर्थे विरुध्येत धर्मणार्थं विनिर्णयेत् ॥ ५६ ॥

चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र के साथ जिस विषय में विशेषता हो, वहाँ धर्मशास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिये । अर्थात् ऐसे अवसर पर उस ही के द्वारा अर्थ का निश्चय करे ॥ ५६ ॥

शास्त्रं विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित् ।

न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ॥ ५७ ॥

परन्तु यदि कहीं धर्मशास्त्र के धर्मानुकूल राजकीय शासन के साथ विरोध हो, तो वहाँ राजकीय शासन को ही प्रमाण मानना चाहिये । क्योंकि ऐसा करने से (धर्मशास्त्र का) पाठ ही नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

दृष्टदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः ।

अनुयोगार्जवं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः ॥ ५८ ॥

सुकरमे में प्रायः वादी प्रतिवादी दोनों ही अपने २ पक्ष को सच्चा कहते हैं, परन्तु उनमें से सच्चा एक ही होता है । ऐसी अवस्था में दोनों पक्षों को ठीक २ निर्णय करने वाले निम्न-लिखित हेतु हो सकते हैं—मद्य से प्रथम दृष्ट दोष, अर्थात् जिसके अपराध को देख लिया गया हो, (२) जो स्वयं अपने अपराध को स्वीकार कर ले, (३) सरलता पूर्वक निरह, (४) हेतु (कारणों का उपस्थित कर देना), (५) शपथ-कसम दिखाना, वे पाँचों यथावश्यक अर्थ को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ ५८ ॥

पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणे ।

चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृताये ऽधिकरणे विवाहपदनिबन्ध, प्रथमो ऽध्याय ॥ १ ॥

आदिता ऽष्टपञ्चरा ॥ ५८ ॥

वादा प्रतिवादियों के परस्पर विरुद्ध कथन का यदि उपयुक्त हेतुओं से निर्णय न हो सके तो साक्षियों के ओर खुफिया पुलिस के द्वारा इमरा अनुसंधान कर अपराधा का निर्णय करे ॥ ५९ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में पहिला अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अध्याय ।

विवाह धर्म, स्त्रीधन और आश्विवेदनिक ।

५९ प्रकरण ।

विवाह ।

विवाहपूर्वो व्यवहारः ॥ १ ॥ कन्यादानं . कन्यामलंकृत्य
ब्राह्मो विवाहः ॥ २ ॥ महधर्मचर्या प्राजापत्यः ॥ ३ ॥ गोमि-
थुनादानादार्यः ॥ ४ ॥

सांसारिक व्यवहार विवाह होने पर ही प्रारम्भ होते हैं ॥ १ ॥ कन्या को अच्छी तरह मजा कर उसे दे देना (विवाह कर देना) ब्राह्म विवाह कहा जाता है ॥ २ ॥ कन्या और घर का परस्पर यह नियम कराकर, कि हम दोनों मिल कर धर्म का आचरण करेंगे, विवाह कर देना प्राजापत्य विवाह कहा जाता है ॥ ३ ॥ घर से धर्म पूरेक (अथवा कन्या के लिए) गऊ का जोड़ा लेकर कन्या देना थापे विवाह होता है ॥ ४ ॥

अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानाद्वैवः ॥ ५ ॥ मिथःसमवायाद्धान्धर्वः
॥ ६ ॥ शुल्कादानादासुरः ॥ ७ ॥ प्रसह्यादानाद्राक्षसः ॥ ८ ॥
सुप्तमत्तादानात्पशाचः ॥ ९ ॥

वेदि के समीप बैठ कर ऋत्विज को कन्या दे देने में दैव विवाह होता है ॥ ५ ॥ गान्धर्व विवाह वह है नियम कन्या और घर आपस में ही (माता पिता आदि की मरणा के विना ही) मिल कर विवाह कर ले ॥ ६ ॥

धन देकर (कन्या के पिता आदि को) किया हुआ विवाह आसुर कहाता है ॥ ७ ॥ बलात्कार कन्याको लेलेना राक्षस विवाह होता है ॥ ८ ॥ सोनी हुई कन्या को उठा लेजाने से पैशाच विवाह होता है ॥ ९ ॥

पितृप्रमाणाश्चत्वारः पूर्वे धर्म्याः ॥ १० ॥ मातापितृप्रमाणाः शेषाः ॥ ११ ॥ तौ हि शुल्कहरो द्रुहितुः ॥ १२ ॥

पहिले चार विवाह धर्मानुबल हैं, वे पिता की सलाह से किये जाते हैं ॥ १० ॥ बाकी चार विवाह माता और पिता दोनों की सलाह से होते हैं ॥ ११ ॥ क्योंकि वे दोनों ही लड़की को देकर बदले में धन (शुल्क) लेते हैं ॥ १२ ॥

अन्यतराभावे अन्यतरो वा ॥ १३ ॥ अद्वितीयं शुल्कं स्त्री हरेत् ॥ १४ ॥ सर्वेषां प्रीत्यारोपणमप्रतिपिद्रुम् ॥ १५ ॥

यदि उन दोनों (माता पिता) में स कोई एक न हो, तो दूसरा (माता या पिता) उस धन को ले सकता है ॥ १३ ॥ यदि दूसरा भी न हो, तो उस धन को अधिकारिणा वह स्त्री (जिसके साथ विवाह किया गया है) ही लेवे ॥ १४ ॥ सब विवाहों में स्त्री पुरुष की परस्पर प्रीति का होना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५ ॥

स्त्री धन ।

वृत्तिरावर्धय वा स्त्रीधनम् ॥ १६ ॥ परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः ॥ १७ ॥ आवध्यानियमः ॥ १८ ॥

स्त्री धन दो प्रकार का होता है—एक वृत्ति, दूसरा आवधय (गहना आभूषण आदि) ॥ १६ ॥ वृत्ति वह स्त्रीधन कहाता है जो स्त्री के नाम से कहीं (बैंक आदि में) जमा किया हुआ हो, उसकी तादाद कम से कम दो हजार होनी आवश्यक है ॥ १७ ॥ आवधय स्त्रीधन के लिए तादाद का कोई नियम नहीं है ॥ १८ ॥

तदात्मपुत्रस्तुपाभर्मणि प्रवासाप्रतिविधाने च भार्याया भोक्तुमदोषः ॥ १९ ॥ प्रतिरोधकव्याधिदुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः ॥ २० ॥

पति के विदेश चले जाने पर, पीछे कोई प्रबन्ध न होने पर, स्त्री अपने, अपने पुत्र, और पुत्रवधू के जीवन निर्वाह के लिए उस धन (स्त्रीधन) में से धर्म कर सकती है ॥ १९ ॥ परिवार में आई हुई किसी विपत्ति या

है, पहिले नहीं ॥ २७ ॥ दूसरे विवाह का समय शीघ्र मवास प्रकरण में खोल कर लिखा जायगा ॥ २८ ॥

श्वशुरप्रातिलोभ्येन वा निविष्टा श्वशुरपातिदत्तं जीयेत् ॥ २९ ॥
ज्ञातिहस्तादभिमृष्टाया ज्ञातयो यथागृहीतं दद्युः ॥ ३० ॥ न्यायो-
पगतायाः प्रतिपत्ता स्त्रीधनं गोपायेत् ॥ ३१ ॥

यदि वह स्त्री अपने श्वशुर की इच्छा के प्रतिकूल दूसरा विवाह करना चाहती है, तो श्वशुर और मृत पति का दिया हुआ धन वह नहीं पा सकती ॥ २९ ॥ यदि बन्धु बान्धवों के हाथ से उसके विवाह का प्रबन्ध किया जावे, तो वे (बन्धु बान्धव) उसके लिए हुए धन को उसी तरह वापस कर दे ॥ ३० ॥ क्योंकि न्याय पूर्वक रक्षार्थ प्राप्त हुई स्त्री की रक्षा करने वाला पुत्र उसका धन की भी रक्षा करे ॥ ३१ ॥

पतिदायं विन्दमाना जीयेत् ॥ ३२ ॥ धर्मकामा भुञ्जीत् ॥ ३३ ॥

दूसरे पति की कामना करने वाली स्त्री अपने पूर्व पति के दाय भाग को नहीं पा सकती ॥ ३२ ॥ यदि वह धर्म पूर्वक जीवन निर्वाह करने की इच्छा रखती है, तो उस पति के दाय भाग को भोग सकती है ॥ ३३ ॥

पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत् ॥ ३४ ॥ तत्तु स्त्रीधनं
पुत्रा हरेद्युः ॥ ३५ ॥ पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फाती-
कुर्यात् ॥ ३६ ॥

जिस स्त्री के पुत्र हैं, वह यदि दूसरा पति करना चाहती है, तो स्त्रीधन को नहीं पा सकती ॥ ३४ ॥ उस स्त्रीधन के अधिकारी उसके पुत्र ही होते ॥ ३५ ॥ यदि कोई स्त्री दूसरा विवाह इसलिए करना चाहती है, कि वह इससे अपने पुत्रों का भरण पोषण कर सकेगी, तो उसको यह आवश्यक है कि अपनी सम्पत्ति उन लडकों के लिये नामजद कर दे ॥ ३६ ॥

बहुभुरूपमजानतं पुत्राणां यथाप्रितृदत्तं स्त्रीधनसंस्थापयेत्
॥ ३७ ॥ कामकारणीयमपि स्त्रीधनं विन्दमाना पुत्रसंस्थं
कुर्यात् ॥ ३८ ॥

यदि किसी स्त्री के लडके बहुत से आदमियों से उत्पन्न हुए हैं, तो उसको उचित है कि वह अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था, जैसे २ उन लडकों के पिताओं ने दिया है, उस ही के अनुसार कर देवे ॥ ३७ ॥ अपनी इच्छा-नुसार रखे करने के लिए प्राप्त हुए धन को भी, दूसरा विवाह करने वाली स्त्री, अपने पुत्रों के अधीन कर देवे ॥ ३८ ॥

अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनमायुःक्षया-
द्भुञ्जीत ॥ ३९ ॥ आयदर्थं हि स्त्रीधनम् ॥ ४० ॥ ऊर्ध्वं दायार्दं
गच्छेत् ॥ ४१ ॥

जिस स्त्री के पुत्र नहीं है, वह अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती
हुई, गुरु (धर्म शिक्षक पुरोहित आदि) के समीप रह कर जीवन पर्यन्त
स्त्रीधन का उपभोग कर सकती है ॥ ३९ ॥ क्योंकि स्त्रीधन आपत्ति में उपयोग
करने के लिए ही होता है ॥ ४० ॥ उसके मरने के बाद यथा हुआ धन
दायभाग के अधिकारियों को मिल जाये ॥ ४१ ॥

जीवति भर्तारि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेरन्
॥ ४२ ॥ अपुत्राया दुहितरः ॥ ४३ ॥

पति के जीवित रहते हुए यदि कोई स्त्री मर जाय, तो उसके धन
को लड़के और लड़कियां आपस में बांट लेंगे ॥ ४२ ॥ यदि उसके कोई
लड़का न हो तो लड़कियां ही उस धन को ले सकती हैं ॥ ४३ ॥

तदभावे भर्ता ॥ ४४ ॥ शुल्कमन्वाधेयमन्यद्वा वन्धुभिर्दत्तं
वान्धवा हरेयुः ॥ ४५ ॥ इति स्त्रीधनकल्पः ॥ ४६ ॥

लड़कियों के भी न होने पर पति उस धन का अधिकारी होवे ॥ ४४ ॥
और उस स्त्री के वन्धु वान्धवों ने जो धन उसको विवाह में शुल्क रूप में
या इससे अतिरिक्त दिया हो, वे उसे आपस बाँट सकते हैं ॥ ४५ ॥ यहाँ
तक स्त्रीधन विषयक विचार समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकक्षित ॥ ४७ ॥
दश निन्दुं द्वादश कन्याप्रसविनीम् ॥ ४८ ॥ ततः पुत्रार्थी
द्वितीयां विन्देत् ॥ ४९ ॥

यदि किसी स्त्री के यथा पैदा न हो या उसके अन्दर यथा पैदा
करने की शक्ति ही न हो, तो उसका पति आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे ॥ ४७ ॥
यदि कोई भरा हुआ यथा पैदा हो तो दश वर्ष, और यदि कन्या ही उत्पन्न
हो तो बारह वर्ष तक इन्तजार करे ॥ ४८ ॥ इसके बाद पुत्र की कामना
करने वाला पुरुष दूसरा विवाह कर लेवे ॥ ४९ ॥

तस्यातिक्रमे शुल्कं स्त्रीधनमर्थं चाधिवेदानिकं दद्यात् ॥ ५० ॥
चतुर्विंशतिपणपरं च दण्डम् ॥ ५१ ॥

जो पुरष इन उपर्युक्त नियम का-उल्लङ्घन करे (अर्थात् निहिते भवधि से पहिले ही विवाह करना चाहे) तो उसको आवश्यक है कि वह शुल्क, (विवाह मे प्राप्त हुआ धन दहेज आदि) स्त्रीधन तथा इसके अतिरिक्त और धन अपनी पहिली स्त्री को देवे ॥ ५० ॥ तथा २४ पण तक जुर्माना सरकार को देवे ॥ ५१ ॥

शुल्कस्त्रीधनमशुल्कस्त्रीधनायांतत्प्रमाणमाधिवेदनिकमनुरूपान्
च घृत्तिं दत्त्वा बह्वीरपि विन्देत ॥५२॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥५३॥

इस प्रकार शुल्क और स्त्रीधन देकर, तथा जिस स्त्री को शुल्क नहीं मिला, और उसके पास स्त्रीधन भी नहीं है, उसको उसके (शुल्क और स्त्रीधन के) बराबर ही और धन देकर, तथा उसके जीवन निर्वाह के लिये पर्याप्त सम्पत्ति देकर कोई भी पुरष अनेक स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है ॥ ५२ ॥ क्योंकि स्त्रियों की मृष्टि पुत्रोत्पत्ति के लिये ही है ॥ ५३ ॥

तीर्थसमवाये चासां यथाविवाहं पूर्वोढां जीवत्पुत्रां वा पूर्व
गच्छेत् ॥ ५४ ॥ तीर्थगृहनागमने पणवतिर्दण्डः ॥ ५५ ॥

यदि इन स्त्रियों वा ऋतुकारण एक ही साथ आ जावे, तो पुरष सबसे पहिले प्रथम विवाहित स्त्री के पास जावे, अथवा उसके पास जावे जिसका कोई पहिला पुत्र जीता हो ॥ ५४ ॥ यदि कोई पुरुष ऋतुकारण को छिपाता है, या जाने में आना कानी करता है (स्त्री ससर्ग की इच्छा न होने के कारण) तो उसको राज्य की ओर से १६ पण जुर्माने का नण्ड दिया जावे ॥ ५५ ॥

पुत्रवर्ती धर्मकामां वन्ध्यां निन्दुं नीरजस्कां वा नाकामा-
मुपेयात् ॥ ५६ ॥ न चाकामः पुरुषः कुष्ठिनीमुन्मत्तां वा गच्छेत्
॥ ५७ ॥ स्त्री तु पुत्रार्थमेवंभूते वोपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

पुत्र वाली, पवित्र जीधन वाली, वन्ध्या, जिसके मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ हो, और जिसको मासिक धर्म होना बन्द हो गया हो, ऐसी स्त्री के साथ पुरुष तब तक ससर्ग न करे, जब तक वह स्त्री स्वयं पुरुष ससर्ग की कामना न करे ॥ ५६ ॥ पुरष भी कामना न होते हुए कोई अथवा उन्मत्त स्त्री से ससर्ग न करे ॥ ५७ ॥ परन्तु स्त्री पुत्र की इच्छा रखती हुई इस प्रकार के फोदी अथवा उन्मत्त पुरुष के साथ ससर्ग कर सकती है ॥ ५८ ॥

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिस्त्रिणी ।

प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीनो ऽपि वा पतिः ॥५९॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवाहसयुक्ते विवाहधर्म

स्त्रीधनकल्प आधिचेदनिक द्वितीयो ऽध्याय ॥ २ ॥

आदित एकोनषष्टितमो ऽध्याय ॥ ५९ ॥ ।

नीच, प्रवासी (परदेश भ गण दुष्ट), राजद्रोही, धातक, जाति तथा धर्म से पतित, और नपुंसक पति को स्त्री छोड सकती है ॥ ५९ ॥

धर्मस्थीय तीसरे अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अध्याय ।

५९ प्रकरण ।

विवाहित के विषय में—शुश्रूषा, भर्म, पारुष्य,

द्वेष, अतिचार और उपकार व्यवहार

प्रतिषेध ।

द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति ॥ १ ॥ षोडशवर्षः पुमान् ॥ २ ॥ अत ऊर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः ॥ ३ ॥

बारह वर्ष की लड़की कानून के अन्दर आ जाती है ॥ १ ॥ और १६ वर्ष का लड़का ॥ २ ॥ इससे ऊपर होने पर, यदि वे किसी राजकीय नियम का उल्लङ्घन (अशुश्रूषा) करते हैं, तो स्त्री को बारह पण, और पुरुष को उससे द्विगुण दण्ड दिया जाये ॥ ३ ॥

भर्मण्यायामनिर्दिष्टकालायां ग्रासाच्छादनं वाधिकं यथा-पुरुषपरिवापं साविशेषं दद्यात् ॥ ४ ॥ निर्दिष्टकालायां तदेव मंख्याय बन्धं च दद्यात् ॥ ५ ॥ शुल्कस्त्रीधनाधिचेदनिकानामनादाने च ॥ ६ ॥

यदि किसी स्त्री व भरण पोषण का सीमाकाल नियत नहीं है, तो पति को आवश्यक है कि यह आवश्यकतानुसार उसके भोजन वस्त्र वा उचित प्रवन्ध करे । अथवा अपनी आमदनी या सम्पत्ति के अनुसार और

कुछ अधिक भी देये ॥ ४ ॥ परन्तु जिस स्त्री के भरण पोषण का समय नियत है उसको, और जिसने शुल्क, स्त्रीधन, तथा आधिबेदगिक (अतिरिक्त) धन लेना स्वीकार नहीं किया, उसको घन्था हुई रकम अपनी आमदनी के अनुसार पति के देने ॥ ५-६ ॥

श्वशुरकुलप्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः पतिः
॥ ७ ॥ इति भर्म ॥ ८ ॥

यदि स्त्री अपने पति की सुसराल (अर्थात् अपने पितृ-गृह=वीहर=मायके) में रहती है, अथवा विलुक्त अलहदा स्वतन्त्र होकर रहती है, तो उसके भरण पोषण के लिए पति को बाधित नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥ यहाँ तक स्त्री के भरण पोषण (भर्म) का विचार समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नम्रे विनम्रे न्यङ्गेऽपितृकेऽमातृके इत्यनिर्देशेन विनय-
ग्राहणम् ॥ ९ ॥ वेषुदलरज्जुहस्तानामन्यतमेन वा षष्ठे त्रिरा-
घातः ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे वाग्दण्डपारुष्यदण्डाभ्यामर्ध-
दण्डाः ॥ ११ ॥

पहिले नगी, अधनगी, लड़ी, लगड़ी, धापमरा, मामरी, इत्यादि शालिया देने के बिना ही विनय अर्थात् अच्छे रहन सहन का डग सिखाया जाय ॥ ९ ॥ यदि ऐसे काम न चले तो धास या ग्वप्पच, रस्पी या धप्पट से तीन बार पीठ पर आघात (चोट) करे ॥ १० ॥ फिर भा नियम का उल्लङ्घन करने पर वायवारण्य (७२ प्रकरण) और दण्डपारण्य (७३ प्रकरण) में कहे गये दण्डों में से यथोचित आधा दण्ड दिया जाये ॥ ११ ॥

तदेव स्त्रिया भर्तारि प्रसिद्धायामदोषत्यामीर्ष्याया बाल-
विहारेषु डारेष्वत्ययो यथानिर्दिष्टः ॥ १२ ॥ इति पारुष्यम् ॥ १३ ॥

यही दण्ड उस स्त्री को भी दिया जाये, जो और कोई दोष न होने पर भी ईर्ष्या से पति के साथ दुर्व्यवहार करती हो । पति के घर के दरवाजे पर या घर से बाहर किये हुए विहारों (अन्य पुरुष के साथ इशारेबाजी आदि करना, तथा अन्य प्रकार की प्रीडा करना) में होनेवाले व्यतिक्रम (अर्थात्-नियम विरहता) का दण्ड इसी प्रकरण में आगे निर्देश वर दिया गया है ॥ १२ ॥ यहाँ तक पारुष्य (कठोरता) सम्बन्धी विचार समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

भर्तारि द्विपती स्त्री सप्तार्तवान्यमण्डयमाना तदानामिव स्था-
प्याभरणं निधाय भर्तारिमन्यया मह शयानमनुशयीत ॥ १४ ॥

मिथुक्यन्वाधिज्ञातिकुलानामन्यतमे वा भर्ता द्विपत्स्त्रियमेकाम-
नुशयीत ॥ १५ ॥

अपने पति के साथ द्वेष रखती हुई जो स्त्री मात प्रत्यु (मासिक धर्म) पर्यन्त दूसरे पुरुष का कामना करती रहे, उसको चाहिए कि वह पारन सम्पूर्ण स्त्रीधन, (उसके नाम से जमा हुई ० पूजी और आभूषण) पति को देकर उसको दूसरी स्त्री के साथ सोने की अनुमति दे देवे ॥ १४ ॥ यदि पति स्त्री के साथ द्वेष रखता हो तो पति को उचित है कि वह मिथुकी (संन्यासिनी) और स्त्रीधन के निरीक्षक उसके (स्त्री के) भाई बन्धुओं के समीप अवैली रहने से न रोके । अर्थात् दम प्रकार उपर्युक्त अवसरों पर उसे बहा रहने के लिए अनुमति दे देवे ॥ १५ ॥

दुष्टलिङ्गे मैथुनापहारं सवर्णापसर्पोपगमे वा मिथ्यावादी
द्वादशपणं दद्यात् ॥ १६ ॥ अमोक्ष्या भर्तुरेकामस्य द्विपती
भार्या ॥ १७ ॥ भार्यायाश्च भर्ता ॥ १८ ॥

अन्य स्त्री के साथ मैथुन करने के चिन्ह देये जाने पर, मैथुन करके 'मैंने नहीं किया' इम प्रकार झूठ बोलने पर, अथवा अपनी किसी मर्त्या के साथ मगम करके उसका अपलाप करने पर (मुकर जाने पर) मिथ्यावादी को १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ पति की इच्छा न होने पर, उसके साथ द्वेष रखती हुई भी स्त्री, उसका पतित्याग नहीं कर सकती ॥ १७ ॥ इसी प्रकार ऐसी अवस्था में पति भी अपनी स्त्री का पतित्याग नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

परस्परं द्वेषान्मोक्षः ॥ १९ ॥ स्त्रीविप्रकाराद्वा पुरुषधन्मा-
क्षमिच्छेद्यथागृहीतमस्यै दद्यात् ॥ २० ॥ पुरुषविप्रकाराद्वा स्त्री
चेन्मोक्षमिच्छेत्तास्यै यथा गृहीतं दद्यात् ॥ २१ ॥

क्योंकि दोनों का एक दूसरे के साथ द्वेष होने से ही पतित्याग सम्भव है ॥ १९ ॥ स्त्री के किसी अपकार (पुराई) के कारण यदि पुरुष उसको छोड़ना चाहे, तो जो सम्पत्ति उसको स्त्री की ओर से प्राप्त हुई है, उसे वह स्त्री को लौटा देवे ॥ २० ॥ यदि पुरुष के किसी अपकार के कारण स्त्री उसको छोड़ना चाहती है, तो स्त्री से लिया हुआ धन उसको न दिया जावे ॥ २१ ॥

अमोक्षो धर्मविवाहानामिति ॥ २२ ॥ प्रतिपिद्धा स्त्री दर्प-
मद्यक्रीडायां त्रिपणं दण्डं दद्यात् ॥ २३ ॥ दिवा स्त्रीमेक्षाविहार-
गमने षट्पणो दण्डः ॥ २४ ॥

१२. धर्म विवाहोंमें (धर्मविवाह-पाहिले चार विवाह) परिश्रम नहीं हो सकता ॥ २२ ॥ यदि कोई स्त्री नियेध कियेजानेपर भी गर्भके साथ सप्त आदि पीवे और काम ऋद्धा करे, तो वह जुमानेके तौरपर ३ पण दण्ड देवे ॥ २३ ॥ दिग्गमे किसी स्त्रीके साथ धियेटर आदिमें जानेपर (स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने, प्रेक्षाविहार=नाट्यगृह=धियेटर हाल) ६ पण दण्ड देवे ॥ २४ ॥

पुरुषप्रेक्षाविहारगमने द्वादशपणः ॥ २५ ॥ रात्रौ द्विगुणः ॥ २६ ॥

यदि किसी पुरुष के साथ धियेटर आदि में जावे, तो १२ पण दण्ड देवे ॥ २५ ॥ यदि यही अपराध (२४ और २५ सूत्र में कहा हुआ) रात्रि में किया जावे, तो स्त्री को दुगुना दण्ड दिया जाय । (२३ वें सूत्र से 'प्रतिपिद्धा' पद की यहाँ तक अनुवृत्ति समझनी चाहिए । अतएव जो स्त्री अपने पति तथा अन्य अग्निभाषक की आज्ञा के बिना इन उपर्युक्त कार्यों को करती है, वह अपराधिनी समझी जाती है । आज्ञा लेकर करने पर कोई दोष नहीं । तथा कामोत्पादक तमाशे आदि के अलावा, अपने पदोंस में केवल मिलने मिलाने के लिए पति आदि की आज्ञा बिना भी जा सकती है ॥ २६ ॥

सुप्तमत्तप्रव्रजने भर्तुरदाने च द्वारस्य द्वादशपणः ॥ २७ ॥

रात्रौ निष्कासने द्विगुणः ॥ २८ ॥

यदि कोई स्त्री सोते हुए या उन्मत्त हुए २ (शराव आदि पीने के कारण या अन्य किसी कारण से), अपने पति को छोड़ कर घर से बाहर ज़ली जावे, अथवा पति की इच्छा के विरुद्ध घर का दरवाजा बन्द कर लेवे, तो उसको १२ पण दण्ड होना चाहिए ॥ २७ ॥ यदि कोई स्त्री अपने पति को रात्रि में घर नहीं आने देती, अर्थात् उसको घर से बाहर निकाले रखती है तो उस स्त्री को २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ २८ ॥

स्त्रीपुंसयोर्भयुनार्थेनाङ्गविचेष्टायां रहोऽश्लीलसंभाषायां चा-
चतुर्विंशतिपणः स्त्रिया दण्डः ॥ २९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३० ॥
केशर्नावीदन्तनरसाप्रलम्बनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३१ ॥ पुंसो
द्विगुणः ॥ ३२ ॥

बूढ़े स्त्री पुरुषों के परस्पर मधुन के लिए इतारबाजी करने पर, अथवा एकाम्ब में इसी विषय की बात चीत करने पर, स्त्री को २४ पण दण्ड ॥ २९ ॥ और पुरुष को इससे दुगुना अर्थात् ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥ बाल आदि कमरबन्द के पजहने पर, तथा दात आर नख के

चिन्ह करने पर स्त्री को पूर्वसाहसदण्ड ॥ ३१ ॥ और पुरुष को उसमें द्विगुण दण्ड देना चाहिए ॥ ३२ ॥

शङ्कितस्थाने संभाषायां च पणस्थाने शिफादण्डः ॥ ३३ ॥
स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरं पञ्चशिफा दद्यात् ॥ ३४ ॥
पणिकं वा प्रहारं मोक्षयेत् ॥ ३५ ॥ इत्यतिचाराः ॥ ३६ ॥

शङ्कित स्थान में यातपीत करने पर पण के यज्ञाय कोड़े आदि मार कर दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ गांव में कोई चण्डाल, अपराधी औरत का उसका एक भाग को और पाच कोड़े लगावे (तत्पर्यं यह है कि एक ही मार या एक ही स्थान पर पाच कोड़े से अधिक नहीं लगाये जा सकते) ॥ ३४ ॥ पण देने पर (उसकी सरया के अनुसार) प्रहार कम कर दिए जाय । अर्थात् एक पण देने पर एक प्रहार कम कर देवे । दो देने पर दो, हारपादि ॥ ३५ ॥ यहा तक अतिचार के विषय में कहा गया ॥ ३६ ॥

प्रतिपिद्धयोः स्त्रीपुंसयोरन्योन्योपकारे क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादश-
पणो दण्डः ॥ ३७ ॥ स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणः ॥ ३८ ॥
हिरण्यसुवर्णयोश्चतुष्पञ्चाशत्पणः स्त्रिया दण्डः ॥ ६९ ॥ पुंसो
द्विगुणः ॥ ४० ॥

यदि कोई स्त्री तथा पुरुष, रोके जाने पर भी, छोटी मोटी चीजें देकर परस्पर एक दूसरे का उपकार करें, तो उनमें स्त्री को, १२ पण, ॥ ३७ ॥ बड़ी २ चीजों के लेन देन पर २४ पण, ॥ ३८ ॥ और सोना अधया सोने का सिक्का (या साने से बनी हुई कोई चीज आभूषण आदि) लेने देने पर ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ और (इन्हीं सब उपयुक्त अपराधों में) पुरुष को स्त्री से दुगुना दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥

त एवागम्ययोरर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तथा प्रतिपिद्धपुरुषव्यव-
हारेषु च ॥ ४२ ॥ इति प्रतिषेधः ॥ ४३ ॥

यदि वे स्त्री पुरुष आपस में न मिलते हुए ही इन चीजों को लेते देते हैं, तो पूर्वोक्त दण्ड से आधा दण्ड उनको दिया जाय ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार प्रतिपिद्ध पुरुषों के व्यवहार में भी, दण्ड आदि का यही नियम समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ यहा तक उपकार और व्यवहार प्रतिषेध के विषय में कहा गया ॥ ४३ ॥

राजद्विष्टातिचाराभ्यामात्मापक्रमणेन च ॥ १ ॥

स्त्रीधनानीतशुल्कानामस्वाम्यं जायते स्त्रियाः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थाये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते शुभ्रूपाभर्तृपास्वद्वेषातिचारा

उपकारव्यवहारप्रतिषेधाश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदित पश्चित्तम ॥ ६० ॥

राजा के साथ द्वेष करने पर (यागी हो जाने पर), अपचार या दहखन करने पर, आचारामर्द होने पर, कोई भी स्त्री अपने स्त्रीधन, (२०००) २० जमा किया हुआ तथा आभूषण आदि) आनीत, (पति के दूसरी शादी करने पर, उससे निर्वाहार्थ प्राप्त हुआ धन) और शुल्क (अपने विवाह के समय पति से अथवा यन्तु यान्त्रियों से प्राप्त हुआ धन) की अधिकारिणी नहीं हो सकती ॥ ४४ ॥

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरण में तीसरी अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

५९ प्रकरण

विवाह संयुक्त में निष्पत्तन, पथ्यनुसरण

ह्रस्व प्रवास और दीर्घ प्रवास

पतिकुलाग्निष्पत्तितायाः स्त्रिया पदपणो दण्डोऽन्यत्र विप्र-
कारात् ॥ १ ॥ प्रतिपिद्वाया द्वादशपणः ॥ २ ॥ प्रतिवेशगृहाति-
गतायाः पदपणः ॥ ३ ॥ प्रातिवेशिकभिक्षुर्कर्मदेहकानामवकाश
भिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥

पति कुल से भागी हुई स्त्री को ६ पण दण्ड दिया जावे । यदि वह किसी भय के कारण भागी हो तो कोई दोष नहीं ॥ १ ॥ रोकने पर भी यदि कोई स्त्री (पति की आज्ञा के विरुद्ध) घर से चली जाय तो उसे १२ पण दण्ड देना चाहिये ॥ २ ॥ यदि पड़ोसी के ही घर में जाय, तो ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ बिना आज्ञा अपना पड़ोसी को अपने घर में स्थान देने पर, भिलाही को भोजन देने पर, ब्यापारी को किसी तरह का माल देने पर, स्त्री को १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

प्रतिपिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ परगृहातिगतायां

चतुर्विंशतिपणः ॥ ६ ॥ परमार्यावकाशदाने शृत्यो दण्डो ज्य-
त्रापद्भ्यः ॥ ७ ॥

यदि कोई स्त्री प्रतिषिद्ध व्यक्तियों के साथ यहाँ व्यवहार करे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥ यदि वह बतलाये हुए परिमित अपने समीप के घरों से बाहर अतिरिक्त स्थानों में जाती है, तो उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ किसी दूसरे पुरुष की स्त्री को, यदि उस पर कोई आपत्ति नहीं है, अपने घर में ठहरा लेने पर १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

वारणाज्ञानयोर्निर्दोषः ॥ ८ ॥ पतिविप्रकारात् पतिज्ञाति-
सुखावस्थग्रामिकान्वाधिभिक्षुकीज्ञातिकुलानामन्यतममपुरुषं गन्तु-
मदोष इत्याचार्याः ॥ ९ ॥

परन्तु उस हालत में यह अपराध न होगा, जबकि आने वाली स्त्री, उसके (गृह स्वामी के) रोकने पर भी उसकी आज्ञा के विरुद्ध, अथवा उसको न मालूम होने पर ही, घर में चली आती है ॥ ८ ॥ आचार्यों का मत है कि पति के द्वारा धिक्कारे जाने पर कोई मा स्त्री, अपने पति के सम्बन्धी, सुखी, पाव के मुखिया, अपने धन आदि के निरीक्षक, भिक्षुकी, तथा अपने सम्बन्धियों में से बिसा के, पुरुष रहित घर में जाने पर दोषी नहीं होती ॥ ९ ॥

सपुरुषं वा ज्ञातिकुलं कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुसमे-
तंदेवबोधमिति कौटल्यः ॥ १० ॥ प्रेतव्याधिव्यसनगर्भनिमि-
त्तमप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम् ॥ ११ ॥

कौटल्य का मत है कि कोई भी साध्वी स्त्री, उपयुक्त अवस्था होने पर अपने सम्बन्धिया या पारिवारिक जनों के पुरुष युक्त (जहाँ पुरुष विद्यमान हों) घरों में भी जा सकती है, क्योंकि वह अपने छलपूर्ण व्यवहार को छिपा नहीं सकती, अर्थात् उसके इस प्रकार आने के सब कारण उसके पति या सम्बन्धियों को यही सरलता से मालूम हो सकते हैं ॥ १० ॥ मृत्यु, बीमारी, आपत्ति, और गर्भ (प्रसव-वधा होना) आदि अवसरोंपर, सम्बन्धियोंके यहाँ जानेमें कोई रोक टोक नहीं ॥ ११ ॥

तन्निमित्तं चारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ तत्रापि
गृहमाना स्त्रीघनं जीयेत् ॥ १३ ॥ ज्ञातयो वा छादयन्तः शु-
क्लेशेषम् ॥ १४ ॥ इति निष्पतनम् ॥ १५ ॥

यदि कोई पुरुष, उपर्युक्त अवसरोंपर स्त्री को सम्बन्धियों के यहां जाने से रोके, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ यदि स्त्री स्वयं कोई महाना बनाकर, वहा जाने से अपने आपको छिपाके, तो उसका स्त्रीधन जप्त कर लिया जाय ॥ १३ ॥ यदि सम्बन्धी जन ऐसे अवसर की सूचना न देवें, अर्थात् लैन देग के मयसे ऐसे अवसर को छिपा लेंवें, तो उनको जुल्क शेष (विवाह के समय प्रतिज्ञात, घरकी ओरसे कन्या के सम्बन्धियों को अवशिष्ट देय धन) न दिया जावे ॥ १४ ॥ यहा तक स्त्रियों के निष्पत्तन (घर से बाहर जाने) का विचार हुआ ॥ १५ ॥

पतिकुलाभिष्पत्य ग्रामान्तरगमने द्वादशपणो दण्डः स्थाप्याभरणलोपश्च ॥ १६ ॥ गम्येन वा पुंसा सहग्रस्थाने चतुर्विंशतिपणः सर्वधर्मलोपश्चान्यत्र भर्मदानतीर्थगमनाभ्याम् ॥ १७ ॥

पति के घरसे भागकर दूसरे गांवमें जानेपर स्त्रीकी १२ पण दण्ड दिया जावे, और उसके नामसे जमा की हुई पूंजी, उर्धा आभूषण मी जप्त कर लिये जाय ॥ १६ ॥ गमन योग्य पुरुषके साथ जानेपर २४ पण दण्ड दिया जाय, और पतिके साथ होने वाले यज्ञ आदि सब धर्मोंमे उसे सदृष्ट कर दिया जाय । परन्तु यदि वह अपने घरके भरण पोषण, या अन्वय विधेमान पतिके ही समीप क्तुगमन के लिये जावे, तो उसे अपराधी न समझा जाय ॥ १७ ॥

पुंसः पूर्वः साहसदण्डस्तुल्यश्रेयसः ॥ १८ ॥ पापीयसो मध्यमः ॥ १९ ॥ बन्धुरदण्डयः ॥ २० ॥ प्रतिपेधे ऽर्धदण्डः ॥ २१ ॥

सथा इस उपर्युक्त अपराध में स्त्री के समान श्रेष्ठ जाति वाले पुरुषको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ आर नीच जाति वाले पुरुषको मध्यम साहस दण्ड ॥ १९ ॥ उपर्युक्त अवस्था में बन्धु दण्डनीय नहीं होता ॥ २० ॥ निषेध किये जानेपर यदि वह इस व्यवहार की करे, तो उसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥

पथि व्यन्तरे गूढदेशाभिगमने मैथुनार्थेन शङ्कितप्रतिपिद्धाभ्यां वा पथ्यनुसारेण संग्रहणं त्रिधात् ॥ २२ ॥ तालीपंचार चौरणमन्त्स्येबन्धकलुब्धकगोपालकशौण्डिकानामन्येषां च प्रसृष्टस्त्रीकार्णां पथ्यनुसरणमदोषः ॥ २३ ॥

मार्ग, जंगल अथवा गुह्यस्थान में मैथुन के लिये जाती हुई, अथवा किसी सन्देश युक्त (जिसपर कुछ सन्देश हो) या प्रतिपिद्ध (जिसके साथ जाते

को मना किया गया हो) व्यक्ति के साथ जाती हुई स्त्री को भागने के अपराध में गिरफ्तार किया जावे, और उन्हीं के अनुसार दण्ड की व्यवस्था की जावे ॥ २२ ॥ गाने बजाने वाले कथक, भाट, मढियारे, व्याघ (शिकारी छोटे र पक्षी या पशु मारकर या पकड़कर उनसे जीविका करनेवाले), ग्वाले और कलवार तथा इसी प्रकार के अन्य पुरुष जोकि अपने साथ ही साथ अपनी स्त्रियों को रखते हैं, इनके साथ जाने में स्त्री को कोई दोष नहीं ॥ २३ ॥

प्रतिपिद्धे वा नयतः पुंसः स्त्रियो वा गच्छन्त्यास्त एवार्ध-
दण्डाः ॥ २४ ॥ इति पथ्यनुसरणम् ॥ २५ ॥

निषेध किये जानेपर यदि कोई पुरुष स्त्रीको ले जावे, या स्त्री स्वयं किसी पुरुषके साथ जावे, तो उनको नियमानुसार आधा दण्ड दिया जावे ॥ २४ ॥ यहां तक पथ्यनुसरण (रास्ते में स्त्री का किसीके साथ जाना) के सम्बन्धमें विचार किया गया ॥ २५ ॥

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरो-
त्तरं कालमाकांक्षेत्रन्नप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः ॥ २६ ॥
प्रतिविहिता द्विगुणं कालम् ॥ २७ ॥

थोड़े समयके लिये बाहर जाने वाले शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियां एक वर्ष, तथा पुत्रवती इससे अधिक समय तक उनके अपने की प्रतीक्षा करें ॥ २६ ॥ यदि पति उनकी आजीविका का प्रबन्ध कर गये हों तो वे हुगने समय तक उनकी प्रतीक्षा करें ॥ २७ ॥

अप्रतिविहिताः सुखावस्था निभृषुः परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ
वा ज्ञातयः ॥ २८ ॥ ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्च्युः ॥ २९ ॥

और जिनके भोजनान्ठादन का प्रबन्ध न हो, उनका, उनके समुद्र बन्धु बान्धव चार वर्ष, या अधिक से अधिक आठ वर्ष तक पालन पोषण करें ॥ २८ ॥ इसके बाद, प्रथम विवाह में दिये धनको वापस लेकर दूसरी शादीके लिये आज्ञा दे देव ॥ २९ ॥

ब्राह्मणमधीयानं दशमर्षण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राज-
पुरुषमायुः क्षयादाकांक्षेत ॥ ३० ॥ समर्णतश्च प्रजाता नाप-
वादं लभेत ॥ ३१ ॥

पत्ने के लिये बाहर गये हुए ब्राह्मणों की पुत्ररहित स्त्रियां दस वर्ष और पुत्रवती चारह वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करें ॥ ३० ॥ यदि कोई व्यक्ति राजाके

किसी कार्य से बाहर गये हों, तो उनकी स्त्रिया आयु पर्यन्त उनकी प्रतीक्षा करें ॥ ३० ॥ यदि किसी समागम (ब्राह्मणदि) पुरुषसे किसी स्त्री के बच्चा पैदा हो जाय तो वह निन्दनीय नहीं ॥ ३१ ॥

कुटुम्बार्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम् ॥ ३२ ॥ आपद्रता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनारूपाय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३३ ॥

कुटुम्बका सम्पत्ति का नाश होनेपर (या कुटुम्ब की बढती नष्ट हो जानेपर अर्थात् काह बच्चा आदि न रहनपर) अथवा समुद्र बन्धु यान्धवा से छोड़े जानेपर कोई खा जीवन नयाइ के लिए अपनी इच्छा के अनुसार अन्य विवाह कर सकती है ॥ ३२ ॥ तथा धर्मादि न रहने क कारण आपद्रमस्त वह चुबती स्त्री (अक्षतयोनि) जिसका विवाह पहिले पार प्रकार के धर्म विवाहों के अनुसार हुआ हो, और उसका पति बिना कहे विदेश को चला गया हो, सात मासिकधर्म पर्यन्त अपने पतिकी प्रतीक्षा करें ॥ ३३ ॥

संबत्सरं श्रूयमाणमारूपाय ॥ ३४ ॥ प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३५ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ३६ ॥

यदि वह पुरुष बहकर गया हो, तो उसकी एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें ॥ ३४ ॥ पतिके विदेश चले जानेपर यदि उसकी कुछ खबर न मिले, तो पांच, ॥३५॥ और खबर मिलने पर दस मासिक धर्म पर्यन्त प्रतीक्षा करें ॥ ३५ ॥

एकदेशदत्तशुल्कं त्रीणि तीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३७ ॥ श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३८ ॥

विवाह के समय प्रतिज्ञात धनमें से कुछ थोडा ही भाग जिसने स्त्री को दिया हो, और विदेश चले जानेपर उसकी (पति की) खबर भी कुछ न मिली हो, तो तीन मासिक धर्म पर्यन्त ॥ ३७ ॥ तथा खबर मिलनेपर सात मासिक धर्म पर्यन्त, उसकी प्रतीक्षा करें ॥ ३८ ॥

दत्तशुल्कं पञ्चतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३९ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ४० ॥ ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत ॥ ४१ ॥

जिसने विवाह के समय प्रतिज्ञात सम्पूर्ण धन दे दिया हो, और विदेश चले जाने पर उसकी कुछ खबर न मिले तो पांच ॥ ३९ ॥ तथा खबर मिलने पर दस मासिक धर्म पर्यन्त धर्म की प्रतीक्षा करें ॥ ४० ॥ इसके (वधपुंकाभियत समय के) बाद प्रत्येक स्त्री धर्माधिकारी से आज्ञा पाकर अपनी इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकती है ॥ ४१ ॥

विच्छेद् होनेपर तो विद्यमान सप भाई सख्याके अनुसार बराबर १ सम्पत्ति को बांट लेंगे ॥ १४ ॥ पितासे सम्पत्ति प्राप्त न होनेपर, भधेवा पिताकी सम्पत्तिको बाटकर भी जो भाई इकट्ठे रहते और धर्माते हैं, वे फिर भी सपत्ति का विभाग कर सकते हैं ॥ १६ ॥ जिसके कारण सम्पत्तिकी अधिक वृद्धि हो, यह सम्पत्तिका उचित अधिक भाग बाटके सम्य ले लेंगे ॥ १७ ॥

द्रव्यमपुत्रस्य मोदर्या भ्रातरः सहर्जाविनो वा हरेयुः कन्याश्च रिक्थम् ॥ ८ ॥ पुत्रवतः पुत्राः दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु निवाहेषु क्षातिः ॥ ९ ॥ तदभावे पिता धरमाणः ॥ १० ॥

जिसके कोई पुत्र न हो, उसकी सम्पत्तिको उसके सगे भाई तथा अन्य साथी ले लेंगे । और सुवर्ण भादिके आभूषण तथा नकदी कन्या ले लेंगे ॥ ८ ॥ जिसके पुत्र हों, उसकी सम्पत्तिके अधिकारी उसके पुत्र हों, अथवा वे लक्ष्मीवा जो धार्मिक विवाहों (पहिले चार विवाहों) से उत्पन्न हुई हों ॥ ९ ॥ इनके (उक्त पुत्र पुत्रियोंके) न होनेपर उस मृतपुरुषका जीवित पिता ही सम्पत्तिका अधिकारी रहे ॥ १० ॥

पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च ॥ ११ ॥ अपितृका बहवोऽपि च भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च पितुरेकमंशं हरेयुः ॥ १२ ॥

पिताके न रहनेपर, पिताके भाई तथा उनके पुत्र सम्पत्तिके अधिकारी समझ जावें ॥ ११ ॥ यदि पिताक न होनेपर, उसके बहुतस भाई और भाईयोंके पुत्र हों, तो व पिताकी सम्पत्तिको बराबर बांट लेंगे ॥ १२ ॥

सोदर्याणामनेकपितृकाणां पितृतो दायविभागः पितृभ्रातृपुत्राणां पूर्वं विद्यमाने नापरमपलभ्यन्ते ॥ १३ ॥ ज्येष्ठे च कनिष्ठमर्धग्राहिणम् ॥ १४ ॥

एकही मातास ओके पिताओंके द्वारा उत्पन्न हुए ल'क का दायविभाग पिताकी ओरस होजाना चाहिय । क्योंकि फिर पिताके भाईयों (उपपिताभा) के बडे ल'के, पिताका अनुपास्यात्म छाटाको दायभाग देनेमें ग पड़ करते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये बडेके रहनेपर छाटाका आधा हिस्सा मिल जाना चाहिय ॥ १४ ॥

जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत् ॥ १५ ॥ न चैकमकारणाभिर्विभजेत् ॥ १६ ॥ पितुरसत्यर्थे ज्येष्ठाः कनिष्ठाननुगृहीयुरन्यत्र मिध्याष्टेभ्यः ॥ १७ ॥

यदि पिता जीवित रहता हुआ ही अपनी सम्पत्तिका विभाग करना

चाहे, तो किसीको अधिक न देवे; अर्थात् सबको बराबर बाँट देवे ॥१५॥ और विनाही किसी कारणके अपने अनेक लड़कोंसे किसी एक कोही अलहदा न करे ॥१६॥ पिताकी सम्पत्ति न होनेपर, बड़े भाई छोटेकी रक्षा करें । यदि वे आचार सद्ब्यवहार से अष्ट हो जाय तो उनकी रक्षा न करें ॥१७॥

प्राप्तव्यवहाराणां विभागः ॥ १८ ॥ अप्राप्तव्यवहाराणां देय-
विशुद्धं मातृबन्धुषु ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेद्युर्व्यवहारप्रापणात्प्रोपि-
तस्य वा ॥१९॥ संनिविष्टसममसंनिविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः २०।

पुत्रोंके प्राप्तव्यवहार (यालिंग) होजाने परही सम्पत्तिका विभाग किया जाता है ॥१८॥ मायालिंगोंकी सम्पत्ति, नीक २ हिस्सामें बाँटने के सामने अथवा गाँवके वृद्ध विश्वासी पुरुषोंके पास रखदी जाये, जबतक कि वे बालिंग होजाये। विदेशमें गये हुए पुरपकों सम्पत्तिका भी इसी तरह प्रवश्य होना चाहिये ॥१९॥ विवाहित बड़े भाई, अपने छोटे अविवाहित भाईयोंको विवाहके लिये खर्च देवे ॥२०॥

कन्याभ्यश्च प्रादानिकम् ॥ २१ ॥ ऋणरिक्थयोः समी
विभागः ॥ २२ ॥ उदपात्राण्यपि निष्किंचना विभजेरन्नित्या-
चार्याः ॥ २३ ॥

और कन्याओंके लिये उनके विवाह कालमें देनेको दहेज आदिकर धन देवे ॥२१॥ ऋण और आभूषण तथा नकद धनकी बराबर २ बाँट लेवे ॥२२॥ प्राचीन आचार्योंका मत है कि दरिद्र जन अपने पानी आदिके घृतनोंको भी आपसमें बाँट लेवे ॥ २३ ॥

छलमेतदिति कौटिल्यः ॥ २४ ॥ सत्रोऽर्थस्य विभागो ना-
सत एतावानर्थः सामान्यस्तस्यैतावान्प्रत्यंश इत्यनुभाष्य श्रुवन्सा-
क्षिषु विभागं कारयेत् ॥ २५ ॥

इत्यनु कौटिल्यका मत है कि ऐसा करना छल है ॥ २४ ॥ क्योंकि विश-
मान मयही सम्पत्तिका विभाग किया जाता है; अविशमानका नहीं। 'इतनी सम्पूर्ण सम्पत्ति है, इसमें इतना २ हिस्सा प्रत्येक व्यक्तिका है' यह बात साक्षि-
योंके सामने कहकर बटवार करवाया जावे ॥२५॥

दुर्विभक्तमन्योन्यापहतमन्तार्हितमभिजातोत्पन्नं वा पुनर्विभजेरन्
॥ २६ ॥ अदायादकं राजा हरेस्त्रीवृत्तिप्रेतकार्ययर्जमन्यत्र श्रो-
त्रियद्रुष्यात् ॥ २७ ॥ तत्रैविवेभ्यः-प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥

यदि विभाग ठीक न हुआ हो, या उस सम्पत्तिमें से किसी हिस्सेदारने कुछ अपहरण करलिया हो, या कोई चीज छिपी रह गई हो, अथवा बंटवारेके बाद कोई चीज अकस्मात् और मिलपाय, तो उस सम्पत्तिवा फिर बांट कर लिया जाय ॥ २९ ॥ जिस सम्पत्तिका कोई अधिकारी न हो उसे राजा ले लेवे। परन्तु स्त्रीके जीवित निर्वाह और औष्वदेहिक (धातु आदि) आदि कार्योंके लिये जितना धन आवश्यक होवे, वह छोड़ देवे। तथा श्रांश्रियके धनको कदापि न लेवे ॥ २७ ॥ प्रत्युत उस धनको वेदोंके जानने वाले विद्वानों को दे देवे ॥ २८ ॥

पतितः पतिताज्ञातः क्लीबश्चानंशाः ॥ २९ ॥ जटोन्मत्तान्ध-
कुष्ठिनश्च ॥ ३० ॥ सति भार्यार्ये तेषामपत्यमतद्विधं मार्गं हरेत् ॥
३१ ॥ प्राप्ताच्छादनमितरे पतितवर्जाः ॥ ३२ ॥

पतित, तथा पतितसे पैदा हुए २, और नपुंसकोंको दाय भाग नहीं मिलता ॥ २९ ॥ सर्वधामूल, उन्मत्त, अन्धे और कोटी भी सम्पत्तिके अधिकारी नहीं होते ॥ ३० ॥ भार्या की सम्पत्ति होने पर, यदि उनके (मूल आदि जनों के) लड़के उनके समान (मूल आदि) नहीं होते, तो वे (लड़के) सम्पत्तिमें दायभागी हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ पतितोंको छोड़कर अन्य सभी (मूल आदि) उस सम्पत्तिमें से केवल, अपने लिये भोजन पत्र पासकते हैं ॥ ३२ ॥

तेषां च कृतदाराणां लुप्ते प्रजनने सति ।

सृजेयुः बान्धवाः पुत्रांस्तेषामंशान् प्रकल्पयेत् ॥३३॥

इति धर्मस्थाये तृतीये अधिकरणे दायविभागे दायक्रम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

आदितो द्विषष्टितम ॥६२॥

यदि इन उपर्युक्त पुरुषोंकी स्त्रिया हों, परन्तु अपनी अशक्तिले ये उनमें बच्चे पैदा न करसकें, तो इन पुरुषोंके बन्धु बान्धव उनमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करें, वे अपनी पुरानी सम्पत्तिके दायभागी हो सकते हैं ॥ ३३ ॥

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरण में पांचवा अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय ।

६० प्रकरण ।

अंश विभाग ।

एकस्त्रीपुत्राणां ज्येष्ठांशः ॥ १ ॥ ब्राह्मणानामजाः क्षत्रिया-
णामश्वा वैश्यानां गावः शूद्राणामवयः ॥ २ ॥ काणलिङ्गास्तेषां
मध्यमांशः ॥ ३ ॥ भिन्नवर्णाः कनिष्ठांशः ॥ ४ ॥

एक स्त्रीके जय बहुतसे लड़के हों, तो उनमें से सबसे बड़े लड़केका हिस्सा निम्न-प्रकार होना चाहिये ॥ १ ॥ माहणोंकी बकरी, क्षत्रियोंके घोड़े, वैश्योंकी गाय, और धूर्तोंकी भेड़ । (अर्थात् वर्णोंके अनुसार बड़े लड़केको सम्पत्तिका यह प्रधान भाग मिलना चाहिये) ॥ २ ॥ उन पशुओंमें जो काणे हों, वे मध्यम अर्थात् मंझले लड़केका (वर्णोंके अनुसार) हिस्सा समझा जावे ॥ ३ ॥ और वेही रंगत्रिंशे पशु, सबसे छोटे भाईका हिस्सा ॥ ४ ॥

चतुष्पदाभाये रत्नवर्जानां दशानां भार्गु द्रव्याणामेकं ज्येष्ठो हरेत् ॥ ५ ॥ प्रतिमुक्तस्वधापाशो हि भवति ॥ ६ ॥ इत्यौशनसो विभागः ॥ ७ ॥

पशुओंके न होनेपर, हीरे जवाहरातको छोड़कर बाकी सब सम्पत्तिका दसवां हिस्सा बड़े लड़केको अधिक मिले ॥ ५ ॥ क्योंकि इससे वह पितृदेय अन्नादिके बन्धनसे मुक्त हो जाता है । (इसका तात्पर्य यह है कि बड़े लड़केको अपने पूर्वज पित्तोंके लिये स्वधाऽपिण्डदान आदि देना पड़ता है, अतः इसपर अधिक भार न पड़े, इसलिये सम्पत्तिका दसवां हिस्सा उसे अधिक मिल जाना चाहिये) ॥ ६ ॥ दायक अन्न-विभागके सम्बन्धमें यह उशाना (शुक्र) आचार्य का मत है ॥ ७ ॥

पितुः परिवापाधानमाभरणं च ज्येष्ठांशः ॥ ८ ॥ शयनासनं भुक्तकांस्यं च मध्यमांशः ॥ ९ ॥ कृष्णं धान्यायसं गृहपरिवापो गोशकटं च कनिष्ठांशः ॥ १० ॥ शेषाणां द्रव्याणामेकद्रव्यस्य वा समो विभागः ॥ ११ ॥

पिताकी सम्पत्तिसे सवारी और आभूषण बड़े लड़केका हिस्सा ॥ ८ ॥ सोने बिलानेका सामान तथा पुराने बर्तन मंझले लड़केका ॥ ९ ॥ और काला अन्न, लोहा, अन्य धरेलू सामान तथा बेलगाड़ी छोटे लड़केका हिस्सा समझना चाहिये ॥ १० ॥ बाकी बचे हुए, सब द्रव्योंका, वा एक द्रव्यका बराबर २ घांट हो जाना चाहिये ॥ ११ ॥

अदायादा मगिन्यः मातुः परिवापाद्भुक्तकांसाभरण-भागिन्यः ॥ १२ ॥ मानुषहीनो ज्येष्ठस्त्रृतीयमंशं ज्येष्ठांशाहमेव ॥ १३ ॥ चतुर्थमन्यायवृत्तिः ॥ १४ ॥ निवृत्तधर्मकार्यो वा कामाचारः सर्वं जीयेत ॥ १५ ॥

दायभाग न लेनेवाली चाहिये, माताकी सम्पत्तिसे पुराने बर्तन तथा आभू-

पग ले लें ॥ १२ ॥ बड़ा लड़का यदि नपुंसक हो, तो उसको उसके निग्रित हिस्सेमेंसे तीसरा हिस्सा मिले ॥ १३ ॥ यदि वह कुछ अन्याय भाषरण करता हो तो चौथा मिले ॥ १४ ॥ और यदि धर्म-कार्योंसे सदा ग्रथक् रहता हो तथा सब कुछ अपनी इच्छाके ही अनुसार करता हो तो उसे सम्पत्तिका कुछ भी हिस्सा न दिया जाय ॥ १५ ॥

तेन मध्यमकृनिष्ठौ व्याख्यातौ ॥ १६ ॥ तयोर्मानुषोपेतो ज्येष्ठांशदर्धं लभेत ॥ १७ ॥ नानास्त्रीपुत्राणां तु संस्कृतासंस्कृतयोः कन्याकृतक्रियाभात्रे चैकस्याः पुत्रयोर्मयोर्वा पूर्वजन्मना ज्यष्ठमात्र ॥ १८ ॥

मध्यम और छोटे लड़कके सम्बन्धमें भा ऐसे अवसरोंपर यही नियम समझना चाहिये ॥ १६ ॥ यदि इन दोनोंमेंसे कोई एक पुत्रवधर्मस युक्त (मानुषोपेत) हो (अर्थात् नपुंसक न हो) तो वह बड़े भाईके हिस्सेमेंसे आधा ही लेवे ॥ १७ ॥ अनक स्त्रियोंके पुत्रोंमें उसहीको बड़ा समझना चाहिये, जो अविवाहित स्त्रीके मुकाबलेमें विधि पूर्वक विवाहित स्त्रीसे उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह पीछे हा उत्पन्न हो। अथवा एक स्त्री कन्या अवस्थामें भार्या बनी है, और दूसरी अन्यभुक्ता, उनमस पहिलीका लड़का ज्येष्ठ समझा जाये। यदि किसीके दो लड़के पैदा हो जाय, तो उनमस वही ज्येष्ठ होगा जो पहिले पैदा हुआ है ॥ १८ ॥

सूतमागधरात्यरथकाराणामैश्वर्यतो त्रिभाग. शेषास्तमुप-
जीवेयुः ॥ १९ ॥ अनीश्वराः समाविभागा इति ॥ २० ॥

सूत, मागध, रात्य और रथकाराकी सम्पत्तिका, उनके ऐश्वर्यके अनु-
सार विभाग करना चाहिये। अर्थात् जो लड़का उनमें प्रभावशाली हो वह सम्पत्ति ले लेवे, और बाकी लड़के उसीके भरोसेपर जीवन निर्वाहका प्रबन्ध रखें ॥ १९ ॥ यदि उनमें कोई विशेष प्रभावशाली न हो तो वे अपनी सम्प-
त्तिको बराबर २ घाट लें ॥ २० ॥

चातुर्वर्ण्यपुत्राणां ब्राह्मणापुत्रश्चतुरोऽश्वान्हरत् ॥ २१ ॥ क्षत्रिया-
पुत्रस्त्रीनंशान् ॥ २२ ॥ वैश्यापुत्रौ द्वावंशौ ॥ २३ ॥ एकं
शूद्रापुत्रः ॥ २४ ॥ तेन त्रिपर्णाद्विवर्णपुत्रत्रिभाग क्षत्रियवैश्ययो-
र्व्याख्यातः ॥ २५ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके चारों वर्णोंकी क्षिया हों तो उनमसे ब्राह्मणकी लड़केको सम्पत्तिके चार भाग मिल ॥ २१ ॥ क्षत्रियाके लड़केको तीन भाग ॥ २२ ॥

वैश्यके लड़केको दो ॥ २३ ॥ और शूद्रके लड़केको एक हिस्सेमिले ॥ २४ ॥ इसी प्रकार जहांपर क्षत्रियके घरमें तीन बर्णोंकी (क्षत्रिय, वैश्य शूद्र), और वैश्यके घरमें दो बर्णोंकी (वैश्य शूद्र) बिया हों, उनके पुत्रोंके लिये भी सम्पत्ति विभागाका यही उपर्युक्त नियम समझना चाहिये ॥ २५ ॥

ब्राह्मणसानन्तरापुत्रस्तुल्यांशः क्षत्रियवैश्ययोरर्धांशः ॥२६॥
तुल्यांशो वा मानुषोपेतः ॥ २७ ॥

यदि ब्राह्मणके घरमें ब्राह्मणी और क्षत्रिया दोहोंके पुत्र हों तो वे सम्पत्तिका बराबर २ हिस्सा बांट लेंगे । अर्थात् ब्राह्मणके घरमें उससे अव्यवहित नीची जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का सम्पूर्ण सम्पत्तिके आधेका हिस्सेदार होगा, । इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्यके घरमें उनसे अव्यवहित नीची जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए लड़के (समान वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए लड़केके हिस्सेसे) आधा हिस्सा पावे ॥ २६ ॥ जो पुरुषसे पुत्र (मानुषोपेत) हो, वह बराबरका ही हिस्सा लेवे ॥ २७ ॥

तुल्यातुल्ययोरैकपुत्रः सर्वं हरेत् ॥ २८ ॥ वन्धुंश्च विभृषात् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणानां तु पारश्वस्तृतीयमंशं लभेत ॥ ३० ॥

सभोग्य या असमान वर्णकी स्त्रियोंमेंसे किसी एकके, एकही लड़का उत्पन्न हुआ हो, तो वह पिताका सम्पूर्ण सम्पत्तिका मालिक होवे ॥ २८ ॥ और अपने बन्धु बान्धवोंका भरण पोषण करे ॥ २९ ॥ पारश्व (ब्राह्मणसे शूद्रा में उत्पन्न हुआ) ब्राह्मणोंकी सम्पत्तिके तीसरे हिस्सेका मालिक होवे ॥ ३० ॥

द्वार्वंशौ सपिण्डः कुल्यो वासन्न स्वधादानहेतोः ॥ ३१ ॥
तदभावे पितुराचार्योऽन्तोवासी वा ॥ ३२ ॥

सपिण्ड (मातृकुलकी किसी स्त्री से उत्पन्न हुआ) अथवा ब्रह्मर्षीकी अनुदानकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का सम्पत्तिके दो भाग ले सकता है जिससे कि वह अपने पिता आदिका उपदेशान कर सके ॥ ३१ ॥ इन सबके न होनेपर पिताका भाव्य अथवा भ्रातृवार्थ शिष्य, उसकी सम्पत्तिका अधिपति होवे ॥ ३२ ॥

क्षेत्रे वा जनयेदस्य नियुक्तः क्षेत्रजं सुतम् ।

मातृबन्धुः सगोत्रो वा तस्मै तत्प्रदिशेद्धनम् ॥ ३३ ॥

इति धर्मसूत्रे मृत्तयेऽपिदाने दायविभागोऽश्वविभाग
पृष्ठे उपपाद्य ॥ ६ ॥ आदितश्चिपटितमः ॥ ६३ ॥

अथवा उसकी स्त्रीसे नियोगके द्वारा उत्पन्न हुआ लड़का, या उसकी माताके बन्धु बान्धव या कोई सगोत्र (अत्यधिक समीपका रिश्तेदार) उसकी सम्पत्तिका अधिकारी समझा जाये ॥ ३३ ॥

धर्मस्थायी तृतीय अधिकरण में छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय ।

६० प्रकरण ।

पुत्र विभाग ।

परपरिग्रहे बीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण इत्याचार्याः ॥ १ ॥ माता भ्रूया यस्य रेतस्तस्यापत्यमित्यपरे ॥ २ ॥ त्रिधमानमुभयामिति कौटल्यः ॥ ३ ॥

आचार्यका मत है कि दूसरेके क्षेत्रमें डालेहुए बीजका मालिक क्षेत्रपति ही होता है । अर्थात् किसी पुरपसे अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्न किया हुआ बच्चा, उस स्त्रीके पतिकी ही सम्पत्ति होती है ॥ १ ॥ परन्तु दूसरे विद्वानोंका मत है कि जो बच्चा जिसके बीजसे पैदा हो, वह उसीका समझा जाये ॥ २ ॥ कौटल्य कहता है कि वे दोनोंही उस बालकके पिता समझे जाने चाहिये ॥ ३ ॥

स्वयंजातः कृतक्रियायामारसः ॥ ४ ॥ तेन तुल्यः पुत्रिका-पुत्रः ॥ ५ ॥ सगोत्रेणान्यगोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजातः क्षेत्रजः पुत्रः ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक विवाहित स्त्रीमें, स्वयं उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस कहाता है ॥ ४ ॥ लड़कीका लड़का भी इसीके समान समझा जाता है ॥ ५ ॥ समान गोत्रवाले, अथवा भिन्न गोत्रवाले किसी पुरपसे अपनी स्त्रीके साथ नियोग कराकर जो बच्चा पैदा किया जाता है, वह क्षेत्रज कहलाता है ॥ ६ ॥

जनयितुरसत्यन्यस्मिन्पुत्रे स एव द्विपितृको द्विगोत्रो वा द्वयोरेपि स्वधारिकथमाग्भवति ॥ ७ ॥ तत्सधर्मा बन्धूनां गृहे गूढजातस्तु गूढजः ॥ ८ ॥ बन्धुनोत्सृष्टोऽपविद्धः संस्कर्तुः पुत्रः ॥ ९ ॥

यदि उत्पन्न करनेवाले पुरपके और कोई लड़का नहीं है, तो वही दो पिता (द्वि पितृक) अथवा दो गोत्रवाला (द्विगोत्र) लड़का उन दोनोंके पिण्ड दान और सम्पत्तिका अधिकारी होता है, ॥ ७ ॥ उसीके समान जो बच्चा स्त्रीके

बन्धु-बान्धवोंके घर रहते हुए छिपे सौरपर पैदा होता है वह गूढज कहाता है ॥ ८ ॥ यदि बन्धु-बान्धव उसको अपने यहाँ न रखें, और कहीं बाहर उसको डालें, या फेंकें, तो जो कोई उस घबेका पालन पोषण करले, उसहीका (संस्कर्तुः) वह लड़का समझा जाता है ॥ ९ ॥

कन्यागर्भः कानीनः ॥ १० ॥ सगर्भोढायाः सहोढः ॥ ११ ॥

पुनर्भूतायाः पौनर्भवः ॥ १२ ॥ स्वयंजातः पितृबन्धूनां च दायदः ॥ १३ ॥

कन्याके गर्भसे जो बच्चा पैदा हो उसे कानीन कहते हैं ॥ १० ॥ गर्भवती स्त्रीका विवाह होनेपर जो बच्चा पैदा हो उसे सहोढ कहते हैं ॥ ११ ॥ दूसरीबार विवाहित, हुई २ स्त्रीसे जो बच्चा पैदा होता है, उसे पौनर्भव कहा जाता है ॥ १२ ॥ पिता या बन्धुओंसे स्वयं उत्पन्न किया हुआ बालक उनको सम्पत्तिका दायभागी होता है ॥ १३ ॥

परजातः संस्कर्तुरेव न बन्धूनाम् ॥ १४ ॥ तत्सधर्मा मातापितृभ्यामद्भिर्मुक्तो दत्तः ॥ १५ ॥

जो दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ हो (इसका तत्पर्य 'गूढज' पुत्रसे मालूम होता है) वह संस्कर्ता (पालन पोषण करनेवाले) कौही सम्पत्तिका अधिकारी होता है, बन्धु-बान्धवोंकी नहीं ॥ १४ ॥ उसहीके समान जो, माता पिताओंके द्वारा, हाथमें जल लेकर किसी दूसरेको दे दिया गया हो, वह दत्त, जिसको दिया गया हो, उसकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है ॥ १५ ॥

स्वयं बन्धुभिर्वा पुत्रभावोपगत उपगतः ॥ १६ ॥ पुत्रत्वेनाङ्गीकृतः कृतकः ॥ १७ ॥ परिक्रीतः क्रीत इति ॥ १८ ॥

जो स्वयं या बन्धुओंके द्वारा पुत्रभावसे प्राप्त हुआ है, वह उपगत ॥ १६ ॥ जिसको पुत्रभावसे स्वीकारकर लिया गया हो वह कृतक ॥ १७ ॥ और जो सरीदकर पुत्र बनाया गया हो, वह क्रीत कहाता है ॥ १८ ॥

औरसे तृपन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः ॥ १९ ॥ असवर्णा ग्रासाच्छादनभागिनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणश्चत्रिययोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः ॥ २१ ॥

औरस पुत्रके उत्पन्न होनेपर, अन्य सवर्ण क्रियाँसे उत्पन्न हुए लड़के, पिताकी जायदादके तीसरे हिस्सेके मालिक होते हैं ॥ १९ ॥ और जो असवर्ण क्रियाँसे उत्पन्न हों, वे केवल भोजन-पत्र प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥ ब्राह्मण और

क्षत्रियके अनन्तर (ब्राह्मणके लिये क्षत्रिया और क्षत्रियके लिये वैश्या) जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्र सवर्ण ही समझे जाते हैं । जो एक जातिके व्यवधानसे उत्पन्न हों, अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यामें क्षत्रियसे शूद्रांमें, वे असवर्ण समझे जावे ॥ २१ ॥

ब्राह्मणस्य वैश्यायामभ्यष्टः ॥ २२ ॥ शूद्रायां निपादः
पारशवो वा ॥ २३ ॥ क्षत्रियस्य शूद्रायामुग्रः ॥ २४ ॥ शूद्र
एव वैश्यस्य ॥ २५ ॥

ब्राह्मणका वैश्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र अभ्यष्ट कहता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मणसे जो शूद्रांमें उत्पन्न होता है, उसे निपाद या पारशव कहते हैं ॥ २३ ॥ क्षत्रियसे शूद्रांमें उत्पन्न हुआ २ उग्र कहता है ॥ २४ ॥ वैश्याका जो शूद्रांमें उत्पन्न हो वह शूद्रही रहेगा ॥ २५ ॥

सवर्णासु चैषामचरितव्रतेभ्यो जाता व्रात्याः ॥ २६ ॥ इत्य-
नुलोमः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्याकेही सवर्णा स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए २ लड़के समयपर विधिपूर्वक उपनयन और ब्रह्मचर्य आदि प्रतीका अनुष्ठान न करनेके कारण धार्य हो जाते हैं ॥ २६ ॥ ये सब अनुलोम (उच्चवर्ण पुरुषसे नीचवर्ण स्त्रीमें) विवाहोसे उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥

शूद्रादायोमवक्षत्तचण्डालाः ॥ २८ ॥ वैश्यान्मागधवैदेहकौ
॥ २९ ॥ क्षत्रियात्सूतः ॥ ३० ॥

शूद्रसे, वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुए पुत्र यथा संख्य आयो-
गव, क्षत्रा और चण्डाल कहाते हैं ॥ २८ ॥ इसी प्रकार वैश्यसे, क्षत्रिया और
ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुए मागध और वैदेहक ॥ २९ ॥ तथा क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें
उत्पन्न हुआ सूत कहाता है ॥ ३० ॥

पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषः ॥ ३१ ॥
त एते प्रतिलोमाः स्वधर्मातिक्रमाद्राजः संभवन्ति ॥ ३२ ॥

परन्तु जो सूत और मागध भ्रमके पुरुष पुराणोंमें वर्णित किये गये हैं वे
इनसे बिल्कुल भिन्न हैं, तथा ब्राह्मण और क्षत्रियोसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ राजा जब
अपने धर्मका पालन नहीं करता तभी से प्रतिलोम (नीचवर्ण पुरुषसे उच्चवर्ण
स्त्रीमें उत्पन्न हुए) वर्णसंकर पैदा होते हैं ॥ ३२ ॥

उग्रान्नौपाद्यां कुक्कुटः ॥ ३३ ॥ विपर्यये पुल्कंसः ॥ ३४ ॥
 वैदोहिकायामम्बुष्ठाद्वैणः ॥ ३५ ॥ विपर्यये कुशीलवः ॥ ३६ ॥
 क्षत्तायामुग्राच्छ्वपाक इत्येते चान्तरालाः ॥ ३७ ॥

जो उग्र (नामक संकर जातिके) पुरुषसे निपाद स्त्रीमें उत्पन्न होता है, उसे कुक्कुट वा कुटक कहते हैं ॥ ३३ ॥ जो निपाद पुरुषसे उग्रा स्त्रीमें हो उसे पुल्कंस कहते हैं ॥ ३४ ॥ अम्बुष्ठासे वैदोहिकामें वैण उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥ और विदेहकसे अम्बुष्ठामें कुशीलव ॥ ३६ ॥ उग्रसे क्षत्तामें श्वपाक, इसी प्रकार शौर भी भवान्तर संकर जातियां समझनी चाहियें ॥ ३७ ॥

कर्मणा वैष्यो रथकारः ॥ ३८ ॥ तेषां स्वयोनौ विवाहः
 ॥ ३९ ॥ पूर्वापरगामित्वं वृत्तानुवृत्तं च स्वधर्मं स्थापयेत् ॥ ४० ॥
 शूद्रसधर्माणो वा ॥ ४१ ॥ अन्यत्र चण्डालेभ्यः ॥ ४२ ॥

वैष्य कर्म करनेसे रथकार होजाता है ॥ ३८ ॥ उनका अपनीही जातिमें विवाह होता है ॥ ३९ ॥ ऊपर गोचे जाने, और धर्मका निर्णय करनेमें ये अपने पूर्वजोका ही अनुगमन करें ॥ ४० ॥ अथवा चण्डालोंको छोड़कर सभी संकर जातियोंके धर्म शूद्रोंके समान ही समझने चाहियें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

केवलमेवं वर्तमानः स्वर्गमाप्नोति राजा नरकमन्यथा ॥ ४३ ॥
 सर्वेषामन्तरालानां समोविभागः ॥ ४४ ॥

केवल इस प्रकारसे अपनी प्रजाकी व्यवस्था करता हुआ राजा स्वर्गको प्राप्त होता है, अन्यथा नरक पाता है ॥ ४३ ॥ सब संकर जातियोंमें, जायदाद का बराबर ३ हिस्सा ही होना चाहिये ॥ ४४ ॥

देशस्य जात्या संघस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः ।

उचितस्तस्य तेनैव दायधर्मं प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दायविभागो पुन्रविभागः सप्तमोऽप्यत्यः ॥ ७ ॥

दायविभागः समाप्तः । आदितभतुःपट्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

देशका जातिका सत्तका तथा गांवका जो उचित धर्म हो, उन्हीके अनुसार वहाँके दायभागका नियम होना चाहिये ॥ ४५ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवा अध्याय

६१ प्रकरण

गृह वास्तुक ।

सामन्तप्रत्यया वास्तुविवादाः ॥ १ ॥ गृहं क्षेत्रमारामः
सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तुः ॥ २ ॥ कर्णकीलायसंबन्धो
ऽनुगृहं सेतुः ॥ ३ ॥

वास्तु विषयक क्षमक्षेत्रा मिणिय सामन्त (गांवके मुखिया) करें ॥ १ ॥
घर, खेत, याग, सीमायन्त्र तालाब और यन्त्र (जल रोकनेके लिये बनाये हुए
बांध) आदि सब वास्तु कहाते हैं ॥ २ ॥ प्रत्येक घरके चारों ओर कौनोंपर लोहे
के छोटे खम्भे गाड़कर उनमें लोहेका तार खींच देना चाहिये, यह सीमाका
घातक है, यही सेतु कहाता है ॥ ३ ॥

यथासेतुभोगं वेश्म कारयेत् ॥ ४ ॥ अभूतं वा परकुट्याद-
विक्रम्य ॥ ५ ॥ द्वावरत्नी त्रिपर्दी वा देशघन्धं कारयेत् ॥ ६ ॥

सामाके अनुप्रार हो मकान बनवावे। अर्थात् जितनी खम्भो चौड़ी जमीन
हो, उसहोके अनुसार मकान होना चाहिये ॥ ४ ॥ दूसरेको दीवारके सहार कोई
मकान खड़ा न करे ॥ ५ ॥ दो अरत्नी (२ अरत्नी=१३ फुट) या तीन पद,
मकानको नीचेमें कंकरीट कुटयाना चाहिये ॥ ६ ॥

अवस्करभ्रममुदपानं पानगृहोचितमन्यत्र सूतिकाकूपादानि-
र्दशाहादिति ॥ ७ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥

दस दिनके लिये बनाए हुए सूतिका गृहको छोड़कर बाको सब मकानोंमें
पाखाना, जलनिकलनेका नालियां, कूआ, तथा पाकशालाके साथ खाने पीनेका
मकान (भोजन शाला) भी अग्रद्वय बनाने चाहिये ॥ ७ ॥ इस नियमका उल्लं-
घन करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ८ ॥

तेनेन्धनावघातनकृतं कल्याणकृत्येष्वामोदकमार्गाथ व्या-
ख्याताः ॥ ९ ॥ त्रिपर्दीप्रतिक्रान्तमध्यर्धमरत्निं वा प्रवेश्य गाढ-
प्रसृतमुदकमार्गं प्रस्ररणं प्रघातं वा कारयेत् ॥ १० ॥ तस्याति-
क्रमे चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ११ ॥ .

इसी प्रकार विवाह आदि उत्सवोंमें कुल्लेका पानी बाहर निकलनेके लिये
नालियों, तथा भट्टी आदिके लिये स्थानका प्रबन्ध भी मकानोंमें रखना चाहिये ॥ ११ ॥

तीन पद या १३ अरली गहरा, लूण धिकना या साफ़ दीवारके साथ २ पानी बहनेके लिये पतनाला बनवावे । अथवा दीवारसे अलग गिरने वालाही पतनाला लगवा दे ॥ १० ॥ इस नियमका उल्लंघन करने पर ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

एकपदीं प्रतिक्रान्तमरालिं वा चक्रिचतुष्पदस्थानमग्निष्टमु-
दञ्जरस्थानं रोचनीं कुट्टनीं वा कारयेत् ॥ १२ ॥ तस्यातिक्रमे
चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १३ ॥

घरके बाहरकी ओर एक चार खम्भोका अग्निस्थान (पञ्चशाख्य) बन-
वावे, जिसमें एक पद या एक अरली गहरा पानी निकलने का स्थान ऊपरय
हो । उसहीके साथ एक ओरमें आटा आदि पीसनेके लिये चक्कीका स्थान, तथा
अन्न आदि कूटनेके लिये ओखलीका स्थान बनवावे ॥ १२ ॥ ऐसा न करनेपर
२४ पण दण्ड दिया जावे ॥ १३ ॥

सर्ववास्तुकयोः प्राक्षिप्तकयोर्वा शालयोः किष्कुरन्तरिका
त्रिपदी वा ॥ १४ ॥ तयोश्चतुरंगुलं नीचान्तरं समाखण्डकं वा
॥ १५ ॥

प्रथेक साधारण दो मकानोंके बीचमें, या छप्पे या उतारे वाले मकानों
के छप्पों या उतारोंके बीचमें एक किष्कुर (१ किष्कुर=१३ फुट या एक हाथ)
या तीन पदका फासला अवश्य होना चाहिये ॥ १४ ॥ किष्कुर दो मकानोंकी
छतोंमें या तो चार अंगुलका फरक होना चाहिये, या वे आपसमें मिली हों ॥ १५ ॥

किष्कुरमात्रमाणेद्वारमन्तरिकायां खण्डफुल्लार्धमसंपातं कार-
येत् ॥ १६ ॥ प्रकाशार्थमल्पमूर्ध्वं वातायनं कारयेत् ॥ १७ ॥
तदवसिते वेदमनि च्छादयेत् ॥ १८ ॥

गलीकी ओर एक किष्कुर मात्र परिमाण वाला छोटासा दरवाजा बनवावे,
जो पथापसर छोला जासके और खूब मजबूत हो ॥ १६ ॥ प्रकाश आनेके लिये
उससे कुछ ऊपर एक रोशनदान लगवावे ॥ १७ ॥ अन्तिम मकान के रोशनदानपर
कुछ टोन आदि अवश्य लगवाना चाहिये । क्योंकि भोंतरेके बीचके मकानोंमें
रोशनदान पर साया की आरइफकता नहीं होती ॥ १८ ॥

संभूय वा गृहस्वामिनो यथेष्टं कारयेयुरनिष्टं चारयेयुः
॥ १९ ॥ वानलव्याधोर्ध्वमाहार्यभोगकटप्रच्छन्नमवमर्शभिर्चितं वा
कारयेद्वर्षापाधाभयात् ॥ २० ॥

अथवा पाँस २ के मकानोंके मालिक आपसमें मिलकर दृष्टानुसार मकान बनवायें, और एक दूसरेको कष्ट न होने दें ॥ १९ ॥ उनके ऊपर अस्थायी तौरपर दीवारोंके सहारे एक फूमका छप्पर डलवा दें, जिससे कि छतपर मोते समय वर्षा ऋतुमें पृष्टिके द्वारा कोई कष्ट न हो ॥ २० ॥

तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥ प्रतिलोमद्वारवाता-
यनवाधायां च ॥ २२ ॥ अन्यत्र राजमार्गस्थ्याभ्यः ॥ २३ ॥

ऐसा न करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ जो पुरख बाहर की ओर दरवाजा या खिड़की बनाकर पड़ोसियोंको कष्ट पहुंचावे उन्हें भी प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ यदि वे दरवाजे या खिड़कियाँ शाही सबक या बाजारकी ओरको हों तो कोई हानि नहीं ॥ २३ ॥

खातसोपानप्रणालीनिश्रेण्यवस्करभार्गवहविर्वाधायां भोगनि-
ग्रहे च परकुल्यमुदकेनोपधतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २४ ॥ मूत्र-
पुरीषोपघाते द्विगुणः ॥ २५ ॥

गद्दा, सीढ़ी (जीना) नाली, लकड़ीकी सीढ़ी (नसेनी) और पाखाना भादिसे जो बाहरके पड़ोसियोंको कष्ट पहुंचावे, सहन को रोके, तथा पानी निकलनेका ठोक प्रथम न करनेके कारण दूसरेकी दीवारको हर्षने पहुंचाने, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ मूत्र और पाखानेको दक्षवट करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २५ ॥

प्रणालीमोक्षो वर्षति ॥ २६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः
॥ २७ ॥ प्रतिपिद्वस्य च वसतो निरस्यतश्चावक्रमणम् ॥ २८ ॥
अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणामिध्याभोगेभ्यः ॥ २९ ॥

वर्षा ऋतुमें हर एक नाली खुली रहनी चाहिये । (ताकि पृड़ा करकट इकट्ठा होजाने से नाली बन्द न हो जाय) ॥ २६ ॥ ऐसा न करनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २७ ॥ मालिकके द्वारा मना किये जानेपर भी जो किरायेदार मकान न छोड़े, तथा किराया दे देने परभी जो मालिक, किरायेदारको मकानसे निकाले, उन्हें १२ पण दण्ड होना चाहिये ॥ २८ ॥ परन्तु उनमेंसे किसीका भी कठोर भाषण, थोरी, डाका, व्यभिचार तथा मिथ्यापत्रवहारका कोई मामला न हो ॥ २९ ॥

स्वयमभिप्रास्थितो वर्षावक्रयशेषं दद्यात् ॥ ३० ॥ सामान्ये
वेशमनि साहाय्यमप्रयच्छतः सामान्यमुपकृन्धतो भोगनिग्रहे
द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ विनाशयतस्तद्विगुणः ॥ ३२ ॥

यदि किरायेदार अपने आप मकान को छोड़े, तो साठभर का बाकी किराया मालिक को अदा करे ॥ ३० ॥ पञ्चायती मकानोंमें (धर्मशाला आदिमें) सहायता न देने वालेको, तथा उसे कार्यमें लानेके लिये रद्दावट करने वालेको १२ पण जुर्माना किया जाय ॥ ३१ ॥ ऐसे मकानोंको जो सराय करे उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

कोष्ठकाङ्गणयर्जानामभिकुङ्कनशालयोः ।

विवृत्तानां च सर्वेषां सामान्ये भोग इष्यते ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थाये तृतीये अधिकरणे वास्तुके गृहवास्तुकमष्टमा अध्यायः ॥८॥

आदितः पञ्चपट्टिरध्यायः ॥६५॥

कोठे और आंगन को छोड़कर अग्निशाला तथा कुङ्कनशाला, और अन्य सब ही खुले स्थानोंका उपयोग सब लोग कर सकते हैं ॥ ३३ ॥

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय ।

६१ प्रकरण ।

वास्तु-विक्रय ।

ज्ञातिसामन्तधनिकाः क्रमेण भूमिपरिग्रहान्क्रेतुमभ्याभवेयुः
॥ १ ॥ ततोऽन्ये वाक्षाः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या गृहप्रतिमुखे
वेश्म श्रावयेयुः ॥ २ ॥

अपने कुटुम्बी, गांवका मुखिया तथा धनीलोग ही क्रमशः मकान या जमीन आदि खरीद सकते हैं ॥ १ ॥ यदि ये खरीदना न चाहें तो दूसरे, गांवसे बाहरके सामन्त तथा उनके चालीस कुलोंतकके पुरखोंको, मकानके सामनेही मकानका दाम सुनाया जाय ॥ २ ॥

सामन्तग्रामवृद्धेषु क्षेत्रमारामं सेतुबन्धं वटाकमाधारं वा
मर्यादासु यथासेतुभोगमनेनार्षेण कः क्रेता इति त्रिराघ्रापितवीत-
मव्याहतं क्रेता क्रेतुं लभेत ॥ ३ ॥

गांवके मुखिया तथा अन्य बृद्ध पुरखोंके सामनेही खेत, वाग, सीमाबन्ध, साहाय, और हाँड़ आदिके, उनकी दैत्यवतके सुतादिङ्क नियम-पूर्वक मूल्यकी, 'इतने दामपर कौन खरीदेगा' इस प्रकार सौनदार आपाज

लगाई जावे, जो खरीदनेवाला बोलीबोले, वह बिना किसी रोकटोकके मकान आदिको खरीद लेवे ॥ ३ ॥

स्पर्धितयोर्वा मूल्यवर्धने मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत्
॥ ४ ॥ विक्रयप्रतिक्रोष्टा शुल्कं दद्यात् ॥ ५ ॥ अस्वामिप्रति-
क्रोशे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६ ॥

बोलीमें स्पर्धापूर्वक मूल्य बढ़ानेपर, शुल्क सहित यदाया हुआ मूल्य सरकारी कोषमें जमा किया जावे ॥ ४ ॥ बेचनेकी बोली बोलनेवाला शुल्क देवे ॥ ५ ॥ मकान मालिककी अनुपस्थितिमें नीलामीके लिये उसके मकानकी-बोली बोलनेपर २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ६ ॥

सप्तरात्रादूर्ध्वमनभिसरतः प्रतिक्रुष्टो विक्रीणीत ॥ ७ ॥
प्रतिक्रुष्टातिक्रमे वास्तुनि द्विशतो दण्डः ॥ ८ ॥ अन्यत्र चतुर्विं-
शतिपणो दण्डः ॥ ९ ॥ इति वास्तुविक्रयः ॥ १० ॥

सूचना देनेपर सात दिनतक यदि मालिक न आवे तो बोली बोलने-वाला पुरुष उसकी अनुपस्थितिमें ही मकान बेच देवे ॥ ७ ॥ कोई पुरुष बोली देनेपर यदि मकान आदि लेनेसे इंकार करे, तो उसपर २०० पण दण्ड किया जाय ॥ ८ ॥ मकान आदिके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंके मामलेमें २४ पण दण्ड देना चाहिये ॥ ९ ॥ यहाँतक मकान आदिके बेचनेका विषय कहा गया है ॥ १० ॥

सीमविवादं ग्रामयोरुभयोः सामन्ताः पञ्चग्रामी दशग्रामी
वा सेतुभिः स्थावरैः कृत्रिमैर्वा कुर्यात् ॥ ११ ॥

दो गांवोंकी सीमाके झगड़ोंका, उन दोनों गांवोंके मुखिया, या आस-पासके पांच गांव अथवा दस गांवके मुखिया, आपसमें मिलकर, स्थायी या बनायटी हद्दचिह्नोंके द्वारा, निर्णय करें ॥ ११ ॥

कर्णकगोपालवृद्धकाः पूर्वभुक्तिका वा बाह्याः सेतूनामन-
भिज्ञा बहव एको वा निर्दिश्य सीमसेतून्विपरीतवेपाः सीमानं
नयेयुः ॥ १२ ॥

गांवके किसान, खाले, वृद्ध, तथा अन्य बाहरके अनुभवी पुरुष बहुत या एक, जोकि हद्दकी टिप्पण्डीसे परिचित नहों, अपने वेपमें परिपक्व करके (देखो मतु. ८, २५६; पाइ० २, १५२) सीमाके चिन्होंको लक्ष्यकर, गांवोंकी सीमाका निर्णय करें, अथवा उसको बनायें ॥ १२ ॥

उद्दिष्टानां सेतूनोमदर्शने सहस्रं दण्डः ॥ १३ ॥ तदेव नीते
सीमापहारिणां सेतुच्छिदा च कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्रनष्टसेतुभागं
वा सीमानं राजा यथोपकारं विभजेत् ॥ १५ ॥

निर्णय किये हुए वा बनाये हुए सीमाके चिन्होंके न देखे जानेपर
अपराधीको १००० पण दण्ड दिये जाय ॥ १३ ॥ यही दण्ड उस पुरुषको
दिया जाय, कि जो सीमाकी भूमिको अपहरण करे या सीमाके चिन्होंको
काटे ॥ १४ ॥ जहापर सीमाके चिन्ह नष्ट होगये हों, कोई निर्णयका सोपान न
मिले, वहाँपर राजा स्वयं इस प्रकार सीमाका विभाग करे कि जिससे किसीको
हानि नहो, अर्थात् सच्ची आम निवासियोंका यथावत् उपकार हो ॥ १५ ॥

क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामद्वयः कुर्युः ॥ १६ ॥ तेषां द्वैर्धीभावै
यतो बहवः श्रुचयोऽनुमता या ततो नियच्छेयुः ॥ १७ ॥ मध्यं
वां गृहीयुः ॥ १८ ॥

खेतोंके झगड़ोंका निर्णय गावके मुखिया गृह पुरुष करें ॥ १६ ॥ यदि
उनका आपसमें एकमत न हो तो बहुतसे धार्मिक, जिसको प्रजा स्वीकार करे,
वेही इनका निर्णय कर देंगे ॥ १७ ॥ या किसीको मध्यस्थ (पक्ष) बनाले,
उसहीके निर्णयानुसार कार्य करें ॥ १८ ॥

तदुभयं परीक्षे वास्तु राजा हरेत् ॥ १९ ॥ प्रनष्टस्वामिकं
च यथोपकारं वा विभजेत् ॥ २० ॥ प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तय-
दण्डः ॥ २१ ॥

यदि इन दोनोंसे भी निर्णय न हो, तो राजा स्वयं उन खेत धार्मिकों
से लेवे ॥ १९ ॥ और उस सम्पत्तिको भी ले लेवे, जिसका कोई मालिक नहीं।
अथवा इनका इस प्रकार विभाग कर देंगे, जिससे कि जनताका अधिकधिक
छांभ हो ॥ २० ॥ जो पुरुष, गकान भूमि आदि स्थायी सम्पत्तिपर बलवत्तर
अपना अधिकार जमावे, उसे चौरोंका दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

कारणादाने प्रयासमाजीवं च परिसंख्याय बन्धं दद्यात्-
॥ २२ ॥ मर्यादापहरणे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ मर्यादाभेदे
चतुर्विंशतिपणः ॥ २४ ॥

परन्तु जो किसी दण आदिके कारण लेवे; तो भूस्वामीके शारीरिकधन
का फल, तथा सम्पत्तिको अगस्त अधिक मूल्य होनेपर वह अधिक धन, उसको
हीक २ दिनाह करके देदेवे ॥ २२ ॥ सीमाके सरफाने, अर्थात् अपनी ओर

मिलानेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ २३ ॥ और सीमा पिन्होंके तोड़नेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

तेन तपोवनविवीतमहापथश्मशानदेवकुलयजनपुण्यस्थान-
विवादा व्याख्याताः ॥ २५ ॥ इति मर्यादास्थापनम् ॥ २६ ॥

इससे तपोवन, चरागाह, यधो सड़कें, श्मशान, देवालय, यज्ञस्थान, तथा अन्य पुण्यस्थान आदिके विवादोंका निर्णय भी समझ लेना चाहिये ॥ २५ ॥ यहाँतक सीमा विषयक विचार किया गया ॥ २६ ॥

सर्व एव विवादाः सामन्तप्रत्ययाः ॥ २७ ॥ विवीतस्थलकेदार
पण्डखलनेश्मवाहनकोष्ठानां पूर्वं पूर्वमाचार्यं सहेत ॥ २८ ॥

सब तरहके विवादोंका निर्णय सामन्त लोग करें ॥ २७ ॥ चरागाह, क्यारियां (जोते जानेवाली भूमि) खलिदान, मकान और घुससाल इनके सम्बन्धमें झगड़ा होनेपर इस प्रकार निर्णय किया जाय, जिससेकि अगलेकी अपेक्षा पहिलेमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े। अर्थात् निर्णयमें उत्तरकी अपेक्षा पूर्वकी प्रधानता ही जावे ॥ २८ ॥

ब्रह्मसोमारण्यदेवयजनपुण्यस्थानवर्जाः स्थलप्रदेशाः ॥ २९ ॥
आधारपरिवाहकेदारोपभोगैः परक्षेत्रकृष्टबीजहिंसायां यथोपघातं
मूल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ केदारारामसेतुवन्धानां परस्परहिंसायां
हिंसाद्विगुणो दण्डः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मारण्य, सोमारण्य, देवस्थान, यज्ञस्थान और अन्य पुण्यस्थानोंको छोड़कर शेष सब ही प्रदेश क्षेत्रके योग्य समझने चाहियें। अर्थात् आवश्यकता होनेपर उपर्युक्त स्थानोंको छोड़, अन्य सभी स्थानोंमें खेती कराई जा सकती है ॥ २९ ॥ जलाशय, नाली, या क्यारी बनाते हुए यदि किसीके खेतमें बोये हुए बीजका नुकसान होजाय, तो उस हानिके अनुसारही उसका मूल्य चुका देना चाहिये ॥ ३० ॥ यदि कोई पुरुष खेत, यागघर्षीचे, और सीमा बन्ध आदिको एक दूसरेके बदले आपसमें नुकसान पहुँचाये, तो नुकसानका दुगना दण्ड उन्हें भुगताना चाहिये ॥ ३१ ॥

पश्चाच्चिविष्टमधरतटाकं नोपरितटाकस्य केदारमुदकेनाप्लाव-
येत् ॥ ३२ ॥ उपरिनिविष्टं नाधरतटाकस्य पूरास्तावं कारयेद-
न्यत्र त्रिवर्षोपरतकर्मणः ॥ ३३ ॥

पीछे घने हुए नीचेके तालाबसे सींचे जानेवाले खेतको ऊपरके तालाब के पानीसे न सींचे ॥ ३२ ॥ नीचेके तालाबम ऊपरके तालाबसे आते हुए पानी को न रोके, यथासंकि नीचेका तालाब तीनवर्ष तक बेकार न पड़ा रहा हो ॥ ३३ ॥

तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३४ ॥ तटाकवामनं च ॥ ३५ ॥ पञ्चवर्षोपरतकर्मणः सेतुबन्धस्य स्वाम्यं लुप्येतान्यत्रा-
पद्भ्यः ॥ ३६ ॥

इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३४ ॥ और तालाबके पानीको निकलवा दिया जाय ॥ ३५ ॥ पाच वर्षतक यदि कोई जलादिका सीमाबन्ध बेकार रहे, तो फिर उसपर उसके स्वामीको स्वत्व नहीं रहता । यदि किन्हीं आपत्तियाके कारण काममें न लाया जासका हो तो कोई हानि नहीं ॥ ३६ ॥

तटाकसेतुबन्धाना नवप्रवर्तने पाञ्चवर्षिकः परिहारः ॥ ३७ ॥
भ्रमोत्सृष्टानां चातुर्वर्षिकः ॥ ३८ ॥ समुपारूढानां त्रैवर्षिकः
॥ ३९ ॥ स्थलस्य द्वैवर्षिकः स्वात्माधाने विक्रये च ॥ ४० ॥

यदि कोई पुरव, तालाब और सीमाबन्ध बिल्कुल नये बनवाये, तो उसपर पाच वर्षतक सरकारी टैक्स न लगाया जाय ॥ ३७ ॥ यदि दूटेकूटे हुआ को ठीक करवाये तो चार वर्ष ॥ ३८ ॥ घने हुएके ऊपर आर बनवावे तो तीन वर्ष ॥ ३९ ॥ तथा भूमिको गिरवी रखनेपर और बेचदेनेपर दो वर्षतक इस महमें सरकारी टैक्स न लिया जावे ॥ ४० ॥

चातप्रावृत्तिमनदीनिबन्धायतनतटाककेदारारामपण्डवपानां
सस्यपर्णभागोत्तरिकमन्येभ्यो वा यथोपकारं दद्युः ॥ ४१ ॥

ऐसे तालाबोंमें, जिनम नदीका पानी न आता हो, वायुसे चलनेवाले रहट आदि लगाकर जो किसान अपने खेतोंमें, बगीचाम, फुलवाडियोंमें पानी देते हैं, उनकी उपजपर सरकार उतनाही टैक्स लगावे, जिसमें उनको किसी प्रकारका कष्ट न हो ॥ ४१ ॥

प्रक्रयावक्रयाधिभागभोगानिसृष्टोपभोक्तारश्चैषां प्रतिकुर्युः ॥ ४२ ॥
अप्रतीकारे हीनद्विगुणो दण्डः ॥ ४३ ॥

जो किसान तालाबके मालिक नहीं है, वे भी निम्नलिखित शर्तोंप पानी ले सकते हैं । मालिकको पानीके अनुसार कीमत देकर, कुछ साहान रूबधा हुआ किराया देकर, अपनी शयनठा कुछ हिस्सा देकर, अथवा जिनके

साहित्यिकोंने झुकी आशा देदी हुई है। परन्तु यह आवश्यक है कि ये चारों उस साहाय्य धार रहूँ आदिकी बराबर मरम्मत करातू रूँ ॥ ४२ ॥ मरम्मत न करानेपर जुगसानले दुगना दण्ड उनको दिया जावे ॥ ४३ ॥

सैतुभ्यो मुखवस्तोयमपारे पदपणो दसः ।

पारे वा तोयमन्येषां प्रमादेनोपरुन्धतः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीय अधिकरणे वास्तुके वास्तुविक्रय सीमाविवाद क्षेत्रविवाद मर्यादास्थापन बाधाबाधिक नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

आदित पदपठितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

अपनी चारी न होनेपर जो पानी लेवे, उसे ६ पण दण्ड दिया जाय, और उसका भी वही दण्ड दिया जाय, जो प्रमादसे, अपनी चारीपर पानी छेतेहुए फा पानी रोके ॥ ४४ ॥

॥ धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें नौवा अध्याय समाप्त ॥

दसवां अध्याय ।

६१. ६० प्रकरण ।

चरागाह और खेतके मार्गोंका रोकना,

तथा नियमका उल्लङ्घन ।

कर्मोदकमार्गमुचितं रुन्धतः कुर्वतोऽनुचितं त्वा पूर्वः साहस-
दण्डः ॥ १ ॥

साधारण क्राय और जलके उचित रास्ताको रोकनेवाल, तथा अनुचित रास्तोंके करवाले पुरषको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥

सैतुकूपपुण्यस्थानचैत्यदेवायतनानि च परभूमौ निवेशयतः
पूर्वानुवृत्तं धर्मसेतुमाधान विक्रयं वा नयतो नाययतो वा मध्यमः
साहसदण्डः श्रौतृणामुत्तमः ॥ २ ॥ अन्यत्र भग्नोत्सृष्टात् ॥ ३ ॥

जो पुरष वृत्तरका भूमिमें सामा, पुण्यस्थान, (धर्मशाळा आदि) चैत्य (अग्निहोत्र) आदि इत्येव पंगवावे, अथवा जो पण्डितेन धर्मार्थ पने हुए मकान को गिरवा रखे, बेच, या विक्रय, उन्हें मध्यमसाहस दण्ड दिया जावे । आदि जो पुरष उत्तरेके सुहायक या साक्षी हों, उनको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ परन्तु यदि वह मकान दूदाकूटा होनेके कारण साहित्यिकने छोड़ दिया हो तो ऐसा करनेमें कोई क्षति नहीं ॥ ३ ॥

स्वाम्यभावे ग्रामाः पुण्यशीला वा प्रतिकुर्युः ॥ ४ ॥ पथि-
ग्रमाणं दुर्गनिवेशे व्याख्यातम् ॥ ५ ॥ क्षुद्रपशुमनुप्यपथं रुन्धतो
द्वादशपणो दण्डः ॥ ६ ॥

मकान मालिकके न होनेपर, ग्रामनिवासी तथा अन्य धार्मिकजन उस
दूटेकूटे धर्मार्थ मकानकी मरम्मत करवायें ॥ ४ ॥ रास्ता कितना चौड़ा
होना चाहिये, इस बातका विवरण (दुर्गनिवेश' (२ अधि, १४ अध्या, १-८
सूत्र) नामक प्रकरणमें कर दिया गया है; ॥ ५ ॥ छोटे २ जानवर और
मनुष्योंके मार्गको रोकने वाले पुरुषको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥

महापशुपथं चतुर्विंशतिपणः ॥ ७ ॥ हस्तिक्षेत्रपथं चतुष्षष्वा-
शत्पणः ॥ ८ ॥ सेतुवनपथं पद्दछतः ॥ ९ ॥ श्मशानग्रामपथं
द्विशतः ॥ १० ॥ द्रोणमुखपथं पञ्चशतः ॥ ११ ॥ स्थानीय-
राष्ट्रविधीतपथं साहस्रः ॥ १२ ॥

यद्दे २ पशुओंके मार्गको रोकनेपर २४ पण, ॥७॥ हाथी और खेतोंके रास्ते
रोकनेपर ५४ पण ॥ ८ ॥ सेतु और बन्दके रास्तोंको रोकनेपर ६०० पण ॥९॥
श्मशान और गावके रास्ते रोकनेपर २०० पण ॥ १० ॥ द्रोणमुखका मार्ग रोकनेपर
५०० पण ॥ ११ ॥ स्थानीय राष्ट्र तथा चरगण्डके मार्ग रोकनेपर १००० पण
दण्ड होना चाहिये ॥ १२ ॥

अतिकर्पणे चैषां दण्डचतुर्था दण्डाः ॥ १३ ॥ कर्पणे पूर्वोक्ताः
॥ १४ ॥ क्षेत्रिकस्याक्षिपतः क्षेत्रमुपवासस्य वा त्यजतो बीजकाले
द्वादशपणो दण्डः ॥ १५ ॥

जो धुरप इन मार्गोंको, खोदने या जोतने आदिके अतिरिक्त और कोई
हानि पहुँचावे, तो उसे उपयुक्त दण्डोंका चौथाई दण्ड दिया जावे ॥ १३ ॥
खोदने या जोतनेपर तो पूर्वोक्त यथोचित सब ही दण्ड होने चाहियें ॥ १४ ॥
गाँवमें रहनेवाला किसान यदि बीज बोनेके समयमें, खेतमें बीज नहीं बोता,
या खेतको छोड़ता है, तो उसे १२ पण दण्ड होना चाहिये ॥ १५ ॥

अन्यत्र दोषोपनिपाताविषयेभ्यः ॥ १६ ॥ करदाः करदेष्वा-
धानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ १७ ॥ ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु ॥ १८ ॥

पदि खेतमें कोई दोष होनेके कारण, यथया कित्ती बाह्य भाकात्मिक
आपत्तिके कारण, या असामर्थ्यके कारण ऐसा नहीं करता, तो कोई-कौय

नहीं ॥ १६ ॥ लगान देनेवाले पुरष लगान देनेवालोंके यहां ही अपनी भूमि सम्पत्तिको गिरवी रख या बेच सकते हैं ॥ १७ ॥ जो भूमिका लगान नहीं देते अर्थात् जिनको धर्मांध भूमि दी हुई है, वे अपने जैसेही पुरषोंके पास अपनी भूमि गिरवी रख, या बेच सकते हैं ॥ १८ ॥

अन्यथा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १९ ॥ करदस्य वाऽकरदग्रामं प्रविशतः ॥ २० ॥ करदं तु प्रविशतः सर्वद्रव्येषु प्राकाम्यं स्यात् ॥ २१ ॥ अन्यत्रागारात् ॥ २२ ॥

इन नियमोंका उल्लङ्घन करनेपर उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥ यही दण्ड उस पुरषको भी दिया जाय जो लगान देनेवाले गांवके निवासको छोड़कर, लगान न देनेवाले गांवमें (निवास करनेके विचारसे) प्रवेश करे ॥ २० ॥ यदि वह फिर भी लगान देनेवालेही गांवमें निवास करने लगता है, तो उसे रहनेके मकानको छोड़कर आकी सब बातोंमें स्वतन्त्रता देदी जावे ॥ २१, २२ ॥

तदप्यस्मै दद्यात् ॥ २३ ॥ अनादेयमकृपतोऽन्यः पञ्चवर्षी-
ण्युपभुज्यप्रयासनिष्क्रयेण दद्यात् ॥ २४ ॥

अथवा उचित समझनेपर मकान भी उसको देदिया जावे ॥ २३ ॥ जो पुरष अपनी भूमिको नहीं जोतता, उसको दूसरा पुरष बिना लगान दिये ही जोत लेवे, और पांचवर्ष तक उसका उपभोगकर मालिकको वापस कर देवे। परन्तु जो खर्चा या मेहनत उस भूमिको ठीक करनेमें लगा है, उसका मूल्य मालिकसे वसूलकर लेवे ॥ २४ ॥

अकरदाः परत्र वसन्तो भोगमुपजीवियुः ॥ २५ ॥ ग्रामार्थेन
ग्रामिकं व्रजन्तमुपवासाः पर्यायेणानुगच्छेपुरननुगच्छन्तः पणार्ध-
पणिकं योजनं दशुः ॥ २६ ॥

जो लोग लगान नहीं देते, अर्थात् जिनके पास धर्मांध भूसम्पत्ति है, वे दूसरे स्थानोंमें रहते हुए भी अपनी सम्पत्तिके पूरा अधिकारी हैं ॥ २५ ॥ जब गांवका मुखिया गांवके किसी कामके लिये बाहर जावे, तो ग्रामनिवासी नभरवार उसके साथ जायें। न जानेपर १/२ पण, योजनके हिसाबसे श्रमाना देयं (१ योजन=५/४ मील) ॥ २६ ॥

ग्रामिकस्य ग्रामादस्तेनपारदारिकं निरस्यश्चतुर्विंशतिपणो
दण्डः ॥ २७ ॥ ग्रामस्योत्तमः ॥ २८ ॥

यदि गावका मुखिया, चोर और ब्यभिचारीके अतिरिक्त अन्य किसीको गावसे बाहर निकाले, तो उसे (मुखियाको) २४ पण दण्ड दिया जाय ॥२७॥ यदि सारा गाव मिलकर ऐसे व्यक्तिको (चोर और ब्यभिचारीसे अतिरिक्त) गावसे बाहर निकालना चाहे, तो उसे (गावको) उत्तम साहास दण्ड दिया जाय ॥२८॥

निरस्तस्य प्रवेशो ह्यधिगमेन व्याख्यातः ॥ २९ ॥ स्तम्भैः
समन्ततो ग्रामाद्बनुःशतापकृष्टमुपशालं कारयेत् ॥ ३० ॥

इस कथनसे, गावसे बाहर हुए पुरपका फिर गावमें घसना भी समझ लेना चाहिये । (इसका तात्पर्य यह है, कि घसनेके लिये कहीं बाहरसे आवे हुए पुरपको, यदि गावका मुखिया गावमें न घसने दे, तो उस (मुखियाको) २४ पण दण्ड, और इसी अपराधमें गावको उत्तम साहास दण्ड दिया जाय) ॥ २९ ॥ चारों ओर रुकावटके लिये खम्भे लगाकर, गावसे ४०० हाथकी दूरीपर एक बाटा (जो जोता चोया न जावे) बनवावे, जहाँ पशु आदि बैठ सकें ॥ ३० ॥

पशुप्रचारार्थं विवीतमालपनेनोपजीवेषुः ॥ ३१ ॥ निवीतं
भक्षयित्वावसृतानामुष्ट्रमहिषाणां पादिकं रूपं गृहीयुः ॥ ३२ ॥
गवाश्चरराणां चार्धपादिकम् ॥ ३३ ॥ क्षुद्रपशूनां षोडशभागि-
कम् ॥ ३४ ॥

पशुओंके घूमने और चरने बैठनेके लिये जगलोंमें चरागाह बनवावे ॥ ३१ ॥ चरागाहमें चरकर यदि ऊँट और बैल आदि बड़े २ पशु अपने घर चले जाते हैं (अर्थात् वे चरागाहमें नहीं बैठते या रहते, उनके मालिक इनको सिर्फ चराकर ले जाते हैं) तो उनके मालिकोंसे, प्रति पशुक चरनेक बदलम २ पणके हिसाबसे कर लिया जाय ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार गाय, घोड़े, गधे आदि जो मध्यम आणके पशु हैं, उनके चरणेके लिये १ पण कर लिया जाय ॥३३॥ छोटे पशु भेड़ बकरी आदिके लिये १/४ पण लिया जाय ॥ ३४ ॥

भक्षयित्वा निपण्णानामेत एव द्विशुणा दण्डाः ॥ ३५ ॥
परिवसतां चतुर्गुणाः ॥ ३६ ॥ ग्रामदेवघृषा वा अनिर्देशाहा वा
धेनुरुक्षाणो गोवृषाश्चादण्डवाः ॥ ३७ ॥

जा जानवर चरकर बैठते भी यहाँ पर हैं, उनके लिये, पहिलेके अनुसार हुगना कर लिया जावे ॥ ३५ ॥ और जो चराघर रहते भी यहाँ पर हैं, उनके

लिये चौगुना ॥ ३९ ॥ ग्राम देवताके नामसे छुटे हुए सांडों, दस दिनकी ब्याही हुई गायें, तथा गोभोग रहनेवाले बिजारोंका कोई कर न लिया जाय ॥ ३७ ॥

सस्यभक्षणे सस्योपघातं निष्पत्तितं परिसंख्यायं द्विगुणं दापयेत् ॥ ३८ ॥ स्वामिनश्चानिवेद्ये चारयतो द्वादशपर्णा दण्डः ॥ ३९ ॥ प्रमुञ्चतश्चतुर्विंशतिपण ॥ ४० ॥

यदि किसीका जानवर, किसीके खेतमें खड़े भक्षणो खाजावे, तो अन्नके खुबसानकी गणना करके, उससे दुगना दाम अन्नके मालिक को दिलाया जावे ॥ ३८ ॥ खेतके मालिकमे छिपाकर, जा अपने पशुको उसके खेतमें चराता है, उसको १२ पण दण्ड दिया जाव ॥ ३९ ॥ जो अपने पशुको किसीके खेतमें चरनेके लिये खुला छोड़ देता है, उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४० ॥

पालिनामर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तदेव पण्डभक्षणे कुर्यात् ॥ ४२ ॥ वाटमेदे द्विगुणः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार खेतोंका खुबसान होनेपर, खेतोंकी रखवाली करनेके लिये नियुक्त किये गये पुरुषपर, ऊपर कहे गये दण्डोंको आधा दण्ड होता चाहिये ॥ ४१ ॥ यदि खेतमें आकर सांड खाये, तो भी रखवाली करने वालेको इतना ही दण्ड दिया जाव ॥ ४२ ॥ खेतकी वाट दूट जानपर, रखवाली करने वालेको दुगना दण्ड दिया जाव ॥ ४३ ॥

वेश्मखलवलयगतानां च धान्यानां भक्षणे हिंसाप्रतीकारं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभयवनमृगाः परिगृहीता भक्षयन्तः स्वामिनो निवेद्य यथावध्यास्तथा प्रतिपेद्भव्याः ॥ ४५ ॥

घर, खलिहान, और कहा धिरी जगहों में रक्खे हुए अन्नको यदि पशु खालव, ता हानिक बराबर मूल्य देना चाहिये ॥ ४४ ॥ आश्रमवासी मृग यदि खेतोंमें चरते हुए पकड़े जाव, ता रखवालेको चाहिये कि वह इस बातकी खबर अपने मालिक का दे देव, और उन मृगा को घहा से इस प्रकार हटावे, जिसस कि घ मरें नहा, या उनके कोई गहरी चोट न आवे ॥ ४५ ॥

पशवो रश्मिप्रतोदाभ्यां वारयितव्याः ॥ ४६ ॥ तेषामिन्यथा हिंसायां दण्डपारुष्यदण्डाः ॥ ४७ ॥ प्रार्थयमाना दृष्टापरार्थावा सर्वोपायैर्नियन्तव्याः ॥ ४८ ॥ इति क्षेत्रपथहिंसाः ॥ ४९ ॥

पशुआका रस्ता या कोदेल हटाना चाहिये ॥ ४६ ॥ उनका और किसी शक्ति मारन या हटान पर 'दण्ड पारुष्य' प्रकरण स्थित वाचित दण्ड दिये

जाय ॥ ४७ ॥ परन्तु जो पशु, हटाने वाले पुरुष का मुकाबला करें, तथा पहिले भी कितों को मारते हुए देखे गये हों, उन्हें सब ही उपायोंसे दमन करना चाहिये ॥ ४८ ॥ यहा तक खेत और मार्गोंकी इतनी के विषयमें निरूपण किया गया ॥ ४९ ॥

कर्पकस्य ग्राममभ्युपेत्याकुर्वतो ग्राम एवात्ययं हरेत् ॥५०॥
कर्माकरणे ऽर्मेवेतनद्विगुणं हिरण्यदानं प्रत्यंशद्विगुणं भक्ष्यपेय-
दाने च प्रवहणेषु द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५१ ॥

यदि कोई किसान गावमें आकर, पचायती या खेती आदिका काम न करे, तो उसपर किये गये गुमानेको गांव ले लेवे । अर्थात् राजा नहीं लेसकता ॥ ५० ॥ काम न करनेपर कार्यके वेतनसे दुगना, समुदाय कार्योंमें अपने हिस्सेका चन्दा अदि न देने पर उसका दुगना, और रोट तथा पचायती पांत (पोजन) आदिक अवसर पर अपने हिस्सेका ख न देनेका खर्च न देने पर भी उसका दुगना ही दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥

प्रेक्षयामनंशदः सस्त्रजनो न प्रेक्षेत ॥ ५२ ॥ प्रछन्नश्ववणे-
क्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५३ ॥

यदि कोई शक्ति गावके सार्वजनिक खेल तमाशामें बपय करनेके लिये अपना हिस्सा न देवे, तो वह और उसके घरके सब लोग तमाशा न देखने पावें ॥ ५२ ॥ यदि छिपकर ये तमाशा देखे या सुनें, और जो गावके सर्वहितकारी कामोंमें हिस्सा लनेसे अपने आपको छिपावें, तो ये अपने हिस्सेका दुगना उन कार्योंमें बपय करनेके लिये देवे ॥ ५३ ॥

सर्वहितमेकस्य हुनतः कुर्युराज्ञाम् ॥ ५४ ॥ अकरणे द्वादश-
पणो दण्डः ॥ ५५ ॥ तं चेत्संभूय वा हन्युः पृथगेपामपराध-
द्विगुणो दण्डः ॥ ५६ ॥

जो कोई एक पुरुष, सबके कटपाणकी यात कहे, उसकी आज्ञाको गावके सबही लोग माने ॥ ५४ ॥ आज्ञा न माननेपर सपको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५५ ॥ यदि गावके सब लोग मिलकर उस एक व्यक्तिको मारे, तो मारने वालोंमें हर एकको अलहदा २ अराधसे द्वा दण्ड दिया जावे ॥ ५६ ॥

उपहन्तुषु विशिष्टः ब्राह्मणतथैषां ज्येष्ठं नियम्येत ॥ ५७ ॥
पवहणेषु चैषां ब्राह्मणा नाकामाः कुर्युः ॥ ५८ ॥

यदि मारनेवालोंमें कोई ब्राह्मण हो, या ब्राह्मणसे भी कोई श्रेष्ठ व्यक्ति हो, उसको सबसे अधिक दण्ड दिया जाय ॥ ५७ ॥ यदि सार्वजनिक कार्योंमें कोई ब्राह्मण काम करनेकी अभिलाषा न रखता हो, तो गांधके अन्य पुरपही मिलकर उस कार्यको करलें ॥ ५८ ॥

अंशं च लभेरन् ॥ ५९ ॥ तेन देशजातिकुलमंधानां समय-
स्थानपाकर्म व्याख्यातम् ॥ ६० ॥

परन्तु धनके लिये जो भाग ब्राह्मणकी ओर आवे, उसे वे अवश्य लेंगे ॥ ५९ ॥ इससे देश, जाति, कुल और अन्य समूहोंके नियमोद्घटनकी व्यवस्थाको भी समझ लेना चाहिये ॥ ६० ॥

राजा देशहितान्सेतून्कुर्वतां पथि संक्रमात् ।

ग्रामशोभाश्च रक्षाश्च तेषां प्रियहितं चरेत् ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थायी वृत्तायेऽधिकरणे रास्तुके चित्रितक्षेत्रपथादिसा दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वास्तुक्र समाप्तम्

समयस्थानपावर्गं च । आदित सप्तपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

जो पुरुष मिलकर जनताके आरामके लिये सड़कोपर मकान बनाते हैं, हर तरफसे गांधकी शोभाको बढ़ाते और उनकी रक्षा करते हैं, राजाको चाहिये कि उनकी अनुकूलता और फलदायकता सदा ध्यान रखे ॥ ६१ ॥

धर्मस्थायी तृतीय अधिकरणमें द्मचां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

ई३ प्रकरण ।

ऋण लेना ।

सपादपणा धर्म्या मामवृद्धिः पणग्रतस्य ॥ १ ॥ पञ्चपणा
व्यावहारिकी ॥ २ ॥ दशपणा कान्तारकाणाम् ॥ ३ ॥ विंशति-
पणा सामुद्राणाम् ॥ ४ ॥

१०० पणपर एक महीनेमें १२ पण व्याज लेनाही ठीक है ॥ १ ॥
दशपारी लोगोंसे ५ पण व्याज लेना चाहिये ॥ २ ॥ जंगलोंमें रहनेवालों या
पहाड़ी व्यापार करनेवालोंसे १० पण ॥ ३ ॥ और समुद्रमें जानेजाने वाले या
पहाड़ी व्यापार करनेवालोंसे २० पण व्याज लेना चाहिये ॥ ४ ॥

ततः परं कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ श्रोतृ-
णामेकैकं प्रत्यर्घदण्डः ॥ ६ ॥ राजन्ययोगक्षेमवहे तु धनिक-
धारणिकयोश्चरित्रमपेक्षेत ॥ ७ ॥

इससे अधिक लेने देनेवालोंको प्रथम साहस दण्ड दिया जाये ॥ ५ ॥
और इनके साक्षियोंमेंसे प्रत्येकको आधा दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ यदि भ्रण
द्वेने और लेनेवालेके आपसके सौदेपर राज्यकी कुछ सुख समृद्धि या कल्याणका
निर्भर हो, तो सरकारको चाहिये कि यह उनके चरित्रकी बराबर निगरानी
रखे ॥ ७ ॥

धान्यवृद्धिः सस्यनिष्पत्तावुपार्धावरं मूल्यकृता वर्धेत ॥ ८ ॥
प्रक्षेपश्चाद्विरुदयादर्धं संनिधानसन्ना वार्षिकी देया ॥ ९ ॥

यदि भ्रम सस्यन्धी व्याज फसलके मौकेपर चूकता करना हो, तो उस
समयतक व्याजकी संख्या मूलधनकी आधी रकमसे अधिक न होनी चाहिये
॥ ८ ॥ गोदामके इकट्ठे बचे हुए मालपर (उसी समय मूल्य न मिलनेपर)
लाभका आधा व्याज होना चाहिये । और उसका हिसाबकिताब कमसे कम
षण्में एकवार अवश्य हो जाय (तात्पर्य यह है देवदत्तके पास गोदाममें १०६०)
का माल भरा हुआ है, यज्ञदत्तने उसको खरीद लिया, परन्तु उसके पास
फौरन दे देनेके लिये रपया नहीं है, ऐसी दशामें देवदत्त रपयोंका सूद मांगेगा,
जैसे २ यज्ञदत्त उस मालको ब्रेघता रहेगा, देवदत्तका धन और सूद चुकाता
रहेगा, उस व्याजकी तादात यज्ञदत्तको होनेवाले नपेसे आधी होनी चाहिये ।
अर्थात् नफेका आधा यज्ञदत्त और सूदकी शकलमें आधा देवदत्त ले लेवे । इस
प्रकारके लेनेदेनका हिसाब षण्में एकवार अवश्य हो जाना चाहिये) ॥ ९ ॥

चिरप्रवासस्तम्भप्रविष्टो वा मूल्यद्विगुणं दद्यात् ॥ १० ॥
अकृत्वा वृद्धिं साधयेतो वर्धयतो वा मूल्यं वा वृद्धिमारोप्य श्राव-
यतो बन्धचतुर्गुणो दण्डः ॥ ११ ॥

यदि देरतक विदेशमें चले जानेके कारण, या अन्य किसी कारणसे
जानवृत्तकर माल खरीदनेवाला उसे नहीं निकालता, तो वह मालके असली
मूल्यका दुगुना (जिससे माल खरीदा है उसको) देवे ॥ १० ॥ व्याज पूरा न
होनेपर, पहिलेही व्याज लेनेके लिये जो अधमणको तंग करे, अथवा व्याजको
मूलधनमें जोड़कर मूलधनके नामसेही उतना रपया मांगे, इसे मांगे हुए धन
का चतुर्गुना दण्ड होना चाहिये ॥ ११ ॥

तुच्छचतुरश्रावणायामभूतचतुर्गुणः ॥ १२ ॥ तस्य त्रिमा-
समांदाता दद्यात् ॥ १३ ॥ शेषं प्रदाता ॥ १४ ॥

थोहा धन देकर 'बहुत दिया है' इस प्रकार साक्षियोंके सुनानेपर, जितना साक्षी सुनाये, उससे चौगुना दण्ड उन्हे (अधमर्ण और उत्तमर्ण दोनों को) दिया जाय ॥ १२ ॥ उसके तीन भाग, ऋण लेनेवाला अर्थात् अधमर्ण अदा करे ॥ १३ ॥ और बाकी हिस्सा उत्तमर्ण ॥ १४ ॥

दीर्घसत्त्रव्याधिगुरुकुलोपरुद्धं बालमसारं वा नर्णमनुवर्धेत
॥ १५ ॥ मुच्यमानमृणमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १६ ॥

'बहुत कालतक होनेवाले यज्ञमें घिरे हुए, व्याधिग्रस्त, तथा गुरुकुलमें अध्ययन करते हुए व्याधिपर, इसी प्रकार बालक या - शक्तिहीन पुरुषपर जो ऋण हो, उसपर ब्याज नहीं लगाया जा सकता ॥ १५ ॥ यदि अधमर्णके द्वारा ऋणकी अन्तिम रकम अदा करनेपर उत्तमर्ण उसे नहीं लेता, तो उस (उत्तमर्ण) पर १२ पण दण्ड किया जाय ॥ १६ ॥

कारणापदेशेन निवृत्तवृद्धिकमन्यत्र तिष्ठेत् ॥ १७ ॥ दश-
वर्षोपेक्षितमृणमप्रतिग्राह्यमन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषित-
देशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ १८ ॥

यदि ग लेनेमें कोई विशेष कारण हो, तो वह रकम बिना ही सूद के और कहीं जमा करदी जाये ॥ १७ ॥ यदि कोई उत्तमर्ण दस बरसके भीतर २ अपना ऋण बसूल नहीं कर लेता, तो फिर उस धनके ऊपर उसको कोई अधिकार नहीं रहता । परन्तु यदि वह धन बालक, वृद्ध, बीमार, आपहस्त, विदेशमें गये हुए, देशत्यागी या रीजकीय कार्यों के कारण बाहर गये हुए व्यक्तिका हो, तो वे दस बरसके बाद भी दरावर उस धनके अधिकारी रहते हैं ॥ १८ ॥

श्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दक्षुः ॥ १९ ॥ दायादा वा रिक्थहराः
सहग्राहिणः प्रतिमुवो वा ॥ २० ॥ न प्रातिभाव्यमन्यदसारं
बालप्रातिभाव्यम् ॥ २१ ॥

मृत अधमर्ण व्यक्तिके पुत्र उसके ऋणको चुकावे ॥ १९ ॥ अथवा उसकी स्थायी सम्पत्तिको लेनेवाले दायादागी, या साथ २ काम करने वाले उसके जामिन हिस्सेदार, उस ऋणको चुकावे ॥ २० ॥ इनके अतिरिक्त और कोई उस (मृत) के ऋण का जामिन नहीं हो सकता । बालक या जामिन होना तो सर्वथा अयुक्त है ॥ २१ ॥

असंख्यातदेशकालं तु पुत्राः पौत्रा दायदा वा रिक्तं हर-
माणा द्युः ॥ २२ ॥ जीनितविवाहभूमिप्रातिभाव्यमसंख्यात
देशकालं तु पुत्राः शौत्रा वा वहेयुः ॥ २३ ॥

ऐसे ऋणको, जिसका स्थान और समय निश्चित नहीं, रथाधी सम्पत्ति
को लेनेवाले पुत्र, पात्र या अन्य वायभागी अदा करे ॥ २२ ॥ आजीविका,
विवाह, और भूमिके लिये, लिये हुए धनको, तथा किसी का जामिन होने के
कारण अदा किये जान वाले धनको (इसका तात्पर्य यह है कि किसी ने किसी
का जामिन बनकर उसको कहीं से ऋण दिला दिया, ऋण लन वाले ने फिर उसे
अदा करनेका नामही न लिया, तब वह धन उस जामिन को अदा करना पड़ेगा,
यदि वह भी मर जावे तो) उसके पुत्र पात्र हा लुकाव ॥ २३ ॥

नानर्णसमवाये तु नैकं द्वौ युगपदभिवदेयातामन्यत्र प्रतिगु-
मानात् ॥ २४ ॥ तत्रापि गृहीतानुपूर्व्या राजश्रोत्रियद्रव्यं वा
पूर्वं प्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥

अनेक न्याक्तियोंके ऋणी किसी एक अधमर्ण पर एकही साथ अनेक उक्त
मर्ण मुकदमा नहीं चला सकते । परन्तु यदि वह अधमर्ण कहीं विद्वशको जा
रहा हो, तो उसपर एक साथ मुकदमा चलाया जा सकता है ॥ २४ ॥ मुकदमा
चलाने पर फसलेके बाद, ऋणकी चुकाई, ऋण लिये जानेवे क्रमके अनुसार ही
होनी चाहिये । यदि उसके पास राज या किसान ब्राह्मणका भी ऋण हो, तो
उसे सबसे पहिले चुकता करलेना चाहिये ॥ २५ ॥

दम्पत्योः पितापुत्रयोः आतृणां चात्रिभक्तानां परस्परकृत-
मृणमसाध्यम् ॥ २६ ॥ अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरोपाश्च
॥ २७ ॥

भार्या पति, पिता पुत्र, इकट्ठे रहने वाले भाई, इनके परस्पर एकदमरे
से लिये हुए ऋणका निर्णय नहीं किया जासकता ॥ २६ ॥ काय करनव समाय
में, किसान और राजकर्मचारियों का ऋण क लिये गिरफ्तार नहीं किया जा
सकता ॥ २७ ॥

स्त्री चाप्रतिश्रापिणी पतिकृतमृणमन्यत्र गोपालकार्द्वसीति-
केभ्यः ॥ २८ ॥ पतिस्तु ग्राह्यः ॥ २९ ॥

पतिके लिये हुए ऋणके सम्बन्धम स्त्रीको द्याव नहीं डाला जासकता,
जबकि वह उस ऋणको चुकाना सज्ज नहीं करना । परन्तु ग्राह

प्रकार के उन पुरषों, जिनकी कि जीविका कुछ न कुछ छियों पर निर्भर है (अर्द्धसाक्षिक) के लिये हुए ऋणको उनकी छियों भी (पतिकों अनुपस्थितिमें) अदा करनेकी जिम्मेदार है। अर्थात् वे उसे चुकानेसे इन्कार नहीं कर सकतीं ॥ २८ ॥ परन्तु छीके लिये हुए ऋणके सम्बन्धमें पतिकों बराबर पकड़ा जासकता है ॥ २९ ॥

स्त्रीकृतमृणमप्रतिविधाय प्रोपित इति संप्रतिपचायुत्तमः
॥ ३० ॥ असंप्रतिपर्त्ता तु साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३१ ॥

स्त्रीके ऋणको न चुकानेपर, यदि कोई पुरष उसमें बचनेके खयालमें बहाना करके विदेश चला जाय, तो इस बातके सिद्ध होने पर उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥३०॥ यदि विदेश जानेमें यह कारण सिद्ध न होमके, तो जैसा साक्षी कहें उसके अनुसार कार्य किया जाय ॥ ३१ ॥

प्रात्ययिकाः शुचयोऽनुमता वा त्र्यचरा अर्ध्याः ॥ ३२ ॥
पक्षानुमतौ वा द्वौ ॥ ३३ ॥ ऋणं प्रति न त्वेवैकः ॥ ३४ ॥

विश्वासी, पवित्र चरित्र, तथा दोनों पक्षोंके अनुमत, कमसे कम तीन साक्षी होने चाहियें ॥ ३२ ॥ अथवा दोनों पक्षोंके अनुमत दो साक्षी भी हो सकते हैं ॥ ३३ ॥ ऋणके मामलोंमें तो एक साक्षी कदापि न होना चाहिये। अर्थात् दो या दो से अधिक ही साक्षी होने आवश्यक है ॥ ३४ ॥

प्रतिपिद्धाः स्यालसहायाबद्धधनिकधारणिकवैरिग्यङ्गधृत-
दण्डाः ॥ ३५ ॥ पूर्वे चाव्यवहार्याः ॥ ३६ ॥

साला, सहायक, आयुक्त (निसका जीवन किमी एक व्यक्ति पर सर्वथा निर्भर है, गभंदास शीतदास आदि) धनिक (उत्तमणं) धारणिक (अधमणं) शत्रु, अहर्दीन तथा राज्यसे दण्डित पुरष साक्षी नहीं होसकते ॥ ३५ ॥ पहिले जो साक्षी बतलाये हे, (३२ सूत्रमें) वे भी, यदि व्यवहारको जानने वाले नहीं तो साक्षी नहीं होसकते ॥ ३६ ॥

राजश्रोत्रियग्रामभृतकुष्ठिव्रणिनः पतितचण्डालकुत्सितकर्माणो
॥ ३७ ॥ अन्धवधिरभूकाहंवादिनः स्त्रीराजपुरुषाश्चान्यत्र स्वर्गैर्म्यः ॥ ३७ ॥

राजा, वेदवक्ता ग्राहण, गावका मुखिया, कोई, जिसके शरीर पर बहुत मोडे फुन्सी या घाव हैं, पतित, चण्डाल, जीचकर्म करने वाले, अन्धे, बहरे, मूरे, धमण्टी, स्त्री और राजकर्मचारी ये अपने धर्मोंको छोड़कर अन्यत्र साक्षी नहीं होसकते ॥ ३७ ॥

पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिस्थालसहायवर्जाः ॥ ३८ ॥
रहस्यव्यवहारेष्वेका स्त्री पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्वाद्रा-
जतापसवर्जम् ॥ ३९ ॥

परन्तु पारुष्य, चोरी और व्यभिचारके मामलोंमें शत्रु, सखे और सहायक को छोड़कर, चाकी ये सब ही साक्षी होसकते हैं ॥ ३८ ॥ छिपे हुए गुप्त मामलोंमें अकेली स्त्री, और राजा तथा तपस्वीको छोड़कर, सुनने या देखने वाला अकेला पुरुष साक्षी होसकता है ॥ ३९ ॥

स्वामिनो भृत्यानामृत्विगाचार्याः शिष्याणां मातापितरौ
पुत्राणां चानिग्रहेण साक्ष्यं कुर्युः ॥ ४० ॥ तेषामितरे वा ॥ ४१ ॥

मालिक नौकरोंके, ऋत्विग् या आचार्य शिष्योंके, माता और पिता पुत्रोंके, तथा इसी प्रकार नौकर आदि मालिक आदिके परस्पर खुले तौर पर साक्षी हो सकते हैं ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥

परस्पराभियोगे चैयामुत्तमाः परोक्ता दशबन्धं दशुरवराः
पञ्चबन्धम् ॥ ४२ ॥ इति साक्ष्यधिकारः ॥ ४३ ॥

इनका आपसमें ही हगदर होनेपर, यदि उत्तम अर्थात् मालिक, आचार्य, माता पिता आदि, अभियोगमें पराजित हो जाय, तो अचर अर्थात् अपनेसे नीचे नौकर, शिष्य आदिको, पराजित धनका दसवा भाग देवे । और यदि नौकर आदि हार जायें, तो अपने स्वामी आदिको हारे हुए धनका पांचवा हिस्सा देवे ॥ ४२ ॥ यहाँ तक साक्षी के सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणोदकुम्भाग्निस्काशे साक्षिण परिगृह्णीयात् ॥ ४४ ॥
तत्र ब्राह्मणं श्रूयात्सत्यं नूहीति ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण, जलसे भरा हुआ घटा, अथवा अग्निके पास साक्षी को ले जाया जाय ॥ ४४ ॥ यदि साक्षी ब्राह्मण हो तो घटा पर उससे "सच बोलो" यह कहा जाय ॥ ४५ ॥

राजन्यं वैश्यं वा मा तवेष्टापूर्तफलं कपालहस्तः शत्रुबलं
भिक्षार्थी गच्छेरिति ॥ ४६ ॥

यदि क्षत्रिय और वैश्य हो, तो उनसे "तुमको दृष्ट (यज्ञ आदि) और पूरे (धर्मशाला, कुआ, धर्मके आदि जगतावे) हितके लिये धनदाने) का कोई फल न मिले, तुम अपनी शत्रु सेनाको जीतकर दायमें खम्पर लेकर भिक्षा मांगते फिरो, (यदि सच न बोलो)" इस प्रकार कहा जाय ॥ ४६ ॥

प्रकार के उन पुरुषों, जिनकी कि जीविका कुछ न कुछ छियों पर निर्भर है (अर्द्धसाक्षिक) के लिये हुए ऋणको उनकी छियां भी (पतिकी अनुपस्थितिमें) अदा करनेकी जिम्मेदार हैं। अर्थात् वे उसे चुकानेसे इन्कार नहीं कर सकती ॥ २८ ॥ परन्तु छीके लिये हुए ऋणके सम्बन्धमें पतिकी बराबर परका जासकता है ॥ २९ ॥

स्त्रीकृतमृणमप्रतिविधाय प्रोपितं इति संप्रतिपचावुत्तमः
॥ ३० ॥ असंप्रतिपत्ता तु साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३१ ॥

छीके ऋणको न चुकानेपर, यदि कोई पुरुष उससे बचनेके ब्यालसे बहाना करके विदेश चला जाय, तो इस बातके सिद्ध होने पर उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥३० ॥ यदि विदेश जानेमें यह कारण सिद्ध न होसके, तो जैसा साक्षी कहें उसके अनुसार कार्य किया जाय ॥ ३१ ॥

प्रात्ययिकाः शुचयो ऽनुमता वा त्र्यवरा अथ्याः ॥ ३२ ॥
पक्षानुमतौ वा द्वौ ॥ ३३ ॥ ऋणं प्रति न त्वेवैकः ॥ ३४ ॥

विश्वासी, पवित्र चरित्र, तथा दोनों पक्षोंके अनुमत, कमसे कम तीन साक्षी होने चाहिये ॥ ३२ ॥ अथवा दोनों पक्षोंके अनुमत दो साक्षी भी हो सकते हैं ॥ ३३ ॥ ऋणके मामलोंमें तो एक साक्षी कदापि न होना चाहिये। अर्थात् दो या दो से अधिक ही साक्षी होने आवश्यक हैं ॥ ३४ ॥

प्रतिपिद्धाः स्यालसहायावद्धधनिकधारणिकवैरिभ्यद्भृत-
दण्डाः ॥ ३५ ॥ पूर्वे चाव्यवहार्याः ॥ ३६ ॥

साला, महायक, आवद्ध (जिसका जीवन किसी एक व्यक्ति पर सर्वथा निर्भर है, गभेदास शोतदास आदि) धनिक (उत्तमर्ण) धारणिक (अधमर्ण) शत्रु, अद्रहीन तथा राज्यसे दण्डित पुरुष साक्षी नहीं होसकते ॥ ३५ ॥ पहिले जो साक्षी बनलाये हें, (३२ सूत्रमें) वे भी, यदि व्यवहारको जानने वाले नहीं तो साक्षी नहीं होसकते ॥ ३६ ॥

राजश्रोत्रियग्रामभृतकुष्ठित्राणिनः पतितचण्डालकुत्सितकर्माणो
ऽन्धबधिमूकाहंवादिनः स्त्रीराजपुरुषाथान्यत्र स्ववर्गोभ्यः ॥ ३७ ॥

राजा, वैश्वकर्ता माँझण, गांवका मुखिया, कोठी, जिसके द्वारपर बहुत फोड़े कुन्सी या घाय हैं; पतित, चण्डाल, जाँचकर्म करने वाले, अन्धे, बहरे, मूगे, धमण्डो; स्त्री और राजकर्मचारी ये अपने वर्गोंको छोड़कर अन्यत्र साक्षी नहीं होसकते ॥ ३७ ॥

पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिस्थालसहायवर्जाः ॥ ३८ ॥
 रहस्यव्यवहारेष्वेका स्त्री पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्याद्रा-
 जतापसवर्जम् ॥ ३९ ॥

परन्तु पारुष्य, चोरी और व्यभिचारके मामलोंमें शत्रु, साले और सहायक को छोड़कर, बाकी ये सब ही साक्षी होसकते हैं ॥ ३८ ॥ छिपे हुए गुप्त मामलोंमें अकेली स्त्री; और राजा तथा तपस्विको छोड़कर, सुनने या देखने वाला अकेला पुरुष साक्षी होयकता है ॥ ३९ ॥

स्वामिनो भृत्यानामृत्विगाचार्याः शिष्याणां मातापितरौ
 पुत्राणां चानिग्रहेण साक्ष्यं कुर्युः ॥ ४० ॥ तेषामितरे वा ॥ ४१ ॥

मालिक नौकरोंके, स्तितिरु या आचार्य शिष्योंके, माता और पिता पुत्रोंके; तथा इसी प्रकार नौकर आदि मालिक आदिके परस्पर खुले तौर पर साक्षी हो सकते हैं ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥

परस्पराभियोगे चैषामुत्तमाः परोक्ता दशबन्धं दशुरवराः
 पञ्चबन्धम् ॥ ४२ ॥ इति साक्ष्यधिकारः ॥ ४३ ॥

इनका आपसमें ही दस दश होनेपर, यदि उत्तम अर्थात् मालिक, आचार्य, माता पिता आदि, अभियोगमें पराजित हो जावे, तो अदर अर्थात् अपनेसे नीचे नौकर, शिष्य आदिको, पराजित धनका दसवा भाग देवे। और यदि नौकर आदि हार जायें, तो अपने स्वामी आदिको हार हुए धनका पांचवा हिस्सा देवे ॥ ४२ ॥ यहा तक साक्षी के सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणोदकुम्भामिसकाशे साक्षिण परिगृह्णीयात् ॥ ४४ ॥
 तत्र ब्राह्मणं ब्रूयात्सत्यं ब्रूहीति ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण, जलसे भरा हुआ घड़ा, अथवा आगिके एत साक्षी को ले जाया जाय ॥ ४४ ॥ यदि साक्षी ब्राह्मण हो तो यहां पर उससे "सच बोलो" यह कहा जाय ॥ ४५ ॥

राजन्यं वैश्यं वा मा तवेष्टापूर्तफलं कपालहन्तः शत्रुवत्
 भिक्षार्थी गच्छेरिति ॥ ४६ ॥

यदि क्षत्रिय और वैश्य हो, तो उनसे 'कुम्भके दह (घर लाने) और पूते (धर्मशाळा, पुआ, पगीचे आदि जनताके दिलके लिये बदरने) के कुम्भके फल न मिले, तुम अपनी शत्रु सेनाको जीतवा इससे खतर लेश न भि-
 मार्गने फिलो, (यदि साथ न बोलो)'' इस प्रकार का उक्त ॥ ४६ ॥

। १३ शूद्रं जन्ममरणान्तरे यद्वः पुण्यफलं तद्राजानं गच्छेत्
 - ॥ ४७ ॥ राज्ञश्च किल्बिषं युष्मान् ॥ ४८ ॥ अन्यथावादे
 दण्डश्चानुबन्धः ॥ ४९ ॥ पश्चादपि ज्ञायेत यथादृष्टश्रुतम् ॥ ५० ॥
 एकमन्त्राः सत्यमवहरतेत्यनवहरतां सप्तरात्रादूर्ध्वं द्वादशपणो
 दण्डः ॥ ५१ ॥

यदि साक्षी शूद्र हो तो उससे “जन्मान्तरमें जो तुम्हारा पुण्य हो यह
 राजाको पहुँचे ॥ ४७ ॥ और राजाका पाप तुमको प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥ और
 यदि रक्षकों शूद्र योत्नेपर अज्ञयही दण्ड दिया जावेगा ॥ ४९ ॥ यादमें भी
 सुनने या देखनेके अनुसार मामलेकी जांचकी जायेगी ॥ ५० ॥ इस लिये तुम सय
 लोगोंको मिलकर सत्यकाही स्वरूपर करना चाहिये” इस प्रकार कहा जाय,
 यदि फिर भी ये सात दिनकर सत्य २ बात न बतावे, तो उनको १२ पण
 दण्ड दिया जाय ॥ ५१ ॥

त्रिपक्षादूर्ध्वमभियोगं द्युः ॥ ५२ ॥ साक्षिभेदे यतो बहवः
 शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छ्युः ॥ ५३ ॥ मध्यं वा गृह्णीयुः
 ॥ ५४ ॥

यदि १३ महीने तक भी न बतावे, तो उनके विरुद्ध मुकदमेका फैसला
 कर दिया जाय ॥ ५२ ॥ यदि किसी मुकदमेमें गयाहीका आपसमें मतभेद हो
 जाय तो उनमेंसे जिस बातको बहुसंख्यक, पवित्र चरित्र तथा अनुमत गवाह
 कहें, उसीके आधारपर फैसला कर दिया जाय ॥ ५३ ॥ जयवा किसीको मध्यस्थ
 बना लिया जाय ॥ ५४ ॥

तद्वा द्रव्यं राजा हरेत् ॥ ५५ ॥ साक्षिणश्चेदभियोगाद्ग्नं
 द्युरातिरिक्तस्याभियोक्ता बन्धं दद्यात् ॥ ५६ ॥ अतिरिक्तं वा
 द्युस्तदातिरिक्तं राजा हरेत् ॥ ५७ ॥

फिर भी फैसला न होनेपर उस सम्पत्तिको (जिसपर झगडा हो) राजा
 ले लेवे ॥ ५५ ॥ कणजी जो रक्षक अभियोक्ताने अशुभतमं बताई है, साक्षी
 यदि उससे न्यून बतावे, तो अभियोक्ताको चाहिये कि वह उस अधिक, बताये
 हुए धनका पाँचवां हिस्सा राजाको देवे ॥ ५६ ॥ यदि साक्षी अधिक बतावे तो
 उस अधिक धनको राजा ले लेवे ॥ ५७ ॥

वालिस्यादभियोक्तुर्वा दुःश्रुतं दुर्लसितं प्रेताभिनवेशं वा
 समीक्षणं साक्षिप्रत्यगमेव स्यात् ॥ ५८ ॥ साक्षिवालिस्येष्वेव

पृथगनुपयोगे देशकालकार्याणां पूर्वमध्यमोत्तमा दण्डा इत्यौशनसाः ॥ ५९ ॥

अभियोक्ताके मूर्ख होनेके कारण, उसके ठीक न सुने जाने और ठीक न लिखे जानेका ध्यान करके, अथवा उसका दिमाग ठीक नहीं है, ऐसा ध्यान करके, साक्षियोंके भरोसेपरही उसका फैसला किया जाय ॥ ५८ ॥ उशाना (शुक्र) आचार्यके अनुयायी इस बातको कहते हैं, कि जब देश, काल, और कार्योंके ठीक २ न यत्नलाये जानेपर अदालतमें साक्षियोंकी मूर्खता सिद्ध होजावे, तो उनको अवश्यही यथाचित प्रथम साहस दण्ड, मध्यम साहस दण्ड, तथा उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५९ ॥

कूटसाक्षिणो यमर्थमभूतं वा नाशयेद्युस्तद्दशगुणं दण्डं दद्युरिति मानवाः ॥ ६० ॥ बालिश्याद्वा प्रिसंवादयतां चित्रो घात इति वार्हस्पत्याः ॥ ६१ ॥

इसा प्रकार मनु आचार्यके अनुयायी कहते हैं, कि जो छली कपटी साक्षी, कुछ घात न होनेपर भा झूठा मुकदमा खडा करवाके धनका नाश करावे, वे नाश हुए धनका दसगुना दण्ड देवे ॥ ६० ॥ बृहस्पतिके अनुयायी कहते हैं, कि अपनी मूर्खतास परस्पर विरुद्ध बोलनेवाले साक्षियोंका कष्टपूर्वक बध करा दिया जाय ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ ध्रुवं हि साक्षिभिः श्रोतव्यम् ॥ ६३ ॥

परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ६२ ॥ क्योंकि वह समझता है कि साक्षी निश्चित बातकोही सुन सकते हैं । अर्थात् साक्षीरूपसे वे जो कुछ सुनते हैं, वह ठीकही होता है ॥ ६३ ॥

अभृष्यतां चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६४ ॥ ततो ऽर्धमनुवाणाम् ॥ ६५ ॥

निश्चित न सुननेवाले साक्षियोंकी २४ पण दण्ड दिया जाय । अर्थात् जो साक्षी किसी बातका ठीक निश्चय न करकेही गयाही देनेको खड़े हो जाते हैं, उनको यह दण्ड दिया जाय ॥ ६४ ॥ और इससे आधा अर्थात् १२ पण दण्ड उनको दिया जाय, जो साक्षी होकर बातको ठीक २ नहीं यत्नलाते ॥ ६५ ॥

देशकालाविदूरस्थानसाक्षिणः प्रतिपादयेत् ।

दूरस्थानप्रसारान्या स्वामीराक्येन साधयेत् ॥ ६६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे ऋणादान एकादशो ऽध्यायः ॥ ६६ ॥

आदितोऽष्टपष्ठितम ॥ ६८ ॥

अभियोजकाको चाहिये कि देगकालके अनुसार समीप रहनेवालेको ही साक्षी बनावे । अथवा न्यायाधीशके कहनेपर, दूरदेशमें स्थित होनेके कारण सुगमतासे न आ सकने वाले साक्षियोंको भी बुलावे ॥ ६६ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

वारहवां अध्याय ।

६४ प्रकरण ।

औपनिधिक ।

उपनिधिर्ऋणेन व्याख्यातः ॥ १ ॥

(उपनिधि उस धरोहरका नाम है, जो कोई वस्तु बिना दिखाये पेटी या कपडे आदिमें बन्द करके उसपर मोहर आदि लगाकर किसीके पास रखदी जावे) ऋण सम्बन्धी नियमोंके अनुसार उपनिधिका भी नियम समझना चाहिये ॥१॥

परचक्राटविकाभ्यां दुर्गराष्ट्रविलोपे वा प्रतिरोधकैर्वा ग्राम सार्धव्रजविलोपे चक्रयुक्ते नाशे वा ग्राममध्याग्न्युदकावाधे वा किञ्चिदमोक्षयमाणे कुप्यमनिर्हार्यवर्जमेकदेशमुक्तद्रव्ये वा ज्वालावेगोपरुद्धे वा नावि निमग्नायां मुपितायां स्वयमुपरुद्धो नोपनिधिमभ्याभवेत् ॥ २ ॥

शत्रुके पद्मन्त्र और जहलनिवासियोंके आक्रमणसे, दुर्ग और राष्ट्रका नाश हो जानेपर, अथवा टाकू या चोरोंके द्वारा, गाव व्यापारी कम्पनियों, और पशुओंके घुण्डोंका नाश हो जानेपर, अथवा आभ्यन्तरिक पद्मन्त्रोंके कारण नाश होनेपर, गावके बीचमें आग लगने या झलकी बाढ आदिसे धनके सर्वथा नष्ट हो जानेपर, अग्नि या बाढ आदिसे न नष्ट होने योग्य कुप्य अर्थात् ताँबा लोहा आदिके कुछ थोड़ा बहुत बचाये जानेपर भी, प्रचण्ड अग्निके बीच में घिर जानपर, नावके डूब जानेपर, या उसमें मालकी चोरी हो जानेपर, अपना बचाव हो जानेपर भी उपनिधि पानेके लिये कोई व्यक्ति किसीपर मुकदमा नहीं चला सकता ॥ २ ॥

उपनिधिमोक्ता देशकालानुरूपं भोगवेतनं दद्यात् ॥ ३ ॥
 षादशपणं च दण्डम् ॥ ४ ॥ उपभोगनिमित्तं नष्टं वाभ्याभवे-
 चतुर्विंशतिपणश्च दण्डः ॥ ५ ॥ अन्यथा वा निष्पतने ॥ ६ ॥

उपनिधिको अपने काममें लानेवाला पुरप, देशकालके अनुसार उसे काममें लानेका बदला चुका देवे ॥ ३ ॥ और १२ पण दण्डके देवे ॥ ४ ॥ उपभोगके कारण उपनिधिको नष्टकर देने वाले पुरपपर अभियोग चलाया जावे, और २४ पण दण्ड किया जाय ॥ ५ ॥ यही नियम, अन्य किसी प्रकारसे उपनिधिके नष्ट हो जानेमें भी समझना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रेतं व्यसनगतं वा नोपनिधिर्मभ्याभवेत् ॥ ७ ॥ आधान-
धिक्रयापव्ययनेषु चास्य चतुर्गुणपञ्चबन्धो दण्डः ॥ ८ ॥ परि-
वर्तने निष्पतने वा मूल्यसमः ॥ ९ ॥

यदि उपनिधि लेकर कोई पुरप मर जावे, या आपद्ग्रस्त होजावे, तो उसपर आगे कोई अभियोग या दण्ड नहीं होसकता ॥ ७ ॥ यदि कोई व्यक्ति उपनिधिको कहीं गिरवी रखदे, बेचदे, या और किसी तरहसे उसका अपव्यय करदे, उसका चौगुना पञ्चबन्ध दण्ड दिया जाय ॥ ८ ॥ उपनिधिको बदलने या अन्य किसी प्रकारसे नष्ट करनेवाले पुरपसे उसके बराबर मूल्य वसूल किया जाय ॥ ९ ॥

तेन आधिप्रणाशोपभोगधिक्रयाधानापहारा व्याख्याताः
॥ १० ॥ नाधिः सोपकारः सीदेन्न चास्य मूल्यं वर्धेत ॥ ११ ॥

इस हीसे गिरवी रखी हुई वस्तु (आधि) के नाश करने, अपने काममें लाने, बेचने, गिरवी रख देने और बदलनेमें नियमोंका कथन किया गया । अर्थात् उपनिधि और आधिके विषयमें उपर्युक्त नियमोंको समान ही समझना चाहिये ॥ १० ॥ यदि गिरवी रखी जानेवाली वस्तु खोने चादीके आभूषण (सोपकार, टपकार=आभूषण) है, तो व नष्ट न होवे (अर्थात् उनको उसी दशमें रखवा रहने दिया जावे) और उनपर ब्याज नहीं लिया जावे ॥ ११ ॥

निरूपकारः सीदेन्मूल्यं चास्य वर्धेत ॥ १२ ॥ उपस्थित-
स्वाधिमप्रपञ्चतो उदशुष्णो दण्डः ॥ १३ ॥ ग्रामेज्जकासंनि-
धाने वा ग्रामवृद्धेषु स्थापयित्वा निष्क्रयमाधि प्रतिपद्येत ॥ १४ ॥

इससे अतिरिक्त आधिके नष्ट हो जानेका भय रहता है, इस लिये उनके बदलेमें दिये भ्रूणपर सूद लेना चाहिये ॥ १२ ॥ अपनी गिरवी रखी हुई वस्तु वापस लेनेके लिये आगे हुए पुरपको यदि उत्तमर्ण (ब्याज आदिके लोभसे) न देवे, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥ यदि अधमर्णको उत्तमर्ण (यहाँ बाहर चले जाने आदिके कारण) अपने स्थानपर न मिले, तो

वह आधिके धनको, गांवके बड़े आस पुरपोंके पास रखकर, अपनी आधिको वापस ले लेवे ॥ १४ ॥

निवृत्तवृद्धिको वाधिस्तत्कालकृतमूल्यस्तत्रैवावतिष्ठेत ॥ १५ ॥
अनाशविनाशकरणाधिष्ठितो वा धारणकसंनिधाने वा विनाश-
भयादुद्रतार्थं धर्मस्थानुज्ञातो विक्रीणीति ॥ १६ ॥

यदि अधमर्ण अपनी आधिको बेचकर ऋण चुकाना चाहता है, तो उसी समय उसका मूल्य निश्चय करके, उत्तमर्णके पासही रहने दे, परन्तु उसके बाद फिर उस आधिपर उत्तमर्ण सुद नहीं ले सकता ॥ १५ ॥ आधिसे वर्तमानमें चाहे लाभ होरहा हो, या हानि, परन्तु आगे आसन्न भविष्यमें यदि उसके नाशको सम्भावना हो या उसके मृत्युसे ऋणकी संख्या अधिक होनेपर अधमर्णका अनुपस्थितिमें भी, न्यायाधीशको आज्ञानुसार उत्तमर्ण उस आधिको बेच देवे ॥ १६ ॥

आधिपालप्रत्ययो वा १७ ॥ स्थावरस्तु प्रयासभोग्यः फल-
भोग्यो वा प्रक्षेपवृद्धिमूल्यं शुद्धमाजीवं मूल्यक्षयेणोपनयेत् ॥ १८ ॥

न्यायाधीशका अनुपस्थितिमें आधिपाल (इस विभागका राजकीय कर्मचारी) को आज्ञानुसार इस कार्यका सम्पादन करे ॥ १७ ॥ जो स्थायी सम्पत्त परिश्रमपूर्वक या विना ही परिश्रमके फल देनेवाली अथवा भोगनेके योग्य हो, उसे बचा नहीं जा सकता । जिस आधिको उत्तमर्ण व्यापारमें लगा देवे, उसके अनुकूल हुए २ लाभके सहित आधिका असली धन उसके मालिक को लौटावे ॥ १८ ॥

अनिसृष्टोपभोक्ता मूल्यशुद्धमाजीवं वन्धं च दद्यात् ॥ १९ ॥
शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २० ॥ एतेनादेशोऽन्वाधिश्च
व्याख्यातौ ॥ २१ ॥

विनाही आज्ञाके आधिको उपभोग करनेवाला पुरप, उसके अच्छी हालतके, शुद्ध मूल्यको ददा करे, और जुरमाना भी देवे ॥ १९ ॥ शेष सब उपनिधिके सम्बन्धी आधिमें भी समझना चाहिये ॥ २० ॥ इसके अनुसार आदेश (आज्ञा) और अन्वाधि (कहीं गिरवी रखी हुई वस्तुको किसी अन्य पुरपके द्वारा वापस माँगवाना) के नियम भी समझने चाहिये ॥ २१ ॥

सार्धेनान्याधिहस्तो वा प्रदिष्टां भूमिमपासथोरैर्भ्रश्रोत्सृष्टो
वा नान्याधिमभ्याभोपेत् ॥ २२ ॥ अन्तरे वा मृतस्य दायादो

अपि नाभ्याभवेत् ॥ २३ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २४ ॥

व्यापारी, यदि किसीके हाथमें गिरवी रखी हुई वस्तुको सौंपकर उसे कहींपर भेजे, परन्तु बीचमेंही चोरोंसे छुटे जानेके कारण वह निर्दिष्ट स्थानपर न पहुँच सके, तो उसपर आधि विषयक अभियोग नहीं लगाया जा सकता ॥ २३ ॥ यदि रास्तेमेंहाँ चढ़ किसी तरह मर जाये, तो उसके पीछे दायभागियों पर भी अभियोग नहीं चलाया जा सकता ॥ २३ ॥ शेष सब नियम उपनिधिके समानही समझने चाहिये ॥ २४ ॥

याचितकमवक्रीतकं वा यथाविधं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्प-
येयुः ॥ २५ ॥ श्रेणोपनिपाताभ्यां देशकालोपरोधि दत्तं नष्टं
विनष्टं वा नाभ्याभवेयुः ॥ २६ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम्
॥ २७ ॥

उपार मांगी हुई, या किरायेपर ली हुई वस्तु जिस दशामें लीजाय ठीक उती हालतमें वापिस फरदी जाये ॥ २५ ॥ यदि देश या कालके अनुसार किसी दोष या विक्षेप आपत्तिसे वह दीहुई वस्तु कुछ खराब हो जाय, या थिल्कुल नष्ट हो जाय, तो उन लोगोंपर अभियोग नहीं चलाया जा सकता ॥ २६ ॥ शेष नियम उपनिधिके समानही समझने चाहिये ॥ २७ ॥

वैद्यावृत्त्यविक्रयस्तु ॥ २८ ॥ वैद्यावृत्त्यकरा यथादेशकालं
विक्रीणानाः पण्यं यथाजातमूल्यमुदयं च दशुः ॥ २९ ॥ शेषमुप-
निधिना व्याख्यातम् ॥ ३० ॥

अब फुटकर विक्रीका निरूपण किया जायगा ॥ २८ ॥ फुटकर बेचने वाले व्यापारियोंको चाहिये, कि वे देशकालके अनुसार अपनी वस्तुको बेचते हुए, यथोचित मूल्य और व्याज (उन थोक व्यापारियोंको, जिनसे इकट्ठी वस्तु खरीद लाकर बेचते हे) दें ॥ २९ ॥ शेष नियम उपनिधिके समानही समझने चाहिये ॥ ३० ॥

देशकालातिपातने वा परिहीणं संप्रदानकालिकेनार्थेण
मूल्यमुदयं च दशुः ॥ ३१ ॥ यथासंभाषितं वा विक्रीणाना
नोदयमधिगच्छेयुः ॥ ३२ ॥ मूल्यमेव दशुः ॥ ३३ ॥

यदि देशकालके अनुसार पहिले खरीदी हुई चीजों का मूल्य गिर जाय, तो बर्तमान दिये जानेवाले मूल्यके अनुसार मूल्य और व्याज (थोक व्यापारियों को) दें ॥ ३१ ॥ यदि छोटे फुटकर बेचने वाले व्यापारियों का थड़े व्यापा-

रिंयोंके साथ यह तै होतुका है कि वे किसी नियत मूल्य पर ही माल बेचेंगे, तब उसी मूल्यपर बेचते हुए छोटे, यहाँ को केवल मूल्य दें, व्याज न दें ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥

अर्घपतने वा परिहीणं यथापरिहीणमूल्यमूनं दद्युः ॥३४॥
सांव्यवहारिकेषु वा प्रात्ययिकेष्वराजवाच्येषु श्रेषोपनिपाताभ्यां
नष्टं विनष्टं वा मूल्यमपि नं दद्युः ॥ ३५ ॥ देशकालान्तरितानां
तु पण्यानां क्षयव्ययशुद्धं मूल्यमुदर्यं च दद्युः ॥ ३६ ॥

यदि कोमत गिरजाय, तो गिरी हुई कोमत के अनुसार थोडा मूल्य दें ॥ ३४ ॥ व्यावहारिक वि० गस पर होने वाले सौदामें, जिनमें कि कानूनी कारवाई कोई नहीं की गई है, यदि किसी प्रकार के दोष या आकस्मिक आपत्ति के कारण माल कुछ खराब होजावे, या बिल्कुल नष्ट होजावे, तो उसका मूल्य भी छोटे व्यापारी न दें ॥ ३५ ॥ परन्तु दूसरे स्थान, या दूसरे समयमें बेची जाने वाली चीजोंका, छौजन (क्षय) और खर्च (व्यय) का ठीक हिसाब करके, फिर उचित मूल्य और व्याज दिया जावे ॥ ३६ ॥

पण्यसमवायानां च प्रत्यंशम् ॥ ३७ ॥ शेषमुपनिधिना
व्याख्यातम् ॥३८॥ एतेन वैय्यावृत्यविक्रयो व्याख्यातः ॥३९॥
निक्षेपश्चोपनिधिना ॥ ४० ॥

संशानती सामान को प्रत्येक वस्तुका कुछ अंश छौजनमें निकाल दिया जावे ॥ ३७ ॥ बाकी नियम उपनिधिके समान ही समझने चाहिये ॥ ३८ ॥ इसीके अनुसार फुटकर विक्रीके भी नियम समझने चाहिये ॥ ३९ ॥ निक्षेप (रूप और संख्याको दिखलाकर खुला अवस्थामे दिया हुआ धन) और उपनिधि (१ सूत्र देखो) के नियम समान ही हे ॥ ४० ॥

तमन्येन निक्षिप्तमन्यस्यार्पयतो हीयेत ॥ ४१ ॥ निक्षेपाप-
हारे पूर्वापदानं निक्षेपारथ प्रमाणम् ॥ ४२ ॥ अशुचयो हि
कारवः ॥ ४३ ॥

कोई व्यक्ति किसी दूसरेके निक्षेप को, और किसीको देदेवे, तो उसे नियमानुसार यथोचित दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥ जिसके पास निक्षेप रखा गया है, वह यदि उसे दयाले, या नष्ट करदे, तो उसको प्रथम परिस्थित (हेमियत भावि) की जांच की जाय, और इस घातमे निक्षेप (धरोहर रखने वाले) को ही प्रमाण माना जाय, अर्थात् उस ही के कथनानुसार इस मामले का फैसला किया जाय ॥ ४२ ॥ शिल्पी लोग प्रायः ईमानदार नहीं होते ॥ ४३ ॥

नैपां करणपूर्वो निक्षेपधर्मः ॥ ४४ ॥ करणहीनं निक्षेपम-
पव्ययमानं शूद्रमिच्छिन्यस्तान्साक्षिणो निक्षेप्ता रहस्थप्रणिपातेन
प्रज्ञापयेत् ॥ ४५ ॥

इनके यहाँ जो निक्षेप रक्खा जाता है, ये लोग उसका कोई प्रमाण
स्वरूप कागज आदि लिखकर (करणपूर्व) नहीं देते ॥ ४४ ॥ प्रमाण रूप
कागज आदि लिखे हुए बिना ही (करणहीनम्) जो निक्षेप इनके यहाँ रक्खा
गया हो, यदि ये लोग उसका अपचय करें, तो निक्षेप्ता को चाहिये कि वह,
छिपे तौरपर दीवारोंकी ओटमें बंटे हुए साक्षियों की, इनके गुप्त भेदोंको सामने
रखकर बतलावे ॥ ४५ ॥

यनान्ते वा मध्यप्रवहणे विश्वासेन रहसि वृद्धो व्याधितो
वैदेहकः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत् ॥ ४६ ॥
तस्य प्रतिदेशेन पुत्रो भ्राता वाभिगम्य निक्षेपं याचेत् ॥ ४७ ॥
दाने शुद्धिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ४८ ॥

अथवा जगलमें, नाचमें, (या अपने कार्योंमें व्यग्र होनेकी हालतमें) या
एकान्तमें विदग्धस पूर्वक, कोई बूढ़ा, बीमार, या वैदेहक (मृत्यु विक्रय करने
वाला व्यक्ति, अथवा सकर जाति विशेष) पास निशान किये हुए द्रव्यको इसके
(शिप्यकी) हाथमें सौंपकर चला जावे ॥ ४६ ॥ पीछे से उसके (निक्षेप्ताके)
कहने पर, उसका रुका या भाई शिल्पी के पास आकर उस निक्षेप को
मांगे ॥ ४७ ॥ यदि वह दे देवे तो कुछ (ईमानदार) समझा जावे, न देने
पर निक्षेप उसमे चसूल किया जावे, और उसको चोरी का दण्ड दिया
जावे ॥ ४८ ॥

प्रप्रज्याभिमुखो वा श्रद्धेयः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य
हस्ते निक्षिप्य प्रतिष्ठेत् ॥ ४९ ॥ ततः कालान्तरागतो याचेत्
॥ ५० ॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५१ ॥

अथवा कोई विश्वासी पुरुष, सन्यासी का घेप बनाकर, चिह्नित द्रव्य
को इसके हाथमें सौंपकर चला जावे ॥ ४९ ॥ फिर कुछ समय के बाद आकर
मांगे ॥ ५० ॥ दे देने पर ईमानदार, अन्यथा उमसे निक्षेप चसूल किया जाय, और
चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ ५१ ॥

कृतलक्षणेन वा द्रव्येण प्रत्यान्यदेनम् ॥ ५२ ॥ वालि-

शजातीयो वा रात्रौ राजदायिकाङ्क्षणभीतः सारमस्य हस्ते नि-
क्षिप्यापगच्छेत् ॥५३॥ स एनं बन्धुना अगारगतो याचेत् ॥५४॥
दाने शुचिर्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५५ ॥

अथवा चिन्ह क्रिये हुए द्रव्यके द्वारा इसको गिरफ्तार किया जाय ॥५२॥
अथवा कोई पुरुष मूर्खसा बनकर रातमें पुलिस के देख लेने से डरा हुआ सा,
इसके हाथमें द्रव्यको सौंपकर चला जाये ॥ ५३ ॥ वह फिर अपने भाईके साथ
इसके घर आकर इससे वह धन मांगे ॥ ५४ ॥ दे देने पर ईमानदार अन्यथा
इससे निक्षेप वसूल किया जाय, और इसे चोरी के दण्ड से दण्डित किया
जाय ॥ ५५ ॥

अभिज्ञानेन चास्य गृहं जनमुभयं याचेत् ॥ ५६ ॥ अन्य-
तरादाने यथोक्तं पुरस्तात् ॥ ५७ ॥ द्रव्यभोगानामागमं चास्या-
नुयुञ्जीत ॥ ५८ ॥

इसके घरमें मालके पहिचान लेनेसे, घरके दो भादमियोंसे अलहदा २
वह माल मांगा जाय ॥ ५६ ॥ यदि उन दोनोंमें से कोई एक देनेसे इन्कार
करे, तो पूर्वोक्त नियम का ही पालन किया जाय ॥ ५७ ॥ तथा भद्रालतमें इस
से पूछा जाय कि 'यह जो तुम धनके कारण मौज उड़ा रहे हो, यह तुम्हें कहां
से प्राप्त हुआ है ॥ ५८ ॥

तस्य चार्थस्य व्यवहारोपलिङ्गनमाभियोक्तुश्चार्थसामर्थ्यम्
॥ ५९ ॥ एतेन मिथः समवायो व्याख्यातः ॥ ६० ॥

और उस अर्थके व्यवहार एवं चिन्होंके सम्बन्धमें, तथा अभियोक्ता की
आर्थिक दशाके सम्बन्धमें भी अच्छी तरह पूछताछ कीजाय ॥ ५९ ॥ इतने से,
आपसमें मिलकर व्यवहार करने वाले सब ही पुरखों के मामलों को समझना
चाहिये ॥ ६० ॥

तस्मात्साक्षिमदच्छन्नं कुर्यात्सम्यग्विभाषितम् ।

स्वे परे वा जने कार्यं देशकालाग्रवर्गतः ॥ ६१ ॥

इति धर्मशास्त्रे कृतीये अधिकरणे आपनिधिकं द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदित एकोनसप्ततिः ॥ ६९ ॥

० इस सूत्रमें 'बन्धुना अगार गत.' के स्थानपर किन्हीं पुस्तकों में
'बन्धनागारगत' पाठ है। शागशास्त्री और प्राणनाथ विद्यालङ्कार ने इस हीके
अनुसार अर्थ किया है, परन्तु यह पाठ कुठ अच्छा नहीं मालूम होता। क्योंकि
जेलमें जाकर पूछना कुठ अस्वाभाविक सा मालूम होता है।

इस लिये प्रत्येक व्यक्ति, अपने या पराये पुरुषके साथ व्यवहारमें, साक्षीके सामने ही लेन देनके सब कार्यों की कहा सुनी या लिखा पढ़ी करे, और उसके साथ ही स्थाप तथा समय का भी खास तौर पर जिक्र जरूर करदे ॥ ६१ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें चारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय

६१ प्रकरण

दास कल्प

उदरदासवर्जमार्यप्राणमप्राप्तव्यवहारं शूद्रं विक्रयाधानं नयतः
स्वजनस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ वैश्यं द्विगुणः ॥ २ ॥ क्षत्रियं
त्रिगुणः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणं चतुर्गुणः ॥ ४ ॥

आर्यों के प्राणभूत, उदर दासको छोड़कर, यदि नाबालिग शूद्रको कोई उसका ही अपना आदमी बेचे या गिरवी रखे, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि नाबालिग वैश्यको कोई उसका अपना सम्बन्धी ही बेचे या गिरवी रखे, तो उसको २४ पण ॥ २ ॥ इसी प्रकार क्षत्रिय को ३६ ॥ ३ ॥ और ब्राह्मण को ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः क्रेतृश्रोतृणां च ॥५॥
श्लेच्छानामदोषः प्रजां विक्रेतुमाधातुं वा ॥ ६ ॥ न त्वेवार्यस्य
दासमात्रः ॥ ७ ॥

यदि इन नाबालिग शूद्र आदिजो कोई दूसरा आदमी बेचे, या गिरवी रखे, तो उनको प्रथम, मध्यम, उत्तम साहस दण्ड तर्षों यद्य दण्ड क्रमपूर्वक दिये जायें । खरीदनेवाले और गवाहोंके लिये भी यही दण्ड है ॥५॥ श्लेच्छ अपनी सम्मानको बेच या गिरवी रख सकते हैं, इसमें कोई दोष नहीं ॥ ६ ॥ परन्तु आर्य किसी हालतमें भी दास नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अथ वार्यमाधाय कुलबन्धन आर्याणामापदि निष्कृत्यं चाधि-
गम्य बालं साहाय्यदातारं वा पूर्वं निष्क्रीणीरन् ॥ ८ ॥ सकृदा-
त्माधाता निष्पतितः सदिह ॥ ९ ॥ द्विरन्येनाहितकः ॥ १० ॥

अथवा सम्पूर्ण कुलके बन्धनमें पड़ जानेपर, या बहुतसे आर्योंपर

कष्ट आ पडनेपर, आर्यको भी गिरवी रखदे, और उसके छुड़ाने योग्य धन प्राप्त करके प्रथम बालकको अथवा अपने कार्योंमें सहायता देनेवाले को छुड़ावे ॥ ८ ॥ जो पुरुष स्वयं अपने आपको गिरवी रख चुका हो, वह यदि एक बार भी वहाँसे भाग जावे, तो उसे जीवन पर्यन्त दास बनाया जावे ॥ ९ ॥ जिसको अन्य लोगोंने गिरवी रक्खा हो, वह दो बार भागनेपर सदा के लिये दास बनाया जाय ॥ १० ॥

सकृदुभौ परचिपयाभिमुखौ ॥ ११ ॥ वित्तापहारिणो वा दासस्वार्थभावमपहरतो र्धदण्डः ॥ १२ ॥ निष्पतितप्रेतव्यसनिनामाघाता मूल्यं भजेत ॥ १३ ॥

ये दोनाही यदि एकबार भी दूसरे देशमें चले जानेका इरादा करें, तो जीवन पर्यन्त दास बनाये जावे ॥ ११ ॥ धन छुराने वाले अथवा किसीक आर्यवको अपहरण करनेवाले (अर्थात् आर्यको दास बनानेवाले) दासको आधा दण्ड दिया जाये ॥ १२ ॥ भागे हुए, मरे, हुए, तथा शीमारका मूल्य, गिरवी रखनेवालेको ही भुगतना पड़े। (अर्थात् ऐसे व्यक्तियोंको गिरवी रखनेवाला पुरुष उनके मूल्यको अवश्य लाटा दे) ॥ १३ ॥

प्रेतविष्णुनोच्छिष्टग्राहणमाहितस्य नगस्तापनं दण्डप्रेषणमतिक्रमणं च स्त्रीणां मूल्यनाशकरम् ॥ १४ ॥ धात्रीपरिचारिकार्थसीतिकोपचारिकाणां च मोक्षकरम् ॥ १५ ॥

जो व्यक्ति पुरुष दाससे मुर्दा, मलमूत्र, या झूठन उठवावे और स्त्री दासको अनुचित दण्ड दे, उसके सतीत्वको नष्ट करे, या अपना अथवा उसकी नग्न अवस्थामें उसे उपस्थित करे या स्वयं उपस्थित हो, तो उसके (गिरवी रखने के बदलम दिये हुए) धनको जन्त कर लिया जाये ॥ १४ ॥ यदि यही व्यवहार दाई, बाहरीदासी, अर्द्धसातिका (गिरवी रखरी हुई, उस जातिकी स्त्री जिस जातिमें पुरुषोंका जावन निर्वाह विशेषकर स्त्रियोंके कार्योंपर ही निर्भर हो) और भीतरी दासके साथ किया जावे, तो उन्हें दासपनेसे छुड़ा दिया जावे। (अर्थात् ये छुटकर सदाके लिये अपन घर जा सकती हैं) ॥ १५ ॥

सिद्धमुपचारकसाभिप्रजातस्यापक्रमणम् ॥ १६ ॥ धात्रीमाहितिकां याक्रामा स्ववशामधिगच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १७ ॥ परवशा मध्यमः ॥ १८ ॥ -

यदि उच्चकुलमें उत्पन्न हुए दाससे उपर्युक्त (१४वें सूत्रमें वर्णित)

कार्य कराया जावे, तो वह वहासे दासपनेको छोडकर—घटा जा सकता है ॥ १६ ॥ अपनी दाई या गिरवी रखी हुय किसी अन्य स्त्रीको उनकी इच्छाके विरुद्ध जो व्यक्ति स्वयं उनकी अपने वशमें लानेकी चेष्टा करे, तो उसकी प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ यदि उपयुक्त अवस्थामें किसी दूसरे व्यक्तिके वशमें लानेके लिये चेष्टा करे, तब उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥

कन्यामाहितकां वा स्वयमन्येन वा दूषयतः मूल्यनाशः शुल्कं तद्विगुणश्च दण्डः ॥ १९ ॥ आत्मविक्रयिणः प्रजामार्या विधात् ॥ २० ॥

और गिरवी रखी हुई कन्याको जो पुरुष स्वयं या किसी दूसरेके द्वारा दूषित करे, उसका (बदलेमें दिया हुआ) धन जडतकर लिया जावे, और कन्याको कुछ धन सुरमानेके तौरपर उससे दिलाया जाय । तथा इससे दुगना दण्ड सरकारको देवे ॥ १९ ॥ अपने आपको बेच देनेवाले (आर्य) पुरुषकी सन्तानको आर्यही समझा जावे ॥ २० ॥

आत्माधिगतं स्वामिकर्माधिकरुद्धं लभेत पितृयं च दायम् ॥ २१ ॥ मूल्येन चार्थित्वं गच्छेत् ॥ २२ ॥ तेनोदरदासाहितकौ च्याख्यातो ॥ २३ ॥

अपने मालिककी आज्ञानुसार वह स्वयं कमाये हुए धनको अपन पास रख सकता है, और पिताकी सम्पत्तिका भी दायभागी हो सकता है ॥ २१ ॥ तथा अपनी कीमत चुकाकर फिर वह भाय भावको प्राप्त हो सकता है । (अर्थात् दासताको छोडकर आर्य बन सकता है) इस प्रकार उदरदास और आहितकके विषयमें नियम समझने चाहिये ॥ २३ ॥

प्रक्षेपीनुरूपधास्य निष्क्रयः ॥ २४ ॥ दण्डग्रणीतः कर्मणा दण्डमुपनयेत् ॥ २५ ॥ आर्यप्राणो ध्वजाहतः कर्मकालानुरूपेण मूल्यार्धेन वा विमुच्येत ॥ २६ ॥

गिरवी रखनेके अनुसार ही इनके छुड़ानेका मूल्य होना चाहिये ॥ २४ ॥ जिस पुरुषको दण्डका धन न भुगतानेके कारण दासता स्वीकार करनी पडी है, वह किसी तरहका काम करके उस धनको भुगता देवे, आर्य स्वतन्त्रता प्राप्त करलेवे ॥ २५ ॥ आर्यदास (आर्योका प्राणसम कोई दास व्यक्ति) यदि कहीं युद्धमें पराधीन होकर दूसरोंसे दास बना लिया गया हो, तो वह—अपने

काय वा समयके अनुसार, भयवा आधा मूल्य (अपने पकड़े जाने आदिके व्ययका) देकर छुटकारा पासकता है ॥ २६ ॥

गृहेजातदायागतलब्धक्रीतानामन्यतमं दासमूनाएवर्षं विबन्धु-
मकामं नीचे कर्मणि विदेशे दासीं वा सगर्भामप्रतिविहितगर्भ-
भर्मण्यां विक्रयाधानं नयतः पूर्णः साहसदण्डः क्रेतृश्रोतृणां च ॥२७

घरेम उत्पन्न हुए, दायभाग घातते समय अपने हिस्सेमें प्राप्त हुए, या खरीदे हुए, बन्धुबान्धवोंसे रहित आठ वर्षसे कम उमरके दासको उसकी दृष्टाके विरुद्ध जो व्यक्ति कोई नीच काम करनेके लिये विदेशमें बेचे या गिरवी रखे, और इसी प्रकार जो गर्भिणी दासीको, उसके गर्भकी रक्षाका कोई प्रयत्न न करता हुआ, बेचे या गिरवी रखे, उन्हें प्रथम साहस दण्ड दिया जाय, और यही दण्ड उनके खरीदनेवालों तथा गवाहोंको दिया जाय ॥ २७ ॥

दाममनुरूपेण निष्क्रेयणार्यमकुवर्तो द्वादशपणो दण्डः ॥२८॥
मंगोधश्चाकारणात् ॥ २९ ॥ दासद्रव्यस्य ज्ञातयो दायादाः ॥३०॥
तेषामभावे स्वामी ॥ ३१ ॥

जो व्यक्ति उचित मूल्य पानेपर भी किसी दासको भाये नहीं बनाता, अर्थात् उसको दासतासे नहीं छोड़ता, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २८ ॥ यदि न छोड़नेमें कोई कारण भी न हो, तो उसे कारावासका दण्ड दिया जाय ॥ २९ ॥ दासकी सम्पत्तिके अधिकारी, उसके बन्धुबान्धव कुटुम्बी लोग होते हैं ॥ ३० ॥ उनके न होनेपर, दासका मालिक ही उसकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है ॥ ३१ ॥

स्वामिनोऽस्यां दासां जातं समात्कमदासं विद्यात् ॥३३॥
गृहा चैत्कुटुम्बार्थचिन्तनी माता भ्राता भगिनी चास्या अदासाः
भ्युः ॥ ३३ ॥ दासं दासीं वा निष्क्रीय बुनर्विक्रयाधानं नयतो
द्वादशपणो पण्डः ॥ ३४ ॥

यदि मालिकसे उसकी दासीमें सन्तान उत्पन्न होजाय तो वह सन्तान और उसकी माता दोनों ही दासतासे मुक्त कर दिये जायें ॥३२॥ यदि वह स्त्री कुटुम्बके सब कार्योंका चिन्तन करती हुई, मालिकके घामें ही भार्योंके समान रहना चाहती है, तो उसकी माता, बहिन और भाइयोंको भी दासतासे मुक्त

कर दिया जावे ॥ ३३ ॥ दास और दासीको एकवार छुभाकर यदि फिर दुबारा कोई बेचे या गिरवी रखे, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३४ ॥

अन्यत्र स्वयंवादिभ्यः ॥ ३५ ॥ इति दासकल्पः ॥ ३६ ॥
कर्मकरस्य कर्मसंबन्धमासन्ना विद्युः ॥ ३७ ॥ यथा संभाषितं
चेतनं लभेत ॥ ३८ ॥ कर्मकालानुरूपमसंभाषितचेतनः ॥ ३९ ॥

परन्तु यदि दास और दासी विकने या गिरवी रखे जानेके लिये स्वयं कहवे, तो कोई दोष नहीं ॥ ३५ ॥ यहातक दासोंके सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ३६ ॥ नौकरकी नियुक्तिको पड़ोसीलोग जान ॥ ३७ ॥ प्रत्येक नौकर, जैसा तै होगया हो उसीके अनुसार नौकरी लेवे ॥ ३८ ॥ परन्तु जिसका चेतन पहिलेसे तै नहीं हुआ हे, वह अपने कार्य और समयके अनुसार चेतन लेवे ॥ ३९ ॥

कर्षकः सस्यानां गोपालकः सर्पिषां वैदेहकः पण्यानामा-
त्मना व्यवहृतानां दशभागमसंभाषितचेतनो लभेत ॥ ४० ॥
संभाषितचेतनस्तु यथासंभाषितम् ॥ ४१ ॥

किसान (खेती करने पर नौकर हुआ व्यक्ति) अनाजका, खाला घी का, और खादि फरोमत करने व ला अपने द्वारा ब्यवहृत हुई चीजोंका वसर्वा हिरसा लेवे, यहातें कि चेतन पहिलेसे तै न हुआ हो ॥ ४० ॥ पहिलेसे तै होनेपर तो, उसहाके अनुसार लेवे ॥ ४१ ॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपरिचारकादिराशा-
कारिकवर्गस्तु यथान्यस्तद्विधः कुर्याद्यथा वा कुशलाः कल्पयेयु-
स्तथा चेतनं लभेत ॥ ४२ ॥

कारीगर, गाने बजानेका ब्यवसाय करनेवाले नट आदि, चिकित्सक, यकील (वाग्जीवन) परिचारक (नौकर चाकर) आदि आशाकारिक वर्ग (मेहनतानेकी आशातेही काम करनेवाले) को वैसाही चेतन दिया जावे, जैसा अन्य स्थानोंमें दिया जाता हो । अथवा जिस प्रकार चतुर पुरुष नियत करदें, उसीके अनुसार दिया जावे ॥ ४२ ॥

साक्षिप्रत्ययमेव स्यात् ॥ ४३ ॥ साक्षिणामभावे यतः कर्म
ततो ऽनुयुञ्जीत ॥ ४४ ॥ चेतनादाने दशबन्धो दण्डः पद्पणो
या ॥ ४५ ॥ अपव्ययमाने द्वादशपणो दण्डः पञ्चबन्धो वा ॥ ४६ ॥

विवाद होनेपर, माक्षियोंके कथनानुसारही वेतनका निर्णय किया जाय ॥ ४३ ॥ यदि साक्षी भी न हो, तो जैसा काम किया हो, उसीके अनुसार फिर्सला करदिया जाय ॥ ४४ ॥ वेतन न देनेपर उसका दसवां हिस्सा दण्ड अथवा ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥ और अपचय करनेपर, उसका पाँचवां हिस्सा, अथवा १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥

नदीवेगज्वालास्तेनव्यालोपरुद्रुः सर्वस्वपुत्रदारात्मदानेनार्त
स्नातारमाह्वय निस्तीर्णः कुशलप्रदिष्टं वेतनं दद्यात् ॥ ४७ ॥ तेन
सर्वत्रार्तदानानुशया व्याख्याताः ॥ ४८ ॥

नदीके प्रवाहमें गहता हुआ, अग्नि, चोर या सिंह घघेरा आदि हिंस्र जन्तुओंसे घिरा हुआ, दुखी पुरुष यदि अपना सर्वस्व, पुत्र, स्त्री या स्व अपने आपको देनेके वादा करके किसी रक्षा करनेवालेको मुगाकर उभापात्तिसे पार हो जाये, तो फिर तात्कालीन चतुर नेता जैसा कहें, उसी अनुसार उस रक्षककी वेतन देवे ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार सयही अवसरोंपर दुखी पुरुषके देनेके प्रणका नियम समझना चाहिए ॥ ४८ ॥

लभेत पुंश्वली भोगं संगमस्योपलिङ्गनात् ।

अतियाश्चा तु जीयेत्त दौर्मत्याविनयेन वा ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये अधिकरणे दासकर्मकरकल्पे दासकल्प कर्मकरकल्पे स्व
भ्यधिकार त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥ भादित. सप्ततिरध्याय ॥ ७० ॥

वेश्या, पुरुषको पुरुष करनेके पहिलेही अपने संगमके लै किए हुए धन लेल्ये । यदि वह दुष्ट बुद्धिसे, अथवा डरा धमकाकर अनुचित रूपसे अधि-
धन लेना चाहती है, तो उसे वह न दिया जावे ॥ ४९ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय ।

६६ प्रकरण

कर्मकर कल्प, सम्भूय समुत्थान ।

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वतो भृतकस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥
संरोधश्चाकारणात् ॥ २ ॥ अशक्तः कुत्सिते कर्मणि व्याधी व्यस-
थानुशयं लभेत ॥ ३ ॥ परेण वा कारयितुम् ॥ ४ ॥

चेतन लेकर जो नौकर काम न करे उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि बिना ही कारण काम न करे, तो कारावासका दण्ड दिया जाय ॥ २ ॥ किसी भीधे कर्ममें, धीमारीमें, तथा आकस्मिक आपत्तिमें प्रसन्न होनेके कारण कार्य करनेमें अक्षमर्था हुआ २ नौकर छुट्टी ले सकता है ॥ ३ ॥ अथवा अपने कार्यको किसी दूसरे आदमीसे करवानेका प्रबन्ध करके भी छुट्टी ले सकता है ॥ ४ ॥

तस्य व्ययं कर्मणा लभेत ॥ ५ ॥ भर्ता वा कारयितुं नान्य-
स्त्वया कारयितव्यो मया वा नान्यस्य कर्तव्यमित्यविरोधे भर्तुर-
कारयतो भृत्कस्याकुर्वतो वा द्वादशपणो दण्डः ॥ ६ ॥ कर्म-
निष्ठापने भर्तुरन्यत्र गृहीतचेतनो नासकामः कुर्यात् ॥ ७ ॥

जो उसका स्वयं हो, यह उसके कामसे लेवे ॥ ५ ॥ यदि मालिकही अपना काम किसीसे करावे, तो उसका आपसमें 'मुझे और किसीसे काम नहीं कराना चाहिए तथा मैं और किसीका काम नहीं करूंगा' इस प्रकारका समझौता होनेपर, मालिक उसहीसे न करावे तो १२ पण दण्ड, और नौकर न करे तो उसको भी १२ पण दण्ड दिया जाये ॥ ६ ॥ यदि किसी मजदूरने दूसरी जगह काम करनेका चेतन छेड़िया हो, तो वह अपने पहिले मालिकके कामको समाप्त करनेपरही, इच्छानुसार दूसरा काम प्रारम्भ करे ॥ ७ ॥

उपस्थितमकारयतःकृतमेव विद्यादित्याचार्याः ॥ ८ ॥ नेति
कौटल्यः ॥ ९ ॥ कृतस्य चेतनं नाकृतस्यास्ति ॥ १० ॥

आचार्योंका मत है कि उपस्थित हुए मजदूरसे यदि काम न भी लिया जाये, तो भी (उसकी उपस्थिति=हाजिरी ठीक होनेके कारण) उसने काम करही लिया है, ऐसा समझा जाये ॥ ८ ॥ परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ९ ॥ यह कहता है, कि चेतन काम करनेकाही होता है, काम न करते हुए ठाली बैठनेका नहीं होता ॥ १० ॥

स चेदल्पमपि कारयित्वा न कारयेत्कृतमेवास्य विधात् ॥ ११ ॥
देशकालातिपातनेन कर्मणामन्यथाकरणे वा नासकामः कृतमनु-
मन्येत ॥ १२ ॥ संभाषितादाधिकक्रियायां श्रयासं मोघं कुर्यात्
॥ १३ ॥ तेन संघभृता व्याख्याताः ॥ १४ ॥

यदि मालिक थोडासा भी काम कराके फिर न करावे, तो अल्प नौकरका किया हुआ काम समझा जाये ॥ ११ ॥ मालिकही आज्ञानुसार ठीक

स्थान और समयपर काम न करनेसे, अथवा कामोंको उल्टा कर देनेपर, नौकरने वस्तुतः काम किया है, ऐसा न समझा जावे ॥ १२ ॥ मालिकके कहनेसे अधिक काम करनेपर, उत्तरी मेहनत व्यर्थ ही समझनी चाहिए ॥ १३ ॥ संघ (व्यापारियोंकी कम्पनी आदि) से मजदूरी पानेवालोंके भी यही नियम है ॥ १४ ॥

तेषामाधिः सप्तरात्रमासीत ॥ १५ ॥ ततो ऽन्यमुपस्थापयेत् ॥ १६ ॥ कर्मनिष्पाकं च ॥ १७ ॥ न चानिद्रेद्य भर्तुः संघः किञ्चित्परिहरेदपनयेद्वा ॥ १८ ॥ तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपगो दण्डः ॥ १९ ॥ संघेन परिहृतस्यार्धदण्डः ॥ २० ॥ इति भृतकाधिकारः ॥ २१ ॥

काम ठीक न करनेपर उनकी सात दिनकी मजदूरी दबाए रखनी चाहिए ॥ १५ ॥ फिर भी ठीक न करें तो काम दूसरेको दे दिया जावे ॥ १६ ॥ और उस कामको ठीक २ करा लिया जावे, तथा उचित मजदूरी दे दी जावे ॥ १७ ॥ मालिकको बिना कहे, मजदूर न कोई वस्तु नष्ट करें, और न ले जावे ॥ १८ ॥ इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ यदि सबही मजदूर मिलकर ऐसा करें, तो उनको आधा दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ यहां तक मजदूरी (भृतक=कर्मकर=मजदूर) के विषयमें कहा गया ॥ २१ ॥

संघभृताः संभृतसमुत्थातारो वा यथासंभापितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥ २२ ॥ कर्षकवैदेहका वा सस्यपण्यारम्भपर्यवसानान्तरे सन्नस्य यथाकृतस्य कर्मणः प्रत्यंशं दशुः ॥ २३ ॥ पुरुषोपस्थाने समग्रमंशं दशुः ॥ २४ ॥

संघसे इकट्ठी नौकरी पानेवाले, अथवा आपसमें मिलकर टेके आदिके द्वारा काम करनेवाले, पहिलेसे तै किए हुएके अनुसार या बराबर २ आपसमें वेतन बांट लेंगे ॥ २२ ॥ किसान फसलके आरम्भसे अन्त तक, अथवा दूध-विक्रय करने वाला व्यापारी बाजूके खरीदनेसे लेकर बिक जाने तकके साधीकी उनके किये हुए कामके अनुसार हिस्सा देंगे ॥ २३ ॥ यदि कोई साक्षी व्यक्ति अपने स्थानपर काम करनेके लिए किसी दूसरे व्यक्तिको नियत करदे, तो भी इसकी उसका पूरा हिस्सा दिया जावे ॥ २४ ॥

संसिद्धे तूद्धृतपण्ये सन्नस्य तदानीमेव प्रत्यंशं दशुः ॥ २५ ॥

सामान्या हि पथि सिद्धिश्चासिद्धिश्च ॥२६॥ प्रक्रान्ते तु कर्मणि
स्वस्थस्यापक्रमतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥

माल बिक्रि जानेपर जब दूकान उठा दी जानेवाली हों, तो साक्षीको फ़ारन हो उसका हिस्सा दे दिया जाय ॥ २५ ॥ क्योंकि आगे काम करनेमें सफलता और असफलता दोनोंही समान है (इसलिये जो चाहे साक्षीमे करे, न चाहे न करे, पहिला हिस्सा साफ़ कर दिया जावे ।) ॥ २६ ॥ कामके होते रहते हुएही, यदि कोई तन्दुरस्त व्यक्ति काम छोड़ कर चला जावे, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २७ ॥

न च प्राक्राम्यमपक्रमणे ॥ २८ ॥ चौरं त्वभयपूर्वं कर्मणः
प्रत्यंशेन ग्राहयेद्दद्यात्प्रत्यंशमभयं च ॥ २९ ॥ पुनः स्तैये प्रवा-
सनमन्यत्र गमनं च ॥ ३० ॥

क्योंकि इस प्रकार काम छोड़कर चलेजाना, किसीकी ह्चउपर निर्भर नहीं है ॥ २८ ॥ यदि कोई आपसका काम करनेवाला व्यक्ति चोरी करले, तो उसको अभयदान पूर्वक कहा जाय कि हम तुम्हारा हिस्सा भी देंगे, बात ठीक २ बतलाओ; ठीक बतलानेपर अभय और उसका हिस्सा दे दिया जावे ॥ २९ ॥ और यदि वह फिरभी चोरी करलेवे तो उसको साक्षीसे पृथक् कर दिया जावे ॥ ३० ॥

महापराधे तु दूष्यवदाचरेत् ॥ ३१ ॥ याजकाः स्वप्रचार
द्रव्यवर्जं यथासंभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥ ३२ ॥ अग्नि-
ष्टोमादिषु च ऋतुषु दीक्षणादूर्ध्वं याजकः सन्नः पञ्चममंशं लभेत ३३

किसी प्रकारका यज्ञ अपराध कर देनेपर तो उसके साथ राज्यापराधीके समान व्यवहार किया जावे ॥ ३१ ॥ यज्ञ करानेवाले (याजक) अपने निजी काममें आनेवाली वस्तुओंको छोड़कर दोष सगूर्य वेतनको, प्रथम निर्णयके अनुसार, अथवा बराबर २ आपसमें बांट लें ॥ ३२ ॥ आग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें दीक्षाके बादही याजकके अकस्मात् पीमार होजानेपर प्रथम निश्चित की हुई समग्र दीक्षणाका पाचवां हिस्सा बह ले लें ॥ ३३ ॥

सोमविक्रयादूर्ध्वं चतुर्थमंशम् ॥ ३४ ॥ मध्यमोपसदः प्रवर्ग्यो-
द्वासनादूर्ध्वं द्वितीयमंशं लभेत ॥ ३५ ॥ मायादूर्ध्वमर्घमंशम्
॥ ३६ ॥ सुत्मे प्रातः सवनादूर्ध्वं पादोनमंशम् ॥ ३७ ॥ मध्य-

न्दिनात्सवनाद्धर्मं समग्रमंशं लभेत ॥ ३८ ॥ नीता हि दक्षिणा
भवन्ति ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार सोमधिक्रयके बाद चौथा हिस्सा ॥ ३४ ॥ मध्योपसत्, सम्प्रन्धो प्रपयथांद्वासन (सोम तैयार करनेके लिये एक कर्म विनापका अङ्गभूत, जिसमे सोमका फाटना घूटना होता है) के बाद, दूसरा हिस्सा ॥ ३५ ॥ मध्योपसदनके बाद आधा हिस्सा ॥ ३६ ॥ और सामके अभिषय कालमें प्रातः सवनके बाद, तीन हिस्से ॥ ३७ ॥ तथा माध्यन्दिन सवनके अनन्तर सम्पूर्ण दक्षिणा ले लेंवे ॥ ३८ ॥ क्योंकि यज्ञकी समाप्तिपर दक्षिणा पूर्ण हो जाती है ॥ ३९ ॥

घृहस्पतिसवनवर्जं प्रतिसवनं हि दक्षिणा दीयन्ते ॥ ४० ॥
तेनाहर्गणदक्षिणा व्याख्याताः ॥ ४१ ॥ सन्नानामादशाहोरात्रा-
च्छेषभृताः कर्म कुर्युः ॥ ४२ ॥ अन्ये वा स्वप्रत्ययाः ॥ ४३ ॥

घृहस्पति सवनको छोड़कर शेष सबही सवनोंमें दक्षिणा दीजाती है ॥ ४० ॥ इससे अहर्गण दक्षिणाओंके नियम भी समझने चाहिये ॥ ४१ ॥ यामार हुण याजका को शेष दक्षिणा लेकर कार्य पूरा करनेवाले याजक दस दिन पर्यन्त कार्य करें ॥ ४२ ॥ अथवा अन्य याजक अपनी स्वतन्त्र दक्षिणा लेकर शेष कार्यको पूरा करें ॥ ४३ ॥

कर्मण्यसमाप्ते तु यजमानः सीदित् ॥ ४४ ॥ ऋत्विजः कर्म
समापय्य दक्षिणां हरेयुः ॥ ४५ ॥ असमाप्ते तु कर्मणि याज्यं
याजकं वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥

मारम्भ किये कर्मके समाप्त न होनेपर ही यदि यजमान बीमार हो जावे, तो ऋत्विजोंको चाहिये कि वे यज्ञको समाप्त कराके दक्षिणा लेंवे ॥ ४४, ४५ ॥ कर्मके समाप्त न होनेपर यदि यजमान, याजकको छोड़े, अथवा याजक यजमानको छोड़े, तो छोड़नेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥

अनाहिताग्निः शतगुरयज्या च सहस्रगुः ।

सुरापो वृषलीभर्ता ब्रह्महा गुरुत्व्यागः ॥ ४७ ॥

सौ गाय रखते हुण भी अन्याधान न करनेवाला, सहस्र गाय रखते हुण भी यजन न करनेवाला, शराय पीनेवाला, शत्रुको धरमे रखनेवाला, ब्राह्मणके मारनेवाला, गुरकी स्त्रीके साथ व्यवभिचार करनेवाला ॥ ४७ ॥

असत्प्रातिग्रहे युक्तः स्तेनः कुत्सितयाजकः ।

अदोषस्त्यक्तुमन्योन्यं कर्मसंकरनिश्चयात् ॥ ४८ ॥

इति धर्मस्थायि तृतीये अधिकरणे दासकर्मकरकल्पे भृतकाधिकारः

संभूपसमुत्थानं चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

आदित एकसप्ततिः ॥ ७१ ॥

कुत्सित दान लेनेवाला, चोर, और निन्दित व्यक्तियोंका याजक, कर्मोंके दूषित हो जानेके भयसे, परस्पर एक दूसरेके द्वारा छोड़ा जासकता है, इसमें कोई दोष नहीं । अर्थात् उपयुक्त प्रकारके यत्नमान या याजक एक दूसरेके, कर्म समाप्त न होनेपर भी छोड़ सकते हैं ॥ ४८ ॥

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरणमें चै.दहवां अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवां अध्याय ।

१७ प्रकरण ।

क्रय विक्रय तथा अनुशय ।

विक्रीय पण्यमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ अन्यत्र
दोषोपनिपाताविवक्षेभ्यः ॥ २ ॥ पण्यदोषो दोषः ॥ ३ ॥ राज-
चोरानन्युदकबाध उपनिपातः ॥ ४ ॥ बहुगुणहीनमार्तकृतं वावि-
पक्षम् ॥ ५ ॥

सौदा बेचकर जो फिर न देवे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥

यदि घट, सौदेमें कुछ दोष होनेके कारण, या किसी बाह्य आकस्मिक आपत्तिके कारण, अथवा किसी तरहके वस्तुगत असामर्थ्यके कारण, ऐसा करता है तो कोई दोष नहीं ॥ २ ॥ सौदे (बेचा हुआ वस्तु) में किसी तरहकी खराबीका होना ही 'दोष' है ॥ ३ ॥ राजा, चोर, अग्नि या जलके द्वारा बाधा पहुंचना 'उपनिपात' कहाता है ॥ ४ ॥ उस वस्तुका अत्यधिक गुणहीन होना, अथवा दुःखदायी होना 'अविपक्ष' कहा जाता है ॥ ५ ॥

वैदेहकानामिकरात्रमनुशयः ॥ ६ ॥ कर्षकाणां त्रिरात्रम्
॥ ७ ॥ गौरक्षकाणां पञ्चरात्रम् ॥ ८ ॥ व्यामिश्राणामुत्तमानां च
वर्णानां विवृत्तिविक्रये सप्तरात्रम् ॥ ९ ॥ आतिपातिकानां पण्या-
नामन्यत्राविक्रयमित्यविरोधेनानुशयो देयः ॥ १० ॥

क्रय विक्रय करनेवाले व्यापारियोंका सादा एक दिनके अन्दर रद्द हो सकता है । (अर्थात् सादेके २६ होनेकी मियाद सिर्फ एक दिन है, एक दिन तक ययाना आदि लौटाया जासकता है ।) किसानोंका तीन दिन तक ॥ ७ ॥ ग्वालोंका ५ दिन तक ॥ ८ ॥ और सङ्कर जाति तथा उत्तम वर्णोंका उनके जीवन निर्वाह के साधनभूत भूमि आदिके विक्रयमें सात दिनतक ॥ ९ ॥ जल्दीही बेची जानेवाली वस्तुओंको 'देरतक रखे रहनेपर दूसरी जगह बेचनेके योग्य यह न रहेगी' यह खयाल करके, वह वस्तु बेचनेतक सुरक्षित जेमे रहसके, उस प्रकार ययाना (अनुशय) देना चाहिये ॥ १० ॥

तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः पण्यदशभागो वा ॥ ११ ॥
 क्रीत्वा पण्यमप्रतिगृह्यतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र
 दोषोपनिपाताविपक्षेभ्यः ॥ १३ ॥ समानश्चानुशयो विक्रेतुरनुश-
 येन ॥ १४ ॥

इस नियमका उल्लङ्घन करनेवालोंको २४ पण, अथवा विक्रय वस्तु का दसवां हिस्सा दण्ड दिया जाय ॥ ११ वस्तुको खरीदकर जो फिर न लेवे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ परन्तु यदि कोई स्पाक्ति दोष, उपनिपात और अविपक्षके कारण ऐसा करता है, तो कोई क्षति नहीं ॥ १३ ॥ खरीदने वालेके लिये भी ययानेका वही नियम है, जो बेचने वालेके लिये ॥ १४ ॥

विवाहानां तु त्रयाणां पूर्वेषां वर्णानां पाणिग्रहणात्सिद्धमुपा-
 वर्तनम् ॥ १५ ॥ शूद्राणां च प्रकर्मणः ॥ १६ ॥ वृत्तपाणि
 ग्रहणयोरपि दोषमौपशायिकं दृष्ट्वा सिद्धमुपावर्तनम् ॥ १७ ॥
 न त्वेवाभिप्रजातयोः ॥ १८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंके विवाहोंमें पाणिग्रहणके बाद उलट फेर नहीं होसकती । अर्थात् स्त्री-पुरुष एक दूसरेको नहीं छोड़ सकते हैं ॥ १५ ॥ और शूद्रोंमें प्रथम सम्भोगतक छोड़ा जासकता है, इसके भागे नहीं ॥ १६ ॥ प्रथम तीन वर्णोंमें पाणिग्रहण हो जानेपर भी, यदि स्त्री-पुरुषके एक साथ प्रथम शयनकालमें, किसीमें (स्त्री या पुरुषमें) कोई दोष मालूम पड़े, तो विवाह-सम्बन्ध तोड़ा जासकता है ॥ १७ ॥ सन्तान होजानेपर किसी तरह भी नहीं तोड़ा जासकता ॥ १८ ॥

कन्यादोषमौपशायिकमनाख्याय प्रयच्छतः कन्यां पण्यवति-
 र्दण्डः शुल्कस्त्रीधनप्रतिदानं च ॥ १९ ॥ वरपितुर्वा वरदोषमना-

ख्याय विन्दतो द्विगुणः ॥ २० ॥ शुल्कस्त्रीधननाशश्च ॥ २१ ॥

कन्याके किसी गुप्त दोषको छिपाकरही जो पुरुष उसे व्याह्र देता है, उसको १६ पण दण्ड दिया जाय और शुल्क तथा स्त्रीधन उससे वापस लिया जाय ॥ १९ ॥ इसी प्रकार जो बरके दोषोंको छिपाकर विवाह करता है, तो उसे हुगना अर्थात् १९२ पण दण्ड दिया जाये ॥ २० ॥ और उसका दिया हुआ शुल्क तथा स्त्रीधन भी जप्त कर लिया जाये ॥ २१ ॥

द्विपदचतुष्पदानां तु कुष्ठव्याधितानामशुचीनामुत्साहस्वास्थ्य-
शुचीनामाख्याने द्वादशपणो दण्डः ॥ २२ ॥ आत्रिपक्षादिति
चतुष्पदानामुपवर्तनम् ॥ २३ ॥ आमंवेत्सरादिति मनुष्याणाम्
॥ २४ ॥ तावता हि कालेन शक्यं शौचाशौचौ ज्ञातुमिति ॥ २५ ॥

मनुष्य और चौपायोंके, कोढ़, बीमारी तथा दुष्टता आदि दोषोंके स्थान में, उन्हें उरसाही निरोग और अच्छा बतलानेवाले व्यक्तिको १२ पण दण्ड दिया जाये ॥ २२ ॥ चौपाये डेढ़ महीनेतक लौटाये जासकते हैं ॥ २३ ॥ और मनुष्य सालभर तक ॥ २४ ॥ क्योंकि इतने समयमें इनकी दुष्टता या सरलता अच्छी तरह मालूम हो सकती है ॥ २५ ॥

दाता प्रतिगृहीता च स्यातां नोपहतौ यथा ।

दाने क्रये वानुशयं तथा कुर्युः सभासदः ॥ २६ ॥

इति धर्मस्थाये तृतीयेऽधिकरणे विक्रीतक्रीतानुशयः पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
आदितो द्विसप्ततितमः ॥ ७२ ॥

धर्मस्थ पुरुषोंको उचित है कि वे देने लेने वालों तथा क्रय विक्रय करने वालोंके दान या क्रयमें अनुशयको इस प्रकार व्यवस्था करें, जिससे किसीको कोई हानि न उठानी पड़े ॥ २६ ॥

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

सोलहवां अध्याय ।

६८—७२ प्रकरण ।

प्रतिज्ञात धनका अप्रदान, अस्वामिविक्रय,
स्वस्वामिसम्बन्ध ।

दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम् ॥ १ ॥ दत्तमप्यपहा-

यमेकत्रानुशये वर्तेत ॥ २ ॥ सर्वस्वं पुत्रदारमात्मानं वा प्रदायानु-
शयिनः प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥

दान किये प्रतिज्ञात धनको न देना, ऋणके न देनेके समानही सम-
झना चाहिये । अर्थात् इन दोनोंके लिये एकसेही नियम हैं ॥ १ ॥ दिया हुआ
धन यदि काममें लाने योग्य न होये, तो वह केवल अमानतके तौरपरही
(अनुशय) रक्खा जावे ॥ २ ॥ और दाता, अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति, स्त्री पुत्र
तथा अपने आपको भी किसीको देकर, अनुशयी (दानका प्रतिगृहीता) के
धनको चुकावे ॥ ३ ॥

धर्मदानमसाधुषु कर्मसु चापघातिकेषु वार्थदानमनुपकारि-
ष्वपकारिषु वा कामदानमनर्हेषु च यथा च दाता प्रतिगृहीता च
नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ ४ ॥

असाधुओंमें धर्मबुद्धिसे दिया हुआ प्रतिज्ञात दान (ये साधु हैं, ऐसा
समझकर दान देनेकी प्रतिज्ञा की, फिर उनकी असाधुता मालूम हो जानेपर
वह प्रतिज्ञात धन न दिया हुआ) अथवा अच्छे कामोंके लिये, चोरजार आदि
पुरुषोंमें धार्मिक बुद्धिसे दिया हुआ प्रतिज्ञातधन, उपकार न करने वाले अथवा
अपकार करनेवाले पुरुषोंमें दिया हुआ प्रतिज्ञातधन, काम अभिलाषा पूर्णकरने
के लिये बेहया आदिमें दिया हुआ प्रतिज्ञातधन, अनुशयमें रक्खा जावे । चतुर
धर्मस्थ पुरुषोंको उचित है कि वे अनुशयका इस प्रकार निर्णय करें, जिसमें
दाता और प्रतिगृहीताको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे ॥ ४ ॥

दण्डभयादाक्रोशभयादनर्थभयाद्वा भयदानं प्रतिगृह्यतः स्तेय
दण्डः प्रयच्छतथ ॥ ५ ॥ रोपदानं परहिंसायाम् ॥ ६ ॥ राज्ञा-
मुपरि दर्पदानं च ॥ ७ ॥ तत्रोत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥

दण्डके भयसे, निन्दाके भयसे, अथवा रोग आदिके भयसे, दान देने
वाले या लेनेवालेको चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥ दूसरेको मारनेके लिये
क्रोधसे दान देने या लेनेवालेको भी यही पूर्वोक्त दण्ड दिया जावे ॥ ६ ॥ किसी
कार्यमें अभिमानके साथ राजासे अधिक यदि कोई म्पत्ति दान देवे, तो उसे
उत्तम साहत दण्ड दिया जावे ॥ ७-८ ॥

प्रातिभार्यं दण्डशुल्कशेषमाक्षिकं सौरिकं कामदानं च .
नाकामः पुत्रो दायदो वा रिक्थहरो दद्यात् ॥ ९ ॥ इति दत्त-
स्यानपाकर्म ॥ १० ॥

वृथा लिया हुआ ऋण, दण्ड (जुरमाना) शेष, शुल्कशेष, जुर्माने द्वारा धन, सुरापानमें किये गये ऋण, तथा वैश्या आदिको दिये जाने वाले धन को, मृत पुरुष का कोई दाय भागी, या उस की सम्पत्ति को लेने वाला, बदल न करना चाहे, तो न करे। इस में उसे बाधित नहीं किया जा सकता ॥ १० ॥ यहाँ तक देने की प्रतिज्ञा की हुई वस्तुके न देनेके सम्बन्ध में कहा गया ॥ १० ॥

अस्वामिविक्रयस्तु ॥ ११ ॥ नष्टापहतमासाद्यं स्वामी धर्मस्थेन ग्राहयेत् ॥ १२ ॥ देशकालातिपत्तौ वा स्वयं गृहीत्वोपहरेत् ॥ १३ ॥ धर्मस्थश्च स्वामिनः अनुयुञ्जीत कुतस्ते लब्धमिति ॥ १४ ॥

जो पुरुष किसी वस्तुका स्वामी न होता हुआ उसे बेच दे, उसके दण्ड आदिका विधान अब करते हैं ॥ ११ ॥ खोये अथवा अपहरण किए हुए पदार्थको, मालिक यदि किसीके पास देवे, तो उस पुरुषको धर्मस्थते कह कर पकड़वा देवे ॥ १२ ॥ यदि देश या काल इसमें बाधक हो, तो स्वयं पकड़कर धर्मस्थके पास ले जाये ॥ १३ ॥ धर्मस्थ उससे पूछे, कि तुमने यह माल कहाँसे पाया ? ॥ १४ ॥

स चेदाचारक्रमं दर्शयेत् न विक्रेतारं तस्य द्रव्यस्याति सर्गेण मुच्येत ॥ १५ ॥ विक्रेता चेद्दृश्येत मूल्यं स्तेयदण्डं च ॥ १६ ॥

यदि वह सब ठीक २ मिलसिलेबाद बता दे, कि वह वस्तु मुझे इस प्रकार मिली है, तथा बेचनेवालेको न कहे (अर्थात् यह चीज मुझे किसीने बेची नहीं है, स्वयं ही मुझे कहीं पड़ी हुई, या अन्य किसी प्रकारसे मिल गई है,) और उस वस्तुको उसके असली मालिकको सौंप देवे, तो वह छोड़ दिया जावे ॥ १५ ॥ यदि वह किसी बेचनेवालेको बतलावे (अर्थात् यह कहे कि मैंने यह वस्तु फलानेसे खरीदी है) तो उस विक्रेतासे उस वस्तुका मूल्य खरीदनेवालेको खिला दिया जावे, वह वस्तु उसके असली मालिकको दे दी जावे। और विक्रेताको चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ १६ ॥

स चेदपसारमधिगच्छेदपसरेदापसारक्षयादिति क्षये मूल्यं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ १७ ॥ नाष्टिकं च स्वकरणं कृत्या नष्टप्रत्याहृतं लभेत ॥ १८ ॥

यदि वह भी किसी दूसरे विक्रेताका नाम लेवे, तो सुटकारा पा जावे। इसी प्रकार होते २ जो सबकी जड़में विक्रेता निकले (अर्थात् सबसे पहिला

विप्रेता, जिसने पहिले पहिल उस चीजको घेचा था) उसीसे उसका मूल्य और जुरमाना बसूल किया जावे ॥ १७ ॥ सोई हुई वस्तुको, उसका भसली मालिक, वस्तु विपयक लेख और साक्षी दिखलकरही प्राप्त कर सकता है ॥ १८ ॥

स्वकरणाभावे पञ्चवन्धो दण्डः ॥ १९ ॥ तच्च द्रव्यं राजधर्म्यं स्यात् ॥ २० ॥ नष्टापहृतमनियेद्योत्कर्षतः स्वामिनः पूर्वः साहस दण्डः ॥ २१ ॥

यदि वह पुरय उस वस्तुपर अपना स्वत्व सिद्ध न कर सके, तो उसके मूल्यका पांचवां हिस्सा जुरमाना भरे ॥ १९ ॥ और उस वस्तुपर राजाकाही धर्मपूर्वक आधिवार होवे ॥ २० ॥ खोई हुई वस्तुको किसीके पास देखकर, उसका मालिक यदि धर्मस्थको न कहे, अपने आपही छीनने लग जावे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

शुल्कस्थाने नष्टापहतोत्पन्नं तिष्ठेत् ॥ २२ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्व-
मनभिसारं राजा हरेत्स्वामी वा ॥ २३ ॥

किसांका सोया हुआ या अपहरण किया हुआ माल चुंगारधर (शुल्क-
स्थान) में रख दिया जावे ॥ २२ ॥ डेढ़ गहीन तक यदि उसका मालिक न मिले, तो यह सरकारी माल समझा जावे । अथवा साक्षी आदिके द्वारा अपना स्वत्व उसपर सिद्ध करके मालिक उस वस्तुको लेलेवे ॥ २३ ॥

स्वकरणेन पञ्चपणिकं द्विपदरूपस्य निष्क्रयं दद्यात् ॥ २४ ॥
चतुष्पणिकमेकरुरस्य द्विपणिकं गोमहिपस्य पादिकं क्षुद्रपशूनां
रवसारफलगुकुप्यानां पञ्चकं शतं दद्यात् ॥ २५ ॥

दास दासी आदिको छुड़ानेके लिए (प्रति व्यक्तिके हिस्सायसे) ५ पण ॥ २४ ॥ एक सुरवाले घोड़े गधे आदिके लिए ४ पण, गाय भैंस आदिके लिए २ पण, और छोटे २ पशुओंके लिए ३ पण, तथा रस, बहुमूल्य, टिकाऊ चीजों रस हीन वस्तुओं (फल्यु) और ताँबे आदि धातुओंके लिए प्रतिशतक ५ पण निष्क्रय, (छुड़ानेका सरकारी टैक्स) छुड़ानेवाला देवे ॥ २५ ॥

परचकाटवीभृतं तु प्रत्यानीय राजा यथास्वं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥
चोरहृतमविद्यमानं स्वद्रव्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २७ ॥ प्रत्यानेतुम-
शक्तो वा स्वयंग्राहेणाहृतं प्रत्यानीय तन्निष्क्रयं वा प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥

दूसरे राजा या जंगलियोंसे अपहरण किए हुए, दास, दासी या चीपा-
योंको, राजा स्वयं लाकर, जिनके हाँ उनको देदेवे ॥ २६ ॥ चोरोंसे अपहरण

की हुई वस्तु यदि छुट हो जाय, अथवा राजा भी उसे लौटाकर न ला सके, तो अपनी चीजोंमेंसे उसी जातिकी चीज, अपहृत वस्तुके स्वामीको देवे ॥२७॥ चोरोंको पकड़नेके लिए नियुक्त हुए पुरुषोंके द्वारा लाई हुई चीज उसके मालिक को देदेवे । यदि ऐसा सम्भव न हो तो खोई हुई वस्तुका मूल्य उसको देदिया जावे ॥ २८ ॥

परविपधाद्वा विक्रमेणानीतं यथाप्रदिष्टं राज्ञा भुञ्जीतान्यचार्यप्राणेभ्यो देवब्राह्मणतपस्विद्रव्येभ्यश्च ॥२९॥ इत्यस्वामिविक्रयः ॥ ३० ॥

दूसरे देशसे जीतमें लाये हुए धनको, राजाकी आज्ञानुसार भोग करे, परन्तु यदि यह धन आर्थों, देवताओं, ब्राह्मणों और तपस्वियोंका हो, तो उसे भोग न करे, प्रत्युत उन्हें वापिस लौटा दे ॥ २९ ॥ यहाँतक अस्वामिविक्रयके सम्बन्धमें कहा गया ॥ ३० ॥

स्वस्वामिसंबन्धस्तु ॥ ३१ ॥ भोगानुवृत्तिरुच्छिन्नदेशानां यथास्वद्रव्याणाम् ॥ ३२ ॥ यस्त्वं द्रव्यमन्यैर्भुज्यमानं दशवर्षाण्युपेक्षत हीयेतास्य ॥ ३३ ॥

यद्य स्वस्वामिसंबन्ध (सम्पत्तिपर पुरुषका अधिकार, धन और मालिकका सम्बन्ध) का निरूपण करते हैं ॥ ३१ ॥ जिस पुरुषकी सम्पत्तिके लिए साक्षी नहीं मिलते, परन्तु वह लगातार उसको भोगता चला आ रहा है तो यही बात उस सम्पत्तिपर उसका स्वत्व बतलानेके लिये पर्याप्त प्रमाण है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष, वृत्तोंसे भोगी जाती हुई अपनी सम्पत्तिकी दस वर्ष तक परवाह नहीं करता, तो फिर उस सम्पत्तिपर उसका अधिकार नहीं रहता ॥३३॥

अन्यत्र बालवृद्धव्याधितन्यसनिग्नेपितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ ३४ ॥ विंशतिवर्षोपेक्षितमनवासितं वास्तु नानुपुञ्जीत ॥ ३५ ॥

परन्तु यदि वह सम्पत्ति बालक, वृद्धे, बीमार, अपहृत, परदेशको गधे हुए, देशत्यागी, और राजकीय कार्यके कारण बाहर घूमने वाले पुरुषोंकी हो, तो उनका इस वर्षके बाद भी बराबर उसपर अधिकार बना रहता है ॥ ३४ ॥ इमी प्रकार जो पुरुष, मालिकसे विष्कूल बाधा न डाले जाने पर, २० वर्ष तक लगातार किसी भकानमें रहे, तो उसपर, उली पुरुषका अधिकार हो जाता है ॥ ३५ ॥

ज्ञातयः श्रोत्रियाः पापण्डा वा राज्ञामसंनिधां परवास्तुषु
वियसन्तो न भोगेन हरेयुः ॥ ३६ ॥ उपनिधिमाधिं निधिं निक्षेपं
स्त्रियं सीमानं राजश्रोत्रियद्रव्याणि च ॥ ३७ ॥

ज्ञाति (भाई पन्धु सम्बन्धी लोग) श्रोत्रिय, और पापण्ड व्यक्ति, राजा-
ओंके समीप न होनेपर, दूसरोंके मकानोंमें रहते हुए भी उसपर अपना अधि-
कार नहीं जमा सकते ॥ ३६ ॥ उपनिधि, आधि, निधि (राजाना) निक्षेप,
खी, सीमा तथा राजा या श्रोत्रियकी वस्तुओं पर कोई व्यक्ति अधिकार नहीं
करसकता ॥ ३७ ॥

आश्रमिणः पापण्डा वा महत्यवकाशे परस्परमवाधमाना
वसेयुः ॥ ३८ ॥ अल्पां वाधां सहेरन् ॥ ३९ ॥ पूर्वगतो वा
वासपर्यायं दद्यात् ॥ ४० ॥

आश्रमी और पापण्ड (वेद बाह्य, लाल कपड़े पहिने, व्रत उपवास
आदि करने वाले) खुली जगडमें एक दूसरेको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचाते
हुए निवास करें ॥ ३८ ॥ यदि थोड़ी सी हानि किसीको एक दूसरेसे पहुंचे, तो
उसे सहन करले ॥ ३९ ॥ प्रथम आया हुआ व्यक्ति, पीछे आने वालेको, निवास
के लिये स्थान देदेवे ॥ ४० ॥

अग्रदाता निरस्येत ॥ ४१ ॥ वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामा-
चार्यशिक्ष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थ्या रिकथभाजः ॥ ४२ ॥ क्रमेण
विवादपदेषु चैपां यावन्तः पणाः दण्डास्तावती रात्रीः क्षपणाभि-
येकाग्निकार्यमहाकच्छवर्धनानि राजश्वरेयुः ॥ ४३ ॥

यदि न वेवे, तो उसे बाहर निकाल दिया जाय ॥ ४१ ॥ वानप्रस्थी,
सन्ध्यांसी और ब्रह्मचारियोंकी सम्पत्तिके भागी, क्रमसे उनके आचार्य, शिक्ष्य,
धर्म भाई या सहाप्यायी होते हैं । (पहिलेके न होने पर दूसरा अधिकारी होता
है) ॥ ४२ ॥ यदि इन लोगोंका परस्पर कोई झगडा होजाय, तो उसमें जितने
पण किसीके उपर डुरमाना हो, उतनी ही रात्रि पर्यन्त वह राजाके दण्ड्याणके
लिये, उपवास, स्नान, अग्निहोत्र, तथा कठिन चान्द्रायण आदि व्रतोंका अनुष्ठान
करे ॥ ४३ ॥

अहिरण्यमुवर्णाः पापण्डाः साधनस्ते यथास्वमुपवासव्रतैरा-
राधयेयुः ॥ ४४ ॥ अन्यत्र पारुण्यस्तेयसाहससंग्रहणेभ्यः ॥ ४५ ॥
तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः ॥ ४६ ॥

द्विरण्य सुवर्ण आदि न रखने वाले पापण्ड धर्मशील व्यक्ति भी दण्ड होनेपर, अपने उचित उपवास व्रत आदिके द्वारा राजाके क्लेशणकी प्रार्थना करें ॥ ४४ ॥ परन्तु पारुष्य, (मारपीट आदि) चोरी, डाका और स्वभिचारके मामलोंमें इतने माघसे छुटकारा नहीं होसकता ॥ ४५ ॥ इनमें पूर्वोक्त सब दण्ड नियमानुसार होने चाहिये ॥ ४६ ॥

प्रत्रज्यासु वृथाचारात्राजा दण्डेन वारयेत् ।

धर्मो ह्यधर्मोपहतः शास्तरं हन्त्युपोक्षितः ॥ ४७ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकारणे भ्रत्वाभिविप्रयः स्वभ्याभिलेखनमः

पौडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ आदित्तिसप्तसतिः ॥ ७३ ॥

संन्यासियोंमें भी होनेवाले मिथ्या आचारोंकी, राजा दण्ड द्वारा इरावे । क्योंकि अधर्मसे दयाया हुआ, तथा उपेक्षा किया हुआ धर्म, शासन करने वाले राजाको नष्ट करदेता है ॥ ४७ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त ।

सत्रहवां अध्याय ।

७१ प्रकरण ।

साहस ।

साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म ॥ १ ॥ निरन्वये स्वैयमपव्ययने च ॥ २ ॥ रत्नसारफल्युकुप्यानां साहसे मूल्यसमो दण्ड इति मानवाः ॥ ३ ॥

खुले तौरपर बलात्कार धन आदिका अपहरण करना साहस (डाका मारधाड़ आदि) कहाता है ॥ १ ॥ छिपकर किसी वस्तुका अपहरण करना, या लेकर फिर मुकर जाना, चोरी कहा जाता है ॥ २ ॥ रत्न, बहुमूल्य दिवाङ्ग चीन्ने, नीरस अन्य वस्तु तथा ताँबे आदि पदार्थोंपर डाका डालने वालेको, उनकी कीमतके बराबर दण्ड दिया जाय, ऐसा मनुको मानने वाले आचार्योंका मत है ॥ ३ ॥

मूल्यद्विगुण इत्यांशनसाः ॥ ४ ॥ यथापराधमिति कौट-
ल्यः ॥ ५ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्दपकाञ्चर्मवेणुमृद्गाण्डादीनां
क्षुद्रकद्र याणां द्वादशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो दण्डः ॥ ६ ॥

भाजनस सम्प्रदायके चिद्वान् कहते हैं, कि मूल्यते दुग्ना दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ परन्तु कौटल्यका मत है कि अपराधके अनुसार ही दण्ड देना चाहिये ॥ ५ ॥ फूल, फल, शाक, मूल, वन्द, पका हुआ अन्न, घमदा, पात, मट्टीके बर्तन आदि छोटी २ चीजों पर डाका डालने वालेको १२ पणसे लगाकर २४ पण तक दण्ड देना चाहिये ॥ ६ ॥

कालायसकाष्ठरज्जुद्रव्यक्षुद्रपशुवाटादीनां स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणावरो ऽष्टचत्वारिंशत्पणपरो दण्डः ॥ ७ ॥ ताम्रवृत्तकंसकाचदन्तभाण्डादीनां स्थूलद्रव्याणामष्टचत्वारिंशत्पणावरं पणवतिपरं पूर्वं साहसदण्डः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार लोहा, लकड़ी, रस्सी आदि चीजों, छोटे २ पशु, तथा बछ आदि, स्थूल द्रव्योंके डाके आदिमें २४ से लगाकर ४८ पण तक ॥ ७ ॥ और तांबा, पीतल, कांसा, कांच तथा हाथी दांत आदि चीजोंके बने हुए बर्तनों तथा अन्य वस्तुओंपर डाका आदि डालने वालेको ४८ पणसे लगाकर ९६ पण तक दण्ड दिया जावे, इसीको प्रथम साहस दण्ड कहते हैं ॥ ८ ॥

महापशुमनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णस्रक्ष्मवस्त्रादीनां स्थूलकद्रव्याणां द्विशतावरः पञ्चशतपरः मध्यमः साहसदण्डः ॥ ९ ॥ स्त्रियं पुरुषं वाभिपक्ष्य वधतो बन्धयतो बन्धं वा मौक्षयतः पञ्चशतावरः सहस्रपर उत्तमः साहसदण्ड इत्याचार्याः ॥ १० ॥

बड़े २ पशु, मनुष्य, खेत, भकान, हिरण्य, सुवर्ण, तथा महान बट्ट आदि बड़े द्रव्योंपर, २०० पणसे लगाकर ५०० पण तक दण्ड दिया जावे । इसीका नाम मध्यमसाहस दण्ड है ॥ ९ ॥ स्त्री या पुरुषको बलात्कार बांधने या बंधवाने वाले तथा (राजाजिके अनुसार) बंधे हुए पुरुषको मुक्त कर देने वाले पर ५०० पणसे लगाकर १००० पण तक जुर्माना किया जाय । यही उत्तम-साहसदण्ड कहाता है, ऐसा आपायोंका मत है ॥ १० ॥

यः साहसं प्रतिपत्तेति कारयति स द्विगुणं दद्यात् ॥ ११ ॥
यावद्विरण्यमुपयोक्ष्यते तावदास्यामीति स चतुर्गुणं दण्डं दद्यात् ॥ १२ ॥

जो जानबूझकर अधया कहकर साहस कर्म कराता है उसे दुग्ना दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ तथा जो पुण्य अजितना धन धन्य होगा लगाऊंगा (तुम

बिल्कुल पचाह मत करो) देता कहकर साहस कर्म कराता है, उसे चौगुना दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥

य एतावद्विहरण्यं दास्यामीति प्रमाणमुद्दिश्य कारयति स यथोक्तं हिरण्यं दण्डं च दद्यादिति बार्हस्पत्याः ॥ १३ ॥ स चेत्कोपं मदं मोहं वापदिशेद्यथोक्तवदण्डमेनं कुर्यादिति कौटिल्यः ॥ १४ ॥

यहस्पतिके अनुयायी आचार्योंका मत है कि—जो पुरुष 'इतना सुवर्ण रूंगा' इस प्रकार धनकी सादाद को कहकर किसीसे साहस कर्म कराता है, वह उतना ही सुवर्ण देवे, और दण्ड अतिरिक्त देवे ॥ १३ ॥ परन्तु कौटिल्यका मत है कि इसप्रकारं साहस करनेवाले पुरुषको, यदि वह इसका कारण, अपने श्रेय, तथियतके ठीक ठियाने पर न रहने और अज्ञानको बताने तो वही दण्ड दिया जाय जो साहस आदि कर्म करने वालेके लिये बताया गया है ॥ १४ ॥

दण्डकर्मसु सर्वेषु रूपमष्टपणं शतम् ।

शतात्परे तु व्याजीं च विद्यात्पञ्चपणं शतम् ॥ १५ ॥

प्रजानां दोषबाहुल्याद्राज्ञां वा भावदोषतः ।

रूपव्याज्यावधर्मिष्ठे धर्म्यानुप्रकृतिः स्मृता ॥ १६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये अधिकरणे साहसं समुद्रतो ऽध्यायः ॥ १७ ॥

आदितश्चतुःसप्ततिः ॥ ७४ ॥

सप्त दण्डोंमें प्रति सैकड़ा ८ पण रूप (इस नामका सरकारी टैक्स) और दण्डकी रकम १०० से कम होनेपर, (उत्तर प्रति सैकड़ा ५ पण व्याजी (यह भी सरकारी टैक्स है) समझनी चाहिये ॥ १५ ॥ प्रजामें दोषोंकी अधिकता होनेसे अथवा राजाके दिलमें बेईमानी आजानेसे रूप और व्याजी धर्मो-नुकूल नहीं समझे जाते । इसलिये शाखोंमें विधान किये गये दण्ड ही धर्मो-नुकूल माने गये हैं ॥ १६ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें सप्तहत्वां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय ।

७२ प्रकरण ।

वाक्पारुष्य ।

वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सनमभिभर्त्सनमिति ॥ १ ॥ शरीर-

प्रकृतिश्रुतवृत्तिजनपदानां शरीरोपवादेन काणखज्जादिभिः सत्ये त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥

मालीमलीच, निन्दा और बुझकना यह चारवाक्य कहाता है ॥ १ ॥ शरीर, प्रकृति (ब्राह्मण क्षत्रियादिरूप) श्रुत (जानकारी) वृत्ति (जायिका निवाह का उपाय) और देश ये पांच वाक्यरूपके विषय हैं, इनमेंसे शरीरको लेकर यदि कोई पुरुष, काणे, गंत्रे, लंगड़े, लहलेको बाला आदि कहे, तो उसे ३ पण दण्ड दिया जाय ॥ २ ॥

मिथ्योपवादे पदपणो दण्डः ॥ ३ ॥ शोभनाक्षिमन्त इति काणखज्जादीनां स्तुतिनिन्दायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ कुष्ठोन्मादक्लैव्यादिभिः कुत्सारां च ॥ ५ ॥

यदि झंडो निन्दा करे तो उसे ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ यदि कोई पुरुष, काणे आदिकी व्याजस्तुतिसे निन्दा करे कि तुम्हारी आँखें आदि बड़ी अच्छी हैं, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ और कोई, उन्मत्त या नपुंसक आदि कहकर निन्दा करनेपर भी १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥

सत्यमिध्यास्तुतिनिन्दासु द्वादशपणोत्तरा दण्डास्तु-
व्येषु ॥ ६ ॥ विशिष्टेषु द्विगुणः ॥ ७ ॥ क्षीनेष्वर्षदण्डः ॥ ८ ॥
परस्त्रीषु द्विगुणः ॥ ९ ॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्षदण्डाः ॥ १० ॥

यदि कोई व्यक्ति अपने बराबरवालोंकी, तर्फी झंडी, या व्याजस्तुतिके द्वारा निन्दा करे, तो उसे यथाक्रम १२, २४ और ३६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ यदि अपनेसे बड़ोंके साथ ऐसा करे तो दुगना दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ अपनेसे छोटाके साथ करनेपर आधा दण्ड ॥ ८ ॥ दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ ऐसा व्यवहार करनेपर भी दण्ड दुगनाही दिया जावे ॥ ९ ॥ यदि इस प्रकार निन्दा करनेका कारण प्रमाद, मद या मोह आदि हो, तो आधा ही दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सकाः संनिकृष्टाः पुनांसश्च प्रमाणम् ॥ ११ ॥ ह्लीचभावे सियो भूत्रफेनमप्सु विष्टानिमज्जनं च ॥ १२ ॥

किसांके कोड़ी या उन्मत्त होनेमें, उसकी चिकित्सा करनेवाले और समीप रहनेवाले पुरुषको प्रमाण है ॥ ११ ॥ तथा नपुंसक होनेमें स्त्रियां, पेशायमें श्याम न उठना, और पानोंमें विष्टाका बूबजाना प्रमाण है ॥ १२ ॥

प्रकृत्युपवादे ब्राह्मणक्षत्रियवश्यशूद्रान्तावसाधिनामपरेण

पूर्वस्य त्रिपणोत्तराः दण्डाः ॥ १३ ॥ पूर्वणापरस्य द्विपणा-
धराः ॥ १४ ॥

। माह्वण क्षत्रियादि प्रकृतिको लेकर जो एक दूसरेकी निन्दा करे, उसके लिये निम्नलिखित दण्ड हैं:—यदि चाण्डाल शूद्रकी निन्दा करे तो ३ पण, वैश्यकी करे तो ६ पण, क्षत्रियकी करे तो ९ पण, और ब्राह्मणकी करे तो १२ पण दण्ड दिया जाय । इतने प्रकार माह्वण यदि चाण्डालकी निन्दा करे तो २ पण, शूद्रकी करे तो ४ पण, वैश्यकी करे तो ६ पण, और क्षत्रियकी करे तो ८ पण उसपर दण्ड किया जाय ॥ १३-१४ ॥

कुत्राह्वणादिभिश्च कुत्सायाम् ॥ १५ ॥ तेन श्रुतोपवादो
वाग्जीवनानां कारुकुशीलवानां वृत्स्युपवादः प्राज्जूनकगान्धारा-
दीनां च जनपदोपवादा व्याख्याताः ॥ १६ ॥

इसी प्रकार वाग्जीवी पुरुषोंकी एक दूसरेकी पड़ाई खिलाई या जान-
कारीकी निन्दा करनेपर, शिकरी और गवैयों आदिकी एक दूसरेके जीवन निर्वाह
के उपायोंकी निन्दा करनेपर, तथा भिक्षु २ देशोंके रहनेवालोंको, एक दूसरेके
देशको लेकर निन्दा करनेपर, उपयुक्त दण्ड ही दिया जावे ॥ १५-१६ ॥

यः परमेवं त्वां करिष्यामीति करणेनाभिभर्त्सयेदकरणे यस्त-
स्य करणे दण्डस्ततो ऽर्धदण्डं दद्यात् ॥ १७ ॥ अशक्तः कोपं मदं
मौहं वापदिशेद्द्वादशपणं दण्डं दद्यात् ॥ १८ ॥

जो पुरुष दूसरेको 'मैं तुझको इस प्रकार बर्ताऊंगा' अर्थात् सेरेहाथ
पंग तोड़ूंगा, 'तुझे चूष ठोकरूंगा' इस प्रकार केवल धमकाये, पर कुछ करे नहीं,
उसे उससे धाधा दण्ड मिलना चाहिये, जोकि इस प्रकार कहकर कर भी डाले,
(दण्ड पारुष्यमे यह दण्ड कहा जायगा) ॥ १७ ॥ यदि हाथपर आदि तोड़नेमें अस-
मर्थ कोई पुरुष, इस तरहके बर्तावका कारण मोष, उन्माद या अज्ञान यत्नसे,
तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥

जातिवैराश्यः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात् ॥ १९ ॥

इस बातके माह्वण ही जानेपर कि किसीने शत्रुताके कारण दूसरेको
साथपर तोड़नेकी धमकी दी है, और वह ऐसा करनेमें समर्थ भी है, तो उसे
अपनी आयके अनुसार दण्ड देना चाहिये । (अर्थात् समर्थ पुरुषका मोष
आदिका यहाना न सुना जाय, प्रयुक्त उसकी क्षमियतके मुनाविदः उससे पूरा
दण्ड पसूल किया जाय) ॥ १९ ॥

स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं जातिसंघयोः ।
 आक्रोशाद्देवचैत्यानामुत्तमं दण्डमर्हति ॥ २० ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वाक्पारण्यं अष्टादशो ऽध्यायः ॥१८॥

आदितः पञ्चसप्ततिः ॥७५॥

यदि कोई पुण्य अपने देश व गांवके विषयमें निन्दा करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड, अपनी जाति तथा समाजकी निन्दा करनेवालेको मध्यम साहस दण्ड और देव-मन्दिरोंकी निन्दा करने वालोंको उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवा अध्याय ।

७३ प्रकरण ।

दण्ड पारुष्य ।

दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहृतमिति ॥ १ ॥ नाभेरथः कायं
 हस्तपङ्कभस्रपांसुभिरिति स्पृशतस्त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥ तैरेवामेर्ध्वः
 पादृष्टीवनिकाभ्यां च पदपणः छर्दिमूत्रपुरीषादिभिर्द्वादशपणः ॥३॥

किर्माको छूना, किसीपर टण्डा या हाथ आदिका उठाना, और फोट करवेना ये तीनो दण्ड पारण्य कहलसे है ॥१॥ नाभिके नीचे शरीर भागपर हाथ, कान्छड़, सरर और धूल डालनेवालेको ३ पण दण्ड दिया जाय ॥२॥ यदि अपवित्र हाथ आदिसे रसो किया जाय, अथवा पैरमे छुदिया जाय, या किसीपर धूक दिया जाय, तो ६ पण दण्ड देना चाहिये । वमन, मूत्र और मल आदि छुआ देनेवालेको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥

नाभेरुपरि द्विगुणाः ॥ ४ ॥ शिरसि चर्तुगुणाः समेषु ॥ ५ ॥
 विशिष्टेषु द्विगुणाः ॥ ६ ॥ हीनेष्वर्धदण्डाः ॥ ७ ॥ परस्त्रीषु द्विगुणाः
 ॥ ८ ॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः ॥ ९ ॥

चेष्टी फांत यदि नाभिसे ऊपरके शरीर भागपर की जावें, तो दुगना दण्ड होना चाहिये ॥ ४ ॥ ओर सिरपर चोगुना । ये दण्ड बराबर वालोंके साथ भेसा व्यवहार करनेपर बतलाये गये हैं ॥ ५ ॥ यदि अपनेसे बड़े पुरषोंके साथ यह व्यवहार किया जाय, तो दुगुना दण्ड देना चाहिये ॥६॥ ठोटोंके साथ किये जानेपर आधा दण्ड ॥७॥ और दूसरोंकी चियोंके साथ किये जानेपर दुगुना दण्ड

होना चाहिये ॥ ८ ॥ यदि किसी पुरुषसे यह कार्य प्रयाद, उन्माद या अज्ञानवश हुआ हो, तो उसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ ९ ॥

पादवस्त्रहस्तकेशावलम्बनेषु पदपणोत्तरा दण्डाः ॥ १० ॥
पीडनावेष्टनाञ्जनप्रकर्षणाध्यासनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ११ ॥
पातयित्वापक्रमतोऽर्धदण्डाः । १२ ॥ शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणम-
मिहन्यात्तदस्य च्छेदयेत् ॥ १३ ॥

पैर, वस्त्र, हाथ और केशोंके पकड़नेपर यथाक्रम ६, १२, १८ और २४ पण दण्ड होना चाहिये ॥ १० ॥ किसीको पकड़कर मसलनेपर बाहोंमें लपेटकर रगड़नेपर, मुंह आदि काला करनेपर, जमीनपर घसाँटनेपर और नीचे डालकर ऊपर चढ़ बैठनेपर, प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ भूमिपर गिराकर भाग जानेवालेको प्रथम साहस दण्डका आधा दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ शूद्र जिस अङ्गसे ब्राह्मणको मारे, उसका वही अङ्ग काट दिया जाय ॥ १३ ॥

अवगूर्णे निष्क्रयः स्पर्शोऽर्धदण्डः ॥ १४ ॥ तेन चण्डालाशु-
चयो व्याख्याताः ॥ १५ ॥

यदि शूद्र, ब्राह्मणके किसी हाथ या पैर आदि अवयवको पकड़कर शठक दे, तो उससे उचित दण्ड वसूल किया जाय और केवल छू देनेपर उप-
युक्त दण्डका आधा वसूल किया जाय ॥ १४ ॥ इसी प्रकार चाण्डाल और अन्य नीच जातियोंके सम्बन्धमें नियम समझने चाहिये ॥ १५ ॥

हस्तेनावगूर्णे त्रियणावरो द्वादशपणपरो दण्डः ॥ १६ ॥
पादेन द्विगुणः ॥ १७ ॥ दुःखोत्पादनेन द्रव्येण पूर्वः साहस-
दण्डः ॥ १८ ॥ प्राणावाधिकेन मध्यमः ॥ १९ ॥

हाथसे धकेलने या शठकनेपर ३ पणसे लेकर १२ पणतक दण्ड होना चाहिये ॥ १६ ॥ पैरसे कानेपर दुगुणा ॥ १७ ॥ तथा किसी दुःखोत्पादक वस्तु (कांटा सुई आदि) के द्वारा करनेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ १८ ॥ और प्राणोंको भयंन डालनेवाली वस्तुके द्वारा ऐसा करनेपर मध्यम साहस दण्ड होना चाहिये ॥ १९ ॥

काष्ठलोष्टपापाणलोहदण्डरज्जुद्रव्याणामन्यतमेन दुःखमशौ-
णितमुत्पादयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ २० ॥ शोणितोत्पादने
द्विगुणः । २१ ॥ अन्यत्र दुष्टशोणितात् ॥ २२ ॥

लकड़ी, डेला, पत्थर, लोहेकी छड़, रस्सी आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकसे मारनेपर, यदि खून न निकले, तो २४ पण दण्ड दिया जाये ॥ २० ॥ खून निकल आनेपर ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥ यदि वह खून फोड़ या फोड़ा आदि होनेके कारण निकल आया हो, तो दुगना दण्ड न होना चाहिये ॥ २२ ॥

मृतकल्पमशोणितं घृतो हस्तपादपारंरिकं वा कुर्वतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ पाणिपाददन्तभङ्गे कर्णनासाच्छेदने व्रण-विदारणे च ॥ २४ ॥ अन्यत्र दुष्टव्रणेभ्यः ॥ २५ ॥

यदि बिनाही खून निकाले हुए किसीको मारते २ अधमरा कर दिया जाय, या उसके हाथपैरोंके जोड़ोंको तोड़ दिया जाय, तो मारनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ हाथपैर या दांतोंके तोड़ देनेपर, कान या नाकके फाट देनेपर और घायोंके फाड़ देनेपर भी प्रथम साहस दण्ड होना चाहिये । परन्तु वे घाय फोड़ आदिके कारण हुए २ न हों ॥ २४-२५ ॥

सविथग्रीवाभङ्गने नेत्रभेदने वा वाक्यचेष्टाभोजनोपरोधेषु च मध्यमः साहसदण्डः समुत्थानव्ययश्च देशकालातिपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत ॥ २६ ॥

गोडा वा गर्दन तोड़नेवाले, आँख फोड़नेवाले, धोलेने घूमने फिरने, तथा खाने-पीनेके शारीरिक साधनोंको नष्ट करनेवाले पुरयोंको मध्यम साहस दण्ड दिया जाये । तथा अपराधीही उस पुरपके खाने-पीने दवादार, तथा अन्य आवश्यक वस्तुके लिये धन भी देवे, जयतक वह ठीक न हो जाय । यदि अपराधीको इस प्रकार दण्ड देनेमें देशकाल बाधक हो, तो उसे कण्टक-शोधन (कण्टक शोधन अधिकरणमें बतलाये हुए दण्ड विधान) के लिये ले जाया जाये । (गणपतिशास्त्रोंने 'विपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत' केवल इतना सूय मानकर विपत्तिका अर्थ मरण किया है, अर्थात् उस पीटे हुए व्यक्तिके मर जानेपर, अपराधीको कण्टक-शोधनके लिये लेजाया जावे) ॥ २६ ॥

महाजनस्यैकं घृतो प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः ॥ २७ ॥ पर्युपितः कलहेऽनुप्रवेशो वा नाभियोज्य इत्याचार्याः ॥ २८ ॥ नास्त्यप-कारिणो मोक्ष इति कौटल्यः ॥ २९ ॥

यदि बहुतसे आदमी मिलकर एकको मारें, तो प्रत्येकको दुगना दण्ड दिया जाये । अर्थात् उससे दुगना, जो अकेला आदमी एकको मारनेपर पाता

हे ॥ २० ॥ बहुत पुराने झगड़े और चोरियोंपर मुकद्मा न चलाया जाय, ऐसा आचार्योंका मत है ॥ २८ ॥ परन्तु कौटल्य कहता है कि अपकारीको कर्मों न छोड़ना चाहिये ॥ २९ ॥

कलहे पूर्वागतो जयत्यक्षममाणो हि प्रधावतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥
नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ पूर्वं पश्चाद्भभिगतस्य साक्षिणः प्रमाणम्
॥ ३२ ॥

आचार्योंका कहना है कि झगड़ा (फौजदारी) होनेपर जो पहिलेही अदालतमें आ जाता है, उसकी जीत समझनी चाहिये, क्योंकि यह दूसरेसे बुद्धि दिये जानेपर उसे सहन न करता हुआ, धर्मस्थसे कहनेके लिये पहिलेही दौरा न आता है ॥ ३० ॥ परन्तु कौटल्य ऐसा नहीं मानता ॥ ३१ ॥ यह कहता है कि चाहे कोई अदालतमें पहिले आवे या पीछे, बिबादका निर्णय साक्षियोंके कथनानुसारही होना चाहिये ॥ ३२ ॥

असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वा ॥ ३३ ॥ घातामियो,
गमप्रतिश्रुवतस्तदहरेव पश्चात्कारः ॥ ३४ ॥ कलहे द्रव्यमपहरतो
दक्षपणो दण्डः ॥ ३५ ॥

साक्षियोंके न होनेपर चाँट आदिसे, अथवा चोट आदिके भी माहूम न होनेपर, अन्य लक्षणोंसे कलहका स्वरूप जानकर निर्णय किया जाये ॥ ३३ ॥ फौजदारीके मामलोंमें यदि प्रतिवादी उसी दिन जवाब न देदेवे तो यह हारा हुआ समझा जाय ॥ ३४ ॥ दो आदमियोंके आपसमें झगड़ते हुए यदि उनकी वस्तुओंको कोई अन्य पुरुष उठाकर लेजाय, तो उसे १० पण दण्ड देना चाहिये ॥ ३५ ॥

क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां तच्च तावन्न दण्डः ॥ ३६ ॥ स्थूलकद्र-
व्यहिंसायां तच्च द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३७ ॥

यदि आपसके झगड़ेमें कोई किसीकी छोटी २ वस्तुओंको नष्ट करद तो यह उनका मूल्य मालिकको देवे और उतनाही दण्ड राजकोशमें जमा करे ॥ ३६ ॥ यदि झगड़ेमें बड़ी २ वस्तुयें नष्ट होजायें, तो नष्ट करनेवाला, उनका मूल्य मालिकको और दुगना दण्ड सरकारको देवे ॥ ३७ ॥

घस्त्राभरणादिरण्यसुवर्णभाण्डाहिंसायां तच्च पूर्वश्च साहसदण्डः
॥ ३८ ॥ परकुट्ट्यमभिधातेन क्षोभयतास्त्रिपणो दण्डः ॥ ३९ ॥

यदि कोई घातों, आभूषणों, हिरण्य और सोनेके बस्तुओंको नष्ट करे,

तो वह मालिकको उनका पूरा मूल्य देवे और उसे नियमानुसार प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३८ ॥ दूसरेकी शीवारको धक्के या चोटसे हिलानेवाले पुरुषको ३ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥

छेदनभेदने पद्पणः प्रतीकारश्च ॥ ४० ॥ दुःखोत्पादनं द्रव्य-
मस्य वेश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥ प्राणावाधिकं
पूर्वः-साहसदण्डः ॥ ४२ ॥

शीवारके तोड़फोड़ देनेपर ६ पण दण्ड और नुकसानका पवज्ञ लिया जाय ॥ ४० ॥ यदि किसीके घरमें खोट पहुँचानेवाली या अन्य किमी प्रकारका दुःख देनेवाला वस्तुको कोई फेंके, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥ यदि कोई ऐसी वस्तु फेंके, जिससे प्राणोंका भी भय हो, तो फेंकनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥

क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः
॥ ४३ ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ ४४ ॥ महापशूनामेतेष्वेव
स्थानेषु द्विगुणो दण्डः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४५ ॥

छोटे २ जानवरोंको लकड़ी आदिसे मारनेपर १ या २ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ यदि जानवरके रक्त निकल आवे तो दुगुना दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥ गाय भैंस आदि बड़े २ पशुओंको इसी प्रकार सकलीक देनेवाले पुरुषपर दुगुना जरमाना किया जाय, और वह अपराधीही उसकी दवादारुका खर्च भी देवे ॥ ४५ ॥

पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतां प्ररोहच्छेदने पद्-
पणः ॥ ४६ ॥ क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः ॥ ४७ ॥ पीनशा-
खाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः ॥ ४८ ॥ स्कन्धवधे पूर्वः साहसद-
ण्डः ॥ ४९ ॥ समुच्छित्तौ मध्यमः ॥ ५० ॥

नगरके उपवनो (बाग बगीचों) में लगे हुए, फल फूल तथा छायावाले वृक्षोंके पत्ते तोड़नेपर ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥ छोटी २ शाखाओंके (टहनियोंके) तोड़नेपर १२ पण ॥ ४७ ॥ मोटी २ शाखाओंके काटनेपर २४ पण ॥ ४८ ॥ तमके टोक ऊपरके मोटे २ गुदोंके काटनेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ ४९ ॥ और पैदोंका जड़से काट डालनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥

पुष्पफलच्छायावद्भ्रूलमलतास्वर्धदण्डः ॥ ५१ ॥ पुण्यस्थान-
तपोवनश्मशानंहुमेपु च ॥ ५२ ॥

फल, फूल और छायावाली झाड़ियों तथा बेलोंको नष्ट करनेपर, उपर्युक्त
दण्डका आधा दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ मिर्ची पवित्र स्थानों, तपोवनों, और
श्मशानोंमें होनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर भी आधा दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥

सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालाक्षितेषु च ।

त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषु च ॥ ५३ ॥

इति धर्मस्थायि वृत्तार्थे अधिकरणे दण्डपारम्यमैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

आदितः पदसप्ततिः ॥ ७९ ॥

सीमाके वृक्षों, मन्दिरोंमें खड़े हुए वृक्षों, राजाको ओरसे निश्चान
किये हुए वृक्षों, तथा सरकारी वनोंमें होनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर दुगुना
दण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

धर्मस्थायि तृतीय अधिकरणमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

वीसवां अध्याय ।

७४-७५ प्रकरण ।

व्यतसमाह्वय और प्रकीर्णक ।

वृताध्यथो वृत्तमेकमुखं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्यत्र दीव्यतो
द्वादशपणो दण्डो गूढाजीविज्ञापनार्थम् ॥ २ ॥

वृताध्यथ, किसी एक नियत स्थानमें जुआ खेलनेका प्रबन्ध करे ॥ १ ॥
निश्चिन्त स्थानको छोड़कर अन्य कियी जगह जुआ खेलनेवालेको १२ दण्ड
दिया जाय । नियत स्थानपर जुआ खेलनेका प्रबन्ध इसलिये किया जाता है
कि जिससे, हुकाएपर जनताको घोटा देकर, ठगईने जीविका चलानेवाले
लोगोंका पता लग जाय ॥ २ ॥

वृताभियोगे जेतुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ पराजितस्य
मध्यमः ॥ ४ ॥ बालिशजातीयो ह्येव जेतुकामः पराजयं न क्षमत्
इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

लुपके मुकदमोंमें (लुपमें) जीतनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया
जाय ॥ ३ ॥ और हारनेवालेको मध्यम साहस दण्ड ॥ ४ ॥ क्योंकि यह मूल

तो वह मालिकको उनका पूरा मूल्य देवे और उसे नियमानुसार प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३८ ॥ दूसरेकी डीवारको धके या चोटसे हिलानेवाले पुरुषको ३ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥

छेदनभेदने पदपणः प्रतीकारश्च ॥ ४० ॥ दुःखोत्पादनं द्रव्य-
मस्य वैश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥ प्राणावाधिकं
पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४२ ॥

डीवारके तोड़फोड़ देनेपर ६ पण दण्ड और नुकसानका एवज् लिया जाय ॥ ४० ॥ यदि किसीके घरमें चोट पहुँचानेवाली या अन्य किसी प्रकारका दुःख देनेवाली वस्तुको कोई फेंके, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥ यदि कोई ऐसा वस्तु फेंके, जिससे प्राणोंका भी भय हो, तो फेंकनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥

क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः
॥ ४३ ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ ४४ ॥ महापशूनामेतेष्वेव
स्थानेषु द्विगुणो दण्डः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४५ ॥

छोटे २ जानवरोंको लकड़ी आदिसे मारनेपर १ या २ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ यदि जानवरके खून निकल आये तो दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥ गाय भैंस आदि षडे २ पशुओंको इसी प्रकार तकलीफ देनेवाले पुरुषपर दुगना जु्रमाना किया जाय, और वह अपराधीही उसकी दयादारका खर्च भी देवे ॥ ४५ ॥

पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतां प्ररोहच्छेदने पद-
पणः ॥ ४६ ॥ क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः ॥ ४७ ॥ पीनशा-
खाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः ॥ ४८ ॥ स्कन्धवधे पूर्वः साहसद-
ण्डः ॥ ४९ ॥ समुच्छित्तौ मध्यमः ॥ ५० ॥

नगरके उपवनों (बाग बगीचों) में लगे हुए, फल फूल तथा छायावाले वृक्षोंके पत्ते तोड़नेपर ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥ छोटी २ शाखाओंके (टहनियोंके) तोड़नेपर १२ पण ॥ ४७ ॥ मोटी २ शाखाओंके काटनेपर २४ पण ॥ ४८ ॥ तनेके टोक ऊपरके मोटे २ सुदोंके काटनेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ ४९ ॥ और पेड़को जड़से काट डालनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥

पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलताखर्धदण्डः ॥ ५१ ॥ पुण्यस्थान-
तपोवनश्मशानद्वुमेषु च ॥ ५२ ॥

फल, फूल और छायावाली झाड़ियों तथा बेलोंको नष्ट करनेपर, उपर्युक्त
दण्डका आधा दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ किन्हीं पवित्र स्थानों, तपोवनों, और
श्मशानोंमें होनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर भी आधा दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥

सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च ।

त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषु च ॥ ५३ ॥

इति धर्मस्थायीये तृतीये अधिकरणे दण्डपारम्पर्यमेकानांविशोऽध्यायः ॥ १९ ॥
आदितः षट्सप्ततिः ॥ ७६ ॥

सीमाके वृक्षों, मन्दिरोंमें रखे हुए वृक्षों, राजाकी ओरमें निशान
किये हुए वृक्षों, तथा सरकारी वनोंमें होनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर दुगुना
दण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

धर्मस्थायीये तृतीये अधिकरणमें उर्ध्वान्वयां अध्याय समाप्त ।

बीसवां अध्याय ।

७४-७५ प्रकरण ।

व्यतसमाह्वय और प्रकीर्णक ।

व्यूताध्यक्षो व्यूतमेकमुखं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्यत्र दीन्यतो
दादशपणो दण्डो गूढाजीविज्ञापनार्थम् ॥ २ ॥

व्यूताध्यक्ष, किसी एक नियत स्थानमें जुभा खेलनेका प्रबन्ध करे ॥ १ ॥
निश्चिन स्थानको छोड़कर अन्य किसी जगह जुभा खेलनेवालेको १२ दण्ड
किया जाय । नियत स्थानपर जुभा खेलनेका प्रबन्ध इसलिए किया जाता है
कि जिससे, लुकछिपका जनताको धोखा देकर, दगाईसे जीविका चलानेवाले
लोगोंका पता लग जाय ॥ २ ॥

व्यूताभियोगे जेतुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ पराजितस्य
मध्यमः ॥ ४ ॥ बालिशजातीयो ह्येष जेतुकामः पराजयं न क्षमत
इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

जुएके मुकदमोंमें (जुएमें) जीतनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया
जाय ॥ ३ ॥ और हारनेवालेको मध्यम साहस दण्ड ॥ ४ ॥ क्योंकि यह मूर्ख

जीतकी कामनासे जुभा खेलता हुआ, भय अपनी हारको सहन नहीं करता, और जीतनेवालेसे शगड़ा करता है । ऐसा भाचारियोंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ पराजितश्चेद्विगुणदण्डः क्रियेत न कश्चन राजानमभिसरिष्यति ॥ ७ ॥ प्रायगो हि कितयाः कूटदेविनः ॥ ८ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ६ ॥ यह कहता है कि यदि हारजाने वालेको जीतने वालेसे दुगना दण्ड दिया जाये, तो फिर कोई भी हारनेवाला जुभारी अपने शगड़ेको लेकर राजाके सामने न आवेगा ॥ ७ ॥ और फिर आम तौरपर ये धूर्त, जुभारी, कपटपूर्ण, लुकाउपकर जुभा खेलतेही रहेंगे । (जिससे कि हारनेवाले कभी इनके पंजेमें पाहर नहीं होसकते) ॥ ८ ॥

तेषामध्यक्षाः शुद्धाः काकण्यक्षांश्च स्थापयेयुः ॥ ९ ॥ काकण्यक्षानामन्योपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ १० ॥ कूटकर्मणि पूर्वः साहसदण्डो जितप्रत्यादानमुपधास्तेयदण्डश्च ॥ ११ ॥

जुभारियोंका निरीक्षण करनेवाले राजकीयपुरष, जुभा खेलनेके नियत स्थानपर साफ कौड़ी और पामे रखनादे ॥ ९ ॥ यदि कोई जुभारी उन कौड़ी और पासोको बदले, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥ यदि कोई कपटपूर्वक जुभा खेले, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय, और उसके जीते हुए धनको छीनलिया जाय, तथा रखनाये हुए पामोंमें कुछ तटशली करके दूसरेको धोखा देनेके कारण चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ ११ ॥

जितद्रव्यादध्यक्षः पञ्चकं शतमाददीत काकण्यक्षारलाशलाका-
यक्रयमुदकभूमिकर्मक्रयं च ॥ १२ ॥ द्रव्याणामाधानं विक्रयं च
कुर्यात् ॥ १३ ॥ अक्षभूमिहस्तदोषाणां चाप्रतिषेधने द्विगुणो
दण्डः ॥ १४ ॥

जीतने वालेसे, अध्यक्ष पांच प्रति सफड़ा लेलेये । तथा कौड़ी, पासे, भरल (घमड़े को घमाई हुई चौकड़ी, जिसपर पासे आदि डालकर खेला जाता है), शलाका, जल, जमीन का किराया और सरकारी टैक्स भी घसूल कर लेये ॥ १२ ॥ जुभारियों को चाँजे बेचने और गिरवी रखने की इजाजत भी देदेये ॥ १३ ॥ यदि अध्यक्ष, जुभारियों को, पासे जमीन और हाथकी सुराइयों से नहीं रोकता, तो उसे दुगना दण्ड दिया जाय । (उपसे दुगना, जितना कि धन उगने जीते हुए जुभारीसे घसूल करना है ॥ १४ ॥

तेन समाह्वयो व्याख्यातः ॥ १५ ॥ अन्यत्र विद्याशिल्पस-
माह्वयादिति ॥ १६ ॥ प्रकीर्णं तु ॥ १७ ॥

सुरा, मंडे सीतर आदि जानवरों का आपसमें मुकाबला कराकर जुआ खेलनेमें भी इसी प्रकार नियम समझने चाहिये ॥ १५ ॥ परन्तु विद्या और और शिल्प का मुकाबला करके जुआ खेलमें यह नियम लागू नहान होते ॥ १६ ॥ अथ प्रकीर्णक यानों परिशिष्ट का निरूपण करते हैं । अर्थात् इस अधिकरणके जिन विषयोंमें कुछ वस्तुव्य रोप है, यह कहते हैं ॥ १७ ॥

याचितकायक्रीतिकाहितकानिक्षेपकाणां यथादेशकालमदाने
यामच्छायासमुपवेशसंस्थितीनां चा देशकालातिपातने गुल्मतर-
देयं ब्राह्मणं साधयतः प्रतिवेशानुप्रवेशयोरुपरि निमन्त्रणे च द्वाद-
शपणो दण्डः ॥ १८ ॥

यदि कोई पुरुष मांगी हुई, क्रियाय पर ली हुई, अपने यहाँ धरोहर भादिके तीरपर रखी हुई, और आभूषण बनानेके लिये, सुवर्ण आदि धी हुई वस्तुओं को ठीक स्थान तथा समय पर न लौटावे, दिन या रातके किसी समय और किसी स्थान का संकेत करके फिर ठीक स्थान तथा समयमें जाकर न मिले, (यह समयानुपाकर्म का शेष है) घेड़े आदिके द्वारा नदी पार कराके ब्राह्मण से किराया मागे, अपने घरके अडोस पडोसके भ्रात्रिय को छोड़कर याहर और किसीको निमन्त्रण देवे, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय । (उप-
र्युक्त सथ अपराधोंमें चारह २ पण दण्ड ह) ॥ १८ ॥

संदिष्टमर्थमप्रयच्छतो भ्रातृभार्या हस्तेन लंघयतो रूपाजीवा-
मन्योपरुद्धां गच्छतः परवक्तव्यं पण्यं क्रीणानस्य समुद्रं गृहमु-
द्भिन्दतः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्यावाधामाचरतश्चाष्टचत्वारिंशत्पणो
दण्डः ॥ १९ ॥

प्रतिज्ञात धनको न देनेवाले, भाई की स्त्रियोंको हाथसे पकड़नेवाले, दूसरेके यहाँ रकी हुई घेरवाके पास जाने वाले, (यहाँ तक यह साहसका परि-
शिष्ट है) दूसरेसे (खरीदनेके लिये) कहे हुए द्रव्यको खरीदने वाले (यह अस्वामि विक्रय का शेष है), राजकीय चिन्होंसे युक्त मकानों को गिराने वाले (यह साहस का शेष है), और सामन्तों के चालीस कुलों तक याधा पटुंचाने वाले (यह वास्तुका शेष है) पुरुष को ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥

कुलनीवीप्राइकस्यापव्ययने विधयां छन्दवासिनीं प्रसह्यति-
चरतश्चण्डालस्यायां स्पृशतः प्रत्यामन्नमापद्यनभिधापतौ निष्कारण-
मभिधावनं कुर्वतः शाक्याजीवकादीन्वृषलप्रव्रजितान्देवपितृकार्येषु
भोजयतः शत्यो दण्डः ॥ २० ॥

जो पुरुष, वशापत्तरागत सर्व साधारण सम्पत्ति का अपव्यय करे, स्व-
तन्त्र रहने वाली विधवाके साथ बलात्कार करे, चण्डाल होकर आर्या खां का
स्पर्श करे, पड़ोसोंके ऊपर आपत्ति आनेपर उसकी सहायता न करे, बिना ही कारण
पड़ोसी के यहाँ आने जावे, बौद्ध भिक्षुओं को तथा शूद्रा सन्यासिनियों को देव-
कार्य (यज्ञादि) और पितृ कार्यों (धादादि) में भोजन करावे, उसे १०० पण
दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

शपथवाक्यानुयोगमनिमृष्टं कुर्वतो युक्तरुम चायुक्तस्य क्षुद्र-
पशुवृषाणां पुंस्तोपघातिनो दास्या गर्भमौपधेन पातयतश्च पूर्वः
साहसदण्डः ॥ २१ ॥

धर्मस्थ की आज्ञा के बिना ही, साक्षी के तौर पर शपथ ले कर
झगड़ों का फैसला करने वाले, अनधिकारी को अधिकार देने वाले,
छोटे २ पशुओं के पुस्तक को नष्ट कर उन्हें बधिया बनाने वाले, और
दासी के गर्भ को दबा देकर गिराने वाले पुरुष को प्रथम साहस दण्ड दिया
जाव ॥ २१ ॥

पितापुत्रयोर्दम्पत्योर्भ्रातृभगिन्योर्मातुलभाग्निनेययोः शिष्या-
चार्ययोर्वा परस्परमपतितं त्यजतः स्वार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये वा
त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥

पिता पुत्र, स्त्री पुरुष, भाई बहन, मामा भाजा, और गुरु शिष्य, इन
में से कोई एक, यदि न पतित हुए २ वृत्तरेका परिस्थान करें, अथवा कोई
व्यापारियोंके सधका मुखिया किसी व्यक्तिको धोमर आदि हो जाने के कारण
रास्ते के कहीं गावमें ही परिस्थान कर दे तो उनको प्रथम साहस दण्ड दिया
जाय ॥ २२ ॥

कान्तारे मध्यमः ॥ २३ ॥ तन्निमिषं भ्रेषयत उत्तमः सह-
प्रस्थायिष्यन्त्येणर्धदण्डाः ॥ २४ ॥ पुरुषमवन्धनीयं चमत्तो बन्ध-

यतो बन्धं वा मोक्षयतो बालमप्राप्तव्यवहारं वधतो बन्धयतो वा
सहस्रदण्डः ॥ २५ ॥

यदि कहीं दुर्गम जंगल आदिमें छोड़ देवे, तो मध्यम साहस दण्ड ॥२३॥
और इसी कारण मार डाले, तो उत्तम साहस दण्ड दिया जावे । तथा उसके
साथ २ जाने वाले अन्य पुरुषों पर, इसी अपराध में आधा दण्ड दिया
जावे ॥२४॥ जो व्यक्ति, निरपराध पुरुष को बांधे या बंधवावे, अथवा कैदीको
छोड़ देवे, और नाचालिग वृद्ध को बांधे या बंधवावे, उसे १००० पण दण्ड
दिया जाय ॥ २५ ॥

पुरुषापराधविशेषेण दण्डविशेषः कार्यः ॥ २६ ॥ तीर्थकर-
स्तपस्वी व्याधितः क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तस्तिरोजानपदो दण्डखेदी
निष्किंचनश्चानुग्राह्यः ॥ २७ ॥

किसी पुरुष के अपराधके अनुसार ही उसके दण्ड का विधान होना
चाहिये ॥ २६ ॥ दानी, तपस्वी, बीमार, भूखा, व्यासा, रास्ता चलतेसे थका
हुआ, परदेसी, बहुत चार दण्ड भुगता हुआ, तथा जो अकिञ्चन (निर्धन) हो,
ऐसे व्यक्तियों पर सदा अनुग्रह करना चाहिये ॥ २७ ॥

देवब्राह्मणतपस्विस्त्रीबालवृद्धव्याधितानामनाथानामनभिसरतां
धर्मस्थाः कार्याणि कुर्युः ॥ २८ ॥ न च देशकालमोगच्छलेना-
तिहरेयुः ॥ २९ ॥ पूज्या विद्याबुद्धिपौरुषाभिजनकर्मातिशयतश्च
पुरुषाः ॥ ३० ॥

धर्मस्थ अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे देव, ब्राह्मण, तपस्वी, स्त्री,
बालक, बूढ़े, बीमार तथा अपने दुःखों को कहने के लिये न जाने वाले अनार्यों
के कार्यों को स्वयं करे ॥ २८ ॥ देश काल आदिका बहाना करके उनके धन
का अग्रहरण न करें । अथवा उनको देश, काल या कार्य का बहाना करके तंज
न करे ॥ २९ ॥ तथा जो पुरुष, विद्या, बुद्धि, पौरुष, कुल और कार्योंके कारण
यज्ञे हुए हो, उनकी सदा प्रतिष्ठा करें ॥ ३० ॥

एवं कार्याणि धर्मस्थाः कुर्युरच्छलदर्शिनः ।

समाः सर्वेषु भावेषु विश्वास्या लोकसंग्रियाः ॥ ३१ ॥

इति धर्मस्थायि मृत्तये अधिकरणे श्रुतसमाह्वयं प्रकीर्णकानि विंशोऽध्यायः ॥२०॥
अग्रे देवः सप्तसप्ततिरध्यायः ॥३०॥ मृतापता कौटलीयव्यायस्य धर्मस्थायि
मृत्तीयमधिकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार धर्मस्थ, छल कपट रहित होकर अपने सब कार्योंको करें ।
 और सबका धरावर निरीक्षण करते हुए, जनताके विश्वास प्राप्त तथा लोक
 प्रिय बनें ॥ ३१ ॥

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरणमें बीसवां अध्याय समाप्त ।

धर्मस्थाय तृतीय अधिकरण समाप्त ।





कण्टकशोधन-चौथा अधिकरण

प्रथम अध्याय ।

७३ प्रकरण ।

कारुक रक्षण (शिल्पियों से प्रजाकी रक्षा)

प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयो वामात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः ॥ १ ॥

अर्ध्यप्रतीकाराः कारुशासितारः संनिक्षेप्तारः स्ववित्तकारवः श्रेणी-
प्रमाणा निक्षेपं गृह्णीयुः ॥ २ ॥

मान्त्रिकोंके गुणोंसे युक्त, तीन तीन मदेष्टा (कण्टकशोधनके लिये नियुक्त हुए अधिकारीका नाम) प्रजापीडक व्यक्तियोंसे प्रजाकी रक्षा करें । ॥ १ ॥ अच्छे स्वभाववाले, शिल्पियोंके मुखिया अर्थात् उनको भी कार्य सिखानेवाले, सबके सम्मुख लेनदेनका काम करनेवाले, अपने ही धनसे गहने आदि बनानेवाले, तथा शिल्पियोंमें विश्वासपात्र शिल्पीलोग हो किसीका निक्षेप (धन गिरवी) रख सकते हैं ॥ २ ॥

विपत्तौ श्रेणी निक्षेपं भजेत ॥ ३ ॥ निर्दिष्टदेशकालकार्यं
च कर्म कुर्युः ॥ ४ ॥ अनिर्दिष्टदेशकालकार्यापदेशं कालातिपा-
तने पादहीनं वेतनं तद्विगुणश्च दण्डः ॥ ५ ॥

निक्षेप लेनेवालेके मरजाने या चिरकालके लिये विदेश चले जानेपर साक्षीही उस निक्षेपके धनको हिस्सेवार अदा करें ॥ ३ ॥ स्थाने, समय तथा कार्यका प्रथम निक्षेप करके ही शिल्पीलोग काम करें ॥ ४ ॥ जो शिल्पी स्थान, समय तथा कार्यका निक्षेप न करनेका कुछ बहाना निकाले, और काम करनेके लिये ठीक समयपर उपस्थित न होवे, उनका चौथाई वेतन काट लिया जाय और उससे दुगुना उनको दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥

अन्यत्र श्रेणोपनिपाताभ्याम् ॥ ६ ॥ नष्टं विनष्टं वाभ्या-
भवेयुः ॥ ७ ॥

परन्तु यदि किसी हिस्सक प्राणीके द्वारा कोई वाधा उपस्थित होनेपर (श्रेण) अथवा किसी दैवी आपातके अचानक आ जानेपर ऐसा हुआ हो, तो

कोई अपराध नहीं ॥ ६ ॥ यदि कारीगरसे कोई वस्तु सर्वथा नष्ट हो जाय या घिसा जाय, तो कारीगर उसका मुषसान भरे । परन्तु श्रेय और उपनिपातके कारण ऐसा होवेपर, कोई अपराध नहीं । (१६ सूत्रका अन्वय इस सूत्रमें भी समझना चाहिये) ॥ ७ ॥

कार्यस्थान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्विगुणश्च दण्डः ॥ ८ ॥
तन्तुवाया दशैकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः ॥ ९ ॥ वृद्धिच्छेदे छेद-
द्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥

यदि वे कामको बिगाड़ देवे, तो उन्हें वेतन बिल्कुल न दिया जाय. और वेतनसे दुगना जुर्माना उनपर किया जाय ॥ ८ ॥ जुलाहेको चाहिये कि वह १० पल कपड़ा बुननेके लिये ११ पल सूत लेवे, (अर्थात् १० पल कपड़ेके लिये १ पल अधिक सूत लेवे, तात्पर्य यह है कि १० पलके ऊपर १ पल सूत छाजनमें खराब किया जासकता है, इससे अधिक नहीं) ॥ ९ ॥ यदि जुलाहा इससे अधिक छाजन निकाले, तो उसपर छाजनका दुगना दण्ड किया जाय ॥ १० ॥

सूत्रमूल्यं वानवेतनं शौमकौशियानामध्यर्धगुणम् ॥ ११ ॥
पत्रोर्णाकम्बलतूलानां द्विगुणम् ॥ १२ ॥ मानहीने हीनापहीनं
वेतनं तद्विगुणश्च दण्डः ॥ १३ ॥

सूत्रके कपड़ेको बुनाई (बुनाईकी मजदूरी) सूतकी कीमतके बराबर देनी चाहिये । तथा जूट (पाट) और रेशमी कपड़ोंकी बुनाई सूतसे ज्यादा ॥ ११ ॥ घुले हुए रेशमके कपड़े (पत्रोर्ण), ऊनी कम्बल तथा दुशालोंकी बुनाई सूतसे दुगनी होनी चाहिये ॥ १२ ॥ जितने नापका कपड़ा बुननेको कहा गया हो, यदि उससे कम बुने, तो उसी हिसाबसे वेतन भी उसे कम देना चाहिये, और कम बुनाईवा दुगना जुर्माना उसपर किया जाय ॥ १३ ॥

तुलाहीने हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १४ ॥ सूत्रपरिवर्तने मूल्य-
द्विगुणः ॥ १५ ॥ तेन द्विपटवानं व्याख्यातम् ॥ १६ ॥ ऊर्णा
तूलायाः पञ्चपालिको विहननच्छेदो रोमच्छेदश्च ॥ १७ ॥

यदि सूत तोलकर दिया गया हो, तो बुने हुए कपड़ेमें जितनी कमी हो उससे चौगुना दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ अगर जुलाहा सूतको बदल ले, तो उसे मूल्यसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ इसीसे दुसूती आदिकी बुनाई भी समझ लेनी चाहिये ॥ १६ ॥ १०० पल ऊनमेंसे ५० पल, बिनाई (बुनाई-स्ताफ कराई) में कम हो जाती है, और ५ पल बुनाईके समय ऊर्णा

उप जाता है । (तारपर्यं यह है कि धुनाई पुनर्हिम प्रति सैकड़ा १० पलके हिसाबसे जन कम होसकता है, इससे अधिक नहीं) ॥ १७ ॥

रजकाः काष्ठफलकश्लक्ष्णशिलासु वस्त्राणि नेनिज्युः ॥१८॥

अन्यत्र नेनिजन्तो वस्त्रोपघातं पट्पणं च दण्डं दद्युः ॥ १९ ॥

मुद्गराङ्गादन्यद्वामः परिदधानास्त्रिपणं दण्डं दद्युः ॥ २० ॥

धोवियोंको चाहिये कि वे लकड़ोंके फटेपर तथा चिकने साफ पत्थर पर कपड़ोंको धोवें ॥ १८ ॥ दूसरी जगह धोनेपर यदि कपड़ा फट जावे, तो वे उसका नुपसान भरे, और ६ पण दण्ड देवे ॥ १९ ॥ धोवियोंके अपने पहिननेके कपड़ोपर मुद्गरका चिन्ह होना चाहिये । जो धोयी इस प्रकार चिन्ह युक्त कपड़े न पहिन, वे सरकारको ३ पण दण्ड देवे ॥ २० ॥

परवस्त्रविक्रयावक्रयाधानेषु च द्वादशपणो दण्डः ॥ २१ ॥

परिवर्तने मूल्यद्विगुणो वस्त्रदानं च ॥ २२ ॥ मुकुलाघदातं

शिलापट्टशुद्धं धौत्रसत्रवर्णं प्रमृष्टश्वेतं चैकरात्रोत्तरं दद्युः ॥२३॥

धुलनेके लिये आये हुए, दूसरोंके कपड़ोंको बेचने किरायेपर देने या गिराफी रख देनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ कपड़ा घट्ट देनेपर कपड़ेके मूल्यसे दुगना दण्ड देवे, तथा कपड़ा चापस करे ॥ २२ ॥ धोवियोंको चाहिये कि वह फूलकी कलोंके समान सफेद कपड़ोंको एक दिनमें ही धोकर देदेवे, शिलापट्टके समान दृष्ट कपड़ोंको दो दिनमें, धुले हुए सूतकी तरह सफेद कपड़ोंको ३ दिनमें, और अल्पन्त सफेद कपड़ोंको ४ दिनमें धोकर दे देवे ॥ २३ ॥

पञ्चरात्रिकं तनुरागम् ॥ २४ ॥ पद्मात्रिकं नीलं पुष्पला-

क्षामस्त्रिष्टारक्तम् ॥ २५ ॥ गुरुवारिकर्मयत्नोपचार्यं जात्यं वासः

सप्तरात्रिकम् ॥ २६ ॥

हलके रंगवाले कपड़ोंको ५ दिनमें ॥ २४ ॥ नीले, गाढ़े रंगवाले तथा हारसिगार, लाल और अजीठ आदिमें रंगे हुए कपड़ोंको ६ दिनमें ॥२५ ॥ इसी प्रकार जो कपड़े यदी महान्तसे पुने हुए हों (अर्थात् जिनमें बहुत तरहके काग होरहे हों) अतः जिनके धोनेमें कुछ कठिनाता हो जो रेशम, पशम आदि उत्तम जातिके या यद्यिया कपड़े हों, उन्हें ७ दिनतक धोकर दे देवे ॥ २६ ॥

ततः परं वेतनहानिं प्राप्नुयुः ॥ २७ ॥ श्रद्धेया रागविवादेषु

वेतनं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ २८ ॥ पार्ष्णीनां पणो वेतनम्

॥ २९ ॥ मध्यमानामर्घपणः ॥ ३० ॥ प्रत्यवराणां पादः ॥ ३१ ॥

इसके बाद धोनेपर धोनेकी मजदूरी न दी जावे ॥ २७ ॥ रंगीन कपड़ोंकी मजदूरीमें शगडा होनेपर, रंगोंको ठीक २ समझनेवाले चतुर पुरष मजदूरीका फूसला फेर ॥ २८ ॥ बडिया रंगोंका एक पण वेतन ॥ २९ ॥ मध्यम=औसत दर्जेके रंगोंका आधा पण ॥ ३० ॥ और मामूली रंगोंका चौथाई पण वेतन देना चाहिये ॥ ३१ ॥

स्थूलकानां मापद्विमापकम् ॥ ३२ ॥ द्विगुणं रक्तकानाम् ॥ ३३ ॥ प्रथमेनजने चतुर्भागः क्षयः ॥ ३४ ॥ द्वितीये पञ्च-
भागः ॥ ३५ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ३६ ॥ रजकैस्तुनवाया
व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

मोटे कपड़ोंकी धुलाई एक माप (तत्कालीन कोठे सिक्का) या दो माप ॥ ३२ ॥ तथा रंगे हुए कपड़ोंकी, इससे दुगनी होनी चाहिये ॥ ३३ ॥ कपड़ोंकी पहिली धुलाईमें उमकी चौथाई कीमत कम हो जाती है ॥ ३४ ॥ बार दूसरी धुलाईमें पाचवां हिस्सा (अर्थात् दोष मूल्यका पांचवां हिस्सा) ॥ ३५ ॥ इसी तरह आगे भी समझना चाहिये । (अर्थात् तीसरी धुलाईमें दूसरी धुलाईके बारकी कीमतका छठा हिस्सा कम होजाता है, इत्यादि) ॥ ३६ ॥ धोवियोंके अनुसार दर्जियोंके नियम भी जान लेने चाहिये ॥ ३७ ॥

सुवर्णमाराणामशुचिहस्ताद्रूप्यं सुवर्णमनाख्याय सरूपं
क्रीणतां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३८ ॥ विरूपं चतुर्विंशतिपणः
॥ ३९ ॥ चौरहस्तादष्टनत्वारिंशत्पणः ॥ ४० ॥ प्रच्छन्नविरूपं
मूल्यहीनक्रयेषु स्तेयदण्ड ॥ ४१ ॥

दास तथा नीच नौकर चाकरोंसे (अशुचिहस्तात्) सुवर्णोप्यक्ष (अथवा सरकार) को सूचना दिये बिनाही, यदि सुनार सोने चांदी आदिके घने हुए गहने (सरूप) खरीदे, तो उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३८ ॥ बिना गहनेके सोने चांदी आदिको खरीदनेवाले सुनारोंको २४ पण ॥ ३९ ॥ चौरके हाथसे खरीदनेवालोंको ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ दूसरोंसे छिपाकर, गहने आदिको तोड़मोड़कर, थोड़े मूल्यमें खरीद लेनेपर, सुनारको चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

कृतमाण्डोपधौ च ॥ ४२ ॥ सुवर्णान्मापकमपहरतो द्विशतो

दण्डः ॥ ४३ ॥ रूप्यधरणान्मापंकमपहरतो द्वादशपणः ॥४४॥
तेनोचरं व्याख्यातम् ॥ ४५ ॥

यनामे हुए मालके बदल लेनेपर भी चोरीकाही दण्ड दिया जावे ॥४२॥ यदि सुनार सोनेमेंसे १ माप (तत्कालीन सोनेके सिक्केका सोलहवां हिस्सा) सोना चुरा लेवे, तो उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ४३ ॥ यदि एक धरण (प्रमाण विशेष) चांदीमेंसे एक माप चुरावे, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार अधिककी चोरीमें, अधिक दण्डकी कल्पना भी इसीके अनुसार करलेनी चाहिये ॥ ४५ ॥

वर्णोत्कर्षमपसाराणां यौगं वा साध्यतः पञ्चशतो दण्डः
॥ ४६ ॥ तयोरपचरणे रामस्यापहारं विद्यात् ॥ ४७ ॥

यदि कोई सुनार खोटे सोने चांदी पर नकली बढ़िया रंग कर देवे, तथा खरे सोने चांदीमें कुछ खोट मिला देवे, अर्थात् दूसरी धातुकी मिलावट कर देवे, तो उसे ५०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥ उन दोनों (नकली रंग और मिलावट) की असलियत को, उग्हं (सोने चांदी को) आनिमं डालने पर रंग के उड़ जाने से पहिचाने ॥ ४७ ॥

मापको वेतनं रूप्यधरणस्य ॥४८॥ सुवर्णस्याष्टभागः ॥४९॥
शिक्षाविशेषेण द्विगुणा वेतनवृद्धिः ॥५०॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम्
॥ ५१ ॥

एक धरण चांदी की कोई वस्तु बनाने पर, एक मापक वेतन दिया जावे ॥ ४८ ॥ सोने की बनवाईके लिये, उतने सोनेका आठवां हिस्सा वेतन दिया जावे ॥ ४९ विशेष कारीगरी करने पर दुगनी मजदूरी देदी जावे ॥ ५० ॥ इसी के अनुसार अधिक काम करानेपर अधिक मजदूरी देदी जावे ॥ ५१ ॥

ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटफानां पञ्चकं शतं वेतनम् ॥५२॥
ताम्रपिण्डो दशभागः क्षयः ॥ ५३ ॥ पलहीने हीनद्विगुणो दण्डः
॥ ५४ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

ताम्रा, लोहा, कांसा, लोहा, (अथवा रंग) पीतल इनकी बनवाईके लिये पांच प्रति सैकड़ा मजदूरी दी जावे ॥ ५२ ॥ ताम्रि का इनका हिस्सा, यनाते समय छीजनमें छोड़ा जासकता है ॥ ५३ ॥ इतने से एक पल कम होने पर भी नुकसानका दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार अधिक हानि होने पर, दण्ड का विधान समझ लेना चाहिये ॥ ५५ ॥

सीसत्रणुपिण्डो विंशतिभागः क्षय ॥ ५६ ॥ काकणी चास्य
पलवेतनम् ॥ ५७ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५८ ॥

सीसे और रागकी चीजे बनानेमें वीसवां हिस्सा हीजनमें निकल जाता है ॥ ५६ ॥ इसके एक पलकी बनवाईके लिये एक काकणी वेतन होता है ॥ ५७ ॥ इस से अधिक बनवाईका इसी हिसाब से वेतन देना चाहिये ॥ ५८ ॥

रूपदर्शकस्य स्थितां पणयात्रामकोप्यां कोपयत कोप्याम-
कोपयतो द्वादशदणो दण्डः ॥ ५९ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम्
॥ ६० ॥ कूटरूपं कारयतः प्रतिगृह्यतो निर्यापयतो वा सहस्रं
दण्डः ॥ ६१ ॥

यदि सिक्कों की परीक्षा करने वाला अधिकारी, चलते हुए खेर पणों का खोटा घतावे, और स्रोटे पणों को ग्वरा कह कर चालने दे, तो उसपर बारह पण जुर्माना किया जाय ॥ ५९ ॥ यद्ये सिक्कों के लिये ऐसा करने पर, इसी के अनुसार अधिक दण्ड दिया जावे ॥ ६० ॥ यदि कोई छिपकर जाली सिक्के घनवावे, धने हुआ को जान बूझ कर स्वीकार करे, अथवा बिना रोकटोक चलने देवे, तो उसे एक सहस्र पण दण्ड दिया जावे ॥ ६१ ॥

कोशे प्रक्षिपतो यधः ॥ ६२ ॥ अधरकपांसुधावकाः सार-
त्रिभागं लभेरन् ॥ ६३ ॥ द्वौ राजा रत्नं च ॥ ६४ ॥ रत्नापहार
उत्तमो दण्डः ॥ ६५ ॥ खनिरत्ननिधनिवेदनेषु पणमंशं निवेत्ता
लभेत ॥ ६६ ॥

अरेठे सिक्कों की जगह जाली सिक्कों को, सरकारी खजानेमें रखने वाले पुरुषको मृत्यु दण्ड दिया जाय ॥ ६२ ॥ खानेमें निकले हुए रत्नों को साफ करने वाले कर्मचारी, टूटे फूटे सारभूत मालका तीसरा हिस्सा ले लेंगे ॥ ६३ ॥ बाकी दो हिस्से और राजा को राजा होंगे ॥ ६४ ॥ रत्न चुराने वाले नौकर को उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६५ ॥ जो पुरुष, रत्नाकी खान, तथा कहीं गटे हुए खजानेका, राजा को पता देवे, तो उसका उठा हिस्सा उस पुरुष को दिया जावे ॥ ६६ ॥

ॐ इसके भागे त गणपति शास्त्री सम्पादित पुस्तक में दो सूत्र अधिक हैं—“व्यानी परिशुद्धा पणयात्रा । पणान्मापकमुपवीचतो द्वादशपणो दण्डः” । इनका अर्थ इस प्रकार है—पाच प्रति सक्का टेक्स (व्यानी) सरकार को देकर पण चलाना जासकता है । एक पणके चलानेके लिये मापक रित्यत लेने पर लक्षणापक्ष को १२ पण दण्ड दिया जावे ।

द्वादशमंशं भृतकः ॥ ६७ ॥ शतसहस्रादूर्ध्वं राजगामी
निधिः ॥ ६८ ॥ ऊने पष्टमंशं दद्यात् ॥ ६९ ॥ पार्वपौरुषिकं
निधिं जानपदः शुचिः स्वकरणेन समग्रं लभेत ॥ ७० ॥

यदि वह इसी कार्यके लिये राजाकी ओरसे मौकर हो, तो उसे बारहवा
हिस्सा दिया जावे ॥ ६७ ॥ यदि एक लाख पणसे अधिक राज्याप हो, तो
राजा उसका मालिक होता है । इतनेसे कम होनेपर, पाने वाला ही मालिक
समझा जावे ॥ ६८ ॥ परन्तु उसमेंसे छठा हिस्सा वह राजाको अवश्य देवे
॥ ६९ ॥ साक्षी और लेख आदि से यदि इस बातका निश्चय हो जावे कि पाया
हुआ एजाना पानेवालेके पिता पितामह आदिका ही स्थापित किया हुआ है,
तो ठीक आचारसे रहता हुआ वह पुरुष सम्पूर्ण खजानेका मालिक समझा
जावे ॥ ७० ॥

स्वकरणाभावे पञ्चशतो दण्डः ॥ ७१ ॥ प्रच्छन्नादाने सहस्रम्
॥ ७२ ॥ विपजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ
पूर्वः साहसदण्डः ॥ ७३ ॥ कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः
॥ ७४ ॥ मर्मवधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात् ॥ ७५ ॥

यदि वह साक्षी और लेख आदिके बिना ही उस सम्पत्ति पर अपना
प्रभुत्व जमाना चाहता है, तो उसे ५०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ७१ ॥ छिप
कर चुपचाप ही अपनी कब्जा करलेने पर १००० पण दण्ड दिया जावे ॥ ७२ ॥
यदि पैस, राजाको बिना सूचना दिये हो उसे रोगीकी चिकित्सा करे जिनमें
रोगी की मृत्यु का भय हो, तथा चिकित्सा करते २ रोगी मर भी जावे, तो
वैद्यको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ७३ ॥ यदि चिकित्सा के ही दोषके
कारण मृत्यु हुई हो तो मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ७४ ॥ शरीरके किसी
विशेष अङ्ग का गलत ऑपरेशन करने पर यदि रोगी का वह अङ्ग नष्ट हो जावे,
या और किसी तरह की हानि हो जावे, तो वैद्यको 'दण्ड पारुष्य प्रकरणमें' कहा
हुआ उचित दण्ड दिया जावे ॥ ७५ ॥

कुशीलवा वर्षारात्रमेकस्था वसेयुः ॥ ७६ ॥ कामदानमति-
मात्रमेकस्थात्तिपातं च वर्जयेयुः ॥ ७७ ॥ तस्यातिक्रमे द्वादश-
पणो दण्डः ॥ ७८ ॥ कामं देशजातिगोत्रचरणमैधुनापहाने
नर्मयेयुः ॥ ७९ ॥

धर्या मृत्युमें नष्ट आदि एक ही स्थानपर निवास करें ॥ ७६ ॥ तन्नासा

देखनेसे अत्यन्त प्रसन्न होकर, यदि कोई पुरुष उचित मात्रासे अधिक धन उन को देवे, अथवा उनकी कोई अप्रधिक स्तुति करे, तो उसे स्त्रीकार न करें । अर्थात् ऐसा करनेसे उन्हें रोक दें ॥ ७७ ॥ इस नियमकी उल्लङ्घन करनेपर १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ७८ ॥ किसी खास देश, जाति, गोघ्न, या घ्राण (किसी विशेष शाखा को पढ़ने वाले) की मन्त्राक अथवा निन्दा और मैथुन को छोड़कर नट लोग बाकी सब कुछ अपनी इच्छाके अनुसार खेल दिलाकर दर्शकों को खुश करसकते हैं ॥ ७९ ॥

कुशीलवैश्वारणा भिक्षुकाश्च व्याख्याताः ॥ ८० ॥ तेषामयः
शूलेन यावतः पणानभिवदेयुस्तावन्तः शिफाप्रहारा दण्डाः ॥ ८१ ॥
शेषाणां कर्मणां निष्पत्तिवेतनं शिल्पिनां कल्पयेत् ॥ ८२ ॥

नटांके ही अनुसार गाने नाचने वाले तथा भिक्षुकोंके नियम समझने चाहिये ॥ ८० ॥ दूसरों के मर्म स्थलोपर पीड़ा पहुंचाने पर इन लोगोंको जितने पण दण्ड दिया जाय, पण अदा न कर सकनेपर उतने ही कोड़े लगाये जायें । ॥ ८१ ॥ जो काम पहिले कह दिये गये हैं उनसे अतिरिक्त काम करनेपर भी कारागरोंका वेतन कटाना करके नियत करलेना चाहिये ॥ ८२ ॥

एवं चौरानचौराख्यान्वणिकारुकुशीलवान् ।

भिक्षुकान्कुहकांश्चान्यानवारयेद्देशपीडनात् ॥ ८३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे कारुकरक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितोऽष्टसप्ततिरध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार नामके साधु बने हुए, बनिये, कारीगर, नट, भिखारी और ऐन्द्रजालिक आदि चोरोंको, तथा इसी प्रकारके अन्य पुरुषोंको, देशमें पीड़ा पहुंचानेसे रोकें ॥ ८३ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थं अधिकरणं मे पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

७७ प्रकरण

व्यापारियों से रक्षा ।

संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धाना-
माधानं विक्रयं वा स्थापयेत् ॥ १ ॥ तुलामानभाण्डानि चावे-
क्षेत पातवापचारात् ॥ २ ॥

बाजार का अध्यक्ष, दूकानों में, दूकानदारों के स्वाधिकृत (जिस माल पर दूकानदारों का स्वत्व निश्चित है, यानी वह माल चोरी वगैरह का नहीं है=स्वकरणविशुद्धता) पुराने अन्न आदि मालके प्रवेश और निकासी का प्रबन्ध करे ॥ १ ॥ तराजू, यद्दे और नापके घत्तनों का अच्छी तरह निरीक्षण करे, जिससे कि तोल आदिमें कोई दोष न होवे ॥ २ ॥

परिमाणीद्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ३ ॥ पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ तेन पलोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ५ ॥ तुलायाः कर्पहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ६ ॥

परिमाणी और द्रोणमें (ये दोनों विशेष तोल हैं) आधा पल न्यून हो या अधिक हो तो कोई दोष नहीं ॥ ३ ॥ एक पल न्यून या अधिक होने में १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ पलकी न्यूनता या अधिकताके बढ़नेपर उसीके अनुसार दण्ड भी बढ़ता जाय ॥ ५ ॥ तुला यदि एक कर्प कम या ज्यादा हो तो कोई दोष नहीं ॥ ६ ॥

द्विकर्पहीनातिरिक्ते पदपणो दण्डः ॥ ७ ॥ तेन कर्पोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ८ ॥ आढकस्यार्धकर्पहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ९ ॥ कर्पहीनातिरिक्ते त्रिपणो दण्डः ॥ १० ॥

यदि दो कर्प कम या अधिक हो तो ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ इसी प्रकार कर्पकी न्यूनता या अधिकताके अधिक होनेपर दण्डकी भी वृद्धि समस्त लेनी चाहिये ॥ ८ ॥ आढक (तोल विशेष) में आधे कर्पकी न्यूनता या अधिकताका होना कोई दोष नहीं ॥ ९ ॥ यदि एक कर्पकी न्यूनता या अधिकता हो तो ३ पण दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

तेन कर्पोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ११ ॥ तुलामानविशेषाणामतो ज्येषामनुमानं कुर्यात् ॥ १२ ॥ तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यां क्रीत्वा हीनाभ्यां विक्रीणानस्य त एव द्विगुणा दण्डाः ॥ १३ ॥

कर्पकी न्यूनता या अधिकताके अधिक होनेपर, उसीके अनुसार दण्ड भी बढ़ा दिया जाय ॥ ११ ॥ जिन तुला और मानकी न्यूनताधिकताके विषयमें कुछ नहीं कहा गया है, उनको भी इतनेसे अनुमान करलेना चाहिये ॥ १२ ॥ जो बनिदा, अधिक (भारी) तराजू वा घट्टेमें सखिदकर हलकेसे बेंचे, उसे पूर्वोक्त (घोसे सूयसे लगाकर कहे हुए १२ आदि पण) दण्डोंसे दुगना दण्ड दिया जाये ॥ १३ ॥

गण्यपण्येन्द्रभागं पण्यमूल्येष्वपहरतः पणवतिर्दण्डः ॥ १४ ॥
 काष्ठलोहमणिमयं रज्जुचर्ममृन्मयं सूत्रवल्करोममयं वा जात्यमित्य
 जात्यं विक्रयाधानं नयतो मूल्याष्टगुणो दण्डः ॥ १५ ॥

गिनकर बेची जानेवाली चीजोंमें, चीजकी कीमतमेंसे आठवां हिस्सा
 अपहरण करनेवाले बनिसेपर ९६ पण जुरमाना किया जाय ॥ १४ ॥ जो पुरप
 लकड़ी, लोहा, या गणिसे बने हुए, रस्सी, चमड़े या मट्टीसे बने हुए, सूत,
 छाल या उनसे बने हुए; घटिया मालको बढ़िया कहकर रखता या बेचता है,
 उसे वस्तुकी कीमतसे आठगुना दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥

सारभाण्डारमित्यसारभाण्डं तज्जातमित्यतज्जातं राधायुक्त-
 मुपधियुक्तं समुद्रपरिवर्तिमं वा विक्रयाधानं नयतो हीनमूल्यं
 चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १६ ॥

बनावटी (कपूर, कस्तूरी आदि) कम मूल्यकी वस्तुओंको असली
 (अधिक मूल्यकी) कहकर, उस देशमें पैदा न हुई २ कम मूल्यकी वस्तुको
 उसही देशमें पैदा हुई २ यताकर, शोभायुक्त (कम मूल्यके) बनावटी मोती
 आदिको, (कम कीमतकी) मिलावटी वस्तुको, एक पेटीमेंसे अरुण माल ग्राहक
 को दिखाकर दूसरी पेटीमेंसे उसी तरहका कम कीमतका माल बेचने या रखने-
 वाले न्यापारीको ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥ १६ ॥

पणमूल्यं द्विगुणो द्विपणमूल्यं द्विशतः ॥ १७ ॥ तेनार्थवृद्धौ
 दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ १८ ॥ कारुशिल्पिनां कर्मगुणापकर्षमा-
 जीवं विक्रयं क्रयोपघातं वा संभूय समुत्थापयतां सहस्रं दण्डः ॥ १९ ॥

यदि यह उपयुक्त माल एक पण कीमतका हो तो पहिलेसे दुगुना
 दण्ड, और दो पण कीमतका हो तो २०० पण दिया जाय ॥ १७ ॥ इसी प्रकार
 अधिक मूल्यका माल होनेपर अधिक दण्डकी व्यवस्था की जाय ॥ १८ ॥ जो
 लुहार, बढ़ई तथा अन्य कारीगरलोग, आपसमें मिलकर, जैसा काम करनेको
 उन्हें कहा जाय, वैसा न करें, (कर्मगुणापकर्षम्) अधिक (एक पणकी जगह
 दो पण) मजूदारी लेवें (भाजीवम्) तथा किसी वस्तुको बेचनेके समय अधिक
 दाम कहकर और खरीदनेके समय बहुत थोड़ा दाम कहकर खरीद फरोलतमें
 नुकसान पहुँचायें, उनमेंसे प्रत्येकको एक एक सहस्र पण दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥

पदेहकानां वा संभूय पण्यमारुन्धतामनर्घेण विक्रीणतां वा
 सहस्रं दण्डः ॥ २० ॥ तुलानामानान्तरमर्घवर्णान्तरं वा धरकस्य

मापकस्य वा पणमूल्यादष्टभागं हस्तदोषेणाचरतो द्विशतो दण्डः
॥ २१ ॥

जो व्यापारी भापसमे मिलकर किसी वस्तुको बिकनेसे एकदम रोक लेवे और फिर उसे अनुचित मूल्यपर बेचे या खरीदे, तो उन्हें प्रत्येकको १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ तुलाके कारण चट्टोंके कारण तथा मूल्य में अन्तर हो जानेके कारण जो लभ होवे, उसे बहोमें अवश्य लिख देवे । जोलनेवाला या नापनेवाला अपने हाथकी चालाकीसे यदि एक पण मूल्यकी वस्तुमेसे आठवा हिस्सा कम करदेवे, तो उसको २०० पण दण्ड दिया जाना चाहिये ॥ २१ ॥

तेन द्विशतोत्तरा दण्डबुद्धिर्व्याख्याता ॥ २२ ॥ धान्यस्नेह
क्षारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः
॥ २३ ॥ यान्निस्पृष्टमुपजीवेयुस्तदेपां दिवससंजातं संख्याय
वणिक् स्थापयेत् ॥ २४ ॥

इसी प्रकार अधिक भाग कम देनेपर अधिक दण्डकी व्यवस्था की जाय, (अर्थात् चौथा हिस्सा कम देवे, तो ४०० पण दण्ड दिया इत्यादि) ॥ २२ ॥ धान्य (अन्न) स्नेह, (तेल घृत आदि) खार (जघाखार आदि) नमक गन्ध और औषधियामे उसी तरहकी कम कीमतकी वस्तुओंको मिलाकर बेचनेपर १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ दुकानदारोंको प्रतिदिन जितना लाभ होवे, उसे सस्थाप्यक्ष (बाजारका निरीक्षक=चौधरी=वणिक्) अपनी यहीमें ठीक २ गिनकर लिख लेवे ॥ २४ ॥

क्रेतृविक्रेत्रोरन्तरपतितमादायादन्यद्भवति ॥ २५ ॥ तेन
धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः ॥ २६ ॥ अन्यथा निश्चित-
मेपां पण्याध्यक्षो गृह्णीयात् ॥ २७ ॥ तेन धान्यपण्यनिचये व्य-
वहरेतानुग्रहेण प्रजानाम् ॥ २८ ॥

जिस वस्तुकी खरीद करोस्त सस्थाप्यक्ष स्वयं करता है, उसके लाभ में कोई हिस्सेदार नहीं होसकता, अर्थात् यह राजकीय होता है ॥ २५ ॥ अतः अन्य व्यापारियोंको उचित है कि वे सस्थाप्यक्षकी अनुमतिको लेकर ही धान्य आदि किसी विक्रेय वस्तुका सञ्चय करें ॥ २६ ॥ अनुमति न देनेपर सस्थाप्यक्षको अधिकार है कि वह उनकी सद्गृहीत विक्रेय वस्तुओंको उनसे ले लेवे ॥ २७ ॥ सस्थाप्यक्षको चाहिये कि वह उन धान्य आदि सद्गृहीत वस्तुओंके विक्रयमें इस प्रकारका व्यवहार करे, जिसमें प्रजाओंका उपकार हो ॥ २८ ॥

अनुज्ञातक्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पञ्चकं शत-
माजीवं स्थापयेत् ॥ २९ ॥ परदेशीयानां दशकम् ॥३०॥ ततः
परमर्घं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयता पणशते पञ्चपणाद्द्वि-
शतो दण्डः ॥ ३१ ॥ तेनार्घ्यवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ३२ ॥

संस्थाध्यक्ष जिन वस्तुओंके बेचनेकी अनुमति दे देवे, यदि वे अपने ही देशमें यनी हों तो उनपर व्यापारी नियत मूल्यसे अधिक ५ पण प्रति सैकड़ा लाभ लेसकता है ॥ २९ ॥ यदि वे विदेशकी हों तो १० पण प्रति सैकड़ा लाभ लेवे ॥ ३० ॥ इससे अधिक मूल्य यदानेपर और क्रय अथवा विक्रयमें ५ प्रति सैकड़ा और अधिक लाभ लेनेपर २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार और मृग्य पदाकर लाभ उठानेमें इसी क्रमसे अधिक दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

संभूयक्रये चैषामविक्रीतेतान्यं संभूयक्रयं दद्यात् ॥ ३३ ॥
पण्योपघाते चैषामनुग्रहं कुर्यात् ॥ ३४ ॥ पण्यवाहुल्यात्पण्या-
ध्यक्षः सर्वपण्यान्येकमुखानि विक्रीणीत ॥ ३५ ॥

यदि व्यापारी मिलकर संस्थाध्यक्षसे कोई थोकमाल खरीद लेवें, और वह थिक न सके, तो अन्य व्यापारियोंको थोकमाल न देवे ॥ ३३ ॥ यदि व्यापारीका माल जल या अग्नि आदिके द्वारा नष्ट होजाय, तो संस्थाध्यक्ष उनको और माल देकर उनकी सहायता करे ॥ ३४ ॥ संस्थाध्यक्षको चाहिये कि वह सम्पूर्ण विक्रेय वस्तुओंको किसी एक व्यापारीके द्वारा ही बेचे ॥ ३५ ॥

तेष्वविक्रीतेषु नान्ये विक्रीणीरन् ॥ ३६ ॥ तानि दिवसवे-
तनेन विक्रीणीरन्ननुग्रहेण प्रजानाम् ॥ ३७ ॥ देशकालान्तरि-
तानां तु पण्यानां ॥ ३८ ॥

यदि वे सरकारी माल उसके द्वारा भी न बिकसके, तो और व्यापारी भी मालको न बेचे ॥ ३६ ॥ और उन सम्पूर्ण वस्तुओंको दैनिक घेतन देकर इस प्रकार बिकराया जावे, जिससे प्रजाका कल्याण हो ॥ ३७ ॥ संस्थाध्यक्षका यह कर्तव्य है कि वह दूसरे देश और दूसरे समयमें होनेवाली वस्तुओंके ॥३८॥

प्रक्षेपं पण्यनिष्पत्तिं शुल्कं वृद्धिमवक्रयम् ।

व्ययानन्यांश्च संख्याय स्थापयेदर्घमर्घवित् ॥ ३९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिवरणे वैदेहकरक्षणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदित एकोनासोतिः ॥ ७९ ॥

मूष्य, घनवाहिका समय, वेतन, व्याज, भाटा और इती तरहके अन्य
सब खर्चोंको लगाकर वस्तुके विक्रीय मूल्यका निश्चय करे ॥ ३९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिपरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तिसरा अध्याय ।

७८ प्रकरण ।

देवी अपत्तियोंका प्रतीकार ।

देवान्यष्टौ महाभयानि ॥ १ ॥ अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्मिक्षं
मूषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति ॥ २ ॥ तेभ्यो जनपदं रक्षेत्
॥ ३ ॥ ग्रीष्मे बहिरधिश्चयणं ग्रामाः कुर्युः ॥ ४ ॥ दशमूलीसंग्र-
हेणाधिष्ठिता वा ॥ ५ ॥

देववश होनेवाले आठ महाभय हैं ॥ १ ॥ अग्नि, जल, वामारो, दुर्मिक्ष
चूहे, व्याघ्र, सर्प और राक्षस ॥ २ ॥ राजा इन सबसे जनपदका रक्षक करे
॥ ३ ॥ गरमीकी फलसे ग्रामोणजन घरसे बाहर भोजन आदि पकावे ॥ ४ ॥
अथवा दशकुली (दस घरों) का रक्षक गोप (यह राजाकी ओरसे नियुक्त
जमादारका नाम है, देखो अधि ० अध्या ३६) जहाँ आज्ञा दें, उसी जगह-
पर भोजन आदि बनावे ॥ ५ ॥

नागरिकप्रणिधावाग्निप्रतिपेक्षो व्याख्यातः ॥ ६ ॥ निशान्त
प्रणिधौ राजपरिग्रहे च ॥ ७ ॥ बलिहोमस्त्वितिवाचनैः पर्वसु
चाग्निपूजाः कारयेत् ॥ ८ ॥

नागरिक प्रणिधि (अधि २, अध्या ३६) नामक प्रकरणमें आग्निसे
वचनेके उपाय बतला दिये गये हैं ॥ ६ ॥ निशान्त प्रणिधि (अधि. १ अध्या.
२०) नामक प्रकरणके अन्तमें राजपरिग्रहमें भी आग्निसे वचनेके उपाय बतलाये
हैं ॥ ७ ॥ पूर्णमासी आदि वर्ष तिथियोंमें बलिहोम और स्वरित वचनोंसे अक्षिकी
पूजा करवाये ॥ ८ ॥

वर्षारात्रमनूपग्रागा पूरवेलामुत्सृज्य वसेयुः ॥ ९ ॥ काष्ठवे-
णुनावक्षापशुकीयुः ॥ १० ॥ उद्यमानमलाशुटतिष्ठुवगण्डिकावे-
णिकाभिस्तारयेयुः ॥ ११ ॥

वर्षा ऋतुकी रात्रोंमें, नदीके पारके गाँव, नदीके किनारोंको छोड़कर

दूर जाकर निवास करें ॥ ९ ॥ लकड़ी, चांतके घेड़े तथा नाव आदि तैरनेके साधनेका सदा संप्रदृ स्वयं ॥ १० ॥ नदीके प्रवाहके साथ यहते हुए या डूबते हुए आदमीको सूखी, मदाक, तमेड़, लकड़ या घेड़ेके सहारे तैरिये अर्थात् बचाये ॥ ११ ॥

अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र प्रवहीनेभ्यः ॥ १३ ॥ पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत् ॥ १४ ॥ मायायोगविदो वेदविदो वा वर्षमभिचरेयुः ॥ १५ ॥

जो पुरुष, डूबते हुए आदमी को देखकर बचानेका यत्न न करें, उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ पान्नु यदि उनके पास तैरनेका कोई साधन न हो, तो वे अपराधी नहीं ॥ १३ ॥ और पूर्णमासी आदि पर्व तिथियों में नदीकी पूजा करवाये ॥ १४ ॥ तथा मान्त्रिक एवं अधर्म्येद आदिके जाननेवाले पुरुषसे अति घृष्टको दान्त करनेके लिए जप होम आदि करवाये ॥ १५ ॥

वर्षविग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत् ॥ १६ ॥ व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः ॥ १७ ॥ औषधैश्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्धतापमाः ॥ १८ ॥

वर्षोंके चन्द्र हो जानेपर इन्द्र, गंगा, पहाड और समुद्रकी पूजा करवाये ॥ १६ ॥ औपनिषदिक (१४ वा) अधिकरणमें कहे हुए उपायोंके द्वारा कृत्रिम व्याधि, भयका प्रतीकार करे ॥ १७ ॥ तथा अकृत्रिम व्याधि भयको वेद लोग चिकित्साके द्वारा और सिद्ध तथा तपस्वी जन शान्तिकर्म और प्रायश्चित्त (व्रत उपवासादि) आदिके द्वारा दूर करें ॥ १८ ॥

तेन मरुको व्याख्यातः ॥ १९ ॥ तीर्थाभिषेचनं महाकच्छवर्धनं गवां उमशानावदोहनं कवन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत् ॥ २० ॥

संज्ञामक (फैलनेवाली) महाव्याधियोंके दूर करनेके लिए भी इसी प्रकारके उपाय काममें लाने चाहिये ॥ १९ ॥ गङ्गा आदि तीर्थोंमें स्नान, समुद्रकी पूजा, उमशानमें गौआका दोहन (दूध दुहना), चावल और सतुसे घने हुए कवन्ध (तिर रहित शरीर) का उमशानमें दाह, और किसी स्थानपर देवकी पूजा करके रात्रि जागरण करवाये ॥ २० ॥

पशुव्याधिमारके स्थानान्यर्धनीराजनं स्वदैवतपूजनं च कारयेत् ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृतवानुग्रहं कुर्यात् ॥ २२ ॥

यदि पशुओंमें बीमारी या महामारी फैल जावे, तो स्थान २ पर रोगको दूर करनेके लिए शान्तिकर्म करवाये, और उन २ पशुओंके देवताओंकी पूजा

करवावे । (पशुओंके देवता निम्न प्रकार हैं—हार्था=तुंगप्रहण्य, घोडा=अश्विनी, गौ=पशुपति, बैस=वरण, बकरा=अग्नि इत्यादि) ॥ २१ ॥ दुर्भिक्ष हो जानेपर राजाको चाहिए कि वट बीज तथा अन्न आदि देकर प्रजाओंके ऊपर अनुग्रह करे ॥ २२ ॥

दुर्गसेतुकर्म वा मत्तानुग्रहेण भक्तसंविभागं वा देशनिक्षेपं वा ॥ २३ ॥ मित्राणि वाप्यपाश्रयेत् ॥ २४ ॥ कर्शनं वमनं वा कुर्यात् ॥ २५ ॥

अथवा क्षुत्पीडितोंको उचित वेसन देकर उनसे दुर्ग या सेतु आदिका निर्माण करवावे । जो कार्य करनेमें असमर्थ हों, उन्हें केवल अन्न देवे अथवा समीपके दूसरे देशमें कष्ट समय तरु उन लोगोंके जानेका प्रयत्न करे ॥ २३ ॥ अथवा प्रजाकी रक्षाके लिए, अपने मित्र राजाभोंसे सहायता लेवे ॥ २४ ॥ और अपने देशके धनवान् आदिमियोंपर कर लगावे, तथा उनसे अधिक मात्रामें एकमुद्दत धन भी लेवे ॥ २५ ॥

निष्पन्नसस्यमन्यविययं वा सजनपदो यायात् ॥ २६ ॥ समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत् ॥ २७ ॥ धान्यशाकमूलफला-वापान्सेतुषु कुर्वीत ॥ २८ ॥ मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान्वा ॥ २९ ॥

अथवा जिस देशमें अन्नकी खूब अधिकता हो, वहापरही जनपदके सहित चला जावे ॥ २६ ॥ अथवा समुद्रके किनारे या प्रदे २ तालाबोंके किनारेपर जाकर बसे ॥ २७ ॥ जहापर धान्य, शाक, मूल, फल आदिकी खेती भी करवा सके ॥ २८ ॥ अथवा मृग, पशु, पक्षी, व्याघ्र, मछली आदिका शिकार करके जीवण निर्वाह करे ॥ २९ ॥

भूपिकभये मार्जारनकुलोत्सर्गः ॥ ३० ॥ तेषां ग्रहणहिंसायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ शुनामनिग्रहे च ॥ ३२ ॥ अन्यत्रा-रण्यचरेभ्यः ॥ ३३ ॥

चूहोंका भय होनेपर बिही और नेबलोंकी जगह २ पर छुडपा देवे ॥ ३० ॥ जो उनको पकड़े या मार देवे उनको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ उनको भी १२ पण दण्ड दिया जाय, जो दूसरोंका लुकसान कर देनेपर भी अपने पालतू कुत्ताको म पकड़े ॥ ३२ ॥ जगली कुत्तोंके म पकड़ने में कोई अपराध नहीं ॥ ३३ ॥

स्नुहिक्षारिलप्तानि धान्यानि विसृजेदुपनिपद्योगयुक्तानि वा भूपिककरं वा प्रयुञ्जीत ॥ ३४ ॥ शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः

दूर जाकर निवास करें ॥ ९ ॥ लकड़ी, चांसके घेड़े तथा नाव आदि तीरनेके साधनोका सदा समग्र रखें ॥ १० ॥ नदीके प्रवाहके साथ बहते हुए या डूबते हुए भावमीको तूबां, मशक, तमेड़, लकड़ या घेड़ेके सहारे तीरीवें अर्थात् बचावें ॥ ११ ॥

अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्धत्र पुवहीने-
म्यः ॥ १३ ॥ पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत् ॥ १४ ॥ माया-
योगविदो वेदविदो वा वर्षमभिचरेयुः ॥ १५ ॥

जो पुरण, दूजते हुए भावमी को देखकर बचानेका यत्न न करें, उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ परन्तु यदि उनके पास तीरनेका कोई साधन न हो, तो वे अपराधी नहीं ॥ १३ ॥ और पूर्वमासी आदि पर्व तिथियों में नदीकी पूजा करवाये ॥ १४ ॥ तथा माग्निरु एव अथर्ववेद आदिके जाननेवाले पुन्यासे अति बृष्टिको शान्त करनेके सिद्ध जप होम आदि करवावे ॥ १५ ॥

वर्षावग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत् ॥ १६
व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः ॥ १७ ॥ औषधै-
श्चिकित्स्काः शान्तिप्रायश्चित्त्वां सिद्धतापमाः ॥ १८ ॥

वषाक बन्द हो जानपर इन्द्र, गंगा, पहाड और समुद्रकी पूजा करवाये ॥ १६ ॥ औपनिषदिक (१४ यां) अधिकरणमें कहे हुए उपायोंके द्वारा कृत्रिम व्याधि, भयका प्रतीकार कर ॥ १७ ॥ तथा अकृत्रिम व्याधि भयको घैत लोग चिकित्साके द्वारा और सिद्ध तथा सपत्नी जन शास्तिकर्म और प्रायश्चित्त (व्रत उपवासादि) आदिके द्वारा दूर करें ॥ १८ ॥

तेन मरको व्याख्यातः ॥ १९ ॥ तीर्थाभिषेचनं महाकच्छ-
वर्धनं गवां उमशानावदोहनं कवन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत् ॥ २० ॥

सक्रामक (फैलनेवाली) महाव्याधियोंके दूर करनेके लिए भी इसी प्रकारके उपाय काममें लाने चाहिये ॥ १९ ॥ गङ्गा आदि तीर्थोंमें स्नान, समुद्रकी पूजा, उमशानमें गौओका दोहन (दूध दुहना), चावल और सतुसे बने हुए कवन्ध (तिर रहित शरीर) का उमश नमें दाह, और किसी स्थानपर देवकी पूजा करके रात्रि जागरण करवावे ॥ २० ॥

पशुव्याधिमारके स्थानान्यर्धनीराजनं सदैवतपूजनं च कार-
येत् ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वानुग्रहं कुर्यात् ॥ २२ ॥

यदि पशुओंमें बीमारी या महामारी फैल जावे, तो स्थान २ पर रोगको दूर करनेके लिए शास्तिकर्म करवाये, और उन २ पशुओंके देवताओंकी पूजा

करवाये । (पशुओंके देवता निम्न प्रकार हैं—हार्थी=सुवहस्य, घोड़ा=अश्विनी, गी=पशुपति, भैंस=वरुण, बकरा=अग्नि इत्यादि) ॥ २१ ॥ दुर्भिक्ष हो जानेपर राजाको चाहिए कि वह बीज तथा अन्न आदि देकर प्रजाओंके ऊपर अनुग्रह करे ॥ २२ ॥

दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण भक्तसंविभागं वा देशनिक्षेपं वा ॥ २३ ॥ मित्राणि वाप्यपाश्रयेत् ॥ २४ ॥ कर्शनं वमनं वा कुर्यात् ॥ २५ ॥

अथवा क्षुत्पीडितोंको उचित वेतन देकर उनसे दुर्ग या सेतु आदिका निर्माण करवाये । जो कार्य करनेमें असमर्थ हों, उन्हें केवल अन्न देवे अथवा समीपके दूसरे देशमें कष्ट समय तक उन लोगोंके जानेका प्रबन्ध करदे ॥ २३ ॥ अथवा प्रजाकी रक्षाके लिए, अपने मित्र राजाओंसे सहायता लेवे ॥ २४ ॥ और अपने देशके धनवान आदिमियोंपर कर लगावे, तथा उनसे अधिक मात्रामें एकमुश्त धन भी लेवे ॥ २५ ॥

निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो यायात् ॥ २६ ॥ समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत् ॥ २७ ॥ धान्यशाकमूलफलावापान्सेतुषु कुर्यात् ॥ २८ ॥ मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान्वा ॥ २९ ॥

अथवा जिस देशमें अन्नकी खूब अधिकता हो, वहाँपरही जनपदके सहित चला जाये ॥ २६ ॥ अथवा समुद्रके किनारे या बड़े २ तालाबोंके किनारेपर जाकर बसे ॥ २७ ॥ जहाँपर धान्य, शाक, मूल, फल आदिकी खेती भी करवा सके ॥ २८ ॥ अथवा मृग, पशु, पक्षी, ब्राह्म, मछली आदिका शिकार करके जीवन निर्वाह करे ॥ २९ ॥

भूपिकमये मार्जारनकुलोत्सर्गः ॥ ३० ॥ तेषां ग्रहणाहिंसायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ शुनामनिग्रहे च ॥ ३२ ॥ अन्यत्रारण्यचरेभ्यः ॥ ३३ ॥

जहाँका मय होनेपर चिल्ली और नेवलोंको जमाह २ पर छुड़वा देवे ॥ ३० ॥ जो उनको पकड़े या मार देवे उनको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ उनको भी १२ पण दण्ड दिया जाय, जो दूसरोंका मुकसान कर देनेपर भी अपने पालतू कुत्तोंको न पकड़े ॥ ३२ ॥ जंगली कुत्तोंके न पकड़ने में कोई अपराध नहीं ॥ ३३ ॥

स्तुद्विक्षारोलप्तानि धान्यानि विस्तृजेदुपनिपयोगयुक्तानि वा भूपिकफरं वा प्रयुञ्जीत ॥ ३४ ॥ शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः

॥ ३५ ॥ पर्वसु च मूपिकपूजाः करयेत् ॥ ३६ ॥ तेन शलमप-
क्षिक्रिमिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

सैंडके दूधमें भीगे हुए धान्यको या औपनिषदिक प्रकरणमें बतलाई
हुई औषधियोंसे मिले हुए धान्यको इधर उधर बखेर देवे । (जिससे कि उसे
खाकर चूरे मर जावे) । अथवा चूहोंको पड़कनेका कोई प्रयत्न करें ॥ ३४ ॥
सिद्ध या तपस्वीजन चूहोंको मष्ट करनेके लिये शान्तिकर्म करें ॥ ३५ ॥ पर्व
तिथियोंमें मूपकोंकी पूजा करवावे ॥ ३६ ॥ इससे पतङ्गे, पक्षी और छोंटे २
कोटोंसे होनेवाले भयोंका भी प्रतीकार समझ लेना चाहिये ॥ ३७ ॥

व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशवानि विसृजेत् ॥ ३८ ॥
मदनकोद्रवपूर्णान्यैदर्याणि चा ॥ ३९ ॥ लुब्धकाः श्वगणिनो वा
कूटपञ्जरावपातेश्वरेयुः ॥ ४० ॥

हिसक क्याघ्र आदि पशुओंका भय होनेपर औपनिषदिक अधिकरणमें
बताये हुए मदनरस आदि युक्त, पशुओंको लाशोंको जंगलमें छोड़वा देवे ।
(साकि उसे खाकर व्याघ्रादि मर जावे) ॥ ३८ ॥ अथवा धतूरा और जंगली
कोदोंको मिलाकर लाशोंके पेटमें भर दिया जाय, और उन्हें जंगलमें छोड़
दिया जाय ॥ ३९ ॥ शिकारी और बड़ेलिये (कुत्तोंके द्वारा शिकार करनेवाली
जाति विशेष) छिपे हुए गडोंकी उपयोग करें ॥ ४० ॥

आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिहन्त्युः ॥ ४१ ॥ अन
भिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः ॥ ४२ ॥ स एव लामो व्यालघातिनः
॥ ४३ ॥ पर्वसु स पर्वतपूजाः कारयेत् ॥ ४४ ॥ तेन मृगपशु-
पक्षिसंघग्राहप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ४५ ॥

कवच धारणकर हाथियोंसे सिंह आदिको मारें ॥ ४१ ॥ क्याघ्र आदिसे घिरे
हुए मनुष्यको जो न बचावे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४२ ॥ जो व्याघ्रादि
को मार देवे, उसे इतनाही (१२ पण) इनाम दिया जाय ॥ ४३ ॥ और पर्व
तिथियोंमें पर्वतोंकी पूजा करावे ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार अन्य जंगली पशु और
पक्षियोंके झुण्डोंके आक्रमण आदिसं बचनेके उपाय समझने चाहियें ॥ ४५ ॥

सर्पभये गन्त्रैरोषधिमिश्र जाङ्गलीचिदश्वरेयुः ॥ ४६ ॥
संभूय घोषसर्पान्हन्त्युः ॥ ४७ ॥ अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः ॥ ४८ ॥
पर्वसु नागपूजाः कारयेत् ॥ ४८ ॥ तेनोदकप्राणिभयप्रतीकारा
व्याख्याताः ॥ ५० ॥

संपंका भय होनेपर मन्त्र और औषधियोंके द्वारा, विषवय उनका प्रतीकार करे ॥ ४६ ॥ अथवा नगरनिवासी जतनी जिस सापको देखें, मिलाकर मार देये ॥ ४७ ॥ अथवा अधर्ववेद (अथर्ववेदमें प्रतिपादित अभिचार कर्मों)की जाननेवाले पुरप अभिचार कियाओसे सर्पोंको मारे ॥ ४८ ॥ एवं तिथियोंमें सर्पोंकी पूजा करावे ॥ ४९ ॥ जलचर प्राणियोंसे होनेवाले भयोंका प्रतीकार भी इसी प्रकार समझना चाहिये ॥ ५० ॥

रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदाविदो मायायोगविदो वा कर्माणि कुर्युः ॥ ५१ ॥ पर्वसु च पितृदिग्गोलोपिकाहस्तपताकाच्छागो-
पहारैश्चैत्यपूजाः कारयेत् ॥ ५२ ॥

राक्षसोंका भय होनेपर, आभिचारिक (अथर्व प्रतिपादित अभिचार कर्मको जाननेवाले) तथा मायायोग (शेषादि मन्त्र प्रतिपादित मारण उपाटन आदि क्रियाओं) को जाननेवाले पुरप, राक्षसोंके नाशक कर्मोंका अनुष्ठान करें ॥ ५१ ॥ और कृष्ण चतुर्दशी अष्टमी आदि पर्व तिथियोंमें बेड़ी, छाता, कुल्लु आनेका सामान, हाथमें छोटी झण्डी और बकरा भेटके लिये लेकर रामराम मूमियामें राक्षसोंकी पूजा करवावे ॥ ५२ ॥

चरुं बश्चरामीत्येवं सर्वभयेऽप्यहोरात्रं चरेयुः ॥ ५३ ॥ सर्वत्र
चोपहतान्पितवानुशृङ्गीयात् ॥ ५४ ॥

प्रत्येक भयके उपस्थित होनेपर “हमें सुशूरे लिये हवि पकाते हैं” इस प्रकार कहते हुए पुरप दिन और रातमें घूमें ॥ ५३ ॥ उपर्युक्त सर्वोंसे भस्त हुए मजा-जनोंकी सब जगह राजा इस प्रकार रक्षा करे, जैसे पिता पुत्रकी रक्षा करता है ॥ ५४ ॥

मायायोगविदस्तस्माद्विषये सिद्धतापसा ।

वसेयुः पूजिता राजा दैवापत्प्रतिकारिणः ॥ ५५ ॥

इति कण्टकशोधने घतुर्थे अधिकरणे उपनिषत्प्रतीकारसूक्तियोऽध्यायः ॥३॥

आदितोऽशीतिलम ॥८०॥

इस लिये राजाको उचित है कि वह, दैवी आपत्तियोंका प्रतिकार करने वाले, मायायोगविद् आर सिद्ध तपस्वियोंकी सखार पूर्वक भयने-द्वेषमें अवश्य रवये ॥ ५५ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

७९ प्रकरण ।

गूढाजीवियोंका प्रतीकार ।

समाहर्तृप्रणिर्था जनपदरक्षणमुक्तम् ॥ १ ॥ तस्य कण्टकशो-
धनं वक्ष्यामः ॥ २ ॥

जनपदकी रक्षाके उपाय समाहर्तृ-प्रचार (अधि. २ अध्या. ३५, समा-
हर्ता=राजकीय कर वसूल करनेवाले अधिकारीका, प्रचार=व्यवहार जिस प्रकरण
में यतलाया गया है, उस) प्रकरणमें कह दिये हैं ॥१॥ अब इस बातको कहा
जायगा कि जनपदके प्रदूषकण्टकोंका प्रतीकार किस प्रकार करना चाहिये ॥२॥

समाहर्ता जनपदे सिद्धतापसप्रव्रजितचक्रचरणकुहकप्रच्छन्द-
ककार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकचिकित्सकोन्मत्तमूकमधिरजडान्ध-
वेदेहकफारुशिल्पकुशीलवपेशशौण्डिकापूपिकपाक्षमांसिकौदनिक-
व्यजनान्प्रणिदध्यात् ॥ ३ ॥

समाहर्ताको उचित है कि गूढकण्टकों (छिपे हुए प्रजापीडकों) को
जाननेके लिये सम्पूर्ण जनपदमें, सिद्ध, तपस्वी, संन्यासी, निरन्तर घूमनेवाले,
भाट, ऐन्द्रजालिक, अपनी इच्छानुसार घूमनेवाले, यमपटको फैलाकर जीविका
करनेवाले, शकुन बतानेवाले, ज्योतिषी, वैद्य, उन्मत्त, गूंगे, यधिर, मूर्ख, धन्य
घ्यापारी, कारीगर, नट भाँड, कलवार, हलवाई, पकामांस बेचनेवाले और
रसोइये भादिके वेशमें गुप्तचरोंको नियुक्त करे ॥ ३ ॥

ते ग्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विदुः ॥ ४ ॥ यं
चात्र गूढजीविनं विशङ्केत तं सत्सिसवर्णेनापसर्पयेत् ॥ ५ ॥

वे गुप्तचर ग्रामीणों तथा गाँवके मुखियाओंकी ईमानदारी और बेई-
मानीका पता लगावे ॥ ४ ॥ गुप्तचर इनमेंसे जिसको गूढकण्टक समझें, उसे
सत्री (देखो अधि १ अध्या. १२ सूत्र १) के साथ धर्मस्थ (न्यायाधीश) के
पास भेज देवे ॥ ५ ॥

धर्मस्थं विश्वासोपगतं सत्रीं ब्रूयात् ॥ ६ ॥ असौ मे बन्धु-
रभियुक्तः ॥ ७ ॥ तस्यायमनर्थः प्रतिक्रियतामयं चार्थः प्रति-
गृह्यतामिति ॥ ८ ॥

विधरत धर्मस्थको सत्री कहे कि:—॥ ६ ॥ “यद् मेरा बन्धु है, इसने

अमुक आपराध किया है ॥ ७ ॥ इसके इस अपराधका माफ कर देना चाहिये, और इसके बदलेमें यह धनराशि ले लीजिये ॥ ८ ॥

स चेत्तथा कुर्यादुपदाग्राहक इति प्रयासेत् ॥ ९ ॥ तेन प्रदेष्टारो व्याख्याताः ॥ १० ॥

यदि वह न्यायाधीश धनराशि लेकर उसे छोड़ देवे, तो उसे (न्यायाधीशको) घूसखोर समझकर उस पदमे हटा दिया जावे ॥ ९ ॥ यही नियम प्रदेष्टा (कण्टकशोधनके अधिकारी, के लिये भी समझने चाहिये ॥ १० ॥

ग्रामकूटमध्यक्षं वा सत्रीं भूयात् ॥ ११ ॥ असौ जालमः प्रभूतद्रव्यस्तस्यावमनर्थः ॥ १२ ॥ तेनैवमाहारयस्येति ॥ १३ ॥ स चेत्तथा कुर्यादुत्कोचक इति प्रयासेत् ॥ १४ ॥

गायकी जनता या गावके मुखियासे सत्री कहे कि ॥ ११ ॥ "यह पार्षा बड़ा सम्पत्तिशाली है, इससे ऊपर सम्पत्ति अमुक आपसि आई हुई है ॥ १२ ॥ इसलिये चलो आपसिके पहानेके सर्वस्व छुड़ देंगे" ॥ १३ ॥ यदि इसके अनुसार वह जनता या अन्वक्ष ऐसाही करें तो उन्हें उत्कोचक (भ्रष्टाको कष्ट देकर माल मारनेवाले) समझकर प्रयासित करदिया जाय ॥ १४ ॥

कृतकामिपुक्तो वा कूटसाक्षिणो ऽभिज्ञातानर्थवैपुल्येनारभेत ॥ १५ ॥ ते चेत्तथा कुर्युः कूटसाक्षिणः इति प्रघास्परन् ॥ १६ ॥ तेन कूटआवणकारका व्याख्याताः ॥ १७ ॥

घनावटी तौरपर अभियुक्त बना हुआ सत्री, सन्दिग्ध (जिनपर छेड़ेपने का सन्देह हो गया हो) कपटी साक्षियोंका बहुतसा धन दिखाकर अपनी हठी गवाही देनेके लिये फुसलाये ॥ १५ ॥ यदि ये लोभमें आ जायें, तो उन्हें हठा साक्षी समझकर प्रघासित किया जाय ॥ १६ ॥ यही नियम छेड़े दस्ता वेज आदि घनानेवालोंके लिये भी समझने चाहिये ॥ १७ ॥

यं वा मन्त्रयोगमूलकर्मभिः श्माशानिकैर्वा संवननकारकं मन्येत तं सत्रीं भूयात् ॥ १८ ॥ अमुष्यभार्या स्तुर्षा दुहितरं वा कामये ॥ १९ ॥ सा ऽमां प्रतिकामयताम् ॥ २० ॥ अयं चार्थः प्रतिशृष्टतामिति ॥ २१ ॥

जिसको, मन्त्रोंके द्वारा अथवा शोपधियोंके द्वारा, या हमशामें किये जानेवाले साम्प्रिक उपायोंके द्वारा परीक्षण करनेवाला समझें, उससे सत्री यह

कहे कि —“मैं अमुक पुरपत्री स्त्री, पुत्रवधू या लड़की को चाहता हूँ ॥१२॥ हम लिये ऐसा उपाय करो, जिसे निमसे वह भी मुझे चाहने लगे ॥ २० ॥ जो यह इतना धन लेलो” ॥२१॥

स चेत्तथा कुर्यात्संवननकारक इति प्रवास्येत ॥ २२ ॥ तेन कृत्याभिचारशीलौ व्याख्यातौ ॥ २३ ॥

यदि वह लोभमें आकर वैसा काम करनेके लिये तैयार होजाय, तो उसे वशीकरण कर्ता (सवनन कारक) समझकर प्रवासित कर दिया जाय ॥ २२ ॥ यही नियम उन पुरपत्रीके लिये भी समझने चाहिये, जो अपने ऊपर भूत, प्रेत, पिशाच आदिको बुलाकर प्रजाको बचड़ेते हैं, और तान्त्रिक मन्त्र प्रयोगोंके द्वारा अभिचार कर्म (पुरपत्रीको मारदेना) करते हैं ॥ २३ ॥

यं वा रसस्य कर्तारं क्रेतारं विक्रेतारं भैषज्याहारव्यवहारिणं वा रसदं मन्येत तं सत्त्री भूयात् ॥ २४ ॥ असी मे शत्रुस्तस्योपघातः क्रियतामयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ २५ ॥ स चेत्तथा कुर्याद्रसद इति प्रवास्येत ॥ २६ ॥ तेन मदनयोगव्यवहारी व्याख्यातः ॥ २७ ॥

विषके घनानेवाले, खरीदने या बेचनेवाले, तथा औषधियों और भोजन आदि का व्यापार करनेवाले पुरपत्र यदि किसीको विष देनेका सन्देह हो, तो सदा उससे कहे कि —“अमुक पुरप भोग शत्रु है, उसे आप विष देकर मार डालिये और इसके बदले यह इतना धन ले लीजिये” ॥ २५ ॥ यदि वह पुरुष ऐसाही करे तो उसे विषदेनेवाला समझकर प्रवासित कर दिया जाय ॥ २६ ॥ यही नियम मूर्च्छित करनेवाली औषधियोंके व्यापारीके लिये भी समझने चाहिये ॥ २७ ॥

यं वा नानालोहक्षारणामङ्गारभस्त्रासंदंशमुष्टिकाधिकरणीवि-
म्वटङ्कमृपाणामभीक्षणं क्रेतारं मृषीभस्मधूमदिग्घहस्तत्रस्त्रालिङ्गं
कर्मारोपकरणसार्गं कूटरूपकारकं मन्येत तं सत्त्री शिष्यत्वेन
संध्यवहारेण चानुप्रविश्य प्रज्ञापयेत् ॥ २८ ॥

जो पुरुष, विविध प्रकारके लोहे या खार, तथा फोयला, धांक्ती, सदासी, हथौड़ी, अधिकरणी (लोहेकी वह वस्तु जिसे भूमिमें गाड़कर उसपर गरम लोहा रखकर ऊपरसे चोट मारते हैं), तखीर, छैनी, और मूषा (सुनार जितमें सोना चांदी आदि गरम करते हैं) आदि पदार्थोंको अधिक संख्यामें

खरीदे और जिसके हाथ या कपड़ों पर स्याही, राख तथा धुएँके चिन्ह हों, जो लुहार आदिके सब औजारोंको रखता हो, उसके ऊपर यदि छिपकर जाली सिक्का बनानेका सन्देह हो जाये, तो सत्री उसका शिष्य बनकर और अच्युती तरह मेलजोल बढ़ाकर उसके भीतरकी सब बात जानले और राजाको भी खबर देवे ॥ २८ ॥

प्रज्ञातः कूटरूपकारक इति प्रवासेत् ॥ २९ ॥ तेन रागस्या-
पहर्ता कूटसुवर्णव्यवहारी च ज्यारूयातः ॥ ३० ॥

इस बातका निश्चय हो जानेपर कि यह छिपकर जाली सिक्के बनाता है, उसे प्रयासित कर दिया जाये ॥ २९ ॥ सुवर्ण आदिके वर्णको उड़ा देनेवाले तथा जाली (बनावटी) सोनेका व्यापार करनेवाले पुटपोंके लिये भी यही नियम समझना चाहिये ॥ ३० ॥

आरब्धारस्तु हिंसायां गूडाजीवासयोदश ।

प्रवासा निष्क्रयार्थं वा दशुर्दोषविशेषतः ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे अधिकरणे गूडाजीवासो रक्षा चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
आदित प्रकाशतिः ॥ ८१ ॥

लोकमें उपद्रव करनेवाले तरह गूडाजीवा (प्रच्छन्न कण्टक) कहे गये हैं धर्मस्थ, प्रदेष्टा, ग्रामका मुखिया, ग्रामका अंगक्ष, कूटसाक्षी, कूटभावक, यज्ञो-
करणकर्ता, कूटशांल, आभिचारशील, विष देनेवाला, मदनयोग व्यापारी, कूट-
रूपकर्ता, भार कूटसुवर्ण व्यापारी, इनको देशते निकाल दिया जाये, अथवा
अपराध न्यूनतम होनेपर इनको उतारके अनुसार दण्ड दिया जाये ॥ ३१ ॥
कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

८० प्रकरण ।

सिद्धवेषके द्वारा दुष्टोंका प्रकाशन ।

सत्रीप्रयोगादूर्ध्वं सिद्धव्यञ्जना माणवा माणवविद्याभिः
प्रलोभयेयुः प्रस्वापनान्तर्धानद्वारापोहमन्त्रेण प्रतिरोधकान्संवनन-
मन्त्रेण पारतल्पिकान् ॥ १ ॥

गुप्तचरोंके प्रयोगके बाद, सिद्धोंके वेषमें खोर और व्यवहारियोंके
सन्तुहोंमें रहते हुए ही गुप्तदुष्ट, उसी ढंगको विपत्तियों (संगोहिनी विपत्तियों) से

प्रजाकण्ठकोंको प्रलोभन दें। सुलाने, छिपाने संकतसे दरवाजा खोलने आदिके मायिक मन्त्रोंसे चोरोंको, तथा घसोकरण मन्त्रोंसे व्यभिचारियोंको काबूमें करे ॥ १ ॥

तेषां कृतोत्साहानां महान्तं संघमादाय रात्रावन्यं ग्राममुद्दि-
श्यान्यं ग्रामं कृतकाः स्त्रीपुरुषं गत्वा ब्रूयुः ॥ २ ॥ इहैव विद्या-
प्रभावो दृश्यताम् ॥ ३ ॥ कृच्छ्रः परग्रामो गन्तुमिति ॥ ४ ॥

उत्साहित किये हुए चोर और व्यभिचारियोंके बड़ेभारी समूहको लेकर रात्रिमें जिस गांवको पहिले जानेका इरादा करें, उससे दूसरे गांवमें, जहां पहिलेहांसे संकत किये हुए स्त्रीपुरुष विद्यमान हों, जाकर सिद्धवेपधारी पुरुष चोर आदिको कहे कि — ॥ २ ॥ “वहींपर हमारी विद्याके प्रभावको देखो ॥ ३ ॥ अथ दूसरे गांवमें जाना तो बड़ा कठिन है ” ॥ ४ ॥

ततो द्वारापोहमन्त्रेण द्वाराण्यपोह्य प्रविश्यतामिति ब्रूयुः ॥ ५ ॥
अन्तर्धानमन्त्रेण जाग्रतामारक्षिणां मध्येन माणवानतिक्रामयेयुः
॥ ६ ॥ प्रस्वापनमन्त्रेण प्रस्वापयित्वा रक्षिणः शय्याभिर्माणवैः
संचारयेयुः ॥ ७ ॥

इसके पश्चात् द्वारापोह (संकतसे दरवाजा खोल देनेवाले) मन्त्रोंसे दरवाजोंको खोलकर, उनके भीतर प्रवेश कर जानेके लिये उन्हें कहे ॥ ५ ॥ अन्तर्धान मन्त्रके द्वारा जागते हुए रक्षक पुरुषोंके बीचमेंसे उनको निकाल दें ॥ ६ ॥ और प्रस्वापन मन्त्रसे पहरेदारोंके सुलानेका अभिनय करके, चोर भाविके द्वाराही साठोंके साथ २ उन्हें घुमवावे ॥ ७ ॥

संवननमन्त्रेण भार्याव्यञ्जनाः परेषां माणवैः संमोदयेयुः
॥ ८ ॥ उपलब्धविद्याप्रभावाणां पुरश्चरणाद्यादिशेयुरभिज्ञानार्थम्
॥ ९ ॥ कृतलक्षणद्रव्येषु वा वेश्मसु कर्म कारयेयुः ॥ १० ॥

पशोकरण मन्त्रोंके द्वारा, दूसरोंकी कृत्रिम भार्या बनी हुई स्त्रियोंको उनके साथ संग सुलाना अनुभव करावे ॥ ८ ॥ जय उनको विद्याका प्रभाव अच्छी तरह मालूम हो जावे, तो स्मरणके लिये उनसे पुरश्चरण (मन्त्रसिद्धिके अद्भुत घट आदि कर्मविशेष) आदि करनेको कहे ॥ ९ ॥ और फिर जिन घरोंमें, मालिकके किसी विशेष चिन्हसे युक्त घस्तुये रखती हुई हों, वहांपर इनसे चोरी करवावे ॥ १० ॥

अनुप्रविष्टान्यैकत्र ग्राहयेयुः ॥ ११ ॥ कृतलक्षणद्रव्यैक्यवि-

क्रयाधानेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥ १२ ॥ गृहीतान्पूर्वाप-
दानसहायाननुयुञ्जीत ॥ १३ ॥ पुराणचोरव्यञ्जना वा चोराननु-
प्रविष्टास्तथैव कर्म कारयेयुर्ग्राहयेयुश्च ॥ १४ ॥

तथा किसी एक घरमें घुसे हुए इन सब चोरोंको पकड़वा देवे ॥ १२ ॥
चिन्हसे युक्त वस्तुओंको खरीदने या बेचने या गिरवी रखनेके समयमें अथवा
मादक औषधि या मदिरासे उन्मत्त हुए २ इनको पकड़वा देवे ॥ १२ ॥
इन पकड़े हुए चोरोंसे, पहिले की हुई चोरियों और चोरीमें सहयता देनेवालोंके
विषयमें पूछे ॥ १३ ॥ अथवा गुप्तचर, पुराने अनुभवी चोरोंका भेस बनाकर
चोरोंमें ही विश्कूल मिल जायें, और उनसे उसी तरह चोरी करवायें और फिर
पकड़वा दें ॥ १४ ॥

गृहीतान्समाहर्ता पौरजानपदानां दर्शयेत् ॥ १५ ॥ चोरग्र-
हर्णां विद्यामधीते राजा ॥ १६ ॥ तस्योपदेशादिमे चोरा गृहीताः
॥ १७ ॥ भूयश्च ग्रहीष्यामि ॥ १८ ॥ वारयितव्यो वः स्वजनः
पापाचार इति ॥ १९ ॥

अधिकारी पुरूपको चाहिये कि वह पकड़े हुए चोरोंको नगरनिवासी
लोगोंको दिखला देवे ॥ १५ ॥ और उनसे यह कहे कि ' राजा चोरोंको पकड़
नेकी विद्याका बहुत अच्छी तरह जानता है ॥ १६ ॥ उसीकी आज्ञानुसार ये
चोर पकड़े गये हैं ॥ १७ ॥ जो ऐसा काम करेंगे उनको फिर भी मैं पकड़ूंगा
॥ १८ ॥ इसलिये तुमलोग सब आत्मियोंसे कहदो कि वे ऐसा पाप कर्मका
आचरण कभी न करें ॥ १९ ॥

यं चात्रापसर्पोपदेशेन शम्भ्याप्रतोदादीनामपहर्तारं जानीया-
त्तमेपां प्रत्यादिशेत् ॥ २० ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥ २१ ॥
पुराणचोरगोपालकव्याधश्चगणिनश्च वनचोराटविकाननुप्रविष्टाः
प्रभूतकूटद्विरण्यकुप्यभाण्डेषु सार्थत्रजग्रामेष्वेनानभियोजयेयुः ॥ २२ ॥

अधिकारी पुरूप गुप्तचरोंके कथनानुसार जिस पुरूपको सैल और पैनी
जैसी छोटी वस्तुओंके पुरानकाल भी समझा, उसे भी जनताके सामन दिखा
कर यह कहे कि ॥ २० ॥ देखो राजाका यह प्रभाव है, जो इतनी छोटी २
वस्तुओंकी चोरीको भी अच्छी तरह समझता है ॥ २१ ॥ पुरान चार, ग्याल,
शिकारी और बहेलियके भेसमें, राजपुरुष नगलीचोरों तथा कोल भीलोंमें
विश्वकूल रखमिल जायें और जहां अधिक ताड़पत्तों बनापटी द्विरण्य और ताँप

आदिके पात्र हों, ऐसे व्यापारियोंके पडाव या गांवोंमें चोरी करनेके लिये इनको तैयार करदेवें ॥ २२ ॥

अभियोगे गूढवलैर्घातयेयुः ॥ २३ ॥ मदनरसयुक्तेन वा पथ्यादनेनानुगृहीतलोप्त्रभारानायतगतपरिश्रान्तान्प्रखपतः प्रहवणेपु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥ २४ ॥

जब ये लोग चोरी करना आरम्भ करें, तो पदापर छिपी हुई सेनासे इनको मरवा देवें ॥ २३ ॥ या रास्वमें विपरस युक्त भोजन देकर इनको मार डालें । अथवा सिरपर चोरीके मालगी गठढी उठाकर आनेजानेके कारण थककर सोये हुए, या आनन्दपूर्वक भोजन करनेके बाद थकिया मदिरा पीनेके कारण उन्मत्त हुए २ इनको गिरफ्तार करादेवें ॥ २४ ॥

पूर्ववच्च गृहीत्वैनान्समाहर्ता प्ररूपयेत् ।

सर्वज्ञख्यापनं राज्ञः कारयत्रापद्र्वासिपु ॥ २५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे अधिकरणे सिद्धय्यजनैर्माणवप्रकाशन पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥ आदितो द्वयशीति ॥ ८३ ॥

अधिकारी पुरय, इनको पकडकर समग्र जनताके सन्मुख, राजाकी सर्वज्ञताको प्रकट करता हुआ, पहिलेकी तरह इनको उपस्थित करे ॥ २५ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय ।

८१ प्रकरण ।

शङ्का, चोरीका माल, तथा संधसे चोरोंका पकड़ना ।

सिद्धप्रयोगादूर्ध्वं शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ १ ॥

सिद्धमेस गुप्तपरोके प्रयोगके बाद, अथ शङ्का, रूप और कर्मसे चोरोंका पकड़ना बताया जाता है ॥ १ ॥

क्षीणदायकुटुम्बमल्पनिर्वेशं विपरीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं मांससुरामक्ष्यभोजनगन्धमाल्यवस्त्रविभूषणेषु प्रसक्तमतिव्ययकर्तारं पुंश्वलीशूतशौण्डिकेषु प्रसक्तममीक्ष्यप्रवासिनमविज्ञातस्थानगमनपण्यमेकान्तारण्यनिष्कुटविकालचारिणं प्रच्छन्ने सामिषे वा देशे बहुमन्त्रसंनिपातं सद्यःक्षतत्र-

णानां गूढप्रतीकारयितारमन्तर्गृह्नित्यमभ्याधिगन्तारं कान्तांपरं
 परपरिग्रहाणां परस्त्रीद्रव्यवेशमनामभीक्ष्णप्रहारं कुत्सितकर्मशास्त्रो-
 पकरणसंसर्गं विरात्रे छन्नकुल्यच्छायासंचारिणं विरूपद्रव्याणाम-
 देशकालविक्रेतारं जातवैराशयं हीनकर्मजातिं विगूहमानरूपं लिङ्गेन
 आलिङ्गितं लिङ्गिनं वा भिक्षाचारं पूर्वकृतापदानं स्वकर्मभिरपदिष्टं
 नागरिकं महामात्रदर्शने गूहमानमपसरन्तमनुच्छ्वासोपवेशिनमा-
 विष्टं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं शस्त्रहस्तं मनुष्यसंपातत्रासिनं हिंस्र-
 स्तेननिधिनिक्षेपापहारप्रयोगगूढाजीविनामन्यतमं शङ्केतेति शङ्का-
 मिग्रहः ॥ २ ॥

शङ्कासे परुषे जानेवाले, अर्थात् जिनके ऊपर चोरी आदिकी शङ्का की
 जासकती है, ऐसे पुरुषोंको पहिले बताते हैं:—जिनकी कुलक्रमागत सम्पत्ति
 और कृषि आदिका कार्य क्षीण होता जाता हो, जिनको खाने और खर्चके लिये
 पर्याप्त वेतन न मिलता हो, जो अपने देश, जाति गोध्र नाम तथा कामको
 ठीक २ न बतायें, जोविक्रयके लिये छिपे तौरपर काम करें, मांस शराप आदिके
 खानेपाने और हार फुल्ल वस्त्र तथा अन्य प्रकारकी सजावटमें आसक्ति रखने
 वाले, अत्यधिक व्यय करनेवाले, येश्या जुआरी और शराबियोंमें रहनेवाले,
 जल्दो २ विदेशको जानेवाले, जिनका जानेके स्थानका कुछ पता न चले, जो
 पृकान्त जंगलमें या घरके बागीचोंमें अनुचित समयमें जावे, छिपे तथा
 धनियोंके घरोंके निकट वार २ कुछ देखने या सोचनेवाले, ताजे रूगे हुए
 घानोंको छिपकर हलाज करानेवाले, सदा घरके भीतर रहनेवाले, सामने आते
 हुए किसी पुरुषको देखकर तत्काल लौट जानेवाले, स्त्रीपरायण, दूसरोंके परिजनों
 तथा स्त्री वृद्ध्य और घर आदिके विषयमें वार २ पूछनेवाले, चोरी आदि
 कुत्सित कर्मोंमें उपयोगी शस्त्रों तथा अन्य साधनोंका अच्छी तरह जाननेवाले,
 आधीरातमें छिपकर दीवारोंकी छायामें घूमनेवाले, गहने आदि वस्तुओंकी
 असली शकल बिगाड़कर अनुचित स्थान और समयमें बेचनेवाले, दावुताका भाव
 रखनेवाले, नौचकर्म करनेवाले, तथा नौचजातिमें उत्पन्न हुए २, अपनी असली
 सूरतको छिपाकर रखनेवाले, जो ब्रह्मचारों आदि न होकर भी ब्रह्मचारी आदिके
 वेपमें रहनेवाले, ब्रह्मचारी आदि होते हुए भी अपने नियमोंका ठीक २ पालन
 न करनेवाले, जिन्होंने पहिले भी कभी चोरीकी हो, जो अपने घुरे कामोंसे
 सय जगह प्रसिद्ध हों, नगरके पहरेदार तथा अन्य राजकर्मचारोंके दीखनेपर
 छिपजाने तथा भाग जानेवाले, चुपचाप छिपकर बाहर पृकान्तमें बैठनेवाले,

दो हुए, सूत्र हुए मुद तथा भराई हुई जायाजवाले, हाथमें हथियार लेकर आते हुए पुरुषको देखकर डर जानेवाले, इत्यादि पुरषोंके ऊपर यह शास्त्रा की जासकती है कि या तो यह किसीका मारनेवाला है, या चौर है, या किसीकी निधि तथा निक्षेपका अपहरण करनेवाला है, या क्रोधमें किसीके ऊपर हथियार चलावेवाला है, या गूढाजीवी अर्थात् प्रजाको कष्ट देनेवाला प्रजाकण्टक है। यह शास्त्रसे पकड़े जानेके विषयमें कहा गया ॥ २ ॥

रूपाभिग्रहस्तु ॥ ३ ॥ नष्टापहृतमविद्यमानं तज्जातव्यवहारिषु निवेदयेत् ॥ ४ ॥ तत्रेभिवेदितमासाद्य प्रच्छादयेयुः साचिव्यकरदोषमाप्नुयुः ॥ ५ ॥ अजानन्तो ऽस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येरन् ॥ ६ ॥

अथ रूपके (चोरीका माल) द्वारा पकड़े जानेके विषयमें कहा जायगा ॥ ३ ॥ अपने प्रमादमें कहीं खोई हुई, या चोरी हो गई हुई वस्तु जट्टीही न मिल जावे तो उस वस्तुके व्यापारीको इसकी सूचना देदी जावे (कि इस हुलियेकी वस्तु खोई हुई है यदि तुम्हारे पास आवे तो खयाल रखना) ॥ ४ ॥ यदि वे व्यापारी कही हुई वस्तुके आजानेपर भी उसे छिपा लें, तो चोरीमें सहायता देनेका जो दण्ड हो, वह उन्हें दिया जाय ॥ ५ ॥ यदि वे इस बातको न जानते हों, तो उस द्रव्यके दे देनेपर उसके अपराधसे छुटकारा पासकते हैं ॥ ६ ॥

न चानिवेद्य सस्थाध्यक्षस्य पुराणभाण्डानामाधानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ ७ ॥ तत्रेभिवेदितमासाद्येत रूपाभिगृहीतमागमं पृच्छेत् ॥ ८ ॥ कुतस्ते लब्धमिति ॥ ९ ॥ स चेद्भूयाद्वायाद्यादेवाप्तममुप्माहृब्धं क्रीतं कारितमाधिप्रच्छन्नम् ॥ १० ॥

रास्यापक्षको बिना सूचना दिये पुराने मालको न कहीं गिरवी रखे, और न बेचे ॥ ७ ॥ यदि वह खोई हुई वस्तु किसी व्यापारीके पास आजावे, तो उस वस्तुके लाने वालेको पूछा जावे, कि ॥ ८ ॥ तुमने वह वस्तु कहासे ली है ? ॥ ९ ॥ यदि वह कहे कि मैंने यह अपनी जही जायदादसे ली है, या और किसीसे (जिससे ली हो उसका नाम लेकर कहे) ली है, अथवा मैंने खरीदी या बनवाई है, या अभीतक रहन रखे रहनेके कारण यह वस्तु छिपी रही ॥ १० ॥

अयमस्य देशः कालथोपसंप्राप्तः ॥ ११ ॥ अयमस्यार्थः प्रमाणं क्षणमूल्यं चेति तस्यागमसमाधौ मुच्येत ॥ १२ ॥ ना-

ष्टिकश्चेत्तदेव प्रतिसंद्ध्यत् ॥ १३ ॥ यस्य पूर्वो दीर्घश्च परिभोगः
शुचिर्वा देशस्तस्य द्रव्यमिति विद्यात् ॥ १४ ॥

यह अमुक स्थान और अमुक समयपर ली गई थी ॥ ११ ॥ यह इसका असली मूल्य है, इसमें यह प्रमाण है, यह लक्षण है, यह इसकी आजकलकी कीमत है, इस प्रकार उसका सब हाल ठीक २ बतला देनेपर उसे अपराधी न समझा जाये ॥ १२ ॥ यदि अभियोक्ता (जिसकी वस्तु खोई हुई या चोरी गई है, यह) भी उसी चीजको अपनी बतलाये, तो ॥ १३ ॥ उन दोनोंमेंसे उसी व्यक्ति को उस वस्तु का मालिक समझा जाय, जो पहिले और बहुत दिनोंसे उस वस्तु का उपभोग कर रहा हो, तथा जिसके साक्षी विश्वस्त भार सधे हों ॥ १४ ॥

चतुष्पदद्विपदानामपि हि रूपलिङ्गसामान्यं भवति किमद्ग
पुनरेकयोनिद्रव्यकर्तृप्रसृतानां कुप्पाभरणभाण्डानामिति ॥ १५ ॥

क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि जब भिन्न २ योनियोंसे उत्पन्न होनेवाले चीपायोंमें भी आकृतिसादृश्य और चिन्हसादृश्य है, तो यह क्या अचम्बेकी बात है कि एकही कारीगरके द्वारा पृथ्वी द्रव्यसे बनी हुई आभूषण वर्णन आदि वस्तुओंमें परस्पर समानता हो । (अर्थात् समानता अवश्य हो सकती है, और इसलिये किसी वस्तुको देखकर आदमी उसपर अपनी वस्तुका धोका खासकता है ।) ॥ १५ ॥

स चेद्भूषात् ॥ १६ ॥ याचितकमवक्रीतकमाहितकं नि-
क्षेपमुपनिधिं वैश्यावृत्त्यकर्म वामुप्येति तस्यावसरप्रतिसंधानेन
मुच्येत ॥ १७ ॥

यदि वह वस्तु खानेवाला पुरुष, पूछनेपर यह कहे कि — ॥ १६ ॥ यह वस्तु मैं अमुक पुरुषसे मांगकर लाया हूँ, या किरायेपर लाया हूँ, या मेरे पास इसको किसी पुरुषने गिरवी रक्खा है, या कुछ वस्तु बनानेके लिये मेरे पास रख गया है, या रखाके लिये विश्वास करके मुझे दे गया है, या मैंने घेतनमें अमुक पुरुषसे इसे पाया है, इत्यादि । तो उस पुरुषको बुलाकर पूछनेपर यह यह कहदे कि जो कुछ हमने कहा है वह ठीक है, तो यह वस्तु खानेवाला पुरुष छोड़ दिया जाये ॥ १७ ॥

नेत्रमित्यपसारो वा भूयात् ॥ १८ ॥ रूपाभिगृहीतः परस्य
दानकारणमात्मनः प्रतिग्रहकारणमुपलिङ्गनं वा दायकदायकनि-
बन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिरुपथोत्तुभिर्वा प्रतिसमानयेत् ॥ १९ ॥

यदि वह पुरप कहें कि इसने ठीक नहीं कहा है, मुझसे इसने कुछ नहीं मांगा, इत्यादि ॥ १८ ॥ तो वह वस्तु छानेवाला पुरप, दूसरेके उस वस्तुको देनेके कारणको और अपने लेनेके कारणको बदालतमें उपस्थित करे, तथा युक्तिपौसे इस बातको सिद्ध करे कि मैंने यह वस्तु इससे ली है। उस वस्तुके देनेवाले, दिखानेवाले, लिखनेवाले, लेनेवाले, लिखानेवाले तथा साक्षी पुरपोंको न्यायालयमें उपस्थित करे ॥ १९ ॥

उज्जितप्रनष्टनिष्पतितोपलब्धस्य देशकाललामोपलिङ्गनेन
शुद्धिः ॥ २० ॥ अशुद्धस्तच्च तावच्च दण्डं दद्यात् ॥ २१ ॥ अ-
न्यथा स्तेयदण्डं भजेत् ॥ २२ ॥ इति रूपाभिग्रहः ॥ २३ ॥

यदि अभियोक्ता, कहाँपर भूली हुई, खोई हुई या लेजाई हुई वस्तुके प्राप्त होजानेपर उसके सम्बन्धमें देश, काल तथा अपने स्वयंकी ठीक २ सिद्ध कर देता है, तो समझना चाहिये, यह उसीकी वस्तु है ॥ २० ॥ यदि सिद्ध न करसके, तो उतनाही कीमतकी वैसी दूसरी वस्तु और उतना ही दण्ड देवे ॥ २१ ॥ अन्यथा उसको चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥ यहाँतक रूपके द्वारा पकड़नेके सम्बन्धमें कहा गया ॥ २३ ॥

कर्माभिग्रहस्तु ॥ २४ ॥

अब इसके आगे चौर्य कर्मके द्वारा पकड़े जानेके विषयमें कहा जाता है ॥ २४ ॥

चोरी तीन प्रकारकी होती है—१ भीतरसे की जानेवाली, २ बाहरसे
३ दोनों ओरसे। पहिले, पाहेली चोरीके विषयमें कहा जाता है—

मुपितवेश्मनः प्रवेशनिष्कसनमद्वारेण द्वारस्य संधिना बीजेन
वा वेधमुत्तमागारस्य जालवातायननीप्रवेधमारोहणाचतरणे च
कुड्यस्य वेधमुपखननं वा गूढद्रव्यनिक्षेपणग्रहणोपायमुपदेशोपल-
भ्यमभ्यन्तरच्छेदोत्करपरिमर्दोपकरणमभ्यन्तरकृतं विद्यात् ॥ २५ ॥
विपर्यये चाह्यकृतं उभयत उभयकृतम् ॥ २६ ॥

यदि चोरी किये हुए घरमें, पीले के दरवाजे से आना जाना हुआ हो, अथवा दरवाजा जोड़ों से या नीचे से तोड़ दिया गया हो, मरुतान ऊँचा होने पर सिड़की या रोगनदानों को तोड़ दिया गया हो, चढ़ने और उतरने के लिये दीवार में ईंट निकालकर या खोदकर जगह बना ली गई हो, घतलाने परही माहस होने वाली त्व छिपाकर रखी हुई वस्तुओं को लेने के लिये ठीक उसी

जगह से दीवार या जमीन खोदी गई हो, और मकान के भीतर खोदी हुई मही वे मालूम कर दी गई हो, तो समझना चाहिये कि इस चोरी में भीतर रहने वाले किसी आदमी का हाथ अवश्य है ॥ २५ ॥ यदि इससे विपरीत लक्षण मिलें, तो इसे बाहर वालों का ही काम समझ, और दोनों तरह के लक्षण मिलने पर दोनों का ॥ २६ ॥

अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं व्यसनितं क्रूरसहायं तस्करोपकरणसंसर्गं स्त्रियं वा दरिद्रकुलामन्यग्रसक्तां वा परिचारकजनं वा तद्विधाचारमतिस्त्रमं निद्राक्लान्तमाविह्वान्तमापिग्रं शुष्कभिन्नस्वर मुखवर्णमनवस्थितमतिप्रलापिनमुच्चारोहणसंरब्धपात्रं विल्वननिघृष्ट भिन्नपाटितशरीरप्रखं जातकिरणसंरब्धहस्तपादं पांसुपूर्णकेशनखं विल्वनभुग्नकेशनखं वा सम्यक्स्नातानुलिप्तं तैलप्रमृष्टगात्रं सद्योधौतहस्तपादं वा पांसुपिच्छिलेषु तुल्यपादपदनिक्षेपं प्रवेशनिष्कसनयोर्वा तुल्यमाल्यमद्यगन्धप्रस्रच्छेदविलेपनखेदं परीक्षेत ॥२७॥ चोरं पारदारिकं वा निघात् ॥ २८ ॥

यदि यह सन्देह हो कि इस चोरी आदि में भीतर के आदमी का हाथ है, तो उसकी जांचके लिये भीतर या समीप रहने वाले निम्न प्रकार के आदमियों से पूछताछ करे, — जो जुआरी हो या शराब पीता हो, क्रूर आदमियों की सहायता करने वाला हो, चोरों की सगत करने वाला, दरिद्री, अथवा अन्यासक्त स्त्री, या अन्य स्त्री पर आसक्त नौका चाकर, बहुत सोनेचन्दा, निद्रा के कारण थका हुआ सा, मानसिक कष्टों से दुखी, डरा हुआ, घबड़ाये हुए चेहरे और भरोहें हुई आवाज वाला, चञ्चल, बकवादी, ऊपर चलने में दूसरे की सहायता लेने वाला, जिसके शरीरके वस्त्र कट भटे और रगड़े हुए मालूम पड़ें, जिसके हाथ और पैरों में डेक पड़ी हुई हों, जिसके बाल और नाखूनों में धूल भरी हुई हो, तथा कटे फटे और शर उधर धिखे हुए हों, जिसने अच्छी तरह स्नान करनेके बाद पित शरीर पर चन्दन आदि कुठ लगा लिया हो, शरीर पर तेल की मालिश करके हो, फौरन ही हाथ पैर धो डाले हा, धूल या कीचट में जिसके पाय के सरस चिन्ह मिल जाय, जिसके ऊपर ऐसा ही गन्ध धाता हो जैसा कि चोरी किये हुए मकानमें रखी हुई माला और मर्त्यका गन्ध हो, उसी तरह कपड़े पड़े हों तथा चन्दनादि लगाने पर पसीना भी ऐसा ही हो ॥ २७ ॥ इस तरह के पुरखों से अच्छी तरह पूछताछ करके फिर इस बात का निर्णय करे कि अमुक पुरख चोर वा परिचारक है ॥ २८ ॥

सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा चोरमार्गणम् ।

कुर्यान्नागरिकश्चान्तर्दुर्गे निर्दिष्टहेतुभिः ॥ २९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थं अधिकरणं शक्यरूपकर्माभिग्रह पद्योऽध्याय ॥ ६ ॥

भादितस्वयशीति ॥ ८३ ॥

यदि चोरा आदि करने वाले बाहर के ही आदमी हों, तो गोप और स्थानिक को साथ लेकर प्रदेष्टा उनकी तालपा करे । तथा नागरिक घतलाये हुए ठपार्यों के द्वारा नगरों में ही उनकी खोज करे ॥ २९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थं अधिकरणं मे लडा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

८२ प्रकरण

आशुमृतक परीक्षा

१ तैलाम्यक्तमाशुमृतकं परीक्षेत ॥ १ ॥ निष्कीर्णमूत्रपुरीषं
चातपूर्णकोष्ठत्वक्कं शूनपादपाणिमुन्मीलितार्धं सव्यञ्जनकण्ठं पाँड-
ननिरुद्धोष्मासहतं विद्यात् ॥ २ ॥

{ किसी भारी घाव या बीमारीके बिना ही जो पुरुष अचानक मर जाय उसे आशुमृतक कहते हैं । द्रव्यको अपहरण करने वाले कण्टकों के रिपयमें कहा जा चुका है, अब प्राणापहारी कण्टकों को कहते हैं ।

आशुमृतक को तैलम डालकर फिर परीक्षा करे ॥ १ ॥ जिसका पेशाब प पलाना निकल गया हो, पेट या खाल में हवा भरी हुई हो, हाथ पैरा पर सूजन आई हुई हो, आख फटी हुई हों, गलम निशान हो, तो समझना चाहिये कि इस आदमी का गला घटकर मारा गया है ॥ २ ॥

तमेव संकुचितबाहुसविधमुद्गन्धहतं विद्यात् ॥ ३ ॥ शून-
पाणिपादोदरमपगताक्षमुद्गृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात् ॥ ४ ॥
निस्तन्धगुदार्धं संदष्टजिह्वमाध्मातोदरमुदकहतं विद्यात् ॥ ५ ॥

यदि उसकी बाँहें और टाँगें सुकड़ी हुई हों, तो समझना चाहिये कि इसे छटकाकर पाँती लगाकर मारा गया है ॥ ३ ॥ यदि हाथ पैर और पेट फूले हुए हों, अस्त भीतर को गर्मी हुई हो, मानि ऊपर को उठी हुई हो, तो समझना चाहिये कि इस शूली पर चूटाकर मारा गया है ॥ ४ ॥ जिसकी गुदा

और आख बाहर निकल गई हों, जीभ कट सी गई हो, पेट फूला हुआ हो, उसे समझना चाहिये कि यह पानी में डुबाकर मारा गया है ॥ ५ ॥

शोणितानुमिक्तं भग्नभिन्नगात्रं काष्ठै रश्मिभिर्वा हतं विद्यात् ॥ ६ ॥ संभ्रमस्फुटितगात्रमवक्षिप्तं विद्यात् ॥ ७ ॥ श्याचपाणि-
पाददन्तनखं शिथिलमांसरोमचर्मणं फेनोपदिग्धमुखं विपहतं
विद्यात् ॥ ८ ॥

जो खून से भोगा हुआ हो, शरीर के भग्नपत्र टूट फूट गये हों, उसे समझना चाहिये कि यह लाटियों और रश्मियाँ से मारा गया है ॥ ६ ॥ जिस का शरीर जगह २ से फट गया हो, उसे समझना चाहिये कि यह मकान आदि के ऊपर से गिराकर मारा गया है ॥ ७ ॥ जिसके हाथ, पैर, दात, नाखून कुछ-कुछ काटे पड़े गये हों, मांस, रक्त, और खाल ये चीजे पड़े गये हों, तथा, मुँहसे हाग आता हो, उसे समझना चाहिये कि यह जहर खिलाकर मारा गया है ॥ ८ ॥

तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं विद्यात् ॥ ९ ॥ विक्षिप्त
यस्त्रगात्रमतिवांतविरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात् ॥ १० ॥ अतो
ऽन्यतमेन कारणेन हतं हतना वा दण्डभयादुद्धन्धनिकृत्तकण्ठं
विद्यात् ॥ ११ ॥

यदि हालत यही हो, और किसी काटे हुए स्थानसे रक्त निकल रहा हो, तो समझना चाहिये कि इसे सापसे, भयना अन्य किसी जहरीले कीड़े से कटया कर मारा गया है ॥ ९ ॥ जिसने अपने खस्त्र तथा शरीर को इधर उधर बखेरासा रखा हो, तथा जिमको कै और दस्त बहुत आये हों, उसे समझना चाहिये कि यह पत्तूर भादि उन्मादक भीषणियों खिलाकर मारा गया है ॥ १० ॥ इन उपर्युक्त कारणोंमें से किसी एक कारणसे मरे हुए आत्मी को पहिचाने । भयवा कोई व्यक्ति किसी को मारकर फिर यह विचार करके कि भय राजा बड़े कष्ट से मेरे प्राण लेगा, इस डरसे स्वयं ही गले में फाँसी लगाकर लटक कर या अपनी गर्दन काटकर अपने आपही मार सकता है ॥ ११ ॥

विपहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत ॥ १२ ॥ हृदयादु-
द्धत्याग्नौ प्रक्षिप्तं चिटचिदायदिन्द्रधनुर्वर्णं वा निपयुक्तं विद्यात्
॥ १३ ॥ दग्धस्य हृदयमदग्धं दृष्ट्वा वा तस्म परिचारकजनं
वा दण्डपाह्व्यात्तिलम्भं मार्गेत ॥ १४ ॥

विषसे मरे हुए व्यक्ति के पेटमेंसे रोष भ्रष्ट निकाल, उसे रस बाहि (रासायनिक क्रिया) के द्वारा परीक्षा करावे। (किसी पुस्तक में 'पयोभि' की जगह 'वियोभि' पाठ है। अर्थात् पक्षियों के द्वारा, उन्हें पह अन्न खिलाकर उसकी परीक्षा करावे) ॥ १२ ॥ पेटमें सर्वदा अन्नका परिपाक हो जानेपर, हृदय का कुछ हिस्सा कटबाकर उसे अग्निमें डाले, उसमें से यदि 'चिद्र चिद्र' इस प्रकार जलने का शब्द निकले, और धरा कालिक इन्द्र धनुष के समान हरे नीले छाल रंग दीये, तो उसे विषयुक्त समझा जावे ॥ १३ ॥ जिनमें हुए पुरुषके अथवा जले हृदय प्रदेश को देखकर, अथवा मरे हुए व्यक्तिके नौकर चाकी से जिन्हें, वायुपारण्य और दण्डपारण्य से पीडित किया गया हो, विष देने वालेका पता लगावे ॥ १४ ॥

दुःखोपहतमन्यप्रसक्तं वा स्त्रीजनं दायानिवृत्तिस्त्रीजनाभि-
मन्तारं वा बन्धुम् ॥ १५ ॥ तदेव हतौर्द्धन्धस्य परीक्षेत ॥ १६ ॥
स्वयमुर्द्धन्धस्य वा विप्रकारमयुक्तं मार्गेत ॥ १७ ॥

१५ ॥ दुःखोंसे पीडित तथा अन्य पुरुषमें आसक्त स्त्रीको और इस प्रकार समझन वाले बान्धवको, कि अमुक व्यक्तिके मर जानेपर इसकी सम्पत्तिका दाय मुझे प्राप्त होगा, अथवा इसकी स्त्रिया मेरी भोग्य होजायगी, मृत व्यक्तिके विषयमें पूरा जाय ॥ १५ ॥ इसी प्रकार मारकर मर जानेवालेके विषयमें पूछताछ कीजावे ॥ १६ ॥ यदि कोई व्यक्ति स्वयंही फांसी लगाकर मर गया हो, तो उसके विषयमें इस बातका पता लगाया जाय कि इसको क्या भयकर कष्ट था जो इतने प्रेमा किया ॥ १७ ॥

सर्वेषां वा स्त्रीदायाद्यदोषः कर्मस्पर्धा प्रतिपक्षद्वेषः पण्यसंस्थ
समवायो वा निवादपदानामन्यतमद्वा रोषस्थानम् ॥ १८ ॥
रोषनिमित्तो घातः ॥ १९ ॥

साधारणतया सघर्षी पुरुषोंके क्रोधके निम्नलिखित कारण होते हैं— स्त्री, दायभाग, राजकुलोंमें हुशमतका सघर्ष, शत्रुके साथ शत्रुता, व्यापार (एक दूसरेको नुकसान पहुंचानेका इच्छासे), रूध, (जब सर्वमें किसीकी प्रधानता नष्ट होजाय) साधारण जनताके परस्पर क्रोधके येही आधारभूत विषय हैं ॥ १८ ॥ क्रोधके यह जानेपर ही एक पुरुष दूसरे पुरुषको मार सकता है ॥ १९ ॥

स्वयमादिष्टपुरुषैर्वा चौरैर्यनिमित्त सादृश्यादन्यवेरिभिर्वा
हतस्य घातमासन्नेभ्यः परीक्षतः ॥ २० ॥ येनाहुतः सहस्रितः

प्रस्थितो हतभूमिमानो वा तमनुयुञ्जीत ॥२१॥

जिसने और मघात किया हो, या जिसको किसीने नीकरपाकरोंसे मरवाया हो, या जिसको चोरोंने धनके कारण मार दिया हो, या शत्रुओंने शकल खुरत पकसा होनेसे किसी दूसरे आदमीके धोखेमें किसीको मार दिया हो, इन सब तरहको मौतोंके विषयमें मृतव्यक्तियोंके समीप रहनेवालोंसे पूछताछ की जाय ॥ २० ॥ जिसने इसको बुलाया, जिसके साथ ठहरा, जिसके साथे गया, जो इसको मृत्युस्थानमें लाया, जिससे पूछा जाय ॥ २१ ॥

ये ज्ञास्य हतभूमावासन्नचरास्तानिकैकशः पृच्छेत् ॥ २२ ॥
केनायमिहानीतो हतो वा ॥ २३ ॥ कः ॥ सशत्रुः ॥ संग्रहमान
'उद्विग्नो' वा शुष्माभिर्दृष्ट इति ॥ २४ ॥ ते यथा न्युस्तथानुयुञ्जीत
॥ २५ ॥

और जो पुरुष मृत्युस्थानमें इधर उधर घूम रहे हों, उन सबको एक २ करके पूछे ॥ २२ ॥ इसे, यहाँ कौन लाया या ? और किसने इसे मारा है ॥ २३ ॥ कौन आदमी हथियारबन्द अपने आपको छिपाता हुआ, घबड़ाया हुआ, आप लोभोंने इधर अते जाते देखा है ॥ २४ ॥ वे जैसा कहें, उसीके अनुसार और भी आवश्यक बातोंका पता लगावे ॥ २५ ॥

अज्ञाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छदम् ।

वस्त्रं वेपं विभूषां वा दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणः ॥ २६ ॥

अनुयुञ्जीत संयोगं निवासं वासकारणम् ।

कर्म च व्यवहारं च ततो मार्गणमाचरेत् ॥ २७ ॥

मृतव्यक्तिके शरीरपर धारण किये हुए माला आदि (उपभोग) और छाता जूता आदि (परिच्छद), कपड़े, वेप (जादिल) हैमा मुण्डी है, इत्यादि तथा अलङ्कार आदिको अच्छी तरह देखकर, उनका (माला आदिका) इयापार करनेवालोंसे पूछे कि यह पुरुष (मृतव्यक्ति) किसके साथ मिश्रता रखता था, कहाँ उठता बैठता था, अमुके स्थानमें यह क्या रहता था, यह क्या काम करता था, और इसका व्यवहार कैसा था, इत्यादि । इन सब बातोंका ठीक २ पता लगा लेनेपर फिर घातक पुरुषका खोजेपण किया जाय ॥ २६-२७ ॥

रज्जुशस्त्रविपैर्वापि कामक्रोधवशेनः ॥ २८ ॥

घातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा प्रापेन मोहिता ॥ २८ ॥

रज्जुना राजमार्गेत्ता चण्डालेनापकर्षयेत् ।

न श्मशानविधिस्तेषां न संवन्धिक्रियास्तथा ॥ २९ ॥

— जो पुरुष काम या क्रोधके धर्माभूत होकर फाँसी लगाकर, हथियारसे भयवा विपके द्वारा आत्महत्या करले, या कोई स्त्री पापसे मोहित हुई २ आत्महत्या करले, तो घण्टाल उन्हे रस्सीमें बाँधकर बाजारमें घसीटता हुआ लेजावे । ऐसे व्यक्तियोंके दाहादि संस्कार सर्वथा वर्जित है, और न उनके लिये जलाशलि आदि दीजावे ॥ २८-२९ ॥

वन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम् ।

॥ ३० ॥ तद्रतिं संचरेत्पश्चात्स्वजनाद्वा प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

जो वान्धव, आरम घातियोंके दाह आदि, संस्कार और तपण, आदि क्रियाओंको करे, वह अपनी मृत्युके अनन्तर आत्म घातियोंकी गतिको प्राप्त होने भयवा उसे जातिष्ठुत करदिया जावे ॥ ३० ॥

संवत्सरेण पतति पातितेन समाचरन् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात्तश्चान्यो ऽपि समाचरन् ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे अधिकरणे आशुमृतकपरीक्षा सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
वाचितश्चतुरशांति ॥ ८४ ॥

पतित पुरुषके साथ यजन अध्ययन और विवाह आदि सम्बन्ध करता हुआ पुरुष, एक वर्षके अन्दर स्वयं पतित होजाता है । फिर उसके साथ उपसुक्त इष्यहार करनेवाले, अन्य पुरुष भी एक वर्षमें पतित होते चले जाते हैं ॥ ३१ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थे अधिकरणे सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

८३ प्रकरण ।

वाक्य कर्मानुयोग् ।

मुपितसंनिधौ बाह्यानामभ्यन्तराणां च साक्षिणामभिश्चस्तस्य देशजातिगोत्रनामकर्मसारसहायनिवासाननुयुञ्जीत ॥ १ ॥ तांश्चापदेशैः प्रतिसमानयेत् ॥ २ ॥

— जिसका माल चोरी गया है उसके सामने, तथा अन्य बाहर भीतरके पुरुषोंके सामने, साक्षीसे, सन्देश (चोरीके सम्बन्ध) में पकड़े हुए आदमीके

देश, जाति, गोत्र, नाम, काम, सम्पत्ति, मित्र और निवासस्थानके विषयमें पूछा जावे ॥ १ ॥ और फिर युक्तिपूर्वक जिरह करके उसकी (जो कुछ साक्षीने कहा हो उसकी) अच्छी तरह आलोचना करे ॥ २ ॥

ततः पूर्वस्याहः अचारं रात्रौ निवासं चाग्रहणादित्यनुयु-
ञ्जीत ॥ ३ ॥ तस्यापसारप्रतिसंधाने शुद्धः स्यात् ॥४॥ अन्यथा
कर्मप्राप्तः ॥ ५ ॥

इसके बाद सन्देशमें पकड़े हुए आर्द्रमसि, पिउले दिनके कार्य तथा रात्रिके निवास और जिस समय यह पकड़ा गया है, उस समयतकके सब कार्योंके सम्बन्धमें पूछताछ करे ॥ ३ ॥ यदि उसके निरपराध होममें पूरे सबूत मिल जाय, तो उसे छोड़ दिया जाय ॥ ४ ॥ अन्यथा यह अपराधी समझा जावे ॥ ५ ॥

त्रिरात्रादूर्ध्वमात्र ह्यः शङ्कितकः पृच्छाभागादन्यत्रोपकरणद-
क्षिणात् ॥६॥ अचोरं चोर इत्यभिव्याहरतश्चोरसमो दण्डः ॥७॥
चोरं प्रच्छादयतश्च ॥ ८ ॥

तीन दिन बीत जानेपर सन्दिग्ध (जिसपर चोरी आदिका सन्देह किया गया हो) पुरुषको गिरफ्तार न किया जाय । क्योंकि फिर चोरोंके दिनसे पहिले दिनकी बात, विस्मरण हो जानके कारण उससे डोक २ नहीं पूछी जासकती, परन्तु यदि किसीके चोरोंके साधन (सबूत) मिलजाय, तो उसे तीन दिनके बाद भी अवश्य गिरफ्तार किया जासकता है ॥ ६ ॥ जो पुरुष साधको चोर बतावे, उसे चोरके समानही दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ और यही दण्ड उसे भी दिया जाय जो चोरके छिपानेका पक्ष करे ॥ ८ ॥

चोरेणाभिशस्तो वैरद्वेषाम्यामपदिष्टकः शुद्धः स्यात् ॥ ९ ॥
शुद्धं परिवासयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥ शङ्कानिष्पन्नमुप-
करणमन्त्रिसहायरूपवैर्यावृत्त्यकरान्निष्पादयेत् ॥ ११ ॥

यदि चोर किसी भलेमानसको राघुता और द्वेषके कारण पकड़वावे, तथा यह सिद्ध होजाय, तो उसे निरपराध समझा जाये ॥ ९ ॥ निरपराधको दण्ड देनेवाले अधिकारीको (प्रदेष्टा आदिको) प्रथममाहस दण्ड दिया जाये ॥ १० ॥ सन्देशमें पकड़े हुए पुरुषसे, चोरी करनेके उपाय (साधन), सलाह कार, सहायक, चोरोंके माल, आर उसके अपने महनतानेके सम्बन्धमें अच्छी तरह पूछताछ करे ॥ ११ ॥

कर्मणश्च प्रदेशद्रव्यादानांशविमार्गः प्रतिसमानयेत् ॥१२॥

एतेषां कारणानामनभिसंघानि विप्रलपन्तमचोरं विद्यात् ॥ १३ ॥

और यह भी पूछे, कि चोरी करते समय मकानके भीतर किस २ ने प्रवेश किया, क्या २ माल हाथ लगा, तथा किस २ को कितना २ हिस्सा मिला, तथा इसपर सूच्य विचार करे ॥ १२ ॥ जो पुरुष, चोरी सिद्ध करनेवाले इन कारणोंके ऊपर कुछ भी शक्याल न करता हुआ, उसे खलसा २ बोलें, उसे चोर न समझा जाय ॥ १३ ॥

दृश्यते ह्यचोरोऽपि चोरमार्गे यदृच्छया ॥ १४ ॥ संनिपाते चोरवेषशस्त्रभाण्डसामान्येन गृह्यमाणो दृष्टश्चोरभाण्डस्योपवासेन वा यथा हि माण्डव्यः कर्मक्लेशभयाच्चोरश्चोरोऽस्मीति ब्रुवाणः ॥ १५ ॥

योंकि लोकमें यह देखा गया है कि, जो चोर नहीं है, वह भी अघानक चोरोंके रास्तेपर जाता हुआ, चोरोंके समानही वेष, हथियार और-माल अपने पास होनेके कारण गिरफ्तार किया जाता हुआ देखा गया है, तथा इसी प्रकार चोरीके मालके पास रहनेसे भी पकड़ा जाता हुआ देखा गया है । जैसा कि माण्डव्य मारके दरसे, अपने आपको चोर न होते हुए भी 'मैं चोर हूँ' इस प्रकार कहता हुआ पकड़ा गया । (इसकी कथा महाभारतमें आदि० ११६ ११७ अध्याय, पं० पु० ५, ४८, मार्कंडेय पु० १६, स्कान्द० पु० आवन्यवखण्डान्तर्गत रेवाखण्ड १७०-१७२, नागरखण्ड १३६-१३८) ॥ १४ १५ ॥

तस्मात्समाप्तकरणं नियमयेत् ॥ १६ ॥ मन्दापरार्थं बालं वृद्धं व्याधितं मत्तमुन्मत्तं क्षुत्पिपासाध्यज्ञान्तमत्याशितमात्मकाशितं दुर्बलं वा न कर्म कारयेत् ॥ १७ ॥ तुल्यशीलपुंश्चलीप्रापाविककथाविकाशभोजनदातृभिरपसर्पयेत् ॥ १८ ॥ एवमतिसंद-
ध्यात् ॥ १९ ॥

इस लिये इस प्रकारके मामलोंमें सूच्य विचारकर ही अपराधीको दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ भोजन अपराध करने वालेको, बालक, वृद्ध, बीमार, पागल, उन्माद रोगके रोगी, भूरे, पतासे, धके हुए, बहुत अधिक भोजन किये हुए, मजीणके रोगी, और बल क्षीमकों शारीरिक दण्ड (कोड़े आदि मारना) न देवे ॥ १७ ॥ समान स्वभाव वाली वेश्याओं, दूतियों, कृत्यों, सराय और होटल वालोंके द्वारा सुकिया तीरपर दुष्टकर्म करने वालोंका पता लगावे ॥ १८ ॥ पीछे कड़ी हुई सतिषोंसे उन्हें बोला देवे ॥ १९ ॥

यथा वा' निक्षेपापहारे व्याख्यातम् ॥ २० ॥ आप्तदोषं कर्म
कारयेत् ॥ २१ ॥ न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं सूक्तिकां वा मासान्तर
प्रजाताम् ॥ २२ ॥ स्त्रियास्त्वर्धकर्म वक्ष्यानुयोगो वा ॥ २३ ॥

अथवा निक्षेपका अपहरण कर लेनेपर उल्लूकी खोजके जो उपाय बताये
गये हैं, उन्हींको काममें लाव ॥ २० ॥ जिसका अपराध निश्चित होजावे, उसी
को दण्ड देव ॥ २१ ॥ परन्तु गर्भिणी तथा एक महीनसे कमकी प्रसूता स्त्रीको
हर्गिज दण्ड न देव ॥ २२ ॥ उन २ अपराधोंमें जो दण्ड पुरस्क लिये कहा
गयाह उससे आधादण्ड स्त्रीको दिया जावे अथवा केवल चाग्दण्ड दिया जाव
॥ २३ ॥

ब्राह्मणस्य सत्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपस्विनश्च ॥ २४ ॥ तस्या-
तिक्रम उत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च कर्मणा व्यापादनेन च
॥ २५ ॥ व्यावहारिकं कर्मचतुष्कम् ॥ २६ ॥ पद्दण्डाः सप्त
कशा द्वावुपरिनिम्नधावुदकनालिका च ॥ २७ ॥

विद्वान् ब्राह्मण तथा तपस्वीको, सिपाहीसे पकड़वाकर इधर उधर
पुमानेका हा दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ जो अधिकारी काम करान या मारने
के शक्त, इन उपर्युक्त दण्डक नियमों का उल्लङ्घन करे या कराव, तो उसे
उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ २५ ॥ सर्वत्र लोक व्यवहार में प्रसिद्ध चार
प्रकारके दण्ड हैं — ॥ २६ ॥ छ दण्डे मारना साठ कोड़े मारना, हाथपैर बांधकर
ऊपर को उलटा लटका देना, और नमकका पानी नाकमें डालना ॥ २७ ॥

। परं पापकर्मणा नवचेत्रलता द्वादशकं द्वाचूराः अष्टौ विंशति-
र्नक्तमाललता द्वात्रिंशत्तला द्वौ घृथिकुम्भधावुल्लम्बने चले सूची-
हस्तस्य यत्रागृपीतस्यैकपर्वदहनमङ्गुल्याः स्नेहपीतस्य प्रतापनमेक
महः शिशिररानौ वस्त्रजाग्रशय्या चेत्यष्टादशक कर्म ॥ २८ ॥

उपर्युक्त चारके अतिरिक्त, पापाचरण करने वाले दुम्पोंको निम्न विहित
प्रकारसे भी दण्ड दिया जाय — १ हाथक लटवें बँतसे, चारह बँत लगाना,
२ रस्सियोंसे अलहादा २ टाँगोंका लपेटना (यह दो प्रकारका लपेटना), बरतने
की छद्दीसे २० बार आघात करना, ३२ दण्ड मारना, पाठ हाथको पीठेकी
ओरसे बाँध पीरके साथ बाँधना और दाँव हाथको दाँव पीरके साथ (यह दो
प्रकारका घृथिकुम्भ), दोनों हाथ आपसमें बाँधकर लटका देना और दोनों
पैर बाँधकर लटका देना (यह दो प्रकारके लम्बाने), हाथक नाखूनोंमें सुई

सुभोना, लप्ती पिलाकर पेशाय, न करने देना, अगुली का एक पौह्रा जला देना, घी पिलाकर एक दिनतक धूपमें या अग्निके सामने तपाना, जाड़ोंकी रातमें भीगी हुई छाटपरा सुलाना । इस प्रकार १४ ये और ४ पहिले, कुल मिलकर १८ दण्ड देनेके प्रकार हैं ॥ २८ ॥

तस्योपकरणं प्रमाणं प्रहरणं प्रधारणमवधारणं च खरपट्टा-
दागमयेत् ॥ २९ ॥ दिवमान्तरमेकैकं च कर्म कारयेत् ॥ ३० ॥

इस दण्ड कर्मके लिये रसता आदि, दण्डे या कोड़े आदि की लम्बाई, घंटा या करजवे की छटा आदि, दण्डनाय पुरपत्र खटा आदि करने, और शरीर के अनुकूल दण्ड आदि निश्चय करनेके विषयमें खरपट्ट (ग्रन्थकर्ता का नाम) के बताने हुए शास्त्रका अध्ययन करना चाहिये ॥ २९ ॥ कठिन शारीरिक धर्म के कार्योंको बीचमें एक २ दिनका अन्तर देकर करावै ॥ ३० ॥

पूर्वकृतापदानं प्रतिज्ञाया अपहरन्तमेकदेशमदृष्टव्यं कर्मणा
रूपेण वा गृहीतं राजकोशमपसृणन्तं कर्मवध्यं वा राजवर्चन-
त्समस्तं व्यस्तमभ्यस्तं वा कर्म कारयेत् ॥ ३१ ॥

पहले चोरा करने वालेको, प्रतिज्ञा करके वस्तु अपहरण करने वाले को, छुराई हुई या खोद हुई चीजोंमें से किसी एक चीजके सहित मिले हुए पुरुषको, अथवा चोरी करत हुए और माल लेजाते हुए पकड़े जाने वाले पुरुष को, राजाकी सम्पत्ति हड़प करन वाले, तथा हत्या आदि महाअपराध करने वाले पुरुषको, राजाकी आज्ञानुसार, एक साथ अलहदा २ अथवा क्रमसे आजीवन कठिन धर्मका दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥

सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मणः ॥ ३२ ॥ तस्याभिज्ञस्ताङ्को
ललाटे स्याद्वधवहारपतनाय ॥ ३३ ॥ स्तेयेश्वा ॥ ३४ ॥ मनु-
ष्यवधे कनन्धः ॥ ३५ ॥ गुरुत्वले भगम् ॥ ३६ ॥ सुरापाने
मद्यध्वजः ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणको किरा अपराधमें भी श्राव्यदण्ड या ताड़न दण्ड न दिया जावे ॥ ३२ ॥ प्रत्युत भिक्षु २ अपराधोंके अनुसार उसके मस्तक पर चिन्ह लगा दिया जावे, जिससे कि वह जातीय व्यवहारोंमें पतित समझा जाय ॥ ३३ ॥ चोरी करनेपर कुत्तका चिन्ह, ॥ ३४ ॥ मनुष्य हरया करनेपर कण्ठ (मनुष्यके धड़) का चिन्ह ॥ ३५ ॥ गुरु पदाके साथ पापाचरण करने पर भग (योनि का चिन्ह), ॥ ३६ ॥ सुरापान करने पर शरावकी हाण्डी का चिन्ह कर दिया जावे ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणं पापकर्माणमुद्रुप्याङ्ककृतत्रणम् ।

कुर्यान्निर्विषयं राजा वासयेदाकरेषु वा ॥ ३८ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे अधिकरणे वाक्यकर्मानुयोग अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आदित पद्यातीति ॥ ८५ ॥

पापी ब्राह्मणके माथे पर उपयुक्त चिन्ह लगाकर, भार सम्पूर्ण जनतामें इस बातकी घोषणा करके, राजा उस अपन देशसे निकाल देवे । अथवा खानों म रहनेक लिये आज्ञा देदेवे ॥ ३८ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थे अधिकरणमें आठवा अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय

८४ प्रकरण

सब अधिकारी तथा उनके स्थानोंकी देखभाल ।

समाहर्तृप्रदेष्टारः पूर्वमध्यक्षणांमध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः ॥ १ ॥ सनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वापहरतः शुद्धवधः ॥ २ ॥ फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः फल्गुद्रव्यमुपस्करं वा पूर्वं साहस दण्डः ॥ ३ ॥

समाहर्ता और प्रदेष्टा पहिले अध्यक्ष भार उनके सहकारी पुरषोंकी नियुक्ति करें ॥ १ ॥ जो कर्मचारी खान आदिते बहुमूल्य रत्न आदि तथा चन्दन अगर आदि के कारखानोंसे चन्दन भादिको चुरावे, उन्हें प्राण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ जो पुरुष कपास या साधारण लकड़ी आदि के कारखानों से सारहीन वस्तु का अपहरण करें, तो उन्हें प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥

पण्यभूमिभ्यो वा राजपण्यं मापमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्य-
पहरतो द्वादशपणो दण्डः, आत्रिपादमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥ ४ ॥

जीरा भज्रपायन आदिके राजकीय खेताम जो कर्मचारी, एक माप कीमत से लगाकर ४ माप कीमत तककी इन चीजाको चुरावे, उसे १२ पण दण्डदिया जाय, और उसके आस १॥ पण (८ माप) तक कामतकी वस्तु चुरानपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

आत्रिपादमूल्यादिति पदत्रिंशत्पणः ॥ ५ ॥ आपणमूल्या

दित्यष्टचत्वारिंशत्पणः । ६ ॥ आद्विपणमूल्यादिति पूर्वः साहस-
दण्डः ॥ ७ ॥ आचतुष्पणमूल्यादिति मध्यमः ॥ ८ ॥ आष्टपण-
मूल्यादित्युत्तमः ॥ ९ ॥ आदशपणमूल्यादिति वधः ॥ १० ॥

६ पण (१२ माप) तककी चुरानेपर ३६ पण दण्ड, ॥ ५ ॥ और पूरे
एक पण (१६ माप) तककी चुराने पर ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ इस-
के आगे दो पण मूल्यतककी चुराने पर प्रथम साहस दण्ड ॥ ७ ॥ चार पण
मूल्य तककी चुराने पर मध्यम साहस दण्ड ॥ ८ ॥ आठ पण मूल्यतक की
चुराने पर उत्तम साहस दण्ड ॥ ९ ॥ तथा दश पण मूल्य तककी चुराने पर
प्राण दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

कोष्ठपण्यकुप्यायुधागारेभ्यः कुप्यभाण्डोपस्करापहारोष्वर्धमू-
ल्येष्वेत एव दण्डाः ॥ ११ ॥ कोशभाण्डागाराक्षशालाभ्यश्चतु-
र्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ १२ ॥

गोदाम, दुकान तांबे लोहे आदिके कारखाने तथा शस्त्रागारमें से जो
कर्मचारी बाध माप कर्मतसे लगाकर दो माप कर्मत तककी तांबे आदि
धानुओं, उनसे बनी हुई चीजों तथा छीजन आदिका अपहरण करे, उसको भी
उपर्युक्त १२ पण आदि दण्ड दिये जाय ॥ ११ ॥ कोश, भाण्डागार और अक्ष-
शालासे १/४ माप (१ काकणी) मूल्यसे लगाकर १ माप मूल्य तककी वस्तु
चुरानेपर, उपर्युक्त ये ही द्विगुण अर्थात् २४ पण आदि दण्ड दिये जाय ॥ १२ ॥

चौराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घात इति राजपरिग्रहेषु व्याख्या-
तम् ॥ १३ ॥ घाह्येषु तु प्रच्छन्नमहानि क्षेत्रखलवेशमापणेभ्यः
कुप्यभाण्डमुपस्करं वा मापमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहरतास्त्रि-
पणो दण्डः ॥ १४ ॥

जो राजकर्मचारी, वस्तुओं का स्वयं अपहरण करके चोरोंके द्वारा चुराये
जानेका बहाना करे, उन्हें कष्ट पूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय, इस बात को राज-
परिग्रह प्रकरणमें कहा जाचुका है ॥ १३ ॥ राजकीय क्षेत्र आदिसे अतिरिक्त,
जनताके खेतों, बरयाणों, घरों, और दुकानोंमें से यदि एकमाप मूल्यसे लगा-
कर चारमाप मूल्य तककी कुप्य, भाण्ड आदि वस्तुओंकी चोरी होजवे
तो चुराने वालेको ३ पण दण्ड दिया जाय । अथवा उसकी देहपर अच्छी तरह
गोबर लपेट कर, दियोरा पीटते हुए उसे सारे शहरमें घुमाया जाय ॥ १४ ॥

आद्वियादमूल्यादिति पदपणः ॥ १५ ॥ गोमयभस्मना वा

प्रलिप्यावधोपणम् ॥ १६ ॥ आत्रिपापमूल्यादिति नवंपणः ॥ १७ ॥
 -गौसयमस्मना वा प्रलिप्यावधोपणम् ॥ १८ ॥ शरावमेखलयो
 वा ॥ १९ ॥

३ पण (८ माप) तक कीमतकी वस्तु सुरानेपर ६ पण दण्ड दिया जाय
 ॥ १५ ॥ अथवा गोबरकी राखसे डलका सारा शरीर लपेटकर (काला करके)
 डिंडोरा पीटते हुए सारे शहरमें घुमाया जाय ॥ १६ ॥ ३ पण (१२ माप मूल्य
 तककी वस्तु सुरानेपर ९ पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ अथवा गोबरकी राख-
 से काला शरीर करके डिंडोरेके साथ शहरमें घुमाना ॥ १८ ॥ या एक रस्तीमें शंकोरा
 (कटोरेकी शकलका मट्टीका छोटासा पात्र) पिरोकर, उसे चौरकी कमर अथवा
 गलेमें लटकाकर, चौरको 'दिंडोरा' पीटते हुए शहरमें घुमाया जाय ॥ १९ ॥

आपणमूल्यादिति द्वादशपणः ॥ २० ॥ मुण्डनं प्रव्राजनं
 वा ॥ २१ ॥ आद्विपणमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥ २२ ॥
 मुण्डनमिष्टकाशकलेन प्रव्राजनं वा ॥ २३ ॥ आचतुष्पणमूल्या-
 दिति पदत्रिंशत्पणः ॥ २४ ॥

१ पण (१६ माप) मूल्य तककी वस्तु सुरानेपर १२ पण दण्ड दिया
 जाय ॥ २० ॥ अथवा उसका सिर मूंडकर देशसे बाहर कर दिया जाय ॥ २१ ॥
 २ पण कीमत तककी वस्तु सुरानेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥
 अथवा सिर मुंडवाकर रोड़ोंके साथ देशसे निकाल दिया जाय ॥ २३ ॥
 चारपण कीमत तककी वस्तु सुरानेपर ३६ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

आपञ्चपणमूल्यादित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ २५ ॥ आदशप-
 णमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ॥ २६ ॥ आत्रिंशतिपर्णमूल्या-
 दिति द्विशतः ॥ २७ ॥ आत्रिंशत्पणमूल्यादिति पञ्चशतः ॥ २८ ॥
 आचत्वारिंशत्पणमूल्यादिति सहस्रः ॥ २९ ॥ आपञ्चाशत्पण-
 मूल्यादिति षष्ठः ॥ ३० ॥

५ पण कीमत तककी वस्तुके लिये ४८ पण दण्ड ॥ २५ ॥ १० पण
 कीमत तक प्रथम साहस दण्ड ॥ २६ ॥ २० पण तकके लिये २०० पण दण्ड
 ॥ २७ ॥ ३० पण तकके लिये ५०० पण दण्ड ॥ २८ ॥ ४० पण तकके लिये
 १००० पण दण्ड ॥ २९ ॥ और ५० पण मूल्य तककी वस्तु सुरानेपर प्राग दण्ड
 दिये जाय ॥ ३० ॥

। २९। प्रसन्न दिवा रात्रौ चान्तर्याममेव हरतो ऽर्धमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ ३१ ॥ प्रसन्न दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्यापहरतश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव दण्डाः ॥ ३२ ॥

दिन अधया रातमें रक्षा की जाती हुई वस्तुको बलात्कार अपहरण करनेपर, ३ माप मूल्यकी वस्तुओंसे लेकर ० माप मूल्य तकको चोरीमें पूर्वाह्न ३ पणसे दुगना) अर्थात् ६ पण आदि दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ यदि बलात्कार अपहरण करने वाला पुरुष हथियार मन्द हो, तो ३ माप (१ काकणी) मूल्यकी वस्तु चुरानपर ही ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

कुटुम्बाध्यक्षमुख्यस्वामिनां कूटशासनमुद्राकर्मसु पूर्वमध्यमोत्तमत्रया दण्डाः ॥ ३३ ॥ यथापराधं वा ॥ ३४ ॥ धर्मस्यश्चेद्विदमानं पुरुषं तर्जयति भर्त्सयत्यपसारयत्यभिग्रसते वा पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३५ ॥

यदि कुटुम्बी (साधारण प्रजाजन) गाली कागज या मुहर आदि बनावे तो उस प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३३ ॥ अध्यक्ष (सुवर्णाध्यक्ष आदि) ऐसा काम करे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड, गावका मुखिया करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड और समाहतां करे तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ३३ ॥ अधवा अपराधन अनुसार उचित दण्ड दिया जाय ॥ ३४ ॥ धर्मस्थ (न्याया धारी), यदि अदालतमें मुकदमा पेश करते हुए या अभियोगके मन्वन्धमें कुछ कहते हुए पुरुषको, भगुला दिलाकर डराता है, या धमकाता घुटकता है, या बाहर निकलना देता है, या उससे रिश्वत लेलता है, तो उसे (धर्मस्थको) प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ ३५ ॥

। वाक्यारुप्ये द्विगुणम् ॥ ३६ ॥ पृच्छयं नः पृच्छत्यपृच्छयं पृच्छति पृष्वा वा विसृजति शिक्षयति स्मारयति पूर्वं ददाति वेति मध्यममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३७ ॥

यदि विवाद करते हुए पुरपके प्रति धर्मस्थ कटोर वाक्याका प्रयोग कर (अर्थात् गाली गलाच देवे), तो पूर्वाह्नसे दुगना दण्ड दिया जाय ॥ ३६ ॥ और पूछने योग्य बातोंमें साक्षीसे कुछ नहीं पूछता, न पूछने योग्य बातोंको पूछता है, या पूछकर (बिनाही उत्तरलिये) छोड़ देता है, गवाही देते समय गवाहको सिखराता है, या उसे याद दिलवाता है, या साक्षीके द्वारा जाधी

कही हुई बातको अपनी ओरसे पूरी कर देता है, इस प्रकार व्यवहार करने वाले धर्मस्थ को मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥

देयं देयं न पृच्छत्यदेयं देशं पृच्छति कार्यमदेशेनातिवाहयति छलेनातिहरति कालहरणेन श्रान्तमपवाहयति मार्गापन्नं वाक्यमुत्क्रमयति मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति तारितानुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णाति उत्तममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

विचारणीय वस्तुके लिये अत्युपयोगी साक्षीसे तो कुछ नहीं पूछता और अनुपयुक्त साक्षीसे पूछता है, विनाही साक्षीके किसी झगड़ेका निपटारा कर देता है, सरपचादी साक्षीको भी कण्टकपूर्ण वाक्योंसे अपराधी बना देता है, व्यर्थ समय बितानेसे साक्षीको थक कर हटा देता है, साक्षीके क्रमपूर्वक वाक्योंको भी उलटपुलट कहता है, साक्षियोंको बीच-बच म सहायता देता है, विचारपूर्वक निर्णीत बातको फिर विचार करनेके लिये उपस्थित करता है, ऐसे न्यायाधीश को उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥

पुनरपराधे द्विगुणं म्यानाद्वयपरोहणं च ॥ ३९ ॥ लेखक-श्रेयुक्तं न लिखत्यनुक्तं लिखति दुरुक्तमुपलिखति सूक्तमुद्धिसत्य-धोत्पत्तिं विकल्पयतीति पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ४० ॥ यथापराधं वा ॥ ४१ ॥

दुबारा वही अपराध करनेपर दुगुना दण्ड दिया जावे, और पदश्रुत पर दिया जावे ॥ ३९ ॥ लेखक (मुहरिर) यदि कही हुई बातको नहीं लिखता, न कही हुई को लिख लेता है, सुठी तरह कही हुई को अच्छी तरह करके लिख लेता है, और अच्छी तरह कही हुई को सुठी तरह करके लिखता है, या बातके सारपर्यको बदल देता है, उसे प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ४० ॥ अथवा अपराधके अनुसार उचित दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

धर्मस्थः प्रदेष्टा वा हेरण्यमदण्ड्यं क्षिपति क्षेपद्विगुणमस्मै दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥ हीनातिरिक्ताष्टगुणं वा शरीरदण्डं क्षिपति शरीरमेव दण्डं भजेत् ॥ ४३ ॥ निष्क्रयद्विगुणं वा ॥ ४४ ॥

धर्मस्थ अथवा प्रदेष्टा यदि किसी निरपराधीको सुवर्ण दण्ड देवे, तो उससे दुगुना दण्ड इनको (धर्मस्थ और प्रदेष्टाको) दिया जावे ॥ ४२ ॥ यदि उचित दण्डसे कम या अधिक दण्ड अपराधीको देवे, तो उन्हें दिये हुए (कम या अधिक) दण्डका आठगुना दण्ड दिया जावे । और शारीरिक दण्ड देनेपर

उसको भी वही शारीरिक दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ यदि उस शारीरिक दण्डके बदलेमें कोई धनदण्ड देदेवे, तो उसका दुगुना दण्ड (धर्मस्थ आदिको) होना चाहिये ॥ ४४ ॥

यं वा भूतमर्थं नाशयत्यभूतमर्थं करोति तददृष्टगुणं दण्डं दद्यात् ॥ ४५ ॥ धर्मस्थीयाचारकान्निस्तारयतो वन्धनागाराच्छ-
र्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधवन्धनेषु त्रिषणोत्तरा दण्डाः कर्तुः
कारयितुश्च ॥ ४६ ॥

न्याय्य (उचित) अर्थको (धनको) नाश करने, और अन्यायको संग्रह करनेपर, उस (नष्ट या संगृहीत) धन राशिमें आठ गुना दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥ धर्मस्थके द्वारा निर्दिष्ट की हुई हवालातसे यदि कोई (निरीक्षक राज-पुरष) घूस लेकर अपराधीको बाहर निकालनेकी आज्ञा (घूषने फिरनेके लिये) दे, या जल अथवा हवालातमें सोने, बँडने, खानेपीने और मलमूत्र त्यागना प्रबन्ध करे, या करावे, तो उसे उत्तरोत्तर ३ पण अधिक दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥

चारकादभियुक्तं मुञ्चतो निष्पातयतो वा मध्यमः साहसद-
ण्डो ऽभियोगदानं च ॥ ४७ ॥ वन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च ॥ ४८ ॥
वन्धनागाराध्यक्षस्य संरुद्धकमनाख्याय चारयतश्चतुर्विंशतिपणो
दण्डः ॥ ४९ ॥ कर्म कारयतो द्विगुणः ॥ ५० ॥

यदि कोई राजपुरष किसी अपराधीको वन्धनागार (हवालात) से छोड़ देवे, अथवा चचे जाने के लिये प्रेरणा करे, तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय । और उस अपराधीने जितना देना था, वह भी उसको अदा करना पड़े ॥ ४७ ॥ यदि कोई प्रवेष्टाके वन्धनागार (जेलघाने) में किसी अपराधीको छोड़ देवे, तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त करला जाय, और उसे प्राण दण्ड देदिया जावे ॥ ४८ ॥ कैदीको जेलरबी बिना आज्ञा बाहर घुमानेमें २४ पण दण्ड ॥ ४९ ॥ और यह काम करवानेवाले व्यक्तिको दुगुना अर्थात् ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥

स्थानान्यत्वं गमयतो ऽन्नपानं वा रुन्धतः पण्णवतिर्दण्डः
॥ ५१ ॥ परिच्छेद्यत उत्कोटयतो वा मध्यमः साहसदण्डः
॥ ५२ ॥ घतः साहसः ॥ ५३ ॥ परिगृहीतां दासीमागतिकां
वा संरुद्धिकामधिचरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५४ ॥

यदि कैदीकी जगह बदले, या उसके खानेपीनेमें रक़ावट डाले, तो उसे ५१ पण दण्ड ॥ ५१ ॥ और उसको कोई भाँडे मारकर दु ख देवे, या त्विन्नत

दिलवावे तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५२ ॥ कैदीका बध कर देनेपर १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ ५३ ॥ खरीदी हुई या गिरवी रखी हुई दासी यदि किसी अपराधके कारण कैद होजाये, उसके साथ जेलमें दुराचार करनेपर (करनेवाले राजपुरुषको) प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥

चोरडामरिकभार्या मध्यमः ॥ ५५ ॥ संरुद्धिकामार्यामुत्तमः ॥ ५६ ॥ संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः ॥ ५७ ॥ तदेवाक्षुण्णगृहीता-
यामार्यायां विद्यात् ॥ ५८ ॥

चोर और डामरिक (अकस्मात् नष्ट हुआ २ पुरुष) की भार्याके साथ ऐसा करनेपर मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५५ ॥ कैद हुई २ कुलीन स्त्री (भार्या) के साथ ऐसा करनेपर उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५६ ॥ यदि जेलमें ही कोई कैदी ऐसा दुराचार करे, तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ५७ ॥ भयक्ष (सुवर्णाभ्यक्ष आदि) यदि कुलीन स्त्रीके साथ ऐसा करे तो उसे भी प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ५८ ॥

दास्या पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५९ ॥ चारकमभित्वा निष्पा-
तयतो मध्यमः ॥ ६० ॥ भित्वावधः ॥ ६१ ॥ बन्धनारागात्स-
र्वसं बधश्च ॥ ६२ ॥

दासीके साथ ऐसा करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५९ ॥ धर्मस्थके बन्धनागार (चारक) को बिनाही तोड़े, यदि कैदीको कोई बाहर निकाल देवे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६० ॥ यदि तोड़कर निकाले तो प्राण दण्ड ॥ ६१ ॥ यदि प्रदेशके जेलखाने,से निकाले तो उसकी मारी जायदाद जन्त करके प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ६२ ॥

एवमर्थचरान्पूर्व राजा दण्डेन शोधयेत् ।

शोधयेयुश्च शुद्धार्थैः पौरजानपदान्द्रमैः ॥ ६३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे सर्वाधिकरणरक्षण नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदित्य पञ्चमीति ॥ ८६ ॥

राजा इस प्रकार पहिले अपने कर्मधारियोंको दण्डके द्वारा ठीक रमायं पर चलावे । फिर नियमानुसार व्यवहार करनेवाले राजकीय कर्मचारी दण्डके द्वारा नगर वा प्रान्तमें रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजाको ठीक २ रातेपर लावे ॥ ६३ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें नौवा अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

८५ प्रकरण ।

एकाङ्गवध और उसका निष्क्रय ।

तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमे उपराधे संदंशच्छेदनं चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः ॥ १ ॥ द्वितीये छेदनं पणस्य शतयो दण्डः ॥ २ ॥

तीर्थोंपर वध आदि घुसनेवाले (उडाईगीर, उचके), गंडकटे, आर छत फोड़नेवाले पुरपोंका अगुठा और कनी (फनिटिका) अगुली कटवादी जावे, अथवा ५४ पण दण्ड दिया जाय । (अगुलोंछेदनका ५४ पण निष्क्रय है, अर्थात् यातों अगुली काटी जावे, या उसके बदलेमें ५४ पण दण्ड दिया जाय, इसी तरह भागे भी सब जगह समझना चाहिये ।) ॥ १ ॥ बृसरीवार फिर अपराध करनेपर सब अगुली काटदीं जावे, अथवा १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥

तृतीये दक्षिणहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ ३ ॥ चतुर्थे यथाकामी वधः ॥ ४ ॥ पञ्चविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जार-श्वस्रकरस्तेषु हिंसायां वा चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ नासाग्रच्छेदनं वा ॥ ६ ॥ चण्डालारण्यचराणामर्धदण्डाः ॥ ७ ॥

तीसरीवार अपराध करनेपर दहिना हाथ काट दिया जावे, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ चौथीवार फिर अपराध करनेपर इच्छानुसार (शुद्ध या चित्र) प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥ २५ पणसे कम कीमतके मुर्गों, नकुल, बिलाय, कुत्ते और सूअर घुरालेने तथा मार देनेपर ५४ पण दण्ड देना चाहिये, अथवा उसकी नाकका अगला हिस्सा काट देना चाहिये ॥ ५ ॥ यदि मुर्गों आदि किसी चण्डालके हों, अथवा जगली हों, तो उप-सुक्त दण्डसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

पाशजालकूटापपातेषु बद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्याना-मादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ८ ॥ मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शतयो दण्डः ॥ ९ ॥ निम्ननिहारमृगपक्षिस्तेषु हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥

फदा, जाल और गोरे खोदकर उनपर घासफूस आदि बिछाकर उनके द्वारा पकड़े जाने वाले, राजकीय मृग, अन्य पशु, पक्षी, हिंसकीय और मछ

लियाँको जो लेवे पकड़े वह उनकी कीमत भरे और उतनाही दण्ड देवे ॥ ८ ॥ सुरक्षित जगलके जानवरोंको तथा लकड़ी आदिको जो चुरावे उसे १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ९ ॥ विचित्र रंगकी सुन्दर चिड़ियाओं, घरेके सुन्दर हरियों और तोते आदि पक्षियोंको जो चुरावे, या मारडाले उसे २०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शत्या दण्डः
॥ ११ ॥ स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः ॥ १२ ॥ कृपिद्रव्यापहारे
च ॥ १३ ॥

बड़े आदि मोटा काम करने वालों, होशियार कारीगरों, कर्षकों और तपस्वियोंकी कोई छोटी वस्तु चुरानेपर चारको १०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ११ ॥ और बड़ी चीजें चुराने पर २०० पण ॥ १२ ॥ खेती करनेके साधन हल आदि चुरानेपर भी २०० पण दण्ड देना चाहिए ॥ १३ ॥

दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारच्छिद्राद्वा निक्षेपं गृही-
त्वापसरतः कन्धरावधौ द्विशतो वा दण्डः ॥ १४ ॥

जिसको किले में घुसने का अधिकार नहीं है यदि वह वहाँ प्रवेश करे अथवा परकोटे की दीवार तोड़कर माल लकर भाग, उसके परके पीछेकी दो मुख्य नसें बटवादी जावे, अथवा २०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

चक्रयुक्तं नायं क्षुद्रपशुं वापहरत एकपादवधः त्रिशतो वा
दण्डः ॥ १५ ॥ कृटकाकण्यक्षारालाशलाकाहस्तापिमकारिण
एकहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १६ ॥

चक्रयुक्त (धन शास्त्र अथवा धन्य विशेषसे युक्त) नायको, या छोटेसे पशुको जो चुरावे, उसका एकपैर काट दिया जावे, अथवा ३०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ जाली कौडा, पासे, भरला (चमड़ेकी बनी हुई चीकड़ी); और शलाका (ये सब चीजें जुआ खेलनेमें काम आती हैं, पूरा समाह्वय अध्याय देखो) बनाने वाले, तथा अन्य हाथकी बुराई करने वाले पुरुषका एक हाथ काट दिया जावे, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

स्तेनपारदारिकयोः साचिव्यकर्मणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च
कर्णनासाच्छेदनं पञ्चशतो वा दण्डः ॥ १७ ॥ पुंसो द्विगुणः
॥ १८ ॥ महापशुमेकं दासं दासीं वापहरतः प्रेतभाण्ड वा वि-
क्रीणानस्य द्विपादवधः पट्टहतो वा दण्डः ॥ १९ ॥

चोर और व्यभिचारियोंके दूतपनेका काम करनेवाली छिपोंके कान नाक काट लिये जावें, अथवा ५०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ यदि पुरष पेसा करे तो उसे दुगना अर्थात् १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ गाय भैस आदि षडे पशुको, एक दास या दासीको जो चुरावे, अथवा गुर्दके घल आदिको (मृतभाण्ड) बेचे, उसके दोनों पैर काट दिये जाय, अथवा ६०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥

वर्णोत्तमानां, गुरुणां च हस्तपादलहने राजयानवाहनाद्या-
रोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः ॥ २० ॥ शूद्रस्व-
ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्त्रुणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रमे-
दिनश्च योगाञ्जनेनान्वत्वमष्टशतो वा दण्डः ॥ २१ ॥

अपनेसे उन्नत वर्णके किसी व्यक्तिको तथा गुरुजनोंको जो हाथपर आदिसे मारे, अथवा राजाकी सगरी या छोड़े आदिपर चड़े, उसका एक हाथ और एक पैर काट दिया जावे, अथवा ७०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ जो शूद्र अपने भाँगको माक्षण बतलावे, और देवताके उद्देश्यसे दिये हुए द्रव्यका अपहरण करे, तथा जो भयिष्यमें राजाके अनिष्टको (ज्योतिषी बनकर) बनावे अथवा बगावत करे, या किसीकी दोनों आँखें फोड़ देवे, ऐसे व्यक्तिको औपधियोंका सुरमा लगाकर अन्धा कर दिया जावे, अथवा उसे ८०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

चोरं पारदारिकं वा मोक्षयतो राजशासनमूनमतिरिक्तं वा
लिखतः कन्यां दासीं वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो
विमांसविक्रयिणश्च वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः ॥ २२ ॥

चोर या विभचारीको छोड़ देनेवाले, राजाकी आज्ञाको कम या अधिक करके लिखनेवाले, कन्या या दासीको आभूषण आदिके सहित चुरानेवाले, छलकपटका व्यवहार करनेवाले, अमध्य पशुओंका मांस बेचनेवाले पुरुषका बायाँ हाँथ और दोनों पैर काट दिये जावें, अथवा ९०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥

मानुपमांसविक्रये वधः ॥ २३ ॥ देवपशुप्रतिमामनुष्यक्षेत्र-
गृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उन्नमो दण्डः शुद्धवधो वा ॥ २४ ॥

आदमीका मांस बेचनेमें प्राण दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ देव सम्बन्धी पशु, प्रतिमा, मनुष्य, श्वेत, पर, हिरण्य, सुवर्ण रत्न और अन्न इन नौवस्तुओं

को जो व्यक्ति पुरावे, उसे उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय, अथवा उसको बिना किसी अन्य क्लेशके प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम् ।

अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीक्ष्य च ॥ २५ ॥

उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेष्टा दण्डकर्मणि ।

राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरास्थितः ॥ २६ ॥

इति कण्ठकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे एकाङ्कवधानिष्कयो द्वादशो ऽध्यायः ॥ १० ॥

आदित सप्ताशीति ॥ ८७ ॥

प्रदेष्टाको चाहिये कि यह, राजा और अमायोंके मध्यमें रहता हुआ, दण्ड देनेके समयमें पुरुषको उसके अपराधको अपराधके कारणोंको, आदमीकी छोटी बड़ी हैमियतको, भविष्यमें तथा उस समयमें, होनेवाले परिणामको, देश और कालको अच्छी तरह सोचविचार लेवे । फिर उत्तम, मध्य तथा मध्यमसाहस आदि दण्डोंको न्यायानुसार देवे ॥ २५ २६ ॥

कण्ठकशोधन चतुर्थे अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

८६ प्रकरण ।

शुद्ध और चित्र दण्ड ।

कलहे मृतः पुरुषं चित्रो घातः ॥ १ ॥ सप्तराजस्यान्तर्घृते
शुद्धवधः ॥ २ ॥ पक्षस्यान्तरुत्तमः ॥ ३ ॥ मासस्यान्तः पञ्चशतः
समुत्थानव्ययश्च ॥ ४ ॥

लडाई झगड़ेमें जो पुरुष दूसरे आदमीको जानसे मारदे, उसको कष्टपूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय । (अर्थात् उसे दुख दे कर मारा जाय, यह चिघवध कहता है, जिस घषके पूरे कोई अन्य कष्ट न दिया जाय उसे शुद्ध वध कहते हैं) ॥ १ ॥ झगड़ेमें मारते २ यदि हतनी घोट पहुँचावे, कि यह पुरुष सात दिनतक मरजावे, तो मारनेवालेको शुद्ध प्राण दण्ड दिया जाये ॥ २ ॥ यदि १५ दिनके बाद मरे तो उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ एक महीनेके बाद मरे, तो ५०० पण दण्ड, और उसकी चिकित्सा आदिका सम्पूर्ण व्यय देवे ॥ ४ ॥

शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः ॥ ५ ॥ मदेन हस्तवधः ॥ ६ ॥

मोहेन द्विशतः ॥ ७ ॥ घघे यघः ॥ ८ ॥ प्रहारेण गर्भं पातयत
उत्तमो दण्डः ॥ ९ ॥ मेषज्येन मध्यमः ॥ १० ॥ परिक्लेशेन
पूर्वः साहसदण्डः ॥ ११ ॥

। यदि हथियारसे प्रहार करे, तो उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥
यदि अपने बलके घमण्डसे प्रहार करे, तो हाथ काट दिया जावे ॥ ६ ॥
क्रोधके कारण प्रहार करे तो उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ जानसे
मार देनेपर हथियारको प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ८ ॥ चोट लगाकर गर्भ गिराने
वाले, पुरषको उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥ औपधिके द्वारा गर्भ
गिरानेपर मध्यमसाहस दण्ड ॥ १० ॥ और कठोर काम करानेके द्वारा गर्भ
गिरानेपर प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ११ ॥

प्रसभस्त्रीपुरुषघातकाधीसारकनिग्राहकावधोपकावस्वन्दकोप-
वेधकान्पथि वेश्मप्ररोधकात्राजहस्त्यश्वरथानां हिंसकान्स्तेनान्वा
शूलानारोहयेयुः ॥ १२ ॥ यश्चैनान्दहेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं
लभेत साहसमुत्तमं वा ॥ १३ ॥

बलात्कार स्त्री या पुरषको हत्या करनेवाले, बलात्कारसे स्त्रीको उठा
ले जानेवाले, बलात्कार जनताके नाक या कान आदि काट देनेवाले, "मैं हत्या
करूंगा, चोरी करूंगा" इस प्रकारकी घोषणा करनेवाले, बलात्कार नगर और
ग्रामोंसे द्रव्यापहरण करनेवाले, स्या भीत आदि फोड़कर संध लगानेवाले,
पुरषोंको, और मार्गकी धर्मशालाओं तथा श्याकुओंमें चोरी करनेवाले, राजाके
हाथी, घोड़े और रथोंको नष्ट करने मारने या चुरानेवाले पुरषोंको, शूलीपर
पड़ाकर मार दिया जावे ॥ १२ ॥ शूलीपर चढ़ाकर मारे हुए इन पुरषोंका जो
दाहसंस्कार करे या उड़ाकर लेजावे, उसे भी यही दण्ड, अथवा उत्तमसाहस
दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥

हिंस्रस्तेनानां भक्तवासोपकरणाग्निमन्त्रदानवैयावृत्यकर्मसूतमो
दण्डः ॥ १४ ॥ परिभाषणमाविज्ञाने ॥ १५ ॥ हिंस्रस्तेनानां
पुत्रदारमसमन्त्रं विसृजेत्समन्त्रमाददीत ॥ १६ ॥

जो पुरुष, घातक और चोरोंको अन्न, निवासस्थान, पक्ष आदि अन्य
सामान, अग्नि और सलाह देके, तथा उनके पास नौकरी करे, तो उन्हें उत्तम
साहस दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ यदि यह मालूम न हो कि ये घातक या
चोर हैं, तो केवल यागदण्ड दिया जावे । अर्थात् उलाहता आदि देकर उन्हें

समझा दिया जाये ॥ १५ ॥ घातक और चोरोंके लडकों तथा क्षियोंको यदि वे चोरी और हत्याकी सलाहमें शामिल न हों, तो निःपराध समझकर छोड़ दिया जाये । यदि सलाहमें शामिल हों, तो गिरफ्तार करके उचित दण्ड दिया जाये ॥ १६ ॥

राज्यकामुकमन्तः पुरप्रधर्षकमटव्यमिन्द्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत् ॥ १८ ॥

राज्यकी कामना करनेवाले, भन्त पुरमें प्रवेश डालनेवाले, भटवचिर पुलिन्द आदिको तथा अन्य शत्रुओंको उभारनेवाले, किले तथा बाहरकी सेनाको राजासे दुपित करा देनेवाले, पुरपाको उनके सिर और हाथपर जलता हुआ अगारा रखकर कण्ड करवा दिया जाये ॥ १७ ॥ यदि ऐसा काम करनेवाला कोई ब्राह्मण होवे, तो उसे आजीवन कालकौठरीमें बन्द करदे ॥ १८ ॥

मातृपितृपुत्रभ्राजाचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्छिरःप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १९ ॥ तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः ॥ २० ॥ अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः ॥ २१ ॥

माता पिता, पुत्र, भाई, आचार्य और तपस्वीकी हत्या करनेवाले पुरुषको उसके सिरकी खाल उतरवाकर उसपर आग जलाकर कतल करवा देये ॥ १९ ॥ माता पिता आदिको गाली देनेपर जीभ कटवा देवे ॥ २० ॥ और वह माता आदिके जिस किसी अङ्गको अपन नाखून आदिसे नूँच खसोटे, वही अङ्ग उसका कटवा दिया जाय ॥ २१ ॥

यदृच्छाघाते पुंसः पशुयूथाऽश्वस्तेये च शुद्धवधः ॥ २२ ॥ दशावर च यूयं विद्यात् ॥ २३ ॥ उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमज्जनम् ॥ २४ ॥ अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ भग्नोत्सृष्टकं मध्यमः ॥ २६ ॥

जो किसी पुरुषको अचानक मार देवे, अथवा पशुओंके झुण्ड या घोड़ोंको चुरालेवे, उसे शुद्ध प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ कमसे कम दस पशुआका एक झुण्ड यदा समझना चाहिये ॥ २३ ॥ जलको रोकनेवाले सेतु (बांध) को जो तोड़े, उसे वहीं जलम डुबाकर मार दिया जाय ॥ २४ ॥ यदि भिनाक्षी जलके सेतु बना हुआ हो, तो उसे तोड़नेवाले पुरुषको उत्तमसाहस दण्ड दिया जाये ॥ २५ ॥ यदि वह पहिलेसेही हवाफूटा पडाहो और फिर उसे तोड़े तो मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ २६ ॥

विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषमीमपः प्रवेशयेदगर्भिणीम्
॥ २७ ॥ गर्भिणीं मासावरप्रजातां पतिगुरुप्रजाघातिकामप्रिवि-
पदां संधिच्छेदिकां वा गोभिः पाटयेत् ॥ २८ ॥

किसीको विष देकर मारनेवाले पुरुषको, और पुरुषकी हत्या करनेवाली स्त्रीको जलमें डुबाकर मार दियो जावे, परन्तु वह स्त्री गर्भिणी न हो ॥ २७ ॥ अगर गर्भिणी हो, तो बच्चा होनेके कर्मसे कम एक महीने बाद डुबाकर मार दी जावे । और अपने पति, गुरु तथा बच्चेकी हत्या करनेवाली, भाग लगाने-वाली, विष देनेवाली, तेंथों संध लगाकर चोरी करनेवाली स्त्रीको गोओंके पीरोंके नीचे कुचलवाकर मार दिया जावे ॥ २८ ॥

विधीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमाग्निना दाहयेत्
॥ २९ ॥ राजाक्रोधशकमन्त्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य ब्राह्मणमहानसा-
वलेद्दिनश्चजिह्वामुत्पाटयेत् ॥ ३० ॥ प्रहरणावरणस्तेनमनायुधीयमि-
षुर्मर्घातयेत् ॥ ३१ ॥

धरागाह, खेत, खत्यान, घर, छकड़ियोंके, तथा हाथियोंके सुरक्षित जंगलोंमें भाग लगाने वाले पुरुषको अग्निमें जला दिया जाय ॥ २९ ॥ राजाको गाली देनेवाले, गुप्त रहस्यको खोल देनेवाले, राजाके अनिष्टको फैलाने वाले, तथा ब्राह्मणकी पाकशालासे बलात्कार अन्न लेकर खानेवाले पुरुषकी जिह्वा कटवा दी जाय ॥ ३० ॥ जो हथियारसे अपनी आजीविका न करता हो, ऐसा पुरुष यदि हथियार और कवच आदि घुरावे, तो उसे सामने खड़ा करके धागों से मरवा देना चाहिए ॥ ३१ ॥

आयुधीयस्योत्तमः ॥ ३२ ॥ मेढूफलोपघातिनस्तदेव छेद-
येत् ॥ ३३ ॥ जिह्वानासोपघाते संदेश्वधः ॥ ३४ ॥

यदि वह हथियारोंसे आजीविका करता हो, तो उसे उत्तम साहसदंड दिया जावे, ॥ ३२ ॥ यदि कोई किसीकी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश काट डाले, तो उसकेभी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश कटवा दिये जावें ॥ ३३ ॥ किसीकी जिह्वा और नासिका कण्ट देने पर, कानटने वाले पुरुषकी कनी (कनिष्ठिका) अंगुली और अंगूठा कटवा दिया जाय ॥ ३४ ॥

एते शास्त्रेष्वनुगताः क्लेशदण्डा महात्मनाम् ।

अकृष्टानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्मृतः ॥ ३५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे अधिकरणे शुद्धवधश्च दण्डकल्प एकादशो

ऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो ऽष्टाशीतिः ॥ ८८ ॥

करे, उसका हाथ काट दिया जाय, अधोया ४०० पण दण्ड दिया जाय, और सगाईका (शुल्क) धन उससे घसूल किया जावे ॥ ७ ॥ सात मासिक धर्म होने तकभी यदि सगाई की हुई कन्याका विवाह न किया जावे, तो उसका भावी पति, उस कन्याको यथेच्छ भोग सकता है ॥ ८ ॥ और यह उस कन्या के पिताको हर्जानामी न देवे ॥ ९ ॥ क्योंकि यह पिता मासिक प्रत्यु धर्मरूपी सरकारीके कारण, लक्ष्मीके स्वामित्वसे हटादिया गया है । अर्थात् ऐसी अवस्था में लक्ष्मीपर उसका कोई स्वत्व नहीं रह जाता ॥ १० ॥

त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः ॥ ११ ॥ ततः परमतुल्यो ऽप्यनलंकृतायाः ॥ १२ ॥ पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेत ॥ १३ ॥

यदि तीन वर्षतक मासिक धर्म होनेपरभी कन्या न विवाही जावे, तो उसकी जातिका कोई भी पुरुष उसके साथ सग कर सकता है इसमें कोई दोष नहीं । (अर्थात् वह पुरुष उसको अपने पास रख सकता है) ॥ ११ ॥ यदि मासिक धर्म होतेहुए तीन वर्षे अधिक गुजर जाय, तो भिन्न जातिका पुरुषभी उसको अपनी स्त्री बना सकता है, इसमें कोई दोष नहीं, परन्तु वह पुरुष, लक्ष्मीके पिताके मनवाये हुए आभूषण आदि, तथा अन्य द्रव्य, उस लक्ष्मीके साथ नहीं ले जा सकता ॥ १२ ॥ यदि वह उसके (कन्याके) पिताके द्रव्यको उसे (पिताको) न लौटावे तो चोरीका दण्ड पावे ॥ १३ ॥

परमुद्दित्रयान्यस्य चिन्दतो द्विशतो दण्डः ॥ १४ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ १५ ॥ कन्यामन्यां दर्शयित्वा न्यां प्रयच्छतः शतयो दण्डस्तुल्यायाम् ॥ १६ ॥ हीनायां द्विगुणः ॥ १७ ॥

दूसरेके लिये कही हुई कन्याको, 'वह पुरुष में ही है' ऐसा कहकर जो अन्य पुरुष विवाहता है, उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ स्त्रीकी कामना न होनेपर कोई भी पुरुष यथेच्छ भोग न करे, ॥ १५ ॥ एक कन्याको पहिले दिखला कर विवाहके समय उसी जातिकी दूसरी कन्याको देवे, तो १०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १६ ॥ यदि हीन जातिकी कन्याको देवे तो २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥

प्रकर्मण्यनुमार्याश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १८ ॥ शुल्क-
न्ययकर्मणी च प्रतिदद्यात् अवस्थाय ॥ १९ ॥ तज्जातं पश्चात्कृता
द्विगुणं दद्यात् ॥ २० ॥

जो पुरुष अतथोनि स्त्रीका अक्षतथोनि कहकर दूसरी धार विवाह करदे,

उसे ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ और शुक्र तथा विवाहमें हुए खर्चको विवाह करने वाले पुरुषके पास छोटादे ॥ १९ ॥ यदि फिर तीसरी धारणी वह अक्षत योनि कहकर विवाह करे, तो पहलेसे दुगना अर्थात् १०८ पण उसे गुरमाना किया जाय ॥ २० ॥

अन्यशोणितोपधाने द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ मिथ्याभिज्ञं सिन्धुं पुंसः ॥ २२ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च जीयते ॥ २३ ॥

योनिक्षीणता दिखलानेके लिये, दूसरेका रधिर अपने कपड़ोंपर लगाने वाली स्त्रीको २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥ और झूठ बोलने वाले पुरुषको भी (अर्थात् जो अक्षत योनि स्त्रीको क्षत योनी बताये) यही (२०० पण) दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ तथा शुक्र और विवाहका खर्चभी उससे दिलवाया जाय ॥ २३ ॥

न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ २४ ॥ स्त्री प्रकृता सकामा समाना द्वादशपणदण्डं दद्यात् ॥ २५ ॥ प्रकर्त्री द्विगुणम् ॥ २६ ॥

स्त्रीकी इच्छाके विरुद्ध उसे कोई नहीं भोग सकता ॥ २४ ॥ कामना रखती हुई समान जातिकी स्त्रीको यदि कोई क्षतयोनी करदेवे, तो वह स्त्री १२ पण गुरमाना देवे ॥ २५ ॥ यदि वह स्त्री स्वयंही अपनी योनिको क्षीण कर लेवे, तो उसे दुगना अर्थात् २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २६ ॥

अकामायाः शतयो दण्ड आत्मरगार्थं शुल्कदानं च ॥ २७ ॥ स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ बहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिज्ञं सने च द्विगुणो दण्डः ॥ २९ ॥

पुरुषकी कामना न रखती हुई भी स्त्री केवल थोड़ी देरकी अपनी खुशीके लिये, किसी पुरुषसे अपनी योनि क्षीण कराती है, तो वह १०० पण दण्ड देवे, और उस पुरुषको फीस देवे ॥ २७ ॥ जो स्त्री अपनी इच्छासे संग करती है, वह राजदासियोंमें होजाये ॥ २८ ॥ गाँवके बाहर विजन स्थानमें संग करनेपर स्त्रीको दुगना अर्थात् २४ पण, और पुरुषको 'मैंने संग नहीं किया' इस प्रकार झूठ बोलनेपर दुगना दण्ड दिया जाय ॥ २९ ॥

प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः ॥ ३० ॥ ससुवर्णासुत्तमः ॥ ३१ ॥ बहूनां कन्यापहारिणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ ३२ ॥

यलारकार कन्या अपहरण करने वाले पुरुषको २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३० ॥ यदि वह स्वर्णके आभूषण आदिले युक्त हो, तो अपहरण करने

रक्षापुरप हिरण्यकी रिश्वत लेकर उम जार पुरपको छोड देवे, तो उसे लिपहृष्ट हिरण्यसे ८ गुणा दण्ड दिया जाय ॥४३॥

केशाकेशिकं संग्रहणमुपलिङ्गनाद्वा शरीरोपभोगानां तज्जा-
तेभ्यः स्त्रीवचनाद्वा ॥ ४४ ॥

किसी स्त्रीका दूसरे पुरप के साथ फसा होना, निम्न लिखित रीतिसे जाना जासकता है — एक वृत्तरेके केश आदि पकड़कर फीजाती हुई कामक्रीडाको देखनेसे, या कामके उद्योगन चन्दन आदिका शरीरपर लेप करनेसे, या काम सम्बन्धी इशारोंको जानने वाले पुरपाके द्वारा, या स्त्री जब स्वयं कह देवे ॥ ४४ ॥

परचक्राटवीहृतामोघप्रव्यूढामरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां प्रेत-
भावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथामंभापितं समुपभुञ्जीत
॥ ४५ ॥

कोई पुरप, शत्रुओं या जगलियोंके द्वारा अपहरण की हुई, नदी प्रवाहमें बहती हुई, जगलोंमें अथवा दुर्भिक्षके समयमें त्यागी हुई, रोग या मूर्च्छाके कारण मरी हुई समझ कर छोडी हुई पराई स्त्रीको भी इन सारी आपत्तियोंस उद्धार करके, दोनोंकी सहाह होने पर अच्छी तरह भोग सकता है ॥ ४५ ॥

जातिविशिष्टामक्रामपत्यवतीं निष्क्रयेण दद्यात् ॥ ४६ ॥

यदि वह स्त्री उच कुलका हो, समान जाति होनेपर भी उद्धार कर्ता पुरपकी कामना न करे, और घालबघालाहो, तो उसके पतिसे अपने परिश्रम (आपत्तिसे उद्धार करने)का उचित पुरस्कार लेकर उसे, उसके मालिकको देदेवे ॥ ४६ ॥

चौरहस्तान्नादीयेगाद्दुर्भिक्षादेशविभ्रमात् ।

निस्तारयित्वा कान्तारान्नष्टां त्यक्तां मृतेति वा ॥४७॥

भुञ्जीत स्त्रियमन्यैर्पां यथासंभापितं नरः ।

न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वजनेन वा ॥ ४८ ॥

न चोत्तमां न चाकामां पूर्वापत्यवतीं न च ।

ईदृशी चानुरूपेण निष्क्रयेणापवाहयेत् ॥ ४९ ॥

इति कण्टकशोधने ऋतुयं अधिकरणे वन्याप्रकर्म द्वादशो अध्याय ॥ १२ ॥

आदित एवैनवति ॥ ८९ ॥

घोरोंके हाथसे, नदी प्रवाहसे, दुर्भिक्षसे बचाकर और जंगलोंमें भटकती हुई 'तथा मरगईहै' ऐसा समझकर छोड़ी हुई पराई स्त्रीकोभी आपत्तिसे रक्षा करके दोनोंकी सलाह होनेपर कोई पुरुष भोग सकता है । परन्तु राजाके प्रोध अथवा अपने जनोंसे त्यागी हुई स्त्रीको, कुलीन, कामना रहित और बाल्यघों वाली स्त्रीको आपत्तिसे छुटानेपरभी कोई पुरुष उपभोग नहीं कर सकता, प्रत्युत अनुरूप पुरस्कार लेकर इस प्रकारकी स्त्रीको उनकेधर भिजवावे ॥४७ ४९॥
कण्टकशोधन चतुर्थ अधि.करणमें चारहवां अध्याय समाप्त

तेरहवां अध्याय

८८ प्रकरण

अतिचार दण्ड

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा ग्रासयत उत्तमो दण्डः ॥ १ ॥ क्षत्रियं मध्यमः ॥ २ ॥ वैश्यं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥

जो पुरुष, किसी ब्राह्मणको अभक्ष्य या अपेय वस्तु खिलावे पिलावे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि क्षत्रियको खिलावे पिलावे तो मध्यम साहस दण्ड ॥२॥ और वैश्यको खिलाने पिलानेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥

शूद्रं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ४ ॥ स्वयंग्रसितारो निर्विपयाः कार्याः ॥ ५ ॥ परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः साहसदण्डः ॥ ६ ॥ रात्रौ मध्यमः ॥७॥ दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥

तथा शूद्रको खिलाने पिलानेपर ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मण आदि स्वयंहीं अभक्ष्य अपेय खावे पीवे तो उन्हें वेदासे बाहर करदिया जाय ॥ ५ ॥ जो पुरुष दिनमें ही किसी दूसरेके घरमें घुसे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ रात्रिमें प्रवेश करनेपर मध्यम साहस दण्ड ॥ ७ ॥ और रात अथवा दिनमें हथियार लेकर प्रवेश करनेपर उत्तम साहस दण्डदिया जाय ॥ ८ ॥

भिक्षुकर्देहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिकृष्टाः प्रवृत्त-
प्रवेशाश्चादण्ड्या अन्यत्र प्रतिपेधात् ॥९॥ स्ववेशमनो ऽपि रात्रा-
दूर्ध्वं परियार्यमारोहतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥

भिखारी और फेरी लगानेवाले, मद्रिता पीने और उन्माद रोगसे पागल हुए २ बलात्कार, बन्धुबान्धव और मित्र आदि आपत्तिमें, यदि दूसरेके घरमें प्रवेश करें, तो ये उस हालतमें दण्डनीय नहीं होते, जबकि घरके किसी आदमीने भीतर जानेलें इन्हें रोका न हो ॥ ९ ॥ यदि कोई पुरुष एक ग्रहण रात्रि धीतजानेपर, अपनेही घरकी बाहरकी औरकी दीवारोंपर चढ़े, तो उसे प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

परवेशमनो मध्यमः ॥ ११ ॥ ग्रामारामवाटभेदिनश्च ॥ १२ ॥
ग्रामेष्वन्यतः सार्थिका ज्ञातसारा वसेयुः ॥ १३ ॥ मुपितं प्रवा-
सितं चैपामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात् ॥ १४ ॥ ग्रामान्तेषु
वा मुपितं प्रवासितं विवीताध्यक्षो दद्यात् ॥ १५ ॥

यदि इसी हालतमें दूसरेके घरकी दीवारोंपर चढ़े ॥ ११ ॥ और ग्राम अथवा बागीचोंकी बाड़को तोड़े, तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ यात्रा करते हुए स्थापारी लोग यदि किसी गांवमें ठहरें, तो अपने पासके सब माल असबाबकी सूचना ग्रामाध्यक्षको देकरही ठहरें ॥ १३ ॥ रातमें यदि यदि इनकी चोरी होजाय, या गांवमें कोई वस्तु छूट जाय, तो उस वस्तुको ग्रामाध्यक्ष देवे ॥ १४ ॥ अगर गांवके बाहर सरहद्दमें ही कोई वस्तु छुटाई गई हो या छूट गई हो, तो उसे विवीताध्यक्ष (घागाहका निरीक्षक) देवे ॥ १५ ॥

अविवीतानां चोररज्जुकः ॥ १६ ॥ तथाप्यगुप्तानां सीमा-
वरोधेन विचयं दशुः ॥ १७ ॥ असीमावरोधे पञ्चग्रामी दशग्रामी
वा ॥ १८ ॥

यदि यहाँपर घागाह आदि भी न होयें, ऐसे स्थानोंपर छुटाई हुई या छूटी हुई वस्तुको चोररज्जुक (चोरोंको पकड़नेवाले राजपुरज) देयें ॥ १६ ॥ यदि फिरभी घरतु सुरक्षित न रह सके तो जिसकी सीमामें वह चोरी आदि हुई हो, उस सीमाका मालिक वस्तु मिल जानेपर दे देवे ॥ १७ ॥ यदि फिर भी प्रबन्ध न हो सके, तो जहाँ चोरी आदि हुई हो उसके पासके पांच गांव या दसगांवकी पञ्चायत उस धनको हूँदकर भदा करे ॥ १८ ॥

दुर्बलं वैशम शकटमनुत्तन्धमूर्ध्वस्तम्भशस्त्रमनपाश्रयमप्रति-
च्छन्नं श्वभ्रं कृपं कूटावपातं वा कृत्वा हिंसायां दण्डपारुष्यं विधात्
॥ १९ ॥

- मकानकी दीवार आदिको कमजोर करके, गादीकी छतरी भादि मजबूत न लगाकर, हाथियारको ठीक तौरपर न रखकर, शत्रुको न पूरकर, और कुण्ठकी मज न बनाकर, अर्थात् इन बातोंको धनइसे जो पुरुष किसीकी हरयामें कारण बन जाय, तो उसे दण्डपारद्वयमें धतलोयें हुए उचित दण्ड दिये जावें ॥ १९ ॥

पृक्षच्छेदने दम्यरश्मिहरणे चतुष्पदानामदान्तसेवने वा काष्ठ-
लोष्टपापाणदण्डवाणवाहुविक्षेपणेषु याने 'हस्तिना च ॥ २० ॥
संघट्टने चापेहीति प्रक्रोशन्नदण्ड्यः ॥' २१ ॥

पृक्ष काटते समय, मारनेवाले बैल अर्थात् रस्सी खोलते समय, पहिले पाहिले चौपायाको सवारोंमें चलानेका अभ्यास कराते समय, अथवा दोका आपसमें झगडा होनेपर लकड़ी, डेला, पत्थर, ढण्डे, बाण फेंकने और हाथापाई करते समय, तथा हाथीकी सवारी करते समय, और भीड़में हटजाओ २ इस प्रकार चिल्लानेपर भी यदि धीचमें आ जानेसे किसीके हाथ पांव टूट जावें, तो पृक्ष काटनेवाले आदि पुरुष दण्डनीय न समझे जावें ॥ २०-२१ ॥

हस्तिना रोपितेन हतो द्रोणान्नमद्यकुम्भं माल्यानुलेपनं दन्त-
प्रमार्जनं च पटं दद्यात् ॥ २२ ॥

यदि कोई पुरुष 'मैं हाथीके द्वारा मारा जाऊँ' ऐसा सोचकर सड़कपर उसके रास्तेमें आकर लेट जावे, और इस लिये गुस्सेमें आकर हाथी उसे मार देवे, तो उसके उत्तराधिकारी मनुष्य बान्धवोंको उचित है कि वे द्रोणभर अन्न मद्यका एक घड़ा, माला, अनुलेपन (माथेपर लगानेके लिये तिलदूर या चन्दन आदि) और दान्त साफ करनेका चस्त्र, हाथीके लिये देवे ॥ २२ ॥

अश्वमेधावभृथत्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पादप्रक्षाल-
नम् ॥ २३ ॥ उदानीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः ॥२४॥ वृद्धिणा
दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानममोक्षयतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः
॥ २५ ॥

योंकि जितना पुण्य अश्वमेधके अनन्तर पवित्र स्नान करनेसे होता है, उतनाही पुण्य हाथीके द्वारा मारे जानेपर होता है, इसलिये द्रोणभर अन्न भादि देना, यह हाथीकी पूजा विशेष है ॥ २३ ॥ परन्तु यदि कोई पुरुष इस प्रकार मरना न चाहे, और वह सवारके नमादसे हाथीके द्वारा मारा जावे, तो सवारको उच्चम साहस दण्ड दियाजाय ॥ २४ ॥ यदि किसी पुरुषको, गौ

आदि साँगसे मारें, भयवा, घोड़े आदि दाँतसे काटे, और गौ आदिका मालिक उसको न खुदाये, तो मालिकको प्रथम साहस दण्ड दियाजाय ॥ २५ ॥

प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः ॥ २६ ॥ शृङ्गिदंष्ट्रिम्यामन्योन्यं घात-
यतस्तच्च तावच्च दण्डः ॥ २७ ॥ देवपशुमृगपमशुक्षणं गोकुमारीं
चा वाहयत पञ्चशतो दण्डः ॥ २८ ॥

मारें या काटे जाने वाले आदमीके 'मुझे खुदाओ २, इस प्रकार थिलानेपर भी यदि मालिक न खुदाये, तो पहिलेसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥ यदि साँग धाले और दाँतवाले जानवर आपसमें लड़कर एक दूसरेको, मारें, तो (मारने वाले पशुको) मालिक मरे हुए जानवरकी कीमत और उतनाही दण्ड देवे ॥ २७ ॥ देव सम्बन्धी (देवताके नामपर छोड़े हुए) किसी पशुको, साइको, बैलको या गठ्डीको जो कोई पुरुष जाते उसे ५०० पण दण्ड दियाजाय ॥ २८ ॥

प्रवासयत उत्तमः ॥ २९ ॥ लोमदोहवाहनप्रजननोपकारि-
णां क्षुद्रपशूनामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३० ॥ प्रवासने च
॥ ३१ ॥ अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः ॥ ३२ ॥

यदि इनको कोई निकाले या दूर लेजाये, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २९ ॥ जन, दूब, तथा सगरी देनवाले, और अच्छा पैदा करने वाले छोटे २ पशुओंका जो अपहरण करे, वह उनकी कीमत और उतनाही दण्ड देवे ॥ ३० ॥ इनका प्रवासन करनेपर भी यही दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ परन्तु यदि देव-कार्यके लिये या पितृ कार्यके लिये प्रवासन हो तो कोई दण्ड नहीं ॥ ३२ ॥

लिचनस्यं भययुगं तिर्यक्प्रतिमुखामतं प्रत्यासरद्वा चक्रयुक्तं
यातपशुमनुष्यसंवाधे वा हिंसागामदण्ड्यः ॥ ३३ ॥ अन्यथा
यथोक्तं मालुपप्राणिहिंसायां दण्डमभ्याभवेत् ॥ ३४ ॥

यदि बैलकी नाथ हट जाय, या जूआ हट जाय, या जुता हुआही बैल तिरछा होजाय, या सामनेकी ओर पिरकुल चलता होजाय, या अन्य आदियों पशुओं तथा मनुष्योंकी भारी भीड हो, ऐसे समयमें यदि किसी मनुष्य या पशुको चोट पहुँच जाय, तो गाड़ी चलाने वालेको अपराधी न समझा जाते ॥ ३३ ॥ यदि ये सब घाते न हों तो मनुष्य या पशुको किसी तरहकी चोट पहुँचानेपर पहिले यहें हुए उचित दण्ड दिये जायें ॥ ३४ ॥

अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च ॥ ३५ ॥ बाले यात्तरि या-
नस्यः स्वामी दण्ड्यः ॥ ३६ ॥ अस्वामिनि यानस्यः प्राप्तव्यवहारो

वा याता ॥३७॥ बालाधिष्ठितमपुरुषं वा यानं राजा हरेत् ॥३८॥

यदि मनुष्य या बटे पशुके अतिरिक्त कोई छोटासा बकरी या मुर्गा आदि मर जाय, तो वह उसी तरहका दूसरा जानवर देवे ॥ ३५ ॥ यदि उस समय गाड़ी चलाने वाला नाबालिग हो, तो उसका मालिक इन सब दण्डों को भुगते ॥ ३६ ॥ यदि मालिक उपस्थित न हो, तो गाड़ीमें सवार होनेवाला पुरुष, अथवा दूसरा बालिग सारथि इस दण्डको भोगे ॥ ३७ ॥ यदि गाड़ीमें बालक के सिवाय कोई न हो तो राजा उसे जय्त करे ॥३८॥

कृत्याभिचाराभ्यां यत्परमापादयेत्तदापादयितव्यः ॥३९॥

कामं भार्यायामनिच्छन्त्यां कन्यायां वा दारार्थिनां मर्तुरि भार्याया वा संवननकरणम् ॥ ४० ॥ अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहस-
दण्डः ॥ ४१ ॥

कृत्या और अभिचार कर्मोंसे जो दूसरेको तग करे, उसे गिरफ्तार कर लिया जाय ॥ ३९ ॥ जो स्त्री पतिको न चाहे, उस पर पति, कन्यापर स्त्रीको चाहनेवाला पुरुष, और अपने पतिपर भार्या, कृत्या बशीकरण आदि तान्त्रिक प्रयोगोंको कर सकते हैं। इतनेमें वे अपराधी न समझे जायें ॥ ४० ॥ इससे अतिरिक्त विषयमें तान्त्रिक प्रयोग करानपर, करने वालोंको मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥

मातापित्रोर्भगिनी मातुलानीमाचार्याणां स्तुपां दुहितरं भ-
गिनीं वाधिचरतः लिङ्गच्छेदनं बधश्च ॥ ४२ ॥ सकामा तदेव
लभेत ॥ ४३ ॥

जो पुरुष, माता और पिताकी बहिन (मासी और बूआ), मामाकी स्त्री (मामी) गुरूमाता (गुरूकी स्त्री), पुत्र्यधू, अपनी लड़की और अपनी बहिनके साथ व्यभिचार करे, उसकी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश काटकर प्राण दण्ड दिया जावे ॥४२॥ यदि मासी बूआ आदि स्वयं ऐसा करवायें, तो उन्हें भी दोना स्तन और भगका छेदन करके प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥

दासपरिचारकाहितकभुक्ता च ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण्यामगुप्तायां
क्षत्रियस्योत्तमः ॥ ४५ ॥ सर्वस्वं वेदयस्य ॥ ४६ ॥ शूद्रः कटा-
ग्रिना दधेत ॥४७॥ सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः ॥ ४८ ॥

दास, परिचारक और बन्धुए यदि व्यभिचार करें, तो उन दोनोंको भी वही दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥ स्वतन्त्र रहने वाली ब्राह्मणीके साथ यदि

क्षत्रिय व्यभिचार करे, तो उसे उत्तम साहसदण्ड दिया जावे ॥ ४५ ॥ यदि वैश्य करे तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जन्त करली जावे ॥ ४६ ॥ यदि क्षत्र करे, तो उसको स्त्रिकोंकी आगमें जला देना चाहिए ॥ ४७ ॥ राजाकी स्त्रीके साथ जो कोई भी व्यभिचार करे, उसे तपे भाड़में मृत दिया जावे ॥ ४८ ॥

श्वपाकीगमने कृतकर्मन्धाङ्कः परनिषयं गच्छेच्चश्वपाकत्वं वा ॥ ४९ ॥ शूद्रश्वपाकस्वार्थागमने वधः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् ॥ ५० ॥ प्रव्रजितागमने चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ५२ ॥

घण्टालीके साथ गमन करनेपर पुरुषके माथेपर छाप लगाकर उसे देश से बाहर निकाल दिया जावे । यदि गमन करने वाला पुरुष ब्रह्म हो, तो उसे घण्टालभी बनाया जा सकता है ॥ ४९ ॥ घण्टाल यदि किसी आर्षा (ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या) के साथ गमन करे, तो उसे प्राण दिया जाय, और स्त्रीके कान तथा नाक काट दिये जावें ॥ ५० ॥ संन्यासिनीके साथ गमन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय, ॥ ५१ ॥ यदि संन्यासिनी कामवश ऐसा करवावे तो उसेभी वही (२४पण) दण्ड दिया जाय ॥ ५२ ॥

रूपाजीवायाः प्रसङ्गोपभोगे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५३ ॥ बहूनामेकाधिचरतां पृथक्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५४ ॥ स्त्रियमयोनी गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५५ ॥ पुरुषमधिमेहतश्च ॥ ५६ ॥

पैश्याके साथ बलात्कार संभोग करनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे, ॥ ५३ ॥ यदि बहुतसे आदमी किसी एक स्त्रीके साथ भोग करें, तो उन्हें पृथक् पृथक् २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५४ ॥ स्त्रीको यदि योनिके अतिरिक्त स्थान से (गुदा मुख आदिमें) कोई भोग करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५५ ॥ पुरुषके साथ गमन (इगलाम) करने परभी वही (प्रथम साहस) दण्ड दिया जावे ॥ ५६ ॥

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः ।

दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥ ५७ ॥

अदण्ड्यदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिंशद्गुणो ऽम्भसि ।

वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥ ५८ ॥

शो आदि पशुयोनियोंमें गमन करनेवाले पापी पुरुषको १२ पण, और देव प्रतिमाओंके साथ गमन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५७ ॥ अद-

शुद्धनीय व्यासिकों दण्ड देनेपर, राजाको उस दण्डसे ३० गुणा दण्ड दिया जाये और वह दण्डका धन, घरण देवताके उद्देश्यसे जलमें डाल दिया जाये, और फिर ब्राह्मणोंको दे दिया जाये ॥ ५८ ॥

तेन तत्पूयते पापं राज्ञो दण्डापचारजम् ।

शास्ता हि वरुणो राजा मिथ्या व्याचरतां नृपु ॥ ५९ ॥

इति कण्टकशोधनं चतुर्थं अधिकरणे अतिचारदण्डः प्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आदितः षष्ठिः ॥ ९० ॥

पृतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य कण्टकशोधनं

चतुर्थमाधिकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पेसा करनेसे, ठीक दण्ड न देनेके कारण उत्पन्न हुआ हुआ राजा का पाप, छुड़ हो जाता है। अर्थात् राजा उस पापसे छूट जाता है। क्योंकि मनुष्योंमें मिथ्या व्यवहार (अनुचित व्यवहार) करने वाले राजाओंका शासन घरण ही करता है ॥ ५९ ॥

कण्टकशोधनं चतुर्थं अधिकरणं तेरहवां अध्यायं समाप्तम् ।

कण्टकशोधनं चतुर्थं अधिकरणं समाप्तम् ॥



योगवृत्तपञ्चम अधिकरण

पहला अध्याय

८९ प्रकरण

दण्ड (उपांशुवध) प्रयोग ।

दुर्गराष्ट्रयोः कण्टकशोधनमुक्तम् ॥१॥ राजराज्ययोरर्क्ष्यामः

॥ २ ॥

दुर्ग और राष्ट्रके कण्टकाका शोधन चतुर्थ अधिकरणमें कह दिया गया है ॥ १ ॥ अब राजा और उसके अमात्य आदिमें कण्टकोंका शोधन बताया जायगा ॥ २ ॥

राजानमवगृह्योपजीविनः शत्रुसाधारणा वा ये मुख्यास्तेषु गूढपुरुषप्रणिधिः कृत्यपक्षोपग्रहो वा सिद्धिर्यथोक्तं पुरस्तादपजा पोपसर्पो वा यथा च पारश्रामिके वक्ष्यामः ॥ ३ ॥

राजाको भीचा करके रहने वाले, अथवा दुरमनोंसे मिले हुए जो मुख्य पुरुष (प्रधान पुरुष=मन्त्री पुरोहित सेनापति युवराज आदि) हों; उनके सुकायलेमें सिद्धिलाभ करनेके लिये यह आवश्यक है कि राजा आत्युत्तम गुप्त पुरुषोंकी नियुक्ति करे, और जो व्यक्ति अनुओंसे सार साप बैठे हों उनको अपनी और मिलावे । उनकी नियुक्ति और काम करानेका दग पहिले (१ अधि १२ अध्यायमें) कह चुके हैं, और आगे पारश्रामिक (१३ अधि० १ अध्या०) प्रकरण में कहा जायगा ॥ ३ ॥

राज्योपघातिनस्तु बल्लभाः संहता वा ये मुख्याः प्रकाशं शक्याः प्रतिपेदुं दूष्यास्तेषु धर्मरुचिरुपांशुदण्डं प्रयुञ्जीत ॥ ४ ॥

जो अप्यक्ष अथवा आपसमें मिले हुए अमात्य आदि राजका साथ कर रहे हों, जिन दुष्टोंको कि खुले सारपर कुछ न कहा जासके (क्योंकि ये धर्म २ अधिकारोंपर रहते हैं, इनकी सीधा कहनेसे प्रसाम असन्तोष फैलनेकी सम्भावना रहती है), धर्मरुचि राजाको चाहिये कि उनमें उपांशुदण्ड (धृष्ट वध आदि दण्ड जिसमें मारने का तथा मारने वाले आदिका कुछभी विशेष

पता न लगाने पाय , अर्थात् छिपे २ चुपचाप घब आदि करा देने) का प्रयोग करे ॥ ४ ॥

दूष्यमहामात्रभ्रातरमसत्कृतं सत्त्री प्रोत्साह्य राजानं दर्शयेत्
॥५॥ तं राजा दूष्यद्रव्योपभोगातिसर्गेण दूष्ये विक्रमयेत् ॥६॥
दस्त्रेण रसेन वा विप्रान्तं तत्रैव घातयेद्भ्रातृघातको ऽयमिति ॥७॥

दूषणीय हस्त्यध्वक्ष आदिके भाईको, जिसको कि दायभाग न मिला हो, साकार घुँपक उभार कर, सत्री, राजाको दिखावे, अर्थात् उसे राजाके पास लावे ॥ ५ ॥ राजा उसको दूषणीयका निग्रह करनेक लिये हथियार आदि सामान देकर, सागडाँ करवा देवे ॥ ६ ॥ जय वह विप या दस्त्र आदिसे अपने भाईको मार देवे, तो इसी अपराधमें 'यह अपने भाईका घातक है' ऐसा कहकर राजा उसेभी मरवा देवे ॥ ७ ॥

तेन पारश्वः परिचारिकापुत्रश्च व्याख्यातौ ॥ ८ ॥ दूष्य-
महामात्रं वा सत्त्रिप्रोत्साहितो भ्राता दायं याचेत् ॥ ९ ॥

यही वृग पारश्व महामात्र (महामात्रका, नीच वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र) और परिचारिका पुत्र (दासीसे उत्पन्न हुए पुत्र) के सम्बन्धमें जानना चाहिये । अर्थात् सत्री इनको उभारकर लावे, ये अपने पिताको मारदे, और इन्हें पितृघातक कहकर इसी अपराधमें राजा मरवा देवे ॥ ८ ॥ भयवा सत्रीसे उभारा हुआ भाई, दूषणीय महामात्रसे अपना दाय भाग माँते ॥ ९ ॥

तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो
ब्रूयात् ॥ १० ॥ हतो ऽयं दायकामुक इति ॥ ११ ॥ ततो हत-
पक्षं परिगृह्येतरं निगृह्णीयात् ॥ १२ ॥

किर तीक्ष्ण पुरुष (घातक गुप्तचर व्यक्ति), दूषणीयके घरके दरवाजेके सामने सोते हुए भयवा अन्यत्र निवास करते हुए इसको रातमें मारकर कहे कि—॥ १० ॥ यह अपना दायभाग माँगता था, इसलिए इसके महामात्र भाईने इसे मार डाला है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर राजा हतव्यक्तिके बंधुयाधव लडके मामा आदिको बुलवाकर, महामात्रको 'यह भाईका घातक है' ऐसा कहकर मरवा डाले ॥ १२ ॥

दूष्यसमीपस्था वा सत्रिणो भ्रातरं दायं याचमानं घातेन
परिभर्त्सयेयुः ॥ १३ ॥ तं रात्राविति समानम् ॥ १४ ॥

भयवा दूषणीय (महामात्र आदि) के समीप रहते हुए सभी लोग

दायमाग मांगने चाळे भाईको, 'हम तुझे मारबालेंगे' ऐसा कहकर धमकावे; फिर पूर्वोक्त रीतसे रातमें स्वयं तीक्ष्ण उसे मारदेवे, आगे सब पूर्ववत् ही समझना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥

दृष्यमहामात्रयोर्वा यः पुत्रः पितुः पिता वा पुत्रस्य दारा-
नधिचरति भ्राता वा भ्रातुस्तयोः कापाटिकमुखः कलहः पूर्वेण
व्याख्यातः ॥ १५ ॥

दृष्य और महामात्रका पुत्र, अपने पिताकी स्त्रियोंके साथ, पिता पुत्रोंकी स्त्रियोंके साथ, और भाई भाईकी स्त्रियोंके साथ यदि ग्यभिचार करें, तो उनका (पितापुत्र और भाई भाईका) आपसमें कापाटिक गुप्तचर (देखो—१ अधि०, ११ अध्या० २—३ सूत्र) झगड़ा करवा देवे। एक दूसरेको मार देनेपर पहिलेकी तरह कार्य किया जाय ॥ १५ ॥

दृष्यमहामात्रपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्री राजपुत्रस्त्वं
शत्रुभयादिह न्यस्तो ऽसीत्पुत्रपेत् ॥ १६ ॥ प्रतिपन्नं राजा
रहसि पूजयेत् ॥ १७ ॥ प्राप्तयौधराज्यकालं त्वां महामात्रभया-
न्नाभिपिञ्चामीति ॥ १८ ॥

दृष्य और महामात्रके पुत्रके पास, जोकि अपने आपको यद्वा बहादुर और उदार समझता हो, सत्री जावे, और कहे कि तुम सो युवराज होसकते हो, शत्रुके भयसे यहाँ पड़े हुए हो इत्यादि ॥ १६ ॥ सत्रीके कथनको स्वीकार फरके जब वह राजाके पास आवे, तो एकान्तमें राजा उसका अच्छी तरह राक्षार रहे ॥ १७ ॥ और कहे कि तुम्हारे यौधराज्यका समय आगया है, मैं केवल महामात्र (राज्यकी कामना करनेवाला, उस लड़केका पिता) के भयसे तुम्हारा अभिषेक नहीं करता, इत्यादि ॥ १८ ॥

तं सत्री महामात्रवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ विक्रान्तं तत्रैव
घातयोत्पितृघातकोऽयामिति ॥ २० ॥ भिक्षुकी वा दूष्यभार्या
सांचननकीभिरौपधीभिः संवाख्य रसेनातिसंदध्यात् ॥ २१ ॥
इत्याप्यः प्रयोगः ॥ २२ ॥

फिर सत्री उस लड़केको अपने पिता महामात्रके वध करनेके लिये तैयार करदेवे ॥ १९ ॥ जब वह महामात्रका वध करदेवे, तो इसी अपराधको तामने रत्नकर यह पितृघातक है, ऐसा कहकर राजा उसे भी मरवा चाले ॥ २० ॥ अथवा गुप्तचरका काम करती हुई भिक्षुकी, दूष्य (महामात्र आदि)

की भाषाओं को कहे कि मैं धरतीकरणकी औपधि बहुत भयंजी तरह जानती हूँ, मुम यह औपधि अपने पतिको खिलाना, इस प्रकार धरतीकरणकी जगह विष देकर मरवा देवे ॥ २१ ॥ इस प्रकार किये गये कापंको 'आप्य प्रयोग' कहते हैं ॥ २२ ॥

दूप्यमहामात्रमटवौ परग्रामं वा हन्तुं कान्तारव्यवहिते वा देशे राष्ट्रपालमन्तपालं वा स्थापयितुं नागरस्थानं वा कुपितमवगृहीतुं सार्धातिवाह्यं प्रत्यन्ते वा सप्रत्यादेयमादातुं फल्गुबलं तीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ २३ ॥

दूप्य महामात्र, जगलके निरीक्षक और यामी गावको मारनेके लिये, तीक्ष्ण पुरुषोंके साथ, राजा योद्धासे सेना यह बहाना करके भेजे कि इस जगलके पार अमुक नगरमें राष्ट्रपाल या अन्तपालका स्थापना करनी है, या अमुक नगरमें प्रजा विरुद्ध होगई है उसे धरतीमें करना है, या यह बहाना करे कि राज्यकी सीमापर दूसरे कृषक आदि पुरपाने हनारी भूमि दबाली है, उसे धरती वापस लेना है इत्यादि ॥ २३ ॥

रात्रौ दिवा वा युद्धे प्रवृत्ते तीक्ष्णाः प्रतिरोधकव्यञ्जना वा हन्युरभियोगे हत इति ॥ २४ ॥ यात्राविहारगतो वा दूप्यमहामात्रान्दर्शनायाह्वयेत् ॥ २५ ॥ ते गूढशस्त्रैस्तीक्ष्णैः सह प्रविष्टा मध्यमकक्ष्यायामात्मविचयमन्तः प्रवेशनार्थं द्युः ॥ २६ ॥

इसके बाद रातमें या दिनमें लड़ाई होनेपर तीक्ष्ण पुरुष चोर या डाकुओंका भेस बनाकर जिसको मारना हो मार डालें, और फिर कहें कि यह लड़ाईमें मारा गया है ॥ २४ ॥ यात्रा या विहारके लिये तैयार हुआ २ राजा, दूप्य महामात्रोंको देखनेके लिये अपने पास बुलावे ॥ २५ ॥ अपने पास शस्त्र छिपाये हुए तीक्ष्ण पुरुष भी महामात्रोंके साथ २ राजाके पास भीतर जावें । दूसरी स्त्रीदीपर, प्रवेश करनेके लिये अपनी तलाशी दें ॥ २६ ॥

ततो दौवारिकाभिगृहीतास्तीक्ष्णा दूप्यप्रयुक्ताः स्म इति प्रयुः ॥ २७ ॥ ते तदभिविख्याप्य दूप्यान्हन्युः ॥ २८ ॥

जब द्वारपाल हाथियोंके साथ उठें (तीक्ष्ण पुरुषोंको) पकड़े, तो वे कहें कि हमको दूप्योंके राजाके मारनेको हाथियार लानेके लिये कहा है । (यह बात उसी हालतमें समझनी चाहिये, जबकि भीतर सशस्त्र जानेकी किसीको भी आज्ञा न हो) ॥ २७ ॥ तब वगारमें यह प्रख्यात करके कि दूप्य महामात्र राजाको मारना चाहते थे, उन्हें (महामात्रोंको) मरवा दिया जावे ॥ २८ ॥

तीक्ष्णस्थाने चान्ये षड्याः ॥ २९ ॥ बहिर्विहारगतो वा
दूष्यानासन्नावासान्पूजयेत् ॥ ३० ॥ तेषां देवीव्यञ्जना वा दुःस्त्री
रात्रावावासेषु गृह्येतेति समानं पूर्वेण ॥ ३१ ॥

तथा तीक्ष्ण पुरुषोंके स्थानपर और किन्हींको मरवा दिया जावे ॥ २९ ॥
अथवा याहर विहारके लिये गया हुआ राजा, अपने पासमें ही रहरे हुए दूष्यों
का बहुत अच्छी तरह आदरसत्कार करे ॥ ३० ॥ फिर रासमें, किसीदुष्ट स्त्रीको
महाराणीके भेसमें बनाकर, उनके दायन स्थानमें भेजदेवे, तदनन्तर सिपाहियों
के द्वारा वहाँपर उरै गिरफ्तार कराले, पुन इसी अपराधमें दूष्योंको मरवा
देवे, इत्यादि ॥ ३१ ॥

दूष्यमहामात्रं वा स्रद्धो भक्षकारो वा ते शोभन इति स्तवेन
भक्ष्यभोज्यं याचेत ॥ ३२ ॥ बहिर्वा क्वचिदध्वगतः पानीयं तदु-
भयं रसेन योजयित्वा प्रतिस्वादाने तावैवोपयोजयेत् ॥ ३३ ॥
तदर्गिर्विख्याप्य रसदायित्ति घातयेत् ॥ ३४ ॥

अथवा राजा, दूष्य महामात्रसे "सुगहारा रसोईया और पकवान बनाने-
पाला बदेही चतुर है" इस प्रकार उनकी स्तुति करके, कुछ खाद्य पदार्थ मांगे
॥ ३२ ॥ या कहीं याहर रास्तेमें जाता हुआ जल मांगे, और उन दोनों
घस्तुओंमें विष मिलाकर, छीजिये आपही पहिले खाईये या पीजिये, ऐसा
कहकर दूष्य महामात्रको ही यह खाद्य या पेय लौटादे । वे खापीकर मर
जायेंगे ॥ ३३ ॥ फिर भोजन बनानेवालेको ये दोनों विष देनेवाले हैं, ऐसा
प्रसिद्ध करके मरवा देवे ॥ ३४ ॥

अभिचारशीलं वा सिद्धव्यञ्जनो गोधाकूर्मकर्कटकूटानां लक्ष-
प्यानामन्यतमप्रकाशनेन मनोरथानवाप्स्यसीति ग्राहयेत् ॥ ३५ ॥
प्रतिपक्षं कर्मणि रसेन लोहमुसलैर्वा घातयेत्कर्मव्यापदा हत इति
॥ ३६ ॥

सिद्धके भेतमें कोई गुप्तचर, अभिचारिक कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाले
दूष्य महामात्रको फहे कि, अच्छे लक्षणोंसे युक्त गौह, कछुआ, केकडा और दूडे
हुए सींगवाले हरिण, इन चारोंमेंसे किसीको अभिचारिक विधिसे श्मशानमें
पकाकर खानेपर तुम अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त करसकोगे ॥ ३५ ॥ जब
दूष्य महामात्र इसपर विश्वास करके श्मशानमें अभिचार कर्मको प्रारम्भ करे
तो उसे जाननेसे विष देकर अथवा छोड़ेके मूसलोंसे घूटकर सार दिया जावे ।

और यह प्रसिद्ध कर दिया जाये कि कर्मके विगुण होजानेके कारण पिशाच आदिने उसको मार दिया है ॥ ३६ ॥

चिकित्सकव्यञ्जनो वा दौरात्मिकमसाध्यं वा व्याधिं दूप्यश्च
स्थापयित्वा भैषज्याहारयोगेषु रसेनातिसंदध्यात् ॥ ३७ ॥ घृदा-
रालिकव्यञ्जना वा प्रणिहिता दूप्यं रसेनातिसंदधुः ॥ ३८ ॥
इत्युपनिषत्प्रतिषेधः ॥ ३९ ॥

अथवा चर वैषका भैस बनाकर, दूप्यसे कहे कि दुराधारसे उपपन्न, या अन्य कोई असाध्यरोग तुम्हें होगया है, इस प्रकार कहकर चिकित्सा करते समय औषधि या भोजनके द्वारा विष देकर मार डाले ॥ ३७ ॥ अथवा मांस पकानेवाले या चावल आदि पकानेवाले पाचकके भैसमें जाकर दूप्यके पास रहे और उसे विष देकर मार डाले ॥ ३८ ॥ यहाँतक गुप्तरूपसे दूप्योंके निग्रहके ढंग बताये गये ॥ ३९ ॥

उभयदूप्यप्रतिषेधस्तु ॥ ४० ॥ यत्र दूप्यः प्रतिषेद्व्यस्तत्र
दूप्यमेव फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ ४१ ॥ मच्छामुष्मिन्दुर्गे
राष्ट्रे वा सैन्यमुत्थापय ॥ ४२ ॥

अब दो दूप्योंको एकही यत्नसे किस प्रकार नष्ट किया जाय, इसका उपाय बताते हैं ॥ ४० ॥ जहाँपर एक दूप्यका निराकरण करना हो, वहाँ दूसरे दूप्यको ही थोड़ीसी सेना और तीक्ष्ण पुरुषोंके साथ भेजे ॥ ४१ ॥ उससे यह कहे कि अमुक किले या प्रान्तमें जाओ और वहाँ सेनाके योग्य आदमियोंको सेनामें भर्ती करो ॥ ४२ ॥

हिरण्यं वा ॥ ४३ ॥ बल्लभाद्वा हिरण्यमाहारय ॥ ४४ ॥
बल्लभकन्यां वा प्रसहानय ॥ ४५ ॥ दुर्गसेतुवाणिकपथशून्यानिवे-
शखानिद्रव्यहस्तिवनकर्मणामन्यतमद्वा कारय ॥ ४६ ॥ राष्ट्रपा-
ल्यमन्तपाल्यं वा ॥ ४७ ॥

अथवा सुवर्ण आदि धन जमा करो ॥ ४३ ॥ या अमुक अप्यक्षसे धन आहरण करलाभो ॥ ४४ ॥ या अमुक अप्यक्षकी कन्याको बलात्कार लेलाभो ॥ ४५ ॥ या अमुक स्थानपर दुर्ग, मकान बनयाभो, व्यापारियोंके मार्गको ठीक करवाओ, जंगलमें मकान बनयाओ, खानोंमें, लकड़ीके या हाथियोंके जंगलोंमें अमुक काम करवाओ ॥ ४६ ॥ या राष्ट्रपाल अथवा अन्तपालके कार्योंको करवाओ ॥ ४७ ॥

यथ त्वा प्रतिपेधयेन्न वा ते साहाय्यं दद्यात्स बन्धव्यः
 स्वादिति ॥ ४८ ॥ तथैवतरेषां प्रेपयेदमुष्याविनयः प्रतिपेद्वच्य
 इति ॥४९॥ तमेतेषु कलहस्थानेषु कर्मप्रतिघातेषु वा विचदमानं
 तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा प्रच्छन्नं हन्युः ॥ ५० ॥ तेन दोषेणेतरे
 नियन्तव्याः ॥ ५१ ॥

यदि तुम्हारे इन कार्यों कोई रकावट डाले, या सहायता न देवे, उसे
 गिरफ्तार करालिया जाय, इत्यादि ॥ ४८ ॥ और इसी प्रकार दूसरे दूष्योंको
 यह भाषिकसूचना भेजदेवे कि अमुक प्यात्तिकी उद्दण्डताओंको रोको, इत्यादि
 ॥ ४९ ॥ इस तरह एक दूसरेमें झगडा होनेपर या काममें रकावट डालेजानेपर
 विवाद उपस्थित करनेवाले दूष्यको गुप्तरूपसे तीक्ष्ण पुरुष राजाके द्वारा मार
 देवे ॥ ५० ॥ इस प्रकार दूसरे दूष्योंपर, राजाके द्वारा नियुक्त हुए पुरुषके
 धक्का अपराध लगाकर, उनको भी मरवा दिया जावे ॥ ५१ ॥

पुराणां ग्रामाणां कुलानां वा दूष्याणां सीमाक्षेत्रखलवेशम-
 मर्यादासु द्रव्योपकरणसस्यवाहनर्हिसासु प्रेशाकृत्योत्सवेषु वा
 समुत्पन्ने कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा
 म्रूयुः ॥ ५२ ॥

दूष्य नगर, ग्राम अधवा परिवारोंके, सीमा, खेत, खेत्याम और मकानोंकी
 मर्यादाके विषयमें, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न और सवारीका विनाश करदेनेसे तथा
 तमाजे और उत्सवोंमें परस्पर झगडे होनेपर अधवा तीक्ष्ण पुरुषोंके द्वारा दूष्य-
 नगर आदिमें झगडा करादेनेपर, तीक्ष्ण पुरुषही छिपे सोरपर कुछ दूष्योंको
 हथियारोंसे मार डालें, और दूसरे दूष्योंपर उस हत्याका धोपते हुए कहें कि
 तुम्हीं अपराधी हो ॥ ५२ ॥

एवं क्रियन्ते ये ऽमुना कलहायन्त इति ॥ ५३ ॥ तेन दो-
 षेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५४ ॥ येषां वा दूष्याणां जातमूलाः
 कलहास्तेषां क्षेत्रखलवेशमान्वादीपयित्वा बन्धुसंबन्धिषु वाहनेषु
 वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा तथैव म्रूयुः ॥ ५५ ॥

जो उनके साथ झगडा करते हैं उनका यही हाल किया जाता है
 ॥ ५३ ॥ इसी अपराध को सामने रखकर अन्य दूष्योंको भी मरवा दिया जावे
 ॥ ५४ ॥ जिन दूष्य पुरुषोंके आपसके झगडे जब पकड गए हों, उनके खेत
 खेत्याम और मकान आदिको जलाकर, तीक्ष्ण पुरुष उनके भाई बन्धुओं सम-

स्थियों और घोड़े आदि सवारियोंको हथियारसे मारकर उसी प्रकार बदे कि — ॥ ५५ ॥

अनुना प्रयुक्ताः स्म इति ॥ ५६ ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५७ ॥ दुर्गराष्ट्रदूप्यान्वा सच्चिणः परस्परस्थावेशनिकान्कारयेयुस्तत्र रसदां रसं दद्युस्तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५८ ॥

अमुक व्यक्तिने हमको यह काम करनेके लिए कहा, इत्यादि ॥ ५६ ॥ इसी अपराधमें उनको (अन्ध दूप्योंको) गिरपतार फाके प्राण दण्ड दे दिया जाय ॥ ५७ ॥ आपसमें दुश्मनी रखनेवाले, किलेमें और उसके बाहर रहते हुए दूप्योंको, सत्रिपुरप परस्पर मेल कराकर, एक दूसरेके घरमें उनको निमन्त्रण दिएबावें, और विष देनेवाले तीक्ष्ण पुरप घहापर भोजनके साथ निमन्त्रित दूप्यको विष देदेवें । इसी (विष देनेके) अपराधमें राजा दूसरे दूप्यको प्राण दण्ड दे देवे ॥ ५८ ॥

भिक्षुकी वा दूप्यराष्ट्रमुख्यं दूप्यराष्ट्रमुख्यस्य भार्या स्नुषा दुहिता वा कामयत इत्युपजपेत् ॥ ५९ ॥ प्रतिपन्नस्याभरणमादाय स्वामिने दर्शयेत् ॥ ६० ॥

अथवा (चरका कार्य करती हुई) कोई भिक्षुकी, राष्ट्रके किसी उच्च पदाधिकारी दूप्यको जाकर झूठ मूठ कहे कि अमुक दूप्य उच्चपदाधिकारीकी भार्या, पुत्रवधू या लड़की आपको यहुत चाहती है ॥ ५९ ॥ यदि वह इस बातपर विश्वास करले, तो उससे भार्या आदिके नामपर उसका कोई आभूषण लेकर दूसरे दूप्यको भाकर दिखला देवे ॥ ६० ॥

अमौ ते मुख्यो यौननोत्सिक्तो भार्या स्नुषां दुहितरं वाभिमन्यत इति ॥ ६१ ॥ तयोः कलहो रात्राविति समानम् ॥ ६२ ॥

और कहे कि देखो वह पदाधिकारी जवानीके मदके गर्वमें आकर तुम्हारी भार्या, पुत्रवधू या कन्याकी कामना करता है, इत्यादि ॥ ६१ ॥ इस प्रकार जब उनका आपसमें अच्छा तरह झगडा हो जाये तो रातमें तीक्ष्ण पुरप एक दूप्यको हाथियारसे मार डाल, और प्रसिद्ध करदे कि अमुक दूप्यने इसको मारा है, राजा इसी अपराधमें उसको भी मारवा डाले ॥ ६२ ॥

दूप्यदण्डोपनतेषु तु युवराजः सेनापतिर्वा किञ्चिदुपकृत्यापक्रान्तो विक्रमेत् ॥ ६३ ॥ ततो राजा दूप्यदण्डोपनतानेव प्रेषयेत्फलगुबलतीक्ष्णयुक्तानिति समानाः सर्व एव योगाः ॥ ६४ ॥

का, निर्भर दृष्टि परही हो, तथा गद्दा भन्न रखहो, अन्नका सीसरा या चौथा हिस्सा, राजा मांगकर प्रजाकी अनुमतिसे लेवे (अर्थात् प्रजापर बलात्कार करके न लेवे) ॥ २ ॥

यथासारं मध्यमवरं वा दुर्गसैतुकर्मवणिकपथशून्यनिवेशस-
निद्रव्यहस्तिवनकर्मोपकारिणं प्रत्यन्तमल्पप्राणं वा न याचेत् ॥३॥
धान्यपशुहिरण्यादि निविशमानाय दद्यात् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार मध्यम और छोटे २ प्रान्तोंसे भी, पहांपर उत्पन्न होने वाले अन्नके अनुसारही राजा हिस्सा लेवे । परन्तु जो प्रान्त किलों, मकानों, चपपारी मार्गों, खाली मैदानों, खान, लकड़ा और हाथोंके जंगलोंके द्वारा राजा या प्रजाका उपकार करने वाले हों; जो राज्यका साम्राज्य हों, और जिनके पास अन्न आदि बहुत थोड़ा हो, उनसे राजा कुछ न मांगे ॥ ३ ॥ नये बसने वाले किसानको खेतोंके लिये अन्न, बैल आदि पशु तथा सहायतार्थ धन, सरकारकी ओरसे दिया जावे, ॥ ४ ॥

चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात्
॥ ५ ॥ अरण्यजातं श्रोत्रियस्य च परिहरेत् ॥ ६ ॥ तदप्यनुग्रहेण
क्रीणीयात् ॥ ७ ॥

इस तरहके किसानोंसे, राजा उनके द्वारा पैदा किये हुए अन्नका चौथा हिस्सा खरीद लेवे, और फिर खेतके बीज, तथा उनके खाने योग्य अन्न छोड़ कर बाकीभी खरीद लेवे ॥ ५ ॥ जंगलमें स्वयं पैदा हुए तथा श्रोत्रियके द्वारा उत्पन्न किये अन्नसे राजा हिस्सा न लेवे । खेतके बीज और खाने योग्य अन्न छोड़कर उसमेंसे भी राजा खरीद सकता है ॥ ७ ॥

तस्याकरणे वा समाहर्तृपुरुषा ग्रीष्मे कर्षकाणामुद्धारणं कारयेयुः
॥ ८ ॥ प्रमादावस्कन्नस्यात्ययं द्विगुणमुदाहरन्तो बीजकाले बीज-
लेख्यं कुर्युः ॥ ९ ॥

यदि श्रोत्रिय खेती न करे, तो अधिकारियोंको चाहिए कि वे उस जमीनको अन्य किसानोंसे गरमीमें लुतवा हुआ दें ॥ ८ ॥ यदि किसानके प्रमादसे खेतमें बोया बीज नष्ट होजाय, तो उससे उसपर दुगना क्षरमाना करते हुए अधिकारी जन फिर बीज बोनेके समय, बीजके सम्बन्धकी किसानकी उत्त-
कारवाहोंको सरकारी पुस्तकमें लिखलेवे ॥ ९ ॥

निष्पन्ने हरितपक्कादानं वारयेयुः ॥ १० ॥ अन्यत्र शाकफट

मङ्गमुष्टिभ्यां देवापत्पूजादानार्थं गवार्थं वा ॥ ११ ॥ भिक्षुक-
ग्रामभृतकार्थं च राशिमूलं परिहरेद्युः ॥ १२ ॥

अब फसल तैयार होनेवाली हो तो किसानोंको हरा या पक्का अन्न (खेतमेंसे) लेनेसे रोक दें ॥ १० ॥ परन्तु वे (किसान) देवपूजा या पितृपूजा में देनेके लिये अथवा गायके लिये सागकी मुट्टी और पुआल आदिकी मुट्टी खेतसे ले सकते हैं ॥ ११ ॥ भिखारी और गांवके नाई धोबी माशकी आदि चाकरोंके लिये धान्य राशि (खेतघानमें साफ किये हुए नाजका ढेर) के नीचे का हिस्सा छोड़ दें ॥ १२ ॥

स्वसस्यापहारिणः प्रतिपातो ऽष्टगुणः ॥ १३ ॥ परसस्यापहा-
रिणः पञ्चाशद्गुणः सीतात्ययः स्ववर्गस्य ॥ १४ ॥

अपने ही खेतमेंसे जो धान्यकी चोरी करले (किसान ऐसी चोरी सर-कारको पैदावारकी कमी दिखानेके लिये कर सकता है), उसे चोरीके मालका आठगुणा दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥ जो दूसरेके सस्य (खड़ी फसल) अपहरण को, तथा यह उसी ग्रामका रहने वाला हो तो उसे इस अपराधमें चोरीके मालका पचास गुणा दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥

बाह्यस्य तु वधः ॥ १५ ॥ चतुर्थमंशं धान्यानां पट्टं वन्यानां
तूललाक्षाक्षौमवल्ककार्पासरौमकौशेयकौपधगन्धपुष्पफलशाकपण्या-
नां काष्ठवेणुमांसवल्दूराणां च गृह्णीयुः ॥ १६ ॥

यदि अपहरण करनेवाला याहरेके (दूसरे) किसी गांवका हो तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥ धान्योंका चौथा हिस्सा, और वनमें होनेवाले मन्नादिका तथा रुई, लाख, पाट (जूट), छाल, कपास, अन, रेशम, औषधि, गन्ध, पुष्प, फल, शाक और लकड़ी, बांस, मांस तथा सूखे मांसका, उग्र हिस्सा, राजालोग करके तीरपर ग्रहण करें ॥ १६ ॥

दन्ताजिनस्यार्धम् ॥ १७ ॥ तदनिष्टं विक्रीणानस्य पूर्वः
साहसदण्डः ॥ १८ ॥ इति कर्पकेषु प्रणयः ॥ १९ ॥

हाथी दांत और गौ आदिके चमड़ेका आधा हिस्सा टैक्सके तीरपर राजा लेवे ॥ १७ ॥ जो पुरुष इन वस्तुओंको राजाकी आज्ञाके बिना बेचे, उसे प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ यहाँ तक किसानोंके विषयमें प्रणय (भ्रायना, राज्यकर लेनेके लिये कथन करना=राजाकी ओरसे करकी याचना) का निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालाश्वहस्तिपण्याः पञ्चाशत्कराः
 ॥२०॥ सूत्रवस्त्रताम्रवृत्तकंसगन्धभेषज्यशीघ्रुपण्याश्चत्वारिंशत्कराः
 ॥ २१ ॥ धान्यरसलोहपण्याः शुकटव्यवहारिणश्च त्रिंशत्कराः
 ॥ २२ ॥ काचव्यवहारिणो महाकारवश्च विंशतिकराः ॥ २३ ॥
 क्षुद्रकारवो वर्धकिपोपकाश्च दशकराः ॥ २४ ॥ काष्ठवेणुपापाण-
 मृद्गाण्डपक्वाभहरितपण्याः पञ्चकराः ॥ २५ ॥

सोना, चांदी, हीरा, मणि, मोती, मूंगा, घोड़े और हाथी इन व्यापारिक द्रव्योंपर, मूल्यका पचासवां हिस्सा टैक्स लिया जाय ॥ २० ॥ सूत, कपड़ा, तांबा, पीतल, कांसा, गन्ध, जड़ीबूटी और शरावपर चालीसवां हिस्सा ॥ २१ ॥ गेहूँ, धान आदि अन्न, तेल घी आदि रस, और लोहेपर, तथा जो किराये पर गाड़ी चलाकर अपना जीविका करते हैं उनसे ३०वां हिस्सा ॥ २२ ॥ कांचका व्यवहार करने वाले और चंदे २ कारीगरोंसे १०वां हिस्सा ॥ २३ ॥ छोटे २ कारीगरोंसे, और कुलटा स्त्रीको घाँसे रखने वाले पुरपते दसवां हिस्सा ॥ २४ ॥ लकड़ी, घाँस, परयर, मट्टीके बर्तन, पक्वान और हरे दाक आदिपर पाँचवां हिस्सा सरकारी टैक्स लिया जाय ॥ २५ ॥

कुशीलवा रूपार्जीवाश्च वेतनार्थं द्युः ॥ २६ ॥ हिरण्यकरम-
 कर्मण्यानाहारयेयुः ॥ २७ ॥ न चैषां कंचिदपराधं परिहरेयुः ॥ २८ ॥

नट आदि तथा वेदपार्थे अपने वेतन (कमाई) में से भावा राज्यकर देवे ॥ २६ ॥ जो दानिये आदि व्यापारके काममें न लगे हुए हों, उनसे प्रति पुरुषके हिस्साबसे कुछ नकदा (एक चण्डक=सिक्का चित्तेय) टैक्स लिया जाय ॥ २७ ॥ और इनके किसी अपराधकी उपेक्षा न कीजाय । अर्थात् उनका व्यापार न करनाही अपराध कौटिलिमें समझा जाय, और उसका दण्डरूप कर उनसे अवश्य लिया जाय ॥ २८ ॥

ते ह्यपरगृहीतमभिनीय विक्रीणीरन् ॥ २९ ॥ इति - व्यव-
 हारिषु प्रणयः ॥ ३० ॥

क्योंकि ऐसे लोगोंसे यह भी सम्भव है कि वे अपनी वस्तुको दूसरेकी करके बेचें, जिससे सरकारको यह मालूम हो कि वे व्यापार नहीं करते, और इसलिये टैक्ससे बच जाय ॥ २९ ॥ व्यापारियोंसे राज्यकर लेनेके विषयमें यहाँ तक कहा गया है ॥ ३० ॥

कुक्कुटसूकरमर्षं दद्यात् ॥ ३१ ॥ क्षुद्रपशवः पद्भागम्

॥ ३२ ॥ गोमहिषाश्वतरखरोन्द्राश्च दशभागम् ॥ ३३ ॥ बन्ध-
कीपोपका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौवनाभिः कोशं संहरेयुः ॥ ३४ ॥
इति योनिपोपकेषु प्रणयः ॥ ३५ ॥

गुमें और सुभर पालनेवाले, उनका (गुमें आदि की बद्धीका) भाषा
॥ ३१ ॥ भेदकरी पालनेवाले छटा, ॥ ३२ ॥ गाय, बैस, लहर, गधे और
कैट पालनेवाले दसवां हिस्सा सरकारी देस देवें ॥ ३३ ॥ पेशवाओंके जमादार
राजासे अनुमति पाई हुई, परमरूपयती युवती पेशवाओंके द्वारा राजकोपके
लिये धन जमा करें ॥ ३४ ॥ यहांतक जानवर पालनेवालोंसे राज्यकर लेनेके
विषयमें निरूपण किया गया ॥ ३५ ॥

सकृदेव न द्विः प्रयोज्यः ॥ ३६ ॥ तस्याकरणे वा समाहर्त्ता
कार्यमपदिश्य पौरजानपदान्निक्षेत ॥ ३७ ॥ योगपुरुषाश्चात्र
पूर्वमतिमात्रं दशुः ॥ ३८ ॥

राजाको चाहिये कि इस प्रकारका अधिक कर एकही बार लेवे, दूसरी
बार कभी न लेवे । (क्योंकि इसमें प्रजाके असन्तोषका भय रहता है) ॥ ३६ ॥
यदि उपर्युक्त रीतियोंसे कोशका सञ्चय न किया जासके तो, समाहर्त्ताको
चाहिये कि वह किसी कार्यका बहाना करके नगरनिवासी तथा ग्रान्तनिवासी
लोगोंसे धन मांगे ॥ ३७ ॥ संकेत किये हुए समाहर्त्ताके पुरष पहिले उस
कार्यमें अधिकसे अधिक धन देवें ॥ ३८ ॥

एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान्निक्षेत ॥ ३९ ॥ काप-
टिकाश्चैन्नानल्पं प्रयच्छतः क्लृप्तययुः ॥ ४० ॥ मारतो वा हिर-
ण्यमाढ्यान्याचेत ॥ ४१ ॥ यथोपकारं वा स्वशा वा यदुपहरेयुः
स्थानच्छत्रवेष्टनविभूपाश्चैपां हिरण्येन प्रयच्छेत् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर इसी बहानेसे राजा, नगर तथा जनपदनिवासी जनोंसे धन
मांगे ॥ ३९ ॥ यदि वे थोड़ा धन देवें, तो राजाके लिये पुरुष (कापटिक) इनकी
निन्दा करें ॥ ४० ॥ अथवा धनी पुरषोंसे उनकी हैसियतके माफिक धन
मांगें ॥ ४१ ॥ उपकारके अनुसार (सरकारने जिन व्यक्तिोंके लिये जितने
न्यूनधिक सुभीते किये हुए हों उनके अनुसार), अथवा जो धन अपने यशके
आदमी देवें, उतनीही रकम धनिकोंसे लीजाये और इस प्रकार राजाकी सहा-
यता देनेवाले इन धनी पुरुषोंका, अधिकार स्थान देकर, छत्र आदि लगानेकी
अनुमति देकर, खासतारकी घगड़ी या आभूषण आदि देकर राजाकी ओरसे
सत्कार किया जाय ॥ ४२ ॥

पापण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यं वा कृत्यकराः प्रेतस्य
दग्धहृदयस्य वा हस्ते न्यस्तमित्युपहरेसुः ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्षो
दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्यं कोशं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ तथैव
चापहरेत् ॥ ४५ ॥

किसी पापण्डी या समूहकी सम्पत्तियों, तथा जिसका कोई भाग
श्रोत्रियके पास न जाता हो ऐसे किसी मन्दिरकी सम्पत्तियों, यह मरे हुएकी
है, अथवा घर जले हुएकी है ऐसा कहते हुए कृत्य करनेवाले पुरुष लेभावे,
और राजाको अर्पण करे ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्ष, दुर्ग और राष्ट्रके देवताओं
(देव मन्दिरों) के भाव धनको यथोचित रूपमें एक स्थानपर रखे ॥ ४४ ॥
और फिर राजाको दे दिया करे ॥ ४५ ॥

दैवतचेत्यं सिद्धपुण्यस्थानमौपपादिकं वा रात्रावुत्थाप्य यात्रा-
समाजाभ्यामाजीवेत् ॥ ४६ ॥ चैत्योपवनवृक्षेण वा देवताभिग-
मनमनार्तिवपुष्पफलपुक्तेन रूपापयेत् ॥ ४७ ॥

किसी प्रसिद्ध पवित्रस्थानमें भूमिको फाड़कर देवता निकला है, ऐसी
प्रसिद्धि कराकर रात्रिमें वहाँ एक देवताकी पेंदी बनवावे, और मेला लगावाकर
यात्रियों तथा अन्य पुरुषोंसे उसपर खूब भेंट चढवावे, और उसे राजाको
अर्पण करे ॥ ४६ ॥ बिनाही पत्तुके देवमन्दिरके उपवनमें प्रयत्नपूर्वक किसी
वृक्षपर फल या फूल पैदा करवाके, प्रसिद्धि करावे कि यह देवताकी महिमा
है ॥ ४७ ॥

मनुष्यकरं वा वृक्षे रक्षोभय रूपायित्वा सिद्धव्यजनाः पौरजान
पदानां हिरण्येन प्रतिकुर्युः ॥ ४८ ॥

अथवा सिद्धोंके भेसमें घूमनेवाले गुप्तपुरुष, रातमें किसी वृक्षपर
बैठकर, "भुङ्क्षे प्रतिदिन एक २ मनुष्य देना चाहिये, नहीं तो सबको खाजा-
ऊंगा" इस प्रकार मनुष्यकर मागते हुए राक्षसका भय दिखलाकर, नगर तथा
जनपदनिवासी पुरुषोंके धनसे इस भयका प्रतीकार करावे । और उस धनको
राजाको देवे ॥ ४८ ॥

सुरङ्गापुक्ते वा कूपे नागमनियताशिरस्कं हिरण्योपहारेण
दर्शयेत् नागप्रतिमायामन्तश्छिद्रायाम् ॥ ४९ ॥

अथवा किसी सुरङ्गवाड़े कुएमें तीन सिरवाले, या पाँच सिरवाले बना-
एठी सापको, इस प्रकारकी फोली स्तूपकी मूर्तिमें दिखलावे कि जिममें कोई

असली सांप समा सकता हो । और दिखानेके बदले दर्शकोंसे धन ले लेवे । यह धन राजाको दे दिया जावे ॥ ४९ ॥

चैत्याच्छिद्रे बल्मीकछिद्रे वा सर्पदर्शनमाहारेण प्रतिबन्धसंज्ञं
कृत्वा श्रद्धधानानां दर्शयेत् ॥ ५० ॥

किसी मन्दिर या बमई (बम्बी) के छेदमें सांपको अधानक देखनेपर उसे मन्त्र या औपाधिसे बांध लेवे, अर्थात् तबमें करलेवे, और यह कहते हुए श्रद्धालु पुरपोंकी विलायि कि देखो देवताकी कैसी महिमा है ॥ ५० ॥

अश्रद्धधानानामाचमनप्रोक्षणेपु रसमुपचाय्य देवताभिशापं
श्रूयात् ॥ ५१ ॥ अभित्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनप्रतीकारेण
वा कोपाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५२ ॥

जो पुरुष इतपर श्रद्धा न करे, उन्हें चरणाश्रितके साथ केवल इतना विष देवे, जिससे वे बेहोश होजाय और फिर पढ़े कि देखो यह नाग देवता का शाप है ॥ ५१ ॥ और देवताकी निन्दा करनेकाले पुरुषको सांपसे कटवा देवे । और कहे कि देखो यह देवताका शाप है, अथवा फिर औपनिषदिक प्रकरणमें बतलाई हुई विषचिबिरसाके द्वारा उस विषका प्रतीकार करदेवे । इस प्रकार धनसंग्रह करके राजकोशको बढाता जाये ॥ ५२ ॥

वेदेहकव्यञ्जनो वा प्रभूतपण्यान्तेवासी व्यवहरेत् ॥ ५३ ॥
स यदा पण्यमूल्ये निक्षेपप्रयोगरूपचितः स्यात्तदैतं रात्रौ मोष-
येत् ॥ ५४ ॥

अथवा व्यापारीके भेसमें गुप्त राजपुरुष, प्रचुर विक्रीय वस्तुएं और अनेक सहायकोंको लेकर व्यापार करना प्रारम्भ करदे ॥ ५३ ॥ जब इसके पास व्यापारका धन खूब होजावे, और अन्य पुरुष इसको अच्छा सेठ समझकर विभाससे इसके पास अमानत आदिवा धन खूब जमा करदें, तथा दयाज आदिके लिये भी लोग इसके पास काफी पूंजी जमा करदें, तब इसके यहाँ चोरी करवा देवे अर्थात् चोरोंके बहानेसे यह सारा धन राजा ले लेवे ॥ ५४ ॥

एतेन रूपदर्शकः सुवर्णकारश्च व्याख्यातौ ॥ ५५ ॥

इसी प्रकार राजकीय सिक्कोंका निरीक्षक और सुवर्णकार भी छल करके राजकोषके लिये धन इकट्ठा करें । (अर्थात् निरीक्षक सिक्कोंको परिक्षाके लिये अपने घरमें इकट्ठा कराये, रातको वहाँ चोरी होजाय । इसी प्रकार सुवर्णकारके यहाँ जब आभूषण बनानेके लिये लोगोंने बहुत सोना इकट्ठा होजाय, वहाँ चोरी करवा लीजावे) ॥ ५५ ॥

वेदेहकव्यञ्जनो वा प्रख्यातव्यवहारः प्रवहणनिमित्तं याचित-
कमवक्रीतकं वा रूपसुवर्णभाण्डमनेकं गृह्णीयात् ॥ ५६ ॥ समाजे
वा सर्वपण्यसंदोहेन प्रभूतं हिरण्यसुवर्णमृणं गृह्णीयात् ॥ ५७ ॥

अथवा व्यापारीका भेस बनाकर गुप्तराजपुरष अपने क्रयविक्रय व्यव-
हारके सूच मसिद्ध होजानेपर, एक दिन जीनार (निमन्त्रण=पात) के पहाने
आसपासके सब लोगोंके यहांसे चांदी और सोनेके अनेक प्रकारके घत्तन, मांग
कर या भाड़ेपर ले लेवे ॥ ५६ ॥ और अनेक पुरषोंकी उपस्थितिमें अपने
सम्पूर्ण मालकी ओटमें (के बदले) पर्याप्त हिरण्य सुवर्ण आदि भन ऋण
ले लेवे ॥ ५७ ॥

प्रतिभाण्डमूल्यं च ॥ ५८ ॥ तदुभयं रात्रौ मोषयेत् ॥ ५९ ॥

और दूसरे दिन जिनको अपनी वस्तु बेचनी हों, उनसे प्रतिवस्तुका
मूल्य भी ले लेवे ॥ ५८ ॥ इन दोनों वस्तुओं (तकड़ीमाल और सोने आदिके
घत्तनों) को रातमें चोरी करावे । अर्थात् चोरीके पहाने राजाके कोषमें यह
भन भिजवा दिया जाय ॥ ५९ ॥

साध्वीव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिर्दूष्यानुन्मादयित्वा तासामेव वैश्म-
स्वमिगृह्य सर्वस्वान्याहरेयुः ॥ ६० ॥

इसीम स्त्रियोंके भेसमें रहनेवाली (राजकीय गुप्त) स्त्रियोंके द्वारा
राजासे दुश्मनी रखनेवाले दूष्य पुरषोंको उन्मत्त बनाकर, उन स्त्रियोंके घरमें
ही उनको गिरफ्तार किया जाय, और उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया
जाय ॥ ६० ॥

दूष्यकुल्यानां वा विवादे प्रत्युत्पन्ने रसदाः प्रणिहिता रसं
दशुः ॥ ६१ ॥ तेन दोषणेतरे पर्यादातव्याः ॥ ६२ ॥

दूष्य पुरषोंका अपने खानदानी लोगोंके साथ कोई झगडा खडा होने
पर, विप देनेवाले शुकिया रसोईये आदिके बेपमें उनके पास ही रहते हुए
किसी एक पक्षवालेको विप देदेवे ॥ ६१ ॥ इसी अपराधमें दूसरे दूष्योंका
सर्वस्व अपहरण कर लिया जाये ॥ ६२ ॥

दूष्यमभित्यक्तोवा श्रद्धयापदेशं पुण्यं हिरण्यनिक्षेपमृणप्रयोगं
दायं वा याचेत् ॥ ६३ ॥

कोई अभित्यक्त (दूष्य=जिसको मारदेना चाहिये वेसा व्यक्ति), माल,
स्वर्ण आदिकी अमानत, ऋण अथवा दायभागकी दूष्यके पास आकर उससे

इस प्रकार मांगे, जिससे कि लोगोंको विश्वास होजाय कि इन वस्तुओंसे इसका अवरण कुछ न कुछ सम्बन्ध है ॥ ६३ ॥

दासशब्देन वा दूप्यमालम्बेत ॥ ६४ ॥ भार्यामस्य स्तुपां
दुहितरं वा दासीशब्देन भार्याशब्देन वा ॥ ६५ ॥ तं दूप्यगृह-
प्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा म्रूयात्
॥ ६६ ॥

अथवा दूप्यको दास कहकर पुकारे ॥ ६४ ॥ या इसकी भार्या,
पुत्रवधू और लड़कीको दासी शब्दसे या अपनी भार्या कहकर गाली देवे
॥ ६५ ॥ तब उसको रातमें दूप्यके सामने सोते हुए, अथवा और किसी
जगह निवास करत हुएको, तीक्ष्ण पुरुष जाकर मार देवे, और कहे कि:—
॥ ६६ ॥

हतोऽयमित्थं कामुक इति ॥ ६७ ॥ तेन दोषेणेतरे पर्या-
दातव्याः ॥ ६८ ॥

यह कामी पुरुष इस प्रकार (दूप्यके साथ उक्त प्रकारसे झगडा करनेके
कारण) मारा गया है ॥ ६७ ॥ इसी अपराधमें दूसरे दूप्योंका, राजा सर्वस्य
अपहरण करले ॥ ६८ ॥

सिद्धव्यसनो वा दूप्यं जम्भकाविद्यामिः प्रलोभयित्वा म्रूयात्
॥६९॥ अक्षयं हिरण्यं राजद्वारिकं स्त्रीहृदयमारिव्याधिकरमायुष्यं
पुत्रीयं वा कर्म जानामीति ॥ ७० ॥

अथवा सिद्धके भेसमें गुह्यराजपुरुष दूप्यको छलविद्याओंसे प्रलोभन
देकर कहे कि:—॥ ६९ ॥ “मैं अक्षय सुवर्णके राजानेको देखना, राजाको चशम
करना, स्त्रीके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करना, दुश्मनको धीमार करदेना,
आयुको बढ़ाना, और सन्तान उत्पन्न करना, आदि कामोंको अच्छी तरह
जानता हूँ” ॥ ७० ॥

प्रतिपन्नं चैत्यस्थाने रात्रौ प्रभूतसुरामांसगन्धगुपहारं कार-
येत् ॥७१॥ एकरूपं चात्र हिरण्यं पूर्वनिखातं प्रेताङ्गं प्रेताशिशुर्वा
यत्र निहितः स्यात्ततो हिरण्यमस्य दर्शयेदत्पल्पमिति च म्रूयात्
॥ ७२ ॥

जब उसको विश्वास आ जाय, तो किसी देशस्थानमें जाकर रातमें
उससे मृत मंदिर मांस और गन्ध आदि भेंट देवताको चढ़ावे ॥ ७१ ॥

पहिलेसेही गाँवें हुए (तांकालीन) एक मिक्केकी धाराधर सोनेकी, जहाँपर मुर्देका कोई अंग, या मरा हुआ बच्चा गढ़रहा हो, यहाँसे निकालकर इस दूष्यको दिखावे, और कहे कि यह बहुत धोदा है। (क्योंकि तुमने भेंट भी थोड़ीही चढ़ाई है) ॥ ७२ ॥

प्रभूतहिरण्यहेतोः पुनरुपहारः कर्तव्य इति स्वयमेवैतेन हिरण्येन श्वोभूते प्रभूतमौपहारिकं क्रीणीहीति ॥ ७३ ॥ तेन हिरण्येनौपहारिककये गृह्येत ॥ ७४ ॥

यदि तुम बहुत अधिक हिरण्य चाहते हो तो तुमको देवतापर और अधिक भेंट चढ़ाना चाहिये, जो यह भी सोना लो, इस सोनेसे तुम कलको अपने आपही बाजारमें जाकर अधिक चढ़ावेका सामान खरीदना ॥ ७३ ॥ जब वह दूष्य उस सोनेसे चढ़ावेका सामान बाजारसे खरीदने लगे, तबही उसको गिरफ्तार करलिया जाय, और इस अपराधमें उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जावे ॥ ७४ ॥

मातृव्यञ्जनाया वा पुत्रो मे त्वया हत इत्यवरूपितः स्यात् ॥ ७५ ॥ संसिद्धमेवास्य रात्रियागे वनयागे वनक्रीडायां वा प्रवृत्तायां तीक्ष्णा विशस्याभित्यक्तमतिनयेयुः ॥ ७६ ॥

अथवा कोई गुस्तराजखी, माताके भेसमें जाकर दूष्यके ऊपर सिध्दा दोषारोपण करे कि तूने मेरे लड़केको मार डाला है ॥ ७५ ॥ दूष्यके रात्रियाग (रात्रिका हवन), वनयाग (जंगलमें किये जानेवाला हौन), और वनक्रीडाके शरम्भ होनेपर, तीक्ष्णपुरुष पहिलेहींसे तैयार किये हुए वध पुरुषको मारकर रात्रियाग आदिके समीपस्थागमें गाढ़ देवे। और इसी अपराधमें दूष्यको पकड़ उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जाय ॥ ७६ ॥

दूष्यस्य वा भूतकव्यञ्जनो वेतनहिरण्ये कूटरूपं प्रक्षिप्य प्ररूपयेत् ॥ ७७ ॥ कर्मकारव्यञ्जनो वा गृहे कर्म कुर्वाणस्तेन कूटरूपकारकोपकरणमपानिदध्यात् चिकित्सकव्यञ्जनो वा गरमगरापदेशेन ॥ ७८ ॥

अथवा दूष्यके नौकरके रूपमें रहता हुआ कोई सुफिया नौकरीका धन पानेपर उसमें जाली सिक्का मिलाकर राजाको खबर देदेवे ॥ ७७ ॥ अथवा चाकरके भेसमें दूष्यके घर काम करता हुआ कोई सुफिया खोरी २ जाकीसिके बनानेके सय साथियोंको यहाँ रखदे। अथवा घँसका भेस बनाकर विपनाराक औपधिके यहाँसे उसके (दूष्यके) हाथमें विष देदेवे। (सूयमें 'गवमगदापदे-

शेन' यह भी पाठान्तर है, उसका अर्थ:—रोगनाशक औषधिके सहित रोगव-
द्धक औषधि देकर' यह करना चाहिये) और इसी अपराधमें दूष्यको पकड़कर
उसका सर्वस्व अपहरण करलेवे ॥ ७८ ॥

प्रत्यासन्नो वा दूष्यस्य सत्त्वी प्रणिहितमभिपेकभाण्डममित्र-
शासनं च कापटिकमुखेन आचक्षीत कारणं च भूयात् ॥ ७९ ॥

अथवा दूष्यके समीप रहता हुआ कोई सत्री (गुप्तचर विशेष), दूष्यके
घरमें रहते हुए अभिपेकके सामान्ये: और शत्रुके लेखको कापटिक (गुप्तचर
विशेष) के द्वारा राजाको कहे । और इसका कारण यह बतावे कि दूष्य राजाको
मारकर शत्रुको राज्यपर अभिपेक करनेका यत्न करता है, इत्यादि । इसी अप-
राधमें उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जावे ॥ ७९ ॥

एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु च वर्तेत ॥ ८० ॥ नेतरेषु ॥ ८१ ॥

अधिक कोश जमा करनेके लिये राजा ऐसे उपायोंका प्रयोग दूष्यों
और अधार्मिक पुरोपासकों करे ॥ ८० ॥ अन्योपर नहीं ॥ ८१ ॥

पकं पकमिवारामात्फलं राज्यादवाप्नुयात् ।

आमच्छेदभयादामं वर्जयेत्कोपकारकम् ॥ ८२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे अधिकरणे कोशाभिसंहरणं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितो द्विनवतिः ॥ ९२ ॥

राजा दुष्ट पुरोपासकोंके धनको इस प्रकार ले लेवे, जैसे पके हुए फलको
घाटिकासे ले लिया जाता है, और धर्मात्माओंके धनको इस प्रकार छोड़ दिया
जाय, जैसे कच्चे फलको छोड़ दिया जाता है । कच्चे फलकी तरह धर्मात्माओंसे
लिया हुआ धन भी प्रकृतिके कोपका कारण होता है । अर्थात् जैसे कच्चा फल खाया
हुआ देहकी पित्त कफ आदि प्रकृतिको कुपित करदेता है । ऐसेही धर्मात्माका
लिया हुआ धन प्रकृति अर्थात् प्रजाको कुपित करदेता है ॥ ८२ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय ।

९१ प्रकरण ।

भृत्योंका भरण पोषण ।

दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयवादेन स्थापयेत् ॥ १ ॥

कार्यसाधनसहेन वा भृत्यलाभेन शरीरमवेक्षेत ॥ २ ॥

दुर्ग और जनपदकी शक्तिके अनुसार नीकरोंके लिये अपनी सम्पूर्ण

आयका चौथा भाग व्यय करके, उनकी स्थापना करे ॥ १ ॥ अथवा कार्य करनेमें समर्थ भूय, जितने धनसे मिल सकें, उतनाही धन देकर (चाहे वह सम्पूर्ण आयके चतुर्थांशसे अधिक भी हो) उनकी नियुक्ति करे । परन्तु आमदनीकी असली हालतको अवश्य देखता रहे, (शरीरमयेक्षत) । कहीं ऐसा न हो कि आमदनीसे उपादा व्यय होजाय ॥ २ ॥

न धर्मार्थी पीडयेत् ॥ ३ ॥ ऋत्विगाचार्यमन्त्रिपुरोहित
सेनापतियुवराजराजमातुराजमहिष्यो ऽष्टचत्वारिंशत्साहस्राः ॥४॥
एतावता भरणे नानास्वाद्यत्वमकोपकं चैषां भवति ॥ ५ ॥

ऐसा कोई भी काम न करे जिसमें धर्म और अर्थकी पीडा पहुँचे । अर्थात् देवकार्य, पितृकार्य और दान आदि धर्मोंको, तथा दुर्ग, सेतु और व्यापारी मार्ग बनवाना आदि अर्थसाधक कार्योंको बराबर करता रहे ॥ ३ ॥ ऋत्विक्, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, राजमाता और राजमहिषी (पटरानी) इनको प्रतिवर्ष ४८००० सहस्र पण वेतनरूपमें दिया जाय ॥ ४ ॥ क्योंकि भरणपोषणके लिये इतना वेतन मिलनेपर ये आरामसे रह सकते हैं । और राजाके प्रति कोपके कारण न बनेंगे ॥ ५ ॥

दौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्त्वसमाहर्तृसंनिधातारथतुर्विंशतिसा-
हस्राः ॥ ६ ॥ एतावता कर्मण्या भवन्ति ॥ ७ ॥ कुमारकुमार-
मातृनायकाः पौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषद्वाष्ट्रान्तपालाश्च
द्वादशसाहस्राः ॥ ८ ॥

दौवारिक (द्वारपाल=द्वाररक्षाका मुख्य अधिकारी), अन्तर्वंशिक (अन्त पुरका रक्षक , आयुष्पाध्यक्ष, हमाहर्ता (धान्यकर आदि वसूल करने वाला प्रधान अध्यक्ष), और भाण्डागाराध्यक्षको २४ सहस्र पण वार्षिक दिया जाये ॥ ६ ॥ इतना वेतन मिलनेपरही ये कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं ॥ ७ ॥ कुमार (युवराजसे अतिरिक्त अन्य राजकुमार), कुमारमाता (पटरानीसे अतिरिक्त अन्य रानिया अथवा राजकुमारोको पालन करनेवाली धाय), नायक (पैदल सेनाओंका नेता=सूवेदार मेजर), नगर निरीक्षक, व्यापाराध्यक्ष, कृषि आदिका अध्यक्ष, मन्त्रिपरिषद्के १२ सदस्य, राष्ट्रपाल (सम्पूर्ण

ॐ म० म० गणपति शास्त्रीने 'कुमार' का अर्थ 'अश्वानुचर' और 'कुमारमाता' का अर्थ 'अश्वतिजननेता' किया है । यह अर्थ उनकी प्राम्थिक भाषामें उपलब्ध हुए, अर्थशास्त्रके किसी पुराने अनुवादके आधारपर किया गया है । परन्तु यह अर्थ कुछ संगत प्रतीत नहीं होता ।

पुलितंका मुख्य अधिकारी=पुलित सुपरिन्टेण्डेंट), अन्तपाल, (सीमा निरीक्षक), इनको १२००० वार्षिक दिया जावे ॥ ८ ॥

स्वामिपरिवन्धवलसहाया हेतावता भवन्ति ॥ ९ ॥ श्रेणी-
मुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्वाष्टसाहस्राः ॥१०॥ स्वर्गा-
नुकर्षिणो हेतावता भवन्ति ॥ ११ ॥

इतना वेतन देनेसे ये लोग सदा राजाके अनुकूल रहेंगे, और उसकी सहायता करनेके लिए हर समय तैयार रहेंगे ॥ ९ ॥ सजातीय शिल्पियोंके निरीक्षक, (इञ्जिनियर) हाथी, घोड़े, और रथोंके निरीक्षक, तथा प्रदेष्टा (कण्टकरोधनाधिकारी), इनको ८००० वार्षिक दिया जावे ॥ १० ॥ इतना वेतन मिलनेपर ये लोग अपने-अपने कर्मचारियोंको अनुकूल रखेंगे ॥ ११ ॥

पञ्चश्वरथहस्त्यध्यक्षा द्रव्यहस्तिवनपालाश्चतुःसाहस्राः
॥ १२ ॥ रथिकानीकचिकित्सकाश्चदमकवर्धकयो योनिपोपकाश्च
द्विसाहस्राः ॥ १३ ॥

पदाति सेनाका अभ्यक्ष, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेनाओंके अभ्यक्ष, लकड़ी और हाथियोंके जंगलोंके निरीक्षक, इनको ४००० पण वार्षिक दिया जावे ॥ १२ ॥ रथका चलाना सिखानेवाले, गज शिक्षक, चिकित्सक, अश्वशिक्षक, तथा, मुर्गे, सूअर आदि पालनेवालोंका अभ्यक्ष, इनको २००० पण वार्षिक वेतन दिया जाय ॥ १३ ॥

कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकक्षतमागधाः पुरोहित-
पुरुषाः सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः ॥ १४ ॥ शिल्पवन्तः पादाताः
संख्यायकलेखकादिवर्गः पञ्चशताः ॥ १५ ॥

स्त्री या पुरोंके हाथ आदिमें लक्षण (चिन्ह) देखकर उनके भूत या आविष्यत् को बतानेवाले, शत्रुन बतानेवाले, उषोत्थिनी, पुराणोंकी कथा कहने वाले, सारथि, स्तुति पाठक, पुरोहितके भृत्य और मुग्धा आदिके अभ्यक्ष, इनको १००० वार्षिक दिया जावे ॥ १४ ॥ चित्रकार, पादात (गद्दका, बैनेट, तलवार आदि खेलनेमें अत्यन्त चतुर), हिसाब करनेवाला तथा लेखक आदिको ५०० पण वार्षिक दिया जाय ॥ १५ ॥

कुशीलनास्त्वर्धतृतीयशताः ॥ १६ ॥ द्विशुणवेतनाथैषां तूर्य-
कराः ॥ १७ ॥ कारुशिल्पिनो विंशतिशतिकाः ॥१८॥ चतुष्पद-
द्विपदपरिचारकपारिकर्मिकोपस्थायिकपालकविष्टिवन्धकाः पष्टिवे-
तनाः ॥ १९ ॥

कुनीह्य (जट) आदिको २५० पण, और जो टनमें बढ़िया बाजे आदि भी यनाता जानते हों, उन्हें दुगना अर्थात् ५०० पण दिया जाय ॥१६॥१७॥ अन्य साधारण कारीगरोंको १२० पण दिया जाय ॥ १८ ॥ पशु तथा मनुष्योंके परिवारक और उनके सुलिया, नारीर परिवारक (स्नानादि करानेवाले) गौ आदिकी रक्षा करनेवाले, और धेगारियोंको ६० पण चापिँरु धैतन दिया जाय ॥ १९ ॥

कार्ययुक्तारोहकमाणवकशैलखनकाः सर्वोपस्थायिन आचार्या विद्यावन्तश्च पूजावेतनानि यथाह लभेरन्पञ्चशतावरं सहस्रपरम् ॥ २० ॥

आर्य (अच्छे स्वभाव वाला सत्पुरुष), युक्तारोहक (विगड़े हुए घोड़े आदिपरभी जो अच्छीतरह सवारी करसके), माणवक (वेदादि पढ़नेवाला विद्यार्थी), पत्थर आदिपर खोदनेवाला (मन्मथी करनेवाला), गाने आदिमें अत्यन्त चतुर गान्धर्वाचार्य (सर्वोपस्थायिन आचार्याः), और अच्छे विद्वान् पुरुषोंको उनके रत्कारार्थे योग्यतानुसार ५०० पणसे १००० पण तक दिया जाय ॥ २० ॥

दशपणिको योजने दूतः मध्यमः ॥२१॥ दशोत्तरे द्विगुण-
वेतन आयोजनशतादिति ॥ २२ ॥ समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो
राजा राजसूयादिषु क्रतुषु राज्ञः सारथिः साहस्रः ॥ २३ ॥

एक योजन जानेवाले मध्यम (न बहुत तेज चलनेवाले न मन्द) दूत को १० पण दिये जाय ॥ २१ ॥ दस योजनसे अधिक सौ योजन तक चलने वालेको दुगना, अर्थात् प्रतियोजन २० पण दिये जाय ॥ २२ ॥ राजसूय आदि यज्ञोंके करनेपर राजा, मन्त्री पुरोहित आदिको उनके साधारण वेतनसे त्रिगुना देवे । और राजाको यज्ञ स्थानमें लानेवाले सारथिको १००० पण दिया जाय ॥ २३ ॥

कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जनाः साहस्राः ॥२४॥ ग्रामभृतकसच्चित्रतीक्ष्णरसदभिक्षुक्यः पञ्चशताः ॥ २५ ॥
चारसंचारिणोर्धत्तृतीयशताः प्रयासवृद्धवेतना वा ॥ २६ ॥

कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक और तापस आदिके भेसमें काम करनेवाले गुप्तचरोंको (ये सब गुप्तचरोंके भेद हैं) १००० पण दिया जावे ॥ २४ ॥ गाँवके चौकर (घोषी नाई आदि) क्षयवा राँवके सुलिया सत्री (गुप्त-

पर विशेष), तीक्ष्ण, विप आदि देनेवाले, तथा भिक्षुकीके वेषमें काम करने वाले मुसचरोंको ५०० पण दिया जाय ॥ २५ ॥ चरोंको हथर उधर बेजनेवाले कर्मचारियोंको २५० पण दिया जाय । अथवा मेहनतके अनुसार सबको अधिक पेटन मिले ॥ २६ ॥

शतवर्गसहस्रवर्गणामध्यक्षा भक्तवेतनलाभमादेशं विक्षेपं च कुर्युः ॥ २७ ॥ अविक्षेपो राजपरिग्रहदुर्गराप्त्ररक्षावेक्षणेपु च नित्यमुख्याः स्युरनेकमुख्याश्च ॥ २८ ॥

उपर्युक्त भूखोंके शतवर्ग या सहस्रवर्गके अध्यक्ष, भूखोंको भसा घेतन देवे और राजाकी आज्ञाका उनसे पालन करावे तथा उनको उचित स्थानापर नियुक्त अथवा तद्वश करे ॥ २७ ॥ किसी वर्गमें ठीक कार्य न होनेपर, उसका अध्यक्ष, राजमहल, दुर्ग तथा राष्ट्रकी रक्षा और देखभालके लिए पुरपोंको नियुक्त करे, विशेष वर्गीक कर्मचारी अपने अपरक्षके अधीन रहकर अपने अपने कार्योंको ठीक ठीक करे । अध्यक्षनी अनेक होने चाहिये ॥२८॥

कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन् ॥ २९ ॥ बाल-
वृद्धव्याधिताश्चैषामनुग्राह्याः ॥ ३० ॥ प्रेतव्याधितमृतिकाकृत्येपु
चैषामर्थमानकर्म कुर्यात् ॥ ३१ ॥ अल्पकोशः कुप्यपशुक्षेत्राणि
दद्यात् ॥ ३२ ॥ अल्पं च हिरण्यम् ॥ ३३ ॥

राजकर्मचारियोंके काम करते हुए मरजानेपर उनके घेतन आदिको उनके लड़के या स्त्री लेंगे ॥ २९ ॥ मृत राजकर्मचारियोंके बालक बूढ़े और बीमार सम्बन्धियोंपर राजा सदा अनुग्रह दृष्टि धरनाये रखे ॥ ३० ॥ तथा इनके यहा मौत बीमारी या बच्चा आदि पैदा होनेपर, आर्थिक सहायता, और जाने आनेसे सत्कार आदि करता रहे ॥ ३१ ॥ खजानेमें कमी होनेपर राजा, सहायता देने योग्य पुरुषोंको कुप्य, पशु तथा जमीन आदि देवे ॥ ३२ ॥ सुवर्ण आदि बहुत घोडा देवे ॥ ३३ ॥

शून्यं वा निवेशयितुमभ्युत्थितो हिरण्यमेव दद्यात् ॥ ३४ ॥
न ग्रामं ग्रामसजातव्यवहारस्थापनार्थम् ॥ ३५ ॥ एतेन मृताना-
ममृतानां च विद्याकर्मभ्यां भक्तवेतनविशेषं च कुर्यात् ॥ ३६ ॥

परन्तु यदि राजा निर्जन प्रदेशोंको बसाना चाहे, तो स्वर्णही अधिक देवे ॥ ३४ ॥ जमीन आदि न देवे । जिससे कि उसे हुए भावके मुख्य आदिका निगम, व्यवहारकी स्थापनाके लिये ठीक सौर पर होसके । (अर्थात्

अमुक गांवमें इतना सुवर्ण खप्य होगया है, उससे इतनी अमदनी अत्ररय होनी चाहिये, इस प्रकारके व्यवहारका निश्चय करनेके लिये) ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार श्यायी या अस्थायी कर्मचारियोंके विद्या और कार्यकी न्यूनताधिकताके अनुसार, उन्हें न्यून या अधिक वेतन तथा भत्ता दिया जावे ॥ ३६ ॥

पाटिवेतेनस्याढकं कृत्वा हिरण्यानुरूपं भक्तं कुर्यात् ॥ ३७ ॥
पत्न्यश्वरथद्विपाः सूर्योदये बहिः संधिदिवसत्रजं शिल्पयोग्याः कुर्युः
॥ ३८ ॥ तेषु राजा नित्ययुक्तः स्यादभीक्षणं चैपां शिल्पदर्शनं
कुर्यात् ॥ ३९ ॥

६० पणके पीछे एक आढकभर अन्न दिया जावे, इसीके अनुसार वेतन जैसे २ न्यून या अधिक हो, वैसेही घेमे अन्न (भक्त भत्ता) भी न्यून अथवा अधिक दिया जाय ॥ ३७ ॥ अमावस्या आदि छुट्टीके दिनोंको छोड़कर सूर्योदय होनेपर ही पदाति, अश्वारोही, रथारोही, और गजारोही सेनाओंको कवायद सिखलाई जावे ॥ ३८ ॥ राजाको चाहिए कि वह सेनाओंपर बराबर सदा ध्यान रखे । और जटरा जहरी उनकी कवायद आदि को देखता रहे ॥ ३९ ॥

कृतनरेन्द्राङ्गं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत् ॥ ४० ॥
अशस्त्राश्वोर्युरन्यत्र मुद्रानुज्ञातात् ॥ ४१ ॥ नष्टं विनष्टं वा द्विगुणं
दद्यात् ॥ ४२ ॥

और शस्त्रचर्चा (कवायद) के बाद, राजाकी मुद्रा (मोहर) से चिन्हित कीजी हथियारों और कवच आदिको आयुधागारमें रखा दिया जावे ॥ ४० ॥ जिनको हर समय हथियार रखनेका लैसन्स मिला हुआ है, उनको छोड़कर बाकी सब सिपाही आदि बिना ही हथियाराक इधर उधर भावें जावें ॥ ४१ ॥ जो हथियार खोजाय या दूटफूट जाय, उसका दुगना मूल्य उससे वसूल किया जाय ॥ ४२ ॥

विध्वस्तगणनां च कुर्यात् ॥ ४३ ॥ सार्धिकानां शस्त्रावरण-
मन्तपाला गृह्णीयुः समुद्रमवचारयेयुर्वा । ४४ ॥ यात्रामभ्युत्थितो
वा सेनामुद्योजयेत् ॥ ४५ ॥

आयुधशाला आदिमें दूट या मट्टहुए हथियारोंका बराबर गिनती करता रहे ॥ ४३ ॥ दूसरे देशसे आनेवाले व्यापारियोंक हथियारा और कवचको अन्तपाल (सीमा निरीक्षक अधिकारी) रखे । जिनके पास लैसन्स होवे उन्हें छोड़के, अर्थात् उनसे हथियार न लेवे, उन्हें सशस्त्र ही देशमें आजाजदे ॥ ४४ ॥

किसीपर चढाईकी सैयारी करनेवाला राजा अपनी सेनाको अच्छी तरह इकट्ठा करलेवे ॥ ४५ ॥

ततो वैदेहकव्यञ्जनाः सर्पण्यान्यायुधीयेभ्यो यात्राकाले
द्विगुणप्रत्यादेयानि दयुः ॥ ४६ ॥ एवं राजपण्ययोगविक्रयो
वेतनप्रत्यादानं च भवति ॥ ४७ ॥

और फिर यात्राके समय, राजाके द्वारा नियुक्तहुए हुए पुरय व्यपारियों के भेसमें युद्धकी सम्पूर्ण आवश्यक सामग्रीको सिपाहियोंके हाथ हुग्ने दामों पर धेरे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार राजकीय पदार्थोंका विषयभी होजायगा, और सिपाहियोंको दिया हुआ वेतन, फिर शाही खजानेमें कुछ न कुछ छोट आयगा ॥ ४७ ॥

एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावामेति ॥ ४८ ॥
इति भक्तवेतननिकल्पः ॥ ४९ ॥

इसप्रकार भाय व्ययकी अच्छी तरह देखभाल करनेवाला राजा, कभी भी अधिक या सैनिक आपत्तिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४८ ॥ यहाँतक भक्त वेतनके विषयमें विविध विचार किया गया ॥ ४९ ॥

सत्त्रिणश्चायुधीयानां वेदयाः कारुकुशीलवा ।

दण्डवृद्धाश्च जानीयुः शौचाशौचमतन्द्रिताः ॥ ५० ॥

इति योगवृत्त पञ्चमे ऽधिकरणे भृत्यभरणस्य नृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितखिनवति ॥ ९३ ॥

सत्री, वेदया, कारीगर और पुराने युद्ध सैनिक, यही सावधानीके साथ सिपाहियोंकी हंमानदारी (सचाईसे काम करना=शौचम्) और वेईमानीका (अशौचम्) जानें, । अर्थात् उनके काम करनेके दगका सदा निरीक्षण करते रहें ॥ ५० ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

९२ प्रकरण

मन्त्री आदि राजकर्मचारियोंका राजाके प्रति व्यवहार । ।

लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिरसंपन्नं प्रियदितद्वारेणा-

श्रयेत् ॥ १ ॥ यं वा मन्येत यथाहमाश्रयेप्सुरेवमसां विनयेप्सुरा-
भिगामिकगुणयुक्त इति ॥ २ ॥

सांसारिक व्यवहारोंमें चतुर पुरुष, आत्मसम्पन्न (महाकुलीन और देवी
शुद्धि आदिसे युक्त), तथा योग्य अमाश्रयोंसे युक्त राजाका, राजाके प्रिय और
हितैषी पुरुषोंके द्वारा आश्रय लेवे ॥ १ ॥ यदि ऐसा राजा न मिले, तो जिसको
यह समझे कि—'जैसे मैं अच्छा आश्रय चाहता हूँ, ऐसे ही यह विद्यावृद्ध अनु-
भवी पुरुषको चाहता है' ऐसे आत्मसम्पन्न राजाका आश्रय लेवे ॥ २ ॥

द्रव्यप्रकृतिहीनमप्येनमाश्रयेत् ॥ ३ ॥ न त्वेवानात्मसंपन्नम्
॥ ४ ॥ अनात्मवान्हि नीतिशास्त्रद्वेपादानर्थ्यसंयोगाद्वा प्राप्यापि
महदैश्वर्यं न भवति ॥ ५ ॥

चाहे वह द्रव्य प्रकृति हीनही हो, अर्थात् श्रेष्ठ गुणवाले अमाश्रय आदिसे
युक्त न भी हो ॥ ३ ॥ परन्तु जो राजा आत्मसम्पन्न न होवे, चाहे वह अमाश्रय
प्रकृतिसे युक्त हीहो, उसका आश्रय कदापि न लेवे ॥ ४ ॥ क्योंकि आत्मस-
म्पत्तिहीन राजा, नीतिशास्त्र आदिकी जानकारी न रखनेके कारण अधवा अन-
र्थकारी मृगया घूतआदि कार्योंके करने, या इस प्रकारके पुरुषोंकी संगति करने
के कारण, महान् पितृ पैतामह पैदवर्षको प्राप्त करकेभी नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

आत्मवति लब्धावकाशः शास्त्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६ ॥ अवि-
संवादाद्धि स्थानस्वैर्यमवामोति ॥ ७ ॥ भतिकर्मसु पृष्टः तदात्वे
चायत्पां च धर्मार्थसंयुक्तं समर्थं प्रवीणवदपरिपुङ्गवः कथयेत् ॥ ८ ॥

यदि राजा आत्मसम्पन्नहो तो अवसर आनेपर उसे शास्त्रानुकूल सम्मति
देवे ॥ ६ ॥ शास्त्रके साथ उसकी सम्मतिवा मिलान हो जानेपर राजाको यह
निश्चित होजाता है कि वह नीतिशास्त्रके तत्वको जानने वाला है, और फिर
उसकी किसी अधिकारी पदपर स्थायी नियुक्ति होजाती है ॥ ७ ॥ भक्ति विचार-
णीय विषयोंके सम्बन्धमें उससे कुछ पूछे जानेपर, उस समय या भविष्यत्में
धर्म और अर्थसे युक्त, शक्तिस्वप्न चतुर पुरुषोंके सम्मान, सभामें न डरता हुआ
भाषण करे ॥ ८ ॥

ईप्सितः पणेत ॥ ९ ॥ धर्मार्थानुयोगमविशिष्टेषु चलव-
त्संपुक्तेषु दण्डधारणं बलवत्संयोगे तदात्वे च दण्डधारणमिति
न कुर्याः ॥ १० ॥ पक्षं वृत्तिं शुद्धं च मे नोपहन्याः ॥ ११ ॥
संज्ञय च त्वां कामक्रोधदण्डनेषु वारयेयमिति ॥ १२ ॥

यव राजा उसको अमात्य बनाना चाहे, तो यह राजाके साथ इस प्रकार निम्नलिखित शर्तें करे कि — ॥ ९ ॥ जो पुरुष साधारण बुद्धि वाले हैं और धर्म अर्थके तत्वोंको नहीं समझते, उनसे कभी जिज्ञासाके तीरपर धर्म अर्थके सम्बन्धमें प्रश्न न करना, तथा बलवान्, या बलवान् जिसके सहायक हों ऐसे शत्रुपर दण्ड न उठाना, और मेरे सम्बन्धमें भी किसी बातपर कौरन ही दण्ड न उठाना ॥ १० ॥ मेरे पक्ष, मेरे व्यवहार या जीविका तथा मेरे गुप्त रहस्योंको, कभी न खोलना या नष्टकरना ॥ ११ ॥ काम या क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित दण्ड देनेके लिए तैयार हुए २ तुमको, मैं परापर इशारोंसे रोक्ना । तुम इसका ध्यान रखना और बुरा न मानना ॥ १२ ॥

आदिष्टः प्रदिष्टायां भूमावनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १३ ॥ उप-
विशेच्च पार्श्वतः संनिकृष्टः विप्रकृष्टः परासनम् ॥ १४ ॥ विगृह्य
कथनमसभ्यमप्रत्यक्षमश्रद्धेयमनृतं च वाक्यमुच्चैरनर्मणि हासं
वातष्टीवने च शब्दवती न कुर्यात् ॥ १५ ॥

राजाकी अनुमतिसे किसी अधिकार पदपर नियुक्त हुआ २ कार्य करे ॥ १३ ॥ तथा राजाके समीप इधर उधर (सामने नहीं) न बहुत दूर न अति समीप श्रेष्ठ उचित आसनपर बैठे ॥ १४ ॥ आक्षेप पूंजक, असभ्य, परोक्षविषयक, अविश्वसनीय, तथा असत्य कथन कभी न करे, चर्माके ऊंचे कभी न हसे, शब्दके साथ ढकार या खकार कभी न लेने ॥ १५ ॥

मिथः कथनमन्येन जनघादे द्वन्द्वकथनं राज्ञो वैपमुद्धतकुह-
कानां च रत्नातिशयप्रकाशाभ्यर्थनमेकाक्षयोष्ठनिर्भोगं भ्रुकुटीरुर्म
वाक्यापक्षेपणं च झुपति बलप्रत्संयुक्तविरोधं स्त्रीभिः स्त्रीदर्शिभिः
सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावश्लिसानर्थैश्च प्रतिसंसर्गमेकार्थचर्या संघातं च
वर्जयेत् ॥ १६ ॥

राजाकी उपास्थितिमें ही किसी दूसरेके साथ मिलकर बातचीत करना, किसी अपराह (जनघात) की घातत निश्चित रूपसे हां या ना कहदेना, राजा के या उद्धत पापण्डितोंके वेशको धारण करना, राजासे धारण करने योग्य श्योंकी अपने किए सुले तीर पर प्रार्थना करना, -गुक जाल या पकू होंठको टेंडा करके खोलना, सीं चढाना, राजाके खोलते हुए बीचमें बात काटना, बलवान्के सम्बन्धीसे क्षमता करना, स्थियोंके साथ स्थियोंके दूखनेवालोंके साथ दूसरे देशके दूतोंके साथ राजाके दुश्मन उदासीन आर विरहृत तथा अनर्थकारीकार्य

या पुरुषोंके साथ संसर्ग करना, पृथ्वी बातको करते चले जाना, और गुट बनाकर रहना आदि सब कामोंको सर्वथा छोड़ देवे ॥ १६ ॥

अहीनकालं राजार्थं स्वार्थं प्रियहितैः सह ।

परार्थदेशकाले च श्रूयाद्धर्मार्थसंहितम् ॥ १७ ॥

पृष्टः प्रियहितं श्रूयान्न श्रूयादहितं प्रियम् ।

आप्रियं वा हितं श्रूयाच्छृण्वतोऽनुमतो मिथः ॥ १८ ॥

राजाके मतलबकी बातको उससे फौरन कह देवे, अपने मतलबकी बातको राजाके प्रिय और हितकारी पुरुषोंसे फदे, दूसरेके मतलबकी बातको स्थान और अवसर देखकर कहे, तथा जो कुछ कहे यह सब धर्म और अर्थसे युक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ राजा के पूछनेपर जबकि यह ध्यानपूर्वक सुन रहा हो, उसको अनुमति लेकर प्रिय और हितकारी बातको कहे, अहितकार, प्रिय कभी न कहे, किन्तु अप्रिय हितकारी बातको अवश्य कह देवे ॥ १८ ॥

तूष्णीं वा प्रतिवाक्ये स्याद्द्वेष्यादींश्च न वर्जयेत् ।

अप्रिया अपि दक्षाः स्युः तद्भावाद्ये वहिष्कृताः ॥ १९ ॥

अनर्थाश्च प्रिया दुष्टाश्चित्तज्ञानानुवर्तिनः ।

अभिहास्येप्रभिहसेद्दोरहासांश्च वर्जयेत् ॥ २० ॥

उत्तर देते समय यदि अप्रिय वाक्य सुनानेमें डर हो, तो चुप हो जावे । और राजाके द्वेष्य पुरुषोंका कथन न करे । क्योंकि ऐसा करनेसे राजा की इच्छानुसार न चलनेवाले चतुर पुरुष भी राजाके अप्रिय हो जाते हैं ॥ १९ ॥ और राजाकी इच्छानुसार चलनेवाले अनर्थकारी पुरुष भी राजाके प्रिय देखे गये हैं । राजाके हंसनेपर हसे, काठकी तरह खड़ा न रहे । और अटहासको सर्वथा छोड़ देवे ॥ २० ॥

परात्संक्रामयेद्दोरं न च घोरं परे वदेत् ।

तितिक्षेतात्मनश्चैव क्षमावान्पृथिवीसमः ॥ २१ ॥

किसी घोर भयावह संवादको दूसरेके द्वारा कहलावे, स्वयं कभी न न कहे । यदि अपने ही ऊपर कोई ऐसी बात आजावे, तो पृथिवीके समान क्षमाशील होकर उसका सहन करे ॥ २१ ॥

आत्मरक्षा हि सततं पूर्वं कार्या विजानता ।

अप्राथिव हि संश्रोक्ता धृत्वी राजोपजीविनाम् ॥ २२ ॥

एकदेशं दहेदग्निः शरीरं वा परं गतः ।

सपुत्रदारं राजा तु घातयेद्बर्धयेत वा ॥ २३ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे अधिकरणे अनुजीविवृत्त चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

आदितशत्रुर्नयति ॥ १४ ॥

इस लिये समझदार कर्मचारीको सबसे पहिले यही सावधानीके साथ अपनी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि राजाके आश्रय रहने वाले पुरपोंकी स्थिति भूमिमें खेल करने वालेके समान कही गई है ॥ २२ ॥ अग्नि तो शरीरके एक-देश, वा अधिक से अधिक सारे शरीरको जला सकती है, परन्तु राजा पुत्र कलत्र सहित सम्पूर्ण परिवारको नष्ट कर सकता है। तथा अनुमूल होनेपर उन्नत भी कर सकता है ॥ २३ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१३ प्रकरण

व्यवस्था का पालन ।

नियुक्तः कर्मसु व्ययविशुद्धमुदयं दर्शयेत् ॥१॥ आभ्यन्तरं
घातं गुह्यं प्रकाश्यमात्ययिकसुपेक्षितव्यं वा कार्यमिदमेवमिति
विशेषयेच्च ॥ २ ॥

अपने कार्योंपर नियुक्त हुआ २ समाहर्त्ता आदि कर्मचारी पुरुष, स्वर्धको अलहदा दिराफर शुद्ध आमदनी राजाको दिखावे ॥ १ ॥ दुर्ग में होने वाले और बाहर जनपदमें होने वाले कार्योंको, तथा ठिपाकर खुलेतौरपर विज्ञ पूर्वक और उपेक्षा पूर्वक किये जाने वाले कार्योंको—‘यह इस प्रकार किया गया है’ इसतरह राजाके सामने साफ २ कहे, और इन सब बातोंको राजकीय पुस्तकमें लिखादेवे ॥ २ ॥

मृगयाशूतमद्यस्त्रीषु प्रसक्तं चेत्प्रमत्तवर्तेत ॥ ३ ॥ प्रशंसाभि-
रासन्नश्चास्य व्यसनोपघाते प्रयतेत ॥ ४ ॥ परोपजापातिसंधानो-
पाधिभ्यश्च रक्षेत् ॥ ५ ॥

राजा यदि मृगया शूत मद्य और स्त्रियोंमें आसक्त रहता हो, तो उसकी प्रशंसा करते हुए उसका अनुगामी बनारह ॥ ३ ॥ और इसके पास रहता

हुआ इसे व्यसनोसे सुधानेका यत्न करे ॥ ४ ॥ तथा शत्रुओंके द्वारा भेद डालने वाले, टगने वाले, और विष आदि देनेवाले पुरुषोंमें राजाकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

झङ्गिताकारी चास्य लक्षयेत् ॥ ६ ॥ कामद्वेषहर्षदैन्यव्यवसायभयद्वन्द्वविषर्षासमिङ्गिताकाराभ्यां हि मन्त्रसंवरणार्थमाचरन्ति प्रजाः ॥ ७ ॥

राजाकी चेष्टाओंको और आचारको बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे बार बार देख्यता रहे ॥ ६ ॥ क्योंकि अपने गुप्त रहस्योंको छिपाये रखनेके लिये शुद्धिमान् पुरुष, काम, द्वेष, हर्ष, दैन्य, व्यवसाय (किसी कार्यके करनेका निश्चय), भय, द्वन्द्वों (सुख दुःख आदि) के विपर्यासको, चेष्टाओं तथा विशेष आकृतियोंके द्वारा ही यत्नलाते हैं । अतः चेष्टा आदिके जाननेमें बड़ा ध्यान रखना चाहिये ॥ ७ ॥

दर्शने प्रसीदति ॥ ८ ॥ वान्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ९ ॥
 आसनं ददाति ॥ १० ॥ विपिक्तो दर्शयते ॥ ११ ॥ शङ्कास्थाने
 नातिशङ्कते ॥ १२ ॥ कथार्था रमते ॥ १३ ॥ परिज्ञाप्येष्वेषुक्षते
 ॥ १४ ॥ पथ्यमुक्तं सहते ॥ १५ ॥ समयमानो नियुंक्ते ॥ १६ ॥
 हस्तेन स्पृशति ॥ १७ ॥ श्लाघ्ये नोपहसति ॥ १८ ॥ परोक्षं
 गुणं ब्रवीति ॥ १९ ॥ भक्ष्येषु स्मरति ॥ २० ॥ सह विहारं
 याति ॥ २१ ॥ व्यसने ऽभ्यवपद्यते ॥ २२ ॥ तद्भक्तान्पूजयति
 ॥ २३ ॥ गुह्यमाचष्टे ॥ २४ ॥ मानं वर्धयति ॥ २५ ॥ अर्थ
 करोति ॥ २६ ॥ अनर्थं प्रतिहन्ति ॥ २७ ॥ इति तुष्टज्ञानम् ॥ २८ ॥

राजाकी प्रसन्नताको निम्नलिखित बातोंसे समझना चाहिये — वह देखनेपरही प्रसन्न होजाता है ॥ ८ ॥ उसकी कही हुई बातको ध्यान पूर्वक आदरसे सुनता है ॥ ९ ॥ उसको बैठनेके लिये उचित आसन देता है ॥ १० ॥ विपिक्त=एकान्त स्थान अथवा अन्त पुर आदिमें भी उसे दर्शन देता है ॥ ११ ॥ शङ्काका भयसर होनेपर भी, विश्वासके कारण अधिक शङ्का नहीं करता ॥ १२ ॥ उसके साथ बातचीत करनेमें कुछ सुखका अनुभव करता है ॥ १३ ॥ दूसरोंके यथायुक्त हुपु कार्योंमें भी अपने प्रिय पुरुषकी सलाहकी इच्छा रखता है ॥ १४ ॥ हितसे कही हुई कठोर बातको भी सहन करलेता है ॥ १५ ॥ शुष्कराता हुआ उसे किसी कामपर लगाता है ॥ १६ ॥ हाथसे छूता है, अथवा छूते हुपु बात करता है ॥ १७ ॥ प्रशंसा योग्य किये गये कामपर उसके सामनेही हैसता है ॥ १८ ॥ उसके पीछे उसके गुणोंकी प्रशंसा करता है ॥ १९ ॥ भोजनोंके सम-

यमें याद करता है, अर्थात् विशेष भोजनोंमें उसेभी बुलाता है ॥ २० ॥ उसके साथ २ सेलने कूरने आदिके लिये जाता है ॥ २१ ॥ उसके ऊपर कोई दुःख आनेपर, उसे दृष्टानेके लिये पूरी सहायता करता है ॥ २२ ॥ उसके साथ वजु-राग रखने वालोंका रूप सरकार करता है ॥ २३ ॥ अपने गुप्त रहस्योंको भी उसके सामने कहदेता है ॥ २४ ॥ उसके मान सरकार आदिको खूब बढ़ाता है ॥ २५ ॥ उसकी दृष्टानुसार आर्थिक सहायता देता है ॥ २६ ॥ और अन-र्थका निवारण करता है ॥ २७ ॥ इन सब बातोंसे राजाकी प्रसन्नता जानी जाती है ॥ २८ ॥

एतदेव विपरीतमनुष्टस्य ॥ २९ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः ॥३०॥
 संदर्शने कोपः ॥ ३१ ॥ वाक्यस्याश्रयणप्रतिषेधौ ॥३२॥ आस-
 नचक्षुषोरदानम् ॥ ३३ ॥ वर्णस्वरभेदः ॥३४॥ एकाक्षिभ्रुकुट्यो-
 ष्टनिर्भेदः ॥ ३५ ॥ खेदश्चासास्मितानमस्थानोत्पत्तिः ॥ ३६ ॥
 परिमन्त्रणम् ॥ ३७ ॥ अकस्माद्भजनम् ॥ ३८ ॥ वर्धनमन्यस्य
 ॥ ३९ ॥ भूमिगात्रविलेखनम् ॥४०॥ अन्यस्योपतोदनम् ॥४१॥
 विद्यावर्णदेशकुत्सा ॥ ४२ ॥ समदोषनिन्दा ॥ ४३ ॥ प्रतिदोष-
 निन्दा ॥ ४४ ॥ प्रतिलोमस्तवः ॥४५॥ सुकृतानपेक्षणम् ॥४६॥
 दुष्कृतानुकीर्तनम् ॥ ४७ ॥ पृष्ठावधानम् ॥ ४८ ॥ अतित्यागः
 ॥ ४९ ॥ मिथ्याभिभाषणम् ॥ ५० ॥ राजदर्शिनं च तद्दृत्तान्य-
 त्वम् ॥ ५१ ॥

जब राजा अप्रसन्न हो, तो येही सब बातें उल्टी होजाती हैं ॥ २९ ॥ और कुछ अधिक बातें भी अप्रसन्नता जाननेके लिये बताते हैं ॥ ३० ॥ जिसपर राजा अप्रसन्न हो उसे देखतेही क्रुपित होजाता है ॥ ३१ ॥ उसकी कही हुई बातको सुनताही नहीं, यां रोक देता है ॥ ३२ ॥ बैठनेके लिये आसन नहीं देता और उसकी ओर भाँस भी नहीं उठाता ॥ ३३ ॥ मुँह बँदाकर और आवाज बंदकर बोलता है ॥ ३४ ॥ एक आँसुसे या भीचटाकर, अथवा होठ टेढ़ा फाँके बोलता है ॥ ३५ ॥ और बिनाही अप्रसर उसे पसीना आजाता है, लम्बा साँस चलने लगता है, तथा वह मुस्कराने लगता है ॥ ३६ ॥ दूसरेके साथ बातचीत करने लगता है ॥ ३७ ॥ अचानक उठकर चला जाता है ॥३८॥ हस्तको छोड़कर दूसरेकी प्रशंसा करने लगता है ॥ ३९ ॥ भूमि अथवा अपने शरीरको गायनसे क्रुदने लगता है ॥ ४० ॥ दूसरे किसीको सारने लगता है

॥ ४१ ॥ उसके विद्या उसके धर्म और उसके देशकी निन्दा करने लगता है ॥ ४२ ॥ उसके किसी दोषकी ॥ ४३ ॥ या उसके समान किसी दूसरेके दोषकी निन्दा करने लगता है ॥ ४४ ॥ व्याजस्तुति करने लगता है ॥ ४५ ॥ उसके अच्छे किये हुए कामकी भी कुछ पत्राह नहीं करता ॥ ४६ ॥ और बिगड़े हुए कामको सब जगह फह देता है ॥ ४७ ॥ उसके सीटनेपर पीउसे उसे बड़े ध्यानसे देखता है ॥ ४८ ॥ समीप आनेपर तक्षण किसी कार्यके बहाने उसे वहाँसे दूर हटा देता है ॥ ४९ ॥ और उसके साथ मिथ्या-भाव-शून्य अर्थात् सारहीन भाषण करता है ॥ ५० ॥ अन्य राजनेवकोंको उसके व्यवहारमें भेद डालता है ॥ ५१ ॥

वृत्तिविकारं चावेक्षेताप्यमानुषाणाम् ॥ ५२ ॥ अयमृचैः
सिञ्चतीति कात्यायनः प्रयव्राज ॥ ५३ ॥

मनुष्योंसे अतिरिक्त पशु और पक्षियोंके भी वृत्तिविकारको (मानसिक माना वृत्तियोंके अनुसार विहृत हुए २ मुखादि आकारोंको) अच्छी तरह ध्यानपूर्वक देखना चाहिये ॥ ५२ ॥ छ यह जल सींचनेवाला आज ऊपरसे जल सींच रहा है, इस बातको देखकर मन्त्री कात्यायन राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५३ ॥

कौञ्चो ऽपसव्यमिति कणिङ्को भारद्वाजः ॥ ५४ ॥

छ इसका इतिहास इस प्रकार है:—पौण्ड्रदेशमें सोमदत्त नामका राजा रहता था । उसके पुत्रने फोह अपराध किया । राज-पुत्रको कैद करनेके लिये राजाने अपने मन्त्री कात्यायनके साथ इस विषयमें सलाह की । राज-पुत्रके पक्षके लोगोंको इस बातका पता लग गया, और उन्होंने राजकुमारको वहाँसे किसी अन्य सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दिया । राजाने समझा कि मन्त्री कात्यायनने ही हमारे भेदको खोल दिया है । उसका पथ करनेके लिये अपने नौकरों को उसने आज्ञा देदी । किसी जल सींचनेवाले आदमीने राजाकी इस आज्ञाको किसी तरह सुन लिया । जब कि मन्त्री कात्यायन उधरकी आरहा था, वह जलसेचउ ऊपरसे ही जल डालकर सींचता रहा । यह देख मन्त्रीने अपने चित्तमें विचार किया, कि कलतक तो यह मेरे ऊपर छोट गिरजानेके दरसे धीरे २ नीचेसे सींचता था, पर आज इसने कुछ परवाह न की, मालूम होता है मेरे प्रति, राजाका फोह महान कोष इसे मालूम होगया है, इसलिए इसके चित्तमें यह विकार हुआ है । यह निश्चय करके मन्त्री कात्यायन, तत्कालही राजाको छोड़ कर चला गया ॥ ५३ ॥

‡ हाथीने ऊपर पानी डाल दिया यह देखकर किञ्चक नामका आचार्य राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५७ ॥

रथाश्वं प्राशंसीदिति पिशुनः ॥ ५८ ॥

‡ रथके घोड़ेकी प्रशंसा सुनकर पिशुन नामका आचार्य अपने राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५८ ॥

प्रतिरवणे शुनः पिशुनपुत्रं इति ॥ ५९ ॥

‡ कुत्तेके भूकनेपर पिशुन आचार्यका पुत्र राजाको त्यागकर चला गया ॥ ५९ ॥

अर्थमानावक्षेपे च परित्यागः ॥ ६० ॥ स्वामिशीलमात्मनश्च

किल्बिषमुपलभ्य वा प्रतिकुर्वीत मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेत् ॥ ६१ ॥

‡ यज्ञालमे शतानन्द नामक राजाके यहां, एक किञ्चक नामका आचार्य रहता था। यह राजाकी सवारीके हाथीको निरयप्रति पुषकारकर फिर राजकुलमें जाया करता था। किसी दिन हाथीके ऊपर चढ़े हुए राजाने आचार्यके सम्बन्धमें द्रोहपूर्वक मन्त्रणा की। इस बातको जानकर दूसरे दिन जब आचार्य हाथीके पास आया, तो उसने अपनी सूइसे आचार्यके ऊपर जड़ फेंक दिया। इस घेष्टसे, राजाके चित्तमें अपनी ओरसे विकार जानकर, वह राजाको छोड़ चला गया ॥ ५७ ॥

‡ पिशुन नामका आचार्य उज्जयिनीमें प्रद्योत राजाके पुत्र पालकको राजनीति विद्या पढ़ाता था। पढ़ाई समाप्त होजानेपर, राजाने पिशुनके घनको अपहरण करनेके लिये अपने पुत्रसे मन्त्रणा की। पुत्रने गुरुद्रोह न करते हुए अगले दिन जुते हुए रथको आचार्यके सामने खड़ा करके कहा कि ये घोड़े चलनेमें बहुत तेज हैं, एक दिनमें ३०० योजन जासकते हैं। आचार्य पिशुनने अपने घले जानेका यह इशारा जान कर तत्काल ही उस राजा को छोड़ दिया ॥ ५८ ॥

‡ पिशुन आचार्यका पुत्र बाल्यकालमेंही सम्पूर्ण राजनीति तत्त्वोंको जानकर राजाकी सेवा करता था। राजा उसको विद्वान् जानकर सदा उसका अनुसरण करता था। एतद्वार राजाने विचार किया कि अभी यह बालक होने से मन्त्री पदके योग्य तो है नहीं, इस लिए इसे युवा होनेतक बांधकर रखना चाहिये, नहीं तो यह दूसरे देशको चला जायगा। राजाकी इस सलाहको जान कर पूर्व कुत्ता पिशुनपुत्रके आगे धीर २ भीकताथा। इससे पिशुनपुत्रने राजाके चित्तके विकारका अनुमान करके उसे छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

सम्पत्ति और सरकारका नाश करनेवाले राजाको भी त्याग देना चाहिए ॥ ६० ॥ अथवा राजाके स्वभाव और अपने अपराधपर विचार करके, राजाको न छोड़नेकी इच्छा होनेपर, उसका प्रतीकार करना चाहिए । अथवा राजाके किसी समीपके सम्बन्धी या मित्रका आश्रय लेना चाहिए, जिसके द्वारा राजा को प्रसन्न किया जा सके ॥ ६१ ॥

तत्रस्थो दोषनिर्घातं मित्रैर्भर्तारि चाचरेत् ।

ततो भर्तारि जीयेद् वा मृते वा पुनराव्रजेत् ॥ ६२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे अधिकरणे समयाचारिकं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भाद्रितः पञ्चमवलिः ॥ ९५ ॥

राजाके पास रहता हुआ ही, मित्रोंके द्वारा अपने अपराधकी सफाई करावे, और राजाके प्रसन्न होनेपर चाहे उसीके आश्रयमें रहे, या उसके मर जानेपर फिर आ जावे ॥ ६२ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें पान्चवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

९४ - ९५ प्रकरण

राज्यका प्रतिसन्धान और एकेश्वर्य ।

राजव्यसनमेवममात्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १ ॥ प्रागेव मरणा-
बाधभयाद्ब्राह्मः प्रियहितोपग्रहेण मासद्विमासान्तरं दर्शनं स्थापयेत्
॥ २ ॥ देशपीडापहममित्रापहमायुष्यं पुत्रोयं वा कर्म राजा सा-
धयतीत्यपदेशेन राजव्यञ्जनमनुरूपवेलायां प्रकृतीनां दर्शयेत् ॥३॥

राजापर भाई हुई आपत्तियोंका प्रतीकार, अमात्य इस प्रकार करे ॥१॥

राजाकी मृत्युके भयसे पूर्व ही, राजाके प्रिय और हितैषी पुरुषोंकी सलाह लेकर एक महीना या दो महीने बाद राजाके दर्शनकी तिथि नियुक्त करदे ॥२॥ और यह यद्धाना करे कि राजा आजकल, देशकी पीड़ाको दूर करनेवाले, शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, आयु देनेवाले तथा पुत्र देनेवाले कर्मका अनुष्ठान कर रहा है, इत्यादि । जब राजाके दर्शनका ठीक समय आवे, तो राजाके भेस में किसी पुरूपको राजाके सामने दिखला देवे ॥ ३ ॥

मित्रामित्रदूतानां च ॥ ४ ॥ तैश्च यथोचितां संभाषामगा-
त्यसुखो गच्छेत् ॥ ५ ॥ दौवारिकान्तर्वाशिकमुखाय यथोक्तं राजे-

प्रणिधिमनुवर्तयेत् ॥ ६ ॥ अपकारिषु च हेडं प्रसादं वा प्रकृतिकान्तं दर्शयेत् ॥ ७ ॥ प्रसादेमेवोपकारिषु ॥ ८ ॥

मित्र, शत्रु, और दूतोंको (अथवा मित्रके दूत तथा शत्रुके दूतोंको) भी उसी यत्नावली राजाको दिखा देवे ॥ ४ ॥ उन लोगोंके साथ वह राजा अमात्यके द्वाराही यथोचित सम्भाषण करे ॥ ५ ॥ पहिले प्रसिद्ध किये हुए राजाके कार्यके विषयमें द्वारपाल और अन्त पुरके रक्षक पुरपोंके द्वारा ही कहलवाये ॥ ६ ॥ अपकार करनेवाले लोगोंपर अमात्यकी सम्मतिले कोप अथवा प्रसन्नता दिखावे ॥ ७ ॥ और उपकार करनेवालोंपर प्रसन्नता ही दिखावे, कोप नहीं ॥ ८ ॥

आप्तपुरुषाधिष्ठितौ दुर्गप्रत्यन्तस्थो वा कोशदण्डावेकस्यौ कारयेत् ॥ ९ ॥ कुल्यकुमारमुख्यांश्चान्यापदेशेन ॥ १० ॥ यश्च मुख्यः पक्षवान्दुर्गाटवीस्थो वा वैगुण्यं भजेत तमुपग्राहयेत् ॥ ११ ॥

दुर्ग और सीमानामन्त्रके कोश तथा सेनाको किमी अल्पन्त विश्वस्त पुरुषकी देखरेखमें, किसी यज्ञानेसे इकट्ठा कर देवे ॥ ९ ॥ तथा और किसी यज्ञानेसे राजाके खान्दानी, राजकुमार, और अन्य मुख्य पुरपोंको भी एकत्रित कर देवे ॥ १० ॥ जो मुख्य (प्रधान कर्मचारी), किसीकी सहायता लेकर दुर्ग अथवा भटवीमें स्थित हुआ २ राजाके विरुद्ध हो जाये, तो उसे किसी उपायसे अपने अनुकूल बनाया जाये ॥ ११ ॥

बह्वावाधां वा यात्रां प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ मित्रकुलं वा ॥ १३ ॥ यस्माच्च सामन्तादावाधां पश्येत्समुत्सवप्रिवाहहस्तिबन्धनाश्चपण्यभूमिभटानापदेशेनाग्राहयेत् ॥ १४ ॥

अथवा उसे बहुत याथाओंसे युक्त यात्रा (भाषमण, किसी देशपर बड़ाई) पर भेज देवे ॥ १२ ॥ अथवा किसी मित्र राष्ट्रके पास उसकी सहायताका यज्ञाना करके भेज देवे ॥ १३ ॥ जिस किसी सामन्त अर्थात् समीप के राजासे याधा (कष्ट) का भय हो, उसे उत्सव, विवाह, दार्धाके पकड़ने और घोडा, अन्य माल, तथा भूमि देनेके यज्ञानेसे अपने पास बुलाकर अनुकूल पाये ॥ १४ ॥

स्वामित्रेण वा ततः संधिमदूष्यं कारयेत् ॥ १५ ॥ आटविकामित्रेर्वा वरं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥ तत्कुलीनमपरुद्धं वा भूम्येकदेशेनोपग्राहयेत् ॥ १७ ॥

अथवा अपने मित्रके द्वारा उसे अनुकूल बना लेवे, और फिर उसीके द्वारा अपने साथ अद्वेष्य (दूषित न होनेवाली) सन्धि करा लेवे ॥ १५ ॥
अथवा आठविक, तथा अपने शत्रुके साथ इस सामन्तका घेरा करा देवे ॥ १६ ॥
अथवा सामन्तके परानेके किसी आदमीको भूमिका कुछ हितता देकर अपने घरामें करलेवे और फिर उसीके द्वारा सामन्तका दमन करावे ॥ १७ ॥

कुल्यकुमारपुरुषोपग्रहं कृत्वा वा कुमारमभिपिक्तमेव दर्शयेत्
॥ १८ ॥ दाण्डकर्मिकवद्वा राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यं कारयेत्
॥ १९ ॥

राजाके मर जानेपर तो राजाके पंशज राजकुमार, तथा राष्ट्रके मुख्य कर्मचारियोंकी अनुकूलता देखकर, अभिपिक्त राजकुमारकी ही प्रजाओंके सामने दिसलावे ॥ १८ ॥ और दाण्डकर्मिक प्रकरणमें बतलाई हुई रीतिसे, राज्य कण्टकोंको उखाड़कर निष्कण्टक राज्य करावे ॥ १९ ॥

यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत्
तमेहि राजानं त्वा फरिष्यामीत्यावाहयित्वा घातयेत् ॥ २० ॥
आपत्प्रतीकारेण वा साधयेत् ॥ २१ ॥

यदि सामन्त आदिमेंसे कोई एक मुख्य इस बातसे क्रुपित होजावे, तो उससे कहे कि:—“यह बाबूक तो सर्वथा राज्यके अयोग्य है, तुम यहाँ आओ, मैं तुमको ही राजा बना दूँगा” इस प्रकार बुलाकर उसे मरवा डाले ॥ २० ॥ यदि वह न आवे, तो आपत्प्रतीकार प्रकरणमें बताई हुई रीतिसे उसे सीधा करे ॥ २१ ॥

युवराजे वा क्रमेण राज्यभारमारोप्य राजव्यसनं ख्यापयेत्
॥ २२ ॥ परभूमौ राजव्यसने मित्रेणामित्रव्यञ्जनेन शत्रोः संधिम-
वस्थाप्यापगच्छेत् ॥ २३ ॥

युवराजपर धीरे २ सम्पूर्ण राज्यका भार सौंपकर फिर राजाकी विपत्ति को सबके सामने प्रकट करे ॥ २२ ॥ यदि राजा कहीं दूसरे देशमेंही मरजावे, तो घनाघटी दुश्मन घने हुए मित्रके साथ शत्रुकी सन्धि कराकर वापस चला आवे ॥ २३ ॥

सामन्तादीनामन्यतमं वास्व दुर्गे स्थापयित्वापगच्छेत् ॥ २४ ॥
कुमारमभिपिच्य वा प्रतिव्यूहेत् ॥ २५ ॥ परेणामियुक्तो वा
यथोक्तमापत्प्रतीकारं कुर्यात् ॥ २६ ॥ एवमेकैश्वर्यममात्यः कार-
येदिति कौटल्यः ॥ २७ ॥

अथवा सामन्त आदिमेंसे किसी एकको इसके दुर्गमें स्थापित करके चला आवे ॥ २४ ॥ और राजकुमारका राज्याभिषेक करके फिर दायुके साथ युद्ध करे ॥ २५ ॥ यदि कोई अन्य दायुही इसके ऊपर चढ़ाई करदे, तो अभियास्यकर्म अधिकरणमें बतलाये हुए, याहर और भीतरकी आपत्तियोंसे बचनेके उपायोंके द्वारा उम्र आपत्तिका प्रतीकार करे ॥ २६ ॥ इस प्रकार अमात्य एकैश्वर्य राज्यका पालन करावे, यह कौटिल्यका मत है ॥ २७ ॥

नैवमिति भारद्वाजः ॥ २८ ॥ प्रम्रियमाणे वा राजन्यमात्यः
कुल्यकुमारमुख्यान्परस्परं मुख्येषु वा विक्रामयेत् ॥ २९ ॥ वि-
क्रान्तं प्रकृतिकोपेन घातयेत् ॥ ३० ॥

परन्तु भारद्वाज आचार्यका मत है कि अमात्य इस प्रकार राजपुत्रका एकैश्वर्य (एकच्छत्र) राज्य न करवावे ॥ २८ ॥ किन्तु राजाके आमन्त्रण (मरनेवाले) होनेपर, अमात्य, राजाके वंशज, राजकुमार, तथा मुख्य व्यक्तियों को परस्पर, या इनको अन्य मुख्योंके साथ लड़ा देवे ॥ २९ ॥ इनके छड़नेपर प्रजा या अमात्य आदिके कुपित होनेके कारण इनको मरवा देवे ॥ ३० ॥

कुल्यकुमारमुख्यानुपांशुदण्डेन वा साधयित्वा स्वयं राज्यं
गृह्णीयात् ॥ ३१ ॥ राज्यकारणाद्वि पिता पुत्रान्पुत्राथ पितरमाभि-
दुहन्ति ॥ ३२ ॥ किमङ्ग पुनरमात्यप्रकृतिर्हेकप्रग्रहो राज्यस्य ॥ ३३ ॥

अथवा राजाके वंशज, राजकुमार, और मुख्य व्यक्तियोंको उपांशुदण्ड से (चुपचाप कोई पद्यन्त रथकर, बिष आदि देनेसे) मरवा देवे । और अपने आपही सम्पूर्ण राज्यका मालिक बनजावे ॥ ३१ ॥ क्योंकि राज्यके लिये पिता पुत्रके साथ और पुत्र पिताके साथ अभिद्रोह करते देखे गये हैं ॥ ३२ ॥ फिर अमात्यका तो कहनाही क्या ? जोकि सम्पूर्ण राज्यकी एक बागडोर समझा जाता है ॥ ३३ ॥

तत्स्वयमुपस्थितं नावमन्येत ॥ ३४ ॥ स्वयमारूढा हि स्त्री
त्यज्यमानामिशपतीति लोकप्रवादः ॥ ३५ ॥

इस लिये स्वयं आवे हुए इतने विशाल राज्यका कभी विरस्कार न करे ॥ ३४ ॥ क्योंकि रमण करनेके लिये स्वयं आई हुई स्त्री (भी) यदि छोड़ दी जावे तो वह पुत्रको शाप देदेती है, यह बात लोक प्रसिद्ध है ॥ ३५ ॥

कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकाङ्क्षिणम् ।

दुर्लभः स पुनस्तस्य कालः कर्मचिकीर्षतः ॥ ३६ ॥

काम करनेकी इच्छासे, पुरुष धिरकालसे जिस उचित समयकी प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसा मौका कभी एकबारही उसके पास आता है। उसकी उपेक्षा करदेनेपर फिर अवसा दुर्लभ होता है। सांप निकल जानेपर लकीर पीटनेसे क्या फायदा ॥ ३६ ॥

प्रकृतिकोपकमधर्मिष्ठमनैकान्तिकं चैतदिति कौटिल्यः ॥३७॥
राजपुत्रमात्मसंपन्नं राज्ये स्थापयेत् ॥ ३८ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध कौटिल्यका मत है कि इस प्रकारकी कार्रवाई प्रजा-को रष्ट करनेवाली, अधमसे युक्त और सदा न होने वाली है ॥ ३७ ॥ अतः आत्मसम्पन्न राजपुत्रको ही राजसिंहासनपर अभिषिक्त करदे ॥ ३८ ॥

संपन्नाभावे व्यसनिनं कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वा
पुरस्कृत्य महामात्रान्सन्निपात्य न्यात् ॥ ३९ ॥

यदि कोई राजकुमार आत्मसम्पन्न न होवे, तो व्यसनी (जी मद्य आदि में आसक्त) राजकुमारको, राज कन्याको, या गर्भिणी महाराणीको, सामने कर वं, राष्ट्रके सम्पूर्ण महान व्यक्तियोंका एकत्रित करके कहे, कि—॥ ३९ ॥

अयं वो निक्षेपः ॥ ४० ॥ पितरमस्यावेक्ष्य सत्त्वाभिजन-
मात्मनश्च ॥ ४१ ॥ ध्वजमात्रोऽयं भवन्त एव स्वामिनः ॥ ४२ ॥
कथं वा क्रियतामिति ॥ ४३ ॥

यह आप लोगोंकी धरोहर है, इसकी रक्षा आप लोगोंकी ही करनी है ॥ ४० ॥ इसके (राजकुमारके) पिताके पराक्रम और वंशकी धोर भी ध्यानदे और जरा अपनी ओर भी देखे ॥ ४१ ॥ यह (राजकुमार) केवल एक क्षणके सम्मान है, जो सबसे ऊंचा रहता हुआ फहराता रहता है, वस्तुतः इस शक्तिके प्रबन्धकर्ता आपही लोग हैं ॥ ४२ ॥ अब बतलाइये इस विषयमें क्या किया जाय ? इत्यादि ॥ ४३ ॥

तथा वृत्राणं योगपुरुषा ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ कोऽन्यो भवत्पुरोगा-
दस्माद्राज्ञश्चातुर्वर्ण्यमर्हति पालयितुमिति ॥ ४५ ॥

इसप्रकार कहतेहुए अमात्यको, वे एकत्रित कियेहुए राष्ट्रके महान व्यक्ती कहें—॥ ४४ ॥ आपके नेतृत्वमें अथवा आपकी देखरेखमें रहते हुए इसके (राजकुमारके) सिपाय और कौन है, जो राजाकी चातुर्वर्ण्य प्रजाका पालन करसके, इत्यादि ॥ ४५ ॥

तथैत्वमात्यः कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वाधिकुर्वीत

॥ ४६ ॥ बन्धुसंबन्धिनां मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत् ॥ ४७ ॥

'अच्छी बात है' कहकर अमारव, उस राजकुमारको या राजकन्याको अथवा गर्भिणी महाराणीको राज्य सिंहासनपर अभिषिक्त कर दे ॥ ४६ ॥ औरें इसे, उसके भाई बन्धु तथा संबन्धियों, मित्र, शत्रु, तथा दूतोंको दिखला देवे, कि ये राजा हैं ॥ ४७ ॥

भक्तवेतनविशेषममात्यानामायुधीयानां च कारयेत् ॥४८॥

भूयश्चायं वृद्धः करिष्यतीति ब्रूयात् ॥ ४९ ॥ एवं दुर्गराष्ट्रमुख्यानाभाषेत ॥ ५० ॥ यथाह च मित्रामित्रपक्षम् ॥ ५१ ॥ विनय-
कर्मणि च कुमारस्य प्रयतेत् ॥ ५२ ॥

अमारव और सिपाहियोंके भत्ते और वेतनमें कुछ तरकी करवा देवे ॥ ४८ ॥ और कहे कि यह बड़ा होकर और भी वेतनवृद्धि करेगा ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार दुर्ग तथा राष्ट्रके मुख्य कर्मचारियोंको भी कहे ॥ ५० ॥ और मित्र तथा शत्रुपक्षके साथ भा यथोचित आभाषण करे ॥ ५१ ॥ तथा राजकुमारकी विद्या विनय और अन्य प्रकारकी शिक्षाके लिये पूरा प्रयत्न करे ॥ ५२ ॥

• कन्यायां समानजातीयादपत्यमुत्पाद्य वाभिपिञ्चेत् ॥५३॥

मातुश्चित्तक्षोभभयात्कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं च लक्ष्ण्यमुपनिदध्यात् ॥ ५४ ॥ ऋतौ चैनां रक्षेत् ॥ ५५ ॥

अथवा कित्ती समानजातीय पुरपत्ने राजकन्यामें पुत्र उत्पन्न कराके, उसे राजसिंहासनपर अभिषिक्त करे ॥ ५३ ॥ राजकुमारकी माता (महाराणी) का चित्त घेचन न हो यह विचार करके किमी कुणीन, निर्बल, सौम्य, वेदाध्यताको उसके पास रखदेवे, जिससे कि वह धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि सुनाकर उसके चित्तको शान्त रखे ॥ ५४ ॥ और ऋतुकालमें इसकी अच्छी तरह रक्षा करे ॥ ५५ ॥

॥ न चात्मार्यं कश्चिदुत्कृष्टमुपभोगं कारयेत् ॥ ५६ ॥ राजार्थं तु यानवाहनाभरणवस्त्रस्त्रीवेशमपरिवापान्कारयेत् ॥ ५७ ॥

अपने लिये उपभोगका कोई यदिपापदार्थ सञ्चित न करे ॥ ५६ परन्तु राजाके लिये यान (रथ आदि सवारी) वाहन (घोड़े हाथी आदि) आभरण, पद्म, स्त्री, मकान, और यदिया हायनासन आदि तैयार करावे ॥ ५७ ॥

यौवनस्थं च याचेत विश्रमं चित्तकारणात् ।

परित्यजेदतुष्यन्तं तुष्यन्तं चानुपालयेत् ॥ ५८ ॥

जय राजकुमार युवा होजाये, राज्यभार संभाल सके, तो उसके पिताके अभिप्रायको जाननेके लिये; संन्य भन्प्रीका कार्य छोड़नेको उससे कहे । यदि वह 'चले जाओ' ऐसा कहदे, तो राजकुमारको छोड़कर वह चला जावे । यदि वह जानेको न कहे तो फिर उसके आश्रयमें रहकर यथापूर्व कार्य करता रहे ॥ ५८ ॥

निधेद्य पुत्ररक्षार्थं गूढसारपरिग्रहान् ।

अरण्यं दीर्घसत्रं वा सेवेतारुच्यतां गतः ॥ ५९ ॥

अमारय पदपर कार्य करनेकी रधि न रहनेपर अथवा राजाकी ओरसे कुछ मनमुटाव होनेपर, पुत्रकी रक्षाके लिये पितृ पितामह आदिके स्थापित किये हुए गूढपुरुष मूलबल और राजाने आदिको राजपुत्रको पताकर अरण्यमें सपस्याके लिये चला जावे । अथवा बहुत लम्बे समयतक होनेवाले पञ्च आदि कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ ५९ ॥

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः ।

इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥ ६० ॥

अथवा मामा, कृपा आदि मुख्य व्यक्तियोंके अधीन हुए २ राजा (राजकुमार) को, उसके मिय पुरोंके आश्रित रहता हुआही, सरनज्ञ अमारय इतिहास और पुराणोंके द्वारा धर्म अर्थके तत्त्वोंको यथावत् समझाता रहे ॥ ६० ॥

सिद्धव्यञ्जनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवम् ।

लभेत लब्ध्वा दृष्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत् ॥ ६१ ॥

इति योगश्रुते पञ्चमे अधिकरणे राज्यभ्रतिसंभानम्

एकैश्वर्यं षष्ठोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

आदितः षण्णवतिः ॥ १६ ॥ पतायता कीटलीयस्यार्थशास्त्रस्य

योगवृत्तं पञ्चममधिकरणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

यदि इस तरहसे भी राजाको यथावत् सरन न समझा सके, तो सिद्ध पुरपका भेस बनाकर कपटका आश्रय लेकर राजाको अपने पक्षमें करे और फिर यक्षमें वरके मातुल आदि दृष्य पुरोंमें दाण्डकर्मिक प्रकरणमें पताये उप-युक्त दृष्टियोंका प्रयोग करे ॥ ६१ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणम् छटा अध्याय समाप्त ।

योगवृत्त पञ्चम अधिकरण समाप्त ।

मण्डलयोनि पष्ठ अधिकरण ।

पहला अध्याय ।

९६-प्रकरण ।

प्रकृतियोंके गुण ।

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ॥ १ ॥

तत्र स्वामिसंपत् ॥ २ ॥

स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, (सेना) मित्र, ये सात प्रकृति कहलाते हैं ॥ १ ॥ इनमें से सबसे पहिले स्वामी (राजा) के गुण बताते हैं:— ॥ २ ॥

महाकुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्य-
वाग्विसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहो ऽदीर्घसूत्रः शक्य-
सामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिपत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः
॥ ३ ॥

महाकुलीन (श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ २), भाग्यशाली, मेधावी, धैर्य-
शाली दूरदर्शी अथवा महाज्ञानी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ,
महादानी, महाउत्साही, क्षिप्रकारी (किसी कार्यको तरक्षण सोचकर करनेवाला)
सामन्तों (समीपके परराष्ट्रों) को वशमें करनेवाला, दृढनिश्चय, अथवा दृढ
भक्ति, गुणी परिवारवाला, शास्त्रमर्यादाको चाहनेवाला, ये राजाके १६ गुण
आभिगामिक (राजाके गुण दो तरहके होते हैं, १ आभिगामिक २ आत्म-
सम्पत्तिरूप । ये उपर्युक्त १६ आभिगामिक गुण हैं ।) गुण कहाते हैं ॥ ३ ॥

शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञा-
गुणाः ॥ ४ ॥ शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः ॥ ५ ॥

शुश्रूषा (शास्त्र सुननेकी इच्छा), श्रवण (शास्त्रज्ञान), प्रत्येक बातका
समझना, समझी हुई बातको याद रखना, किसीके सम्बन्धमें विशेषज्ञान
रखना, किसी बातकी वास्तविकता जाननेके लिये सर्क करना तथा कुछ पक्षको
त्याग देना, गुणियोंका पक्ष करना, ये आठ राजाके प्रज्ञागुण कहाते हैं ॥ ४ ॥

(निर्भक्ता), अमर्ष (पापाचरणको क्षमा न करना), शीघ्रकारी होना, प्रत्येक कार्य (सहन इन भावों में) चतुर होगा, ये चार गुण 'वामाहगुण' कहलाते हैं ॥ ५ ॥

वाम्नी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्वग्रहः कृतशिल्पो-
 न्ने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतीकारी ह्यिमानापत्प्रकृत्यो-
 नेयोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुपकारकार्यप्रधानः संभिवि-
 त्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी संवृतोऽदीनाभिहास्यजिह्वभ्रु-
 षेक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपशुन्यहीनः शक्यः
 तोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसप्त ॥ ६ ॥

वाम्नी (अर्थपूर्ण भाषण करनेमें समर्थ), प्रगल्भ (सभा आदिमें बोलते व कम्पराहित) स्मृति मति तथा बलसे युक्त, उद्यतचित्त, संयमी, हाथी आदिके बलानेमें निपुण, शत्रुकी विपत्तिमें बचाई करनेवाला, अपनी पत्तिमें सेनाकी रक्षा करनेवाला, किसीके द्वारा उपकार या अपकार किये उपर उसका दाखले अनुसार प्रतीकार करनेवाला, कृष्णानील, हुर्मिष और भेषमें धान्य आदिका टीक २ विनियोग करनेवाला, लम्बी और दूरकी धनेवाला, अपनी सेनाके युद्धोचित देशकाल उरसाहशक्ति तथा कार्यको मानतया देखनेवाला, मन्त्रिके प्रयोगको समझनेवाला, प्रकाशयुद्ध आदि नेमें चतुर, मुपात्रमें दान देनेवाला, प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर ही गुप्तरूपसे राजको बढानेवाला, शत्रुके अन्दर मृगयापत आदि व्यसनोंको देखकर उसपर ह्म रस आदिका प्रयोग करनेमें समर्थ, अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाला, दान रपाकी हँसी न उढानेवाला, डेरी भौ न करके देखनेवाला, काम, मोह, लोभ, अह, अपश्रुता, उपताप और पशुन्य (सुगलसोरी) से सदा अलग रहनेवाला, अथ बोलनेवाला, हँसमुख तथा उदार भाषण करनेवाला, और वृद्धोंके उप-
 दा तथा आचारका माननेवाला राजा होगा चाहिये । ये राजाकी आत्मसम्पत् । इनसे युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहाता है ॥ ६ ॥

अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ७ ॥ मध्ये चान्ते च स्थानवा-
 त्तात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारथः स्वार्जीवः शत्रुद्वेषी शक्य-
 सामन्तः पङ्कपापाणोपरत्रिपमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः का-
 न्तः सीतासनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पोरुपेयो गुप्तगोचरः पशुमा-
 नदेवमातृको वारिन्धलपथाभ्यामुपेतः सारचित्रबहुपण्यो दण्डकर-

मण्डल्योनि पष्ठ अधिकरण ।

पहला अध्याय ।

१६ प्रकरण ।

प्रकृतियोंके गुण ।

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ॥ १ ॥
तत्र स्वामिसंपत् ॥ २ ॥

स्वामी, अमारथ, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, (सेना) मित्र, ये सात प्रकृति कहलाते हैं ॥ १ ॥ इनमें से सधसे पहिले स्वामी (राजा) के गुण बताते हैं — ॥ २ ॥

महाकुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्य-
वागविसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहो ऽदीर्घसूत्रः शक्य-
सामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिपत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः
॥ ३ ॥

महाकुलीन (श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ २), माग्यशाली, भेधाधी, धैर्य-
शाली दूरदर्शी भयरा महाज्ञानी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ,
महादानी, महाउत्साही, क्षिप्रकारी (किसी कार्यको तरक्षण सोचकर करनेवाला)
सामन्तो (समीपके परराष्ट्र) को वरमें करनेवाला, दृढनिश्चय अथवा दृढ
भक्ति, गुणी परिवारवाला, शास्त्रमर्यादाको चाहनेवाला, ये राजाके १६ गुण
आभिगामिक (राजाके गुण दो तरहके होते हैं, १ आभिगामिक २ आत्म-
सम्पत्तिरूप । ये उपर्युक्त १६ आभिगामिक गुण हैं ।) गुण कहाते हैं ॥ ३ ॥

शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणभिज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञा-
गुणाः ॥ ४ ॥ शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः ॥ ५ ॥

शुश्रूषा (शास्त्र सुननेकी इच्छा), श्रवण (शास्त्रज्ञान), प्रत्येक बातका
समझना, समझी हुई बातको याद रखना, किसीके सम्बन्धमें विशेषज्ञान
रखना, किसी बातकी वास्तविकता जाननेके लिये तर्क करना तथा पुष्ट पक्षको
र्याग देना, गुणियोंका पक्ष करना, ये आठ राजाके प्रज्ञागुण कहाते हैं ॥ ४ ॥

शौर्यं (निर्भीकता), अमर्षं (पापाघरणको क्षमा न करना), शीघ्रकारी होना, और प्रत्येक कार्य (लहान छुरन आरौहण आदि) में चतुर होना, ये चार गुण राजाके 'उत्साहगुण' कहलाते हैं ॥ ५ ॥

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्वग्रहः कुतशिल्पो-
व्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतीकारी ह्यिमानापत्रकृत्यो-
र्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः संधिचि-
क्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी संबृतोऽदीनाभिहास्यजिह्वभ्रु-
कुटीक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शङ्कः
स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसप्त ॥ ६ ॥

वाग्मी (अर्थपूर्ण भाषण करनेमें समर्थ), प्रगल्भ (सभा आदिमें बोलते समय कम्पराहित) स्मृति मति तथा बलसे युक्त, उद्यतचित्त, संयमी, हाथी घोड़े आदिके चलानेमें नियुक्त, शत्रुकी विपत्तिमें चड़ाई करनेवाला, अपनी विपत्तिमें सेनाकी रक्षा करनेवाला, किसीके द्वारा उपकार या अपकार किये जानेपर उसका शास्त्रके अनुसार प्रतीकार करनेवाला, लज्जाशील, दुर्भिक्ष और सुभिक्षमें धान्य आदिका ढीक २ विनियोग करनेवाला, लम्बी और दूरकी सोचनेवाला, अपनी सेनाके मुद्दोचित देशकाल उत्साहशक्ति तथा कार्यको प्रधानतया देखनेवाला, सन्धिके प्रयोगको समझनेवाला, प्रकाशयुद्ध भादि करनेमें चतुर, क्षुपाग्रमें दान देनेवाला, प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर ही गुप्तस्वसे कोशको बढ़ानेवाला, शत्रुके अन्दर भुगयापूत आदि व्यसनोंको देखकर उसपर ताक्ष्ण रस आदिका प्रयोग करनेमें समर्थ, अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाला, दान पुरयोंकी हँसी न उड़ानेवाला, डेवी भौं न करके देखनेवाला, काम, क्रोध, लोभ मोह, चपलता, उपहास और पैशुन्य (खुगलसोरी) से सदा अलग रहनेवाला, प्रिय बोलनेवाला, हँसमुख तथा उदार भाषण करनेवाला, और वृद्धोंके उपदेश तथा आचारका माननेवाला राजा होना चाहिये । ये राजाकी आत्मसम्पत् हैं । इनसे युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहाला है ॥ ६ ॥

अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ७ ॥ मध्ये चान्ते च स्थानवा-
नात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारक्षः स्वाजीवः शत्रुद्वेषी शक्य-
सामन्तः पङ्कपाषाणोपरवैपमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः का-
न्तः सीतास्निद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पोरुपेयो गुप्तगोचरः पशुमा-
नदेवमातृको वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्रवहुपण्यो दण्डकर-

सहः कर्मशीलकर्षको स्वालिगुस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचिमनुष्य
इति जनपदसंपत् ॥ ८ ॥

अमात्यसम्पत् पहिले वनयिक अधिकरणमें कही जाचुकी है ॥ ७ ॥ अब जनपद सम्पत् बतलाते हैं:—प्रथम तथा सीमानान्तमें किले हों, जिस में स्वेदशनिवासी तथा परदेशसे आनेवाले जनोंके लिये पर्याप्त धान्य आदि पैदा हो सके, आपत्तिमें पहाड़ वन आदिके होनेसे देशवासियोंकी रक्षा करसके या पर्वत आदिके कारण सरलतासे जिसकी रक्षा कीजामके, जहां थोड़ेही परिश्रमसे धान्य आदि पैदा हों जाय, राजाके शत्रुसे दुश्मनी रखने वाले मनुष्यों से युक्त, जिसके आसपासके राजा दुर्बलहों, कीचड़ कड़क उसर विषम चोर उधारी (कण्टक), छोटे २ पाशु (श्रिणी) हिसक जातार और घने जंगलोंसे रहित हो, नदी सर आदिके कारण रमणीय, खेती खान लकड़ियों तथा हाथियों के जंगलोंसे युक्त हो, गोओंके लिये हितकारी हो, पुरपोंके लिये भी जहांका जलवायु अच्छा हो, लुब्धक आदिसे सुरक्षित, गाय भैंस आदि पशु जहां खूब हों, नदी नहरोंसे युक्त, जल थलके बहुमूल्य तरह २ के मरय वस्तुओंसे युक्त, जो दण्ड और करकी सहन कर सके, जहांके किसान बड़े मेहनती हों, जहांके मालिक समझदार हों, जहां नीच वर्गके मनुष्य अधिक हों, जहां अनुरक्त और शुद्ध हृदयके पुरप हों, ऐसा जनपद होना चाहिये । ये सब बातें 'जनपद सम्पत्ति' के नामसे कही जाती हैं ॥ ८ ॥

दुर्गसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ९ ॥ धर्माधिगतः पूर्वेः स्वयं वा हेमरूप्यप्रायश्चित्तस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापदमनायति सहेतेति कोशसंपत् ॥ १० ॥

दुर्ग सम्पत् पहिले ही दुर्ग विधान प्रकरणमें बतलाई जाचुकी है ॥९॥ कोशसम्पत् बतलाते हैं.—पहिले राजाओंके द्वारा या स्वयं धर्मपूर्वक सञ्चित किया हुआ धान्यका षड्भाग आदि, अत्यधिक सुवर्ण तथा रजतसे युक्त, बहुमूल्य बड़े २ और नाना प्रकारके रत्नों तथा हिरण्योंसे भराहुआ, जो चिर काल तक रहनेवाली दुर्भिक्ष आदि आपत्ति और धन व्ययको सहन कर सके, ऐसा कोश होना चाहिये । इनसब बातोंका होना 'कोशसम्पत्' कशता है ॥ १० ॥

पितृपैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेऽपि संपा-
दितः सर्वत्राप्रतिहतो दुःखसहो बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्यावि-
शारदः सहस्रद्विधायिकत्वादहैभ्यः क्षत्रप्राय इति दण्डसंपत् ॥११॥

पितृपितामहके समयसे आया हुआ, इसी लिये स्थिरताके साथ सेवा करनेवाला, बशमें रहनेवाला, जिसके पुत्र और स्त्री राजाकी भोरसे भरण पोषण होनेके कारण समुष्ट रहते हैं, चढ़ाईके समयमें भी जो उचित आवश्यक वस्तुओंसे युक्त करा दिया जाता है, जो कहीं द्वार न खाना हो, दुःख सहने वाला, युद्धकी चतुरताओंसे परिचित, हर तरहके युद्धके इधियारोंके चलानेमें सुचतुर, राजाके अनुकूल, हानि लाभ होनेके कारण भेद रहित, जिसमें क्षत्रियही प्रायः अधिक हों, ऐसा सैन्य होना चाहिये। दण्ड अर्थात् सेनाके अन्दर इन गुणोंका होना ही (दण्डसम्पत् कहाता) है ॥११॥

पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसंपत् ॥ १२ ॥

पितृपितामह कससे आये हुए, जो बनावटी न हों, अपने बशमें रहें, जिनके साथ कभी भेद न हो, जो मनु मन्त्र तथा उताह आदि शक्तियोंसे युक्त हों, अरसा आनेपर दृढ़ सहायता करनेके लिये तैयार होजाय, इन प्रकारके मित्र होने चाहियें। मित्रांमे इन गुणोंका होना ही 'मित्रसंपत्' कहाता है ॥ १२ ॥

अराजवीजी लुब्धः क्षुद्रपरिपत्को विरक्तप्रकृतिरन्यायवृत्तिरयुक्तो व्यसनी निरुत्साहो दैवप्रमाणो यत्किंचनकार्यगतिरननुबन्धः क्लीबो नित्यापकारी चेत्यमित्रसंपत् ॥ १३ ॥ एवंभूतो हि शत्रुः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ १४ ॥

जो दुष्ट राजवंशका न हो, लोभा, दुष्ट परिवार वाला, अमात्य आदि प्रकृति जिससे प्रसन्न न रहें, शास्त्रके प्रतिदूळ आचरण करने वाला, अयुक्त, व्यसनी, उताह रहित, भाग्यकी ही सबकुछ समझने वाला, दिना विचारे काम करनेवाला, अशरण, सहाय रहित, नपुंसकधर्महीन, अपने तथा परायेकी सदा लुगाई करनेवाला, शत्रु होना चाहिये, इन बातोंका शत्रुओंमें होना ही 'शत्रु सम्पत्' कहाता है ॥ १३ ॥ इस प्रकारका शत्रु बड़ा आसानीसे उताह दिया जाता है ॥ १४ ॥

अरिवर्जाः प्रकृतयः सप्तैताः स्वगुणोदयाः ।

उक्ताः प्रत्यङ्गभूतास्ताः प्रकृता राजसंपदः ॥ १५ ॥

शत्रुको छोड़कर (पर्योक्ति वह राजा होनेसे स्वामिप्रकृतिके अन्दर आजाता है) बाकी ये सप्तैता आदि सप्त प्रकृतियाँ अपने २ गुणोंसे युक्त कहदी

गई । ये एक दूसरेकी सहायक होनेमें परस्पर भङ्गभूत हुईं २ और अपने २ कार्योंमें लगी हुईं, 'राजसम्पत्ति' नामसे कही जाती हैं ॥ १५ ॥

संपादयत्यसंपन्नाः प्रकृतीरात्मवान् नृपः ।

विषुद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥ १६ ॥

ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तो ऽप्यनात्मवान् ।

हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विपतां वशम् ॥ १७ ॥

आत्मसम्पत्तिमें युक्त राजा, अपने २ गुणोंसे रहित प्रकृतियोंकी भी गुणोंसे सम्पन्न बना लेता है । और आत्मसम्पत्तिसे रहित राजा गुणमयुद्ध तथा अनुक्त प्रकृतियोंकी भी नष्ट करदेता है ॥ १६ ॥ इसी कारण यह दुष्ट प्रकृति, आत्मसम्पत्ति रहित राजा चतुस्समुद्र पर्यन्त भूमिका अधिपति होता हुआ भी पातो अमात्य आदि प्रकृतिपत्तियोंके द्वारा मारदिया जाता है, अथवा दानु के वशमें चला जाता है ॥ १७ ॥

आत्मवांस्त्वल्पदेशो ऽपि युक्तः प्रकृतिसंपदा ।

नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ॥ १८ ॥

इति मण्डलयोगो पट्टे अधिकरणे प्रकृतिसंपदः प्रथमो अध्यायः ॥ १॥

आदितः सप्तमवातः ॥ १७ ॥

परन्तु आत्मसम्पन्न नातिज्ञ राजा थोड़ी भूमिका मालिक होते हुए भी प्रकृति सम्पत्तिसे युक्त हुआ २ सम्पूर्ण पृथिवीको विजय करलेता है, और कभी क्षीणताको प्राप्त नहीं होता ॥ १८ ॥

मण्डलयोगेति पट्ट अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१७ प्रकरण

शांति और उद्योग ।

शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः ॥ १ ॥ कर्मारम्भाणां योगा-
राधनो व्यायामः ॥ २ ॥

शान्ति क्षेमका तथा व्यायाम योगका कारण है ॥ १ ॥ अपने देशमें दुर्ग आदि तथा दूसरे देशमें सन्धि आदि कार्योंका, कार्य कुशल पुरुषोंके तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ सम्बन्धका जो साधक है यही व्यायाम कहाता है । अर्थात् दुर्ग तथा सन्धि आदि कार्योंपर उपकरण सहित कार्यकुशल पुरुषोंको नियुक्त करना ही व्यायाम शब्दका अर्थ है ॥ २ ॥

कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनः शमः ॥ ३ ॥ शमव्यायाम-
योर्धोनिः पाद्गुण्यम् ॥ ४ ॥ क्षयस्थानं वृद्धिरित्युदयास्तस्य
॥५॥ मानुपं नयापनयौ दैवमयानयौ ॥ ६ ॥

दुर्ग तथा सन्धि आदि कर्मोंके फलोंके उपभोग करनेमें हर तरहके
झानेवाले विघ्नोंके नाशका जो साधन है, वही शम कहाता है ॥ ३ ॥ शम
और व्यायामके कारण सन्धि, विग्रह, यान आसन, सश्रय और द्वेषीभाव
य छ गुण हैं ॥ ४ ॥ उन्नति (वृद्धि), अवनति (क्षय), या उसी अवस्था
में रहना (स्थान), ये तीन, इन छ गुणोंके फल हैं ॥ ५ ॥ इन फलोंके प्राप्त
करानेवाले दो प्रकारके कर्म हैं, एक मानुप और दूसरे दैव । नय और
अनय मानुपकर्म है । अय और अनय दैव कर्म है ॥ ६ ॥

दैवमानुपं हि कर्म लोकं यापयति ॥७॥ अष्टप्रकारितं दैवम्
तस्मिन्निष्टेन फलेन योगो ऽयः ॥ ९ ॥ अनिष्टेनानयः ॥ १० ॥

ये दैव और मानुपकर्म ही लोक यात्राको करते हैं ॥ ७ ॥ धर्म और
अधर्मरूप अष्टप्रसे कराया हुआ कर्म दैव कहाता है ॥ ८ ॥ उसके होनेपर जब
वाञ्छनीय फलके साथ सम्बन्ध होजाय तो वह अय कहा जाता है ॥ ९ ॥
और प्रतिकूल फलके साथ सम्बन्ध होनेपर अनय कहाता है ॥ १० ॥

दृष्टकारितं मानुपम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः
विपत्तिरपनयः ॥ १३ ॥

प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति या उरुपाहशक्ति आदिके कारण, सन्धि
विग्रह आदि गुणोंके प्रयोगक द्वारा जो कराया जाय, वह मानुपकर्म कहाता
है ॥ ११ ॥ उसके होनेपर यदि योग और क्षेमकी सिद्धि हो जाय तो वह
नय कहाता है ॥ १२ ॥ यदि विपत्ति आजाय तो अपनय कहा जाता है ॥ १३ ॥

तच्चिन्त्यम् ॥ १४ ॥ अचिन्त्यं दैवमिति ॥ १५ ॥

योग क्षमकी सिद्धि और विनाशिके प्रतिकारक लिए मानुपकर्मका ही
बहापर विचार करना चाहिये ॥ १४ ॥ दैव कर्म अचिन्त्य है, उसपर विचार
करना हमारा शक्तिसे बाहर है, क्योंकि यह सर्वथा परीक्ष है ॥ १५ ॥

राजात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः ॥१६॥
तस्य समन्ततो मण्डलीभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः ॥ १७ ॥
तथैव भूम्येकान्तरा मित्रप्रकृतिः ॥१८॥ अरिसंपद्युक्तः सामन्तः
शत्रुः ॥ १९ ॥

आत्मसम्पन्न, अमात्य, आदि द्रव्यप्रकृति सम्पन्न, और नीतिका भाष्य-
 यभूत राजा विजिगीषु कहाता है ॥ १३ ॥ विजिगीषुके राज्यके चारों ओर लगे
 हुए राज्योंके अधिपति 'अरे प्रकृति' कहाते हैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार एक राज्य
 स व्यवहित राज्याके अधिपति 'मित्र प्रकृति' कहाते हैं ॥ १८ ॥ अरिगणरक्षि
 (अराजवाजो ह्य्यादि) से युक्त सामन्तमी शत्रु कहाता है ॥ १९ ॥

व्यसनी यातव्य अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो चोच्छेदनीयः ॥२०॥

विपर्यये पीडनीयः कर्शनीयौ वा ॥ २१ ॥ इत्यरिनिशेषाः ॥२२॥

जो शत्रु व्यसनी हो, उसपर आक्रमण करदेना चाहिये । आश्रयहीन
 अथवा दुर्बल आश्रयवाले शत्रुकाभी उच्छेद करदेना चाहिये ॥ २० ॥ यदि शत्रु
 आश्रयहीन या दुर्बल आश्रयवाला न हो, तो किसी अपकारके द्वारा उसे पीडा
 पहुँचाये, अथवा उसकी सेना व धनको किन्हीं उपायोंसे कम करनेका यत्न करे
 ॥ २१ ॥ ये शत्रुओंके चार भेद बतलाये गये ॥ २२ ॥

तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रमरिमित्रमित्रं चानन्तर्येण भू-
 मीनां प्रसज्यते पुरस्तात् ॥ २३ ॥

इसके बाद मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र, ये राजा
 राज्योंके क्रमसे विजिगीषुके सामने आते हैं । अर्थात् जब विजिगीषु शत्रुको
 विजय करनेके लिये प्रयत्न होता है तब उसके सामने क्रमसे ये पाँच राजा
 आते हैं—शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र । तात्पर्य यह है
 कि अपने देशसे लगेही हुए देशका राजा शत्रु, उसके भागेका मित्र और उसके
 भागेका अरिमित्र, इसी प्रकार भागे समझिये ॥ २३ ॥

पथात्पाष्णिग्राह आक्रन्दः पाष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति

॥ २४ ॥ भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजन सहजः ॥२५॥

विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः ॥ २६ ॥

तथा विजिगीषुके पीछेके चार पाष्णिग्राह आक्रन्द पाष्णिग्राहासार
 और आक्रन्दासार कहाते हैं, इन दोनोंके बीचमें एक विजिगीषु, ये सब मिला
 कर देशका 'राजमण्डल' कहाता है ॥ २४ ॥ अपने राज्यके समीपही राज्य
 करनेवाला स्वाभाविक शत्रु, तथा अपने वशमें उत्पन्न हुआ दायभागी, येदोनों
 'सहजशत्रु' कहाते हैं ॥ २५ ॥ स्वयं विरुद्ध होजानेवाला, अथवा किसीको
 विरोधा करदेनेवाला 'कृत्रिमशत्रु' कहलता है ॥ २६ ॥

भूम्यनन्तरं प्रकृतिमित्रं मातापितृसंबद्धं सहजम् ॥ २७ ॥

धनजीवितदेतोरश्रितं कृत्रिममिति ॥ २८ ॥ अरिविजिगीष्वो-

भूम्यन्तरः संहतासंहतयोरनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यमः
॥ २९ ॥

एक राज्यके व्यवधानसे राष्ट्र करनेवाला स्वभावतः मित्र, तथा ममोरा
या फुफेरा भाई ये 'सहजमित्र' होते हैं ॥ २७ ॥ धन या जाविकाक लिये जो
आक्षेप ले, वह 'कृत्रिममित्र' कहाता है ॥ २८ ॥ और और विजिगीषु दोनोंके
राज्यांस मिला हुआ, उनके सन्धि और विग्रह करनेपर अनुग्रह समर्थ, और
केवल विग्रह करनेपर विग्रहमें समर्थ राजा 'मध्यम' कहाता है ॥ २९ ॥

अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बलवत्तरः संहतामह-
तानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासंहताना-
मुदासीनः ॥ ३० ॥ इति प्रकृतयः ॥ ३१ ॥

अरि, विजिगीषु और मध्यम इनकी प्रकृतियासे बाहर, तथा शक्तिशाली
मज्जमेसेभी और अधिक बलवान्, अरि विजिगीषु और मध्यमके सम्बन्ध तथा
विग्रह होनेपर अनुग्रहमें समर्थ, और विग्रह होनेपर विग्रहमें समर्थ राजा उदा-
सीन कहाता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार इन चार प्रकृतियोंका निरूपण किया
गया ॥ ३१ ॥

विजिगीषुमित्रं मित्रमित्रं वास्य प्रकृतयस्त्रिस्तः ॥ ३२ ॥
ताः पञ्चभिरमात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृतिभिरेकैकशः संयुक्ता
मण्डलमष्टादशकं भवति ॥ ३३ ॥

अब चार मण्डलोंका लक्ष्यमें निरूपण करते हैं — विजिगीषु, उसका
मित्र और मित्रमित्र ये तीन प्रकृति हैं ॥ ३२ ॥ इनमेंसे एक २, अलङ्कार २
अमारय जपद् दुर्ग कोश और दण्ड इन पाच प्रकृतियोंके साथ मिलकर
(अर्थात् एक विजिगीषु और उसकी अमात्य आदि पाच प्रकृतिया=६ ये सब
मिलकर) अठारह अथवा याहा एक मण्डल घन जाता है । इसे विजिगीषु
सम्बन्धी मण्डल कहते हैं ॥ ३३ ॥

अनेन मण्डलपृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम् ॥ ३४ ॥
एवं चतुर्मण्डलसद्वक्षेयः ॥ ३५ ॥ द्वादश राजप्रकृतयः ॥ ३६ ॥
षष्टिर्द्रव्यप्रकृतयः ॥ ३७ ॥ संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ३८ ॥

ठीक इसी प्रकार अरिमण्डल, मध्यममण्डल, और उदासीनमण्डलकी
भी पृथक् २ कल्पना करनेकी चाहिये ॥ ३४ ॥ इस प्रकार चार मण्डलोंका
लक्ष्यमें निरूपण कर दिया गया ॥ ३५ ॥ राज प्रकृति चार ॥ ३६ ॥ और

साठ असाएयादि द्रव्य प्रकृति ॥ ३७ ॥ इन सबको मिलाकर संक्षेपमे ७२ प्रकृति कहाँ जाती है ॥ ३८ ॥

तासां यथास्वं संपदः शक्तिः सिद्धिश्च ॥ ३९ ॥ बलं शक्तिः ॥ ४० ॥ सुखं सिद्धिः ॥ ४१ ॥ शक्तिस्त्रिविधा ॥ ४२ ॥ ज्ञान-बलं मन्त्रशक्तिः ॥ ४३ ॥ कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः ॥ ४४ ॥ विक्रमबलमुत्साहशक्तिः ॥ ४५ ॥

इनकी सम्पत्ति यथायोग्य पहिले कही जा चुकी है । शक्ति और सिद्धि भी इस प्रकार समझनी चाहिये ॥ ३९ ॥ बल शक्ति है ॥ ४० ॥ और सुख ही सिद्धि है ॥ ४१ ॥ शक्ति तीन प्रकारको होती है ॥ ४२ ॥ ज्ञान बल ही मन्त्र शक्ति है, यह शक्तिका एक प्रकार है ॥ ४३ ॥ कोश और दण्ड (सेना) का बल प्रभुशक्ति है, दूसरा प्रकार ॥ ४४ ॥ विक्रमबल उत्साह शक्ति है, तीसरा प्रकार । अर्थात् ज्ञानादिसे यागक्षेत्रका माधन करनेमे समर्थ पृथक् २ तीन शक्तियाँ हैं ॥ ४५ ॥

एवं सिद्धिस्त्रिविधेव ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः ॥ ४७ ॥ प्रभुशक्तिसाध्या प्रभुसिद्धिः ॥ ४८ ॥ उत्साहशक्ति-साध्या उत्साहसिद्धिरिति ॥ ४९ ॥

इसी तरह सिद्धि भी ३ प्रकारकी है ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिमे होनेवाली सिद्धि मन्त्रसिद्धि कहलाता है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार प्रभुशक्तिमे होनेवाली सिद्धि को प्रभुसिद्धि ॥ ४८ ॥ और उत्साहशक्तिमे होनेवाला सिद्धिको उत्साहसिद्धि कहते हैं ॥ ४९ ॥

ताभिरभ्युचितो ज्यायान्मवति ॥ ५० ॥ अपचितो हीनः ॥ ५१ ॥ तुल्यशक्तिः समः ॥ ५२ ॥ तस्माच्छक्तिं सिद्धिं च घटेतात्मन्यावेशयितुम् ॥ ५३ ॥

इन शक्तिपेसे युक्त हुआ २ राजा बहुत बड़ा या श्रेष्ठ होजाता है ॥ ५० ॥ इन शक्तियास रोहत हुआ २ हीन या अधम होजाता है ॥ ५१ ॥ और बराबर शक्ति रखने वाला सम अर्थात् मध्यम कहलाता है । ॥ ५२ ॥ इस लिये अपना शक्ति और सिद्धिको घटानेका सर्वदा पूरा प्रयत्न करें ॥ ५३ ॥

साधारणो वा द्रव्यप्रकृतिष्वानन्तर्येण शौचवशेन वा दूष्या-मिप्राभ्यां वापकष्टं यतेत ॥ ५४ ॥

जो राजा साधारण अर्थात् अपनी शक्ति व सिद्धिको न बचासके, यह

अमात्य आदि द्रव्यप्रकृतियोंमें क्रमसे अथवा सुभीतेके अनुसार शक्ति व सिद्धि को घटावे । और दूष्य तथा शत्रुकी शक्ति व सिद्धिको घटाने या नष्ट करनेका यत्न करे ॥ ५४ ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ५५ ॥ अमित्रो मे शक्तियुक्तो वाग्दण्ड-
पारुष्यार्थदूषणैः प्रकृतीरुपहनिष्यति ॥ ५६ ॥ सिद्धियुक्तो वा
भृगयाश्रुतमद्यस्त्रीभिः प्रमादं गमिष्यति ॥ ५७ ॥ म विरक्तप्रकृ-
तिरुपक्षीणः प्रमत्तो वा साध्यो मे भविष्यति ॥ ५८ ॥

यदि वह राजा यह देखे कि ॥ ५५ ॥ यह शक्तिशाली मेरा शत्रु,
चावपाख्य दण्डपाख्य और आपेक्षदोष लगाकर अपना अमात्य भादि द्रव्य
प्रकृतियोंको रूष्ट या विरक्त करदेगा ॥ ५६ ॥ अथवा सिद्धियुक्त हुआ २ मूरख
यत्न मद्य और स्त्रियोंम आसक्त होनेके कारण प्रमादको प्राप्त होजायगा ॥ ५७ ॥
इस प्रकार अमात्य आदिक विरक्त होजानपर अतहाय हुआ २ और भृगया
आदिमे आसक्त होनेके कारण प्रमत्त हुआ २ शत्रु अवश्यही मेरे वशमे होजा
यगा, अर्थात् मैं उसको आसानासे जात सकूंगा ॥ ५८ ॥

विग्रहामियुक्तो वा सर्वसंदोहेनकस्यो दुर्गस्यो वा स्यास्यति
॥ ५९ ॥ स संहितसेन्यो मित्रदुर्गवियुक्तः साध्यो मे भविष्यति
॥ ६० ॥

अथवा जब मैं अपने सम्पूर्ण सेनासमूहको लेकर लड़नेके लिये उसपर
पडाई करूंगा, तो वह अपनी शक्तिके गर्वसे किसी एक स्थानमे या दुर्गमेही
अकेला स्थित रहेगा ॥ ५९ ॥ ऐसी हालतमे उसकी सेना फिर जायगी, यह
मित्र या दुर्गमे कोई सहायता न लेसकेगा, और फिर मे उस आसानासे जीत
सकूंगा ॥ ६० ॥

बलवान्वा राजा परतः शत्रुमुच्छेत्तुकामस्तमुच्छिद्यमानमु-
च्छिन्द्यादिति बलवता प्रार्थितस्य मे विपन्नकर्मारम्भस्य वा सा-
हाय्यं दास्यति ॥ ६१ ॥ मध्यमलिप्तायां चेति ॥ ६२ ॥ एव-
मादिषु कारणेष्वमित्रस्यापि शक्तिं सिद्धिं चच्छेत् ॥ ६३ ॥

अथवा यदि वह ऐसा समझे, कि — वह बलवान् राजा दूसरे शत्रुका
उच्छेद करनेकी अभिलाषा रखता हुआ, उसे उच्छेद करके मेरा उच्छेद नहीं
करेगा, अथवा बलवान्के साथ युद्ध करनेके कारण मेरे क्षणशक्ति होनेपर
और मध्यमको अपेक्षा करनेपर यह अपरपक्षी मेरी सहायता करेगा ॥ ६१, ६२ ।

तो हल प्रकारके विशेष कारण उपस्थित होनेपर शत्रु ही भी शक्ति और सिद्धि की कामना करे ॥ ६३ ॥

नेमिमेकान्तरात् राज्ञः कृत्वा चानन्तरानरान् ।

नामिमात्मानमायच्छेद्वेतां प्रकृतिमण्डले ॥ ६४ ॥

मध्ये ऽभ्युपहितः शत्रुर्नेतुर्मित्रस्य चोभयोः ।

उच्छेद्यः पीडनीयो वा बलवानपि जायते ॥ ६५ ॥

इति मण्डलयोनि पट्टे ऽधिकरणे शमन्यायामिकं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितो ऽष्टमवतिः ॥ १८ ॥

पुत्रायता कौटिलीयव्याख्यायाख्ये मण्डलयोनिः

पट्टमधिकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

देना विजिगीषु, राजमण्डलरूपी चक्रमें एक राज्यसे व्यवहित मित्र राजाओंको नेमि, समीपके राजाओंको अरा, और अपने आपको नामिके स्थानमें समझे ॥ ६४ ॥ बलवान् भी शत्रु, विजिगीषु और मित्र इन दोनोंके बीचमें आजानेपर, या तो नष्ट कर दिया जाता है, अथवा बहुत पीड़ित किया जाता है ॥ ६५ ॥

मण्डलयोनि पट्ट अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त । . .

मण्डलयोनि पट्ट अधिकरण समाप्त ।



षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

१८, १९ प्रकरण ।

छः गुणोंका उद्देश और क्षय, स्थान तथा
वृद्धिका निश्चय

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः ॥ १ ॥ संधिविग्रहासन-
यानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः ॥ २ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृति और १९-राजमण्डल, सन्धि आदि छः
गुणोंके कारण हैं ॥ १ ॥ आचार्य कहते हैं कि —सन्धि, विग्रह, पान, आसन,
संश्रय और द्वैधीभाव ये छ गुण हैं ॥ २ ॥

द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः ॥३॥ संधिविग्रहाभ्यां हि षाड्गु-
ण्यं संपद्यत इति ॥ ४ ॥

वातव्याधि (उद्धर) आचार्यका सिद्धान्त है कि गुण दो ही हैं ॥ ३ ॥
सन्धि और विग्रह, शेष चार इन्हीं दोके अन्तर भेद है । आसन और
संश्रयका सन्धिमें, यानका विग्रहमें और द्वैधीभावका यथायोग्य दोनोंमें ही
अन्तर्भाव होजाता है ॥ ४ ॥

षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदादिति कौटल्यः ॥ ५ ॥

सन्धि और विग्रहसे यान आदि चारोंका सर्वथा भेद होनेसे छ ही
गुण हैं, यह कौटल्यका अपना मत है ॥ ५ ॥

तत्र पणचन्ध संधिः ॥ ६ ॥ अपकारो विग्रहः ॥ ७ ॥

उपेक्षणमासनम् ॥८॥ अभ्युच्चयो यानम् ॥ ९ ॥ परार्पणं संश्रयः
॥ १० ॥ संधिविग्रहोपादानं द्वैधीमात्र इति षाड्गुणाः ॥ ११ ॥

इनमेंसे, दो राजाओंका विन्हीं दत्तोंपर मेल हाजाना, 'सन्धि' कहाता
है ॥ ६ ॥ शत्रुका कोई अपकार करना विग्रह कहा जाता है ॥ ७ ॥ सन्धि
आदिका प्रयोग न करके उपेक्षा करना आसन कहाता है ॥ ८ ॥ दान
आदिका अत्यधिक होजाता ही, यानका हेतु हाजाना यान कहाता है ॥ ९ ॥

दूतरे बलवान् राजाके सासने अपने पुत्र, स्त्री, आत्मा तथा सर्वस्वको अर्पण करदेना संशय कहाता है ॥ १० ॥ सन्धि और विग्रह दोनोंका उपयोग करना द्वैधीभाव कहाता है । इस प्रकार ये छः गुण हैं ॥ ११ ॥

परस्माद्धीयमानः संदधीत ॥ १२ ॥ अम्युधीयमानो वि-
गृहीयात् ॥ १३ ॥ न मां पुरो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत् ॥ १४ ॥

यदि शत्रुसे अपने आपको निर्बल समझे तो सन्धि करलेत्रे ॥ १२ ॥
यदि शक्ति आदिसे सम्पन्न होनेके कारण अपने आपको बलवान् समझे तो
विग्रह करे ॥ १३ ॥ न शत्रु गुप्त दवा सकता है, और न मैं ही शत्रुको दवा
सकता हूँ, ऐसे अवस्थामें आसन गुणका प्रयोग करे ॥ १४ ॥

गुणातिशययुक्तो यायात् ॥ १५ ॥ शक्तिहीनः संश्रयेत् ॥ १६ ॥
सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ १७ ॥ इति गुणावस्थाप-
नम् ॥ १८ ॥

आभिपारयस्वमे अधिकरणमें कहे हुए शक्ति देश काल आदि गुणोंके
अधिक या ठीक होनेपर यानका प्रयोग करे ॥ १५ ॥ शक्ति रहित हुआ
राजा संश्रयसे काम निकाले ॥ १६ ॥ किसी कार्यमें सहायताकी अपेक्षा
होनेपर द्वैधीभावका प्रयोग करे ॥ १७ ॥ इस प्रकार विषयभेदसे छः गुणोंका
यहार्थक निरूपण किया गया ॥ १८ ॥

तेषां यस्मिन्वा गुणे स्थितः पश्येत् ॥ १९ ॥ इहस्थः श-
क्ष्यामि दुर्गमेतुकर्मवणिकपथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मा-
प्यात्मनः प्रवर्तयितुं परस्य चैतानि कर्माण्युपहन्तुमिति तमातिष्ठेत्
॥ २० ॥

उन गुणोंमेंसे जिस किसी (सन्धि आदि) गुणका आश्रयण करनेपर
यह समझे कि — ॥ १९ ॥ मैं इस सन्धि आदि गुणका आश्रय लेता हुआ,
अपने दुर्ग, संश्रयकर्म, व्यापारीमार्ग, शून्यनिवेश (नई धरती बसाना), खान,
अकर्मियों तथा हाथियोंके घन आदि कामोंके करनेमें समर्थ होसकूंगा, और
शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंको नष्ट कर सकूंगा, उसही का आश्रयण करे ॥ २० ॥

सा वृद्धिराशुतरा ॥ २१ ॥ मे वृद्धिर्भूयस्तरा वृद्ध्युदयतरा
वा भविष्यति विपरीता परस्येति ज्ञात्वा परवृद्धिमुपेक्षेत् ॥ २२ ॥

इस प्रकारके गुणका अवलम्बन या अनुष्ठान वृद्धिका हेतु होनेसे वृद्धि
कहाता है ॥ २१ ॥ मेरी वृद्धि बहुत जल्दी होगी, और शत्रुकी देरसे, मेरी

वृद्धि बहुत अधिक होगी और शत्रुकी कम, शत्रुकी और मेरी एकही समयमें बराबर वृद्धि होनेपर भी उसकी हासोन्मुख होगी और मेरी अभ्युदयोन्मुख, ऐसा जब देखे, तो शत्रुकी वृद्धिकी कुछ पराह न करे ॥ २२ ॥

तुल्यकालफलोदयायां वा वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥२३॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मणामुपघातं पश्येन्नैतरस्य तस्मिन्न तिष्ठेत् ॥ २४ ॥ एष क्षयः ॥ २५ ॥

यदि शत्रुकी या वृद्धि बराबर उतनेही समयमें उदयोन्मुखही होवे, तो उसके साथ सन्धि करलव ॥ २३ ॥ जिस गुणके अवलम्बनसे अपने दुर्ग आदि कर्मोंका नाश आर शत्रुक कर्मोंका नाश न होना समझ, उस गुणका कदापि आश्रय न ले ॥ २४ ॥ इस प्रकारके गुणका अनुष्ठान क्षयका हेतु होनेसे क्षय कहाता है ॥ २५ ॥

चिरतरेणालपतरं वृद्ध्युदयतरं वा क्षये विपरीतं परं इति ज्ञात्वा क्षयमुपेक्षेत ॥ २६ ॥

मेरा क्षय बहुत दिनोंमें होगा, शत्रुका बहुत जल्दी, मेरा क्षय बहुत थोड़ा होगा शत्रुका बहुत आधिक, मेरा क्षय उदयोन्मुख होगा और शत्रुका क्षयोन्मुख, जब ऐसा समझे, तो अपने क्षयकी कुछ पराह न करे, अर्थात् उस क्षयके प्रतीकारका कोई उपाय न करे ॥ २६ ॥

तुल्यकालफलोदये वा क्षये संधिमुपेयात् ॥२७॥ यस्मिन्वा गुणं स्थितः स्वकर्मवृद्धिं क्षयं वा नाभिपश्येदेतत्स्थानम् ॥ २८ ॥

यदि शत्रुका क्षय भी एकही समयमें बराबर और उदयोन्मुखही हो तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ २७ ॥ जिस गुणका अवलम्बन करनेपर अपनी वृद्धि और क्षय कुछ भी न देखे, वह समान स्थितिमें रखनेके कारण 'स्थान' कहाता है ॥ २८ ॥

इस्वतरं वृद्ध्युदयतरं वा स्यास्यामि विपरीतं पर इति ज्ञात्वा स्थानमुपेक्षेत ॥ २९ ॥

मेरी ऐसी स्थिति बहुत थोड़े दिनतक रहेगी, शत्रुकी बहुत दिनोंतक, मेरी स्थिति उदयोन्मुख होगी और शत्रुकी क्षयोन्मुख, जब ऐसा समझे तो अपनी उस स्थितिकी पराह न करे, अर्थात् उसके सुधारनेका कोई उपाय न करे ॥ २९ ॥

तुल्यकालफलोदये वा स्थाने संधिमुपेयादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

शत्रुका भी स्थान बराबर समतक होनेवाला और उदयोन्मुखही हो

दूसरे बलवान् राजाके सासने अपने पुत्र, स्त्री, आत्मा तथा सर्वरत्नको भ्रषण करदेना संश्रय कहाता है ॥ १० ॥ सन्धि और विग्रह दोनोंका उपयोग करना द्वैधीभाव कहाता है। इस प्रकार ये छः गुण हैं ॥ ११ ॥

परस्माद्धीयमानः संदधीत ॥ १२ ॥ अभ्युर्चीयमानो वि-
गृहीयात् ॥ १३ ॥ न मां परो नाहं परमुपहनतुं शक्त इत्यासीत् ॥ १४ ॥

यदि शत्रुसे अपने आपको निर्बल समझे तो सन्धि करलेवे ॥ १२ ॥
यदि शक्ति भागिदसे सम्पन्न होनेके कारण अपने आपको बलवान् समझे तो
विग्रह करे ॥ १३ ॥ न शत्रु मुझे दया सकता है, और न मैं ही शत्रुको दया
सकता हूँ, ऐसी अवस्थामें आसन गुणका प्रयोग करे ॥ १४ ॥

गुणातिशययुक्तो यायात् ॥ १५ ॥ शक्तिहीनः संश्रयेत् ॥ १६ ॥
सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ १७ ॥ इति गुणावस्था-
नम् ॥ १८ ॥

आभियास्यत्कर्म अधिकरणमें कहे हुए शक्ति देश काल आदि
अधिक या ठीक होनेपर यानका प्रयोग करे ॥ १५ ॥ शक्ति रहित
राजा संश्रयसे काम निकाले ॥ १६ ॥ किसी कार्यमें
होनेपर द्वैधीभावका प्रयोग करे ॥ १७ ॥ इस प्रकार विषयमें
पहातक निरूपण किया गया ॥ १८ ॥

तेषां यस्मिन्वा गुणे स्थितः पश्येत् ॥ १९ ॥
स्यामि दुर्गसंतुकर्म ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥
प्यात्मनः प्रवर्तयितुं
॥ २० ॥

उन गुणोंमेंसे जिस कितना
यह समझे कि— ॥ १९ ॥ मैं इस
अपने दुर्ग, संतुकर्म, व्यापारोपार्ग,
लकादियों तथा हाथियोंके बल आदि कामोंके
शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंको नष्ट कर सकूंगा,

सा बुद्धिराशुतरा ॥ २१ ॥ मे
वा भविष्यति विपरीता परस्येति ज्ञात्वा ।

इस प्रकारके गुणका अवलम्बन या
कहालाता है ॥ २१ ॥ मेरी बुद्धि बहुत जल्दी होगी

तो उसके साथ सन्धि करलैनी चाहिये, ऐसा आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ३० ॥

नैतद्विभाषितमिति कौटल्यः ॥३१॥ यदि वा पश्येत् ॥ ३२ ॥

संधौ स्थितो महाफलः स्वकर्मभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥३३॥

परन्तु कौटल्य कहता है कि आचार्योंने यह बहुत साधारण बात बताई ॥ ३१ ॥ कुछ विशेष बात इस तरह समझनी चाहिये, यदि विजिगीषु इस बातको देखे कि— ॥ ३२ ॥ सन्धि करनेपर अत्यन्त लाभदायक 'दुर्ग' आदि अपने कर्मोंसे शत्रुके कर्मोंका नाश करदूगा, अर्थात् अपने देशमें तरह २ का अधिकाधिक माल तैयार कराके, उसे शत्रुके देशमें भेजकर वहाँके मालकी कीमत गिरादूगा ॥ ३३ ॥

महाफलानि वा स्वकर्माण्युपभोक्ष्ये परकर्माणि वा ॥ ३४ ॥

संधिविश्वासेन वा योगोपनिपत्प्राणिधिभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३५ ॥

अथवा यह समझे कि—महाफलशाली अपने कर्मोंकी तरह शत्रुके कर्मोंका भी सन्धिके बहाने उपभोग करूगा ॥ ३४ ॥ अथवा गृहपुरण और सौख्य आदि प्रयोगोंके, तथा विष और जलदूषण आदि प्रयोगोंके द्वारा, सन्धिके बहाने शत्रुके कार्योंका नाश करूगा ॥ ३५ ॥

सुरसं वा सानुग्रहपरिहारसौकर्यं फललाभभूयस्त्वेन स्वकर्मणा परकर्मयोगावहजनमास्त्रावधिष्यामि ॥ ३६ ॥

अथवा सन्धिके बहानेसे, शत्रुके कार्यकुशल पुरयोगों, उनके सुभांते, अन्य प्रकारके उपकार और उनसे कर आदि न लेनेका वचन देकर अपने देशमें लोच लाऊगा, जिससे मेरे कृत्यादि कार्योंमें सुभीता होनेसे अधिक लाभ होगा ॥ ३६ ॥

बलिनातिमात्रेण वा संहितः परः स्वकर्मोपघातं प्राप्स्यति ॥ ३७ ॥ येन वा विगृहीतो मया संधेत्ते तेनास्य विग्रहं दीर्घं करिष्यामि ॥ ३८ ॥

अथवा अत्यधिक बलवान् शत्रुके साथ सन्धि करनेपर शत्रुको बहुत अधिक धन देना पड़ेगा और कौशिकी क्षीण करनेसे वह अपने कार्योंको क्षीण करलेगा ॥ ३७ ॥ अथवा जिसके साथ विग्रह रखके, यह मुझसे सन्धि करता है। उसके साथ इसका बहुत दिनोंतक विग्रह कराये रखूंगा ॥ ३८ ॥

मया वा संहितस्य मद्भेदिणो जनपदं पीडयिष्यति ॥३९॥

परोपहतो वास्य जनपदो मामागमिष्यति ॥ ४० ॥ ततः कर्मसु
वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४१ ॥

अथवा मेरे साथ सन्धि करके, मेरे शत्रुके राष्ट्रको यह अवश्य पीड़ा
पहुँचावेगा ॥ ३९ ॥ अथवा दूसरेसे सताया हुआ इसका राष्ट्र, जब सन्धि कर-
लेनेपर मेरेही पास आजावेगा ॥ ४० ॥ इसके बाद मैं अपने दुर्ग आदि कर्मोंमें
अत्यधिक वृद्धि करसकूंगा ॥ ४१ ॥

विपन्नकर्मारम्भो वा विपमस्थः परः कर्मसु न मे विक्रमेत
॥ ४२ ॥ परतः प्रवृत्तकर्मारम्भो वा ताम्भ्यां संहितः कर्मसु वृद्धिं
प्राप्स्यामि ॥ ४३ ॥

अथवा दुर्ग आदि कार्योंके नष्ट होजानेपर आपहत्वन हुआ २ शत्रु मेरे
कार्योंपर आक्रमण नहीं करसकेगा ॥ ४२ ॥ अथवा यदि दूसरे शत्रुकी सहा-
यतासे उसने अपना कार्य प्रारम्भ भी किया, तो दोनोंके साथ सन्धि होनेसे
मैं अपने कार्योंको अच्छी तरह उन्नत करसकूंगा ॥ ४३ ॥

शत्रुप्रतिबद्धं वा शत्रुणा संधिं कृत्वा मण्डलं भेत्स्यामि ॥ ४४ ॥
भिन्नमवाप्स्यामि ॥ ४५ ॥

अथवा शत्रुके साथ मिले हुए मण्डलको, शत्रुसे सन्धि करके दोनोंमें
परस्पर भेद डालदूंगा ॥ ४४ ॥ और मण्डलके भिन्न हुए २ शत्रुको अपने वशमें
करसकूंगा ॥ ४५ ॥

दण्डानुग्रहेण वा शत्रुमुपगृह्य मण्डललिप्सायां विद्वेषं ग्राह-
यिष्यामि ॥ ४६ ॥ विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामीति संधिना वृद्धि-
मातिष्ठेत् ॥ ४७ ॥

अथवा सैनिक सहायता देकर शत्रुको वशमें करके, मण्डलके साथ
मिलनेकी इसकी हठता होनेपर उलटा द्वेष करादूंगा ॥ ४६ ॥ और द्वेष हो
जानेपर मण्डलके द्वाराही इसे नरवादूंगा । इस प्रकारके विषय उपस्थित होने
पर सन्धिके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ४७ ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ४८ ॥ आयुधीयप्रायः श्रेणीप्रायो वा
पे, जनपदः शैलवननदीदुर्गेकद्वारारक्षो वा शक्यति पराभियोगं
प्रतिहन्तुमिति ॥ ४९ ॥

अथ विपन्नको किस प्रकार अपनी वृद्धि करे यह बताया जाता है, यदि
विजिगीषु समझे कि—॥ ४८ ॥ मेरे राज्यमें आयुधजीवी क्षत्रिय और खेती

करने करानेवाले पुरपहां अधिक रहते हैं, पहाड़, जङ्गल, नदी और किले बहुत हैं, राज्यों बाहर आन जानेके लिये मार्ग भी एकही है, इसलिये शत्रुके किये हुए आक्रमणका प्रतिकार, मेरा प्रान्त बहुत अच्छी तरह करसकता है, तो शत्रुके साथ विग्रह करदेवे ॥ ४९ ॥

विपयान्ते दुर्गमविपक्षमपाश्रितो वा शक्ष्यामि परकर्माण्युप-
हन्तुमिति ॥५०॥ व्यसनपीडोपहतोत्साहो वा परः संप्राप्तकर्मो-
पघातकाल इति ॥ ५१ ॥ विगृहीतस्यान्यतो वा शक्ष्यामि जन-
पदमपवाहयितुमिति निग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

अथवा राज्यका साम्राज्य अति दुर्भेद्य दुर्गका आश्रय लेकर, मैं शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंका अच्छी तरह नाश करसकूँगा, ऐसा जब समझे, तो भी विग्रह करदेवे ॥ ५० ॥ अथवा व्यसन और पीडाओंसे हतोत्साह हुए २ शत्रुके कर्मोंका अथ विनाशकाल प्राप्त होगया है, जब ऐसा समझे तो भी विग्रह करदे ॥ ५१ ॥ अथवा विग्रह किये हुए शत्रुके जनपदको दूसरे किंसा रास्तेसे भी पार सकूँगा, जब ऐसा समझे तो भी विग्रह करदे। इस प्रकार इन अवसरोंके आनेपर विग्रहके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ५२ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५३ ॥ न मे शक्तः परः कर्माण्युपहन्तुम्
॥ ५४ ॥ नाहं तस्य कर्मोपघाती वा ॥ ५५ ॥ व्यसनमस्य श्व-
राहयोरिव कलहे वा ॥ ५६ ॥ स्वकर्मानुष्ठानपरो वा वर्धिष्य
इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५७ ॥

अथ आसनके द्वारा वृद्धि किस प्रकार करनी चाहिये यह बताते हैं, अथवा यदि विजिगापु यह समझे, कि — ॥ ५३ ॥ शत्रु मेरे दुर्ग आदि कर्मोंका नाश नहीं करसकता ॥ ५४ ॥ आर में भी उसके कर्मोंका नाश नहीं कर सकता ॥ ५५ ॥ इस समय इसपर विपत्ति आई है, समान शक्तिवाले कुत्ते और सूअरके समान हमारा विग्रह होजानेपर भी ॥ ५६ ॥ अपने कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ मैं अपनी वृद्धि करूँगा, इस प्रकार आसनके द्वारा राजा अपनी उन्नति करे ॥ ५७ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५८ ॥ यानसाध्यः कर्मोपघातः शत्रोः
प्रतिविहितस्वकर्मारक्षश्चास्मीति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५९ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि — ॥ ५८ ॥ शत्रुके कर्मोंका नाश यानसेही होसकता है, और मैंने अपने कर्मोंकी रक्षाका प्रबन्ध अच्छी तरह करादिया है, यह समझकर राजा यानके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ५९ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ६० ॥ नास्मि शक्तः परकर्माण्युपहन्तुं
स्वकर्मोपघातं वा ज्ञातुमिति बलवन्तमाश्रितः स्वकर्मानुष्ठानेन
क्षयात्स्थानं स्थानाद्बृद्धिं चाकाङ्क्षेत ॥ ६१ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि — ॥ ६० ॥ मैं शत्रुके दुर्ग आदिके
नाश करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ और मेरे दुर्ग आदिपर आक्रमण होनेपर मैं
उसकी रक्षाभी नहीं करसकता, इसलिये ऐसा समझनेपर बलवान्का आश्रय
लेये, और अपने कर्मोंका अनुष्ठान बरता हुआ क्षयसे स्थानकी और स्थानसे
बृद्धिकी आकाङ्क्षा करे ॥ ६१ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ६२ ॥ संधिनैकतः स्वकर्माणि प्रवर्तयि-
ष्यामि विग्रहेणैकतः परकर्माण्युपहनिष्यामीति द्वैधीभावेन बृद्धि-
मातिष्ठेत् ॥ ६३ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि — ॥ ६२ ॥ एक शत्रुके साथ सन्धि
करके अपने दुर्ग आदि कार्योंको यथावत् करता रहूँगा, और दूसरेके साथ
विग्रह करके उसके कर्मोंका नाश करता रहूँगा, तो द्वैधीभाव गुणका प्रयोग
करके अपनी उन्नतिका सम्पादन करे ॥ ६३ ॥

एवं पद्भिर्गुणैरेतैः स्थितः प्रकृतिमण्डले ।

पर्येपेत क्षयात्स्थानं स्थानाद्बृद्धिं च कर्मसु ॥ ६४ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे पाद्गुण्यसमुद्देश

क्षयस्थानबृद्धिनिश्चयश्च प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदिस्तो नवनवति ॥ ९९ ॥

इस प्रकार क्षमाय आदि प्रकृतिमण्डलमें स्थित हुआ १ राजा, सन्धि
आदि छ गुणोंके प्रयोगोंसे, कर्मोंके सम्बन्धमें क्षयावस्थाको पार करके स्थान
और स्थानवस्थाको पार करके बृद्धिकी आकाङ्क्षा करे ॥ ६४ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१०० प्रकरण

संश्रय वृत्ति ।

किसी प्रबल राजाके आश्रयसे अपनी शक्तिको पूरा करना 'संश्रय-वृत्ति' कहाता है । पहिले अध्यायमें यह बताया गया है कि एक ही गुणसे किस प्रकार अपनी उन्नति करनी चाहिये । अब सबसे पहिले संश्रयवृत्तिके प्रसङ्ग-दो गुणोंसे एक समान ही लाभ होनेपर उन दोनोंमें से किस गुणका प्रयोग करना चाहिये, वह बताया जायगा ।

संधिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ १ ॥ विग्रहे हि क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवाया भवन्ति ॥ २ ॥

सन्धि और विग्रह दोनोंसे जब एकही समान लाभ समझे, तो सन्धि का ही धवलम्बन करे ॥ १ ॥ क्योंकि विग्रह करनेपर प्राणियोंका नाश, धान्य आदिका व्यय, दूसरेके देशमें जाना, और शत्रुके द्वारा विप आदिके प्रयोग से कष्ट इत्यादि अनर्थ अवश्यम्भार्या है ॥ २ ॥

तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥ द्वैधीभावसंश्रय-योर्द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ ४ ॥ द्वैधीभूतो हि स्वकर्मप्रधान आत्मन एवोपकरोति ॥ ५ ॥ संश्रितस्तु परस्वोपकरोति नात्मनः ॥ ६ ॥

इसी तरह आसन और यानसे समान लाभ देखनेपर आसनका ही आश्रय लेवे ॥ ३ ॥ द्वैधीभाव और सधयसे समान लाभ होनेपर द्वैधीभावका ग्रहण करे ॥ ४ ॥ क्योंकि द्वैधीभावका आश्रय लेनेपर राजा, मुख्यतया अपने ही कार्योंको करता हुआ, अपना ही उपकार करता है ॥ ५ ॥ परन्तु संश्रयका सहारा लेनेपर, अपने आश्रयभूत राजाकाही अधिक उपकार करता है, अपना नहीं ॥ ६ ॥

यद्बलः सामन्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत् ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टबल-लाभात् तमेवाश्रितः कौशदण्डभूमीनामन्यतमेनास्योपकर्तुमदृष्टः प्रयतेत् ॥ ८ ॥ महादोषो हि निशिष्टबलसमागमो राज्ञामन्यत्रा-रिविगृहीतात् ॥ ९ ॥

सामन्त (अपना प्रतिद्वन्द्वी राजा) जितना बलवान् हो, उससेभी अत्यधिक बलशाली राजाका आश्रय लेवे ॥ ७ ॥ यदि इतना बलशाली कोई राजा

न मिले, तो अपने हस अभियोक्ता (प्रतिद्वन्द्वी) सामन्तका ही आश्रय लेलेवे और धन, सेना, तथा भूमि आदिमें से किसी चीजनों देकर, दूर रहता हुआ ही इसके उपकार करनेका प्रयत्न करे, समीप न आवे ॥ ८ ॥ क्योंकि राजाओंका बलवान् के साथ समागम करना, कभी २ वध बन्धन आदि महान अनर्थोंका उत्पादक हो जाता है। परन्तु यदि वह बलवान्, शत्रुसं विग्रह किया हुआ हो, अर्थात् शत्रुने उससे विग्रह कर रक्खा हो, तो उसके साथ मिलनेमें कोई हानि नहीं ॥ ९ ॥

अशक्यो दण्डोपनतवद्वर्तेत ॥ १० ॥ यदा चास्य प्राणहरं
व्याधिमन्तःक्रोपं शत्रुवृद्धिं मित्रव्यसनमुपस्थितं वा तन्निमित्तमा-
त्मनश्च वृद्धिं पश्येत्तदा संभाव्य व्याधिधर्मकार्योपदेशेनापयायात्
॥ ११ ॥

यदि बलवान् राजाको, बिना उसके पास जाये प्रसन्न करना अशक्य हो, तो संतर्पण द्वारा उसके साथ सन्धि करके गहता पूर्वक वहीं पर रहे ॥ १० ॥ और जब देखे कि हस (बलवान् आश्रयभूत राजा) को कोई प्राणान्तकारी व्याधि हुई है, अथवा पुरोहित आदि कुपित होगये हैं, अथवा शत्रु बहुत बढ़गये हैं, या मित्रके ऊपर कोई विपत्ति आसनी हुई है; और इन्हीं कारणोंसे अपनी उन्नति देखे, तब किसी सम्भावित व्याधि या धर्मकार्यका बहाना करके वहाँसे अपने देशको चला जाये ॥ ११ ॥

स्वविषयस्थो वा नोपगच्छेत् ॥ १२ ॥ आसन्नो वास्य च्छिद्रेषु
प्रहरेत् ॥ १३ ॥ वलीयसौर्वा मध्यगतस्त्राणसमर्थमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

यदि बलवान्को उपयुक्त हालतमें, यह अपनेही देशमें होवे, तो बुलाये जानेपर भी किसी व्याधि या धर्म कार्यका बहाना करके उसके पास न जाये ॥ १२ ॥ अथवा उसके समीप रहता हुआ ही, उसकी निर्वलताओंपर बराबर आघात करता रहे ॥ १३ ॥ अथवा दो बलवान् राजाओंके बीचमें रहता हुआ अपनी (आधित्यकी) रक्षा करनेमें समर्थ राजाकाही आश्रय लेवे ॥ १४ ॥

यस्य वान्तर्धिः स्यात् ॥ १५ ॥ उभौ वा कपालसंश्रयस्तिष्ठेत्
॥ १६ ॥

अथवा जो अपने समीप होवे उसीका आश्रय लेवे ॥ १५ ॥ दोनोंके समीप होनेपर, कपाल सन्धिके द्वारा दोनोंका ही आश्रय लेवे, दोनोंसे जाकर अलहदा २ यह कहे कि आपही मेरे रक्षक हैं, यदि आप मेरी रक्षा न-

करेंगे, तो दूसरा राजा मुझे उखाड़ कर फेंक देगा, इसका नामही कपाल सन्धि है ॥ १६ ॥

मूलहरमितरस्येतरमपादिशेत् ॥ १७ ॥ भेदमुभयोर्वा परस्पर-
रापदेशं प्रयुञ्जीत ॥ १८ ॥ भिन्नयोरुपांशुदण्डम् ॥ १९ ॥

दोनोंको एक दूसरेका अपकार करनेवाला बतलाता रहे ॥ १७ ॥ एक दूसरेके द्रव्यका परस्पर नाश करने वाला बतलाकर, उन दोनोंमें भेद डलवा देवे ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनोंमें भेद पड़जाने पर, उपांशुदण्डका प्रयोग करे, अर्थात् दोनोंको छिपकर किन्हीं उपायोंसे मरवा देवे ॥ १९ ॥

पार्श्वस्थो वा बलस्थयोरसन्नभयात्प्रतिकुर्वीत ॥ २० ॥ दुर्गा-
पाश्रयो वा द्वैधीभूतस्तिष्ठेत् ॥ २१ ॥ संधिविग्रहक्रमहेतुभिर्वा
चेष्टेत ॥ २२ ॥

अथवा उन दोनों बलमान् राजाओंमें से जिसकी ओरसे शीघ्र भयकी आशङ्का हो, उसके समीपहा रहता हुआ भावी आपत्तिका प्रतीकार करे ॥ २० ॥ अथवा दुर्गका आश्रय लेकर द्वैधीभावका प्रयोग करे, अर्थात् एकके साथ सन्धिकर दूसरेके साथ विग्रह करदेवे ॥ २१ ॥ अथवा ७, १, ३३में, तथा ७, १, १९ में कहे हुए सन्धि और विग्रहके निमित्तोंको लेकर कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जावे ॥ २२ ॥

दूष्यामित्रादविकानुभयोरुपगृह्णीयात् ॥ २३ ॥ एतयोरन्यतरं
गच्छंस्त्वेवान्यतरस्य व्यमने प्रहरेत् ॥ २४ ॥ द्वाभ्यामुपहितो
वा मण्डलापाश्रयास्तिष्ठेत् ॥ २५ ॥

दोनोंही प्रतिद्वन्द्वियोंके दूष्य, शत्रु और आदिकोंको दान सरकार आदिसे अपने वशमें करलेवे ॥ २३ ॥ दोनोंमें से किसी एक प्रतिद्वन्द्वीका मुकाबला करता हुआ जिस विषयमें वह निर्बल हो वहाँपर दूष्य आदिके द्वारा ही प्रहार करवावे ॥ २४ ॥ यदि दोनोंही इसको पोंदा पहुँचावे, तो मण्डलका आश्रय लेकर रहे ॥ २५ ॥

मध्यममुदासीनं वा संश्रयेत् ॥ २६ ॥ तेन सहैकमुपगृह्येतर-
मुच्छिन्धादुसौ वा ॥ २७ ॥ द्वाभ्यामुच्छिन्नो वा मध्यमोदासी-
नयोस्तत्पर्क्षीयाणां वा राज्ञां न्यायवृत्तिमाश्रयेत् ॥ २८ ॥

मध्यम अथवा उदासीनका आश्रय लेंवे ॥ २६ ॥ मध्यम अथवा उदासीनके साथ रहता हुआ, एक (अभिषेका=प्रति द्वन्द्वी) को दान आदिसे वशमें करके दूसरेका उच्छेद करदेवे, यदि होसके तो दोनोंका ही उच्छेद

कादेवे ॥ २७ ॥ अथवा दोनोंसे पीड़ित किया हुआ राजा मध्यम वा उदासीन,
या उनके पक्षके अन्य राजाओंमें से जो न्यायहीन अर्थात् न्यायानुकूल व्यवहार
करनेवाला हो उसका आश्रय लेवे ॥ २८ ॥

तुल्यानां वा यस्य प्रकृतयः सुख्येयुरेनं यत्रस्थो वा शकनु-
यादात्मानमुद्धर्तुं यत्र पूर्वपुरुषोचिता गतिरासन्नः संबन्धो वा
मित्राणि भूर्यासीति शक्तिमन्ति वा भवेयुः ॥ २९ ॥

यदि उनमेंसे कई राजा न्यायशील होय, तो जिसकी अमात्य आदि
प्रकृतिया अपने अनुकूल या प्रीति करनेवाला हों, उसीका आश्रय लेवे ।
अथवा जिसके साथ रहता हुआ अपना उद्धार कर सके, अथवा जिसके साथ
अपने पूर्व पुरुषोंका विवाह आदि अन्तर्ग सम्बन्ध रहा हो, अथवा जहां
बहुतसे शक्तिशाली मित्र हों, उसका आश्रय लेवे ॥ २९ ॥

प्रियो यस्य भवेद्यो वा प्रियो ऽस्य कतरस्तयोः ।

प्रियो यस्य स तं गच्छेदित्याश्रयगतिः परा ॥ ३० ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे सधयकृत्ति द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

आदित. शततम ॥१००॥

जो जिसका प्रिय है, उन दोनोंमेंसे कौन किसका प्रिय नहीं होता ?
अर्थात् दोनोंही दोनोंके प्रिय होते हैं । इसलिये जो जिसका प्रिय हो, वह
उसीका आश्रय लेवे, यही आश्रयस्थान सबसे श्रेष्ठ घताया गया है ॥ ३० ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१०१, १०२ प्रकरण

सम, हीन तथा अधिकके गुणोंकी स्थापना और
हीनके साथ सन्धि ।

विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः पाद्गुण्यमुपयुञ्जीत ॥१॥ समज्या-
योभ्यां संधीयेत ॥ २ ॥ हीनेन विगृहीयात् ॥ ३ ॥

विजिगीषु अपनी शक्तिके अनुसार सन्धि आदि छ गुणोंका यथोचित
प्रयोग करे ॥ १ ॥ बराबर तथा अधिक शक्ति वालेके साथ सन्धि करलेवे ॥२॥
हीन शक्तिके साथ विग्रहका प्रयोग करे ॥ ३ ॥

विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति ॥४॥
समेन चामं पात्रमामेनाहतमिवोभयतः क्षयं करोति ॥ ५ ॥

क्योंकि अधिक शक्तिवाले के साथ विग्रह करनेपर हीनशक्ति राजाकी वही दुर्दशा होती है, जो कि गजारेहिणोंके साथ युद्धमें प्रयुक्त हुए २ पदातियों की ॥ ४ ॥ और समानके साथ विग्रह करनेपर, जैसे कच्चा घटा कच्चे घटके साथ निटकर दोनों नष्ट होजाते हैं, इसी प्रकार उन दोनोंका ही नाश होजाता है ॥ ५ ॥

कुम्भेनेवाश्मा हीनेनैकान्तसिद्धिमवाप्नोति ॥ ६ ॥ ज्यायां-
श्चेन्न संधिमिच्छेद्दण्डोपनतवृत्तमावलीयसं वा योगमातिष्ठेत् ॥७॥

हीनके साथ विग्रह करनेपर भवरथ ही सिद्धि होती है, जैसे घटके साथ पत्थरकी चोट लगनेपर घटा अवश्य ही टूटफूट जाता है ॥ ६ ॥ अधिक शक्तिवाला राजा यदि सन्धि न करना चाहे, तो दण्डोपनतवृत्त (७ अधि०, १५ अध्याय) प्रकरणमें बतलाये हुए उपायों और आवलीयस (१२ अधि०) अधिकरणमें छह हुए प्रयोगोंका अफलम्बन करे ॥ ७ ॥

समश्चेन्न संधिमिच्छेद्यावन्मात्रमपकुर्यात्तावन्मात्रमस्य प्रत्यप-
कुर्यात् ॥ ८ ॥ तेजो हि संधानकारणम् ॥ ९ ॥ (नातप्तं लोहं
लोहेन संघत्त इति ॥ १० ॥

बराबर शक्तिवाला राजा यदि सन्धि न करना चाहे, तो जितनी हानि वह पहुँचाव, उतनी ही उसकोभी हानि पहुँचा देवे ॥ ८ ॥ क्योंकि तेज ही सन्धिके कारण होता है ॥ ९ ॥ बिना तप हुआ लोहा, दूसरे लोहेके साथ कभी नहीं मिल सकता ॥ १० ॥

हीनश्चेत्सर्वत्रानुप्रणतस्तिष्ठेत्संधिमुपेयात् ॥ ११ ॥ आरण्यो
ऽग्निरिव हि दुःखसामर्पजं तेजो विक्रमयति मण्डलस्य चानुप्राप्तो
भवति ॥ १२ ॥

यदि हीनशक्ति राजा प्रत्येक विषयमें नम्रही बना रहे, तो इसके साथ सन्धि करलेवे ॥ ११ ॥ क्योंकि कुछ और अमर्पसे उत्पन्न हुआ २ तेज जगल में लगी हुई अग्निके समान होता है; सन्धि न करनेपर सम्भवत यह तेज, हीनशक्ति राजाको विजिगीषुके विषयमें विक्रमशाली बना देगा है । तो विरवह हीम शक्तिराजा मण्डलका कृपापात्र बनजाता है ॥ १२ ॥

संहितश्चेत्परप्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिताः प्रत्यादानमयाद्वा

नोपगच्छन्तीति, पश्येद्दीनो ऽपि विगृहीयात् ॥ १३ ॥ विगृहीत-
श्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिता विग्रहोद्विशा वा मां नोपगच्छ-
न्तीति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेतः ॥ १४ ॥

हीनशक्ति विजिगीषु सन्धि करलेनेपर भी यदि यह देखे, कि शत्रुके
भ्रमात्य आदि प्रकृति जन लोभ, नीचता, या असन्तोषके कारण अथवा बदला
लियेजानेके भयसे मुझे नहीं अपनाते, तो विग्रह करदेवे ॥ १३ ॥ अधिक
शक्तिशाली विजिगीषु, हीन शक्ति राजाके हाथ विग्रह करनेपर भी यह देखे
कि—भ्रमात्य आदि प्रकृति लोभी क्षीण तथा चरित्रहीन होनेके कारण, अथवा
विग्रहसे उद्विग्न होनेके कारण मुझसे अनुराग नहीं रखते, तो सन्धि करलेवे ॥ १४ ॥

विग्रहोद्वेगं वां शमयेत् ॥ १५ ॥ व्यसनयौगपथेपि, गुरुव्य-
सनो ऽस्मि लघुव्यसनः परः सुप्तेन प्रतिकृत्य व्यसनमात्मनो ऽभि-
शुञ्ज्यादिति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत ॥ १६ ॥

अथवा विग्रहके कारण उत्पन्न हुई २ उद्विग्नताको शान्त करे ॥ १५ ॥
अथवा जब यह देखे, कि—मेरे ऊपरभी आपत्ति आई हुई है, और शत्रुके
ऊपरभी, पर मेरी आपत्ति बहुत बड़ी तथा शत्रुकी बहुत थोड़ी है, वह आनन्द
के साथ अपनी आपत्तिका प्रतीकार करके मेरा मुकाबला करनेके लिये तैयार
होजावेगा, तो शक्तिहीनके साथभी सन्धि करलेवे ॥ १६ ॥

संधिविग्रहयोश्चेत्परदर्शनमात्मोपचयं वा नाभिपश्येज्ज्याया-
नप्यासीत् ॥ १७ ॥ परव्यसनमप्रतिकार्यं चेत्पश्येद्दीनो ऽप्यभि-
यायात् ॥ १८ ॥

यदि अधिक शक्तिशाली भी विजिगीषु यह समझे, कि—सन्धि या
विग्रह करनेपर शत्रुके हाथ और मेरी धृष्टिकी सम्भावना नहीं है, तो इनदोनों
को छोड़कर भासनका अवलम्बन करे ॥ १७ ॥ यदि हीनशक्ति विजिगीषु भी
यह देखे, कि—शत्रु अपनी आपत्तिका प्रतिकार नहीं करसकता, तो निःसन्देह
उसपर चढ़ाई करदेवे ॥ १८ ॥

अप्रतिकार्यासन्नव्यसनो वा ज्यायानपि 'संश्रयेत् ॥ १९ ॥
संधिनैकतो विग्रहेणैकतश्चेत्कार्यसिद्धिं पश्येज्ज्यायानपि द्वैधीभू-
तस्तिष्ठेदिति ॥ २० ॥

अप्रतीकार्य (प्रतीकार न की जासकनेवाली) आपत्तिको समीप आया
देख अधिक शक्तिभी विजिगीषु, सधयका अवलम्बन करे ॥ १९ ॥ यदि एकके

साथ सन्धिके द्वारा, और एकके साथ विग्रहके द्वाराही अपनी कार्यसिद्धि समझे तो अधिक शक्तिभी विजिगीषु द्वेषीभावका अवलम्बन करे ॥ २० ॥

एवं समस्य पाद्गुण्योपयोगः ॥ २१ ॥ तत्र तु प्रतिविशेषः
॥ २२ ॥

इस प्रकार सम, हीन तथा अधिक शक्तिसवकेही प्रति सन्धि आदि छ गुणोंके उपयोगका निरूपण कर दिया ॥ २१ ॥ अब उनमेंसे हीनके प्रति कुछ विशेषतायें बतलाई जावेंगी ॥ २२ ॥

१) प्रवृत्तचक्रेणाक्रान्तो राज्ञा बलवतावलः ।

संधिनोपनमेत्तूर्णं कौशदण्डात्मभूमिभिः ॥ २३ ॥

सेना आदिके द्वारा बलवान् राजासे दबाया हुआ निर्बल राजा, जल्दी ही धन सेना आरामा और भूमि समर्पण करके बलवान्से सन्धि करलेवे, अर्थात् उसके सामने झुक जाय ॥ २३ ॥

स्वयं संख्यातदण्डेन दण्डस्य विभवेन वा ।

उपस्थातव्यमित्येष संधिरात्माभिपो मतः ॥ २४ ॥

विजेता जितना कहे उतनीही सेना लेकर और अपनी शक्तिके अनुसार धन लेकर जो विजित स्वयं शत्रुके पास जाकरही उसकी सेवा करता है, इस प्रकारकी सन्धि 'आभिपसन्धि' कहाती है, क्योंकि यह सन्धि अपने आपकी भोग्यरूपसे उपस्थित किये जानेपरही होती है ॥ २४ ॥

सेनापतिकुमाराभ्यामुपस्थातव्यमित्ययम् ।

पुरुषान्तरसंधिः स्यान्नात्मनेत्यात्मरक्षणः ॥ २५ ॥

जो सन्धि, सेनापति और राजकुमारको शत्रुकी सेवामें उपस्थित करके कीजाती है, उसे 'पुरुषान्तरसन्धि' कहते हैं, क्योंकि वह सेनापति और राजकुमार रूप पुरुषविशेषको अर्पण करनेपरही होती है। इसीका नाम 'आत्मरक्षण सन्धि' भी है, क्योंकि इसमें स्वयं राजाकी रक्षा होजाती है, उसे शत्रुके दरबारमें नहीं जाना पड़ता ॥ २५ ॥

एकेनान्यत्र यातव्यं स्वयं दण्डेन वेत्ययम् ।

अदृष्टपुरुषः संधिर्दण्डमुख्यात्मरक्षणः ॥ २६ ॥

किसी दूसरे स्थानपर शत्रुके कार्यको सिद्ध करनेके लिये, मैं स्वयं अकेला ही जाऊंगा, अपना मेरी सेनाही जायगी, इसप्रकार शर्त करके जो सन्धि कीजाती है, उसे 'अदृष्टपुरुष सन्धि' कहते हैं। क्योंकि इस सन्धिके होनेपर शत्रुकी सेवामें किसी पुरुषको उपस्थित नहीं होगा पड़ता। इसी सधि

को 'दण्डमुख्यात्मरक्षण सन्धि' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें 'सेनाके मुख्य व्यक्ति और स्वयं राजाकी रक्षा होजाती है ॥ २६ ॥

मुख्यस्त्रीबन्धनं कुर्यात्पूर्वयोः पश्चिमे त्वरिम् ।

साधयेद्दण्डमित्येते दण्डोपनतसंधयः ॥ २७ ॥

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी सन्धियोंमेंसे पहिली आत्मामिष और आत्म-रक्षण इव दो सन्धियोंमें, विश्वासके लिये अधिकशक्ति राजा मुख्य राजव्यक्तियों की कन्याओंका विवाह सम्बन्ध करे । तथा तीसरी अदृष्टपुरुष सन्धिमें शत्रुको विष आदि गूढ़ प्रयोगोंके द्वारा वशमें करे, ये तीनों सन्धि 'दण्डोपनतसन्धि' कहाती है ॥ २७ ॥

कोशदानेन शेषाणां प्रकृतीनां विमोक्षणम् ।

परिक्रयो भवेत्संधिः स एव च यथासुखम् ॥ २८ ॥

यद्यत्र शत्रुसे युद्धमें गिरफ्तार किये हुए अमात्य आदि प्रकृतियोंको, जिस सन्धिमें धन देकर छुड़ाया जावे, उसे 'परिमयसन्धि' कहते हैं । और यही परिक्रयसन्धि, जब कि सुखपूर्वक ॥ २८ ॥

स्कन्धोपनेयो बहुधा ज्ञेयः संधिरुपग्रहः ।

निरुद्धो देशकालाभ्यां अत्ययः स्यादपग्रहः ॥ २९ ॥

किश्तवार थोडा २ धन बहुत वारमें देना किया जावे, तो 'उपग्रह-सन्धि' कहाती है । तथा जब देयधनके विषयमें यह नियम करादिया जावे कि अमुक स्थानमें अमुकसमयमें इतना धन अवश्य देना होगा, तब इसी 'उपग्रह' को 'अत्यय' कहा जाता है ॥ २९ ॥

विपद्दानादायत्यां क्षमः स्त्रीबन्धनादपि ।

सुवर्णसंधिर्विश्वासादेकीभावगतो भवेत् ॥ ३० ॥

सुखपूर्वक नियत समयमें नियमित धनराशि दे देनेके कारण यह सन्धि, कन्यादान सन्धिसे भी कहीं प्रशस्त है, यह भविष्यमें अच्छा फल लानेवाली होती है, तबे हुए सुवर्णके आपसमें मिल जानेके समान, यह सन्धि शत्रु और विजिगीषुको आपसमें मिलानेका भी साधन हो जाती है, इसीलिये इसको 'सुवर्णसन्धि' भी कहते हैं ॥ ३० ॥

विपरीतः कपालः स्यादत्यादानाभिभाषितः ।

पूर्वयोः प्रणयेत्कूप्यं हस्त्यश्वं वागुरान्वितम् ॥ ३१ ॥

इस उपर्युक्त सन्धिसे विपरीत सन्धि, अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण धनराशि तत्क्षण अदा करवैनी पड़े, 'कपालसन्धि' कहलाती है । दुष्टसन्धि होनेसे

कुर्यादवेक्षणं पूर्वं पश्चिमौ त्वावलीयसेम् ।

आदाय फलमित्येते देशोपनतसंघयः ॥ ३६ ॥

इन चारों सन्धियोंमेंसे पहिली दो आदिष्ट और उचित सन्धियोंमें शत्रुकी विपत्तिकी प्रतीक्षा करे । तथा पिछली दो सन्धियोंमें भूमिसे उत्पन्न वस्तुओंको लेकर, आवलीयस (१२ अधि.) अधिकरणमें कहे हुए उपायोंके द्वारा शत्रुका प्रतीकार करे । इस प्रकार भूमि देनेके कारण ये चारों सन्धियां 'देशोपनतसन्धि' या 'भूम्युपनतसन्धि' कहाती हैं ॥ ३६ ॥

स्वकार्याणां वशेनैते देशे काले च भाषिताः ।

आवलीयसिकाः कार्यास्त्रिविधा हीनसंघयः ॥ ३७ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमोऽधिकरणे समहीनजयायसा गुणाभिवेशो
हीनसंघयः तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितः एकशत ॥ १०१ ॥

इस प्रकार निरूपण की हुई इन तीन प्रकारकी (दण्डोपनत, कोशोपनत, देशोपनत) हीन सन्धियोंको निर्बल राजा अपने कार्य, देश और समयके अनुसार उपयोगमें लावे ॥ ३७ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

१०३-१०७ प्रकरण

विशेष आसन और यान ।

संधिविग्रहयोरासनं यानं च व्याख्यातम् ॥ १ ॥ स्थान-
मासनमुपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः ॥ २ ॥ विशेषस्तु ॥ ३ ॥ गुणै-
कदेशे स्थानम् ॥ ४ ॥

सन्धि और विग्रहमें ही आसन तथा यानको व्याख्यात किया है ॥ १ ॥ स्थान, आसन और उपेक्षण ये आसनके पर्यायवाची शब्द हैं ॥ २ ॥ परन्तु जो इनमें विशेषता है, उसे अब बताते हैं ॥ ३ ॥ आसनरूप गुणके एकदेशमें स्थानशब्द प्रयुक्त होता है । इसका तात्पर्य यह है कि—शत्रुके बराबर शक्ति का होनाही आसन है, जब उसका एकदेश=शक्तिहीन अल्पता हो, अर्थात् जिस अवस्थामें शत्रुके द्वारा कोई अपकार किये जानेपर भी उसका बदला न किया जासके, ऐसी अवस्थाशक्तिहीन अवस्थामें आसनके लिये 'स्थान' शब्दका प्रयोग होता है ॥ ४ ॥

स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् ॥ ५ ॥ उपायानामप्रयोग उपेक्षण-
मिति ॥ ६ ॥ संधानकामयोररिविजिगीषोरुपहन्तुमशक्तयोर्विगृ-
ह्यासनं संघाय वा ॥ ७ ॥

अपनी वृद्धिके लिये जब इस गुणका अवलम्बन किया जाय, तो इसे 'आसन' कहते हैं ॥ ५ ॥ उपायोंका प्रयोग न करना अथवा योश करना 'उपेक्षण' कहाता है ॥ ६ ॥ सन्धिकी इच्छा करनेवाला शत्रु और विजिगीषु, जसके आपसमें एक दूसरेका कोई अपकार न कर सकते हों तो (अधिकशक्ति होनेपर) विग्रह करके आसनका अवलम्बन करें, अथवा (अल्पशक्ति होनेपर) सन्धि करकेही करें ॥ ७ ॥

यदा वा पश्येत्स्वदण्डैर्मित्राटवीदण्डैर्वा समं ज्यायांसं वा
कर्षयितुमुत्सह इति तदा कृतनाह्याभ्यन्तरकृत्यो विगृह्यासीत् ॥ ८ ॥

अथवा जब विजिगीषु देखे, कि अपनी सेना और मित्र तथा आटविक की सेनाओंके द्वारा मैं बराबर या अधिक शक्तिवाले शत्रुको दबा सकता हूँ, तो किले और बाहर जनपदके सब कृत्योंको ठीक २ कराकर विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ ८ ॥

यदा वा पश्येदुत्साहयुक्ता मे प्रकृतयः संहता विवृद्धाः स्व-
कर्मण्यव्याहताश्चरिष्यन्ति परस्य वा कर्माण्युपहनिष्यन्तीति तदा
विगृह्यासीत् ॥ ९ ॥

अथवा जब देखे कि—मेरी अमात्य आदि प्रकृतिया उत्साहसे भरी हुई हैं, एक सलाहसे काम करनेवाली तथा उन्नत हैं, अपने दुर्ग आदि कार्यों को बिना किसी विरोधके पूर्णरूपसे करेंगी और शत्रुके कर्मोंका उपहनन करेंगी, तब ऐसी अवस्थामें भी विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ ९ ॥

यदा वा पश्येत्परस्यापचरिताः क्षीणा लुब्धाः स्वचक्रस्ते-
नाटवीव्यथिता वा प्रकृतयः स्वयमुपजापेन वा मामेष्यन्तीति ॥ १० ॥

अथवा जब देखे कि—शत्रुके अमात्य आदि प्रकृतिजन, राजासे तिर-
स्कृत, दुर्भिक्ष आदिके कारण क्षीण और लुब्ध हुए २, तथा अपनीही सेना, घोर और आटविकोंसे सताये हुए हैं, इसलिये अपनेही आप, अथवा मेरे द्वारा प्रयुक्त किये गये भेदके उपायोंसे वे मेरेही पास आजावेंगे ॥ १० ॥

संपन्ना मे वार्ता विपन्ना परस्य तस्य प्रकृतयो दुर्भिक्षोपहता
मामेष्यन्ति ॥ ११ विपन्ना मे वार्ता संपन्ना परस्य ॥ १२ ॥ तं

मे प्रकृतयो न गमिष्यन्ति विगृह्य चास्य धान्यपशुहिरण्यान्या-
हरिष्यामि ॥ १३ ॥

मेरी वार्ता (कृषि घाण्ड्य आदि) बनी हुई है और शत्रुकी विगड गई है, उसके अनास्य आदि प्रकृतिजन दुर्मिक्षसे पीड़ित हुए २ मेरेही पास आवेंगे ॥ ११ ॥ शत्रुकी वार्ता बनी हुई है और मेरी विगड गई है, फिरभी—
॥ १२ ॥ शत्रुके पास मेरे अनास्य आदि प्रकृतिजन नहीं जायेंगे, विग्रह करके मैं शत्रुके धान्य, पशु और हिरण्य आदिको छोन सकूँगा ॥ १३ ॥

स्वपण्योपघातीनि वा परपण्यानि निवर्तयिष्यामि ॥ १४ ॥

परवणिकपधाद्वा सार्वन्ति मामेष्यन्ति विगृहीते नेतरम् ॥ १५ ॥
दूष्यामित्राटनीनिग्रहं वा विगृहीतो न करिष्यति ॥ १६ ॥

परदेससे आया हुआ माल मेरे देशके विक्रेय मालिकों हाथ पहुँचाता है, इसलिये याहरसे आनेवाले मालको रोकदूंगा ॥ १४ ॥ अथवा शत्रुके व्यापारी मार्गोंसे सारवान् वस्तु (हाथी, घोड़े, हाथीदात आदि) मेरे पास आजायगा, विग्रह करनेपर शत्रुक पास न जासकयो ॥ १५ ॥ अथवा इसके (शत्रुके) साथ विग्रह करनेपर, यह (शत्रु) अपने दूष्य, शत्रु और आटाविकोंको वशमें नहीं करसकेगा ॥ १६ ॥

तैरेव वा विग्रहं प्राप्स्यति ॥ १७ ॥ मित्रं मे भिन्नभाव्यमि-
प्रयातो बहुल्पकालं तनुक्षयव्ययमर्थं प्राप्स्यति ॥ १८ ॥

अथवा दूष्य, शत्रु और आटाविकोंके साथही इसे विग्रह करना पड़ेगा ॥ १७ ॥ अथवा मेरे मित्रभावि (देखो ७ अधि ९ अध्या, ५५ सूत्र) मित्रपर हमला करके, यह (शत्रु) बहुत थोड़ा समयमें, थोड़ीसी सेना आर धन व्यय करकेही महान् अर्थको प्राप्त करेगा, मैं इसके कार्यमें रुकावट दालूँगा ॥ १८ ॥

गुणवतीमादेयां वा भूमिं सर्वसंदोहेन वा मामनादरय
प्रयातुकामः कथं न यायात् ॥ १९ ॥ इति परशुद्धिप्रतिघातार्थं
प्रतापार्थं च विगृह्यासीत् ॥ २० ॥ तमेव हि प्रत्याचो ग्रसत
इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

- अथवा गुणवती अत्यन्त सुख देनेवाला उपद्रव भूमिको लेनके लिये, प्रमाण (आक्रमण) करनेकी इच्छा रखनेवाला यह शत्रु मेरा अनादर करकेही, कहीं अपनी सम्पूर्ण सेनाको लेकर चल न दे ॥ १९ ॥ इत्यादि अवस्थाओंके देखे जानेपर विजिगीषु, शत्रुको उद्यतिका विघात करनेके लिये और अपने प्रताप

का विस्तार करनेके लिये विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ २० ॥
 आक्रमणकारी शत्रु, विजिगीषुके द्वारा उसके आक्रमणमें विग्रह कियेजानेपर कहीं
 उपित हुआ २ इसीके ऊपर आक्रमण कर इसका उच्छेद करदे, तो अनर्थ ही होगा,
 इसलिये ऐसी अवस्थामें विग्रह करके आसनका अवलम्बन न करे यह प्राचीन
 अनेक आचार्योंका मत है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ कर्शनमात्रमस्य कुर्यादव्यसनिनः

॥ २३ ॥ परवृद्ध्या तु वृद्धः समुच्छेदनम् ॥ २४ ॥

किन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ २२ ॥ यह कहता
 है कि उपित हुआ २ शत्रु, व्यसन रहित विजिगीषुको उच्छेद नहीं सकता,
 किन्तु थोड़ा बहुत कष्ट पहुँचा सकता है ॥ २३ ॥ परन्तु यदि विजिगीषु उसके
 आक्रमणमें विग्रह न डाले, तो यह निविग्रह अपने शत्रुको जीतकर और अधिक
 बलवान् होकर, फिर विजिगीषुका अवश्य ही उच्छेद कर सकता है ॥ २४ ॥

एवं परस्य यातव्योऽस्मै साहाय्यमविनष्टः प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥

तस्मात्सर्वसंदोहप्रकृतो विगृह्यासीत् ॥ २६ ॥

इस प्रकार विग्रह करके आसनका अवलम्बन करनेपर तो, सुरक्षित
 हुआ २, शत्रुका यातव्य (यातव्य उस राजाको कहते हैं-जिसपर आक्रमण किया
 जाय), अपना रक्षा करनेवाले विजिगीषुको अवश्यही सहायता पहुँचावेगा
 ॥ २५ ॥ इसलिये सम्पूर्ण सैन्यशक्ति को लेकर प्रयाण करनेवाले शत्रुके साथ
 अवश्यही विग्रह करके आसनका अवलम्बन करे ॥ २६ ॥

विगृह्यासनहेतु प्रातिलोभ्ये संघायासीत् ॥ २७ ॥ विगृह्या-

सनहेतुभिरभ्युचितः सर्वसंदोहवर्जं विगृह्य यायात् ॥ २८ ॥

विग्रह करके आसनके जो हेतु बतलाये गये हैं, यदि उनसे विपरीत
 देखे, तो सन्धि करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ २७ ॥ विग्रहके अनन्तर
 आसनके हेतुओंसे शक्तिका उपचय करके, शत्रुके साथ विग्रहकर यानका अव-
 लम्बन करे । परन्तु जो शत्रु अपनी सम्पूर्ण सेनाको लेकर किसीपर आक्रमणकर
 रहा हो, उसकेप्रति यानका अवलम्बन न करे ॥ २८ ॥

यदा वा पश्येत्सनी परः प्रकृतिव्यसनं वास्य शेषप्रकृति-
 भिरप्रतिकार्यं स्वचक्रपीडिता विरक्ता वास्य प्रकृतयः कर्शिता
 निरुत्साहाः परस्पराद्वा भिन्नाः शक्या लोभयितुमग्न्युदकव्या-
 धिमरकदुर्भिक्षनिमित्तं क्षीणयुग्यपुरुषनिचयरक्षाविधानः पर इति
 तदा विगृह्य यायात् ॥ २९ ॥

अथवा जब देखे कि शत्रु व्यसनी होगया है, या इसके अमात्य आदि प्रकृतियोंका व्यवसन, शेष प्रकृतियोंके द्वारा नहीं हटाया जासकता, अपनी सेनाओंसे पीडित (सताई हुई) प्रजा, राजाके प्रति विरक्त हो गई हैं, इसीलिए उरसाह हीन हैं, आपसमें मिलकर नहीं रह सकतीं, इनको लोभ दिया जासकता है, और शत्रु, अग्नि जल, व्याधि, सक्रामरोग, तथा दुर्मिक्ष आदि उपद्रवोंके कारण, अपने वाहन, कर्मचारी पुरुष, और कोशकी रक्षा न कर सकनेसे क्षीण होचुका है तो उसके साथ विग्रह करके यानका अवलम्बन करे ॥ २९ ॥

यदा वा पश्येन्मित्रमाक्रन्दश्च मे शूरवृद्धानुरक्तप्रकृतिर्विपरीतप्रकृतिः परः ॥ ३० ॥ पार्ष्णिग्राहश्चासारश्च ॥ ३१ ॥ शक्ष्यामि मित्रेणासारमाक्रन्देन पार्ष्णिग्राहं वा निगृह्य यातुमिति तदा विगृह्य यायात् ॥ ३२ ॥

अथवा जब देखे, कि—मेरे आगेका मित्रराजा और मेरे पीछेका मित्र राजा, दोनोंही शूर, अनुभवी एवं अनुरक्त अमात्योंसे युक्त हैं, और शत्रु इनसे विपरीत अमात्योंसे युक्त है, तथा ॥ ३० ॥ इसी प्रकार पार्ष्णिग्राह और आसार भी ॥ ३१ ॥ इसलिये मित्रके साथ आसारका, और आक्रमणके साथ पार्ष्णिग्राह का विग्रह करके मैं शत्रुके ऊपर आक्रमण कर सकूंगा इत्यादि, तो विग्रह करके यानका अवलम्बन करे ॥ ३२ ॥

यदा वा फलमेकद्वार्यमल्पकालं पश्येत्तदा पार्ष्णिग्राहासारभ्यां विगृह्य यायात् ॥ ३३ ॥ विपर्यये संघाय यायात् ॥ ३४ ॥

अथवा जब किसी फलको अपने अकेले हीके द्वारा थोड़ेही समयमें सिद्ध होजाने वाला देखे, तो पार्ष्णिग्राह और आसारके साथभी विग्रह करके यातव्यके प्रति यानकरे ॥ ३३ ॥ यदि फल अकेलेहीके द्वारा थोड़े समयमें सिद्ध होनेवाला न दीखे, तो सन्धि करके यानका अवलम्बन करे ॥ ३४ ॥

यदा वा पश्येन्न शक्यमेवेन यातुमवश्यं च यातव्यमिति तदा समहीनज्यायोभिः सामवायिकैः संभूय यायादेकत्र निर्दिष्टेनाशेनानेकत्रानिर्दिष्टेनाशेन ॥ ३५ ॥

अथवा जब देखे, कि—मैं अकेला यान नहीं कर सकता, पर यान करना अवश्य चाहिये, तो उस समय समशक्ति हीनशक्ति तथा अधिकशक्ति इकट्ठे हुए २/राजाओंके साथ मिलकर यानका अवलम्बन करे । यदि एकही

देशपर धावा करना हो तो हिस्सेका निर्देश करके, और अधिक देशोंपर धावा करना हो तो हिस्सेका निर्देश किये बिनाही यानका आरम्भ करे ॥ ३५ ॥

तेषामसमवाये दण्डमन्यतमस्मिन्निविष्टांशेन याचेत् ॥ ३६ ॥

संभूयाभिगमनेन वा निर्विश्येत् ॥ ३७ ॥ ध्रुवे लाभे निर्दिष्टेनां-
शेनाभुवे लाभांशेन ॥ ३८ ॥

यदि समशक्ति आदि राजाओंमें से कोई राजा साथ चलना स्वीकार न करे तो उसको कुछ हिस्सा देना कहकर उससे भेना भागे ॥ ३६ ॥ अथवा यह कहे कि यदि इस समय साथ चलकर तुम मेरी सहायता करोगे, तो मैं भी अवसर आनेपर साथ चलकरही तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ ३७ ॥ यदि आम्रमण, करनेपर भूमि मिले तो उसहीमेंसे निर्दिष्ट अंशदे, यदि अन्य सामान मिले तो उसमेंसे लाभके अनुसार हिस्सा देदेवे ॥ ३८ ॥

अंशो दण्डसमः पूर्णः प्रयाससम उत्तमः ।

विलोपो वा यथालाभं प्रक्षेपसम एव वा ॥ ३९ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे विगृह्यासन सधायान विगृह्यासन सधायान सभूयप्रयाण चतुर्थो ऽध्याय ॥ ४ ॥ आदितो द्विंशत् ॥ १०२ ॥

मिलकर शत्रुको जीत देनेपर वहासे प्राप्त धनका विभाग इस प्रकार करना चाहिये —सेनाओंकी न्यूनता या अधिकताके अनुसार राजाओंको धन दियेजावे, यह प्रथम पक्ष है । जिसने जितनी मेहनतकी है उसहीके अनुसार उसे धन दियाजावे, यह उत्तम पक्ष समझा जाता है । लूटमें जो जिसके पहले पड़जाय वह उसीका धन रहे, यहभी एक पक्ष है । अथवा आम्रमणके समयमें जितना जिसका धन ब्यय हुआ हो, उसहीके अनुसार उसे हिस्सा दिया जाय ॥ ३९ ॥

पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणमें चोथा अध्याय समाप्त ।

पांचवा अध्याय

१०८—११० प्रकरण

यान विषयक विचार, प्रकृतियोंके क्षय, लोभ
तथा विरागके हेतु, और विजिगीषुके
अनुगामियोंका विचार

* तुल्यसामन्तव्यसने यातव्यममित्रं वेत्तमित्रमभियायात् ॥१॥

तत्सिद्धौ यातव्यम् ॥ २ ॥ अमित्रसिद्धौ हि यातव्यः साहाय्यं
दद्यान्नामित्रो यातव्यसिद्धौ ॥ ३ ॥

यातव्य और शत्रुके ऊपर सामन्तादि जनित मुख्य व्यसन होनेपर, पहिले शत्रुके प्रति ही प्रयाण करे ॥ १ ॥ उसके वशमें होजानेपर फिर यातव्य पर आक्रमण करे ॥ २ ॥ शत्रुके वशमें कर लेनेपर यातव्य अपना (विजिगी-पुका) सहायक हो सकता है, परन्तु यातव्यके वशमें करलेने पर भी शत्रु कभी सहायक नहीं हो सकता, क्योंकि वह नित्यही अपकार करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

गुरुव्यसनं यातव्यं लघुव्यसनममित्रं वेति ॥ ४ ॥ गुरुव्य-
सनं सौकर्यतो यायादित्याचार्याः ॥ ५ ॥

अधिक व्यसनमें फसे हुए यातव्यपर पहिले चढ़ाई की जाय, या थोड़ेसे व्यसनमें फसे हुए शत्रुपर ॥ ४ ॥ अधिक व्यसनी यातव्यपर ही पहिले आक्रमण किया जाय, क्योंकि उसका जीत लेना बहुत सुगम है, ऐसा आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ लघुव्यसनममित्रं यायात् ॥ ७ ॥
लघ्वपि हि व्यसनमभियुक्तस्य कृच्छं भवति ॥ ८ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ६ ॥ यह कहता है कि पहिले शत्रुपर ही आक्रमण किया जाय, चाहे उसपर थोड़ा ही बिपाति हो ॥ ७ ॥ क्योंकि आक्रमण किए जानेपर छोटेसे व्यसनका भी प्रतीकार करना कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥

सत्यं गुर्वपि गुरुतरं भवति ॥ ९ ॥ अनभियुक्तस्तु लघुव्य-
सनः सुखेन व्यसनं प्रतिकृत्यामित्रो यातव्यमभिसरेत् ॥ १० ॥
पार्थिवं गृहीयात् ॥ ११ ॥

यद्यपि यातव्यकी गुरु व्यसन, चढ़ाई कर देनेपर और भी गुरुतर हो जायगा, और उसका जीतना अश्वस्त सरल हो जायगा ॥ ९ ॥ तथापि पहिले लघुव्यसन शत्रुपरही चढ़ाई करे, क्योंकि उसपर चढ़ाई न करनेपर, यह अपने छोटेसे व्यसनका सरलतासे प्रतीकार करके यातव्यकी सहायताके लिए तैयार हो जायगा ॥ १० ॥ या पार्थिव्याह (युद्धके समय पीछेसे आक्रमण कर देने वाला) बन जायगा ॥ ११ ॥

यातव्ययोगपद्ये गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिं लघुव्यसनमन्याय-
वृत्तिं विरक्तप्रकृतिं वेति ॥ १२ ॥ विरक्तप्रकृतिं यायात् ॥ १३ ॥

गुरु व्यसन (जिसपर भारी विपत्ति आई हुई हो) और प्रजाका न्याय पूर्वक पालन करनेवाला यातव्य एक, लघु व्यसन (जिसपर थोड़ीसी आपत्ति हो) और अन्याय पूर्वक प्रजाका पालन करनेवाला यातव्य दूसरा, जिससे अमात्य आदि प्रकृति विरक्त हों ऐसा यातव्य तीसरा, इस प्रकार युगपत् प्राप्त इन तीनों यातव्योंमेंसे, सबसे प्रथम विरक्तप्रकृति यातव्यपरही आक्रमण किया जाय ॥ १२, १३ ॥

गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयोऽनुगृह्णन्ति ॥ १४ ॥

लघुव्यसनमन्यायवृत्तिमुपेक्षन्ते ॥ १५ ॥

गुरु व्यसन, पर न्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण किये जानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतजन प्राणवणसे उसकी सहायता करते हैं ॥ १४ ॥ लघु-व्यसन अन्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण किये जानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उपेक्षावृत्तिसे रहते हैं, अर्थात् न उसकी सहायता करते हैं, और न विरोध करते हैं ॥ १५ ॥

विरक्ता बलवन्तमप्युच्छिन्दन्ति ॥ १६ ॥ तस्माद्विरक्तप्रकृति-
मेव यायात् ॥ १७ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ १८ ॥

परन्तु विरक्त हुए २ अमात्य आदि बलवान् राजाकाभी उच्छेद करदेते हैं ॥ १६ ॥ इसलिये विरक्तप्रकृति यातव्यपरही सबसे प्रथम आक्रमण किया जाय ॥ १७ ॥ दुर्भिक्ष आदि विपत्तियोंसे पीड़ित और लोभी अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपर पहिले हमला करें, या तिरस्कृत अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपर ? ॥ १८ ॥

क्षीणलुब्धप्रकृतिं यायात् ॥ १९ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयः
सुखेनोपजापं पीडां योपगच्छन्ति ॥ २० ॥ नापचरिताः प्रघा-
नावग्रहसाध्या इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

प्रथम क्षीण और लोभी अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपरही आक्रमण करे ॥ १९ ॥ क्योंकि पीड़ित और लोभी अमात्य यही सुगमतासे बहकाये और सताये जासकत हैं ॥ २० ॥ परन्तु तिरस्कृत अमात्य आदिका बहकाना या सताना कठिन है, क्योंकि वे अपनी किसी बातको प्रधान पुरुषके स्वीकार करेने परही फिर उसके बचीभूत होसकते हैं, यह आचार्योंका मत है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयो भर्तरि
स्निग्धा भर्तृहिते तिष्ठन्ति ॥ २३ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि वह कहता

है, कि—पीडित लौभी अमात्य आदि प्रकृतिजन, अपने मालिक में बड़ा खेद रखते हैं, और उसके दितके लिये हरघड़ी तयार होसकते हैं ॥ २३ ॥

उपजापं वा विसंवादयन्ति ॥२४॥ अनुरागे' सार्वगुण्यमिति ॥ २५ ॥ तस्मादपचरितप्रकृतिमेव यायात् ॥ २६ ॥

यहभी सम्भव है कि वे यहकाने में न आये ॥ २४ ॥ वे इस बातको समझते हों कि अपने मालिकमें अनुराग रखनाही सब गुणोंका मूल है ॥२५॥ इसालिये तिरस्कृतप्रकृति (जिस यातव्य राजाने अपने अमात्य आदिका अनावर किया हुआहो) यातव्यपरही प्रथम आक्रमण कियाजाय ॥ २६ ॥

बलवन्तमन्यायवृत्तिं दुर्बलं वा न्यायवृत्तिमिति ॥ २७ ॥
बलवन्तमन्यायवृत्तिं यायात् ॥ २८ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयो नानुगृह्णन्ति निष्पातयन्त्यमित्रं वास्य भजन्ते ॥२९॥

अन्यायवृत्ति (अन्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने वाले) बलवान् यातव्य पर पाहिले आक्रमण कियाजाय, या न्यायवृत्ति दुर्बल यातव्यपर ? ॥ २७ ॥ पाहिले अन्यायवृत्ति बलवान् यातव्य राजापरही आक्रमण करे ॥ २८ ॥ क्योंकि बलवान् भी अन्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण कियेजानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उसकी सहायता नहीं करते, प्रत्युत दुर्ग आदिसे उसे निकाल देते हैं, अथवा इसके शत्रुके साथ जाकर मिल जाते हैं, इसे छोड़कर उसका भाश्य लेलेते हैं ॥ २९ ॥

दुर्लभं तु न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयः परिगृह्णन्त्यनुनिष्पातयन्ति वा ॥ ३० ॥

परन्तु दुर्बलभी न्यायवृत्ति यातव्यके ऊपर हमला कियेजानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन प्राणपणसे उसकी सहायता करते हैं, और उसके दुर्ग आदिस बाहर निकल भागनेपरभी बराबर उसके अनुयायी बने रहते हैं ॥३०॥

अवक्षेपेण हि सतामसतां प्रग्रेहण च ।

अभूतानां च हिंसानामधर्म्याणां प्रवर्तनैः ॥ ३१ ॥

उचितानां चरित्राणां धर्मिष्ठानां निवर्तनैः ।

अधर्मस्य प्रसङ्गेन धर्मस्यावग्रहेण च ॥ ३२ ॥

सज्जन व्यक्तियोंका तिरस्कार और दुर्गनापर अनुग्रह करनेसे, अनुचित अधर्मयुक्त हिंसाओं का आरम्भ करनेसे ॥ ३१ ॥ धर्मात्माओंके उचित भाव-रणोंके छोड़ने, अधर्ममें आसक्त रहने और धर्मको छोड़ देनेसे ॥ ३२ ॥

अकार्याणां च करणैः कार्याणां च प्रणाशनेः ।

अप्रदानैश्च देयानामेदेयानां च साधनैः ॥ ३३ ॥

अदण्डनैश्च दण्ड्यानामदण्ड्यानां च दण्डनैः ।

अग्राह्याणामुपग्राह्याणां चानभिग्रहैः ॥ ३४ ॥

अनुचित कार्योंके करने तथा उचित कार्योंके बिगाडनेसे, सुपात्रोंमें दान नदेने और कुपात्रोंको हरतरह सहायता करनेसे ॥ ३३ ॥ अपराधी व्यक्तियोंको दण्ड न देने ओर सर्वथा निरपराध व्यक्तियोंको कठोर दण्ड देनेसे, चोर आदि श्याम्य पुरुषोंको सदा पास रखने और खान्दानी आये हुए सम्य नागरिकों पुरुषोंको दूर हटाने से ॥ ३४ ॥

अनर्थ्यानां च करणैरर्थ्यानां च विघातनैः ।

अरक्षणैश्च चोरेभ्यः स्वयं च परिमोपणैः ॥ ३५ ॥

पातैः पुरुषकाराणां कर्मणां गुणदूपणैः ।

उपघातैः प्रधानानां मान्यानां चावमाननैः ॥ ३६ ॥

अनर्थकारी कार्योंके करने और सुफलोत्पादक कार्योंके न करनेसे, चोरोंसे प्रजाकी रक्षा न करने आर स्वयं चोरी करनेसे ॥ ३५ ॥ पुरुषार्थी व्यक्तियोंके छोड़ने आर पधारधान उचित रीतिपर प्रयुक्त किये गये सन्धि आदि गुणोंकी निन्दा करनेसे, अभ्यक्ष आदि प्रधान पुरुषोंपर दोषारोपण करके उन्हें बीच काममें लगाने और माननीय आचार्य पुरोहित आदि व्यक्तियोंका तिरस्कार करनेसे ॥ ३६ ॥

विरोधनैश्च वृद्धानां वैपम्येणानृतेन च ।

कृतस्याप्तिकारेण स्थितस्याकरणेन च ॥ ३७ ॥

राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमवधेन च ।

प्रकृतीनां क्षयो लोभो वैराग्यं चोपजायते ॥ ३८ ॥

किसीके विषयमें किसी दूसरेसे अनुचित ऊचनीच या झड़ कहकर वृद्ध पुरुषोंमें परस्पर विरोध करानेसे, किसीसे किये हुए उपकारको न मानने और स्थित अर्थात् निरय कर्मोंके न करनेसे ॥ ३७ ॥ तथा राजाके प्रमाद और आलस्यके कारण, योग (किसी वस्तुकी प्राप्ति) तथा क्षेम (मात्र वस्तुकी रक्षा) का नाश होनेसे अमात्य आदि प्रकृतियोंका क्षय, उनमें लोभ, और राजाके प्रति वैराग्य उत्पन्न होजाता है ॥ ३८ ॥

क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम् ।

विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तारं मन्ति वा स्वयम् ॥३९॥

क्षीण हुए २ अमात्य आदि प्रकृतिजन लोभग्रस्त होजाते हैं, लोभी होकर राजाकी ओरसे विरक्त होजाते हैं, और विरक्त होनेपर शत्रुसे जर्ा मिलते हैं । अथवा अपने आपही अपने मालिकका हनन कर डालते हैं ॥ ३९ ॥

तस्मात्प्रकृतीनां क्षयलोभविरागकाराणां निोत्पादयेत् ॥ ४० ॥ उत्पन्नानि वा सद्य प्रतिकुर्वीत ॥ ४१ ॥

इसलिये राजाका कर्त्तव्य है कि वह अमात्य आदि प्रकृतियोंके क्षय, लोभ तथा विरागके कारणोंको उत्पन्न न होने दे ॥ ४० ॥ यदि वे उत्पन्न हो भी जाय, तो उनका तत्काल प्रतीकार करदिया जावे ॥ ४१ ॥

क्षीणा लुब्धा विरक्ता वा प्रकृतय इति ॥ ४२ ॥ क्षीणाः पीडनोच्छेदनभयात्सद्यः संधि युद्धं निष्पतनं वा रोचयन्ते ॥४३॥

क्षीण, लुब्ध और विरक्त इन तीन प्रकारकी प्रकृतियोंमेंसे पूर्वकी अपेक्षा उत्तरको गुर समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ क्षीण हुए २ अमात्य आदि प्रकृतिजन पीडा और उच्छेदके भयसे, जल्दी ही संधि, युद्ध या दुर्ग आदि छोड जाना स्वीकार कर लेते हैं ॥ ४३ ॥

लुब्धा लोभेनासंतुष्टाः परोपजापं लिप्सन्ते ॥ ४४ ॥ विरक्ताः पराभियोगमभ्युत्तिष्ठन्ते ॥ ४५ ॥

लुब्ध अमात्यादि, लोभके कारण सन्तुष्ट न होनेसे, शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुए २ भेदको प्राप्त हो जाते हैं । अर्थात् शत्रु, उनको झट बहका सकते हैं ॥ ४४ ॥ विरक्त प्रकृति शत्रुके साथ मिलकर विजिगीषुपर आक्रमण करनेको तैयार होजातीं हैं ॥ ४५ ॥

तासां हिरण्यधान्यक्षयः सर्वोपघाती कृच्छ्रप्रतीकारश्च ॥ ४६ ॥ युग्यपुरुषक्षयो हिरण्यधान्यसाध्यः ॥ ४७ ॥

इन प्रकृतियोंके हिरण्य और धान्यका क्षय होजाना, हाथी घोडे आदि सबका नाशक होता है, और इसीलिये इसका प्रतीकार होना भी आवश्यक कठिन है ॥ ४६ ॥ परन्तु हाथी घोडे और पुरपोंके क्षयका प्रतीकार हिरण्य तथा धान्य आदिके द्वारा सुगमतासे होसकता है ॥ ४७ ॥

लोभ एकदेशिको मुख्यायत्तः परार्थेषु शक्यः प्रतिहन्तु-
मादातुं वा ॥ ४८ ॥ विरागः प्रधानाग्रहसाध्यः ॥ ४९ ॥

लोभ, प्रकृतियोंमेंसे किसी एकको होता है, उसके लोभ न केना भी

। मुख्यके अर्धीन है, और शत्रु या यातन्य आदिके धनोंके द्वाराही उसका प्रतीघात या प्रतीकार भी होसकता है, जबका मुख्य व्यक्तियोंके द्वारा यह स्वयं लिया भी जासकता है ॥ ४८ ॥ परन्तु विरागका प्रतीकार प्रधान पुरुषको वशमें किये बिना नहीं होसकता ॥ ४९ ॥

निष्प्रधानाहि प्रकृतयो भोग्या भवन्त्यनुपजाप्याश्चान्येषाम-
नापत्सहास्तु प्रकृतिमुख्यप्रग्रहैस्तु बहुधा भिन्ना गुप्ता भवन्त्यापत्स-
हाश्च ॥ ५० ॥

प्रधान रहित प्रकृतिजन, विजिगीषुके वशमें होजाते हैं, वे दूसरेके द्वारा बहकामे भी नहीं जासकते, परन्तु वे आपत्तियोंको नहीं सहसकते, किसी आपत्तिके आनेपर विजिगीषुको छोड़कर चले जाते हैं । प्रधान पुरुषके अर्धीन रहनेपर तो दूसरोंसे प्रायः अभेद्य सुरक्षित और शत्रुके द्वारा आक्रमण करनेपर त्रिपत्तिको भी सहन करसकते हैं ॥ ५० ॥

समावायिकानामपि संधिविग्रहकारणान्यवेक्ष्य शक्तिशौच-
युक्तौ संभूय यायात् ॥ ५१ ॥ शक्तिमान्हि पार्ष्णिग्रहणे यात्रा-
साहाय्यदाने वा शक्तः ॥ ५२ ॥

साथ २ चलनेवाले अनुगामियोंके भी सन्धि और विग्रहके कारणोंकी अच्छी तरह सोच विचारकर, शक्ति और पवित्रताको देखकर उनके साथही आक्रमण करे ॥ ५१ ॥ क्योंकि शक्तिशाली अनुगामी, पार्ष्णिग्रहण रोकते और युद्धके लिये यात्रामें सैन्य आदि देनेसे सहायता करसकता है ॥ ५२ ॥

शुचिः मिद्वौ चासिद्धौ च यथास्थितकारीति ॥ ५३ ॥ तेषां
ज्यायसैकेन द्वाभ्यां समाम्भ्यां वा संभूय यातव्यमिति । द्वाभ्यां
समाम्भ्यां श्रेयः ॥ ५५ ॥

और शुचि अर्थात् पवित्र (निष्कपट), कार्यसिद्धि होने या न होनेपर दोनों अवस्थाओंमें न्याय्य मार्गकाही अनुसरण करता है ॥ ५३ ॥ उनमेंसे अधिक शक्तिवाले एकके साथ, या बराबर शक्तिवाले दोके साथ मिलकर यात्रा करे ? अर्थात् इन दोनोंमेंसे किसके साथ यात्रा करना अच्छा है ? ॥ ५४ ॥ बराबर शक्तिवाले दोके साथ यात्रा करना श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

ज्यायसा हावगृहीतश्चरति समाम्भ्यामतिसंधानाधिक्ये वा
॥ ५६ ॥ तौ हि सुरौ भेदयितुम् ॥ ५७ ॥ दुष्टैको द्वाभ्यां
नियन्तुं भेदोपग्रहं चोपगन्तुमिति ॥ ५८ ॥

क्योंकि अधिक शक्तिकालेके साथ विजिगीषुका तिरस्कृत होकर या दबकरही चलना पड़ता है, बराबर शक्तिशालोंके साथ यह नहीं होता ॥ ५६ ॥ और उनमेंसे (बराबर शक्तिशालोंमेंसे) एकके साथ अधिक मेल करके उन दोनोंमें परस्पर भेद भी सुगमतासे डाला जासकता है ॥ ५७ ॥ यदि उन दोनोंमेंसे कोई हुए हो तो दूसरेकी सहायतासे उसका दमन और दूष्य आदिके द्वारा भेद प्रयोगसे विग्रह भी किया जासकता है ॥ ५८ ॥

समेनैकेन द्वाभ्यां हीनाभ्यां वेति ॥ ५९ ॥ द्वाभ्यां हीनाभ्यां श्रेयः ॥ ६० ॥ तौ हि द्विकार्यसाधको वश्यौ च भवतः ॥ ६१ ॥

समशक्ति एकके साथ, या हीनशक्ति दोके साथ यात्रा करे ? अर्थात् इन दोनोंमेंसे किसके साथ यात्रा करना अच्छा है ? ॥ ५९ ॥ हीनशक्ति दोके साथ यात्रा करना थोड़ा है ॥ ६० ॥ क्योंकि वे दोनों दो कार्योंको एक साथ करसकते हैं और विजिगीषुके वशमें भी रहते हैं ॥ ६१ ॥

कार्यसिद्धो तु ॥ ६२ ॥

अबतक, मिलकर यात्रा करनेके लिये विजिगीषुसे अपेक्षित राजाओंके विषयमें निरूपण किया गया । अब दूसरे राजाओंसे अपेक्षित विजिगीषुके सम्बन्धमें बताया जाता है । कार्य सिद्धि होनेपर यदि—॥ ६२ ॥

कृतार्थाज्ज्यायसो गूढः सापदेशमपस्रवेत् ।

अशुचेः शुचिवृत्तानु प्रतीक्षेताविसर्जनात् ॥ ६३ ॥

कृतार्थ हुए २ अधिकशक्ति राजाके दिलमें चेह्रमानी आजावे, तो कुछ बहाना करके चुपचाप वहाँसे चलेवे । उसकी ईमानदारी निष्कपटता जान लेनेपर तो, जबतक यह न छोड़े तबतक प्रतीक्षा करे ॥ ६३ ॥

सत्रादपसरेद्यत्तः कलत्रमपनीय वा

समादपि हि लब्धार्थाद्विश्वस्तस्य मयं भवेत् ॥ ६४ ॥

दुर्ग आदि सङ्कटमय प्रदेशसे, यत्रपूर्वक अपने कलत्र आदि अन्तरङ्ग पारिवारिक जनोंको कहीं दूसरी जगह भेजकर चला जावे । क्योंकि सकल हुए २ समशक्ति राजासे भी विजिगीषुका मयही होता है ॥ ६४ ॥

ज्यायस्त्वे चापि लब्धार्थः समो विपरिकल्पते

अभ्युचितश्चाविश्वास्यो वृद्धिक्षित्तविकारिणी ॥ ६५ ॥

सार यह है कि चाहे अधिक शक्ति हो या समशक्ति, कार्य सिद्धि हो जानेपर दिल बदलही जाता है । वृद्धिको प्रस हुए राजाका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, यह वृद्धि क्षित्तको विहृत करदेनेवाली होती है ॥ ६५ ॥

विशिष्टादल्पमप्यंशं लब्ध्वा तुष्टमुखो व्रजेत्

अनंशो वा ततोऽस्याङ्के प्रहृत्य द्विगुणं हरेत् ॥ ६६ ॥

अधिकशक्ति राजासे थोड़ासा भी अंश प्राप्त करके प्रसन्नमुख होकर चला जाने, यदि वह उस समय कुछ भी न दे, तो भी प्रसन्नतापूर्वक लौट जाने और पीछेसे उसकी किसी निर्वलतापर प्रहार करके दुगना धन वसूल करलेवे ॥ ६६ ॥

कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत्सामवायिकान्

अपि जीयेत न जयेन्मण्डलेष्टस्तथा भवेत् ॥ ६७ ॥

इति यात्रागुण्ये सप्तमे अधिकरणे यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभनिरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आदितस्त्रिंशत् ॥ १०३ ॥

स्वतन्त्रतापूर्वक यात्रा करनेवाला विजिगीषु, सफल (कार्यसिद्धि) होनेपर, अपने साथी अनुयायी राजाओंको आदरपूर्वक विदा करे, चाहे उसे स्वयं थोड़ाही हिस्सा मिले। ऐसा करनेसे यह राजमण्डलका अतिप्रिय हो जाता है ॥ ६७ ॥

यात्रागुण्ये सप्तम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय ।

१११, ११२ प्रकरण

एकसाथ प्रयाण, और परिपणित, अपरिपणित,
तथा अपस्तृत, सन्धि ।

विजिगीषुद्वितीयां प्रकृतिमेवमतिसंदध्यात् ॥ १ ॥ सामन्तं
संहितप्रयाणे योजयेत् ॥ २ ॥ त्वमितो याहि ॥ ३ ॥ अहमितो
यास्यामि ॥ ४ ॥ समानो लाभ इति ॥ ५ ॥

विजिगीषु, द्वितीया प्रकृति अर्थात् शत्रुत्व प्रकृतिको वह्यमाण प्रकारोंसे धोखा देवे ॥ १ ॥ एकसाथ । मित्र स्थानकी, यात्राके लिये, सामन्तको नियुक्त करे ॥ २ ॥ उससे कहे कि—तू इधरसे जा, ॥ ३ ॥ और मैं अपने यातव्यके प्रति इधरसे जाऊगा ॥ ४ ॥ दोनों स्थानोंपर जो लाभ होगा, यह बराबर; हम-दोनोंकाही; समाना जावेगा ॥ ५ ॥

लाभसाम्ये संधिः ॥ ६ ॥ वैपम्ये, विक्रम ॥ ७ ॥ संधिः
परिपणितश्चापरिपणितश्च ॥ ८ ॥ त्वमेतं देशं यास्यहमिमं देशं
यास्यामीति परिपणितदेशः ॥ ९ ॥

यदि दोनोंको समान लाभही होवे तो, विजिगीषु, समशक्ति-होनेके-
कारण उससे सन्धि करलेवे ॥ ६ ॥ यदि विजिगीषुको अधिक लाभ हो, तो
उससे लड़ाई करदेवे ॥ ७ ॥ अथ परिपणित (देश, काल, या कार्य किसीकी
शक्त लगाकर कीजानेवाली) और अपरिपणित (इससे विपरीत) सन्धिक-
निरूपण करते हैं ॥ ८ ॥ नू उस अमुक देशको जा, और मैं इसको जाऊगा, इस
प्रकार देश विशेषका निरूपण करके जो सन्धि कीजाय वह पहिली परिपणित
सन्धि है । इसको परिपणितदेशसन्धि भी कह सकते हैं ॥ ९ ॥

त्वमेतावन्तं कालं चेष्टस्वाहमेतावन्तं कालं चेष्टिष्य इति
परिपणितकालः ॥ १० ॥ त्वमेतावत्कार्यं साधयाहमिदं कार्यं साध-
यिष्यामीति परिपणितार्थः ॥ ११ ॥

तुम इतने समय तक कार्य करत रहो, और मैं इतने समय तक करूंगा,
इस प्रकार नियमित समयका निर्देश करके जो सन्धि की जाय, वह दूसरी
परिपणितकालसन्धि कहाती है ॥ १० ॥ तुम इतने कार्यको पूरा करो, और
मैं इतना कार्य पूरा करूंगा, इस प्रकार नियमित कार्यका निर्देश करके की हुई
सन्धिको परिपणितकार्यसन्धि कहा जाता है ॥ ११ ॥

यदि वा मन्येत शैलवननदीदुर्गमटवीव्यवहितं छिन्नधान्य-
पुरुषवीवधासारमयवसेन्धनोदकमविज्ञातं प्रकृष्टमन्यभावदेशीयं वा
सैन्यव्यायामान्नामलब्धभोमं वा देशं परो यास्यति विपरीतमह-
मित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितदेशं संधिमुपेयात् ॥ १२ ॥

जब विजिगीषु यह समझे कि—जिस देशमें पहाड़ों, जगलों और
नदियोंके किनारेपर बड़े २ किले हों, वहा तक पहुंचनेमें अत्यन्त जगलको
पार करना पड़े, जहा दूसरे देशसे धान्य, पुरुष, तेल, पुत आदि सामान और
अपने मित्र धरकों न छाया जा सकें, जहा घात टकरी आदि जल न मिले,
अपरिचित हो (जिसका पूर्णतया भौगोलिक ज्ञान न हो), दूर हो, जहाकी
प्रजा स्वामी भक्त न हो, तथा जहा सन्धके आन जाने या मचायद आदिके लिए
अच्छी भूमि न हो, इत्यादि कारणोंसे, कठिनतासे यहाँ आनेवाले देशको
दूसरा समान्त यत्रा करेगा, और सुगमतासेही यहाँ आनेवाले देशपर मैं
आक्रमण करूंगा तो इस विशेषताके होनेपर परिपणितदेशसन्धि करलेवे ॥ १२ ॥

यदि वा मन्येत प्रवर्षोष्णशीतमतिव्याधिप्रायमुपक्षीणाहारोप-
भोगं सैन्यव्यायामानां चापरोधिकं कार्यसाधनानामूनगतिरिक्तं
वा कालं परश्वेष्टिष्यते विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितकालं
संधिमुपेयात् ॥ १३ ॥

अथवा यदि विजिगीषु यह समझे कि—जब वर्षा गरमी और सरदी बहुत अधिक हो, जिन दिनों साधारणतया बीमारी होती हो, आहार आदिके लिये सामान अच्छी तरह न मिलता हो, सेनाकी कवायद आदि ठीक न होसकती हो, तथा जितने समयमें कार्य सिद्धहो उतने, या उससेभी अधिक समयमें दूसरे सामन्तका कार्य करना पड़ेगा, और मैं अपने अनुकूल समयमें ही कार्य करूंगा, तब ऐसे विशेष कारणके उपस्थित होनेपर परिपणितकालसन्धि कर लेवे ॥ १३ ॥

यदि वा मन्येत प्रत्यादेयं प्रकृतिकोपकं दीर्घकालं महाक्षय-
व्ययमल्पमनर्थानुबन्धमकलयमधर्म्यं मध्यमोदासीनाविरुद्धं मित्रो-
पघातकं वा कार्यं परः साधयिष्यप्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्वि-
शेषे परिपणितार्थं संधिमुपेयात् ॥ १४ ॥

अथवा विजिगीषु जब यह समझे, कि—शत्रुसे उच्छेद करदेने योग्य अमात्य आदि प्रकृतियोंको नुपित करनेवाले, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले, तथा जिन कार्योंमें अत्यधिक पुरखोंका नाश और धनका व्यय हो, धोड़े और भविष्यके अनर्थकारी, कार्यकालमें कष्टकर, अधर्मसे युक्त, मध्यम तथा उदासीन राजाके विरोधी, तथा मित्रोंको कष्ट पहुंचाने वाले, कार्यको दूसरा सामन्त करेगा, और मैं इससे विपरीत कार्यको करूंगा, तब इस विशेष कारणके होने पर परिपणितार्थ सन्धिकरे ॥ १४ ॥

एवं देशकालयोः कालकार्ययोर्देशकार्ययोर्देशकालकार्याणां
चावस्थापनात्सप्तविधः परिपणितः ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रागेवारभ्य
प्रतिष्ठाप्य च स्वकर्माणि परकर्मसु विक्रमेत ॥ १६ ॥

इसी प्रकार देश-काल, काल-कार्य, देश-कार्य, और देशकालकार्य इनके परस्पर अवस्थापन अर्थात् मिलानेसे, ४ ये और तीन पहिली, कुल मिलाकर सात प्रकारकी परिपणित सन्धि होती हैं ॥ १५ ॥ परिपणित सन्धि कर लेने पर पहिलेही अपने कार्योंको प्रारम्भ करे और उन्हें पूर्ण उद्देश्यपर पहुंचा देवे । तदनन्तर शत्रुके दुर्ग आदि कार्यपर आक्रमणकरे ॥ १६ ॥

व्यसनत्वरान्मानालस्ययुक्तमज्ञं वा शत्रुमत्तिसंधातुकामो देश-
कालकार्याणामनवस्थापनात्संहितौ स्व इति संधिविश्वासेन पर-
च्छिद्रमासाद्य प्रहरेदित्यपरिपणितः ॥ १७ ॥

मद्य, युत आदि व्यसनोसे, शीघ्रतासे, तिरस्कारसे तथा आलस्यसे
युक्त, अविचारशील मूर्ख शत्रुको विजय करनेकी इच्छा रखनेवाला राजा, देश,
काल और कार्यकी व्यवस्था न करकेही 'हमदोमो आपसमें सन्धि करलेते हैं'
ऐसा वाणीमात्रसे कहकर, सन्धिके धड़ाने उसपर अपना विश्वास जमाकर,
तथा उसके दौपोंका पता लगाकर आक्रमण करदेवे, यह अपरिपणित सन्धि
होती है ॥ १७ ॥

तत्रैतद्भवति—॥ १८ ॥ .

सामन्तेनैव सामन्तं विद्वानायोज्य विग्रहे ।

ततो ऽन्यस्य हरेद्भूमिं छित्वा पक्षं समन्ततः ॥ १९ ॥

सन्धि कर लेनेपर यह करना चाहिये' कि.—॥ १८ ॥ विद्वान् विचार-
शील विजिगीषु, एक सामन्तके साथही दूसरे सामन्तको लड़ावे । और फिर
यातन्य मिश्रके समग्र पक्षको नष्ट करके, अन्य-यातन्यकी भूमिको अपने वशमें
कर लेवे ॥ १९ ॥

संधेरकृतचिकीर्षा कृतश्लेषणं कृतविदूषणमवशीर्णक्रिया
च ॥ २० ॥ विक्रमस्य प्रकाशयुद्धं कूटयुद्धं तूर्णायुद्धमिति संधि-
विक्रमौ ॥ २१ ॥ अपूर्वस्य संधेः सानुबन्धैः सामादिभिः पर्ये-
षणं समहीनज्यायसां च यथाबलमवस्थापनमकृतचिकीर्षा ॥२२॥

सन्धिके चार धर्म समझे जाते हैं—अकृतचिकीर्षा, कृतश्लेषण, कृतवि-
दूषण, और अवशीर्णक्रिया ॥ २० ॥ तथा विग्रहके प्रकाशयुद्ध, कूटयुद्ध और
तूर्णायुद्ध ये तीन धर्म हैं । इस प्रकार सन्धि और विग्रहका परस्पर विभाग है
॥ ११ ॥ किसी राजाके साथ पहिले ही पहिले, एक दूसरेके साथ मिलकर
मयुक्त किये गये साम आदिके द्वारा सन्धिरहा करना, और अपनी शक्तिके अनु-
सार, समशक्ति, हीनशक्ति तथा अधिकशक्ति राजाओंकी, उचित साम आदि
के द्वारा ही व्यवस्था करना 'अकृतचिकीर्षा' नामक सन्धि धर्म है ॥२२॥

कृतस्य प्रियहिताभ्यामुभयतः परिपालनं यथासंभापितस्य
च निबन्धनस्यानुवर्तनं रक्षणं च कथं परस्मान्न भिद्येत इति

कृतश्लेषणम् ॥ २३ ॥ परस्यापसंधेयतां दूष्यातिसंधानेन स्था-
पयित्वा व्यतिक्रमः कृतविदूषणम् ॥ २४ ॥

की हुई सन्धिको त्रिय तथा हित आचरणके द्वारा, दोनों पक्षोंकी ओर से धनाने रखना, और अपने पूर्व कथनके (समज्ञोतेके) अनुसार शर्तोंका मानना तथा इसप्रकार उनकी रक्षाकरना, जिससे शत्रु भेद न डालसके, यह 'कृत-
'श्लेषण' सन्धि धर्म कहाता है ॥ २३ ॥ इसने दूष्य (राज्यद्रोही) के साथ सन्धिकी है, इस बहानेसे शत्रुकी ओरसे सन्धिभङ्गको सिद्धकरके, विजिगीषु का पहिले काहुई सन्धिको तोड़ देना, 'कृतविदूषण' सन्धि धर्म होता है ॥ २४ ॥

भृत्येन मित्रेण वा दोषापसृतेन प्रतिसंधानमवशीर्णाक्रिया
॥ २५ ॥ तस्यां गतागतश्चतुर्विधः—॥ २६ ॥

किसी दोषसे विजिगीषुको छोड़कर गये हुए भृत्य या मित्रके साथ फिर सन्धिकी होजाना 'अवशीर्णाक्रिया' नामक सन्धि धर्म कहाता है ॥ २५ ॥ अवशीर्णाक्रियामें पृथक् हाकिर फिर मिलजाना (गतागत) चार प्रकारका होता है ॥ २६ ॥

कारणाद्गतागतो विपरीतः कारणाद्गतो ऽकारणादागतो
विपरीतश्चेति ॥ २७ ॥

किसी कारण विशेषसे ही पृथक् होना और फिर किसी कारण विशेषसे ही आकर मिलजाना, बिनाही कारणके पृथक् होना और बिना कारणही आकर फिर मिलजाना, किसी कारण विशेषसे पृथक् होनेपर बिना ही कारण आकर फिर मिलजाना, बिनाही कारणके पृथक् होना तथा किसी कारण विशेषसे पुन आकर मिलजाना ॥ २७ ॥

स्वामिनो दोषेण गतो गुणेनागतः परस्य गुणेन गतो
दोषेणागत इति कारणाद्गतागतः संधेयः ॥ २८ ॥

अपने मालिकके दोष (अप्रसन्नता आदि) से पृथक् हुआ २ तथा (प्रस-
न्नता आदि) गुणके कारण पुन आया हुआ, शत्रुके गुणोंके कारण मालिकको छोड़कर गया हुआ तथा शत्रुके दोषोंको जानकर पुन मालिकके पास आया हुआ । यह गमनागमन कारणपूर्वक होता है, इसलिये पुन सन्धि करनेके योग्य है ॥ २८ ॥

स्वदोषेण गतागतो गुणमुभयोः परित्यज्याकारणाद्गता-
गतंश्चलधुद्धरसंधेयः ॥ २९ ॥

अपनेही दोपसे स्वामीको छोड़कर शत्रुके पास गया हुआ, तथा उसी दोपसे शत्रुको छोड़कर फिर स्वामीके पास आया हुआ, स्वामी और शत्रु दोनोंके गुणोंको न समझ सकनेके कारण, उन्हें बिना ही कारण छोड़कर जाता आता हुआ, चञ्चल बुद्धि पुनः सन्धि करने योग्य नहीं होता ॥ २९ ॥

स्वामिनो दोषेण गतः परस्मात्स्वदोषेणागत इति कारणाद्गतो ऽकारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३० ॥

स्वामीके दोपसे शत्रुके पास गया हुआ, तथा वहाँसे अपने दोपसे लौटा हुआ, कारणसे गत और अकारणसे आयाहुआ समझाजावे, तथा इसकी जांच निम्नलिखित रीतिसे कीजावे ॥ ३० ॥

परप्रयुक्तः स्वेन वा दोषेणाकर्तृकामः परस्योच्छेत्तारमामित्रं मे ज्ञात्वा प्रतिघातभयादागतः परं वा मामुच्छेत्तुकामं परित्यज्यानुशंस्यादागत इति ज्ञात्वा कल्याणबुद्धिं पूजयेदन्यथाबुद्धिमपकृष्टं वासयेत् ॥ ३१ ॥

क्या यह शत्रुकी प्रेरणासे मेरा अपकार करनेके लिये आया है ? अथवा मेरे द्वारा कियेगये पहिले अपकारको याद करके स्वयंही उसका बदला निकालेने आया है ? वा शत्रुके आवृत्तियोंका बध करनेकी इच्छा करनेवाले मेरे शत्रुको जानकर अपने बधके भयसे यहाँ चला आया है ? अथवा मेरे उच्छेदकी कामना करनेवाले शत्रुको छोड़कर पहिले छेदके कारण मेरे पास आगया है ? इत्यादि । इसकी कल्याणबुद्धि जानकर सरकारपूर्वक अपने पास रखे, यदि अन्यथाबुद्धि हो तो दूरही पास करावे ॥ ३१ ॥

स्वदोषेण गतः परदोषेणागत इत्यकारणाद्गतः कारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३२ ॥

अपने दोपसे मालिकको छोड़कर शत्रुके पास गया हुआ, तथा शत्रुके दोपके कारण उसे छोड़कर पुनः आया हुआ, अकारण गत और कारणसे आयाहुआ समझना चाहिये । इसकी भी निम्नरीतिसे जांच कीजावे ॥ ३२ ॥

छिद्रं मे पूरयिष्यत्युचितो ऽयमस्य वासः परत्रास्य जनो न रमते ॥ ३३ ॥ मित्रैर्मे संहितः शत्रुभिर्विगृहीतो लुब्धकूरादाविशः शत्रुसंहिताद्वा परस्मादिति ज्ञात्वा यथाबुद्धयवस्थापयितव्यः ॥ ३४ ॥

क्या गृह भय यहाँ आकर मेरे दोषोंको फैलावेगा ? या इस मान्दका

निवास इसकेलिय अनुकूल है इसलिये आया है ? अथवा इसके खीपुय आदि परवेशमें रहना नहीं चाहते ? अथवा मेरे मित्रोंके साथ इसने सन्धि करली है ? या शत्रुओंने इसका कुछ अपकार किया है ? अथवा अपने शत्रुसे सन्धि कियेहुए लोभी तथा क्रूर शत्रुसे घबड़ा गया है ? इत्यादि । इन सब बातोंको जानकर कार्याणबुद्धि होनेपर उसे रखे, अन्यथा दूर करे ॥३३ ३४॥

**कृतप्रणाशः शक्तिहानिर्विघ्नापण्यत्वमाशानिर्वेदो देशलौल्य-
मविश्वासो बलवद्विग्रहो वा परित्यागस्थानमित्याचार्या ॥३५॥**

आचार्योंका मत है कि—जो कृतज्ञ न हो, जिसकी शक्तियोंका क्षय होसुका हो, साधारण विक्रेप वस्तुओंके समान जिसके राज्यमें विद्या मूल्य लेकर विक्री हो, भधांत जो विद्याकी अवहेलना करनेवाला हो, देनेकी आशा दिलाकर न देनेपर दु खदाई हो, जिसके देशमें उपद्रव रहता हो, जो मृत्योंपर विश्वास न करता हो, अथवा बलवान् राजाके साथ झगडा कर बैठे, ऐसे मालिक (राजा) का परित्याग करदेना चाहिये ॥ ३५ ॥

**भयमवृत्तिरमर्ष इति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ इहापकारी त्याज्यः
परापकारी संधेयः ॥ ३७ ॥**

परन्तु कौटल्यका मत है कि —भय, किसी कार्यको आरम्भ न करना तथा क्रोध, इन्हीं तीन कारणोंके होनपर राजाका परित्याग करे ॥ ३६ ॥ गतागतके विषयमें इसनी बात और ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो अपना अपकार करके जावे, और शत्रुका अपकार किये बिनाही वापस आवे उसे सर्वथा त्यागदेवे । और जो शत्रुकाही अपकार करनेवाला हो, उसके साथ फिर मिलजावे ॥३७॥

**उभयापकारी तर्कयितव्य इति समानम् ॥ ३८ ॥ असंधे-
यत्वेन त्ववश्यं संधातव्ये यतः प्रभावस्ततः प्रतिविदध्यात् ॥३९॥**

जो दोनोंका अपकार करनेवाला हो उसकी अच्छी तरह परिक्षा करके कल्याण बुद्धि होनेपर रखलेवे, अन्यथा न रखे ॥ ३८ ॥ जो सन्धि करने योग्य नहीं है, ऐसे व्यक्तिके साथ यदि किन्हीं विशेष कारणोंसे अवश्य सन्धि करनी पडजावे, तो शत्रुका जिन कारणोंसे उस (व्यक्ति) पर प्रभाव हो, उनका प्रती-
कार करदेवे ॥ ३९ ॥

सोपकारं व्यवहितं गुप्तमायुः क्षयादिति ।

वासयेदरिपक्षीयमवशीर्णक्रियाविधौ ॥ ४० ॥

शत्रुपक्षका कोई व्यक्ति अपने आश्रित रहकर, किसी दोषसे भिर शत्रु के पास जाकर पुन वापस आवे तो इस प्रकारके गतागत के विषयमें भी कुछ

सन्धिके नियम बतायेजाते हैं—अवशीर्ण क्रिया विधिमें (हृदीं हृदं सन्धिको पुनः स्थापित करनेमें) अपना उपकार करनेवाले शत्रु पक्षके गतागत व्यक्तिको, एक विश्वस्त भृत्यकी देखरेखमें, छिपे तौर पर आयुपर्यन्त आश्रय दिया जावे ॥४०॥

विक्रामयेद्भर्तारि वा सिद्धं वा दण्डचारिणम् ।

कुर्यादमित्राटवीषु श्रत्यन्ते वान्यतः क्षिपेत् ॥ ४१ ॥

यदि वह निष्कपट सिद्ध हो तो स्वामीकी परिषदांमें लगा लिया जावे, वहाँभी निष्कपट सिद्ध होनेपर सेना विभागमें नियुक्त करके शत्रु अथवा आट-विकोंके मुकाबलेमें भेज दियाजावे । अथवा अन्यत्र दूरदेशमें किसी कामपर नियुक्त कर दियाजावे ॥ ४१ ॥

पण्यं कुर्यादसिद्धं वा सिद्धं वा तेन संबृतम् ।

तस्यैव दोषेणादूष्य परसंधेयकारणात् ॥ ४२ ॥

यदि जिस कार्यपर वह लयाया गया है, उसके करनेमें असमर्थ हो, अर्थात् हृदयमें कपट होनेके कारण ठीक न करता हो, तो उसे माल बेचना कहकर शत्रुके देशमें भेज दियाजावे, और इस बहानेसे शत्रुके साथ सन्धि करनेका दोषारोपणकर, उसीके दोषसे उसे मार दियाजावे ॥ ४२ ॥

अथ वा शमयेदेनमायत्यर्थमुपांशुना ।

आयत्यां च वधप्रेप्सुं दृष्ट्वा हन्याद्गतागतम् ॥ ४३ ॥

अथवा भविष्यमें कुछ उपद्रव न हो, ऐसा विचारकर, उसका उपांशु-वध करा दियाजावे । भविष्यमें वध करनेकी इच्छा रखनेवाले गतागत व्यक्ति को तो देखतेही मरवा डाले ॥ ४३ ॥

अरितो ऽभ्यागतो दोषः शत्रुसंवासकारितः ।

सर्पसंवासधर्मित्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः ॥ ४४ ॥

शत्रुके पाससे आया हुआ पुत्रव, शत्रुके साथ रहनेके कारण अवश्य ही दोषका हेतु होता है, क्योंकि शत्रुका सहवास सर्पके सहवासके समान है; इस लिये सदा ही भयका हेतु होनेसे इस प्रकारका व्यक्ति निन्दित कहा गया है ॥ ४४ ॥

जायते प्लक्ष्मीजाशात्कपोतादिव शाल्मलेः ।

उद्वेगजननो नित्यं पश्चादपि भयावहः ॥ ४५ ॥

दिलखनके बीज खानेवाला क्यूतर जैसे शिमलके उद्वेगका ही कारण होता है इसी प्रकार शत्रुपक्षका व्यक्तिभी विजिगीषुके लिये भयङ्कर और पीछेसे उद्वेग जनकही होता है ॥ ४५ ॥

प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः ।

विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥ ४६ ॥

अथ युद्धभरमोंके विषयमें दो इन्कोंसे यतलाते हैं—अमुकदेश और अमुक समयमें हमारा तुम्हारा युद्ध होगा, इस प्रकार कहकर जो युद्ध किया जाता है, उसे 'प्रकाशयुद्ध' कहते हैं। घोड़ीसी सेनाको बहुत दिसलाकर भय उत्पन्न करदेना, किले आदिका जलाना और लड़ना, प्रमाद तथा व्यसनके समय शत्रुको पीटा देना ॥ ४६ ॥

एकत्र त्यागघातौ च कूटयुद्धस्य भावका ।

योगगूढोपजापार्थ तूर्णायुद्धस्य लक्षणम् ॥ ४७ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे सहितप्रयाणिकं
परिपणितापरिपणितापस्तुताश्च संभयः पद्ये ऽध्यायः ॥ ६ ॥

आदितश्चतु शत. ॥ १०४ ॥

एक जगह युद्ध छोड़कर दूसरी जगह धावा करदेना, ये सब कूटयुद्धके लक्षण हैं। विष औषधि आदिके प्रयोग तथा गूढ पुरणोंके द्वारा उपजाप (बहकाना, धोखादेना) आदिके प्रयोगोंसे शत्रुका नाश करना 'तूर्णायुद्ध' का लक्षण है ॥ ४७ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें छटा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

११३ प्रकरण

द्वैधीभाव सम्बन्धी सन्धि और विक्रम ।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमुपगृह्णीयात् ॥ १ ॥ सामन्तं
सामन्तेन संभूय यायात् ॥ २ ॥ यदि वा मन्येत-पार्ष्णि मे न
ग्रहीष्यति ॥ ३ ॥

विजिगीषु अपने समीप देशमें स्थित शत्रुको, अपनी सहायताके लिये निम्न लिखित उपायोंसे तैयार करे ॥ १ ॥ पृष्ठ तथा पार्श्व देशस्थित सामन्तके साथ मिलकरही यातव्य सामन्तपर आक्रमण करे ॥ २ ॥ अथवा यदि समझे कि—अपने साथ मिलाया हुआ सामन्त पार्ष्णिप्राह नहीं घनेगा, अर्थात् यातव्य पर आक्रमण करनेके लिये मेरे बाहरचले जानेपर, वह पीछेसे मेरेदेशपर आक्रमण नहीं करेगा ॥ ३ ॥

पार्ष्णिग्राहं वारयिष्यति ॥ ४ ॥ यातव्यं नाभिसरिष्यति
॥ ५ ॥ बलवद्वैगुण्यं मे भविष्यति ॥ ६ ॥ वीवधासारौ मे प्रव-
र्तयिष्यति ॥ ७ ॥ परस्य वारयिष्यति ॥ ८ ॥

दूसरे पार्ष्णिग्राह (पीछेसे आक्रमण करनेवाले) को रोकेगा ॥ ४ ॥
मेरे यातव्यका पक्ष ग्रहण न करेगा ॥ ५ ॥ मेरा बल दुगुना होजावेगा ॥ ७ ॥
अपने देशमें उत्पन्न हुए २ धान्य, तथा मेरेमित्रकी सेनाको मेरी सहायताके
लिये आनेदेगा, उसे घीचमें न रोकेगा ॥ ७ ॥ और शत्रुके लिये इन दोनों
चीजोंको रोकेगा, अर्थात् धान्य और मित्र सेना को उस तक न पहुंचने
देगा ॥ ८ ॥

बद्धाबाधे मे पथि कण्टकान्मर्दयिष्यति ॥ ९ ॥ दुर्गाटव्य-
पसारेषु दण्डेन चरिष्यति ॥ १० ॥ यातव्यमविपद्ये दोषे संधौ
वा स्थापयिष्यति ॥ ११ ॥

मेरे यात्रा करनेपर, मार्गमें आई हुई विघ्न बाधाओंको नष्ट करेगा ॥ ९ ॥
दुर्ग तथा अटवियोंमें विजिगीषु सेनाके जानेपर, अपनी सेनासे बराबर उसकी
सहायता करेगा ॥ १० ॥ कोई असह्य अनर्थ या आपत्ति आपढ़नेपर, यातव्यके
साथ सन्धिकी स्थापना करदेगा ॥ ११ ॥

लब्धलाभांशो वा शत्रूनन्यान्मे विश्वासयिष्यतीति ॥ १२ ॥
द्वैधीभूतो वा कोशेन दण्डं दण्डेन कोशं सामन्तानामन्यतमाह्लि-
प्सेत् ॥ १३ ॥

और अपने प्रतिज्ञान धनको मुझसे प्राप्तकर, मेरे अन्य शत्रुओंको भी
मेरा विश्वास उत्पन्न करावेगा, इत्यादि । सामन्तको साथ मिलाकर यात्रा करने
पर, ये पार्ष्णिग्राह आदि १० प्रयोजन सिद्ध होते हैं । यह समझकर विजिगीषु
सामन्तको साथ मिलीये ॥ १२ ॥ यदि विजिगीषु सामन्तके मिलानेमें विश्वास
न करे तो द्वैधीभावका अवलम्बनकर पृष्ठ तथा पार्व्ववर्ती सामन्तोंमेंसे किसी
एकके, कोशदेकर सेना (यदि सेना कमहोती), और सेनादेकर कोश (यदि कोश
कम होतो), लेनेकी इच्छाकरे ॥ १३ ॥

तेषां ज्यायसो ऽधिकेनांशेन समात्समेन हीनाद्हीनेनेति सम-
संधिः ॥ १४ ॥ विपर्यये विपमसंधिः ॥ १५ ॥

अधिक शक्ति सामन्तकी अधिक हिस्सादेकर सन्धिकरना, समशक्ति
सामन्तको समभाग और हीनशक्ति सामन्तको थोड़ा हिस्सा देकर सन्धिकरना

परानीकस्य प्रत्यनीकं मित्राटवीनां वा शत्रोर्विभूमीनां देशि-
कं मूलपार्श्वमित्राण्यर्थं वा समः समवलेन लाभेन पणेत ॥ २८ ॥
पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृहीयात् ॥ २९ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ ३० ॥

शत्रुकी सेना, तथा शत्रुके मित्र और आटविकोंके साथ, युद्ध करनेमें समर्थ, शत्रुके पर्वतमान्त आदिके नशोंको ठीक २ जाननेवाले (विभूमीनां देशिकम्), अथवा अपने मूल और पार्श्वकी रक्षाके लिये समशक्ति सामन्तकी सेनाके बराबरही लाभ देकर सन्धि करे ॥ २८ ॥ सन्धि करनेपर यदि समशक्ति सामन्त कल्याणबुद्धि हो तो उसपर अनुग्रह बनाये रखे ॥ २९ ॥ अन्यथा दुष्टबुद्धि होनेपर आक्रमण करदेवे ॥ ३० ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमनेकधिरुद्धमन्यतो लभमानो वा समः
समवलाद्वीनेन लाभेन पणेत ॥ ३१ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो
विक्रमेत ॥ ३२ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ३३ ॥

शृगया आदि व्यसनोंसे तथा प्रकृति कोपसे युक्त, और अनेक अन्य सामन्तोंके विरोधी, अथवा सहायताके बिना अन्य किसी उपायसे कार्योंसिद्धि होनेपर, समशक्ति सामन्तके साथ सेनाकी अपेक्षा लाभका थोड़ाही हिस्सा देकर सन्धि करे ॥ ३१ ॥ सन्धि करनेपर यदि उसके अपकार करनेमें समर्थ हो तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ३२ ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि करलेवे ॥ ३३ ॥

एवंभूतो वा समः सामन्तायत्तकार्यः कर्तव्यवलो वा बलस-
माद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३४ ॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनु-
गृहीयात् ॥ ३५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ ३६ ॥

शृगया आदि व्यसन और प्रकृतिकोपसे युक्त, दूसरे सामन्तकी सहायता होनेपरही अपने कार्योंको सफल देखनेवाला, अथवा नई सेना भर्ती करनेवाला समशक्ति सामन्त दूसरे समशक्ति सामन्तके साथ सेनाकी अपेक्षा अधिक लाभ देकर सन्धि करे ॥ ३४ ॥ सन्धि होनेपर, यदि वह कल्याणबुद्धि हो तो सदा उसपर अनुग्रह दृष्टि रखे ॥ ३५ ॥ यदि दुष्टबुद्धि हो तो आक्रमण करदेवे ॥ ३६ ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमभिहन्तुकामः स्वारब्धमेकान्तसिद्धिं
चास्य कर्मोपहन्तुकामो मूले यात्रायां वा प्रहर्तुकामो यातव्याद्भूयो
लभमानो वा ज्यायांसं हीनं समं वा भूयो याचेत् ॥ ३७ ॥

मृगया आदि व्यवसन तथा प्रकृतिकोपसे युक्त ज्यायान्, हीन अथवा समको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला, या उसके उचित देशकालके अनुसार आरम्भ किये गये अतएव अवश्य सफल हो जानेवाले कार्यको नष्ट करनेकी कामनावाला, अथवा विजिगीषुके योत्रा करनेपर पाठसे उसके किले आदिपर धावा करनेकी इच्छा रखनेवाला, अथवा विजिगीषुकी अपेक्षा यातव्यसे अधिक धन याजानेवाला हीन, ज्यायान् या सम, उपर्युक्त ज्यायान् हीन अथवा समसे और अधिक लाभकी याचना करे ॥ ३७ ॥

भूयो वा याचितः स्वगलरक्षार्थं दुर्धर्ममन्यदुर्गमासारमठवीं
वा परदण्डेन मर्दितुकामः प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा परदण्डं क्षयव्य-
यान्यां योक्तुकामः परदण्डेन वा विवृद्धस्तमेवोच्छेतुकामः पर-
दण्डमादातुकामो वा भूयो दद्यात् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार अधिक की याचना किये जानेपर, अपनी सेनाकी रक्षाके लिये, अथवा दूसरेके दुर्गम दुर्ग, मित्रबल तथा आटाविकोंको (अधिक धन मांगनेवाले) दूसरे सामन्तको सेनाके द्वारा ही कुचलनेकी इच्छा करनेवाला, दूर देशमें अधिक समय तक दूसरे सामन्तकी सेनाको कामपर लगाकर क्षय और व्ययसे युक्त करनेकी कामनावाला, अथवा यातव्यकी सेनाके द्वारा (उसके जीत लेनेपर) अपनी सेनाको बढाकर फिर उसीका (अधिक मांगने वालेका) उच्छेदन करनेकी कामनावाला, अथवा यातव्यकी सेनाको अधिक याचक सामन्तकी सहायतासे लेनेकी इच्छा वाला, अवश्यही उतना अधिक लाभ दे देवे जितना कि दूसरे सामन्तन मांगी है ॥ ३८ ॥

ज्यायान् वा हीनं यातव्यापदेशेन हस्ते कर्तुकामः पर-
मुच्छिद्य वा तमेवोच्छेतुकामस्त्यागं वा कृत्वा प्रत्यादातुकामो
बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३९ ॥ पणितस्त्वस्त्रापकारस-
मर्थो विक्रमेत ॥ ४० ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४१ ॥

ज्यायान्, हीनके साथ, उसे यातव्यके सहाने अपने वशमें करनेकी इच्छावाला, अथवा शत्रुका उच्छेद करके फिर उसीका उच्छेद करनेकी काम नावाला, अथवा देकर फिर लौटा लेनेकी इच्छा रखनेवाला अवश्यही सेनाकी अपेक्षा अधिक लाभ दकर सन्धि करलये ॥ ३९ ॥ सन्धि होनेपर यदि उसको अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण करदेये ॥ ४० ॥ अन्यथा सुपचाप सन्धि बनाये रखले ॥ ४१ ॥

यातव्यसंहितो वा तिष्ठेत् ॥ ४२ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं
वास्मै दद्यात् ॥ ४३ ॥ जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रो वा ज्यायान्हीनं
बलसमेन लाभेन पणेत ॥ ४४ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्र-
मेत ॥ ४५ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४६ ॥

अथवा यातव्यके साथ सन्धि करके अपने स्थानपर ही रहे ॥ ४२ ॥
अथवा अपनी दूष्य शत्रुभूत तथा आटाधिक सेनाको सन्धि करनेवाले अधिक-
शक्ति सामन्तके लिये देदेवे ॥ ४३ ॥ शृंगया आदि ध्यसनोंमें भासक्त तथा
प्रकृतिकोप आदिसे युक्त, अधिकशक्ति सामन्त होनेके साथ सेनाके बराबर
लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ४४ ॥ सन्धि करनेपर यदि उसका अपकार
करनेमें समर्थ हो तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ४५ ॥ अन्यथा सन्धि बनाये
रखे ॥ ४६ ॥

एवंभूतं वा हीनं ज्यायान्वलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत ॥ ४७ ॥
पणितस्तस्यापकरणसमर्थो विक्रमेत ॥ ४८ ॥ अन्यथा संदध्यात्
॥ ४९ ॥

ध्यसनी और प्रकृतिकोप आदिसे युक्त हीनके साथ, अधिकशक्ति
सामन्त, बलकी अपेक्षा न्यून लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ४७ ॥ यदि अपकार
करनेमें समर्थ हो तो आक्रमण करदेवे ॥ ४८ ॥ अन्यथा सन्धि बनाये
रखे ॥ ४९ ॥

आदौ बुद्धयेत पणितः पणमानश्च कारणम् ।

ततो वितर्क्योभवतो यतः श्रेयस्ततो व्रजेत् ॥ ५० ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहितप्रयाणिकं द्वैधीभावकाः संधिविक्रमाः
सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आवितः पृथ्वरातः ॥ १०५ ॥

इसलिये पणित (सन्धि या शर्त किया हुआ) और पणमान (सन्धि
या शर्त करनेवाला) दोनों, उपयुक्त सन्धियोंके कारणोंको ठीक २ समझें ।
पित सन्धि करनेपर लाभ या हानिको तथा विग्रह करनेपर लाभ या हानिको
बच्छी तरह सोच समझकर, जिसमें अपना कल्याण समझे, उसी मार्गको
आश्रय लेवे ॥ ५० ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

११४, ११५ प्रकरण ।

यातव्य सम्बन्धी व्यवहार, तथा अनुग्राह्य
मित्रोंके विशेष ।

यातव्योऽभियास्यमानः संधिकारणभादात्कामो विहन्तुकामो
वा सामवायिकानामन्यतमं लाभद्वैगुण्येन पणेत ॥ १ ॥

यातव्य विजिगीषु (जिसपर कोई विजिगीषु आक्रमण करे वह यातव्य कहाता है, यातव्य ही जब पहिले विजिगीषुपर आक्रमण करने लगे तो वह भी विजिगीषु ही है, इस प्रकारका यातव्य विजिगीषु), यात करनेके पहिले ही सन्धिके कारणको स्वीकार करने या अस्वीकार करनेकी इच्छावाला, अन्य सामवायिक (सहायक=साथी, सामन्तोंमेंसे किसी एकके साथ पूर्व निश्चित लाभसे युगना लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ १ ॥

प्रपणितः क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवायपरोपकारशरीरान्वाधांश्चास्य
वर्णयेत् ॥ २ ॥ प्रतिपन्नमर्थेन योजयेत् ॥ ३ ॥ वैरं वा परैर्ग्राह-
यित्वा विसंवादयेत् ॥ ४ ॥

सन्धि करनेवाला; पुत्रपौका नाश, धनका व्यय, दूरदेशका आना जाना, मार्गके विघ्न, शत्रुके पक्षमें प्रवेशकर उसका उपकार करना, और शरीरकी पीडा (अर्थात् कदाचित् प्राणान्तक होजाना), इन छः दोषोंको साथी सामन्तके सामने अच्छी तरह बतला देवे ॥ २ ॥ यदि यह इन सबको स्वीकार करलेवे, तो उसे प्रतिज्ञात धन देदेवे ॥ ३ ॥ यदि सन्धि कारणको ही स्वीकार न करे, तो दूसरे सामन्तोंके साथ इसका विरोध कराके सन्धि तोड़ देवे ॥ ४ ॥

दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः स्वारब्धां
वा यात्रासिद्धिं विघातयितुकामो मूले यात्रायां वा प्रतिहन्तुकामो
यातव्यसंहितः पुनर्याचितुकामः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रस्तस्मिन्निश्च-
स्तो वा तदात्वे लाभमल्पमिच्छेत् ॥ ५ ॥

अनुचित देश कालमें युद्धयात्राका आरम्भ करनेवाले सामन्तको फिर क्षय और व्ययसे युक्त करनेकी इच्छा करनेवाला, अथवा उचित देश कालमें यात्रा करनेपर अवश्य होनेवाली सिद्धिका विघात करनेकी इच्छा वाला, अथवा यात्रा करनेपर पुर्ण भाविके ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छा वाला, यातव्यसे

उस समय थोड़ाही लेकर सन्धि करके फिर अधिक मांगनेकी कामना वाला, अथवा तत्काल भ्रान्तही उत्पन्न अर्थ कष्टसे युक्त, अथवा यातन्यमें अविद्वान्त करनेवाला उस समय थोड़ाही लाभ लेकर सन्धि कर लेवे। और फिर भविष्यमें अधिक धन लेनेकी इच्छा करे ॥ ५ ॥

आयत्यां प्रभूतं मित्रोपकारमिमित्रोपघातमर्थानुबन्धमवेक्ष-
माणः पूर्वोपकारकं कारयितुकामो भूयस्तदात्वे महान्तं लाभमु-
त्सृज्यायत्यामल्पमिच्छेत् ॥ ६ ॥

किसी विशेष फलसे युक्त, मित्रके लाभ और शत्रुकी हानिको देखता हुआ, तथा पहिले उपकार करनेव लेको फिर करानेकी इच्छावाला, उस समय अधिक लाभका छोड़कर भावप्यमें भी थोड़े लाभकी कामना करे ॥ ६ ॥

दूष्यामित्राभ्यां मूलहरेण वा ज्यायसा विगृहीतं त्रातुकाम-
स्तथाविधमुपकारं कारयितुकामः संबन्धावेक्षी वा तदात्वे चाय-
त्यां च लाभं न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ७ ॥

दूष्य तथा शत्रुसे अथवा किले भादि तोडनेवाले अधिकशक्ति सामन्त से विगृहीत हुए २ साथीकी रक्षा चाहनेवाला, तथा इस प्रकारके उपकारको स्वयं या किसी अन्यके द्वारा करानेकी इच्छावाला, तथा यातन्यके साथ सम्बन्ध चाहनेवाला, उस समय और भविष्यमें भी अपने साथीसे लाभ न लेवे ॥ ७ ॥

कृतसंधिरतिक्रामेतुकामः परस्य प्रकृतिकर्शनं मित्रामित्रसंधि-
विश्लेषणं वा कर्तुकामः परामियोगाच्छङ्कमानो लाभमप्राप्तमधिकं
वा याचेत् ॥ ८ ॥

पहिलो का हुद्दे सन्धिको तोडनेकी इच्छावाला, शत्रुक प्रकृतिजनको नष्ट करने और मित्रे तथा शत्रुकी सन्धिको तोडनेकी कामना करनेवाला, शत्रुके आक्रमणकी आशङ्का करनेवाला, अप्राप्त (न वसूल हुए २) तथा पूर्व निश्चित लाभसे अधिकको याचना करे ॥ ८ ॥

तमितरस्तदात्वे चायत्यां च क्रममपेक्षेत् ॥ ९ ॥ तेन पूर्वं
व्याख्याताः ॥ १० ॥

दूसरा सामन्त (जिससे लाभकी याचना की गई है), इस प्रकारकी मांग की बावत, उस समय तथा भावप्यमें होनेवाले लाभ हानिका अच्छी तरह विचार करे ॥ ९ ॥ इसी प्रकार पहिले तीन पक्षोंमें भी हानि लाभका विचार समझना चाहिए ॥ १० ॥

अरिविजिगीष्वोस्तु स्वं स्वं मित्रमनुगृह्यतोः शक्यकल्यभव्या-
रम्भस्थिरकर्मानुरक्तप्रकृतिभ्यो विशेषः ॥ ११ ॥ शक्यारम्भी
विपद्यं कर्मारभेत ॥ १२ ॥

शत्रु और विजिगीषु, जो कि अपने २ मित्रोंपर बड़ा अनुग्रह रखते हों,
वे शक्यारम्भी, कल्यारम्भी, भव्यारम्भी, स्थिरकर्मा और अनुरक्त-प्रकृति, इन
मित्रोंपर ही विशेष अनुग्रह करें ॥ ११ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार कर सकने
योग्य कार्यको ही आरम्भ करनेवाला शक्यारम्भी कहाता है ॥ १२ ॥

कल्यारम्भी निर्दोषम् ॥ १३ ॥ भव्यारम्भी कल्याणोदयम्
॥ १४ ॥ स्थिरकर्मा नासमाप्य कर्मोपरमते ॥ १५ ॥ अनुरक्तप्र-
कृतिः सुसहायत्वादल्पेनाप्यनुग्रहेण कार्यं साधयति ॥ १६ ॥

जो दोपरहित कार्य को आरम्भ करे वह कल्यारम्भी, ॥ १३ ॥ भविष्य
में करवाण रूप फल देने वाले कार्य को जो करे, वह भव्यारम्भी, ॥ १४ ॥
आरम्भ किये हुए कार्य को जो बिना समाप्त किये न छोड़े वह स्थिरकर्मा, ॥ १५ ॥
अनायास ही सहायक हो जानेके कारण, थोड़े सैन्य आदिसे भी कार्य को सिद्ध
कर देने वाले अनुरक्तप्रकृति कहाते हैं ॥ १६ ॥

त एते कृतार्थाः सुखेन प्रभृतं चोपकुर्वन्ति ॥ १७ ॥ अंतः
प्रतिलोमे नानुग्राह्यः ॥ १८ ॥

यदि इन शक्यारम्भी आदि पांच प्रकारके मित्रों को सहायता दी जाय,
तो कृतार्थ हुए २ वे बड़ी सुगमतासे बहुत अधिक सहायता देते हैं ॥ १७ ॥
जो इनसे विपरीत हों, अर्थात् अशक्यारम्भी आदि, उन पर कभी अनुग्रह न
करे ॥ १८ ॥

तयोरैकपुरुषानुग्रहे यो मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सो ऽति-
संधत्ते ॥ १९ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति ॥ २० ॥

पाँच शत्रु और विजिगीषु दोनों एकही पुरुष पर अनुग्रह करना चाहें,
तो जो मित्र अथवा अभिवाच मित्र हो, उसही पर अनुग्रह करना अच्छा होता
है वह अत्यन्त लाभ पहुँचाता है ॥ १९ ॥ क्योंकि मित्रसे सदा अपनी उन्नति
ही होती है, जब उस पर अनुग्रह किया जाय, तो कहना की क्या ? ॥ २० ॥

क्षयज्ययप्रवासपरोपकारानितरः ॥ २१ ॥ कृतार्थश्च शत्रु-
वैगुण्यमेति ॥ २२ ॥

जो मित्रके यज्ञाय शत्रु पर अनुग्रह करता है, उसके पुर्यों का क्षय और धन का व्यय होता है, तथा दूर दूर देशमें जाना और शत्रु का उपकार करना पड़ता है । ॥ २१ ॥ और मतलब निकल आने पर शत्रु फिर विगड़ भी बैठता है । ॥ २२ ॥

मध्यमं त्वनुगृह्णतोऽप्यो मध्यमं मित्रं मित्रतरं चानुगृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति क्षयव्ययप्रयास-परोपकारानितरः ॥ २४ ॥

यदि मध्यवर्ती राजा पर शत्रु और विजिगीषु दोनों अनुग्रह करना चाहते हैं तो भी मित्र भयवा धतिराय मित्र परही अनुग्रह करना अच्छा तथा लाभदायक होता है । ॥ २३ ॥ क्योंकि मित्रसे सदा अपनी वृद्धि होती है । और शत्रु पर अनुग्रह करने वाले को सदा क्षय, व्यय, प्रयास तथा शत्रु का उपकार करना पड़ता है । ॥ २४ ॥

मध्यमश्चेदनुगृहीतो विगुणः स्यादमित्रो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥
कृतप्रयासं हि मध्यमामित्रमपसृतमेकार्थोपगतं प्राप्नोति ॥ २६ ॥
तेनोदासीनानुग्रहो व्याख्यातः ॥ २७ ॥

अनुगृहीत हुआ २ मध्यम यदि विगड़ जावे, तो अपने शत्रु को ही विशेष लाभ होता है । ॥ २५ ॥ क्योंकि पहिले मित्र बना हुआ, और अब विगड़ जानेसे शत्रु हुआ २ मध्यम समान कार्य करने वाले मित्र को (विजिगीषु के शत्रुरूप) को प्राप्त कर लेता है । ॥ २६ ॥ इसी प्रकार उदासीन पर अनुग्रह करने का विवरण भी समझ लेना चाहिये ॥ २७ ॥

मध्यमोदासीनयोर्बलांशदाने यः शूरं कृताखं दुःखसहमनुरक्तं वा दण्डं ददाति सो ऽतिसंधीयते ॥ २८ ॥ विपरीतो ऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

मध्यम और उदासीन राजाओं को सेना की सहायता देने के विषय में, जो शूर, भय आदि चलाने में सुचतुर, दुःख सहने वाले, अनुरक्त सैन्य को दे दालता है, यह ठगा जाता है, अर्थात् धोखा खाता है । ॥ २८ ॥ और जो अपनी इस प्रकार की सेना को नहीं देता, यह लाभ में रहता है । ॥ २९ ॥

यत्र तु दण्डः प्रतिहतस्तं वा चार्थमन्यांश्च साधयति तत्र

मौलभृतश्रेणीमित्राटवीवलानामन्यतममुपलब्धदेशकालं दण्डं दद्यात् ॥ ३० ॥

जिस कार्यके किये जाते हुए पहिले भेजो हुई सेना नष्ट हो चुकी हो, उसी कार्यको पूरा करनेके लिये, या अन्य कार्योंको सिद्ध करनेके लिये, उस अवसरपर मौलबल, भृतबल, श्रेणीबल, मित्रबल तथा अटवीबल, इन पाँचोंमेंसे किसी एक सेनाको उचित देशकालके अनुसार भेजदेवे ॥ ३० ॥

अमित्राटवीबलं वा व्यवहितदेशकालम् ॥ ३१ ॥ यं तु मन्येत कृतार्थो मे दण्डं गृह्णीयादमित्राटव्यभूम्यनृतुषु वा वासयेदफलं वा कुर्यादिति दण्डव्यासङ्गापदेशेननमनुगृह्णीयात् ॥ ३२ ॥

अथवा दूरवेदा और अधिक कालके लिये अमित्रबल या अटवीबलको ही देवे, अन्य मौल आदिको नहीं ॥ ३१ ॥ जिस उदासीन या मध्यमको यह समझे कि,—यह अपना काम निकालकर मेरी सेनाको अपने अधीन करलेगा; अथवा शत्रुके पास, आठविकोंके पास, न रहने योग्य स्थानों तथा ऋतुओंमें रखेगा; अथवा मेरी सेनाको जीतके धनमेंसे कुछ हिस्सा न देगा; उसको 'मेरी सेना किसी दूसरे काममें लगी हुई है' ऐसा बहाना करके सेना न देवे ॥ ३२ ॥

एवमवश्यं त्वनुगृहीतव्ये तत्कालमहमस्मै दण्डं दद्यात् ॥ ३३ ॥
आसमाप्तेश्चैनं वासयेद्योधयेच्च बलव्यसनेभ्यश्च रक्षेत् ॥ ३४ ॥

यदि इस प्रकारके राजाको अवश्य ही सहायता देनी पड़ेजावे, तो उस समयके लिये समर्थ सेनाको, उसे देदेवे ॥ ३३ ॥ और कार्य समाप्त होनेपर सेनाको योग्य भूमि आदिमें निवास कराये, तथा अवसर आनेपर युद्ध करावे । और सैनिक आपत्तियोंसे या हथियार आदिके टूट फूट जानेसे उन्हें सुरक्षित रखे ॥ ३४ ॥

कृतार्थाच्च सापदेशमपस्त्राययेत् ॥ ३५ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥ ३६ ॥ यातव्येन वा संधापेनमविसंदध्यात् ॥ ३७ ॥

काम निकल जानेपर उदासीन या मध्यमसे, कुछ सहायता करके अपनी सेनाको बहालसे बुलवा लेवे ॥ ३५ ॥ और फिर अवसर आनेपर अपनी मूल्य सेना शत्रु सेना, या अटवीसेनाको उसे देदेवे ॥ ३६ ॥ अथवा यातव्यके साथ सन्धि करके मध्यम या उदासीनसे खूब लाभ (पूर्व तिष्ठितसे भी अधिक, लेवे

समे हि लाभे संधिः स्वाद्विपमे विक्रमो मतः ।

ममहीनविशिष्टानामित्युक्तः संधिविक्रमः ॥ ३८ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे यातव्यवृत्तिरदुमःकामिप्रविशेषा
अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥ आदितेः पट्टतः ॥ १०६ ॥

बराबर लाभ होनेपर सन्धि, और लाभमें न्यूनताधिकता होनेपर विक्रम करना चाहिये । सम हीन और विशिष्ट राजाओंके सन्धि तथा विक्रम इन अध्यायमें निरूपण किये गये हैं ॥ ३८ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय

११६ प्रकरण

{ मित्र, हिरण्य भूमि तथा कर्म (दुर्ग) आदिके द्वाराकी हुई सन्धि ।
इस नवम अध्यायमें मित्र सन्धि और हिरण्यसन्धिका ही निरूपण
किया जायगा ।

संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान्
॥ १ ॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतो मित्रं हिरण्यलाभात्
॥२॥ यो वा लाभः सिद्धः श्रेययोरन्यतरं साधयति स श्रेयान् ॥ ३ ॥

मित्रकर यात्रा करनेके विषयमें मित्र, हिरण्य और भूमि इन लाभों-
मेंसे उत्तरोत्तर लाभ श्रेष्ठ है, अर्थात् मित्र लाभकी अपेक्षा हिरण्य लाभ और
हिरण्यलाभकी अपेक्षा भूमिलाभ उत्तम समझा जाता है ॥ १ ॥ क्योंकि भूमि-
लाभसे मित्र और हिरण्य दोनों प्राप्त हो सकते हैं, तथा हिरण्य लाभसे मित्र
लाभ हो सकता है ॥ २ ॥ अथवा जो सिद्ध हुआ २ लाभ, दोष (दोनों या)
दोनोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करसके, वही श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ३ ॥

त्वं चाहं च मित्रं लभावह इत्येवमादिभिः समसंधिः ॥४॥
त्वं मित्रमित्येवमादिभिर्विपमसंधिः ॥ ५ ॥ तयोर्विशेषलाभादति-
संधिः ॥ ६ ॥ समसंधौ तु यः संपन्नं मित्रं मित्रकृच्छ्रे वा मित्र-
मयामोति सो जतिसंधत्ते ॥७॥ आपद्धि सौहृदस्यैवमुत्पादयति ॥८॥

तु और मैं दोनों मित्र को लाभ करें, इस प्रकार की हुई सन्धि सम-
सन्धि होती है । ॥ ४ ॥ तु मित्र को लाभ कर मैं हिरण्य को, तु हिरण्य को
लाभ कर मैं भूमिको' इस प्रकार की हुई सन्धि विषमसन्धि कहाती है ॥ ५ ॥
उन दोनों समसन्धि और विषमसन्धिमें, पूर्व निश्चितसे अधिक लाभ हो, वह
अतिसन्धि होती है ॥ ६ ॥ समसन्धिमें तो, जो सग्न (देखो-उपही अध्याय
९, सू ५०) मित्रको, अथवा विपत्तिग्रस्त मित्रको प्राप्त करता है, वह अतिसन्धि
निमित्तक विशेष लाभको पाता है ॥ ७ ॥ क्योंकि आपत्ति, मित्रतामे
दृढ़ता को पैदा कर देती है, अर्थात् आपत्तिमें मित्रता स्थिर होजाती है ॥ ८ ॥

मित्रकृच्छ्रेऽपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति ॥९॥ नित्य-
मवश्यं श्रेयः ॥ १० ॥ तद्व्यनुपकुर्वदपि नापकरोतीत्याचार्याः
॥ ११ ॥

मित्रकी विपत्ति दशमें भी, अपने वशमें न रहनेवाले सार्वदिक मित्र
(जो सदा अपना मित्र बना रहे) का प्राप्त होना अच्छा है, या अपने वशमें
रहनेवाले पर, थोड़े दिनोंके लिये ही मित्रता रखनेवाले मित्रका प्राप्त होना अच्छा
है ॥ ९ ॥ इस विषयमें आचार्योंका मत है कि वशमें न रहनेवाले सार्वदिक
मित्रका प्राप्त करनाही अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वह उपकार न करनेपर भी
कभी अपकार भी नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ वश्यमनित्यं श्रेयः ॥१३॥ याव-
दुपकरोति तावन्मित्रं भवत्युपकारलक्षणं मित्रमिति ॥ १४ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ १२ ॥ उसका सिद्धान्त है
कि अपने अधीन रहनेवाला थोड़े दिनोंका भी मित्र अच्छा होता है ॥ १३ ॥
क्योंकि वह जबतक अपना उपकार करता रहता है, तभी तक मित्र रहता है ।
मित्रका स्वरूपही, अपने साथीकी मलाई करना है ॥ १४ ॥

वश्ययोरपि महाभोगमनित्यमल्पभोगं वा नित्यमिति ॥१५॥
महाभोगमनित्यं श्रेयः ॥ १६ ॥ महाभोगमनित्यमल्पकालेन
महदुपकुर्वन्महान्ति व्ययस्थानानि प्रतिकरोतीत्याचार्याः ॥१७॥

अपनी अधीनता स्वीकार करनेवाले दोनों मित्रोंमें भी, थोड़े ही सम-
यके लिये अधिक कर देने वाला अच्छा है, या सर्वदाके लिये थोड़ा २ कर आदि
देनेवाला अच्छा है ? ॥ १५ ॥ इस विषयमें आचार्योंका सिद्धान्त है, कि थोड़े
-दिनतक ही कर आदि अधिक देनेवाला अच्छा है ॥ १६ ॥ क्योंकि वह थोड़ेही
दिनोंमें बहुत अधिक धन सामग्री देकर विजिगापुका महान उपकार करता है ।

तथा अपनी सहायतासे, उसके व्यवस्थानोंका प्रतीकार कर देता है। अर्थात् विजिगीषुका, जिन २ राजकार्योंमें व्यव होता है, उस व्यवमें यह भी सहायक हो जानेसे, उसका व्ययभार कम कर देता है ॥ १७ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १८ ॥ नित्यमल्पभोगं श्रेयः ॥ १९ ॥
महाभोगमनित्यमुपकारमयादपक्रामति ॥ २० ॥ उपकृत्य वा
प्रत्यादातुमीहते ॥ २१ ॥ नित्यमल्पभोगं सातत्यादल्पमुपकुर्यन्म-
हता कालेन महदुपकरोति ॥ २२ ॥

परन्तु आप्तार्थ कौटल्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ १८ ॥ वह कहता है कि सदाके लिये थोड़ा २ देनेवाला ही मित्र अच्छा है ॥ १९ ॥ क्योंकि एक साथ अधिक देनेवाला मित्र, इसी भयसे बहुत जल्दी मित्रता छोड़ बैठता है ॥ २० ॥ और फिर वह इसके लियेभी बल करने लगता है कि जो कुछ मैंने इसे दिया है, वह किसी तरह वापस करना चाहिए ॥ २१ ॥ तथा सदाके लिये निरन्तर थोड़ा २ देनेवाला भी बहुत समयके परचात् विजिगीषुका महान उपकार कर देता है अर्थात् उसका धीरे २ लगातार थोड़ा २ उपकार किया हुआभी कालान्तरमें महान होजाता है ॥ २२ ॥

गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्पं वेति ॥ २३ ॥ गुरुसमुत्थं
महन्मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ २४ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं
साधयतीत्याचार्याः ॥ २५ ॥

बड़ी कठिनतासे धिरकाल तक प्रयत्न करनेपर, शत्रुसे युद्ध करनेके तैयार होनेवाला प्रबल मित्र अच्छा है, या सरलतासे ही शत्रु तैयार होजाने वाला अल्पशक्ति मित्र अच्छा है ? ॥ २३ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है, कि कठिनतासे तैयार होनेवालाभी प्रबल मित्र अच्छा है, क्योंकि वह शत्रुओंका दमन अच्छी तरह करसकता है ॥ २४ ॥ और जबभी तैयार हो जायगा, कार्यको अवश्यही पूरा करदेगा ॥ २५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २६ ॥ लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः ॥ २७ ॥
लघुसमुत्थमल्पं मित्रं कार्यकालं नातिपातयति दौर्बल्याच्च यथेष्ट-
भोग्यं भवति नेतरत्प्रकृष्टभौमम् ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य इसको स्वीकार नहीं करता ॥ २६ ॥ वह कहता है, कि सरलतासे शत्रु तैयार होजाने वाला, अल्प शक्तिभी मित्र अच्छा होता है ॥ २७ ॥ क्योंकि ऐसा मित्र अवसरको कभी नहीं चूकता। अर्थात् जब अवसर होता है तत्काल ही कार्य करनेके लिये तैयार होजाता है। कार्यके समयको टलने नहीं

देता । और अपनेसे दुर्बल होनेके कारण अपनी इच्छानुसार कार्यमें लगाया जासकता है । परन्तु ये सब बातें दूसरे मित्रमें नहीं हो सकतीं, और विशेषकर उस अवस्थामें, जबकि वह किसी दूर देशमें रहता हो ॥ २८ ॥

विक्षिप्तसैन्यमवश्यसैन्यं वेति ॥ २९ ॥ विक्षिप्तं सैन्यं शक्यं
प्रतिसंहर्तुं वश्यत्वादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

जिस मित्र राजाकी सेना, अन्य कार्योंको सिद्ध करनेके लिये अनेक स्थानोंमें भेजी हुई हो, ऐसा वश्य (अपने वशमें रहनेवाला) सेना रखनेवाला मित्र अच्छा, या जिसकी सेना वशमें तो न हो, पर सब अपने पास विद्यमान हो ऐसा मित्र अच्छा है ? ॥ २९ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है कि इधर उधर बिखरी हुई सेना वालाभी भिय अच्छा होता है क्योंकि वह सेना अपने वशमें होनेके कारण शीघ्रही इकट्ठी की जासकती है ॥ ३० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ अवश्यसैन्यं श्रेयः ॥ ३२ ॥
अवश्यं हि शक्यं सामादिभिर्वश्यं कर्तुम् ॥ ३३ ॥ नेतरत्कार्यव्या-
सक्तं प्रतिसंहर्तुम् ॥ ३४ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ३१ ॥ यह कहता है कि जिसकी सेना अपने वशमें नहीं है, पर अपने पासही सब एकत्रित विद्यमान है, वही मित्र अच्छा है ॥ ३२ ॥ क्योंकि साम आदि उपायोंके द्वारा अवश्य सेनाको भी अपने वशमें किया जासकता है, और तत्काल उसे यथेच्छ कार्योंपर लगाया जासकता है ॥ ३३ ॥ परन्तु इधर उधर बिखरी हुई सेना, अपने अपने कार्योंमें लगी हुई होनेके कारण तत्काल ही एकत्रित नहीं की जासकती ॥ ३४ ॥

पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा मित्रमिति ॥ ३५ ॥ पुरुषभोगं
मित्रं श्रेयः ॥ ३६ ॥ पुरुषभोगं मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ ३७ ॥
यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ ३८ ॥

पुरुषोंके द्वारा उपकार करनेवाला मित्र अच्छा है, या हिरण्यके द्वारा उपकार करनेवाला अच्छा ? ॥ ३५ ॥ इस विषयमें आचार्योंका सिद्धान्त है कि पुरुषोंके द्वारा उपकार करनेवाला मित्र अच्छा है क्योंकि वह स्वयं ही शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करसकता है, और उन्हें दया सकता है ॥ ३७ ॥ और जबकभी भी किसी कार्यको करनेके लिये तैयार होजाता है, अवश्य ही उस कार्यको पूरा कर सकता है ॥ ३८ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३९ ॥ हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः ॥ ४० ॥

नित्योदि हिरण्येन योगः कदाचिदण्डेन दण्डश्च हिरण्येनान्ये च
कामाः प्राप्यन्त इति ॥ ४१ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता ॥ ३९ ॥ यह
कहता है कि 'हिरण्य आदिसे' सहायता करनेवाला मित्रही श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥
क्योंकि धनकी सदाही आवश्यकता रहती है, और सेना आदिकी आवश्यकता
कभी २ होती है। तथा धन होनेपर उसके द्वारा सेनाका संग्रहभी किया
जासकता है, और अन्य कामनाओंको भी पूरा किया जासकता है ॥ ४१ ॥

हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा मित्रमिति ॥ ४२ ॥ हिरण्यभोगं
गतिमत्त्वात्सर्वव्ययप्रतीकारकरमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥

हिरण्य आदि धन देनेवाला मित्र अच्छा, या भूमि देनेवाला मित्र अच्छा
॥ ४२ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है, कि हिरण्य आदि धनकी
सहायता देनेवालाही मित्र अच्छा है। क्योंकि धनको चाहे जहां इच्छानुसार
लेजाया जासकता है। और हरतरहके व्ययमें इसका उपयोग किया जा सकता
है ॥ ४३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवत इत्युक्तं
पुरस्तात् ॥ ४५ ॥ तस्माद्भूमिभोगं मित्रं श्रेय इति ॥ ४६ ॥

परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ४४ ॥ यह कहता है कि 'मित्र
और हिरण्य दोनोंही भूमिके द्वारा प्राप्त किये जासकते हैं' यह हम पहले कह
चुके हैं ॥ ४५ ॥ इस लिये भूमिकी सहायता देनेवाला मित्र ही सबसे श्रेष्ठ
होता है ॥ ४६ ॥

तुल्ये पुरुषभोगे विक्रमः क्लेशसहत्वमनुरागः सर्ववललाभो
वा मित्रकुलाद्विशेषः ॥ ४७ ॥ तुल्ये हिरण्यभोगे प्रार्थितार्थता
प्राभूत्यमल्पप्रयासता सातत्याच्च विशेषः ॥ ४८ ॥ तत्रैतद्भवति-
॥ ४९ ॥

दो मित्र यदि समान रूपसे पुरुषोंकी ही सहायता देनेवाले हों, तो
उनमेंसे भी विक्रमशाली, क्लेशोंको सहन करनेवाला, अनुरागी और मौल भृत
आदि, सब तरहकी सेनाओंको देनेवाला मित्रही प्रशस्त समझा गया है ॥ ४७ ॥
समान रूपसे हिरण्य आदि धनकी सहायता देनेवाले दो मित्रोंमेंसे भी यही
मित्र प्रशस्त समझा जाता है, जोकि मांगते ही बहुत थोड़ा परिश्रम करनेपर
भी बहुत धन देवे, और निरन्तर देता रहे ॥ ४८ ॥ अब इसके आगे मित्र तथा
उनके गुणोंका निरूपण करते हैं:— ॥ ४९ ॥

नित्यं वश्यं लघुत्थानं पितृपैतामहं महत् ।

अद्वैध्यं चेति संपन्नं मित्रं पद्मगुणमुच्यते ॥ ५० ॥

नित्य, वश्य, लघुत्थान, पितृ पतामह, महत् और अद्वैध्य ये छः प्रकारके मित्र परस्पर गुणोंके भेदसे होते हैं ॥ ५० ॥

ऋते यदर्थं प्रणयाद्द्रक्ष्यते यच्च रक्षति ।

पूर्वोपचितसंबन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते ॥ ५१ ॥

धन आदि सम्बन्धके बिनाही, प्रथम उत्पन्न हुए योनिसम्बन्धके कारण आयन्त स्नेहसे विजिगीषु जिसकी रक्षा करता है, और इसी प्रकार जो विजिगीषु की रक्षा करता है, इस प्रकारके मित्रोंको 'नित्य' कहते हैं ॥ ५१ ॥

सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते ।

एकतोभोग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम् ॥ ५२ ॥

वश्य मित्र तीन प्रकारका होता है:—सर्वभोग, चित्रभोग और महाभोग । जो सेना, धन और भूमि आदि सब तरहसे विजिगीषुकी सहायता करे, वह सर्वभोग कहाता है । केवल सेना और धनसे प्रज्ञान उपकार करने वाला महाभोग, तथा रत्न, तांबा, लोहा आदि खनिज पदार्थ और लकड़ी जंगल आदि भिन्न २ वस्तुओंसे सहायता करनेवाला चित्रभोग कहाता है । ये तीन भेद धनप्रसिद्धि के भेदसे यथाव्ये श्ये हैं । अन्वर्थ निवारणके द्वारा उपकार करनेसे भी वश्यमित्र तीन प्रकारके होते हैं.—पुक्तोभोगी उभयभोगी और सर्वतोभोगी । जो केवल शत्रुका प्रतीकार करे वह पुक्तोभोगी; जो शत्रु और शत्रुके मित्र दोनोंका प्रतीकार करे वह उभयतोभोगी; तथा जो शत्रु, शत्रुके मित्र और आटविक आदि सबका प्रतीकार करे वह सर्वतोभोगी कहाता है ॥ ५२ ॥

आदातृ वा दात्रपि वा जीवत्यरिषु हिंसया ।

मित्रं नित्यमवश्यं तद्दुर्गाटव्यपसारि च ॥ ५३ ॥

जो विजिगीषुका उपकार न करनेपर भी, शत्रुओंमें लूटमार करके पुत्र ले देकर अपना निर्वाह करता है, और दुर्ग तथा अटवोंमें रहनेके कारण अपनी रक्षा करता हुआ शत्रुके हाथ नहीं आता, वह विजिगीषुका वश्यमित्रता हीन निरयमित्र होता है ॥ ५३ ॥

अन्यतो विगृहीतं वा लघुव्यसनमेव वा ।

संघत्ते चोपकाराय तन्मित्रं वश्यमभुवम् ॥ ५४ ॥

परन्तु जिसपर शत्रुने आक्रमण करदिया हो, अथवा और कोई छोटीसी आपत्ति जिसपर आवड़ी हो, इस कारण उपकार करनेके लिये विजिगीषुके

साथ जो सन्धि करलेये, वह निरय मित्रता हीन अश्रयमित्र कहाता है । उपकारक होनेसे अश्रय, तथा अपने उद्योगिकाल तकही मित्रता रखनेके कारण अनिरय होता है ॥ ५४ ॥

{ विना ही विशेषयत्नके जो अपनी सेनाको सहायताके लिये तैयार रखे वह 'लघूत्थान' जो पितृपितामह क्रमसे मित्र चला आया हो, वह पितृपितामह, तथा जो अत्यन्त प्रतापी और अत्यधिक सेनासे युक्त हो, वह 'महत्' कहाता है । सरल होनेके कारण यहां मूलग्रन्थमें इनके लक्षण आचार्य कौटिल्यने नहीं बतलाये । इनको छोड़करही अब अद्वैध्य मित्रका स्वरूप बताते हैं:—

एकार्थेनार्थसंबन्धमुपकार्यविकारि च ।

मित्रभावि भवत्येतन्मित्रमद्वैध्यमापदि ॥ ५५ ॥

समानही सुखदुःखका अनुभव करनेवाला, सदा उपकार करनेवाला, कभी विकारको प्राप्त न होनेवाला, आपत्तिमें भी मित्र न होनेवाला मित्र 'अद्वैध्य' कहाता है । इसी लिये मित्रताका निरयसम्बन्ध होनेके कारण इसे 'मित्रभावी' भी कहा जाता है ॥ ५५ ॥

मित्रभावादुध्रुवं मित्रं शत्रुसाधारणाचलम् ।

न कस्याचिदुदासीनं द्वयोरुभयभावि तत् ॥ ५६ ॥

इसके विपरीत एक 'उभयभावी' मित्र होता है । वह शत्रु और विजिगीषु दोनोंका उपकार न करनेके कारण, तथा दोनोंका उपकार करनेके कारण, या दुर्बल होनेसे दोनोंका सेयक होनेके कारण तीन प्रकारका होता है । इनमेंसे पहिला फिर दो प्रकारका है:—एक सामर्थ्य होनेपर भी इच्छा न होनेसे उपकार न करने वाला, और दूसरा इच्छा होनेपर भी सामर्थ्याभावसे उपकार न करने वाला । इनमेंसे पहिलेका बताते हैं:—जो मित्र होनेके कारण निरय और शत्रुका भी मित्र होनेके कारण अनिरय, शत्रु और विजिगीषु दोनोंका ही धन्यादिके द्वारा उपकार न करनेवाला (निरयानिरयोभयरूप) हो, वह उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ५६ ॥

विजिगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धितां गतम् ।

उपकारे निविष्टं वा शक्तं चानुपकारि तत् ॥ ५७ ॥

तथा भूम्यन्तर (अपने देशसे लगे हुए देशका राजा) होनेके कारण विजिगीषुका शत्रुभूत, तथा शत्रु और विजिगीषुके बीचमें होनेके कारण मित्र

यना हुआ, इच्छा होनेपरमी अतामध्रके कारण दोनोंका उपकार न करने वाला, भी उभयभाषी मित्र कहाता है ॥ ५७ ॥

प्रियं परस्य वा रक्षयं पूज्यं संबन्धमेव वा ।

अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥ ५८ ॥

'जो विजिगीषुका मित्र, शत्रुका प्रिय और रक्षय (रक्षा कियेजाने योग्य) है, तथा शत्रुके साथ जिसका कोई पूज्य सम्बन्ध है, इस प्रकार शत्रु और विजिगीषु दोनों का उपकार करनेवाला, दूसरा उभयभाषी मित्र कहाता है ॥ ५८ ॥

प्रकृष्टभौमं संतुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।

उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥ ५९ ॥

दूरदेशमें रहनेवाला, सन्तोषी बलवान्, आलसी तथा अन्य दूत आदि व्यसनोंके कारण तिरस्कृत हुआ २ मित्र, उपकार करनेके समय उदासीन हो जाता है ॥ ५९ ॥

अरेनेतुश्च यद्वृद्धिं दौर्बल्यादनुवर्तते ।

उभयस्याप्यधिद्विष्टं विद्यादुभयभाषि तत् ॥ ६० ॥

जो मित्र दुर्बल होनेके कारण, शत्रु और विजिगीषु दोनोंकी उन्नतिका अनुगामी होता है । किसीसँ द्वेष नहीं करता, प्रत्युत दोनोंका आज्ञाकारी रहता है, वह तीसरे प्रकारका उभयभाषी मित्र कहाता है ॥ ६० ॥

कारणाकरणध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।

यो मित्रं समपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥ ६१ ॥

बिनाही कारण छोड़कर चले जानेवाले, तथा बिनाही कारण फिर आकर मिल जानेवाले मित्रको जो अपने यहां रख लेता है । यह निश्चय ही मृत्युका आलिङ्गन करता है अर्थात् इस प्रकारके मित्रको रखकर अवश्य धोखा खाता और शीघ्र ही नष्ट कर दिया जाता है ॥ ६१ ॥

क्षिप्रमल्यो लाभधिरान्महानिति वा ॥ ६२ ॥ क्षिप्रमल्यो

लाभः कार्यदेशकालसंवादकः श्रेयानित्याचार्याः ॥ ६३ ॥

शीघ्र होजानेवाला थोड़ासा लाभ अच्छा, या धेरमें होनेवाला महान लाभ अच्छा ? इसपर विचार किया जाता है ॥ ६२ ॥ प्राचीन आचार्योंका इस विषयमें यह सिद्धान्त है कि शीघ्र होजानेवाला थोड़ासा लाभही अच्छा होता है, क्योंकि शीघ्र लाभ होजानेपर, इस बातका विचार किया जासकता है कि अमुक कार्यसे अमुक देश या समयमें इतना लाभ होजायगा ॥ ६३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६४ ॥ चिरादविनिपाती व्रीजसधर्मा महा-
छाभः श्रेयान्विपर्यये पूर्वः ॥ ६५ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ ६४ ॥ वह कहता है कि चिरकालमें होनेवाला भी बिना रहित धान्य बीज आदिका महान लाभ होना असम्भव श्रेष्ठ है । परन्तु महान लाभमें विग्रह होनेकी सम्भावना होनेपर तो पूर्वोक्त आचार्योंका मत ही उपादेय है ॥ ६५ ॥

एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम् ।

स्वार्थसिद्धिपरौ यायात्संहितः सामवायिकैः ॥ ६६ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे मिश्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ मिश्रसंधिः

हिरण्यसंधिः भवामो उच्यते ॥ ९ ॥

आदितः सप्तततः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार निश्चयरूपसे धरने लाभको जानकर, थोड़ा लाभ होनेपर मिश्रकी प्राप्तिको जानकर, अन्य राजाओंसे सन्धि करके विजिगीषु, सदा अपनी भर्षे सिद्धि करनेमें तत्पर रहे ॥ ६६ ॥

पाद्गुण्ये सप्तम अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय

१६६ प्रकरण

भूमिसन्धि ।

त्वं चाहं च भूमिं लभावह इति भूमिसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्व्यः
प्रत्युपस्थितार्थः संपन्नां भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंघत्ते ॥ २ ॥

‘तुम और मैं भूमिको प्राप्त करें’ इस प्रकार की हुई भूमि निमित्तक सन्धिको ‘भूमिसन्धि’ कहते हैं । शत्रु और विजिगीषु दोनोंको समान भावसे भूमिकी ही प्राप्ति होनेसे, यह ‘समसन्धि’ भी कहाती है ॥ १ ॥ शत्रु और विजिगीषु दोनोंमेंसे जो आवश्यक कार्योंमें व्यय करनेके लिये धन और गुणी मृत्यु जनकोंकी क्षीम उपस्थित कर, समस्त समृद्ध भूमियों प्राप्त करता है, वह विशेष लाभ उठाता है ॥ २ ॥

तुल्ये संपन्नालाभे यो बलवन्तमाक्रम्य भूमिमवाप्नोति सो
ऽतिसंघत्ते ॥३॥ भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च हि प्राप्नोति ॥४॥

दोनोंको समानरूपसे समृद्ध भूमिके प्राप्त होनेपर भी, वही विशेष

लाभ उठाता है, जो बलवान् शत्रुपर आक्रमण करके, उसे दबाकर भूमिको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे भूमिका लाभ भी होता है, और शत्रुका नाशभी, तथा सर्वत्र अपने प्रतापका विस्तार भी होजाता है ॥ ४ ॥

दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं भवति ॥ ५ ॥ दुर्बल एव च भूमिलाभः तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति ॥ ६ ॥

यद्यपि दुर्बलसे भूमि प्राप्त करना निस्सन्देह सुकर है ॥ ५ ॥ परन्तु इस प्रकारका भूमिलाभ अल्पन्त निकृष्ट होता है, क्योंकि यह एक दुर्बलकी हिसा करके प्राप्त किया जाता है। तथा दुर्बलका पड़ोसी राजा भूम्यनन्तर होनेसे उसका शत्रुभूत, और विजिगीषुका मित्र, विजिगीषुकी इस कार्यवाहीको देखकर उसका शत्रु बनजाता है। क्योंकि उसके हृदयमें यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि अब इसने दुर्बलको दबाया है, फिर यह मुझपरभी आक्रमण कर देगा। यह सोचकर यह दुर्बलका सहायक बनजाता है। और विजिगीषुका शत्रु बनकर उसके लिये अनर्थ खड़ा कर सकता है। इसलिए दुर्बलसे भूमिलेना श्रेयस्कर नहीं ॥ ६ ॥

तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थितशत्रुमुत्पाद्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ७ ॥ दुर्गावासिर्हि स्वभूमिरक्षणं मित्राटवीप्रतिषेधं च करोति ॥ ८ ॥

दो शत्रुओंके समान बलशाली होनेपर, जो विजिगीषु स्थायी शत्रुको उच्छिन्न करके भूमिलाभ करता है, यही विशेष लाभ उठाता है ॥ ७ ॥ क्योंकि शत्रुके दुर्ग आदि अपने हाथमें आजानेपर, अपनी भूमिकी रक्षा तथा अन्यशत्रु और आठविकोंका प्रतीकारभी सरलतासे किया जासकता है ॥ ८ ॥

चलामित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः ॥९॥ दुर्बल-
सामन्ता हि क्षिप्रप्यायनयोगक्षेमा भवन्ति ॥ १० ॥ विपरीता
बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदिनी च भूमिर्भवति ॥ ११ ॥

आस्थिर (जिसके पास अपना दुर्ग आदि नहीं है) शत्रुसे समानरूपसे भूमि-
लाभ करनेपर भी उसी अवस्थामें विशेष लाभ रहता है, जबकि आस्थिर शत्रुका पड़ोसी दुर्बल हो ॥ ९ ॥ क्योंकि ऐसी भूमि (दुर्बलसामन्ता=जिसका सामन्त दुर्बल हो; उसका पड़ोसी राजा विजिगीषुके प्रति सामन्त कहाजाता है), विजि-
गीषुके लिये शीघ्रही योग क्षेमकी यदानेवाली होती है ॥ १० ॥ परन्तु जिस भूमिया सामन्त बलवान् हो, यह सर्वथा इसके विपरीत होती है। विजिगीषु के कोस और बलको क्षाण करने वाली होती है ॥ ११ ॥

नीय (सर्वथा उच्छिन्न किया जानेवाला) इन दोनोंमेंसे उच्छेदनीयसे भूमिका लाभ होता श्रेयस्कर है ॥ ३३ ॥ क्योंकि निराश्रय या दुर्बलका आश्रय प्राप्त किये हुए उच्छेदनीयके ऊपर जब आक्रमण किया जाता है, तो वह कोश और सेना लेकर अपने स्थानसे भाग जानेकी इच्छा करता है। ऐसी अवस्थामें प्रकृति जर्म उसकी सहायता नहीं करते, उसे छोड़ देते हैं ॥ ३४ ॥ परन्तु पीढनीय, दुर्ग और मिश्रोंकी सहायता प्राप्त करके, अपने स्थानपर ही स्थित रहता है, इसी लिये प्रकृतिजर्म उसका त्याग नहीं करते ॥ ३५ ॥

दुर्गपतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद्भूमि-
लाभः श्रेयान् ॥ ३६ ॥ स्थलीयं हि सुरोधवमर्दास्कन्दमनिस्त्रा-
विशत्रु च ॥ ३७ ॥ नदीदुर्गं तु द्विगुणक्लेशकरमुदकं च पातव्यं
घृत्तिकरं चामित्रस्य ॥ ३८ ॥

दुर्गोंसे सुरक्षित हुए दुर्गोंमेंसे भी स्थलदुर्गमें रहनेवालेसे भूमिलाभ होना अच्छा है, या नदीदुर्गमें रहनेवालेसे ? स्थलदुर्गमें रहनेवालेसे ही भूमि-
लाभ होना अच्छा है ॥ ३६ ॥ क्योंकि स्थलमें रहनेवाले दुर्गको वर्षों सरलतासे घेरा जा सकता है, उच्छिन्न किया जा सकता है, तथा शत्रुको भी उसके भीत-
रसे निकल भागनेका सुयोग प्राप्त नहीं होसकता। अतएव शीघ्र ही वह आधी-
नता स्वीकार करता है। इसलिये इससे भूमिलाभ करना सरल और श्रेयस्कर है ॥ ३७ ॥ नदीदुर्ग तो दुर्गने कष्ट उठाकर भी वशमें नहीं आता। वहाँपर पीने योग्य जलके होनेसे, तथा जलाधीन अन्न फल आदिके होजानेसे, शत्रुके निर्वाहमें कोई हानि नहीं पड़ती। अतएव इसका उच्छेद करना अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३८ ॥

नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३९ ॥
नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुवन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भी-
र्यमपस्त्रान्युदकं च ॥ ४० ॥

नदीदुर्ग और पर्वत दुर्गमें रहने वालोंमेंसे, नदीदुर्गमें रहनेवालेसे भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ३९ ॥ क्योंकि नदीदुर्ग, हाथी लकड़ीके समूह आदि, पुल, बांधों तथा नावोंके द्वारा जलपार करके इन्तगत किया जा सकता है। जल भी उसमें सदा अधिक नहीं रहता, तथा किनारोंको तोड़कर जल निकाला भी जासकता है। अतएव इससे भूमिलाभ करना सरल है ॥ ४० ॥

पार्वतं तु स्थारक्षं दुरवरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्रे चैकास्मिन्न
सर्ववधः ॥ ४१ ॥ शिलावृक्षपमोक्षश्च महापकारिणाम् ॥ ४२ ॥

परन्तु पर्वत प्रदेशका दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित पथर आदिसे बना हुआ सुदृढ होता है, इसको न सरलतासे घेरा जासकता है, और न इसपर पड़ा जासकता है । अस्त्रोंके द्वारा एकके नष्ट होनेपर भी शेष सब सुरक्षित रहते हैं । उनकी कुछ हानि नहीं होती ॥ ४१ ॥ यदि कोई अत्यन्त बलशाली शत्रु उनपर आक्रमण करे, तो ऊपरसे उसपर शिथ तथा वृक्ष आदि गिराकर बड़ी सरलतासे वे उसका प्रतीकार कर सकते हैं ॥ ४२ ॥

निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूमिलामः श्रेयान् ॥४३॥
निम्नयोधिनो ह्यपरुद्धदेशकालाः ॥ ४४ ॥ स्थलयोधिनस्तु सर्व-
देशकालयोधिनः ॥ ४५ ॥

निम्नयोधी (नौका आदिमें घेठकर युद्ध करने वाले) और स्थलयोधी शत्रुओंमेंसे, निम्नयोधी शत्रुसे भूमिलाम होना अच्छा है ॥ ४३ ॥ क्योंकि निम्नयोधी किसी विशेष देश या कालमें ही युद्ध कर सकते हैं, सर्वदा नहीं कर सकते । इसलिये उनसे भूमि लेना आसान है ॥ ४४ ॥ परन्तु स्थलयोधी सब देश और सब कालमें युद्ध कर सकते हैं, इसलिये उनको शत्रु वशमें करना दुष्कर है ॥ ४५ ॥

खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलामः श्रेयान् ॥४६॥
खनका हि खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते ॥ ४७ ॥ शस्त्रेणैवा-
काशयोधिनः ॥ ४८ ॥

खनक योधी (खाई खोदकर उसमेंसे युद्ध करनेवाले) और आकाश योधी शत्रुओंमेंसे, खनकयोधी शत्रुसे भूमिलाम करना अच्छा है ॥ ४६ ॥ क्यों कि वे युद्धके लिये खाई और शस्त्र दोनोंकी ही अपेक्षा रखते हैं, कर्मा कहीं खाईके योग्य उचित स्थान न मिलनेपर वे युद्ध नहीं कर सकते, अतः सबदेश और सब कालमें युद्ध न कर सकनेके कारण वे शत्रु ही सरलतासे वशमें आ जाते हैं ॥ ४७ ॥ परन्तु आकाशयोधी शत्रुओंको युद्ध करनेके लिये केवल शस्त्र की ही अपेक्षा होती है । वे सबदेश और सबकालमें युद्ध कर सकते हैं । अतएव उनको वशमें करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४८ ॥

एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानोऽर्थशास्त्रित् ।

संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे मिश्रद्विरण्यभूमिकर्मसंधी भूमिसंधिः

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ आदितोऽष्टशतः ॥ १०८ ॥

अर्थशास्त्रको जाननेवाला विजिगीषु, उक्त प्रकारके सन्धि किये हुए तथा अन्य शत्रु राजाओंसे पृथ्वीका लाभ करता हुआ, सदा उन्नतिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय

११६ प्रकरण

अनवसित सन्धि

{ निश्चयरूपसे किसी विशेष कार्यका नाम न लेकर, सामान्य रूपसे शून्य स्थानोंको नगर स्थान लकड़ीके जङ्गल आदिके द्वारा बसानेकी शर्त करके जो सन्धि की जाती है, उसे अनवसित सन्धि कहते हैं । जिस सन्धिमें दुर्ग आदि शायोंका निश्चितरूपसे नाम दे दिया जाता है, वह 'कर्म सन्धि' अगले अध्यायमें बतलाई जावेगी । इन दोनों सन्धियोंमें केवल यही भेद है ।

त्वं चाहं च शून्यं निवेशयावह इत्यनवसितसंधिः ॥ १ ॥
तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सो ऽतिसं-
घत्ते ॥ २ ॥

'आओ तुम और मैं शून्य स्थानोंको नगर आदिके द्वारा बसावें' इस प्रकार जो सन्धि की जाय, उसे अनवसित सन्धि कहते हैं ॥ १ ॥ उन दोनों-
मेंसे जो, पूर्ण सामग्रीसे युक्त हुआ २, जनपदनिवेश आदि प्रकरणोंमें बताया
हुए गुणोंसे सम्पन्न भूमिको बसाता है, वह दूसरेकी अपेक्षा विशेष लाभको प्राप्त
करता है ॥ २ ॥

तत्रापि स्थलमौदकं वेति ॥ ३ ॥ महतः स्थलादल्पमौदकं
श्रेय सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम् ॥ ४ ॥

यथोक्त गुण सम्पन्न होनेपर भी, स्थल अर्थात् जहा केवल वृष्टिसे ही जल प्राप्त हो सके, ऐसी भूमि अच्छी है, या औदक अर्थात् जहा सदा जलसे भरे तलाव अथवा नदी हों, ऐसी भूमि अच्छी है ॥ ३ ॥ यही अधिक भी स्थल भूमिसे थोड़ी औदक भूमि अच्छी है । क्योंकि वहां सर्वदा निश्चित रूपसे फलों आदिकी उत्पत्ति हो सकती है ॥ ४ ॥

स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापरसस्यमल्पवर्षपाकमसत्कारम्भं श्रेयः

॥ ५ ॥ औदकयोरपि धान्यवापमधान्यवापाच्छ्रेयः ॥ ६ ॥

दो स्थल भूमियोंमें भी यही भूमि उत्तम होती है, जहां बराबर आगे पीछे होनेवाली बसन्त तथा शरदकी फ़सलें बहुत अच्छी होती हों, तथा थोड़ी ही दृष्टिसे अन्न आदि सरस होकर पकजाते हों । और जो ऊबड़ खाबड़ तथा कंकरीली पथरीली न होनेसे अच्छी तरह जोती चोई जासके ॥ ५ ॥ दो औदक भूमियोंमें भी यही भूमि उत्तम है, जहां गेहूँ धान आदि अच्छी तरह खोये जासके । जहां ये अन्न न हों वह भूमि अच्छी नहीं ॥ ६ ॥

तयोरल्पवहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः ॥७॥
महत्त्वकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याथौषधयो भवन्ति ॥ ८ ॥ दुर्गा-
दीनि च कर्माणि प्राभूत्येन क्रियन्ते ॥ ९ ॥ कृत्रिमा हि भूमि-
गुणाः ॥ १० ॥

उसमें भी थोड़ी या बहुतका विचार करनेपर, धान्य आदिसे युक्त थोड़ी भूमिसे, धान्य आदि पैरा न करनेवाली भी बहुत भूमि श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ क्योंकि अधिक भूमिका विस्तार होनेपर उसमें कहीं न कहीं स्थल तथा जल-प्राय प्रदेशोंमें अनेक प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न किये जासकते हैं ॥ ८ ॥ और दुर्ग आदि राजपके स्थायी साधनोंको अधिक संख्यामें बनाया जासकता है ॥ ९ ॥ क्योंकि वस्तुतः भूमि सम्पन्नवी गुण अपनी इच्छाके अनुसार बनाये जासकते हैं । तात्पर्य यह है, कि करनेवाला, भूमिको जैसा चाहे वैसा बना सकता है, इस लिये अधिकसे अधिक भूमिका हाथमें आजाना अच्छा है ॥ १० ॥

(खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः ॥११॥ धान्यभोगः
कोशकोष्ठागारकरः ॥ १२ ॥ धान्यमूलो हि दुर्गादीनां कर्मणा-
मारम्भः ॥१३॥ महाविषयविक्रमो वा खनिभोगः श्रेयानु ॥१४॥

खानयुक्त तथा धान्ययुक्त स्थानोंमेंसे पहिला स्थान केवल कोशकी इच्छि करसकता है ॥ ११ ॥ परन्तु दूसरा धान्योपयोगी स्थान कोश और कोष्ठानार (अनाज रखनेके बड़े २ स्थान) दोनोंको बनाता है ॥ १२ ॥ क्योंकि दुर्गे आदि कार्योंका आरम्भभा धान्य मूलक ही होता है । इसलिये धान्योपयोगी स्थान श्रेयस्कर है ॥ १३ ॥ अथवा व्यापार-स्थानभी उत्तम है, क्योंकि वहांसे उत्पन्न हुई वस्तुभोका बड़ाभारी व्यापार किया जासकता है ॥ १४ ॥

द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभू-
तनिधानसमथ ॥१५॥ विपरीतो हस्तिवनभोग इत्याचार्याः ॥१६॥

यदि या लकड़ीके जंगल और हाथियोंके जंगलोंमेंसे कौनसा उत्तम होता है ? आचार्योंका सिद्धान्त है कि, लकड़ीके लिये उपयोगी जंगल ही अच्छा होता है। क्योंकि दुर्ग आदि सभी कार्योंमें लकड़ी का अत्यन्त आवश्यकता होती है। तथा उसका अधिकसे अधिक संचयनी सरलता से किया जासकता है ॥ १५ ॥ परन्तु हाथीके जंगलोंमें यह बात नहीं होती, इसलिये पहिलाही उत्तम है ॥ १६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १७ ॥ शक्यं द्रव्यवनमनेकमनेकस्यां भूमौ वापयितुं न हस्तिवनम् ॥ १८ ॥ हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति ॥ १९ ॥

कौटल्य इस उपयुक्त सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता ॥ १७ ॥ उसका कहना है कि तरह २ की लकड़ीके जंगल अनेक स्थानोंमें अपनी इच्छाके अनुसार लगाये जा सकते हैं। परन्तु हाथियोंके जंगल स्वयं उत्पन्न नहीं किये जा सकते; हाथी किसी २ जंगलमेंही उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ और शत्रुकी सेनाको नाश करनेके लिये हाथी एक प्रधान वस्तु है इसलिये हाथियोंकी उत्पात्तिका उपयोगी जंगलही उत्तम समझना चाहिये ॥ १९ ॥

वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगो नित्यः स्थलपथ-भोग इति ॥ २० ॥

वारिपथ (जलका मार्ग) और स्थलपथ (स्थलका मार्ग), यदि ये दोनोंही अनित्य (कादाचित्क=कभी २ होने वाले) हों, तो इनमेंसे वारिपथ के लिये उपयोगी स्थानही उत्तम होता है। यदि दोनोंही नित्य (सदा होने वाले) हों, तो स्थलपथ का स्थानही श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ २० ॥

भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ भिन्न-मनुष्या श्रेयसी ॥ २२ ॥

भिन्न मनुष्यों (आपसमें मिलकर न रहनेवाले मनुष्यों) से युक्त भूमि अच्छी होती है, अथवा श्रेणी मनुष्यों (सदा आपसमें मिलकर रहनेवाले मनुष्यों) से युक्त भूमि अच्छी होती है ? ॥ २१ ॥ भिन्न मनुष्योंसे युक्त भूमिही श्रेयस्कर होती है ॥ २२ ॥

भिन्नमनुष्या भोग्या भवत्यनुपजाप्या चोन्वेषामनापत्सहा तु ॥ २३ ॥ विपरीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा ॥ २४ ॥

क्योंकि ऐसी भूमि शीघ्रही अपने अधीन होजाती है, अर्थात् विजिगीषु ऐसी भूमिको शीघ्रही अपने अधिकारमें कर लेता है। तथा अन्य शत्रुओंके

द्वारा यह बहकाई भी नहीं जासकती, क्योंकि यहांके मनुष्य आपसमें मिलतेही नहीं । इसलिये आपत्तियोंका सहन करनेके लिये भी ये लोग कभी तयार नहीं हो सकते ॥ २३ ॥ परन्तु श्रेणीमनुष्य भूमि, इसके सर्वथा विपरीत होती है । वह शत्रुके द्वारा बहकाई भी जासकती है, मिलकर रहनेके कारण वहांके मनुष्य हर तरहकी आपत्ति सहनेके लिये भी तयार होजाते हैं । और कुपित होनेपर राजाका भी उच्छेद कर सकते हैं ॥ २४ ॥

तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशं सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रे-
यसी ॥ २५ ॥ बाहुल्याद्भुवत्वाच्च कृष्याः कर्षणवतीः ॥ २६ ॥

उस भूमिमें चारों वर्णोंके निवासके सम्बन्धमें विचार होनेपर, वही निश्चय समझना चाहिये कि सब तरहके सुख दुःखादिका सहन करनेके कारण शूद्र, ग्राह्य आदि नीच जातिके मनुष्योंसे युक्त भूमिही श्रेष्ठ होती है ॥ २५ ॥ खेतीके बहुत होनेसे, तथा निश्चित ही फलदायक होनेसे खेतीके योग्य भूमि श्रेयस्कर होती है ॥ २६ ॥

कृष्या चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वात् गोरक्षकवती ॥ २७ ॥
पश्यानिचयर्णानुग्रहादाद्यवणिग्वती ॥ २८ ॥

कृषि सम्बन्धी व्यापार तथा अनेक कार्योंका निर्भर भी गाय या गोपालोंके ऊपर है । इसलिये गाय और गोपालोंसे युक्त भूमि भी उत्तम होती है ॥ २७ ॥ व्यापारके लिये धान्य आदि वस्तुओंका सञ्चय करने, तथा व्यापार करण आदि देकर उपकार करनेके कारण व्यापारी और धनिक पुरषोंसे युक्त भूमि भी श्रेष्ठ होती है ॥ २८ ॥

भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान् ॥ २९ ॥ दुर्गापाश्रया पुरुषा-
पाश्रया वा भूमिरिति ॥ ३० ॥

भूमिके उपयुक्त सच्ची गुणोंमेंसे केवल आश्रय देना या रक्षा करनाही सबसे श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ दुर्गोंका आश्रय देनेवाली भूमि अच्छी होती है, या मनुष्योंका आश्रय देनेवाली ? तात्पर्य यह है कि दुर्गोंके सहारे किसी भूमिमें आश्रय लेना अच्छा है, या पुरषोंके सहारे ॥ ३० ॥

पुरुषापाश्रया श्रेयसी ॥ ३१ ॥ पुरुषवद्भि राज्याम् ॥ ३२ ॥
अपुरुषा गौर्विन्ध्येव किं दुहीत ॥ ३३ ॥

पुरषोंका आश्रय देनेवाली भूमिही उत्तम होती है । अर्थात् जहां पुरुषोंका सहारा मिलम्के, वही स्थान श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ क्योंकि राज्य वस्तु

वसोका नाम है, जहाँ बहुत पुरखोंका सयोग हो ॥ ३२ ॥ पुरपहान भूमि,
धन्या गौके समान क्या उपयोग देसकती है ? ॥ ३३ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशात् भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारं पणेत
॥ ३४ ॥ दुर्बलमराजरीजिनं निरुत्साहमपक्षमन्यायवृत्तिं व्यस-
निनं देवप्रमाणं यत्किंचनकारिणं वा ॥ ३५ ॥

जन धनका अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने योग्य भूमिको यदि
विजिगीषु प्राप्त करना चाहे, तो उसे चाहिये कि प्राक्किंचन पहिले ही निश्च प्रका-
रके आठ राजाओंमेंसे किसीको उस भूमिका रखीदार तैयार कर ॥ ३४ ॥
दुर्बल, भराजधर्मी (जा किसी राजवंशम उत्पन्न हुआ २ न हो) उत्साहहीन,
अपक्ष (जिसकी सहायता करनेवाला कोई पक्ष न हो), अन्यायवृत्ति (प्रनापर
अन्याय करनेवाला), ब्रतनी (दिकारी या शराबी आदि), भाग्यके भरासेही
सब काम करनेवाला, तथा जो कुछ चित्तमें आजाय, बिना विचार चही कर
ढालनवाला (यिकछनकारी) । (तात्पर्य यह है कि इनमेंसे किसीको वह जमीन
खरीदवाकर, जब यह अपना धन-जन आदि व्यय करके उसे बसाले, तब
उसके क्षीण हानपर विजिगीषु उस भूमिपर अपना अधिकार जमाये । इसी
बातका अगल सूत्राम बताया ज ता है) ॥ ३५ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशायां हि भूमौ दुर्बलो राजरीजी निमिष्टः
सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययेनापसीदति ॥ ३६ ॥

जन-धन आदिका अत्यधिक व्यय करके बसाई जान योग्य भूमि
नय बलहीन, राजवंशम उत्पन्न हुआ २ राजा, नियास बनाद, अघात् जब उस
भूमिको बसादता है, तो अत्याधिक पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय हानक
कारण, अपना सहायता करनेवाला सजातीय अमात्य आदि प्रकृति जनोंके साथ
ही वह क्षीण होजाता है ॥ ३६ ॥

धलमानराजरीजी क्षयभयादसगन्धाभिः प्रकृतिभिस्त्यज्यते
॥ ३७ ॥ निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षय-
व्ययेनावभज्यते ॥ ३८ ॥

राजवंशमें उत्पन्न हुए २ धलमान् राजाको, पुरुषोंके क्षय और धनके
व्यय होजानेके भयसे विजातीय अमात्य आदि सहायक प्रकृति जन छोड़ देते
हैं ॥ ३७ ॥ उत्साहहीन राजा सेनाक होत हुए भी, उसका उचित रीतिले
उपयोग नहीं कर सक्ता, इत्सलिय सेनाके सहित ही, जन-धनका क्षय व्यय
होजानेके कारण नष्ट होजाता है ॥ ३८ ॥

कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्रामोति
 ॥ ३९ ॥ अन्यायघृत्तिं निविष्टमप्युत्थापयेत् ॥ ४० ॥ स कथं
 मनिविष्टं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

कोश रहते हुए भी मिथ रहित राजा, क्षय व्यय (योग्य पुरुषोंके नाशका नाम क्षय, और धनका न्यून होजाना व्यय कहाता है) में सहायता न मिलनेके कारण किसी तरहभी सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३९ ॥ प्रजापर अन्याय करनेवाले बसे हुए भी राजाको जब प्रजा उखाड़ देती है, तो नये प्रदेशको वह कैसे बसा सकता है ? ॥ ४०-४१ ॥

तेन व्यसनी व्याख्यातः ॥ ४२ ॥ देवप्रमाणो मानुषहीनो
 निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वाचसीदति ॥ ४३ ॥

व्यसनी राजाका भी यही हाल होता है ॥ ४२ ॥ केवल भाग्यपर भरोसा करनेवाला राजा भी पौरुषहीन हुआ २ किसी कार्यको प्रारम्भ नहीं करता, यदि करभी देता है, तो प्रारम्भ किये कार्यमें विग्र भाग्यपर, उसे छोड़ बैठता है, और इस प्रकार जन-धनका नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

यत्किञ्चनकारी न किञ्चिदासादयति ॥ ४४ ॥ स येषां पापि-
 पुतमो भवेति ॥ ४५ ॥ यत्किञ्चिदारभमाणो हि विजिगीषोः
 कदाचिच्छिद्रमासादयेदित्याचार्याः ॥ ४६ ॥

बिना विचारे इच्छानुसार कार्य करनेवाला राजा कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ परन्तु इन उपयुक्त सभी राजाओंमेंसे वह विजिगीषुके लिये अत्यन्त हानिकारक हो सकता है ॥ ४५ ॥ क्योंकि जिस किसी कार्यका प्रारम्भ करता हुआ शत्रु, कदाचित् विजिगीषुके किसी दोषका पता लगा लेवे, और उसके द्वारा विजिगीषुको हानि पहुंचा सके। क्योंकि विजिगीषु उसे मूर्ख समझकर उसकी ओरसे उपेक्षा दृष्टि रखता है। यह प्राचीन भाषायीका सिद्धान्त है ॥ ४६ ॥

यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेदिति कौटल्यः ॥ ४७ ॥
 तेषामलाभे यथा प्राणिप्राहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमवस्थापये-
 दित्यभिहितसाधिः ॥ ४८ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि वह विजिगीषुके दोषोंको जाननेकी तरह अपने विनाशको भी प्राप्त कर सकता है, क्योंकि विजिगीषु तो इसके अनेक

घोंघोंसे परिधित रहता है। इसलिये उसे जब चाहे दया सकता है ॥ ४७ ॥ यदि इन उपयुक्त राजाओंमेंसे कोई भी उम्र भूमिको खरीदनेवाला न मिले, तो जिस प्रकार पार्ष्णिप्राहके साथ सन्धि आदिके प्रकरणमें (दंगों—अधि ७, अध्या १३) यताया जायगा, उसहीके अनुसार भूमिके बसाने आदिकी व्यवस्था करे। इसीका नाम 'अभिहितसन्धि' है। क्योंकि भूमिके लेने और देनेमें उपपन्न होनेके कारण यह विचलित नहीं होती, परावर यनी रहती है ॥ ४८ ॥

गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः संधिम-
वस्थाप्य दद्यादित्यनिभृतसंधिः ॥ ४९ ॥

विशेष गुणयुक्त भूमिको, जो कि खरीदनेवालेकी उपेक्षासे कालान्तरमें अपनेही पास फिर वापस आजानेवाला हो, बलवान् सामन्त यदि प्रयत्न द्वारा मांगे, अर्थात् खरीदना चाहे, तो उसके साथ 'अवसर होनेपर गुम मेरी सहायता करोगे' इस प्रकार सामान्यसन्धि की स्थापना करके, वह भूमि उसके हाथ बेच देवे। इसका नाम 'अनिभृतसन्धि' कहा जाता है। क्योंकि प्रबल सामन्त, दुर्बलके प्रति अविश्वास कर सकता है, और अपनी प्रतिज्ञात सन्धिको तोड़ सकता है ॥ ४९ ॥

(समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात् ॥ ५० ॥ प्रत्या-
देयां मे भूमिर्वश्या धानया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति
भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यतीति
॥ ५१ ॥ तेन हीनः क्रेता न्यारुह्यातः ॥ ५२ ॥

यदि परावर शक्तिवाला राजा, उस भूमिको क्रय करना चाहता है, तो निम्नलिखित कारणोंको अच्छी तरह सोच विचारकर, वह भूमि उसको बेच देवे ॥ ५० ॥ वे कारण ये हैं—'बेच देनेपर भी यह भूमि कालान्तर में मेरे पास आसकेगी; अथवा मेरे उपयोगमें आती रहेगी, अर्थात् बेचनेपरभीमें इससे काम उठाताही रहगा, अथवा समशक्ति राजाके साथ इसके द्वारा सम्बन्ध होने पर दूसरा शत्रु मेरे अधीन होजायगा, अथवा भूमिके बेचनेसे, प्रलोक कार्योंके पूर्ण करनमें समर्थ, मित्र और धन सम्पत्तिका लाभ होगा'। इन्हीं सब कारणोंको विचार पूर्वक निश्चय करके वह भूमि बेचदेवे ॥ ५१ ॥ इसीप्रकार अपनेसे हीन शक्ति क्रेताके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये ॥ ५२ ॥

एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम् ।

लभमानोऽतिसंधिते शास्त्रनिरसामवायिकान् ॥ ५३ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ अनवसितसन्धिः ।

प्रकादशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ आदितो नयरातः ॥ १०९ ॥

अधैशास्त्रको जाननेवाला राजा, इस प्रकार मित्र, धन सम्पत्ति, तथा आयाद एवं उजाव भूमि को प्राप्त करता हुआ, अपने साथी दूसरे राजाओंकी अपेक्षा सदाही विशेषलाभ उठाता है ॥ ५३ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

वारहवां अध्याय

११६ प्रकरण

कर्म सन्धि ।

त्वं चाहं च दुर्गं कारयावह इति कर्मसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यो द्रव्यकृतमविपद्यमल्पव्ययारम्भं दुर्गं कारयति सो ऽतिसंधत्ते ॥२॥

'तुम और मैं मिलकर दुर्ग बनायें' इसप्रकार निश्चित रूपसे कार्यवस्तु कानाम लेकर जो सन्धि कीजाती है, उसे 'कर्मसन्धि' कहते हैं ॥ १ ॥ विजिगीषु और उसके साथी, दोनोंमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है जो स्वभावसेही दुर्गमें स्थानमें, अतएव शत्रुओंसे दुर्गमें, थोड़ाही धन व्ययकरके अपना दुर्ग बनवाता है ॥ २ ॥

तत्रापि स्थलनदीपर्वतदुर्गानामुत्तरोत्तरं श्रेयः ॥ ३ ॥ सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान् ॥ ४ ॥ सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानं श्रेयान् ॥ ५ ॥

ऐसे दुर्गोंमेंभी स्थलमें वनेहुए दुर्गकी अपेक्षा, नदीका दुर्ग अच्छा होता है, और उससेभी अच्छा पर्वत प्रदेशमें बनाहुआ दुर्ग होता है ॥३॥ (परके बांध लगाकर जलका रोबना सेतुबन्ध कहाता है) सेतुबन्धोंमेंभी, केवल वर्षा ऋतुमें जल इकट्ठा होनेवालेही अपेक्षा स्वभावसे ही जलयुक्त सेतुबन्ध उत्तम होता है ॥ ४ ॥ उनमें भी वह श्रेष्ठ है, जहां खेती करनेके लिए स्थान पर्याप्त हो ॥ ५ ॥

द्रव्यवनयोरपि यो महत्सारवहूव्याटवीकं विपयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवनं छेदयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ नदीमातृकं हि स्वाजीनमपाश्रयश्चापदि भवति ॥ ७ ॥

अनेक पशुओंके उत्पत्ति स्थान वन प्रदेशोंमें भी, जो राजा अपने सीमा मान्तमें नदियोंसे सींचेजाये वाले, तथा अच्छीतरह फल आदि उत्पन्न करनेवाले जगलोंको ठीक कर लेता है वह विशेषलाभ प्राप्त करलेता है ॥६॥ क्योंकि नदीसे

संबंधितानेवाले स्थान सुखपूर्वक आजीविकाके साधन होते हैं और विपत्ति पड़ने पर उनमें आश्रयभी लिया जासकता है ॥ ७ ॥

हस्तिमृगवनयोरपि यो बहुशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्ताय-
केशि' विपयान्ते हस्तिवनं वध्नाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥

हाथियोंके जंगलोंमें भी, जो राजा अनेक शक्तिशाली जंगली जानवरों (हाथियों) से युक्त, दुर्बलोंके लिये भी नियत स्थानवाले तथा अल्पधिक आनेजानेके मार्गोंसे युक्त, हाथियोंके जंगलोंको अपने सीमाप्रान्तमें बसाता है, वही लाभमें रहता है ॥ ८ ॥

तत्रापि बहुकुण्ठाल्पशूरयोरल्पशूरं श्रेयः ॥ ९ ॥ शूरेषु हि
युद्धम् ॥ १० ॥ अल्पाः शूरा बहून्शूरान्भङ्गन्ति ते भग्नाः स्वसे-
न्यावघातिनो भवन्तीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

इस प्रकारके हाथियोंके जंगलोंमेंभी, जिसमें संख्यामें अधिक पर, शक्ति-
हीन हाथी हों, उसकी अपेक्षा शक्तिशाली थोड़े हाथियोंका जंगल उत्तम है
॥ ९ ॥ क्योंकि शक्तिशाली हाथियोंके भरोसेपर ही युद्ध होता है ॥ १० ॥ थोड़े
भी शक्त, बहुतसे अशक्तों को भगा देते हैं। और वह विश्रुतलित (तितर बितर)
हुए २ हाथी अपनी ही सेनाको कुचल डालते हैं। यह आचार्योंका सिद्धान्त
है ॥ ११ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ कुण्ठा बहवः श्रेयांसः स्कन्धविनिपो-
गादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रयो युद्धे ॥ १३ ॥ परेषां दुर्धर्षा
विभीषणाश्च ॥ १४ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ १२ ॥ उसके सिद्धान्त
में शक्तिहीन भी बहुत हाथियोंका होना श्रेयस्कर है। क्योंकि सेनाके अनेक
विभागोंमें पृथक् २ अनेक कार्य उनसे लिये जासकते हैं। इसलिये युद्धमें वे
अपने अच्छे सहायक होते हैं ॥ १३ ॥ तथा शत्रुको बध्ना देनेवाले, और इसी
लिये उनके बध्ना में न आनेवाले हाते हैं। तात्पर्य यह है कि शत्रु उनकी अधिक
संख्याको देखकरही डरजाता है। और मैदानसे भागजाता है ॥ १४ ॥

बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाघातुम् ॥ १५ ॥
न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुस्वमिति ॥ १६ ॥

संख्यामें अधिक हाथी यदि कुण्ठ (युद्ध भाङ्गि करनेमें) चतुरता न रखने
वाले, सामर्थ्यहीन भी हों, तोभी कोई हानि नहीं, क्योंकि युद्ध सम्बन्धी
विविध शिक्षाओंके द्वारा उन्हें सुचतुर तथा समर्थ बनाया जासकता है ॥ १५ ॥

परन्तु शक्तिशाली थोड़े हाथियोंके होनेपर, उनकी सेव्याको सहसा बढ़ाया नहीं जा सकता है ॥ १६ ॥

खन्योरुपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गामल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति सोऽतिसंघत्ते ॥ १७ ॥ तत्रापि महासारमल्पमल्पसार वा प्रभूतमिति ॥ १८ ॥

खानोंमें भी, जो राजा अधिक बढ़िया माल देनेवाली, अति दुर्गम मार्गोंसे युक्त, तथा थोड़ाही धन व्ययकरके खानोंको खुदवाता है, वही विशेष लाभ उठाता है ॥ १७ ॥ खानोंमेंभी, बहुमूल्य मणि आदि श्रेष्ठ वस्तुओंको थोड़े परिमाणमें उत्पन्न करनेवाली खान अच्छी है, अथवा अल्पमूल्यकी, परिमाणमें अत्यधिक वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाली अच्छी है ? ॥ १८ ॥

महासारमल्पं श्रेयः ॥ १९ ॥ वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्य-
धातुहिं प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण प्रमत इत्याचार्याः ॥ २० ॥

अनेक आचार्योंका मत है कि बहुमूल्य, श्रेष्ठ, थोड़ी वस्तुकी ही उत्पत्ति उत्तम है ॥ १९ ॥ क्योंकि हीरा, मणि, मोती, मूंगा, सोना, चांदी आदि बहु-मूल्य पदार्थ, अपने मुक्तावलेमें अल्पमूल्य अत्यधिक पदार्थकोभी मूल्यकी तुलना होनेपर दबाते हैं । अर्थात् थोड़े ही हीरा, मणि आदिका मूल्य अन्य अधिक वस्तुओंके मूल्यसे अधिकही रहता है ॥ २० ॥

नेति कौटल्यः ॥ २१ ॥ चिरादल्पो महासारस्य क्रेता विधत्ते ॥ २२ ॥ प्रभूतः सातत्यादल्पमारस्य ॥ २३ ॥ एतेन वणिक्पथो ज्यारख्यातः ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ २१ ॥ यह कहता है कि बहुमूल्य वस्तुका सदाईनेवाला, बहुतसमयमें कौई बिरलाही आदमी मिलता है ॥ २२ ॥ परन्तु अल्पमूल्य वस्तुओंको सदाईनेवाले, सदाही बहुत मिलते हैं ॥ २३ ॥ इसीमें व्यापारी मार्गोंका बनानाओं समझलैना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार व्यापारी मार्गोंके बनानेपर विशेषलाभ होसके, उसी तरह उनका निमोण किया जावे ॥ २४ ॥

तत्रापि वारिश्चलपथयोर्चारिपथः श्रेयान् ॥ २५ ॥ अल्प-
व्ययव्यायामः प्रभूतपेण्योदयश्रेत्याचार्याः ॥ २६ ॥

हनुमेंभी जलीबमार्ग और स्थलमार्गोंमेंसे जलीबमार्गही श्रेयस्कर है ॥ २५ ॥ क्योंकि घट थोड़ासा धनव्यय करनेपर, थोड़ेही परिश्रमसे तैयार किया

जासकता है । तथा जलमार्गसे मालभी बड़ी आसानीके साथ छाया लेजाया जासकता है । इस लिये इनमार्गोंसे बहुत लाभ होनेकी सम्भावना रहती है । यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ २६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ संरुद्रगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टम-
ययोनिर्निष्प्रतिकारश्च वारिपथः, विपरीतः स्थलपथः ॥ २८ ॥

परन्तु काटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ २७ ॥ क्योंकि जलका मार्ग, विपत्ति में सब ओरसे रुक सकता है, घृष्टि आदिके समयमें उससे जाना आनाभी नहीं होसकता, इसलिये सब शत्रुओंके लिये उपयोगी भी नहीं । तथा स्थलमार्गकी अपेक्षा अधिक भयजनक है (क्योंकि जलमें डूबने आदिका डर बहुत रहताहै), और जल मार्गमें भय उपस्थित होने पर उसका प्रतिकारभी नहीं किया जासकता । परन्तु स्थलमार्ग इससे बिल्कुल विपरीत होता है । इसलिये दोनोंमेंसे स्थलमार्गकोही उत्तम समझना चाहिये ॥२८॥

वारिपथे तु कूलसंयानपथयोः कूलपथ पण्यपट्टगवाङ्मुल्या-
च्छ्रेयान्नादीपथो वा सातत्यद्विपथान्नाघत्वाच्च ॥ २९ ॥

जलीयमार्ग भी दो प्रकारके होते हैं, एक जलके किनारे २ का मार्ग (कूलपथ), और दूसरा जलके मध्यका मार्ग (संयानपथ=समुद्र आदि, निरन्तर जलही जलमें जाना) इन दोनों मार्गोंमेंसे भी प्रथम जलीयमार्ग अच्छा होता है । क्योंकि ऐसे मार्गोंपर व्यापारी नगर बहुत होते हैं, और उनसे बहुत लाभ उठाया जासकता है । अथवा नदीके द्वारा जो जलमार्ग नियत किये जाते हैं, वे भी उत्तम समझने चाहिये । क्योंकि नदीजलकी धारा निरन्तर बनी रहती है, और उस मार्गमें कोई उत्कटबाधा भी उपस्थित नहीं होती ॥ २९ ॥

स्थलपथे ऽपि हैमरतो दक्षिणापथाच्छ्रेयान् ॥ ३० ॥ हस्त्य-
श्वगन्धदन्ताजिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तरा इत्याचार्याः ॥३१॥

स्थलमार्गमें भी दक्षिण ओरके मार्गकी अपेक्षा उत्तरका मार्ग श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ क्योंकि इस ओर हाथी, घोड़े, कस्तूरी, दान्त, चर्म, चादी और सोना आदि बहुमूल्य विक्रीय वस्तुएँ बहुतायतसे मिल जाती हैं, यह आचार्योंका मत है ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ कम्बलाजिनाश्चपण्यमर्जाः शङ्खव-
ज्रमणिमुक्ताः सुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे ॥ ३३ ॥

परन्तु कौटल्य इन सिद्धान्तको नहींमानता ॥ ३२ ॥ यह कहता है कि कम्बल, चर्म तथा घोड़े आदि इन विक्रीय वस्तुओंको छोड़कर शेष हाथी

आदि सबही वस्तुएँ, तथा राज, हीरा, मणि, मोती, सुवर्ण आदि अन्य अनेक विक्रेय वस्तुएँ उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणकी ओर ही अधिक होती हैं। इसलिये दक्षिणकी ओरका मार्गही श्रेयस्कर है ॥ ३३ ॥

दक्षिणापथे ऽपि बहुखनिः सारपण्यः प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो
वा वणिक्पथः श्रेयान् ॥ ३४ ॥ प्रभूतविपयो वा फल्गुपण्यः
॥ ३५ ॥ तेन पूर्वः पश्चिमंश्च वणिक्पथो व्यारख्यातः ॥ ३६ ॥

दक्षिण मार्गमें भी बहुत खानोंसे युक्त, बहुमूल्य विक्रेय वस्तुओंवाला, तथा निर्विघ्न आनेजानेके लिये उपयोगी और थोड़ेही परिश्रमसे सिद्धहोने वाला व्यापारी मार्ग उत्तम समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ अथवा यह मार्ग श्रेष्ठ सुमङ्गला चाहिये, जिसपर थोड़ी कमीतकी भी चीजें बहुत अधिक परिमाणमें होती हों, या जहाँ कमकमीतकी भी वस्तुओंको खरीदनेवाले बहुत अधिक हों ॥ ३५ ॥ इससे पूर्व और पश्चिमके व्यापारी मार्गोंको भी समझ लेना चाहिये ॥ ३६ ॥

तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुलारम्भत्वाच्छ्रेयान् ॥ ३७ ॥
देशकालसंभावनो वा खरोन्द्रपथः ॥ ३८ ॥ आभ्यामंसपथो व्या-
ख्यातः ॥ ३९ ॥

इन व्यापारी मार्गोंमें भी, पैदलके मार्गकी अपेक्षा गाड़ी आदिका मार्ग अधिक उत्तम समझना चाहिये। क्योंकि ऐसे मार्गोंके द्वारा बहुत अधिक व्यापार किया जासकता है। विक्रेय वस्तुएँ अधिक तादादमें लाई लेजाई जासकती हैं ॥ ३७ ॥ देशकालके अनुसार गधे और ऊंटोंका मार्गभी श्रेष्ठ समझना चाहिये क्योंकि इनके द्वारा भी, व्यापार अधिक परिमाणमें किया जासकता है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार कंधोंपर भार खोनेवाले पैल आदिके, व्यापारीमार्गोंका विवरणभी समझलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।

तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वविजिगीषुणा ॥ ४० ॥

शत्रुका अपने कार्योंसे लाभ होना ही, विजिगीषुका क्षय समझना चाहिये। तथा अपने कार्योंके सफल होनेपर ही वृद्धि समझनी चाहिये। यदि कार्योंका फल दोनोंको बराबर ही हो, तो विजिगीषुको बराबर ही समझना चाहिये। कि मैं अपने उसी स्थानपर अवस्थित हूँ। मैंने उन्नति या भवति कुछ नहीं की ॥ ४० ॥

अल्पागमातिव्यययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।

समायव्ययता स्थानं कर्त्तुं ज्ञेयमात्मनः ॥ ४१ ॥

थोड़ी भाय और अधिक व्यय हो तो क्षय, और इससे विपरीत होने पर वृद्धि समझनी चाहिये । तथा कार्योंमें बराबर आय और व्यय होनेपर समान अवस्था समझनी चाहिये ॥ ४१ ॥

तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम् ।

कर्म लब्ध्वा विशिष्टः स्यादित्युक्ताः कर्मसंघयः ॥ ४२ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे मिथहिरण्यभूतिकर्मसधौ कर्मसंघि
द्वंद्वोऽध्याय ॥ १२ ॥ भादितो दशमः ॥ ११० ॥

इसलिये विजिगीषुको उचित है, कि वह दुर्ग आदि कार्योंमें थोड़ा व्यय करके ही महानफलको प्राप्त करनेका यत्न करे । बड़े फल वाले कार्योंको प्राप्त करके ही विजिगीषु प्राप्तुसे यत्न सकता है । इसमकर पहलक कर्मसंघि योंका निरूपण किया गया ॥ ४२ ॥

पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणमें आरम्भवा अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय

११७ प्रकरण

पार्ष्णिग्राह चिन्ता

{ पृष्ठ शिवत शत्रुको पार्ष्णिग्राह कहते हैं । ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको क्या करना चाहिये, इसी बातका विचार इस अध्यायमें किया गया है ।

संहत्यारिविजिगीषोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णि गृह्ण-
तोयः शक्तिसंपन्नस्य पार्ष्णि गृह्णाति सोऽतिसंघत्ते ॥ १ ॥

विजिगीषु और शत्रु मिलकर, जब पृष्ठवर्ती होकर किसी राजापर आक्रमण करें, तो इनमेंसे यही विशेष लाभमें रहता है, जो कि अपने शत्रुभूत, दूसरेके साथ युद्ध करनेमें कसो हुए दो राजाओंमेंसे शक्ति सम्पन्न राजाकी पार्ष्णिको ग्रहण करता है ॥ १ ॥

शक्तिसंपन्नोऽमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ २ ॥

क्योंकि शक्तिसम्पन्न राजाही अपने शत्रुका उच्छेद करके पार्ष्णिग्राहका कर सकता है । तात्पर्य यह है — जब शत्रु अपने शत्रुके साथ युद्ध

करता हुआ ही, तबही विजिगीषु और शत्रुको मिलकर उनपर आक्रमण करना चाहिये । क्योंकि यदि पार्ष्णिग्राह बने हुए विजिगीषुका शत्रु अपने शत्रुको जीत लेगा तो अधिक बलवान् होकर विजिगीषुको भी पीछे नष्ट करवालेगा । इस लिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने शत्रुके साथ युद्ध करते हुए ही शत्रुपर आक्रमण करके उसके विजयमें विभ्र दालदे, जिससे कि वह शत्रुको जीतकर बलवान् न होसके । ऐसी अवस्थामें यद्यपि विजिगीषु और शत्रुमें वही विशेष लाभमें रहता है, जो युद्ध करते हुए बलवान् शत्रुका पार्ष्णिग्राह बनता है । क्योंकि उसहीसे अपने उच्छेदकी अधिक आशा रहती है । दुर्बल शत्रु, विजिगीषुका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥ २ ॥

न हीनशक्तिरलब्धलाभ इति ॥ ३ ॥

हीनशक्ति, शत्रुराजा तो अपने शत्रुका उच्छेद करनेमें असमर्थ होनेके कारण बलयुक्त नहीं होसकता, इसीलिये उसको औरसे कोई शङ्का नहीं हो सकती । अतएव उमको पार्ष्णिग्राह ग्रहण करनेवाले विजिगीषु को शत्रुको कोई विशेष लाभ नहीं होता ॥ ३ ॥

शक्तिसाम्ये यो विपुलारम्भस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते

॥ ४ ॥

यदि शत्रु समान शक्तिके हों, तो जो भद्र आदि स्वयं पदार्थ तथा युद्ध सम्बन्धी अन्य सब प्रकारकी सामग्रोसे सम्पन्न हो (विपुलारम्भ), उसहीके पार्ष्णिग्राह जो ग्रहण करता है, वह विशेष लाभमें रहता है ॥ ४ ॥

- विपुलारम्भो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नाल्पारम्भः

सक्तचक्र इति ॥ ५ ॥

यद्यपि विपुल युद्धयात्रा सम्बन्धी सामग्रीसे सम्पन्न हुआ शत्रु राजा, अपने शत्रुका उच्छेद करके पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है । इसलिये ऐसे शत्रुको कभी बचने न देना चाहिये । जिसके पास युद्धयात्रा सम्बन्धी कोई विशेष सामग्री नहीं है, अपनी बिलखी हुई सेनाको भनी इकट्ठा करनेमें ही लगा है, वह न अपने शत्रुका उच्छेद कर सकता है, और न उससे विजिगीषुको भय होना चाहिये । इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिग्राह आक्रमण करना लाभदायक नहीं होता ॥ ५ ॥

आरम्भसाम्ये यः सर्वसंदोहेन प्रयातस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो

ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥

यदि युद्धयात्रा सम्बन्धी सामग्री भी समानही हो; तो उन राजाओंसे

ऐसे राजाके पार्ष्णिको ग्रहण करनेपर ही विशेष लाभ हो सकता है, जो अपने सम्पूर्ण सैन्यको लेकर शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये चढ़गया हो ॥ ६ ॥

१ शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति नैकदेशवलप्रयातः कृतपार्ष्णि-
प्रतिविधान इति ॥ ७ ॥

१ क्योंकि मूलस्थानमें रक्षक सेनाके न होनेसे, इसको बशमें करना असम्भव सुकर है, किन्तु जो अपनी थोड़ीसी सेनाको साथ लेजाकर शत्रुको मूल स्थानकी रक्षाके लिये छोड़ देता है, उसके पार्ष्णि ग्रहण करनेमें लाभ नहीं होता, क्योंकि वह पार्ष्णिग्राहका अच्छी तरह प्रतीकार कर सकता है ॥ ७ ॥

बलोपादानसाम्ये यश्चलामित्रं प्रयातस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो
ऽतिसंधत्ते ॥८॥ चलामित्रं प्रयातो हि सुपेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णि-
ग्राहमुच्छिन्द्यान्न स्थितामित्रं प्रयातः ॥ ९ ॥ असी हि दुर्गप्रति-
हतः पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनिवृत्तस्थितेनामित्रेणावगृह्यते ॥ १० ॥

द्वाराधर सेनाआका लजान वाल राजाओंमेंसे भी उसहोका पार्ष्णि ग्रहण करनेमें विशेष लाभ हो सकता है। जिसन अपने दुर्ग रहित शत्रुपर आक्रमण किया हो ॥ ८ ॥ क्योंकि दुर्ग रहित शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा, सहजमें ही उसे अपने अधीन करके अधिक बलवान् बन सकता है। और फिर वह पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है। परन्तु दुर्गोंसे सम्पन्न राजाके ऊपर चढ़ाई करनेपर ऐसा नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ क्योंकि दुर्गोंके द्वारा उसका अच्छी तरह प्रतीकार किया जासकता है। इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिपर आक्रमण करनेमें कोई लाभ नहीं। प्रत्युत हानिकी ही सम्भावना की जासकती है। क्योंकि जब वह दुर्गसम्पन्न राजाके साथ अपना बश न चलनेपर खिसियाया शत्रुभाषकी ओर वापस लौटता है, तो पार्ष्णिग्राहके साथही युद्ध करनेके लिये सक्षम होजाता है। और ऐसी अवस्थामें पार्ष्णिग्राहको हानिही होती है, लाभ पुछ नहीं ॥ १० ॥

तेन पूर्वं व्याख्याताः ॥ ११ ॥

दुर्गसम्पन्न शत्रुपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिका ग्रहण करनेवालेकी तरह, दैनिकिके पार्ष्णिग्राहा, अल्पानम्भ (५ सूत्रदेखो) के पार्ष्णिग्राही, तथा कुछ सेना लेजानवालेके पार्ष्णिग्राही राजाओंकी अवस्था भी समझ लेनी चाहिये ॥ ११ ॥

१ शत्रुसाम्ये यौ धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽति-
संधत्ते ॥१२॥ धार्मिकाभियोगी हि खेषां च द्वेष्यो भवति ॥१३॥
अधार्मिकाभियोगी संप्रियः ॥ १४ ॥

सर्वथा समानशक्ति शत्रुओंमेंसे उसहीका पार्ष्णिग्राह होनेमें विशेष लाभ होता है, जिसने अपने किसी धर्मात्मा शत्रुपर आक्रमण किया हुआ हो ॥ १२ ॥ क्योंकि ऐसा करनेपर अपने और पराये सभी उसके साथ द्वेष करने लगते हैं, ऐसी अवस्थामें पार्ष्णिग्राह, सरलतासेही उसे अपने वशमें कर सकता है ॥ १३ ॥ परन्तु अधर्मात्मा शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा सभीका प्रिय होजाता है, उसका अपने शत्रुपर जयलाभ करना निश्चित है, इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करना लाभदायक नहीं होता ॥ १४ ॥

तेन मूलहरतादात्विककदर्याभियोगिनां पार्ष्णिग्रहणं व्याख्यातम् ॥ १५ ॥

इससे मूलहर तादात्विक तथा कदर्य राजाओंपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिग्रहणका भी लाभलाभ समझ लेना चाहिये । तात्पर्य यह है:—पितृपैतामह परम्पराप्राप्त सम्पत्तिको अन्यायपूर्वक खानेफाले राजाका नाम 'मूलहर' है । समय २ पर प्राप्त हुई सम्पत्तिको व्यय करके खाला 'तादात्विक' कहाता है । भृत्यों तथा अपने आपको पीड़ा पहुँचाकर सम्पत्ति इकट्ठा करनेवाले राजाको 'कदर्य' कहते हैं ॥ इस प्रकार मूलहर और तादात्विक राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंमेंसे, मूलहरपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिको जो ग्रहण करता है, वही विशेष लाभमें रहता है । क्योंकि गर्भवष्टमें परेहुए मूलहर राजाको उच्छेद कर, वह पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद करसकता है । अतः पार्ष्णिग्राह यदि बीचमें ही विग्रह डालदे, तो उसका अपनी रक्षा होजाना ही विशेष लाभ होता है । इसी तरह तादात्विक और कदर्य राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंमेंसे कदर्यपर आक्रमण करनेवाले राजाके पार्ष्णिको जो दपाता है । वही लाभमें रहता है । क्योंकि कंजूस राजा कभी नौकरोंकी भलाई नहीं करता । इस लिये उसका सरलतासे उच्छेद करके, शत्रु, पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है । अतः उसके विजयमें विग्रहडालना विजिगीषुके लिये अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५ ॥

मित्राभियोगिनोः पार्ष्णिग्रहणे त एव हेतवः ॥ १६ ॥ मित्र-
माभित्रं चाभियुञ्जानयोर्षोऽमित्राभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति सो
ऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ मित्राभियोगी हि सुखनावाप्तसंधिः पार्ष्णि-
ग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ १८ ॥

मित्र राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंके पार्ष्णिका ग्रहण करनेमेंभी येही कारण समझने चाहिये, जोकि ये अतिसन्धिके कारण निर्दोष किये गये हैं ॥ १६ ॥ मित्र और शत्रुपर आक्रमण करनेवाले राजाओंमेंसे जो मित्रपर आक्रमण

मण करनेवाले राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करता है, यह विशेष लाभमें रहता है ॥ १७ ॥ क्योंकि मित्रपर आक्रमण करने वाला सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, और फिर बलवान् होकर पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है ॥ १८ ॥

सुकरो हि मित्रेण संधिर्नामित्रेणेति ॥ १९ ॥

क्योंकि मित्रके साथ सन्धि होजाना बहुत सुकर है । शत्रुके साथ सन्धि, कुछ कठिनतासे ही होसकती है, अतः शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा, सिद्धि लाभ न करता हुआ, पार्ष्णिग्राहका कुछ भी नहीं विगाड़ सकता ॥ १९ ॥

मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णि गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ २० ॥ वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्दारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नेतरः स्वपक्षोपघाती ॥ २१ ॥

मित्र और शत्रुका उद्धार (उन्मूलन=उच्छेद) करनेवाले राजाओंमें से जो शत्रुका उद्धार करनेवाले राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करता है, वही विशेषलाभ में रहता है ॥ २० ॥ क्योंकि शत्रुका उद्धार करनेवाला राजा, स्वपक्ष या मित्रके बढ़जानेपर अधिक बलवान् हुआ २ पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद करसकता है । परन्तु वृत्तरा, मित्रकाही उद्धार करनेवाला राजा, अपनेही पक्षका घातक होनेके कारण हीन हुआ २ कभीभी पार्ष्णिग्राहका उच्छेद नहीं करसकता, इसीलिये इसकी ओरसे तो कोई भय रखनाही नहीं चाहिये ॥ २१ ॥

तयोः लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः क्षयव्ययाधिको वा स पार्ष्णिग्राहोऽतिसंधत्ते ॥ २२ ॥

मित्र और शत्रुका उद्धार करनेवाले राजाओंके कुछ विशेष लाभ प्राप्त किये बिनाही लौट आनेपर, जिसका शत्रु बड़े लाभसे रहित हो, तथा जिसके पुरपोंका क्षय और धनका भी पर्याप्त व्यय होगया हो, ऐसे शत्रुपर आक्रमण किये हुए राजाका पार्ष्णिग्राह विशेष लाभमें रहता है । क्योंकि यह शत्रुको क्षीण करके पार्ष्णिग्राहकी भी हानि पहुंचानेका यत्न करसकता है ॥ २२ ॥

लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या हीनः स पार्ष्णिग्राहोऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ यस्य वा यातव्यः शत्रुर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात् ॥ २४ ॥

तथा विशेष लाभ प्राप्त करके ही लौटनेपर जिसका शत्रु लाभसे और शक्तिसे हीन हो, ऐसे आक्रमणकारी राजाका पार्ष्णिग्राह लाभमें रहता है ।

क्योंकि दूसरा, लाभ और शक्तिसे सम्पन्न शत्रुको वशमें न करसकनेके कारण पार्ष्णिग्राहका कुछ भी नहीं धिगाड़ सकता ॥ २३ ॥ अधया जिसका ^{यातव्य} (जिसके ऊपर धाक्रमण किया जाय, ऐसा शत्रु), शत्रु विजिगीषु रूप शत्रु, अर्थात् विजिगीषु) के साथ युद्ध करके, उसका अपकार करनेमें समर्थ हो, उसके पार्ष्णिग्रीको दवानेवाला राजाभी विशेष लाभमें रहता है ॥ २४ ॥

पार्ष्णिग्राहयोरपि यः शक्यारम्भवलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः-
पार्श्वस्थायी वा सो जितसंधत्ते ॥ २५ ॥

दो पार्ष्णिग्राह राजाओंमेंसे भी, जोकि सब गुणोंमें समान हैं, वही पार्ष्णिग्राह विशेष लाभमें रहता है, जिसके पास सिद्ध होने योग्य कार्योंको प्रारम्भ करनेके लिये, दूसरेकी अपेक्षा अधिक सेना एकत्रित हो, तथा जो स्थित शत्रु अर्थात् दुर्ग आदिसे सम्पन्न शत्रु हो, अथवा जो यातव्यके समीप ही रहने वाला हो ॥ २५ ॥

पार्श्वस्थायी हि यातव्याभिसारो मूलावाधकश्च भवति, मूला-
वाधक एव पश्चात्स्थायी ॥ २६ ॥

क्योंकि समीप रहनेवाले (पार्श्वस्थायी) को यही विशेष लाभ होता है, कि यातव्यके साथ मिल सकता है, और विजिगीषुके मूलस्थानको बाधा पहुँचा सकता है परन्तु दूर रहनेवाला विजिगीषुके मूलस्थानको किसीतरह भी बाधा नहीं पहुँचा सकता ॥ २६ ॥

पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः ।

सामन्तात्पृष्ठतो वर्गः प्रतिवेश्यौ च पार्श्वयोः ॥ २७ ॥

शत्रुके प्रत्येक व्यापार या कार्यको रोकनेवाले, ये पार्ष्णिग्राह तीन प्रकार के होते हैं.—(१) आक्रमण करनेवाले राजाके देशके समीप रहनेवाले, (२) पीछे अर्थात् स्पष्टदित देशमें रहनेवाले, (३) दक्षर उधर पार्श्वभागोंमें रहने वाले ॥ २७ ॥

अरेनेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलोऽन्तर्धिरुच्यते ।

प्रतिघातो बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान् ॥ २८ ॥

आक्रमणकारी विजिगीषु और उसके शत्रुके मध्यमें होनेवाला दुर्बल राजा अन्तर्धि कहलाता है । (यह भ्रमक होनेके कारण 'पार्ष्णिग्राह' नहीं हो सकता । अतएव इसका पृथक् ही निरूपण किया है) यह केवल, शत्रुवान्का मुकाबला होनेपर, दुर्ग अथवा अटवी (घने जंगल) में भागकर छिपजाता है । इसी लियेही इसका अन्वर्थ नाम 'अन्तर्धि' रखता गया है ॥ २८ ॥

३. १० मध्यमं त्वरिविजिगीष्वोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णि गृह्ण-
तोर्लब्धलाभापगमने यो मध्यमं मित्रादियोजयत्यमित्रं च मित्र-
भाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

मध्यमको घनामें करनेकी इच्छा रखनेवाले शत्रु और विजिगीषुमेंसे वही विशेष, लाभमें रहता है, जो कि मध्यमके पार्ष्णिको ग्रहण करता हुआ, वहासे कुछ लाभ प्राप्त करके भी, मध्यम राजाको उसको अपने मित्रसे वियुक्त कर देता है। तथा स्वयं अपने शत्रुकोभी अपना मित्र बना लेता है ॥ २९ ॥

संधेयश्च शत्रुरूपकुर्वाणो न मित्रं मित्रभावादुत्क्रान्तम् ॥३०॥
तेनोदामीनलिप्सा व्याख्याता ॥ ३१ ॥

उपकार करने वाले शत्रुके साथभी सन्धि कर लेनी चाहिये। तथा मित्र भावसे रहित हुए २ अर्थात् अपकार करनेवाले मित्रकोभी छोड़देना चाहिये ॥ ३० ॥ मध्यमको घनामें करनेकी तरह, उदासीनको घनामें करनाभी समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥

पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युचयः ॥ ३२ ॥
व्यायामयुद्धे हि क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः ॥३३॥ जित्वापि हि
क्षीणदण्डकोशः पराजितो भवतीत्याचार्याः ॥ ३४ ॥

पार्ष्णिग्रहण और और आक्रमणकारी इन दोनों राजाओंमेंसे वही अधिक उन्नत होसकता है, जो मन्त्रयुद्धसे शत्रुका नाश करता है। (साधारणतया युद्ध दो प्रकारका होता है— १) व्यायामयुद्ध, (२) मन्त्रयुद्ध। युद्धभूमिमें प्रवेश करके शस्त्राद्य आदिके प्रयोगोंके द्वारा शत्रुका नाश करदेना 'व्यायामयुद्ध' कहाता है। युद्धभूमिमें न जाकरही सत्री, रसद् और तीक्ष्ण आदि गूढ़पुरषोंके द्वारा शत्रुका नाश करदेना 'मन्त्रयुद्ध' कहाता है। इन दोनोंमेंसे मन्त्रयुद्धका अनुष्ठान करनेसे ही वृद्धि हो सकती है ॥ ३२ ॥ क्योंकि व्यायामयुद्धके करने पर मनुष्योंका क्षय और धनका अत्यधिक न्यय होनेके कारण, दोनों वीही हानि होती है ॥ ३ ॥ तथा युद्धमें विजय प्राप्त होजानेपर भी सेना और कोशके क्षीण होजानेके कारण, वह राजा प्रायः पराजितसाही होजाता है। यह प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशो
ऽभ्युपगन्तव्यः ॥ ३६ ॥

परन्तु फौदल्य इसको नहीं मानता ॥ ३५ ॥ वह कहता है कि, चाहे कितनाही मनुष्योंका क्षय और धनका व्यय होजाय, शत्रुका नाश करनाही हर हालतमें अभिमत होना चाहिये ॥ ३६ ॥

तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद्दूष्यबलं घातयित्वा निःशल्यः
पश्चाद्दूष्यबलो युध्येत सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३७ ॥

मनुष्य तथा धनकी बराबर हानि होनेपर जो राजा पहिले अपने दूष्य-बल (बड़ सेना, जो अपने राजाके साथ द्रोह करनेवाली हो, तथा वशमें न रहती हो) को मरवाकर, निकरपटक होकर, पीछे अपने वशमें रहनेवाली सेनाको लेकर युद्ध करता है, वहाँ विशेष लाभमें रहता है ॥ ३७ ॥

द्वयोरपि पुरस्ताद्दूष्यबलघातिनोर्यो बहुलतरं शक्तिमत्तरमत्य-
न्तदूष्यं च घातयेत्सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३८ ॥ तेनाभिवाटवीबलघातो
व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

यदि दोनों राजाही पहिले अपने दूष्यबलको ही मरवावे, तो उनमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो सख्यामें अधिक, शक्तिशाली, अत्यन्तदूष्य-बलको पहिले मरवाता है ॥ ३८ ॥ दूष्यबलकी तरह शत्रुबल और अटवीबलका मरवाना भी समझलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

पार्ष्णिग्राहो ऽभियोक्ता वा घातव्यो वा यदा भवेत् ।

विजिगीषुस्तदा तत्रं नैत्रमेतत्समाचरेत् ॥ ४० ॥

विजिगीषु जब पार्ष्णिग्राह, अभियोक्ता (आक्रमणकारी) अथवा घातव्य (जिसपर आक्रमण कियाजाय) हो, उस अवस्थामें उसे यह निम्न निर्दिष्ट नेतृत्व का कार्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्ष्णिग्राहो भवेत्चेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः ।

विग्राह्य पूर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा ॥ ४१ ॥

विजिगीषुको उचित है कि अपने (विजिगीषुके) मित्रके ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रुके पश्चात् स्थित मित्रको (अक्रन्द) पहिले अपने मित्रकी सेनाके साथ युद्ध कराके, फिर स्वयं उसके पार्ष्णिग्राह ग्रहण करे ॥ ४१ ॥

आक्रन्देनाभियुञ्जानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ।

तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम् ॥ ४२ ॥

यदि विजिगीषु स्वयंही अभियोक्ता अथवा आक्रमण करनेवाला हो, तो वह अपने पार्ष्णिग्राहको मित्रके द्वारा निवारण करे । तथा पार्ष्णिग्राहकी सेनाका

मुकाबला मित्रकी सेनाके द्वाराही करे ॥ ४२ ॥

अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादवधृयेत् ।

मित्रमित्रमरेश्वापि मित्रमित्रेण वारयेत् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपने पाँछेकी ओरका प्रबन्ध करके, सामनेकी ओरसे यदि शत्रुका मित्र मुकाबलेमें अथि, तो उससे अपने मित्रको भिदा देवे । यदि शत्रुके मित्रका मित्र आव, तो उसका निवारण अपने मित्रके मित्रके द्वारा करे ॥ ४३ ॥

मित्रेण ग्राह्येत्पाणिमभियुक्तो ऽभियोगिनः ।

मित्रमित्रेण चाक्रन्दं पाणिग्राहं निवारयेत् ॥ ४४ ॥

यदि विजिगीषु स्वयं अभियुक्त हो अर्थात् उसके ऊपरही कोई चढाई करनवाला हो, तो आक्रमणकारीके पाणिग्राह मित्रके द्वारा ग्रहण करावे, अर्थात् विजिगीषुका मित्र, आक्रमणकारीका पाणिग्राह बनजावे । यदि आक्रमणकारीका कोई मित्र पाणिग्राहका मुकाबला करनेके लिये आजावे, तो मित्रके मित्रके द्वारा अर्थात् पाणिग्राहक मित्रके द्वारा उसका निराकरण करे ॥ ४४ ॥

एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुनिवेशयेत् । -

पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसंपदा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विजिगीषु, मित्ररूप प्रकृति (अर्थशास्त्र प्रसिद्ध सात प्रकृति योंमेंसे मित्रमो अन्यतम प्रकृति है) की पूर्वोक्त गुणसमाप्तिसे युक्त राजमण्डल को अपनी सहायताके लिये आगे और पीछे ठीक तौरपर स्थापित करे ॥ ४५ ॥

कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान्गृह्णांश्च वासयेत् ।

मित्रभूतः सपत्नानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥ ४६ ॥

अपनी सहायताके लिये स्थापित किये हुए इस सम्पूर्ण राजमण्डलमें, दूतों और गुप्तचरोंका सदाही प्रदन्ध रखे । तथा शत्रुओंके साथ ऊपरसे मित्रता रखकर, उन्हें एक एकको मारदेवे, और अपन आप ऊपरसे उदासीनता ही बनारहे, अर्थात् इस प्रकारके अपने आन्तरिक भावोंको प्रकट न होनेदे ॥ ४६ ॥

असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।

निःसंशयं विपद्यन्ते भिन्नः पुन इवोदधौ ॥ ४७ ॥

इति पार्श्वगुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे पाणिग्राहचिन्ता प्रथोदशाः ३३पाय ॥ १३ ॥

३ आदित ३३३३३३ ॥ १३३ ॥

जो राजा अपने आन्तरिक विचारों या मन्त्रणाओंको छिपाकर नहीं रखसकता, इसके बजाय सबस्थाकी मातृ हुए २ भी कार्य सिस्सन्देह नष्ट हो

जाते हैं । समुद्रमें नौकाके फूटजानेपर पुरुषकी जो अवस्था होती है, ठीक वह अवस्था मन्त्रके फूटजानेपर राजाकी होजाती है । इसलिये विजिगीषुको उचित है कि वह सदा अपने मन्त्रको सुरक्षित रखे ॥ ४७ ॥

पाद्मगुण्य सप्तम अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय

१२८ प्रकरण

हीनशक्ति-पूरण ।

सामवायिकेरेवमभियुक्तो विजिगीषुर्यस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात्
॥ १ ॥ त्वया मे संधिः ॥ २ ॥

यदि बहुतसे राजा मिलकर, विजिगीषुपर आक्रमण करें, तो विजिगीषु अपनी रक्षा और वृद्धिका विचार करके, उन इकट्ठे हुए राजाओंके मुखिया राजाको इस प्रकार कहे, कि ॥ १ ॥ तुम्हारे साथ मेरी सन्धि रहा, (इतना घात केवल उसा समय कही जासकती है, जबकि वह मुखिया धमाला हो, यदि लोभो हो, तो कहे कि —) ॥ २ ॥

इदं हिरण्यम् ॥ ६ ॥ अहं च मित्रम् ॥ ४ ॥ द्विगुणा ते
वृद्धिः ॥ ५ ॥ नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुखानमित्रान्वर्धयितुम् ॥ ६ ॥
एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्तीति ॥ ७ ॥

यह हिरण्य है ॥ ३ ॥ और मैं तुम्हारा मित्र हूँ ॥ ४ ॥ तुम्हारा दुगुनी वृद्धि होगई है, (क्योंकि एक तो मुझ अभियोचनस तुम्हें पर्याप्त धन मिल गया, और आपत्तमें सहायता देनेवाला मैं एक मित्र मिलगया) ॥ ५ ॥ इस लिये अपने जन और धनका नाश करके, ऊपरसे मित्रता दिखाने वाले इन शत्रुओंको यदानी भाषक लिये युक्त नहींहै ॥ ६ ॥ क्योंकि ये वृद्धिहो प्राप्त हांकर तुमकाही दबावेंगे । अर्थात् तुम्हारी सहायतासे पहिले मेरा उच्छेद करके, फिर तुम्हारा तिरस्कार करेंगे । इसलिये तुम्हें इनका साथ नहीं देना चाहिये ॥ ७ ॥

भेदं वा ब्रूयात् ॥ ८ ॥ अनपकारो यथाहमेतैः संभ्रूयाभियु-
क्तस्तथा त्वामप्येते संहितवलाः स्वस्था व्यसने वाभियोक्ष्यन्ते
॥ ९ ॥ वलं हि चित्तं विकरोति ॥ १० ॥ तदेषां विघातयोति ॥ ११ ॥

भयवा दममें आपत्तमें ही भेद बलवा देवे, (पह उसी-समय करना

चाहिये, जब कि वह मुखिया पहिली बातको स्वीकार न करे) । भेद डलवानेके लिये कहे कि ॥ ८ ॥ जिस प्रकार निरपराध मुहापर इन सयने मिलकर आक्रमण किया है, इसीप्रकार ये सय इकट्ठे होकर अपनी उन्नत अवस्थामें अथवा तुम्हारे आपद्ग्रस्त होनेपर अवश्यही तुमपर आक्रमण करेंगे ॥९॥ क्योंकि एकत्रित हुआ २ बल अवश्यही चित्तको विरुद्ध अर्थात् गर्वित बनादेता है ॥ १० ॥ इस क्रिये आपको उचित है, कि आप अर्थात् इनके बलको छिन्नाभिष्ट करदे ॥ ११ ॥

भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्यं हीनेषु विक्रमयेत् ॥ १२ ॥ हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने ॥ १३ ॥ यथा वा श्रेयोऽभिमन्यते तथा, चरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ १४ ॥

इसप्रकार आपसमें उनका भेद पदजाने पर, प्रधानकी सहायता लेकर अन्य सब हीन राजाओंपर आक्रमण करदेवे ॥ १२ ॥ अथवा उपयुक्त प्रकारसे हीनमें साम आदिका प्रयोग करके, उनकी सहायता लेकर प्रधान राजापर आक्रमण करदेवे ॥ १३ ॥ अथवा जिस प्रकार अनपा कल्याण समझे, उसीप्रकार कार्य करे । अथवा दूसरोंके साथ एक एकका विरोध करके आपसमेंही भिदादे । (यह कार्य उसी समय किया जाता है, जब विजिगोषु स्वयं युद्ध करना न चाहता हो या न कर सकता हो) ॥ १४ ॥

फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य संधिं कारयेत् ॥ १५ ॥
अथोभयवेतनाः फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकानातिसंहिताः
स्थ इत्युद्भूयैयुः ॥ १६ ॥

अथवा बहुतसा धन आदि देनेकी प्रतिज्ञा करके, प्रधान राजाको उधरसे तोड़कर, उसीके द्वारा अन्य राजाओंके साथ सन्धि करलेवे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर उभयवेतन गुप्त पुरुष दोनों ओरसे वेतन लेनेवाले, अर्थात् जो गृहपुरुष अन्दरसे तो विजिगोषुके आदमी हों, परन्तु ऊपरसे अपने आपको, पूर्णतया दूसरोंका बल (बे, वे) उन सामवायिक (एकत्रित=इकट्ठे) राजाओंको, प्रधानके लिये भारी रक्कम मिलनेकी बातको कहते हुए, 'तुम सबको उसने ठगलिया है' इत्यप्रकार भड़कावे ॥ १६ ॥

दुष्टेषु संधिं दूयेत् ॥ १७ ॥ अथोभयवेतना भूयो भेदमेपां
कुप्युरेवं तयदस्माभिर्दर्शितमिति ॥ १८ ॥ भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण
वा चिष्टेत् ॥ १९ ॥

। १७ ॥ जब वे सब राजा, प्रधानसे विरुद्ध होनावे, तब यह प्रधानके साथ की-
हुं सन्धिको तोड़ देवे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर फिर उभयवेतन गुप्तपुरुष,

इनका आपसमें भेद डालें, और कहें कि देखो, हमने पहिलेही कहा था कि इस प्रधान राजाको भारी रकम मिलने वाली है, अब उसीमें कुछ गड़बड़ हो-जानेके कारण, इसने विजिगीपुके साथ कीहुई सन्धिको तोड़दिया है। पहिले फही हुई हमारी बात, इसको इस कार्यवाहीसे बिल्कुल स्पष्ट होगई है ॥ १८ ॥ इन उपायोसे भायसमें उनके भिन्न होजानेपर, दोनोंमेंसे कित्ता एकका सहारा लेकर, दूसरेके साथ युद्ध प्रारम्भ करदेवे ॥ १९ ॥

प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभाद्भयाद्वा संघातमुपागतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसंबन्धं मित्रं चलामित्रं वा पूर्वानुत्तराभावे साधयेत् ॥ २० ॥

यदि उन सामवायिक राजाओंका कोई एक प्रधान राजा न हो, तो उनमेंसे जो सबको उत्साहित करनेवाला, स्थिरकर्मा (कार्यको परिणामतक पहुँचानेका साहस रखनेवाला=शत्रुका उच्छेद किये बिना पाछे न हटनेवाला), अनुरक्त प्रकृति (जिसके अमारय, तथा, प्रजाजन जिसमें अनुराग रखते हों), लोभसे राजाओंके मघमें आकर मिला हुआ, अथवा भयस उनमें आकर मिला हुआ, विजिगीषुसे डरा हुआ, अपने राज्यके साथ कुछ सम्बन्ध रखनेवाला, अपनाही मित्र (जो कि सामवायिक राजाओंके साथ जाकर मिल गया है), और चलामित्र अर्थात् दुर्ग आदि रहित शत्रु हो, इनको ही अपने वशमें करे। परन्तु इन नौओं प्रकारके राजाभोगस, अगलके न होनेपरही पहिलेको वशमें करनेका यत्न करे। जैसे—उत्साहयिता और स्थिरकर्मा इन दोनोंमेंसे, स्थिरकर्माके न होनेपरही उत्साहयिताको वशमें करे, अन्यथा तो स्थिरकर्माको ही वशमें करनेका यत्न करे। इसीतरह आगेभी समझना चाहिये ॥ २० ॥

उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेनानुरक्तप्रकृतिं कन्यादानयापनाभ्यां लुब्धमंशद्वेगुण्येन भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण स्वतो भीतं विश्वासयेत् प्रतिभूप्रदानेन राज्यप्रतिसंबन्धमेकीभावोपगमनेन मित्रमुभयतः प्रियहिताभ्यामुपकारत्यागेन वा चलामित्रमनश्रुतमनपकारोपकाराभ्याम् ॥ २१ ॥

विजिगीषुको उचित है कि यह उरगाहयिताको 'मैं अमारय और पुत्रादिके सहित गुम्हारे अधीन हूँ, तुम अपनी इच्छानुसार जिसकार्यपर चाहो मुझे लगासकते हो, परन्तु मेरा उच्छेद न करो' इसप्रकार भावसमपण करके वशमें करे। स्थिरकर्माको 'आपने मुझे जितलिया है, आप सब गुणोंमें उरष्ट हैं' इस प्रकार कहकर प्रणिपात अर्थात् उसके सामने अपना सिर झुकाकर वशमें करे।

अनुरक्तप्रकृति राजाको कन्या ले या देकर वशमें करे । लोभीराजाको दूना हिस्सा देकर वशमें करे । सामवायिक राजाओंसे डरे हुएको सेना और धनकी सहायता देकर वशमें करे । अपने आपसे डरे हुएको, बीचमें किसी अन्य राजाको साक्षी बनाकर उसे इसतरहका विश्वास कराकर कि मैं तुम्हारा कोई अपकार नहीं करूँगा, अपने अनुकूल बनावे । अपने राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाले राजाको 'मैं और तुम एकही हैं, मेरे पराजयमें तुम्हारा भी पराजय है, दूसरोंके साथ मिलकर सुझपर आक्रमण करना तुम्हारे लिये युक्त नहीं' इसप्रकार एकताका भाव दिखाकर अपने वशमें कर, मित्रराजाको, प्रिय और हितवचनों से तथा जो कर उससे अभा तक लिया जाता था उसे छोड़ देनेसे अपने वशमें करे । और आस्थिर शत्रु राजाका उसका उपकार काने और अपकार न करनेकी प्रतिज्ञासे विश्वस्त बनाकर अनुकूल बनावे ॥ २१ ॥

यो वा यथायोगं भजेत तं तथा साधयेत् ॥ २२ ॥ साम-
दानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः ॥ २३ ॥

अथवा इन सामवायिक राजाओंसे, जो भी जिस प्रकारसे भेदकी प्राप्त होसके, उसा तरह उसे वशमें कानका यत्न कियाजाय ॥ २२ ॥ अथवा साम, दान, भेद और दण्ड इन सबका उपयोगसे उनको अपने अधीन करनेका यत्न करे, जैसा कि हम आपत् प्रकरणमें कथन करेंगे । (दृष्टो=९ अधि०, ५ अध्याय) ॥ २३ ॥

व्यमनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां देशे काले कार्ये
वाचधृतं संधिमुपेयात् ॥ २४ ॥ कृतसंधिहीनमात्मानं प्रतिकुर्यात्
॥ २५ ॥

अथवा विजिगीषु अपने ऊपर आई हुई वित्तिको क्षीणशी नष्ट करनेकी इच्छा रखता हुआ, सामवायिक राजाओंके साथ; सेना और धनके द्वारा अमुक्त देश, काल तथा कार्यके उरस्थित होनेपर परस्पर सहायताके लिये शपथ आदि करके निश्चिन्त सन्निव करलेवे ॥ २४ ॥ अतः इस प्रकार सन्निव करनेके अनन्तर अपनी क्षीणशक्तिको पूर्ण उन्नत बनानेका यत्न करता रहे ॥ २५ ॥

पक्षे हीनो घन्धुमित्रपक्षं कुर्यात् ॥ २६ ॥ दुर्गमनिपक्षं वा
॥ २७ ॥ दुर्गमित्रप्रतिस्तन्धो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति
॥ २८ ॥

अथ पक्ष भयान् मित्रसे रहित विजिगीषु, घन्धु और मित्ररूप पक्षकी अच्छी तरह बनावे । अर्थात् जहातक होसके, राजाओंको अपना मित्र बनावे

॥ २६ ॥ अथवा शत्रुओंमें अभय दुर्ग बनवाये ॥ २७ ॥ क्योंकि इस प्रकार दुर्ग और मित्रोंसे युक्त हुआ २ विजिगीषु, अपने और पराये सबहीका पूज्य होजाता है । अर्थात् फिर उसके विरोधमें सहसा कोईभी शत्रु खड़ा नहीं हो सकता ॥ २८ ॥

मन्त्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वति

॥ २९ ॥ तथा हि सद्यःश्रेयः प्राप्नोति ॥ ३० ॥ १ ॥ १

मन्त्रशक्ति अर्थात् बुद्धियलसे हीन राजा, बुद्धिमान् पुरुषोंका समूह और विद्या वृद्ध अनुभवी पुत्रोंके साथ संगति करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार करनेसे राजा, शीघ्रही कल्याणिको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेमसिद्धौ यतेत ॥ ३१ ॥ जनपदः सर्वकर्मणां योनिः ॥ ३२ ॥ ततः प्रभावः ॥ ३३ ॥ तस्य स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम् ॥ ३४ ॥

प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्तिले हीन राजा, अमात्य आदि प्रकृति अथवा प्रजाओंके योग क्षेमको सिद्ध करनेमें महान यत्नकरे ॥ ३१ ॥ क्योंकि जनपद सबही कार्योंका मूलकारण है, उसहीसे कोश और सेनाकी उत्पत्ति होसकती है और दुर्गोंका भी निर्माण किया जासकता है ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सर्वथ प्रभाव भी होसकता है ॥ ३३ ॥ उस प्रभावका मूल निवासस्थान दुर्गही है, और आपत्तिकालमें, दुर्गके द्वारा अपनीभी रक्षा होसकती है ॥ ३४ ॥

सेतुबन्धः सस्यानां योनिः ॥ ३५ ॥ नित्यानुपक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु ॥ ३६ ॥

सेतुबन्ध (बड़े २ बांध लगाकर बनाये हुए जलशय), अन्न आदिकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है ॥ ३५ ॥ क्योंकि जो अन्न आदि, वृष्टिके द्वारा हमें कभी२ प्राप्त होसकते हैं, वे इन जलशयोंके समोप बौद्धे हुई भूमिमें सदाही प्राप्त होते रहते हैं । अर्थात् सेतुबन्धोंके द्वारा प्रत्येक भक्तुमें अन्न आदि पशुध प्राप्त किये जासकते हैं ॥ ३६ ॥

वाणिकपथः परातिसंधानस्य योनिः ॥ ३७ ॥ वाणिकपथेन हि दण्डगूढपुरुषातिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनवयश्च क्रियते ॥ ३८ ॥ प्रवेशो निर्नयनं च ॥ ३९ ॥

वाणिकपथ मार्ग शत्रुओंको धोखा देनेका प्रधान कारण है ॥ ३७ ॥ क्योंकि कि सेना और तीक्ष्ण, रसद आदि गूढ पुरुषोंको शत्रु देशमें पहुँचाना, तथा

हैर तरहके हथियार, कदच, सवारी और घोड़े आदि वस्तुओंको त्रय विप्रय व्यवहार सब व्यापारी भागोंके द्वाराही किया जाता है - ॥ ३८ ॥ तथा दूसरे देशकी वस्तुओंको अपने देशमें लाना और अपने देशकी वस्तुओंको दूसरे देशमें भेजना भी इन्हीं भागोंके द्वारा होता है ॥ ३९ ॥ ।

। खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः ॥ ४० ॥ द्रव्यवनं दुर्ग-
कर्मणाम् ॥ ४१ ॥ यानरथयोश्च ॥ ४२ ॥

। संग्रामके प्रत्येक उपकरणों (हथियार आदि साधनों) का प्रधानकारण खानही है ॥ ४० ॥ लकड़ियोंका जगल, दुर्गों और रानप्रासाद आदि कार्योंका प्रधान कारण है ॥ ४१ ॥ और रथ तथा इसी तरहकी अन्य सवारियोंका भी यही कारण होता है ॥ ४२ ॥

हस्तिवनं हस्तिनाम् ॥ ४३ ॥ गवाधरथोद्घाणां च व्रजः
॥ ४४ ॥ तेषामलाभे बन्धुमित्रकुलेभ्यः समार्जनम् ॥ ४५ ॥

हार्थियोंका जगल, हाथियोंकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है ॥ ४३ ॥ और हाथी, घोड़े, गधे तथा ऊंटोंकी उत्पत्तिका कारण व्रज अर्थात् गोशाला है। (यद्यपि 'व्रज' शब्दका अर्थ गाछ या गोशाला है, परन्तु यहापर यह शब्द सब हो पालन पशुओंके रक्षा स्थानके लिये प्रयुक्त किया गया है) ॥ ४४ ॥ यदि ये उपयुक्त सवहा पदार्थ अपने यहां नहीं, तो अपने बन्धु और मित्रोंके कुलोंसे इनका संग्रह करना चाहिए ॥ ४५ ॥

उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चौरगणाटविकम्लेच्छजातीनां
परापकारिणां गूढपुरुषाणां च यथालाभमुपचयं कुर्वीत ॥ ४६ ॥
परमित्रप्रतीकारमावलीयसं वा परेषु प्रयुञ्जीत ॥ ४७ ॥

उत्साह हीन राजा, अपनी उत्साह शक्तिको पूरा करनेके लिये श्रेणी पुरुषों (देखो, अधि० ९ अध्याय २), शूरवीर पुरुषों, तथा शत्रुओंका अपकार करनेमें कठिबद्ध हुए २ चोरों, आटाविकों और म्लेच्छ जातिके पुरुषों, एवं गूढ पुरुषोंका अपने लाभके अनुसार अच्छी तरह संग्रह करे ॥ ४६ ॥ शत्रुओंका ऊपासे बनावटी मित्र बनकर उनका प्रतिकार करता रहे। अथवा आवलीयस अधिकरणमें (आरहयों अधिकरण) बनावे हुए प्रतिकारोंका शत्रुओंपर प्रयोग करे ॥ ४७ ॥

एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च ।

संपन्नः प्रतिनिर्गच्छेत्परावग्रहमात्मनः ॥ ४८ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे हीनशक्तिपूरण चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रादितो द्वादशशतः ॥ ११२ ॥

। इस प्रकार बन्धु और मित्ररूप भक्षते, विघ्नहृद्-आदि पुराणोंके समाप्ति रूप मन्त्रसे, दुर्ग सेतुबन्ध आदिके द्वारा उत्पन्न हुए २ द्रव्यसे, और श्रेणी आदि बलसे, अपनी शक्तिको पूर्ण करता हुआ विजिगीषु सदा शत्रुका प्रतीकार करता रहे ॥ ४८ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें चौदहवा अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवा अध्याय

११९-१२० प्रकरण

प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेशके कारण, और विजित शत्रुका व्यवहार

दुर्बलो राजा बलवतामियुक्तः तद्विशिष्टबलमाश्रयेत् यमितरो मन्त्रशक्त्या नातिसंदध्यात् ॥ १ ॥

यदि कोई बलवान् राजा, दुर्बल राजापर आक्रमण करे, तो वह आक्रमणकारी राजासे भा आर अधिक बलशाली किसी राजाका आश्रय लेवे जिसको कि, वह आक्रमणकारी राजाभी, मन्त्र शक्तिये किसी तरहकाभी धोखा न देसके ॥ १ ॥

तुल्यमन्त्रशक्तीनामायत्तसंपदो वृद्धसंयोगाद्वा विशेषः ॥ २ ॥

यदि आश्रय देनेके योग्य, बराबर सैनिक शक्ति और मन्त्रशक्ति वाले अनके राजा हों, तो उनमेंसे उसहीका आश्रय लव, जिसके अमात्य आदि अत्यन्त बुद्धिमान् हों । यदि इस तरहके भी बहुतसे राजा आश्रय-लेनेके योग्य मिल जाव तो उनमेंसे उसहीका आश्रय लेव, जो राजा, अत्यन्त अनुभवी विद्वानोंसे युक्त होवे ॥ २ ॥

विशिष्टबलामात्रे समबलैस्तुल्यबलसङ्घैर्वा बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावशक्तिभ्यामतिमदध्यात् ॥ ३ ॥

यदि आक्रमणकारी राजास विराय शक्तिशाली कोई राजा आश्रय देने के लिये न मिले, तो अपन समानशक्तिके बाल अथवा अपनी सनाक बराबरही सना रखन वाले बहुतसे राजाओंके साथ मिलकर, प्रबल शत्रुका उस समय तक मुकाबला करे, जब तककि वह (अभिधाका प्रबल शत्रु), मिले हुए राजाओं को मन्त्र तथा प्रभाव शक्तिके द्वारा भेद करके पृथक् न करदे ॥ ३ ॥

तुल्यमन्त्रप्रभावशक्तीनां विपुलारम्भतो विशेषः ॥ ४ ॥

यदि इस प्रकारके राजाभी आश्रय लेनेके योग्य, बहुतसे मिल जायें, तो उनमेंसे विपुलारम्भ राजाही विशेष होता है । अर्थात् उन सबमेंसे विपुलारम्भ राजाकाही आश्रय लेना चाहिये । (जिस राजाके पास अब तथा अन्य सब युद्ध सम्बन्धी सामग्री बहुत अधिक तादात्म्ये विद्यमान हो, वह राजा 'विपुलारम्भ' कहलाता है ॥ ४ ॥

समबलाभावे हीनबलः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतै-
र्वलयतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावोत्साहशक्तिभिरतिसंद-
ध्यात् ॥ ५ ॥

यदि कोई समशक्ति राजाभी आश्रयके लिये न मिले, तो पवित्र हृदय, उत्साही बलवान् शत्रुके अत्यन्त विरोधी, बहुतसे हीनशक्ति राजाओंके साथ मिलकरही उस समय तक उस प्रबल शत्रुका मुकाबला करे, जब तक कि वह, अपनी सहायता करने वाले इन राजाओंमें, मन्त्र अभाव तथा उत्साह शक्तिके द्वारा भेद डालकर अपनेसे पृथक् न करे ॥ ५ ॥

तुल्योत्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः ॥ ६ ॥ तुल्य-
भूमिनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः ॥ ७ ॥

यदि इस प्रकारकेभी बहुतसे राजा आश्रयके योग्य मिलें, तो उनमेंसे वही विशेष है, जिसके पास युद्धके योग्य अपनी भूमि ही । अर्थात् जिसके पास अपनाही युद्धके योग्य देश मिल सके, उसी राजाका आश्रय लेवे ॥ ६ ॥ यदि इस प्रकार युद्ध योग्य भूमिभी अनेक राजाओंके पास मिलती हो, तो उनमेंसे उसहीका आश्रय लेवे, जिसके सहारे पर अपने अनुकूल युद्धके योग्य समयभी मिल सके ॥ ७ ॥

तुल्यदेशकालानां युग्यशस्त्रावरणतो विशेषः ॥ ८ ॥

यदि देश और काल दोनोंही चीजें अनेक राजाओंके पास मिल सकती हो, तो उनमेंसे उसी राजाका आश्रय लेवे जिसके पास दैल, घोड़े, ऊंट आदि सर्वांगीके जानवर, हर तरहके हथियार और कवच आदि अधिक संख्यामें हों । अर्थात् उपर्युक्त युद्ध सामग्री जिसके पास अधिकसे वही सबमें विशेष है, उसी का आश्रय लेवे ॥ ८ ॥

सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्त-
यवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात् ॥ ९ ॥ स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां
युज्येत ॥ १० ॥

यदि कोईभी सहायता करनेवाला न मिले, तो दुर्गका आश्रय लेवे, जहाँपर शत्रु, अत्याधिक सेनासे युक्त हुआ, २ भी, अपने लिये, अपेक्षित, भक्ष्यपदार्थ, और पशुओंके पानिके पदार्थ (घसस), ईंधन और जल आदिकी रुकौवट किसी तरहभी न करसके ॥ ९ ॥ और स्वयं ही शत्रु, मनुष्योंके नाश तथा धनके व्ययसे युक्त होजाय । अर्थात् शत्रुके जनधनका जहाँ भण्डाई तरह सफ़ाया होता रहे ॥ १० ॥

तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः ॥ ११ ॥ निचया-
पसारसंपन्नं हि मनुष्यदुर्गमिच्छेदिति कौटल्यः ॥ १२ ॥

यदि उपयुक्त प्रकारके बहुतसे दुर्ग आश्रयके योग्य मिलते हों, तो उन मेंसे वही दुर्ग विशेष है, जहाँ तेल नमक आदि नित्य उपयोगको वस्तुओंका अच्छा संघमहो तथा अवसर आनेपर जहाँसे निकल जानेका मार्गभी ढीक हो ॥ ११ ॥ क्योंकि आचार्य कौटल्यका मत है कि ऐसाही दुर्ग मनुष्योंके आश्रयके योग्य होसकता है, जोकि निचय (तेल, नमक आदि नैतिक सामग्री) और अपसार (निकलनेका मार्ग) से सम्पन्न हो । आश्रयके लिये राजा सदा ऐसेही दुर्गकी इच्छा करे ॥ १२ ॥

तदेभिः कारणैराश्रयेत ॥ १३ ॥

इन निम्न लिखित कारणोंमेंसे कोई एक कारण होनेपर दुर्गका आश्रय लेवे । (इस अध्यायके ३० वें सूत्रतक इन्हीं कारणों या प्रयोजनोंका निरूपण किया गया है, इनमेंसे कोईसी एक यात होनेपर, राजा दुर्गका आश्रय लेलेवे) ॥ १३ ॥

पाणिग्रहासासरं मध्यममुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि ॥ १४ ॥

यदि किजिगीएु यह समझे, कि मैं पाणिग्रहा, मित्रबल, मध्यम अथवा उदासीन राजाकी अपने शत्रुके मुकाबलेमें युद्ध करनेके लिये खड़ा करसकूँगा, तो दुर्गका आश्रय लेवे । (यह पहिला प्रयोजन है, दूसरीप्रकार कुल मिलाकर १६ प्रयोजनहैं । प्रत्येकके आदिमें अध्यायके भागे 'जब यह समझे, कि' यह वाक्य, और अन्तमें 'तो दुर्गका आश्रय लेवे' यह वाक्य जोड़ लेना चाहिये) ॥ १४ ॥

सामन्ताटविकवत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं हार-
यिष्यामि घातयिष्यामि वा ॥ १५ ॥

अथवा यह समझे, कि सामन्त, आटविक अथवा आममणकारिके वि-
रोधी 'उसके किसी वंशजके द्वारा, उसका राज्य हरण करारूँगा, 'या' उसको
मारवा दारूँगा ॥ १५ ॥

कृत्यपक्षोपग्रहेण वास्य दुर्गे राष्ट्रे स्कन्धागारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि ॥ १६ ॥

अथवा अभियोक्ता (आक्रमणकारी) के कर्मचारावगंको साम आदि उपायोंके द्वारा अपने अधीन करके, दुर्गमें, राष्ट्रमें अथवा छावनीमें विप्लव (कोप) उत्था करवावृत्ता ॥ १६ ॥

शत्रुप्रिरणप्रणिधानंरौपनिपदिकैर्वा यथेष्टमासन्नं हनिष्यामि ॥ १७ ॥

अथवा हथियार, अग्नि या विष आदिसे मारनेवाले गुप्तचरोंके द्वारा, या औपनिपदिक प्रकरणमें यथापे हुए यागोंके द्वारा, समीप भाग्ये हुए अभियोक्ता शत्रुको इच्छानुसार मरवावावृत्ता ॥ १७ ॥

स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि ॥ १८ ॥

अथवा विश्वासी घातक पुस्त्याका स्वय प्रयोग करते हुए उसके पुरखोंका क्षय और धाका व्यय अच्छी तरह करवा सकूगा ॥ १८ ॥

क्षयव्ययप्रसासोपतप्ते वास्य मित्रगर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्याभि ॥ १९ ॥

अथवा मनुष्योंके नाश, धनके व्यय और प्रवास (यात्रा) के दु उनके कारण, इसके मित्रगर्ग और सैन्यके दु ही होनपर, धीरे २ इनमें परस्पर अच्छी तरह भेद डलना सकूगा ॥ १९ ॥

वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि ॥ २० ॥

अथवा अभियात्त्रक अपन देशसे आनवाल स्वाद्यपदार्थ, मित्रबल, तथा प्राप्त भूमा और ईंधन आदिको घातमेंहा नष्ट करके, इसकी छावनीको अत्यन्त पीडा पहुचा सकूगा ॥ २० ॥

दण्डोपनेयेन वास्य रन्त्रमुत्थाप्य सर्वसंदोहेन प्रहरिष्यामि ॥ २१ ॥

१) अथवा अपनी कुछ सनाको, अभियोक्ताकी छावनीमें छिपेतीरपर लेजा कर, इसके दोषा अर्थात् निर्बलताओंको अच्छीतरह मालूम करक, फिर बहुत अधिक सैन्य समुदायके साथ, इसके ऊपर प्रहार कर सकूगा ॥ २१ ॥

१. प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं संधिमनाप्स्यामि, मयि प्रतिबन्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति ॥ २२ ॥

अथवा किसीतरह अभियोक्ताके उतासाहको नष्ट करके, फिर उसके साथ दृष्टानुसार स्निग्ध कर सकूगा । अथवा भुक्तपर आक्रमण करनेवाले अभियोक्ता के ऊपर चारों ओरसे सबही राजालोग कुपित हो बैठेंगे ॥ २२ ॥

निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्धातायिष्यामि ॥ २३ ॥

महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्यः पालयिष्यामि ॥ २४ ॥

अथवा इसके मित्रबलको पृथक् रोककर, उसकी सहायता न पहुचनेपर इसके मूलस्थान (प्रधान राजधानी) को औरने मित्रबल और आठविकोंके द्वारा नष्ट करादूगा ॥ २३ ॥ अथवा अपने बड़े बारी देशके योगक्षेमको, यहाँपर रहकर मैं पूर्णतया पालन करसकूंगा ॥ २४ ॥

स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्यामिहस्यस्यैकस्थमात्रिपहं भविष्यति ॥ २५ ॥

अथवा यहाँपर रहत हुए मेरे, अपन कायक लिये या मित्रक कायक लिये अन्वय भेजी हुई सना यहाँपर मोसाय एकात्रर हाकर, कदापि शत्रुकैवशम न होसकेगी ॥ २५ ॥

निम्नसातरात्रिपुद्गविशारदं वा मे सैन्यं पथ्यावाधमुक्तमासन्नै कर्माणे करिष्याति ॥ २६ ॥

अथवा नीचे (भेदानमे), खादे खादकर, और रात्रिके समय युद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर येरी सेना, किलेम रास्तका शकावटको दूर करके, अवसर आनेपर खूब अच्छीतरह कार्य कर सकेगा ॥ २६ ॥

विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वयमेव क्षयव्ययाम्यां न भविष्यति ॥ २७ ॥

अथवा अभियोक्ता, अपनी सेनाके लिये प्रतिकूल देश और कालमें यहाँ आनेपर, हमारे यत्नके बिनाही अपने आप मनुष्योंका क्षय तथा धनका व्यय होनेसे नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥

महाक्षयव्ययाभिगम्योऽयं देशो दुर्गात्स्वप्सारात्सालुत्पात् ॥ २८ ॥

अथवा इसदेशमें वही राजा आक्रमण कर सकेगा, जो अपना महान क्षय और व्यय करनेके लिये तैयार होगा । क्योंकि यहा दुर्ग जंगल तथा अपसार (बाहर निकलजानेके) स्थान बहुत हैं ॥ २८ ॥

परेपां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च तनापतद्रतः प्रवेक्ष्यति ॥ २९ ॥ प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यतीति ॥ ३० ॥

और परदेशसे आनेवाले लोगोंके लिये यह स्थान व्याधि-जनक है। सेना-
ओंकी कवायद आदिके लिये भी यहां पर्याप्त भूमि नहीं मिल सकरी। इसलिये
जो भी आक्रमणकारी यहां आवेगा, वह अवश्यही भापद्मस्त होगा ॥ २९ ॥
यदि किसीतरह वह यहां आ भी गया, तो फिर वहांसे उमका कषायण पूर्वक
निकलना कठिन होजायगा, इसप्रकार जब विजिगीषु समझे, तो अवश्यही दुर्ग
का आश्रय लेलेवे ॥ ३० ॥

कारणाभावे चलसमुच्छ्रये वा पास्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत्
॥ ३१ ॥ अग्निपतङ्गवदग्नित्रे वा प्रविशेत् ॥ ३२ ॥ अन्यतरसि-
द्धिर्हि त्यक्तात्मनो भवतीत्याचार्याः ॥ ३३ ॥

यदि ये उपर्युक्त कारण नहीं, और शत्रुकी सेना अत्यन्त बलवान् तथा
बहुत अधिक हो तो फिर क्या करना चाहिये ? इस विषयमें आचार्योंका मत
है, कि दुर्गको छोड़कर चले जाना चाहिये ॥ ३१ ॥ वधवा अग्निमें पतङ्गके
समान, शत्रुपर आक्रमण करनेवा चाहिये ॥ ३२ ॥ क्योंकि अपना मोह छोड़कर
इसप्रकार आक्रमण करनेपर कभी २ विजय लाभ भी होजाता है। अर्थात् जैसे
दीपकके ऊपर गिरा हुआ पतङ्ग, कभी २ उसे बुझाभी देता है, इसीतरह आ-
मणकारी प्रबल शत्रुभी, कभी २ पराजित होजाता है, और दुर्बल विजिगीषु भी
अद्वुत पराक्रमके द्वारा विजयलाम करता है ॥ ३३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३४ ॥ संशेयतामात्मनः परस्य चोपलभ्य
संदर्धात् ॥ ३५ ॥ विपर्यये विक्रमेण सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत् ॥ ३६ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ३४ ॥ वह कहता है
कि सबसे प्रथम अपनी और शत्रुकी सन्धि विषयक योग्यताको देखकर सन्धि
करलेनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि जहातक होसके, प्रथम, शत्रुके साथ सन्धि
करनेकाही यत्न करें ॥ ३५ ॥ यदि किसीतरहभी सन्धि होनेकी सम्भावना न हो,
तो फिर पराक्रमके द्वारा सिद्धिलाम करें। (किसी पुस्तकमें 'सिद्धि' के स्थान-
पर 'सन्धि' भी पाठान्तर है, उसका अर्थ इसप्रकार समझना चाहिये—विक्र-
मके द्वारा सन्धिके लाम करें, अर्थात् युद्ध प्रारम्भ करनेपर शत्रुके क्षय रूप
होनेस, उसे इतना तग करदे, कि वह दुःखा होकर सन्धि करनेके लिये तैयार
होजाय)। अथवा जब समझे कि सन्धि होना सर्वथा असम्भव है, तो स्थ नकी
छोड़कर चलाजावे ॥ ३६ ॥

{ यहाँतक प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेशके कारणोंका
निरूपण किया गया। अब इसके आगे विजित शत्रुका व्यवहार
बताया जावेगा।

संधेयस्य वा दूतं प्रेषयेत् ॥ ३७ ॥ तेन वा प्रेषितमर्थमानाम्यां सत्कृत्य ब्रूयात् ॥ ३८ ॥ इदं राज्ञः पण्यागारमिदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनादिदं राज्यमहं च त्वदर्पण इति ॥३९॥

अथवा जब सन्धि सर्वेया असम्भव हो, तो सन्धेय अर्थात् धर्मविजयी शक्तिशाली अभियोक्ता राजाके, पास अपना दूत भेजे ॥ ३७ ॥ अथवा उसके भेजे हुए दूतको धन और मानसे सत्कृत करके यह कहे, कि ॥ ३८ ॥ राजाके लिये (विजेता राजाके लिये) यह बहुमूल्य मंड है, और यह, देवी (रानी) तथा कुंमारों (राजकुमारों) के कथनानुसार, उनके देवी और कुंमारोंके लिये मंड है । यह सम्पूर्ण राज्य और मैं सर्वथा तुम्हारे ही अर्पण हैं । अर्थात् इस राज्यके और मेरेभी, आपही हरतरह मालिक हैं ॥ ३९ ॥

लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तारि वर्तेत ॥ ४० ॥ दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्वपण्यहस्तिग्रहणसत्रयात्राविहारगमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४१ ॥

इसमकार दूत आदि भेजनेके द्वारा, विजेताका आश्रय मिलजानेपर, नियमानुसार सेवकोंकी भांतिही उसके पास रहता हुआ, उसीतरहका धर्त्ताव करे ॥ ४० ॥ और दुर्ग आदि बनवाना, कन्या देना या लेना, (अर्थात् कन्या और पुत्रका विवाह), यौवराज्याभिषेक, घोड़ोंका खरीदना, हाथियोंका पकड़ना, यज्ञ, कहीं जाना आना, या उद्यान आदिमें क्रीडाके लिये जाना, इत्यादि सबही कार्योंको, उसकी (विजेता राजाकी) अनुमति लेकर करे ॥ ४१ ॥

स्वभूम्यवस्थितप्रकृतिसंधिमुपघातमपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः कुर्वीत ॥४२॥ दुष्टपौरजानपदो वा न्यायवृत्तिरन्यां भूमिं याचेत ॥ ४३ ॥

अपने ही देशमें रहते हुए अमात्य आदि प्रकृतियोंके साथ सन्धि, या अपने देशसे भागकर दूसरी जगह गये हुए उनके लिये दण्डकी व्यवस्था, यह सब कुछभी, विजेता राजाकी अनुमतिसे ही करे ॥ ४२ ॥ स्वयं न्यायानुकूल आचरण करता हुआ राजा, (किसी पुष्कलमें 'न्यायावृत्ति' ऐसा पाठान्तर है । यह 'भूमि' का विशेषण समझना चाहिये) नगरनिवासी और जनपदनिवासी लोगोंके दुष्ट अर्थात् अपने विरोधी या अन्यायवृत्ति होजानेपर, विजेतासे अपने विश्वासके लिये अन्य भूमिकी याचना करे । अर्थात् ऐसी अवस्थामें वंशपरम्परागत भी अपनी भूमिकों छोड़कर, निवासके लिये दूसरी भूमि विजेतासे मागे ॥ ४३ ॥

दूष्यप्रदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत ॥ ४४ ॥ उचितां वा
मित्राद्भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४५ ॥

अथवा अन्य भूमिको न मांगता हुआही, दूष्योंके समान, उपोशुदण्डसे
उन दुष्ट अन्धाव्यवृत्ति गुरगोंका प्रतीकार करे ॥ ४४ ॥ यदि विजेता राजा, अपने
(विजितके) ही किसी मित्रसे ज़ीनकर, अनुकूल भूमि उसे देना चाहे, तो
उस भूमिकी कदापि लेना स्वीकार न करे ॥ ४५ ॥

मन्त्रिपुरोत्तसेनापतियुवराजानामन्यतममदृश्यमाने भर्तारि
पश्येत् ॥ ४६ ॥

और अपने मन्त्री, पुरोहित, सेनापति तथा युवराज इनमेंसे किसीकोभी
भर्ता (विजिता राजा) की उपस्थितिमें न देखे । (इसका अभिप्राय यही है कि
जिससे अपने नौकर, अर्भकका उपस्थितिन अपने आपको सेवककी अवस्थामें न
देखसके) अर्थात् अपने सेवक, अपनको जब देखे, तब राजाकी हैसियतमेंही देखे,
सेवकी नहीं) ॥ ४६ ॥

यथाशक्ति चोपकुर्यात् ॥ ४७ ॥ दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा
आशिषो वाचयेत् ॥ ४८ ॥ सर्वत्रात्मनिसर्गं गुणं ब्रूयात् ॥ ४९ ॥

तथा यथाशक्ति अपने मालिकका, समय २ पर मंत्र आदि देकर उपकार
करता रहे ॥ ४७ ॥ देवताओंके आराधन और माङ्गलिक कृत्योंके अवसरों पर,
अपने मालिकके लिये भागीर्षाण्योंका कहलवाये ॥ ४८ ॥ सयके सन्मुख, अपने
आपको स्वामीके समर्पण करनका तथा उसके गुणोंका फीसिन करे ॥ ४९ ॥

संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शङ्कितादिभिः ।

चर्तत दण्डोपनतो भर्तार्येणमवस्थित ॥ ५० ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे बलवता विरुद्धोपरोधहेतव दण्डोपनतवृत्त
पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥ आदित्तत्रयोदशशत ॥ ११३ ॥

इस प्रकार विजित राजा, अपने विजेता राजाकी सेवामें रहता हुआ,
उसके बलशाली अमात्य आदिके साथभी सदा अनुकूल वर्ताव रखे । तथाजो
विजिताके विरोधी, या जिनपर घट सन्देह करता हो, उनस सदा विरुद्ध होकर
ही रहे ॥ ५० ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पन्द्रहवा अध्याय समाप्त ।

चाहिये' इसको, 'समुत्पन्न' - रहते हैं। मूल सूत्रमें, अनन्तरप्रकृति=शत्रु-
प्रकृति=शत्रु, और एकान्तरप्रकृति=मित्रप्रकृति=मित्र कहे गये हैं।) ॥ ५ ॥

ग्रामारण्योपजीवित्रजयाणिकपथानुपालनमुज्झितापसृतापका-
रिणां चार्पणमिति सान्त्वमाचरेत् ॥ ६ ॥ भूमिद्रव्यकन्यादान-
ममयस्य चेति दानमाचरेत् ॥ ७ ॥

। गाय या जंगलमें रहनेवाली गाय भैंसों आदिकी, तथा जल और स्थल
के व्यापारी मार्गोंकी रक्षा करना, और दूसरे राजाके डरसे अपना अपना अप-
कार करके भागे हुए, तथा दूष्य अमात्य आदि भृत्य वर्गोंका अन्वेषण करके
देना, इत्यादि रूपसे दुर्बल राजाके साथ सामका प्रयोग करे ॥ ६ ॥ भूमि-
दान, द्रव्यदान, कन्या दान, तथा शत्रुओंको औरसे भय उपस्थित होनेपर
अभयदान देना, इस प्रकारसे दुर्बल राजाके सम्बन्धमें दान रूप उपायका
प्रयोग करे ॥ ७ ॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण कोशदण्ड-
भूमिदाययाधनमिति भेदमाचरेत् ॥ ८ ॥

सामन्त, आटविक, उस (यातव्य शत्रु) के अपने कुलमें उत्पन्न हुए २
किसी सम्बन्धी, तथा किसी नजरबन्द किये हुए यातव्यके पुत्र, इनमेंसे
किसी एकको अपने अधीन करके, उसके द्वारा कोश, सेना, भूमि तथा अपने
दायभागकी याचना करवाकर, यलवान् राजा और उसके सामन्त आदिमें भेद
बलवा देवे। सातव्य यह है, कि विजिगीषुके बहकानेसे, सामन्त आदि, यलवान्
राजासे कोश आदिकी याचना करें, उनके न देनेपर, विजिगीषु उनमें भेदरूप
उपायका प्रयोग करे ॥ ८ ॥

। प्रकाशकूटतूर्ण्युद्धदुर्गलम्भोपायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमा-
चरेत् ॥ ९ ॥

। इसी प्रकार प्रकाशयुद्ध (देश और कालकी सूचनाको देकर किया
जानेवाला युद्ध), कूट युद्ध (देश कालकी सूचनाके बिनाही, किये जानेवाला
युद्ध), और तूर्ण्युद्ध (छिपे तौरपर गूढ़रूप आदिके द्वारा शत्रुका मरवा देना)
इन ३ प्रकारके युद्धोंके द्वारा, तथा दुर्गलम्भोपाय (१३ अधि०) अधिकरणमें
बतायेहुए विषदान आदि उपायोंके द्वारा शत्रुके वनामें करना चाहिये। यही
दण्डरूप उपायके प्रयोगका प्रकार है ॥ ९ ॥

। एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत् ॥ १० ॥ स्वप्रभा-
वतः कोशोपकारिणः प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः ॥ ११ ॥

इस प्रकार उक्त उपायोंके द्वारा अपने अधीन हुए राजाओंमेंसे उसही तथा अपनी सेनाका उपकार करनेवाले पुरुषोंको सनासम्बन्धी कार्योंपर नियुक्त किया जाय ॥ १० ॥ इसी प्रकार मनुशक्तियुक्त अर्थात् कोश सम्पन्न, कोश देकर उसका उपकार करनेवाले पुरुषोंका काश सम्बन्धी कार्योंपर, तथा बुद्धिमान् मन्त्रशक्तियुक्त भूमि देकर उसका वृद्धि करनेवाले पुरुषोंको भूमि सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त किया जाय । जा कि इनकी उचित व्यवस्था करसके ॥ ११ ॥

तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसंजातेन रत्नसारकुप्येन द्रव्यहस्ति-
वनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्द्रव्यं उपकरोति तच्चित्रभोगम्
॥ १२ ॥

इण्ड आदि उपायोंके द्वारा चशम किये हुए मिश्रभूत राजाओंमेंसे, जो राजा यडे २ धाजारे, यावा तथा सुवर्ण आदिके उत्पत्ति स्थानोंसे बड़े हुए, मणि मुक्ता आदिरत्न, चन्दन आदि सारद्रव्य, शख आदि फलद्रव्य तथा वृत्र आदि द्रव्योंको देकर, अथवा लकड़ियोंके जगल, हाथियाक जगल तथा गाय आदि पशुओंसे, बनावे या उत्पन्न हुए रथ आदि यानों तथा हाथी आदि वाहनोंका देकर, विजिगीषुका अत्यन्त उपकार करता है । यह मित्र 'चित्रभोग' कहा जाता है । क्योंकि उससे तरह तरहके भोगोंकी प्राप्ति होती रहती है ॥ १२ ॥

यद्दण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगम् ॥ १३ ॥

यद्दण्डकोशभूमीरुपकरोति तत्सर्वभोगम् ॥ १४ ॥

जो मित्र राजा सेना और कोशके द्वारा विजिगीषुका महान उपकार करता है, यह 'महाभोग' कहाता है ॥ १३ ॥ तथा जो राजा, सेना कोश और भूमि इन सब चीजोंको देकर विजिगीषुका महान उपकार करता है, यह 'सर्व भोग' कहाजाता है ॥ १४ ॥

यदामित्रमेकतः प्रतिकरोति तदेकतोभोगि ॥ १५ ॥

अर्थ देकर उपकार करनेवाले मित्रोंका निरूपण करके, अब अनर्थका निवारण करके उपकार करनेवाले मित्रोंको बताते हैं — उनमेंसे जो मित्र राजा, एकही शत्रुका प्रतिकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, यह 'एकतो भोगी' कहाता है ॥ १५ ॥

यदमित्रमासारं चोपकरोति तदुभयतोभोगि ॥ १६ ॥ यद-

मित्रासारप्रतिवेशाटविकान्सर्वतः प्रतिकरोति तत्सर्वतोभोगि ॥ १७ ॥

जो मित्र राजा, शत्रु और आसार अर्थात् शत्रुमित्र (शत्रुका मित्र) इन

१. दोनोंका प्रतीकार करके विजिगांपुका उपकार करता है, वह ' उभयतोभोगी ' कहाता है ॥१६॥ तथा जो मिथराजा, शत्रु, शत्रुमित्र, प्रतिवेश (पड़ोसका शत्रु-राजा) तथा आटविक इन सबका प्रताकार करके विजिगांपुका उपकार करता है, वह ' सधेतो भोगी ' कहाजाता है ॥ १७ ॥

१००) पार्थिवग्राह्याटविकः शत्रुमुख्यः शत्रुर्वा भूमिदानसाध्यः
"काथिदासाद्येत ॥ १८ ॥ निर्गुणया भूम्येनमुपग्राहयेत् ॥ १९ ॥

अप्रतिसंबद्धया दुर्गस्थम् ॥ २० ॥

यदि पार्थिवग्राह, आटविक, शत्रुके अमात्य आदि मुख्यपुरुष, अथवा शत्रुको, भूमि देनेपर, अपने अर्थान् दोनोंके लिये तैयार हों, तो ॥ १८ ॥ गुण रहित भूमि देकरही उन्हें अपने अर्थान् कर ॥ १९ ॥ यदि पार्थिवग्राह आदि, दुर्गमें रहनेवाला हो, तो उसे दुर्गसे किसी तरहका सम्बन्ध न रखने चालो । दूरदेशकी भूमि देकर वशमें करे ॥ २० ॥

निरुपजीव्ययाटविकम् ॥ २१ ॥ प्रत्यादियया तत्कुलीनम्

॥ २२ ॥ शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम् ॥ २३ ॥

आटविकको, जीवरक योग्य, धान्य आदि जिसमें उत्पन्न न होसके, ऐसी भूमि देकर वशमें करे ॥ २१ ॥ शत्रुकुलमें उत्पन्न हुए व्यक्तिको ऐसी भूमि देवे, जो फिर वापस अपनेही पास लौटाई जासके, अर्थात् जिसका फिर स्वयं 'अपहरण' करे सके ॥ २२ ॥ नजरबन्द किये हुए शत्रुके पुत्र आदिको, पहिले कभी शत्रुसे छीनी हुई भूमिको ही देवे ॥ २३ ॥

१. नित्यामित्रया श्रेणीबलम् ॥ २४ ॥ बलवत्सामन्तया संहत-
बलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां युद्धे प्रतिलोमम् ॥ २६ ॥

श्रेणीबल (नेता रहित मनुष्योंका समूह=सेनाविशेष) को ऐसी भूमि देवे, जिसमें घोर आटविक आदि, निस्वही उपद्रव करते रहते हों ॥ २४ ॥ संहतबल (नेताके सहित मनुष्योंका समूह=सेनाविशेष) को ऐसी भूमि देवे, जिसका सामन्त (समीप लगे हुए देसका राजा) अत्यधिक बलवान् हो ॥२५॥ युद्धमें कुटिलता करनेवाले अर्थात् कूटयुद्ध करनेवाले शत्रुको, ऐसी भूमि देवे, जहाँ घोर और आटविक आदिका भी सदाही उपद्रव रहता हो, तथा सामन्त भी जिसका अधिक बलवान् हो ॥ २६ ॥

१०१) अर्लब्धव्यायामयोत्साहिनम् ॥ २७ ॥ शून्ययारिपक्षीयम्
॥ २८ ॥ क्रशितयापिवाहितम् ॥ २९ ॥

१०१) दस्ताहशील शत्रु आदिको ऐसी भूमि देवे, जिसमें सेनाओंकी कवायत

आदिके लिये योग्य स्थान न हो ॥ २७ ॥ शत्रुपक्षके किसी पुरपको शून्यभूमि ही देवे । अर्थात् जिससे किसी तरहका फल प्राप्त न होसके ऐसा भूमि देकर उसे वशमें करे ॥ २८ ॥ सन्धि करके फिर उमे तौददने वाले राजाको ऐसी भूमि देवे, जिसमें सदाही शत्रु सेना और आटविक आदिका उपद्रव बना रहता हो ॥ २९ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम् ॥ ३० ॥ अनपाश्रयया प्रत्यपसृतम् ॥ ३१ ॥ परेणानाधिवास्यया स्वयमेव भर्तारमुपग्राहयेत् ॥ ३२ ॥

एकवार शत्रुसे मिलकर जो फिर अपनेसे मिलना चाहे, उमे ऐसी भूमि देकर वशमें करे, जिस भूमिमें नई बसावट करनेके लिये अत्यधिक पुरपोंका क्षय और धनका व्यय होजाय ॥ ३० ॥ शत्रुके डरसे, अपने देशसे भागे हुए पुरपको, ऐसी भूमि देकर वशमें करे, जो कि दुर्ग आदिसं संपथा रहित हो ॥ ३१ ॥ जिस भूमिपर, उसके असली मालिकके सिवाय कोई नहीं रह सकता, ऐसी भूमि उस व्यक्तिको देकर वशमें करे, जो कि इस भूमिका पुराना, असली मालिक हो ॥ ३२ ॥ ✓

तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत् ॥ ३३ ॥ प्रतिलोममुपाशुना साधयेत् ॥ ३४ ॥

दण्ड आदि उपायोंके द्वारा अपन वशमें किये हुए राजाओंमेंसे, जो राजा अपना (विजेताका) महान उपकार करता हो, तथा उसकी ओरसे अपने चित्तमें किसी तरहका विकार न रखता हो, उसके साथ ऐसा व्यवहार रखे जिससे कि उसे कभी किसी प्रकारकी हानि न हो ॥ ३३ ॥ परन्तु जो अपनेसे प्रतिकूल अशरण करे, उसे उपांशुदण्डसे (छिपे तौरपर उचित दण्ड आदि देकर) सीधा करे । क्योंकि प्रकट दण्ड देनेसे अन्य वशीभूत राजाओंमें उद्वेग फैलानेका भय रहता है ॥ ३४ ॥

उपकारिणमुकारशक्त्या तोषयेत् ॥ ३५ ॥ प्रयामतश्चार्थमार्ना कुर्यात् ॥ ३६ ॥ व्यसनेषु चानुग्रहं स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिनिधानं च कुर्यात् ॥ ३७ ॥

अपना उपकार करनेवाले राजाको अपनी शक्तिके अनुसार सदा सन्तुष्ट रखे ॥ ३५ ॥ और उनके परिश्रमके अनुसार उन्हें धन देवे, तथा उनका अच्छीतरह सरकार करे ॥ ३६ ॥ उनके ऊपर किसी तरहकी कोई विपत्ति आनेपर, साम्प्रना आदि देकर सदा उनपर अनुग्रह करता रहे । और यदि वे स्वय ही अर्थात् विना मुलायेही अपने धनी आजाब, तो उनके साथ अच्छीतरह प्रेम

पूर्वक मिले मिलावे । परन्तु उनकी ओरसे यदि किसी घुगर्हकी आशङ्का हो तो उससे अपनी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहे ॥ ३७ ॥

परिभवापघातकुत्सातिनादांश्चैषु न प्रयुञ्जीत ॥३८॥ दत्त्वा
चाभयं पितेवानुगृह्णीयात् ॥ ३९ ॥ यश्चास्यापकुर्यात्तदोपमभिवि-
ख्याप्य प्रकाशमेनं घातेयत् ॥ ४० ॥

तथा इन दण्डोपनत (दण्ड आदि उपायोंसे अपने अधीन किये हुए) राजाओंके विषयमें, तिरस्कार, कटुवाक्य, निन्दा या अतिस्तुति आदिका प्रयोग कभी न करे ॥ ३८ ॥ और उन्हें अभय देकर, पुत्रोंपर पिताके समान, सदा उनपर अनुग्रह करता रहे ॥ ३९ ॥ परन्तु उनमेंसे जो इसका (विजेताका) अपकार करे, उसके उस अपराधको सर्वप्रकाशित करके प्रकटरूपमें उमका वध करता देवे ॥ ४० ॥

परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकप्रचष्टेत ॥ ४१ ॥ न च हृतस्य
भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत ॥ ४२ ॥ कुल्यानप्यस्य स्वपु पात्रेषु
स्थापयेत् ॥ ४३ ॥

यदि इस बातका भय हो, कि प्रकट दण्ड देनेसे अन्य दण्डोपनत राजा उद्विग्न हो उठेंगे, तो दाण्डकर्मिक प्रकरणम (८२ प्रकरण, बताये हुए उपायोंका प्रयोग करे । अर्थात् ऐसा अवस्थामें उपायदण्डका प्रयोग करे ॥ ४१ ॥ तथा इसप्रकार मारे हुए दण्डोपनत राजाके भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्रियों आदिपर क्रमाधिकार न करे । अर्थात् उनका स्वयं अपहरण न करे ॥ ४२ ॥ किन्तु इनको, और इनके पक्षके अन्य व्यक्तियोंको भी, उनके अपने उचित राज्य स्थानोंपर नियुक्त करदे । अर्थात् उनकी योग्यताके अनुसार अवश्य ही राज्यके भिन्न २ अधिकार पदोंपर उनकी स्थापना करे ॥ ४३ ॥

कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत् ॥ ४४ ॥ एवमस्य
दण्डोपनताः पुत्रपौत्राननुवर्तन्ते ॥ ४५ ॥

यदि किसी राजाको वधमें करनेके लिये किये जाने वाले युद्धमें वह राजा मारा जाये, तो उसके पुत्रकोही राज्याधिकार पर स्थापित करे । अर्थात् उसेही राजा बनावे ॥ ४४ ॥ विजिगीषुके इस प्रकार आचरण करनेसे, दण्डोपनत राजा न केवल विजिगीषुके ही अधीन रहते हैं, किन्तु उसके पुत्र और पौत्र आदिके भी अनुगामी बने रहते हैं ॥ ४५ ॥

यस्तूपनतान्हत्वा वध्ना वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत
तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोत्तिष्ठते ॥ ४६ ॥

परन्तु जो विजिगीषु, दण्डोपनत राजाओंका मारकर अथवा कैदमें डालकर, उनके भूमि, द्रव्य, पुत्र आर स्त्री आदिको अपने अधिकारमें कर लेता है, उससे कुपित हुआ राज मण्डल (चारह प्रकारके राजाओंमेंसे विजिगीषुको छोड़कर अन्य ग्यारह प्रकारके राजा) उसका (विजिगीषुका) विध्वंस करनेके लिये तैयार होजाता है । (चारह प्रकारके राजा ये हैं — विजिगीषु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पार्थिवग्राह, आक्रन्द, पापिग्राहासार, आक्रन्दासार, मध्यम, और उदासीन ।, देखो—अधि० ६, अध्याय २) ॥ ४६ ॥

ये चास्यामात्याः स्वभूमिष्वायत्तास्ते चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते ॥ ४७ ॥ स्वयं राज्यं प्राणान्वास्यामिमन्यन्ते ॥ ४८ ॥

और जो विजिगीषुके अमात्य, अपने १ अधिकार पदोंपर कार्य करते हुए रहते हैं, वे भी इससे कुपित होकर, इसको दयामके लिये तैयार हुए २ राजमण्डलके साथ मिलजाते हैं ॥ ४७ ॥ अथवा स्वयही इसके राज्य या प्राणों पर अपना अधिकार करलेते हैं । अर्थात् इसके राज्यको अपहरण करलेने हैं, अथवा इसे मारडालते हैं ॥ ४८ ॥

स्वभूमिषु च राजानः तस्मात्साम्प्रानुपालिताः ।

भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ॥ ४९ ॥

इति पाद्गुण्य सप्तमे अधिकरणे दण्डोपनायिभूत षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

आवितशत्रुर्दशत ॥ ११४ ॥

इस लिये जो राजा, अपनी २ भूमियोंमें राज्यका उपभोग करते रहते हैं, और विजिगीषु सामके द्वारा ही उनकी रक्षा करता है, वे विजिगीषुके अनुकूल रहते हुए, उसके पुत्र पौत्र आदिके भी अनुगामी बने रहते हैं ॥ ४९ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सोलहवा अध्याय समाप्त

सत्रहवां अध्याय

१२२, १२३ प्रकरण

सन्धिका दृढ़ करना; और विश्वासके लिये, रक्खे

हुए राजपुत्र आदिका छुड़ाना ।

शमः संधिः समाधिरित्येकोऽर्थः ॥ १ ॥ राजां मिथासो-

पगमः शमः संधिः समाधिरिति ॥ २ ॥

दाम, सन्धि, और समाधि ये तीनों शब्द एक ही अर्थको कहते हैं ॥ १ ॥ और वह है, राजाओंके परस्पर विश्वास दब होजानेका कारण। अर्थात् सत्य, शपथ और जामिन, तथा राजपुत्र आदिका लेना, इत्यादि कारणोंसे, राजाओंको जो परस्पर दब विश्वास होजाता है, वही दाम, सन्धि या समाधि कहाता है ॥ २ ॥

सत्यं शपथो वा चलः संधि ॥ ३ ॥ प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा
स्यावरः इत्याचार्याः ॥ ४ ॥

आचार्योंका मत है, कि जो सन्धि ' यह ऐसा ही होगा, अन्यथा नहीं होगा ' इस प्रकार सत्यता पूर्वक वचन मात्रमेही की जाती है, अपना अपने पूव्य पिता आदिके पैर या सुवर्ण आदिको छूकर शपथ पूर्वक कीजाती है, वह सन्धि स्थिर नहीं होता ॥ ३ ॥ और जो सन्धि प्रतिभू (जामिन) के द्वारा, और विश्वासके लिय राजपुत्र आदिको लेकर कीजाती है, वह स्यावर अर्थात् स्थायी— अत्यन्त विश्वसनीय होती है ॥ ४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५ ॥ सत्यं वा शपथो वा परत्रेह च स्या-
वरः संधिः ॥ ६ ॥

परन्तु कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ ५ ॥ यह कहता है कि जो सन्धि सत्यता पूर्वक और शपथ पूर्वक कीजाती है, वह अत्यन्त विश्वासके योग्य तथा स्थायी रहती है। क्योंकि उसमें सन्धि करनेवालोंको इस बातका भय रहता है कि यदि इस सन्धिके हम उल्लंघन करेंगे, तो परलोकमें नरकमें पड़ेंगे और इस लोकमें शत्रु कहलाकर बदनाम होंगे ॥ ६ ॥

इदार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः ॥ ७ ॥

परन्तु प्रतिभू और प्रतिग्रह (राजपुत्र आदिका लेना) पूर्वक की हुई सन्धिको तोड़नेपर केवल इसी लोकमें कुछ थोड़ाबहुत अनर्थ होसकता है, परलोकमें नहीं होसकता; इस लिये इसके तोड़नेमें भय कम रहता है। तथा प्रतिभू भी उसी समय विश्वसनीय होता है जबकि यह बलवान् हो, और प्रतिग्रह भी उसी समय विश्वसनीय समझा जाता है, जब कि वह देनेवालेका प्रेममात्र हो ॥ ७ ॥

संहिताः स्म इति सत्यसधाः पूर्वे राजानः सत्येन सदाधिरे
॥ ८ ॥ तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्क-
न्धाश्वपृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्नधीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेमिरे ॥ ९ ॥
हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं १ः शपथमतिक्रामेदिति ॥ १० ॥

सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले पहिले राजा लोग 'हम सन्धि करते हैं' इस प्रकार सत्यके द्वाराही दृढसन्धि करलेते थे ॥ ८ ॥ सत्यका अतिप्रमण करनेपर अग्नि, जल, भूमि, मकान, हाथीका कन्धा, घोड़ेकी पीठ, रथमें बैठनेकी जगह, हथियार, रज, धान आदिके बीज, चन्दन आदि गन्ध, घृत आदि रस, सुवर्ण और हिरण्य इन चीजोंका स्पर्श करते थे ॥ ९ ॥ और 'ये चीजें उस व्यक्तिको नष्ट करदें या त्यागदें, जो इस प्रतिज्ञाका अतिप्रमण करे' इस प्रकार शपथ-पूर्वक सन्धि करलेते थे ॥ १० ॥

शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यवन्धः
प्रतिभूः ॥ ११ ॥ तस्मिन्यः परावग्रहसमर्थान्प्रातिभुवो गृह्णाति
सो अतिसंधत्ते ॥ १२ ॥ विपरीतोऽतिसंधीयते ॥ १३ ॥

शपथका भी अति प्रमण करदेनेपर बड़े १ तपस्वी अथवा प्रामादिके मुख्य पुरुषोंको प्रतिभू बनाकर सन्धि करना उचित है । सन्धिके दृढ रखनेका उत्तरदायित्व इन्हीं पुरुषोंपर रहता है ॥ ११ ॥ प्रतिभू बनाकर सन्धि करने वाले राजाओंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो कि प्रतिज्ञा या सन्धि को तोड़नेवाले शत्रुआके निग्रह अर्थात् दमन करनेमें समर्थ पुरुषको अपना प्रतिभू बनाता है ॥ १२ ॥ इससे दूसरा राजा, अवश्यही अपने शत्रुसे घोरता खाता है ॥ १३ ॥

बन्धुमुख्यग्रहः प्रतिग्रहः ॥ १४ ॥ तस्मिन्यो दूष्यादूष्या-
मात्यं दूष्यापत्यं वा ददाति सो अतिसंधत्ते ॥ १५ ॥ विपरीतो
ऽतिसंधीयते ॥ १६ ॥

दूसरेके बचनपर विश्वासके लिये, उससे उसके बन्धु बांधव या मुख्य पुरुषोंको लेलेना प्रतिग्रह कहाता है ॥ १४ ॥ इसप्रकार प्रतिग्रह (बन्धु बांधवको देने) के द्वारा सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो अपने दूष्य अमात्य या दूष्य पुत्रादिको देदेता है ॥ १५ ॥ और दूसरा राजा (दूष्य अमात्य आदिको लेनेवाला) ऐसी अवस्थामें अवश्यही अपने शत्रुसे घोरता खाता है ॥ १६ ॥

प्रतिग्रहग्रहणविश्वस्तस्य हि परः छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति
॥ १७ ॥

क्योंकि लेनेवाला तो यह समझता है कि मेरे पास इसके अमात्य आदि हैं, यह मेरे विश्व कुठ नहीं कर सकता, इसलिये उसपर विश्वास करता है; परन्तु दूसरा देनेवाला, उसकी निर्बलताओंको दृढ़ता हुआ, दोषोंके सिलजाने

पर, दियेहुए दृष्ट्य अमास्य आदिकी कुठ अपेक्षा न करता हुआ उसपर प्रहार अर्थात् क्रमण कर देता है ॥ १७ ॥

अपत्यसमाधौ तु कन्यापुत्रदाने ददत्तु कन्यामतिसंधत्ते
॥ १८ ॥ कन्या ह्यदायादा परेषामेवार्थाय क्लेशाय च विपरीतः
पुत्रः ॥ १९ ॥

पुत्र आदिको देकर सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे, वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो कि पुत्र और कन्या दोनोंमेंसे किसी एकको दिये जानेके प्रसंगमें कन्याको देदेता है ॥ १८ ॥ क्योंकि कन्या दायकी अधिकारिणी नहीं होती, तथा वह दूसरा होके उपभोगके लिये होता है। और पिताके लिये तो धनादि व्ययके द्वारा दुःखदेनेवाली ही होती है। परन्तु पुत्र ऐसा नहीं होता, वह दायभागी, पिताके अपने लिये और उसके क्लेशको दूर करनेके लिये होता है ॥ १९ ॥

पुत्रयोरपि जात्यं शूरं प्राज्ञं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति सो
ऽतिसंधीयते ॥ २० ॥ विपरीतो ऽतिसंधत्ते ॥ २१ ॥ जा-
त्यादजात्यो हि ह्यदायादसंतानत्वादाघातुं श्रेयान् ॥ २२ ॥

पुत्रोंको देकर सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे, वह राजा अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है, जो कि अपने कुलीन, बुद्धिमान्, शूर, अस्त्रादि चला-नेमें चतुर पुत्रको, अथवा अकेलेही पुत्रको देदेता है ॥ २० ॥ इससे दूसरा राजा (अकुलीन=दासी आदिसे उत्पन्न, बुद्धिहीन पुत्रादिको देनेवाला) अवश्य ही फायदेमें रहता है ॥ २१ ॥ इसलिये समान जातीय पुत्रकी अपेक्षा, अस-मान जातीय पुत्रको देदेनाही अच्छा है, क्योंकि उसकी संतान सम्पत्तिकी दाय-भागी नहीं होसकती ॥ २२ ॥

प्राज्ञादप्राज्ञो मन्त्रशक्तिलोपात् ॥ २३ ॥ शूरादशूर उत्साह-
शक्तिलोपात् ॥ २४ ॥ कृतास्त्रादकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसंपल्लोपात् ॥ २५ ॥
एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात् ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् पुत्रकी अपेक्षा बुद्धिहीन पुत्रका देदेना इसलिये अच्छा होता है कि उसमें अपनी मन्त्रशक्ति कुछ नहीं होती। अतएव अपनी मन्त्रणासे श-त्रुको कुछ लाभ नहीं पहुँचा सक्ता ॥ २३ ॥ शूर पुत्रकी अपेक्षा भीरु पुत्रका देदेना इसीलिये अच्छा है कि उसमें उत्साह शक्ति बिल्कुल नहीं होती। वह शत्रुका लाभ या अपनी हानि कुछ नहीं कर सकता ॥ २४ ॥ अस्त्रादि चलानेमें

पुत्रकी अपेक्षा इससे विपरीत पुत्रका देवेना इसीलिये अच्छा है कि वह आक्रमण करनेकी शक्तिसे सर्वथा रहित होता है ॥ २५ ॥ एकलैते पुत्रकी अपेक्षा अनेक पुत्रोंमेंसे एकको देवेना इसीलिये अच्छा है, कि उसके विनाभी काम चल सकता है ॥ २६ ॥

जात्यप्राज्ञयोरजात्यमप्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तते ॥२७॥ प्राज्ञ-
मजात्यं मन्त्राधिकारः ॥२८॥ मन्त्राधिकारेऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यः
प्राज्ञमतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

जात्य (समान जातीय=कुलीन) और प्राज्ञ (बुद्धिमान्) पुत्रोंमेंसे, जात्य पर प्रशाहीन पुत्रका ऐश्वर्य प्रकृति अनुगमन करती है। अर्थात् बुद्धिहीन होने पर भी समान जातीय होनेसे सम्पूर्ण राज्य सम्पत्तिका वही उत्तराधिकारी होता है, इसीलिये राज्यका दायभागी होना उसका विशेष गुण है ॥ २७ ॥ और जो असमान जातीय, पर बुद्धिमान् है, मन्त्रशक्ति उसका अनुगमन करती है। अर्थात् उसके राज्याधिकारी न होनेपर भी मन्त्रशक्तिसे युक्त होना उसका एक विशेष गुण है ॥ २८ ॥ इन दोनों पुत्रोंमेंसे, मन्त्रशक्तिसे युक्त होनेपर भी अजात्य प्राज्ञकी अपेक्षा जात्य अप्राज्ञ पुत्रही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि वह राज्याधिकारी होकर विचर-स्थातोपर वृद्ध अनुभवी बुद्धिमान् पुरुषको नियुक्त करके अपनी उस कर्माको पूरा कर सकता है ॥ २९ ॥

प्राज्ञशूरयो प्राज्ञमशूरं मतिकर्मणां योगोऽनुवर्तते ॥ ३० ॥
शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः ॥ ३१ ॥ विक्रमाधिकारेऽपि हस्ति-
नमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसंधत्ते ॥ ३२ ॥

इसीप्रकार बुद्धिमान् और शूर पुत्रोंमेंसे, बुद्धिमान्, शूरसाहीन पुत्रका, बुद्धिपूर्वक किये कार्य अनुगमन करते हैं। अर्थात् वह बुद्धिपूर्वक कार्योंको कर सकता है ॥ ३० ॥ और बुद्धिहीन शूर पुत्र पराक्रमके कार्योंको कर सकता है ॥ ३१ ॥ इन दोनों पुत्रोंमेंसे, शूर किन्तु बुद्धिहीन पुत्रके पराक्रमी होनेपर भी उसकी अपेक्षा, पराक्रमहीन बुद्धिमान् पुत्रही श्रेष्ठ होता है। जैसेएक बुद्धिमान् शिक्षारी, शक्तिशाली भी हाथीको अपने वशमें करलेता है। इसीप्रकार बुद्धिमान् पुत्र अपने बुद्धिबलसे, शूरको भी अपने वशमें कर सकता है ॥ ३२ ॥

शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते ॥३३॥
कृतास्त्रमशूरं लक्षलम्भाधिकारः ॥ ३४ ॥ लक्षलम्भाधिकारेऽपि
स्वैर्यप्रतिपत्त्यसंमोहेः शूरः कृतास्त्रमतिसंधत्ते ॥ ३५ ॥

शूर और कृतास्र (शस्त्रास्र चलानेमें अत्यन्त चतुर) पुत्रोंमेंसे, शस्त्रादि न चला सकनेवाला किन्तु शूरपुत्र, केवल पराक्रमके कार्योंको अच्छीतरह कर सकता है ॥ ३३ ॥ और शूरताहीन पर शस्त्रादि चलानेमें चतुर पुत्र, अपने लक्ष्यको अच्छीतरह भेदन करनेकी शक्ति रखता है ॥ ३४ ॥ इन दोनोंमेंसे, लक्ष्यको ठीक भेदन करनेवाले पराक्रमहीन पुत्रकी अपेक्षा, पराक्रमी पुत्रही श्रेष्ठ होता है । क्योंकि वह अवसर आनेपर, अपनी स्थिरता, विपत्तिके समय भी तत्क्षण प्रतीकारके उपायोंका कर डालना, तथा अपनी रक्षा करनेमें सदा सावधान रहना, इत्यादि गुणोंसे कृतास्रको भी अपने आधीन कर सकता है ॥ ३५ ॥

वहैकपुत्रयोर्विहुपुत्र एकं दत्त्वा शेषवृत्तिस्तन्व्य संधिमतिक्रामति नेतरः ॥ ३६ ॥

एक पुत्र और बहुत पुत्रोंमेंसे, बहुत पुत्रोंका होनाही अच्छा है । क्योंकि सन्धिकी दृढ़ता दिखानेके लिये, उनमेंसे एक पुत्रको देकर भी, शेष पुत्रोंके भारोंसेपर अभिमान रखता हुआ राजा, अवसर आनेपर की हुई सन्धिको तोड़ सकता है, परन्तु जिसके एकही पुत्र हो, वह ऐसा नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥

पुत्रसर्वस्वदाने संधिश्रेत्पुत्रफलतो विशेषः ॥ ३७ ॥ समफलयोः शक्तप्रजननतो विशेषः ॥ ३८ ॥ शक्तप्रजननयोरप्युपस्थितप्रजननतो विशेषः ॥ ३९ ॥

यदि सन्धि करनेवाले दोनों राजाओंके एक एकही पुत्र हो, और उनके दे देनेपर ही सन्धि रूढ़ होती हो, तो दोनोंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जिसके पुत्रका भी पुत्र होगया हो । क्योंकि सन्धि दृढ़नेपर पुत्रके नष्ट होने पर भी पौत्र राज्यसिंहासनपर बैठ सकता है ॥ ३७ ॥ यदि सन्धि करनेवाले दोनोंही राजाओंके पुत्रोंके पुत्र विद्यमान हों, तो उनमेंसे वही विशेष है, जिसका पुत्र अभी युवा है, अर्थात् और पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता है ॥ ३८ ॥ यदि दोनोंही अन्य पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखते हों, तो उनमेंसे वही विशेष है, जोकि आसन्नतर भविष्यमें (जल्दीसे जल्दी) पुत्र उत्पन्न कर सकता हो । परन्तु यथाशक्ति पुत्रको देना नहीं चाहिए ॥ ३९ ॥

शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमादध्यान्नचैकपुत्रमिति ॥ ४० ॥

पुत्रोत्पादनकी अथवा राज्यभारको वहन करनेकी, शक्ति रखनेवाले एक ही पुत्रके होनेपर, स्वयं पुत्रोत्पादन शक्तिसे हीन हुए २ अपने आपको ही सन्धिकी दृढ़ताके लिये देदेवे । उपर्युक्त गुणोंसे युक्त एकहीते पुत्रको कभी न देवे ।

यहांतक सन्धिकर्म अर्थात् सन्धिके दृढ़ करनेके उपायोंका निरूपण किया गया ॥ ४० ॥

अभ्युचीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत् ॥४१॥ कुमारसन्नाः
सत्त्रिणः कारुशिलिप्यञ्जनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरङ्गया रात्रा-
बुपस्त्रानयित्वा कुमारमपहरेयुः ॥ ४२ ॥

सन्धिके कारण अच्छी तरह अपने शक्ति बढ़ जानेपर, विश्वासके लिये दूसरे राजाके यहां रखे हुए राजपुत्र आदिको वहांसे मुक्त करालेवे ॥ ४१ ॥ उसको (राजपुत्र आदिको) वहांसे छुड़ानेके निम्नालिखित उपाय समझने चाहिये; राजकुमारके पास रहनेवाले अपने गूढ़ पुरूप, बड़े लुहार सुनार या मिस्त्री आदिके घेयमें रहनेवाले अपने अन्य गुप्त पुरुष, वहांपर अपने २ कायोंको करते हुएही, राज कुमारके निवासके समीपसे एक सुरङ्ग खोदकर रात्रिमें उसही मार्गसे उसे लेकर भाग आवें ॥ ४२ ॥

नटनर्तकगायकवादकयागजीवनकुशीलवप्लवकभौभिका वा पूर्व-
प्राणिहिताः परमुपतिष्ठेरन् ॥ ४३ ॥ ते कुमारं परम्परयोपतिष्ठेरन्
॥ ४४ ॥

अथवा नट (अभिनय करनेवाला), नर्तक (नाचनेवाला), गायक (गाने वाला), वादक (बजानेवाला), वाग्जोवन (कथा आदि कहकर अपनी जीविका करनेवाला), कुशीलव (श्लोक पाठक अथवा स्तुतिपाठक), प्लवक (तलव र आदिके खेल दिखानेवाला), भौभिक (आकाशमें उड़नेवाला), ये भाठ प्रकारके घेयोंमें विजिगीषुके द्वारा भेजे हुए गुप्तचर पहिले शत्रु राजाके पास आवें ॥ ४३ ॥ फिर वे धीरे २ वही रहते हुए कुमार तक पहुंचें ॥ ४४ ॥

तेपामनियतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत् ॥ ४५ ॥
ततस्तद्व्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ४६ ॥ तेन रूपार्जीवा
भार्याव्यञ्जनाथ व्याख्याताः ॥ ४७ ॥

वह राजकुमार राजाकी अनुमतिसे, अपनी इच्छानुसार घाड़े जिससमय अपने घरमें उभ (नट आदि) को आनेजाने भीर उठरनेकी व्यवस्था करा लेवे ॥४५॥ फिर उनहींमें से किमीका वेश बनाकर, रात्रिमें वहांसे निकल आवे। और उनके साथ २ हो अपने देशको चलानावे ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार वेश्या अथवा भार्याके वेशमें गये हुए गुप्त पुरूपभी, राजकुमारको वहांसे छुड़ा खानेका उपाय करें ॥ ४७ ॥

तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत् ॥ ४८ ॥ सूत्रा-
रालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्य
वस्त्रभाण्डफेलाशयनासनसंभोगैर्निर्हिष्येत् ॥ ४९ ॥

अथवा नट नर्तक आदिके राजों या आभरणों (अभिनयके समय सजने
के लिये वस्त्र आभूषण आदि) की पेटोंको उठाकर उनके साथही बाहर निकल
जावे ॥ ४८ ॥ अथवा सूद (रसोईया), आरालिक (मिष्ट आदि बनानेवाला),
स्नापक (स्नान आदि करानेवाला), संवाहक (शरीरको दबानेवाला), आस्तरक
(बिस्तर आदि बिछानेवाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (वस्त्र आदि धारण
करानेवाला), और उदक परिचारक (जल आदि देनेवाला), इन लोगोंके द्वारा
जब कोई वस्तु (अक्षय आदि, वस्त्र आभूषणों की पेटों या बिस्तर आदि अपने
काममें आनेवाली चीज बाहर लेजाई जावे, तब उसके साथ ही अवसर पाकर
राजकुमारभी बाहर निकल जावे ॥ ४९ ॥

परिचारकच्छदना वा किञ्चिदरूपवेलायामादाय निर्गच्छेत्
॥ ५० ॥ सुरङ्गमुखेन वा निशोपहारेण ॥ ५१ ॥ तोयाशये वा
वारुणं यौगमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

अथवा राजकुमार, नौकरके सहानेसे अन्धकारके समयमें कोई वस्तु
लेकर बाहर निकलजावे ॥ ५० ॥ अथवा रातमें भूतबली (भूतोंके उद्देश्यसे भेंट
आदि करना) आदि देनेका सहाना करके सुरङ्गके रास्तेसे बाहर निकल जावे
॥ ५१ ॥ अथवा गर्द, तालाब आदि किसी बड़े जलाशयमें धारुण यौगमा (जलके
भीतर बैठे रहनेवाले या यहां चलने फिरनेका उपाय विशेष) देखो:—(अधि०
१६, अध्याय १, सूत्र १३, १४) अनुष्ठान करके समयपर बाहर निकल
जावे ॥ ५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु समवचार-
येयुः ॥ ५३ ॥ दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणनिमित्तमारक्षिषु मदनयोग
युक्तमन्नपानं रसं वा प्रयुज्यापगच्छेत् ॥ ५४ ॥

अथवा व्यापारीके भेसमें रहनेवाले गुप्तपुरष, पकेटुष अथवा फल
आदिके व्यवहार (प्रयोग) से पहारदारों को विष देदेयें। अर्थात् राजकुमारपर
पहरा देनेवाले लोगोंको, गुप्तपुरष, अन्नआदिके द्वारा विष देदेवे। और जब वे
घेदोश होजायें, गुप्तपुरष राजकुमारको लेकर बाहर निकल जायें ॥ ५३ ॥ अथवा
प्रेषताकी भेंट श्राद्ध या व्रतिभोजन के निमित्तसे, घेदोश करमेवाली औपधियों

अथवा औपनिषदिक प्रकरणमें बतायाहुए उपायोंसे अपनी शकलको बिल्कुल बदलकर, या रोगीकासा भेस बनाकर या जंगली भाल कोल आदिका भेस बनाकर, राजकुमार चुपचाप रातमें बाहर निकल जावे ॥ ६१ ॥ अथवा राजकुमारको मुर्दोंकी शकलमें अपने कर्न्धोपर रखकर, गूदपुरूप बाहर ले जावे ॥ ६२ ॥ अथवा किसी मुर्दके पीछे २ स्त्रीका घेरा बनाकर, राजकुमार बाहर निकल जावे ॥ ६३ ॥

वनचरव्यजनाथैनमन्यतो यान्तमन्यतो ऽपदिशेयुः ॥६४॥
ततो ऽन्यतो गच्छेत् ॥ ६५ ॥ चक्रचराणां वा शकटवाटेरपग-
च्छेत् ॥ ६६ ॥

राजकुमारके बाहर निकल जानेपर, जब उसका अन्वेषण करनेवाले राजपुरूप धर उधर जावें, तो जंगलियोंके भेसमें रहनेवाले (राजकुमार पक्षके) गुप्तपुरूप, इन छुंढने वाले पुरूपोंको दूसराही रास्ता बतलावेवें । अर्थात् जिस रास्तेसे राजकुमार जा रहा हो उससे बिल्कुल उलटा रास्ता उन्हें बतलावेवें ॥६४॥ और राजकुमार, अन्वेषकोंको बतलाये हुए मार्गसे भिन्न मार्गके द्वाराही जावे ॥ ६५ ॥ अथवा गाड़ी चलानेवाले पुरूपोंकी गाड़ियोंके झुण्डके साथ २ ही जावे ॥ ६६ ॥

आसन्नं चानुपाते सत्त्वं वा गृहीयात् ॥ ६७ ॥ सत्त्राभावे
हिरण्यं रसविद्धं वा भक्षजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत् ॥ ६८ ॥
ततो ऽन्यतोऽपगच्छेत् ॥ ६९ ॥

यदि अपने छुंढनेवाले पुरूप, बहुतही समीप आजाये, तो कहीं घने जंगलमें छिप जावे ॥ ६७ ॥ यदि छिपनेके लिये कहीं घना जंगल न मिले, तो हिरण्य, अथवा विषयुक्त खाद्यवस्तु, रास्तेके दोनों ओर डालदेवे ॥ ६८ ॥ और फिर दूसरे किसी रास्तेसे निकल जावे ॥ ६९ ॥

गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमातिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ रस-
विद्धेन वा पथ्य (पाथेय) दानेन ॥ ७१ ॥

अथवा यदि छुंढनेवाले पुरूप इसको पकड़ लें, तो सामदान आदि उपायोंके द्वारा उसको धोखा देकर निकल जावे ॥ ७० ॥ अथवा विषयुक्त पाथेय (मार्गमें खानेके लिये लेजाया हुआ खाद्यपदार्थ) देकर उनको मार देवे, या मूर्च्छित करदेवे, और स्वयं वशीति निकलनामे ॥ ७१ ॥

वारुणयोगामिदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमामियुञ्जीत
पुत्रो मे त्वया हत इति ॥ ७२ ॥

पकटे जानेके डरसे छिपे हुए राजकुमारको भगालेजानेका एक यह भी उपाय है, कि पूर्वाक्त वारणयोग और अग्निदाहके अवसरोंपर, दूसरे किसी शरीरको वहां डालकर, विजिगीषु शत्रुके ऊपर अभियोग करे, कि तुमने मेरे पुत्रको मारडाला है। इस अभियोगसे, शत्रु यह समझकर कि राजकुमार मरगया है, उसका ब्रह्मना बन्द करदेगा। तथा राजकुमार निश्चिन्ततासे अपने देशमें चला जावे ॥ ७२ ॥

उपात्तच्छत्रुशत्रुं वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु ।

शीघ्रपातैरपसरेद्द्रुढप्राणिहितैः सह ॥ ७३ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे सधिकर्मसंधिनोश्च. सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

आदित पञ्चदशरात. ॥ ११५ ॥

अथवा पूर्वाक्त कोई भी उपाय यदि न किया जासके, तो राजकुमारको चाहिये, कि वह रातमें छिपेसोर पर हथियारोंको लेकर अपने पहरेदारोंके ऊपर आक्रमण करके या उन्हें मारकर शीघ्रगामी घोड़े आदि सवारियोंके द्वारा, गूढ पुरूपोंके साथ २ बाहर निकलजाये ॥ ७३ ॥

पाङ्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय ।

१२४—१२६ प्रकरण

मध्यम, उदासीन और अन्य राजमण्डलके प्रति
विजिगीषुका व्यवहार ।

मध्यमस्यात्मवृत्तीया पञ्चमी च प्रकृती प्रकृतयः ॥ १ ॥

द्वितीया च चतुर्थी पृष्ठी च विकृतयः ॥ २ ॥

मध्यम, स्वयं और तीसरी तथा पांचवी प्रकृति अर्थात् मित्र और मित्रका मित्र, ये तीनों (आत्मा, मित्र, मित्रमित्र), मध्यमकी प्रकृति कहाती है। (मध्यमके अच्छीतरह सहायक होनेके कारण, ये उसके 'प्रकृति' बढे जाते हैं।) ॥ १ ॥ शत्रु, शत्रुका मित्र, और शत्रुके मित्रका मित्र, ये तीनों मध्यमकी 'विकृति' बढे जाते हैं। क्योंकि ये मध्यमका विरोध करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

तत्रेदुभयं मध्यमोऽनुगृहीयाद्विजिगीषुर्मध्यमानुलोमः
स्यात् ॥ ३ ॥ न चेदनुगृहीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात् ॥ ४ ॥

मध्यमको चाहिये कि वह दोनों प्रकार के (प्रकृति और विवृतिरूप) राजाओंपर पूर्ण अनुग्रहबुद्धि रखे । और विजिगीषुको चाहिये कि वह सदा मध्यमराजाके अनुकूल बनारहे ॥ ३ ॥ यदि मध्यम दोनों प्रकारके राजाओंपर अनुग्रह न कर सके, तो अपनी प्रकृति अर्थात् आत्मा, मित्र और मित्रका मित्र इनको तो अवश्यही अपने अनुकूल बनाये रखे ॥ ४ ॥

मध्यमश्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्रभावि लिप्सेत मित्रस्यात्मनश्च
मित्राण्युत्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदयित्वा मित्रं त्रायेत ॥५॥

यदि मध्यम विजिगीषुके मित्रभावि मित्र (देखो=अधि. ७, अध्या. ९ सूत्र ५५) को अपने अधीन करना चाहे, तो उस समय विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने मित्रके मित्र और अपने मित्रोंको सहारा देकर, तथा मध्यमके मित्रोंका उससे भेद बलपाकर अपने मित्रकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

मण्डलं वा प्रोत्साहयेत् ॥ ६ ॥ अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः
सर्वेषां नो विनाशायाम्युत्थितः संभ्रयास्य यात्रां विहनाम इति
॥ ७ ॥ तच्चेन्मण्डलमनुगृहीयान्मध्यमावग्रहेणान्मानमुपवृंहयेत्
॥ ८ ॥

यदि विजिगीषु पूरा न कर सके, तो मध्यमके विरुद्ध अन्य राजमण्डलको इसप्रकार प्रोत्साहित करदे, कि ॥ ६ ॥ देखो, बहुत उन्नत हुआ २ यह मध्यम, हम सबकाही नाश करनेके लिये उठ खड़ा हुआ है । हमको चाहिये, कि हम सब मिलकर इसके आक्रमणको रोकें ॥ ७ ॥ यदि इसप्रकार प्रोत्साहित किया हुआ राजमण्डल, अपनी (विजिगीषुकी) सहायता करनेके लिये तैयार होजाय, तो उनकी सहायतासे मध्यमका निग्रह करके अपने आपको अच्छीतरह उन्नत बनावे ॥ ८ ॥

न चेदनुगृहीयात्कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुगृह्य ये मध्यमद्वे-
पिणो राजानः परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धौ वा
बहवः सिद्धयेयुः परस्पराद्वा शङ्किता नोत्तिष्ठेरंस्तेषां प्रधानमेक-
मासन्नं वा सामदानाभ्यां लभेत ॥ ९ ॥

यदि राजमण्डल विजिगीषुकी सहायता न करे, तो वह धन और सेनाके द्वारा अपने मित्रकी सहायता करके, जो बहुतसे राजा मध्यमके साथ हुए रखनेवाले हों, अथवा जो आपसमें एक दूसरेकी सहायता करके मध्यमका अपकार करना चाहते हों, या जो मध्यमके शत्रु, एकके अनुकूल (विजिगीषुके अनुकूल) होजानेपर सब अनुकूल होजायें, अथवा मिलकर सिद्धिप्राप्तकी कामना रहते हुए

भी परस्पर एक दूसरेके भयसे जो आक्रमणके लिए तैयार न होते हों, ऐसे मध्यमके शत्रु राजाओंसे एक प्रधान राजाको, अथवा अपने देशके समीपके राजाको सामं और दानके द्वारा अपने वशमें करे, अर्थात् अपने अनुकूल बनावे ॥ ९ ॥

द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ १० ॥ एवमभ्युचितो मध्यममवगृह्णीयात् ॥ ११ ॥

इसप्रकार दूसरे राजाकी सहायता मिलनेपर विजिगीषु द्विगुणबलशाली होजाता है । यदि इसीतरह तीसरे राजाकी और सहायता मिलजावे, तो विजिगीषुका, तिगुना बल होजाता है ॥ १० ॥ इसप्रकार अपनी शक्तिको बढ़ाकर विजिगीषु, मध्यमका निग्रह करे ॥ ११ ॥

देशकालातिपत्तौ वा संधाय मध्यमेतरमित्रस्य साचिन्ध्यं कुर्यात् दूष्येषु वा कर्मसंधिम् ॥ १२ ॥

अथवा मध्यमके शत्रुओंकी सहायता लेनेके पहिलेही, देशकालके अनुसार विजिगीषु संधा मध्यमके साथही सन्धि करे, और फिर अपने उस मित्र (मित्रभावि मित्र) के साथ भी मध्यमकी सन्धि कराकर इसकी सहायता करे । यदि ऐसा सम्भव न हो, अर्थात् मध्यम यदि सन्धि न करना चाहे, तो मध्यमके शूष्य पुरुषों (ऐसे प्रधान कर्मचारी, जो भीतरही भीतर मध्यमसे दामुता रखते हों) के साथ कर्म सन्धि करे । अर्थात् उनसे कहे कि तुम लोग अमुक स्थान आदिमें आग लगाओ, या इसीप्रकारका अन्य कोई उपद्रव रखा करो, अनन्तर मैं इसके साथ युद्ध करूंगा, इसप्रकार दूष्योंसे सन्धि करे ॥ १२ ॥

अपने मित्रभावि मित्रको अधीन करनेके लिये तैयार हुए २ मध्यमके साथ विजिगीषुको क्या व्यवहार करना चाहिये, यह कह दिया गया । अब कर्शनीय मित्र (ऐसा मित्र जो विजिगीषुके विरुद्ध रहता हो, और इसीलिये विजिगीषु उसके धन और सेनाका क्षय करके जिसे हरा बनाना चाहता हो) को अधीन करनेके लिये प्रयत्न करते हुए मध्यमके साथ विजिगीषुका क्या व्यवहार करना चाहिये, यह बताते हैं —

कर्शनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत प्रतिस्तम्भयेदेनमहं त्वा त्रायेय इत्याकर्शनात् ॥ १३ ॥ कर्शितमेतं त्रायेत ॥ १४ ॥

विजिगीषुके कर्शनीय मित्रको यदि मध्यम अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने उस मित्रको अपनी ओरसे यह कहकर,

अभय करदे, कि मैं मध्यमते तुम्हारी रक्षा करूंगा, घपनाओ नहीं । परन्तु यह अभयवचन उसी समयतक होता है, जबतक कि मध्यमके द्वारा यह कृशताको प्राप्त करा दिया जाय । अर्थात् दुर्बल बना दिया जाय ॥ १३ ॥ कृशताको प्राप्त होनेपर तो इसको रक्षा, विजिगीषुको अवश्यही करनी चाहिये । अर्थात् जब यह दुर्बल बना दिया जाय, तो विजिगीषु अवश्य इसकी रक्षा करे ॥ १४ ॥

उच्छेदनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत कर्शितमेतं त्रायेत
मध्यमवृद्धिमयात् ॥ १५ ॥ उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कु-
र्यादन्यत्रापसारमयात् ॥ १६ ॥

यदि विजिगीषुके उच्छेदनीय मित्रको मध्यम अपने अधीन करनाचाहे तो विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने उच्छेदनीय मित्रकी उसी समय रक्षा करे, जबकि मध्यम, उसको अच्छी तरह कष्ट पहुंचा चुका हो; परन्तु अभीतक उच्छेद न किया हो । क्योंकि उसके उच्छेद करनेपर तो मध्यम और भी शक्ति शाली होसकता है, तथा विजिगीषुको भी हानि पहुंचा सकता है ॥ १५ ॥ अथवा उच्छिन्न हुए २ उस मित्रको अपनी ओरसे कुछ भूमि देकर अपने वशमें कर लेवे, अन्यथा यह सम्भव होसकता है कि वह शत्रु पक्षमें जाकर मिलजाये ॥ १६ ॥

कर्शनीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्यमस्य साचिव्यकराणि
स्युः पुरुषान्तरेण संधीयेत ॥ १७ ॥ विजिगीष्वोस्तयोर्मित्राण्य-
वग्रहसमर्थानि स्युः संधिमुपेयात् ॥ १८ ॥

यदि कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओंके अन्य मित्र मध्यमकीही सहायता करनेवाले हों, तो विजिगीषु को चाहिये कि वह भी अपने राजकुमार अथवा अमात्य आदिको उपस्थित करके (मध्यमके पास विश्वासकी दृढ़ताके लिये भाधिरूपमें रखकर) मध्यमसे सन्धि करलेवे ॥ १७ ॥ विजिगीषुके कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओंके मित्र, यदि मध्यमका मुकाबला करनेमें समर्थ हों, तो विजिगीषुको चाहिये कि वह मध्यमके साथ सन्धि करलेवे । यहाँतक विजिगीषुके अपने मित्रोंपर अभियोग करनेवाले मध्यमके साथ विजिगीषु का क्या व्यवहार होना चाहिये, इस बातका निरूपण किया गया । अब विजिगीषुके शत्रुओंपर अभियोग करनेवाले मध्यमके साथ विजिगीषुके व्यवहारका निरूपण करते हैं ।

आ
स्वार्थश्च कृ

लिप्सेत
प्रियं

॥ १९ ॥ एवं

‘यदि विजिगीषुके किसी शत्रुको, मध्यम अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषुको यह चाहिये कि वह मध्यमके साथ सन्धि कर लेवे ॥ १९ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे दोनों यत्न सिद्ध हो जाती हैं । एक तो अपने शत्रुका नाश हो जानेसे अपना कार्यसिद्ध होजाता है, और मध्यमका भी प्रिय होजाता है ॥ २० ॥

मध्यमश्चेत्स्वामित्रं मित्रभावि लिप्सेत पुरुषान्तरेण संदध्यात् ॥ २१ ॥ सापेक्षं वा नार्हसि मित्रमुच्छेत्प्रामिति चारयेदुपेक्षेत वा मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षवधादिति ॥ २२ ॥

‘यदि मध्यम अपने ही किसी मित्रभावी मित्रको अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषुको चाहिये कि अपने सेनापति आदिको भेजकर मध्यमकी सहायता करे ॥ २१ ॥ अथवा उस मित्रसे अपनी अर्थसिद्धिको देखता हुआ, मध्यमको उसपर आक्रमण करनेसे यह कहकर रोकदेवे, कि मित्रका उच्छेद करना अच्छा नहीं होता । ऐसा करनेसे विजिगीषु, अन्य राजाओंका अधिक विश्वस्त होजाता है । अथवा यह सोचकर इसकी उपेक्षा ही करदेवे, कि मध्यम यदि अपने मित्र परही आक्रमण करेगा, तो इसका राजमण्डल ही इससे, यह जानकर कुपितही जायगा, कि यह अपने मित्रकाही वध करनेके लिये तैयार होगया है ॥ २२ ॥

अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २३ ॥ कौशदण्डाभ्यामेनमदृश्यमानो ऽनुगृह्णीयात् ॥ २४ ॥ उदासीनं वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २५ ॥ उदासीनाद्भिद्यतामिति ॥ २६ ॥ मध्यमोदामी-योर्यो मण्डलस्वाभिप्रेतस्तमाश्रयेत् ॥ २७ ॥

यदि मध्यम अपने किसी शत्रुको ही अपने अधीन करना चाहे ॥ २३ ॥ तो विजिगीषुको चाहिये कि वह घन और सेनाके द्वारा छिपे तीरपर ही मध्यमके शत्रुकी सहायता करे ॥ २४ ॥ यदि मध्यम, किसी उदासीन राजाको अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषु यह सोचकर कि ‘मध्यम उदासीनसे सर्वथा भेदको प्राप्त होजाय’ मध्यम और उदासीन दोनोंमेंसे जो राजमण्डलका अधिक प्रियहो उसकीके साथ मिल जाये । और उसकी सहायतामें लगजावे ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥ उदासीनश्चेन्मध्यमं लिप्सेत यतः शत्रुमतिसंदध्यान्मित्रस्योपकारं कुर्या-

दुदासीनं वा दण्डोपकारिणं लभेत ततः परिणमेत ॥२९॥ एव-
मुपबृह्वात्मानमरिप्रकृतिं कर्शयेन्मित्रप्रकृतिं चोपगृहीयात् ॥३०॥

मध्यमके चरितके समान, उदासीनवा भी चरित समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥ यदि उदासीन राजा किसी मध्यम राजाको अपने अर्धात करना चाहे तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह इन दोनोंमेंसे, उस राजाके साथ मिलजावे, जिसके साथ मिलनेसे अपने शत्रुका उच्छेद और मित्रका उपकार करसके अथवा मध्यम वा उदासीनको सेनाकी सहायता देकर अपने चरममें करसके ॥ २९ ॥ इस प्रकार विजिगीषु अपनी वृद्धि वरके शत्रुरूप प्रकृति अर्थात् शत्रुका नाशकरे और मित्ररूप प्रकृति का उपकार करे ॥ ३० ॥

सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मनान्नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः
पार्ष्णिग्राहो वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्तेत्यरि-
भाविनः ॥ ३१ ॥

शत्रु शब्दसे कहे जानेवाले सामन्त तीन प्रकारके होते हैं । शत्रुभावी मित्रभावी, तथा भृत्यभावा, इन सबका क्रमपूर्वक निरूपण करते हैं.— अपने राज्यके साथ लगेहुए होनेके कारण, विजिगीषुके प्रति शत्रुभावकी समता होनेपर भी, यह सामन्त निश्चरीतिके अनुसार आठ प्रकारका कहा जाता है.—अजितेन्द्रिय, सदा अपकार करनेवाला, शत्रु अर्थात् बिना ही कारण द्वेष करनेवाला, शत्रुकी सहायतासे युक्त (अर्थात् विजिगीषुके शत्रुकी सहायतासे युक्त), पार्ष्णिग्राह (किसी दूसरे राजा पर चढ़ाई करनेपर पीछेसे उग्रव करने वाला), और बन्धु आदिकी मृत्युसे डुल्ले, यातव्य (जिय पर आक्रमण किया जाय), विजिगीषुकी व्यसनमें जमा देखकर उस पर आक्रमण करने वाला, यह शत्रुभावी सामन्त कहाता है ॥ ३१ ॥

एकार्थाभिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः संभूययात्रिकः संहित-
प्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्यतरस्य
क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति मित्रभाविनः ॥ ३२ ॥

तथा विजिगीषुके साथ एकही अर्थकी सिद्धिके लिये यात्रा करनेवाला, अर्थात् जिस भूमि आदि अर्थकी सिद्धिके लिये विजिगीषु एक और जाये, उसी अर्थकी सिद्धिके लिये दूसरी ओर भी जानेवाला, अथवा विजिगीषुके भूमिके लिये जानेपर स्वयं हिरण्यके लिये जानेवाला, विजिगीषुके साथ २ ही यात्रा अर्थात् किसीपर आक्रमण करनेवाला, विजिगीषुके साथ सन्धि करके, वृद्धरको जा, मैं वृद्धरको जाऊगा' इसप्रकार कहकर यात्रा करनेवाला, विजिगीषु

के ही किसी कार्यको सिद्ध करनेके लिये यात्रा करनेवाला, विजिगीषुसे मिलकर शून्य स्थानोंके घसानेके लिये प्रवृत्त हुआ २ धन और सेना इन दोनोंमेंसे किसी एकको एक दूसरेके बदलेमें खरीदने या बेचनेवाला, द्वैधीभाष गुणसे उपयोग लेने वाला, ये सब आठ प्रकारके मित्रभावी सामन्त कहाते हैं ॥ ३२ ॥

सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः
पार्ष्णिग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति
भृत्यभाविनः सामन्ताः ॥३३॥ तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः ॥३४॥

और सामन्त, बलवान् राजाका मुकाबला करनेवाला, अन्तर्धि, प्रति-
वेश (पड़ोसी), बलवान् राजापर पीछेसे आक्रमण करनेवाला, स्वयंही आकर
आश्रित हुआ २ अथवा अपने प्रतापसे आश्रित किया हुआ या बलपूर्वक अपने
अधीन किया हुआ; ये आठ प्रकारके ही भृत्यभावी सामन्त कहलाते हैं ॥ ३३ ॥
इन तीन प्रकारके (३१, ३२, ३३, सूत्रमें कहे हुए) शत्रुओंके समानही, भूम्ये
कान्तर (एक देशके व्यवधानसे राज्य करनेवाले) मित्रोंकेभी भेद समझ लेने
चाहियें । अर्थात् जिसतरह शत्रु, शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी ये तीन
प्रकारके होते हैं, इसीतरह मित्रभी, शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी ये तीन
प्रकारके ही होते हैं ॥ ३४ ॥

तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थितां व्रजेत् ।

शक्त्या तदनुगृहीयाद्विपहेत यया परम् ॥ ३५ ॥

उन भूम्येकान्तर मित्रोंमेंसे किसीके ऊपर यदि शत्रु आक्रमण करदेवे,
तो उस मित्रके साथ जो सन्धिकरे, वह धन और सेनाकी, उसको इतनी सहा-
यता पहुंचावे, जिससे वह शत्रुको दबासके ॥ ३५ ॥

प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।

सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥ ३६ ॥

जो मित्र अपने शत्रुको जीतकर वृद्धिको प्राप्त हुआ २, यत्रमें (अर्थात्
विजिगीषुके घसमें) नहीं रहता, उसके सामन्त और भूम्येकान्तर मित्रोंके
तथा उनकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके साथ किसी तरह उसका विरोध
करादेवे ॥ ३६ ॥

तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्य हारयेत् ।

यथा वानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथा चरेत् ॥ ३७ ॥

अथवा उसे अवश्य (अपने-विजिगीषुके घसमें न रहनेवाले) मित्रके
पारिवारिक बन्धुपान्धवों तथा नजरबन्द कियेहुए पुत्रादिके द्वारा उसकी भूमिका

अपहरण करावे । अथवा अपनी सहायता चाहता हुआ वह जिस तरहभी वशमें रहसके, उसीतरह उसके साथ व्यवहार कियाजाय ॥ ३७ ॥

नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदतिकर्षितम् ।

तदहीनमष्टदं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥ ३८ ॥

जो मित्र क्षीण अवस्थाको प्राप्त हुआ २ अपने (विजिगीषुका) कोई उपकार न करसके, अथवा शत्रुके साथ जाकर मिलजावे, अपने अर्थको सिद्ध करनेवाले विजिगीषुको चाहिये, कि इस प्रकारके मित्रको ऐसीही अवस्थामें रखे, जिससे कि वह न सर्वथा उच्छिन्न ही होजाय, और न अपनी वृत्ति ही करसके ॥ ३८ ॥

अर्थयुक्त्या चलं मित्रं संधिं यदुपगच्छति ।

तस्यापगमने हेतुं विहन्यान्न चलेद्यथा ॥ ३९ ॥

जो चल मित्र लोभके कारण सन्धि करता है, वह कदाचित् सन्धि तोड़ न देव, इस विचारसे, विजिगीषुको चाहिये कि उसके अर्थ लिप्सारूपी सन्धि विच्छेदके कारणको, स्वयं ही कुछ धन आदि देकर नष्टकरदेवे । जिससे कि वह फिर सन्धि न तोड़सके ॥ ३९ ॥

अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।

भेदयेद्विन्नमुच्छिन्धात्ततः शत्रुमनन्तरम् ॥ ४० ॥

जो धूर्तमित्र, अपने (विजिगीषुके) शत्रुके साथ मिलकर रहता हो, पहिले उसका शत्रुसे भेद करावे । और भेद कराकर उसका उच्छेद करदे । तदनन्तर शत्रुकाभी उच्छेद करदे ॥ ४० ॥

उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तस्तद्विरोधयेत् ।

ततो विग्रहसंतप्तमुपकारे निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

जो मित्र, शत्रु और विजिगीषु दोनोंकी ओरसे उदासीन रहे, विजिगीषु को चाहिये कि सामन्तोंके साथ उसका विरोध करादे । जब सामन्त उसके साथ युद्ध छेड़दे, और वह लड़ाईसे बहुत अंग आजावे, तब उसको अपने उपकारमें लगावे । अर्थात् उसके योग्य यत्नादेवे, जिससे कि वह अपने द्वाराकिये जानेवाले उपकारका अपेक्षाको अच्छीतरह समझने लगे ॥ ४१ ॥

अमित्रं विजिगीषुं च यत्संचरति दुर्बलम् ।

तद्वलेनानुगृह्णीयाद्यथा सान्न पराङ्मुखम् ॥ ४२ ॥

जो दुर्बल मित्र अपनी शक्ति बढ़ानेके लिये, शत्रु और विजिगीषु दोनों का आश्रय लेना चाहता है । विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे दुर्बल मित्रको सेना,

आदिकी सहायता देकर सदा उपकृत करता रहे, जिससे कि वह पराङ्मुख न होवे, अर्थात् शत्रुस जाकर न मिलजावे ॥ ४२ ॥

अपनीयं ततो अन्यस्यां भूमौ वा संनिवेशयेत् ।

निवेश्य पूर्वं तत्रान्यदण्डानुग्रहेतुना ॥ ४३ ॥

अथवा उसको, उसकी अपनी भूमिसे दूरकर किसी अन्य भूमिपर स्थापित करदे, अथवा वहाँ शत्रुकी सहायताकी कोई अपेक्षा नहीं ऐसी अपनी भूमिमें ही रहनेदे । और उसकी भूमिमें उसके जानेसे पहिलेही सन्तुके द्वारा सहायता पहचानके लिये, इस कार्यके करनेमें समर्थ किसी अन्य व्यक्तिका स्थापित करद ॥ ४३ ॥

अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि ।

उच्छिन्नादेव तन्मित्रं विश्वस्वाङ्गमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥

जो मित्र विजिगीषुका अपकार करे, तथा विजिगीषुके ऊपर कोई आपत्ति आनेपर, प्रतीकार परतेमें समर्थ हुआ भी उसको सदायता न देवे, विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे मित्रको, पहिले दूर, विश्वस्त बनाकर अपनी सुधीमें आजानेपर उच्छिन्न करदेवे ॥ ४४ ॥

मित्रव्यसनतो वारिरुत्तिष्ठेद्योऽननग्रहः ।

मित्रेणैव भवेत्साध्यः छादितव्यसनेन सः ॥ ४५ ॥

यदि विजिगीषुका शत्रु, विजिगीषुके मित्रपर कोई आपत्ति आजानेके कारण बिनाही किसी रणघटके अपनी उन्नति करलेवे, तो विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने मित्रकी आपत्तिके दृष्ट जानेपर अथवा आपत्तिको अमकाशित करके ही अर्थात् उसे बीचमेंही दबाकर उस मित्रके द्वाराही शत्रुको वशमें करने का यत्न करे ॥ ४५ ॥

अमित्रव्यसनान्मित्रमृत्थितं यद्विरज्यति ।

अरिव्यसनसिद्ध्या तच्छत्रुणैव प्रसिद्धयति ॥ ४६ ॥

इसी प्रकार जो मित्र, अपने शत्रुपर आपत्ति आजानेसे उन्नत होकर विजिगीषुसे अपराध होजाता है, अथवा उच्छृंखल टाँकर विजिगीषुके अङ्कुर नहीं रहता विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे मित्रको, शत्रुकी आपत्तिके दूर होजाने पर उन्नीके द्वारा वशमें करे ॥ ४६ ॥

वृद्धिं क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा ।

सर्वोपायान्समादध्यादेतान्यश्चार्थशास्त्रवित् ॥ ४७ ॥

अर्थशास्त्र जाननेवाले राजाको उचित है, कि वह वृद्धि, क्षय, स्थान (वृद्धति अपनतिते रहित एकही अवस्थामें रहना), फर्मान और उर्रेट्टन, इनका तथा सब ही सामं दान आदि, उपायोंका अच्छी तरह विचार पूर्वक प्रयोग करें ॥ ४७ ॥

एवमन्योन्यसंचारं पाद्गुण्यं यो ऽनुपश्यति ।

स बुद्धिनिगलैर्वद्वैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः ॥ ४८ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मध्यमचरितमुद्रासीनचरितं मण्डल-
चरितमष्टादशोऽध्यायः ।

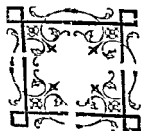
आदित. षोडशशतः ॥ ११६ ॥

एतावता फौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य पाद्गुण्यं सप्तमधिकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार जो राजा, आपसमें जकड़े हुए इन छः गुणोंको अच्छीतरह विचारपूर्वक प्रयुक्त करता है । वह निश्चय ही अपनी बुद्धिरूपी संकल्पसे पांधेहुए अन्य राजाओंके साथ इच्छानुसार क्रीडा करता है ॥ ४८ ॥

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

पाद्गुण्य सप्तम अधिकरण समाप्त ।



व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण ।

पहिला अध्याय

— १२७ प्रकरण ।

प्रकृतिव्यसनवर्ग

व्यसनयोगपद्ये सौकर्यतो यातव्यं रक्षितव्यं चेति व्यसन-
चिन्ता ॥ १ ॥ दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाभ्यां
संभवति ॥ २ ॥

जब शत्रु और विजिगीषु दोनोंपर समान ही विपत्ति हों, और शत्रुपर
आक्रमण तथा अपना रक्षा करनेमें भी समानता ही देखती हो, तब उस अव-
स्थामें शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये, या अपनी रक्षा करनी चाहिये, यह
विचार किया जाता है। इसलिये सबसे प्रथम इस अध्यायमें व्यसनों (विप-
त्तियों) का चिन्तन किया जाता है। कौनसा व्यसन बड़ा या कौनसा छोटा
होता है ॥ १ ॥ व्यसन दो प्रकारका होता है, एक दैव और दूसरा मानुष।
अमास्य आदि प्रकृति वर्गके ये व्यसन अनय भार अपनयसे ही पदा होते हैं।
सन्धि आदिकी उचित व्यवस्था न करना अनय, और शत्रुसमूहसे पीड़ित होते
रहना अपनय कहाता है ॥ २ ॥

गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम् ॥३॥
व्यसत्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ॥ ४ ॥

महाकुलीनता आदि गुणोंकी प्रतिकूलता, इसी प्रकारके अन्य गुणोंका
न होना, अथवा सन्धि आदि गुणोंका उचित उपयोग न करना, कोप आदि
दोषोंका बढजाना, विषयोंमें अति आसक्ति होना, और शत्रुओंके द्वारा पीड़ित
रहना, ये पांच प्रकारके व्यसन कहाते हैं। अर्थात् उक्त प्रकारसे राजापर विप-
त्तिका आना ही व्यसन कहाता है ॥ ३ ॥ व्यसनका शब्दार्थ भी यही है कि जो

पुत्रपुत्री फलयाण मार्गसे भ्रष्ट करदेवे । जो कार्य राजाको उद्यत अवस्थासे नीचे गिराने वाला हो, वही उसके लिये व्यसन कहा जाता है ॥ ४ ॥

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

आचार्योंका मत है कि स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र, इनपर विपत्ति आनेपर, अगलेकी अर्पणा पहिलेपर विपत्तिका आना अत्यन्त कष्टकर है । अर्थात् राजा और अमात्य इन दोनोंपर आपत्ति आने पर राजाकी आपत्ति अधिक भयावह है, इसी तरह आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ ५ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ ६ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ७ ॥ मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कर्मानुष्ठानमायव्यय-
कर्म दण्डप्रणयनमभिप्रेक्ष्य कुमाराणामायत्तममात्येषु ॥ ८ ॥

परन्तु भारद्वाज (द्रोण) आचार्य, इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ६ ॥ उसका कहना है कि, यदि स्वामी और अमात्यपर एक साथ ही व्यसन आपत्ति, तो अमात्यका व्यसन ही अधिक भयावह या कष्टकर है ॥ ७ ॥ क्योंकि प्रत्येक कार्यको विचार, उनके फलफलकी प्राप्तिका विचार, निश्चित कार्योंका करना, आय भार बचकी व्यवस्था, सेनाकी व्यवस्था (अर्थात् सेनाका संग्रह करना और उचित स्थानोंपर उसका उपयोग करना), शत्रु और आटविद्यार्थ (मारघाट करने वाले, या सीमा प्रदेशों पर छापा मारने वाले जंगली आदि) का निराकरण करना, अपने राष्ट्रकी रक्षा करना, विपत्तियोंका प्रतिकार करना, राजकुमारोंकी रक्षा और उनका अभिषेक करना, इत्यादि सब ही कार्य अमात्योंपर ही निर्भर होते हैं । इसलिए उनपर व्यसन आना अधिक भयावह होता है ॥ ८ ॥

तेषामभावे तदभावदिलक्ष्यसेन राज्ञश्चेष्टानाशो व्यसनेषु चासत्ताः परोपजापाः ॥ ९ ॥ वैगुण्ये च प्राणवाधः प्राणान्तिक-
चात्त्वाद्वाय इति ॥ १० ॥

इसप्रकारके अमात्योंका न रहनेपर ये सब ही कार्य नष्टमाय होजाते हैं । और पल कटे हुए पक्षके समान राजाके भी सम्पूर्ण कार्यक्रमोंका नाश होजाता है, तथा व्यसनोंके उपश्रित होनेपर वहाँ शत्रु अपने पर्यन्तोंका जाल फैलाने लगता है ॥ ९ ॥ तथा अमात्योंके विगुण्य अर्थात् व्यसनी या विपरीत होजानेपर

घस्र तथा लोहा ताँबा आदि, सेवक या भृत्यवर्ग, घोड़े ऊँट आदि सवारियाँ, अन्न तथा घृत तैल आदि सभी सामान जनपदसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ जनपदपर विपत्ति आनेसे जनपदका प्राप्ति होनेपर इन सब वस्तुओंका भी प्राप्ति होजाता है, तथा इनके प्राप्ति न होनेपर फिर अमात्य और राजाका भी उच्छेद होजाता है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ अमात्यमूलाः सर्वास्त्रमाः ॥ २३ ॥

जनपदस्य कर्ममिद्वयः स्वतः परतश्च योगक्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवेशोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति ॥ २४ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य विशालाक्षके इस मतको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि यह कहता है कि सबही कार्योंका निर्मात्र अमात्योंपर है । अर्थात् अमात्योंके द्वारा ही सब कार्योंका आरम्भ किया जाता है ॥ २३ ॥ जनपदके दुर्ग तथा कृषि आदि कार्योंकी सिद्धि, राजकीय परिवार और अन्तपाल तथा आटविकोंकी ओरसे योगक्षेमका साधन, आपत्तियोंका प्रतीकार, निर्जन प्रदेशोंका बसाना और उनकी वृद्धि करना, अपराधियोंको दण्ड देना तथा राजकरका संग्रह करना इत्यादि सब कार्य अमात्योंके ही करनेके हैं । उनपर विपत्ति आने पर जनपद सम्बन्धी ये कार्य सम्पादन नहीं किये जा सकते । इसलिये जनपदकी विपत्तिसे अपेक्षा अमात्योंपर विपत्तिके आनाही अधिक भयावह होता है ॥ २४ ॥

जनपददुर्गव्यसनयोर्दुर्गव्यसनमिति पाराशराः ॥ २५ ॥

दुर्गे हि कोशदण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य शक्तिमत्तराश्च पौरजानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञो जानपदास्त्वमित्रसाधारणा इति ॥ २६ ॥

पाराशर मतानुयायी आचार्योंका मत है कि जनपद और दुर्ग इनदोनों पर साथही विपत्ति आनेपर, जनपदकी विपत्तिके अपेक्षा दुर्गपर आई हुई विपत्ति ही अधिक भयावह होती है ॥ २५ ॥ क्योंकि कोश और सेनाके दुर्गमें ही सुरक्षित रक्खा जा सकता है । शत्रुके द्वारा जनपदपर कोई विपत्ति आनेपर दुर्ग ही आश्रयस्थान होता है । नगर तथा जनपदों (अर्थात् वहाँ रहनेवाले पुरुषों) की अपेक्षा दुर्ग अधिक शक्तिशाली तथा स्थायी होते हैं, तथा किसी प्रकारकी भी आपत्ति आनेपर हर तरहसे राजाके सहायक होते हैं । इनके (दुर्गोंके) मुकाबले में जनपदों (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषों) को तो शत्रुके समान ही समझना चाहिये । क्योंकि किसी प्रकार शत्रुके पहाँ आजाएँपर,

उसकोभी घे कर आदि देकर उसकी सहायता के लिये भी तैयार हांसकते हैं । इस लिये जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा दुर्गकी विपत्तिकी ही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ २६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवा-
र्तारम्भाः शौर्यं स्यैव दाक्ष्यं बाहुल्यं च जानपदेषु ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य पराशरोंके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ २७ ॥ क्योंकि वह कहता है कि दुर्ग, कोश, सेना सेतुबन्ध और कृषि आदि सबही कार्य, जनपदके ऊपर ही निर्भर हैं । तथा शूरता, स्थिरता, चतुरता और सत्पत्नीकी अधिकता भी जानपदों (जनपद निवासी पुरुषों) में ही हो सकती है ॥ २८ ॥

पर्वतान्तर्द्वापाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदाभावत् ॥ २९ ॥
कर्पकप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयभाये तु जनपदे जनपदव्यसन-
मिति ॥ ३० ॥

यदि जनपद पर आपत्ति आनेसे उसका नाश होजाय, तो पर्वतों और नदी जलाशयों आदिके भीतर धन हुए, अत्यन्त दृढ दुर्गभी खून पड़े रहत हैं । अर्थात् जनपदके न होनेपर उनका कुछभी उपयोग नहीं हो सकता । इस लिये दुर्ग व्यसन की अपेक्षा जनपद व्यसनको ही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ २९ ॥ परन्तु इसमें इतना विशेष है कि जैसे जनपद रहित दुर्ग खूना पड़ा रहता है, ऐसे ही दुर्ग रहित जनपदमें भी निवास होना दुष्कर ही है । इस लिये वहा इतना धिक्के करना चाहिये, कि जो कृषि प्रधान प्रदेश हैं वहां दुर्गपर आपत्ति आना अधिक भयावह है । तथा जो आयुधप्रधान देश हों अर्थात् जहां सबल योद्धा ही अधिक बसते हों, वहां जनपदपर विपत्तिका आना अधिक भयावह है । क्योंकि ऐसे प्रदेशमें दुर्गकी विपत्तिका तो योद्धा जन अश्लीतरह प्रतीकार करसकते हैं ॥ ३० ॥

दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः ॥ ३१ ॥ को-
शमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च ॥ ३२ ॥ दुर्गः कोशादुप-
जाप्यः परेषाम् ॥ ३३ ॥

पिशुन (नारद) आचार्यका मत है कि दुर्ग और कोश इनपर साथ ही विपत्ति आनेपर दुर्गकी आपत्तिकी अपेक्षा कोशपर आईहुई विपत्ति ही अधिक भयावह होती है ॥ ३१ ॥ क्योंकि दुर्गकी भरम्मत और उनकी रक्षा, कोशपर ही निर्भर है ॥ ३२ ॥ कोशके सहारेसे शत्रुओंके दुर्गका उच्छेद भी किया जा

सकता है। तात्पर्य यह है, कि शत्रुदुर्गादिवत् पुर्यों को भग्नादिके द्वारा ध्वनी और मिलाकर शत्रुदुर्गा, निराकरण या विध्वन किया जा सकता है ॥ ३३ ॥

जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डवल-
व्यवहारः ॥ ३४ ॥ कोशमादाय च व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्ग-
मिति ॥ ३५ ॥

कोशके द्वारा ही जनपद, मित्र तथा शत्रुका निग्रह भी किया जा सकता है। इसके सहारे देशान्तरित (दूर देशमें रहनेवाले) राजाओं को भी अपनी सहायताके लिये प्रोत्साहित किया जासकता है। तथा सैनिक शक्तिकी उपयोग भी कोशपर ही निर्भर है ॥ ३४ ॥ यदि अध्यायक कोई विपत्ति आपड़े का शत्रु अपने साथ लेकर भागाभी जासकता है। परन्तु ऐसा, शत्रुधर्मों दुर्गको अपने साथ नही लेजाया जासकता। यहाँ बातें हैं जिनसे मालूम होता है कि दुर्गव्यसनका अपेक्षा काशव्यसन अधिक कष्टकर है ॥ ३५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ दुर्गार्पणः कोशो दण्डस्तूष्णीयुद्धं
स्वपक्षनिग्रहो दण्डवलव्यवहार आमारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिपे-
धश्च ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्ये भारतके इस मतको ब्राह्म नहीं समझता ॥ ३६ ॥ क्योंकि वह कहता है कि हमारे काश और सेना दोनोंकी रक्षा दुर्गके द्वारा ही हो सकती है। तूष्णीयुद्ध, अर्थात् गुप्त पुरों आदिके द्वारा चुपचाप किसीका बध करना, अपने पक्षके दूत (राजदूत) पुरुषोंका निग्रह करना, सैनिक शक्तिकी व्यवस्था अर्थात् उसका ठीक २ उपयोग करना, मित्र सेनाको प्रतिग्रह (स्वीकार) अर्थात् उसे आश्रय देना, और शत्रु समूह तथा आदिकोंका निराकरण करना ये सब बातें दुर्गके द्वारा ही की जासकती हैं ॥ ३७ ॥

दुर्गभावे च कोशः परेषाम् ॥ ३८ ॥ दृश्यते हि दुर्गवता-
मनुच्छित्तिरिति ॥ ३९ ॥

तथा दुर्गपर विपत्ति आनेसे उम्मा भाग हो जानेपर, यह भी सम्भव है कि हमारे कोशको शत्रु छीनकर लेनवे। क्योंकि उसकी रक्षाके लिये हमारे पास कोई साधन नहीं ॥ ३८ ॥ और यह देखा जाता है कि जिनके पास कोई अधिक भारी कोश नहीं है, परन्तु दुर्ग २ भके पास अरबन्त दृढ़ हैं, उनका उच्छेद नहीं किया जासकता। इस लिये कोशव्यसनकी अपेक्षा दुर्गव्यसन ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ४० ॥

दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च-
॥ ४१ ॥ दण्डाभावे च ध्रुवः कौशविनाशः ॥ ४२ ॥

कौणपदन्त (भूमि) आचार्यका मत है कि कोश और सेना दोनोंपर व्यसन (विपत्ति) आनेपर, कोश व्यसनकी अपेक्षा सेनाका व्यसनही अधिक कष्टकर होता है ॥ ४० ॥ क्योंकि शत्रु और मित्रका निग्रह सेनाके द्वारा ही होसकता है । दूसरेकी आईहुई सेनाको सेनाके द्वारा ही प्रोत्साहित किया जासकता है, अर्थात् कार्यपर लगाया जासकता है । तथा अपनी सेनाका अधिक समग्र भी सेनाके द्वारा ही किया जासकता है । क्योंकि अपना सैनिक बल न होनेपर, शत्रुक आगे विजिगीषु कभी अपनी सेना बढा नहीं सकता ॥ ४१ ॥ यदि सेनापर विपत्ति आजायेत वह राष्ट्र हाजाय, तो निश्चय ही कोशका नाश होजाता है । क्योंकि उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रहता ॥ ४२ ॥

कोशाभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमिस्त्रयंग्रहेण वा दण्डः पिण्डयितुम् ॥ ४३ ॥ दण्डवता च कोशः ॥ ४४ ॥ स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति ॥ ४५ ॥

कोशके न होनेपर भी वस्त्राभरण आदिके द्वारा, भूमिके द्वारा, अथवा बलपूर्वक प्रदण कियाट्टए शत्रुके दण्डके द्वारा सेनाका समग्र अच्छी तरह किया जासकता है ॥ ४३ ॥ तथा सेनाका समग्र होनेपर कोश भी टुकट्टा किया जासकता है ॥ ४४ ॥ सदा स्वामी (राजा) के समीप रहनेके कारण, सेनाकी अमात्योंके समान ही समझना चाहिये । अर्थात् जैसे राजाके पास रहताहुआ अमात्य, उसकी हरतरहसे भलाई करता है, इसीप्रकार राजाके समीप रहती हुई सेना भी सदा राजाका उपकार करती है । इसलिये कोशव्यसनकी अपेक्षा सेनाका व्यसन अधिक भयावह है ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ कोशमूलो हि दण्डः - ॥ ४७ ॥
कोशाभावे दण्डः परं गच्छति ॥ ४८ ॥ स्वामिनं वा हन्ति ॥ ४९ ॥
सर्वाभियोगकरश्च ॥ ५० ॥ कोशो धर्मकामहेतुः ॥ ५१ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भीष्मके इस मतको प्राप्त नहीं समझता ॥ ४६ ॥ यह कहता है कि सेनाकी विपत्ति कोशपर ही निर्भर है ॥ ४७ ॥ कोशके न होनेपर सेना, या तो शत्रुके अधीन होजाती है ॥ ४८ ॥ या भरभे स्वामीका

ही वध पर डालती है ॥ ४९ ॥ सवे सामन्तोंके साथ विजिगीषुका विरोध भी सेना करासकती है । क्योंकि अर्थ (धन) के देनेपर-सब ही वधमें कराहिये जाते हैं ॥ ५० ॥ चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), के अङ्गभूत धर्म और कामकी प्राप्ति भी कोश (अर्थ) के ही द्वारा होसकती है । कोश ही इनका कारण है । तत्पर्य यह है -इस लोकमें होनेवाले धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गके बीचमें अर्थ भेड़ाहुआ है, यह इधर उधर लगेहुए धर्म और काम दोनोंको सिद्ध करता है । अर्थात् दोनोंका निर्भर केन्द्रस्थित अर्थपर ही है ॥ ५१ ॥

देशकालकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः प्रमाणीभवति ॥ ५२ ॥ लब्धपालनो हि दण्डः कोशस्य ॥ ५३ ॥ कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति ॥ ५४ ॥ सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसनं गरीय इति ॥ ५५ ॥

किन्तु इनमें इतना विशेष समक्षना चाहिये, कि देश, काल तथा कार्यके अनुसार कोश और सेना इन दोनोंमेंसे किसी भी एकको प्रधान माना जासकता है, जिसके कि भरोसेपर विजिगीषुका निर्वाह होसके ॥ ५२ ॥ परन्तु सेनाकी प्रथमता बतलाने वाले आचार्यने पाँछे जो यह बात कही है, कि सेनाके न होनेपर निश्चय ही कोशका दिन न होजावेगा, यह ठीक नहीं । क्योंकि सेनाकेवल कोशकी ही रक्षा करसकती है ॥ ५३ ॥ परन्तु कोश, सेना और कोश दोनोंकी रक्षा करसकता है ॥ ५४ ॥ इसलिये सब द्रव्यप्रकृतियों (दुर्ग आदि) के निर्वाहका कारण होनेके कारण कोशकेऊपर आर्द्धहुए विपत्ति, अत्यन्त कष्टका होती है ॥ ५५ ॥

दण्डमित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति चातज्याधिः ॥ ५६ ॥ मित्रमभृतं व्यवहितं च कर्म करोति ॥ ५७ ॥ पार्ष्णिग्राहमासारममित्रमाटविकं च प्रतिकरोति ॥ ५८ ॥ कोशदण्डभूमिशोषकरोति व्यसनान्नस्थायोगामिति ॥ ५९ ॥

यत्प्राधि (उद्धव) आचार्यका मत है कि अपनी सेना और अपने मित्र दोनोंपर एकसाथ विपत्ति आनेपर अपने मित्रपर आर्द्धहुए विपत्ति सेनाकी विपत्तिकी अपेक्षा अधिक भयावह होती है ॥ ५६ ॥ क्योंकि मित्र पूर रहताहुआ भी, बिना ही कुछ घेता लियहुए विजिगीषुके कार्यको करदेता है । परन्तु सेनाके लिये घेतन और निगरानी दोनोंकी जरूरत पड़ती है ॥ ५७ ॥ और मित्र, पार्ष्णिग्राहका, पार्ष्णिग्राहके मित्रबलका, दात्र तथा आटविकन

प्रतीकार करनेके लिये सदा तैयार रहता है, या प्रतीकार करसकता है ॥५८॥
 वीर, सेना और भूमिके द्वारा, विजिगीषुका बराबर उपकार करता रहता है ।
 तथा विजिगीषुकी विपत्ति अवस्थामें भी उसका साथ नहीं छोड़ता । इसलिये
 सेनाके व्यवसनी अपेक्षा मित्रवा व्यवसन अधिक कष्टकर होता है ॥ ५९ ॥

नेति कौटव्यः ॥ ६० ॥ दण्डरतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्य-
 मित्रो वा मित्रभावे ॥ ६१ ॥ दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये
 साम्तः स्वयुद्धदेशकाललाभाद्विशेषः ॥ ६२ ॥

परन्तु कौटव्य आचार्य यातन्यादिके इस सिद्धान्तको ग्राह्य नहीं
 समझता ॥ ६० ॥ यह कहता है कि जिसके पास सेनाकी अच्छी शक्ति होती
 है, उसके मित्र तो मित्र बने ही रहते हैं, किन्तु शत्रु भी मित्र बनजाते हैं
 ॥ ६१ ॥ सेना और मित्र इनके साधारण कार्यमें, लानके अनुसार अरसे युद्ध,
 देश, और कालकी अपेक्षाले विशेषता समझना चाहिये ॥ ६२ ॥

शीघ्राभियाने त्वमित्राटपिकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते
 ॥६३॥ व्यसनयौगपथे परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति ॥ ६४॥
 प्रकृतिव्यसनसंप्रधारणमुक्तमिति ॥ ६५ ॥

कहीं शीघ्र आक्रमण करनेपर अथवा शत्रु और आठविकोंके द्वारा
 अभ्यन्तरकोप (विजिगीषुके अरने देश या अमात्य आदि प्रकृतियोंमें परस्परके
 कोप) के उत्पन्न करादेनेपर, इसका प्रतीकार करनेके लिये मित्रका कुछ भी
 उपयोग नहीं होसकता । ऐसे अवसलोंपर अपनी सेना ही काम देती है ॥६३॥
 पुरुषाय आपत्ति आजानेपर अथवा शत्रुके पक्षानेपर मित्र ही अर्थसिद्धिमें
 सहायक होता है ॥६४॥ यहाँ तरुप्रकृतिव्यसनका निर्भव करादिया गया ॥६५॥

प्रकृत्यवयमानां तु व्यसनस्य विशेषतः ।

यहुभात्रोऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः ॥ ६६ ॥

स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंके जो अवयव होते हैं (जैसे=राजनी
 प्रकृतिके अवयव राजा सुवराज आदि, अमात्य प्रकृतिके मन्त्री मन्त्रपरिषद्
 आदि; जनपदके किसान आयुधजोषी आदि, दुर्गरक धान्यजनक आदि, कोशके
 रथ सार पट्टु आदि, दण्डक मौल भूत आदि, मित्रके सद्गज तथा कृत्रिम
 आदि अवयव होते हैं) उनके पृथकी अरक्षा दूमेरेपर विशेष व्यवसनके
 मापदण्डपर भी, जिस प्रकृतिपर व्यवसन पडा है, उसकी अधिक सहाय, स्वामी
 में भाक्ति और विशेष गुणात्त युक्त हानय, ये बात प्कारको मित्र करने वाली
 होती है तावपयं यह है कि यदि शत्रुपर दुर्ग व्यवसन अकर पडता है और

विजिगीषुपर जनपदव्यसन, तो दुर्गव्यसनसे जनपदव्यसन यद्यपि गुह्यतर अर्थात् अधिक हानिकर है, फिर भी यदि जनपदकी संरथा बहुत अधिक है, और वह अपने स्वामीमें भक्ति रखनेवाला तथा गुणशाली है; और शत्रुके दुर्गमें यह बात नहीं है, तो विजिगीषुको शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये, इस प्रकारकी अवस्था विजिगीषुके लिये अवश्य सिद्धिकर होती है ॥ ६६ ॥

द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात् ।

शेषप्रकृतिसाद्रूप्यं यदि स्यान्नाभिधेयकम् ॥ ६७ ॥

यह उपर्युक्त कथन शत्रु और विजिगीषुपर भिन्न २ व्यसन होनेके सम्बन्धमें किया गया है, यदि दोनोंपर समान ही व्यसन हो, तो एकके गुणशाली और दूसरेके गुणहीन होनेपर ही विशेषता होती है। (मानलिया जाय, कि शत्रु और विजिगीषु दोनोंपर जनपदव्यसन आपडा है, यदि विजिगीषुके जनपदके अवयवोंकी संरथा बहुत है, वे स्वामिभक्त और गुणशाली हैं; तथा ये बातें शत्रुके जनपदमें नहीं है, तो विजिगीषुको शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये, उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। परन्तु जिन प्रकृतिपर व्यसन है उससे अतिरिक्त शेष सबही प्रकृति यदि अपनी २ ठीक अवस्था में होनेके कारण विशेष शक्तिशाली है, तो यह पूर्वोक्त विशेषता न समझनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि जनपदव्यसनके तुल्य होनेपर भी और उसमें भाषिक्य आदि न होनेपर भी यदि शत्रुकी अन्य प्रकृति अच्छी शक्तिशाली है, तो ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको उसके ऊपर कदापि आक्रमण न करना चाहिये ॥ ६७ ॥

शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत् ।

व्यसनं तद्वरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥ ६८ ॥

इति व्यसनधिकारिके ऽष्टमेऽधिकरणे प्रकृतिव्यसनवर्गं प्रथमो-

ऽध्याय ॥ १ ॥ नादित सप्तदशशत ॥ ११७ ॥

यदि एक प्रकृतिपर व्यसन आनेसे शेष प्रकृतियोंका भी नाश होता हो, तो चाहे वह व्यसन प्रधानप्रकृति सम्बन्धी हो, या अप्रधान प्रकृति सम्बन्धी हो, उसे सबही व्यसनोंकी अपेक्षा गुरतर अर्थात् अत्यधिक हानिकर समझना चाहिये। विजिगीषुको आवश्यक है, कि ऐसे व्यसनोंका सबसे प्रथम प्रतीकार करे ॥ ६८ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें पदला अध्याय समाप्त ।

द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्पर-
संघर्षेण वा विनश्यति ॥ ६ ॥ वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणापेक्षि
यथास्थितमन्यैर्भुज्यत इत्याचार्याः ॥ ७ ॥

राज्यके कारण राजापर आनेवाले व्यसनका निरूपण करके, अथ
राजाके कारण राज्यपर आनेवाले व्यसनका निरूपण किया जाता है:-द्वैराज्य
(जिस राज्यके दो स्वामी हों, यह द्वैराज्य कहा जाता है , और वैराज्य (जिस
राज्यका अपना स्वामी न हो, अर्थात् किसीका विजित राज्य), इन दोनों
प्रकारके राज्योंमें से द्वैराज्य, परस्पर दोनों पक्षोंके द्वेष तथा अनुरागके कारण
अथवा परस्परकी स्वर्णोंके कारण शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥ परन्तु
वैराज्य, प्रजाके विचारोंके अनुसार चलनाहुआ (अर्थात् प्रजाके विचारोंके
आनुकूल्यकी अपेक्षा करताहुआ) तथा ठीक २ अपनी परिस्थितिमें रहताहुआ
प्रजाजनोंसे भोगा जाता है । तत्पर्य यह है कि यदि विजित देशका राजा
प्रजाओंके चित्तके अनुसार कार्य करता रहे, तो प्रजा बड़े सुखपूर्वक रह
सकती हैं । इसलिये इन दोनों राज्योंमें से वैराज्य ही अच्छा तथा द्वैराज्य
अधिक बुरा होता है, यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ ७ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ८ ॥ पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्य-
योगक्षेमममात्यावग्रहं वर्तयेतेति ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको मानता ॥ ८ ॥ क्योंकि
द्वैराज्य, पिता पुत्र तथा दो भाइयोंके परस्पर दायभागको झगडा होनेपर ही
होसकता है, और उनका योग क्षेम समान ही होता है, इसलिये राज्यकार्यकी
चिन्ता करने वाले अमात्याके द्वारा यह झगडा शीघ्र ही शान्त किया जासकता
है । इसलिये द्वैराज्यमें कोई बड़ा दोष नहीं ॥ ९ ॥

वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य नैतन्ममेति मन्यमानः कर्श-
यत्पवाहयति ॥ १० ॥ पण्यं वा करोति ॥ ११ ॥ विरक्तं वा
परित्यज्यापगच्छतीति ॥ १२ ॥

परन्तु वैराज्यमें, जीवित शत्रुको ही उच्छिन्न करके, उमसे बलपूर्वक
उसके राज्यको छीनकर विजिगीषु 'यह मेरा नहीं है' ऐसा माननाहुआ उसके
दण्ड (जुर्माना) तथा कर (टक्स) आदिक द्वारा बहुत बुरा पहुचता है,
दूसरी जगह लेजाता है ॥ १० ॥ अथवा अच्छा मून्ध लेकर जिन किर्दिके
की हाथ घेच डालता है ॥ ११ ॥ या अपनेमें प्रजाओंको विरक्त जातकर,
उसके सर्वस्वको अपहरण करके फिर उसे छोड़कर चला जाता है ॥ १२ ॥

अन्धश्रलितशास्त्रो वा राजेति ॥ १३ ॥ अशास्त्रचक्षुरन्धो
यत्किंचनकारी दृढामिनिवेशी परप्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोप
हन्ति ॥ १४ ॥ चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राःचलितमतिर्भवति
शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः ॥ १५ ॥

अन्ध (शास्त्रोंका अध्ययन न करने वाला, अर्थात् जिसने शास्त्रोंका
अध्ययन नहीं किया है), तथा चलितशास्त्र (शास्त्रोंका अध्ययन करके भी
जो उसके अनुकूल आचारण नहीं करता), इन दोनों राजाओंमें से कोनसा
राजा, प्रजाके लिये अधिक श्रेयकर (कल्याण करने वाला) होता है, इस
बानका भय निरूपण किया जायगा ॥ १३ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका
मत है, कि शास्त्र रूची चक्षुभोसे दीन होनेके कारण अंधा राजा बिना विचारे
हा कार्य करने वाला, हठपूर्वक दुष्कर्म करनेके लिये आग्रह करने वाला, या
दूसरेकी बुद्धिके अनुसार कार्य करने वाला होकर अन्यायसे राज्यको नष्ट
करेता है ॥ १४ ॥ चलितशास्त्र (शास्त्रोंको जानकर भी उनपर आचरण न
करने वाला) राजा तो, जिस विषयमें शास्त्रे चलितमति होजाता है;
अर्थात् शास्त्रमे विरुद्ध चलता है, यही सरलतासे अनुनय विनय करके उसे
उधरसे रोका जासकता है । इसलिये अन्ध राजासे चलितशास्त्र राजा उत्तम
होता है ॥ १५ ॥

नेति कौटिल्यः ॥ १६ ॥ अन्धो राजा शक्यते सहायसंपदा
यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति ॥ १७ ॥ चलितशास्त्रस्तु
शास्त्रादन्यथामिनिषिष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्ती-
ति ॥ १८ ॥

परन्तु आचार्य कौटिल्य इस मतको नहीं मानता ॥ १६ ॥ क्योंकि
अन्ध राजाको, अमात्य आदिकी हितकारी सहायक बुद्धिके अनुसार जिधर
चाहे उधर भ्रष्टेसे अच्छे मार्गपर सरलतासे चलाया जासकता है ॥ १७ ॥
परन्तु चलितशास्त्र राजा तो शास्त्रसे विरुद्ध करनेमें ही दृढबुद्धि होकर (अर्थात्
शास्त्रको जानकर भी जानबूझकर उसके विरुद्ध आचरण करनेका हठ रखने
वाला होकर), अन्यायसे अपने राज्य और अपने भाषको भी नष्ट कर
डालता है ॥ १८ ॥

व्याधितो नवो वा राजेति ॥ १९ ॥ व्याधितो राजा राज्यो-
पघातमेमात्स्यमूलं प्राणाम्बाधं वा राज्यमूलमघामोति ॥ २० ॥

नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिः प्रकृतिरञ्जनो-
पकारैश्चरतीत्याचार्याः ॥ २१ ॥

अथ व्याधिप्रस्त और नये अभिषिक्त (अभिषेक कियेहुए) राजा में से कौनसा उत्तम होता है, इस बानका निरूपण किया जायगा ॥ १९ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि व्याधिप्रस्त राजा, अमात्यमूलक (राजाका भय न होनेके कारण निरंकुश होकर काम करने वाले अमात्योंके द्वारा उत्पन्न हुए २) राज्यनाशको प्राप्त होता है; अथवा राज्यमूलक (अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा होनेउ ले, अपने) प्राणनाशको प्राप्त करता है । तात्पर्य यह है, कि व्याधित राजाके अमात्य आदि या तो उसके राज्यको नष्ट करदेते हैं, या उसे ही मार डालते हैं ॥ २० ॥ नया अभिषिक्त राजा तो, शास्त्रोंके अपने राजधर्मके अनुष्ठान, कौशलप्रजाकी सहायता करने, कर छोड़ने, दान देने, सत्कार करने और अन्य प्रजाहितकारी कर्म (बागु कुंए आदि धनवाना) करनेसे, प्रजाओंमें अनुराग उत्पन्न करने वाले उपायोंके द्वारा व्यवहार करता है । इसलिये व्याधिप्रस्त और नये राजामें से, नया राजा उत्तम समझा जाता है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राज-
प्रणिधिमनुवर्तयति ॥ २३ ॥ नवस्तु राजा बलावर्जितं ममेदं राज्य-
मिति यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि व्याधिप्रस्त राजा, पहिले क्रमके अनुसार ही राजकीय व्यापारोंको बराबर चलाता रहता है ॥ २३ ॥ किन्तु मया राजा अपने बलसे प्राप्त कियेहुए राज्य को, इसका मैंने स्वयं संग्रह किया है, ऐसा मानताहुआ इच्छानुसार स्वतन्त्रता के साथ भोगता है । अर्थात् उस राज्यके साथ मनमाना वर्ताव करता है ॥ २४ ॥

सामुत्थयिकैरवगृहीतो वा रज्योपघातं मर्षयति ॥ २५ ॥
प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ २६ ॥ व्याधिते विशेषः
पापरोग्यपापरोगी च ॥ २७ ॥

अथवा जब अपनी उन्नति करने वाले साथी राजाओंसे घेरा जाता है, तो राज्यके नाशको सहन करलेता है, अर्थात् उसका प्रतीकार नहीं करसकता, और उन राजाओंके द्वारा उस राज्यको नष्ट होता देख, उसकी उपेक्षा करदेता है ॥ २५ ॥ तथा प्रजाओंमें, खेद न होनेके कारण, शत्रुओंके द्वारा

बनायास ही उत्पन्न दिया जाता है, अर्थात् नष्ट करा दिया जाता है । ('सुत्रः समुच्छेत्तु' इसके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'सुप्रमुच्छेत्तु' भी पाठ है । अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ २६ ॥ इसलिये नये राजाकी अपेक्षा व्याधिग्रस्त राजा ही उत्तम होता है । परन्तु यह विशेषता सामान्य व्याधिसे ग्रस्त राजामें ही समझनी चाहिये । क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा दो प्रकारके होसकते हैं, एक पापरोगी (कुष्ठ [कोढ़] आदिके रोगीको पापरोगी कहते हैं) और दूसरे अपापरोगी (साधारण व्याधिसे ग्रस्त राजा) । इनमें से अपापरोगी राजामें ही यह उपयुक्त विशेषता समझनी चाहिये ॥ २७ ॥

नयेऽप्यभिजातोऽनभिजात इति ॥ २८ ॥ दुर्बलोऽभिजातो बलवानभिजातो राजेति ॥ २९ ॥ दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रेणोपगच्छन्ति ॥ ३० ॥ बलवतश्चानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेनेत्याचार्याः ॥ ३१ ॥

नये राजाओंमें भी उच्च कुलका राजा उत्तम होता है या नीच कुलका ? ॥ २८ ॥ तथा इनमें से भी उच्च कुलका दुर्बल राजा उत्तम होता है, या नीच कुलका बलवान् राजा ? इसका अप विचार किया जायगा ॥ २९ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि उच्चकुलोत्पन्न दुर्बल राजाके अमात्य आदि प्रकृतिजन तथा प्रजाजन, उसकी दुर्बलताके कारण बड़ी कठिनतासे उसके पक्षमें होते हैं । अर्थात् उन्हें अनुकूल बनानेके लिये, दुर्बल होनेके कारण राजाकी बड़ी कठिनाईयाँ उठानी पड़ती हैं ॥ ३० ॥ परन्तु नीचकुलोत्पन्न भी बलवान् राजाके बलके दृष्टिके कारण बड़ी सरलतासे ही सम्पूर्ण अमात्य आदि प्रकृतिजन, उसकी अनुकूलताको स्वीकार करलेते हैं, अर्थात् दक्षिण ही उसके अनुरागी बनजाते हैं, इसलिये दुर्बल अभिजात राजाकी अपेक्षा बलवान् अनभिजात राजाकी ही उत्तम समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति ॥ ३३ ॥ बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ ३४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ ३२ ॥ क्योंकि जो राजा उच्च कुलोत्पन्न हो, वह चाहे दुर्बल भी हो, प्रकृतिजन अपने आपही उसके आगे झुक जाते हैं, अर्थात् स्वयं ही उसका आश्रय लेलेते हैं । क्योंकि ऐश्वर्यकी योग्यता उच्चकुलोत्पन्न राजाका ही अनुवर्तन करती है । तापपुं

क्योंकि बुधित राजाको उसके अमात्य आदि हो बुधित होकर नष्ट करवाएते हैं; और कामी राजा तो अपने बाहरके शत्रु या व्याधियोंसे ही नष्ट होता है ॥ ९ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ १० ॥ सत्पुरुषाचारः कोपो घैरायतन-
मवज्ञातवधो भीतमनुष्यता च ॥ ११ ॥ नित्यश्च कोपेन संबन्धः
पापप्रतिषेधार्थः ॥ १२ ॥

परन्तु इस उपर्युक्त मतको भारद्वाज अर्थात् द्रोणाचार्य मान्य नहीं समझते । सारपर्य यह है कि ये काम और क्रोधको दोष नहीं मानते ॥ १० ॥ क्योंकि कोप करना, श्रेष्ठ पुरुषोंका ही आचार अर्थात् धर्म है । कोप करनेसे शत्रुओंका प्रतीकार होता है, दूसरेसे कियेहुए तिरस्कारका भी बदला इसीके द्वारा लिया जाता है, और मनुष्य क्रोधी पुरुषकी बुलाई करमेने करते रहते हैं ॥ ११ ॥ तथा कोई भी पुरुष सदाके लिये क्रोधको नहीं छोड़ सकता, क्योंकि क्रोधके ही द्वारा पापी पुरुषोंका निमज किया जाकता है ॥ १२ ॥

कामः सिद्धिलाभः, सान्तरं त्यागशीलता संप्रियमानश्च
॥ १३ ॥ नित्यश्च कामेन संबन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थ
इति ॥ १४ ॥

इसी प्रकार काम भी सिद्धिलाभ अर्थात् सुखोंका देतु होता है । और इसीके कारण पुरुष यथार्थ बोलने वाला अर्थात् मधुरभाषी, त्यागी, तथा सबसे मियभाव रखने वाला अर्थात् सौम्य होजाता है ॥ १३ ॥ तथा अपने कियेहुए कार्योंका फलोपभोग करनेके लिये, प्रत्येक पुरुषका कामके साथ सम्बन्ध होना अवर्जनीय है । सारपर्य यह है, कि अपने कामोंका फल भोगनेके लिये, कामका अवलम्बन करना प्रत्येक पुरुषके लिये अवश्यम्भावी है ॥ १४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च
कोपः ॥ १६ ॥ परिभवो द्रव्यनाशः पाटञ्चरशूतकारलुब्धकगाय-
कवादकैश्चानर्थैः संयोगः कामः ॥ १७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाजके इस उपर्युक्त मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १५ ॥ क्योंकि कोप और काम कभी गुण नहीं होसकते, ये अनेक महाम अनर्थोंके उदरज करने वाले हैं; कोपके कारण मनुष्य सबका द्वेषी होजाता है, अर्थात् सब उससे द्वेष या उदरकी निन्दा करने लगते हैं;

उसके अनेक शत्रु उत्पन्न होजाते हैं; और सदा ही उसके पीछे दुःख छोरे रहते हैं । (किसी २ पुस्तकमें 'शत्रुवेदनमनर्थस्य संयोगो दुःखसासङ्गश्च' इस प्रकारका सूत्रपाठ है । परन्तु प्राचीन व्याख्याकारोंने 'अनर्थस्य संयोगः' इस पदको सूत्रका अङ्ग नहीं माना ॥ १६ ॥ इसी प्रकार कामके कारण भी पुरुषका सर्वत्र तिरस्कार होता है; द्रव्यों (धन आदि) का भाग होजाता है; तथा चोर जुआरी, शिकारी और गाने बजाने वाले अनर्थकारी व्यक्तियोंके साथ सदा सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है । (कामसे उत्पन्न होनेके कारण ही इनको यहाँ 'काम' शब्दसे कहागया है) ॥ १७ ॥

तयोः परिभवाद्द्वेष्यता गरीयसी ॥ १८ ॥ परिभूतः स्वैः परै-
श्चापगृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति ॥ १९ ॥ द्रव्यनाशाच्छत्रु-
वेदनं गरीयः ॥ २० ॥ द्रव्यनाशः कोशावाधकः ॥ २१ ॥ शत्रु-
वेदनं प्राणावाधकमिति ॥ २२ ॥

कामसे उत्पन्न होनेवाले और क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंमें से कामजन्य परिभव दोषकी अपेक्षा क्रोधजन्य द्वेष्यता रूप दोष अधिक दानिकर होता है ॥ १८ ॥ क्योंकि तिरस्कृत पुरुष, अपने और पराये आश्रमियोंके द्वारा कभी व कभी अनुगामी बना ही लिया जाता है परन्तु जो सबका द्वेष्य होता है, अर्थात् जिससे सब ही द्वेष करते हैं, उसका तो सर्वथा उच्छेद ही करदिया जाता है । इसलिये तिरस्कृत होनेकी अपेक्षा द्वेष्य होना अधिक बुराकर है ॥ १९ ॥ द्रव्यनाश होजानेकी अपेक्षा शत्रुओंका पैदा होजाना अधिक दानिकर होता है ॥ २० ॥ क्योंकि द्रव्यका भाग होना केवल कोशमें ही पाया पहुँचाने वाला होता है उन्में प्राणोंका भय नहीं; ॥ २१ ॥ परन्तु शत्रुओंका पैदा होजाना, प्राणोंको भी संकटमें डालने वाला होता है ॥ २२ ॥

अनर्थसंयोगाद्दुःखसंयोगो गरीयान् ॥ २३ ॥ अनर्थसंयोगो
मुहूर्तभ्रीतिकरो दीपेक्षेशकरो दुःखानामासङ्ग इति ॥ २४ ॥
तस्मात्कोपो गरीयान् ॥ २५ ॥

चोर जुआरी आदि अनर्थकारी व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध होनेकी अपेक्षा, दुःखोंके साथ सम्बन्ध होना अधिक बुराकर होता है ॥ २३ ॥ क्योंकि चोर जुआरी आदिके साथ सम्बन्ध, परिणाममें दुःखशयो होनेपर भी थोड़े समयके लिये अवश्य ही शसधताको उत्पन्न करने बाधा होता है; किन्तु दुःखोंके साथ सम्बन्ध, लगातार होता ही होता पहुँचाता है । (किसी १

क्योंकि कुपित राजाको उसके भ्राता आदि ही कुपित होकर नष्ट कर डालते हैं; और कामी राजा तो अपने साइरके शत्रु या ग्नाथियोंसे ही नष्ट होता है ॥ ९ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ १० ॥ सत्पुरुषाचारः कोपो वैरायतन-
मवज्ञातवधो भीतमनुष्यता च ॥ ११ ॥ नित्यश्च कोपेन संबन्धः
पापप्रतिपेघार्थः ॥ १२ ॥

परमं इस उपर्युक्त मतको भारद्वाज अर्थात् द्रोणाचार्य मान्य नहीं समझते । तात्पर्य यह है कि वे काम और क्रोधको दोष नहीं मानते ॥ १० ॥ क्योंकि कोप करना, श्रेष्ठ पुरुषोंका ही आचार अर्थात् धर्म है; कोप करनेसे शत्रुओंका प्रतीकार होता है; दूसरेसे कियेहुए तिरस्कारका भी बदला इसीके द्वारा लिया जाता है; और मनुष्य क्रोधी पुरुषकी सुराई करनेमें डरते रहते हैं ॥ ११ ॥ तथा क्रोधी भी पुरुष सदाके लिये क्रोधको नहीं छोड़ सकता, क्योंकि कोपके ही द्वारा पापी पुरुषोंका निग्रह किया जावता है ॥ १२ ॥

कामः सिद्धिलाभः, सान्त्वं त्यागशीलता संनियमाश्च
॥ १३ ॥ नित्यश्च कामेन संबन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थं
इति ॥ १४ ॥

इसी प्रकार काम भी सिद्धिलाभ अर्थात् सुखोंका हेतु होता है । और इसीके कारण पुरुष यद्यार्थ ढोलने वाला अर्थात् मधुरभाषी, स्थायी, तथा सबसे मियभाव रखने वाला अर्थात् सौम्य होजाता है ॥ १३ ॥ तथा अपने कियेहुए कार्योंका फलोपभोग करनेके लिये, प्रत्येक पुरुषका कामके साथ सम्बन्ध होना अवर्जनीय है । तात्पर्य यह है, कि अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये, कामका अवलम्बन करना प्रत्येक पुरुषके लिये अवश्यम्भावी है ॥ १४ ॥

नेति कौटिल्यः ॥ १५ ॥ द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च
कोपः ॥ १६ ॥ परिभवो द्रव्यनाशः पाट्यचरशूतकारलुब्धकमाय-
कवादकैश्चानर्थैः संयोगः कामः ॥ १७ ॥

परमं कौटिल्य आचार्य भारद्वाजके इस उपर्युक्त मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १५ ॥ क्योंकि कोप और काम कभी गुण नहीं होसकते, वे अनेक महान् अनर्थोंके उरपन्न करने वाले हैं; कोपके कारण मनुष्य सबका द्वेषी होजाता है, अर्थात् सब उससे द्वेष या उसकी निन्दा करने लगते हैं;

पुस्तकमें 'मुहूर्त्तप्रतीकारः' के स्थानपर 'मुहूर्त्तप्रतीकारः' पाठ है । उसका अर्थ करना चाहिये—अनर्थ्य पुरुषोंके साथ सम्बन्धका शीघ्र ही प्रतीकार किया जासकता है, परन्तु दुःखोंका संसर्ग, धिरकाल तक छेदाकर होता है) ॥ २४ ॥ इसलिये कामजन्य दोषोंकी अपेक्षा कोपजन्य दोषोंके अधिक कष्टकर होनेसे, कामके मुकाबलेमें क्रोधको ही अधिक महत्त्व देना चाहिये । अर्थात् कामकी अपेक्षा क्रोधसे अधिक हानि होसकती है, इसलिये क्रोधसे बहुत बचकर रहना चाहिये ॥ २५ ॥

वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति ॥ २६ ॥ वाक्पारु-
ष्यार्थदूषणयोर्वाक्पारुष्यं गरीय इति विशालाक्षः ॥ २७ ॥ परुष-
मुक्तो हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति ॥ २८ ॥ दुरुक्तशल्यं
हृदि निखातं तेजःसंदीपनमिन्द्रियोपतापि चेति ॥ २९ ॥

पहिले कहेहुए कोपजन्य त्रिवर्गके गुरु लघुभावका अर्थ निरूपण करते हैं—कोपज त्रिवर्ग इस प्रकार है—वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और दण्डपारुष्य ॥ २६ ॥ आपार्य विशालाक्षका मत है, कि वाक्पारुष्य और अर्थदूषण इन दोनोंमें से वाक्पारुष्य ही बलवान् है ॥ २७ ॥ क्योंकि अपने तिरस्कारको सहन न काने वाले किसी पुरुषके साथ कठोर वाक्योंका व्यवहार किया जानेपर वह अवश्य ही कठोरताका व्यवहार करने वाले पुरुषपर अपने तेजके द्वारा आक्रमण करता है ॥ २८ ॥ दुर्वचन (कठोर वाक्य) रूपी शल्य (घाव=तीर), हृदयमें गड़ाहुआ, आन्तरिक तेजको दीप्त करने वाला और इन्द्रियोंको संताप पहुंचाने वाला होता है । इसलिये अर्थदूषणकी अपेक्षा वाक्पारुष्यको ही अधिक बलवान् अर्थात् कष्टकर या हानिकर समझना चाहिये ॥ २९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३० ॥ अर्थपूजा वाक्शल्यमपहन्ति, वृत्ति-
विलोपस्त्वर्थदूषणम् ॥ ३१ ॥ अदानमादानं विनाशः परित्यागो
वार्थस्येत्यर्थदूषणम् ॥ ३२ ॥

परन्तु कौटल्य आपार्य विशालाक्षके इस मतको प्रायः नहीं समझता ॥ ३० ॥ वह कहता है कि अर्थके द्वारा कियाहुआ संस्कार, दुर्वचन रूपी शल्यको नष्ट करदेता है । परन्तु वाणी द्वारा कीहुई पूजा अर्थदूषणको नहीं हटा सकती । किसीकी जीविकाका भारना ही अर्थदूषण कहाता है । प्रियवचन बोलनेपर भी जीविकाका विघात पूरा नहीं किया जासकता ॥ ३१ ॥ अर्थदूषण धार प्रकारका होता है, अदान (कार्य परनेपर भी कर्मपारीका धेतव्य न

देना), आदान (दण्ड आदिके द्वारा धन ग्रहण करना), विनाश (देनाको पीड़ा पहुचाना), और अर्थका परित्याग (अर्थात् रक्षा करने योग्य अर्थकी रक्षा न करना) । इन पूर्वोक्त युक्तिगोले वाक्पारुष्यकी अपेक्षा अर्थदूषणको ही बलवान् समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीय इति पाराशराः ॥ ३३ ॥
अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ३४ ॥ अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते
॥ ३५ ॥ तस्योपघातो गरीयानिति ॥ ३६ ॥

पाराशर (पराशरके अनुयायी) आचार्योंका सिद्धान्त है, कि अर्थ-दूषण और दण्डपारुष्यमें से अर्थदूषण ही बलवान् होता है ॥ ३३ ॥ क्योंकि धर्म और काम दोनों अर्थमूलक ही होते हैं । अर्थात् इन दोनोंका अर्थपर ही निर्भर है ॥ ३४ ॥ लोकनिर्वाह भी अर्थके ही कारण हो सकता है, तात्पर्य यह है, कि ससारमें हरतरहके व्यवहारके लिये धनकी यही आवश्यकता रहती है ॥ ३५ ॥ इसलिये उसका (अर्थका), उपघात (दूषण) होना अत्यन्त कष्टकर या आपत्जनक होता है । अतएव अर्थदूषण और दण्डपारुष्यमें अर्थ दूषणको ही बड़ा समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ सुमहताप्यर्थेन न कश्चन शरीर-
विनाशमिच्छेत् ॥ ३८ ॥ दण्डपारुष्याच्च तमेव दौपमन्येभ्यः
प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ इति कोपजस्त्रिनर्गः ॥ ४० ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य पाराशर आचार्योंके इस मतको युक्ति सगत नहीं समझता ॥ ३७ ॥ वह कहता है कि महान अर्थ प्राप्तिके द्वारा भी कोई पुरुष अपने शरीरका नाश नहीं चाहता अर्थात् अत्यधिक धन प्राप्तिके बदलेमें अपने आपको कोई नष्ट नहीं करना चाहता ॥ ३८ ॥ प्रत्युत दण्डपारुष्यसे अपने आपको बचानेके लिये पुरुष उतना धन अवश्य दे झालता है । इसलिये अर्थदूषणकी अपेक्षा दण्डपारुष्यको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ यहा तक कोपजन्य त्रिवर्गका निरूपण कर दिया गया ॥ ४० ॥

कामजस्तु ॥ ४१ ॥ मृगया शूतं स्त्रियः पानमिति चतुर्वर्गः
॥ ४२ ॥ तस्य मृगयायूयोर्भृगया गरीयसीति पिशुनः ॥ ४३ ॥

अब इसके आगे कामजन्य चतुर्वर्गका निरूपण किया जावेगा ॥ ४१ ॥ कामजन्य चतुर्वर्ग इसप्रकार है—मृगया (शिकार संभ्रान), पूत (जुआ), स्त्री, और पान (शराब आदिका पीना) ॥ ४२ ॥ कामजन्य इस चतुर्वर्गके

मृगया और पूत नामक दोषोंमें से मृगया दोष ही अधिक कष्टकर होता है। यह पिशुन अर्थात् नारद आचार्यका मत है ॥ ४३ ॥

स्तेनामित्रव्यालदावप्रस्खलनभयद्विद्योहाः क्षुत्पिपासे च प्राणावाधस्तस्याम् ॥ ४४ ॥ शूते तु जितभेदाक्षविदुषा यथा जयत्से-
नदुर्योधनाभ्यामिति ॥ ४५ ॥

यद्योकि मृगयामें, चोर, शत्रु, हिंसक जागरे, जंगलकी भाग तथा गिरने (चलनेमें कभी २ असापधानीके कारण गिरजाना=प्रस्खलन) आदिसे सदा ही भय रहता है, मिश्रम (दिनाभोंकी वास्तविक परिस्थितिकी भूलकर भटकते फिरना), तथा भूत प्यास बहुत तंग करती है, और कभी २ प्राणोंपर भी भावनेकी है ॥ ४४ ॥ परन्तु शूरी जो चढ़िया खिलाड़ी होता है, वह जीत ही लेता है, जैसे जयत्सेन और दुर्योधनने नल और युधिष्ठिरको शूरीमें जीत ही लिया था। तात्पर्य यह है, कि शूरीमें चढ़िया खिलाड़ीकी जीत होही जाती है। इसलिये शूरीकी अपेक्षा शिकारमें बहुत अधिक कष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४५ ॥ तयोरप्यन्यतरपराजयोऽस्तीति
नलपुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातम् ॥ ४७ ॥ तदेव विजितद्रव्यमा-
मिषं वैरवन्धश्च ॥ ४८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य पिशुनके इस सिद्धान्तको युक्ति संगत नहीं समझता ॥ ४६ ॥ क्योंकि जिस तरह मृगयामें अनेक दोष हैं, इसी तरह पूतमें भी दोषोंकी कमी नहीं है, शुभा खेलने वालोंमें भी एकका पराजय अवश्य ही होता है, जैसे नल और युधिष्ठिर शूरीमें हार गये थे। तात्पर्य यह है, कि दोनोंमें से जैसे एकका जय होता है, वैसे ही दूसरेका पराजय भी होता है, परन्तु यह नियत नहीं कि इसीका जय और इसीका पराजय होगा, इसलिये पूत भी कष्टकर ही होता है ॥ ४७ ॥ तथा शूरीमें जीताहुभा धन, पराधे मांसके समान होता है, और जिसका धन जीत लिया जाता है, वह जीतने वालेके द्वेष भी करने लगता है ॥ ४८ ॥

सतोऽर्थस्य विप्रतिपत्तिरसतथार्जनमप्रातिशुक्तनाशो मूत्रपुरी-
पधारगयुष्टुक्षादिमिथश्च व्याधिलाभ इति शूतदोषाः ॥ ४९ ॥

तथा पहिलेसे धर्मपूर्वक कमायेहुए धनका तुटे स्थानमें उपयोग होता है, तथा शूरीमें अधर्म पूर्वक नये धनका समझ किया जाता है, समझ किया हुआ भी वह धन बिना भोग किये ही नष्ट होजाता है, अर्थात् शूरीमें फिर

हार दिया जाता है। पेशाब तथा पसाने आदिके रोकने और भूख आदिके रोकनेसे बीमारी भी होजाती है। तात्पर्य यह है कि जुबारी, पेशाब पसानेकी रोकेंहुए तथा भूख आदिको भी रोकेंहुए, खेलनेके कारण लगातार चेंटे रहते हैं, इस प्रकार करनेसे उन्हें अनेक बीमारियां होजाती हैं, यह सब जुएका ही दोष है। इसलिये जुएको भी कम कष्ट देने वाला न समझना चाहिये ॥ ४९ ॥

मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले स्थिते च
काये लक्षपरिचयः कोपभयस्थानेहितेषु च मृगाणां चित्तज्ञानम-
नित्ययानं चेति ॥ ५० ॥

प्रत्युत मृगया में ये निम्नलिखित गुण भां होते हैं:—व्यायाम (शारी-
रिक परिश्रम), कफ और पित्त का नाश, मांस का न बढ़ना, पसीना निकलने से
देह का हलका होजाना, चलते हुए तथा स्थिर शरीर पर लक्ष (विशाना मारने)
का अभ्यास होना, क्रोध तथा भय के कारण होनेवाली भिन्न २ प्रकार की चेष्टाओं में
जंगली जानवरों के चित्त का ज्ञान होना और किसी २ विशेष ऋतु में ही
मृगया का होना, ये सब ऐसे गुण हैं जिनका वृत्त में होना सम्भव नहीं,
इस लिये मृगया की अपेक्षा वृत्त को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥५०॥

वृत्तस्त्रीव्यसनयोः कैतवव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ५१ ॥
सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः
॥ ५२ ॥ कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः कुप्यति ॥ ५३ ॥

कौणपदन्त अर्थात् भीष्म आचार्य का मत है कि वृत्तव्यसन और स्त्री-
व्यसन में से वृत्तव्यसन ही अधिक कष्टकर होता है ॥ ५१ ॥ क्योंकि जुबारी
रात में भी दीपक का प्रकाश करके तथा अपनी माता के मरजाने पर भी बराबर
जुभा खेलता ही रहता है (इसका तात्पर्य यह है कि जब स्वाभाविक सूर्य का
प्रकाश नहीं रहता, तब भी जुबारी दीवे आदि के कृत्रिम प्रकाश में जुभा
खेलता है, और एक ओर माता के मरजाने पर भी उसकी औष्वंदेहिक क्रिया
की कुछ पूर्वाह न करके बराबर जुभा खेलता रहता है, यह व्यसन बहुत ही
पुरा होता है) ॥ ५२ ॥ तथा किसी तरह का कार्यसंकट आपढ़ने पर उससे
कोई कुछ पृथक्ता है तो वह कुपित होने लगता है ॥ ५३ ॥

स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मगोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थप-
रिश्रमः ॥५४॥शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम् ॥५५॥उवांशु-

दण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवस्रावयितुं वेति ॥ ५६ ॥

स्त्रीव्यसनो में तो, स्त्रीव्यसनी राजा से खानभूमि में, वस्त्र आदि धारण करने के समय तथा भोजन आदि के समय प्रार्थ अर्थ के सम्बन्ध में पूजा या बतलाया जासकता है ॥ ५४ ॥ तथा जिस स्त्री पर राजा आसक्त हो उसको भी राजा के कल्याणकारी व्यवहार में अमात्य आदि के द्वारा लगाया जा सकता है ॥ ५५ ॥ अथवा यदि वह स्त्री मन्त्रियों के कथनानुसार राजा के कल्याण की ओर ध्यान न देवे, तो उसे उपांशुदण्ड से (खुपचाप छिपकर मार डालने से) नष्ट किया जा सकता है । यदि उसे नष्ट भी न किया जा सके तो सविष औषधि आदि देने के कारण उसका दुर्दृष्ट व्याधि के बहाने से उसे और किसी स्थान पर लेजाया जा सकता है । तात्पर्य यह है कि स्त्रीव्यसन होने पर भी उसका उक्त रीति से परिहार हो सकता है । इसलिये स्त्रीव्यसन की अपेक्षा द्यूतव्यसन को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ५६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ सप्रत्यादेयं द्यूतं निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनमदर्शनं कार्यनिर्वेदः कालातिपातनादनर्थधर्मलोपश्च तन्त्रदौर्बल्यं पानानुबन्धश्चेति ॥ ५८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य कीणपदन्व (भीष्म) के इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ५७ ॥ क्योंकि जुए में जो चीज हार दी जाने, वह फिर जुएके द्वारा जीती भी जासकती है, परन्तु स्त्रीव्यसनमें ऐसा नहीं होसकता, वहाँ तो जो चीज एक बार हाथसे निकलगई, उस वह निकली ही समझनी चाहिये । इसके अतिरिक्त स्त्रीव्यसनी राजाका मन्त्रियोंको दर्शनभी नहीं होता; और इसी कारणसे फिर उन लोगोंका कार्य करनेमें टरसाह भी नहीं रहता; इसी प्रकार कालान्तरमें जाकर अर्थ और धर्म दोनोंकी हानि होती है; राजपूतन्त्र दुर्बल होजाता है; और स्त्रीव्यसनमें स्त्रीरमण आदिके सहकारी मद्यपानका व्यवसन भी लगजाता है । इसलिये द्यूतव्यसनकी अपेक्षा स्त्रीव्यसनको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ५८ ॥

स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्रीव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५९ ॥
स्त्रीषु हि चालिश्यमनेकविधं निशान्तप्राणिधौ व्याख्यातम् ॥ ६० ॥
पाने तु शब्दादीनामिन्द्रियार्थानामुपभोगः प्रीतिदानं परिजन-
पूजनं कर्मश्रमवधयेति ॥ ६१ ॥

वातव्यधि (उद्व) आचार्यका मत है, कि स्त्रीव्यसन और मद्यपानव्यसनमेंसे स्त्रीव्यसनही अधिक कष्टकर होता है ॥ ५९ ॥ क्योंकि स्त्रियोंमें

बहुत तरहकी भूलोंकी होती है, वे अपने भर्त्ताओंका बंध तक करनेके लिये तरह २ के उपायोंकी रचना कर डालती हैं, इत्यादि अनेक खोजन्य बाधाओंका ब्याख्यात निराम्त प्रणयि (अधि. १, अध्या. २०, प्रक. १७) नामक प्रकरणमें अच्छी तरह कर दिया गया है । मद्यपानमें इन आपत्तियोंकी सम्भावना नहीं होती ॥ ६० ॥ मद्यपानमें तो इन्द्रियोंके विषय-भूत शब्द आदिका उपभोग ही किया जाता है । तात्पर्य यह है:—मद्यपान करनेसे चित्तकी एकाग्रता होजानेके कारण इन्द्रियोंके शब्द गन्ध रस आदि अर्थोंका अच्छा अनुभव होता है; प्रीति-दान (प्रेमका विस्तार), परिजनोंका सत्कार और अधिक कार्य करनेसे उत्पन्न हुई २ धकावट दूर होजाती है । इसलिये मद्यपान व्रसनकी अपेक्षा स्त्रीव्यसनकी अधिक दुःखदायी समझना चाहिये ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्म-
रक्षणं चान्तर्दारेषु विपर्ययो वा बाह्येष्वगम्येषु सर्वाञ्छितिः
॥ ६३ ॥ तदुभयं पानव्यसने ॥ ६४ ॥

पान्तु कौटल्य आचार्य चातुर्व्याधि (उद्धव) के इस सिद्धान्तको युक्ति-संगत नहीं समझता ॥ ६२ ॥ क्योंकि स्त्रीव्यसनमें, यदि वह अपनी विवाहिता स्त्रियोंमें ही परिमित हावे, तो पुत्रोंकी उत्पत्ति और उनकी सहायता से अपनी रक्षाका होना, यह बड़ा भारी लाभ है । यदि वह व्यसन गणिका आदि बाह्य स्त्रियोंमें होवे, तो यह लाभ नहीं होता; यदि अन्तर कुलीन स्त्रियोंमें होवे, तो राजाके सर्वस्वका ही नाश होजाता है; इसलिये बाह्य स्त्रियों और कुलीन स्त्रियोंमें आसक्ति होना ही स्त्रीव्यसनका दोष है ॥ ६३ ॥ पान्तु मद्यपान व्यसनमें ये दोनों ही दोष रहते हैं, अर्थात् पुत्र दिकी उत्पत्ति भी नहीं होती और सर्वस्वका नाश भी होजाता है । तथा इनके अतिरिक्त और भी अनेक दोष मद्यपानव्यसनमें हैं, इनका विवरण अगले सूत्रमें किया जाता है ॥ ६४ ॥

पानसंपत्-संज्ञानाशो ऽनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्वं
कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्तमित्रहानिः सद्भिर्वियोगो ऽनर्थ-
संयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थेषु प्रसङ्ग इति ॥ ६५ ॥

मद्यपान करनेसे निम्नलिखित दोष उत्पन्न होजाने हैं:—संज्ञा अर्थात् विवेक बुद्धिका लोप होजाता है, अनुन्मत्त पुरुषही उन्मत्तके समान होजाता है, अर्थात् जितके चित्तमें किसी तरहका भी विकार न हो मद्यपानसे उसका भी चित्त विकृत होजाता है; जीता दुष्ठा ही पुरुष मरे हुएके समान

निश्चेष्ट होजाता है; उसके छिपे हुए पापोंका पता लगाजाता है; शास्त्रज्ञान, शास्त्रज्ञानसे परिमार्जित बुद्धि, बल, धन और मित्र इन सबही पस्तुओंका नाश होजाता है, सज्जन पुरुषोंके साथ संसर्ग नहीं रहता; सर्वथा अनर्थकारी माने बजाने वाले आदिमियोंके साथ ही उठना बैठना रहता है; तथा धनको नष्ट करने वाले वाद्य और गीत आदिके चातुर्यमें ही आसक्ति रहती है; ये सब दोष हैं जो कि मद्यपानके साथ २ होजाते हैं । इसलिये स्त्रीव्यसनकी अपेक्षा मद्यपानको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ६५ ॥

शूतमद्ययोः शूतमेकेषाम् ॥६६॥ पणानिमित्तो जयः पराजयो वा प्राणिषु निश्चेतनेषु वा पक्षध्वेनेन प्रकृतिकोपं करोति ॥६७॥

शूत और मद्य इन दोनों व्यसनोंमें शूत ही अधिक बुरा होता है, यह किन्हीं आचार्योंका मत है ॥६६॥ क्योंकि पण (जुएमें बाजीपर लगाये हुए मद्यका नाम पण है, उस) के कारण होनेवाले जय और पराजय (जब बाजीपर लगाया हुआ धन अपने हाथमें आजाये तो जय, और दूसरेके हाथमें चला जावे, तो पराजय समझना चाहिये), प्राणी तथा अप्राणी विषयक दोनों प्रकारके जुओंमें परस्पर विरुद्ध दो पक्षोंका उद्भावन होनेसे प्रकृतियोंमें कोपको उत्पन्न करदेते हैं । सातवें यह है, कि जुभा खेलने वाले दो पक्षोंमें भवश्यही एक जीतने वाला और दूसरा हारने वाला पक्ष होता है, यह जय और पराजय, दोनों पक्षोंके पुरुषोंमें क्रोधको उत्पन्न करदेता है । मद्यमें यह बात नहीं, इसलिये मद्यकी अपेक्षा शूतको अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ६७ ॥

विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां शूतनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रहः पापिष्ठमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ६९ ॥

और विशेषकर साथ २ रहने वाले तथा ऐकमत्यले रहने वाले राजकुलोंका तो शूतके ही कारण परस्पर भेद होजाता है; और भेद होनेके कारण फिर उतका नाश होजाता है ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रह (जिस व्यसनमें अमङ्गल पुरुषोंका ही सरकार किया जावे, ऐसा) अर्थात् मद्यपानका व्यसन, अन्य सब ही व्यसनोंमें अत्यन्त पापिष्ठ है, क्योंकि इसका सेवन करनेसे सम्पूर्ण राज्यक्षम ही दुर्बल होजाता है; इस हालतमें राज्यकी उचित व्यवस्था नहीं कीजासकती । इसलिये अन्य अनेक आचार्य इसीको सब व्यसनोंमें अत्यधिक हानिकर समझते हैं । (इस सूत्रमें यद्यपि 'यह किन्हीं आचार्योंका मत है' इस अर्थको छोटन करनेके लिये 'अन्येषां' से 'अपरेषां' ऐसा कोई पद नहीं दीखता, परन्तु नवचन्द्रिका व्याख्यामें 'अन्पेफामिति' यह प्रतीक देकर इस अर्थको

प्रकट किया गया है । उसहीके अनुसार हमने भी वहाँपर उपर्युक्त अर्थ लिखा है । जो कि प्रकरणसे भी संगत मालूम होता है ॥ ६९ ॥

असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम् ।

व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ॥ ७० ॥

तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान् ।

परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥ ७१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके अष्टमे अधिकरणे पुरुषव्यसनवर्गस्तृतीयो अध्यायः ॥३॥

आदित एकोनविंशत्तस्रो अध्यायः ॥११९॥

काम और क्रोध दोनोंही, माने यजानेका व्यवसाय करने वाले असत्पुरुषोंके सत्कारके हेतु और सत्पुरुषोंके निग्रह अर्थात् तिरस्कारके हेतु होते हैं । दोषोंकी अधिकताके कारण दोनोंको ही महान व्यसन माना गया है, अर्थात् काम और क्रोध दोनों ही बहुत बड़े व्यसन हैं क्योंकि ये दोषोंसे भरे हुए हैं ॥ ७० ॥ इमलिधे धीर वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय राजाको चाहिये, कि वह मूलको नष्ट करने वाले (अर्थात् प्राणोत्तक सर्वस्वका ही नाश करने वाले), दुःखजनक काम और क्रोधका सर्वथा परित्याग करदे ॥ ७१ ॥

व्यसन(अधिकारिक) अष्टम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

१३०-१३२ प्रकरण ।

पीडनवर्ग, स्तम्भवर्ग और कोशसङ्गवर्ग ।

{ राष्ट्रपर आने वाली दैवी तथा मानुषी आपत्तियोंके समूहको पीडनवर्ग कहते हैं । राजकीय धनको राजातक न पहुँचने देनेका नाम 'स्तम्भवर्ग' और कोशके धनको कोशतक न पहुँचने देनेका नाम 'कोशसङ्गवर्ग' है । इस अध्यायमें तीन प्रकरणोंसे इन्हीं तीन यातोंका निरूपण किया जायगा ।

दैवंपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति ॥ १ ॥

राष्ट्रपर आने वाली दैवी आपत्ति पांच प्रकारकी होती है:—अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा मरक (महामारी) ॥ १ ॥

अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च ॥ २ ॥

शफ्वोपगमनं तार्थाप्राधमुदकपीडनमित्याचार्याः ॥ ३ ॥

इन सबमें एक दूसरेकी अपेक्षा, कौनसी आपत्ति अधिक कष्ट देने वाली, तथा कौनसी कम कष्ट देने वाली है, इस बातका अथ क्रमशः निरूपण किया जायगा। इस विषयमें अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है, कि अग्नि और जल से उत्पन्न होने वाली आपत्तियोंमें अग्निजन्य आपत्तिही अधिक कष्टकर होती है, क्योंकि आग लग जाने पर सरलतासे उसका कोईभी प्रतिकार नहीं किया जासकता, तथा आग सबही वस्तुओंको जलाकर भस्म कर डालती है ॥ २ ॥ परन्तु जलमें यह बात नहीं; क्योंकि जलके शीतल होनेसे उसका स्पर्श सख होनेके कारण, जलमें रहकरभी उससे अपना बचाव किया जासकता है; तथा नौका आदि साधनोंके द्वाराभी जलसे बचाव होसकता है। इस लिये जलजन्य आपत्तियोंकी अपेक्षा अग्निजन्य आपत्तिकोही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ ३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४ ॥ अग्निग्राममर्धग्रामं वा दहति ॥५॥

उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति ॥ ६ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४ ॥ क्योंकि अग्नि, किसी एकही गांवको या आधेही गांवको जला सकता है ॥ ५ ॥ परन्तु जलप्रवाहका वेग, सैकड़ों गांवोंको एक साथही बहा लेजाता है ॥ ६ ॥

व्याधिदुर्भिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितापसृष्टपरिचारकव्याया-
मोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति ॥ ७ ॥ दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति
हिरण्यपशुकरदायि चेत्याचार्याः ॥ ८ ॥

व्याधि और दुर्भिक्ष इन दोनों आपत्तियोंमेंसे व्याधिही अधिक कष्ट देनेवाला होता है, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है। क्योंकि व्याधिके कारण भरे हुए, व्याधिग्रस्त हुए २ तथा रोगी पुरुषोंकी परिचर्यामें लगे हुए होनेके कारण अन्य पुरुषभी कृपि आदि कार्योंको ठीक २ नहीं निवाह सकते। तारपर्यं यह है, कि व्याधिका प्रकोप होनेपर पुरुष, अपने कृपि आदि आवश्यक कार्योंको भी नहीं करसकते, अर्थात् व्याधि होनेसे कृपि आदि कार्यं ठीले पड़ जाते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु दुर्भिक्ष, आगे किये जाने वाले कार्यमें कोई बाधा नहीं डालता। तथा दुर्भिक्षके कारण धान्यके न होनेपर भी हिरण्य या पशुके रूपमें, राजाको कर दियाही जासकता है। इसलिये दुर्भिक्ष की अपेक्षा व्याधिकोही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये, यही प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ८ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ९ ॥ एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रती-
 त्थ ॥ १० ॥ सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति
 ११ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥ १२ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत
 ही मानता ॥ ९ ॥ वह कहता है कि व्याधि, किसी एकही प्रदेशमें पीड़ा
 हुंवा सकती है, अर्थात् जिस देशमें व्याधि हो, उससे उसही देशको हानि
 हुंवा सकती है, तथा औपधि आदिके द्वारा व्याधिका प्रतीकारभी अच्छी
 रह किया जासकता है ॥ १० ॥ परन्तु दुर्भिक्ष सम्पूर्ण देशको पीड़ा
 तुंचानेवाला होता है, और इसके कारण सबही प्राणियोंके जीवनभी संकटमें
 (इजाते हैं) । इसलिये व्याधिकी अपेक्षा दुर्भिक्षको ही अधिक कष्टपद समझना
 चाहिये ॥ ११ ॥ इसहीसे महामारीकी भी क्युता गुस्ताको समझ लेना
 चाहिये । अर्थात् अल्पधिक प्राणियोंके मरणका हेतु होनेके कारण, महामारी
 दुर्भिक्षकी भी अपेक्षा अधिक कष्टपद होती है ॥ १२ ॥

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति
 ॥ १३ ॥ मुख्यक्षयः कर्मानुष्ठानोपरोधधर्मत्याचार्याः ॥ १४ ॥

छोटे कार्यकर्ताओं(काम करनेवाले पुर्यों) और मुख्यकार्यकर्ताओं (काम
 करवानेवाले पुर्यों) मेंसे छोटे कार्यकर्ताओंका क्षय होना अधिक हानिकर होता है,
 क्योंकि काम करनेवाले आदिभियोंके न रहनेपर कार्यका योगक्षेम (न चलते
 हुए कार्यका प्रारम्भ करना=योग, और चलते हुए कार्यकी रक्षा करना=क्षेम,
 कहाता है) नहीं चलसकता ॥ १३ ॥ परन्तु मुख्यकार्यकर्ताओंका क्षय,
 केवल कामकी निगरानीमें ही रकावट डालता है । अर्थात् कार्य करानेवाले
 पुर्योंकी अनुपरिधतिमें भी, करनेवाले पुर्योंके रहनेके कारण वह कार्य हो
 ही सकता है । इसलिये मुख्यकार्यकर्ताओंकी अपेक्षा छोटेकार्यकर्ताओंका नाश
 होना अधिक हानिकर होता है; यह अनेक प्राचीन अचार्योंका मत है ॥ १४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ शक्यः क्षुद्रक्षयः प्रतिसंधातुं
 बाहुल्यात्क्षुद्रकाणान् मुख्यक्षयः ॥ १६ ॥ सहस्रेषु हि मुख्यो
 भयत्येको न वा सचप्रज्ञाधिक्यात्तदाश्रयत्वात्क्षुद्रकाणामिति ॥ १७ ॥

परन्तु कौटल्य, इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ १५ ॥
 यह कहता है, कि छोटे कर्मचारियोंकी कमीको, उनके समान काम करने-
 वालोंकी बहुत अधिक सख्या होनेके कारण दूसरे पुर्योंकी निवृत्तिके द्वारा
 पूरा किया जासकता है । परन्तु मुख्य कार्यकर्ताका क्षय होनेपर यह बात

नहीं होसकती ॥ १६ ॥ क्योंकि ऐसा मुख्य पुण्य, इत्रारोंमें पुरही मिलता है, या कभी २ वह भी नहीं मिलता, क्योंकि यह बल और बुद्धिके कारण सबसे अधिक या बढ़ा होनेसे सबही छोटे कार्यकत्ताओंका आश्रयभूत होना है, इसलिये उसका क्षय होनाही छोटे कार्यकत्ताओंकी अपेक्षा अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ १७ ॥

स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीड-
यत्यशक्यं च धारयितुम् ॥ १८ ॥ परचक्रं तु शक्यं प्रतियोद्धु-
मपसारेण संधिना वा मोक्षयितुमित्याचार्याः ॥ १९ ॥

यहांतक देवी आपत्तियोंका निरूपण करदिया गया, अब इसके भागे मानुष्य आपत्तियोंका निरूपण किया जायगा:—स्वचक्र (अपनेही देशकी राजशक्ति) और परचक्र (परदेशकी राजशक्ति), इन दोनोंमेंसे स्वचक्रही, सीमातीत दण्ड (जुमाना आदि) और कर (टैक्स) के द्वारा प्रजाको पीड़ा पहुंचाता है; तथा अपनेही देशकी राजशक्ति होनेके कारण इसका निवारण भी नहीं किया जासकता। अर्थात् जब अपना स्वामीही इतना कष्ट पहुंचाने लगे तो उसका प्रतीकार कौन करे ॥ १८ ॥ परन्तु परचक्रका प्रतीकार, उसका देश छोट देनेके द्वारा अथवा कुछ धन आदि देकर सन्धि करलेनेके द्वारा किया जासकता है। इसलिये परचक्रही अपेक्षा स्वचक्रको अधिक कष्टकर समझना चाहिये; यह सब अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १९ ॥

नेति कौटिल्यः ॥ २० ॥ स्वचक्रपीडनं प्रकृतिपुरुषमुख्यो-
पग्रहविघाताभ्यां शक्यते धारयितुमेकदेशं वा पीडयति ॥२१॥
सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलोपघातदाहविध्वंसनोपवाहनैः पीड-
यतीति ॥ २२ ॥

परन्तु कौटिल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ २० ॥ वह कहता है, कि स्वचक्रसे पहुंचाई हुई पीडाका, अमात्य आदि मुख्य पुरुषोंको अपने अनुकूल बनाने या उनका नाश करदेनेके द्वारा अच्छीतरह प्रतीकार किया जासकता है। तथा स्वचक्र, धनधान्य आदिसे सशक्त अपने किसी एक देशकोही पीड़ा पहुंचाता है ॥ २१ ॥ परन्तु परचक्र, धन आदि लटने, मारनेधाड़ने, भाग लगाकर भस्म करने, अन्य प्रकारोंसे नाश करने, तथा अपने देशसे निकाल देनेके द्वारा, सम्पूर्ण देशकोही पीड़ा पहुंचाता है; इसलिये स्वचक्रही अपेक्षा परचक्रकोही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः परा-
भियोगानावहति ॥ २३ ॥ राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुण-
भक्तवेत्तनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥

प्रकृतिविवाद (अमारय आदि प्रकृतियों का परस्पर झगड़ा) और राज-
विवाद (राजाओं का परस्पर झगड़ा), इन दोनों में से प्रकृतिविवाद ही अधिक
हानिकर होता है। क्योंकि यह अमारय आदि में परस्पर फूट डालने वाला,
तथा शत्रु के कार्यों को सहारा देने वाला होता है ॥ २३ ॥ परन्तु राजविवाद
अमारय आदि प्रकृतियों के दुगुने भेद तथा वेत्तन का और अन्य प्रजाजनों के
कर (दंड) आदि छोड़ देने का कारण होता है। तदर्थ यह है, कि राजविवाद
होने पर, अपनी प्रजाओं को सन्तुष्ट करने के लिये, ये उपयुक्त कार्य करने पड़ते
हैं। इनमें प्रजाकी भलाई ही होती है। इसलिये राजविवादकी अपेक्षा प्रकृति-
विवादकी ही अधिक हानिकर समझना चाहिये, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका
सिद्धान्त है ॥ २४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २५ ॥ शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमु-
ख्योपग्रहेण कलहस्थानापनयनेन वा चारयितुम् ॥ २६ ॥ विव-
दमानास्तु प्रकृतयः परस्परसङ्घर्षेणोपकुर्वन्ति ॥ २७ ॥ राज-
विवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायामसाध्य इति
॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इससिद्धान्तको युक्ति संगत नहीं
समझता ॥ २५ ॥ वह कहता है, कि प्रकृतिविवादको, अमारय अदि मुख्य
प्रकृतियोंके अनुकूल बनाने तथा कलहके कारणोंको हटा देनेसे, अच्छीतरह रोका
जासकता है ॥ २६ ॥ तथा परस्पर विवाद करते हुए प्रकृतिजन, एक दूसरेकी
स्पर्धासे राजाका उपकार ही करते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु राजविवाद, प्रजाओंकी
पीडा और उच्छेदके लिये होता है; अर्थात् प्रजाजनोंकी जितनी शक्ति या
समृद्धि होती है, वह सबही इस झगड़ेमें स्वाहा होजाती है। तथा राजविवा-
दको शान्त करनेके लिये, प्रकृतिविवादकी अपेक्षा दुगुना प्रयत्न करना पड़ता
है; इसलिये राजविवादकी ही प्रकृतिविवादसे अधिक हानिकर समझना चाहि-
ये ॥ २८ ॥

देशराजविहारयोः देशविहारस्त्रैकाल्येन कर्मकलोपघातं
करोति ॥ २९ ॥ राजविहारस्तु कारुशिलिपकुशीलववाग्जीवन
वैदेहकोपकारं करोतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥

देशविहार (साधारण प्रजाजनोकी फ्रीडा अर्थात् मनोविनोदके लिये हंसी खेलकूद आदिका करना) और राजविहार (राजक्रीडा अर्थात् राजाके मनोविनोदके लिये मित्र २ प्रकारके खेल आदिका किया जाना), इन दोनोंमें से देशविहार अधिक हानिकर होता है, क्योंकि प्रजाजनोके खेलकूदमें लग-जानेसे तीनों कालोंमें होने वाले कृषि भादि कार्योंका उच्छेद होजाता है। अर्थात् पहिले बोयेहुए खेतोंकी रक्षा नहीं होती, पंचमानमें और खेत बोए नहीं जाते, और भागे बोनके लिये भूमि तैयार नहीं कीजाती; इसप्रकार तीनों कालोंमें खेतीका नाश होता है। (इसीतरह अन्य कार्योंमें भी समस्त लेना चाहिये) ॥ २९ ॥ परन्तु राजविहार, कार (मोटे कारीगर बर्दई लुहार आदि), शिपरी (सूखे कार्य करनेवाले कारीगर सुनार आदि), कुशीलव (गाने वाले), वाग्जीवन (स्तुतिपाठ करनेवाले, भाट धारण आदि), रुनाजीवा (वेद्या), तथा चैदेहक (अन्य व्यापारी) भादि व्यक्तियोंका भवदन्त उपकार करने वाला होता है, तात्पर्य यह है, कि राजविहारके लिये जो सामान भादि तैयार कराये जाते हैं, या उसके भागे जैसे कार्यक्रम होते हैं, उनमें हस्तरहके कारीगर, गाने बजाने वाले तथा अन्य व्यापारियोंको विशेष लाभ होता है, इसलिये राजविहारकी अपेक्षा देशविहारको अधिक हानिकर समझना चाहिये, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ३० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति ॥ ३२ ॥ भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति ॥ ३३ ॥ राजविहारस्तु स्वयं बहुभक्ष स्वयंप्राहप्रणयपग्यागार-कार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३४ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको पुष्टिसंगत नहीं समझता ॥ ३१ ॥ वह कहता है, कि देशविहार, कार्य करनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेके लिये थोड़ा ही व्यय करता है; अर्थात् प्रजाजोका मनोविनोद थोड़े ही व्ययमें होजाता है ॥ ३२ ॥ तथा इतना व्यय करके नई उमंगसे भरेहुए उन प्रजाजोको, फिर अपने २ कृषि भादि कार्योंमें लगादेता है। अर्थात् मनोविनोदके अनन्तर वे पुरुष अच्छीतरहसे फिर अपने २ कार्योंमें लगजाते हैं ॥ ३३ ॥ परन्तु राजविहार स्वयं राजाके द्वारा तथा राजाके अल्प पिय पुरुषोके द्वारा, जनरक्षकी इच्छाके विरुद्ध उससे धन लेकर, पण्यशालासे तथा अतिरिक्त कार्योंको पूरा करनेके लिये रिधत आदिसे धन लेकर प्रजाको बहुत बध पहुँचाता है; इसलिये देशविहारकी अपेक्षा राजविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३४ ॥

सुभगाकुमारयोः कुमारः स्वयं बह्वभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्या-
गारकार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३५ ॥ सुभगा विलासोपभोगेने-
त्याचार्याः ॥ ३६ ॥

देवी (रानी=सुभगा) और युवराज इन दोनोंके विहारोंमें से युव-
राजका विहार, स्वयं युवराजके द्वारा तथा युवराजके अन्य प्रिय पुरुषोंके
द्वारा, जनपदकी इच्छाके विरुद्ध उससे धन लेकर, पण्यशालासे तथा अन्य
कार्योंको पूरा करनेके लिये विश्वत आदिसे धन लेकर प्रजाको बहुत कष्ट
पहुंछाता है ॥ ३५ ॥ और देवी विलासोपभोगके द्वारा अर्थात् गन्ध माल्य
आदि विलासका सामग्रीके द्वारा ही प्रजाको पीडा पहुंचाती है । इसलिये
देवीविहारकी अपेक्षा युवराजविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये,
यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ३६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ शक्यः कुमारो मन्त्रिपुरोहिताभ्यां
धारयितुं न सुभगा बालिश्यादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति ॥ ३८ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं
मानता ॥ ३७ ॥ यह कहता है, कि युवराजको इस तरहका कार्य करनेसे
मन्त्री तथा पुरोहितोंके द्वारा रोका जासकता है; अर्थात् मन्त्री और पुरोहित
आदि उच्च राजकर्मचारी, कुमारको समझाकर इसतरहके अनर्थकारी कार्योंके
करनेसे श्रृंखल सकते हैं । परन्तु रानियोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं
होसकती, क्योंकि उनमें प्रायः मूर्खता अधिक होती है, और फिर गाने बजाने
आदिका व्यवसाय करनेवाले अनर्थकारी मीच पुरुषोंके साथ ही प्रायः उनका
संसर्ग रहता है; इन अवस्थामें उन्हें समझाना भी बहुत कठिन है । इसलिये
कुमारविहारकी अपेक्षा देवीविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३८ ॥

श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाम्भ्यां
पीडयति ॥ ३९ ॥ मुख्यः कार्यानुग्रहविघाताभ्यामित्याचार्याः
॥ ४० ॥

श्रेणी (आयुधप्रोधी तथा कृपिजीवी पुरुषोंके परस्पर इकट्ठे हुए २
संघका नाम श्रेणी है) और मुख्य (अपनी देसमालमें काम करानेवाले
प्रधान राजकर्मचारी) पुरुषोंमेंसे श्रेणीही खोरी तथा डाका आदिसे प्रजाको
कष्ट पहुंचाती है, तथा उसकी संख्या बहुत अधिक होनेके कारण उसको
रोका भी नहीं जासकता ॥ ३९ ॥ अनुग्रहपुरुष केवल विद्वत् आदि लेकर
ही कार्य करते, तथा विद्वत् न मिलनेपर कार्य विना देससेही प्रजाको पीडा

पहुँचाते हैं । इसलिये मुख्य पुरखोंकी अपेक्षा श्रेणी पुरखोंकीही अधिक दृष्टप्रद समझना चाहिये ; यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ४० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४१ ॥ सुच्यावर्त्या श्रेणी समानशीलव्य-
सनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा ॥ ४२ ॥ स्तम्भयुक्तो
मुख्यः परप्राणद्रव्योपघाताभ्यां पीडयतीति ॥ ४३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धांतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४१ ॥ वह कहता है, कि श्रेणीको चोरी टाके आदिले बड़ी सरलतापूर्वक रोका जासकता है, क्योंकि जिनके यहाँ वे चोरी आदि करते हैं; वे भी उनके समानही स्वभाव तथा कृपि आदि समान व्यवसायवाले होते हैं । अथवा उनके गिरोहके मुख्य आदिमियोंको अपने अनुकूल बना लेनेसेभी उनको चोरी आदिले रोका जासकता है ॥ ४२ ॥ परन्तु राजकीय मुख्यपुरख बड़े अभिमानी होते हैं, और वे दूसरोंके प्राण तथा धनका अवहरण करके अत्यन्तकष्ट पहुँचाते हैं; इसलिये श्रेणीकी अपेक्षा मुख्य पुरखकोही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ४३ ॥

संनिधातृसमाहर्त्रोस्संनिधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीड-
यति ॥ ४४ ॥ समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भव-
तीत्याचार्याः ॥ ४५ ॥

सन्निधाता और समाहर्ता, इन दोनोंमेंसे सन्निधाता (धनको कोषमें रखनेवाला अधिकारी) दीहुई भूयण आदि वस्तुओंके दूषण निकाटने और समय भीतजाने आदिका यहाँना करके प्रजाको पीड़ा पहुँचाता है ॥ ४४ ॥ परन्तु समाहर्ता अपने टाक हिसाबके काममें लगा हुआ, अपनी निवासत मीकरीकाही भोगनेवाला होता है । शास्त्रमें यह है, कि सन्निधाता तो किसी यहाँमेंसे रिश्वत आदि लेकर प्रजाको पीड़ा पहुँचा सकता है; परन्तु समाहर्ता को एक २ फैसेका हिसाब रखना पड़ता है, इसलिये यह केवल अपने घेतनपर ही निर्वाह करता है ; अतएव समाहर्ताकी अपेक्षा सन्निधाताही प्रजाको अधिक कष्ट पहुँचाता है, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ संनिधाता कृतावस्थमन्यैः कौश-
प्रवेद्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ४७ ॥ समाहर्ता पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा
पश्चाद्वाजार्थं करोति, प्रणाशयति वा, परस्वादाने च संप्रत्यय-
धरतीति ॥ ४८ ॥

परन्तु आचार्य कौटिल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४६ ॥ यह कहता है, कि सन्निधाता को दूसरे कर्मचारियोंके द्वारा व्यवस्थित कियेहुए कोशमें रखने योग्य धन को ही ग्रहण करता है । अर्थात् जिस पस्तुको कोशमें रखनेके लिये दूसरे अधिकारी निश्चित करदेते हैं, सन्निधाता उसी तरह उसको कोशमें रखदेता है, यह स्वयं किसी वस्तुको लेने या न लेनेका अधिकार नहीं रखता ॥ ४७ ॥ परन्तु समाहर्ता (सरकारी देवसको वसूल करने वाला अधिकारी) पहिले अपनी रिश्वत आदि लेकर, फिर राजाके धनका संग्रह करता है, अथवा उसमें से भी स्वयं अपहरण करके धनको नष्ट करदेता है । और दूसरोंसे देवस वसूल करनेके समय अपनी इच्छाके अनुसार ही सब काम करता है । इसलिये सन्निधाताकी अपेक्षा समाहर्ताकोही अधिक शोका पहुंचाने वाला समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालधोरप्रसङ्गदेयात्यादानाम्यां वणि-
क्यथं पीडयति ॥ ४९ ॥ वैदेहकास्तु पण्यप्रतिपण्यानुग्रहः प्रसाध-
यन्तीत्याचार्याः ॥ ५० ॥

अन्तपाल और वैदेहक, इन दोनोंमें से, अन्तपाल (सीमारक्षक अधि-
कारी) चोरोंके द्वारा पथिकोंके धनको लुटवाकर तथा मार्गोंका कर् अत्यधिक
मात्रामें लेकर, व्यापारी मार्गोंपर चलने वाले पथिकोंको अत्यन्त कष्ट पहुंचाता
है ॥ ४९ ॥ परन्तु वैदेहक (व्यापारी पुरूप), पण्य (विक्रय पदार्थ) और
प्रतिपण्य (पण्यके बदलेमें लिये जाने वाला पदार्थ) पर अनुग्रह करनेसे
अर्थात् विशेष लाभके पहुंचानेसे व्यापारी मार्गोंको बराबर उन्नत बनाते हैं ।
इसलिये व्यापारियोंकी अपेक्षा अन्तपालोंको ही अधिक कष्टप्रद समझना चा-
हिये; यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ५० ॥

नेति कौटिल्यः ॥ ५१ ॥ अन्तपालः पण्यसंपातानुग्रहेण
वर्तयति ॥ ५२ ॥ वैदेहकास्तु संभूय पण्यानामुत्कर्षाकर्ष कुर्वाणाः
पणे पण्यशतं कुम्भे कुम्भशतमित्याजीवन्ति ॥ ५३ ॥

परन्तु आचार्य कौटिल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत
नहीं समझता ॥ ५१ ॥ यह कहता है, कि अन्तपाल, एकसाथ स्यामेहुए
विक्रय पदार्थोंपर वन्धित वर्तनी (व्यापारी मार्गोंका देवस) लेकर व्यापारी
मार्गोंको उन्नत करताहुया उन्हीं लाभप्रद मित्य करता है ॥ ५२ ॥ वैदेहक तो
एकसाथ मिलकर अर्थात् आपसमें सलाह करके व्यापारी मार्गके मूल्यको
पदा पदाकर (जिस मात्राको एतीदनाही उसके मूल्यको घटाकर और मित्य मात्र

को घेचना हो उसके मूल्यको बढ़ाकर) एक पणके सौ पण धर एक कुम्भके सौ कुम्भ (घी आदि मालके भरेहुए वर्तन भादिको यहाँपर ' कुम्भ ' शब्दमे कहागया है) लाभ उठाते हैं । इसलिये अन्तपालकी अपेक्षा व्यापारी यनियोंको ही प्रजाके लिये अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अभिजातोपरुद्धा भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा वेति ॥ ५४ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुं व्यसनाश्रयभयात् । ५५ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कृपियोग्या क्षमा मोक्षयितुम्, विवीतं हि क्षेत्रेण श्राध्यत इत्याचार्याः ॥ ५६ ॥

अब कष्ट पहुँचने वाली भूमिके छोड़ने न छोड़नेके विषयमें विचार किया जायगा विजिगीषुके वंशके पारिवारिक पुरुषोंसे घेरीहुई भूमिको छोड़ना चाहिये, अथवा गाँ आदि पशुओंके समूहसे घेरीहुई भूमिको ? ॥ ५४ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका निर्णय है, कि अत्यधिक नष्ट आदिके द्वारा लाभदायक होनेपर भी यदि यह भूमि सैनिक पुरुषोंको देकर उपकार करने वाली हो, अर्थात् विजिगीषुको उस भूमिसे पर्याप्त संग्रहमें सैनिक मिल सकते हैं, तो उस भूमिको न छोड़ना चाहिये, क्योंकि शत्रुके आक्रमण करनेपर सैनिक पुरुषोंके न होने से कष्ट होनेका भय रहता है ॥ ५५ ॥ पशुभासे घेरीहुई भूमि तो, यदि कृषिके योग्य हो, सो छोड़ी जासकती है, अर्थात् उसमें से चरागाहको उठाकर खेती कराई जासकती है, क्योंकि चरागाहकी अपेक्षा खेतीसे अधिक लाभ होसकता है ॥ ५६ ॥

नेति कौटिल्यः ॥ ५७ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिरत्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोक्षयितुम् व्यसनाश्रयभयात् ॥ ५८ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुमन्यत्र सस्यवापोपरोधादिति ॥ ५९ ॥

परन्तु आचार्य कौटिल्य, प्राचीन आचार्योंके इन निर्णयको ठीक नहीं मानता ॥ ५७ ॥ यह कहता है, कि विजिगीषुके पारिवारिक पुरुषोंके द्वारा घेरीहुई भूमि, सैनिक पुरुषोंको देकर अत्यन्त उपकार करने वाली होनेपर भी छोड़ी जासकती है । क्योंकि अपने (विजिगीषुके) दोषोंका अन्वेषण करने वाले पारिवारिक पुरुषोंके द्वारा ही आपत्ति आनेका भय रहता है ॥ ५८ ॥ पशुओंसे घेरीहुई चरागाहकी भूमि तो, बोलतमें संग्रह करने योग्य है आदि तथा बैल आदि वाहनोंको देकर अत्यन्त उपकार करने वाली होती है,

इसलिये वह नहीं छोड़ी जासकती । किन्तु उसके समीप यदि नाजके खेत हों, और चरागाहके कारण उनमें लुकसान होता हो, तो उसे भी छोड़ा जासकता है, अन्यथा नहीं ॥ ५९ ॥

प्रतिरोधकाटविकयोः प्रतिरोधकाः रात्रिसन्त्रपराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च ॥ ६० ॥ वयवहिताः प्रत्यन्तारण्यचराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येकदेशघातकाश्चेत्याचार्याः ॥ ६१ ॥

प्रतिरोधक और आटविक इन दोनोंमें से, प्रतिरोधक लुटेरे, जो कि भिन्न २ स्थानोंपर रहते हैं) रात्रिमें तथा घने जंगलोंमें घूमने वाले, आने जाने वाले पुरुषोंके शरीरोंपर आक्रमण करने वाले, सदा ही समीप रहने वाले, सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें धनका अपहरण करने वाले, तथा राष्ट्रके प्रधान २ पुरुषोंको लूट आदिके द्वारा कुपित करने वाले होते हैं ॥ ६० ॥ और आटविक (अपने राज्यकी सीमाके जंगलोंमें रहने वाले लुटेरे) दूर रहने वाले, देशकी सीमाके जंगलोंमें घूमने किंगने वाले, प्रकट रूपमें रहने वाले तथा दृष्टिगोचर होतेहुए घूमते हैं, इसलिये ये देशके एक ही हिस्सेको पीड़ा पहुंचा सकते हैं, और मालूम होनेपर लोग इनसे अपनी रक्षा भी कर सकते हैं । अतएव आटविकोंकी अपेक्षा प्रतिरोधक पुरुष ही प्रजाके लिये अत्यधिक पीड़ा पहुंचाने वाले होते हैं, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति ॥ ६३ ॥ अल्पाः कुप्टाः सुखा ज्ञातुं ग्रहीतुं च ॥ ६४ ॥ स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः ॥ ६५ ॥ प्रकाशयोधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति ॥ ६६ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ६२ ॥ वह कहता है, कि प्रतिरोधक पुरुष प्रमादीके यहाँसे ही (अर्थात् जो सावधानता पूर्वक नहीं रहता, उस ही के यहाँसे) धन आदिका अपहरण करसकते हैं ॥ ६२ ॥ ये लोग संख्यामें बहुत थोड़े होनेके कारण सब जगह नहीं फैल सकते, इसीलिये ये लोग बड़ी सरलतासे जाने जासकते तथा पकड़े जासकते हैं ॥ ६४ ॥ और आटविक अपने देशमें स्थित तथा संख्यामें बहुत होते हैं, यहदुर होनेके कारण बड़ी कठिनतासे पकड़े जासकते हैं ॥ ६५ ॥ प्रकट रूपमें युद्ध करने वाले होते हैं, देश निपारी पुरुषोंके धन तथा

प्राणोंकी अपहरण करने वाले होते हैं, तथा निरपुत्र होनेके कारण इनकी परिस्थिति राजाओंके समान होती है। इसलिये प्रतिरोधक पुरुषोंकी अपेक्षा आठविकोंका ही अधिक पीड़ा पहुंचाने वाला समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

मृगहस्तिवनयोः मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो
मन्दग्रासावक्लेशिनः सुनियम्याश्च ॥ ६७ ॥ विपरीता हस्तिनो
गृक्षमाणा दृष्टाश्च देशविनाशायेति ॥ ६८ ॥

मृगयन और हस्तिवन इन दोनोंमें से हस्तिवन (हाधियोंके रहनेका जंगल) अधिक कष्टकर होता है; क्योंकि मृग संग्रहमें बहुत अधिक, तथा अत्यधिक मांस और चमड़ेके द्वारा उपकार करने वाले, थोड़ा खाने वाले इसीलिये भागते समय जल्दी थक जाने वाले, तथा पकड़े जाकर बड़ी सरलतासे वधमें भाजाने वाले होते हैं ॥ ६७ ॥ हाथी इनसे बिरकुल विपरीत होते हैं, संग्रहमें बहुत थोड़े, बहुत थोड़ा मांस चमड़ा देने वाले, बहुत खानेके कारण जल्दी न थकने वाले, तथा पकड़े जाकर भी दुष्ट होनेपर लोगोंको मार डालने वाले होते हैं ॥ ६८ ॥

स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्यपशुहिरण्य-
कुप्योपकारो जानपदानामापद्यात्मधारणः ॥ ६९ ॥ विपरीतः
परस्थानीयोपकारः, इति पीडनानि ॥ ७० ॥

अपने नगरका उपकार करना और पराग्रे नगरका उपकार करना, इन दोनोंमें से अपने नगरका उपकार करना (प्रत्येक वस्तुके क्रय विक्रय व्यवहारका करना और उससे अपने नगर को लाभ पहुंचाना ही यही उपकार कहा गया है) अर्थात् धान्य पशु हिरण्य और कुप्य आदि पदार्थों का अपने ही नगरमें क्रय विक्रय करना, जनपद निवासी पुरुषों की आपत्ति (दुर्भिक्ष आदिसे उत्पन्न हुई विपत्ति) के समयमें प्राण धारणका हेतु होता है ॥ ६९ ॥ परन्तु दूसरे के नगरमें क्रय विक्रय व्यवहार करके उसे लाभ पहुंचाने से विपरीत ही परिणाम निकलता है; अर्थात् उससे दूसरेके नगरकी वृद्धि होती है, और वह अपने (क्रय विक्रय व्यवहार करने वाले पुरुष के) देशको कष्ट पहुंचाने वाला होता है। यहाँतक पीडनपरम अर्थात् देकसो पाड़ा पहुंचाने वाले हेतुओंका निरूपण कर दिया गया ॥ ७० ॥

आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटयीस्तम्भ इति स्तम्भ-
वर्गः ॥ ७१ ॥

अपने ही सरकारी मुख्य कर्मचारियोंके द्वारा अर्थ का रोकना जाना

‘आभ्यन्तर स्तम्भ’ और मित्र तथा आटविक पुरुषोंके द्वारा अर्धका रोका जाना ‘बाह्य स्तम्भ’ कहा जाता है। स्तम्भ दो ही प्रकारका होता है। यह स्तम्भ वर्गका ध्याख्यान कर दिया गया ॥ ७१ ॥

ताभ्यां पीडनैयथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः
प्रकीर्णो मिथ्यासंभृतः सामन्ताटवीभृत इति कोशसङ्घाः ॥७२॥

दोनों प्रकारके आभ्यन्तर और बाह्य स्तम्भोंके द्वारा तथा पूर्वोक्त पीडाके हेतुओंके द्वारा पीडित हुआ २ अर्थात् उचित आमदनीकी मात्रासे घटाया हुआ, कर देनेवाले पुरुषोंसे वसूल करके मुख्य कर्मचारी पुरुषोंसे उपयोग किया हुआ, अर्थात् गबन किया गया हुआ, राजाकी आज्ञानुसार कर माफ हो जाने के कारण उभ २ इधर उधर विचरता हुआ, उचित परिमाण लभ्यून अथवा अधिक मात्रा में इकट्ठा किया हुआ, तथा सामान्य और आटविक पुरुषोंके द्वारा अपहरण किया हुआ धन खजानेमें नहीं आने पाता, पीचमें ही नष्ट होजाता है। इसीका नाम कोशसङ्घ है। यह कोशसङ्घ वर्गका निरूपण कर दिया गया ॥ ७२ ॥

पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च धारणे ।

यतेत देशदृढ्यर्थं नाशे च स्तम्भसङ्घयोः ॥ ७३ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽध्यायकरणे पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः कोशसङ्घवर्गः

अतुर्यो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो विंशतितमो ऽध्यायः ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त पीडाओं को उत्पन्न न होने देनेमें, अथवा उत्पन्न होजाने पर उनका निवारण करने में और स्तम्भ तथा कोशसङ्घक नाश करनेमें, राजा को सदा यत्नवान होना चाहिये, जिससे कि वह अपने देश और कोशाकी वृद्धि करसके ॥ ७३ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अध्यायकरण में चौथा अध्याय समाप्त

पांचवां अध्याय

१३३, १३४ प्रकरण

वल्लव्यसनवर्ग और मित्रव्यसनवर्ग ।

{ अपनी सेना पर आने वाली विपत्तियों तथा मित्रपर आने वाली विपत्तियोंके समूह का इन दो प्रकरणोंमें यथाशक्त निरूपण किया जायगा ।

बलव्यसनानि ॥ १ ॥ अमानितं विमानितमभृतं व्याधितं
नवागतं दूरायातं परिश्रान्तं परिक्षीणं प्रतिहतं हताग्रवेगमनृतप्राप्त-
मभूमिप्राप्तमाशानिर्वेदि परिसृतं कलत्रगर्हन्तःशल्यं कुपितमूलं
भिन्नगर्भमपसृतमतिक्षिप्तमुपनिविष्टं समाप्तमुपरुद्धमुपक्षिप्तं छिन्न-
धान्यपुरुषवीचधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं दूप्ययुक्तं दुष्टपाणिग्राहं
शून्यमूलमस्वामिसंहतं भिन्नकूमन्धमिति ॥ २ ॥

सेनापर आने वाले व्यसन, भिन्न छिद्रित प्रकारसे समझने चाहिये
॥ १ ॥ अमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दूरायात, परिश्रान्त
परिक्षीण, प्रति-त, हताग्रवेग, अनृतप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदी, परिसृत,
कलत्रगर्हा, अन्तः शल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट,
समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्य, छिन्नपुरुषवीचध, स्वविक्षिप्त, मित्र-
विक्षिप्त, दूप्ययुक्त, दुष्टपाणिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, शिच्छकूट और
अन्ध; ये चौतीस प्रकारके व्यसन हैं । (इनके अर्थ और परस्पर गुरु लघुभाव
का विचार, यथाक्रम अगले सूत्रोंमें किया जाता है ॥ २ ॥

तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृताथेमानं युध्येत न
विमानितमन्तःकोपम् ॥ ३ ॥

इन अमानित आदि चौतीस प्रकार की विशेषताओंसे युक्त सेनाओं
के बीचमें, विमानित (तिरस्कार की हुई) और अमानित (सत्कार न की हुई)
सेनाओंमें से, अमानित ही समय पर सत्कार आदि किये जानेपर विजिगीषु
की ओरसे युद्ध कर सकती है; विमानित सेना कभी युद्ध करने को तैयार
नहीं होती; क्योंकि उसके हृदयमें, पहिले किये हुए तिरस्कारके कारण कोप
निधमान रहता है ॥ ३ ॥

अभृतव्याधितयोरभृतं तदात्वकृतवेतनं युध्यते न व्याधित-
मफर्मण्यम् ॥ ४ ॥

अभृत (जिसका वेतन न दिया गया हो) और व्याधित (रोगी)
सेनाओंमें से अभृत सेना ही उस समय वेतनके दिये जानेपर विजिगीषु की
ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, व्याधित सेना नहीं हो सकती,
क्योंकि उसमें कार्य करने की शक्ति ही नहीं होती ॥ ४ ॥

नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिथं यु-
ध्येत न दूरायातमायतगतपरिक्षेशम् ॥ ५ ॥

नवागत (नई आई हुई अर्थात् अभी जल्दी ही आई हुई) और दूरायात (दूरसे आई हुई) सेनाओंमें से नवागत सेना, किन्हीं दूसरे अर्थात् पहिले से ही यहाँ रहने वाले किन्हीं मनुष्योंसे देशके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करके, तथा पुराने आदिमियोंके साथ मिलकर विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करने को तैयार हो सकती है; और दूरायात सेना तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि यह दूरसे आनेके कारण (लम्बी यात्रा के करनेके कारण) बहुत थकी हुई होती है ॥ ५ ॥

परिश्रान्तपरिक्षीणयोः परिश्रान्तं खानभोजनस्त्रसलब्धविश्रामं युध्येत न परिक्षीणमन्यत्राहवे क्षीणयुग्मपुरुषम् ॥ ६ ॥

परिश्रान्त (ठीक आहार न मिलने तथा दूकी यात्रा करनेके कारण थकी हुई) और परिक्षीण (दूसरे युद्धमें जिसके योग्य सैनिक पुरुष नष्ट हो चुके हैं, ऐसी) सेनाओंमें से परिश्रान्त सेना ही, खान भोजन शयन तथा विश्राम आदिकी सुविधा होनेपर हर तरहकी यकायतकी दूर करके विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करने को तैयार हो सकती है; परिक्षीण सेना तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि दूसरे युद्धमें उसके अनेक योग्य पुरुषों का नाश हो चुका है ॥ ६ ॥

प्रतिहतहताप्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातहतप्रवीरम् ॥ ७ ॥

प्रतिहत (युद्धके आरम्भमें ही पराजय को प्राप्त हुई २ सेना), और हताप्रवेग (अपने वीर पुरुषोंके मरजाने के कारण सबसे प्रथम युद्ध करनेमें उरसाह न रखने वाली) सेनाओंमें से, पहिले वारमें हारी हुई प्रतिहत सेना ही अन्य वीर पुरुषोंके साथ मिलकर, विजिगीषुके लिये युद्ध करसकती है; हताप्रवेग सेना युद्ध करनेको तैयार नहीं होसकती, क्योंकि आगे आक्रमण करने के कारण उसके अनेक वीरोंका नाश हो चुका होता है ॥ ७ ॥

अनुत्त्वभूमिप्राप्तयोरनुत्तुप्राप्तं यथर्तुयोग्यशस्त्रावरणं युध्येत नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारज्यायामम् ॥ ८ ॥

अनुत्तुप स (जिसको युद्धके योग्य ऋतु अर्थात् समय प्राप्त न हो) और अभूमि प्राप्त (जिसको कवच आदिके लिये भूमि प्राप्त न हो), इन दोनोंमें से अनुत्तुप्राप्त सेना, वर्तमान ऋतुके अनुसार ही तबारी हथियार तथा कवच आदिको लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, अभूमिप्राप्त सेना तैयार नहीं होसकती; क्योंकि उसके चलने फिरनेके मार्ग तथा युद्ध संबंधी कार्य सब ही रूके रहते हैं ॥ ८ ॥

आशानिर्वेदिपरिसृतस्योराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत न
परिसृतमपसृतमुल्यम् ॥ ९ ॥

आशानिर्वेदी (इच्छित वस्तुके न मिलनेसे निराशा को प्राप्त हुई र
सेना) और परिसृत (मुख्यनेतामें रहित सेना) इन दोनोंमें से आशानिर्वेदी
सेना, अपनी कामनाकी पूरी हुई देखकर विजिगीषु की ओरसे युद्ध करनेके
लिये तैयार होजाती है, परिसृत सेना तैयार नहीं होसकती, क्योंकि उसका
मुख्य नेता कोई नहीं होता ॥ ९ ॥

कलत्रगर्हन्तःशल्ययोः कलत्रगर्ह्यन्मुष्य कलत्रं युध्येत
नान्तःशल्यमन्तरमित्रम् ॥ १० ॥

कलत्रगर्ही (पोष्यपरीको निन्दा करनेवाला, अर्थात् कलत्र आदि
मेरे युद्ध सबन्धा कार्योंमें रुकावट डालने वाले हैं, इस प्रकार उनकी निन्दा
कानेवाला) और अन्तःशल्य (अन्दरसे शत्रुता रखनेवाला), इन दोनों बलों
(सेनाओं) में से कलत्रगर्ही बल अपने कलत्र आदिकी समुचित सुरक्षित
स्थानमें व्यवस्था करके विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकता
है; अन्तःशल्य बल तैयार नहीं होसकता, क्योंकि वह विजिगीषुके साथ अंदर
से शत्रुता रखता है ॥ १० ॥

कुपितमूढभिन्नगर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सामादिभि-
दुध्येत न भिन्नगर्भमन्योन्यमाद्भिन्नम् ॥ ११ ॥

कुपितमूढ (मायः क्रोध करने वाली सेना) और भिन्नगर्भ (आपसमें
ही शत्रुता=फूट रखने वाली सेना), इन दोनोंमें से कुपितमूढ सेना को, साम
आदिके द्वारा उसका क्रोध शान्त करके युद्ध करनेके लिये तैयार किया जा
सकता है; भिन्नगर्भ सेना युद्धके लिये तैयार नहीं होसकती, क्योंकि उनकी
आपसमेंही फूट पड़ी रहती है ॥ ११ ॥

अपसृतातिक्षिप्तयोरपसृतमेकराज्यातिक्रान्तममन्त्रव्यायामा-
भ्यां सत्रिमित्रापाश्रयं युध्येत नातिक्षिप्तमेकराज्यातिक्रान्तं
ब्रह्मवाधत्वात् ॥ १२ ॥

अपसृत (एकही राज्यमें अन्य सेनाके द्वारा कष्ट पाई हुई सेना)
और अतिक्षिप्त (अनेक राज्योंमें अन्य सेनाके द्वारा कष्ट पाई हुई सेना), इन
दोनों सेनाओंमेंसे, अपसृत सेना, एकही राज्यमें कष्ट उठानेके कारण, मन्त्र
(शास्त्रोंमें बताये हुए विशेष उपाय) और विशेष विशिष्टरूप व्यायाम (कृपा-

यद) के द्वारा जगल और मिश्रका सहारा लेकर युद्ध कानेक लिये तैयार होस
कती है । अतिक्षिप्त सेना ऐसी तैयारी नहीं करसकती, क्योंकि वह अनेक
राज्योंमें बहुत कष्टका अनुभव किये हुए होती है ॥ १२ ॥

**उपनिविष्टसमाप्तयोरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिसन्धातारं
युध्येत न समाप्तं परिणतैकस्थानयानम् ॥ १३ ॥**

उपनिविष्ट (शत्रु समीप रहने वाली सेना अर्थात् शत्रुसे सम्बन्ध न
रखती हुई स्वतन्त्र रूपसे उदरने तथा आक्रमण करने वाली सेना) और समाप्त
(शत्रुके साथ २ ही उदरने और आक्रमण करने वाली सेना), इन दोनों
सेनाओंमेंसे उपनि विष्ट सेना, अरने साथ मुकाबला रखनेवाले शत्रुके साथ युद्ध
करनको तैयार होसकती है, क्योंकि भिन्न य न रमान होनेके कारण, शत्रु
उसका भेद नहीं पासकता, समाप्त सेना युद्ध नहीं करसकती, क्योंकि शत्रुके
साथ समानही यान स्थान होनेके कारण, वह इसके भेदको जाने रहता
ह ॥ १३ ॥

**उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोद्धारं प्रति-
युध्येत न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम् ॥ १४ ॥**

उपरुद्ध (एक ओरसे घिरी हुई सेना) और परिक्षिप्त (चारों ओरसे
घिरी हुई यान), इन दोनों सेनाओंमेंसे उपरुद्ध सेना, एक ओरसे निकलकर
घेरा डालने वालेका मुकाबला करसकती है, परिक्षिप्त सेना ऐसा नहीं करस
कती, क्योंकि वह चारों ओरसे घिरी हुई होती है ॥ १४ ॥

**छिन्नधान्यपुरुषवीथयोः छिन्नधान्यमन्यतो धान्यमानीय
जङ्गमस्थावराहारं वा युध्येत न छिन्नपुरुषवीथमनभिसारम् ॥ १५ ॥**

छिन्नधान्य (अपने देशसे धान्य आदि भगानेके लिये जिसका सम्बन्ध
टूट गया हो) और छिन्नपुरुषवीथय (जिस सेनाका अपन देशसे सैनिक
पुरुष तथा भार ढाणके साथन बहुती आदि छ ने लेजानेका सम्बन्ध टूट गया
ह), इन दोनों सेनाओंमेंसे छिन्नधान्य किसी दूसरे स्थानसे धान्य आदि
आहार भण्डार अथवा जंगम मृग आदि प्राणिजोदा भोग ल कर या स्थावर वृक्ष
आदिके फल खाकर अपना निर्वाह करती हुई, शत्रुके साथ युद्ध करसकती
है । छिन्नपुरुषवीथय सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि वह सततहसे अस-
हाय होती है । उसको किसी घटुकी भी सहायता नहीं पहुचती ॥ १५ ॥

३ **स्विक्रियसमिजप्रिक्षिप्तयोः स्विक्रियं स्वभूमौ विक्रियं सैन्य-**

मापदि शक्यमवसावयितुं न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात्
॥ १६ ॥

स्वविक्षिप्त (अपनेही देशमें किसी कार्यके लिये इधर उधर भेजी हुई सेना) और मित्रविक्षिप्त (मित्रके कार्यके लिये उसके देशमें भेजी हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे, स्वविक्षिप्त सेना, अपनेही देशमें फँली हुई होनेके कारण आपत्तिके समयमें आसानीसेही इकट्ठी कीजासकती है; मित्रविक्षिप्त सेना दूर देशमें रहनेके कारण ठीक समयपर नहीं बुलाई जासकती । क्योंकि दूरसे आनेमें विलम्बकी सम्भावना रहती है ॥ १६ ॥

दूष्ययुक्तदुष्टपार्थिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमासपुरुषाधिष्ठितमसंहतं यु-
ध्येत न दुष्टपार्थिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम् ॥ १७ ॥

दूष्ययुक्त (राजकी कष्ट पहुँचानेवाले मुख्यकर्मचारियोंको दूष्य कहते हैं, उनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सेना) और दुष्टपार्थिग्राह (जिसका पार्थिग्राह पीछेसे आघात करनेके लिये दोष डूबनेमेंही लगा रहता है, ऐसी सेना), इन दोनोंमेंसे दूष्ययुक्त सेना, विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, क्योंकि विजिगीषु अपने विधस्त पुरुषोंको दूष्योंकी सेवामें नियुक्त करके उनसे सेनाके सम्बन्धको विरिष्ठ करसकता है । किन्तु दुष्टपार्थिग्राह सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि उसे पीछेसे आघात होनेका सदाही डर बना रहना है ॥ १७ ॥

शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्व-
मंदोहेन युध्येत नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम् ॥ १८ ॥

शून्यमूल (सम्पूर्ण सैन्यके बाहर घलेजानेपर मूलस्थान [राजधानी] में रही हुई अव्यवस्था सेना) और अस्वामिसंहत (राजा तथा सेनापतिसे रहित सेना), इन दोनोंमेंसे शून्यमूल सेना, नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंसे सहायता दियेजानेपर अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे युद्ध करसकती है । अस्वामिसंहत सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि वह राजा या सेनापतिरूप अपने नेतासे सर्वथा रहित होती है ॥ १८ ॥

भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्माधिष्ठितं युध्येत नान्धमदेशिक-
मिति ॥ १९ ॥

भिन्नकूट (शिखरका कूट कहते हैं, उसके समान जो सब सेनाओंका सैन्यक्ष हो उसका नाम भी कूट है, इस प्रकारके लब्धक्षसे रहित सेनाको

कूट कहते हैं) और अन्ध (शत्रुके व्यवहारके सम्बन्धमें कुछभी जानकारी खन घाली सेना), इन दोनोंमें से भिन्नकूट सेना, दूसरे किसी अध्यक्ष का रा लेकर युद्धके लिये तैयार होसकती है । अन्ध सेना शत्रुके व्यवहार को खाने वाले आदमीके न मिलनेसे ऐसा नहीं करसकती ॥ १९ ॥

दोषशुद्धिर्बलावापः सत्रस्थानातिसंहितम् ।

सन्धिशोचरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥ २० ॥

इस सैनिक व्यसनोंके परिहारका उपाय यह समझना चाहिये:—
 मानन विमानन आदि दोषोंका प्रायश्चित्त करना, दोष रहित सेनाको दूसरी
 के साथ ठहराना, जंगलमें सेनाकी स्थिति रखना, तथा कूट उपायोंसे
 दुसेनाका भेद करना, अपनेसे बलवान पक्षके साथ सन्धि करना, ये बद्ध-
 सनों (सेना संबन्धी आपत्तियों) के हटानेके साधन हैं ॥ २० ॥

रक्षेत्स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः ।

प्रहरेद्दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥ २१ ॥

सदा सजग रहता हुआ विजिगीषु, व्यसन के समयमें शत्रुओंसे
 पनी सेनाकी अच्छी तरह रक्षा करे । और यही चतुरतासे शत्रुओं की सना
 बन्धी निर्बलताओंपर सदा प्रहार करता रहे । यदांतक बलव्यसनवर्गका
 निरूपण किया गया ॥ २१ ॥

अभियातं स्वयं मित्रं संभूयान्यवशेन वा ।

परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा ॥ २२ ॥

अब मित्रव्यसनवर्ग का निरूपण किया जायगा:—अपने प्रयोजनसे
 अथवा अपने किसी बन्धु आदिके प्रयोजनसे मिलकर शत्रुपर आक्रमण करनेवाले
 अपने मित्रको, जब विजिगीषु असमर्थ होनेके कारण, लोभ (शत्रुसे धन आदि
 लेने) के कारण, या स्नेह (शत्रुके साथ मित्रता होजाने) के कारण छोड़ देता
 है, अर्थात् ऐसे समयमें उसकी सहायता नहीं करता तो यह भिन्न हुआ २
 मित्र फिर यही कठिनतासे बशमें आता है । (इस श्लोकका अन्वय २०वें श्लोक
 के 'कृच्छ्रेण साध्यते' पदके साथ है, यदांतकके इसके आगेके श्लोकों का भी
 इसी तरह अन्वय समझना चाहिये) ॥ २२ ॥

विक्रीतमभियुञ्जाने संग्रामे वापवर्तिना ।

द्वैधीभावेन वा मित्रं यास्यता वान्यमन्यतः ॥ २३ ॥

युद्धके चलते हुए हांसेपर ही, शत्रुसे धन अदि लेकर अपनी सहायताको
 पूरा न करके बांधमें ही विजिगीषुसे छोड़ा हुआ मित्र, अथवा द्वैधीभावसे अर्थात्

विजिगीषुके द्वारा अपने मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके अपने यागध्व पर आक्रमण कर देनेके कारण यथा हुआ अर्थात् भरनेवनने छोड़ा हुआ मित्र; अथवा 'तुम इधरको आक्रमण करो भीर मैं इधरको करूंगा' इस प्रकार एक दूसरे अपने मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके, किसी दूसरे अपनेही शत्रुपर आक्रमण करनेवाले विजिगीषुके छोड़ा हुआ मित्र, फिर बड़ी कठिनतासे वशमें होता है ॥ २३ ॥

पृथग्ना सह यानं वा विश्वासेनातिसंहितम् ।

भयावमानालसैर्वा व्यसनान्न प्रमोक्षितम् ॥ २४ ॥

पृथक् २ आक्रमण करने वा साथ ही आक्रमण करनेपर, पहिले विश्वास दिलाकर, फिर छिपे तौरपर मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके विजिगीषुके द्वारा उगा हुआ, अर्थात् धोखा दिया हुआ मित्र; अथवा मित्रके शत्रुके भय, या मित्रके विषयमें तिरस्कार बुद्धि होनेके कारण, या अपने ही आलस्यके कारण, आपसिसे न मुझ्या हुआ मित्र, फिर कठिनतासे ही वशमें आता है ॥ २४ ॥

अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद्वा भयाद्गतम् ।

आच्छेदनाददानाद्वा दत्त्वा घाप्यवमानितम् ॥ २५ ॥

अपने (विजिगीषुके) देशमें होकर जानेसे रोका हुआ, अथवा अपने (विजिगीषुके) समीपसे ही भय (घबराहट या चम्पन आदिक भय) के कारण गया हुआ मित्र, बलपूर्वक उसके दृश्यका अपहरण कर लेनेसे तिरस्कृत किया हुआ मित्र, देने योग्य वस्तुको न देनेके कारण, अथवा देकर भी फिर तिरस्कृत किया हुआ मित्र बड़ी कठिनतासे वशमें आता है ॥ २५ ॥

अत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा ।

अतिभारे नियुक्तं वा भङ्क्त्वा परमवस्थितम् ॥ २६ ॥

अपने आपही (स्वयं विजिगीषुके द्वाराही) अथवा किसी दूसरेके द्वारा, सर्वथा धन अपहरण किया या कराया हुआ मित्र (तारपत्र यह है, कि जिस मित्रके धनको विजिगीषु स्वयं अपहरण करले या किसीके द्वारा करवाये, ऐसा मित्र); अथवा विजिगीषुके शत्रुको जीतकर आया हुआ, तथा उसी समय किसी दूसरे दुस्वभाष्य कार्यपर लगाया हुआ मित्र, बिगड़े जानेपर बड़ी कठिनतासे वशमें आता है ॥ २६ ॥

उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।

कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥ २७ ॥

सामर्थ्यहीन होनेके कारण उपेक्षा किया हुआ मित्र; अथवा पहिले एकवार मित्रताके लिये प्रार्थना करके फिर विरुद्ध किया हुआ मित्र; बड़ी कठिनतासे वशमें होता है। तात्पर्य यह है—उपर्युक्त रीतिसे मित्रको प्राप्त हुए २ ये मित्र बड़ी कठिनतासे वशमें भिद्ये जासकते हैं, यदि किसी तरह—इनमेंसे कोई फिर विजिगीषुके वशमें हो भी जाय अर्थात् विजिगीषुके अनुकूल बन भी जाय, तो यह शीघ्रही फिर अवसर पाकर विजिगीषुसे भिद्ये होजाता है। पहातक विद्वत्चित मित्रोंकी फिर दुस्साधताका निरूपण किया गया है ॥२७॥

कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मिश्रममानितम् ।

मानितं वा न सदृशं शक्तितो वा निवारितम् ॥ २८ ॥

अब इसके आगे उन मित्रोंका निरूपण किया जायगा, जो कि सरलतासेही फिर विजिगीषुके अनुकूलको स्वीकार करलेने हैं—भित्तने विजिगीषुके लिये संश्रम आदिमें उत्पन्न परिश्रम किया हो, इसीलिये पूजाके योग्य, भयसे या प्रसादसे तिरस्कृत किया हुआ मित्र; अथवा परिश्रमके अनुकूल साकार न किया हुआ मित्र; अथवा विजिगीषुमें अनुप्राय होनेके कारण, विजिगीषुके शत्रुओंसे तुल्यकारा हुआ मित्र; शीघ्रही फिर विजिगीषुके अनुकूल होजाता है ॥२८॥

मित्रोपघातत्रस्तं वा शङ्कितं वारिसंहितात् ।

दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥ २९ ॥

विजिगीषुके द्वारा किसी दूसरे मित्रपर किये हुए आघातको देखकर डरा हुआ (अर्थात् आज विजिगीषुने अपने अनुकूल मित्रको धोखा दिया है, अवसर पाकर यह मुझे भी धोखा देसकता है, इस त्वचारसे डरा हुआ), अथवा शत्रुके साथ सन्धि करलेनेके कारण शङ्कितचित्त हुआ २ मित्र, अथवा दूष्य पुरुषोंके द्वारा भेदको प्राप्त करवाया हुआ मित्र, शीघ्रही विजिगीषुके अनुकूल होजाता है। इसप्रकार ये छ. तरहके मित्र, विचारको प्राप्त होकर भी फिर विजिगीषुके वशमें होजाते हैं, और उसकी अनुकूलताको फिर छोड़ते भी नहीं ॥ २९ ॥

तस्मान्नोत्पादेयेदनान्दोषान्मित्रोपघातकान् ।

उत्पन्नान्वा प्रशमयेद्गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥ ३० ॥

इसलिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह मित्रोंके साथ भेद टाकनेवाले इन दोषोंको कभी उपपन्न न होने दे; यदि कोई दोष उपपन्न हो भी जावे, तो उन्हें, दोषोंको नाश करनेवाले गुणोंके द्वारा सत्काळही शान्त करदे ॥३०॥

यतोनिमिचं व्यसनं प्रकृतीनामघान्मुपात् ।

प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे बलव्यसनवर्गेः, मिश्रव्यसनवर्गे
पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदित एकविंशतिशतौ ऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य व्यसनाधिकारिके

अष्टममधिकरणम् समाप्तम् ॥ ८ ॥

तथा जिन कारणोंसे, स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जो व्यसनप्राप्त होवे, आलस्यरहित रहते हुए विजिगीषुको चाहिये कि उस व्यसनके उपाय होनेसे पहिलेही उसके कारणोंका प्रतीकार करवे । (इस श्लोक को मूल पुस्तकमें मिश्रव्यसनवर्गका निरूपण आरम्भ होनेसे पहिलेही रक्खा गया है । परन्तु नयचन्द्रिका व्याख्यानमें इसको सबसे अन्तिम श्लोक मानकर अधिकरणके अन्तमेंही इसकी व्याख्या कीगई है । उसहीके अनुसार हमने भी व्याख्यान किया है ॥ ३१ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें पाँचवा अध्याय समाप्त ।

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण समाप्त ।



अभियास्यत्कर्म नवमं अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

१३५-१३६ प्रकरण ।

शक्ति, देश-कालके बलाबलका ज्ञान, और
यात्रा-काल ।

उत्साह प्रभाव आदि शक्ति, सम विपम आदि देश और हीत उष्ण आदि समयकी अनुकूलताका अपनी सेनाके लिये होना बल, तथा शत्रुकी सेनाके लिये शक्ति आदिका अनुकूल न होना भयबल कहाता है; प्रथम प्रकरणमें इन्हींका विचार किया जायगा । तदनन्तर यात्राके समयका निरूपण होगा ।

विजिगीपुरात्मनः परस्य च बलाबलं शक्तिदेशकालयात्रा-
कालबलसमुत्थानकालपथात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशि-
ष्टबलो यायात् ॥ १ ॥ अन्यथासीत् ॥ २ ॥

विजिगीपुको चाहिये, कि वह अपने और शत्रुके बलाबलको जानकर
अर्थात् शक्ति, देश, काल, यात्रा-काल (सेनाके, किसी देशपर आक्रमण कर-
नेका समय), बलसमुत्थानकाल (सेनाकी उत्पत्तिका समय), पश्चात्कोप
(दूसरे देशपर आक्रमण करनेके अनन्तर, पीछेसे राजधानी आदिपर पारंग-
नाह आदिके द्वारा आक्रमण किया जाना), क्षय (योग्य पुरुषोंका मारा हो-
जाना), व्यय (धन आदिका नाश होजाना), लाभ (फलासिद्धि), और आपत्ति
(बाध और आश्रयान्तर दोनों तरहकी विपत्ति—इसका १४३ प्रकरणमें निरूपण किया
जायगा), इनके सम्बन्धमें शत्रु और अपने बलाबलको जानकर, फिर शत्रुकी
भयंकरता अपनी बहुत अधिक सेना लेकरही उसपर आक्रमण करे ॥ १ ॥ यदि
तेनाका अधिक प्रबंध न होसके, तो आक्रमण न करना चाहिये, प्रत्युक्त
ही भयंकर हो; अर्थात् छुपचाप अपने घर बैठा रहे ॥ २ ॥

उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान् ॥ ३ ॥ स्वयं हि राजा
शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयो ऽपि शक्तः प्रभाववन्तं
राजानं जेतुम्, अल्पो ऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति
॥ ४ ॥ निरुत्साहस्तु प्रभाववात्राजा विक्रभाभिपन्नो नश्यतीत्या-
चार्याः ॥ ५ ॥

(शक्ति तीन प्रकारकी होती है—उत्साह शक्ति, प्रभाव शक्ति और मन्त्र शक्ति; अब इनके पारस्परिक गुरुलक्षणभावका निरूपण किया जाता है—) उत्साह शक्ति और प्रभाव शक्ति इन दोनोंमेंसे उत्साह शक्तिही श्रेष्ठ होती है ॥ ३ ॥ क्योंकि स्वयं दूर, बलवान्, नीरोग, शस्त्रास्त्र विद्याको जानने वाला, केषल अपनोही सेनाकी सहायता रखने वाला (अर्थात् मित्र आदिकी सहायता न होनेपर भी) शक्तिशाली राजा अकेलाही प्रभाव शक्तिमें युक्त राजाको अच्छी तरह जित सकता है । और थोड़ी भी इसकी सेना, इसके तेजमें इतरतहका कार्य करनेके लिये तैयार होजाती है ॥ ४ ॥ प्रभावशाली भी उत्साहहीन राजा तो पराक्रमके समय अवश्यही नष्ट होजाता है, अर्थात् पराक्रम करनेका अवसर आनेपर वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता, यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभा-
वेनातिसेषन्ते ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हृत्या क्रीत्वा
प्रवीरपुरुषान्प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसंपन्नश्चास्य दण्डः सर्व-
त्राप्रतिहतश्चरति ॥ ८ ॥ उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा
च स्त्रियो बालाः पद्गवो ऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्गुरिति ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ६ ॥ वह कहता है कि प्रभावशाली राजा, उत्साही राजाको अपने प्रभावके द्वारा हरा देता है ॥ ७ ॥ और उससेभी अधिक उत्साही किसी दूसरे राजाको अपने पक्षमें मिलाकर तथा प्रवीरपुरुषों (यहादुर आदिमियों) को भत्ता और वेतन आदि देने अथवा अत्यधिक धन देनेसे अपने घशमें करके और भी अधिक प्रभाव और घोड़े हाथी तथा रथ आदि साधनोंसे युक्त हुई २ इसकी सेना, बिना किसी रोक टोकके सब जगह विचरण करती है ॥ ८ ॥ तथा ऐतिहासी इस बातमें प्रमाण है, कि खी बालक लंगड़े और अन्ये भी प्रभावशाली राजा होने अपने प्रभावके कारण उत्साही राजाओंको जीतकर, तथा धन आदिके द्वारा घशमें करके, पृथिवीपर विजयलामं किया था ॥ ९ ॥

प्रभावमन्त्रयोः प्रभावः श्रेयान् ॥ १० ॥ मन्त्रशक्तिसंपन्नो
हि वन्ध्यबुद्धिरप्रभावो भवति ॥ ११ ॥ मन्त्रकर्म चास्य निश्चि-
तमप्रभावो गर्भधान्यमष्टिरेवोपहन्तीत्याचार्याः ॥ १२ ॥

प्रभावशक्ति और मन्त्रशक्ति इन दोनोंमेंसे प्रभावशक्तिही अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ १० ॥ क्योंकि मन्त्रशक्तिसे सम्पन्न भी राजा, यदि प्रभावशक्तिसे रहित हो, तो उसका मन्त्र कभी सफल नहीं होता, तात्पर्य यह है कि कोई भी प्रभावहीन राजा विचारपूर्वक कार्य नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ प्रभावशक्तिसे हीन राजाका विचारपूर्वक निश्चित किया हुआ भी मन्त्र कर्म (मन्त्र-रूप कार्य) इसीप्रकार नष्ट होजाता है, जैसे गर्भस्थ धान्य (अपनी वृत्तिसिमें वृष्टिकी अपेक्षा करने वाला धान्य) वृष्टिके न होनेसे नष्ट होजाता है । तात्पर्य यह है, कि प्रभाव हीनता उसी तरह मन्त्रको नष्ट करदेती है, जैसे कि वृष्टिका न होना धान्यको । यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १२ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १३ ॥ मन्त्रशक्तिः श्रेयसी ॥ १४ ॥
प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजालेपनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः परा-
नुत्साहप्रभाववत्तश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम्
॥ १५ ॥ एवमुत्साहप्रभावमन्त्रशक्तीनामुत्तरोत्तराधिको ऽतिसंधत्ते
॥ १६ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १३ ॥ वह कहता है कि प्रभावशक्तिकी अपेक्षा, मन्त्रशक्तिही अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ १४ ॥ क्योंकि बुद्धि तथा शास्त्ररूपी चक्षुओंसे युक्त राजा, भोक्ता भी प्रयत्न करके अपने मन्त्रका अच्छी तरह अनुष्ठान कर सकता है । और दूसरे अपने प्रतिहन्त्री उस ही तथा प्रभावशाली राजाओंको भी, साम आदि उपायोंके द्वारा, तीक्ष्ण रसद आदि गूढ पुराणोंके द्वारा तथा औपनिषदिक प्रकरणमें कहे हुए विषय या अग्नि आदिके प्रयोगोंके द्वारा दबा सकता है, अर्थात् उताह प्रभावशक्ति के धोके होने पर भी मन्त्रशक्ति के द्वारा उनको अपने वशमें कर सकता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार उताहशक्ति प्रभावशक्ति और मन्त्रशक्तियोंमें से उत्तरोत्तर अधिक शक्ति से युक्त हुआ २ राजा, पूर्व पूर्व शक्ति से युक्त राजा को दबा सकता है । यहाँ तक शक्ति का निरूपण किया गया ॥ १६ ॥

देशः पृथिवी ॥ १७ ॥ तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं
योजनसहस्रपरिमाणं तिर्यक्चक्रवर्तिक्षेत्रम् ॥ १७ ॥ तत्रारण्यो
ग्राम्यः पार्वत औदको भौमः समो विषम इति विशेषाः ॥ १९ ॥

अथ इसके आगे देशका निरूपण किया जायगा । पृथिवीका ही नाम देश है ॥ १७ ॥ पृथिवीपर हिमालयसे दक्षिण समुद्र पर्यन्त अर्थात् उत्तर दक्षिणमें हिमालय और समुद्रके बीच का तथा एक हजार योजन तिरछा अर्थात् पूर्व पश्चिमकी ओर एक हजार योजन विस्तारवाला, पूर्व पश्चिम समुद्र की सीमाते युक्त देश चक्रवर्तिक्षेत्र कहाता है । अर्थात् इतने प्रदेश पर शासन करनेवाला राजा चक्रवर्ती होता है ॥ १८ ॥ उस चक्रवर्ती क्षेत्रमें जंगल, आबादी, पहाड़ी इलाका, जलभाग, स्थलप्राय, समतल तथा ऊबड़-साबड़ ये विशेष भाग होते हैं ॥ १९ ॥

तेषु यथास्ववलशुद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ यत्रात्मनः
सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य स उत्तमो देशः, विपरीतो
ऽधमः, साधारणो मध्यमः ॥ २१ ॥

इन विशेष भूमियों पर, जिस प्रकार अपनी सेना की वृद्धि होसके, उस तरह कार्यों का प्रयोग करे अर्थात् उसी अवस्था में युद्ध आदि कार्यों को करे, जब कि अपना विजय और दूसरे का पराजय मिश्रित हो ॥ २० ॥ जिस प्रदेश में अपनी सेना की कवायद आदिके लिये अच्छी भूमि मिल सके, तथा शत्रु की सेना की कवायदका कुछ भी सुभीता न हो, उसको उत्तम देश समझना चाहिये । जो इससे विपरीत हो (अर्थात् जिसमें अपनी सेनाकी कवायदके लिये कुछ भी सुभीता न हो, और शत्रुकी सेना की कवायदके लिये हर तरहका सुभीता हो) वह अधम, तथा जो अपने और शत्रुके लिये साधारण हो (अर्थात् जिसमें दोनोंके लिये कवायद आदिका सुभीता होना न होना परापर हो) वह मध्यम देश होता है । यहाँतक देशका निरूपण कर दिया गया ॥ २१ ॥

कालः शीतोष्णवर्षात्मा ॥ २२ ॥ तस्य रात्रिरहः पक्षो
मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः ॥ २२ ॥ तेषु
यथास्ववलशुद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥ यत्रात्मनः सैन्य-
व्यायामानामृतसृष्टुः परस्य स उत्तमः कालो, विपरीतो ऽधमः
साधारणो मध्यमः ॥ २५ ॥

अथ काल का निरूपण किया जायगा। यह तीन भागोंमें विभक्त है—
सरदी, गर्मी, और वर्षा ॥ २२ ॥ उस कालके निरूपणके लिये विशेष भेद हैं—रात, दिन, पक्ष (पात्र=पन्द्रह पन्द्रह दिन का शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष)
महीना, ऋतु, अयन (छा महीने का एक अयन होता है, एक वर्ष में दो

अयन होते हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन), संवत्सर (साल), और युग ॥ २३ ॥ समय के इन विशेष भागों में, विभिन्नीय अपनी सेना की वृद्धि करने वाले कार्योंका अनुष्ठान करे, अर्थात् इस प्रकार के कार्योंको करे, जिससे अपनीही सेना की वृद्धि हो सके ॥ २४ ॥ जो ऋतु आदि अपनी सेनाके व्यायामके लिये सर्वथा अनुकूल हो और शत्रुकी सेनाके लिये सर्वथा प्रतिकूल हो, यह ऋतु आदि काल उत्तमकाल समझना चाहिये । इससे विपरीतकाल अधम, और अपने तथा शत्रु के लिये साधारण काल मध्यमकाल कहाता है । यद्वांतक शक्ति देश तथा काल के भवान्तर भेद तथा उनके फलाफल का विचार किया गया ॥ २५ ॥

शक्तिदेशकालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः ॥ २६ ॥
शक्तिमान्निह निम्नस्थलगतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य
शक्तः प्रतीकारे भवति ॥ २७ ॥

अब इसके आगे शक्ति देश और काल इन तीनों के परस्पर बलाबल का विचार किया जायगा । आचार्यों का मत है कि शक्ति, देश और काल इन तीनों में से शक्ति ही सबकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ २६ ॥ क्योंकि शक्ति से युक्त राजा, ऊँच, खावट तथा पथरीले प्रतिकूल देश के और शरदी गर्मी तथा वर्षासे युक्त प्रतिकूल कालके प्रतीकार करनेमें अच्छी रतद समर्थ होता है ॥ २७ ॥

देशः श्रेयानित्येके ॥ २८ ॥ स्थलगतो हि श्वा नक्रं विक-
र्षति निम्नगतो नक्रः श्वानमिति ॥ २९ ॥

हिन्दी और प्राचीन आचार्यों का मत है कि शक्ति देश और काल इन तीनोंमेंसे देश ही सबकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होता है ॥ २८ ॥ क्योंकि अपने अनुकूल स्थल देशमें खड़ा हुआ कुत्ता, जलचर नम (नाँद) को रौंघ लेता है तथा अपने अनुकूल निम्नस्थल (जलदेश) में खड़ा हुआ नम उस देशके ही प्रभावसे कुत्तेको रौंघ लेता है । तात्पर्य यह है कि अपने २ अनुकूल देशमें ही स्थित होकर प्रत्येक व्यक्ति अपने विशेषिकों तथा शत्रुओं का इस लिये शक्ति आदि तीनोंमेंसे देशको ही प्रधान समझना चाहिये ॥ २९ ॥

कालः श्रेयानित्येके ॥ ३० ॥ दिवा काकः कौशिकं हन्ति
रात्रौ कौशिकः काकमिति ॥ ३१ ॥

इसके अतिरिक्त हिन्दी आचार्योंका यहभी मत है, कि कालके ही प्रभाव-
स्य सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ३० ॥ क्योंकि कालके ही प्रभाव-

से दिगमें कौभा उल्लूको मार डालता है, और रात्रिमें उल्लू कौपको मार डालता है । तात्पर्य यह है, कि जिसके अनुकूल जो काल होता है, वह उसके भरोसेपरही अपने बलवान् विरोधीको भी नष्ट कर देता है । इस लिये काल कोही सबकी अपेक्षा प्रधान समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

नेति कौटिल्यः ॥ ३२ ॥ परस्परसाधका हि शक्तिदेशकालाः

॥ ३३ ॥

परन्तु आचार्य कौटिल्य, पृथक् २ शक्ति आदिको प्रधान मानने वाले इन आचार्योंके मतको युक्तिमंगत नहीं समझता ॥ ३२ ॥ क्योंकि वह कहता है, कि शक्ति देश और काल ये तीनोंही परस्पर एक दूसरेके साधक होते हैं । इनमेंसे किसी एकको प्रधान और दूसरेको अप्रधान न समझना चाहिये, प्रत्युत तीनोंही एक दूसरेकी अपेक्षा करके कार्यको सिद्ध करने वाले होते हैं, इस लिये सबके ऊपर समानही प्रधानता समझनी चाहिये । यहाँ तक शक्ति देश और कालके बलाबलका विचार किया गया ॥ ३३ ॥

तैरभ्युचितस्वृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशमूले पाष्ण्यां प्रत्यन्ताटवीपु च रक्षा विधाय कायंसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपुराणभक्तमगृहीतनवभक्तमसंस्कृतदुर्गममित्रं वार्षिकं चास्य सस्यं, हैमनं च मुष्टिमुपहन्तुं मार्गशीर्षीं यात्रां यायात् ॥३४॥

अब इसके आगे यात्राकालका निरूपण किया जायगा; शत्रुको लक्ष्य करके त्रिजिगीपुके द्वारा किये गये आक्रमणका नाम 'यात्रा' है; उसके लिये समुचित कालोंका कथन किया जायगा:—अपने अनुकूल शक्ति देश और कालसे युक्त हुआ २ अर्थात् शक्ति आदि के द्वारा शत्रुकी अपेक्षा अधिक अतिशय को प्राप्त हुआ २ त्रिजिगीपु, आवश्यकतानुसार सेनाके तिहाई अथवा चौथाई हिस्सेको मूल (राजधानी), पार्थिव (पृष्ठभाग), और सरहद्दी इलाकोंके जंगलोंमें रक्षाके लिये स्थापित काले, कार्यको सिद्ध करनेमें समर्थ अर्थात् कार्यको पूरा करनेमें उपयोगी कोत (खजाना) और सेनाको लेकर, शत्रुको नष्ट करनेके लिये मार्गशीर्ष (मंगसिंह=भगहन) महीनेमें शत्रुकी ओर आक्रमण करे । इस समयमें शत्रु पर आक्रमण करनेसे त्रिजिगीपुको बड़ा लाभ रहता है, क्योंकि इस ऋतुमें शत्रुका पुराना संगृहीत किया हुआ अन्न समाप्त हो चुकता है, नई फसलके अन्नका अभी तक संग्रह नहीं होता, और वर्षाके अनन्तर किलोंकी मरम्मतभी नहीं हो पाती । तथा वर्षा ऋतुके उत्पन्न हुए २ धान्यको, और आगे हेमन्त ऋतुमें उत्पन्न होने वाली फसलको भी नष्ट करनेके लिये यह यात्रा उपयोगी होती है । यह यात्राका पहिला समय है ॥ ३४ ॥

हेमन्तं चास्य सस्यं वासन्तिकं च मुष्टिमुपहन्तुं चैत्रीं यात्रां
यायात् ॥ ३५ ॥ क्षीणतृणकाष्ठोदकमसंस्कृतदुर्गामित्रं वास-
न्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तुं ज्येष्ठामूलीयां यात्रां
यायात् ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार, हेमन्तऋतुमें उत्पन्न हुए २ धान्योंको, तथा वसन्तऋतुमें
होनेवाली फसलको नष्ट करनेके लिये चैत्र मासमें शत्रुपर आक्रमण करना
चाहिये । यह दूसरा यात्राकाल समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसी तरह, वसन्त
ऋतुमें तैयार किये हुए धान्योंको, तथा आगे वर्षाऋतुमें उपजनेवाली फसल
को नष्ट करनेके लिये ज्येष्ठ (जड़के) महीनेमें यात्रा करे । क्योंकि इस ऋतुमें
शत्रुके तृण (घास फूस आदि), काष्ठ (लकड़ी, खोखला आदि), तथा जल आदि
पदार्थ क्षीण अर्थात् नष्ट या कम होजाते हैं, और इसीलिये वह अपने दुर्ग आदि
आदिकी मरम्मत भी नहीं करा सकता । ये तीनों यात्राकाल शत्रुकी हानि
पहुंचानेके लिये बहुत अच्छे होते हैं । तारक्य यह है कि इन यात्राकालोंमें
शत्रुपर आक्रमण करके, विजिगीषु शीघ्रही उसको अपने अधीन कर
सकता है ॥ ३६ ॥

अत्युष्णमल्पयवसेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् ॥३७॥
तुपारदुर्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात्
॥३८॥ स्वसैन्यव्यायामयोग्यं परस्वयोर्ग्यं वर्षति यायात् ॥३९॥

अब देशोंके अनुसार यात्राकालका निरूपण किया जायगा,—अत्यन्त
गरम और थोड़ेही गौत (पशुओंकी खाद्य सामग्रीको गौत कहते हैं, उसके
लिये यहाँ 'यवय' शब्द है), ईंधन तथा जल वाले देशको हेमन्त ऋतुमें
जाये, अर्थात् ऐसे देश पर हेमन्त ऋतुमें आक्रमण करना सुखप्रद होता है
॥ ३७ ॥ जिस देशमें लगातार वर्षा या बारिश पड़ती हो, चड़े २ गहरे तालाब
हों, बड़े घने जंगल या घासके मैदान हों, ऐसे देशको ग्रीष्म ऋतुमें जाये ।
गरमियोंमें आवश्यक सब चीजोंका सुभीता होनेके कारण ऐसे देशों पर गर्मी
में ही आक्रमण करना सुखकर होता है ॥ ३८ ॥ अपनी सेनाके लिये क्वायद
आदि करनेके योग्य, तथा शत्रुकी सेनाके लिये क्वायद आदि करनेके सर्वथा
अयोग्य देश पर, वर्षा ऋतुमें आक्रमण करे । अर्थात् वर्षा ऋतुमें ऐसे देश पर
आक्रमण करे, जहाँ अपनी सेनाके लिये तो क्वायद आदि का सुभीता हो,
परन्तु शत्रुकी सेनाके लिये क्वायद आदिकार किरी तरहका भी सुभीता
न हो ॥ ३९ ॥

हो तभी उसपर आक्रमण करनेवा चाहिये; क्योंकि अपनी शक्तिका—अधिक होना अवश्यही कार्य को सिद्ध करने वाला होता है । शत्रुकी आवश्यकता कोई ठिकाना नहीं, यदि शत्रुपर आपत्ति आई हुई भी हो, फिर भी विजिगीषुकी शक्ति बढी हुई न होनेके कारण यह निश्चित नहीं होसकता कि विजिगीषुको विजय लाभ हो ही जावेगा । इसलिये आक्रमण करनेके सम्बन्धमें शत्रुके व्यसनभी अपेक्षा न करके विजिगीषुको अपनी शक्तिके अभ्युदयकीही अधिक अपेक्षा करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

यदा वा प्रयातः कर्शयितुमुच्छेलुं वा शकनुयादमित्रं तदा यायात् ॥ ४६ ॥

अथवा जिस किसी समयमें भी आक्रमण करने पर विजिगीषु अपने शत्रुकी निर्बल घनासके, वा उमका उच्छेद करसके, उसी समय उसपर आक्रमण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जब भी विजिगीषु अपने आप को इतना शक्तिस्वयं समझे, कि वह शत्रुको दबा या नष्ट कर सके, तभी उसपर आक्रमण करदे, शत्रुके व्यसन और अपने अभ्युदयकी भी विशेष अपेक्षा न करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

अत्युष्णोपक्षीणे काले ऽहस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ४७ ॥
हस्तिनो ह्यन्तःस्रेदाः कुष्ठिनो भवन्ति ॥ ४८ ॥ अनवगा-
हमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरवक्षाराद्यान्धीभवन्ति ॥ ४९ ॥ तस्मा-
त्प्रभूतोदके देशे वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ५० ॥

अब सेनाके अनुसर काल नियमका कथन कियाजायगा:—अत्यधिक उष्णतायुक्त समय में हाथियोंकी सेनाके अतिरिक्त अर्थात् हाथियोंकी सेनाको छोड़कर ऊँड आदिकी सेनाको साथ लेकर ही आक्रमण करना चाहिये ॥ ४७ ॥ क्योंकि हाथी, बाहर न निकलनेके कारण भीतर ही स्थित हुए २ पसीनेके जलसे कोडी होजाते हैं, अर्थात् अत्यधिक उष्ण देशमें हाथीकी खाल दूषित हो जाती है, और कुछ रोग सा होजाता है ॥ ४८ ॥ तथा पानीमें न नहानेके कारण और अच्छी तरह जल न पीनेके कारण, अन्दरका दाह अधिक बढ़ जानेसे हाथी अन्धे भी होजाते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये जिस देशमें जल बहुत अधिक हो, और वर्षा ऋतुमें ही, हाथियोंकी सेनाको लेकर आक्रमण करना चाहिये ॥ ५० ॥

विपर्यये खरोष्णश्वबलप्रायः ॥ ५१ ॥ देशमल्पवर्षपङ्कं
वर्षति मरुप्रायं चतुरङ्गबलो यायात् ॥ ५२ ॥ समविपमानिस

स्थलहस्वदीर्घवशेन वाघ्नो यात्रां विभजेत् ॥ ५३ ॥

जहाँ ऐसा न हो, अर्थात् जलका स्थायी प्रबन्ध भी नहो, और वर्षा ऋतु भी नहो, ऐसे देश तथा समयमें गधे ऊट तथा घोड़ोंकी सेनाको लेकर ही आक्रमण करना चाहिये । ऐसी अवस्थामें हाथियोंकी सेनाको कमी न लेजावे ॥ ५१ ॥ जिस देशमें वर्षाके होनेपर भी कौंचक योद्धी ही होती हो, ऐसे अरुणप्रदेशमें (रोहिस्तान आदिमें) वर्षा ऋतुमें चतुरंग सेना (हाथी, घोड़े, रथ और पदाति) को लेकर भी आक्रमण किया जासकता है ॥ ५२ ॥ अथवा मार्गके सम विषम निम्न स्थल हस्व तथा दीर्घ होनेके कारण भी यात्रा को विभक्त किया जासकता है । (सम=समतल, एकसी जमीन जो ऊर्ची नीची नहो, विषम=ऊर्ची नीची, निम्न=तलप्राय, स्थल=स्थलप्राय, हस्व=थोड़े ही समयमें त किया जाने वाला, तथा दीर्घ=बहुत समयमें तै किया जाने वाला मार्ग) ॥ ५३ ॥

सर्वा वा हस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात् ।

दीर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥ ५४ ॥

इत्याभियास्यत्कर्मणि नवमे अधिकरणे शक्तिदेशकालबलावलज्ञान यात्राकालाः प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥ भादितो द्वाविंशततोऽध्याय ॥ १२२ ॥

सबही यात्राएँ कार्यके थोड़ा होनेके कारण हस्वकाल होती हैं । अर्थात् कार्य थोड़ा होनेपर, उनके लिये किये जाने वाले आक्रमण थोड़ाही समय लेते हैं । इसीप्रकार जो कार्य बड़े होते हैं, उनके लिये कौंजाने वाली यात्रामें बहुत समय लगता है । और कभी २ कार्याधिश्यके कारणही वर्षा ऋतुमें भी (जब कि अपनेही देशमें वास करना चाहिये) दूसरे देशमें निवास करना पड़ता है । इसलिये कार्योंकी गुरुता लघुताके अनुसारही यात्राओंका हस्वकाल तथा दीर्घकाल समझना चाहिये ॥ ५४ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय ।

१३७-१३९ प्रकरण ।

सेनाओंके तैयार होनेका समय, सन्नाहगुण और प्रतिबलकर्म ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें सेनाओंके तैयार होने या उनको उचित कार्योंपर लगानेके समयका निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें सेनाओंके उद्योगके गुणोंका, तथा तीसरे प्रकरणमें शत्रुकी सेनाके अनुरूपही शक्ति आदिके द्वारा अपनी सेनाको भी बनानेके उपायोंका निरूपण किया जायगा ।

मौलवृत्तकथ्रेणीमित्रामित्राटवीवलानां समुद्धानकालाः ॥१॥

मौलवृत्त (मूलस्थान अर्थात् राजधानीकी रक्षा करने वाली सेना), वृत्तकवल (नौकरी देकर बनाई हुई सेना), थ्रेणीवल (जनपदमें अपना २-काम करने वाले शस्त्रास्त्र विद्यामें निपुण पुरुषोंकी सेना), मिश्रवल (मिश्रकी सेना), अमिश्रवल (शत्रुकी सेना), और अटवीवल (आठविक पुरुषोंकी सेना), इनके युद्धादि कार्योंमें जानेके लिये तैयार होनेके समयका निरूपण किया जायगा । तात्पर्य यह है, कि इन मिश्र २ सेनाओंको कितने अवसरपर युद्धके लिये तैयार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा ॥ १ ॥

मूलरक्षणादतिरिक्तं मौलवृत्तम् ॥ २ ॥ अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले विकुर्वीरन्निति ॥ ३ ॥ बहुलानुरक्तमौलवृत्तः सार्वलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धव्यमिति ॥ ४ ॥

सबसे पहिले मौलवृत्तके तैयार होनेकेही कारणोंको बताया जाता है:— मूलस्थानकी रक्षा करनेके लिये जितनी सेना पर्याप्त है, उससे अधिक मौलवृत्त सेना हो, तो उसे युद्धमें लेजाना चाहिये ॥ २ ॥ अथवा मौलवृत्त इस समय भायन्त द्वेष करनेमें लगा हुआ होनेके कारण, हमारे पक्ष जानेपर मूलस्थान में अवश्यही हमारे विरुद्ध आन्दोलन करेगा, ऐसी अवस्थामें भी मौलवृत्तको अपने साथही युद्ध आदि कार्योंपर लेजाना चाहिये ॥ ३ ॥ अथवा अपना मुकाबला करनेवाला शत्रु, उसमें (शत्रुमें) भरपूर अनुमान रखनेवाले मौलवृत्तको लेकर या शक्तिशाली दूसरे सैन्यको लेकर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आया है, इसलिये उसके साथ बहुत प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये, ऐसी अवस्थामें भी विजिगीषु अपने मौलवृत्तको लेकरही उसके साथ मुकाबला करे ॥ ४ ॥

प्रकृष्टे ऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मोलानामिति
 ॥ ५ ॥ बहुलानुरक्तसंपाते च यातव्यस्योपजापभयादन्यसैन्यानां भृतानामविश्वासे ॥ ६ ॥ बलक्षये वा सर्वसैन्यानामिति मौलबलकालः ॥ ७ ॥

बहुत लम्बा रास्ता तै करनेके बाद, या बहुत समयमें शत्रुके साथ युद्ध करनेकी तैयारी होनेपर क्षय (मनुष्योंका नाश) और व्यय (धनका नाश) भयङ्करभाषी है; मौलबलही उसको सहन कर सकता है, इस कारणसे भी मौलबलको युद्धपर लेजाना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने स्वामीमें अत्यन्त अनुराग रखने वाले शत्रुके दूत, वहाँ आकर अवश्यही मेरी सेनाओंमें भेद डालनेका यत्न करेंगे, इस प्रकार शत्रुके द्वारा भेद डालेजानेके भयसे, और मौल सेनाके अतिरिक्त अन्य भूत आदि सेनाओंपर पूरा विश्वास न होनेके कारण, ऐसे अवसरपर मौलबलको ही युद्धके लिये लेजाना चाहिये; क्योंकि मौलबल अत्यन्त विश्वस्त होता है, उसमें भेद नहीं डाला जासकता ॥ ६ ॥ अथवा अन्य सब सेनाओंका क्षय होजानेपर मौलबलको युद्धके लिये लेजाये - तात्पर्य यह है, कि जब अन्य सेनाओंके प्रधान पुरुषोंका नाश होजाय, और विजिगीषुको यह डर हो, कि अब यह सेना कहीं खेत छोड़कर भाग न खरी हो, उस समय मौलबलको बुलाकर युद्धके लिये तैयार करदे। ये सब मौलबलके युद्धादि कार्योंपर नियुक्त होनेके अवसर समझने चाहिये ॥ ७ ॥

प्रभूतं मे भृतबलमल्पं च मौलबलमिति ॥ ८ ॥ परस्वालपं विरक्तं वा मौलबलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति ॥ ९ ॥ मन्त्रेण योद्धव्यमल्पव्यायामेनेति ॥ १० ॥

अथ भृतबलके उन अवसर या कारणोंका निरूपण किया जायगा:—
 मेरे (विजिगीषुके) पास भृतबल बहुत अधिक है, और मौलबल थोड़ा है, ऐसे अवसर पर भृतबलको ही युद्धपर लेजाना चाहिये ॥ ८ ॥ शत्रुका मौलबल थोड़ा है, तथा उसमें अनुराग भी नहीं रखता, इसलिये मेरा भृतबल ही उसके मुकाबलेमें कार्य सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है; इस कारणसे भी भृतबलको ही युद्धके लिये लेजाये। अथवा शत्रुका भृतसैन्य शक्तिहीन तथा न होनेके बराबर है, अर्थात् बहुत थोड़ा है; तब भी विजिगीषु अपने भृतबलको ही युद्धके लिये तैयार करे ॥ ९ ॥ अथवा मन्त्रसे ही युद्ध करना पड़ेगा, अर्थात् इस समयमें शत्रुके साथ सुपूर्णयुद्ध ही करना पड़ेगा, उसमें थोड़े ही भृतसे कार्य हो सकता है, इस कारण से भी भृतबलको ही युद्धके लिये ले जावे ॥ १० ॥

हस्तो देशः कालो वा तनुक्षयव्यय इति ॥ ११ ॥ अल्प-
सम्पातं शान्तोपजापं विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति ॥ १२ ॥ पर-
स्याल्पः प्रसारो हन्तव्य इति भृतबलकालः ॥ १३ ॥

अथवा युद्धके लिये गन्तव्य देश बहुत दूर नहीं है, समय भी थोड़ा लगना है, तथा क्षय और व्यय भी बहुत थोड़ा ही होगा, ऐसा निमित्त होने परभी भृतबलको ही युद्धके लिये लेजावे ॥ ११ ॥ शत्रुके दूत मेरी सेनामे बहुत कम आसकते हैं, तथा वह भेदभी नहीं डाल सकते, यदि थोड़ा बहुत डाल भी दें, तो उसको अच्छी तरह शान्त भी किया जासकता है, क्योंकि यह मेरी सेना बहुत विश्वस्त है, ऐसा निमित्त होने परभी अपने भृतबलको ही युद्धके लिये लेजावे ॥ १२ ॥ शत्रुके थोड़े ही फैलाप का विघात करना है, अर्थात् नृणकाष्ठ आदि साधारण वस्तुओं को ही उसके पासतक न पहुँचने देनेके लिये पान करना है, और उसके लिये मेरा भृतबल ही पर्याप्त है, ऐसा अवसर होने परभी भृतबलको ही युद्ध करनेके लिये लेजावे । यहाँ तक भृगु-बलके तैयार होनेके अवसरोंका निरूपण किया गया ॥ १३ ॥

प्रभूतं मे श्रेणीबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति ॥ १४ ॥
हस्यः प्रवासः श्रेणीबलप्रायः प्रतिषोद्धा मन्त्रव्यायामाभ्यां प्रति-
योद्धुकामो दण्डबलव्यवहार इति श्रेणीबलकालः ॥ १५ ॥

अब श्रेणी बलके समयका निरूपण किया जाता है:—मेरे (=विजि-
गीशुके) पास श्रेणीबल बहुत अधिक है, उसको भूलस्यानकी रक्षामें भी लगा सकता हूँ, और शत्रुके साथ युद्ध करनेके समयमें भी उसे साथ लेजा सकता हूँ ॥ १४ ॥ थोड़ी दूरका सफर है, मुकाबलेमें लड़ने वाला शत्रु भी प्रायः श्रेणीबलको ही लेकर युद्ध करनेको तैयार है, अथवा शत्रु मन्त्र (वृष्णीयुद्ध) या व्यायाम (प्रकाशयुद्ध) के द्वारा मुकाबला करना चाहता है, अथवा जब पाशु दण्डसे उरा हुआ होनेके कारण अपनी सेनाको किसी दूसरे राजाके सुपर्द करके युद्ध व्यापारको चलाने वाला हो; विजिगीशुको चाहिये, कि वह इन सब अवसरोंपर अपने श्रेणीबलका उपयोग करे ॥ १५ ॥

प्रभूतं मे मित्रबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमल्पः प्रवा-
सो मन्त्रगुद्धाच्च भूयो व्यायामयुद्धमिति ॥ १६ ॥ मित्रबलेन
वा पूर्वमटवीनगरस्यानमासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्त्रबलेन योध-
यिष्यामि ॥ १७ ॥

अथ मित्र सेनाके उपयोगका समय बताते हैं:—मेरे (=विजिगीषुके) पास मित्रसेना बहुत है, मैं उसको मूलस्थानकी रक्षामें भी लगा सकता हूँ, और शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये भी लेजा सकता हूँ। सफर भी बहुत थोड़ा है, मन्त्रयुद्ध (तूष्णीयुद्ध) की अपेक्षा वहाँ अधिकतर व्यायामयुद्ध (प्रकाशयुद्ध) ही होगा, इसलिये अधिक क्षय व्ययकी भी सम्भावना नहीं है ॥ १६ ॥ अथवा शत्रुकी आटविक सेना या मित्रसेनाको, जो कि उसके नगरमें आकर ठहरी हुई है, पहिले अपनी मित्रसेनाके साथ लडाकर, फिर अपनी सेनाके साथ लडाऊंगा ॥ १७ ॥

मित्रसाधारणं वा मे कार्यम्, मित्रायत्ता वा मे कार्यसिद्धिः
॥ १८ ॥ आसन्नमनुग्रहं वा मे मित्रमत्यावापं वास्य माधयि-
ष्यामीति मित्रबलकालः ॥ १९ ॥

अथवा इस युद्धदि कार्यसे जितना मेरा प्रयोजन है, उतनाही मेरे मित्रका भी है, अथवा इस कार्यकी सिद्धि मित्रके ही अधीन है ॥ १८ ॥ अथवा मेरा मित्र मेरे अरवन्त समीप या मेरा अन्तरंग है, मुझे अवश्यही इसका कुछ उपकार करना चाहिये। अथवा अपने मित्रके दूष्य बलको (मित्रसे दोह रखने वाली सेनाको) शत्रुके साथ भिदाकर मरवा डालेंगा, इत्यादि निमित्तसे मित्रसेनाको युद्धपर लेजाना चाहिये। अर्थात् मित्रसेनाको युद्धपर लेजानेके लिये उपयुक्त वे अवसर या समय समझने चाहिये ॥ १९ ॥

प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानमटवीं
वा ॥ २० ॥ तत्र मे श्वराहयोः कलहे चण्डालस्यैवान्यतरासि-
द्धिर्भविष्यति ॥ २१ ॥

अथ शत्रुसेनाके समयका निरूपण करते हैं:—मेरे पास शत्रुसेना बहुत अधिक है, अर्थात् मेरी दक्षिके सामने मुकी हुई बहुतसी शत्रु सेना मेरे पासमें है, जो कि मेरे नगरमें ठहरी हुई है। इसी सेनाको मैं अपने दूसरे शत्रुके साथ लडाऊंगा; अथवा आटविक सेनाको शत्रुसेनाके साथ लडाऊंगा ॥ २० ॥ इसप्रकार दोनों शत्रुसेनाओंके आपसमेंही भिड़जानेपर, दोनोंमेंसे किसी एकके नाश होनेपर मेरे अभीष्टकी सिद्धि होगी; जैसे कुत्ते और सूअरके आपसमें लड़नेपर, दोनोंमेंसे किसी एकके मरजानेपर, (कुत्ता और सूअर दोनोंको खा जाने वाले) चण्डालका लाभही होता है। इस निमित्तके होनेपर एक शत्रुसेनाकोही दूसरी शत्रुके सेनाके साथ लड़नेके लिये भेजे ॥ २१ ॥

आसाराणामटवीनां वा कृष्टकर्मर्दनमेतत्कारिष्यामि ॥ २२ ॥

अत्युपचितं वा कोपभयान्नित्यमासन्नमारिबलं वासदयेन्यत्राम्यन्त-
रकोपशङ्कायाः शत्रुयुद्धावरयुद्धकालश्चेत्यमित्रबलकालः ॥ २३ ॥

अथवा अपने मित्र की सेना तथा आटविक सेनाके कण्टकों (कष्ट देने वालों) का इस रीतिसे उन्मूलन करसकूंगा, तात्पर्य यह है, कि शत्रुकी सेनाके जो व्यक्ति, मित्रसेना तथा आटविक सेनाको कष्ट पहुंचाने वाले हैं, उनका इस रीतिसे उच्छेद कर दिया जाएगा, इस निमित्तमे भी शत्रु सेनाकोही शत्रुके मुकाबलेमें युद्धके लिये भेजे ॥ २२ ॥ अथवा अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई २ शत्रु की सेनाको, कुपित होजानेके डरसे विजिगीषु सदा अपने पास रखे । परन्तु उसके पास रखनेमें यदि अपने ही अन्तरंग अमात्य पुरोहित आदिके कुपित होजानेका भय हो, तो ऐसा न करे, अर्थात् ऐसी अवस्थामें शत्रु सेनाको अपने समाप न रखे । यदि विजिगीषुका शत्रु, अपनेही किसी दूसरे शत्रुके साथ युद्धमें प्रवृत्त होरहा हो, तो उस युद्धके समाप्त होनेपर जो दूसरा युद्धके योग्य समय आवे, उस समय भी शत्रुसेनाकोही दूसरे शत्रुके मुक उलेमें युद्धके लिये भेजे । ये सब अवसर शत्रुसेनाको युद्धपर भेजनेके हैं ॥ २३ ॥

सैन्याटवीबलकालो व्याख्यातः ॥ २४ ॥ मार्गदेशिकं परभू-
मियोग्यमरियुद्धप्रतिलोभमटवीबलप्रायः शत्रुर्वा विल्वं विल्वेन
हन्यतामल्पः प्रसारो हन्तव्य इत्यटवीबलकालः ॥ २५ ॥

इसीके अनुसार आटविक सेनाको युद्धपर भेजनेके समयका भी व्याख्यान समझलेना चाहिये । अर्थात् जो २ कारण शत्रुसेनाके युद्धपर जानके लिये बताये हैं वे ही आटविक सेनाके लिये समझने चाहिये ॥ २४ ॥ आटविक सेनाके सम्बन्धमें जो और विशेष बात हैं, उनका यहाँ निर्देश किया जाता है:—शत्रुके देशपर आक्रमण करनेके समय आटविक सेना मार्गोंको अच्छी तरह पहचान सकती है, आटविक सेना शत्रुकी भूमिमें युद्ध करनेके योग्य आयुधोंकी शिक्षा प्राप्त किये हुये होती है; अथवा शत्रुके साथ युद्ध करनेके सम्बन्धमें विजिगीषुकी आज्ञाके बिनाही आटविक सेना, शत्रुके प्रतिपक्ष रूपमें तैयार रहती है अथवा शत्रु प्रायः आटविक सेनाको लेकरही मुकाबला करनेके लिये तैयार है, इसलिये एक विल्वफल (बेल) को दूसरे विल्वफलके साथ टकराकर फोड़ दिया जाता है, जैसेही हमारी ओरसे भी उसके समानजातीय आटविक बलके द्वारा ही आक्रमण किया जाना चाहिये; अथवा शत्रुके तृण काष्ठ आदि छोटे २ पशुओंको शत्रु तक न पहुंचने देनेके लिये, अर्थात् इनकी चौंभमें ही नष्ट कर देनेके लिये आटविक सेनाही उपयुक्त होसकती है, इत्यादि निमित्तोंके होनेपर भी आटविक सेनाको ही शत्रुके मुकाबलेमें लड़नेके लिये भेजना

चाहिये । यद्वांतक मौल आदि छः प्रकारकी सेनाओंके शत्रुपर आक्रमण करनेके अवसरोंका निरूपण करदिया गया ॥ २५ ॥

सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थ यदुत्तिष्ठति तदौत्साहिकम् ॥ २६ ॥ भक्तवेतनविलोपविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषामभेद्यं तुल्यदेशजातिशिल्पप्रायं संहतं महदिति विलोपादानकालाः ॥ २७ ॥

इन छः प्रकारकी सेनाओंके अतिरिक्त, एक सातवीं सेना 'औत्साहिक' नाम की होती है । जो सेना एक मुख्य नेतासे रहित, भिन्न २ देशोंमें रहने वाली, राजासे स्वीकार की हुई अथवा स्वीकार न की हुई, केवल दूसरे देशोंको लड़नेके लिये उठ खड़ी होती है, उसी सेनाका नाम 'औत्साहिक' है ॥ २६ ॥ इस सेनाके दो भेद हैं, एक भेद्य और दूसरा अभेद्य । प्रतिदिन भत्ता लेकर, तथा मासके अनन्तर द्विगुण्य आदिके रूपमें नियत वेतन लेकर, शत्रुके देशमें लूट मचाने वाला, दुर्गोंमें काम करने वाला तथा राजाकी सामयिक आज्ञाका पालन काने वाला औत्साहिक बल 'भेद्य' कहाता है । क्योंकि शत्रु अधिक भत्ता आदि देकर इसको अपनी ओर झुका सकता है । परन्तु जो औत्साहिक सेना प्रायः एक ही देश जातिकी तथा समान व्यवसाय करने वाली होती है, वह अभेद्य कही जाती है, शत्रु उसे अपनी ओर नहीं मिला सकता, क्योंकि वह सेना भत्ता तथा वेतन आदिकी कुछ अपेक्षा नहीं करती, उसे अपने देश आदिका अधिक स्थान होता है । इसीलिये यह सेना सुसंघटित और शक्तिसम्पन्न समझी जाती है । इसलिये इस सेनाका भी यथावसर संप्रद करना चाहिये । यद्वांतक सेनाओंके आक्रमणके, समय आदिका निरूपण किया गया ॥ २७ ॥

तेषां कुप्यभृतममित्राटवीवलं विलोपभृतं वा कुर्यात् ॥ २८ ॥

इन सात प्रकारकी सेनाओंमें से, शत्रु सेना और आटाविक सेनाको 'वध आस्तरण आदि द्रव्य अथवा शत्रुके देशका जीता हुआ या लूटा हुआ माल ही, वेतनके रूपमें देदिया जावे । तात्पर्य यह है कि शत्रु सेना तथा आटाविक सेनाको नियत मासिक न दिया जावे, प्रत्युत वे परदेशमें लूटेहुए मालको ही अपने वेतन रूपमें लेकर कार्य करें ॥ २८ ॥

अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्ने शत्रुमवगृहीयात् ॥ २९ ॥
अन्यत्र वा प्रेषयेत् ॥ ३० ॥ अफलं वा कुर्यात् ॥ ३१ ॥

कारण तथा स्वामीके विषयमें सेनाका अनुराग होनेके कारण, मृतबलकी अपेक्षा मौलबल ही श्रेष्ठ होता है ॥ ३६ ॥ तथा श्रेणीबलकी अपेक्षा मृतबल अधिक श्रेयस्कर होता है क्योंकि यह (मृतबल) राजाके सदा समीप रहता है, बिना किसी विलम्बके बहुत जल्दी ही युद्धके लिये तैयार किया जासकता है, और अपने अधीन भी रहता है, श्रेणीबलमें यह बात नहीं होती, यह दूर भी रहता है तैयार होनेमें देर लगाता, तथा अपने घसमें भी नहीं होता ॥ ३७ ॥

जानपदमेकार्थोपगतं तुल्यसहर्षामर्षसिद्धिर्लाभं च श्रेणी-
बलं मित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३८ ॥ अपरिमितदेशकालमेकार्थोपग-
माच्च मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३९ ॥

मित्रबलकी अपेक्षा श्रेणीबल अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि यह अपने मालिकके ही देश का होता है, एक ही प्रयोजनके लिये उनका संग्रह किया जाता है अर्थात् देशके स्वतन्त्र रहनेसे जैसा विजिगीषुको लाभ है, वैसा वहाँकी प्रजाको भी, तथा अपने मालिकके समान ही संघर्ष अमर्ष और सिद्धिसे युक्त होता है, तात्पर्य यह है कि मालिक जिसके साथ संघर्ष करना चाहता है, श्रेणीबल भां उसके अनुसार ही चाहता है, मालिकका जिसपर क्रोध होता है, श्रेणीबलको भी उसपर क्रोध होता है, मालिकको जिस प्रकारकी सिद्धि होती है, श्रेणीबलको भी वही सिद्धि अभीष्ट होती है । परन्तु मित्रबलमें ये बात नहीं होसकती ॥ ३८ ॥ मित्रबल भी अमित्रबल (शत्रुसेना) का अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि मित्रबलसे अपनी इच्छानुसार प्रत्येक देश तथा प्रतिसमयमें सहायता ली जासकती है, तथा विजिगीषुके प्रयोजनके अनुसार ही मित्रबलका भी प्रयोजन होता है, परन्तु अमित्रबलमें यह बात नहीं होती, क्योंकि उसको स्वतन्त्रतापूर्वक उसकी इच्छानुसार, चाहे जिस देशमें चाहे जिस समय युद्धपर नहीं भेजा जासकता; क्योंकि इसप्रकार शत्रुसेनाको चाहे जहाँ भेजनेमें डरही रहता है । तथा विजिगीषु और शत्रुसेनाके प्रयोजनमें भी भेद होता है, यह स्पष्ट है । (महामहोपाध्याय त० गणपति शास्त्रीने इस सूत्रके दो भाग करदिये हैं, एक 'अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च । और दूसरा 'मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः' । पहिले सूत्रको उन्होंने मित्रबलकी अपेक्षा श्रेणीबलकी श्रेष्ठताहीमें लगाया है, तथा अमित्रबलमें मित्रबलकी श्रेष्ठता बतलानेमें उन्होंने किसी हेतुकी आवश्यकता नहीं समझी; यह व्याख्यान कुछ क्रम-विरुद्धता प्रतीत होता है । और नयचान्द्रिका व्याख्याके भी विरुद्ध है) ॥ ३९ ॥

आर्याधिष्ठितमभिन्नवलमटवीबलाच्छ्रेयः ॥ ४० ॥ तदुभयं
विलोपार्थम् ॥ ४१ ॥ अविलोपे व्यसने च ताभ्यामादिभयं
स्यात् ॥ ४२ ॥

अभिन्नवल भी अटवीबलकी अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि
अभिन्नवल, आर्य अर्थात् सद्गुणोंसे युक्त विश्वस्त पुरुषोंके नेतृत्वमें रहता है,
अटवीबल, ऐसा नहीं होता ॥ ४० ॥ ये दोनों ही प्रकारकी सेनाएं अर्थात् शत्रु-
सेना और आटविकयेना, विलोपकेही लिये अर्थात् शत्रुदेशको लूटने आदिकेही
लिये प्रयुक्त कीजाती हैं ॥ ४१ ॥ क्योंकि लूट आदिके अतिरिक्त यदि युद्ध आदिमें
उन्हें लगाया जाय, तथा अपनी विपत्तिके समयमें उन्हें कहीं कार्यपर लगाया
जाय, तो उनसे आर्यताके सांपकी तरह सदा डरही रहता है। अर्थात् वह
अपनेही पक्षमें कुछ क्षमता आदि करके नया बखड़ा खड़ा करारकृती है ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्व पूर्व श्रेयः ।
संनाहयितुमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंकी पृथक् २ सेनाओंमें उत्तरो-
त्तर सेनाकी अपेक्षा पूर्व २ सेना, तेजकी प्रधानता होनेके कारण अधिक श्रेय-
स्कर होती है। यह आचार्योंका मत है (यहाँ तेजकी प्रधानताका तात्पर्य
शौर्यकी प्रधानता न लेनी चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणमें शौर्यकी अधिकता नहीं
होती, इसलिये फलश्रुता धार्मिकता आदि गुण सम्पत्ति ही तेज शब्दका भाव
समझना चाहिये) ॥ ४३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहा-
रयेत् ॥ ४५ ॥ प्रहरणविधाविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः ॥ ४६ ॥
बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति ॥ ४७ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ४४ ॥ शत्रु, ब्राह्मणबलको
प्रणिपात (नमस्कार, सरकार या भागे झुकजाना) से ही अपने आधीन कर-
लेता है ॥ ४५ ॥ इसलिये ब्राह्मणकी विधामें सुशिक्षित क्षत्रियबलकोही सब-
की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा वैश्य शूद्रबल-
को भी श्रेयस्कर समझा जासकता है, जब कि उसमें वीर पुरुषोंकी अच्छी
तरह अधिकता हो ॥ ४७ ॥

तस्मादेवंबलः परस्तस्यैतत्प्रतिबलमिति बलसमुद्दानं कुर्यात्
॥ ४८ ॥

सेनाओंकी इसतरह परस्पर आपेक्षिक श्रेष्ठताको जानके अनन्तर राजु-के पास इसप्रकारकी सेना है, और उनके मुकाबलेकी समुक्त सेना होसकती है, इसप्रकार विचार करके उपयुक्त सेनाओंका संग्रह करे ॥ ४८ ॥

हस्तियन्त्रशकटगर्भकुन्तप्रासहाटकवेणुशल्यवद्वाल्तिवलस्य
प्रतिवलम् ॥ ४९ ॥

हस्तसेनाके मुकाबलेके लिये, हाथी, यन्त्र (जामदग्न्य आदि) शकटगर्भ (जिसका मध्यभाग शकटके समान हो, ऐसा आयुधविशेष), कुन्त (भाड़ा), प्रास (बरछा), हाटक (तीन फलों वाला अर्थात् तीन काँटों वाला भाड़ा; किसी २ पुस्तकमें ' हाटक ' पदके स्थानपर ' खर्वटक ' पाठ है, पर यह पाठ अधिक संगत नहीं मालूम होता), वेणु (लम्बा बेंत या लाठी आदि), शल्य (चारों ओरसे छोड़ेकी कीलों वाला, छोड़ेकाही बना हुआ डण्डा), आदि साधनोंसे युक्त सेनाकी आवश्यकता होती है ॥ ४९ ॥

तदेव पाषाणलगुडावरणाकुशकचग्रहणीप्रायं रथवलस्य
प्रतिवलम् ॥ ५० ॥

यही सेना, अर्थात् जो सेना, हस्तसेनाके मुकाबलेके लिये पतलाई गई है, यदि पाषाण (बड़ी २ शिलाएँ या पत्थर), लगुड (पटे या छोटी २ गदा), आवरण (कवच), अंकुश, और कचमहणी (कौचा—बहुत लम्बी छोड़ेकी छत्र, जिसके भागे बड़ासा हुक्, लगा हुआ हो) आदि साधनोंसे युक्त हो, तो रथवल (रथ सवार सेना) की उसे प्रतिवल (मुकाबलेमें प्रतीकार करने वाली सेना) समझना चाहिये ॥ ५० ॥

तदेवाश्वानां प्रतिवलम् ॥ ५१ ॥ यर्मिणो वा हस्तिनो ऽश्वा
वा यर्मिणः क्वचिनो रथा आवराणिनः पत्तयश्चतुरङ्गवलस्य
प्रतिवलम् ॥ ५२ ॥

हाथीसवार सेनाके मुकाबलेकी जो सेना बताई गई है, यही सेना शुद्धसवार सेनाका भी मुकाबला करने वाली समझनी चाहिये । तार्पर्यं यह है, कि अश्ववल का भी यही प्रतिवल समझना चाहिये, जो हस्तिवलका प्रतिवल कहा गया है ॥ ५१ ॥ कवच धारण करने वाले हाथी, इसी प्रकार कवच धारण करने वाले ही घोड़े, तथा मजबूत छोड़ेके पत्तोंसे भरे हुए रथ, और कवच धारण करनेवाली ही पैदल सेना; ये साधारणतया यथासंख्य हाथी-सवार शुद्धसवार रथसवार तथा पैदल चतुरंग सेनाक प्रतिवल समझने चा-

दियें । अर्थात् चतुर्गं सेना का मुक रक्षा, कवच पहिने वाले हाथी आदिके द्वारा ही किया जासकता है ॥ ५२ ॥

एवं बलसमुद्धानं परसैन्यनिवारणम् ।

विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः ॥ ५३ ॥

इयमभियास्यत्कर्मणि नवमे अधिकरण बलसमुद्धानकालः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म द्वितीयो अध्यायः ॥ २ ॥ आदित्यखण्डविंशतितो अध्यायः ॥ १२३ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही, सेनाओंकी पारस्परिक श्रेष्ठता, तथा युद्धता लघुता का विचार करके ही उपयुक्त सेनाओंका संग्रह करे । तथा मौल्य श्रुत आदि अपनी सेनाओंकी शक्तिके अनुसार, एवं हाथी घोड़े आदि सेनाओंके अङ्गभूत पशुओंकी बहुलता और भरणपानके कारण किये गये विभागोंके अनुसार ही शत्रु की सेनाका निराकरण करना चाहिये । अर्थात् विजिगीषु को चाहिये कि वह यथाशक्ति अपनी सेनाओंका संग्रह करता रहे, तथा शत्रुकी सेनाओंका प्रतीकार करता रहे ॥ ५३ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१४०-१४१ प्रकरण

पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्य और अभ्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार ।

{ इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । आगे होने वाले छामके उद्देश्यसे विजिगीषुके द्वारा शत्रु पर आक्रमण किये जाने पर पीछेस पाल्निप्राह आटविक तथा अन्य दृश्य व्यक्तियोंके द्वारा राजधानीमें जो उपद्रव किया जाता है, उसीका नाम 'पश्चात्कोप' है । पहिले प्रकरणमें आगे होनेवाले छामकी अपेक्षा पश्चात्कोपके गुरुलघु-भावका विचार किया जायेगा । और दूसरे प्रकरणमें बाह्य तथा अभ्यन्तर प्रकृतिजन्य कोपके प्रतीकारका निरूपण होगा ।

अल्पः पश्चात्कोपो महान्पुरस्ताह्याभ इति ॥ १ ॥ अल्पः पश्चात्कोपो गरीयान् ॥ २ ॥ अल्पं पश्चात्कोपं श्रयात्तस्य दूष्या- मित्राटविकाऽहि सर्वतः समेधयन्ति प्रकृतिकोपो धा ॥ ३ ॥

थोड़ा पश्चात्कोप और अग्रधिक, आगे होने वाला लाभ; इन दोनोंमें से कौन गुस्तर है इस बातका विचार किया जायगा। तत्पर्य यह, कि थोड़े पश्चात्कोपके कारण बड़े लाभकी अपेक्षा करदी जाये, या बड़े लाभके कारण थोड़े पश्चात्कोपकी, अपेक्षा करदी जाये ॥ १ ॥ इस विषयमें निर्णय यही है, कि थोड़ा भी पश्चात्कोप, बड़े लाभकी अपेक्षा गुस्तर होता है। अर्थात् थोड़े पश्चात्कोपके कारण, बड़ेभी लाभकी अपेक्षा कीजासकती है ॥ २ ॥ क्योंकि थोड़े भी पश्चात्कोपको, विजिगीषुके बाहर चले जानेपर, दूप्यग्याप्ति प्राप्ति तथा आटाधिक पुरष, चारों ओरसे अच्छी तरह बढ़ा देते हैं। अथवा मन्त्री पुरोहित आदि अभ्यन्तर प्रकृतिसेही उत्पन्न हुआ २ कोप, उस थोड़े भी पश्चात्कोपकी और अधिक बढ़ा देता है। इस लिये महान् पुरस्ताह्णम् (आगे हानेवाले लाभ) की अपेक्षा थोड़े पश्चात्कोपकोही गुस्तर समझना चाहिये ॥ ३ ॥

लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताह्णम् एवंभूते भूते भृत्यमित्रक्षय
व्यया व्रसन्ते ॥ ४ ॥ तस्मात्सहस्रैकोयः पुरस्ताह्णमस्यायोगः
शतैकीयो वा पश्चात्कोप इति न यायात् ॥ ५ ॥ सूचीमुखा
हानर्या इति लोकप्रवादः ॥ ६ ॥

पश्चात्कोपकी पहिले कुछ पक्काई न करके यदि आक्रमणसे होनेवाले बड़े भारी लाभको प्राप्त कर भी लिया जाय, ता भी इस प्रकारके पश्चात्कोपके बढ़नेपर फिर उसका प्रतिकार करनेके लिये शूर्य और मित्रसम्बन्धी क्षय नश्य उस लाभको बराबर कर देते हैं। अर्थात् जो, कुछ लाभ होता है, वह बड़े हुए पश्चात्कोपको शान्त करने में सब कुछ खर्च होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये जब कि आगे होनेवाले लाभकी सिद्धि, प्रतिसहस्र एक अंश मात्र होनेवाली हो, उसके मुकाबलेमें पश्चात्कोपसे होनेवाला अनर्थ प्रतिशतक एक अंश समझना चाहिये। अर्थात् पश्चात्कोपजन्य अनर्थकी अपेक्षा आगे होनेवाले लाभमें दसगुनी असास्ता होती है। इसलिये पश्चात्कोपकी आशंका होनेपर कमी प्राप्ति न करे ॥ ५ ॥ लोकमें कहावत है कि अनर्थ सदा सूचीमुख होते हैं। तत्पर्य यह है कि अनर्थ पहिले तो सुई की नोककी तरह बहुत सूक्ष्म मालूम होते हैं, परन्तु पांछेसे वे सदा बहुत ही भयावह रूप धारण कर लेते हैं ॥ ६ ॥

पश्चात्कोपे सामदानभेद्दण्डान्प्रयुञ्जीत ॥ ७ ॥ पुरस्ताह्णमे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं क्षुर्वीत ॥ ८ ॥

यदि पश्चात्कोपकी अधिक सम्पायना हो तो साम दान भेद और दण्ड, इन सब ही उपायोंका प्रयोग करे । अर्थात् विजिगीषु स्वयं आक्रमणके लिये न जाकर ही पश्चात्कोपको शान्त करनेके लिये साम आदि सब ही उपायोंका प्रयोग करे ॥ ७ ॥ और आक्रमणसे होनेवाले सामको यदि न छोड़ना हो, तो उसकी भी प्राप्तिके लिये यात्रामें सेनापति अथवा युवराजको ही प्रधान सेनानायक बनाकर भेज देवे । अर्थात् इनमेंसे किसीकी अवीनतामें सेनाको करके उसे युद्धके लिये भेज देवे ॥ ८ ॥

बलवान्ना राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात् ॥ ९ ॥ अभ्यन्तरकोपशङ्कायां शङ्कितानादाय यायात् ॥ १० ॥

अथवा बलवान् राजा जो कि पश्चात्कोपका प्रतिकार करनेमें समर्थ हो, तात्पर्य यह है कि जिस राजाके पास पर्याप्त सेना हो, और इसीलिये उसके भरोसेपर अपनी अनुपस्थितिमें भी पश्चात्कोपको शान्त कर सकता हो, वह घोषासी सेना पीछे छोड़कर, आगे होनेवाले लाभकी प्राप्तिके लिये स्वयं ही यात्रा कर सकता है ॥ ९ ॥ यदि उसको अभ्यन्तर कोपकी आशंका हो, अर्थात् यह सन्देह हो कि मेरे चले जानेपर अमात्य पुरोहित आदि ही उपद्रव खड़ा करदेंगे; तो उनके अपने साथ लेकर ही शत्रुपर आक्रमण करे । अर्थात् ऐसे शङ्कित व्यक्तियोंकी अर्पण साथ ही युद्धपर लेजावे ॥ १० ॥

बाह्यकोपशङ्कायां वा पुत्रदारमेवामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकबलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायात् वायाद्वा ॥ ११ ॥ अभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

बाह्यकोप (अन्तपाल भाटविक आदिके द्वार, विजिगीषुके बाहर चले जानेपर राजधानी आदिमें जो उपद्रव कियाजाय, उसे बाह्यकोप कहते हैं; इसका निरूपण इसी अध्यायके २७ वें सूत्र में किया जायगा) की आशंका होनेपर, बाह्यकोपको करनेवाले अन्तपाल भाटविके पुत्र तथा स्त्रियोंको अपने अमात्योंके अर्पण करके विजिगीषु युद्धपर चलाजावे । बाह्य तथा अभ्यन्तर दोनों ही भोरसे उपद्रवकी आशंका होनेपर ही, अनेक प्रकारकी मौल भृत आदि सेनाओंके समूहसे युक्त, तथा अनेक मुख्य सेनाध्यक्षोंसे युक्त शून्यपाल (शत्रुके मुकाबलेमें विजिगीषुके चले जानेपर पीछेसे स्वामी रक्षित राजधानीकी रक्षा करनेवाला अधिकारी) को स्थापित करके फिर यात्रा करे । यदि फिर

भी अभ्यन्तर कोपकी आशका बनी ही रहे, तो विजिगीषु न जावे। (किसी २ पुस्तकमें 'न यायाद्वा' के स्थानपर 'न वा यायात्' ऐसा भी पाठ है, परन्तु अर्थ में कोई किसी तरहका भेद नहीं) ॥ ११ ॥ क्योंकि अभ्यन्तर कोप, याद्वकोपकी अपेक्षा अत्यधिक हानिकर होता है, इस बातको पहिले कहा जासुका है ॥ १२ ॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतरकोपोऽभ्यन्तर-
कोपः ॥ १३ ॥ तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा
साधयेत् ॥ १४ ॥

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज इन चारोंमें से किसीके द्वारा किये जानेवाले उपद्रवको 'अभ्यन्तरकोप' कहते हैं ॥ १३ ॥ इस अभ्यन्तरकोपको यदि विजिगीषु अपने ही किसी दोषसे उत्पन्न हुआ २ समझे, तो उस दोषका परित्यागकर अभ्यन्तर कोपको शान्त करे। यदि मन्त्री पुरोहित आदिके दोषके कारण ही वह उपद्रव उठा हो, तो उनको उनके अपराधके अनुसार वध (प्राणदण्ड) बन्धन (कैदमें रखना) तथा भर्षदण्ड (जुर्माना आदि करना) आदिके द्वारा सीधा करे ॥ १४ ॥

महापराधेऽपि पुरोहिते संरोधनमपस्त्रावणं वा सिद्धिः ॥ १५ ॥
युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यन्यासिन्सति पुत्रे ॥ १६ ॥
ताम्यां मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥ १७ ॥

यदि पुरोहित, इसतरहका कोई महान अपराध भी करदे, तो भी उसका वध नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह ब्राह्मण होता है, ब्राह्मणका वध निषिद्ध है। इसलिये या तो उसको कैदमें डालदिया जावे, या अपने देशसे बाहर निकाल दिया जावे। उसके लिये यही दण्ड है ॥ १५ ॥ यदि युवराज ही इसप्रकारका महान अपराध करदेवे, तो उसे या तो बन्धनागारमें डाल दिया जावे, या उसका वध करदिया जावे, अर्थात् उसे प्राणदण्ड दिया जावे, परन्तु यह प्राणदण्ड उसी अवस्थामें देना चाहिये, जब कि अत्यन्त गुणी कोई दूसरा पुत्र विद्यमान हो ॥ १६ ॥ पुरोहित और युवराजके समान, अथवा बन्धन और वधके द्वारा मन्त्री और सेनापतिके भी दण्डका व्यवधान समझ लेना चाहिये। अर्थात् यदि वह ब्राह्मण हो तो अपराधके अनुसार बन्धन या देशनिकासी, और अमाह्मण हो तो अपराधानुसार बन्धन या वधका दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमृत्साहेन साधयेत्
 ॥ १८ ॥ उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसंधिकर्मभ्यामरिसंधानभ-
 यात् ॥ १९ ॥ अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासये-
 देनम् ॥ २० ॥

अपने पुत्र, अपने भाई तथा अपने ही कुलमें उरपन्न हुए अन्य
 व्यक्तिको, जो कि राज्य लेनेकी इच्छा रखते हैं, उरनाह देकर शान्त करे।
 अर्थात् उनके योग्य सेनापति आदि पक्षोंपर उन्हें नियुक्त करके अपने वशमें
 करे ॥ १८ ॥ यदि उनको उरसाह न देसके, तो जो सम्पत्ति राज्यकी ओरसे
 उन्हें भोगनेको मिली हुई है, उसे सदाके लिये उन्हें ही देकर तथा भार अधिक
 सम्पत्ति आदि देकर उनसे सन्धि करके अपने वशमें करे। क्योंकि यदि
 उन्हें अपने वशमें न किया जाय, तो विजिगीषुको इस बातका सदा ही
 डर बना रहता है, कि कहीं ये मेरे प्रायुक्त साथ न मिलजावें ॥ १९ ॥ अथवा
 उसी तरहके दूसरे खानदानी आदिमियोंको जमीन आदि देकर, इनको
 अपना विश्वासी बनाले। तात्पर्य यह है कि जो अपना खानदानी आदमी
 राज्य लेनेकी इच्छा रखता हो, उसको वशमें करनका एक यह भी उपाय
 है, कि वसी जैसे अपने अन्य खानदानी आदिमियोंको भूमि आदि देवे,
 ऐसा करनेसे यह पुरुष भी अपना विश्वस्त होजायगा ॥ २० ॥

तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत् ॥ २१ ॥ सामन्ताट-
 विकान्वा, तैर्विगृहीतमत्तिसंदध्यात् ॥ २२ ॥ अवरुद्धादानं पार-
 ग्रामिकं वा योगमासिष्ठेत् ॥ २३ ॥ एतेन मन्त्रिसेनापती न्या-
 र्याता ॥ २४ ॥

अथवा इसकी अभ्यक्षतामें (जो पुरुष राज्य लेना चाहे, उसकी
 अभ्यक्षतामें) स्वयंग्राह सेना (जिस सेनाके सम्बन्धमें यह घोषणा कर दी
 जाये, कि जो कुछ दण्डमें इसको मिलेगा, यह उसीका होगा, इस सेनाको
 'स्वयंग्राह सेना' कहते हैं) को देकर कहीं युद्ध करनेके लिए भेज दिया
 जाये ॥ २१ ॥ अथवा सामन्त और आठविकोंको ही उसकी अभ्यक्षतामें
 कहीं युद्धपर भेज दिया जाये; और उनके साथ (अर्थात् स्वयंग्राह सेना,
 सामन्त तथा आठविकों के साथ) विरोध करके अर्थात् किसी बातपर
 एतद्वा कराके उसे बन्धनमें लेलिया जाये ॥ २२ ॥ जब स्वयंग्राह सेना
 आदि उरको सिरफतार पर छें, तो उनसे विजिगीषु उठे छे छेरे; अथवा
 दुर्गलम्बोपाय अधिकरणमें पतलाये हुए पारग्रामिक नामक योगका अनुष्ठान

करे। अर्थात् उस योगके द्वारा उसे सीधा करे ॥ २३ ॥ इसीके अनुसार, मन्त्री और सेनापतिके द्वारा उपपन्न किये हुए कोष, तथा उसके प्रतीकारका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥

मन्त्र्यादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपोऽन्तरमात्य-
कोपः ॥ २५ ॥ तत्रापि यथार्हमुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

मन्त्री, पुरोहित, युवराज और सेनापति, इन चारोंके अतिरिक्त, अन्य अन्तरमात्य अर्थात् दीवारिक (द्वारपाल) या अन्तर्वंशिक (महलोंमें काम करने वाले विशेष कर्मचारी) आदि पुरपोंमेंसे किसी एकके द्वारा उठाये हुए उपद्रवको 'अन्तरमात्यकोप' कहते हैं ॥ २५ ॥ उसके शान्त करनेके लिये भी यथायोग्य उपयुक्त उपायोंकाही प्रयोग करे। यहांतक अन्तःकोपके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ २६ ॥

राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डोपनतानामन्यतमकोपो वाह्य-
कोपः ॥ २७ ॥ तमन्योन्येनावग्राहयेत् ॥ २८ ॥

अब वाह्यकोप और उसके परिहराका निरूपण किया जायगा:—राष्ट्रके प्रधान व्यक्ति, अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी), आटविक और दण्डोपनत (सैनिक शक्तिके द्वारा अर्थात् बल पूर्वक अपने अधीन किया हुआ व्यक्ति), इन चारोंमेंसे किसीके द्वारा उठाये हुए उपद्रवको 'वाह्यकोप' कहते हैं ॥ २७ ॥ उस कोपको, आपसमेंही उन्हें एक दूसरेके साथ टकराकर शान्त करे। अर्थात् राष्ट्रमुख्यके कोपको अन्तपाल आदिके द्वारा और अन्तपाल आदिके कोपको राष्ट्रमुख्यके द्वारा शान्त करवाये ॥ २८ ॥

अतिदुर्गप्रातिस्तब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धाना-
मन्यतमेनावग्राहयेत् ॥ २९ ॥ मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं
गच्छेत् ॥ ३० ॥

अथवा प्रबल दुर्गसे युक्त राष्ट्रमुख्य या अन्तपाल आदिको, सामन्त आटविक या उनके कुलमें उपपन्न हुआ २ कोई रोक हुआ पुरुष (राजपुत्र आदि), इन सबमेंसे किसीके द्वारा पकड़वाये। तात्पर्य यह है, कि वाह्यकोपको उठाने वाले राष्ट्रमुख्य आदिको सामन्त आदिके द्वारा पकड़वा देवे ॥ २९ ॥ अथवा अपने मित्र के साथ उसकी भी मित्रता करवा देवे। जिससे कि वह शत्रुकी ओर जाकर न मिलजाये ॥ ३० ॥

अभित्रात्सत्त्री भेदयेदेनम् ॥ ३१ ॥ अयं त्वां योगपुरुषं
मन्यमानो भर्तयेय विक्रमयिष्यति ॥ ३२ ॥ अनाप्तार्थो दण्ड-

चारिणममित्राटविकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योक्ष्यति ॥ ३३ ॥

सत्री (गूढ पुरुष=एक विशेष गुप्तचर), इस बाह्य राष्ट्रमुख्य आदिको शत्रुसे सदा मित्र बनाये रखे, अर्थात् इनका आपसमें सदा भेद डलवाये रखे ॥ ३१ ॥ क्या कहकर भेद डलवाये, अब इसका निरूपण किया जायगा:— सत्रां, राष्ट्रमुख्य आदिको कहे कि तुम जिसके साथ (विजिगीषुके जिस शत्रुके साथ) मिलना चाहते हो, वह तुमको विजिगीषुका गुप्त-पुरुष समझेगा, और यह समझता हुआ तुमको तुम्हारे मालिकके ऊपरही हमला करनेको कहेगा ॥ ३२ ॥ और तुम्हारे मालिकपर किये गये आक्रमणके परिणामको देखकर, तुमको अपनी सेनाका नायक बनाकर अपने शत्रु या आटविकके मुकाबलेमें किसी दुष्टकर आक्रमणके लिये नियुक्त करेगा; अर्थात् तुमको किसी दूर के कठिन प्रवासके लिये बाध्य करेगा ॥ ३३ ॥

विपुत्रदारमन्ते वा वासयिष्यति ॥ ३४ ॥ प्रतिहतविक्रमं
त्वां भर्तारि पण्यं करिष्यति ॥ ३५ ॥ त्वया वा संधिं कृत्वा
भर्तारमेव प्रसादयिष्यति ॥ ३६ ॥ मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छे-
दिति ॥ ३७ ॥

अथवा तुमको, तुम्हारे स्त्री पुरुषोंसे विमुक्त करके, अपने सरहद्दी इलाक़ोंमें रखेगा । तात्पर्य यह है, कि तुम्हारे स्त्री पुत्रोंको अपनी अधीनतामें रखेगा, और तुम्हें किसी सरहद्दी इलाक़ेमें कार्य करनेके लिये नियुक्त करेगा ॥ ३४ ॥ अथवा अपनेही मालिकके मुकाबलेमें लड़नेके लिये खड़ा हुआ २ तू यदि उससे हार जायगा, तो यह तेरे मालिकसे कीमत लेकर उसीके हाथ तुझे बेच डालेगा । अर्थात् तेरे असफल होनानेके कारण, तुझपर प्रसन्न न होता हुआ, वह, तेरे मालिकसे कुछ धन लेकर उसीके हाथमें तुझे सौंपदेगा ॥ ३५ ॥ अथवा तुम्हेंही स्वामीको अर्पण करके अर्थात् शस्त्रके तौरपर तुम्हें तुम्हारे मालिकके लिये देकर, सन्धि करके, स्वामीको प्रसन्न करलेगा ॥ ३६ ॥ अथवा तुम्हारी शर्त लगाकर अपने किसी मित्रके साथही तुम्हारे स्वामीकी सन्धि करावेगा । इत्यादि बातोंको कहकर सत्री, राष्ट्रमुख्य आदिका शत्रुसे भेद डलवाये रखे ॥ ३७ ॥

प्रतिपन्नमिष्टाभिप्रायैः पूजयेत् ॥ ३८ ॥ अप्रतिपन्नस्य
संश्रयं भेदयेदसौ ते योगपुरुषः प्राणिहित इति ॥ ३९ ॥

यदि इस भेदके उपदेशको, यह व्यक्ति स्वीकार करले, तो उसे उसकी अभीष्ट वस्तुओंको देकर सन्तुष्ट किया जाये ॥ ३८ ॥ यदि स्वीकार न करे, तो

उसके संभ्रय (सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंमेंसे एक संभ्रय भी होता है । किसी बलवान् राजाके अधीन रहकर अपनी शक्तिको बढ़ाना 'संभ्रय' कहा जाता है । इसलिये जिस राजाके अधीन रहे, उसको भी संभ्रय कहदेंते हैं) को ही यह कहकर उससे भित्त करदेवे, कि अमुक पुरुष जो तुम्हारे आश्रित रहनेके लिये उपास्थित होता है, वह दूसरेका भेजा हुआ गुप्तपुरुष है, तुम्हें उससे सम्बलम्बर रहना चाहिये ॥ ३९ ॥

सत्री चैनमभित्यक्तशासनैर्घातयेत् गूढपुरुषैर्वा ॥ ४० ॥

सहप्रस्थायिनो वास्य प्रवीरपुरुषान्यथाभिप्रायकरणेनावहयेत् ॥ ४१ ॥

तथा सत्री, अभित्यक्त (यद्यके लिये निश्चित हुए २) पुरुषोंके हाथ नकली चिट्ठियां भिजघाकर (जिनके लिखित विषयका यह अभिप्राय हो, कि तुम छिपकर शत्रुको मारहाओ) शत्रुके मनमें सन्देह डालकर उसके द्वाराही (राष्ट्रमुख्य आदि) व्यक्तिको मरवाडाले । अथवा साक्षात् गूढपुरुषोंके द्वाराही मरवाडाले ॥ ४० ॥ अथवा शत्रुका आश्रय लेनेके लिये, बाल्य (राष्ट्रमुख्य अंत-पाल आदि) के साथ जो वीर पुरुष जानेके लिये तैयार होवें; उनको उनके अभिप्रायके अनुसार कार्य करके अर्थात् उनकी इच्छाकी पूर्ति करके अपनी ओर मिला लेवे । ('आवाहयेत्' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'वाहयेत्' भी पाठ है, अर्धे दोनोंका समान है) ॥ ४१ ॥

तेन प्रणिहितान्सत्री श्रूयादिति सिद्धिः ॥ ४२ ॥ परस्य

चैनान्कोपानुत्थापयेत् ॥ ४३ ॥ आत्मनश्च शमयेत् ॥ ४४ ॥

यदि वे वीर पुरुष अपने पक्षमें आनेके लिये तैयार न होवें, तो सर्वत्र उनके सम्यन्धमें शत्रुसे इसप्रकार कहे, कि ये सब वीर पुरुष विजिगीषुने तुम्हारे मारनेके लिये भेजे हैं, ये सबही गूढपुरुष हैं । इसप्रकार शत्रुको समझाकर और उसकेही द्वारा उन्हें नष्ट करवाकर याज्ञकोपका प्रतीकार करे ॥ ४२ ॥ तथा शत्रुपक्षमें अन्धन्तरकोप और याज्ञकोपको उत्पन्न करनेके लिये पूरा बल करे ॥ ४३ ॥ और अपने पक्षमें शत्रुके द्वारा उत्पन्न किये हुए कोपोंका पूर्ण रीतिसे प्रतीकार करे ॥ ४४ ॥

यः कौपं कर्तुं शमायितुं वा शक्तस्तत्रोपजापः कार्यः ॥ ४५ ॥

यः सत्यसंघः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं तत्र प्रतिजापः कार्यः ॥ ४६ ॥ तर्कथितव्यश्च कथ्या-
नमुदिरुताहो गठ इति ॥ ४७ ॥

जो कोपको उत्पन्न करने और शान्त करनेमें समर्थ हो, वहाँपर उप-जाप (कोपको उत्पन्न करनेके लिये भेद डालने या फूट डालनेको ही 'उप-जाप' कहते हैं) का प्रयोग करना चाहिये । तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष इतना सामर्थ्य रखता हो, कि स्वयं खड़े होकर उपद्रव करसके, और दूसरेके द्वारा उठायेहुए उपद्रवकी शान्त करसके, उसीपर उपजापका प्रयोग करना चाहिये, अर्थात् उसका दूसरेके साथ भेद डालदिया जायें ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार जो पुरुष सत्यवादी, कार्यके तथा फलसिद्धिके समय अनुग्रह करने और आपत्तिके समय उससे रक्षा करनेमें समर्थ हो; वहाँपर प्रतिजाप (उप-जापके स्वीकार करलेनेको 'प्रतिजाप' कहते हैं) का प्रयोग ठीक है । तात्पर्य यह है, कि उपजापको स्वीकार करलेनेसे पहिले यह समझलेना चाहिये, कि यह उपजाप करनेवाला पुरुष सत्यवादी तथा समयपर उपकार करने और रक्षा करनेमें भी समर्थ है, तभी प्रतिजापका होना अर्थात् उपजापको स्वीकार करना ठीक होता है ॥ ४६ ॥ यदि उपजपिता (उपजाप करनेवाले) के सम्बन्धमें प्रतिजपिता (उपजापको स्वीकार करने अर्थात् मानने वाले) को यह आशंका होजावे, कि कहीं यह वञ्चक तो नहीं है ? मुझे उगनेके लिये ऐसा कह रहा है, तो उसकी कल्याणबुद्धि अथवा शठबुद्धि की परीक्षा करलेवे, कि यह मुझे हितबुद्धिसे ऐसा कह रहा है या उगना चाहता है ॥ ४७ ॥

शठो हि वाद्योऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—॥ ४८ ॥ भर्तारं चेद्धत्वा मां प्रतिपादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति ॥ ४९ ॥

उपजापके दो ही विषय होसकते हैं, या तो वाद्य उपजपिता अभ्यन्तरके साथ उपजापका प्रयोग करसकता है, या अभ्यन्तर उपजपिता वाद्यके साथ; इनमें से शठबुद्धि उपजपिता किसप्रकार उपजाप करता है, और कल्याणबुद्धि किसप्रकार ? इस बातका विवेचन किपाजायगा:—उनमेंसे शठबुद्धि वाद्य, अभ्यन्तरके साथ इसप्रकार उपजाप करता है:—॥ ४८ ॥ मेरे द्वारा भेदको प्राप्त करायाहुआ मन्त्री, यदि मालिकको मारकर उसके स्थानपर मुझे राजा बनादेगा, तो शत्रुका नाश और भूमिका लाभ, ये दोनों ही फायदे होजायेंगे ॥ ४९ ॥

अथ वा शत्रुरेनमाहनिष्यतीति हतवन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन वोद्विशश्च ॥ ५० ॥ मे भूयान् कृत्यपथो भविष्यति ॥ ५१ ॥

अथवा यदि शत्रु ही मन्त्रीको मार डालेगा, तो मानेहुए मन्त्रीका बन्धुवर्ग; तथा मन्त्रीके ममान ही अपराध करनेवाला दुष्ट तथा लुब्धवर्ग

(देखो=प्रथम अधिकरणका तेरहवां चौदहवां अध्याय), मन्त्रीके बधके कारण, राजासे अत्यन्त उद्विग्न होजावेगा ॥ ५० ॥ इसप्रकार वहांपर मेरा बहुतसा कृत्यपक्ष बनजायगा; अर्थात् मारोहुए मन्त्रीके मन्धुवर्ग आदिको बड़ी सरलतासे मैं अपने बधमें करसकूंगा ॥ ५१ ॥

तद्विधे वान्यास्मिन्नपि शङ्कितो भविष्यति ॥ ५२ ॥ अन्य-
मन्यं चास्य मुख्यमभिव्यक्तशासनेन घातयिष्यामीति ॥ ५३ ॥

तथा इसप्रकारके अन्य कर्मचारियोंपर भी विजिगीषुको विश्वास नहीं रहेगा । अर्थात् वह अपने दूसरे कर्मचारियोंपर भी सन्देह करने लगेगा ॥ ५२ ॥ इसतरह एक २ कारके (राजाके) सब ही मुख्य कर्मचारियोंको, अभिव्यक्त पुरुषोंके हाथ नकली चिट्ठियां भिजवाकर मरवा डालूंगा । तात्पर्य यह है, कि उन कर्मचारियोंके नाम, विजिगीषुके बध तथा बन्धन आदिके सम्बन्धमें कूट चिट्ठियां लिख २ कर विजिगीषुको उनसे विरुद्ध करादूंगा; और वह विजिगीषु उन सबको नष्ट करदेगा; इसप्रकार मेरी कार्यसिद्धि होजायगी । यहांतक अभ्यन्तर मन्त्री आदिको फाड़नेके लिये बाह्य शठके उपजापका प्रकार बतायागया ॥ ५३ ॥

अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—॥ ५४ ॥ कोशमस्य
हरिष्यामि ॥ ५५ ॥ दण्डं चास्य हनिष्यामि ॥ ५६ ॥ दुष्टं
वा भर्तारमनेन घातयिष्यामि ॥ ५७ ॥ प्रतिपन्नं बाह्यमभिन्ना-
टविकेषु विक्रमयिष्यामि ॥ ५८ ॥ चक्रमस्य सज्यताम् ॥ ५९ ॥
वैरमस्य प्रसज्यताम् ॥ ६० ॥ ततः स्वाधीनो मे भविष्यति
॥ ६१ ॥ ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि ॥ ६२ ॥

अब इसके भागे अभ्यन्तर शठ, बाह्यको फाड़नेके लिये किसप्रकार उपजाप करता है, इसका निरूपण किया जायगा:—अभ्यन्तर शठ, बाह्यके प्रति इसप्रकारका उपजाप करता है, कि:—॥ ५४ ॥ इस बाह्यके कोशका अपहरण करूंगा ॥ ५५ ॥ अथवा इसकी सेनाको मार डालूंगा ॥ ५६ ॥ अथवा अपने दुष्ट मालिकको इसके द्वारा मरवाऊंगा ॥ ५७ ॥ अथवा जब यह मेरे मालिकको मारनेके लिये स्वीकार करलेगा, तो इस बाह्यको शत्रु तथा आटविकोंके साथ मुकामलेमें युद्ध करनेके लिये भेजूंगा ॥ ५८ ॥ इनकी सेना, शत्रु और आटविकोंके साथ मुकामला करनेमें लगी रहेगी ॥ ५९ ॥ तथा उनके (शत्रु आदिके) साथ इसका बराबर वैर बढ़ता जायगा ॥ ६० ॥ उस अवस्थामें यह, मेरे अपने अधीन होजायगा, अर्थात् मेरा भाग्यकारी होजायगा ॥ ६१ ॥

इससे मैं अपने मालिकको ही प्रसन्न करलूंगा, अर्थात् बाह्यके अपने वरामें होजानेके कारण, मालिक मुझसे अग्रय प्रसन्न होजायगा ॥ ६२ ॥

स्वयं वा राज्यं ग्रहीष्यामि ॥६३॥ वद्ध्वा वा बाह्यभूमिं भर्तृ-
भूमिं चोभयमवाप्स्यामि ॥६४॥ विरुद्धं वावाहयित्वा बाह्यं विश्व-
स्तं यातयिष्यामि ॥ ६५ ॥ शून्यं वास्य मूलं हरिष्यामीति ॥६६॥

अथवा मैं स्वयं ही राज्यको लेलूंगा, क्योंकि वह मेरा आशा-
कारी होगा, मुझे रोक नहीं सकता ॥ ६३ ॥ अथवा बाह्यके बांधकर अर्थात्
उसे कैद करके, उसकी भूमिको भीर अपने मालिककी भूमिको दोनोंको
ही प्राप्त करलूंगा; तात्पर्य यह है, कि दोनों राज्योंपर मेरा शासन होगा
॥ ६४ ॥ अथवा बाह्यके किसी विरोधीको बुलवाकर, उसके द्वारा ही इस
विश्वस्त (विधास करनेवाले) बाह्यको मरवा डालूंगा ॥ ६५ ॥ अथवा इसके
शून्य मूलस्थानको लूटलूंगा अर्थात् जब यह, शत्रु या आठविक भादिपर
आक्रमण करनेके लिये चलाजायगा, इसकी रिक्त राजधानी आदिका अपहरण
कहेंगा । यहाँतक अभ्यन्तर शत्रुके, बाह्यका उपजाप करनेके प्रकारोंका
निरूपण कर दियागया; अर्थात् इन उपर्युक्त प्रकारोंसे अभ्यन्तर शत्रु, बाह्य
को भिन्न करता है ॥ ६६ ॥

कल्याणबुद्धिस्तु सहजीव्यर्थमुपजपति ॥६७॥ कल्याणबुद्धिना
संदधीत ॥ ६८ ॥ शठं तथेति प्रतिगृह्यातिसंदध्यात् इति ॥ ६९ ॥

कल्याण बुद्धि जो साथी बनकर ही उपजाप करता है; अर्थात् उप-
जापके साथ ही साथ अपनी जीवन वृत्तिको समझकर, उसके हितका ध्यान
करके ही उपजापका प्रयोग करता है, वह उसका अहित कभी नहीं चाहता
॥ ६७ ॥ इसलिये कल्याणबुद्धिके साथ अवश्य सन्धि करलेनी चाहिये
॥ ६८ ॥ और शठको तो जैसा तुमने कहा है, मैं वैसा ही कहूंगा; इस
प्रकारका वचन देकर पीछेसे धोखा देवे । अर्थात् पहिले उसकी बातको
मानकर, फिर अवसर पाकर उसे ठगलेवे ॥ ६९ ॥

एवमुपलभ्यः—

परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।

रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपथिता ॥ ७१ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि तयमे अधिकरणे पक्षारकोपधिन्ता, बाह्याभ्यन्तरप्रवृत्तिकोप-
प्रतीकारश्च तृतीयो ऽप्यायः ॥ ३ ॥ आदितश्चतुर्विंशततो ऽप्यायः ॥ १२१ ॥

इसप्रकार कल्याणबुद्धि और शठबुद्धिका निश्चय करके ॥ ७० ॥
 विद्वान्, कार्यके तथको जाननेवाले विजिगीषुको चाहिये, कि वह, जिन
 दूसरोंके सम्बन्धमें यह जानता है, कि ये शठ हैं, उनकी दूसरोंसे रक्षा करे,
 अर्थात् उनकी इस बातको किसी तरह भी प्रकाशित न होने दे। इसीप्रकार
 जो अपने भादमी शठ हों, उनको अपनोंसे ही रक्षा करे, अर्थात् उनके इस
 भावको अपनोंपर भी प्रकट न होने दे। इसी तरह अपनोंको दूसरोंसे और
 दूसरोंको अपनोंसे भी रक्षा करे, अर्थात् एक दूसरेके इन भावोंको किसीपर
 प्रकाशित न करे। तथा अपने और पराये दोनोंसे, अपने आपकी रक्षा करे,
 अर्थात् अपने परायोंके प्रति कोई भी उनके अनुकूल या प्रतिकूल अभिप्राय
 अपनी ओरसे प्रकट न करे ॥ ७१ ॥

अभियास्यत्कर्म तद्यम अधिकरणम् तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

१४२ प्रकरण ।

क्षय व्यय तथा लाभका विचार ।

५

{ सुख अर्थात् याहन और पुरुषोंका नाश होजाना 'क्षय', धान्य
 हिरण्य आदिका नाश होजाना 'व्यय' और भूमि आदिकी प्राप्ति
 होना 'लाभ' कहाता है । इन्हींकी परस्पर लघुतागुस्ताका विचार
 इस प्रकरणमें किया जायगा ।

युयपुरुपापचयः क्षयः ॥ १ ॥ हिरण्यधान्यापचयो व्ययः
 ॥ २ ॥ ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात् ॥ ३ ॥

हाथी घोड़े आदि सवारियों, तथा कर्मचारी पुरुषोंके नाश होजानेकोही
 'क्षय' कहते हैं ॥ १ ॥ हिरण्य (सोने आदिके सिक्के=धन) और धान्य
 (मीही आदि) का नाश होना 'व्यय' कहाता है ॥ २ ॥ क्षय और व्ययका
 ध्यान रखते हुए, जिस समयमें अत्यधिक गुणोंसे युक्त लाभकी सम्भावना हो,
 उसी समय भाग्यमणके लिये जाना चाहिये । (ये गुण कौनसे होते हैं ? इनका
 निरूपण भगलेटी सूत्रमें किया जाता है ॥ ३ ॥

आदेयः प्रत्यादेयः प्रसादकः प्रकोपको हस्तकालस्तनुक्षयो
 स्ल्पव्ययो महान्बृद्धवदयः कल्यो धर्म्यः पुरोगश्चेति लाभसंपत्
 ॥ ४ ॥

वे निम्न-लिखित बारह गुण होते हैं:—आदेय, प्रयादेय, प्रसादक, प्रकोपक, हस्तकाळ, तनुक्षय, अल्पमय, महान, बुद्धपुद्ग, कल्प, धर्म्य और पुरोग; ये बारह, लाभकी सम्पत्ति या गुण कहाते हैं । (इन सबके स्वरूपका निरूपण क्रमशः अगले सूत्रमें किया जाता है ॥ ४ ॥

सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः ॥ ५ ॥ विपर्यये प्रत्यादेयः ॥ ६ ॥ तमाददानस्तत्रस्थो वा विनाशं प्राप्नोति, ॥ ७ ॥

जो बड़ी सरलतासे प्राप्त किया जासके, तथा प्राप्तिके अनन्तर सरलता से ही रक्षा किया जासके, और कालान्तरमें भी जिसको शत्रु न छीन सके, ऐसे लाभको 'आदेय' कहा जाता है । अर्थात् यह लाभका एक विशेष गुण है ॥ ५ ॥ जो इससे विपरीत लाभ हो, अर्थात् जिसकी प्राप्ति और रक्षामें भी अरुणत कठिनता हो, कालान्तरमें शत्रु भी जिसको छीन सके, ऐसे लाभका नाम 'प्रयादेय' है ॥ ६ ॥ इसप्रकारके भूमि आदिके लाभको प्राप्त काला हुआ, अथवा वर्दीपर रहकर जीवन निर्वाह करता हुआ विजिगीषु, अथवाही नाशको प्राप्त होता है । (महाभारतप्राथम्याय त० गणपति शास्त्रीने इस सूत्रके 'विपर्यये' पदका सम्बन्ध पाहिले सूत्रके केवल 'अप्रयादेय' पदके साथही किया है । सुप्राप्य और अनुपाल्य होनेपर भी जो लाभ, कालान्तरमें शत्रुके द्वारा छीना जासके, उसको 'प्रयादेय' कहना चाहिये) ॥ ७ ॥

यदि वा पश्येत्—॥ ८ ॥ प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयः रक्षानिधानान्यवसावपिप्यामि ॥ ९ ॥ खनिद्रव्यहस्तिवनसेतु-बन्धवणिक्पथानुद्धृतसारान्करिष्यामि ॥ १० ॥ प्रकृतीरस्य कर्श-पिप्यामि ॥ ११ ॥ आवाहयिष्याम्यायोगेनाराधयिष्यामि वा ॥ १२ ॥

अवस्था विशेषमें 'प्रयादेय' नामक लाभको भी ग्रहण करना चाहिये, इसबातका अर्थ निरूपण किया जायगा:—विजिगीषु यदि यह समझे, कि:— ॥ ८ ॥ मैं प्रयादेय लाभको लेकर, उस लाभके नाशसे (अर्थात् शत्रुके द्वारा किये गये, उस लाभके नाशसे), अपने शत्रुके कोश (एताना), दण्ड (सेना), धान्य आदिके सञ्चय और दुर्ग तथा परकोटे आदिकी रक्षाके प्रकारोंको हीन बनाऊँगा ॥ ९ ॥ अथवा शत्रुकी खान, द्रव्यत्रय (लकड़ियोंके जंगल), दस्तियन (हाथियोंके जंगल), सेतुबन्ध (पद २ जलनाय), तथा व्यापारी मार्गोंको लूट खसोटकर नष्टकर दायेंगा ॥ १० ॥ अथवा शत्रुकी अमाभ्य आदि

प्रकृतियोंको कष्ट पहुँचाकर कृश (निर्बल), बनाडालूंगा ॥ ११ ॥ शत्रुकी प्रकृतियोंको वहाँपर बुलालूंगा; अर्थात् उस भूमिको प्राप्त करके उसका फल लोगनेके लिये शत्रुकी प्रजाओंको वहाँ लाकर बसा दूँगा; अथवा उनकी इच्छा नुसार सब तरहके सुखसाधनोंकी स्वीकृति देकर उन्हें प्रसन्न करलूंगा । (इस सूत्रमें 'आवाहयिष्यामि' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'अपवाहयिष्यामि' भी पाठ है । अर्थमें कोई विशेष भेद नहीं; परन्तु पहिला पाठ अच्छा मालूम होता) ॥ १२ ॥

ताः परः प्रयोगेण कोपयिष्यति ॥ १३ ॥ प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि ॥ १४ ॥ मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि ॥ १५ ॥ मित्रस्य स्वस्य वा देशस्य पीडामत्रस्यस्तस्करेभ्यः परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि ॥ १६ ॥ मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि ॥ १७ ॥

अथवा शत्रु, इन प्रजाओंको, उनके प्रतिकूल आचरण करनेसे, अपनी ओरसे कुपित करदेगा, तारपर्यं यह है, कि जब मुझसे (विजिगीषुसे) गृहीत उस भूमिको शत्रु वापिस छीन लेगा, तब मैंने प्रजाओंपर जो अनुग्रह किया था उसके विपरीत आचरण करनेके कारण, वह उन प्रजाओंको अपनी ओरसे कुपित करलेगा ॥ १३ ॥ अथवा उस लाभको (प्राप्त की हुई भूमिको) शत्रुके विरोधी पक्षमें बेचडालूंगा ॥ १४ ॥ अथवा विशेष लाभ आदिसे रहित, शत्रुके उस स्थानमें, अपने मित्र या अपने पुत्र आदिको अधिकारी बनाकर स्थापित करदूँगा ॥ १५ ॥ अथवा प्राप्त की हुई भूमिमें स्थित होकर मैं, अपने तथा अपने मित्रके देशको, चोरों और शत्रुओंसे पहुँचाई जाने वाली पीडाका अच्छी तरह प्रतिकार कर सकूँगा ॥ १६ ॥ अथवा इस शत्रुके मित्र, तथा इसके आश्रय (आश्रय शब्दसे उस यलवान् राजाका ग्रहण किया जाता है, जिसकी छत्र-च्छायामें रहता हुआ दूसरा छोटा राजा अपनी शक्तिको बढ़ाता रहे, इसप्रकारके आश्रयभूत राजा) को, इससे प्रतिकूल बनादूँगा; अर्थात् उस भूमिमें रहकर इनका परस्पर वैमनस्य करवादूँगा ॥ १७ ॥

तदमित्रं विरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यते, सत्कृत्य वासै भूमिं दास्यामीति संहितसमुत्थितं मित्रं मे चिराय भविष्यतीति प्रत्या-
क्षेपमपि लाभमाददीत ॥ १८ ॥ इत्यादेयप्रत्यादेयौ प्याख्याती
॥ १९ ॥

तिरस्कार करता है, और इसमें उसे विशेष लाभ होजाता है, यह बात मन्त्रियोंके चित्तमें शंकाको उत्पन्न करदेती है, और ये उसकी ओरसे कृपित होजाते हैं । मन्त्रियोंके चित्तमें शंकाका इसप्रकार प्रादुर्भाव होता है, कि यदि यह सफलप्रयत्न होगया, तो अवश्यही हमको नष्ट करदेगा ॥ २४ ॥ इनसे विपरीत लाभ, प्रसन्न करने वाला होनेके कारण 'प्रसादक' कहा जाता है । अर्थात् मन्त्रियोंके उपदेशके अनुसार प्राप्त हुआ २ लाभ, और दूष्यमन्त्रियोंके तिरस्कारसे न प्राप्त हुआ २ लाभ, सबको प्रसन्न करने वाला होता है, इसलिये इसको 'प्रसादक' कहते हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार यहाँतक 'प्रसादक' और 'प्रकोपक' लाभोंका निरूपण किया गया ॥ २६ ॥

गमनमात्रसाध्यत्वाद्द्वस्वकालः ॥ २७ ॥ मन्त्रसाध्यत्वात्तनुक्षयः ॥ २८ ॥ भक्तमात्रव्ययत्वाद्दल्पव्ययः ॥ २९ ॥ तदात्ववैपुल्यान्महान् ॥ ३० ॥ अर्थानुबन्धकत्वाद्बृहद्दुदयः ॥ ३१ ॥ निरात्राधकत्वात्कल्यः ॥ ३२ ॥ प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः ॥ ३३ ॥ सामवायिकानामनिर्वन्धगामित्वात्पुरोग इति ॥ ३४ ॥

शोका ही सा परिश्रम करनेसे, अर्थात् जाने मात्रसे ही जो लाभ प्राप्त होजाय, उसे ह्रस्वकाल कहते हैं ॥ २७ ॥ जो लाभ केवल मन्त्र अर्थात् उपजाव आदिसे ही प्राप्त होजाने वाला हो, उसे 'तनुक्षय' कहते हैं । (मन्त्र में चलुर, धोही शक्ति वाला भी राजा इस लाभको प्राप्त करसकता है) ॥ २८ ॥ जो लाभ केवल भोजन आदिका व्यय करके ही प्राप्त होजाय, उसे 'अल्पव्यय' कहते हैं ॥ २९ ॥ जो तत्काल ही अर्थात् एक साथ ही अत्यधिक लाभ प्राप्त होजाय, उसे 'महान्' कहते हैं ॥ ३० ॥ जो लाभ भविष्यमें भी अत्यधिक अर्थप्राप्तिको करानेवाला हो, उसे 'बृहद्दुदय' कहते हैं ॥ ३१ ॥ जिस लाभमें आगे किसी तरहकी भी बाधा उपस्थित न होसके, उसे 'कल्य' कहा जाता है ॥ ३२ ॥ जो लाभ प्रकाशयुद्ध आदिसे धर्मपूर्वक ग्रहण किया जावे, उसे 'धर्म्य' कहते हैं ॥ ३३ ॥ आपसमें मिलकर आक्रमण करने वाले राजाओंके, प्रांसिके सम्बन्धमें पहिलेसे कोई शक्ति न होनेके कारण, अपने २ प्राप्त कियेहुए लाभको 'पुरोग कहते हैं ॥ ३४ ॥

तुल्ये लाभे देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्यविप्रकर्षौ तदात्यानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहुल्यघोषुगुण्डे च विमृश्य, बहुगुणयुक्तं लाभमाददीत ॥ ३५ ॥

उभयपक्षमें बराबर ही लाभ होनेपर, देशकाल आदिके अनुसार अच्छीतरह विचारकर, जो लाभ बहुत गुणोंसे युक्त हो, उस ही का ग्रहण करे । उसका विचार या विवेचन इसप्रकार करना चाहिये:—देश और काल किसी एक ही वस्तुमें गुणविशेषकी उत्पत्तिके, कारण होते हैं; मन्त्र प्रभाव और उत्साह इन तीनों शक्तियोंमें पहिले पहिलों शक्तिसे प्राप्त किया हुआ लाभ, उत्तरोत्तर शक्तिसे प्राप्त कियेहुए लाभकी अपेक्षा अधिक प्रशस्त (अच्छा) होता है; इसीप्रकार साम दान मेद और दण्ड, इन चार उपायोंमें अगले २ उपायसे प्राप्त कियेहुए लाभकी अपेक्षा पहिले पहिले उपायसे प्राप्त कियाहुआ लाभ, उत्तम होता है; हिरण्य अदिका लाभ अर्थात् नकद धन का लाभ, अन्य लाभोंकी अपेक्षा प्रिय होनेके कारण गुणयुक्त समझा जाता है, और लाभ इसके मुकाबले में प्रिय वहाँ समझे जाते; इसीतरह शीघ्र प्राप्त होनेवाला लाभ, विलम्बसे प्राप्त होनेवाले लाभकी अपेक्षा उत्तम होता है; अपनी भूमिके समीप ही होनेवाला लाभ, भूमिसे दूर होनेवाले लाभकी अपेक्षा उत्तम होता है; तत्काल ही होनेवाले लाभकी अपेक्षा, भविष्यमें भी लगातार होनेवाला लाभ प्रशस्त होता है; बहुगुण्य लाभ तथा अत्यधिक उपयोगमें आनेवाला लाभ; संख्या या परिमाणमें अधिक लाभ और बहुत गुणोंसे युक्त लाभ; ये सब बात लाभोंमें गुण बतलानेकी निमित्त हैं अर्थात् लाभोंमें गुणोंका होना इस प्रकार मालूम करलेना चाहिये । तदनन्तर जो लाभ अत्यधिक गुणोंसे युक्त हो, उसीका ग्रहण करना उपयुक्त होता है ॥ ३५ ॥

लाभविघ्नाः—कामः क्रोधः साध्वसं कारुण्यं हीरनार्यभावो मानः सानुकोशता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वमत्याशित्वं दैन्यम-
क्षया हस्तगतावमानो दौरात्मिकमविश्वासो भयमनिकारः शीतो-
ष्णवर्षाणामाक्षम्यं मङ्गलतिथिनक्षत्रेषित्वमिति ॥ ३६ ॥

लाभमें निम्नलिखित विघ्न उपदिष्ट होसकते हैं:—काम (स्त्रीप्रसंग), क्रोध, साध्वस (अन्नवहभता अर्थात् शत्रु मित्र आदिमें उचित व्यवहारका न करना), करुणा (दया=प्राणियोंके बंधकी आशंकासे युद्ध आदिका न करना), लज्जा, अनार्यभाव (विश्वासघात आदिका करना), मान (मैं ही सब कुछ हूँ, इसप्रकार अहंकरका होना), सानुकोशता (किसीके कुछ भेद आदि देदेनेपर, झट उसपर दवाहू होजाना, अर्थात् जहाँ लक्षण वृत्तिका उपयोग करना चाहिये वहाँ धोड़ेसे निमित्तसे मृदु बतलाना), परलोकापेक्षा (परलोककी विगाहने वाले पापकी आशंकासे भय लगाने या लूट आदिके विघ्न होना), दाम्भिकता (दृग्भी होना=अपनेपर विश्वास करनेवालोंको

ही उर्गना; किसी २ पुस्तकमें इसकी जगह 'धार्मिकत्वं' भी पाठ है), अत्या-
 शिवाय (अन्यायसे अत्यधिक लाभका खाना; किसी पुस्तकमें 'अत्यागित्वं' भी
 पाठ है), दीनता (अपनेसे नीच व्यक्तियोंसे भी सहायता मांगना), असूया
 (अमात्य पुरोहित आदिके गुणों होनेपर भी उनमें दोषारोपण करना),
 हस्तगततापमान (हाथमें आईहुई चीजका तिरस्कार करदेना), दौरात्मिक
 (पीडा देनेके योग्य अयोग्य सब ही को पीडा पहुंचाना), अविश्वास
 (विश्वास करने योग्य पुरुषोंमें भी विश्वासका न करना), भय (युद्ध आदिमें
 पराजयकी भासकाका होना), अनिकार (शत्रुका तिरस्कार न करना; किसी २
 पुस्तकमें 'अप्रतीकार' भी पाठ है, अर्थात् लाभसिद्धिके पूर्व ही आनेवाले
 विघ्नोका प्रतीकार न करना), सरदी गामी तथा वर्षा आदिका न सहसकना,
 कार्योंके प्रारम्भमें माहलिक तिथि नक्षत्र आदिका देखना; ये सब ही बातें
 लाभ होनेमें रकावट डालनेवाली होती हैं ॥ ३६ ॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थो ऽतिवर्तते ।

अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥ ३७ ॥

नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थाभरा यत्नशतैरपि ।

अर्थरर्थाः प्रधध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥ ३८ ॥

भूयभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे क्षयव्ययलाभविपरिमशो-

चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥ आदितः पञ्चविंशतः ॥१२५॥

कार्यके प्रारम्भमें अत्यधिक नक्षत्रोंकी अनुकूलताको पूछनेवाले, अर्थात्
 घरमें तो भाग लगीहुई है, और इधर उसके प्रतीकारके अनुकूल नक्षत्रकी
 खोज होरही है; इसप्रकार करनेवाला प्रमादी राजा, कर्मी अपने अभीष्ट
 अर्थको प्राप्त नहीं करसकता, प्रत्येक कार्यकी सिद्धिके लिये आवश्यक धन
 आदि उपायोंको ही नक्षत्र समझना चाहिये; ये तारका किसीका क्या विगाड़
 या सुधार सकती हैं ॥ ३७ ॥ धन आदिसे हीन अर्थात् आवश्यक उपायोंसे
 रहित पुरुष सैकड़ों यत्न करनेपर भी अपने अभीष्ट फलको प्राप्त नहीं करसकते;
 अर्थोका ही अर्थोंके साथ सम्बन्ध है, धन ही धनको खींचता है; जैसे एक
 हाथीके सहारेसे दूसरे हाथीको पकड़ लिया जाता है ॥ ३८ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१४३ प्रकरण

बाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां ।

{ राष्ट्रमुख्य तथा अन्तपाल आदिके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तियोंको 'बाह्य' और मन्त्री पुरोहित आदिके द्वारा उत्पन्न हुई आपत्तियोंको 'अभ्यन्तर' कहते हैं । इस प्रकरणमें उन आपत्तियों का और उनके प्रतीकारका निरूपण किया जायगा ।

संध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः ॥ १ ॥ तस्मादापदः
संभवन्ति ॥ २ ॥ बाह्योत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, इत्यापदः ॥ ३ ॥

सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंके, उचित स्थानोंपर प्रयोग न करनेकी ही 'अपनय' कहते हैं; अर्थात् सन्धिके स्थानपर विग्रहका उपयोग, तथा विग्रहके अवसरपर यानका, और यानके मौकेपर सन्धि आदिको उपयोग करना अपनय (नीति मार्गसे भ्रष्ट होना) कहा जाता है ॥ १ ॥ इस अपनयसे ही सम्पूर्ण आपत्तियोंका प्रादुर्भाव होता है ॥ २ ॥ बाह्य और अभ्यन्तर आपत्तियोंके, उपजपिता तथा प्रतिजपिताके भेदसे चार भेद होते हैं:- (१) बाह्य अर्थात् राष्ट्रमुख्य, अन्तपाल आदि जिस आपत्तिमें उपजपिता (उपजाप अर्थात् भेद आदि ढालकर आपत्तिको उत्पन्न करनेवाले) हैं; और अभ्यन्तर अर्थात् मन्त्री पुरोहित आदि जिसमें प्रतिजपिता (अर्थात् राष्ट्रमुख्य आदिके द्वारा कियेगये उपजापकी स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य करने वाले) हैं; यह पहिली आपत्ति है । (२) इसी प्रकार जिसमें अभ्यन्तर उपजपिता और बाह्य प्रतिजपिता हों, यह दूसरी आपत्ति कही जाती है । इन दोनों आपत्तियोंके उपजपिता और प्रतिजपिता परस्पर विजातीय होते हैं । (३)-जिसका व ह्य ही उपजपिता और बाह्य ही प्रतिजपिता हो, यह तीसरी आपत्ति है । (४)-और जिसका अभ्यन्तर ही उपजपिता और अभ्यन्तर ही प्रतिजपिता हो, यह चौथी आपत्ति समझी जाती है; इन दोनों आपत्तियोंमें समानजातीय ही उपजपिता और प्रतिजपिता होते हैं । इसप्रकार सिद्धकर ये चार प्रकारकी आपत्तियां हैं ॥ ३ ॥

यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजपेन्त्यभ्यन्तरा वा बाह्यास्तत्रो-
भययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषपत्रती ॥ ४ ॥ सुव्याजा हि प्रति-
जपितारो भवन्ति नोपजपितारः ॥ ५ ॥ तेषु प्रशान्तेषु नान्या-
श्छक्नुयुरुपजपित्तुमुपजपितारः ॥ ६ ॥

जहाँ बाह्य, अभ्यन्तरोंका अथवा अभ्यन्तर बाह्योंका उपजाप करते हैं, अर्थात् जिन दो आपत्तियोंमें उपजपिता और प्रतिजपिता भिन्नजातीय होते हैं; वहाँ इन दोनोंमें से, आपत्तिका प्रतीकार करनेके लिये प्रतिजपिताको साम दान आदिके द्वारा शान्त करदेना अर्थात् अपने अनुकूल बना लेना अधिक श्रेयस्कर (या लाभप्रद) होता है ॥ ४ ॥ क्योंकि प्रतिजपिता पुरुषों के प्रतिजापका कारण धनग्रहण आदि ही होता है, इसलिये उनको धन आदिके द्वारा सुखपूर्वक वशमें किया जासकता है; परन्तु उपजपिता पुरुषों को इसप्रकार वशमें नहीं किया जासकता, क्योंकि उनके उपजापके कारणका पता लगाना कठिन होता है ॥ ५ ॥ इसप्रकार किन्हीं प्रतिजपिताओंके प्रशान्त होजानेपर, उपजपिता फिर अन्य व्यक्तियोंमें उपजाप करनेके लिये तैयार नहीं हो सकते, क्योंकि उनको अपने उपजापके फूट जानेका डर रहता है ॥ ६ ॥

कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा, महत्तथ
प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति ॥ ७ ॥

तथा बाह्योंके लिये अभ्यन्तरोंका और अभ्यन्तरोंके लिये बाह्योंका उपजाप करना बड़ा कठिन होता है; क्योंकि ये दोनों प्रकारके व्यक्ति एक दूसरेसे सर्वथा पृथक् रहते हैं। और यदि उपजाप्य व्यक्ति (जिनके ऊपर उपजापका प्रयोग किया जाता है) उस उपजापही स्वीकार न करे, तथा उसे फोड़ देवे, तो उपजपिताका बड़ा भारी प्रयत्न निष्फल होजाता है। इसप्रकार उपजापके फोड़ देनेसे उपजाप्य पुरुष अपने स्वामीकी प्रसन्नता रूप अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त करते हैं; और उपजपिता स्वामीके अप्रसाद (अप्रसन्नता) रूप अनर्थका भागी होता है। इसलिये भी अभ्यन्तर और बाह्या परस्पर उपजप करना अत्यन्त कठिन है। (नयचन्द्रिका व्याख्यानके कर्ता माधवप्रदान इस सूत्रके अन्तिम 'अन्य' पदसे रहित 'महत्तथ प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनः' इतना ही सूत्र पाठ मानकर इसप्रकार व्याख्यान किया है:—यद्यपि बाह्य और अभ्यन्तरका परस्पर उपजाप अति कठिन है, फिर भी उसे छोड़ना न चाहिये; क्योंकि उपजापसे दूसरेके अप्रसाद का नाश, और अपने अप्रसादकी वृद्धि होती है) ॥ ७ ॥

अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥ स्यान्-
मानकर्म सान्त्वम् ॥ ९ ॥ अनुग्रहपरिहारो कर्मस्वायोगो वा
दानम् ॥ १० ॥

प्रतिजपिताको क्षान्त करनेके लिये उपायोंका निरूपण किया जाता है:—यदि मन्त्रों पुरोहित आदि अभ्यन्तर पुरुष ही प्रतिजपिता होवें तो साम, और दानका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ विशेष अधिकार स्थानोंपर नियुक्ति करता (=स्थानकर्म), तथा छत्र, चामर आदि रखनेकी स्वीकृति देना (=मानकर्म,) साम कहाता है; अर्थात् सामका प्रयोग इसप्रकार करना चाहिये ॥ ९ ॥ अनुग्रह (धनका देना) और परिहार (लिये जाने वाले धनका न लेना, या कर आदिका छोड़देना); तथा विशेष कार्योंमें उसके सम्पूर्ण फलको स्वयं लेनेको अनुमति देना, (अर्थात् क्रियेगये कार्यके सम्पूर्ण फलको, उस कार्यका करनेवाला ही लेलेवे, राजा उसमेंसे अपना अंश सर्वथा न लेवे) यह दान होता है। अर्थात् यह दानके प्रयोगका प्रकार है ॥ १० ॥

बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ ११ ॥ सत्त्विणो
मित्रव्यञ्जना वा चाह्वानां चारमेपां म्रूयुः ॥ १२ ॥ अयं चो
राजा दूष्यव्यञ्जनैरतिसंधातुकामो बुध्यध्वमिति ॥ १३ ॥

यदि बाह्य प्रतिजपिता होवें, तो उन्हें क्षान्त करने के लिये भेद और दण्डका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥ बाह्योंके प्रतिजपिता होनेपर, उनके मित्रके वेषमें रहनेवाले सत्री (गुप्तचर विशेष), उन व होंके सामने राजाके गुप्त भेदका इस प्रकार उच्चारण करें:— ॥ १२ ॥ यह आपका राजा, दूष्य अमारय आदिके द्वारा (अर्थात् ऊपरसे आपके प्रिय की बात कहनेवाले, पर अन्दरसे अप्रिय चिन्तन करनेवाले अमारय आदिके द्वारा) आपको प्रतिजपिता बनाकर धोखा देना चाहता है; इस रहस्यको आप अपनी तरह जान कर प्रतिजपिताके कार्योंमें कभी कदम न रखें ॥ १३ ॥

दूष्येषु वा दूष्यव्यञ्जनाः प्राणिहिता दूष्यान्वाह्यैर्भेदेयुर्गोष्वा-
न्या दूष्यैः ॥ १४ ॥ दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णाः शस्त्ररसान्या
हन्युः ॥ १५ ॥ अह्वय वा-बाह्यान्घातयेयुरिति ॥ १६ ॥

अथवा राजाके अभियकारी सम्बन्धर घण्टाए आदि तथा बाह्य राष्ट्र-
मुख्य आदिके प्रतिजपिता होनेपर, दूष्य (राजाके अभियकारी) के वेषमें

रहनेवाले गुप्तधर, दूष्योंको बाह्योंमें और बाह्योंको दूष्योंसे मित्र २ कर दें, अर्थात् उनका आपसमें भेद डाल दें ॥ १४ ॥ अथवा दूष्योंके मध्यमें प्रविष्ट हुए २ तक्षिण पुरुष, शस्त्र अथवा विष आदिके द्वारा उनको (दूष्योंको) मार दें ॥ १५ ॥ अथवा बाह्याको किसी बहानेसे अलहदा बुलाकर मार डाले । यहाँ तक पहिली श्री आपत्तियोंके प्रतीकारका निरूपण किया गया ॥ १६ ॥

यत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्त्यभ्यन्तरानभ्यन्तरा वा, तत्रैकान्तयोगमुपजपितुः सिद्धिर्विशेषवती ॥ १७ ॥ दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते ॥ १८ ॥ दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान्दूषयति ॥ १९ ॥

अथ अन्तिम श्री आपात्योंके प्रतीकारका कथन किया जायगा:— जहाँपर बाह्य, बाह्योंको और अभ्यन्तर अभ्यन्तरोंको उपजाप करते हैं, वही समानजातीयके उपजाप प्रतिजाप प्रयोगमें; उपजपिताओं अपने अनुकूल बना लेना ही अधिक धेयस्कर होता है ॥ १७ ॥ क्योंकि उपजाप रूप दोषके न रहनेसे, दूष्य पुरुषोंका भी प्रादुर्भाव नहीं हो सकता । तत्पर्य यह है, कि उपजापसे ही दूष्य पुरुषोंकी उत्पत्ति होती है, यदि उपजपिता पुरुषोंकी ही अपने अनुकूल बना लिया जाय, तो उपजापकी आशंका ही नहीं रहती ॥ १८ ॥ दूष्य पुरुषों (उपजाप रूप दोषसे दूषित बुद्धि वाले प्रतिजपिता पुरुषों) के शान्त करनेके लिये यत्न करनेपर तो, उपजाप रूप दोष अभ्य पुरुषोंको फिर दूषित कर सकता है; इसलिये उपजपिताको ही शान्त करने का यत्न करना चाहिये ॥ १९ ॥

तस्माद्बाह्यपुपजपरसु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ सत्त्रिणो मित्रव्यञ्जना वा द्रुपुः ॥ २१ ॥ अयं चो राजा स्वयमादातुकामो विगृहीताः स्थानेन राज्ञा बुध्यध्वमिति ॥ २२ ॥

इसलिये (= उपजपिताको ही अनुकूल बनानेके कारण) उपजाप करनेवाले बाह्य पुरुषोंमें भेद और दण्डका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥ उनके (उपजपिताओंके) मित्रके वेपमें रहनेवाले सत्री, उपजपिताओंको इस प्रकार करें:— ॥ २१ ॥ यह राजा तुमको प्रतिजपिता पुरुषोंके द्वारा अपने अधीन करना चाहता है, इसलिये इस राजासे तुम्हें विग्रह कर देना चाहिये; आप लोगोंको यह सब सोचते हुए सम्मेलन कर रहना चाहिये; अर्थात् किसीपर भी विश्वासपूर्वक उपजापका प्रयोग मत कीं ॥ २२ ॥

प्रतिजपितुर्वा ततो दूतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्रसादिभिरेषां छिद्रेषु प्रहरेशुः ॥ २३ ॥ ततः सत्त्रिणः प्रतिजपित्तरमभिर्शस्युः ॥ २४ ॥

अथवा प्रतिजपिताके पाससे उपजपिताके समीप बातचीत करनेके लिये जाते हुए (प्रतिजपितुर्वाऽततः), या जहाँ उपजपिता है, वहाँ जाते हुए दूत अथवा सैनिक पुरुषमें प्रविष्ट हुए २ तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र तथा रत्न आदिके द्वारा अवसर पाकर इनपर हमला करें। अर्थात् ये तीक्ष्ण पुरुष, उपजपिताको शस्त्रके द्वारा अथवा विष आदि देकर मार डालें ॥ २३ ॥ तदनन्तर सत्री, इस तरह की मृत्युके सम्बन्धमें प्रतिजपिता पुरुषोंका नाम लेवे। अर्थात् वे मिथ्या ही इस बातको प्रसिद्ध कर दें, कि उपजपिता पुरुषोंको प्रतिजपिताओंने ही मारा है। जिससे कि प्रत्येक उपजाप करनेवाले पुरुषका, प्रतिजपितामें आश्वास हो जावे ॥ २४ ॥

अभ्यन्तरानभ्यन्तरेपूपजपत्सु यथार्हमुपायं प्रयुञ्जीत ॥२५॥
तुष्टलिङ्गमतुष्टं विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

इसी प्रकार अभ्यन्तरोंको उपजाप करनेवाले अभ्यन्तर पुरषोंमें भी यथायोग्य साम आदि उपायोंका प्रयोग किया जावे ॥ २५ ॥ सन्तोषके सूचक, पर वस्तुतः असन्तोषप्रद सामका प्रयोग किया जावे, अथवा असन्तोषके सूचक, वस्तुतः सन्तोषजनक सामका ही प्रयोग किया जावे। तात्पर्य यह है, कि अवस्थाके अनुसार इनमेंसे किसी तरहके सामका प्रयोग किया जावे ॥ २६ ॥

शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदयावेक्षणेन वा प्रतिपूजन-
मिति दानम् ॥ २७ ॥

शौच अथवा सामर्थ्यके बहाने, तथा बन्धुविभोग आदिके दुःखमय, और पुत्रोत्पत्त्य आदिके सुखमय अवसरोंकी अपेक्षा करके परस्पर तथा आभरण आदिके द्वारा सत्कार किया जाना दान होता है। अर्थात् दानके प्रयोगका यह प्रकार समझना चाहिये ॥ २७ ॥

मित्रव्यञ्जनो वा ब्रूयादेतान् ॥ २८ ॥ चित्तज्ञानार्थमुपधा-
स्यति यो राजा ॥ २९ ॥ तदस्याख्यातव्यमिति ॥ ३० ॥ पर-
स्पराद्वा भेदयद्देनान् ॥ ३१ ॥ अस्मै च यो राजन्येवमुपवपतीति
भेदः ॥ ३२ ॥

अथवा उनके मित्रके रूपमें रहनेवाला सत्री उनको (अभ्यन्तर उप-
जपिता पुरुषोंको) इस प्रकार कहे— ॥ २८ ॥ तुम्हारे हृदयगत अभिप्रायको
जाननेके लिये राजा, घम आदिके द्वारा तुम्हारी परीक्षा करेगा ॥ २९ ॥
इसलिये तुम लोगोंको अपने २ हृदयगत अभिप्राय स्पष्ट रूपसे बताने चाहिये ।

शत्रुनुद्द अर्थात् केवल शत्रुके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तिमें तो (चाहे वह आपत्ति स्वयं शत्रुके द्वारा या उसके मन्त्रोंके द्वारा, या उनके अमात्यके द्वारा, या मन्त्री और अमात्य इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुई २ ही, अर्थात् शत्रुकी ओरसे ये चार प्रकारकी आपत्ति होसकती हैं, इनमें से कोई भी आपत्ति हो, उसको तो), शत्रु जिन सामन्त आदिके अधीन है, मन्त्री जिसके अधीन है, या अमात्य आदि जिसके अधीन हैं, उनमें साम आदिका पचासोप्रयोग करके विजिगीषुको सिद्धिकी प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्वामि-यायत्ता प्रधानसिद्धिः ॥ ८ ॥ मन्त्रिष्वयायत्तायत्त-
सिद्धिः ॥ ९ ॥ उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः ॥ १० ॥

प्रधान विषयक सिद्धि, अर्थात् मन्त्रीसे उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, स्वामीके अधीन होता है, तत्पर्य यह है, कि मन्त्रीके आपत्ति जनक होनेपर उसके स्वामीको ही साम आदिके द्वारा अनुकूल बनानेका यत्न करना चाहिये ॥ ८ ॥ आयत्तासिद्धि, अर्थात् कार्य वाञ्छित कहेहुए (७ वें सूत्रमें) अमात्य आदिके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, मन्त्रियोंके अधीन होता है, अर्थात् उसके प्रतीकारके लिये मन्त्रियोंको ही साम आदि प्रयोगोंके द्वारा अनुकूल बनाना चाहिये ॥ ९ ॥ इसीप्रकार मन्त्री और अमात्य दोनोंसे उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, स्वामी और मन्त्री इन दोनोंके ही अधीन होता है। अर्थात् इस आपत्तिके प्रतीकारके लिये स्वामी और मन्त्री दोनोंको ही साम आदिके प्रयोगसे अनुकूल बनाना चाहिये ॥ १० ॥

दूष्यादूष्याणामभिधितत्वादाभिध्रा ॥ ११ ॥ आमिश्रा-
यामदूष्यतः सिद्धिः ॥ १२ ॥ आलम्बनाभावे क्षालम्बिता न
विद्यते ॥ १३ ॥

केवल शत्रु आदिले उत्पन्न हुई शुद्ध आपत्तिका निरूपण करनेके अनन्तर अथ दूष्य और अदूष्य (शत्रु) दोनोंके द्वारा मिलकर उत्पन्न कीहुई 'आमिश्र' आपत्तिके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा—दूष्य और अदूष्य दोनोंके द्वारा उत्पन्न कीहुई आपत्ति 'आमिश्र' या मिश्रित कहाती है, (पहिले दो प्रकारकी 'शुद्ध' आपत्तिका निरूपण किया ज चुका है) ॥ ११ ॥ आमिश्र आपत्तिमें अदूष्यके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होसकती है। अर्थात् आमिश्र आपत्तिका प्रतीकार करनेके लिये अदूष्यको ही साम आदि उपायोंसे अनुकूल बनाना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि अदूष्योंका ही सहारा लेकर दूष्य आपत्ति जनक हो सकता है, अदूष्यसे अनुकूल हो जानेपर यह स्वयं ही शान्त हो जाता है ॥ १३ ॥

मित्रामित्राणामेकीभावात्परमिश्रा, परमिश्रायां मित्रतः
सिद्धिः ॥ १४ ॥ सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति ॥ १५ ॥

मित्र और शत्रु इन दोनोंके द्वारा मिलकर राज्य की हुई आपत्ति 'परमिश्र' (अर्थात् जिसमें शत्रु विशेष रूपसे मिलकर आपत्तिका जनक होता है,) कहाती है; इसको 'शत्रुमिश्र' भी कहते हैं । परमिश्र आपत्तिमें मित्रके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होसकती है; अर्थात् उस मित्रके द्वारा ही इस आपत्तिका प्रतीकार किया जाता है ॥ १४ ॥ क्योंकि मित्रके साथ सन्धि होजाना सुकर होता है; शत्रु के साथ इस तरह सन्धि होना कठिन है (कितनी २ पुस्तकमें 'सन्धिः' पदके स्वानुपर 'सिद्धिः' ऐसा पठ है; अर्थमें कोई विशेष भेद नहीं) ॥ १५ ॥

मित्रं चेन्न संधिमिच्छेदभीक्ष्णमुपजपेत् ॥ १६ ॥ ततः
सत्प्रिमिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत ॥ १७ ॥ मित्रामित्रसंघस्य
वा योऽन्तःस्थायी तं लभेत ॥ १८ ॥ अन्तःस्थायिनि लब्धे
मध्यस्थायिनो भिद्यन्ते ॥ १९ ॥

मित्र, यदि सन्धि न करना चाहे, तो पार २ उदका उपवाप करे अर्थात् शत्रुसे भिन्न करनेका यत्न करे ॥ १६ ॥ इसप्रकार सत्री गुप्तपुरषोंके द्वारा, शत्रुसे उसकी फूट दलघाकर मित्रको प्राप्त करे अर्थात् उसको फिर अपने अनुकूल बनालेवे ॥ १७ ॥ एक देशके व्यवधानसे अथवा देशके साथ ही लगेहुए यथाक्रम मित्र और शत्रुके संघके अयसानमें रहनेवाले सामन्तोंको अपनी ओर मिलावे ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्तमें रहनेवाले सामन्तके अपने पक्षमें होजानेपर मध्यस्थित राजा, परस्पर स्वयं ही फूट जाते हैं ॥ १९ ॥

मध्यस्थायिनं वा लभेत । २० ॥ मध्यस्थायिनि वा लब्धे
नान्तःस्थायिनःसंहन्यन्ते ॥ २१ ॥ यथा चैषामाश्रयभेदस्तासु-
पायाःप्रयुञ्जीत ॥ २२ ॥

अथवा मध्यस्थायी सामन्तको ही अपने अधीन करे ॥ २० ॥ क्योंकि मध्यस्थायी सामन्तके पक्षमें होजानेपर, अर्थात् जब यह अपने पक्षीभूत होजाता है, तो अन्तमें रहनेवाले राजा भी आपसमें मिल नहीं सकेते । अर्थात् उनका परस्पर भेद होजाता है ॥ २१ ॥ तथा जिस प्रकारसे शत्रु और मित्र, अपने आश्रय अर्थात् अपनेको सहारा देनेवाले दाकिशाली राजासे भिन्न रहसकें, इसीप्रकारके उपायोंका प्रयोग कियाजावे ॥ २२ ॥

धार्मिकं जातिकुलश्रुतवृत्तस्तवेन संबन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्यो-
पकारानपकाराभ्यां वा सान्त्वयेत् ॥ २३ ॥

धार्मिक राजाके विषयमें सामके प्रयोगका यह प्रकार है:—जाति, कुल, युव (पढ़ाई लिखाई), और वृत्त (सद्गुणवहार या आचार) आदिकी स्तुतिके सम्बन्धसे, तथा उनके कुलवृद्धोंके सदा उपकार या अनपकारके द्वारा धार्मिक राजाको शान्त करे ॥ २३ ॥

निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्ययाभ्यां प्रवा-
सन चोपतप्तं शौचेनान्यं लिप्तमानमन्यस्माद्वा शङ्कमानं मैत्री-
प्रधानं वा कल्याणवृद्धिं साम्ना साधयेत् ॥ २४ ॥

उत्साहहीन, लड़ाईसे थकेहुए, अर्थात् युद्ध करनेमें रुचि न रखने वाले, निष्फल उपाय वाले (अर्थात् जिसके प्रयोग कियेहुए साम आदि उपाय सफल न हुए हों, ऐसे), क्षय (सवारी तथा आदमियोंके नाश), व्यय (धन धान्य आदिके नाश) और प्रवास (दूरदेशकी यात्रा) से संतप्त हुए, पवित्रता पूर्णके (अर्थात् ईमानदारीसे) किसी दूसरे राजाको अपना मित्र बनानेकी इच्छा रखने वाले, दूसरेसे शङ्का रखनेवाले अर्थात् दूसरेपर विश्वास न करनेवाले, और सबके साथ मित्रभावका ही व्यवहार करनेवाले कल्याणवृद्धि राजाको, सामके द्वारा ही शान्त करनेका प्रयत्न करे ॥ २४ ॥

लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत्
॥ २५ ॥ तत्पञ्चविधम्—॥ २६ ॥ देयविसर्गो गृहीतानुवर्तन-
मात्तप्रतिदानं स्वद्रव्यदानमपूर्वं परस्त्रेषु स्वयंग्राहदानं चेति दान-
कर्म ॥ २७ ॥

लौभी, अथवा धनहीन राजाको, तपस्वी और अन्य मुत्पन्न व्यक्तियोंकी प्रामाणिकतामें दानके द्वारा वशीभूत करे। तात्पर्य यह है, कि देनेके समय तपस्वी तथा प्रधान व्यक्तियोंको इस बातका साक्षी बनावे, कि अनुक्त राजाको देने अनुक्त समयमें हम शर्तपर इतना धन आदि दिया है जिससे कि आगे किसी तरहके झगड़ेकी सम्भावना न हो ॥ २५ ॥ वह दान पांच प्रकारका होता है ॥ २६ ॥ देयविसर्ग (ग्रहण कीहुई भूमिमें, ग्राह्यण आदिके लिये पहिलेके अनुसार ही छोड़ाहुआ), गृहीतानुवर्तन (पहिले पूर्वजोंके द्वारा लीहुई भूमि आदिको भोगनेके लिये प्रतिषेध न करना), मात्तप्रतिदान (लीहुई भूमि आदिका फिर वापस दे देना), नये शर्तपर अपने ही द्रव्यका देना, और शत्रुके देशसे लट्टेहुए धनको लट्टने वालेको ही दे देना, अर्थात् शत्रुके

देश पर चढाई करने पर पक्षोंसे जितना धन लूटमें तुम्हारे हाथ लगेगा, वह तुम्हारा ही होगा, इसप्रकार दानके ये पांच भेद होते हैं ॥ २७ ॥

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतोऽन्यतमेन भेदयेत् ॥ २८ ॥
भीरुं वा प्रतिघातेन ॥ २९ ॥ कृतसंधिरेष त्वयि कर्म करिष्यति
मित्रमस्य निसृष्टम् ॥ ३० ॥ संधौ वा नाभ्यन्तरइति ॥ ३१ ॥

अब भेदका निरूपण किया जाता है:—जो राजा आपसके द्वेष (उसी समय कियेहुए अपकारके द्वारा उत्पन्न हुआ २ विरोधीभाव), वैर (चिर-कालसे उत्पन्न हुआ २ विरोधीभाव), तथा भूमिका अपहरण आदि करनेकी आशाका रखता हो, उसे इन्होंने से कियी एकके द्वारा मित्र करदेवे । अर्थात् द्वेष आदिके द्वारा ही उनकी आपसमें फूट डालदे ॥ २८ ॥ भीर (डरपोक) राजाको प्रतिघात के द्वारा (शत्रु बलवान् है, यदि तू इस समय युद्ध आदि करेगा, तो मारा जायगा, इसप्रकार भय दिखाकर) मित्र करदेवे ॥ २९ ॥ अथवा यह कहकर भेद डाले, कि देखो, इस समय तो यह तुमसे सन्धि करलेगा, पर सन्धि करके फिर पीछेसे तुमपर आक्रमण करदेगा, क्योंकि सन्धि करनेके लिये विजिगीषुके पास इसने अपने मित्रको भेजदिया है ॥ ३० ॥ अथवा यह कहकर भेद डाले, कि देखो—शत्रु और मित्रके साथ सन्धि करनेके समयमें इन्होंने तुमसे उससे सम्मिलित नहीं किया, अर्थात् उस कार्यसे तुम्हारा बहिष्कार करदिया ॥ ३१ ॥

यस्य वा स्वदेशान्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतया गच्छे-
युस्तान्यस्य यातव्याल्लब्धानीति सत्त्रिणधारयेयुः ॥ ३२ ॥
बहुलीभूते शासनमभिव्यक्तेन प्रेषयेत् ॥ ३३ ॥

मित्र या शत्रु किसीके अपने देशसे या दूसरेके देशसे, पण्यागार (विक्रीय वस्तुओंके रखनेका स्थान विशेष) में रखनेके लिये जो पण्य (बिकने आदिका सामान) आवे, उसके सम्बन्धमें सत्री यह प्रसिद्ध करदे कि लिये तोरपर सन्धि करनेकी इच्छा रखनेवाले यातव्य (जिसके ऊपर आक्रमण कियाजाने वाला हो, उस) से ही यह सामान प्राप्त हुआ है ॥ ३२ ॥ इस मिथ्या वृत्तान्तके बहुत अधिक फैल जानेपर, एक कपटलेख (बनावटी पत्र लिखकर) अभिव्यक्त (सर्वथा चण्डरूपसे निश्चित हुआ २ पुरुष, इसी अर्थको प्रकट करनेके लिये—अधि० ९, अध्याय ३, सूत्र ५३ की व्याख्यामें 'अभिव्यक्त' के स्थानपर 'अभिव्यक्त' शब्दका प्रयोग किया है, यद्यपि मूल सूत्रमें वहाँ 'अभिव्यक्त' पाठ ही उपगया है, पर नयचन्द्रिका व्याख्याके

अनुसार वहां 'अभिव्यक्त' पाठ ही है। पान्पु इस स्थलमें नयचन्द्रिका व्याख्यामें भी 'अभिव्यक्त' ही पाठ है) पुररूपके हाथमें देकर उसे भेजे ॥ ३३ ॥

एतत्ते पण्यं पण्यगारं वा मया ते प्रेषितम् ॥ ३४ ॥ साम-
वायिकेषु विक्रमस्वापगच्छ वा ॥ ३५ ॥ ततः पणशेषमवाप्स्य-
सीति ॥ ३६ ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ३७ ॥ एतद-
रिप्रदत्तमिति ॥ ३७ ॥

उस लेखका भाव यह होना चाहिये:—यह थोड़ा बहुत सामान मैंने आपके लिये भेजा है, तथा यह पण्यगार अर्थात् पण्य गृहके समान, शकट आदि बड़ा २ सामान भी मैंने आपके पास भेजा है ॥ ३४ ॥ तुम्हारे अपने साथ ही उठनेवाले अर्थात् मेरे शत्रु की सहायता करनेवाले राजाओंपर आक्रमण करो, अथवा उन्हें छोड़कर अलहदा होजाओ; अर्थात् मेरी सहायता करनेके लिये तैयार होजाओ ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर तुमको, शर्त किया हुआ शेष धन भी प्राप्त होजावेगा, अर्थात् मेरी ओसे तुम्हें शेष धन उसी समय मिल सकेगा, जब तुम उनपर चढ़ाई करोगे, या उन्हें छोड़दोगे। इसप्रकार बनावटी एत्र लिखवाकर उसके पास भेजा जावे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर सत्रों, अन्य सामवायिक राजाओंमें इस बातका विश्रय करादे, कि यहपत्र विजिगीषुका अर्थात् आपके शत्रुका दिया हुआ है ॥ ३७ ॥

शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषुं गच्छेत् ॥ ३८ ॥
तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन् ॥ ३९ ॥ ततः
सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः, एतत्पण्यमरिप्रदत्तमिति ॥ ४० ॥

अथवा शत्रु अर्थात् सामवायिक राजाओंमें से किसी एकके साथ सम्बन्ध जोड़ेहुए राज आदि पण्य (सामान) को, बिना ही किसीके जानेहुए, किसीतरह विजिगीषुके पास पहुंचाया जावे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर व्यापारियोंके नेपथमें रहनेवाले उसके गुप्तचर, उस सामानको अन्य शत्रुके समान मुख्य सामवायिक राजाओंमें लेजाकर बेधें ॥ ३९ ॥ और इसके बाद सत्री (गुप्त-चरपुरप), उस सामानको, अन्य सामवायिक राजाओंमें जाकर रक्षकपुरपोंके द्वारा यह कहकर पकड़ा दें, कि यह सब सामान आपके शत्रु अर्थात् विजिगीषुके द्वारा यहां हम (अमुक) पुरुषोंके पास बेचनेके लिये भेजा गया है। तबवा परिणाम यह निकलेगा, कि सामवायिक राजाओंके हृदयमें यह निश्चित होजायगा, कि हममें से कोई राज विजिगीषुके साथ मिल गया है। और इसतरह हममें परस्पर अवश्य फूट होजायगी ॥ ४० ॥

महापराधानर्थमानाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिरग्नित्रे
 णदध्यात् ॥ ४१ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ ४२ ॥
 य पुत्रदारमुपगृह्य रात्रौ हतमिति ख्यापयेत् ॥ ४३ ॥ अथा-
 त्यः शत्रोस्तानैकैकशः प्ररूपयेत् ॥ ४४ ॥

महान् अपराध करनेवाले अमारय आदिकों, भूमि हिरण्य आदि धन
 वा छत्र चामर आदि सत्कारके देनेसे अपने वशमें करके, उन्हें शत्रुपर शस्त्र
 वा रस आदिके द्वारा आक्रमण करनेके लिये नियुक्त करे । तत्पर्ये यह है,
 विजिगीषु इस प्रकारके अपराधी अमारयोंसे 'तुम लोग जाकर शस्त्र विप
 वा अग्नि आदिके द्वारा शत्रुको मार डालो, यह कहकर छिपे तौरपरही उन्हें
 स कामके लिये भेज देवे ॥ ४१ ॥ पहिले एकही अमात्यको अपने पाससे
 निकालकर शत्रुके पास पहुंचा देवे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उसके छी और पुत्रोंको
 कहकर अर्थात् किसी एकान्त स्थानमें छिपे तौरपर सुरक्षित करके, रात्रिमें उन्हें
 मारने मार डाला है, इस प्रकार मिथ्या वृत्तान्तकोही प्रसिद्ध करादेवे । (यह
 स्त्रीलिये किया जाता है, कि जिससे शत्रु, भेजे हुए अमारयके सम्बन्धमें
 विजिगीषुकी शत्रुता का विश्वास करसके) ॥ ४३ ॥ जब वह अमारय, शत्रुके
 यहां स्थान पाजावे, अर्थात् शत्रु जब उसपर पूरा विश्वास करने लगे; तो वह
 विजिगीषुके यहाँसे भाये हुए अन्य अमारयोंको भी एक एक करके यह कहकर
 परिचय करा देवे, कि यह लोग विजिगीषुके द्वेषके कारण यहां भाये हैं और
 आपकी सेवामें रहनेके योग्य हैं ॥ ४४ ॥

ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत् ॥ ४५ ॥ अशक्तिमतो
 वा ग्राहयेत् ॥ ४६ ॥ आप्तभावोपगतो मुख्यादस्यात्मानं रक्ष-
 णीयं कथयेत् ॥ ४७ ॥ अथाभिन्नशासनममुख्यायोपघाताय प्रे-
 पितमुभयवेतनो ग्राहयेत् ॥ ४८ ॥

यदि वे अमारय, विजिगीषुकी आज्ञानुसार सब कार्य करते, अर्थात्
 उस शत्रुको शस्त्र आदिके द्वारा मार डाले, तो उन्हें न पकड़वावे । अर्थात् वे
 लोग दोनों ओरसे घेतन लेते हैं, यह कहकर शत्रुके द्वारा उन्हें गिरफ्तार न
 करवावे ॥ ४५ ॥ यदि वे लोग शत्रुके मारनेमें आपना अन्तर्धर्म प्रकट करें,
 तो उन्हें पकड़वा देवे ॥ ४६ ॥ विजिगीषुके द्वारा निकाला हुआ यह अमारय,
 सामयिक राजाओंके मुखियाके साथ इस प्रकार भेड़ डाले:—जब वह अमा-
 रय शत्रुका अत्यन्त विश्वस्त होजावे, तो वह शत्रुमें कहे, कि आपको साम-
 ययिक राजाओंके मुखियोंसे अपने आपको रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि वे

लोग विश्वास करनेके योग्य नहीं हैं ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर, अमुष्य सामवायिकके उपपत्तके लिये शत्रुके द्वारा भेजा हुं लिखित कूट आज्ञाको उभयपक्षतन पुरुष (दोनों और से पक्ष लेनेवाले), रक्षक पुरुषके द्वारा मुख्य सामवायिकके पास पहुंचवा दें ॥ (किसी २ पुस्तकमें 'अमुष्याय' के स्थानपर 'मुख्याय' भी पांड है) ॥ ४८ ॥

उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत् ॥ ४९ ॥ अमुष्य राज्यं गृहाण
यथास्थितो न संधिरिति ॥ ५० ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः
॥ ५१ ॥

अथवा उत्साह तथा विक्रम शक्तिसे युक्त किसी एक सामवायिकके पासही उस नकली आज्ञाको भिजवावे ॥ ४९ ॥ उस आज्ञापत्रका विषय इस प्रकार होना चाहिये—आप उस मुख्य सामवायिकके राज्यको ले लें; पहिले निश्चय की हुई सन्धिको भंग स्वीकार नहीं किया जासकता ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर वे सत्री (गुप्त) पुरुष, अन्य सामवायिक राजाओंके पास जाकर इस बात की सूचना देदें । अर्थात् अमुक सामवायिकपर इस २ तरहका कोई पत्र आया है, इस बातसे उन्हें सूचित करदें ॥ ५१ ॥

एकस्य स्कन्धावारं विवधमासारं वा घातयेयुः ॥ ५२ ॥
इतरेषु मैत्रीं जुवाणाः ॥ ५३ ॥ तं सत्रिणः—त्वमेतेषां घातयितव्य
इत्युपजपेयुः ॥ ५४ ॥

अथवा यह करना चाहिये, कि सत्रीपुरुष, किसी एक सामवायिक राजाके स्कन्धावार (छावनी अथवा पड़ाव), उसके अपने देशसे धान्य आदिके आगम, तथा उसके मित्रबलको नष्ट करडालें ॥ ५२ ॥ और अन्य सामवायिक राजाओंमें अपनी मित्रताका कथन करते रहें । जिससे कि उनके सामने यह बात सर्वथा छिपी रहे ॥ ५३ ॥ तदनन्तर सत्रीपुरुष, उस एक सामवायिक राजाका, अन्य सामवायिक राजाओंसे, यह कहकर भेद डालें, कि ये सामवायिक राजा तुझे मारना चाहते हैं, ऐसी अवस्थामें इनके साथ तेरी सन्धि कैसे होसकती है ॥ ५४ ॥

यस्य वा प्रवीरपुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत गूढपुरुषैर्हन्येत
हियेत वा तं सत्त्रिणः परस्पोपहतं ब्रूयुः ॥ ५५ ॥ ततः शास-
नमभिश्चस्तस्य प्रेषयेत् ॥ ५६ ॥ भूयः कुरु ततः षण्णशेषमवा-
प्स्यतीति ॥ ५७ ॥ तदुभयवेतना ग्राहयेयुः ॥ ५८ ॥

अथवा जिस किसी सामवायिक का कोई बहादुर आदमी, हाथी या घोड़ा स्वयं मर जावे, गृह पुरुषों के द्वारा मार दिया जावे, अथवा अपहरण कर लिया जावे; उसके सम्बन्धमें सत्री पुरुष, उसे एक दूसरेके द्वारा मारा हुआ बतलावें । अर्थात् जिनके वे आदमी आदि मर गये हैं, उनको यह समझावें, कि तुम्हारे यह आदमी आदि अन्य सामवायिक राजाओंके द्वारा ही मारे गये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर जिस सामवायिक का मारने वालों में नाम लिया गया है, उसके पास एक बनावटी आज्ञापत्र भेजा जावे ॥ ५६ ॥ उस का भजमून यह होना चाहिये:—कि फिर तुम इसी प्रकार करो, अर्थात् अन्य सामवायिकोंके बहादुर आदमी और घोड़े आदिकों को इसी प्रकार नष्ट करते रहो, इसके बाद ही तुम्हें श्रेय धन दिया जासकेगा ॥ ५७ ॥ उन बनावटी आज्ञापत्र को, उभयवेतन (विजिगीषु और सामवायिक दोनों की ओर से वेतन लेने वाले) पुरुष, गृह पुरुषों द्वारा सामवायिक राजा तक भिजवा दें । इस प्रकार सामवायिक राजाओं में परस्पर भेद डालने का यत्न करना चाहिये ॥ ५८ ॥

भिन्नेष्वन्यतमं लभेत् ॥ ५९ ॥ तेन सेनापतिकुमारदण्ड-
चारिणो व्याख्याताः ॥ ६० ॥ साङ्घिकं च भेदं प्रयुञ्जीतेति
भेदकर्म ॥ ६१ ॥

जब सामवायिक राजा आपसमें फूट जावें, तो उनमें से एकको पकड़ कर अपने अधीन करलें ॥ ५९ ॥ भेद डालने का जो उपाय सामवायिक राजाओं के लिये कहा गया है, वही उपाय सेनापति युवराज तथा अन्य सेना-सम्बन्धी व्यक्तियोंमें भेद डालनेके लिये भी समझना चाहिये ॥ ६० ॥ सङ्घ-वृत्त अधिकरण (ग्यारहवें अधिकरण)में निरूपण किये जाने वाले, भेद डालने के उपायों का यहाँ भी प्रयोग किया जासकता है । यहाँ तक भेद सम्बन्धी कार्यों का प्रतिपादन कर दिया गया ॥ ६१ ॥

तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्रा-
धिरसादिभिः साधयेयुः ॥ ६२ ॥ सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः
॥ ६३ ॥ तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्रसाग्निभिः साधयेत् ॥ ६४ ॥
अयं सर्वसंदोहकर्म विशिष्टं वा करोतीत्पुपायचतुर्वर्गः ॥ ६५ ॥

तीक्ष्ण (अत्यधिक क्रोधी अथवा असहनशील), उत्साही (बहादुर= पराक्रमशाली), व्यसनी (शिकार आदि खेलनेमें लगा रहने वाला), तथा दुर्ग आदिसे युक्त शक्तिशाली शत्रु को, गूढपुरुष तथ्य अग्नि तथा विष आदि के द्वारा मिलकर मार डालें ॥ ६२ ॥ अथवा उनमें से कोई एक ही गूढपुरुष

जो कि सुगमता से ही शत्रु का वध कर सकता हो, यह अकेला ही किसी उपायसे इन उपयुक्त प्रकारके शत्रुओं को मार सके ॥ ६३ ॥ (यह कौन एक ऐसा होसकता है, उसका ही निरूपण करते हैं—, क्योंकि एकही तीक्ष्ण पुरुष (एक प्रकार का गूढ़ पुरुष, जो कि शस्त्र आदिके ही अपने कार्यों को सिद्ध करता है, यह) शस्त्र, विष आदि रस तथा अशिके द्वारा उक्त सब प्रकारके ही शत्रुओंको ठीक कर सकता है, अर्थात् मार सकता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार का यह तीक्ष्ण गूढ़पुरुष, न केवल सब तरहके गूढ़पुरुषोंसे मिलकर किये जाने वाले कार्य को ही अकेला कर सकता है, प्रत्युत उनकी अपेक्षा अधिक भी कार्य कर सकता है। अर्थात् ये मिलकर भी जिस काम को नहीं कर सकते हैं, उस कामको भी यह अकेला ही कर सकता है। यहाँ तक साम दान भेद और दण्ड इन चार उपायों के सम्बन्धमें निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः ॥ ६६ ॥ सान्त्वमेकगुणम् ॥ ६७ ॥
दानं द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् ॥ ६८ ॥ भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदान-
पूर्वः ॥ ६९ ॥ दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ॥ ७० ॥

अब इनके गुरुत्वधुभावका विचार किया जाता है—इन चारों उपायों में से पहला उपाय, अगले उपायों की अपेक्षा लघु होता है, अर्थात् इसका प्रयोग बनायास ही किया जा सकता है, क्योंकि यह थोड़े अनरस वाला होता है ॥ ६६ ॥ साम एकही गुण वाला होता है, अर्थात् प्रयोक्ता स्वयं अपने भाव ही उसका एक गुण (=अवयव) होता है ॥ ६७ ॥ दान दो गुण (=अवयव) वाला होता है, क्योंकि साम अर्थात् सान्त्वना और देना, दोनों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ६८ ॥ भेद तीन गुणों वाला होता है, पहिले दो उपाय और तीसरा अपने भाव, ये तीनों ही अवयव रूपसे उसमें मिले रहते हैं ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार दण्ड चतुर्गुण होता है, अर्थात् पहिले तीन उपाय और एक स्वयं, ये चारों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ७० ॥

इत्यभियुज्जानेपृक्तम् ॥ ७१ ॥ स्वभूमिष्ठेषु तु त एवोपायाः
॥ ७२ ॥ विशेषस्तु—॥ ७३ ॥ स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य पण्यागा-
रैरभिज्ञातान्दूतमुख्यानभीक्षणं प्रेषयेत् ॥ ७४ ॥

जो मित्र अथवा शत्रु, पातवकी और, मिलकर आक्रमण करनेके लिए चल पड़े हों, और उनके समीप ही कहीं पदाय डालकर पड़े हों, उन आक्रमणकारी सामवायिक राजाओंके विषयमें ही यह इसप्रकारका साम आदि उपायों

का विधान बताया गया है ॥ ७१ ॥ और जब वह आक्रमण के लिये चल न पड़े हों, किन्तु अपनी २ भूमि में ही स्थित हों, तबभी इन्हीं उपायों का प्रयोग किया जावे ॥ ७२ ॥ उस अवस्थामें इनका प्रयोग करनेमें जो विशेष बात है उसका भय निरूपण किये देते हैं:— ॥ ७३ ॥ मिलकर आक्रमण करनेसे पहिले, जब कि मित्र और शत्रु सब अपने २ देशोंमें स्थित रहते हैं, उनमें से किसी एकके पास अत्यधिक गणि मुक्ता आदि सामानके साथ, उन राजाओंके सम्बन्धमें अच्छी जानकारी रखने वाले दूतमुख्यों को विजिगीषु वार २ भेजे ॥ ७४ ॥

त एनं संधौ परहिसायां वा योजयेयुः ॥ ७५ ॥ अप्रतिप-
घमानं कृतो नः संधिरित्यावेदयेयुः ॥ ७६ ॥ तमितरेषामुभय-
वेतनाः संक्रामयेयुः ॥ ७७ ॥ अयं वो राजा दुष्ट इति ॥ ७८ ॥

ये दूतमुख्य, उस मित्र अथवा शत्रु को, अपने साथ सन्धि, अथवा दूसरेके मारनेमें नियुक्त करें ॥ ७५ ॥ यदि वह सन्धि करना स्वीकार न करे, तो भी 'इसने हमारे साथ सन्धि करली है', इस प्रकार वे दूतमुख्य मिथ्या ही प्रसिद्धि करदें ॥ ७६ ॥ उभयवेतन पुरुष, अन्य मित्र तथा शत्रुओंके पास भी उस समाचार को पहुँचा दें ॥ ७७ ॥ और यह कहें कि आप लोगोंसे अमुक राजा बड़ा दुष्ट है, क्योंकि इसने आप लोगोंसे कुछ न कहकर चुपचाप ही विजिगीषुसे सन्धि करली है ॥ ७८ ॥

यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा तं तस्माद्भेदयेयुः ॥ ७९ ॥
अयं ते शत्रुणा संधत्ते ॥ ८० ॥ पुरा त्वामतिसंधत्ते क्षिप्रतरं
संधीयस्व ॥ ८१ ॥ निग्रहे चास्य प्रयतस्विति ॥ ८२ ॥

जिसको जिससे शत्रुता द्वेष तथा भय हो, उसको उससे भिन्न कर दें । अर्थात् गुडपुरुष, इस प्रकारके दो राजाओं में कभी सन्धि न होने दें ॥ ७९ ॥ उसको इस प्रकार कहें, कि देखो, यह तुम्हारे शत्रुके साथ सन्धि करता है ॥ ८० ॥ फिर यह तुमको ही दवाने के लिये तैयार होजाएगा, इस लिये तूम बहुत जल्दी उस शत्रुके (अर्थात् विजिगीषुके) साथ स्वयं सन्धि करलो ॥ ८१ ॥ और इसका निग्रह करनेके लिये अर्थात् इसको अपने कान्धमें करने के लिये प्रयत्न करो ॥ ८२ ॥

आयाहविवाहाभ्यां वा कृत्वा संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ॥ ८३ ॥

आयाह (कन्याका स्वीकार करना) अथवा विवाह (कन्या का देना) के द्वारा आपसमें सम्बन्ध बरके, सम्बन्ध रहित दूसरे राजाओंके साथ उभय

जो कि सुगमता से ही शत्रु का घघ कर सक्ता हो, वह अकेला ही किसी उपायसे इन उपयुक्त प्रकारके शत्रुओं को मार डाले ॥ ६३ ॥ (वह कौन एक ऐसा होसकता है, उसका ही निरूपण करते हैं—, क्योंकि एकही तीक्ष्ण पुरुष (एक प्रकार का गूढ पुरुष, जो कि द्रव्य आदिसे ही अपने कार्यों को सिद्ध करता है, वह) शस्त्र, विष आदि रस तथा अग्निके द्वारा उक्त सभ प्रकार के ही शत्रुओंको ठीक कर सकता है, अर्थात् मार सकता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार का यह तीक्ष्ण गूढपुरुष, न केवल सभ तरहके गूढपुरुषोंसे मिलकर किये जाने वाले कार्य को ही अट्टेला कर सकता है, प्रयुक्त उनकी अपेक्षा अधिक भी कार्य कर सकता है । अर्थात् वे मिलकर भी जिस काम को नहीं कर सकते हैं, उस कामको भी यह अकेला ही कर सकता है । यहाँ तक साम दान भेद भार दण्ड इन चार उपायों के सम्बन्धमें निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः ॥ ६६ ॥ सान्त्वमेकगुणम् ॥ ६७ ॥
दानं द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् ॥ ६८ ॥ भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदान-
पूर्वः ॥ ६९ ॥ दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ॥ ७० ॥

अथ इनके गुरुत्वभावका विचार किया जाता है—इन चारों उपायों में से पहला उपाय, अगले उपायों की अपेक्षा लघु होता है, अर्थात् इसका प्रयोग अनायास ही किया जा सकता है, क्योंकि यह थोड़े अवयव वाला होता है ॥ ६६ ॥ साम एकही गुण वाला होता है, अर्थात् प्रयोक्ता स्वयं अपने आप ही उसका एक गुण (=अवयव) होता है ॥ ६७ ॥ दान दो गुण (=अवयव) वाला होता है, क्योंकि साम अर्थात् साम्रचना और देना, दोनों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ६८ ॥ भेद तीन गुणों वाला होता है, पहिले दो उपाय और तीसरा अपने आप, ये तीनों ही अवयव रूपसे उसमें मिले रहते हैं ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार दण्ड चतुर्गुण होता है, अर्थात् पहिले तीन उपाय और एक स्वयं, ये चारों ही इसके अवयव होने हैं ॥ ७० ॥

इत्यभियुक्तानेषूक्तम् ॥ ७१ ॥ स्वभूमिष्ठेषु तु त एवोपायाः
॥ ७२ ॥ विशेषस्तु— ॥ ७३ ॥ स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य पण्यागा-
रैरभिज्ञातान्दूतमुख्यानभीक्षणं प्रेषयेत् ॥ ७४ ॥

जो मित्र अथवा शत्रु, पातवकी और, मिलकर आक्रमण करनेके लिए चल पडे हों, और उसके समीप ही कहीं पड़ाव डालकर पडे हों, उन आक्रमणकारी सामवायिक राजाओंके विषयमें ही यह इसप्रकारका साम आदि उपाय

का विधान बताया गया है ॥ ७१ ॥ और जब वह आक्रमण के लिये चल न पड़े हों, किन्तु अपनी २ भूमि में ही स्थित हों, तबभी इन्हीं उपायों का प्रयोग किया जावे ॥ ७२ ॥ उस अवस्थामें इनका प्रयोग करनेमें जो विशेष बात है उसका अर्थ निरूपण किये देते हैं:— ॥ ७३ ॥ मिलकर आक्रमण करनेसे पहिले, जब कि मित्र और शत्रु सब अपने २ देशोंमें स्थित रहते हैं, उनमें से किसी एकके पास अत्यधिक गणि मुक्ता आदि सामानके साथ, उन राजाओंके सम्बन्धमें अच्छी जानकारी रखने वाले दूतमुख्यों को विजिगीषु धार २ भेजे ॥ ७४ ॥

त एनं संधौ परहिंसायां वा योजयेयुः ॥ ७५ ॥ अप्रतिपद्यमानं कृतो नः संधिरित्याचेदयेयुः ॥ ७६ ॥ तमितरेषामुभयवेतनाः संक्रामयेयुः ॥ ७७ ॥ अयं वो राजा दुष्ट इति ॥ ७८ ॥

ये दूतमुख्य, उस मित्र अथवा शत्रु को, अपने साथ सन्धि, अथवा दूसरेके मारनेमें नियुक्त करें ॥ ७५ ॥ यदि वह सन्धि करना स्वीकार न करे, तो भी 'इसने हमारे साथ सन्धि करली है', इस प्रकार वे दूतमुख्य मित्रग ही प्रसिद्धि करेंगे ॥ ७६ ॥ उभयवेतन पुरुष, अन्य मित्र तथा शत्रुओंके पास भी उस समाचार को पहुंचा देंगे ॥ ७७ ॥ और यह कहें कि आप लोगोंमेंसे अगुक्त राजा बड़ा दुष्ट है, क्योंकि इसने आप लोगोंसे कुछ न कहकर चुपचाप ही विजिगीषुसे सन्धि करली है ॥ ७८ ॥

यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा तं तस्माद्भेदयेयुः ॥ ७९ ॥ अयं ते शत्रुणा संघत्ते ॥ ८० ॥ पुरा त्वामतिसंघत्ते क्षिप्रतरं संधीयस्व ॥ ८१ ॥ निग्रहे चास्य प्रयतक्षेति ॥ ८२ ॥

जिसको जिससे शत्रुता द्वेष तथा भय हो, उसको उससे भिन्न कर दें । अर्थात् गूढपुरष, इस प्रकारके दो राजाओं में कभी सन्धि न होने दें ॥ ७९ ॥ उसको इस प्रकार कहें, कि देखो, यह तुम्हारे शत्रुके साथ सन्धि करता है ॥ ८० ॥ फिर यह तुम्हें ही दबाने के लिये तैयार होजाएगा, इस लिये तुम बहुत जल्दी उस शत्रुके (अर्थात् विजिगीषुके) साथ स्वयं सन्धि करलो ॥ ८१ ॥ और इसका निग्रह करनेके लिये अर्थात् इसको अपने कान्ठमें धरने के लिये प्रयत्न करो ॥ ८२ ॥

आवाहविवाहाभ्यां वा कृत्या संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ॥ ८३ ॥

आवाह (कन्याका स्वीकार करना) अथवा विवाह (कन्या का देना) के द्वारा आपसमें सम्बन्ध करके, सम्बन्ध रहित दूसरे राजाओंके साथ उसका

भेद डाल दिया जाये । यहां तक अपनी २ भूमिमें रहने वाले राजाओं में परस्पर भेद डालने के प्रकारों का निरूपण कर दिया गया ॥ ८३ ॥

सामन्तादविकतत्कुलीनावरुद्धैश्विपां राज्यान्निर्घातयेत् ॥ ८४ ॥
सार्धव्रजाटवीर्या, दण्डं वामिसृतं, परस्परपाश्रयाश्विपां जातिसङ्घा-
च्छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ ८५ ॥ गूढाश्चाग्निरसशस्त्रेण ॥ ८६ ॥

सामन्त (उनकी भूमिके समीप रहने वाले राजा), आटविक (जंगल के स्वामी), अथवा उनके (मित्र या शत्रुओंके) कुलमें ही उत्पन्न हुए अवरुद्ध राजपुत्रादिके द्वारा ही विजिगीषु उनके राज्यको हानि पहुंचाने का यत्न करे ॥ ८४ ॥ अथवा उनके व्यापारी भारको ढोने वाले पशु, अन्य गाय भैंस आदि पशु, तथा द्रव्यवन और हस्तिवनोंको नष्ट करवा देवे, अथवा रक्षा करने वाली सेना को ही नष्ट करवा देवे । (कित्ती पुस्तकमें 'सार्धव्रजाटवीर्या' के स्थान पर 'सार्धव्रजाटवीभिर्वा' ऐसा तृतीयान्त पाठ है; इस पाठमें सार्ध, व्रज तथा अटवी के साथ २ रक्षक सेनाको भी नष्ट करवा देवे, यही अर्थ करना चाहिये) । और एक दूसरेसे पृथक् किये हुए जातिसंघ (विच्छिन्निक आदि नाम वाले जाति समूह; इनका संघवृत्त अधिकरणमें निरूपण किया जायगा), इन मित्र या शत्रुओंके प्रमादस्थानोंमें बराबर प्रहार करते रहें, अर्थात् जहां उनको कमजोर देखें, वहीं उनपर प्रहार कर दें ॥ ८५ ॥ और अन्य तीक्ष्ण रसद आदि गूढपुरुष, अग्नि, विष आदि रस तथा हथियारोंके द्वारा प्रहार करें ॥ ८६ ॥

वितंसगिलवचारीन्योगैराचरितैः शठः ।

घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च ॥ ८७ ॥

हस्तभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे दूष्यशत्रुसंपुक्ताः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥

आदितः सप्तमिशतः ॥ १२७ ॥

परमिध अर्थात् मित्र और शत्रु दोनोंसे मिलकर उत्पन्न हुई आपत्तिमें, शठ (गूढ व्यवहार करने वाला) विजिगीषु, वितंस (पक्षियोंके विश्वासके लिये पक्षियोंके विविध चित्रोंसे युक्त, शरीरको टकने वाला वस्त्र) और गिल (खाने का मांस, के समान, प्रयुक्त किये हुए कपट उपायोंके द्वारा अपने अन्दर विश्वास उत्पन्न कराके, तथा कुछ सार वस्तु देकर अपने शत्रुओं को धमकें करे ॥ ८७ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

१४५-१४६ प्रकरण

अर्थ, अनर्थ तथा संशयसम्बन्धी आपत्तियां, और उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साम आदि उपायोंके प्रयोग विशेषसे होनेवाली सिद्धियां

{ हिरण्य भूमि आदिको 'अर्थ' कहते हैं; उनके नाश तथा शरीरके नाशका नाम 'अनर्थ' है, अर्थ और अनर्थ विषयक सन्देहकोही 'संशय' कहा जाता है, इनसे युक्त आपत्तियोंका, पहले प्रकरणमें निरूपण किया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें साम आदि उपायोंके कारण इन्हीं आपत्तियोंके प्रतीकारका निरूपण किया जायगा ।

कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति ॥ १ ॥ अपनयो बाह्याः ॥ २ ॥ तदुभयमासुरी वृत्तिः ॥ ३ ॥ स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्वापदर्थोऽनर्थः संशय इति ॥ ४ ॥

काम क्रोध आदि दोषोंका अधिक होना, अपनेही मन्त्री आदि भग्यन्तर प्रकृतिजनोंको कुपित करनेवाला होता है ॥ १ ॥ अपनय अर्थात् नीति-मार्गसे अष्ट होना, राष्ट्रमुख्य अन्तपाल आदि बाह्य प्रकृतियोंको कुपित कर देता है ॥ २ ॥ इसलिये काम आदि दोष और अपनय इन दोनोंकोही आसुरी-वृत्ति कहा गया है, अर्थात् ये दोनों, असुरोंके करने योग्य कार्य हैं ॥ ३ ॥ अपनेही अमात्य आदि पुरुषोंका विकाररूप कोप, शत्रुकी वृद्धिके, कारण उपस्थित होनेपर, आपत्तिका रूप धारण करलेता है । यह आपत्ति अर्थरूप अनर्थरूप और संशयरूप तीन प्रकारकी होती है ॥ ४ ॥

योऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयज्ययोदयो भवति, स भवत्त्वापदर्थः ॥ ५ ॥

जो अर्थ (उपेक्षा करनेके कारण) अपने हाथमें न आया हुआ, शत्रुकी ही वृद्धिको करता है; तथा जो अर्थ अपने हाथमें आजानेपर भी फिर शत्रुके द्वारा छीटाया जासकता है; और इसी प्रकार जो अर्थ प्राप्त किया जाता हुआ अत्यधिक क्षय तथा व्ययको करनेवाला होता है, उसे 'आपदर्थ' कहते हैं; अर्थात् यह अर्थरूप आपत्ति कहीजाती है ॥ ५ ॥

यथा—सामन्तानामामिषभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः, शत्रुप्रार्थितो वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण विगृहीतः पुरस्ताच्छाभो, मित्रोच्छेदेन संधिव्यतिक्रमेण वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः ॥ ६ ॥

जैसे—यदुतसे सामन्तोंका भोग्यभूत पदार्थ, यदि एकही सामन्तको प्राप्त होजावे, तो वह अन्य सामन्तोंके द्वारा मिलकर लौटिये जानेके कारण आपत्तिका जनक होजाता है । इसी प्रकार सामन्त की व्यसन दशामें, उससे घनीना हुआ लाभ; स्वभावसेही प्राप्त होनेके योग्य, शत्रुके द्वारा मांगा हुआ लाभ; पश्चात्कोप (मूलस्थानमें दूष्य भादिके द्वारा उठाये हुए उपद्रव) तथा पार्ष्णिग्राह (पीछेके शत्रु) के द्वारा बाधा पहुंचाये जानेपर, यातव्य राजाले प्राप्त किया हुआ लाभ; मित्रका उच्छेदन करने तथा सन्धिको उलंघन करनेके कारण, राजमण्डलकी इच्छाके विरुद्ध प्राप्त किया हुआ लाभ; ये सबही लाभ 'आपदर्थे' होते हैं ॥ ६ ॥

स्वतः परतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः ॥ ७ ॥ तयोरर्थो न वेति, अनर्थो न वेति, अर्थोऽनर्थ इति, अनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥८॥

स्वयं या अन्य किसीसे प्राप्त हुए २ अर्थके कारण जो भयकी उत्पत्ति होती है, इसको अनर्थरूप आपत्ति कहते हैं ॥ ७ ॥ भय अर्थ और अनर्थ विषयक संशयरूप आपत्तिका निरूपण करते हैं:— १. यह अर्थ है, या नहीं? (अर्थात् अर्थके भाव और अभावको लेकर संशयका होना); २. यह अनर्थ है या नहीं? (अर्थात् अनर्थके भाव और अभावको लेकर संशयका होना); ३. यह अर्थ है या अनर्थ है? (अर्थात् अर्थ और अनर्थ विषयक संशयका होना); ४. यह अनर्थ है या अर्थ है? (इस प्रकार अनर्थ और अर्थ विषयक संशयका होना); इस तरह अर्थ अनर्थको लेकर यह चार प्रकारका संशय होता है, यह भी आपत्तिका मूल होनेसे आपत्ति कहाता है । (इनके उदाहरण क्रमशः निम्नलिखित रीतिपर समझने चाहिये) ॥ ८ ॥

शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः ॥ ९ ॥ शत्रुबल-
मर्थमानाम्भ्यामावाहयितुमनर्थो न वेति संशयः ॥ १० ॥ बल-
वत्सामन्तां भूमिमादातुमर्थोऽनर्थ इति संशयः ॥ ११ ॥ ज्या-
यसा सम्भूययानमनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥ १२ ॥ तेषामर्थ-
संशयमुपगच्छेत् ॥ १३ ॥

शत्रुके मित्रको उत्साहित करनेमें, अर्थात् शत्रुके मित्रको शत्रुके ही साथ लड़ाने के लिये तैयार करनेमें, पहिला संशय होता है। अर्थात् ऐसा करनेमें अर्थ है या नहीं? इस प्रकार का संशय होता है ॥ ९ ॥ शत्रुकी सेना को, धन तथा सहायके द्वारा बुलानेमें दूसरा संशय होता है। अर्थात् इस प्रकारसे शत्रु सेनाको बुलानेमें कोई अनर्थ तो न होजावेगा? इस तरह का संशय होता है ॥ १० ॥ बलवान् सामन्तवाली भूमिको (अर्थात् जिस भूमिका सामन्त [उस भूमिके समीप का राजा] अपनेसे बलवान् हो, उस भूमिको) लेनेमें साँसरा संशय होता है; अर्थात् ऐसा करनेमें अर्थ होगा या अनर्थ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ ११ ॥ बलवान् राजाके साथ मिलकर, यातन्त्र्य (जिस राजा पर आक्रमण किया जावे, उस) पर आक्रमण करनेमें चौथा संशय होता है। अर्थात् ऐसा करनेमें अनर्थ होगा या अर्थ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ १२ ॥ इस सब संशयोंमें से जो संशय अर्थ विषयक हो अनर्थके साथ जिसका स्पर्श भी न होता हो, ऐसे संशयके विषयमें विजिगीषु उद्योग करे ॥ १३ ॥

अर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १४ ॥ अर्थो निरनुबन्धः ॥ १५ ॥

अर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ १६ ॥ अनर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १७ ॥

अनर्थो निरनुबन्धः ॥ १८ ॥ अनर्थो ऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्ध-

पद्वर्गः ॥ १९ ॥

प्रत्येक अर्थ और अनर्थके साथ अनुबन्धका योग करने और न करने से इसके छः भेद होजाते हैं। इसको 'अनुबन्धपद्वर्ग' कहते हैं। उसके भेद इस प्रकार हैं—अर्थानुबन्ध अर्थ, निरनुबन्ध (अर्थ और अनर्थके अनुबन्धसे रहित) अर्थ, अनर्थानुबन्ध अर्थ, यह तीन प्रकारका अर्थ है; और अर्थानुबन्ध अनर्थ, निरनुबन्ध (अर्थ और अनर्थके अनुबन्धसे रहित) अनर्थ तथा अनर्थानुबन्ध अनर्थ, यह तीन प्रकारका अनर्थ है। इन दोनोंको मिला कर ही 'अनुबन्धपद्वर्ग' कहा जाता है। (किसी पुस्तकमें 'इत्यनुबन्धपद्वर्गः' के स्थानपर 'इत्यनर्थपद्वर्गः' ऐसा पाठ है; पर वह पाठ संगत नहीं मालूम होता ॥ १४ ॥ १९ ॥

शत्रुमुत्पात्य पाणिग्राहादानमर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ २० ॥

उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः ॥ २१ ॥

परस्यान्तरुच्छेदनमर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ २२ ॥

(गुणों (देखो, अधि. १, अध्या. ४, सू. ४) से युक्त अर्थके प्राप्त होनेकी सम्भावना हो, तो उस अर्थको लेनेके लिये अवश्य चला जावे। अर्थात् ऐसी अवस्थामें विजिगीषु आक्रमण करसकता है ॥ ३६ ॥ यदि दोनों ओर लाभगुण समानही हो, तो उनमेंसे जो प्रधानफल अर्थात् प्रशस्त या श्रेष्ठफलसे युक्त हो, अथवा अपने देशके समीप हो, या थोड़ेही समयमें प्राप्त होसकता हो; अथवा जिसके प्राप्त न करनेपर अपनेमें कुछ न्यूनता प्रतीत हो; उस अर्थको लेनेके लिये चला जावे; अर्थात् इस अवस्थामें विजिगीषु यानकाही अवलम्ब करे। (किसी २ पुस्तकमें 'ऊनो वा येन भवेत्' के स्थानपर 'ऊनोपायेन भवेत्' ऐसा भी पाठ है; उसका अर्थ करना चाहिये:—जहांपर थोड़ेही उपायसे अर्थकी प्राप्तिकी संभावना हो, वहां भी यानकाही अवलम्ब करे) ॥ ३७ ॥

इतो ऽनर्थ इतरतो ऽनर्थ इत्युभयतो ऽनर्थापत् ॥ ३८ ॥

तस्यां समन्ततो ऽनर्थायां च मित्रेभ्यः सिद्धिं लिप्सेत् ॥ ३९ ॥

इधरसे अनर्थ और उधरसे भी अनर्थ, इस प्रकार जब दोनों ओरसे अनर्थ कोई उत्पत्ति हो, तो उसे 'उभयतोऽनर्थापद्' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ उसमें (उभयतोऽनर्थापत्में) और समन्ततोऽनर्थापत्में मित्रोंसेही सिद्धि लाभकी इच्छा करे। अर्थात् इन दोनों आपत्तियोंका प्रतीकार मित्रोंके द्वाराही किया जासकता है ॥ ३९ ॥

मित्राभावे प्रकृतीनां लघीयस्यैकतोऽनर्था साधयेत् ॥ ४० ॥

उभयतोऽनर्थाञ्ज्यायस्या, समन्ततो ऽनर्था मूलेन प्रतिकुर्यात्

॥ ४१ ॥ अशक्ये समुत्सृज्यापगच्छेत् ॥ ४२ ॥ दृष्टा हि

जीवतः पुनरावृत्तिर्यथा सुयात्रोदयनाभ्याम् ॥ ४३ ॥

यदि मित्रोंकी सहायता न प्राप्त हो सके, तो अपनी प्रकृतियोंमेंसे छोटी प्रकृतिके द्वारा (अर्थात् किसी छोटे राजकर्मचारीके त्यागके द्वारा; अर्थात् उसे देकर) 'एकतोऽनर्थापद्' का प्रतीकार किया जासकता है ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थापद्का ज्येष्ठ प्रकृतिके द्वारा और समन्ततोऽनर्थापद्का मूलस्थानकी त्यागनेकेही द्वारा प्रतीकार किया जासकता है ॥ ४१ ॥ यदि इतनेपर भी इन आपत्तियोंका प्रतीकार न किया जासके, तो अपना सब कुछ छोड़कर चला जावे ॥ ४२ ॥ यदि पुरुष जीवित रहता है, अर्थात् विपत्तिके समय कहीं अल्पत्र लेजाकर अपने आपको सुरक्षित रखता है, तो वह फिर भी अपने स्थानको पासकता है। जैसाकि राजा नल (सुयात्र) और वासराज उदयनके जीवनसे मालूम होता है ॥ ४३ ॥

इतो लाभं इतरतो राज्याभिमर्श इत्युभयतो ऽर्थानर्थापद्म-
वति ॥४४॥ तस्यामनर्थसाधको यो ऽर्थस्तमादातुं यायात् ॥४५॥
अन्यथा हि राज्यभिमर्शं वारयेत् ॥ ४६ ॥

एक ओर से लाभ और दूसरी ओर से राज्यपर अर्थात् अपने ही
जनपदपर (किसी शत्रु आदिके द्वारा) आक्रमण किया जाना, इसको दोनों
ओर से अर्थ और अनर्थसे युक्त होनेके कारण 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' कहा जाता
है ॥ ४४ ॥ इस निरूपण आपत्तिमें, प्रहण किया जाता हुआ जो अर्थ, अनर्थका
भी प्रतीकार कर सके, उस ही को प्रहण करनेके लिये यत्न करना चाहिये
॥ ४५ ॥ यदि वह अर्थ, अनर्थका प्रतीकार करनेमें समर्थ न हो, तो उसके
लिये न जाया जावे । अर्थात् उसकी उपेक्षा करके, राज्यपर किये जाने वाले
आक्रमणका ही प्रतीकार किया जावे ॥ ४६ ॥

एतया समन्ततो ऽर्थानर्थापद्वाख्याता ॥ ४७ ॥ इतो ऽनर्थ
इतरतो ऽर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशया ॥ ४८ ॥ तस्यां पूर्व-
मनर्थं साधयेत् तत्सिद्धावर्थसंशयम् ॥ ४९ ॥ एतया समन्ततो
ऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता ॥ ५० ॥

इसके निरूपण से 'समन्तोऽर्थानर्थापद्' का व्याख्यान भी समझ
लेना चाहिये । अर्थात् 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' के प्रतीकार आदिके लिये जो
उपाय बताये गये हैं, 'समन्ततोऽर्थानर्थापद्' में भी उनका प्रयोग करना
चाहिये ॥ ४७ ॥ एक ओर से आवश्यक अनर्थका होना, तथा दूसरी ओर
से अर्थ में संशय होना, यह 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' कहती है ॥ ४८ ॥
इस आपत्तिमें पहिले अनर्थका ही प्रतीकार करना चाहिये, उसका प्रतीकार
होजानेपर फिर अर्थ संशयका प्रतीकार करना उचित होता है ॥ ४९ ॥
इसीप्रकार 'समन्ततोऽर्थानर्थापद्' का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ।
अर्थात् 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' के समान इसमें भी पहिले अनर्थका
प्रतीकार करके ही फिर अर्थसंशयके प्रतीकारके लिये यत्न करे ॥ ५० ॥

इतो ऽर्थ इतरतो ऽनर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशयापद्
॥ ५१ ॥ एतया समन्ततो ऽर्थानर्थापद्वाख्याता ॥५२॥
तस्यां पूर्वा पूर्वा प्रकृतीनामनर्थसंशयान्मोक्षयितुं यत्तेत ॥५३॥

एक ओर से अर्थ, और दूसरी ओर से अनर्थका संशय होनेपर
'उभयतोऽर्थानर्थापद्' कहा जाती है ॥ ५१ ॥ इसके समान ही 'सम-

न्ततोऽर्धोनर्थसंशयापद्' को भी समझ लेना चाहिये ॥ ५२ ॥ इनके प्रतीकारका क्रम यह है;—पहिले अनर्थ संशयको दटाकर फिर अर्थके लिये यत्न करे । स्वामी आदि प्रकृतियोंकी ओरसे ही अनर्थके होनेका संशय रहता है । स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड (सेना) और मित्र, इस क्रमसे प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है, इनमेंसे अगलीकी अपेक्षा पहिली २ प्रकृतियोंके अनर्थसंशयसे छुटनेका यत्न करे । तात्पर्य यह है कि पूर्व पूर्वकी अपेक्षा उत्तर उत्तर प्रकृति अग्रधान है; अग्रधान प्रकृतिसे होनेवाले अनर्थकी उपेक्षा करके प्रधान प्रकृतिसे होनेवाले अनर्थका ही प्रथम प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५३ ॥

श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः ॥ ५४ ॥ दण्डो वा न कोश इति ॥ ५५ ॥

मित्रकी ओरसे यदि अनर्थका संशय हो, तो वह सेनाकी ओर से होनेवाले अनर्थके संशयकी अपेक्षा अच्छा है; क्योंकि मित्र इतनी पीड़ा नहीं पहुंचा सकता, जितनी कि पीड़ा सेना पहुंचा सकती है; इसलिये सेनाकी ओरसे होनेवाले अनर्थसंशयका पहिले ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५४ ॥ तथा सेनाका भी अनर्थसंशय, कोशसे होनेवाले अनर्थसंशयकी अपेक्षा अच्छा होता है । (क्योंकि कोशके ठीक रहनेपर सेनाको फिर ठीक किया जासकता है) । इसलिये सेनाकी ओरसे अनर्थसंशयकी अपेक्षा, कोशकी ओरसे होनेवाले अनर्थसंशयका प्रथम ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५५ ॥

समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतीनामवयवान्मोक्षयितुं यत्नेत ॥५६॥
तत्र पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्तं वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम् ॥५७॥

प्रकृतियां पुरुष रूप और द्रव्य रूप होती हैं; यदि समग्र प्रकृतियोंका अनर्थ संशय एक साथ न छुड़ाया जासके, तो प्रकृतियोंके कुछ अवयवोंको ही अनर्थ संशयसे छुड़ाया जावे । अर्थात् घोडा २ करके ही अनर्थ संशयका प्रतीकार कियाजावे ॥ ५६ ॥ अवयवसे अनर्थ संशयका प्रतीकार करनेमें, पुरुष प्रकृतियोंमेंसे तीक्ष्ण और लोभी पुरुषोंको छोड़कर पहिले उनसे ही अनर्थ संशयका प्रतीकार कियाजावे, जो संस्था आदिमें बहुत हों, तथा अपनेमें कुछ अनुराग रखते हों ॥ ५७ ॥

द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा ॥ ५८ ॥ संधिनासनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैः गुरुणि ॥ ५९ ॥

द्रव्य प्रकृतियोंके बीच में अत्यधिक मूल्यवाले, तथा उपकार पहुँचाने वाले द्रव्योंको ही अनर्थसंशयापद् से छुड़ानेका यत्न करें ॥ ५८ ॥ सन्धि, आसन तथा द्वैधीभावके द्वारा लघुद्रव्योंको छुड़ानेका यत्न करें, और विग्रह, यान तथा संश्रय रूप गुणोंके द्वारा गुरुद्रव्योंके छुड़ानेका यत्न करें ॥ ५९ ॥

क्षयस्थानवृद्धिनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत ॥६०॥ प्रातिलोभ्येन वा क्षयादीनामायत्यां विशेषं पश्येत् ॥ ६१ ॥

क्षय (शक्ति और सिद्धिके अपचयको क्षय कहते हैं), स्थान (शक्ति और सिद्धिका उसी अवस्थामें रहना स्थान कहाता है), और वृद्धि (शक्ति और सिद्धिके उपचयका नाम वृद्धि है), इनमेंसे उत्तरोत्तरको प्राप्त करनेकी इच्छा करें । अर्थात् क्षयसे स्थान और स्थानसे वृद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करें ॥ ६० ॥ अथवा यदि भविष्यमें किसी वृद्धिके भतिशयकी सम्भावना हो, तो प्रतिलोभ गतिसे भी क्षय आदिकी इच्छा करें । अर्थात् वृद्धिसे स्थान और स्थानसे क्षयकी इच्छा करें । यह उसी समय है, जबकि भविष्यमें अक्षी वृद्धि होनेका निश्चय हो ॥ ६१ ॥

इति देशवस्थापनम् ॥ ६२ ॥ एतेन यात्रामध्यान्तेष्वर्थान्-
र्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६३ ॥

यहाँतक देशनिमित्तक आपत्तियोंका निरूपण कराविया गया ॥ ६२ ॥ देशनिमित्तक आपत्तियोंके स्वरूप और प्रतीकारके समान ही, यात्रा (भाग्य मण) के आदि, मध्य तथा अन्तमें होनेवाले अर्थ अनर्थ तथा संशयोंकी प्राप्ति और प्रतीकारका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ६३ ॥

निरन्तरयोगित्वाच्चार्यानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुप-
संप्राप्तुं पाष्णिग्राहासारप्रतिघातक्षयव्ययप्रवासप्रत्यादेयमूलरक्षणेपु
च भवति ॥ ६४ ॥

यदि यात्राके आदिमें, अर्थ अनर्थ संशय इमकी एक साथ ही उत्पत्ति होजावे, तो इनमेंसे अर्थका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है । पाष्णिग्राह (पृष्ठस्थित शत्रु) और आसार (यातव्यकी मित्र सेना) के प्रतिघातका साधक होनेके कारण ही अर्थकी छेष्टता सम्भवी जाती है । क्षय (घोड़े आदि सवारी तथा पुरूपोंका नाश), व्यय (घान्य हिरण्य आदिका नाश), प्रवास (दूरकी यात्रा), प्रत्यादेय (यातव्यसे लौटाने योग्य भूमि आदि अर्थात् पातन्यसे अपहरण कीहुई भूमिकी फिर वापिस करना) और मूलस्थान (राजधानी आदि) इन सवारी रक्षा करनेमें अर्थकी सहायता अत्यन्त

अपेक्षित होती है । अर्थात् इन सबकी रक्षा करनेमें अर्थ ही प्रधान कारण होता है ॥ ६४ ॥

तथानर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विपक्षो भवति ॥ ६५ ॥

एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६६ ॥

अर्थके समान ही, अनर्थ और संशय भी यदि यात्राके आरम्भमें ही हों, तो अपनी ही भूमिमें स्थित हुए २ विजिगीषुके लिये ये सुखसाध्य ही होते हैं । तापर्यं यह है, कि यात्रासे पहिले ही हुए २ अनर्थ या संशयोंका प्रतीकार, विजिगीषु अपनी भूमिमें स्थित होनेके कारण, बड़ी अच्छीतरह कर सकता है ॥ ६५ ॥ इसी तरह यात्राके मध्यमें भी अर्थ अनर्थ और संशयकी प्राप्ति तथा प्रतीकारका व्याख्यान भी समझ लेना चाहिये ॥ ६६ ॥

यात्रान्ते तु कर्शनीयमुच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्थः

श्रेयानुपसंप्राप्तं नानर्थः संशयो वा परावाधभयात् ॥ ६७ ॥

यात्राके अन्तमें तो कर्शनीय (निर्बल बनाने योग्य) तथा उच्छेदनीय (जडसे उखाडने योग्य; उच्छिन्न करने योग्य) शत्रुको, निर्बल बनाकर या उच्छिन्न करके परभूमिमें स्थित हुए २ विजिगीषुके लिये, अर्थका ही ग्रहण करना श्रेयस्कर होता है । अनर्थ या संशयका ग्रहण करना किसी तरह भी अच्छा नहीं होसकता; क्योंकि ऐसी अवस्थामें दोषान्वेषी शत्रुकी ओरसे हरसमय बाधा पहुंचानेकी सम्भावना बनी ही रहती है ॥ ६७ ॥

सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगोऽनर्थः संशयो

वा श्रेयानुपसंप्राप्तमनुबन्धगामित्वात् ॥ ६८ ॥

॥ ७१ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान्प्रतिकर्तुम् ॥ ७२ ॥ अर्थोऽनर्थ
इति धर्मोऽधर्म इति कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः ॥ ७३ ॥
तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७४ ॥ इति का-
लावस्थापनम् ॥ ७५ ॥ इत्यापदः ॥ ७६ ॥

अर्थ, धर्म और काम इनको 'अर्थत्रिवर्ग' कहा जाता है ॥ ६९ ॥
इस अर्थत्रिवर्गके बीचमें पूर्व पूर्वका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है;
अर्थात् कामसे धर्म और धर्मसे अर्थ श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ७० ॥ अनर्थ,
अधर्म, और शोक, यह 'अनर्थत्रिवर्ग' कहाता है ॥ ७१ ॥ इस अनर्थत्रिवर्ग
के बीचमेंसे पूर्व पूर्वका प्रतीकार करना कल्याणकारी है ॥ ७२ ॥ अर्थ अनर्थ,
धर्म अधर्म और काम शोक, इन तीन जोषोंको लेकर इनमें परस्पर संशय
होना 'संशयत्रिवर्ग' कहाता है ॥ ७३ ॥ इस संशयत्रिवर्गमें से उत्तरपक्षका
(अनर्थ, अधर्म, शोकका) प्रतीकार होने पर, पूर्वपक्षका (अर्थ, धर्म, काम
का) ग्रहण करना श्रेयस्कर होता है ॥ ७४ ॥ यहां तक यात्राके आदि मध्य
अन्तकालादि निमित्तक अर्थ अनर्थ आदि की व्यवस्थाका निरूपण कर दिया
गया ॥ ७५ ॥ यहां तक अर्थ अनर्थ तथा संशययुक्त सब प्रकारकी आपत्तियों
का निरूपण कर दिया गया ॥ ७६ ॥

तासां सिद्धिः—पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनु-
रूपा, पौरजानपददण्डमुख्येषु दानभेदान्यां सामन्तादधिकेषु
भेददण्डाभ्याम् ॥ ७७ ॥

अब इन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये जिन उपायों की आवश्यकता
होती है, उन उपायोंकी यथायथ व्यवस्थाका विरूपण किया जायगा.—पुत्र
भाई तथा बन्धुओंके विषयमें जिस प्रतीकारका पहिले निरूपण कर दिया गया
है, वह प्रतीकार साम और दानके अनुरूप होने पर ही उचित समझा जाता
है । अर्थात् पुत्रादि जन्य आपत्तिके प्रतीकारके लिये साम और दान उपायोंका
प्रयोग करना ही उचित है । इसी प्रकार नगर तथा जनपद विवासी पुरुषों,
सेनाओं और राष्ट्रमुख्य व्यक्तियोंमें, दान और भेद उपायोंका ही प्रयोग
करना चाहिये । तथा सामन्त और आदिकोंके विषयमें भेद और दण्ड उपा-
यों का प्रयोग करना ही उचित होता है ॥ ७७ ॥

एषानुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा ॥ ७८ ॥ मित्रामित्रेषु
व्यामित्रा सिद्धिः ॥ ७९ ॥ परस्परसाधका ह्युपायाः ॥ ८० ॥

इस नियमके अनुसार किया हुआ प्रतीकार 'अनुलोम' अर्थात् अनुकूल प्रतीकार कहा जाता है । इसमें विपर्यय होनेपर 'प्रतिलोम' अर्थात् प्रतिकूल प्रतीकार कहा जाता है ॥ ७८ ॥ मित्र तथा शत्रुओंके विषयमें मिले हुए उपायोंका प्रयोग करके ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि उपाय परस्पर एक दूसरेके सहकारी ही होते हैं । इसलिये मित्र और शत्रुओंके सम्बन्धमें जहां जैसा उचित हो, उसके अनुसार ही युयक् २ या मिलाकर उपायोंका प्रयोग करना चाहिये । ॥ ८० ॥

शत्रोः शङ्कितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति
॥ ८१ ॥ दूष्यामात्येषु दानं, सङ्घातेषु भेदः, शक्तिमत्सु दण्ड
इति ॥ ८२ ॥

शत्रुके शङ्कित अमात्योंमें (अर्थात् शत्रु जिन पर क्रोध आदि दोषाक कारण सन्देह रखता हो, और इन्हीं लिये विजिगीषु जिनको अपनी ओर फोड़ सकता हो, ऐसे अमात्योंमें) प्रयुक्त किया हुआ साम, अन्य उपायोंको निवृत्त करदेता है । अर्थात् सामसे ही काम होजाने पर दूसरे उपायोंका प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रहती ॥ ८१ ॥ इसी प्रकार शत्रुके दूष्य अमात्योंमें दान, आपसमें मिले हुए अमात्योंमें भेद, और शक्तिशाली अमात्योंमें दण्डका प्रयोग किया हुआ, शेष उपायोंको निवृत्त करदेता है । अर्थात् उपर्युक्त प्रकारके अमात्यादिमें, निर्दिष्ट एक २ उपायका प्रयोग करनेसे ही कार्यसिद्धि हो जाती है । उससे अतिरिक्त उपायोंका प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ ८२ ॥

गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति
॥ ८३ ॥ अनेनैवोपायेन नान्येनेति नियोगः ॥ ८४ ॥ अनेन
वान्येन चेति विकल्पः ॥ ८५ ॥ अनेनान्येन चेति समुच्चयः
॥ ८६ ॥

आवृत्तियोंके लघुगुरुभावके अनुसार ही, उपायोंके नियोग विकल्प तथा समुच्चय होते हैं ॥ ८३ ॥ 'इस ही उपायसे कार्य सिद्धि होसकती है, अन्यसे नहीं' इसका नाम 'नियोग' है ॥ ८४ ॥ 'इस उपायसे इस कार्यकी सिद्धि होसकती है, अथवा अन्य उपायसे भी' इसका नाम विकल्प होता है ॥ ८५ ॥ 'इस उपायसे और दूसरे उपायसे अर्थात् दोनों उपायोंसे मिलकर इस कार्यकी सिद्धि होसकती है' इसको 'समुच्चय' कहते हैं ॥ ८६ ॥

तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च ॥ ८७ ॥ द्वियोगाः षट्
॥ ८८ ॥ एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः ॥ ८९ ॥ तावन्तः
प्रतिलोमाः ॥ ९० ॥

साम आदि चार उपायोंका पृथक् २, दो २ मिलाकर तथा तीन २, और चारों
को एक साथ मिलाकर पन्द्रह तरहसे प्रयोग किया जासकता है। केवल साम,
केवल दान, केवल भेद तथा केवल दण्ड, यह चार तरहका पृथक् १ प्रयोग, और चार
तरहका ही तीन २ को मिलाकर प्रयोग; जैसे—सामदानभेद, सामदानदण्ड,
सामभेददण्ड, और दानभेददण्ड, इसतरह ये मिलाकर आठ प्रकारके प्रयोग
हुए ॥ ८७ ॥ दो दो को मिलाकर छः प्रकारके प्रयोग होते हैं; जैसे—सामदान
सामभेद, सामदण्ड, दानभेद, दानदण्ड, और भेददण्ड; पहिले आठके साथ
ये छः मिलाकर चौदह हुए ॥ ८८ ॥ साम दान भेद दण्ड इन चारोंको मिलाकर
एक प्रयोग; इसप्रकार ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रकारके प्रयोग हुए ॥ ८९ ॥
पन्द्रह प्रकारके ही प्रतिलोम उपाय होते हैं; जैसे—दण्ड, भेद, दान, साम
ये चार पृथक् २; दण्डभेददान, दण्डभेदसाम, भेददानसाम, दण्डदानसाम,
ये चार तीन २ उपायोंको मिलाकर; दण्डभेद, दण्डदान, दण्डसाम, भेददान,
भेदसाम, दानसाम ये छः दो दो को मिलाकर, तथा दण्ड आदि चारों एक
साथ; ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रतिलोम उपाय कहाते हैं ॥ ९० ॥

तेषामेकेनोपायेन सिद्धिरेकसिद्धिः ॥ ९१ ॥ द्वाभ्यां द्विसि-
द्धिः ॥ ९२ ॥ त्रिभिस्त्रिसिद्धिः ॥ ९३ ॥ चतुर्भिश्चतुःसिद्धि-
रिति ॥ ९४ ॥

इन उपायोंमें से एक ही उपायके द्वारा जो सिद्धि होजाती है, उसे
'एकसिद्धि' कहते हैं ॥ ९१ ॥ दो उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'द्विसिद्धि'
॥ ९२ ॥ तीन उपायोंसे हुई ३ सिद्धिको 'त्रिसिद्धि' ॥ ९३ ॥ तथा चार
उपायोंसे हुई ४ सिद्धिको 'चतुःसिद्धि' कहा जाता है ॥ ९४ ॥

धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा यार्थस्य
सिद्धिः सा सर्वार्थसिद्धिः ॥ ९५ ॥ इति सिद्धिः ॥ ९६ ॥

प्रतीकाररूप इन सिद्धियोंसे होनेवाले अनेक लाभोंमें से धर्म काम
और अर्थका नाशक होनेके कारण, अर्थका लाभ ही सबसे श्रेष्ठ होता है;
अर्थकी सिद्धि या लाभको ही 'सर्वार्थसिद्धि' नामसे कहा जाता है ॥ ९५ ॥
यद्वांतक सिद्धियोंका—अर्थात् प्रायसिद्धियोंके प्रतीकारपूर्वक लाभोंका—निष्कर्ष

करदिया गया । यह सब मानुषी आपत्तियोंको लेकर निरूपण किया गया है ॥ ९६ ॥

दैवादाग्निरुदकं व्याधिः प्रमारो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टि-
रित्यापदः ॥९७॥ तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपातदः सिद्धिः ॥९८॥

दैवी आपत्ति इसप्रकार समझनी चाहियें—पूर्वजन्मके सञ्चित धर्मोपार्जन के कारण होनेवाली; आमि, जल, व्याधि, महामारी, राष्ट्रविद्रव, दुर्भिक्ष, और आसुरी सृष्टि (अर्थात् चूहे इत्यादि हानिकर जन्तुओंकी अत्यधिक उत्पत्ति होजाना), ये सब दैवी आपत्तियां समझनी चाहियें ॥ ९७ ॥ इन दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार, देवता तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ही किया जा सकता है ॥ ९८ ॥

अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा यासुरी भवेत् ।

तस्यामाथर्वेणं कर्म सिद्धारम्भाथ सिद्धयः ॥ ९९ ॥

इत्याभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे अर्थानर्थसंशययुक्तास्तासामुपायविकल्प-
जाः सिद्धयश्च सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितो ऽष्टाविंशत्यतः ॥ १२८ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य आभियास्यत्कर्म

नवममाधिकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अवृष्टि (सर्वथा वर्षाका न होना), अतिवृष्टि (आवश्यकतासे अत्यधिक वृष्टिका होजाना), अथवा आसुरी सृष्टि (चूहे आदि जन्तुओंका अत्यधिक होजाना), इन सबके कारण जो आपत्ति उत्पन्न होवें, उनके प्रतीकारके लिये, अथर्ववेदमें प्रतिपादित शान्तिकर्मोंका अनुष्ठान किया जावे । तथा सिद्ध तपस्वी महारामा पुरुषोंके द्वारा प्रारम्भ कियेगये अन्य शान्तिकर्मोंको भी, इन आपत्तियोंके प्रतीकार करनेमें कारण समझना चाहिये ॥ ९९ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण समाप्त ।



सांग्रामिक दशम अधिकरण

पहिला अध्याय

१४७ प्रकरण

स्कन्धावारनिवेश ।

{ युद्धभूमिके समीप ही सेनाके आवास स्थानको 'स्कन्धावार' (छावनी) कहते हैं । उसका निवेश अर्थात् निर्माण किसतरह करना चाहिये; इस बातका निरूपण, इस प्रकरणमें किया जायगा ।

वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं
वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा भूमिवशेन वा चतुर्द्वारं पट्पथं नवसंस्थानं
मापयेयुः ॥ १ ॥ खातवप्रसालद्वाराद्वालकसंपन्नं भये स्थाने
च ॥ २ ॥

वास्तुविद्या (गृहनिर्माण आदि विद्या) में सुचतुर मनुष्योंके द्वारा प्रशंसा कियेहुए प्रदेशमें, नायक (सेनापति), वर्धकि (स्थपति=कारीगर), और मौहूर्तिक (निर्माण आदिके शुभकालका निश्चय करनेवाला ज्योतिषी) मिलकर, गोलाकार लम्बे या चौकोर, अथवा वहा जैसी भूमि हो उसके अनुसार, चार दरवाजे वाले (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओंमें एक एक दरवाजे से युक्त), छः मार्गोंसे युक्त (तीन मार्ग, पूर्वसे पश्चिम हों, और तीन ही उत्तरसे दक्षिणकी ओर हों), तथा नौ संस्थान (साक्षिवेश=अर्थात् जिसमें पृथक् २ नौ मुहल्ले से हों, ऐसे) वाले स्कन्धावारका निर्माण करावे ॥ १ ॥ खाई, नाँचेकी सफ़ील या दाग, परकोटा, एक प्रधान द्वार तथा भट्टालिकाओं (भट्टारियों) से युक्त स्कन्धावार, उसी अवस्थामें तैयार कराया जावे, जबकि शत्रुओंकी ओरसे आक्रमण होनेके भय, तथा वहा चिरकाल तक उदरनेकी सम्भावना हो ॥ २ ॥

मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं घनुःशतायाममर्धवि-
स्तारं, पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरमन्तर्वांशिकमैन्वं चान्ते निविशेत् ॥३॥

स्कन्धावारके मध्यभागसे उत्तरकी ओर, नीचे हिस्सेमें, सौ धनुष (देहो-अधि० २, अध्या० २०) लम्बा तथा इससे आधा चौड़ा, राजाका निवासस्थान बनवाया जाये। उससे पश्चिमकी ओर उसके आधे हिस्सेमें अन्तःपुर (राजाकी छिरियोंके निवासस्थान) का निर्माण कराया जाये। और अन्तःपुरकी रक्षा करनेवाले सैनिक पुरपोंका स्थान, अन्तःपुरके समीपमें ही नियत किया जाये। (किसी २ पुस्तकमें इस सूत्रके 'राजवास्तुकं' पदके स्थान पर 'राजवास्तुनिवेशं कारयेत्' ऐसा पाठ है। अर्थ में कोई भेद नहीं) ॥ ३ ॥

पुरस्तादुपस्थानं दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि वामतो राजोपवाहानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम् ॥ ४ ॥ अतो धनुःशतान्तराश्रत्वारः शकटमेथीप्रततिस्तम्भसालपरिक्षेपाः ॥ ५ ॥

राजगृहके सामनेकी ओर, राजाका उपस्थानगृह बनवाया जाये, (उपस्थानगृह उसको कहते हैं, जहाँपर बैठकर राजाके दर्शनार्थी पुरुष राजासे मिलते हैं) राजगृहसे दाहिनी ओर कोश (राजाके जगह), शासन-करण (अक्षपटल=भाय व्यप आदिका प्रधान कार्यालय=सेक्रेटरियेट), तथा कार्यकरण (कार्योंके निरीक्षण करनेका स्थान), इन स्थानोंका निर्माण कराया जाये। और राजगृहसे बाईं ओर, राजाकी सवारीमें काम आने वाले हाथी घोड़े तथा रथोंके लिये स्थान बनवाया जाये ॥ ४ ॥ राजगृहसे दूरीपर चारों ओर, उसकी रक्षाके लिये चार बाड़ लगाई जायें; इनमें से पहिली बाड़ शकट अर्थात् गादियोंकी होनी चाहिये; दूसरी बाड़, काठोंसे लकी हुई वकी शाखाओंकी; तीसरी मजबूत लकड़ीके खम्भों या फटोंकी; और चौथी मजबूत चिनी हुई परकोटेके दंभकी बाड़ होनी चाहिये। प्रत्येक बाड़का आपसमें सौ सौ धनुषका फासला होये। इसप्रकार सौ सौ धनुषके फासलेपर ये चार प्रकारकी बाड़, राजगृहके चारों ओर उसकी रक्षाके लिये होनी चाहियें ॥ ५ ॥

प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसंच, वामतः कुप्यायुधागारम् ॥ ६ ॥ द्वितीये मौलभृतानां स्थानमश्वरथानां सेनापतेश्च ॥ ७ ॥ तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च ॥ ८ ॥

पहिली बाड़के बीचमें सामनेकी ओर मन्त्रियों और पुरोहितोंके स्थान बनवाये जायें। दाहिनी ओर कोष्ठागार (धनुषभण्डार) और महानस (पादपाछा=रथोंकेपर) बनवाया जाये। तथा बाईं ओर कुप्यागार (कोश

तांवा लकड़ी चनड़ा आदि रखनेका स्थान) और आयुधागार (हथियार रखनेका स्थान) बनवाया जावे ॥ ९ ॥ दूसरी बाहू भर्षात् घेरेके बीचमें मौल भूत आदि सेनाओंके स्थान; हाथी और घोड़े तथा सेनापतिके स्थानका निर्माण कराया जावे ॥ ७ ॥ तीसरे घेरेमें हाथी, श्रेणौवल तथा प्रशास्ता (कण्टकशोधनाध्यक्ष) आदिके स्थान बनवाये जावें ॥ ८ ॥

चतुर्थे विष्टिर्नायको मित्रामित्राटवीवलं स्वपुरुषाधिष्ठितम्
॥ ९ ॥ वणिजो रूपाजीवाश्वानुसहापथम् ॥ १० ॥ ब्राह्मतो
लुब्धकश्चगाणिनः सतूर्यामयः गूढाश्चारक्षाः ॥ ११ ॥

बीधे घेरेमें विष्टि (कर्मचारीवर्ग=सेवकवर्ग), नायक (दत्त सेना पतियोंका एक प्रधान अधिकारी), और अपने ही किसी पुरुषसे अधिष्ठित (अर्थात् अपने पुरुषके ही नेतृत्वमें; गिनका अधिकारी अपना ही आदमी हो, ऐसी) मित्र सेना, शत्रु सेना तथा आठविक सेनाके लिये स्थान बनवाये जावें ॥ ९ ॥ स्थापारी घनिये और वेष्टयाओंके लिये बड़े बाजारके साथ ही स्थान बनवाये जावें ॥ १० ॥ वहेलिये शिकारी, ब्राजे तथा भूमि आदिके इन्तारेसे शत्रुके आगमनको घतलाने वाले, और ग्वाले आदिके घेष्टमें छिपे तौरपर रहने वाले रक्षक पुरुषोंको सबसे बाहरकी ओर रखला जावे ॥ ११ ॥

शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत् ॥ १२ ॥
अष्टादशवर्गणामारक्षविपर्यासं कारयेत् ॥ १३ ॥ दिवायामं च
कारयेदपसर्पज्ञानार्थम् ॥ १४ ॥

जिस मार्गसे शत्रुओंके भानेकी सम्भावना हो, उस मार्गमें कुछ छिपेहुए घोखेके गढ़ों (नीचे गड़े खोदकर ऊपर घास आदिसे ढक देना) को खोदकर और कांटों या लोहेकी कीलोंसे युक्त तख्तोंको जमीनपर बिछाकर शत्रुके रोकनेका प्रबन्ध किया जावे ॥ १२ ॥ पहरेके लिये भर्षात् हरसमयकी रक्षाके लिये, अठारह वर्गोंका पर्यायसे आयोजन करे। तात्पर्य यह है, मौल भूत आदि छः प्रकारकी सेना होती है (देखो-अधि० ९, अख्या० २, सूत्र १), प्रत्येक सेनाके तीन २ अधिकारी होते हैं-पदिक सेनापति और नायक; इसप्रकार प्रत्येक सेनाके अपने २ अधिकारीकी अधीनतामें तीन २ वर्ग होकर, छः प्रकारकी सेनाओंके अठारह वर्ग होजाते हैं; इनको बदल २ कर रक्षाके लिये निपुण करें; क्योंकि ऐसा करनेसे शत्रुके द्वारा उपजाय

किये जानेका भय नहीं रहता ॥ १३ ॥ शत्रुके गुप्तचरोंको जाननेके लिये दिनरातमें अपने भादमियोंके इधर उधर घूमनेका भी नियम करे ॥ १४ ॥

विवादसौरिकसमाजवृत्तवारणं च कारयेत् ॥ १५ ॥ मुद्रा-
रक्षणं च ॥ १६ ॥ सेनानिवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालोऽनुव-
ध्नीयात् ॥ १७ ॥

आपसके झगड़े, शराब आदि पीने, गोष्ठी करने, तथा जुभा आदि खेलनेसे, सैनिकोंको सर्वथा रोकदेवे ॥ १५ ॥ छापनीके बाहर भीतर आने जानेके लिये; राजकीय मुहरका बड़ा कड़ा प्रबन्ध रखे। तात्पर्य यह है, कि जिनके पास ख़ास शाही पास हो, उन्हींको बाहर भीतर आने जाने दिया जावे; ॥ १६ ॥ राजाकी लिखित आज्ञा लिये बिना ही युद्ध भूमिसे भागकर वापस लौटेहुए सैनिक पुरखोंको शून्यपाल (राजासे रहित राजधानीकी रक्षा करने वाला अधिकारी) गिरफ्तार करलेवे। (किसी पुस्तकमें 'शून्यपाल' के स्थानपर 'अन्तपाल' भी पाठ है) ॥ १७ ॥

पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च ।

यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥ १८ ॥

इति सांप्रामिके दशमेऽधिकरणे एकन्धावारनिवेशः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अद्वित एकोनत्रिंशच्छतः ॥ १२९ ॥

प्रशास्ता (कण्टकशोधनाध्यक्ष), सेना आदिके सहित राजाके प्रस्थान करनेसे पहिले ही, शिल्पी तथा कर्मकर पुरखों या उनके अध्यक्षोंके साथ चलाजाये; और मार्गकी दरतरहसे रक्षाका, तथा आवश्यक स्थानोंमें जल आदिका अच्छीतरह प्रबन्ध करे। (मार्गकी रक्षाका तात्पर्य—मार्गके ऊंचे नीचे स्थानोंको घराबर कराना, फाटे आदिको साफ़ कराना, तथा हानिकर, हिसक प्राणियोंको दूर भगाने आदिसे है। किसी पुस्तकमें 'रक्षणानि' की जगह 'प्रदणानि' पाठ भी है; पर यह पाठ कुछ संगत नहीं मालूम होता) ॥ १८ ॥

सांप्रामिक दशम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१४८-१४९ प्रकरण

स्कन्धावारप्रघाण; तथा बलव्यसन और अवस्कन्दकालसे सेना की रक्षा ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें स्कन्धावारका और सेना सहित राजाके प्रस्थानका निरूपण किया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें अमानित विमानित आदि सेना सम्बन्धी व्यसनोंसे तथा लम्बा रास्ता या घने जंगल आदिमें चलनेके कष्टोंसे अपनी सेनाको बचानेके उपायोंका निरूपण किया जायगा ।

ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसं-
ख्याय स्यानासनगमनकालं च यात्रां यायात् ॥ १ ॥ तत्रप्रती-
कारद्विशुणं भक्तोपकरणं वाहयेत् ॥ २ ॥ अशक्तो वा सैन्येष्वेव
प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ अन्तरेषु वा निचिनुयात् ॥ ४ ॥

ग्राम अर्थात् आवादीके गाँवोंमें ठहरनेके योग्य स्थानोंका घास लकड़ी तथा जल आदिके अनुसार निर्णय करके; और उन स्थानोंमें पहुंचने ठहरने तथा चलने आदिके समयका पहिलेसेही ठीक २ निर्णय करके, फिर यात्राके लिये जाया जावे । अर्थात् विजिगीषु, इन सब बातोंको, आक्रमण करनेसे पहिले निश्चय करलेवे । (नयचन्द्रिका व्याख्याकार माधववज्राने इस सूत्रके 'स्थान' 'आसन' और 'गमन' शब्दोंका अर्थ निम्नलिखित रीतिसे किया है:—किसी नियत स्थानपर दो तीन महीने तक ठहरना 'स्थान', पाँच छः दिनतक ठहरना 'आसन' और केवल एक रातके लियेही ठहरना 'गमन' कहाता है) ।

॥ १ ॥ उस यात्रामें, जितने खाने पीनेके सामान और वस्त्र आदि की आवश्यकता हो, उससे दुगना लेजावे ॥ २ ॥ यदि इतना सामान सवारियोंपर ढोकर न लेजाया जासके, तो थोड़ा २ सामान सैनिक पुरपोंको देदेवे ॥ ३ ॥ अथवा बीचमें ठहरनेके लिये नियत हुए २ प्रदेशोंमेंही, इन सब सामानोंका संग्रह करवावे ॥ ४ ॥

पुरस्तान्नायकः ॥ ५ ॥ मध्ये कलत्रं स्वामी च ॥ ६ ॥
पार्श्वयोरश्वा वाहूत्सारः ॥ ७ ॥ चक्रान्तेषु हस्तिनः ॥ ८ ॥
प्रसारवृद्धिर्वा सर्पतः ॥ ९ ॥ वनाजीवः प्रसारः ॥ १० ॥ स्वदे-

शादन्वायतिर्षीवधः ॥ ११ ॥ मित्रवलमासारः ॥ १२ ॥ कल-
त्रस्थानमपसारः ॥ १३ ॥ पश्चात् सेनापतिः पर्यायान्निविक्षेत्
॥ १४ ॥

सेनाके सबसे भगले हिस्तेमें नायक (इस सेनापतियोंके प्रधान अधिकारी) को बलना चाहिये ॥ ५ ॥ बीचमें अन्तःपुर तथा राजा चले ॥ ६ ॥ इधर उधर वाजुओंमें, अपनी वाजुओंसे ही शत्रुके आघातको रोकने वाली घुड़मवार सेना चले ॥ ७ ॥ सेनाके पीछेके भागमें हाथी चले ॥ ८ ॥ प्रसार अर्थात् भय और घात भूया आदि बहुत अधिक सामान, सब औरसे लेनाया जाये ॥ ९ ॥ जंगलमें उतरा होवे वाली, लामीडिका योग्य (जंग तथा घास मूला आदि) वस्तुओंको 'प्रसार' कहते हैं ॥ १० ॥ अपने ही देशमें, अथवा आदि शत्रुओंके लगातार चले जानेको, 'बीवध' कहते हैं ॥ ११ ॥ मित्रकी सेनाको 'आसार' कहा जाता है ॥ १२ ॥ कलत्र अर्थात् अन्तःपुर (राज्यों) के इधरनेके स्थानको 'अपसार' कहते हैं ॥ १३ ॥ सबसे पीछेके हिस्सेमें सेनापति, पर्यायसे अर्थात् अपनी २ सेनाके पीछे, नियत रहे । तात्पर्य यह है कि प्रत्येक सेनापति अपनी सेनाके पीछेके भागमें मिलकर चले ॥ १४ ॥

पुरस्तात् अभ्याभावे मकरेण यायात्पश्चाच्छकटेन पार्श्वयो-
र्वज्रेण समन्ततः सर्वतोभद्रेणैकायने सूच्या ॥ १५ ॥

यदि सामनेकी ओरसे शत्रुके आक्रमण करनेकी सम्भावना हो, तो मकराकार (मकरके मुखके समान आकृति रखने वाला, देखो-अधि० १०, अध्या० ६) ब्यूहकी रचना करके शत्रुकी ओर चले । यदि पीछेकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी सम्भावना हो, तो शकटब्यूह बनाकर ही आगे बढ़े । यदि इधर उधर वाजुओंकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी सम्भावना हो, तो वज्रब्यूह बनाकर आगे बढ़े । इसी प्रकार चारों ओरसे आक्रमणकी सम्भावना होनेपर सर्वतोभद्र ब्यूहके द्वारा आगेको चले; यदि मार्ग इतना संघ हो, कि उससे एक समयमें एक ही एक आदमी जासके, तो सूचीब्यूह बनाकर आगे की ओर चले । (इन सब ब्यूहोंका निरूपण इसी अधिकरणके छठे अध्यायमें देखिये) ॥ १५ ॥

पथि द्वैधीभावे स्वभूमितो यायात् ॥ १६ ॥ अभूमिष्ठानां
हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोभा भवन्ति ॥ १७ ॥ योजनमधमा
मध्यर्धं मन्थमा द्वियोजनमुत्तमा संभाव्या वा गतिः ॥ १८ ॥

यदि मार्गमें किसी तरहकी द्विविधा हो, अर्थात् कोई मार्ग अपने अनुकूल या प्रतिकूल हो, जो उनमें से जो मार्ग अपने हाथी घोड़े रथ और पैदल सेनाके लिये ठीक पड़े, उसी मार्गसे होकर जावे ॥ १९ ॥ क्योंकि युद्धके अवसर पर, अनुकूल मार्गसे न चलने वाले राजाओंके छे भाङ्गमणीय नहीं होते, जो कि अपने अनुकूल ही मार्गसे गमन करते हैं । तात्पर्य यह है कि प्रतिकूल मार्गसे चलने वाले राजा, अनुकूल मार्गसे चलने वाले राजाओं पर भाङ्गमण नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ अथ यह बताते हैं, कि एक दिनमें कितना रास्ता चलना चाहिये;—प्रतिदिन एक योजन (चार कोसका एक योजन होता है) चलना अधम गति कहाती है । वेद योजन चलना मध्यम गति, और दो योजन प्रतिदिन चलना, उत्तम गति कहाती है । अथवा हर एक सुभितके साथ, प्रतिदिन जितना सम्भव होसके, उतना ही चले ॥ १८ ॥

आश्रयकारी संपन्नघाती पार्श्विणरासारो मध्यम उदासीनो
वा प्रतिकर्तव्यः ॥ १९ ॥ सङ्कटो मार्गः शोधयितव्यः ॥ २० ॥
कोशो दण्डो मित्रामित्राटवीबलं विष्टिर्ऋतुर्वा प्रतीक्ष्याः ॥ २१ ॥

विजिगीषु जब यह सोचे, कि मैं अपनी उन्नतिके लिये किसीको अपना आश्रय बनाऊगा, अथवा धन धान्य आदिके समृद्ध शत्रुके दलको नष्ट करूंगा, अथवा पार्श्विणराह (पृष्टस्थित शत्रु), आसार (मित्रबल), मध्यम (शत्रु और विजिगीषुके देशोंके बीचमें रहने वाला सामन्त), और उदासीन राजा का प्रतिकार करूंगा, अर्थात् इनके क्रोध को शान्त करूंगा; तो धीरे २ यात्रा करे । (इन सूत्रोंका अन्वय २२वें सूत्रके 'इति शनैर्यायात्' इस पदके साथ कर लेना चाहिये) ॥ १९ ॥ अथवा ऊपरदुखावड़ (सङ्कट=विषम) रास्तेको साफ करना है, यह सोचकरभी धीरे २ जावे ॥ २० ॥ अथवा जब कोश (धन संग्रह), दण्ड (अपनी सेना=अर्थात् बिलखी हुई सेनाको मिलाता चाटे), मित्र सेना, शत्रु घेना, आटविष्ट सेना, विष्टि (कमेंकर पुरुष) और अपनी सेनाके अनुकूल ऋतु की प्रतीक्षा करनी हो, तो भी धीरे २ ही जावे ॥ २१ ॥

कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाक्षयः क्षीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेद-
श्वागमिष्यति, उपजापितारो वानातित्वरयन्ति, शत्रुरभिप्रायं वा
पूरयिष्यतीति शनैर्यायात् ॥ २२ ॥ विपर्यये शीघ्रम् ॥ २३ ॥

अथवा जब यह सम्भावना हो, कि शत्रुके अपने दुर्गकी पहिले कहिहुँ मरम्मत नष्ट होजायगी, उसके संगृहीत धान्य आदिका भी नाश होजायगा, तथा रक्षा (रक्षा सम्बन्धी प्रयन्ध) का भी नाश हो जायगा; धन देकर अपने बन्दों की हुँद सेना विजय होजायगी (अर्थात् शत्रुसे उसकी यह सेना विरक्त होजायगी), और मित्रकी सेना भी विरक्त हो जायगी, तबभी धीरे २ ही यात्रा करे । अथवा जब यह समझे कि शत्रुके उपजपिता पुरप अभी शीघ्रता नहीं कर रहे हैं, अथवा शत्रु, युद्धके बिना ही विजिगीपुके अभिप्रायको पूरा करदेगा, तबभी धीरे २ ही यात्रा करे ॥ २२ ॥ और इन उपर्युक्त अवस्थाओं से विपरीत अवस्था होने पर शीघ्र ही यात्रा करे ॥ २३ ॥

हास्तिस्तम्भसंक्रमसेतुवन्धनौकागृवेषुमह्यतैरलायुचर्मकरण्डट-
तिष्ठवगण्डिकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत् ॥ २४ ॥

अथ इस वातका निरूपण करते हैं, कि सेनाएं नदी आदिको किन साधनों से पार करे.—हाथो, स्तम्भ संक्रम (नदीमें खंभे गाड़कर और उनपर फटे आदि रखकर), सेतुवन्ध (पुल आदि बांधकर), गाव, लकड़ी तथा बांसोंके बेड़े बनाकर; तूँबी, चर्मकाण्ड (चमड़ेसे मड़ा हुआ, बांसके डिलकों से बनाया गया एक खोल्ला पात्रविशेष), दति (मरुतः=पीकनीके समान बना हुआ चमड़े का एक तैरनेका साधन), प्लव (मोमजामे आदि कपड़ेका, तकियेके गिलाफके समान बना हुआ, इसको फूंकसे भरकर फिर तैरनेके काम में लाया जाता है), गण्डिका (काग नामकी लकड़ीके बने हुए तैरनेके विशेष साधन), और वेणिका (मजबूत रुतियां), आदि साधनोंके द्वारा सेनाएं जलोंको पार करें ॥ २४ ॥

तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो रात्रायुत्तार्थं सत्तं गृहीयात्
॥ २५ ॥ अनुदके चक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन शक्त्योदकं
वाहयेत् ॥ २६ ॥

नदी आदिसे पार उतारनेके घाटोंको यदि शत्रुने रोकवा हुआ हो, या रोकने की सज शक्ती हो, तो हाथी और घोड़ोंके द्वारा, बिना ही घाटके दूसरी जगहोंसे, रात्रिमें ही अपनी सेनाको पार उतार कर, विजिगीपु, सद्य (बृट युद्ध विकल्प प्रकरणमें इसका निरूपण किया जायगा, देखो—अधि० १०, अध्या० ३) का ग्रहण करे ॥ २५ ॥ जिस प्रदेशमें जल न हो, वहाँपर, गाड़ी तथा बैल आदि चौपायोंके ऊपर, उतारे मार्गके लिये पर्याप्त जल, शक्तिके अनुसार छेनाये । इस प्रकार गद्दीतकम्कम्धावारप्रयाणका निरूपण परदिवा गया ॥ २६ ॥

दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कुच्छ्राध्वानम-
भियोगप्रस्कन्नं क्षुत्पिपासाध्वकलान्तं पङ्क्तोयगम्भीराणां वा
नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने व्यासक्तमेकायनमार्गे शैलाविपमे
सङ्कटे वा बहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते विसंनाहं भोजनव्यासक्त-
मायतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधिमरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधितपच्य-
श्चाद्रूपमभूमिष्ठं वा बलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत् ॥ २७ ॥ पर-
सैन्यं चाभिहन्यात् ॥ २८ ॥

विजिगीषु लम्बा रास्ता तै करने वाली तथा जंगलमें टोकर सफर करने
वाली अपनी सेना की रक्षा करे । (इस सूत्रके अन्तिम पद 'स्वसैन्यं रक्षेत्'
का प्रत्येक वाक्यके साथ अन्वय समझना चाहिये) मार्गमें जल प्राप्त न करने
वाली सेना की भी, विजिगीषु रक्षा करे । इसी प्रकार घास भूसा (गौतम-
यवस) ईंधन और जलसे हीन (दूसरी चार जलका प्रदण उसकी प्रधानता
घोतन करनेके लिये किया गया है), कठिन मार्गमें चलने वाली; धिरकालसे
सुकाबला करनेके कारण खिन्न हुई २, भूख प्यास और सफर के कारण बेचैन
हुई २; भारी दलदल, गहरे जल, नदी, गुफा और पर्वताके पार करने तथा
चढ़ने उतरनेमें लगी हुई; एक हीके जाने योग्य संग मार्गमें, पधरीले पहाड़ी
विपन्न स्थानमें या इस प्रकारके पहाड़ी किलेमें एकही हुई २; उहरने तथा
यात्राके समयमें हथियार और कवच भादिले रहित, भोजनमें लगी हुई; लंघा
सफर करनेसे थकी हुई; मीन लेती हुई; उबर आदि रोग, संक्रामक महामारी
तथा दुर्भिक्षसे पीडित हुई २; बीमार, पैदल हाथी और घोड़ोंसे युक्त, (अर्थात्
जिस सेनाके सिपाही और हाथी घोड़े बीमार होगये हों, ऐसी); अपने युद्ध
के अनुरूप भूमिमें न ठहरी हुई; अथवा युद्धके समयमें सैनिक आपत्तियोंसे
युक्त अपनी सेना की, विजिगीषु हर तरफसे रक्षा करे ॥ २७ ॥ तथा
इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त हुई २ शत्रुकी सेना को नष्ट भ्रष्ट कर डाले, अर्थात्
मार डाले ॥ २८ ॥

एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानिश्चारप्रासाहारशय्याप्रस्ताराग्नि-
निधानध्वजायुधसंख्यानेन परबलज्ञानं, तदात्मनो गूहयेत् ॥ २९ ॥

शत्रुके साथ सन्धि या लड़ाई करनेमें, उतड़ी सेना का परिमाण
जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये उसके परिमाणके जानने का ढंग
बताया जाता है;—जब शत्रु, एकके ही जाने योग्य संग रास्तेसे, जारहा हो,

इस समय वहाँसे निकलते हुए उसके सैनिक पुरुषोंके गिननेसे; हाथी आदि की मोक्ष सामग्री की गणना करनेसे; उनके सोनेके स्थानों की गिनती से, भोजन पकानेके चूड़ों की गणना करनेसे, ध्वजा (झण्डियाँ=पताकाएँ) तथा हथियारों की गिनती करनेसे; शत्रुकी सेना की इयत्ता का (अर्थात् शत्रुकी इतनी सेना है, इस बातका) पता लगा लेना चाहिये । और अपनी सेना की इयत्ता का पता दे देने वाले इन साधनों को छिपा देवे, भयचा नष्ट कर देवे ॥ २९ ॥

पार्वतं वा नदीदुर्गं सापसारप्रतिग्रहम् ।

स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युध्येत निविशेत च ॥ ३० ॥

इति सांग्रामिके दशमे अधिकरणे रक्तधावारप्रमाणं, पलम्पसनाथरक्तन्दकाल-
रक्षणं च द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ आदित्यखिलाच्छतः ॥ १३० ॥

अपसार (पराजय होनेपर भागजानेकी जगहको ' अपसार ' कहते हैं) और प्रतिग्रह (आक्रमण करतीहुई शत्रुकी सेनाको गिरफ्तार करनेकी जगहका नाम ' प्रतिग्रह ' है) से युक्त (अर्थात् जिनमें अवसरपर भागने और शत्रुकी सेनाको पकड़नेका काफी सुभीता हो, ऐसे) पार्वतदुर्ग (पहाड़ी किले, देखो-अधि० २, अध्या० ३, सूत्र २,) और नदीदुर्गको अच्छी तरह तैयार करके, अपने लिये सर्वथा अनुकूल, भूमिमें ही उतरकर युद्ध करे; अथवा चिन्ता रहित होकर वासकरे ॥ ३० ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त

तीसरा अध्याय

१५०-१५२ प्रकरण

कूटयुद्ध के भेद, अपनी सेना का प्रोत्साहन, तथा
अपनी और पराई सेना का व्यवस्थापन ।

{ इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें कूटयुद्धके
किसेजाने वाले युद्धों का निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें
प्रकृतयुद्धके समय अपनी सेनाओं को प्रोत्साहन देनेके सम्बन्धमें
निरूपण किया जायगा । तथा तीसरे प्रकरणमें शत्रुकी सेनाकी
अपेक्षा अपनी सेनाकी विशेष व्यवस्था अर्थात् विशेष ध्युद्धरचना
आदिके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा ।

बलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहितकर्तुः स्वभूम्यां प्रकाश-
युद्धमुपेयात् ॥ १ ॥ विपर्यये कूटयुद्धम् ॥ २ ॥

यही बहादुर और अधिक सेनासे युक्त, शत्रुपक्षमें उपजाप करनेके
लिये समर्थ, युद्धयोग्य समयको अपने अनुकूल बनाने वाला विजिगीषु, अपनी
भूमिमें अर्थात् अपने अनुकूल प्रदेशमें प्रकाशयुद्ध करना स्वीकार करे । तत्पर्य
यह है, कि प्रकाशयुद्ध करनेके लिये, विजिगीषुको इसप्रकार शक्तिशाली होना
अत्यन्त आवश्यक है ॥ १ ॥ यदि अवस्था इसके विपरीत हो, तो कूटयुद्ध
ही करना चाहिये ॥ २ ॥

बलव्यसनावस्कन्दकालेषु परममिहन्यात् ॥ ३ ॥ अभूमिष्ठ
वा स्वभूमिष्ठः ॥ ४ ॥ प्रकृतिप्रग्रहो वा स्वभूमिष्ठं दृष्यामिश्रा-
टवीवलैर्वा भङ्गं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात् ॥ ५ ॥ संहतानीकं
हस्तिभिर्भेदयेत् ॥ ६ ॥

अमानित विम नित आदि, देखो-अधि० ८, अध्या० ५, सू० १, २।
सेना सम्बन्धी वस्तुओंमें आनेपर, या लम्बा सफर जङ्गलका सफर तथा जल
आदिके न मिलनेसे सेनापर कष्ट आनेकी अवस्थामें; शत्रुके ऊपर आक्रमण
किया जाय । अर्थात् जब शत्रुकी सेनाकी उपर्युक्त अवस्था हो, तब उस पर आ-
क्रमण किया जावे ॥ ३ ॥ अथवा शत्रुकी स्थिति युद्धके प्रतिकूल होनेपर, और
अपनी स्थिति युद्धके अनुकूल होनेपर, विजिगीषु शत्रुके ऊपर आक्रमण करे
॥ ४ ॥ अथवा शत्रुकी अमाश्व आदि प्रकृतिको उरजापके द्वारा अपने बलमें
करनेवाला विजिगीषु, युद्धके अनुकूल प्रदेशमें स्थित हुए २ भी शत्रुपर
आक्रमण कर देवे । अथवा अपनी दृष्यसेना, शत्रुसेना और आटाधिक सेनाके
द्वारा पराजय देकर, अनुकूल भूमि समझकर (वस्तुतः प्रतिकूल भूमिमें ही)
अपने विजयके विश्वाससे भागे हुए शत्रुको, मार डाले ॥ ५ ॥ अपनी अनुकूल
भूमि में, मिलकर ठहरी हुई शत्रु सेनाको दामियोंके द्वारा विभक्त कर देवे ॥ ६ ॥

पूर्वं भङ्गप्रदानेनानुम्लीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिष्ठृत्य हन्यात्
॥ ७ ॥ पुरस्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो हस्त्यश्वेनाभि-
हन्यात् ॥ ८ ॥ पृष्ठतोऽभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पुरस्ता-
त्सारबलेनाभिहन्यात् ॥ ९ ॥

पहिले पराजयके कारण विभक्त भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाको, रवयं इकट्ठी
हुई २ (अभिप्रम्) विजिगीषुकी सेना कौटकर फिर मारे ॥ ७ ॥ सामने

की ओरसे आक्रमण करनेके कारण छिन्न भिन्न हुई २, अथवा विमुख हुई २ शत्रुकी सेनाको, पीछेकी ओरसे हाथी और घोड़ोंके द्वारा नष्ट करे ॥ ८ ॥ तथा पीछेकी ओरसे आक्रमण करनेके कारण छिन्न भिन्न हुई २, या उलटी भागी हुई शत्रुकी सेना को, सामनेकी ओरसे महादुर सेनाके द्वारा नष्ट करे ॥ ९ ॥

ताभ्यां पार्श्वभिघातौ व्याख्यातौ ॥ १० ॥ यतो वा दृष्य-
फलगुवलं ततो ऽभिहन्यात् ॥ ११ ॥

आगेकी ओर और पीछेकी ओरसे किये जानेवाले आक्रमणोंके अनु-
सार ही, इधर उधर शत्रुओंकी ओरसे किये जानेवाले आक्रमणोंका भी
व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥ अथवा जिस ओर शत्रुकी दृष्य वा
निर्बल सेना हो, उसी ओरसे शत्रुपर धावा मारे ॥ ११ ॥

पुरस्ताद्विपमायां पृष्ठतो ऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥ पृष्ठतो विप-
मायां पुरस्तादभिहन्यात् ॥ १३ ॥ पार्श्वतो विपमायामितरतो-
ऽभिहन्यात् ॥ १४ ॥

यदि सामनेकी ओरसे आक्रमण करना अपने अनुकूल न पड़े, तो
पीछेकी ओर से ही आक्रमण करे ॥ १२ ॥ इसीप्रकार पीछेकी ओरसे आक्र-
मण की अनुकूलता न होनेपर, सामनेसे ही आक्रमण करे ॥ १३ ॥ इधर उधर
पार्श्वभागोंसे आक्रमणकी अनुकूलता न होनेपर, दूसरी ओरसे आक्रमण करे ।
(इन सब सूत्रोंमें आक्रमणकी अनुकूलता पृथिवी के आधारपर ही बताई गई
है । अर्थात् जिस ओर भूमि ऊबड़खाबड़ हो, उस ओरसे आक्रमण न करे,
किन्तु उसके दूसरी ओरसे आक्रमण करे, जिससे कि शत्रुकी सेना, उलटी
भागकर उस विपम भूमिमें फस जाये, और फिर उसको सरलतासे ही नष्ट
किया जासके ॥ १४ ॥

दृष्यामित्राटवीवैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परम-
भिहन्यात् ॥ १५ ॥ दृष्यबलेन वा स्वयं भङ्गं दत्त्वा जितमिति
विश्वस्तमविश्वस्तः सत्रापाथयो ऽभिहन्यात् ॥ १६ ॥

अथवा पहिले अपनी दृष्यसेना, शत्रुसेना तथा आटाविक सेनाके साथ
शत्रुका मुकाबला कराके उसे खूप अच्छी तरह धकाकर, फिर अपने आप न धका
हुआ ही विजिगीषु स्वयं, शत्रुपर आक्रमण करे ॥ १५ ॥ अथवा पहिले दृष्यबल
के साथ छड़ाकर स्वयं ही उसको पराजय देकर (अर्थात् अपने दृष्यबलके
पराजित होजानेपर), जब शत्रुको इत घातका विश्वास होजाय, कि मैंने

विजिगीषुको जीत लिया है; सब स्वयं उसका विश्वास न करता हुआ सत्रका आश्रय लेकर ('सत्र' का निरूपण इसी अध्यायके २५ वें सूत्रमें किया जायगा) शत्रुपर आक्रमण करदेवे ॥ १६ ॥

सार्धैर्ब्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तो ऽभिह्न्यात्
॥ १७ ॥ फल्गुबलावच्छन्नः सारवलो वा परवीराननुप्रविश्य
ह्न्यात् ॥ १८ ॥ गोप्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य
सत्रच्छन्नो ऽभिह्न्यात् ॥ १९ ॥

व्यापारी समूह, गौओंके समूह तथा छावनियोंकी रक्षा करनेमें, और इनके लुटने की अवस्थामें भी प्रमादी बने हुए शत्रुको, प्रमाद रहित विजिगीषु नष्ट कर देवे । तात्पर्य यह है, कि जब शत्रु प्रमादी बना हुआ हो, उस समय प्रमादहीन विजिगीषु उसपर आक्रमण कर देवे ॥ १७ ॥ भयवा बाहर की ओर अपनी निर्बल सेनाको लगाकर और बीचमें बहादुर सेनाको रखकर विजिगीषु, शत्रुके वीर सैनिकोंमें घुसकर उन्हें नष्ट कर देवे ॥ १८ ॥ भयवा शत्रुके देशमें गाय आदि पशुओंका अपहरण करने और व्याघ्र बराह आदि जङ्गली पशुओंका शिकार करनेसे, शत्रुके वीर पुरुषोंको अपनी ओर लुलाकर अर्थात् उसका प्रतीकार करनेके लिए उद्यत होकर अपनी ओर खिंचे पुरुषोंको, सत्रमें छिपकर मार डाले । इसतरह धोखेसे उन्हें अपनी ओर लाकर नष्ट कर डाले ॥ १९ ॥

रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान्वा दिवा
ह्न्यात् ॥ २० ॥ सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दधात्
॥ २१ ॥ अहःसनाहपरिश्रान्तानपराङ्घे ऽभिह्न्यात् ॥ २२ ॥

रात्रिमें ऊपर उधर लड़मार वा मारघाट करके, उन्हें भयके कारण जगाकर, रातमें निद्रा न आनेसे बेचैन हुए २, इसीलिए शत्रुके सोये हुए वीर पुरुषोंको दिनमें मार डाले । तात्पर्य यह है, कि रातमें कुछ न कुछ उपद्रव करके उन्हें सोने न देवे, और जब वे दिनमें सोवें, तो बचसर पाकर उन्हें नष्ट कर डाले ॥ २० ॥ चमड़ेका खोल पैरोंपर लगे हुए (अर्थात् जिनके पैरों पर चमड़ेका खोल लगा दिया गया हो, ऐसे) हाथियोंके द्वारा, सोते हुए पुरुषोंपर आक्रमण कर दिया जावे ॥ २१ ॥ दिनमें दोपहरसे पहिले कवायद आदि करनेके कारण अच्छी तरह थके हुए पुरुषोंका, दोपहरके बाद यथ क्रियासे ॥ २२ ॥

जलसे भरा हुआ, मन्त्रोंसे संस्कृत किया हुआ, तथा दम (दाभ=एक प्रकार की घास) से टका हुआ, नया शकोरा (शाशव=मट्टे का बना हुआ, कटोरेके आकारका एक पात्र) उस पुरपको प्राप्त नहीं होता, तथा यह नरकमें पड़ता है, जो अपने मालिकके लिये युद्ध नहीं करता । अर्थात् उसके स्वर्गों की रक्षाके लिये अपने जीवनको नहीं लगा देता ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मन्त्री और पुरोहितोंके द्वारा अपने योद्धा पुरपोंको उत्साहित कराये ॥ ३७ ॥

व्यूहसंपदा कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्या-
पनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्पयेत् ॥ ३८ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ ३९ ॥

इस विजिगीषु राजाके ज्योतिषी और शकुनशास्त्री पुरप, पृथक् २ व्यूहों की विशेष रचनाके द्वारा अपनी सर्वज्ञताकी प्राप्ति करने, तथा देवके साक्षात्कार होनेकी उपाति करके, अपने पक्षको खूब हर्षयुक्त बनावे । अर्थात् उनको अच्छीतरह उत्साहित करें ॥ ३८ ॥ तथा शत्रुके पक्षको खूब घेचन करें ॥ ३९ ॥

श्वो युद्धमिति कृतोपवासः शस्त्रवाहनं चाधिशयीत ॥ ४० ॥
अथर्वभिश्च जुहुयात् ॥ ४१ ॥ विजययुक्ताः स्वर्गीयाश्चाशिपो
वाचयेत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिस्मृजेत् ॥ ४३ ॥

‘कलको युद्ध है’ ऐसा निश्चय होनेपर, पहिले दिन उपवास करता हुआ अपने हथियार और हाथी घोड़े आदि सवारियोंके समीपही रात्रिमें शयन करे ॥ ४० ॥ तथा अथर्ववेदमें बतलाये हुए मन्त्रोंके द्वारा, शत्रुओंका विघ्न करनेके लिये यज्ञ करे ॥ ४१ ॥ शत्रुके हार जानेपर, अपने विजयके अनुकूल, तथा अपनेही आत्मियोंके मार जानेपर स्वर्गसम्बन्धी आशीर्वादोंको ब्राह्मणोंके द्वारा पढ़वावे ॥ ४२ ॥ अपनी रक्षाके लिये अपने आपको ब्राह्मणोंके ही अर्पण करेवे ॥ ४३ ॥

शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाभ्यामविसंवादितमनी-
कगर्भं कुर्वीत ॥ ४४ ॥ पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वजं
मुण्डानीकं राजस्थानम् ॥ ४५ ॥

यशदुर, कारीगर, खानदानी, तथा मुहब्बत रखनेवाली, और धन तथा सरकार आदिसे सदा अनुकूल बनाई हुई सेनाको, अपनी बड़ी सेनामें, अपनी रक्षाके लिये नियुक्त करे ॥ ४४ ॥ राजाके पिता, पुत्र तथा भाई आदि अन्तरंग सम्बन्धियोंके, राजाकी रक्षाके लिये हथियार उठानेवाले (अर्थात् राजाके अंगरक्षक=बॉडीगॉर्ड), और राजाके सम्बन्धको बतलानेवाले वेपको न

धारण करनेवाली प्रधान सेनाके निवासस्थानको राजाके समीपही रखे । अर्थात् जहां राजा उहरा हो, वहाँपर इनको भी ठहरावे ॥ ४५ ॥

हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धे ॥ ४६ ॥ यत्प्रायः
सैन्यो यत्र वा विनीतः स्यात्तदधिरोहयेत् ॥ ४७ ॥ राजव्यञ्जनो
व्यूहानुष्ठानमायोज्यः ॥ ४८ ॥

हाथी तथा रथ, राजाकी सवारी समझी जावे । अर्थात् राजा, हाथी पर या रथ पर सवार होकर चले, और उसकी रक्षाके लिये उसके साथ अश्वारोही पुरुष हों ॥ ४६ ॥ अथवा प्रायः जिन सवारियों पर सेना हावे, या राजाको जिस सवारी पर चढ़ने का अच्छा अभ्यास होवे, उसी सवारी पर राजा चले ॥ ४७ ॥ पूर्णतया राजाके घेपमें, किसी पुरुषको व्यूह रचनाका अधिष्ठाता नियुक्त किया जावे । तात्पर्य यह है, कि राजाके समान स्पष्ट रूपमें सेनाकी देख रेख करनेके लिये, पूरे तौरपर राजाकेही घेपमें रहने वाले किसी आदमीको रखा जावे; जिससे कि शत्रुपक्षके पुरुष राजाको प्रकट रूपमें पहचान न सकें ॥ ४८ ॥

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसंघकुलकर्म-
वृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः ॥ ४९ ॥

सूत और मागध (सूत=पुराने इतिहासको जानने वाले, मागध=स्तु-
तिपाठक) पुरुष, शूराधीर सिपाहियोंके स्वर्ग, उरपोकोंके नरक, तथा अन्य
योद्धाओंके जाति (ब्राह्मण आदि), संघ (उनके अपने देशकी सामूहिक
एकता), कुल, कर्म (कार्य जीविका आदि), तथा उनके शीलस्वभाव अथवा
व्यवहार आदिकी स्तुतिका अच्छी तरह वर्णन करें । अर्थात् उनके उरसाइके
लिये उनके सामने इन बातोंका भलीभांति वर्णन करें ॥ ४९ ॥

पुरोहितपुरुषाः कृत्यामिचारं ब्रूयुः ॥ ५० ॥ सत्त्रिकवर्धाकि-
मौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम् ॥ ५१ ॥

तथा पुरोहित पुरुष, शत्रुओंके नष्ट करने वाली कृत्या देवताके द्वारा
अभिचार यज्ञोंका अनुष्ठान करें । तात्पर्य यह है, कि जो शत्रुओंके नाश करने
के लिये अथर्व मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है, उसही को 'कृत्यामिचार'
कहते हैं । पुरोहित, अपने राजाकी वित्तयके लिये इसका अनुष्ठान करे ॥ ५० ॥
सर्था (एक प्रकारका गुप्तचर), चढई, तथा युद्धके प्रारम्भमें मुहूर्त आदिक
निश्चय करने वाला ज्योतिषी, ये सदा अपने कार्योंकी सिद्धि और शत्रुके कार्यों
की असिद्धिकोही बतलावे ॥ ५१ ॥

सेनापतिरर्थमानाम्यामभिसंस्कृतमनीकमामापेत ॥ ५२ ॥
 शतसाहस्रो राजवधः ॥ ५३ ॥ पञ्चाशत्साहस्रः सेनापतिकुमार-
 वधः ॥ ५४ ॥ दशसाहस्रः प्रवीरमुख्यवधः ॥ ५५ ॥ पञ्चसाह-
 स्रो हस्तिरथवधः ॥ ५६ ॥ साहस्रो ऽश्ववधः ॥ ५७ ॥ शत्यः
 पत्तिमुख्यवधः ॥ ५८ ॥ शिरो विंशतिकम् ॥ ५९ ॥ भोगद्वैगुण्यं
 स्वयंग्राहश्चेति ॥ ६० ॥ तदेयां दशवर्गाधिपतयो विद्युः ॥ ६१ ॥

सेनापति, धन और सरकार आदिसे पूजा कीहुई—बदाई हुई सेनाको
 इसप्रकार कहे:—॥ ५२ ॥ आप लोगोंमेंसे जो सैनिक, शत्रु राजाको मार
 डालेगा, उसे एक लाख सुवर्ण मुद्राकी प्राप्ति होगी; अर्थात् शत्रु राजाके मारने
 वालेको इतना इनाम दिया जावेगा ॥ ५३ ॥ इसीप्रकार, आप लोगोंमेंसे जो
 सैनिक, शत्रुके सेनापति, या राजकुमारको मार डालेगा, उसे पचास हजार
 सुवर्णमुद्रा इनाम दिया जायेगा ॥ ५४ ॥ तथा, इसी प्रकार शत्रुके बहादुर
 आदमियोंमेंसे मुख्य व्यक्तिके मारने वालेको दस हजार; ॥ ५५ ॥ हाथी और
 रथोंके नष्ट करने वालेको पाँच हजार; ॥ ५६ ॥ घोड़े सवारों (या मुख्य घोड़ों)
 के नष्ट करने वालेको एक हजार; ॥ ५७ ॥ पैदल सेनाके मुख्य व्यक्तियोंको नष्ट
 करने वालेको एक सौ; ॥ ५८ ॥ तथा साधारण सिपाहियोंका तिर फाटकर लाने
 वालेको बीस सुवर्णमुद्रा इनाममें दिये जावेंगे ॥ ५९ ॥ और युद्धमें इसप्रकार
 हिरसा छेने वाले सिपाहियोंका भत्ता और वेतन दुगना कर दिया जावेगा ।
 तथा शत्रुके यहाँ लूटमें सिपाहियोंको जो कुछ माल मिलेगा, वह सब उनका
 ही समझा जायेगा, अर्थात् उस माल पर उनकाही अधिकार होगा ॥ ६० ॥
 इस उपर्युक्त राजवध आदिके समाचारको, केवल दशवर्गाधिपति (पदिक,
 सेनापति तथा नायक; देखो:—अधि० १०, अध्या० ६, सूत्र ४६-४८)
 ही जानें ॥ ६१ ॥

चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्त्रेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपानर-
 क्षिण्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ॥ ६२ ॥

चिकित्सक (चिकित्सा करने वाले शल्यशास्त्रके ज्ञाता वैद्य) तथा
 शस्त्र (प्रण आदि को फाटनेके औजार) यन्त्र (चीमटी आदि, जिनका मुँह
 भाग की ओर से मुड़ा हुआ हो, ऐसे चिकित्सा में काम आने वाले औजार),
 भगद (औषधि), रोग (घी तेल आदि=घाव आदि कं लिये उपयुक्त औषध
 मिश्रित घी तेल आदिका ही यहाँ प्रदण करना चाहिये), और बखों (पट्टी आदि
 बाँधनेके बखों) को हाथ में लिये हुए अन्य पुरुष (चिकित्सकके कार्य में

सहायता देने वाले), और खाने पीने आदि की सामग्री की रक्षा करने वाली शिवां, जो कि सैनिक पुरुषोंको खूब प्रसन्न रखने वाली हों, इन सबको युद्ध भूमि में, सेनाके विछले हिस्से में रक्खा जावे ॥ ६२ ॥

अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमघातमनीकं स्वभूमौ व्यूहेत
॥ ६३ ॥ परभूमिव्यूहे चाश्वंश्वारयेयुः ॥ ६४ ॥

विजिगीषुको, अपनी सेनाको युद्धके समय, दक्षिण की ओर मुंह न करके (दक्षिण की ओर मुंह करके खड़ा होना अमांगलिक समझा जाता है, इसलिये उस ओर को मुंह न कर और किसी ओर को ही मुंह करके), जब कि सूर्य पीछे की ओर रहे (अर्थात् सेना को रक्षा करने में इस बात का पूरा ध्यान रखे, कि सूर्य सेना के सामने न पाने पावे) और जैसे वायु भी अनुकूल हो (अर्थात् सेना के सामने की ओरसे दया न चल रही हो) इस प्रकार व्यूहरचना काके खड़ा करना चाहिये ॥ ६३ ॥ यदि युद्ध भूमि शत्रुके अनुकूल हो, और वही पर विजिगीषु को व्यूहरचना करनी पड़े तो शत्रुका विघात करनेके लिये इस भूमि में अपने घोड़ों को फिरावे ॥ ६४ ॥

यत्र स्थानं प्रजवश्चाभूमिव्यूहस्य तत्र स्थितः प्रजवितश्चोभयथा जीयेत ॥ ६५ ॥ विपर्यये जयति उभयथा स्थाने प्रजवे च ॥ ६६ ॥

जिस प्रदेश में ठहरने अर्थात् चिरकाल तक रहकर कार्य करने या बहुत जल्दी ही कार्य करनेका मौका न हो, ऐसे स्थानमें ठहरता हुआ या जल्दी ही कार्य करता हुआ विजिगीषु दोनों अवस्थाओंमें अवश्यही शत्रुके द्वारा मारा जाता है ॥ ६५ ॥ इससे विपरीत अवस्था होने पर अर्थात् दोनों तरहके अवसरके योग्य भूमि होने पर, ठहरने पर भी और जल्दी काम करने पर भी दोनों ही अवस्थाओंमें विजिगीषु अपने शत्रु को अवश्य जीत लेता है ॥ ६६ ॥

समा विपमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति पुरस्तात्पार्श्वभ्यां पश्चाच्च ज्ञेया ॥ ६७ ॥ समायां दण्डमण्डलव्यूहाः ॥ ६८ ॥ विपमायां भोगसंहतव्यूहाः ॥ ६९ ॥ व्यामिश्रायां विपमव्यूहाः ॥ ७० ॥

व्यूहरचना की अनुकूलता भूमिके आधार पर ही हो सकती है । इस लिये अब भूमिके विभाग बताते हैं—भूमि तीन प्रकार की होती है—सम, विपम, और व्यामिश्र । इनमेंसे प्रत्येकके फिर तीन भेद हैं—आगे होना, इधर उधर होना अर्थात् पार्श्वभागोंमें होना, तथा पीछे की ओर होना, (अर्थात्

सम भूमि आगे हो, पीछे हो, या ऊपर उपर हो, इन तीन अवस्थाओंमें ही हो सकती है, इसी तरह दूसरी विषम आदि को भी समझ लेना चाहिये ॥ ६७ ॥ तीनों प्रकार की सम भूमिमें दण्डव्यूह (दण्डाकार सेना की स्थापना) और मण्डलव्यूह (मण्डलाकार=गोलाकार सेना की स्थापना) की रचना की जावे ॥ ६८ ॥ इसीप्रकार तीनों तरह की विषम भूमिमें भोगव्यूह और संहत-व्यूहों की रचना की जावे । (व्यूहों की रचना का प्रकार इसी अधिकरणके पाँचवें अध्यायमें देखें) ॥ ६९ ॥ और तीनों प्रकार की व्यामिथ्र भूमिमें विषम-व्यूहों की रचना की जावे ॥ ७० ॥

विशिष्टवलं भङ्क्त्वा संधिं याचेत् ॥ ७१ ॥ समबलेन या-
चित्तः संदधीत् ॥ ७२ ॥ हीनमनुहन्त्यात् ॥ ७३ ॥ न त्वेव स्व-
भूमिप्राप्तं त्यक्त्वात्मानं वा ॥ ७४ ॥

विजिगीषुको चाहिये, कि अपनेसे अधिक शक्तिशाली शत्रुकी सेनाको पहिले अच्छी तरह नष्ट करके, फिर उससे सन्धिकी स्वयंही प्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ यदि शत्रु, समान शक्तिवाला ही होवे, तो उससे प्रार्थना किये जाने परही सन्धि करे ॥ ७२ ॥ अपनेसे हीनशक्ति शत्रुको तो सर्वथा नष्ट कर डाले, जिससे कि वह फिर मुझबलके लिये कदापि न उठ सके ॥ ७३ ॥ परन्तु हीनशक्ति शत्रुको भी, यदि वह अनुबूल स्थान (भूमि) में पहुँचा हुआ हो, या अपने जीवनसे निराश हो चुका हो, तो न मारे । (क्योंकि इन अवस्थाओंमें हीनशक्ति भी शत्रु, विजिगीषुकी अधिकसे अधिक हानिको कर गुजरता है) ॥ ७४ ॥

पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते ।

अधार्यो जायते वेगस्तसान्द्रमं न पीडयेत् ॥ ७५ ॥

इति साम्प्रतिके दशमे अधिकरणे कूटयुद्धविकल्पः स्वसेन्योत्साहनं स्वबलान्य-
बलव्यायोगश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ भादित एकत्रिंशच्छतं ॥ १३१ ॥

जीवनसे निराश होनेके कारण, फिर छोटे हुए हीनबल शत्रुका भी युद्धवेग धारण नहीं किया जा सकता, इसलिए भग्न हुए २ अर्थात् पहिलेसे शक्तिहीन बनाए हुए शत्रुको, फिर पीड़ा पहुँचाकर कुपित न करे ॥ ७५ ॥

रांम्रामिक दशम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

१५३, १५४ प्रकरण

युद्धयोग्य भूमि; और पदाति, अश्व, रथ
तथा हाथी आदिके कार्य ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें युद्धके योग्य भूमियोंका निरूपण किया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें पैदल सेना, तथा घोड़े रथ और हाथीपर सवार होकर युद्ध करनेवाली सेनाओंके कार्योंका निरूपण किया जायगा ।

स्वभूमिः पश्यश्चरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च ॥ १ ॥

पैदल, युद्धसवार, रथसवार, तथा हाथीसवार सेनाओंके युद्धके समय और उनकी अवस्थितिके समयमें अनुकूल भूमिका होना अत्यन्त अपेक्षित है । तात्पर्य यह है, कि सबतरह की सेनाओंके युद्ध और टहरनेके लिये, अपने अनुकूल भूमिका ही अवलम्बन लेना चाहिये ॥ १ ॥

धान्यनवननिम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां
च पुरुषाणां नादेयवार्वतानूपसारसानां च हस्तिनामश्वानां च
यथास्वमिष्टा युद्धभूमयः कालाश्च ॥ २ ॥

धान्यन वन दुर्गमें युद्ध करनेवाले, वनदुर्गमें युद्ध करनेवाले, जल तथा स्थलमें युद्ध करने वाले, खाई खोदकर उनमें बैठकर युद्ध करने वाले, आकाश में युद्ध करनेवाले, दिन तथा रातमें युद्ध करनेवाले, (अर्थात् उपयुक्त आठ प्रकारके, पैदल सेनामें काम करनेवाले पुरुषोंके), और नदी पहाड़ जलमय-प्रदेश तथा बड़े २ तालाबोंके सहारे युद्ध करनेवाले हाथियों और घोड़ोंके; उनके अपने अनुकूल ही युद्धयोग्य प्रदेश तथा ऋतु आदि समय अपेक्षित होते हैं ॥ २ ॥

समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रगुरानक्षग्राहिष्यवृक्ष-
गुल्मप्रततिस्तम्भकेदारश्चभ्रवल्भीकसिकताभङ्गभङ्गुरा दरणहीना
च रथभूमिः ॥ ३ ॥

रथके योग्य भूमियोंका अब निरूपण करते हैं — घरापर (अर्थात् जो ऊँची नीची न हो), नीचेसे ऊपर (= स्थिरा = तो नीचेसे पोलोसी न हो), साफ (तिमके भादिसे रहित), खाई खड्डे आदिसे रहित, जिसमें रथके

पहिये तथा घोड़ोंके सुम भादि न गड़ते हैं, धुरेको न पकड़नेवाली; पेड़, गुल्म (घनी बेलोंसे ढकी हुई जगह,) लता, टूट, ब्यारियां, गड़े, बमई, रेत, कीचड़ तथा तिरछेपन भादिसे रहित; और दरदोंसे रहित भूमि ही रथोंके चलनेके योग्य समझनी चाहिये । अर्थात् रथसवार सेनाके लिए ऐसी ही भूमि योग्य होती है ॥ ३ ॥

हस्त्यश्वयोर्मुष्पाणां च समे विपमे हिता युद्धे निवेशे च ॥ ४ ॥
अण्वश्मश्रुक्षा हस्त्रलङ्घनीयश्च भ्रा मन्ददरणदोषा चाश्व-
भूमिः ॥ ५ ॥

रथ के उपयुक्त भूमि ही, हाथी घोड़े और मनुष्यों के भी अनुकूल, सम विपम देशमें और युद्ध तथा ठहरनेके समयमें समझनी चाहिये । अर्थात् इन उपयुक्त अवस्थाओंमें, जो भूमि रथके लिये उपयुक्त बताई गई है, वही भूमि हाथी घोड़े और मनुष्योंके लिये भी उपयुक्त समझनी चाहिये ॥ ४ ॥ घोड़े भादिके लिये विशेष भूमि, निम्नलिखित रीतिसे समझनी चाहिये:—छोटे २ कंकड़ तथा वृक्षोंसे युक्त, छेटे लांघने योग्य गदोंसे युक्त, तथा कहीं २ छोटी २ दरदों वाली भूमि को घोड़ोंके लिये विशेष उपयुक्त समझना चाहिये ॥ ५ ॥

स्थूलस्थाण्वश्मश्रुक्षप्रततिवलमीकगुल्मा पदातिभूमिः ॥ ६ ॥
गम्यशैलनिम्नविपमा मर्दनीयश्रुक्षा छेदनीयप्रततिः पङ्कमंगुर-
दरणहीना च हस्तिभूमिः ॥ ७ ॥

मोटे २ टूट, परधर या कंकड़, वृक्ष, लता (बेल), बमई, तथा गुल्म भादिसे युक्त भूमि, पैदल सैनिकोंके लिये अधिक उपयुक्त होती है ॥ ६ ॥ हाथियोंके जासकने योग्य पहाड़ तथा ऊंचे नीचे भागोंसे युक्त, हाथियोंके रागड़ेने (अर्थात् खुजली करने) के योग्य वृक्षोंसे युक्त, काटने योग्य लताओं वाली, कीचड़ गड़े तथा दरदोंसे रहित भूमि, हाथियोंके लिये अधिक उपयुक्त समझनी चाहिये ॥ ७ ॥

अकण्टकिन्यवहुविपमा प्रत्यासारवतीति पदातीनामतिशयः ॥ ८ ॥
द्विगुणप्रत्यासारा कर्दमोदकखज्जनहीना निःशर्करेति
वाजिनामतिशयः ॥ ९ ॥

कांटोंसे रहित, तथा जो बहुत ऊंची नीची नहो, और जिसमें अवसर आने पर लौटनेके लिये अच्छा सुभीता हो, वह भूमि पैदल सेनाके लिये आयुक्त होती है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार जिस भूमिमें आगे बढ़ने की अपेक्षा

पीछे लौटनेके लिये दुगना सुभीता होता है, और जो कीचड़, जल, दलदल तथा कंकड़ीली मट्टीसे रहित होती है, वह भूमि घोड़ोंके लिये अतिशय लाभ-प्रद होती है ॥ ९ ॥

पांसुकर्दमोदकनलशराधानवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशा-
खाघातविपुक्तेति हस्तिनामतिशयः ॥ १० ॥ तोयाशयाश्रयवती
निरुत्खातिनी केदारहीना व्यावर्तनसमर्थेति स्थानामतिशयः
॥ ११ ॥ उक्ता सर्वेषां भूमिः ॥ १२ ॥

धूल, कीचड़, जल, (कीचड़से मिला हुआ जल ही यहां 'उदक' शब्द से अभिप्रेत है), नदसल, मूंड और इन दोनों की (नदसल और मूंड की) नद, इन सब वस्तुओंसे युक्त; गोशुरुओंसे रहित, तथा बड़े २ वृक्षों की शाखाओं की टकारसे रहित (अर्थात् हाथी पर चढ़ कर जिस भूमिमें बड़े वृक्षोंके टहनियोंसे टकर न लग सके, ऐसी) भूमि हाथियोंके अत्यन्त उपयोगी होती है ॥ १० ॥ स्नान आदिके योग्य जलाशयोंसे तथा विश्राम करनेके योग्य स्थानोंसे युक्त, उखड़े हुए स्थानोंसे रहित, क्यारियोंसे रहित, भयसर आगे पर लौटनेके योग्य स्थानोंसे युक्त (अर्थात् जिसमें लौटनेके लिए पर्याप्त स्थान मिलसके, ऐसी) भूमि, रथोंके लिये अधिक उपयोगी होती है ॥ ११ ॥ यहाँतक सब प्रकार की भूमियोंके सम्बन्धमें निरूपण करा दिया गया ॥ १२ ॥

एतया सर्वबलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति
॥ १३ ॥

इसप्रकार भूमिके व्याख्यानके अनुसार ही सब सेनाओंके निवेश अर्थात् ठहरनेके साथ सम्बन्ध रखने वाले सब कार्यों और युद्धसम्बन्धी कार्योंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये । तारपर्य यह है, कि भूमिके समान, सेनानिवेश और युद्ध कार्योंका विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है ॥ १३ ॥

भूमिवासवननिचयो विषमतोयतीर्थवातरश्मिग्रहणं वीवधा-
सारयोर्घातो रक्षा वा विशुद्धिस्थापना च बलस्य प्रसारवृद्धिर्वा-
हृत्सारः पूर्वप्रहारो व्यावेशनं व्यावेधनमाश्वासो ग्रहणं मोक्षणं
मार्गानुसारविनिमयः कोशकुमाराभिहरणं जघनकोट्यभिघातो
हीनानुसारणमनुयानं समाजकर्मैत्यश्वकर्माणि ॥ १४ ॥

अब इसके आगे पैदल, घोड़े रथ तथा हाथियोंकी सेनाके कार्योंका निरूपण किया जायगा:-सबसे प्रथम घोड़ोंके कार्योंका निरूपण करते हैं:-

भूमि, वासस्थान, तथा वनका संशोधन घोड़ोंके द्वारा किया जाना चाहिये, (दस भूमिसे, छिपेहुए शत्रुके बलको हटाना 'भूमिविचय' या भूमिका संशोधन कहाता है, इसीप्रकार सेनाके निवासस्थानोंमें से उपद्रवका वृर करना 'वास-विचय' और जंगली रास्तोंमें से चोरोँ आदिका हटाना 'वनविचय' कहाता है); विषम (जहाँपर शत्रु आक्रमण न करसके), तांय (जहाँपर जलके भरेहुए तालाब आदि हो), तीर्थ (नदी आदि उतरनेका जहाँसे भरडा सुभीता हो), वात (जहाँपर वायु अच्छीतरह आज्ञाष्ट्रे), और रश्मि (जहाँ सूर्यके प्रकाश पहुँचनेमें किसी प्रकारकी बाधा न हो) आदिके छिपे उपयुक्त स्थानोंको पहिलेसे ही अपने कावूमें करलेना, शत्रुके वीचध (उसके अपने देशसे लगातार जीविका योग्य द्रव्योंका आना) और आसार (शत्रुके मित्रकी सेनाका आना) का नाश तथा अपने वीचध और आसारकी रक्षा करना; छिपका प्रविष्टहुई शत्रुसेनाकी सफाई करना तथा अपनी सेनाके गड़बड़ होजानेपर उसकी ठीक २ स्थापना करना; प्रसार (जंगलोंमें होनेवाले घास्य तथा घास आदिको प्रसार कहते हैं) की वृद्धि करना; बाहुओंके समान घोड़ोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको हटाना; शत्रुकी सेनापर पहिले ही प्रहार करना; शत्रुकी सेनामें घुमकर उसे विचलित करदेना; शत्रु सेनाको तरह २ की तकलीफ पहुँचाना; अपनी सेनाको आश्रासन (तसल्ली) देना ; शत्रुकी सेनाको पकड़ना; शत्रुसे पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; अपनी सेनाके मार्गपर शत्रुओंकी सेनाके चले जानेपर स्वयं शत्रुकी सेनाके मार्गका अनुसरण करना; शत्रुके कोश और राजकुमारका अपहरण करना; पीछे तथा सामनेकी ओर आघात अर्थात् आक्रमण करना; घोड़े गरेहुए सैनिकोंका (अर्थात् जिनके घोड़े मरगये हैं, ऐसे सैनिकोंका) पीछा करना; भागीहुई शत्रुसेनाका पीछा करना; तथा बिलरीहुई अपनी सेनाको इकट्ठी करना इत्यादि ये सब ही कार्य 'अश्वकर्म' अर्थात् घोड़ोंके करनेके काम कहे जाते हैं; इन कार्योंको घोड़ोंके द्वारा करानेमें ही सुगमता रहती है ॥ १४ ॥

पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म बाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे
स्थानगमनावतरणं विषमसंबाधः प्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः
भिन्नमंधानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो विभीषिका
त्रासनमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराङ्गालकभञ्जनं कौशवाहन-
मिति हस्तिकर्माणि ॥ १५ ॥

अथ हाथीके कार्योंका निरूपण किया जाता है:—अपनी सेनाके आगे चलना, पहिलेसे न बनेहुए मार्ग, घासस्थान तथा तीर्थ (घाट) आदि

बनाना, भुजाओंके समान, शत्रुकी सेनाको अपनी सेनाके पास खड़े होकर हटाना; नदी आदिके जलमें उसके नापनेके लिये तरना या भीतर प्रवेश करना; शत्रु सेनाके आक्रमण करनेपर पंक्ति बांधकर खड़े होजाना (=स्थान) इसीप्रकार मार्ग में घलना; तथा ऊंचे स्थानसे इसीतरह नीचेकी ओर उतरना; घने जंगल तथा शत्रुसेनाकी भीड़में घुसजाना; शत्रुके पड़ावमें भाग लगाना, तथा अपने पड़ावमें लगीहुई भागकी सुझाना; सेनाके एक अङ्गभूत हाथीके द्वारा ही शत्रुपर विजय लाभ करना; बिखरीहुई सेनाको इकट्ठी करना; शत्रुकी इकट्ठी हुई २ सेनाको छिन्नभिन्न करना; आपसिके समयमें रक्षा करना, शत्रुकी सेनाका कुचलना; बेबल दिवानेसे ही उसे डराना; मद आदिकी अवस्थाके द्वारा उन्हें विचलित करदेना, सेनाका महत्व दिखलाना; शत्रुके योद्धाओंको पकड़ना; शत्रुके पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको सुदाना; शत्रुके परकोटे, प्रधान द्वार तथा ऊपरकी अटारी आदिको गिराना; शत्रुके खजाने तथा सवारी आदिको जग्रा लेजाना, ये सब 'दस्तिधर्म' अर्थात् हाथीके करने योग्य काम कहते हैं ॥ १५ ॥

स्वधरक्षा चतुरङ्गबलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्न-
संधानमभिन्नभेदनं त्रासनमौदार्यं भीमघोषश्चेति रथकर्माणि ॥१६॥

अब इसके आगे रथके कार्योंका निरूपण किया जायगा:—अपनी सेनाकी रक्षा करना; संग्रामके समय शत्रुकी सेनाका रोकना; शत्रुके योद्धाओंको पकड़ना; शत्रुसे पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको सुदाना; बिखरीहुई अपनी सेनाको इकट्ठी करना, इकट्ठी हुई २ शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न करना; भय आदि दिखाकर शत्रुकी सेनाको विचलित करना, अपनी सेनाका शौदार्य अर्थात् महत्व दिखलाना; और भयङ्कर घोष अर्थात् ध्वनि (आवाज़) का करना; ये सब 'रथकर्म' अर्थात् रथके करने योग्य कार्य कहते हैं ॥ १६ ॥

सर्वदेशकालशस्त्रवहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि ॥१७॥

अब पैदल सेनाका निरूपण करते हैं:—सबही सम विषम आदि स्थानों और वर्षा शरद आदि ऋतुओंमें शस्त्रोंका धारण करना; तथा नियम पूर्वक कृषायुद्ध आदि करना और शयनर आनेपर युद्ध करना, ये सब पैदल सेनाके करने योग्य कार्य (पदातिकर्म) कहते हैं ॥ १७ ॥

शिविरमार्गसैतुकूपतीर्थशोधनकर्मयन्त्रायुधावरणोपकरणप्रा-
सयहनमायोधनाच्च प्रहरणावरणप्रतिविद्धापनयनमिति विष्टि-
कर्माणि ॥ १८ ॥

पञ्चारत्ति धनुः ॥ ६ ॥ तस्मिन्धन्विनं स्थापयेत् ॥ ७ ॥
त्रिधनुष्यक्षं, पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा ॥ ८ ॥ पञ्चधनुरनीक-
संधिः पक्षकक्षोरस्यानाम् ॥ ९ ॥

पांच भरतिका (हाथका) एक धनुष होता है । (महापर पांच भर-
तिका एक धनुष घताया गया है । परन्तु अधि. २, अध्या. २० में [देश-काल
मान ' प्रकरणमें] चार भरतिकाही एक धनुष घताया गया है । उस अध्या-
यके १९ वें सूत्रके साथ इसकी तुलना करें) ॥ ६ ॥ धनुष बाणसे युद्ध करने
वाले घोषाओंको दृढ़ते फासलेसे (अर्थात् पांच हाथके फासलेसे) खड़ा करे
॥ ७ ॥ तीन धनुष (अर्थात् पन्द्रह हाथ) के फासलेसे घोड़ोंको, और पांच
धनुष (अर्थात् पचीस हाथ) के फासलेसे रथ और हाथियोंको खड़ा करे
॥ ८ ॥ पक्ष कक्ष तथा उरस्थकी पांचों सेनाओंका आपसका फायला पांच
धनुष (अर्थात् पचीस २ हाथ होना चाहिये । अर्थात् एक पीछे दूसरी
पीछेसे पचीस हाथके फासलेपर खड़ी कीज वे ॥ ९ ॥

अथस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १० ॥ पञ्चदश
रथस्य हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः ॥ ११ ॥ तावन्तः पादगोपा
वाजिरथद्विपानां विधेयाः ॥ १२ ॥

घुड़सवार सिपाहीके आगे २ रहकर उसकी सहायतायें युद्ध करनेके
लिए तीन पुरुष नियुक्त किये जावें ॥ १० ॥ इसी प्रकार हाथी और रथके
आगे पन्द्रह २ आदमी, अथवा पांच २ घुड़सवार सिपाही खड़े किये जावें
॥ ११ ॥ घोड़े रथ तथा हाथियोंके उत्तनेही (अर्थात् पांच) पादगोप (= पाद-
रक्षक अर्थात् उनकी रेंवा या टइल टकोरी करने वाले सेवक जन=सार्इस
आदि) नियुक्त किये जावें । इसप्रकार एक २ रथके आगे पांच घोड़े, और
एक २ घोड़ेके आगे तीन २ आदमी मिलाकर कुल पन्द्रह आदमी आगे
चलने वाले, और पांच सेवक, इसी तरह हाथीके साथ भी समझने
चाहियें । (माधवयज्जाने अपनी नवचन्द्रिका व्याख्यानमें लिखा है, कि
जैसे एक घोड़ेके आगे चलने वाले तीन आदमी होते हैं, इसीतरह उसके
सेवक भी तीनही आदमी होने चाहियें) ॥ १२ ॥

त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्थं स्थापयेत् ॥ १३ ॥
तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ १४ ॥ पञ्चचत्वारिंशत् एवं रथा
रथव्यूहे भवन्ति ॥ १५ ॥

उरस्य स्थानमें अर्थात् व्यूहरचनाके मध्यस्थानमें इसप्रकारके नौ रथों (तीन त्रिक=३×३=९) की स्थापना करे । तात्पर्य यह है कि तीन २ रथोंकी एक २ पंक्ति बनाकर तीन पंक्तियोंमें नौ रथों को खड़ा करे ॥ १३ ॥ इसीप्रकार कक्ष और पक्ष स्थानोंमें दोनों और नौ २ रथोंको खड़ा करे ॥ १४ ॥ इस तरह एक व्यूह में पैंतालीस रथ होजाते हैं । (९ उरस्य=१८ कक्ष=और १८ पक्ष=४५) ॥ १५ ॥

द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः ॥ १६ ॥ पद्शतानि पञ्चसप्त-
तिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १७ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिर-
थद्विषानाम् ॥ १८ ॥

प्रत्येक रथके आगे पांच घोड़े होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे दो सौ पच्चीस (२२५) घोड़े होने चाहियें ॥ १६ ॥ और प्रत्येक रथके आगे पन्द्रह आदमी होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे छः सौ पचहत्तर (६७५) पुरुष, एक दूसरेकी सहायतायें युद्ध करनेके लिये होने चाहियें ॥ १७ ॥ घोड़े रथ और हाथियोंके इतनेही पादगोप होने चाहियें । अर्थात् घोड़ोंके आगे चलने वाले जितने पुरुष हों, उतनेही उनके पादगोप; और रथ तथा हाथियोंके आगे चलने वाले जितने घोड़े और आदमी हों, उतनेही उनके पादगोप होते हैं ॥ १८ ॥

एष समव्यूहः ॥ १९ ॥ तस्य द्विरथो वृद्धिर। एकविंशति-
रथात् ॥ २० ॥ इत्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २१ ॥

इस तरहके व्यूहको 'समव्यूह' कहते हैं । (क्योंकि यह बराबर २ के तीन २ त्रिकोंसे तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसी व्यूहमें दो २ रथोंकी वृद्धि, इक्कीस रथ पर्यन्त और कीजासकती है । (तात्पर्य यह है, कि पहिला एक व्यूह तीन त्रिकोंसे तैयार होता है, इसीमें यदि दो रथोंकी वृद्धि करदी जाय, तो पांच रथोंके पांच पंचकोंसे यह व्यूह तैयार किया जायगा; अर्थात् दोनों कक्ष दोनों पक्ष और एक उरस्यमें पांच २ रथोंकी पांच पंक्तियां लगाई जायेंगी; इसप्रकार कक्ष आदि पांचों स्थानोंमें एकसरी पच्चीस रथ होजायेंगे, उन्हींके अनुसार घोड़े और मनुष्योंकी तादाद समझ लेनी चाहिये । इसी तरह इसमें दो रथ और बढ़ाकर प्रत्येक स्थानमें सात २ रथोंकी सात २ पंक्ति लगाकर व्यूह रचना कीजायेगी । इसी प्रकार दो २ रथ बढ़ाकर इक्कीस रथ पर्यन्त व्यूहोंकी कल्पना करलेनी चाहिये) ॥ २० ॥ इसप्रकार अष्टम रूपमें तीन रथोंसे लगाकर इक्कीस रथ पर्यन्त, दस तरहकी सप्त व्यूह रचना कहाती है । अर्थात् इस तरहके समव्यूहके ये दस भेद हैं ॥ २१ ॥

पञ्चारत्नि धनुः ॥ ६ ॥ तमिन्धन्विनं स्थापयेत् ॥ ७ ॥
त्रिधनुष्यश्वं, पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा ॥ ८ ॥ पञ्चधनुरनीक-
संधिः पक्षकक्षोरस्यानाम् ॥ ९ ॥

पाँच भरतिका (हाथका) एक धनुष होता है । (यहाँपर पाँच भर-
तिका एक धनुष बताया गया है । परन्तु अधि. २, अध्या. २० में [देश-काल
मान ' प्रकरणमें] चार भरतिकाही एक धनुष बताया गया है । उस अध्या-
यके १९ वें सूत्रके साथ इसकी तुलना करें) ॥ ६ ॥ धनुष-बाणसे युद्ध करने
वाले योधाओंको दूतने फ़ासलेसे (अर्थात् पाँच हाथके फ़ासलेसे) रख करे
॥ ७ ॥ तीन धनुष (अर्थात् पन्द्रह हाथ) के फ़ासलेसे घोड़ोंको; और पाँच
धनुष (अर्थात् पचीस हाथ) के फ़ासलेसे रथ और हाथियोंको खड़ा करे
॥ ८ ॥ पक्ष कक्ष तथा डास्यकी पाँचों सेनाओंका आपसका सामना पाँच
धनुष (अर्थात् पचीस २ हाथ होना चाहिये । अर्थात् एक पीज दूसरी
पीजसे पचीस हाथके फ़ासलेपर रखी कीज वे ॥ ९ ॥

अथस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १० ॥ पञ्चदश
रथस्य हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः ॥ ११ ॥ तावन्तः पादगोपा
वाजिरथद्विपानां विधेयाः ॥ १२ ॥

घुड़सवार सिपाहीके आगे २ रहकर उसकी सहायतायें युद्ध करनेके
लिये तीन पुरुष नियुक्त किये जावें ॥ १० ॥ इसी प्रकार हाथी और रथके
आगे पन्द्रह २ आदमी; अथवा पाँच २ घुड़सवार सिपाही खड़े किये जावें
॥ ११ ॥ घोड़े रथ तथा हाथियोंके उतनेही (अर्थात् पाँच) पादगोप (=पाद-
रक्षक अर्थात् उनकी सेवा या टङ्गल टकोरी करने वाले सेवक जन=साईंस
आदि) नियुक्त किये जावें । इसप्रकार एक २ रथके आगे पाँच घोड़े, और
एक २ घोड़ेके आगे तीन २ आदमी मिलाकर कुल पन्द्रह आदमी आगे
चलने वाले, और पाँच सेवक, इसी तरह हाथीके साथ भी समझने
चाहियें । (माधवपञ्चाने अपनी नयचन्द्रिका व्याख्यामें लिखा है, कि
जैसे एक घोड़ेके आगे चलने वाले तीन आदमी होते हैं, इसीतरह उसके
सेवक भी तीनही आदमी होने चाहियें) ॥ १२ ॥

त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत् ॥ १३ ॥
तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ १४ ॥ पञ्चचत्वारिंशत् एवं रथा
रथव्यूहे भवन्ति ॥ १५ ॥

उरस्य स्थानमें अर्थात् व्यूहरचनाके मध्यस्थानमें इसप्रकारके नौ रथों (तीन त्रिक=३×३=९) की स्थापना करे । तात्पर्य यह है कि तीन २ रथोंकी एक २ पंक्ति बनाकर तीन पंक्तियोंमें नौ रथों को खड़ा करे ॥ १३ ॥ इसीप्रकार कक्ष और पक्ष स्थानोंमें दोनों ओर नौ २ रथोंको खड़ा करे ॥ १४ ॥ इस तरह एक व्यूह में पैंतालीस रथ होजाते हैं । (९ उरस्य=१८ कक्ष=और १८ पक्ष=४५) ॥ १५ ॥

द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः ॥ १६ ॥ पट्टशतानि पञ्चसप्त-
तिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १७ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिर-
थद्विषानाम् ॥ १८ ॥

प्रत्येक रथके आगे पाँच घोड़े होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे दो सौ पञ्चास (२२५) घोड़े होने चाहियें ॥ १६ ॥ और प्रत्येक रथके आगे पन्द्रह आदमी होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे छः सौ पित्तदत्तर (६७५) पुरुष, एक दूसरेकी सहायताार्थ युद्ध करनेके लिये होने चाहियें ॥ १७ ॥ घोड़े रथ और हाथियोंके इतनेही पादगोप होने चाहियें । अर्थात् घोड़ोंके आगे चलने वाले जितने पुरुष हों, उतनेही उनके पादगोप; और रथ तथा हाथियोंके आगे चलने वाले जितने घोड़े और आदमी हों, उतनेही उनके पादगोप होते हैं ॥ १८ ॥

एष समव्यूहः ॥ १९ ॥ तस्य द्विरथो वृद्धिर। एकविंशति-
रथात् ॥ २० ॥ इत्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २१ ॥

इस तरहके व्यूहको 'समव्यूह' कहते हैं । (क्योंकि यह बराबर २ के तीन २ त्रिकोंसे तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसी व्यूहमें दो २ रथोंकी वृद्धि, इक्कीस रथ पर्यन्त और कीजासकती है । (तात्पर्य यह है, कि पहिला एक व्यूह तीन त्रिकोंसे तैयार होता है, इसीमें यदि दो रथोंकी वृद्धि करदी जाय, तो पाँच रथोंके पाँच पक्षोंसे यह व्यूह तैयार किया जायगा; अर्थात् दोनों कक्ष दोनों पक्ष और एक उरस्यमें पाँच २ रथोंकी पाँच पंक्तियाँ लगाई जावेंगी; इसप्रकार कक्ष आदि पाँचों स्थानोंमें एकसौ पञ्चास रथ होजावेंगे, उन्हींके अनुसार घोड़े और मनुष्योंकी तादाद समझ लेनी चाहिये । इसी तरह इसमें दो रथ और बढ़ाकर प्रत्येक स्थानमें सात २ रथोंकी सात २ पंक्ति लगाकर व्यूह रचना कीजावेगी । इसी प्रकार दो २ रथ बढ़ाकर इक्कीस रथ पर्यन्त व्यूहोंकी कल्पना करकेनी चाहिये) ॥ २० ॥ इसप्रकार भयुक्त रूपमें तीन रथोंसे लगाकर इक्कीस रथ पर्यन्त, इस तरहकी सम व्यूह रचना कहाती है । अर्थात् इस तरहके समव्यूहके वेदस भेद हैं ॥ २१ ॥

पक्षकक्षोरस्थानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः ॥ २२ ॥
तस्यापि द्विरथोत्तरा घृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २३ ॥ इत्येव-
मोजा दश विषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २४ ॥

पक्ष कक्ष और उरस्य स्थानोंमें रथोंकी परस्पर विषम संख्या होनेपर ये ही व्यूह 'विषम' कहाते हैं । (तारपर्यं यह है, कि जब उरस्यमें तीन २ त्रिक, और पक्ष या कक्षमें पांच २ पञ्चक हों; अथवा उरस्यमें सात २ सप्तक और पक्ष कक्षमें पांच २ पञ्चक ही हों; अथवा उरस्यमें पांच २ पञ्चक और पक्ष कक्षमें सात २ सप्तक हों; इसप्रकार जब इनकी संख्यामें विषमता हो, तो ये 'विषमव्यूह' कहे जाते हैं) ॥ २२ ॥ इनमें भी तनिमे आगे दो २ की घृद्धि करके इकोस तक, अयुग्म रूपसेही दश विषमव्यूहोंकी रचना कीजाती है । अर्थात् विषमव्यूहके भी इसतरह दश भेद हैं ॥ २३-२४ ॥

अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः ॥ २५ ॥ स्थानां
द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत् ॥ २६ ॥ शेषमुखं स्थापयेत् ॥ २७ ॥
एवं त्रिभागोनो रथानामावापः कार्यः ॥ २८ ॥

यदि इसप्रकार व्यूहरचना करनेके अनन्तर इसमेंसे कुछ सेना बच रहे, तो उसमेंही व्यूहके अन्दर इधर उधर डाल देवे । २५ उसके डालनेका प्रकार यह है:—बची हुई सेनाका दो तिहाई हिस्सातो पक्ष कक्षमें डाल देवे ॥ २६ ॥ बाकी एक हिस्सा उरस्यमें सम्मिलित कर देवे ॥ २७ ॥ व्यूहसंघमें खड़ी हुई रथोंकी सेनामें, जो बचे हुए रथ पीछेसे सम्मिलित किये जावें, उनकी नादाद, व्यूहरूपमें खड़ी हुई सेनाके एक तिहाई से कम होनी चाहिये । अर्थात् उसकी बराबर या उससे अधिक सेना कभी भी न मिलानी चाहिये ॥ २८ ॥

तेन हस्तिनामश्चानामावापो व्याख्यातः ॥ २९ ॥ यावद-
श्वरथद्विपानां युद्धसंवाधनं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः ॥ ३० ॥

इसीतरह हाथी और घोड़ोंके मिलानेके सम्बन्धमेंभी समझ लेना चाहिये ॥ २९ ॥ अभिप्राय यह है, कि जब तक युद्धके समय, घोड़े रथ और हाथियोंमें परस्पर भीड़ मालम न हो, उस समय तक अधिक सेनाको उसमें मिलाते रहना चाहिये । (तिहाई हिस्से आदिका कथनतो केवल दृंग बतलाने के लिये किया गया है ॥ ३० ॥

दण्डबाहुल्यमावापः ॥ ३१ ॥ पश्चिन्नाहुल्यं प्रत्यावापः
॥ ३२ ॥ एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः ॥ ३३ ॥ दृष्यबाहुल्यमन्वा-
वापः ॥ ३४ ॥

व्यूहरचनासे अतिरिक्त सेनाका श्रेय रहजाना, तथा उसको फिर व्यूहके अन्दरही मिलादेना 'आवाप' कहता है ॥ ३१ ॥ केवल पैदल सेनाका इसप्रकार व्यूहरचनाके अन्दर मिलाना 'प्रत्यावाप' कहता है ॥ ३२ ॥ घोड़े रथ हाथी इन तीनोंमेंसे किसी एक अंगके द्वारा इसप्रकार सेनाका बढ़ाना 'अन्वावाप' कहता है ॥ ३३ ॥ दूष्य (=राजाके साथ विरोध रखने वाले मुख्य) पुरुषोंके द्वारा इसप्रकार सेनाके बढ़ानेका 'अत्यावाप' कहते हैं ॥ ३४ ॥

परावापात्प्रत्यावापादाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः
सैन्यानामावापः कार्यः ॥ ३५ ॥ रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो
व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

शत्रु अपनी सेनामें जितना आवाप या प्रत्यावाप करे उसने चौगुनेसे लगाकर अठगुने तक, विजिगीषु अपनी सेनामें आवाप करे। अथवा अपनी शक्तिके अनुसार जितना संभव होसके, उतनेही आवाप आदिके द्वारा अपनी सेनाको बढ़ाये ॥ ३५ ॥ रथोंकी व्यूहरचनाके अनुसारही हाथियोंकी व्यूहरचनाका भी व्याख्यान समझलेना चाहिये ॥ ३६ ॥

व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्चानाम् ॥ ३७ ॥ चक्रान्तयोर्हस्तिनः
पार्श्वयोरश्वमुख्या रथा उरस्ये ॥ ३८ ॥ हस्तिनामुरस्यं रथानां
कक्षावश्चानां पक्षाविति मध्यभेदी ॥ ३९ ॥ विपरीतोऽन्तर्भेदी ॥ ४० ॥

अथवा हाथी रथ और घोड़ोंको मिलाकर व्यूहरचना कीजाये ॥ ३७ ॥ उस रचना का प्रकार यह है:—सेनाके अन्त अर्थात् सामने दोनों ओर हाथियोंको खड़ा किया जाये; पिछले हिस्सेमें दोनों ओर बढ़िया घोड़ोंको खड़ा किया जाये; और उरस्य अर्थात् मध्यभागमें रथोंको खड़ा किया जाये। (पक्ष स्थान में अर्थात् अगले हिस्सेमें दोनों ओर हाथियोंको खड़े करनेके कारण इस व्यूहरचनाका 'पक्षभेदी' भी एक विशेष नाम है) ॥ ३८ ॥ इसी व्यूह रचनाका एक और प्रकार यह भी है:—हाथियोंको मध्यमें, रथोंको पीछेकी ओर, और घोड़ोंको आगेकी ओर रखा जाये; इस व्यूहरचनामें हाथियोंको मध्यमें रखनेके कारण, इसका विशेष नाम 'मध्यभेदी' होता है ॥ ३९ ॥ इससे विपरीत व्यूहरचनाका नाम 'अन्तर्भेदी' होता है। अर्थात् हाथियोंको पीछेकी ओर रखना; मध्यमें घोड़े और आगेकी ओर रथोंको रखना। इसका नाम 'अन्तर्भेदी' इसी लिये है, कि इस व्यूहमें हाथियोंको अन्त अर्थात् पक्षमें रखा जाता है ॥ ४० ॥

हस्तिनामेव तु शुद्धः ॥ ४१ ॥ सांनाखानामुरस्यर्मापवाहानां
जघनं व्यालानां कोट्याविति ॥ ४२ ॥

केवल हाथियोंके ही बनाये हुए ब्यूहको शुद्ध कहा जाता है, अर्थात् इसमें घोड़े आदिका मिश्रण नहीं होता ॥ ४१ ॥ इन हाथियोंमेंसे जो शुद्धके योग्य (=साक्षात्) हाथी हों, उनको उरस्य अर्थात् मध्यभागमें रक्खा जावे। जो हाथी राजाकी सवारी आदि कं हों, उनको कक्ष अर्थात् पिठले हिस्सेमें रक्खा जावे। इसी प्रकार जो हाथी दुष्ट या उन्मत्त हों, उनको अगले दोनों हिस्सोंमें नियुक्त किया जावे। यहां तक हाथियोंके शुद्ध ब्यूहके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ ४२ ॥

अश्वब्यूहो वर्मिणा।मुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति ॥ ४३ ॥
पत्तिब्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः ॥ ४४ ॥

घोड़ोंके शुद्ध ब्यूहमें घोड़ोंको निम्न लिखित रीतिसे खड़ा किया जावे:—
कवचसे युक्त घोड़ोंको उरस्य अर्थात् मध्यस्थानमें खड़ा किया जावे; और कवच रहित घोड़ोंको पक्ष (सामने की ओर दोनों भागोंमें) तथा कक्षमें (पीछे का ओर दोनों भागोंमें) खड़ा किया जावे ॥ ४३ ॥ इसी तरह पैदल सेनाके शुद्ध ब्यूहमें, पैदल सेनाको इस प्रकार खड़ा किया जावे:—कवच पहि-
नने वाले सिपाहियोंको आगेकी ओर दोनों हिस्सोंमें, और धनुर्धारी सिपाहियों को पीछेकी ओर दोनों हिस्सोंमें खड़ा किया जावे। (उरस्यमें कैसे सिपाहियों को खड़ा किया जाय, यह इस सूत्रमें निर्देश नहीं किया गया; प्रकरणानुसार यही समझना चाहिये, कि अन्य साधारण सिपाहियोंको मध्यभागमें खड़ा किया जावे)। यहां तक हाथी घोड़े तथा पैदल सेनाओंके शुद्ध ब्यूहोंका पद्या-
क्रम निरूपण करदिया गया ॥ ४४ ॥

पत्तयः पक्षयोरश्वाः पार्श्वयोर्हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्पर-
ब्यूहवेशेन वा विपर्यास इति व्यङ्ग्यचलविभागः ॥ ४५ ॥ तेन
त्रयङ्ग्यचलविभागो व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

त्रिधनुर्ब्यूहमें सेनाके दो २ भागोंको लेकर इसप्रकार ब्यूहरचना की-
जासकती है:—पैदल सिपाहियोंको आगे की ओर दोनों भागोंमें खड़ा किया जावे, तथा घोड़ोंको पिठले दोनों हिस्सोंमें (अथवा हाथियोंको पीछेकी ओर दोनों भागोंमें, और रथोंको आगे की ओर)। अथवा शत्रु की ब्यूहरचनाके अनुकूल (अर्थात् जित तरह की ब्यूहरचना करनेसे शत्रुका मुकाबला अच्छी तरह किया जासके, ऐसा) इसमें विपर्यय कर लेवे। इस तरह सेनाके दो

अंगों को लेकर तीन प्रकारका व्यूहविभाग किया जा सकता है ॥ ४५ ॥ इसी के अनुसार सेनाके तीन अंगों को लेकर भी व्यूहरचना का विभाग समझ लेना चाहिये । यहाँ तक पक्ष कक्ष तथा उरस्योके रूपमें सेना की संख्याके अनुसार व्यूहविभाग का वर्णन कर दिया गया ॥ ४६ ॥

दण्डसंपत्सारबलं पुंसाम् ॥ ४७ ॥ हस्त्यश्वयोर्विशेषः—कुलं जातिः सत्त्वं वयःस्थिता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुद-
प्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचारतेति ॥ ४८ ॥

अब सार और फल्गु सेना का विभाग किस प्रकार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा—जो पैदल सेना पितृपैतामह क्रमसे लगातार चली आने वाली, निरय तथा वशमें रहने वाली हो, उसको सारबल अर्थात् सारभूत सेना कहा जाता है ॥ ४७ ॥ हाथी और घोड़ोंमें इतना और विशेष समझना चाहिये—कुल, जाति, धीरता, कार्य करने योग्य आयु, दारीरिकबल, आवश्यक ऊँचाई और चौड़ाई आदि (= वर्ष्म), वेग, पराक्रम (=अथवा तिरस्कार का न सहना), सुशिक्षा (युद्ध सम्बन्धी शिक्षाओं का होना) स्थिरता (अर्थात् प्रहार होने परभी अपने कार्यसे न हटना), उदप्रता (सदा-ऊपर की मुँह उठाकर रखना), सवार की आज्ञामें रहना, अन्य शुभलक्षण और शुभचेष्टाओंसे युक्त होना, इत्यादि गुणोंसे युक्त हाथी और घोड़े 'सारबल' समझे जाते हैं ॥ ४८ ॥

पत्त्यश्वरथद्विपानाम् सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत् ॥ ४९ ॥
द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ ५० ॥ अनुलोमनुसारम्
॥ ५१ ॥ प्रतिलोमं तृतीयसारम् ॥ ५२ ॥ फल्गु प्रतिलोमम्
॥ ५३ ॥ एवं सर्वमुपयोगं गमयेत् ॥ ५४ ॥

पैदल घोड़े रथ तथा हाथियोंके सारभूत बलके एक तिहाई हिस्से को मध्यभागमें स्थापित किया जाये ॥ ४९ ॥ बाकी दो तिहाई हिस्सोंको दोनों ओर पक्षमें और दोनों ओर कक्षमें नियुक्त किया जावे ॥ ५० ॥ यह सबसे उत्तम सेना के रण करने का प्रकार बताया गया, जो सेना उससे कुछ न्यूनशक्ति रखती हो, उसको 'अनुसार' कहा जाता है । ऐसी सेनाको सारबलके पीछे की ओर खड़ा करे ॥ ५१ ॥ इससे भी कुछ न्यून शक्ति वाली 'तृतीयसार' सेनाको पहिली सेनासे उलटा अर्थात् सारबलके आगे की ओर खड़ा करे । यह सारबल के रण करने का प्रकार बताया गया ॥ ५२ ॥ फल्गुबलमें (अर्थात् जो सेना तृतीयसारसे भी निर्दल हो, या जिसमें पितृपैतामह, निरय, वश्य, आदि गुण

न हों, उसको फल्गुबल कहा जाता है, ऐसे बलको) तृतीयसार सेनाके भी भागे खड़ा किया जावे ॥ ५३ ॥ इसप्रकार सब तरह की सेनाओंको उपयोग में लावे ॥ ५४ ॥

फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगोभिहुतो भवति ॥ ५५ ॥ सार-
बलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात् ॥ ५६ ॥ जघने तृतीय-
सारं, मध्ये फल्गुबलमेतत्सहिष्णु भवति ॥ ५७ ॥

फल्गुबलको पक्षस्थानमें खड़ा करके लड़ानेपर, शत्रुके आक्रमणका वेग उसीपर शांत होजाता है। तात्पर्य यह है, कि यदि फल्गुबलका नाश भी होजाय, तो उससे इतनी हानि नहीं, जितनी कि मारबलके नाश होनेसे होसकती है। इसलिये फल्गुबलको पक्षस्थानमें ही रखें ॥ ५५ ॥ यदि सारबलको भागे कियाजावे, और कोटी अर्थात् किनारोंमें 'अनुसार' बलको नियुक्त कियाजावे ॥ ५६ ॥ पीछेकी ओर वक्षभागमें 'तृतीयसार' सेनाको खड़ा कियाजावे, तथा मध्यमें फल्गुसेनाको खड़ा किया जावे। इसप्रकार सब सेनाओंको खड़ा करके भी एक व्यूहकी रचना फाजती है। यह व्यूह, शत्रुके आक्रमणका सहन करनेवाला होता है। अर्थात् शत्रुके आक्रमणसे इस प्रकारके व्यूह में खड़ीहुई सेना का पराजय नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्षोरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा
प्रेहरत् ॥ ५८ ॥ शेषः प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५९ ॥

पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें पहिले व्यूहकी ठीक २ स्थापना करके; फिर सेनाके एक अंगके द्वारा अथवा दो अंगोंके द्वारा शत्रुपर आक्रमण करे ॥ ५८ ॥ और सेना के शेष अंगों से, शत्रु के आक्रमण को रोके ॥ ५९ ॥

यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यथं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा
तत्प्रभृतसारेणाभिह्न्यात् ॥ ६० ॥ यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्वि-
गुणसारेणाभिह्न्यात् ॥ ६१ ॥ यदङ्गमल्पसारमात्मनस्तद्गुह्यो-
पचिनुयात् ॥ ६२ ॥ यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत
यतो वा भयं स्यात् ॥ ६३ ॥

शत्रुकी जो सेना दुर्बल, हाथी घोड़ोंसे रहित, दूष्य अमात्योंसे युक्त तथा उपजाप कीहुई (अर्थात् भेदवालीहुई) हो, उसको बहुतसी साभूत

सेनाके द्वारा नष्ट कर डाले ॥ ६० ॥ और शत्रुकी जो सेना सारभूत हो, उसको अपनी दुगनी सारभूत सेनाके द्वारा नष्ट करडाले ॥ ६१ ॥ अपनी सेनाका जो अंग अल्पसार (= थोड़ी शक्ति भावा) हो, उसको बहुतसी सेनाके साथ युक्त करदे । अर्थात् उसकी सहायताके लिये, अपनी बहुतसी सेना उसके साथ लगादे ॥ ६२ ॥ जिस ओरसे शत्रुकी सेनाका अपचय (क्षय=विनाश) होरहा हो, उस ही के समीप अपनी सेनाकी व्यूह रचना करे । तात्पर्य यह है, कि शत्रु जिस ओरसे दुर्बल हो, उस ओरसे ही उसपर आक्रमण करे । अथवा जिस ओरसे अपने ऊपर आक्रमण होनेका भय हो, उस ओरसे व्यूहरचना करे ॥ ६३ ॥

अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो
गोमूत्रिका मण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वभ्यां
पृष्ठतो भय्ररक्षा भग्नानुपात इत्यश्वयुद्धानि ॥ ६४ ॥

अब इसके भागे घोड़े हाथी रथ तथा पैदल सेनाओंके युद्धोंका निरूपण किया जायगा । सबसे पहिले घोड़ोंके युद्धोंका निरूपण करते हैं:—
अभिसृत (अपनी सेनासे शत्रुकी सेनाकी ओर जाना), परिसृत (शत्रु की सेनाके चारों ओर चोट पहुंचाते हुए घूमना), अतिसृत (शत्रुकी सेनाको बीचसे छिन्न भिन्न करके सुईकी तरह चले जाना), अपसृत (उसी मार्गसे फिर दुबारा निकलना), बहुत से घोड़ोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको उन्मथित करके फिर उनका इकट्ठा होजाना, दो ओरसे सुईके समान मार्ग बनाकर जाना, गोमूत्रिका (जी के मूत्रकी तरह धारागतिसे जाना), मण्डल (शत्रु की सेनाके किसी एक देशको काटकर चारों ओरसे उसे घेरलेना), प्रकीर्णिका (सब ही चारोंको मिलाकर प्रयोग करना), अनुवंश (शत्रुसेनाके अभिमुख हुई २ अपनी सेनाका अनुवर्तन करना), नष्ट होतीहुई अपनी सेनाकी, आगे पीछे तथा इधर उधरसे घूमकर रक्षा करना (=भयारक्षा), छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाका पीछा करना; ये तरह प्रकारके घोड़ोंके युद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां
वा घातः ॥ ६५ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभञ्जनमवस्कन्दः
सौप्तिकं चैति हस्तियुद्धानि ॥ ६६ ॥

प्रकीर्णिकाको छोड़कर घोड़ोंके दोष सब युद्ध, विस्त्रे हुए या इकट्ठे हुए सेनाके चारों ओरोंका हनन करना ॥ ६५ ॥ पक्ष कक्ष तथा उरस्परे

लक्ष्मी हुई सेनाका भयन करना, शत्रुकी सेनाकी कहींसे निर्यलता देखकर उसपर प्रहार करना, और सोते शत्रुओंको मार डालना; ये सब हाथियोंके युद्ध होते हैं ॥ ६६ ॥

उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयान -
स्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि ॥ ६७ ॥ सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशु-
दण्डथेति पत्तियुद्धानि ॥ ६८ ॥

उन्मथ्यावधान (बहुतसे हाथियोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको उन्मथित करके फिर उनका इक्ठ्ठा हो जाना) को छोड़कर शेष सब हाथियोंके युद्ध, अपने योग्य भूमिमें ठहरकर शत्रुपर आक्रमण करना, शत्रु सेनाको हरावर भाग जाना, अपनी रक्षा करके बैठे हुए शत्रुके चारों ओर घेरा डालकर उसके साथ युद्ध करना; ये सब रथोंके युद्ध कहते हैं ॥ ६७ ॥ सब देश और सब कालोंमें हाथियोंका धारण करना, और चुपचाप शत्रुसेनाका नाश करना, ये सब पैदल सेनाओंके युद्ध होते हैं ॥ ६८ ॥

एतेन विधिना व्यूहानोजान्युग्मांश्च कारयेत् ।

विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥ ६९ ॥

द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत्प्रतिग्रहे ।

भिन्नसंघातनार्थं तु न युध्येताप्रतिग्रहः ॥ ७० ॥

इति सांग्रामिके दशमे अधिकरणे पक्षकक्षोरस्वानां यलाप्रतो व्यूहविभागः,

सारफाल्गुयलविभागः, षत्पञ्चरथहस्तियुद्धानि च पञ्चमो अध्यायः ॥ ५ ॥

आदित्यमस्मिंश्चतुः ॥ ११३ ॥

इस विधिसे विजिगीषु, ओज (अयुग्म) तथा युग्म व्यूहोंकी रचना करे । अपने पास हाथी घोड़े रथ तथा पैदल, इन सेनाके चारों ओरोंकी जितनी सम्पत्ति हो, उसहीके अनुकूल अपने व्यूहोंकी रचना करे ॥ ६९ ॥ युद्ध प्रारम्भ हो जानेपर राजा सेनाके पिछले हिस्सेमें दो सौ धनुषके फासले पर ठहरे । ऐसा करनेसे शत्रुके द्वारा जिन भिन्न की हुई अपनी सेनाको राजा फिर इकट्ठी कर सकता है । इसलिये सेनाके पृष्ठ भागका आश्रय लिये बिना राजा कदापि युद्ध न करे । (किसी पुस्तकमें 'भिन्नसंघातनार्थं तु' के स्थानपर 'भिन्नसंघातन तरमात्' भी पाठ है । अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ ७० ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें पाँचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

१५८, १५९ प्रकरण

दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहत-
व्यूह; इनके प्रकृतिव्यूहों और विकृति-
व्यूहोंकी रचना; तथा उपर्युक्त दण्डादि-
व्यूहोंके प्रतिव्यूहकी स्थापना ।

{ इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें दण्डव्यूह
आदि चार प्रकारके व्यूहोंकी रचनाका प्रकार बताया जायगा ।
दूसरे प्रकरणमें इन उपर्युक्त व्यूहोंके मुकाबलेके लिये दूसरे
व्यूहोंकी स्थापनाका कथन किया जायगा ।

पक्षावुरस्य प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः ॥ १ ॥ पक्षौ
कक्षावुरस्य प्रतिग्रह इति बार्हस्पत्यः ॥ २ ॥

पक्ष अगले दोनों ओरके हिस्से), उरस्य (मध्यभाग) ओर प्रति-
ग्रह (पिछला हिस्सा) ये चार ही अवयव व्यूहमें होते हैं, इस प्रकारका
व्यूहविभाग उशना (शुक्र) आचार्यने किया है ॥ १ ॥ पक्ष, कक्ष । पिछले
दोनों ओरके दाहिस्ते), उरस्य और प्रतिग्रह ये छ अवयव व्यूहमें होने
चाहियें; इसप्रकारका व्यूहविभाग वृहस्पति आचार्यने किया है ॥ २ ॥

प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोः दण्डभोगमण्डलासंहताः प्रकृति-
व्यूहाः ॥ ३ ॥ तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः ॥ ४ ॥ समस्तानामन्वावृ-
त्तिर्भोगः ॥ ५ ॥ सरतां सर्वतोवृत्तिः मण्डलः ॥ ६ ॥ स्थितानां
पृथगनीकवृत्तिरसंहतः ॥ ७ ॥

शुक्र और वृहस्पति दोनों ही आचार्योंके मतमें, पृथग् २ पक्ष कक्ष
तथा उरस्य स्थानोंमें खड़ी होनेवाली सेनाके दण्ड भाग मण्डल तथा असंहत
नामक चार प्रकारके व्यूह होते हैं । ये व्यूह प्रकृतिव्यूहके नामसे कहे जाते
हैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे, सेनाकी तिरछे खड़ा करके जो व्यूह बनाया जाय, उसे
'दण्डव्यूह' कहते हैं ॥ ४ ॥ शुक्रके मतसे उपर्युक्त चार अवयवों, और वृह-
स्पतिके मतसे उपर्युक्त छः अवयवोंका उगातार कई धार घुमाव डालकर जो
व्यूह बनाया जाय, उसे 'भोगव्यूह' कहते हैं ॥ ५ ॥ शत्रुकी सेनाकी ओर

जाती हुई सेनाओंका चारों ओरसे घिरकर शत्रुपर आक्रमण करना 'मण्डल' नामक व्यूह होता है ॥ ६ ॥ शत्रुकी ओर चलनेसे पहिले, चार या छः दहरी हुई सेनाओंको, अपने आपको एक दूसरे से पृथक् २ दिखलाते हुये शत्रुपर आक्रमण करना 'असंहत' नामक व्यूह कहाता है ॥ ७ ॥

पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः ॥ ८ ॥ स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः ॥ ९ ॥ स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः ॥ १० ॥ स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः ॥ ११ ॥ पक्षावस्थाप्योरस्याभिक्रान्तः श्येनः ॥ १२ ॥ विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च ॥ १३ ॥

ऊपर जो लक्षण व्यूहोंके किये गये हैं, वे शुक्र और बृहस्पतिके मतसे किये गये हैं; अब व्यूहके कक्ष अवयवको न मानने वाले शुक्राचार्यके मतके विरुद्ध, दण्ड आदि व्यूहोंका अपने मतके अनुकूल लक्षण किया जाता है:- कक्ष पक्ष तथा उरस्य इन पांचों बराबर २ सेनाओंके द्वारा, स्थानगमनादि पूर्वक ठीक २ किया जाता हुआ व्यूह 'दण्डव्यूह' कहाता है। यह दण्डव्यूह, प्रकृतिव्यूह होता है; इसके विकृतिव्यूहोंका अब निरूपण करते हैं:- ॥ ८ ॥ जब कक्ष भागोंकी ओरसे शत्रुकी सेनापर आक्रमण कियाजाय, तो उस ही दण्डव्यूहको 'प्रदर' नामक व्यूह कहाजाता है ॥ ९ ॥ जब कि पक्षस्थित सेना मुड़कर, शत्रुकी सेनापर चारकरे, तब इस अवस्थामें यह दण्डव्यूह ही 'दृढक' नामक व्यूह कहाता है ॥ १० ॥ पक्षस्थित सेना जब अत्यधिक वेगसे शत्रुकी सेनामें घुसजावे, तब यह दृढक व्यूह 'असह्य' नामक व्यूह कहाता है ॥ ११ ॥ दोनों पक्षोंको अपने २ स्थानपर स्थापित करके उरस्यके द्वारा उशुकी सेनाकी ओर आक्रमण करना 'श्येन' नामक व्यूह कहा जाता है ॥ १२ ॥ इन उपर्युक्त प्रदर आदि चारों व्यूहोंसे सर्वथा विपरीत व्यूह यथाक्रम चाप चापकुक्षि प्रतिष्ठ और सुप्रतिष्ठ कहे जाते हैं ॥ १३ ॥

चापपक्षः सञ्जयः ॥ १४ ॥ स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः ॥ १५ ॥ स्थूलकर्णपक्षः स्थूलकर्णः ॥ १६ ॥ द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः ॥ १७ ॥ त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुसः ॥ १८ ॥ विपर्यये ज्ञपास्यः ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची ॥ २० ॥ द्वौ दण्डौ वलयः ॥ २१ ॥ चत्वारो दुर्जय इति दण्डव्यूहाः ॥ २२ ॥

जिस व्यूहके पक्ष चापके समान हों, वह 'सशर' नामक व्यूह होता है ॥ १४ ॥ जब कि उरस्यके द्वारा क्षत्रुपर आक्रमण करके उसकी सेनाके अन्दर प्रवेश करदिया जावे, उस समय वह दण्डव्यूह, 'विजय' नामक व्यूह कहाता है ॥ १५ ॥ बड़े कानके समान, जिस व्यूहके पक्ष हों, वह 'स्थूलकर्म' नामक व्यूह कहाता है ॥ १६ ॥ विजय व्यूहकी अपेक्षा पक्षस्थानोंमें जो हुगना बड़ा हो, वह 'विशालविजय' नामक व्यूह कहाता है ॥ १७ ॥ जिस व्यूहके पक्ष, दोनों कक्ष और उरस्य तीनोंकी बराबर हों, वह 'चमूमुख' नामक व्यूह कहाता है ॥ १८ ॥ और इससे विपरीत अर्थात् जिस व्यूहके कक्ष, दोनों पक्ष और उरस्यकी बराबर हों, वह 'क्षपास्य' नामक व्यूह कहाजाता है ॥ १९ ॥ जिस व्यूहमें शत्रुकी ओरकी लंबी होकर सेना आक्रमण करे, वह दण्डव्यूह 'सूचीव्यूह' कहाजाता है ॥ २० ॥ जब कि पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें दो दण्डव्यूहोंको तिरछा खड़ा करदिया जावे, तब उसके 'वलद' कहाजाता है ॥ २१ ॥ यदि इसी प्रकार चार दण्डव्यूह खड़े करदिये जायें तब उसको 'दुर्जय' कहते हैं । यदांतक दण्डव्यूहोंका निरूपण करदिये गये ॥२२॥

पक्षकक्षोरस्यैर्विपमं वर्तमानो भोगः, स सर्पसारी गोमूत्रिका वा ॥ २३ ॥ स मुग्धोरस्यो दण्डपक्षः शकटः ॥ २४ ॥ विपर्यये मकरः ॥ २५ ॥ हस्त्यधरयैर्व्यतिकीर्णः शकटः पारिपतन्तक इति भोगव्यूहाः ॥ २६ ॥

कक्ष पक्ष आदि स्थानोंके द्वारा विपम संख्यामें रचा जाता हुआ व्यूह 'भोगव्यूह' कहाता है । पक्ष आदिमें समानता रखनेवाला 'दण्डव्यूह' पहिले कहा जाचुका है । इस व्यूहमें सर्पके समान कुटिल स्थिति होनेके कारण पक्ष आदि स्थानोंमें सेनाओंकी तादाद न्यूनधिक होती है । इसीलिये इसको 'भोगव्यूह' कहाजाता है । यह भोगव्यूह या तो सर्पके समान इकट्ठा एक रूपमें ही खड़ा किया जाता है, या गोमूत्रके समान विविध रूपोंमें खड़ा किया जाता है; इसलिये भोगव्यूहके ये दो भेद होते हैं—एक सर्पसारी, दूसरा गोमूत्रिका ॥ २३ ॥ पंडी भोगव्यूह उस समय 'शकट' नामक व्यूह कहाता है, जबकि उसका मध्यभाग सुगम अर्थात् नौ भागोंमें विभक्त दण्डके आकारके समान हो, और दोनों पक्ष एक २ दण्डके समान लित होवें ॥ २४ ॥ इससे विपरीत होनेपर उस ही को 'मकरव्यूह' कहाजाता है ॥ २५ ॥ हाथी घोड़े और रथोंमें भरेहुए (चक्र) शकट व्यूहको ही 'पारिपतन्तक' व्यूह कहा जाता है । यदांतक भोगव्यूहोंका निरूपण करदिया गया ॥ २६ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः ॥ २७ ॥ स सर्वतो-
मुखः सर्वतोभद्रो ष्टानीको दुर्जय इति मण्डलव्यूहाः ॥ २८ ॥

जिस व्यूहमें कक्ष पक्ष और उरस्य इकट्ठे मिलजावें, उसको 'मण्डल-
व्यूह' कहते हैं ॥ २७ ॥ जबकि चारों ओरसे शत्रुके ऊपर आक्रमण किया
जाय, तब उस मण्डलव्यूहको 'सर्वतोभद्र' व्यूह कहा जाता है। इसी प्रकार
जब उसमें आठ सेना मिलकर (दो उरस्यमें, दो दो दोनों पक्षस्थानोंमें
और दो दोनों कक्ष स्थानोंमें) कामकी, अर्थात् शत्रुपर एकपाय आक्रमण
करे, तब उसे 'दुर्जय' नामक व्यूह कहा जाता है। यहां तक मण्डलव्यूहोंका
निरूपण कर दिया गया ॥ २८ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामसंहतादसंहतः ॥ २९ ॥ स पश्चानीका-
नामाकृतिस्थापनाद्ब्रजो गोधा वा ॥ ३० ॥ चतुर्णांमुद्यानकः
काकपदी वा ॥ ३१ ॥ त्रयाणामर्धचन्द्रिकः कर्कटकशृङ्गी वेत्य-
संहतव्यूहाः ॥ ३२ ॥

पक्ष आदि पांचों स्थानोंमें स्थित सेनाओंके, शत्रुपर आक्रमण करनेमें
असंहत (आपसमें न मिलना) होनेसे 'असंहत' नामक व्यूह कहा जाता है
॥ २९ ॥ यह दो प्रकारका होता है, एक 'ब्रज' दूसरा 'गोधा'। जबकि पक्ष आदि
पांचों स्थानोंकी सेनाओंको ब्रजके आकारमें खड़ा किया जावे, तब उसे 'ब्रज'
और जब उन्हें गोधा (गोह=एक जलरुा जानवर)के आकारमें खड़ा किया जावे,
तब 'गोधा' कहते हैं ॥ ३० ॥ जबकि दोनों पक्ष उरस्य तथा प्रतिग्रह इन
चार स्थानोंमें ही उस दंगसे सेनाको खड़ा किया जावे, तब उस असंहत
व्यूहको 'उद्यानक' अथवा 'काकपदी' कहा जाता है ॥ ३१ ॥ जब दोनों पक्ष,
और उरस्य तथा प्रतिग्रह इनमेंसे कोई एक, इन तीन स्थानोंमें ही सेनाको
स्थापित किया जाता है, तब उस व्यूहको 'अर्धचन्द्रिक' अथवा 'कर्कटक-
शृङ्गी' कहा जाता है। यहां तक असंहतव्यूहों का निरूपण कर दिया
गया ॥ ३२ ॥

रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः ॥ ३३ ॥ पत्तयोऽथा
रथा हस्तिनश्चानुपृष्ठमचलः ॥ ३४ ॥ हस्तिनोऽथा रथः पत्त-
यश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः ॥ ३५ ॥

इन उपर्युक्त भेदोंसे अतिरिक्त, व्यूहोंके निम्नलिखित ओर भी तीन
भेद हैं:—जिस व्यूहके मध्यभागमें रथ हों, कक्ष स्थानोंमें हाथी, पिठके

द्विसेमें (अर्थात् प्रतिग्रह स्थानमें) घोड़े और परिशेष होनेसे पक्ष स्थानोंमें पैदल हों, उस व्यूहको 'अरिष्ट' कहते हैं । क्योंकि इसमें किसी तरहका भयुक्त नहीं होता ॥ ३३ ॥ और जिस व्यूहमें पैदल पक्ष स्थानोंमें, घोड़े उरस्य स्थानोंमें, रथ कक्ष स्थानोंमें और हाथी प्रतिग्रह स्थानमें लड़े किसे जावें, उस व्यूहको 'अचल' कहते हैं ॥ ३४ ॥ तथा जिस व्यूहमें हाथी पक्ष स्थानोंमें, घोड़े उरस्य स्थानमें, रथ कक्ष स्थानोंमें और पैदल सेना प्रतिग्रह स्थानमें नियुक्त हों, उस व्यूहको 'अप्रतिहत' कहा जाता है ॥ ३५ ॥

तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत् ॥ ३६ ॥ दृढकमसद्येन ॥ ३७ ॥
श्येन चापेत् ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन ॥ ३९ ॥ संजयं विज-
येन ॥ ४० ॥ स्थूलकर्णं विशालविजयेन ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तकं
सर्वतोभद्रेण ॥ ४२ ॥

इसके पहिले सब ताहके व्यूहोंका निरूपण करदिया गया । अब उनका मुकाबला करनेवाले व्यूहोंका निरूपण किया जायगा; अर्थात् किस २ व्यूहका कौन २ से व्यूहसे प्रतिकार करना चाहिये, इस बातका निरूपण किया जायगा;—उन व्यूहोंमें से 'प्रदर' नामक व्यूहको दृढक व्यूहसे नष्ट करे ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार दृढक व्यूहको असद्य व्यूहके द्वारा नष्ट करे ॥ ३७ ॥ श्येनव्यूहको चापव्यूहके द्वारा; ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठ व्यूहको सुप्रतिष्ठ व्यूहके द्वारा; ॥ ३९ ॥ संजय व्यूहको विजय व्यूहके द्वारा; ॥ ४० ॥ स्थूलकर्ण व्यूहको विशालविजय व्यूहके द्वारा; ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तक व्यूहको सर्वतोभद्र व्यूहके द्वारा ॥ ४२ ॥

दुर्जयेन सर्वान्प्रतिव्यूहेत् ॥ ४३ ॥ पत्न्यश्वरथद्विपानां पूर्वं
पूर्वमुत्तरेण घातयेत् ॥ ४४ ॥ हीनाङ्गमधिकान्जेन चेत् ॥ ४५ ॥

और दुर्जय व्यूहके द्वारा सब ही व्यूहोंको नष्ट करे ॥ ४३ ॥ पैदल घोड़ा रथ और हाथी इन सेनाके अंगोंमें से पहिले २ अंगको, अगले २ अंगसे नष्ट करे ॥ ४४ ॥ और हीन अंगको (अर्थात् शक्ति आदि से रहित अंगको) अधिक अंगसे (अर्थात् शक्तिसंपन्न अंगके द्वारा) नष्ट करे ॥ ४५ ॥

अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः ॥ ४६ ॥ पदिकदशकस्यैकः
सेनापतिः ॥ ४७ ॥ तद्दशकस्यैको नायक इति ॥ ४८ ॥

अब सेना संचालक अधिकारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जाता है;—दश सेनाओंके एक पति अर्थात् आधिकारिकी 'पदिक' कहते हैं । इसका अभिप्राय यों समझना चाहिये;—सेनाङ्ग चार प्रकारके होते हैं, परन्तु यहाँपर

प्रधानभूत रथ और हाथी दो ही अंगोंका ग्रहण करना चाहिये । इसलिये दश रथ और दश हाथियोंका जो एक अधिकारी हो, उसीको 'पदिक' कहा जाता है । प्रत्येक रथ या हाथीके साथ कितने घोड़े और पैदल होते हैं, इसको जाननेके लिये देखो:—अधि० १०, अध्या० ५, सूत्र १०-१२ ॥ ४६ ॥ इसीतरहके दस पदिक अधिकारियोंके ऊपर एक सेनापति होता है ॥ ४७ ॥ और दस सेनापति अधिकारियोंके ऊपर एक नायक होता है ॥ ४८ ॥

स तूर्यधोपध्वजपताकाभिर्व्यूहाज्ञानां संज्ञाः स्थापयेत् ॥४९॥
अङ्गविभागे संघाते स्थाने गमने व्यावर्तने प्रहरणे च ॥ ५० ॥
समे व्यूहे देशकालयोगात्सिद्धिः ॥ ५१ ॥

वह सबसे प्रधान अधिकारी नायक, याजोंके विशेष २ शब्दोंके द्वारा अथवा ध्वजा पताकाओंके द्वारा, व्यूहमें खड़ी हुई सेनाओंके व्यवहारके लिये विशेष संज्ञाओं (चिन्हों=इशारों) की स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इन संज्ञाओंको सेनाके निम्नलिखित कार्योंमें काम लाया जावे—व्यूहमें खड़ी हुई सेनाके अंगोंको अवसर पड़नेपर विभक्त करनेमें, पिखरी हुई सेनाको इकट्ठी करनेमें, चलती हुई सेनाको रोकनेमें, खड़ी हुई सेनाको चलानेमें, आक्रमण करती हुई सेनाको लौटानेमें, और यथावसर आक्रमण कानेमें, इन इशारोंको काममें लाया जावे ॥ ५० ॥ बराबरकी व्यूहरचना होनेपर अर्थात् शत्रुसेना और अपनी सेनाकी समानता होनेपर देश (सम विषम आदि) काल (रात्रि दिन आदि) और सार (सौर्य विक्रम आदि) के योग (सम्बन्ध) से ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है । अर्थात् जिसको देशकाल आदिकी अनुकूलता होगी, वही उस युद्धमें विजय प्राप्त कर सकेगा ॥ ५१ ॥

दण्डैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तधातिभिः ।

मायाभिर्देवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूपणैः ॥ ५२ ॥

यन्त्र (जामदग्न्य आदि), उपनिषद्योग (ओपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए विष आदिके प्रयोग), छिपकर या मिलकर मारनेवाले तीक्ष्ण पुरुषों, शूल कपट, राजाके भाग्यके कथन, और हाथीके योग्य वेपोंसे ढके हुए रथोंके द्वारा शत्रुको घेचन किया जावे । (इसका अन्वय ५४ वें श्लोकमें समझना चाहिये, इसी तरह अगले श्लोक का भी) ॥ ५२ ॥

दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्फन्धावारप्रदीपनैः ।

कोटीजघनधातैर्वा दूतव्यञ्जनमेदनैः ॥ ५३ ॥

शत्रुके दृष्य पुरुषोंमें कोप उत्पन्न करने, भागें गौर्भाका सुण्ड खड़ा करने, छावनीमें भाग लगा देने, सेनाके भागें या पीछेके हिरसोंमें छापा मारने, दूतके घेपमें गुप्तचर पुरुषोंको शत्रुकी सेनामें भेजकर उनमें भेद डालनेसे भी शत्रुको विचलित करे ॥ ५३ ॥

दुर्गं दग्धं हृतं वा ते कोपः कुल्यः समुत्थितः ।

शत्रुराटविको वेति परस्योद्देशमाचरेत् ॥ ५४ ॥

तथा 'तेरे दुर्गमें भाग लगा दो गई है, तेरे दुर्गमें लूट मच गई है' अर्थात् तेरे दुर्गको अधीन कर लिया गया है, तेरे कुलका ही कोई पुरुष तेरे विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है, तेरा सामन्त शत्रु युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया है, अथवा तेरा आठविक शत्रु तेरे विरुद्ध साम्राज्य करनेके लिये सन्नद्ध हो चुका है' इन बातोंको कहकर भी विजिगीषु, शत्रुको उद्दिग्ध (वेचैन-रिग्न्) करे । क्योंकि स्वप्न ही जानेसे शत्रु शीघ्र ही वशमें आ जाता है ॥ ५४ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिपुः क्षिप्तो धनुष्मता ।

प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥ ५५ ॥

इति सांग्रामिके दशम अधिकरणे दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहानं, तस्य प्रतिव्यूह-स्थापनं च षष्ठो अध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुर्विंशच्छतः ॥ १३४ ॥

पृतावता कीटलीवस्थाभंशाखस्य सांग्रामिकं

दशममधिकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

युद्धसे मन्त्र बलवान् होता है, इस बातको अन्तिम श्लोकसे उप-संहार करते हुए कहते हैं:—धनुर्धारीके धनुषसे छोड़ा हुआ बाण, सम्भव है किसी एक भी पुरुषको मारे या न मारे । परन्तु बुद्धिमान व्यक्तिके द्वारा किया हुआ बुद्धिका प्रयोग, गर्भस्थित प्राणियोंको भी नष्ट कर देता है । इसलिये युद्ध की अपेक्षा बुद्धिको ही अधिक शक्तिस्वप्न समझना चाहिये ॥५५॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सांग्रामिक दशम अधिकरण समाप्त ।



संघवृत्त एकादश अधिकरण

पहिला अध्याय

१६०-१६१ प्रकरण ।

भेदके प्रयोग और उपांशुदण्ड ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें भेदक (भेद डालने वाले=संघका विश्लेष करने वाले) उपायोंके प्रयोगोंका निरूपण किया जायगा। दूसरे प्रकरणमें उपांशुदण्ड (=उपकर एकान्त में किसीका बंध करादेना, इस) का निरूपण किया जायगा ।

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः ॥ १ ॥ संघाहि संहत-
त्वादपृष्याः परेषाम् ॥ २ ॥ ताननुगुणान्भुञ्जीत सामदानाम्भ्याम्
॥ ३ ॥ विगुणान्भेददण्डाम्भ्याम् ॥ ४ ॥

संघलाभ, सेनालाभ और मित्रलाभ; इन सब ही लाभोंमें से संघलाभ उत्तम होता है ॥ १ ॥ क्योंकि इकट्ठा रहनेसे संघोंको, शत्रु दबा नहीं सकते ॥ २ ॥ यदि वे संघ अपने अनुकूल हों, तो विजिगीषु साम और दानके द्वारा उनका उपभोग करे। अर्थात् अपने अनुकूल कार्योंमें उनका उपयोग लेवे ॥ ३ ॥ यदि वे प्रतिकूल हों, तो भेद और दण्डके द्वारा उनका उपयोग करे ॥ ४ ॥

काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः ॥५॥
लिच्छविकव्रजिकमल्लकमद्रककुशुरकुरुपाञ्चालादयो राजशब्दोप-
जीविनः ॥ ६ ॥

ये संघ किनके दोबे हैं, इन बातका निरूपण इस सूत्रमें कियाजाता है:-काम्बोज और सुराष्ट्र (गुजरात) देशोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय आदि वर्गोंके (मूल सूत्रके आदि पदसे वैश्य आदिके वर्गोंका भी ग्रहण करलेना चा-
हिये) ही वे संघ होते हैं। ये लोग वार्ता (कृषि व्यापार आदि) और शस्त्रके द्वारा ही अपनी जीविका करते हैं ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त लिच्छविक व्रजिक

मल्लक मद्रक कुकुर कुर और पाञ्चाल भादि देशोंके, केवल नाममात्रको राजा कहलानेवाले पुरपोंके भी ये सघ होते हैं । (इनमें से लिच्छिविक और मजिक नामकी क्षत्रियोंकी जातियां पाटलिपुत्र वर्तमान पटनाके उत्तरकी ओरके देशोंमें रहा करती थीं । प्राकृतमें इन जातियोंको लिच्छवी और विज्जी कहते हैं । लिच्छवी क्षत्रियोंकी राजधानीका नाम 'यशालि' था, जिसके चिन्ह अभी तक भी पायेजाते हैं । मल्लक जाति भी पटनाके आस पास बसती थी । इनकी राजधानीका नाम 'पाया' था । मद्रक और कुकुर जातियां पञ्चाषके मध्य देशोंमें निवास करती थीं । मद्रक देशका, पञ्चाषी भाषाका अपभ्रंश नाम आजकल 'माझा' है । कुरदेश वर्तमान अम्बाला करनाल आदिके जिलोंका इलाका है । कञ्जौज आदिके प्रान्तोंको 'पाञ्चाल' कहते हैं । इन स्थानोंमें रहनेवाले क्षत्रिय आदि वर्गोंके ही ये सघ होते थे) ॥ ६ ॥

सर्वेषामासन्नाः सत्त्रिणः संघानां परस्परन्यङ्गद्वैपवैरकलह-
स्थानान्युपलभ्य क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः ॥ ७ ॥ अस्मै
त्वा विजल्पतीति ॥ ८ ॥ एवमुभयतः ॥ ९ ॥

इन सघ ही प्रकारके सघोंके समीप, सत्री (एक प्रकारके गुप्तचर) पुरुष रहें, और वे उन सब सघोंके परस्पर दोषोंको, तथा द्वेष (कठोर वाक्यों आदिके द्वारा प्रकट कियाहुआ क्रोध), वैर (अपकार आदिक कारण किसीके साथ झोह करना), और कलह स्थानोंको जानकर, धीरे २ उन्हें सामने लाकर उन सघोंमें ही परस्पर इसप्रकार भेद डालनेका उपक्रम करें ॥ ७ ॥ 'अमुक सघ तुम्हारी हस्तगत निन्दा करता है' यह कहकर उस सघको दूसरेसे झूठ उधर जाकर दोनोंको एक दूसरेसे भिन्न करदेवें ॥ ९ ॥

पद्धरोपाणां विद्याशिल्पशूतवैहारिकेष्व्याचार्यव्यञ्जना बालक-
लहानुत्पादयेयुः ॥ १० ॥ वेशशौण्डिकेषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः
संघमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ ११ ॥ कृत्य-
पक्षोपग्रहेण वा ॥ १२ ॥

एक दूसरेके साथ कुछ हुए २ सघोंके बालकोंवा विद्या शिल्प पूत तथा प्रभोत्तर आदिके विषयमें, आचार्यके घेपमें रहनेवाले गुप्तचर कलह उत्पन्न करादेवें ॥ १० ॥ अथवा वेशवा तथा सुरापान आदिमें आसक्त हुए २, सघके मुख्य मनुष्यों की उलटी प्रशंसा करवाकर, तीक्ष्णपुरुष, आपसमें ही उनका कलह उत्पन्न करा देवें ॥ ११ ॥ अथवा सघके मुख्य मनुष्योंके जो कृत्य

(दुद्र लुब्ध भीत तथा भवमानित देखो—अधि० १ अध्या० १४) इयक्ति ह्ये, उनको अपने अनुमूल बनाकर, फिर उनका ही संघोंके साथ कल उत्पन्न करादेयें ॥ १२ ॥

कुमारकान्निशिष्टच्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः
॥ १३ ॥

संघके कुमारोंमें जो अधिक योग्य वस्तुओंको लेकर सुखपूर्वक रहते हैं, उनके मुकाबलेमें छोड़ी योग्य सामग्रियोंको लेकर निर्माह करनेवाले संघ कुमारोंको भड़कायें । अर्थात् मंत्री उनको यह कहकर उत्तेजित करें कि वैसे ये भी कुमार और तुम भी कुमार, फिर ये तुममें अधिक सुख सामग्रियोंको उपभोग क्यों करते हैं ॥ १३ ॥

सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य
प्रतिपक्षवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ भिन्नानपवाहयेद्वा ॥ २० ॥

इस तरहके सबही कलहके अवसरों पर राजा, हीनपक्ष (जिसको सं-
घके साथ कोई पक्षपात न हो, ऐसे किसी संघके ही) पुरुषको, कोश और दण्ड
द्वारा अपने अनुकूल बनाकर, प्रतिपक्ष (शत्रु) के वध करनेमें नियुक्त कर
दे ॥ १९ ॥ अथवा संघके प्रतिकूल हुए २ उन पुरुषोंको संघसे वृष्ट कर
दे ॥ २० ॥

एकदेशे समस्तान्वा निवेश्य भूमौ चैपां पञ्चकुलीं दशकुलीं
वा कृप्यां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ एकस्था हि शस्त्रग्रहणसमर्थाः स्युः
॥ २२ ॥ समवाये चैपामत्ययं स्थापयेत् ॥ २३ ॥

अथवा किसी एक प्रदेशमें इन सबको इकट्ठा बसाकर, इनकी भूमिमें
रूपि करनेके योग्य पञ्चकुली या दशकुली गांवोंको बसावे। अर्थात् इनके पांच २
दस २ कुलोंके छोटे २ गांवोंको पृथक् २ बसावे ॥ २१ ॥ क्योंकि यदि इनको
एक साथही बसा दिया जायगा, तो सम्भव है, वे लोग फिर कभी विजिगीषुके
विरुद्ध हथियार उठानेमें समर्थ होजावें ॥ २२ ॥ इनकी आबादीके बीच २ में
योद्धी २ सेना भवश्य नियुक्त कीजावे ॥ २३ ॥

राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे
स्थापयेत् ॥ २४ ॥ कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गो राजलक्षण्यतां
संघेषु प्रकाशयेत् ॥ २५ ॥

अब नाममात्रको राजा कहलाये वाले संघोंको आपसमें भिन्न करनेके
द्वारा पताये जाते हैं:- राजा नामको धारण करने वाले लिच्छिवी आदि क्षत्रि-
घेरे हुए अथवा तिरस्कृत किये हुए, उच्च कुलोत्पन्न गुणी व्यक्तिको राज-
रूपमें स्थापित करे। अर्थात् 'मह राजपुत्र है' इस प्रकार विजिगीषु
प्रतिदि करे ॥ २४ ॥ और इससे सम्बन्ध रखने वाले दैवज्ञ (उभोतिपी)
सामुद्रिकशास्त्री गुरुय, इसको लिच्छिवी आदि संघोंमें, राजलक्षणोंसे युक्त
करे ॥ २५ ॥

संघमुख्यांश्च धर्मिष्ठानुपजवेत् ॥ २६ ॥ स्वधर्मममुष्य राज्ञः
वा श्रितारि वा प्रतिपद्यध्वमिति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षो-
धर्मिष्ठं दण्डं च प्रेषयेत् ॥ २८ ॥

द्वारा उन्माद युक्त बनावें । अर्थात् स्त्रियोंके फन्देमें फंसाकर उन्हें प्रमादी बनावें ॥ ४० ॥ जब उनमें से बहुतसे संघमुख्य स्त्रियोंकी कामना करनेलगे, तो किसी एकको कहीं विशेष स्थानपर खोंके मिलनेका संकेत करके, उस स्त्रीको वहां से अन्य किसी संघमुख्य पुरुषके द्वारा दूर करदेवे, या उससे ही उस स्त्रीका अपहरण करादेवें । तदनन्तर यहीं बहाना लेकर उन संघ-मुख्योंमें आपसमें ही झगड़ा पैदा करादेवें ॥ ४१ ॥ झगड़ा होनेपर तीक्ष्ण पुरुष अपना कामकरें; अर्थात् आपसमें झगड़ा करनेवाले उन संघमुख्य पुरुषोंमें से किसी एकको मारडालें ॥ ४२ ॥ तदनन्तर यह प्रसिद्ध करदें, कि इस कामी पुरुषको इसके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे कामुक पुरुष ने मारडाला है ॥ ४३ ॥

विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य स्त्री ब्रूयात् ॥ ४४ ॥

असौ मां मुख्यस्त्वयि जातकामां चाधत्ते ॥ ४५ ॥ तस्मिञ्जीवति
नेह स्थासामीति घातमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

यदि उन संघमुख्योंमें परस्पर झगड़ा होनेकी सम्भावना होनेपर एक उनमें से सहन करजावे; और दूसरेके साथ खोंके लिये झगड़ा करना न चाहे, तो स्वयं उसके पास भाकर इसप्रकार कहे: - ॥ ४४ ॥ अमुक संघमुख्य पुरुष, आपके अन्दर मेरी अभिलाषा होनेपर भी मुझे रोकता है । अर्थात् मैं आपको दिलसे चाहती हूँ, और वह इसमें बाधा पहुंचाता है ॥ ४५ ॥ उसके जीवित रहते हुए मैं यहां नहीं रह सकूंगी, अर्थात् आपके पास नहीं ठहर सकूंगी । इसप्रकार कहकर उसके वधका आयोजन करवादेवे ॥ ४६ ॥

प्रसहापहता घोषवन्तान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन
वातयेत् ॥ ४७ ॥ स्वयं वा रसेन ॥ ४८ ॥ ततः प्रकाशयेत्
॥ ४९ ॥ अमुना मे प्रियो हत इति ॥ ५० ॥

'अथवा बलात्कार अपहरण की हुई स्त्री, जंगलों या क्रीडागृहमें, अपहरण करनेवाले पुरुषको, रात्रिके समय तीक्ष्णपुरुषके द्वारा मरवाडाले । अथवा स्वयं ही विष आदि देकर उसे मारडाले ॥ ४८ ॥ और फिर घट प्रकट करे, कि. - ॥ ४९ ॥ अमुक प्रतिद्वन्द्वी कामुक पुरुषने मेरे प्यारेको मार डाला है । (अर्थात् उस संघमुख्यके मारनेमें अन्य किसी संघमुख्यका नाम लगादेवे) ॥ ५० ॥

जातकामं वा मिद्वयञ्जनः सांवननिकीभिरोपधीभिः संवा-
स्य रसेनातिसंधायापगच्छेत् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्नपक्रान्ते सस्त्रिणः
परप्रयोगमभिसंसृज्युः ॥ ५२ ॥

अथवा संघमुख्यकी, स्त्रीमें उत्कण्ठा उत्पन्न होजानेपर, सिद्धके वेपमें रहनेवाला गुप्तचर, वशीकरणके लिये उपयुक्त भीषणियोंके प्रधानसे, विष-मिश्रित भीषणोंके द्वारा उस संघमुख्य पुरुषको मारकर भागजावे ॥ ५१ ॥ उसके भाग जानेपर अन्य सत्री पुरुष, इस बातको प्रसिद्ध करदे, कि इसके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे कामी पुरुषने ही यह काम किया है । अर्थात् उसकी प्रेरणासे ही सिद्ध पुरुषने इसको विष देकर मारडाला है ॥ ५२ ॥

आख्यविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं वि-
वदमानाः संघमुख्यानुन्मादयेयुरिति ॥ ५३ ॥ अदितिकौशिक-
स्त्रियो नर्तकी गायना वा ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नान्गूढवेश्मसु रात्रि-
समागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्वध्या हरेयुर्वा ॥ ५५ ॥

धनी विधवा स्त्रियां, गूढाजीवा (सचवा भी दरिद्रताके कारण व्यभिचार आदिसे अपनी जीविका करने वाली स्त्रियां), अथवा कपटपूर्वक स्त्रीका घेप धारण करने वाले पुरुषही दायभाग तथा निक्षेप (अमानत) आदिके लिये विवाद करते हुए, संघ मुख्य पुरुषोंको उन्मादयुक्त बनावें । अर्थात् विवादके निर्णयके बहानेसे उनके पास जाकर उन्हें अपने वशमें करनेका यत्न करें ॥ ५३ ॥ अथवा अदितिस्त्रियां (तरह २ के देवताओंके स्त्रियोंको दिखाकर अपनी आजीविका करने वाली स्त्रियां), कौशिकस्त्रियां (संघोंको पकड़ने वाले सपैरोंकी स्त्रियां), वा नाचने गाने वाली स्त्रियांही जाकर संघ मुख्योंको अपने कन्देमें फंसावें ॥ ५४ ॥ जब संघमुख्य पुरुष इन स्त्रियोंकी बातोंमें आजायें, और उनसे समागम करनेके लिये किन्ही मिश्रित स्थानोंका संकेत करदे, तब उन छिपे हुए घरोंमें रात्रिके समय समागम करनेके लिये प्रविष्ट हुए २ संघमुख्य पुरुषोंको, तीक्ष्णपुरुष मारडालें; अथवा उनको बांधकर अपहरण करलेजावें ॥ ५५ ॥

सत्त्री वा स्त्रीलोलुपं संघमुख्यं प्ररूपयेत् ॥ ५६ ॥ अमु-
ष्मिन्प्राप्ते दरिद्रकुलमपसृतम्, तस्य स्त्री राजार्हा, गूढाणैनामिति
॥ ५७ ॥ गृहीतायामर्धमासानन्तरं सिद्धव्यञ्जनो दूष्यसंघमुख्यं
मध्ये प्रक्रीशेत् ॥ ५८ ॥ असौ मे मुख्यां भार्यां स्नुषां भगिनीं
दुहितरं वाधिचरतीति ॥ ५९ ॥

अथवा सत्री, स्त्रीलोलुप संघमुख्य पुरुषको इसप्रकार कहे:—॥ ५६ ॥
अमुक प्राममें एक दरिद्र कुलका पुरुष, जीविकाके लिये बाहर विदेशमें चला

गया है, उसको स्त्री राजाके योग्य है, आप इसको लेलेवें ॥ ५७ ॥ यदि वह संघमुख्य पुरुष, उस स्त्रीको लेलेवे, तो पन्द्रह दिनके बाद सिद्धके वेपमें एक दूष्य पुरुष (=राजाके साथ शगाथा करके रहने वाला पुरुष), संघमुख्यके बीचमें आकर इस प्रकार चिंत्तावे, अर्थात् शोर मचावे:- ॥ ५८ ॥ कि यह संघ-मुख्य पुरुष मेरी मुख्यभार्या, पुत्रभार्या, बहिन या लक्ष्मीको बलात्कार उपभोग करता है । अर्थात् भार्या आदि किसी एकका नाम लेकर वह आक्रन्दन करे ॥ ५९ ॥

तं चेतसंधो निगृहीयाद्राजैनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत्
॥ ६० ॥ अनिगृहीते सिद्धव्यञ्जनं रात्रौ तीक्ष्णाः प्रवासयेयुः
॥ ६१ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रक्रोशेयुः ॥ ६२ ॥ असौ ब्रह्महा
ब्राह्मणीजारश्चेति ॥ ६३ ॥

यदि इस बात पर संघ, उसको (संघमुख्य पुरुषको) गिरफ्तार कर-लेवे; तो विजिगीषु राजा, निगृहीत हुए २ उसको अपने और मिलाकर अर्थात् अपने अनुकूल बनाकर; विरोधी संघोंके मुक़बलेमें उसे युद्ध करनेके लिये खड़ा करदेवे ॥ ६० ॥ यदि संघ, उसको गिरफ्तार न करे, तो सिद्धके वेपमें आने वाले उस दूष्य पुरुषको, तीक्ष्ण पुरुष रातमें मार डालें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर स्वयं ही सिद्धके वेपमें आकर इसप्रकार कोलाहल मचावे:- ॥ ६२ ॥ यह संघमुख्य पुरुष ब्रह्महत्यारा है, और यह ब्राह्मणीके साथ जाटकर्म करता है । अर्थात् उस सिद्ध ब्राह्मणकी भार्याके साथ दुष्कर्म करता है और इसीने उस सिद्धको मरवा डाला है ॥ ६३ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा कन्यामन्येन घृतामन्यस्य प्ररूपयेत्
॥ ६४ ॥ अमुष्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति
॥ ६५ ॥ सर्वस्वेन प्रसद्य चैनां लभस्वेति ॥ ६६ ॥ अलभ्यमा-
नायां परपक्षमुद्धर्पयेत् ॥ ६७ ॥ लब्धायां सिद्धः कलहः ॥ ६८ ॥

अथवा देवज (उद्योतिपीके) वेपमें रहने वाला सत्री, अन्य किसी संघमुख्यसे वरण की हुई कन्याको, और किसी संघमुख्यके लिये बतला देवे । और उससे इन प्रकार कहे:- ॥ ६४ ॥ अमुक पुरुषकी कन्या, राजपत्नी और राजमाता होगी; अर्थात् उससे जो विवाह करेगा, वहभी राजा होगा, और उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वहभी अवश्य राजा होगा ॥ ६५ ॥ इसलिये अपना सर्वस्व देकरभी, अथवा बलात्कारसे इसको अवरयही प्राप्त करो । अर्थात् मैसगी होसके, इसको अपने अधीन अवरय करो ॥ ६६ ॥ इस तरह कदनके

बाद प्रयत्न करने परमी यदि यह संघमुत्पन्न पुरुष उस कन्याको प्राप्त न करसके;
तो पहिले वरण करने वाले पक्षकांही, इसके विरुद्ध उरसाहित करे ॥ ६७ ॥
यदि कन्याको यह प्राप्त करले, तो दोनोंका क्षमदा होजाना निश्चितही है ॥ ६८ ॥

भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुरूपं नूपात् ॥ ६९ ॥ असाँ ते
मुरुयो यौवनोत्सक्तो भार्यायां मां प्राहिणोत् ॥ ७० ॥ तस्याहं
मयाल्लेख्यमाभरणं गृहीत्वाऽऽगतासि ॥ ७१ ॥ निर्दोषा ते भार्या
॥ ७२ ॥ गूढमस्मिन्प्रतिकर्तव्यम् ॥ ७३ ॥ अहमपि तावत्प्रति-
पत्स्यामीति ॥ ७४ ॥

अथवा भिक्षुही (भिक्षुही=भिक्षारिणके भेषमें गुप्तचर-खी वा पुरुष),
अपनी भार्यासे प्यार करने वाले किसी संघमुत्पन्न पुरुषके पास आकर इस
प्रकर कहे ॥ ६९ ॥ अपनी जवानीका धमण्ड करने वाले अमुक संघमुत्पन्न
पुरुषने, आपकी खीके पास अपने समागमकी दिवस लगानेके लिये मुझे
दूती बनाकर भेजा है ॥ ७० ॥ मैं उसके दारसे यह लेखपत्र और आभूषण
आदि लेकर आई हूँ ॥ ७१ ॥ इस विषयमें आपकी खी संबंधा निर्दोष है ॥ ७२ ॥
आप छिपे तीरपर इस बातका अच्छीतरह प्रतीकार करें। अर्थात् चुपचापही
इस संघमुत्पन्न पुरुषको मरवा डाले ॥ ७३ ॥ मैंभी तब तक तुम्हारे समीपही
रहना अहीकार करूंगी। (तर्पण या है, कि यदि उस संघमुत्पन्न पुरुषके
मरवा देनेके पहिलेही मैं यहांसे चली गई, तो यह अवश्यही मुझे नष्ट
करादेगा। इसलिये जब तक आप उसे नहीं मरवा देते, तबतक मैं आपकीही
सेवामें रहूंगी) ॥ ७४ ॥

एवमादिषु कलहस्थानेषु स्वयमुत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पा-
दिते वा हीनपक्षं राजा कौशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रम-
येदपवाहयेद्वा ॥ ७५ ॥

इसप्रकारके कलहकारणोंकी उपस्थितिमें, स्वयंही क्षमदोंके उत्पन्न
होनेपर, अथवा तीक्ष्ण आदि पुरुषोंके द्वारा उररज किये जाने पर; हीनपक्ष
(जिनका पक्ष कुछ शक्ति सम्पन्न न हो, ऐसे) संघमुत्पन्न आदि पुरुषको,
विजिगीषु राजा, कौश तथा सेनाभी उचित सहायता देकर अपने अनुकूल बना
लेवे; और अक्सर आनेपर, विरोध करनेवाले संघोंके मुकाबलेमें युद्ध करनेके
लिये उसे तैयार कर देवे। यदि यह युद्ध करनेमें असमर्थही, तो उसे अपने
दंडसे निकाल देवे ॥ ७५ ॥

संघेष्वेवमेकराजो वर्तेत ॥ ७६ ॥ संघाश्चाप्येवमेकराजादे-
तेभ्यो ऽतिसंधानेभ्यो रक्षयेयुः ॥ ७७ ॥

इसप्रकार विजिगीषु, संघोंमें एक मुख्य राजा बनकर रहे । अर्थात् उन सबके ऊपर अपना पूर्ण आधिपत्य रखता हुआ ही अपने व्यवहारको चलावे ॥ ७६ ॥ और संघभी इसप्रकार चेष्टा (व्यवहार) करते हुए राजासे, और उसके द्वारा फैलाये हुए इन जालोंसे अपने आपही रक्षा करें । यहीतक संघोंमें राजाके, और राजामें संघोंके व्यवहारका निरूपण कर दिया गया ॥ ७७ ॥

संघमुख्यश्च संघेषु न्यायवृत्तिहितः प्रियः ।

दान्तो युक्तजनस्तिष्ठेत्सर्वचित्तानुवर्तकः ॥ ७८ ॥

इति संघवृत्ते षड्दशो ऽधिकरणे भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च प्रथमो ऽध्यायः ।
आदितः पञ्चत्रिंशच्छतः ॥ १३५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
संघवृत्तमेकादशनाधिकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अब उपसंहार श्लोकसे, संघोंमें संघमुख्यके व्यवहारका निरूपण किया जाता है:—संघमुख्यको चाहिये, कि वह संघोंमें सदा न्याययुक्त हितकारी तथा प्रिय व्यवहार करे । कभी उद्वृत्तासे काम न लेवे; तथा अपने अनुकूल पुरखोंको ही अपने समीप रखे, और सब संघके पुरखोंके मतानुसारही व्यवहारोंको करे ॥ ७८ ॥

सङ्घवृत्त एकादश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

सङ्घवृत्त एकादश अधिकरण समाप्त ।



आबलीयस द्वादश अधिकरण

पहिला अध्याय

१६२ प्रकरण

दूतकर्म ।

{ यह आबलीयस बारहवां अधिकरण है । इसमें 'प्रबल अभियोक्ता के प्रति दुर्बलराजाको क्या करना चाहिये' इस बातका निरूपण किया जायगा । सबसे प्रथम इस अधिकरणके पहिले अध्यायमें दूतके फायोंका कथन करते हैं ।

वलीयसगभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत्
॥ १ ॥ इन्द्रस्य हि स प्रणमति यो वलीयसो नमतीति भारद्वाजः
॥ २ ॥

जब किसी दुर्बल राजापर कोई बलवान् राजा आक्रमण करे, तो वह उसके सामने, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी झुका रहे । जिसप्रकार जलके वेगके सामने बेंतका पेड़ झुका हुआ या उसके अनुसार रहकर, अपनी स्थितिको बनाये रखता है; इसीप्रकार दुर्बल राजा बलवान् राजाके सामने तत्र या उसके अनुकूल रहता हुआ अपनी स्थितिको दृढ़ बनाये रखे ॥ १ ॥ जो अपनेसे बलवान् राजाके सामने झुकता है, वह इन्द्रके सामने झुकता है, यही समझना चाहिये । यह सब भारद्वाज आचार्यका मत है ॥ २ ॥

सर्वमंदोहेन बलानां युध्येत् ॥ ३ ॥ पराक्रमो हि व्यसन-
मपहन्ति ॥ ४ ॥ स्वभर्मथैव क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥ युद्धे जयः
पराजयो वेति विशालाक्षः ॥ ६ ॥

विशालाक्ष आचार्यका इस विषयमें यह मत है, कि दुर्बल राजा, बलवान् राजाके मुकाबलेमें भी अपनी सेनाओंके सम्पूर्ण सामर्थ्यके साथ युद्धकरे ॥ ३ ॥ क्योंकि पराक्रम ही आपत्तियोंको नष्ट करदेता है ॥ ४ ॥ और क्षत्रियका यह (पराक्रम करना) अपना धर्म है ॥ ५ ॥ युद्धमें जय

हो, या पराजय हो, क्षत्रियको अपने धर्म पराक्रम का ही पालन करना चाहिये । शत्रुके पैरोंमें कभी न गिरना चाहिये ॥ ६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ७ ॥ सर्वत्रानुग्रणतः कुर्लडक इव निराशो जीविते वसति ॥ ८ ॥ युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवो-
ज्वगाहमानः सीदति ॥ ९ ॥ तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्ग-
मविपक्षं वा चेष्टत ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाज और विशालाक्षके इन दोनों ही मतोंको नहीं मानता ॥ ७ ॥ यह कहता है, कि जो दुर्बल राजा, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी नग्न ही बना रहता है, वह अपने छुंडमे अलडदा हुए २ कुलके मेंढके समान (जो मेंढा भारनेके लिये ही रक्षता जाता है, उसको 'कुर्लडक' कहते हैं । उसके जीवनमें सदा ही सम्पद रहता है, न मालूम कित्त समय मारदिया जाय । हिन्दीमें इसीमे एक कहावत चल गई है—'बकरीकी मां कब तक खैर मनायेगी' । इसी तरह) जीवनसे निराश हुआ २ जैसे तैये निवास करता है । अर्थात् ऐसे दुर्बल राजाको अपना जीवन भी भारी होजाता है ॥ ८ ॥ और इसीतरह थोड़ा सेनाकी सहायता लेकर ही जो युद्ध करने लगजाता है, वह राजा, तारणपाधनके बिना ही समुद्रमें प्रवेश करजानेवाले पुरपके समान अवश्य दुःख उठाता है ॥ ९ ॥ इसलिये दुर्बल राजाको चाहिये, कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाके समान या उससे भी अधिक शक्ति रखनेवाले किसी अन्य राजाका आश्रय लेलेवे । अथवा ऐसे दुर्गमें जाकर अपना कार्य आरम्भ करे, जिसपर शत्रुका कुछ बल न चल-सकता हो । अर्थात् ऐसे राजा या दुर्गका आश्रय लेकर ही दुर्बल राजा अपने शत्रुका मुकाबला करे ॥ १० ॥

त्रयोऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति ॥ ११ ॥
तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति ॥ १२ ॥ तमभ्यवपद्येत
परेषामपि भयात् ॥ १३ ॥

अभियोक्ता (दुर्बल राजपर आक्रमण करनेवाला बलवान् राजा) तीन प्रकारके होसकते हैं । धर्मविजयी, लोभविजयी और असुरविजयी ॥ ११ ॥ उनमेंसे धर्मविजयी, आत्मसमर्पण करने ('मं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार कहने) से ही सन्तुष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ उस धर्मविजयी राजाको सन्तुष्ट रखते ; न केवल इस विद्य रखते कि उसमें भय न रहे, किन्तु इस विचारसे भी कि ऐसा करनेपर दूसरे शत्रुसे भी भय न होगा । तात्पर्य यह है

कि धर्मविजयी अभियोक्ता सन्तुष्ट होनेपर, स्वयं तो बाधा पहुंचाताही नहीं,
किन्तु अन्यशत्रुसे भी उस दुर्बल राजाकी सदा रक्षा करता है ॥ १३ ॥

भूमिद्रव्यहरणेन लोभविजयी तुष्यति ॥ १४ ॥ तमर्थेना-
भ्यवपेद्यत ॥ १५ ॥ भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेनासुरविजयी
॥ १६ ॥ तं भूमिद्रव्याभ्यागुपगृह्याग्राहः प्रतिकुर्वीत ॥ १७ ॥

लोभविजयी अभियोक्ता, भूमि और द्रव्य लेनेसेही सन्तुष्ट होता है
॥ १४ ॥ इसलिये दुर्बल राजा, धनादिके द्वारा उसको सन्तुष्ट रखे ॥ १५ ॥
असुरविजयी अभियोक्ता तो, भूमि द्रव्य पुत्र स्त्री और प्राणों तकका भी अप-
हरण कालेने परही सन्तुष्ट रहता है ॥ १६ ॥ इसलिये उससे कर्मा भी न
मिलकर दूगही रहते हुए, उसकी इच्छानुसार भूमि और द्रव्य देकर उसकी
अनुकूल बनावे, तथा सन्निभ आदिके द्वारा उसका प्रतीकार करे ॥ १७ ॥

तेषामुत्तिष्ठमानं संधिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूह-
त ॥ १८ ॥ शत्रुपक्षमस्य सामदानाभ्याम् ॥ १९ ॥ स्वपक्षं
भेददण्डाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्गं राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः
शस्त्रसाधेभिः साधयेयुः ॥ २१ ॥

जगमेंसे किसी एकका, जो अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिये तैयार
हो, सन्धिके द्वारा, मन्त्रयुद्धसे अथवा कूटयुद्धसे मुकाबला करे । (किसी २
पुस्तकमें 'तेषामुत्तिष्ठमानं' के स्थानपर 'तेषामन्वयनममुत्तिष्ठमानं' ऐसा भी
पाठ है । अर्थमें कोई विरोधता नहीं) ॥ १८ ॥ मन्त्रयुद्धका यह दंग है—
इसके शत्रुपक्षको अर्थात् प्रथम अभियोक्ताके शत्रुपक्षको, साम और दानके
द्वारा अपने अनुकूल बनानेका यत्न करे ॥ १९ ॥ और अपने पक्षको, अर्थात्
अपने अमात्य आदि प्रकृतिवर्गको भेद और दण्ड के द्वारा अपने घशमें रखे
॥ २० ॥ कूटयुद्धका यह दंग समझना चाहिये—प्रथम अभियोक्ताके दुर्ग
राष्ट्र तथा छावनियोंको अपने गूढ़पुहणोंके द्वारा, छिपकर शस्त्रमहार करने,
विष देने तथा भाग आदि लगा देनेसे नष्ट करवा देवे ॥ २१ ॥

सर्वतः पार्थिवस्य ग्राहयेत् ॥ २२ ॥ अटवीभिर्वा राज्यं
धातयेत् ॥ २३ ॥ तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत् ॥ २४ ॥

पीछे तथा इधर उधरसे, प्रथम अभियोक्ताकी पार्थिवका ग्रहण करवावे ।
अभिप्राय यह है, कि अक्सर पानेपर अभियोक्ताके पीछे की ओरसे, या
इधर उधर बाहुओंकी ओरसे उसपर छापा मारनेका प्रयत्न करवावे ॥ २१ ॥

हो, या पराजय हो, क्षत्रियको अपने धर्म पराक्रम का ही पालन करना चाहिये । शत्रुके पैरोंमें कभी न गिरना चाहिये ॥ ६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ७ ॥ सर्वत्रानुप्रणतः कुल्लंडक इव निराशो
जीविते वसति ॥ ८ ॥ युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रामिवाप्लवो-
ञ्चगाहमानः सीदति ॥ ९ ॥ तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्ग-
मविपक्षं वा चेष्टेत ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाज और विशालाक्षके इन दोनों ही मतोंको नहीं मानता ॥ ७ ॥ वह कहता है, कि जो दुर्बल राजा, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी मग्न ही बना रहता है, वह अपने छुड़मे अलड़का हुए २ कुलके मेढके समान (जो मेढा मारनेके लिये ही रक्खा जाता है, उसके 'कुल्लंडक' रहते हैं । उसके जीवनमें सदा ही सन्देह रहता है, न सालम किस समय मारादिया जाय । हिन्दीमें इसीसे एक कहावत बन गई है—'धकोकी मां कथ तक खैर मनायेगी' । इसी तरह) जीवनसे निराश हुआ २ जैसे तैय्ये निरास करता है । अर्थात् ऐसे दुर्बल राजाको अपना जीवन भी भारी होजाता है ॥ ८ ॥ और इसीतरह थोड़ी सेनाकी सहायता लेकर ही जो युद्ध करने लगजाता है, वह राजा, तरणसाधनके बिना ही समुद्रमें प्रवेश करजानेवाले पुरपके समान अवश्य दुःख उठाता है ॥ ९ ॥ इसलिये दुर्बल राजाको चाहिये, कि वह अपने प्रतिद्वन्दी राजाके समान या उससे भी अधिक शक्ति रखनेवाले किसी अन्य राजाका आश्रय लेलेवे । अथवा ऐसे दुर्गमें जाकर अपना कार्य आरम्भ करे, जिसपर शत्रुका कुछ बल न चल-सकता हो । अर्थात् ऐसे राजा या दुर्गका आश्रय लेकर ही दुर्बल राजा अपने शत्रुका मुकाबला करे ॥ १० ॥

त्रयो ऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति ॥ ११ ॥
तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति ॥ १२ ॥ तमभ्यवपद्येत
परेषामपि भयात् ॥ १३ ॥

अभियोक्ता (दुर्बल राजापर आक्रमण करनेवाला बलवान् राजा) तीन प्रकारके होसकते हैं । धर्मविजयी, लोभविजयी और असुरविजयी ॥ ११ ॥ उनमेंसे धर्मविजयी, जातसमर्पण करने ('मै तुम्हारा हूँ' इस प्रकार कहने) से ही सन्तुष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ उस धर्मविजयी राजाको सन्तुष्ट रखे ; न जेवन् इस विधि रखे वि उसमें भय न रहे, किन्तु इस विचारसे भी कि ऐसा करनेपर दूसरे शत्रुसे भी भय न होगा । तात्पर्य यह है

कि धर्मविजयी अभियोक्ता सन्तुष्ट होनेपर, स्वयं तो बाधा पहुंचाताही नहीं,
किन्तु अन्यशत्रुमे भी उस दुर्बल राजाकी सदा रक्षा करता है ॥ १३ ॥

भूमिद्रव्यहरणेन लोभविजयी तुष्यति ॥ १४ ॥ तमर्थेना-
भ्यवपेद्यत ॥ १५ ॥ भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेनासुरविजयी
॥ १६ ॥ तं भूमिद्रव्याभ्यागुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १७ ॥

लोभविजयी अभियोक्ता, भूमि और द्रव्य छेनेसेही सन्तुष्ट होता है
॥ १४ ॥ इसलिये दुर्बल राजा, घनादिके द्वारा उसको सन्तुष्ट रखे ॥ १५ ॥
असुरविजयी अभियोक्ता तो, भूमि द्रव्य पुत्र स्त्री और प्राणों तकका भी अप-
हरण करलेने पाही सन्तुष्ट रहता है ॥ १६ ॥ इसलिये उससे कर्मा भी न
मिलकर दूरही रहते हुए, उसकी इच्छानुसार भूमि और द्रव्य देकर उसको
अनुकूल बनाने, तथा सन्निभ आदिके द्वारा उसका प्रतीकार करे ॥ १७ ॥

तेषामुत्तिष्ठमानं संधिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिज्यूह-
त ॥ १८ ॥ शत्रुपक्षमस्य सामदानाभ्याम् ॥ १९ ॥ स्वपक्षं
भेददण्डाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्ग राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः
शस्त्रसाग्निभिः साधयेयुः ॥ २१ ॥

उनमेसे किसी एकका, जा अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिये तैयार
हो, सन्धिके द्वारा, मन्त्रयुद्धसे अथवा कूटयुद्धसे मुकाबला करे । (किसी २
पुस्तकमें 'तेषामुत्तिष्ठमानं' के स्थानपर 'तेषामन्वयनममुत्तिष्ठमानं' ऐसा भी
पाठ है । अर्थमें कोई विशेषता नहीं) ॥ १८ ॥ मन्त्रयुद्धका यह दंग है—
इसके शत्रुपक्षको अर्थात् प्रबल अभियोक्ताके शत्रुपक्षको, साम और दानके
द्वारा अपने अनुकूल बनानेका यत्न करे ॥ १९ ॥ और अपने पक्षको, अर्थात्
अपने अमात्य आदि प्रकृतिवर्गको भेद और दण्ड के द्वारा अपने वशमें रखे
॥ २० ॥ कूटयुद्धका यह दंग समझना चाहिये—प्रबल अभियोक्ताके दुर्ग
राष्ट्र तथा छावनीयोंको अपने गूढपुरुषोंके द्वारा, छिपकर शस्त्रप्रहार करने,
विष देने तथा आग आदि लगा देनेसे नष्ट करवा देवे ॥ २१ ॥

सर्वतः पार्थिवमस्य ग्राहयेत् ॥ २२ ॥ अटवीभिर्वा राज्यं
घातयेत् ॥ २३ ॥ तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत् ॥ २४ ॥
पीछे तथा इधर उधरसे, प्रबल अभियोक्ताकी पार्थिवका महण करवाये ।
अभिप्राय यह है, कि अथवा पानेपर अभियोक्ताके पीछे की ओरसे, वा
इधर उधर बाहुओंकी ओरसे उसपर छापा मारनेका प्रयत्न करवावे ॥ २२ ॥

अथवा आद्यपिक पुरषोंके द्वारा, इसके राज्य अर्थात् दुर्ग जनपद आदिको नष्ट करवादेवे ॥ २३ ॥ अथवा अभियोक्ताकेही किसी अन्य वस्तु बान्धवके द्वारा, या रोके हुए (बन्धनम टाले हुए) उसके (अभियोक्ताके) पुत्र आदिके द्वाराही, इसके राज्यका अपहरण करादेवे ॥ २४ ॥

अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अनपकृत्य वा
संधानम् ॥ २६ ॥ तथाप्यभिप्रयान्तं कौशदण्डयोः पादोत्तरमहो-
रात्रोत्तरं वा संधिं याचेत् ॥ २७ ॥

इसतरह उसके अपकार कराकर, तदनन्तर सन्धिके लिये उसके पास अपना दूत भेजे । क्योंकि ऐसी अवस्थामें सरलतासेही सन्धि हो जाया करती है ॥ २५ ॥ अथवा यदि दुर्बल राजा, प्रबल अभियोक्ताका किसी तरह का भी अपकार करनेमें समर्थ न हो, तो ऐसी अवस्थामें भी स्वयं सन्धि की याचना करे ॥ २६ ॥ यदि फिर भी वह सन्धि न करे, और चढ़ाई करनेके लियेही उतारू होरहा हो, तो सन्धि की शर्तके लिये पहिलेसेही नियतसंस्थाक धन और सेनामें चूँ याई हिस्सा और बढ़ाकर सन्धि की याचना करे । अथवा दिन और रातकी संस्था बढ़ाकर भी सन्धि की याचना करे । इसका अभिप्राय यह है:—दुर्बलके द्वारा नियत समयतक सन्धिकी याचना करनेपर आर अपना अभिलषित धन देने पर भी यदि अभियोक्ता सन्धि करनेको तैयार न हो, तो अभियोक्ताकी इच्छाके अनुसारही धन देकर, उतने समयमें और अधिक दिन जोड़कर सन्धि की याचना करे अर्थात् सन्धिके दिनोंकी अवधि और बढ़वा लेवे ॥ २७ ॥

स चेदण्डसंधिं याचेत् कुण्ठमसं हस्त्यथं दद्यादुत्साहितं वा
गरयुक्तम् ॥ २८ ॥

यदि अभियोक्ता, सेनाकी सन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें सेनाको ही लेना चाहे, तो दुर्बल राजाको चाहिए, कि वह अपने कुण्ठ अर्थात् बायं करनेमें सर्वथा अशक्त हाथी घोड़ोंको देदेवे । अथवा उरसाही (कार्य करनेमें समर्थ) हाथी घोड़ोंको भी ऐसा विप खिचाकर देडाले, जिससे कि वे पन्द्रह बीस दिन या महीने भर के बाद तक मर जावे ॥ २८ ॥

पुरुषसंधिं याचेत् दूयामित्राटवीचलमसे दद्याद्योगपुरुषाधि-
ष्ठितम् ॥ २९ ॥ तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात् ॥ ३० ॥

यदि अभियोक्ता, पुरष सन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें पैदल सेनाको लेना चाहे, तो अपने योगपुरषोंसे (विष, गैस तथा दूषित जल आदिको देकर दूष्य आदि सेनाको मारडालने वाले, अपने विशस्त गृहपुरषोंसे) युक्त, दूष्यबल, शत्रुबल तथा आर्यिक बलको इसके लिये देदेवे ॥ २९ ॥ और इसप्रकारका प्रवन्ध करे, जिससे कि अपनी दीहुई दूष्य भादि सेना, तथा शत्रुकी सेना दोनोंका ही अन्वय घिनाश होजावे ॥ ३० ॥

तीक्ष्णबलं वासै दद्यात् यदवमानितं विकुर्वीत ॥ ३१ ॥

मौलमनुरक्तं वा, वदस्य व्यसने ऽपकुर्यात् ॥ ३२ ॥

अथवा अभियोक्ताके लिये, अपने तीक्ष्णबलको देदव, जो कि थोडासा अपमान करनेपर ही बिगड़ बड़े, और शत्रुका अपकार करडाले ॥ ३१ ॥ अथवा दुर्बल राजा, अपनी मौल (यश, पाश्चासे आईहुई) अनुरक्त (राजामें अत्यन्त अनुराग रखने वाली, जिसपर राजाको भी पूरा विश्वास हो, ऐसी) सेनाको ही अभियुक्तके लिये देदेवे । जो कि शत्रुपर आपत्तिके समयमें उसका (शत्रुका) अन्वयताह अपकार करसके ॥ ३२ ॥

कोशसंधिं याचेत सारमसै दद्याद्यस्य क्रेतारं नाभिगच्छेत् ॥ ३३ ॥ कुप्यमयुद्धयोग्यं वा ॥ ३४ ॥

यदि अभियोक्ता, कोशसन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें धन ही लेना चाहे, तो सार अर्थात् बहुसूक्ष्म रत्न आदि धनको ही इसके लिये देदेवे । जिस (रत्न आदि) का खरीदने वाला भी इसे कोई न मिले ॥ ३३ ॥ अथवा घबरा आस्तरण भादि कुप्य, और युद्धमें काम न आनेवाले अन्य सामान इसको देदेवे ॥ ३४ ॥

भूमिसंधिं याचेत प्रत्यादेयां नित्यामित्रामनपाभ्यां महा-
क्षयव्ययनिवेशां वासै भूमिं दद्यात् ॥ ३५ ॥ सर्वस्वेन वा राज-
धानीवर्जेन संधिं याचेत वलीयसः ॥ ३६ ॥

यदि अभियोक्ता, भूमिसन्धिकी याचना करे, तो इसके लिये ऐसी भूमि देवे, जो फिर आसानीसे वापस लीजासकती हो, अथवा जियमें हमेशा दुश्मन नजदीक रहे, या जिसमें कोई किसी तरहका भी दुर्ग न हो, और जियमें निवास करनेके लिये अत्यधिक धनका व्यय और पुरषोंका क्षय होनेकी सम्भावना हो ॥ ३५ ॥ अथवा जो अत्यन्त बलवान् अभियोक्ता हो, उसको राजधानीके आतिरिक्त और अपना सर्वस्व देकर भी उससे सन्धिकी याचना करे ॥ ३६ ॥

यत्प्रसन्न हरेदन्यः तत्प्रयच्छेदुपायतः ।

रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥ ३७ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि संधियाचन

प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितः पट्टिश्चतुष्टयः ॥ १३६ ॥

यदि कोई अन्य प्रबल अभियोक्ता, यलपूर्वक अपने (दुर्बल अभियुक्त राजाके) धन आदिका अपहरण करे; तो उस धन आदि सम्पत्तिको उपायके साथ अर्थात् सन्धि आदिके सहानेसे उसे ही देदेवे । धनकी अपेक्षा अपनी देहकी ही सर्वथा रक्षा करे, क्योंकि अवश्य ही नष्ट होजाने वाले धन पर क्या द्दिलाना व्यर्थ है । यदि देह सुरक्षित रहेंगी, तो नष्ट हुआ २ धन भी फिर पैदा किया जासकता है ॥ ३७ ॥

आयलीयस द्वादश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१६३ प्रकरण

मन्त्रयुद्ध

मति=बुद्धिके उरुर्पको ही मन्त्र कहते हैं, उसके द्वारा युद्ध करना अर्थात् बुद्धिमत्तासे शत्रुको ठगनाही 'मन्त्रयुद्ध' कहाता है । जब शत्रु सन्धिकी याचना करनेपर भी सन्धि न करे, तो उसे मन्त्रयुद्ध के द्वाराही सीधा किया जावे ; इन्धिलिये इस प्रकरणमें मन्त्रयुद्धका ही निरूपण किया जायगा ।

स चेत्संधौ नावतिष्ठेत धूयादेनम्—॥ १ ॥ इमे पद्द्वर्गव-
श्या राजानो विनष्टाः तेषामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम्
॥ २ ॥ धर्ममर्थं चावेक्षस्व ॥ ३ ॥

यदि प्रबल अभियोक्ता या शत्रु, सन्धिमें स्थित न रहे, अर्थात् सन्धिको स्वीकार न करे, तो उससे यह कहे:— ॥ १ ॥ देखो ये पद्द्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मान मद्द हर्ष) देखो अधि. १ अध्या. ६ । किसी २ पुस्तकमें 'पद्द्वर्ग' के स्थानपर 'शत्रुपद्द्वर्ग' भी पाठ है । अर्थ करनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं) के अधीन हुए २ राजा लोग नष्ट होंगये । तुम्हें उन नीच राजाओंके मार्गका कभी अनुसरण न करना चाहिये ॥ २ ॥ अपने धर्म और

अर्थ की ओर अच्छी तरह देखो ; अर्थात् उनके सुरक्षित रखनेमें पूरा यत्न रखो ॥ ३ ॥

मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसमधर्ममर्थातिक्रमं च
ग्राहयन्ति ॥ ४ ॥ शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसम् ॥ ५ ॥
जनक्षयमुभयतः कर्तुमधर्मः ॥ ६ ॥ दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तु-
मर्थातिक्रमः ॥ ७ ॥

ये लोग ऊपरसे मित्र, और वास्तविक रूपमें तुम्हारे दातु हैं, जो तुम्हें साहस (युद्ध), अधर्म, और धन आदिका ध्यय करनेके लिये प्रेरित या उता-हित करते रहते हैं ॥ ४ ॥ अपनी देहों की या अपने भावकी कुछ परांश न करनेवाले महादुर आत्मियोंके साथ युद्ध करनेके लिये, ये तुम्हें प्रेरताहित करते हैं, यही साहस है ॥ ५ ॥ इसमें दोनों ओरकेही आत्मियोंका क्षय (नाश) होता है, यही इसमें अधर्म है ॥ ६ ॥ विद्यमान धनको और अत्यन्त समान मित्रको छोड़नेके लिये ये तुम्हें प्रेरणा करते हैं, यही इसमें अर्थका नाश या धनका नाश है ॥ ७ ॥

मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेनार्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति
यानि त्वा सर्वतो जभियास्यन्ति ॥ ८ ॥ न च मध्यमोदासी-
नयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः ॥ ९ ॥ भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां
समृद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते ॥ १० ॥ भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यताम्
॥ ११ ॥ मित्राच्च भिद्यताम् ॥ १२ ॥ अर्थेन परित्यक्तमूलं
सुखेनोच्छेत्स्याम इति ॥ १३ ॥

उस राजाके बहुत मित्र हैं, और फिर यह इसी धनके द्वारा अपने मित्रोंकी ओर भी साथ लगा लगा ; जोकि सब मिलकर तेरे ऊपर अ प्रमण काँदेगे ॥ ८ ॥ मध्यम और उदासीन राजाओंके मण्डल (समूह) ने भी इसका परित्याग नहीं किया हुआ है । अर्थात् ये भी उसका साथ देनेके लिये तैयार हैं ॥ ९ ॥ परन्तु तुम्हारा तो उन्होंने परित्याग करदिया है । जोकि युद्धके लिये तैयार हुआ ९ तुम्हें देखकर अब चुपचाप इस यातवी प्रतीक्षा कर रहे हैं:— ॥ १० ॥ कि फिर तुम्हारे आत्मियोंका नाश और धनका ध्यय होनाये ॥ ११ ॥ और तुम अपने मित्रसे मित्र होजाओ ॥ १२ ॥ इसप्रकार जब तुम्हारी शक्ति सर्वथा क्षीण होजाय, और तुम्हारी जड़ दौली पदचाप, अर्थात्

भोपधिको अपने प्रिय व्यापारीके शरीरपर छिड़कदेना, वह सुन्दारे वशमें होजायगा ॥ २३ ॥

सिद्धे सुभगाया अप्येनं योगमुपदिशेद्-राजशरीरे स्वघात-
व्येति ॥ २४ ॥ ततो रसेनातिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

जब यह कार्य सिद्ध होजाये (अर्थात् व्यापारीके शरीर पर भोपधि छिड़के जानेपर जब यह ऊपरसे दिखानेके लिये उसके वशमें रहने लगे), तब उस सुन्दर महारानीको भी इस वदाकरणके योगका उपदेश दिया जावे । और उससे कहा जावे, कि इस भोपधिको राजाके शरीरपर छिड़क देना, यह अवश्य सुन्दारे वशमें होजायगा ॥ २४ ॥ उसी योगमें त्रिप मिलाकर राजाको मारडाले ॥ २५ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसंपन्नं क्रमाभि-
नीतं व्रूयात् ॥ २६ ॥ भार्यामस्य भिक्षुकी-राजपत्नी राजप्रसवि-
नी वा भविष्यसीति ॥ २७ ॥

अब महामात्रको भिक्ष करनेका प्रकार बताते हैं:—अथवा कार्तान्तिक (शरीरके चिन्ह आदिको देखकर भविष्य की बात बतानेवाले) के वेपमें रहनेवाला गुप्तपुरुष महामात्र अर्थात् राजलक्षणोंसे (राजा होने की सूचना देनेवाले चिन्होंसे) युक्त व्यक्तिको, जोकि अपने ऊपर (=कार्तान्तिक पर) पूरा विश्वास रखता हो, इस प्रकार कहे, कि 'तू राजा अवश्य होजायगा' ॥ २६ ॥ और इस महामात्र की भार्याको, भिक्षुकी (भिक्षारिणके भेसमें रहनेवाला गुप्तचर, पुरुष या स्त्री), यह कहे, कि 'तू राजाकी स्त्री होगी, और राजा होने योग्य पुत्रको जनेगी' । इसप्रकार राजा होनेकी लालसासे, महामात्रका राजाके साथ विरोध होजायगा ॥ २७ ॥

भार्याव्यञ्जना वा महामात्रं व्रूयात्—॥ २८ ॥ राजा किल
मामवरोधयिष्यति ॥ २९ ॥ तत्रान्तिकाय पत्रलेख्यमाभरणं
चेदं परित्राजिकयाहृतमिति ॥ ३० ॥

अथवा महामात्र की भार्या बनकर रहनेवाली गुप्तस्त्री (वन्द्यकी आदि जोकि विजिगीषुकी ओरसे गुप्तपाका कार्य कर रही हो), महामात्रको इस प्रकार कहे:— ॥ २८ ॥ राजा मुझको अवश्य रोकेगा, अर्थात् अपने अन्तः-पुरमें लेजायगा ॥ २९ ॥ सुन्दारे लिये, राजाके दिये हुए इस लेखपत्र और आभरणको, दूती बनी हुई परित्राजिका (भिक्षुकी या सभ्यासिनीके वेपमें

रहनेवाली स्त्री) लाई है । इस निमित्तसे भी महामात्रका राजाके साथ द्वेष होजायगा ॥ ३० ॥

सूदारालिकव्यञ्जनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनमर्थं चास्य लोभनीयमभिनयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा सूद (पाचक=रसोईया) या आरालिक (मांस आदि बनानेवाले) के वेपमें रहनेवाला गुप्तचर (जोकि महामात्रके यहां काम करता हो, वह), रसका अर्थात् विष आदिका प्रयोग करनेके लिये राजाके कथनको तथा लोभमें डालनेवाले राजाके द्वारा दिये जानेवाले धनको महामात्रके सामने प्रकट करे । तात्पर्य यह है, कि सूद या आरालिक, महामात्रके सामने यह बात कहे, कि हमको राजाने विष देनेके लिये कहा है, और उसके लोभके लिये प्रचुर धन देनेका वादा किया है । (इस सूत्रमें 'राजवचनमर्थं' के स्थानपर किसी २ पुस्तक में 'राजवचनादर्थं' ऐसा पाठ है; परन्तु प्रकरणानुसार इस पाठका कोई संगत अर्थ प्रतीत नहीं होता) ॥ ३१ ॥

तदस्य वैदेहकव्यञ्जनः प्रतिसंदध्यात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिं च ब्रूयात् ॥ ३३ ॥ एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिरित्युपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय वा योजयेदिति ॥ ३४ ॥

जब सूद या आरालिक, महामात्रको इसप्रकार कहे, तो उसकी बात को साथ धिद्ध करनेके लिये, व्यापारी वेपमें रहनेवाला (विष आदि बेचने वाला) गुप्तपुरुष, महामात्रके पास आकर इस बातकी साक्षी बने; और कहे कि 'राजाके कहनेसे मैंने तुम्हारे सूद और आरालिकको विष दिया था, यह मैं नहीं जानता कि वे किस लिये लेगये थे ॥ ३२ ॥ तथा कार्य सिद्धिका भी कथन करदे; अर्थात् इस बातकी भी कहदे, कि उस विषसे बहुत जल्दीही मृत्यु होसकती है ॥ ३३ ॥ इसप्रकार विजिगीषुके सत्रोपुरुष, एक दो या तीनों उपामोंसे, इस राजाके एक २ महामात्रको, राजाके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये उत्साहित करदेवे । इसतरह यहाँतक महामात्र और राजाओंके परस्पर भेद डालनेका प्रकार बताया गया ॥ ३४ ॥

दुर्गेषु चास्य शून्यपालासन्नाः सत्रिणः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावेदयेयुः ॥ ३५ ॥ "शून्यपालेनोक्ता योधाश्वाधिकरणस्थाश्च ॥ ३६ ॥ कृच्छ्रगतो राजा जीवन्नागमिष्यति न वा ॥ ३७ ॥ प्रसन्न वित्तमार्जयध्वममित्रांध हत" इति ॥ ३८ ॥

अथ शून्यपाल (राजधानीसे राजाके बाहर चले जानेपर, पीछेसे राजरहित=शून्य राजधानी की रक्षाके लिये नियुक्त किए हुए अधिकारी पुरुष) से, नगरनिवासियोंके भेद डालनेका प्रकार बताते हैं:—इस शत्रु राजाके स्थानीय कुर्गोंमें, शून्यपालके समीप रहनेवाले सत्रीपुरुष, नगरनिवासी तथा जनपद निवासी पुरषोंमें मैत्रीके लिये (अर्थात् शून्यपालके प्रति अनुराग उत्पन्न करनेके लिये) इसप्रकार निवेदन करें:— ॥ ३५ ॥ शून्यपालने सब योद्धाओं और कचहरीके सब बड़े अधिकारियोंको (अर्थात् न्यायाधीश आदिको) इसप्रकार कहा है, कि:— ॥ ३६ ॥ राजा इस समय बड़ी कठिनतामें फंसा हुआ है; कहा नहीं जासकता, कि वह जीता भी आसकेगा या नहीं ॥ ३७ ॥ इसलिये आप लोग बलपूर्वक प्रजासे अच्छे तरह धन वसूल करें, और जो आपके साथ शत्रुता रखते हों, उनकी आप निस्सन्देह मारवाले ॥ ३८ ॥

बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरानिशास्वाहारयेयुर्मुख्यांश्चाभिहन्युः
॥ ३९ ॥ एवं क्रियन्ते ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते इति ॥ ४० ॥
शून्यपालस्थानेषु च सशोणितानि शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः
॥ ४१ ॥ ततः सत्त्रिणः शून्यपालो घातयति विलोपयति चेत्या-
वेदेयुः ॥ ४२ ॥ एवं जनपदान्समाहर्तुर्भेदेयुः ॥ ४३ ॥

जब शून्यपालकी यह आज्ञा सर्वत्र फैल जाये, तब तीक्ष्णपुरुष, नगर-निवासियोंको रातमें लूटनेके लिये अपने भादमियोंको प्रेरणा करदें। और नगरके किन्हीं मुख्य व्यक्तियोंको मरवा डालें ॥ ३९ ॥ तथा सर्वत्र इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि जो लोग शून्यपालकी शुश्रूषा नहीं करते, अर्थात् उसके अनुगामी नहीं बनते; उनकी यही हालत की जाती है ॥ ४० ॥ और खूनसे भरे हुए हाथियार धन तथा रस्सी आदिको, शून्यपालके स्थानमें छोड़ दें ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सत्री पुरुष, इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि यह शून्यपालही सब लोगोंको मरवाता तथा लुटवाता है। इसतरह सत्री, शून्यपाल तथा प्रजाजनोंमें परस्पर झगड़ा डलवा दें ॥ ४२ ॥ और इसीप्रकार समाहर्ता (कलहकर=प्रजाओंसे कर वसूल करने वाला अधिकारी) सेभी, जनपद-निवासी पुरषोंको भिन्न करा दें। अर्थात् इनकाभी आपसमें विरोध डलवा दें ॥ ४३ ॥

समाहर्तुपुरुषांस्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा म्रूयुः ॥ ४४ ॥

एवं क्रियन्ते ये जनपदमधर्मेण बाधन्त इति ॥ ४५ ॥ समुत्पन्ने

दोषे शून्यपालं समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन घातयेयुः ॥ ४६ ॥
तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपादयेयुः ॥ ४७ ॥

प्रजाजनोंसे समाहर्ताको भिन्न करनेका यह प्रकार है:—समाहर्ता पुरपोंको, गांवके बीचमें रातके समय मारकर तीक्ष्ण तुरप इसप्रकार कहें ॥ ४६ ॥ जो लोग जनपदको अधीन प्रजावर्गको अधर्मसे कष्ट पहुंचाते हैं, उनकी यही अवस्था फीजाती है। (इस बातको सुनकर अन्य समाहर्ताभी प्रजावगस भिन्न होजाते हैं ॥ ४५ ॥ जब शून्यपाल भार समाहर्ता पुरपोंके ये दोष सर्वत्र विस्तृत होजायें, तब प्रकृतिके कोपके कारण, सगरी पुरप उनको दुर्दर्शापूर्वक जानसे मारढालें ॥ ४६ ॥ तथा शत्रुके किसी सम्बन्धी घन्धुबान्धव आदिकों या नज़रबन्द राजपुत्रकोही राजसिंहासन पर बैठा दें ॥ ४७ ॥

अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यभान्यपरिग्रहान् ।

दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा न्युरस्यार्तवादिनः ॥ ४८ ॥

इत्यायलीयसे द्वादशे अधिकरणे दूतकर्माणि वाक्ययुद्धं मन्त्रयुद्धं द्वितीयो
अध्यायः ॥ २ ॥ आदितः सप्तत्रिंशच्छतः ॥ १३७ ॥

तदनन्तर तीक्ष्णपुरप, इस शत्रु राजाके अन्त पुर पुरद्वार (गोपुर= नगरका प्रधान द्वार), द्रव्यपरिग्रह (जिन स्थानोंमें लकड़ी वज्र आदि भरे हुए हों), और धान्यपरिग्रह (जिन स्थानोंमें अन्न भरा हुआ हो, ऐसे) स्थानोंको जला दें; और उन स्थानोंके रक्षकोंको मारढालें। तथा न्ययं इस घटनाके लिये बहुत दुःख प्रकट करते हुए, इस कामको नगरनिवासी और जनपद-निवासी पुरुषोंकाही किया हुआ बतलावें ॥ ४८ ॥

आयलीयस द्वादश अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१६४-१६५ प्रकरण

सेनापतियोंका वध और मित्र आदि राज-
मण्डलका प्रोत्साहन

{ इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें सेना-
मुक्तय अर्थात् सेनाके अध्यक्ष (=अधिकारी) पुरपोंके वध करनेका

प्रकार बताया जायगा । अथवा सूत्रके 'सेना' शब्दमे सेनाके
अध्यक्ष या सेनापतियोंका और 'मुख्य' शब्दसे महामार्श्रोंका
ग्रहण करना चाहिये; पहिले प्रकरणमें इन दोनोंकेही वधका प्रकार
बताया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें मित्र आदि दश प्रकारके
राजमण्डलको प्रोत्साहित करनेके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा ।

राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सत्त्रिणः पच्यश्वरथद्विपमु-
ख्यानां राजा क्रुद्ध इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयुः
॥ १ ॥

राजा तथा राजाके प्रिय पुरुषोंके समीप मित्र बनकर रहनेवाले सत्री
पुरुष, पैदल, घोडसवार, रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओंके अध्यक्षों और
महामार्श्रोंके मित्ररूप (अथवा मित्रोंके) स्थानोंमें जाका मित्रसमान विश्वासमे
यह कहे, कि सेनाध्यक्ष आदिके प्रति राजा कुपित होगया है ॥ १ ॥

बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचारप्रतीकारा गृहेषु स्वामिवच-
नेनागम्यतामिति ब्रूयुः ॥ २ ॥ तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः ॥ ३ ॥
स्वामिसंदेश इति चासन्नान् ब्रूयुः ॥ ४ ॥

जब राजाके कुपित होनेका प्रवाद सब जगह फैल जावे, तब तीक्ष्ण
पुरुष रातमें भ्रमण करनेके दोषका प्रतीकार करके (अर्थात् किसी प्रकारसे इस
बातकी अनुमति पाकर, कि वे रातमें यथेष्ट घूम सकते हैं), घरोंमें जाकर
'आप लोगोंकी स्वामी की आज्ञासेही स्वामीके पास आना चाहिये' इसप्रकार
सेनाध्यक्ष आदिको कहें ॥ २ ॥ और उनको निकलतेही हुए मार डालें ॥ ३ ॥
तदनन्तर मित्रके घेपमें रहनेवाले सत्रीपुरुषोंको, तीक्ष्ण पुरुष कहें, कि हमने
यह सब काम स्वामीकी ही आज्ञासे किया है ॥ ४ ॥

ये च प्रवासितास्तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ५ ॥ एतत्तद्यदस्मामिः
कथितं जीयितुकामेनापक्रान्तव्यमिति ॥ ६ ॥

तथा राजाको छोड़कर पहिलेही गये हुए सेनापति आदिको सत्रीपुरुष
कहें, कि:—॥ ५ ॥ देखो, यह यहाँ बात आगई, जो कि हम पहिले कहते
थे, कि जो अपनी जान बचाना चाहे, वह यहाँसे भाग जाये; अब वही बात
ठीक होगई है । (ऐसा कहनेमें, जो सेनापति आदि अर्भितक राजाकी सेवा
करते हैं, वे भी भाग जानेके लिये तैयार किये जासकते हैं । और इस
तरह शत्रुको दुर्बल बनाया जासकता है ॥ ६ ॥

येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान्सन्निवृणो ब्रूयुः ॥७॥
 उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ ८ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ मा
 याचते ॥ ९ ॥ मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः ॥ १० ॥ तेषा-
 मुद्धरणे प्रयतस्येति ॥ ११ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १२ ॥

कोई वस्तु मांगनेपर राजा जिनके लिये उस वस्तुको नहीं देता है ;
 सत्री उनको कहे:— ॥ ७ ॥ राजाने शून्यपालको कह दिया है, कि:—॥ ८ ॥
 भमुक २ पुरुष मुझसे अयाच्य वस्तुको (जो वस्तु मुझसे नहीं मांगनी चाहिये
 ऐसी वस्तुको) मांगता है ॥ ९ ॥ मैंने उनको मना करदिया है, इसलिये वे
 शत्रुसे जाकर मिलगये हैं ॥ १० ॥ उनको उच्छेद करनेमें तुम अच्छी तरह
 प्रयत्न करो ॥ ११ ॥ ऐसा कहनेके अनन्तर, पहिलेकी तरहही सब काम
 किया जाय । अर्थात् तीक्ष्ण पुरुष, रातमें कुछ आदमियोंको मारडाले ; तथा
 जिनको न मार, उनको वह घघ दिखलाकर राजाके पाससे भगादेवे । इसी
 प्रकार स्वार्थ भी समझना चाहिये ॥ १२ ॥

येभ्यश्च राजा याचितो ददानि तान्सन्निवृणो ब्रूयुः ॥ १३ ॥
 उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ १४ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा
 याचते ॥ १५ ॥ तेभ्यो मया सो ऽर्थो विश्वासार्थं दत्तः, शत्रुसं-
 हिताः ॥ १६ ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्येति ॥ १७ ॥ ततः पूर्ववदा-
 चरेत् ॥ १८ ॥

कोई वस्तु मांगनेपर राजा जिनको देदेता है, उनसे सत्री इसप्रकार
 कहे:—॥ १३ ॥ राजाने शून्यपालसे कह दिया है, कि—॥ १४ ॥ भमुक २
 पुरुष मुझसे अयाच्य वस्तुकी याचना करते थे ॥ १५ ॥ मैंने उनको वह वस्तु
 विश्वासके लिये देदी है (अर्थात् जिससे कि उनका मुझपर विश्वास बनारहे,
 इसलिये वह वस्तु मैंने उनको देदी है), परन्तु वे आदमी, शत्रुसे मिले हुए हैं
 ॥ १६ ॥ इसीलिये उनको उच्छेद करनेमें तुम्हें अच्छी तरह प्रयत्न करना
 चाहिये ॥ १७ ॥ इतना कहनेके अनन्तर पूर्ववत् अचरण किया जावे । (देखो
 पिछला, सूत्र १२) ॥ १८ ॥

ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते तान्सन्निवृणो ब्रूयुः ॥ १९ ॥
 उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ २० ॥ याच्यमर्थमसौ चासौ च मा
 न याचते ॥ २१ ॥ किमन्यत् स्वदोषशङ्कितत्वात् ॥ २२ ॥

(द्विस्तो अधि. ७, अण्डा. १३) को विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ३९ ॥ देवो,
यह राजा, मेरा उच्छेद करके, तुम्हारा भी उच्छेद अवश्य करदेगा ॥ ४० ॥
इसलिये तुम इसकी पाणिंका ग्रहण करो, अर्थात् पीछेसे इसके ऊपर हमला
करो ॥ ४१ ॥ जब यह इस यातको देखकर तुम्हारी ओर आक्रमण करेगा,
तो उस समय मैं इसकी पाणिंका ग्रहण करूंगा ; अर्थात् मैं इसके पीछेकी
ओरसे हमला करूंगा ॥ ४२ ॥

मित्राणि वास्य मूयात् ॥ ४३ ॥ अहं वः सेतुः ॥ ४४ ॥
मयि विभिन्ने सर्वानेप वो राजपुत्रावयिष्यति ॥ ४५ ॥ संभूय
वास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ४६ ॥

अप मित्रोंके प्रोसाइनके सम्बन्धमें कहते हैं:—अथवा इसके मित्रोंको
विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ४३ ॥ मैंही तुम्हारा सेतु अर्थात् पुल हूँ ।
तात्पर्य यह है, कि जैसे प्राणियोंको जलसे बचानेके लिये पुल एक साधन
होता है, इसीप्रकार शत्रुके आक्रमणसे बचानेमें, आप लोगोंके लिये मैंही एक
साधन हूँ ॥ ४४ ॥ मेरे नष्ट होजानेपर, यह शत्रु राजा, आप सबको भी नष्ट
करहालेगा ॥ ४५ ॥ इसलिये आओ, हम सब मिलकर इसके आक्रमणको
विफल करें ॥ ४६ ॥

तत्संहतानामसंहतानां च प्रेपयेत् ॥ ४७ ॥ एष खलु राजा
सामुत्पाद्य भवत्सु कर्म करिष्यति ॥ ४८ ॥ बुध्यध्वम्, अहं वः
श्रेयानभ्यवपत्तुमिति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विजिगीषु, शत्रुके साथ मिलकर रहनेवाले, तथा उससे
पृथक् रहनेवाले सबही राजाओंके पास, निम्नलिखित समाचार (संदेश) भेजे
॥ ४७ ॥ निश्चयही यह अनुक राजा मेरा उच्छेद करके, आपका भी उच्छेद
करेगा । अर्थात् आपके ऊपर आक्रमण करके, आप लोगोंको भी नष्ट कर
हालेगा ॥ ४८ ॥ इसलिये आप लोग विचार करें, और यह समझें, कि
आपसिके समयमें, आप लोगोंके द्वारा मैं अवश्यही रक्षा किये जाने योग्य हूँ ।
अर्थात् इस आपत्कालमें आप लोगोंको मेरी अवश्य रक्षा करना चाहिये । ४९ ॥

मध्यमस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः ।

यथासन्नस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ॥ ५० ॥

हयानलीयसे द्वादशे अधिकरणे सेनामुत्पयथः मण्डलप्रोसाहनं चतुर्तीयो
उप्यायः ॥ ३ ॥ भाद्रितो अष्टत्रिंशच्छतः ॥ १३८ ॥

दुर्बल राजा, बलवान् भाभियो १ के आक्रमणसे बचनेके लिये; मध्यम उदान और अपने समीप रहनेवाले सबही सामन्तोंके पास इसप्रकारका सन्देश भेजे, मैं सर्वथा आपही लोगोंके अर्पण हूँ। मैं अपना सर्वस्व देकर भी आप लोगोंके श्रयसे पृथक् नहीं होना चाहता। जब मैं सर्वस्वको दास लगाकर आपकेही पंज होसुका हूँ, तो आप लोगोंको सर्वोत्तमना मेरी रक्षा करनी चाहिये। ५०।
आयलीयस द्वादश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय

१६६-१६७ प्रकरण

शत्रु, अग्नि तथा रसोंका गूढप्रयोग, और
वीवध, आसार तथा प्रसारका नाश।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। जब मोरसाहित करनेपर भी राजमण्डल, सहायताके लिये तैयार न हो, उस समय विजिगाँपु को, हथियार, आग तथा विष आदिके गूढप्रयोग करके शत्रुका नाश करना चाहिये; पहिले प्रकरणमें हथियार आदिके गूढप्रयोगकाही निरूपण किया जायगा। दूसरे प्रकरणमें, शत्रुके वीवध आसार और प्रसारका किसप्रकार नाश करना चाहिये, इस बातका निरूपण होगा।

ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः,
जनपदसंधिषु गोरक्षकतापसव्यञ्जनास्ते सामन्ताटविकतर्कुली-
नावरुद्धानां पण्यामारपूर्वं प्रेषयेयुः ॥ १ ॥ अयं देशो हार्य इति
॥ २ ॥

शत्रुके स्थानीय दुर्गोंमें (राजधानी आविमें), व्यापारीके वेपमें जो विजिगाँपुके गुप्तघर हैं; इसीप्रकार जो गाँवोंमें गृहपति (गृहस्थ) के वेपमें हैं, तथा सरहद्दी इलाकोंमें जो गाले और तापस्त्रियोंके वेपमें गुप्तघर हैं, ये गुप्तघर, शत्रुके साथ स्वभावसेही विरोध करनेवाले सामन्त आठविक शत्रुके बन्धु बान्धव तथा नजरयन्द राजपुत्र आदिके समीप कुछ भेद करनेके सामान के साथ २ निम्नलिखित सन्देश भिजवावे ॥ १ ॥ यह सन्देश इस प्रकार है:—'शत्रुके अनुक प्रवेशको, दुर्बल होनेके कारण, आप लोग हरण करसकते हैं ॥ २ ॥

(देखो अधि. ७, अध्या. १३) को विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ३९ ॥ देखो, यह राजा, मेरा उच्छेद करके, तुम्हारा भी उच्छेद अवश्य करेगा ॥ ४० ॥ इसलिये तुम इसकी पाण्डिका ग्रहण करो, अर्थात् पीछेसे इसके ऊपर हमला करो ॥ ४१ ॥ जब यह इस बातको देखकर तुम्हारी ओर आक्रमण करेगा, तो उस समय मैं इसकी पाण्डिका ग्रहण करूंगा ; अर्थात् मैं इसके पीछेकी ओरसे हमला करूंगा ॥ ४२ ॥

मित्राणि वास्य ज्ञूयात् ॥ ४३ ॥ अहं वः सेतुः ॥ ४४ ॥
मयि विभिन्ने सर्वानेप वो राजपुत्रावयिष्यति ॥ ४५ ॥ संभूय
वास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ४६ ॥

अब मित्रोंके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें कहते हैं:—अथवा इसके मित्रोंको विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ४३ ॥ मैंही तुम्हारा सेतु अर्थात् पुल हूँ। तात्पर्य यह है, कि जैसे प्राणियोंको जलसे बचानेके लिये पुल एक साधन होता है, इसीप्रकार शत्रुके आक्रमणसे बचानेमें, आप लोगोंके लिये मैंही एक साधन हूँ ॥ ४४ ॥ मेरे नष्ट होजानेपर, यह शत्रु राजा, आप सबको भी नष्ट करवालेगा ॥ ४५ ॥ इसलिये आओ, हम सब मिलकर इसके आक्रमणको विफल करें ॥ ४६ ॥

तत्संहतानामसंहतानां च प्रेपयेत् ॥ ४७ ॥ एष खलु राजा
मामुत्पात्य भवत्सु कर्म करिष्यति ॥ ४८ ॥ बुध्यध्वम्, अहं वः
श्रेयानभ्यवपत्तुमिति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विजिगीषु, शत्रुके साथ मिलकर रहनेवाले, तथा उससे पृथक् रहनेवाले सबही राजाओंके पास, निम्नलिखित समाचार (संदेश) भेजे ॥ ४७ ॥ निश्चयही यह अमुक राजा मेरा उच्छेद करके, आपका भी उच्छेद करेगा। अर्थात् आपके ऊपर आक्रमण करके, आप लोगोंको भी नष्ट करवालेगा ॥ ४८ ॥ इसलिये आप लोग विचार करें, और यह समझें, कि आपत्तिके समयमें, आप लोगोंके द्वारा मैं अवश्यही रक्षा किये जाने योग्य हूँ। अर्थात् इस आपत्कालमें आप लोगोंको मेरी अवश्य रक्षा करना चाहिये ॥ ४९ ॥

मध्यमस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः ।

यथासन्नस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ॥ ५० ॥

इत्यावलीयते द्वादशे अधिकरणे सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं च तृतीयो
अध्यायः ॥ ३ ॥ आदितोऽष्टत्रिंशत्तः ॥ १३८ ॥

दुर्बल राजा, बलवान् अभियोक्ता के भाक्रमणसे बचनेके लिये, मध्यम उदासीन और अपने समीप रहनेवाले सबही सामन्तोंके पास इस प्रकारका सन्देश भेजे, कि मैं सर्वथा आपही लोगोंके अर्पण हूँ । मैं अपना सर्वस्व देकर भी आप लोगोंके आश्रयसे पृथक् नहीं होना चाहता । जब मैं सर्वस्वका शत लगाकर आपकेही अर्पण होसुका हूँ, तो आप लोगोंको सर्वोत्तमा मेरी रक्षा करनी चाहिये ॥५०॥

आयुर्वेदीय न द्वादश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

१६६-१६७ प्रकरण

शत्रु, अग्नि तथा रसोंका गूढप्रयोग, और
वीवध, आसार तथा प्रसारका नाश ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । जब प्रीरसाहित करनेपर भी राजमण्डल, सहायताके लिये तैयार न हो, उस समय विजिगीषुको, हथियार, आग तथा विष आदिके गूढप्रयोग करके शत्रुका नाश करना चाहिये, पहिले प्रकरणमें हथियार आदिके गूढप्रयोगकाही निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें, शत्रुके वीवध आसार और प्रसारका किसप्रकार नाश करना चाहिये, इस बातका निरूपण होगा ।

ये चास्य दुर्गेषु वेदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः,
जनपदसंधिषु गोरक्षकतापसव्यञ्जनास्ते सामन्ताटविकतकुली-
नावरुद्धानां पण्यागारपूर्वं प्रेषयेयुः ॥ १ ॥ अयं देशो हार्य इति
॥ २ ॥

शत्रुके स्थानीय दुर्गोंमें (राजधानी आदिमें), व्यापारीके वेपमें जो विजिगीषुके गुप्तचर हों, इसीप्रकार जो गावोंमें गृहपति (गृहस्थ) के वेपमें हों, तथा सरहद्दी इलाकोंमें जो ग्वाले और तपस्वियोंके वेपमें गुप्तचर हों, वे गुप्तचर, शत्रुके साथ स्वभावसेही विरोध करनेवाले सामन्त आटविक शत्रुकव्यञ्जु बान्धव तथा नजरबन्द राजपुत्र आदिके समीप कुछ मंत्र करनेके सामानके साथ २ निम्नलिखित सन्देश भिजवाय ॥ १ ॥ वह सन्देश इस प्रकार है—'शत्रुके अमुक प्रदेशको, दुर्बल होनेके कारण, नान लोग हस्त करसकते हैं ॥ २ ॥

आगताथैपां दुर्गे गूढपुरुषानर्थमानाभ्यामभिसत्कृत्य प्रकृति
च्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः ॥ ३ ॥ तेषु तैः सह प्रहरेयुः ॥ ४ ॥

इस सन्देशकां पाकर, जब शत्रुके दुर्गमें, सामन्त आदिके गूढपुरुष
भाजावें; तो उनको प्रथम धन, और सरकार आदिसे अच्छी तरह साकृत करके,
फिर शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके दोषोंका, उनके सामने अच्छी तरह
दिसला देवें ॥ ३ ॥ जब अमात्य आदि प्रकृतियोंके दोष उन्हें मालूम होजाय,
तब उन सामन्त आदिके साथही, अर्थात् उनकी सहायता लेकर, वे लोग
शत्रुपर आक्रमण करदेवें ॥ ४ ॥

स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभियुक्तं स्थापयि-
त्वावस्कादकाले रसेन प्रवासयित्वा नैपेचनिकमिति मदनरसयु-
क्तान्मद्यकुम्भाच्छतशः प्रयच्छेत् ॥ ५ ॥

अथवा शत्रुकी छावनीमें, शराब बेचने वालेके वेपमें एक सत्री, किसी
अध्य पुरुषको अपना पुत्र बनाकर, रात्रिके अवसान कालमें विष आदिके द्वारा
उसे मारकर; मृत व्यक्ति की तृप्तिके लिये यह 'नैपेचनिक' द्रव्य है, ऐसा
यहाना करके मादकता उत्पन्न करने वाले विषसे युक्त मद्यके सैकड़ों घड़ों को
वहाँ दे दाले । तात्पर्य यह है कि अपने मृत पुत्रके निमित्त, सैकड़ों घड़े विष
युक्त शराब, दानके तौर पर फौजियों को पिला देवे । जिससे वे मरजावेंगे,
और शत्रुकी सेनाकी शक्ति घट जावेगी ॥ ५ ॥

शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादैकमहः ॥ ६ ॥ उत्तरं
रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ७ ॥ शुद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय
मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

अथवा उन लोगोंके दिव्वाप्तके लिये पहिले विष रहित मद्य देवें ।
अथवा पहिले दिन मद्य का चौथाई हिस्सा विष मिलाकर देवे ॥ ६ ॥ तदनन्तर
पर्याप्त विषसे युक्त मद्य देवे ॥ ७ ॥ अथवा सेनाके मुखिया अर्थात् अध्यक्षोंको
पहिले विषरहित मद्य देवे, (क्योंकि प्रायः ये लोग पहिले किसी और आदमी
को पिलाकर फिर अपने आप पीते हैं, इस लिये पहिले इनको विषरहित ही
मद्य देवे), अनन्तर जब ये शराबसे बेहोश होने लगें, तब विष मिली हुई
शराब देदेवे ॥ ८ ॥

दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा पुत्रमभित्यक्तमिति समानम् ॥ ९ ॥
पक्वमांसिकौदनिकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवधो-

पयित्वा परस्परसंघर्षेण कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय
रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः ॥ १० ॥

अथवा सेनाके मुखिबाके वेपमें सत्री, किसी वध्व को अपना पुत्र
बनाकर शेष सब काम पहिले ही की तरह करे ॥ ९ ॥ अथवा पका मांस, पका
अन्न, शराब तथा चटपटे पुण्य या पकौड़े आदि बेचने वालेके वेपमें सत्री, एक
दूसरे की स्पर्धासे अपनी २ दुकानों की खूब तारीफ करके बहुत धोषा तथा
फिरभी कालान्तरमें मूढ्य लेने का वादा करके, शत्रुके भादमियों को बुझाकर
विपसे युक्त अपने सब सादे को उन्हें दे डाले ॥ १० ॥

सुराक्षीरदधिसर्पितैलानि वा तद्व्यवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रियो
वालाश्च रसयुक्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः ॥ ११ ॥ अनेनार्घेण
विशिष्टं वा भूयो दीयतामिति तत्रैवाशकिरेयुः ॥ १२ ॥

शराब दूध दही घी तथा तेल को, इनका व्यवहार करने वाले पुरुषों के
हाथोंसे लेकर स्त्री तथा बालक, अपने विपयुक्त बर्तनोंमें लौटलेवें ॥ ११ ॥ और
फिर उनके साथ यह झगड़ा करें, कि अमुक वस्तु को इतने ही मूल्यमें हमको
दो, नहीं तो हम तुम्हारा कुछभी सामान न खरीदेंगे । जब वे व्यवहर्ता पुरुष
न मानें तो उन शराब दूध आदि वस्तुओं को फिर उन्हींके बर्तनोंमें लौट देवें,
ऐसा करनेसे वे सब चीजें विपयुक्त हो जावेंगी ॥ १२ ॥

एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्य-
श्वानां विधायवसेषु रसमासन्ना दद्युः ॥ १३ ॥

फिर व्यापारीके वेपमें रहने वाले सत्री, अथवा शराब आदि सौदेके
बेचने के बहानेसे खाने वाले अन्य व्यक्ति इन्हीं सब विपयुक्त वस्तुओं को
लाकर हाथी और घोड़ोंके खाने योग्य अन्न तथा घास आदिमें उनको विपयुक्त
से मिलाकर देदेवें । ये व्यापारी प्रायः छावनीके साथ ही रहने वाले होते हैं
॥ १३ ॥

कर्मकरव्यञ्जना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा विक्रीणीरन्
॥ १४ ॥ चिरसंसृष्टा वा गोवाणिजका गवामजावीनां वा धूथान्य-
वस्कन्दकालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुञ्चेयुः ॥ १५ ॥

अथवा मजदूरके भेसमें रहने वाले गुप्तधर, विपसे युक्त घास अथवा
जलको बेचें ॥ १४ ॥ अथवा चिरकालसे मित्र बने हुए, गीलों का व्यापार
करने वाले सत्री, अपनी गाय बकरी तथा भेड़ोंके मुण्डोंको, भरी रात्रिके समय

में शत्रुओंके मोह अवस्था को प्राप्त हो जाने पर उनकी स्वाकुलता बढ़ानेके निमित्त छोड़देवें ॥ १५ ॥

अथखरोष्महिपादीनां दुष्टांश्च तम्यञ्जना वा चुचुन्दरीशो-
णिताक्ताक्षान् ॥१६॥ लुब्धकव्यञ्जना वा व्यालमृगान्पञ्जरेभ्यः
प्रमुञ्चेयुः ॥१७॥ सर्पग्राहा वा सर्पानुग्रविपान् ॥ १८ ॥ हस्ति-
जीविनो वा हास्तिनः ॥१९॥ अग्निजीविनो वाग्निमवसृजेयुः ॥२०॥

इसी प्रकार घोड़ा गया ऊंट तथा भैंस आदि जानवरोंमें जो जो दुष्ट अर्थात् बटखने मरखने वा लम्बच हों, उनको, उनके व्यापारी वेपमें रहने वाले सत्री उनकी आंखोंमें छट्टंदर का रूत आज कर छोड़देवें ॥ १६ ॥ शिकारीके वेपमें रहने वाले सत्री, अपने हिंसक जंगली जानवरों को पिंजरेसे छोड़देवें ॥ १७ ॥ इसी तरह साँपों को पकड़ने वाले, अपने ताँब विप वाले साँपों को; ॥ १८ ॥ और हाथियोंसे जीविका करने वाले (अर्थात् उनका व्यापार आदि करने वाले) सत्री अपने हाथियों को छोड़देवें । यह सब काम शत्रुकी सेना को स्वाकुल करनेके लिये किया जाता है । प्रेमी आकुलतामें शत्रु पर आक्रमण करके विजिगीषु उसे हरा देता है ॥ १९ ॥ और इसी प्रकार जो गुप्तचर, अग्निसे अपनी जीविका करते हों, वे (रसोईये, लुहार आदि) अपनी अग्नि को छोड़देवें । अर्थात् शत्रुके आदमियोंके मदौन्मत्त होने पर छावनीमें आग लगा देवें ॥ २० ॥

गूढपुरुषा वा विमुखान्पश्यश्वरथद्विपमुस्यानभिहन्त्युः ॥२१॥
आदीपयेयुर्वा मुख्यावासान् ॥ २२ ॥ दूष्यामित्राटविकव्यञ्जनाः
प्रणिहिताः पृष्ठाभिघातमवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः ॥ २३ ॥ वन-
गूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृष्याभिहन्त्युः ॥ २४ ॥

अथवा गूढपुरुष, विमुख हुए २ पैदल युद्धसवार रथसवार तथा हाथी-
सवार सेनाओंके मुखियाओं अर्थात् अधक्षों को मार डालें ॥ २१ ॥ अथवा
अधक्षोंके निवास स्थानों में आग लगावें ॥ २२ ॥ अथवा दूष्य शत्रु वा
आटविक के वेपमें रहते वाले गूढपुरुष, लौटी हुई सेनाके पीछे की ओरसे
आक्रमण करें; अथवा सोते समय उनको नष्ट कर डालें; या युद्ध से लौटते
समय उनका फिर मुकाबला करें ॥ २३ ॥ अथवा वनमें छिपकर रहने वाले
गूढपुरुष, सरइही इलाकों की रक्षाके लिये स्वामी हुई सेनाको किसी बहानेसे
अपनी ओर बुलाकर मार डालें । यहाँ तक शस्त्र अग्नि तथा विपके प्रयोगों का
निरूपण कर दिया गया ॥ २४ ॥

द्वारा बहाकर शत्रुसेनाको नष्ट करवाकें ॥ ३२ ॥ धान्वनदुर्ग, यनदुर्ग तथा निम्नदुर्गमें स्थित हुए २ शत्रुको, योगाग्नि (छलपूर्वक विशेष ऋष्योंके योगसे उत्पन्नकी हुई अग्नि), और योगधूम (विपैत्री गैस आदि) के द्वारा नष्ट कर दियाजावे ॥ ३३ ॥

सङ्कटगतमग्निना धान्वनगतं भूमेन निधानगतं रसेन तोया-
वगाढं दुष्टग्रहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साधयेयुः ॥ ३४ ॥

घने जंगलोंसे घिरे हुए, जहांपर जाना जाना भी अत्यन्त कठिन हो, (सें) प्रदेशमें प्रविष्ट हुए २ शत्रुको अग्निके द्वारा ; धान्वनदुर्गमें स्थित हुए २ शत्रुको सू स गैस आदिके द्वारा, बहुतही छिपे हुए प्रदेशमें शत्रुको विष आदि रसके द्वारा ; अथवा जलके भीतर छिपे हुए शत्रुको भयङ्कर मगरमच्छ आदि जलजन्तुओंके द्वारा ; अथवा जलमें जानेके अन्य साधनोंके द्वारा (देखो—अधि. १३, अध्या. १), तीक्ष्णपुरुष पकड़ लें, या नष्ट करवाकें ॥ ३४ ॥

आदीप्तावासान्निष्पतन्तं वा—॥ ३५ ॥

योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा ।

अमित्रमतिसंदध्यात्सक्तमुक्तासु भूमिषु ॥ ३६ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे अधिकरणे शस्त्राभिरसप्रणिधयः जीवधासारप्रसारवधश्च
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदित एकोनचत्वारिंशच्छतः ॥ १३९ ॥

अथवा आग लगे हुए घरसे निकलकर भागते हुए राजाको ॥ ३५ ॥
तथा अपनी रक्षाके लिये धान्वन आदि भूमियोंमें पहुंचे हुए शत्रु राजाको,
योगवामन (देखो—अधि. १३, अध्या. २) और योग(अर्थात् योगातिसन्धान,
देखो—अधि. १२, अध्या. ५) के द्वारा, अथवा अकेले योगकेही द्वारा घरामें
किया जावे । तत्पर्यं यह है, कि शत्रुको वशमें करनेके लिये जितने भी
उपाय बताये गये हैं, उनमेंसे किसी एक योग्य उपायके द्वारा शत्रुको
वशमें करे ॥ ३६ ॥

आषट्ठीपस द्वादश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१६८-१७० प्रकरण

योगातिसन्धान, दण्डातिसन्धान और एकविजय ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें शत्रुको कपट उपायोंसे ठगनेका अर्थात् अपने वशमें करनेका प्रकार बताया जायगा । दूसरे प्रकरणमें सेनाओंके वशमें करनेका प्रकार, तथा तीसरे प्रकरणमें 'अकेलाही विजिगीषु किस तरह शत्रुका अभिभव करसकता है' इस बातको बताया जायगा ।

देवतेज्यायां यात्रायामभिन्नस्य ब्रह्मनि पूज्यागमस्थानानि भक्तितः, तत्रास्य योगमुब्जयेत् ॥ १ ॥

देवताकी पूजा करनेके समय, या देवताके निमित्तसे होनेवाले किसी विशेष उरसवके लिये यात्राके समयमें, अर्थात् इस प्रकारके अवसरोंपर; शत्रु राजाके, देवतामें उसकी भक्तिके अनुसार, पूजाके लिये आने जानेके अनेक प्रसंग आसकते हैं । इन्हीं अवसरोंपर शत्रु राजाके प्रति कूट उपायोंका प्रयोग किया जावे ॥ १ ॥

देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत् ॥ २ ॥ शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात् ॥ ३ ॥ क्वाटमवपातितं वा, भित्तिप्रणिहितमेकदेशचन्द्रं वा परिधं मोक्षयेत् ॥ ४ ॥

अब उन प्रयोगोंकाही प्रकार बताया है:—जब राजा देवतागृहके अन्दर प्रविष्ट हो, तब उसके ऊपर, यन्त्रके छोड़ देनेसे (यह यन्त्र, भीत और शिला इन दोनोंके सम्बन्धको जोड़नेवाला तथा दोनोंके आधारभूत होना चाहिये, जिसके निकालनेसे वह गूढभित्ति या शिला गिर पड़े), गूढभित्ति (खास तौरसे अघर बनी हुई दीवार) और शिलाको गिरा दिया जावे ॥ २ ॥ ऊपरके मकानकी छतमें तम शत्रुपर परधर तथा हथियारोंकी वर्षा कीजावे ॥ ३ ॥ अथवा नीचेसे उलादकर कियाइकोही शत्रुके ऊपर डाल दिया जावे । अथवा भीतमें छिपे हुए तथा एक ओरसे बंधे हुए भर्गलेकोही शत्रुपर छोड़ दियाजावे ॥ ४ ॥

देवतादेहस्यप्रहरणानि वास्योपरिष्ठात्पातयेत् ॥ ५ ॥ स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकप्रसेकेन वा रस-

मतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा ॥ ६ ॥ गन्धत्रतिच्छिन्नं वास्य
तीक्ष्णं धूममतिनयेत् ॥ ७ ॥

अथवा देवताकी देहपर धारण कार्बेहुद्द हथियारोंकी ही, शत्रुके ऊपर गिरा दियाजावे ॥ ५ ॥ अथवा इसके उड़रने बैठने और जानेकी भूमियों में, विषयुक्त गोबरसे लेपन करदिया जावे, विषयुक्त सुगन्धित जलोंसे छिदकाय कियाजावे; तथा विषयुक्त फूलोंके चूरेकी, देवताकी भँटके निमित्त, उसे लाकर दियाजावे ॥ ६ ॥ अथवा विषकी गन्धको दमाने वाली विक्षेप गन्ध से युक्त, तीव्र धुआं (गैस), इसके अत्यधिक मात्रा में प्रदहन कराया जावे ॥ ७ ॥

शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद्यन्त्रयद्धतलमेनं
कीलमोक्षणेन प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥ प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाच्चान-
वरोधक्षममतिनयेत् ॥ ९ ॥ दुर्गाच्चानवरोधक्षममपनयेत् ॥ १० ॥

अथवा इसके शयन और आसनके नीचे, लोहेकी अतितीक्ष्ण शलाकाओंसे युक्त कूभा तथा गहरा गढ़ा होवे, उसके ऊपर शत्रुकी चारपाई या अन्य कोई उठने बैठनेकी वस्तु, एक यन्त्रके आधारपर अधर बांधीजावे, जब शत्रु इसपर बैठे, तब ही उस यन्त्रकीलकों खींच लेनेसे, चारपाई आदिके समेत उस शत्रुके, गढ़े आदिमें ढकेल दियाजावे ॥ ८ ॥ अथवा जब शत्रु समीप ही होवे, अर्थात् उसका देश अपने देशसे लगा हुआ ही होवे; तब अपने कार्यमें बाधा डालने वाले, उसके जनपदके पुरुषोंको पकड़कर जेलमें डालदेवे, जिससे कि वे फिर बिजिगीपुकी बाधा न पहुँचा सकें ॥ ९ ॥ तथा जो पुरुष बिजिगीपुकी बाधा पहुँचानेमें असमर्थ हों, और शत्रुने उनको बन्धन (जल आदि) में डाला हुआ हो, तो बिजिगीपु उन्हें छुड़ा देवे ॥ १० ॥

प्रत्यादेयमरिविषयं वा प्रेषयेत् ॥ ११ ॥ जनपदं चैकस्थं
शैलवननदीदुर्गेष्वटवीव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं स्थापयेत्
॥ १२ ॥ उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ॥ १३ ॥

शत्रुके प्रान्तसे लायाहुआ जो भादमी, हथियार ही लीटाना पड़े, उसे स्वयं ही शत्रुके देशमें भेजदेवे ॥ ११ ॥ जो जनपद अकेले ही शत्रु राजाके शासनमें स्थित हो, उसके पर्वतदुर्ग वनदुर्ग और नदीदुर्गोंको तथा घने जंगलोंसे घिरेहुए अन्यप्रदेशको शत्रुके पुत्र या शत्रुके भाईकी अधीनतामें

करादेवे । अर्थात् एकच्छत्र शत्रुके जनपदमें से, इन उपर्युक्त प्रदेशोंपर शत्रुपुत्र आदिका भाषिपत्य करादेवे ॥ १२ ॥ उपरोपके हेतुओंका व्याख्यान, दण्डोप-
नतवृत्त नामक प्रकरण में करादिया गया है । (देखो अधि० ७, अध्या०
१५) ॥ १३ ॥

तृणकाष्ठमायोजनाद्वाहयेत् ॥ १४ ॥ उदकानि च दूषयेत्
॥ १५ ॥ अवासावयेच ॥ १६ ॥ कूटकूपावपातकण्टकिनीश्च
वहिरुञ्जयेत् ॥ १७ ॥

शत्रुके पड़ावके चारों ओर एक २ योजन (एक योजन=चार कोस)
तक, घास तथा लकड़ी आदिको जलवादेवे जिससे ये चीजें शत्रुको मिल न सकें
॥ १४ ॥ ओर जलोंको घिप आदि मिलाकर दूषित करादेवे ॥ १५ ॥ तथा
जलाशयोंके किनारे या बाध आदिका तुड़व कर जलको बाहर निकलवादेवे
॥ १६ ॥ ओर बाहर शत्रुकी सेनाके आनेके मार्गमें अन्धेरे कूप घास अदिसे
ढकेहुए गढे तथा स्थान २ पर काटेदार लोहेकी जंजीरोंके जाल बनवा
देव ॥ १७ ॥

सुरङ्गाममित्रस्थाने बहुमुखीं कृत्वा विचयमुख्यानभिहार-
येत् ॥ १८ ॥ अमित्रं वा ॥ १९ ॥ परप्रयुक्तायां वा सुरङ्गायां
परिखामुदकान्तिकीं खानयेत् ॥ २० ॥ कूपशालामनुसालं वा ॥ २१ ॥

शत्रुके डहरनेके स्थानमें, बहुत गुंहावाली एक सुरंग बनवाकर, शत्रुके
प्रधान व्यक्तियोंको उसीमें फंसा देवे ॥ १८ ॥ नपरा अथवा आनेपर शत्रुको
भी उस ही में फंसादेवे ॥ १९ ॥ यदि शत्रु ही, विजिगीषुके दुर्गमें आनेके
लिये सुरंग बनवावे, तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह दुर्गके चारों ओर
इतनी गहरी खाई खुदवावे, जिसमें कि जल निकल आवे । अर्थात् जल
निकल आनेतक उस खाईको खुदवाता ही जावे ॥ २० ॥ यदि इतनी खाई
खुदवानेमें असुविधा हो, तो परकोटेकी लम्बाईके मुताबिक उसके चारों
ओर कूपशाला बनवादी जावे । (कूपशालासे तत्पर्य, चारों ओर बनाए
जाने वाले गहरे २ कुओंसे है । ऐसा करनेसे शत्रुको दुर्गके भीतर आनेके
लिये, सुरंग बनानेका रास्ता नहीं मिल सकेगा) ॥ २१ ॥

अतोयकुम्भान्कांस्यभाण्डानि वा शङ्कास्थानेषु स्थापयेत्स्वाता-
मिज्ञानार्थम् ॥ २२ ॥ ज्ञाते सुरङ्गापथे प्रतिशुरङ्गां कारयेत् ॥ २३ ॥
मध्ये भित्त्वा धूममुदकं वा प्रयच्छेत् ॥ २४ ॥

अथवा जिन स्थानोंमें सुरंग बनाये जानेकी आशंका हो, वहाँ जल रहित घाँवोंको अथवा काँसेके छोटे २ स्तूप या टुकड़ोंको रखदिया जाये, जिससे कि सुत्रेद्रुप सुरंगके मार्गका पता लगता रहे ॥ २२ ॥ शत्रुकी सुरंगके मार्गके मालूम होजानेपर, उसके विरुद्ध दूसरी सुरंग खुदवा देवे ॥ २३ ॥ अथवा चौचमें से उसके फोंदकर, विषैला धुआँ (अथवा साधारण धुआँ हो) - १ जल इसमें भरदेवे । (विषैले धुएँकी तरह जल भी जलमें विषयुक्त भरा जासकता है) ॥ २४ ॥

प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायदं कृत्वा प्रतिलोमामस्य दिशं गच्छेत् ॥ २५ ॥ यतो वा मित्रैर्विन्धुभिराटाविकैर्वा संसृज्येत ॥ २६ ॥ परम्यामित्रैर्दूष्यैर्वा महद्भिः ॥ २७ ॥ यतो वा गतोऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात् ॥ २८ ॥ पाणिं वा गृहीयात् ॥ २९ ॥ राज्यं वास्य हारयेत् ॥ ३० ॥ वीवधासारप्रसारान्वा वारयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा कृत्तिके अनुसार दुर्गकी रक्षा करनेपर भी यदि पूर्ण सफलता न होखे, तो दुर्बल राजा, मूलस्थानमें अपने पुत्र आदिको नियुक्त करके स्वयं शत्रुकी प्रतिरूढ़ दिशाकी चलाजाये । अर्थात् ऐसी दिशामें जावे, जहाँ जाकर शत्रुकी हानि करसके ॥ २५ ॥ अथवा जिस ओर जाकर, अपने मित्र, बन्धु-वाण्यव और आटाविकोंके साथ मिलकर शत्रुका अपकार करनेके लिये उचित अवसर प्राप्त करसके ॥ २६ ॥ अथवा अपने शत्रुके शत्रु, और अत्यन्त शक्तिशाली नृप्य पुरुषोंके साथ मिलकर शत्रुकी हानि करसके ॥ २७ ॥ अथवा जहाँ जाकर शत्रुका, उसके मित्रोंसे भेद करवा देवे ॥ २८ ॥ अथवा शत्रुपर पीछेकी ओरसे हमला करसके ॥ २९ ॥ अथवा शत्रुके राज्यको अपहरण करसके ॥ ३० ॥ अथवा शत्रुके वीवध आसार और प्रसारको उसके पास तक न पहुँचने देवे ॥ ३१ ॥

यतो वा शत्रुनुयादाक्षिकवदपक्षेपेणास्य ग्रहर्तुम् ॥ ३२ ॥ यतो वा स्वं राज्यं त्रायेत् ॥ ३३ ॥ मूलस्योपचयं वा कुर्यात् ॥ ३४ ॥ यतः संधिमभिप्रेतं लभेत ततो वा गच्छेत् ॥ ३५ ॥

अथवा जहाँ जाकर कपटी जुआरीकी तरह, कपट प्रयोगोंको करके शत्रुपर प्रहार करसके ॥ ३२ ॥ अथवा जहाँ जाकर अपने राज्यकी रक्षा करसके ॥ ३३ ॥ अथवा अपने मूलस्थानकी भलीभाँति धृष्टि कर सके ॥ ३४ ॥

अथवा जहाँसे अपनी ह्ज्जाके अनुसार मन्थि करनेका अवसर मिलसके, ऐसे स्थानपर चला जावे ॥ ३५ ॥

सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेषयेद्भुः ॥ ३६ ॥ अथ वे शत्रुरसाकं
हस्तगतः ॥ ३७ ॥ पण्यं विप्रकारं वापन्नित्य हिरण्यमन्तःसार-
चलं च प्रेषयस्व एनमर्पयेम वद्धं प्रवासितं वेते ॥ ३८ ॥ प्रति-
पन्ने हिरण्यं सारचलं चाददीत ॥ ३९ ॥

अथवा दुर्बल राजाके साथ २ जानेवाले, उसके (दुर्बल राजाके)
गृहपुरष, शत्रुके पास इस प्रकार अन्देश भिजवायें ॥ ३६ ॥ यह तुम्हारा शत्रु,
इस समय हमारे हाथमें आया हुआ है ॥ ३७ ॥ इसलिये, किसी सौदेके
यहाँसे सुवर्ण आदि धनको, और किसी अपकार आदिके यहाँसे अन्धस्वार
सेनाको हमारे पास भेजो । तदनन्तर हम, कैद किये हुए या मारे हुए तुम्हारे
इस शत्रुको, तुम्हारे अर्पण करसकते हैं ॥ ३८ ॥ जब शत्रु इस बातको मानकर,
सुवर्ण आदि धन और अन्तस्वार सेनाको (बहुत ही मजबूत बहादुर सेनाको)
भेजदेवे, तो दुर्बल राजा उस सब सामानको अपने भरीप करलेवे ॥ ३९ ॥

अन्तपालो वा दुर्गसंप्रदानेन चलेकदेशमतिनीय विश्वस्तं
घातयेत् ॥ ४० ॥ जनपदमेकस्थं वा घातयितुममित्रानीकमाया-
हयेत् ॥ ४१ ॥ तद्वरुद्धदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४२ ॥

अथवा अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी), अपना दुर्ग, शत्रुके सुपुद
करके, उसकी सेनाके कुछ हिस्सेको ऐसी जगह लेजावे, जहाँसे उनका
लौटना असम्भव हो, और विश्वासपूर्वक उन्हें वहींपर मारदाले ॥ ४० ॥
अथवा किसी उषंतूल, पृथग्रित हुए २ जनपदको कायूम करनेके लिये,
अन्तपाल, शत्रुकी सेनाको बुलवालेवे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उस सेनाको ऐसे
देशमें लेजावे, जहाँसे निकलना अत्यन्त दुष्कर हो, वहाँ जाकर विश्वासपूर्वक
उस सेनाको मरवादाले ॥ ४२ ॥

मित्रव्यञ्जनो वा चाहस्य प्रेषयेत् ॥ ४३ ॥ क्षीणमसिन्दुर्गे
धान्यं स्नेहाः क्षारो लवणं वा ॥ ४४ ॥ तदमुष्मिन्देशे काले च
प्रवेक्ष्यति ॥ ४५ ॥ तदुपगृहाणेति ॥ ४६ ॥

अथवा मित्रके घेपमें रहनेवाला सत्री, शत्रुके पास इसप्रकार सन्देश
भिजवावे ॥ ४३ ॥ इस दुर्गमें धान्य (अन्न आदि), जैड (घी तेल आदि),
क्षार (गुद शहर आदि) तथा लवण (नमक) आदि सब पदार्थ समाप्त

होचुके हैं ॥ ४४ ॥ ये सब सामान, अमुक २ देश तथा अमुक कालमें लाये जावेंगे । (अर्थात् इन पदार्थोंके लानेके मार्ग और समय आदिसे, शत्रुको ठीक २ सूचित करवेंगे) ॥ ४५ ॥ भाप इस सब सामानको लेलेवें । अर्थात् रासमेंही ठीक समयपर पहुंचकर इस सब सामानको बटकर अपने अधीन करलेवें ॥ ४६ ॥

ततो रसविद्धं धान्यं खेहं क्षारं लवणं वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः ॥ ४७ ॥ अन्ये वाभित्यक्ताः ॥ ४८ ॥ तेन सर्वभाण्डवीवधग्रहणं व्याख्यातम् ॥ ४९ ॥

तदनन्तर दिजिगीपुके दूष्य, शत्रु तथा भाटाविक पुरुष, विपसे युक्त हुए २ धान्य, खेह, क्षार तथा लवण आदि पदार्थोंको लेकर ठीक समयपर उन्हीं निर्दिष्ट मार्गोंसे होकर गुजरे ॥ ४७ ॥ अथवा अन्य घष्यपुरुष इस कार्यको करें । अर्थात् विपयुक्त धान्य आदिको लेकर निर्दिष्ट समयपर निर्दिष्ट मार्गोंसे होकर दुर्गकी ओर जावें । (तारपर्यं यह है, कि इसप्रकार शत्रु, लटमें विपयुक्त धान्य आदि लेजाकर अपने कार्यमें लावेगा, और मारा जायगा) ॥ ४८ ॥ इसीप्रकार सब तरहके अन्य खाद्य पदार्थोंको विपयुक्त बनाकर, शत्रुको भ्रमण करानेके सम्बन्धमें भी व्याख्यान समाप्त लेना चाहिये ॥ ४९ ॥

संधिं वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमसौ दद्यात् ॥ ५० ॥ विलम्बमानः शेषम् ॥ ५१ ॥ ततो रक्षाविधानान्यवस्त्रावयेत् ॥ ५२ ॥ अपिरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत् ॥ ५३ ॥ हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लभाननुगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥

अथवा दुर्बल राजा, शत्रुके साथ सन्धि करके, प्रतिज्ञात धनका कुछ भाग उसे तत्कालही देदेवे ॥ ५० ॥ और शेष भाग विलम्ब करके, देनेको कहकर, फिर ठीक समयपर देदेवे ॥ ५१ ॥ तदनन्तर शत्रुपर अपना विश्वास जमाकर (अर्थात् शत्रु जब उसपर पूरा विश्वास करने लगे) अपने चारों ओर रक्षाके लिये रक्खी हुई शत्रु सेनाको हटवा देवे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर स्वतन्त्र होकर, अग्नि विप तथा शस्त्रोंके द्वारा शत्रुपर महार करे । (५२वें सूत्र का यह भी अभिप्राय होसकता है, कि शत्रुराजा, दुर्बलपर विश्वास होनेके कारण, उसके सामने अपनी रक्षाकी अपेक्षा न रखे ; इस प्रकार जब कभी दुर्बलके सामने शत्रु सर्वथा अरक्षित हो, तो भाग, विप तथा शस्त्र आदिके द्वारा उसे नष्ट करवा डाले) ॥ ५३ ॥ अथवा धन आदि लेकर कायमें आने

वाले, शत्रुके प्रिय पुरुषोंकोही इस कार्यके करनेके लिये तैयार करे । अर्थात् धन आदि देकर उन्हींके द्वारा शत्रुको मरवा देवे ॥ ५४ ॥

परिक्षीणो वासौ दुर्गं दत्त्वा निर्गच्छेत् सुरुह्या ॥ ५५ ॥
कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत् ॥ ५६ ॥

अथवा यदि दुर्बल राजा, सर्वथाही हीनशक्ति होजावे, अर्थात् शत्रुका निवारण करनेमें किसी तरह भी समर्थ न होसके, तो अपना दुर्ग शत्रुको देकर सुगंगके रास्तेसे बाहर निकल जावे । अर्थात् दुर्गको छोड़कर भाग जावे ॥ ५५ ॥ अथवा किलेमें सुगंग न होनेपर, परकोटेकी दीवार जहाँसे कमजोर हो, वहाँसे उसे फोड़कर बाहर निकल जावे ॥ ५६ ॥

रात्राववस्कन्दं दत्त्वा सिद्धस्तिष्ठेत् ॥ ५७ ॥ असिद्धः पार्श्व-
नापगच्छेत् ॥ ५८ ॥ पापण्डच्छब्दना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत्
॥ ५९ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्हिषेत् ॥ ६० ॥ स्त्रिविषधारी
वा प्रेतमनुगच्छेत् ॥ ६१ ॥

रातमें सोते समय शत्रुसेनाके ऊपर छापा मारकर यदि कार्यसिद्धि होजावे, तो दुर्बल अपने दुर्गमेंही ठहरारहे ॥ ५७ ॥ यदि कार्यसिद्धि न होवे, तो पाससे होकर निकल जावे ॥ ५८ ॥ निकलनेके प्रकार ये हैं—पापण्ड (पालण्डी=धर्मप्वजी) का वेप बनाकर घोड़ेसे परिवारके साथ बाहर निकल जावे ॥ ५९ ॥ अथवा मरे हुएके वेपमें, गूढ पुरुषोंके द्वारा लेजाया जावे । अर्थात् गूढ पुरुष, राजाको मरे हुएके समान अर्थात्पर बांधकर दुर्गसे बाहर निकाल लेजावे ॥ ६० ॥ अथवा स्त्रीका वेप धारण करके किसी मृतपुरुषके पीछे २ निकल जावे ॥ ६१ ॥

दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणेषु वा रसविद्धमन्त्रपानमयसृज्य कृतो-
पजापो दूष्यव्यञ्जनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभिहन्यात् ॥ ६२ ॥

दैवतोपहार (देवताओंको बलि देने), श्राद्ध, तथा प्रहवण आदि (उद्यान आदिमें मिश्रोंको भोजन कराने=पार्टी) के अवसरोंपर शत्रुके विषयुक्त भक्षण आदि देकर; या दूष्यके वेपमें रहनेवाले सत्रियोंके द्वारा शत्रु पक्षमें प्रवेश करके, और उनको वही अर्थात् तरह उपनाप करके (अर्थात् उनको उनके स्वामीसे भिन्न करके), छिपी हुई अपनी सेनाके सहित दुर्बल राजा, शत्रुको नष्ट करादेवे ॥ ६२ ॥

एवं गृहीतदुर्गो वा प्राश्यप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमा-
च्छिद्रं प्रविश्यासीत् ॥ ६३ ॥ गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं
भूमिगृहम् ॥ ६४ ॥

अब अकेलाही विजिगीषु किम्प्रकार शत्रुका अभिभव करसकता है,
इस बातका निरूपण किया जायगा:—इसप्रकार शत्रुके द्वारा अपने दुर्गके
छिन जानेपर विजिगीषु, खाने योग्य प्रसुर अन्नसे युक्त किसी देवालयेमें
उपस्थित होकर, वहां देवताकी प्रतिमाके छेदमें प्रवेश करके निवास करे
॥ ६३ ॥ अथवा छिपकर रहने योग्य किसी दीवारके बीचमेंही ठहरे । अर्थात्
जिस दीवारपर पाहचाने जानेके लिये कोई बाह्यचिन्ह न हो, वही छिपकर
बैठजावे । या देवताकी प्रतिमासे युक्त किसी तैखाने (=भूमिगृह) में जाकर
छिपजावे ॥ ६४ ॥

विस्मृते सुरुङ्गया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तमभित्रं
हन्यात् ॥६५॥ यन्त्रविश्लेषणं वा विश्लेश्याधस्तादवपातयेत् ॥६६॥
रसाग्रियोगेनावलिप्तं गृहं जतुगृहं वाधिशयानमभित्रमादीपयेत्
॥ ६७ ॥

जब शत्रु राजा इस बातकी भूलगावे, अर्थात् शत्रुको जब यह निश्चय
होजावे, कि हमारा विरोधी अमुक राजा सर्वथा नष्ट होचुका है, इसलिये
इसकी ओरसे जब शत्रुकी उपेक्षादि होजावे, तो यह सुरंगके द्वारा रातमें,
राजाके निवास करनेके मकानमें प्रविष्ट होकर, सोतेहुए शत्रुराजाको मारबाले
॥६५॥ अथवा यन्त्रको ढीला करके उसे शत्रुके ऊपर गिरादेवे । (संभवतः इसका
यह अभिप्राय प्रतीत होता है, कि राजाओंके शयनगृह आदिमें कोई इस प्रकारके
विशेष यन्त्र होते थे, जिनके ढीलाने डुलानेसे मकानकी परिधिपट्टिमें विशेष
अन्तर पड़सकता था; अथवा ऊपरसे झाड़पानूस आदिके गिरानेकी भी
कदरना कीजासकती है) ॥ ६६ ॥ अथवा आग लगानेमें सहायता देनेवाले
खास तरहके मसाले से लियेहुए (औषधिपदिक अधिकरणके प्रलम्भन प्रकरण
में इसतरहके मसालोंका जिक्र किया गया है) घरमें; या छाखके घरमें
शत्रुके सोतेहुए होनेपर, उस घरको आग लगादेवे ॥ ६७ ॥

प्रमदवनविहारारणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृह-
सुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः ॥ ६८ ॥ गूढप्रणिहिता
वा रसेन ॥ ६९ ॥ स्वपतो वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्पर-

सामिधूमानुपरि मुञ्चेयुः ॥ ७० ॥

प्रमदस्थान धनस्थान और विहारस्थानमें अधवा इनमेंसे एक विहार-स्थानमें ही प्रमत्त हुए २ शत्रुको; शूभिगृह सुरंग या गूढभित्तिधर्मों छिपेहुए तीक्ष्ण पुरुष, मारडालें ॥ ६८ ॥ अधवा छिपकर रहनेवाले सूद आराधिका आदि गूढपुरुष, विष देकर शत्रुको मारडाले ॥ ६९ ॥ अधवा किसी घिरेहुए स्थानमें (जहाँ पर लोगोंके जाने जाने का सर्वथा निषेध हो) सोतेहुए शत्रुराजाके ऊपर, गुप्त वेपमें रहने चाली छियां, सर्प, विष अग्नि तथा विपैले धुँएको छोड़देवें । अर्थात् शत्रुको मारनेके लिये सोते समय उसपर इन चीजों का प्रयोग करें ॥ ७० ॥

प्रत्युत्पन्ने वा कारणे यद्यदुपपद्येत तत्तदामित्रेऽन्तःपुरगते गूढसंचारः प्रयुञ्जीत ॥ ७१ ॥ ततो गूढमेवापगच्छेत् ॥ ७२ ॥ स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत् ॥ ७३ ॥

अधवा समयानुसार उन २ कारणोंके उत्पन्न होनेपर, जैसा अवसर हो उसीके अनुसार, विजिगीषु, अन्तःपुरमें गयेहुए शत्रुके ऊपर, गूढ रीतिले उसे नष्ट करनेवाले उपायोंका प्रयोग करे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर छिपे तौरपर ही पहंसे बाहर निकलजाये ॥ ७२ ॥ तथा अपने आदिमियोंको (जो वहाँपर इधर उधर छिपे हों) इगारोंसे इस बातकी खबर देदेवे ॥ ७३ ॥

द्वाःस्थान्वर्षवरांधान्यान्निगूढोपहितान्तरे ।

नूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विपच्छेपाणि घातयेत् ॥ ७४ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे अधिकरणे योगातिसंधानं दण्डातिसंधानं एकविजयश्च पञ्चमो-
ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४० ॥ एवावता कौटलीयस्या-

र्यशास्त्रस्य आवलीयसं द्वादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अन्तिम उपसंहार श्लोकमें इसी घातका स्पष्ट निरूपण कियाजाता है:- द्वारपाल, गपुंसक, तथा अन्तःपुर आदिके अन्य कर्मचारियोंके वेपमें रहनेवाले; तथा शत्रुके ऊपर छिपे तौरपर नियुक्त कियेहुए अपने गुप्तपुरुषोंको बाने आदि को इगारोंसे बुलाकर, शत्रुके वेप आदिमियोंको भी, विजिगीषु, उन्हींके द्वारा मरवाडाले । अर्थात् वे गुप्तपुरुष ही दुश्मनके धाकी आदिमियोंको मारडालें । (इस श्लोकमें 'घातयेत्' पदके स्थानपर किसी पुस्तकमें 'कारयेत्' भी पाठ है । अर्थ उसका भी यही करना चाहिये) ॥ ७४ ॥

आवलीयस द्वादश अधिकरण में पांचवां अध्याय समाप्त ।

आवलीयस द्वादश अधिकरण समाप्त ।

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण

पहिला अध्याय

१७१ प्रकरण

उपजाप

{ यह दुर्गलम्भोपाय तेरहवां अधिकरण है । इस अधिकरणमें शत्रुके दुर्गोंको प्राप्त करनेके उपायोंका निरूपण किया जायगा । अब सबसे पहिले प्रकरणमें उपजाप अर्थात् भेदका निरूपण किया जाता है ।

विजिगीषुः परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापना-
भ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ १ ॥ परपक्षं चोद्देजयेत् ॥ २ ॥

शत्रुके ग्राम या नगर आदिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखता हुआ विजिगीषु, अपने आपको सर्वज्ञ तथा देवताका साक्षात्कार करनेवाला प्रसिद्ध करके अपने पक्षको उत्साहित करे ॥ १ ॥ और इन्हीं कारणोंसे शत्रुके पक्षको उद्धिप्त (= विह्वल = बेचैन) करे ॥ २ ॥

सर्वज्ञख्यापनं तु—॥ ३ ॥ गृहगुह्यप्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो
मुख्यानाम् ॥ ४ ॥ कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रकाशनं राजद्विष्ट-
कारिणाम् ॥ ५ ॥ विज्ञाप्योपायनख्यापनमदष्टसंसर्गविधासंज्ञा-
दिभिः ॥ ६ ॥ विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयु-
क्तम् ॥ ७ ॥

अपनी सर्वज्ञताको प्रसिद्ध करनेके लिये विजिगीषु निम्नलिखित उपायोंका प्रयोग करे—॥३॥ मुख्य व्यक्तियोंके घरोंमें होनेवाले किन्हीं छिपेहुए तुरे कामोंको गृहपुराणोंके द्वारा जानकर, मुख्य पुरुषोंको ऐसे काम करनेसे रोके ॥ ४ ॥

कण्टकशोधन अधिकरणके पांचवें अध्यायमें बतलाये हुए अपसर्पोपदेश (गूढ पुरुषोंके कथन । देखो, अधि० ४, अध्या० ५, सू० २०-२५) के द्वारा, राजाके साथ शत्रुता करनेवाले पुरषोंके छिपे भेदोंको जानकर, उन्हें उनके सामने प्रकट करे, और ऐसा करनेसे उन लोगोंको रोके ॥ ५ ॥ अन्य पुरुषोंसे न जानीहुई संसर्गविद्या (नाचना, गाना बजाना आदि विशेष विद्या) के हशारोंसे तथा गुप्तचर आदिसे जानकर, राजाके पास आनेवाली भेंटको आनेसे पहिले ही प्रकट करदेवे ॥ ६ ॥ विदेशमें होनेवाली घटनाको जिसादिन वह घटना होवे उसी दिन, अपने घाम रहनेवाले मुद्रायुक्त कवूतरके द्वारा बतला देवे (अभिप्राय यह मान्य होता है, कि दूर देशकी किन्हीं विशेष घटनाओंको बहुत जल्दी जान लेनेके लिये कवूतरो का उपयोग उस समय किया जाता था, इसीतरह जब कोई शिक्षित कवूतर, लिखेहुए पत्रके रूपमें किसी समाचारको राजाके पास लावे, तो राजा उसका इसप्रकार प्रकट करे, जैसे उसने किसी अदृष्ट या अज्ञेय कारणस ही यह सब जान लिया है ॥ ७ ॥

दैवतसंयोगख्यापनं तु—॥ ८ ॥ सुरुङ्गामुखेनाग्निचैत्यदैवत-
प्रतिमाच्छिद्रानुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च
॥ ९ ॥ उदकादुत्थितैर्वा नागवरुणव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च
॥ १० ॥

देवताके साथ साक्षात् संयोगकी प्रसिद्धि करनेके लिये, इन उपायोंको प्रयोगमें लावे ॥ ८ ॥ सुरगके द्वारा अग्निके बीचमें तथा पौली देवताओंकी प्रतिमाओंके बीचमें प्रविष्ट हुए २, अग्निचैत्य (अग्निके बीचमें रहने वाले गूढपुरुषोंके साथ राजा सम्भाषण करे, और उनका पूजन भी करे ॥ ९ ॥ भयवा जलसे उठेहुए अर्थात् जलसे निकले हुए, नाग (सर्पदेव) और वरुणदेवके वेपमें रहनेवाले गूढपुरुषोंके साथ राजा सम्भाषण करे, तथा उनका पूजन भी करे ॥ १० ॥

राधावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोशं प्रणिधायाग्निमालादर्श-
नम् ॥ ११ ॥ शिलाशिक्यावगृहीते पुवके स्थानम् ॥ १२ ॥

राग्निके समय जलाशय आदिकें धीवमें सुहर लगा हुई मजबूत पेटियोंके अन्दर (जिनमें कि सर्वथा जलका प्रवेशन होसके) रेत भरीकर छिपा दिया जावे; उसके सहारेसे रखी हुई आगको जलमेंसे निकालकर फिर दिसलाया जावे ॥ ११ ॥ भारी शिलासे युक्त छोंके आदिकें द्वारा जकड़ी हुई छोटी २ नावोंको

पानीकी तेज़धारमें स्थिरतासे खड़े करदेना । (अभिप्राय यह प्रतीत होता है, एक छोटी सी नावको, पानीकी तेज़ धारमें, उसके ऊपर रस्तिपोंमें परस्पर बांधकर नीचे पानीमें उम्हें लटकाकर, खड़ा करदेवे । अनन्तर लोगों को बतलावें, कि देखो, राजाका हुतना प्रभाव देवताओंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण ही है, इसीलिये इसने जलकी तेज़ धारमें नावको विश्रल बना करदिया है) ॥ १२ ॥

उदकवस्तिना जरायुणा वा शिरो ज्वगूढनासः पृषतान्त्रकूली-
रनक्रशिशुमारोद्रवसाभिर्वा श्रुतपाक्यं तैलं नस्तः प्रयोगः ॥ १३ ॥
तेन रात्रिगणशश्वरतीत्युदकचरणानि ॥ १४ ॥

उदकवस्ती (खलकी भीतर प्रवेश करनेसे रोकनेवाला एक बख विशेष), अथवा जरायु (गर्भकी घैलीके समान घनीहुई चमड़ेकी एक घैली) से सिर आर नासिकाको ढककर, चितल हरिणकी आंत तथा कैंकड़ा, माकू, शिशुमार (शिरस नामकी मछली) और उद्र (हृद नामकी मछली) की चरबीके साथ तैलको पंद्रहवीं बार पकाकर, नासिकामें उसका प्रयोग कियाजावे; अर्थात् इस तैलको नाकमें डालाजावे ॥ १३ ॥ ऐसा करनेसे रात्रिमें झुण्डके झुण्ड पुरुष, जलमें सञ्चारण करसकते हैं ॥ १४ ॥

तीर्वरुणनागकन्यावाक्यक्रिया सम्भाषणं च ॥ १५ ॥ कोपस्था-
नेषु मुख्यादग्निधूमोत्सर्गः ॥ १६ ॥

जलमें घूमनेवाले उन पुरुषोंके द्वारा, राजा, वरुण तथा सर्पदेवोंकी कन्याओंके समान आपाज करवावे । अर्थात् वे पुरुष, घरण आदिकी कन्याओं के समान शब्द करें; और राजा उनके साथ बातचीत करे ॥ १५ ॥ कोपके कारण उपस्थित होनेपर अर्थात् क्रोध आने के अवसरों में राजा, अपने मुंहसे आग और धुंके निकाले । अर्थात् मुंहसे आँपध आदिके योगसे इसतरहका कार्य करे ॥ १६ ॥

तदस्य स्वविषये कार्तान्दिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकेक्ष-
णिकगूढपुरुषाः साचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशयेयुः ॥ १७ ॥
परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं चास्य ब्रूयुः ॥ १८ ॥

राजाकी इन सब उपर्युक्त बातोंको, इसके अपने देशमें; इसकी (राजाकी) सहायता करनेवाले तथा इन सब कामोंकी देखनेवाले कार्तान्तिक (वैद्य) नैमित्तिक (यथायोग्य लक्षणोंको देखकर शुभाशुभकी सूचना देनेवाले=भारो), मौहूर्तिक (ज्योतिषी), पौराणिक (पुराण आदिकी

कथा करनेवाले), ईक्षणिक (प्रभ करके भविष्य शुभाशुभको बतानेवा), तथा गूढपुरुष, सर्वत्र प्रकाशित करदेवें ॥ १७ ॥ तथा शत्रुके देशमें, इसके देवताओंके दर्शन और दिव्य कोश तथा दिव्य सेनाके प्रादुर्भावको घतार्थे । अर्थात् 'इसका देवताओंके साथ साक्षात्कार होता है, यह अपनी इच्छाबुद्धि कर लय चाहे, अपनी सहायताके लिये अपरिमित दिव्य कोश तथा दिव्य सेनाको उत्पन्न करसकता है' इत्यादि बातोंको शत्रुदेशमें प्रसिद्ध करवेये ॥ १८ ॥

दैवतप्रक्षनिमित्तवायसाङ्गविद्यास्त्रममृगपक्षिव्याहारेषु चास्त्र
विजयं त्र्ययुः ॥ १९ ॥ विपरीतममित्रस्य सद्गुणुभिम् ॥ २० ॥
उल्कां च परस्य नक्षत्रे दर्शयेयुः ॥ २१ ॥

दैवतप्रभ (शुभाशुभ कर्म विषयक प्रभ=अर्थात् अपने भाग्य के सम्बन्धमें पूछना), निमित्त (शकुन), कौए आदिका बोलना, अङ्गविद्या (शरीरके अंगोंका स्पर्श करनेसे शुभाशुभको घतलाने वाली विद्या=सामुद्रिकका विशेष भाग), स्वप्न, तथा पशु पक्षी आदिके बोलनेके समयमें इस राजाके विजय का ही सदा कथन करें । अर्थात् प्रत्येक निमित्तके होनेपर यही कहें, कि देखो—इस लक्षणसे मालूम होता है, कि इस राजाका विजय अवश्य होमा ॥ १९ ॥ शत्रु राजाके सम्बन्धमें, नक्षत्र (भाकाश) में उल्का दर्शन करावें । अर्थात् उल्कापात आदिके दिखानेसे इस बातको प्रसिद्ध करें, कि शत्रुका कोई भारी अनिष्ट होनेवाला है ! (उल्कापातके सम्बन्धमें देखो,—अधि० १४, अध्या० २, सू० ३२ के लगभग) ॥ २१ ॥

परस्य मुख्यान्मित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यञ्जनाः स्वामिस-
त्कारं त्र्ययुः ॥ २२ ॥ स्वपक्षबलाघानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्य-
योगक्षेमममात्यानामायुधीयानां च कथयेयुः ॥ २३ ॥ तेषु व्यस-
नाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं च प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥

शत्रुके मुख्य पुरुषोंके साथ मित्र रूपसे व्यवहार करने वाले, दूत
वेपथारी पुरुष; उन मुख्य व्यक्तियोंके सम्मुख, अपने स्वामीके द्वारा क्लिप्त
अपने सत्कारका स्वर बखान करें । (जिससे कि उनके हृदयमें भी इस
साक्षरको प्राप्त करनेका लोभ उत्पन्न होजावे) ॥ २२ ॥ शत्रुके अमात्य तथा
सैनिक पुरुषोंके सामने, अपने पक्षकी सेनाकी उन्नति और शत्रु पक्षकी
सेनाके हासका, तथा दोनोंके मुख्य योगक्षेमका अन्वितरह कथन करें ॥ २३ ॥
और अमात्य तथा सैनिक पुरुषोंके सामने, ये पुरुष यह भी कहें, कि
हमारा राजा अपने भनुष्योंके आपत्तिकालमें पूर्ण सहायता करता है, तथा

अभ्युदयके समयमें अभिनन्दन आदिसे उन्हें अच्छीतरह तन्तुष्ट करता है । तथा अमात्य आदिके मरजानेपर उनके पुत्रोंका भी बहुत अच्छीतरह सत्कार करता है ॥ २४ ॥

तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात् ॥ २५ ॥ भूयश्च
वक्ष्यामः—॥ २६ ॥ साधारणगर्दभेन दक्षान् ॥ २७ ॥ लकुट-
शाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः ॥ २८ ॥ कुलैलकेन चोद्विद्वान्
॥ २९ ॥ अशनिवर्षेण विमानितान् ॥ ३० ॥

इन सबही उपयुक्त प्रकारोंसे शत्रुपक्षको उत्साहित करे । अर्थात् शत्रुके अमात्य आदि कर्मचारियोंको शत्रुसे भिन्न करदेवे ॥ २५ ॥ शत्रु पक्षमें भेद डालनेके अन्य उपायोंका भी अब निरूपण किया जायगाः—॥ २६ ॥ जो पुरुष आलस्य रहित होकर कार्य करनेमें अत्यन्त चतुर तथा तत्पर रहते हों, उनको गर्दभ आदि शब्दोंके द्वारा, उनके स्वामीसे भिन्न करे । इसका अभिप्राय यह है, कि इस तरह कार्य करनेवाले, शत्रुके कर्मचारियोंको यह कहा जाय, कि तुम लोग बिल्कुल गधेकी बराबर हो, जैसे यथा लघातार काम करता रहता है, परन्तु उसको उस कार्यके फलका कुछ भी ज्ञान नहीं होता, इसी तरह आप लोग भी अपने कार्यके फलसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं । इसी तरहके उदाहरण देकर उनको उस कार्यसे अन्यमनस्क करदिया जाय; इसीसे उनको अपने स्वामीके साथ मनमुटाव होजायगा । अगले सूत्रोंमेंभी इसी तरहके अभिप्राय समझने चाहिये) ॥ २७ ॥ सैनिक पुरुषोंको, लाठी तथा कुल्हाड़े आदिका उदाहरण देकर उत्साहित करे, अर्थात् उनके स्वामीसे उन्हें अभिन्न करे ॥ २८ ॥ उद्विग्न अर्थात् शत्रुसे डरनेवाले कर्मचारियोंको, अपने शृणुदसे अलहदा हुए २ जीवनसे निराश भेदे या बकरेका उदाहरण देकर, उत्साहित किया जाये ॥ २९ ॥ शत्रुसे तिरस्कृत हुए २ व्यक्तियोंको, 'तुमने यज्ञवातके समान तिरस्कारको कैसे सहन करीलिया' यह कहकर उत्साहित किया जाये ॥३० ॥

विदुलेनावकेशिना वायमपिण्डेन कैतवजमेघेनेति विहता-
शान् ॥ ३१ ॥ दुर्भगालंकारेण द्वेपिणेतिपूजाफलान् ॥ ३२ ॥
व्याघ्रचर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान् ॥ ३३ ॥ पीलुविखादनेन
करकयोद्भूया गर्दभीक्षीराभिमन्थनेनेति ध्रुवापकारिण इति ॥३४॥

शत्रुसे भय मनोरथ हुए २ (अर्थात् जिनको अपने स्वामीकी ओरसे किसी तरहकी भी आशा न रही हो, ऐसे) पुरुषोंको, फलहीन बँत अथवा लोहमय अर्थात् खानेके सर्वथा अयोग्य अन्नपिण्ड, या न घरसनेवाले बादलकी उपमा देकर, उनके स्वामीके विरुद्ध उरसाहित किया जावे ॥ ३१ ॥ अलङ्कार आदि देकर पूजा किये हुए पुरुषोंको (अर्थात् पूजाके साथ जिनको विशेष अलङ्कार आदि मिले हों, और उसे ये अपने कर्मोंका फल समझते हों, ऐसे पुरुषोंको) बुराई करनेवाले अनिष्टकारक अलङ्कारोंका उदाहरण देकर उरसाहित करें ॥ ३२ ॥ शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुई २ चालोंसे ठगे हुए पुरुषोंको, मृत्युके स्थान-वन घटी व्याघ्रका उदाहरण देकर (अर्थात् व्याघ्र चर्म पहिनकर बनायटी बने हुए व्याघ्रका उदाहरण देकर) उनके स्वामीके विरुद्ध उरसाहित करें ॥ ३३ ॥ जो पुरुष सदाही अपकार करते रहते हैं उनको पशुफलके खाने, करका (तिष्ठतरसका एक शाक विशेष), उष्ट्री (यह भी तिष्ठतरसकी एक ओपधि होती है), तथा गर्धके दूधके मिलोनेका उदाहरण देकर, उनके स्वामीसे भिन्न करें ॥ ३४ ॥

प्रतिपन्नानर्थमानाम्यां योजयेत् ॥ ३५ ॥ द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु
चैनान्द्रव्यभक्तदानैरनुगृहीयात् ॥ ३६ ॥ अप्रतिगृह्यतां स्त्रीकुमा-
रालंकारानभिहरेयुः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष, इन बातोंको मानकर शत्रुके विरुद्ध कार्य करें, उनको धन और मान (सत्कार) से युक्त किया जावे । अर्थात् धन मान आदिसे उनको अच्छी तरह सत्कृत किया जावे ॥ ३५ ॥ तथा इनपर जब धनसम्बन्धी या अन्नसम्बन्धी संकट आवे, तब धन और अन्न देकर इनकी अच्छी तरह सहायता की जावे ॥ ३६ ॥ यदि ये लोग अपना गौरव नष्ट होजानेके विचारसे, इस प्रकार धन और अन्न आदि न लेना चाहें, तो इनकी स्त्री और बच्चों आदिके लिये सत्कारपूर्वक आभूषण आदि बनवाकर दवे ॥ ३७ ॥

दुर्भिक्षस्तेनाटव्युपघातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः स-
स्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ३८ ॥ राजानमनुग्रहं याचामहे ॥ ३९ ॥ निरनु-
ग्रहाः परत्र गच्छाम इति ॥ ४० ॥

दुर्भिक्ष, और चोर तथा आठविकोंके आक्रमण करनेपर (अर्थात् दुर्भिक्ष की अवस्थामें और जब चोर तथा आठविक, घान्तमें पायः लूट मारकर प्रजा को सता रहे हों, तब) सत्री पुरुष, नगर निवासी तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको उरसाहित करते हुए, इस प्रकार कहें:—॥ ३८ ॥ हम लोग, राजासे

सहायताके लिये याचना करते हैं ॥ ३९ ॥ यदि राजा, हमको सहायता नहीं देता है, तो हमसब लोग, दूसरे राजाके आश्रयमें चले जावेंगे । इसप्रकार सत्री, पौर जानपदोंको उनके स्वामीसे भिन्न करें ॥ ४० ॥

तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः ।

साचिव्यं कार्यमित्येतदुपजापाद्भुतं महत् ॥ ४१ ॥

इति दुर्गम्भोपाये त्रयोदशे अधिकरणे उपजापः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदित एकचत्वारिंशच्छतः ॥ १४१ ॥

जब पौर जानपद पुरष अपने स्वामीसे सहायता प्राप्त न कर, सत्री पुरुषोंके कथनको स्वीकार करनेके लिये तैयार होजावें ; तब धन धान्य और वासस्थान आदि देकर इनकी सहायता कीजाये । अर्थात् विजिगीषु उनकी इसप्रकार सहायता करे । शत्रुके आदमियोंका शत्रुसे भेद डालनेके लिये, यह एक बहुतही अद्भुत उपाय है ॥ ४१ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१७२ प्रकरण

योगवामन

{ योग अर्थात् कपटसे, शत्रुको दुर्गसे बाहर निकालदेना 'योगवामन' कहाता है । इस प्रकरणमें शत्रुको, कपटपूर्वक दुर्गसे बाहर निकाल देनेका ही निरूपण किया जायगा ।

मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्ध्रुवाणः
प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत् ॥ १ ॥ शिष्याश्चास्य
मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाय योजयेयुः ॥२॥

पहाडकी गुफामें रहनेवाला, चारसौ बरसकी अपनी उमर बताने वाला, बहुतसे जटाधारी छात्रोंसे युक्त, मुण्ड अथवा जटिल (जटाधारी) के घेपमें रहताहुआ गृहपुरष, नगरके समीप ही अपनी स्थिति करे ॥ १ ॥ और इसके शिष्य, फल मूल (कम्प) आदि लेकर राजा और अमात्योंको भगवद्दर्शन (भगवानके दर्शन)=इस जटाधारी सिद्धके घेपमें रहनेद्वय गृहपुरषके दर्शन करने) के लिये प्रेरित करें ॥ २ ॥

समागतश्च राज्ञा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत् ॥ ३ ॥ शते
शते च वर्षाणां पूर्णे ऽहंमग्निं प्रविश्य पुनर्वालो भवामि ॥ ४ ॥
तदिह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि ॥ ५ ॥ अवश्यं मे
भवान्मानयितव्यः ॥ ६ ॥ त्रीन्वरान्वृणीष्वेति ॥ ७ ॥

राजाके साथ समागम होनेपर, यह गूढपुरुष, पहिले राजा और
देशोंके चिन्होंको बतलावे ॥ ३ ॥ और कहे कि—'मैं सौ सौ बरसके पूरे
होनेपर, अग्निमें प्रवेश करके फिर वालक बनजाता हूँ ॥ ४ ॥ अब यहाँ
आपके पास चौथीबार अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥ ५ ॥ मेरी ओरसे आपका,
वर आदिके द्वारा अवश्य सत्कार होना चाहिये ॥ ६ ॥ आप मुझसे, इच्छानु-
सार तीन वर मांग सकते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिपन्नं भूयात् ॥ ८ ॥ सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रह-
वणपूर्वं वस्तव्यमिति ॥ ९ ॥ वसन्तमवस्कन्देत् ॥ १० ॥

यदि राजा इन सब बातोंको स्वीकार करले, तो उससे इस प्रकार
कहे ॥ ८ ॥ आप सात रात्रि पर्यन्त, अपने पुत्र और स्त्री सहित, खेल
तमाशा आदि करातेहुए (=प्रेक्षापूर्व) और प्रसन्नता पूर्वक सब ही आगन्तुक
पुरुषोंको भोजन आदि देतेहुए (=प्रहवणपूर्व) यहाँ मेरे पास निवास
करें ॥ ९ ॥ जब वह राजा, यहाँ इसप्रकार रहने लगे, तो छिपकर या सोते
समयमें उसे मारनाले ॥ १० ॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यञ्जनः प्रभूतजटिलान्ते-
वासी वस्त्रोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके
निदध्यात्, उपाजिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा ॥ ११ ॥
ततः सत्री राज्ञः कथयेत् ॥ १२ ॥ अमौ सिद्धः पुष्पितं निधिं
जानातीति ॥ १३ ॥

अथवा किसी विशेष स्थानके अभ्यक्षके रूपमें रहनेवाला (=स्थानिक-
व्यञ्जनः) मुण्ड या जटिल गूढपुरुष, बहुतसे जटाधरी छात्रोंको अपने समीप
रखताहुआ, उनके खूनसे सर्नाहुई और सोनेके घुरादे (चूरे) से लिपटी
हुई एक घाँसकी शलाकाकी; अथवा सुवर्णसे युक्त एक घाँसकी मलीकी,
बर्मीकी पहिधानके लिये उस बर्मी (जंगलमें दीमक, जमीनसे मही उठा २
बर जो ऊँचा सा ढेर बना देती है, उस ही को बर्मी कहते हैं) में ही रखदेवे
॥ ११ ॥ इसके बाद सत्री, राजाको जाकर कहे, कि—॥ १२ ॥ यह सिद्ध

पुरुष फूलेहुए खजानेको (=पुष्पितं निधि=ऐसा खजाना, जो अभी तक फल न लाया हो, फल आनेसे पहिलेकी अवस्थामें रक्खाहुआ; ऐसे खजानेको) जानता है ॥ १३ ॥

स राजा पृष्टस्तथेति नृयात् ॥ १४ ॥ तच्चाभिज्ञानं दर्शयेत् ॥ १५ ॥ भूयो वा हिरण्यमन्तराधाय नृयार्चनम् ॥ १६ ॥ नागरक्षितो ज्यं निभिः प्रणिपातसाध्य इति ॥ १७ ॥ प्रतिपन्नं नृयात् ॥ १८ ॥ सप्तरात्रमिति समानम् ॥ १९ ॥

जब राजा, उस सिद्ध पुरुषसे पूछे, कि तुम ऐसा जानते हो ? तो यह कहदेवे, कि हाँ जानता हूँ ॥ १४ ॥ और उस सिद्धको दिखलादेवे, (भर्मात् धर्मीमें लगीहुई, सुवर्णयुक्त बांसकी नलोंको दिखलादेवे) ॥ १५ ॥ अथवा फिर वहाँ और भी बहुत अधिक सुवर्ण रखकर राजाको कहे, कि— ॥ १६ ॥ यह खजाना सांपोंसे सुरक्षित है; इसलिये नग्नतापूर्वक ही वेशमें किया जासकता है ॥ १७ ॥ जब राजा, सिद्धकी इन सब बातोंको स्वीकार करले, तो उससे कहे, कि ॥ १८ ॥ आपको सात रात्रि पर्यन्त मेरे यहाँ रहना चाहिये; इत्यादि आगे सब पहिलेका तरह ही समझना चाहिये । अर्थात् जब राजा पुत्रहीसहित वहाँ पूर्ववत् रहनेलगे, तो उसे मारडाले ॥ १९ ॥

स्थानिकव्यञ्जनं वा राश्री तेजनाप्रियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सच्चित्रणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २० ॥ असाँ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २१ ॥ तं राजा यमर्थं याचेत् तमस्य करिष्यमाणः सप्तरात्रमिति समानम् ॥ २२ ॥

अथवा राश्री में तेजन अग्नि (अपने शरीरकी आग्निके समान प्रज्वलित करके अद्भुत रूपमें दिखानेवाले प्रयोग; देखो—अधि० १४, अध्या० २) से युक्त हुए २ तथा एकान्तमें बैठेहुए, धीरे २ अपना रूप दिखानेहुए, उस स्थानिकव्यञ्जन गूढपुरुषको, सत्री पुरुष, राजाको दिखाकर, राजासे यह कहे, कि— ॥ २० ॥ वह सिद्ध पुरुष भविष्यमें होनेवाली समृद्धिको बतला देता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर राजा, उस सिद्ध पुरुषसे जिस अर्थकी याचना करे, उसीको भविष्यमें पूरा करदेनेका वादा करके उससे कहे, कि आप सात रात्रि पर्यन्त मेरे पास रहें । शेष पूर्ववत् ही समझना चाहिये ॥ २२ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् ॥ २३ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २४ ॥ सिद्धव्यञ्जनो वा देशदे-

वतामभ्यर्हितामाश्रित्य प्रहृद्यैरभीक्ष्णं प्रकृतिमुख्यानभिसंवास्य
क्रमेण राजानमतिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

अथवा सिद्धके वेपमें रहने वाला गूढपुरुष, राजाको कपट विद्याओंसे
पशमें करे ॥ २३ ॥ जब राजा, उसके प्रलोभनमें फंसा जावे, तो उससे कहे,
कि सात रात्रिपर्यन्त मेरे समीप रहो । शेष सब पूर्ववत्ही समझना चाहिये
॥ २४ ॥ अथवा सिद्धके वेपमें रहने वाला गूढपुरुष, देशकी पूज्य देवताका
आश्रय लेकर (उस देशमें जो सबसे प्रधान देवता मानी जातीहो, उसीका
आश्रय लेकर) निरन्तर उत्सव और सहभोज (पार्टियों) आदिके द्वारा, वहाँ-
की अमात्य आदि प्रधान प्रकृतियोंको धरने बशमें करके, फिर धीरे २ अर्थात्
उन अमात्य आदिके द्वाराही, वहाँके राजाकीभी वञ्चना करे ॥ २५ ॥

जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्पचैत्यसुरङ्गाभूमिगृहा-
पसरणं वरुणं नागराजं वा सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेद्युः
॥ २६ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २७ ॥

उदकचारी विद्याओंके द्वारा, जलके बीचमेंही रहने वाले, सब अंगों-
से सफेद (अर्थात् अत्यन्त बूरे=जिनके सबही स्थानोंके बाल सफेद होगये हों।
अथवा देवताके वर्णके समानही जिसके सब अंगोंका सफेद वर्ण होगया,
जिसके देखनेसे यह विश्वास होजाय, कि यह वस्तुतः देवतासम्बन्धीही रूप
है; इस तरहके श्वेतवर्ण) हुए २, किनारेकी सुरंग (छेद) या भूमिगृहसे
निकलने वाले, वरुणके रूपमें या नागराजके रूपमें धीरे २ अपने अनुकूल
बनाये हुए, जटिल वेपधारी सिद्ध पुरुषके सम्बन्धकी सब बातोंको सत्री पुरुष,
राजासे कहें ॥ २६ ॥ जब राजा, उससे अपने किसी अभिलाषित पदार्थकी
याचना करे, तब वह शेष सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ववत्ही करे ॥ २७ ॥

जनपदान्तेवासी सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय
योजयेत् ॥ २८ ॥ प्रतिपर्त्रं विम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरु-
द्धे देशे घातयेत् ॥ २९ ॥

अथवा जनपदकी सीमामें रहनेवाला, सिद्धका वेप धारण किये हुए
गूढपुरुष, वहाँके राजाको शत्रुके देखनेके लिये प्रेरित करे। अर्थात् उन दोनोंको
उस सीमाप्रान्तमें परस्पर मिलानेकी योजना करे ॥ २८ ॥ जब राजा इस
बातकी स्वीकार करले, तो पहिलेसे संकेत किये हुए विशेष विम्बोंके द्वारा शत्रु-
को वहाँ बुलाकर, किसी छिपे हुए स्थानमें दले मरवाढाके ॥ २९ ॥

अश्वपण्योपयाता वैदेहकव्यञ्जनाः पण्योपयाननिमित्तमा-
ह्वय राजानं पण्यपरीक्षायामासक्तमश्वव्यतिकीर्णं वा हन्युरथैश्च
प्रहरयुः ॥ ३० ॥

घोड़े आदि बेचने वाले व्यापारीके वेपमें रहते हुए गूढपुरूप, विक्रीके योग्य घोड़ोंको साथ लेकर, उस सौदेको दिखलानेके बहानेसे दामुराजाको वहां बुलवायें । जब वह उस सौदेकी (=घोड़ोंकी) परीक्षा अर्थात् अच्छी तरह देखभालमें लगा हुआ हो; या घोड़ोंकी भारी भीटमें विर गया हो; तब उसको मारडॉल । और उन घोड़ोंके द्वाराही (अर्थात् उन घोड़ों पर सवार होकरही) उसके मूलस्थान पर हमला कर दें ॥ ३० ॥

नगराम्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नाली-
न्वा विदलानि धमन्तः 'स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि भक्ष-
यिष्यामः पूजा नो वर्तता' मित्यव्यक्तं ब्रूयुः ॥ ३१ ॥ तदेपां
नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः ख्यापयेयुः ॥ ३२ ॥

अथवा नगरके समीप रातमें किसी निर्दिष्ट (इमशान आदिके) विशेष पृथक्पर चढ़कर सत्री पुरुष, अस्पृक्त (अस्पृष्ट) रूपमें इसप्रकार बोलें;—'हम स्वामीके (राजाके) या अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियोंके मांसको भवश्य खायेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिये' ॥ ३१ ॥ इन गूढपुरूपोंकी इस कही हुई बातको, नैमित्तिक (दाकुन आदि बताने वाले) तथा मौहूर्तिक (ज्योतिषी) के वेपमें रहने वाले गुप्तपुरूप, सर्वत्र प्रसिद्ध करदें ॥ ३२ ॥

मङ्गल्ये वा हृदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाम्यक्ता
नागरूपिणः शक्तिमुसलान्ययोमथानि निष्पेपयन्तस्तथैव ब्रूयुः
॥ ३३ ॥

अथवा किसी मांगलिक गहरे जलाशय (तालाब) में रातके समय, क्षिप्तियुक्त तैलकी मालिश किये हुए, नाग देवताके रूपमें दखलने वाले सिद्ध वेपधारी गूढपुरूप, लोहेके घने हुए शक्ति और मृगकोंको परस्पर रगड़ते हुए उसी प्रकार बोलें । अर्थात् यह कहें, कि 'हम राजा और मन्त्रियोंका मांस खायेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिये' ॥ ३३ ॥

ऋक्षचर्मकञ्चुकिनो वाग्निधूमोत्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रि-
पसव्यं नगरं कुर्वाणाः शिवसृगालवाशितान्तरेषु तथैव ब्रूयुः
॥ ३४ ॥ चैत्यदैवतप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना

वा रात्रौ प्रज्जाल्य तथैव ब्रूयुः ॥ ३५ ॥ तदन्ये ख्यापयेयुः
॥ ३६ ॥

अथवा शीलके चमड़ेको ऊपर ओढ़े हुए मुइसे आग और धुआं निकालते हुए राक्षसोंका रूप धारण किये हुए, नगरके चारों ओर बाईं ओरसे तीनबार घूमते हुए, गूढपुरुष, कुत्ते तथा सृगाल (गदिह) आदिके शब्दोंमें उसी प्रकार बोले ॥ ३४ ॥ अथवा इमशानके देवताकी, प्रतिमाको, वीक्षियुक्त तैलसे या अमरकके बीषमें छिपी हुई (ढकी हुई) आगसे रातमें प्रज्वलित करके, गूढपुरुष, उसी प्रकार बोलें ॥ ३५ ॥ तदनन्तर दूसरे सत्री पुरुष, इनकी कही हुई इस बातको सर्वत्र प्रसिद्ध करदें ॥ ३६ ॥

दैवतप्रतिमानामभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्नाथमतिमात्रं
कुर्युः ॥ ३७ ॥ तदन्ये दैवरुधिरसंस्त्रात्रे संग्रामे पराजयं ब्रूयुः
॥ ३८ ॥

अथवा गूढपुरुष, देवताओंमेंसे प्रधान देवताओंकी प्रतिमाओंका अत्यन्त रुधिरस्त्रय करें । तार्पय यह है, कि य हरे आदिका खून लेकर गूढपुरुष, उसको प्रतिमाओंके अन्दरसे होकर निकालें, जिससे देखने वालोंको यह प्रतीत हो, कि यह प्रतिमाही स्वयं खून बाहर निकाल रही है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उस दैवी रुधिरके चढ़ने पर, अन्य सत्री पुरुष, सर्वत्र इस बातको प्रसिद्ध करें, कि इनलक्षणोंसे माछम होता है, कि संग्राममें अवश्यही राजाका पराजय हो जायगा ॥ ३८ ॥

संधिरात्रिषु इमशानप्रमुखे वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररू-
पयेयुः ॥ ३९ ॥ ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत ॥ ४० ॥
यश्चात्र शूरवादिको ऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत्तमन्ये लोहमुसलै-
र्हन्युः ॥ ४१ ॥ यश्चा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत ॥ ४२ ॥

अथवा पर्यकी रातोंमें (अर्थात् पूर्णमासी अमावस्या आदिकी रातमें) मुख्य इमशान स्थानमें, ऊपरसे खाये हुए मनुष्योंके द्वारा चिताके चिन्होंकी, गूढपुरुषे दिखलायें ॥ ३९ ॥ तदनन्तर राक्षसके रूपमें, एक गूढपुरुष, अपने खोके लिये एक पुरुषको मांगे ॥ ४० ॥ जो कोई अपने आपको यशदुर कहने वाला, या और कोई पुरुष, वहा इसको देखनेके लिये आवे, उस पुरुषको दूसरे सत्री आदि मिलकर लोहेके गूसलोंसे मार टाके ॥ ४१ ॥ जिससे सब पुरुषोंको यही माछमहो, कि अमुक मनुष्यको राक्षसोंने मारहाला है ॥ ४२ ॥

देवी कणोंका प्रतीकार करके) कोश बढ़ानेके लिये धनसहायभी करे । (यह सूत्र पहिलेभी आया है । देखो अधि० ५, अध्या० २, सूत्र ५२) ॥ ५० ॥

हस्तिकामं वा नागवंनपाला हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभयेयुः
॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वातिनीय घातयेयुर्वेध्वा वाप-
हरेयुः ॥ ५२ ॥ तेन मृगयाकामा व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

अथवा हाथीकी इच्छा रखने वाले शत्रु राजाको, हाथियोंके जंगलोंकी रक्षा करने वाले, विजिगीषु पक्षके पुरुष, शुभलक्षणयुक्त हाथीके द्वारा प्रलोभन देवें । अर्थात् उस प्रकारका हाथी पकड़वा देनेकी आभिलाषा उसके हृदयमें उत्पन्न करा देवें ॥ ५१ ॥ जब यह इस बातको स्वीकार करले, तो उसे अकेलेही घने जंगलमें लेजाकर मरवा डालें, अथवा बांधकर अपने विजिगीषु राजाके पास लेजावें ॥ ५२ ॥ इसीके अनुसार, शिकार खेलनेकी इच्छा रखने वाले शत्रु राजाके सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये ॥ ५३ ॥

द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्याविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभि-
र्दायादनिक्षेपार्थमुपनीताभिः सच्चित्रणः प्रलोभयेयुः ॥ ५४ ॥
प्रतिपन्नं रात्रौ सच्चित्रछन्नाः समागमे शस्त्रसाम्प्रां घातयेयुः
॥ ५५ ॥

अथवा जो शत्रुराजा, धन और स्त्रियोंकी कामना रखता हो, उसको सत्री पुरुष, धनी विधवा स्त्रियोंके द्वारा, या अपने दासभाग तथा आदिके मुकुटमोंके सहानेसे वहाँ लाई हुई अन्य अथवा जवान स्त्रियोंके द्वारा प्रलोभन देवें । अथवा रात्रिके समय शत्रु राजाको फंसावें ॥ ५४ ॥ जब शत्रु राजाके सम्बन्ध में इनकी यातको स्वीकार करले, तो शत्रु राजाके सम्बन्ध में समागम करनेके लिये किसी संकेतित स्थानमें रात्रिके समय शत्रु राजाके सम्बन्ध रखने वाले गृहपुरष, कर्मचारी और सिन्धुनादि खिलाकर उस राजाको मार डालें ॥ ५५ ॥

सिद्धं जितं चतुररूपदैवतप्रतिमानामनीक्ष्णाभिगमनेषु वा
भूमिगृहसुरङ्गागृढाभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः ॥ ५६ ॥

अथवा शिकार (साधु), प्रमजित (शिशु), इमशानके रूप या देवताओं की प्रतिमाके लिये चार २ जावेंके अवसरोंपर ; भूमिगृह सुरंग तथा गृहपुरष, कर्मचारी और सिन्धुनादि खिलाकर उस राजाको मार डालें ॥ ५६ ॥

साथी गूढपुरुषोंके साथ २ ही तक्षिग पुरुष, शत्रुओंके ऊपर प्रहार करके उन्हें मारवाले । (५७ वें श्लोकसे लगाकर यहाँतक पांच श्लोकोंका इकट्ठा ही अन्यथा समझना चाहिये) ॥ ६१ ॥

यथैव प्रविशेयुश्च द्विपतः सत्त्रहेतुभिः ।

तथैव चागच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥ ६२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे अधिकरणे योगवामने त्रितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

भावितो द्विचस्वार्तिदाच्छतः ॥ १४२ ॥

जिसप्रकारसे शत्रुओंके बीचमें, सथी पुरुष, कपटपूर्वक प्रवेश करें, उसी प्रकार कपटपूर्वक उन्हें, उनके बीचमें से बाहर निकाल आना चाहिये । अन्यथा शत्रुओंके द्वारा उनके पकड़े जानेकी सम्भावना होसकती है । यहाँतक योगवामनका निरूपण करदिया गया ॥ ६२ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१७३ प्रकरण

गूढपुरुषोंका शत्रुदेशमें निवास ।

{ गूढपुरुषोंका ही नाम 'अपसर्प' है । उनको शत्रुके-देशमें भेजकर, वहाँ रखना ही 'अपसर्पमणिधि' कहाजाता है । इस प्रकरणमें इसी बातका निरूपण किया जायगा ।

श्रेणीमुख्यनामं निष्पातयेत् ॥ १ ॥ स परमाश्रित्य पक्षा-
पदेशेन स्वविषयात्साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत ॥ २ ॥
कृत्वापसर्पोपचयो-वा परमनुमान्य स्वामिनो दूष्यग्रामं वीतहस्त्य-
श्च दूष्यग्राम्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्या परस्व प्रेषयेत् ॥ ३ ॥

विजिगीषु, अपने अरयन्त विश्वस्त श्रेणीमुख्य पुरुषको, अपने यहाँसे निकाल देवे । (इसका अभिप्राय यही है, कि ऊपरसे बनायटी शत्रुता दिखाकर उसको अपने यहाँसे बाहर करदेवे, जिससे कि बिना सन्देहके वह शत्रुके पास आसप्य लंसके) ॥ १ ॥ वह विश्वस्त पुरुष, शत्रुका आश्रय ले र, शत्रुपक्षके कार्यके चढानेसे, अपने देशसे अपनी सहायता करनेवाले पदार्थोंका संग्रह करे ॥ २ ॥ जब अपनी सहायताके लिये बहुतसे गूढपुरुषोंको इकट्ठा करलेवे,

तो शत्रुकी अनुमति लेकर, विजिगीषु (अपने वास्तविक स्वामी) के दूष्यवर्ग को, घोड़े तथा हाथियोंसे रहित, और दूष्य अमात्योंसे युक्त सेनाको, और आक्रन्द अर्थात् पृष्ठस्थित मित्रको जीतकर शत्रुके पास भेजदेवे ॥ ३ ॥

जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत् ॥ ४ ॥ विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत् ॥ ५ ॥ ततः स्वामी हास्ति-
बन्धनमटवीघातं वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत् ॥ ६ ॥ एतेनामा-
त्याटविका व्याख्याताः ॥ ७ ॥

जनपदके एकदेश, श्रेणी (बलवान् पुरुषोंका कोई संघ), अथवा आटविक पुरुषोंको स्वामीकी सहायताके वहानेमें अपने वशमें करके, उनके साथ गूढ रूपवहार करे ॥ ४ ॥ जब ये लोग अपने पूर्ण विश्वस्त होजावें, तो अपने असली मालिक विजिगीषुकी सहायताके लिये, उन्हें उसके पास भेज देवे ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्वामी अर्थात् विजिगीषु, अपने हाथियोंके पकड़े जाये या जंगलके नष्ट कर देनेका बहाना करके, पुषचाप ही (शत्रुके तैयार हुए विना ही), शत्रुपर चढाई करदेवे ॥ ६ ॥ इसके अनुसार, अमात्य तथा आटविकको गूढपुरष बनाकर, शत्रुके देशमें भेजनेका प्रकार भी समझ लेना चाहिये ॥ ७ ॥

शत्रुणा मैत्रीं कृत्वामात्यानवक्षिपेत् ॥ ८ ॥ ते तच्छत्रोः
प्रेषयेयुः ॥ ९ ॥ भर्तारं नः प्रसादयेति ॥ १० ॥ स यं दूतं
प्रेषयेत् तमुपालभेत् ॥ ११ ॥ भर्ता ते माममात्यैर्भेदयति ॥ १२ ॥
न च पुनरिहागन्तव्यमिति ॥ १३ ॥

गूढपुरषको शत्रुके देशमें भेजनेका अब और प्रकार बताते हैं:-विजि-
गीषु, अपने शत्रुके साथ ऊपरसे बनाबटी मित्रता करके, अपने अमात्योंको भिन्नकारपूर्वक तिरस्कृत करे ॥ ८ ॥ ये अमात्य, उस शत्रुके पास अपने दूत को निम्नालेखित सन्देश देकर भेजें, कि ॥ ९ ॥ भाप हमारे मालिकको प्रसन्न करा दीजिये ॥ १० ॥ तदनन्तर वह शत्रु, अपने जिस दूतको, विजिगीषुके पास यह काम करनेके लिये भेजे, विजिगीषु उसको यह कहकर धुड़क देवे, कि ॥ ११ ॥ 'तुम्हारा मालिक हमारे अमात्योंसे मेरा भेद कराना चाहता है ॥ १२ ॥ याद रखो ! इस तरहका सन्देश लेकर मेरे पास फिर कभी मत जाना ॥ १३ ॥

अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ १४ ॥ स परमाश्रित्य यो
गापसर्पापररुदूप्यानशक्तिमतः स्तेनाटमिकानुभयोपघातकान्वा
परस्योपहरेत् ॥ १५ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघात-
मस्योपहरेत् ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर, विजिगीषु, उन अमात्योंमेंसे एक अमात्यको अपने यहाँ-
से निकाल देवे ॥ १४ ॥ वह अमात्य शत्रुका आश्रय लेकर; कपटी गूढ़पुरुष,
दशाभीमें अपरस्त हुए २ दूष्यपुरुष, शक्तिरहित चोर तथा आटाधिक पुरुषोंको,
अथवा विजिगीषु और शत्रु दोनोंका ही नाश करनेवाले पुरुषोंको, यह कहता
हुआ शत्रुके पास ले जावे, कि मैंने तुम्हारे इतने नये सहायक तैयार किये
हैं ॥ १५ ॥ जब शत्रु इस अमात्य पर पूरा विश्वास करने लगे, तो वह अमात्य
शत्रुके शक्तिशाली पुरुषोंको मार डाले ॥ १६ ॥

अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा ॥ १७ ॥ दृढमसौ चा-
सौ च ते शत्रुणा संधत्त इति ॥ १८ ॥ अथ यथादमित्यक्तशा-
सनैरेनान्घातयेत् ॥ १९ ॥ दण्डबलव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य
घातयेत् ॥ २० ॥

उसके नष्ट करनेका उपाय विम्बलिखित रीतिसे समझना चाहिये.—वह
अमात्य, आटाविक (जंगलकी रक्षा करने वाला) तथा सैनिक पुरुषोंकी दुष्टता-
की सूचना, शत्रु राजाको देवे । अर्थात् राजाको कहे, कि आपके ये आटाविक
और सैनिक पुरुष बड़े दुष्ट होंगे हैं ॥ १७ ॥ मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ;
कि अमुक २ आटाविक या सैनिक पुरुष, शत्रुके साथ सन्धि कर रहे हैं ॥ १८ ॥
इसके अनन्तर, विजिगीषुके वध पुरुषोंके पास, आटाविक और विजिगीषुकी
परस्पर भिन्नताको प्रकट करनेवाले कपट लेखोंको शत्रुको दिखाकर अन्तपाल
आदिको मरवा डाले ॥ १९ ॥ अथवा, शत्रुको सैनिक सहायता देनेका वादा
करके, उसके शत्रुसे उसे भिदादेवे, यादमें उसे सहायता न देकर, उसके शत्रुके
द्वाराही उसे मरवा डाले ॥ २० ॥

कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्वामित्रं राजानमात्मन्यपकारधि-
त्याभियुञ्जीत ॥ २१ ॥ ततः परस्य प्रेषयेत् ॥ २२ ॥ असौ ते
वैरी ममापकरोति ॥ २३ ॥ तमेहि संभूय हनिष्यावः ॥ २४ ॥
भूमौ हिरण्ये वा ते परिग्रह इति ॥ २५ ॥

अथवा शत्रुके कृत्यपक्ष (बुद्ध, लुब्ध तथा भीतयुग) को अपने अनकृत्य बनाकर विजिगीषु, शत्रुके शत्रुराजासे अपने ऊपर कुछ अपकार करवाकर, उसपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करदेवे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शत्रुके पास निम्न-लिखित सम्देश देकर अपने दूतको भेजे ॥ २२ ॥ यह तुम्हारा शत्रु, धरापर मेरा अपकार कर रहा है ॥ २३ ॥ आओ, हम दोनों मिलकर उसपर चढ़ाई करेंगे ; अर्थात् इसको मिलकर भरेंगे ॥ २४ ॥ शत्रुपर विजय प्राप्त होनेपर भूमि और हिरण्य (धन) में तुम्हारा हिस्सा होगा ॥ २५ ॥

प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागतमवस्कन्देन प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत् ॥ २६ ॥ अभिविश्वासनार्थं भूमिदानपुत्राभिपेक्षरक्षाप-
देशेन वा ग्राहयेत् ॥ २७ ॥ अविपद्यमुपांशुदण्डेन वा घातयेत् ॥ २८ ॥

जब शत्रु इस घातको स्वीकार करले, और अपने पाग आजाये, तो पहिले उसको अच्छी तरह सत्कार करके, फिर सोनेके समय छिपकर मार डाले । अथवा प्रकाशयुद्धके समय शत्रुके द्वाराही मरवा डाले ॥ २६ ॥ यदि ये दोनों मिलकर शत्रुको जीत लें, तो विजिगीषु, प्रथम प्रतिज्ञा की हुई भूमिको देने, पुत्रके शत्रुभिषेक करने तथा अपनी रक्षा करनेके बहानेसे शत्रुको पकड़वा देवे ॥ २७ ॥ यदि शत्रु, इस प्रकार भी कावूमें न आवे, तो उपांशुदण्डके द्वारा उसका वध करवा देवे । अर्थात् छिपकर तीक्ष्ण पुरुषोंके द्वारा मरवा देवे ॥ २८ ॥

स चेदण्डं दद्यान्न स्वयमागच्छेत्तमस्य वैरिणा घातयेत् ॥ २९ ॥ दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेन्न विजिगीषुणा, तथाप्येन मु-
भयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ३० ॥

शत्रुको नष्ट करनेके ये पूर्वोक्त उपाय उसी समय किये जासकते हैं, जब शत्रु स्वयंही विजिगीषुकी सहायताके लिये आजाये । यदि वह अपनी सेनाकोही विजिगीषुकी सहायताके लिये भेजदेवे, और स्वयं न आवे ; तो उसकी सेनाको उसके शत्रुके द्वारा मरवा डाले । अर्थात् शत्रुके मुकाबलेमें लड़ाकर नष्ट करवा देवे ॥ २९ ॥ यदि विजिगीषुके साथ मिलकर, अपने शत्रुसे युद्ध करनेके लिये आया हुआ शत्रु, अपनी सेनाके साथही चलना चाहता है, विजिगीषुके साथ चलना नहीं चाहता, तोभी इसको दोनों ओरसे घेरकर मरवा डाले ॥ ३० ॥

अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेत्तद्राज्यैकदेशं वा यात-
व्यस्यादातुकामस्तथाप्येनं वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत्
॥ ३१ ॥ वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत्
॥ ३२ ॥

यदि शत्रु, विजिगीषुपर लविश्वस्त रत्नके कारण, अपनी सेनाको भल-
हदाई लेकर इस कामनासे उस शत्रु राजापर घटना चाहता है ; कि उसके
राज्यके एक हिस्सेको मैं अपने बशमें करदूँगा ; तौभी विजिगीषु, इस शत्रुको
इसके शत्रुके द्वारा अपघा अपनीही सम्पूर्ण सैनिक शक्तिके द्वारा अपघ्न्य मरवा
दाखे ॥ ३१ ॥ अथवा अपने शत्रुके ऊपर चढ़ाई करके, उसके साथ लड़ाईमें
लगे हुए शत्रुके मूलस्थानकोही ; विजिगीषु, सेना भेजकर अपहरण करवा
देवे । अर्थात् शत्रु, अपने शत्रुपर चढ़ाई करके आवे, और विजिगीषु उसकी
राजधानीपर छूटमार करदेवे ॥ ३२ ॥

शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत ॥ ३३ ॥ मित्रभूम्या वा शत्रुम्
॥ ३४ ॥ ततः शत्रुभूमिलिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाभि-
युञ्जीत ॥ ३५ ॥ इति समानाः पूर्वेण सर्व एव योगाः ॥ ३६ ॥

अथवा विजिगीषु, मित्रके साथ निम्नलिखित रीतिसे छिपे तौरपर
सन्धि करे, कि यदि हम दोनोंने मिलकर शत्रुको जीत लिया, तो उसकी
भूमिको आपका २ बाँटलेंगे ॥ ३३ ॥ इगीमद्वार विजिगीषु, शत्रुके साथ भी
छिपे तौरपर शर्त करे, कि हम तुम मिलकर, तुम्हारे अमुक शत्रुपर (अर्थात्
विजिगीषुके मित्रपर) चढ़ाई करके, उसकी भूमिको धराधर बाँटलेंगे ॥ ३४ ॥
इसतरह जब शत्रुकी भूमिको लेने का दृष्टा हो, तो विजिगीषु, मित्रके द्वारा
अपने ऊपर कुछ अपकार करवाके, इसी बहानेसे उसके ऊपर आक्रमण करने
की तैयारी करदेवे ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर सब कार्य पूर्ववत् ही करना
चाहिये । (अर्थात् मिलकर चढ़ाई करनेके लिये शत्रुको अपने सम प बुलाकर,
उसे उपर्युक्त विविध उपायोंसे मारनाले) ॥ ३६ ॥

शत्रुं वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनानुगृहीयात्
॥ ३७ ॥ ततो मित्रगतमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥ कृतप्रतिविधानो
वा ज्यसन्मात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणाक्षिप्रमुत्साहयित्वात्मानम्
भियोजयेत् ॥ ३९ ॥

अथवा जय शत्रुको, विजिगीषुके मित्रकी भूमि लेनेको इच्छा हो, तो शत्रुके तैयार होनेपर, उसको अपनी शेरसेैनिक सहायता देवे । अर्थात् अपनी सेना साथ देकर मित्रके देशपर उससे घटाई करवादेवे ॥ ३७ ॥ जय यह मित्रके देशमें पहुंचजावे, तो मित्रसे मिलकर, शत्रुको नष्ट करवादेवे ॥ ३८ ॥ अथवा हरतरहकी आपत्तिका प्रतीकार करके विजिगीषु, अपने आपके ऊपर कोई वनाघटी आपत्ति दिखाकर, अपने मित्रके द्वारा शत्रुको उत्साहित करके अपने ऊपर घटाई करवादेवे (इस सूत्रमें फृतप्रधानो वा' इसके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'तत. प्रतिविजानेत वा' ऐसा भी पाठ है । परन्तु दोनों पाठोका अर्थ समान ही है) ॥ ३९ ॥

ततः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीविग्राहेण वा राज्य-
विनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ मित्रेणाहृतश्चेच्छत्रुरग्राहे स्यातुमि-
च्छेत्सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत् ॥ ४२ ॥ दण्डेन वा त्रातु-
मिच्छेत्समस्य घातयेत् ॥ ४३ ॥

इसप्रकार विजिगीषुके मित्रके साथ मिलकर, जब शत्रु विजिगीषुपर घटाई करदेवे, तो विजिगीषु और उसका मित्र, दोनों ही, शत्रुको बीचमें घेरकर मारटाँल ॥ ४० ॥ अथवा जीते हुए ही उसे पकड़कर, उसके राज्यका परिवर्तन करे । अर्थात् उसको वन्धनमें डालदेवे, और उसकी गद्दीपर, अपने आशाकारी उसके पुत्र या अन्य किसी सम्बन्धीको बैठा देवे ॥ ४१ ॥ यदि विजिगीषुके मित्रसे बुलायाहुआ शत्रु, उस मित्रसे अलहदा रहना चाहे अर्थात् उसके साथ २ मिलकर लड़ाई करनेको न जाना चाहे, किन्तु पृथक् टोकर ही जाना चाहे, तो सामन्त (शत्रुके समीप देशके राजा) आदिके द्वारा इसकी राजधानीका अपहरण करवादेवे ॥ ४२ ॥ यदि सेनाके द्वारा यह अपनी रक्षा करना चाहे, तो उस सेनाको मरवा दियाजावे ॥ ४३ ॥

तौ चेन्न मिथेघातां प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्या पणेत
॥ ४४ ॥ ततः परस्परं मित्रव्यञ्जनोमयवेतना वा दूतान्प्रेषयेयुः
॥ ४५ ॥ अयं ते राजा भूमिं लिप्सते शत्रुसंहित इति ॥ ४६ ॥
तयोरन्यतरो जाताशङ्कारोपः पूर्ववचेष्टेत ॥ ४७ ॥

मित्र और शत्रु, यदि छिपे तौरपर सत्तं करनेसे भेदको प्राप्त न होवे, तो प्रकटरूपमेंही एक दूसरेकी भूमिकी शर्त करे । अर्थात् मित्रकी भूमिसे शत्रुके साथ, और शत्रुका भूमिसे मित्रके साथ खुले तौरपरही शर्त करलेवे

॥ ४४ ॥ तदनन्तर शत्रु और मित्र दोनोंकेही पास, शत्रु और मित्रके दोनोंके मित्रके वेपमें रहनेवाले गूढपुरुष, अथवा दोनों ओरसे (विजिगीषु और मित्रकी ओरसे) वेतन पानेवाले गुप्तपुरष, निम्नलिखित सदेशको देकर अपने दूतको भेजे ॥ ४५ ॥ वह सदेश यह है— 'यह राजा, शत्रुके साथ मिलकर तुम्हारी भूमिको लेना चाहता है ॥ ४६ ॥ उन दोनों (मित्र शत्रुओं) मेंसे कोई एक शक्तिचित्त तथा बुद्ध होकर, पूर्ववत्ही चेष्टा करे। अभिप्राय यह है, उन दोनों मेंसे जो बुद्ध होकर विजिगीषुपर चढाई करे, उससे दूसरेके साथ मिलकर विजिगीषु, पूर्वोक्त उपायोंके द्वारा अक्रमणकारीको नष्ट करवाले ॥ ४७ ॥

दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान्वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्रा-
जयेत् ॥ ४८ ॥ ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुगतिसंदध्युः
॥ ४९ ॥ भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः ॥ ५० ॥ अभित्यक्तशा-
सनैः प्रतिसमानयेयुः ॥ ५१ ॥

अथवा दुर्ग (मूलस्थान=राजधानी), राष्ट्र (जनपद) और सेनाके मुख्य रक्षकोंको, अपने (विजिगीषुके) कृत्यपक्ष (बुद्ध लुब्ध भीतवर्ग) की सहायता करनेका बहाना करके, अर्थात् ये लोग मरे कृत्यपक्षको सहायता देते हैं, इस प्रकार सर्वत्र प्रसिद्ध करके, उनको विजिगीषु, अपने देशसे बाहर निकाल देवे ॥ ४८ ॥ ये सब लोग, शत्रुके आश्रयमें जाकर, कभी बुद्धके अवसरपर, सोते समय, अन्त पुरमें रहनेके समय, या किसी विशेष आपत्तिके समयमें मौका पाकर शत्रुको मारवाले ॥ ४९ ॥ अथवा इसके अपने अमात्य आदि वर्गोंसेही इसका भेद करवा देवे ॥ ५० ॥ और विजिगीषुके वध्य पुरुषोंके द्वारा लाये गये कपटपूर्ण लेखोंके साथ, अपनी मिथ्याकटिपत्र बातोंको मिला देवे। अभि-प्राय यह है, कि इस प्रकार अमात्य आदिके साथ राजाका भेद चलना देवे ॥ ५१ ॥

लुब्धकव्यञ्जना वा मांसविक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्र-
याश्चोराभ्यागमं परस्य द्विस्त्रिरिति निवेद्य लुब्धप्रत्यया भर्तुरनीकं
द्विधा निवेश्य ग्रामवधे ऽवस्कन्दे च द्विपतो म्रूयुः ॥ ५२ ॥
आमन्नश्चोरगणो महांश्चाक्रन्दः प्रभूतं सैन्यमागच्छत्विति ॥ ५३ ॥

अथवा शिकारिके वेपमें रहनेवाले गूढपुरुष, मांस बेचनेके बहानेसे दरवाजेपर ठहरकर, द्वारपालोंके आश्रयसे, दो तीन बार चिह्लाकर इस बातको कहें, कि शत्रुके गाँवोंमें चौर आते हैं। इस तरह जब राजाको इन बातोंपर विश्वास होजावे, तो ये अपने राज की सेनाको, ग्रामवध और रात्रिको साते समयकी लूटमारके लिये दो भागोंमें विभक्त करके शत्रुसे कहें—॥ ५२ ॥

चोरोंका झुण्ड बहुत नजदीक थाया हुआ है; आदमियोंका बहुत कोलाहल मच रहा है; आपकी बहुतसी सेना उनके प्रतीकारके लिये हमारे साथ आनी चाहिये ॥ ५३ ॥

तदर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ
दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः ॥ ५४ ॥ हतशोरगजः ॥ ५५ ॥ सिद्धयात्रामिदं
सैन्यमागतम् ॥ ५६ ॥ द्वारमपात्रियतामिति ॥ ५७ ॥ पूर्वप्रणिहिता
वा द्वाराणि दबुः ॥ ५८ ॥ तैः सह प्रहरेयुः ॥ ५९ ॥

इसप्रकार उस सेनाको, ग्रामवधके लिये नियुक्त हुई सेनाके सुपुर्द करके, अपनी सेनाके दूसरे हिस्सेको लेकर, रातके समय दुर्गके दरवाजोंपर आकर इसतरफ कहें— ॥ ५४ ॥ चोरोंके समूहको हम लोगोंने मार डाला है ॥ ५५ ॥ यह सेना अपना पाप्राको सकल करके, अर्थात् अपने कार्यको पूरा करके यहाँ पहुँच गई है ॥ ५६ ॥ इसलिये दुर्गके दरवाजोंको खोल दिया जावे ॥ ५७ ॥ भयवा पहिले नियुक्त हुए २ गूढपुरुषही इसारा पाकर दरवाजा खोल देवें ॥ ५८ ॥ और आई हुई सेनाके साथही वे लोग भी दुर्गपर हमला बोल दें ॥ ५९ ॥

कारुक्षिलिपपापण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान्वा पर-
दुर्गे प्रणिदध्यात् ॥ ६० ॥ तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृण-
धान्यपण्यशकटैः प्रहरणावरणान्यामिहरेयुः ॥ ६१ ॥ देवध्वजप्र-
तिमाभिर्वा ॥ ६२ ॥

अथवा कारु, शिलपी, पाखण्डी, कुशीलव (नट) और वैदेहक (व्यापारी) के घेपमें रहनेवाले या आमुधजीवीके घेपमें रहनेवाले गूढपुरुषोंको शत्रुके दुर्गमें भेदिया बनाकर नियुक्त किया जावे ॥ ६० ॥ उनमेंसे गूढस्थके घेपमें रहनेवाले गूढपुरुष, लकड़ी घास अनाज और दूसरे सौदोंकी गाड़ियों द्वारा हथियार तथा कवच आदि युद्धोपयोगी सामग्रीका संग्रह करके, उन कारु आदिके घेपमें रहनेवाले गूढपुरुषोंको देदेवें ॥ ६१ ॥ अथवा देवताओंकी ध्वजारूप तलवारोंके साथ वा प्रतिमाओंके साथ लाकर भी हथियार आदिका संग्रह करके; कारु आदि गूढपुरुषोंको देदेवें ॥ ६२ ॥

ततस्तग्रञ्जनाः प्रमत्तवधमयस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्ठतः
शङ्खदुन्दुभिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः ॥ ६३ ॥ प्राकारद्वारा-
द्वालकदानमनीकभेदं घातं वा कुर्युः ॥ ६४ ॥

तदनन्तर कार आदिके वेपमें रहने वाले गूढ़पुरुष, प्रमादी पुरुषोंके घघ, बलाकार लूटमार और चारों ओरसे आक्रमणके सम्बन्धमें; तथा शंख और नगाड़ेके शब्दके साथ, पीछेकी ओरसे हमला करनेके सम्बन्धमें निवेदन करदेंगे । अर्थात् आपस भविष्यमें होने वाली इस घटनाकी सूचना, शत्रुको देदेंगे ॥ ६३ ॥ जब शत्रु, उनके प्रतीकारके लिये, अपनी सेनाके साथ पीछेकी ओरको जावे, तो इधरसे कार आदिके वेपमें गूढ़पुरुष; परकोटा, प्रधान दरवाजा तथा दरवाजेके ऊपरके चौबारे आदिको तोड़नेके साथ २ ही पूर्ववत् शत्रुकी सेनाकोभी विभक्त करदेंगे । अथवा भवसर पाकर सर्वथा नष्टही करडालें ॥ ६४ ॥

सार्थगणवासिभिरातिवाहिकैः कन्यावाहिकैश्चपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृविक्रेतृभिर्वा प्रत्राजेतलिङ्गिभिर्घृतैश्च दण्डातिनयनं संधिकर्म विश्वासनार्थमिति राजापसर्पाः ॥ ६५ ॥

शत्रुकी सेनामें भेद डालनेके समान, उसे दुर्गम मार्गसे छंघानाभी गूढ़पुरुषकाही कार्य है, इसी बातका अब निरूपण करते हैं:-दुर्गम मार्गसे पार करने वाले व्यापारियोंके झुण्डके रूपमें रहते हुए, कन्याओंको लेजाते हुए, घोड़ोंका व्यापार करते हुए, उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले दूबरे सौदे बेचते हुए, या उनको इधरसे उधर ढोते हुए, अनाज आदिकी खरीद फरोखत करते हुए तथा संन्यासियोंके वेपमें रहते हुए दूतही, सेनाओंको दुर्गम मार्गसे निकाल कर बाहर लेजायें; तथा शत्रुके विश्वासके लिये सन्धिकी शर्तोंका पूरा २ ध्यान रखें । इसप्रकार यहाँ तक राजाओंके गूढ़पुरुषोंका निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

**एत एवाटवीनामपसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च ॥ ६६ ॥
ब्रजमटव्यासन्नमपसर्पाः सार्थ वा चोरैर्घातयेयुः ॥ ६७ ॥ कृतसं-
केतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं वा कृत्वापगच्छेयुः ॥ ६८ ॥
गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरान् गृहीतलोप्लभाराः मदनरसविका-
रकाले स्वस्कन्दयेयुः ॥ ६९ ॥**

कण्टकशोधन अधिकरणमें कहे हुए, तथा ये यहाँ कहे हुए गूढ़पुरुषही, भाटविकोंकेभी समझने चाहिये । तात्पर्य यह है, कि आवश्यकता होने पर भाटविकोंमेंभी येही गूढ़पुरुष कार्य करें ॥ ६६ ॥ भाटविकोंमें, गूढ़पुरुष, यह कार्य करें:-जंगलके समीपकी गोशलाओं तथा मार्गमें चलने वाले पुरुषोंको, भाटविकों (=चोरों=चोरवृत्ति पुरुषही भाटविक कहलाते हैं) के साथ मिलकर लूटें, या उन्हें नष्ट करडालें ॥ ६७ ॥ तदनन्तर संकेत पाकर, उनके पाने

पीनेकी वस्तुओंमें, मादकता करने वाले विषोंको मिलाकर, अक्सर पातेही वहाँसे भाग जायें ॥ ६८ ॥ तदनन्तर खाले और टरापारी, चोरोंसे सुराये हुए माल (= भांग -) को पकड़कर, अर्थात् उनसे स्वयं ले कर, विपका विहार होनेके समयमें (अर्थात् विपयुक्त राय पदार्थ राजानेके कारण, उमका भंगर होनेके समयमें) चोरोंको गिरफ्तार करलें ॥ ६९ ॥

संकर्षणदैवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः प्रहवणकर्मणा
मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ अथावस्कन्दं दद्यात्
॥ ७१ ॥ शौण्डिकव्यञ्जनो वा दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्व्वाट-
विकान्सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात्
॥ ७२ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७३ ॥

अथवा संकर्षण देवताको माननेवाला (शरायके साथ बहुत मुद्वत रखनेवाले बलमदको ही अपना इष्टदेव समझनेवाला), मुण्ड तथा जटाधारी के वेपमें रहता हुआ गूढपुरष ही, सन्तुष्ट होकर सहभोज आदिके कराने (अर्थात् पार्टी देने) के द्वारा, तथा मादकतायुक्त विष या अन्य प्रयोगोंसे आटाविकोंको ठगे, अर्थात् उन्हें पतम करे ॥ ७० ॥ इसके बाद जब उनको विष आदिका भतर हो जाय, तो उन्हें गिरफ्तार कर लेवे ॥ ७१ ॥ अथवा शराव बेचनेवालेके वेपमें रहनेवाला गूढ पुरष; देवतासम्बन्धी कार्य, प्रेतकार्य, ढासव तथा अन्य समा समाजोंके अवसरोंपर, आटाविक पुरषोंको, विक्रयार्थ सुराके लानेका बढ़ाना करके मदकारक विष आदि रस, तथा अन्य योगोंके द्वारा अपने पतम करे ॥ ७२ ॥ जब उनके ऊपर, इन रस आदिका प्रभाव होजाय तो उनको गिरफ्तार कर लिया जावे ॥ ७३ ॥

ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुघाटवीम् ।

घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥

इति दुर्गलम्भापाये त्रयोदशे अधिकरणे अवसर्पप्रविष्टावृत्तौ अध्यायः ॥ ३ ॥

आदित्तच्छिष्यवर्तिशब्दतः ॥ १४३ ॥

ग्राम भादि को नष्ट करनेके लिये, गाँवमें प्रविष्ट हुए २ आटाविक पुरषों को, भिन्न २ प्रकारसे उनके चिचमें निकार डराव करके, नष्ट करदिया जावे । यहाँ तक आटाविक अर्थात् चोरोंके सारम्भमें, गूढपुरषोंके कार्यों का निरूपण करादिया गया ॥ ७४ ॥

दुर्गलम्भापाय त्रयोदश अधिकरणम् तीसरा अध्याय समाप्त

चौथा अध्याय

१७४-१८५ प्रकरण



शत्रुके दुर्गको घेरना तथा शत्रुके दुर्गका अवमर्द

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें 'शत्रुके दुर्गको चारों ओरसे घेरकर, फिर सेनाको क्या करना चाहिये' इस बातका निरूपण किया जायगा । शत्रुके दुर्गको अपने अधिकारमें करलेना 'अवमर्द' कहाता है; यह अवमर्द कब और किस समय करना चाहिये; इत्यादि बातोंका दूसरे प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

कर्शनपूर्व पर्युपासनकर्म ॥ १ ॥ जनपदं यथानिविष्टमभये
स्थापयेत् ॥ २ ॥ उत्थितमनुग्रहपरिहाराम्भ्यां निवेशयेदन्यत्राप-
सरतः ॥ ३ ॥

शत्रुके कोश और सैन्यका नाश करने हुए, तथा भयान्य आदिका घट करते हुएही, विजिगीषुको शत्रुके दुर्गके चारों ओर घेरा डालनेका काम करना चाहिये ॥ १ ॥ परन्तु इस अवस्थामेभी विजिगीषु, शत्रुके जनपदको पाइलेके समानही भयस्थानमें रखे, अर्थात् जनपदको किसी तरहकी पीडा न होने देवे, प्रसुत उसकी रक्षाही करे ॥ २ ॥ यदि जनपद, विजिगीषुके विरुद्ध आन्दोलन करे, तो उसे धन आदि देने तथा टैक्स आदिके छोड़ देनेसे, शांन्त करे । परन्तु यह उसी अवस्थामे करना चाहिये, जब कि जनपद अपने स्थानको छोड़ कर कहीं बाहर न जा रहा हो । बाहर जानेके लिये तैयार होनेपर तो उसे किसी तरहकी भी सहायता न देवे ॥ ३ ॥

समग्रमन्यस्यां भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत् ॥ ४ ॥
न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटल्यः ॥५॥
विपमस्यस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्विधप्रसारौ च ॥ ६ ॥

उस जनपदमें भिन्न-रूपानोंपरही, अधिक आदमियोंको बसावे; अधवा कहीं एक स्थानपर भी अधिक आदमियोंको बसावे ॥४॥ क्योंकि मनुष्योंसे रहित प्रदेश, जनपद नहीं कहला सकता; और जनपदसे रहित, राज्य नहीं होसकता; क्योंकि, यदि जनपदही न होगा, तो राज्य किस पर किया जायगा, यह कौटल्य आचार्यका अपना मत है ॥५॥ अब शत्रुको पीडा पहुंचानेके प्रकारोंका

निरूपण किया जाता है:—जब शत्रुपर कोई आपत्ति आई हुई ही, तो विजिगीषु, उसकी फसलको, तथा उपज हुए अन्न आदिको नष्ट करदेवे, और धीवध (अनाज की तैल आदिका प्रदेशमें आना) तथा प्रसार (प्राप्त लक्ष्मी आदिका राज्यमें आना; इन दोनों) को भी नष्ट करवाले ॥ ६ ॥

प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि ।

वमनाद्गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः ॥ ७ ॥

अब शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके क्षय होनेका प्रकार बताते हैं:—प्रसार तथा धीवधका उच्छेद होनेसे, और फसल तथा अनाज आदिका नाश करदेनेसे; इसीप्रकार प्रकृतियोंको कहीं दूसरी जगह लेजाने, या छिपकर मार देनेसेभी उसका क्षय (नाश) होजाता है ॥ ७ ॥

प्रभृतगुणवद्धान्यकुप्ययन्त्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्यमृतुश्च पुरस्तात् ॥ ८ ॥ अपर्तुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षानिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चेति पर्युपासीत् ॥ ९ ॥

किस अवस्थामें शत्रुके दुर्गको घेरना चाहिये, इसका अब निरूपण करते हैं:—जबकि अपनी सेना, अत्यधिक गुणोंसे युक्त, तथा धान्य (अनाज), कुप्य (लोहा तथा वस्त्र आभरण आदि) यन्त्र (मैशिन), शस्त्र (हाथियार) आवरण (चमड़ेकी पेट्टी आदि, तथा अन्य कवच आदि), विष्टि (सेवा करने वाले कर्मचारी) और रश्मि (रस्ती) आदि सम्पूर्ण सामग्रीसे युक्तही, और ऋतुभी अपने अनुकूल हो । अर्थात् जिस समय अपनी सेना और ऋतु आदिकीतो इसतरह अनुकूलता हो ॥ ८ ॥ परन्तु शत्रुके लिये ऋतु सर्वथा विपरीत हो; व्याधि, दुर्भिक्ष, धान्य आदिके संग्रहका तथा रक्षक पुरुषोंका अभाव उपस्थितहो; खुरीदी हुई अर्थात् केवल बेतनभोगी सेना सहायता देनेसे इन्कार करती हो, और मित्रकी सेनाभी खिल होसुकी हो; इस अवस्थामें शत्रुके दुर्गका घेरा डाला जाये ॥ ९ ॥

कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां दूपयित्वाोदकमवसाव्य परिखाः संपूरयित्वा वा सुरङ्गात्रलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत् ॥ १० ॥

घेरा डालनेका यह प्रकार समझना चाहिये:—पहिले विजिगीषु अपनी छावनी, धीवध, आसार (मित्रसेना), तथा अपने मार्गकी रक्षा करके; दुर्गकी खाई और परकोठेके अनुसार दुर्गको चारों ओरसे घेरकर ; विष आदिसे

जलको दूषित करके अथवा बांध आदिके तोड़ देनेसे उसे बहाकर; खाईयोंको भरकर, सुरंग तथा टेढ़ी खुदी हुई खाईयोंके द्वारा बाहरकी ओरके परकोटे तथा बाइके ऊपर हमला करे ॥ १० ॥

दारं च गुलेन निम्नं वा पांसुमालयाञ्छादयेत् ॥ ११ ॥
 बहुलारक्षं यन्त्रैर्घातयेत् ॥ १२ ॥ निष्करादुपनिष्कृष्याथैश्च
 प्रहरेयुः ॥ १३ ॥ विक्रमान्तेषु च नियोगविकल्पसमुच्चयैशोपाया-
 नां सिद्धिं लिप्सेत दुर्गवासिनः ॥ १४ ॥

फटी हुई दरवाँको डलोंसे, तथा गहरी नीची जगहको मट्टीसे भाटकर ढक दिया जाये ॥ ११ ॥ दुर्गके जिन प्रदेशमें रक्षाका बहुत अधिक प्रबन्ध हो, उसे यन्त्रोंके द्वारा नष्ट करवा देवे ॥ १२ ॥ कपटसे (=निष्करान्) अथवा हाथियोंकी सूंड लम्बी करके खाड़ा करनेसे रक्षक पुरुषोंको बाहर निकालकर, घोड़े तथा हाथियोंके द्वारा उनपर आक्रमण कर देवे ॥ १३ ॥ जब शत्रुकी सेना युद्धमें विशेष पराक्रम दिखाने लगे, तब उपायोंके (साम दान दण्ड और भेद के चार उपाय होते हैं) नियोग (अमुक भवसरपर इसी उपायसे काम लेना चाहिये दूसरसे नहीं, इस प्रकारकी व्यवस्था करना 'नियोग' कहता है), विकल्प (इस भवसरपर चाहे इस उपायसे काम लेना चाहिये, चाहे इस दूसरे उपायसे; इस प्रकारकी व्यवस्थाको 'विकल्प' कहते हैं) और समुच्चय (इस भवसरपर अमुक २ दोनों या दो से भी अधिक उपायोंसे एकट्ठाही काम लेना चाहिये; इसको 'समुच्चय' कहते हैं) से यथावसर काम लेकर 'दुर्गनिधात्री शत्रुसे सिद्धिलाभ (विजयलाभ) की इच्छा करे ॥ १४ ॥

श्वेनकाकनपृभासशुकशारिकोलुककपोतान्प्राहयित्वा पुच्छे-
 प्वाभियोगयुक्तान्परदुर्गे विसृजेयुः ॥ १५ ॥ अपकृष्टस्कन्धावा-
 रादुच्छिन्नतध्वजधन्वारक्षा वा मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेयुः
 ॥ १६ ॥

श्वेन (बाज), कौभा, मसा (मुर्गेके समान एक पक्षी), भास (गिद्ध), सोता, मैना, उल्लू, तथा कबूतर, इन पक्षियोंको पकड़वाकर; इनकी पूँठमें, भाग लगाने वाली औपधियोंका संसर्ग करके, इनको शत्रुके दुर्गमें छोड़ देवे। जिससे वहाँ भाग लग जाये ॥ १५ ॥ शत्रुके दुर्गसे बाहर नीचेकी ओर पड़ी हुई अपनी (विजिगीषुकी) छापनासे, शत्रुके दुर्गपर आग फैकनेके लिये ध्वजा तथा धनुष आदिको उठाये हुए पुरए, शत्रुके दुर्गमें, मानुष आगिके

द्वारा (शत्रुसे मारे हुए या झूलीपर चढ़ाकर मारे हुए पुरपकी इट्टीमें चितकबरे बांसके विसनेमे उरपण हुई २ अग्निके द्वारा) शत्रुके दुर्गमें आग लगा देवे । अथवा पहरेदारही इस कामको करें ॥ १६ ॥

गूढपुरुषाश्चान्तदुर्गपालका नकुलवानरविडालशुनां पुच्छेष्व-
ग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः ॥१७॥
शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयो-
भिर्हारयेयुः ॥ १८ ॥

अन्तपाल या दुर्गपालके वेपमें रहने वाले गूढपुरष, नेवला, चन्द्र, बिल व तथा कुत्तेकी पूंछमें, आग लगा देनेवाली औपधियोंको लगाकर, इनकी शत्रुके उन घरोंमें छोड़ देवे, जहाँपर बाण तथा कुप्य आदि सबही, रक्षा करनेके सामान रखे हुए हों । १७ ॥ सूखा मछलीके पेटमें, अथवा सूखे हुए मांसमें अग्नियोग (आग लगानेवाली औपधियोंके समूह) को रखकर उस मांसको, पक्षियोंको मिलानेके बहानेसे पक्षियोंके द्वारा अपहरण करा देवे । (अर्थात् पक्षियोंके द्वारा, उस शत्रुके दुर्गमें पहुंचाकर, वहां आग लगा देवे) ॥ १८ ॥

सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलुश्रीवेष्टकसर्जरसलाक्षागुलिकाः
खरोन्द्राजावीनां लण्डं चाग्निधारणम् ॥ १९ ॥ प्रियालचूर्णमव-
ल्युजमपीमधूच्छिष्टमश्वत्थरोन्द्रगोलण्डमित्येष क्षेप्यो ऽग्नियोगः
॥ २० ॥

सरु, देवदार, पूतितृण (एक प्रकारकी घास, जिसमेंसे सुगन्ध आती है), गुग्गुलु, सरुका गोंद, गाल और लाख, इन सब चीजोंकी बनाई हुई गोदियां, तथा गधा ऊट बकरा और भेडा, इन जानवरोंका लिङ्ग ; अग्निको धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् इनमें अग्निका अंश बहुत अधिक होता है ॥ १९ ॥ चिरंजीका चूरा, बावचीका ददददा चूरा (अर्थात् जौकुटसा हुआ) शहद, और घोड़ा गधा ऊट तथा बलका लिङ्ग, इन सब चीजोंको मिलाकर, फेंककर काममें आनेवाला अग्नियोग तैयार होता है ॥ २० ॥

सर्वलोहचूर्णमग्निवर्णं वा कुम्भीसीसत्रपुचूर्णं वा पारिभद्रकप-
लाशपुष्पकेशमपीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तो ऽग्नियोगो विधा-
सघाती वा ॥ २१ ॥ तेनावलिप्तः शृणुषुसवल्कवेष्टितो बाण
इत्यग्नियोगः ॥ २२ ॥

अथवा भागिके समान वर्णवाला, सब तरहके लोहेका चूरा ; अथवा कापफल सीसा और रांग इन सब चीजों का चूरा; नीम और टाकके फूल, भेन्नवाला का चूरा, तेल, शहद तथा सरूका गोंद, इन सब पस्तुओंके साथ मिलाकर बनाया हुआ अग्नियोग निश्चय ही विश्वासघाती होता है, अर्थात् जहां भाग लगाने की सम्भावना भी न हो, वहां भी इसका प्रयोग किये जाने पर अवश्य भाग लग जाती है, इसलिये इसको बड़ा शीघ्र अग्नियोग माना गया है ॥ २१ ॥ उपर्युक्त इन सब चीजों से बनाहुआ, तथा सब और ककड़ी की बेलकी छालसे लपेटा हुआ बाणभी अग्नियोग होता है । अर्थात् वह जहां जाकर लगेगा, वहां भाग लगा देगा । (इस सूत्रमें आये हुए 'घण' शब्दका अर्थ, महामहोपाध्याय स. गणपति शास्त्रिने 'अर्जुनवृक्ष' किया है ॥ २२ ॥

न त्वेव विद्यमाने पराक्रमे ऽग्निमवसृजेत् ॥ २३ ॥ अवि-
श्वासो ह्यग्निः दैवपीडनं च ॥ २४ ॥ अप्रतिसंघातप्राणिधान्यप-
शुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः ॥ २२ ॥ क्षीणनिचयं चावाप्तमपि
राज्यं क्षयायैव भवति ॥ २६ ॥ इति पर्युपासनकर्म ॥ २७ ॥

पराक्रमके समयमें, (अर्थात् जिस समय युद्ध प्रारम्भ हुआ २ हो, उस समयमें) इन अग्नियोगोंको न छोड़ें ॥ २३ ॥ क्योंकि अग्नि का कुछ विश्वास नहीं होता, और यह दैवपीडन बताया गया है (देखो अधि० ८ अध्या० ४ सू० १) ॥ २४ ॥ तथा यह अग्नि, अस्त्ररथात प्राणियों, धान्य पशु धन तथा अन्य कुप्य आदि द्रव्यों का नाश करने वाला होता है ॥ २५ ॥ जिस राज्यमें सब प्रकारके सम्पत्तियोंका क्षय होगया हो वह राज्य अपने हाथमें भाजाने पर भी क्षयके लिये ही होता है । अर्थात् बेसे राज्य को जीतकर भी विजिगीषु कभी उन्नत नहीं होसकता ॥ २६ ॥ यदांतक शत्रुके दुर्गको चारों ओरसे घेरनेके सम्बन्धमें निरूपण करादिया गया ॥ २७ ॥

सर्वारम्भोपकरणविष्टिसंपन्नो ऽस्ति ॥ २८ ॥ व्याधितः पर
उपधाविरुद्धप्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः नासारो वा
पुरा मित्रैः संघत्ते इत्यवमर्दकालः ॥ २९ ॥

अब इसके आगे शत्रुके दुर्ग को, कब और किस समय अपने अधि-
कारमें करना चाहिये, इस बात का निरूपण किया जाता है:—जब विजिगीषु यह समझे, कि मैं सब तरहके युद्धोपयोगी साधनोंसे युक्त हूँ, मेरे पास सब तरह का कार्य करनेके लिये आदमी मौजूद हैं ॥ २८ ॥ शत्रु व्याधिग्रस्त है,

उसकी अमात्य आदि प्रकृति उसको घोरा देनेवाली हैं, दुर्ग आदिकी मरम्मत तथा धान्य आदि का संग्रह भी इसने अभी तक नहीं किया है, मित्र की भी इसे कोई सहायता नहीं है, अथवा सहायता की सम्भावना होने पर भी अभी तक उनके साथ सन्धि ही कर रहा है, अर्थात् इसका सबसे पहिला काम मित्रोंके साथ सन्धि करने का है, यह भी अभी तक शत्रुके निश्रय करके समाप्त नहीं किया है । इसप्रकार जब विजिगीषु समझे, उसी समयमें शत्रुपर भाग्य कर देवे । अर्थात् शत्रुके कुचलने का यही समय होता है ॥ २९ ॥

स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रह्वणे प्रेक्षानीकदर्शनस-
ङ्गसौरिककलहेषु नित्ययुद्धश्रान्तबले बहुलयुद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे
जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने नदीवेगे वा नीहारसंघ्रवे चावमृ-
द्नीयात् ॥ ३० ॥

अथवा शत्रुके दुर्ग आदिमें स्वयं अग्नि लगाने पर, या आनन्दोत्सव आदिके मनाने का ही दौरघौरा होने पर (तारय्यं यह है कि जब राजा सह-भोज या पार्टी आदिमें ही लगातार लगा रहता हो, या तमाशे और चांद-मारीमें ही अधिक आसक्त रहता हो, या शराबियोंके द्वारा कोई झगड़ा खड़ा करने पर, लगातार युद्ध करनेसे सेनाके थक जाने पर, लम्बा युद्ध होनेके कारण अत्यधिक आदमियोंके जखमी होजाने और मरजानेपर, जागनेके कारण बेचैन हुए २ पुरुषोंके सोजाने पर, दुर्दिनमें अर्थात् जिस दिन आंधीमेघ आदि बहुत हो रहा हो, या जब शत्रु किसी वेगवती नदीको पार कर रहा हो, या जिस दिन कुहरा आदि बहुत पड़ रहा हो, ऐसे समयमें अर्थात् शत्रुकी ऐसी अवस्था होने पर, विजिगीषु उसको कुचल दाले ॥ ३० ॥

स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः शत्रुं सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत्
॥ ३१ ॥ मित्रासारमुख्यव्यञ्जनो वा संरुद्धेन मैत्रीं कृत्वा दूतम-
भित्यक्तं प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥ इदं ते छिद्रम् ॥ ३३ ॥ इमे दूष्याः
॥ ३४ ॥ संरोद्धुर्वा छिद्रमयं ते कृत्यपक्ष इति ॥ ३५ ॥

अथवा छावनी को छोड़कर विजिगीषु, जंगलमें जाकर कहीं छिपजावे और वहाँ जंगलसे निकलते हुए शत्रुको मरवाडाले ॥ ३१ ॥ मित्रके वेपमें रहने वाला अथवा मित्रकी सेनाके मुखियाके वेपमें रहने वाला गृहपुरुष, संरुद्ध (विरे हुए) शत्रु राजके साथ मित्रता करके, अपने एक वष्य दूतको निम्न लिखित संदेश देकर उसके पास भेजे ॥ ३२ ॥ तुम्हारे अन्दर अमुक २ दोष

या निर्बलता है ॥ ३३ ॥ वे अमुक २ तुम्हारे दूष्य पुरुष हैं ॥ ३४ ॥ संरोद्धा विजिगीषु की अमुक २ निर्बलता है, और यह तुम्हारा कृत्यपक्ष है, अर्थात् संरोद्धा विजिगीषुके कुछ लुब्ध भीत आदि वर्गमेंसे अमुक पुरुष तुम्हारी ओर मिलने को तैयार हैं ॥ ३५ ॥

तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्तं विजिगीषुर्गृहीत्वा दोषम-
भिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत् ततः ॥ ३६ ॥ मित्रासारव्य-
ञ्जनो वा संरुद्धं ब्रूयात् ॥ ३७ ॥ मां त्रातुमुपनिर्गच्छ ॥ ३८ ॥
मया वा सह संरोद्धारं जहीति ॥ ३९ ॥

जब वह दूत, उस संदेशका उत्तर लेकर लौटकर आये, तो मार्गमें निकलते हुए उस दूतको विजिगीषु पकड़लेये; और उसके इसी दोषको प्रसिद्ध करके, कि यह हमारा अपकार करता है, उसको मारकर, यहांसे चलाजावे । (तथा उस उत्तर लेखपत्रको अपने कानू में रखले) ॥ ३६ ॥ अथवा मित्रके वेषमें या मित्रकी सेनाके वेषमें रणेशाला गूढपुरुष, संरुद्ध राजाको ही कहें ॥ ३७ ॥ 'मेरी रक्षाके लिये तुम्हें उठ खड़ा होना चाहिये ॥ ३८ ॥ अथवा मेरे साथ चलकर संरोद्धा (शोकनेवाले विजिगीषु राजा) को मारो, अर्थात् चलो, हम दोनों मिलकर विजिगीषुको मारें ॥ ३९ ॥

प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण
वा राज्याविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ नगरं वास्य प्रमृद्नीयात्
॥ ४२ ॥ सारबलं वास्य वमयित्वाभिहन्यात् ॥ ४३ ॥ तेन
दण्डोपनताटयिका न्याख्याताः ॥ ४४ ॥

वह जब इस बातको स्वीकार करले, तो दोनों ओरसे घेरकर उसे मारदिया जावे ॥ ४० ॥ अथवा उसे जीवित ही पकड़कर उसके राज्यको घनूल दियाजावे ॥ ४१ ॥ या उसके नगरको (अर्थात् राजधानीको बरबाद करदिया जावे ॥ ४२ ॥ अथवा इसके सारबलको (बलिभ मग्नूय सेनाको) दुर्गसे बाहर निकालकर मारदाले ॥ ४३ ॥ इसीके अनुसार दण्डोपनत (अपनी सैनिक शक्तिके भारोसेपर घलपूर्वक अपने वचनमें कियेहुए राजा) और आटविकोंके सम्बन्धमें भी ब्याख्यान समझलेना चाहिये ॥ ४४ ॥

दण्डोपनताटविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ४५ ॥
अयं संरोद्धा व्याधितः पार्ष्णिग्राहेणाभियुक्तश्छिद्रमन्यदुत्थित-
मन्यसां भूमावपयातुकाम इति ॥ ४६ ॥ प्रतिपक्षे संरोद्धा

स्कन्धावारमादीप्यापयायात् ॥ ४७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत्
॥ ४८ ॥

अथवा दण्डोपनत और भाटविक, इन दोनोंमेंसे कोई एक, संरुद्ध (घिरेहुए) शत्रु राजाके पास यह निम्नलिखित संदेश भेजे ॥ ४५ ॥ 'यह संरोद्धा (घेरा डालनेवाला विजिगीषु राजा) आजकल व्याधिपीडित होरहा है, पार्ष्णिग्राहने इसपर हमला करदिया है यह एक और भी उपद्रव उदा होगया है, अब यह, यहाँसे दूसरी किसी जगहमें भागजानेकी इच्छा कररहा है' इत्यादि ॥ ४६ ॥ जब घिराहुआ शत्रु राजा, इन सब बातोंको स्वीकार करले, तब संरोद्धा विजिगीषु अपनी छावनीमें भाग लगाकर यहाँसे चला जावे ॥ ४७ ॥ तदनन्तर पूर्ववत् ही सब काम कियाजावे । अर्थात् जब शत्रु, विजिगीषुपर धावा करनेलगे, तो उसे बीचमें घेरकर मारदिया जावे ॥ ४८ ॥

पण्यसंपातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्धेनातिसंदध्यात् ॥ ४९ ॥
आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ मया बाह्यम-
भिहतमुपनिर्गच्छ।भिहन्तुमिति ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत्
॥ ५२ ॥ मित्रं बन्धुं वापदिश्य योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः
प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः ॥ ५३ ॥

अथवा व्यापारियोंके सघका आगमन दिखलाकर (अर्थात् यह प्रकट करके, कि बाहरसे एक व्यापारियोंका संघ आया है, उसके द्वारा दी हुई) विप आदि रसमिश्रित लघु वस्तुओंके द्वारा ही, इस शत्रुको मष्ट करदिया जावे ॥ ४९ ॥ अथवा मित्रसेनाके वेपमें रहनेवाला गूढपुरुष, संरुद्ध शत्रु राजाके पास निम्नलिखित संदेश देकर एक दूतको भेजे ॥ ५० ॥ मैंने तुम्हारे इस बाह्य शत्रुको मार २ कर लूँ कमजोर बना रक्खा है, अब इसे सर्वथा मष्ट करनेके लिये तुम दुर्गसे बाहर निकल आओ ॥ ५१ ॥ जब शत्रु, इस बातको स्वीकार करले, तो पहिलेकी तरह दोनों औरसे, उसे घेरकर मारदिया जावे ॥ ५२ ॥ अथवा अपने भापको मित्र या बन्धु बतलाकर, मुझ लगेहुए बनावटी लेखपत्रको हाथमें लेकर गूढपुरुष, दुर्गके भीतर चलेजायें । और वहाँ किसी उपायसे द्वार आदि खोलकर, दुर्गको विजिगीषुके अधिकारमें करा दें ॥ ५३ ॥

आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ५४ ॥ अमुष्मिन्देशे
काले च स्कन्धावारमभिहनिष्यामि ॥ ५५ ॥ युष्माभिरपि

योद्धव्यमिति ॥ ५६ ॥ प्रतिपन्नं यथोक्तमभ्याघातसंकुलं दर्श-
यित्वा रात्रौ दुर्गाभिष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ५७ ॥

अथवा मित्र सेनाके वेपमें, रहनेवाला गूढपुरुष, धिरेहुए शत्रुराजाके पास यह सन्देश भिजवावे ॥ ५४ ॥ 'मैं अमुक देश और अमुक समयमें छावनीके ऊपर हमला करूंगा ॥ ५५ ॥ आपको भी उस समय मेरी औरसे ही युद्ध करना चाहिये ॥ ५६ ॥ जब शत्रु राजा इस घातको स्वीकार करले, तो पूर्व कथनानुसार विजिगीषुकी छावनीमें लड़ाईका घमासान दिखलावे; जब उसे देखकर रातमें शत्रु विश्वासपूर्वक अपने दुर्गसे बाहर निकले, तो उसे बीचमें घेरकर मारदिया जावे ॥ ५७ ॥

यद्वा मित्रमावाहयेत् आटविकं वा, तमुत्साहयेत् ॥ ५८ ॥
विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्वेति ॥ ५९ ॥ विक्रान्तं प्रकृ-
तिभिर्दूष्यमुख्योपग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन ॥ ६० ॥
मित्रघातको ज्यमित्यवाप्तार्थः ॥ ६१ ॥

अथवा विजिगीषु, अपने मित्र या आटविकको वहाँ बुलवावे, तथा उसको इसतरा उरसाहित करे ॥ ५८ ॥ 'संरुद्ध शत्रु राजापर आक्रमण करके, उसकी भूमिको अर्थात् उसके राज्यको अपने अधीन करलो ॥ ५९ ॥ जब यह या आटविक, उस धिरेहुए शत्रुपर आक्रमण करदेवे, तब उसको, उसकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा, या अपने अनुकूल घनापहुए उसके दूष्य मुख्य पुरुषोंके द्वारा ही उसको मरवाडाले। अथवा आप ही विप आदिके योगसे उसे मारडाले ॥ ६० ॥ तदनन्तर 'यद् शत्रु मेरे मित्रको मारनेवाला है' इस घातको प्रसिद्ध करके अपने कार्यको सिद्ध करे ॥ ६१ ॥

विक्रमितुकामं वा मित्रव्यञ्जनः परस्याभिशीसेत् ॥ ६२ ॥
आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषानस्योपघातयेत् ॥ ६३ ॥ संधिं वा
कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥ निविष्टमन्यजनपदमवि-
ज्ञातो हन्यात् ॥ ६५ ॥

अथवा मित्रके वेपमें रहनेवाला गूढपुरुष, शत्रुको इसप्रकार कहे, कि 'विजिगीषु' तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना चाहता है ॥ ६२ ॥ इसतरह जब यह शत्रुका अत्यन्त विश्वस्त होजावे, तब उसके प्रवीर पुरुषों (मुख्य बहादुर आदमियों) को मरवाडाले ॥ ६३ ॥ अथवा शत्रुके साथ सन्धि करके उसको उसी जनपदमें रहनेदेवे। अथवा इसके ही द्वारा एक अन्य जनपदको

आवाद करवावे ॥ ६४ ॥ और उस नये आवाद हुए २ जनपदको, शत्रुके बिना जाने ही फिर नष्ट करवाले । अर्थात् स्वयं उसे परवाद करवाले ॥ ६५ ॥

अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा चलैकदेशमतिनीय दुर्गम-
वस्कन्देन हारयेत् ॥ ६६ ॥ दूष्यामित्राटविकेष्वप्यप्रत्यपसृताश्च
कृतार्थमानसंज्ञाचिह्नाः परदुर्गमवस्कन्देयुः ॥ ६७ ॥

अथवा अपने दूष्य और आटविकोंके द्वारा अपना कुछ अपकार करवाकर उन दूष्य और आटविकोंपर आक्रमण करनेके बहानेसे, शत्रुकी सेनाके एक हिस्सेको बहुत दूर किसी देशमें लंजावे । और फिर थोड़ी सेनासे युक्त, शत्रुके दुर्गको आक्रमणकर बलपूर्वक धीम लेवे ॥ ६६ ॥ शत्रुके दुर्गपर आक्रमण करनेके लिये कौन पुरुष सहायक होंवें यह बतलाते हैं:-शत्रुके दूष्य पुरुष, शत्रु, आटविक, जिनसे शत्रु द्वेष रखता हो, तथा शत्रुके पाससे एकबार जाकर फिर वापस उसीके पास आये हुए, तथा विजिगीषुके द्वारा धन मान आदि से सरकृत किये हुए, और आक्रमणके समय, आदिसे सूचित किये हुए, शत्रुके दुर्गका अपहरण करनेमें सहायता देवें ॥ ६७ ॥

परदुर्गमवस्कन्ध स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमु-
क्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमपुष्यमानेभ्यश्च दशुः ॥ ६८ ॥
परदुर्गमवाप्य विशुद्धशत्रुपक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्बहिश्च
प्रविशेत् ॥ ६९ ॥

शत्रुके दुर्गको अथवा उसकी छावनीको हस्तगत करके, विजिगीषु-पक्षके पुरुषोंको उचित है, कि वे पतित (युद्धके मैदानमें गिरे हुए), पराङ्मुख (युद्धसे भागे हुए), निपद्मस्त, मुक्तकेश (बिखरे हुए बालोंवाले), हथियारोंसे दूरकर विकृत भाकारवाले, तथा युद्ध न करनेवाले पुरुषोंके लिये सर्वथा अभय देदेवें ॥ ६८ ॥ शत्रुके दुर्गका प्राप्त करके, और वहाँसे शत्रुपक्षके सबही पुरुषोंकी सफाई करके, विजिगीषु, अपना विरोध करनेवाले पुरुषोंका उपांशु-दण्डसे प्रतीकार करता हुआ, दुर्गके अन्दर और बाहर प्रवेश करे । (इस सूत्रमें 'विशुद्धशत्रुपक्षः' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'विशुद्धशत्रुपक्ष' भी पाठ है । इस पाठमें यह पद क्रियाविशेषण समझना चाहिये) ॥ ६९ ॥

एवं विजिगीषुरभिपन्नभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत् ॥ ७० ॥
तत्सिद्धावुदासीन्म् ॥ ७१ ॥ एष प्रथमो मार्गः पृथिवी
जेतुम् ॥ ७२ ॥

इस प्रकार विजिगीषु, शत्रुकी भूमिको प्राप्त करके, मध्यमको प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ ७० ॥ उसको भी प्राप्त करलेनेपर, उदासीन राजाको अपने अधीन करनेका यत्न करे ॥ ७१ ॥ पृथिवीको विजय करनेके लिये यह प्रथम मार्ग है ॥ ७२ ॥

मध्यमोदासीनयोरभावे गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत्
॥ ७३ ॥ तत उत्तराः प्रकृतीः ॥ ७४ ॥ एष द्वितीयो मार्गः
॥ ७५ ॥

मध्यम और उदासीन राजाओंके न होनेपर, अपने गुणोंके आधिक्य के द्वारा (अर्थात् शत्रुके गुणोंकी अपेक्षा अपने गुणोंके अतिशयसे) शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंको अपने अनुकूल बनावे । ७३ । तदनन्तर शत्रुकी, अन्य कोश सेना आदि प्रकृतियोंको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे ॥ ७४ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह द्वितीय मार्ग है ॥ ७५ ॥

मण्डलस्याभावे शत्रुणा मित्रं मित्रेण वा शत्रुमुभयतः संपी-
डनेन साधयेत् ॥ ७६ ॥ एष तृतीयो मार्गः ॥ ७७ ॥

सम्बद्ध राजमण्डलके न होनेपर (दश प्रकारके राजाओंके समूहका नामही 'मण्डल' या राजमण्डल होता है ; देखो:—अधि. ७, अध्या. १८), शत्रुके द्वारा मित्रको और मित्रके द्वारा शत्रुको, दोनों ओरसे घेरकर या दबाकर अपने अनुकूल बनावे ॥ ७६ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह तृतीय मार्ग है ॥ ७७ ॥

शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत् ॥ ७८ ॥ तेन द्विगुणो
द्वितीयं त्रिगुणस्त्वृतीयम् ॥ ७९ ॥ एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं
जेतुम् ॥ ८० ॥ जित्वा च पृथिवीं विभक्तवर्णाश्रमां स्वधर्मेण
भुञ्जीत ॥ ८१ ॥

अपना जीतसकने योग्य एकही सामन्त (समीपस्थित राजा) को अपने अनुकूल बनावे ॥ ७८ ॥ उसके अनुकूल बनजानेपर जब अपनी शक्ति त्रिगुण होजावे, तो और दूसरे सामन्तको अपने अनुकूल बनानेका प्रयत्न करे । जब उसके अनुकूल बनजानेपर अपनी शक्ति त्रिगुण होजावे, तो विजिगीषु, तीसरे सामन्तको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे ॥ ७९ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह चतुर्थ मार्ग है ॥ ८० ॥ इसप्रकार पृथिवीको जीतकर, वर्ण और आश्रमोंका टीक २ विभाग करके, राजा, धर्मपूर्वक पृथिवीका भोग करे ॥ ८१ ॥

उपजापापसर्पौ च वामनं पर्युपासनम् ।

अवमर्दश्च पञ्चैवे दुर्गलम्भस्य हेतवः ॥ ८२ ॥

इति दुर्गलम्भोपायं त्रयोदशे ऽधिकरणे पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च चतुर्थी-

ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितश्चतुश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४४ ॥

उपजाप (शत्रुके आदिमियोंको बहकाना), अपसर्प (अपने गूड़पुरपोंके द्वारा शत्रुपक्षका नाश करना), वामन (विष आदि विषम उपचारोंका प्रयोग काके शत्रुका नाश करना), पर्युपासन (शत्रुके दुर्गके चारों ओर धेरा डालना), तथा अवमर्द (अन्य उपचारोंसे शत्रुके दुर्ग आदिका विध्वंस करना) ये पांच, शत्रुके दुर्गको प्राप्त करनेके हेतु बताये गये हैं । (इस सूत्रमें 'उपजापापसर्पौ च' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'उपजापोऽपसर्पौ वा' ऐसा भी पाठ है । अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ ८२ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१७ई प्रकरण

विजित दुर्ग आदि में शान्ति स्थापित करना

{ विजिगीषु को चाहिये कि वह शत्रुके दुर्ग आदि को जीतकर उनमें शान्ति की स्थापना करे । इसका यही प्रयोजन होता है । कि दुर्ग आदिमें निवास करने वाले पुरपों को अपने नये स्वामी के विषयमें कोई शङ्का नहीं रहती; प्रजाजन उसपर पूर्ण विश्वास करने लगते हैं । इन्हीं सब बातोंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम् ॥ १ ॥ अटव्यादिकमेक-
ग्रामादिकं च ॥ २ ॥ त्रिविधश्चास्य लम्भः ॥ ३ ॥ नवो भूतपूर्वः
पित्र्य इति ॥ ४ ॥

विजिगीषु का समुत्थान (=अभ्युत्थान=उद्योग) दो प्रकार का होता है अर्थात् विजिगीषु का उद्योग, दो रूपोंमें फलता है ॥ १ ॥ एक अटवी आदिके (आदि शब्दसे खान आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये) और दूसरा एकग्राम आदिके रूपमें (आदि शब्दसे नगर आदि का भी ग्रहण करलेना चाहिये) ॥ २ ॥

विजिगीषु का लाभ, तीन प्रकार का होता है ॥ ३ ॥ (१) नव (नया, जो विजिगीषुने शत्रुको जितकर प्राप्त किया हो), (२) मृतपूर्वं (जो पहिले अपने ही पास हो, परन्तु बीचमें शत्रुके पास जाकर फिर विजिगीषु ने उस से अपहरण कर लिया हो), (३) और पिड्य (अपने विता आदि से प्राप्त हुआ २, जो बीचमें शत्रुके हाथमें जाकर, विजिगीषुने फिर उससे वापस ले लिया हो) ॥ ४ ॥

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्थगुणैश्छादयेत् गुणान्गुणद्वैगु-
ण्येन ॥ ५ ॥ स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रि-
यहितान्यनुवर्तेत ॥ ६ ॥ यथासंभाषितं च कृत्यपक्षमुपग्राहयेत्
॥ ७ ॥ भूयश्च कृतप्रयासम् ॥ ८ ॥

नये लाभ को प्राप्त करके विजिगीषु, शत्रु के दोषों को अपने गुणों से ढक दे, तथा शत्रु के गुणों को अपने दुगने गुणों से ढक देवे ॥ ५ ॥ विजिगीषु, सदा अपने धर्म (प्रजा पालन आदि), कर्म (यज्ञानुष्ठान आदि), अनुग्रह (समय २ पर प्रजावर्ग की सहायता करना), परिहार (भूमि पर राजकथि कर आदि को छोड़ देना), दान, और सरकार आदि कार्यों के द्वारा मजा के अनुकूल हित करने में ही लगा रहे ॥ ६ ॥ अपने पूर्व कथन के अनुसार कृत्यपक्ष (सुदृढ़ लुप्त भीतवर्ग) को, धन आदि देने के द्वारा सदा प्रसन्न रखे ॥ ७ ॥ तथा जिसने विजिगीषुके लिये बहुत परिश्रम किया हो, उसे और भी अधिक धन आदि देकर खूब प्रसन्न रखे ॥ ८ ॥

अविश्वासो हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति प्रकृति-
विरुद्धाचारश्च ॥ ९ ॥ तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत्
॥ १० ॥ देशदैवतसमाजेत्सवाविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत ॥ ११ ॥

योंकि पहिले कहकर फिर मुकरजानेवाला राजा, अपने और पराये सबकीके लिये अविश्सनीय होजाता है । तथा वह राजा भी सबका अविश्सनीय होजाता है; जोकि अपने प्रजावर्गके विरुद्ध आचरण करता है ॥ ९ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि वह अपने प्रजावर्गके समानही शील, वेष, भाष्य तथा आचरणका प्रहण करे ॥ १० ॥ और देशकी देवता, समाज, उत्सव तथा विहारोंमें, भक्तिभावना रखे । भयान् इन कार्योंमें समय २ पर महयोग यता रहे ॥ ११ ॥

देशग्रामजातिसंघमुख्येषु चाभीक्ष्णं सन्निवणः परस्यापचारं
दर्शयेयुः ॥ १२ ॥ माहाभाग्यं भक्तिं च तेषु स्वामिनः स्वामि-
सत्कारं च विद्यमानम् ॥ १३ ॥ उचितैर्यैतान्भोगपरिहाररक्षा-
वेक्षणैः सुञ्जीत ॥ १४ ॥

देश, ग्राम, जाति, संघ और मुख्योंमें जाकर, विजिगीषुके सत्रीपुरूप,
धारधार, शत्रुके अहित अनुष्ठानको (प्रजाके प्रति किये गये अपकारको)
दिखलावे ॥ १२ ॥ और उनके विषयमें (देश ग्राम आदिके विषयमें) अपने
स्वामीकी (नये राजा विजिगीषुकी) महामागता (उद्धारता), भक्ति (प्रेम)
तथा स्वामीके द्वारा किये गये विद्यमान सत्कारकोभी अच्छीतरह दिखलावे ।
(इसका पयोजन यही है, कि प्रजावर्गकी आस्था, शत्रुकी ओरसे हटकर,
सर्वथा विजिगीषुकी ओरही होजावे) ॥ १३ ॥ तथा उचित भोग (राजभाग-
का देना), परिहार (वैश्व आदिका न लेना), और रक्षावेक्षणोंसे (कण्टक
शोषन अधिकरणमें कहे हुए कण्टकोंका उद्धार करनेसे) अर्थात् प्रजाजनोंके
लिये वे सुभीते करके, उनको समयानुसार अपने उपयोगमें लावे ॥ १४ ॥

सर्वदेवताश्रमपूजनं च विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमि-
द्रव्यदानपरिहारान्कारयेत् ॥ १५ ॥ सर्ववन्धनमोक्षणमनुग्रहं
दीनानाथव्याधितानां च ॥ १६ ॥

विजिगीषु, सब देवताओं और आश्रमोंका पूजन करवावे । तथा विद्या-
शूर (विद्वान्) वाक्यशूर (वाग्मी=बहुत अच्छा बोलने वाले), और धर्मशूर
(धार्मिक) पुरुषोंके लिये भूमि और द्रव्य देवे, तथा उनसे भूमि आदिका
कर न लेवे ॥ १५ ॥ दीन अनाथ तथा व्याधित पुरुषोंको, सब तरहसे अनुग्र-
हित करे, अर्थात् दरतरहसे इनकी सहायता करे; और सबही पुरुषोंको, कारा-
गार आदिके बन्धनसे सुझवा देवे ॥ १६ ॥

चातुर्मास्येष्वर्धमासिकमघातम् ॥ १७ ॥ पौर्णमासीषु च
चातुरात्रिकम् ॥ १८ ॥ राजदेशनक्षत्रेष्वैकरात्रिकम् ॥ १९ ॥
योनिचालवधं पुंस्त्वोपघातं च प्रतिषेधयेत् ॥ २० ॥

चार २ महीनोंके बर्गमेंसे पन्द्रह दिनतक, प्राणदण्ड आदिका प्रतिषेध
करदेवे । अर्थात् चार महीनेमें पन्द्रह दिन ऐसे रखे, जिनमें कि प्राणदण्ड
आदि न दिये जावें ॥ १७ ॥ तथा सम्पूर्ण पूर्णमासियोंमेंसे चार पूर्णमासी
तिथियोंमें किसीका वध न किया जावे ॥ १८ ॥ राजाके गद्दीपर बैठनेके, तथा

देशकी प्रासिके नक्षयमें भी एक दिनतक किसीका वध न किया जावे ॥ १९ ॥
 वधे पैदा करनेकी शक्ति रखनेवाले मावा जानवरों, तथा छोटे बच्चोंको विजि-
 गीपु न मारने देवे । और नर जानवरोंको पुंस्त्वहीन न बनाने दिया
 जावे ॥ २० ॥

यच्च कौशदण्डोपघातिकमधर्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत तदपनीय
 धर्म्यव्यवहारं स्थापयेत् ॥ २१ ॥ चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां
 च स्थानविपर्यासमनेकस्थं कारयेत् दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च
 ॥ २२ ॥

जिस चरित्रको विजिगीपु, कौश और सेनाके नष्ट करनेवाला तथा
 अधर्म युक्त समझे, उसको हटाकर धर्मयुक्त व्यवहारकी स्थापना करे ॥ २१ ॥
 चोरप्रकृति म्लेच्छ जातियोंका, तथा दुर्ग, राष्ट्र और सेनाके मुख्य व्यक्तियोंका,
 दूर २ पर स्थानविपर्यय करता रहे । तत्पर्यय यह है, कि इन लोगोंको एकट्ठा
 एक स्थानपर न रहनेदेवे ॥ २२ ॥

परोपगृहीतानां च मन्त्रिपुरोहितादीनां परस्य प्रत्यन्तेष्वने-
 कस्थं वासं कारयेत् ॥ २३ ॥ अपकारसमर्थाननुक्षियतो वा भर्तृ-
 विनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत् ॥ २४ ॥ स्वदेशीयान्वा परेण
 वावरुद्धानपवाहितस्थानेषु स्थापयेत् ॥ २५ ॥

राज्यसे उपकृत मंत्री और पुरोहित आदिको, राज्यके सीमाप्रान्तोंमें
 भिन्न २ स्थानोंपर निवास कराये । जिससे ये परस्पर एक दूसरेके साथ
 मिलने न पायें ॥ २३ ॥ तथा जो व्यक्ति, अपना (विजिगीपुका) अपकार करने
 में समर्थ हों, अथवा विजिगीपुका विनाश करनेके विचारसेही वहां रहते हों,
 उनको उपांशुदण्डसे नष्ट करवाले ॥ २४ ॥ अपने देशके पुरोंको, अथवा
 राज्यके द्वारा कारागारके धन्धनमें डाले गये पुरोंको ; विजिगीपु, अपने २
 अधिकारसे प्युत किये गये शत्रुक्षीण पुरोंके अधिकार पदोंपर नियुक्त
 करे । अर्थात् शत्रुपक्षके पुरोंको अधिकार पदसे हटाकर, उन स्थानोंपर इनको
 नियुक्त करे ॥ २५ ॥

यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ताटवीस्रो वा
 प्रवाधितुमभिजातस्तस्यै विगुणां भूमिं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥

जुसे छोटी हुई भूमिको, उसके घंटाकाही कोई पुरूप, यदि फिर
 वापस लेनेके लिये समर्थ हो, अथवा सीमाप्रान्तके सामन्त या आटाविकके

द्वारा उस भूमिपर बाधा पहुंचाये जासकनेकी आशंका हो ; तो विजिगीषु उनके लिये, किसी गुणहीन भूमिका कुछ हिस्सा देवेवे ॥ २६ ॥

गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य, यदुपकु-
र्वाणः पौरजानपदान्कोपयेत् ॥ २७ ॥ कुपितैस्तैरेनं घातयेत्
॥ २८ ॥ प्रकृतिभिरुपक्रुष्टमपनयेत् ॥ २९ ॥ औपघातिके वा
देशे निवेशयेदिति ॥ ३० ॥

अथवा गुणवाली भूमिकाही चौथा हिस्सा इस शर्तपर देदेवे, कि वह सामन्त, विजिगीषुके लिये कोश और सेनाकी बहुत अधिक संख्या देता रहेगा। जिसके लिये (अर्थात् जिस कोश और सेनाको इकट्ठा करनेके लिये) वह अपने नगरनिवासी तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको कुपित करलेगा। अर्थात् उतना धन और सेनाको इकट्ठा करनेके लिये प्रजाको तंग किये जायेपर, प्रजा उससे कुपित हो उठेगी ॥ २७ ॥ प्रजाजनोंके कुपित होनेपर, विजिगीषु, उन्हींके द्वारा, उस सामन्तको मरवा डाले ॥ २८ ॥ अथवा अमार्य आदि प्रकृतियोंसे निन्दा किये जानेपर उसको वहांसे हटा देवे ॥ २९ ॥ या उसको ऐसे प्रदेशमें भेजदेवे, जहां उसके नाश करनेके लिये अनेक साधन उपस्थित हों ॥ ३० ॥

भूतपूर्वं येन दोषेणापवृत्तस्तं प्रकृतिदोषं छादयेत् ॥ ३१ ॥
येन च गुणेनोपावृत्तस्तं तीव्रीकुर्यादिति ॥ ३२ ॥ पित्र्ये पितृ-
दोषांश्छादयेत् ॥ ३३ ॥ गुणांश्च प्रकाशयेदिति ॥ ३४ ॥

पहिले जिस दोषके कारण, अपना राज्य शत्रुके हाथमें चलागया हो, उस प्रकृतिदोषको सदा दबाये रखे ॥ ३१ ॥ तथा जिस गुणके कारण, शत्रुके हाथमें गयाहुआ राज्य फिर वापस लेलिया गया हो, उस गुणको सदा तीव्र करता रहे, अर्थात् बढ़ाता रहे ॥ ३२ ॥ यदि राज्यके शत्रुहस्तगत होनेमें पिताका दोष हो, तो उन दोषोंको भी छिपाये रखे ॥ ३३ ॥ और पिताके जो कुछ गुण हों, उन सबको बराबर प्रकट करता रहे ॥ ३४ ॥

चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत् ।

प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ॥ ३५ ॥

इति दुर्गलम्भोपाय प्रथोदशे अधिकरणे लक्ष्यप्रशसनं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भादितः पञ्चमवारिंशच्छतः ॥ १४५ ॥ एतावता कौटलीयव्याख्यशास्त्र

दुर्गलम्भोपायप्रथोदशाधिकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

जिन धर्मयुक्त चरित्रोंका भाषरण न किया जाता हो, विनिगीपु उनको प्रवृत्त करे; तथा अन्य पुरुषोंसे किये गये धर्मयुक्त व्यवहारोंको भी प्रवृत्त रखे। अधर्मयुक्त व्यवहारोंको कभी प्रवृत्त न होने दे; तथा जो अधर्मयुक्त व्यवहार प्रवृत्त हुए २ हों, उनको प्रयत्नपूर्वक रोके ॥ ३५ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण समाप्त



औपनिषदिक चतुर्दशअधिकरण

पहिला अध्याय

१७७ प्रकरण

परघातप्रयोग

{ इस चौदहवें अधिकरणक नाम 'औपनिषदिक' है। आप्य और मन्त्रोंक रहस्यको 'उपनिषद्' कहते हैं। इसीका निरूपण करनेके कारण यह अधिकांश 'औपनिषदिक' कहा जाता है। इसके पहिले प्रकरणमें, शत्रुका वध करनेके लिये औषध प्रयोगका कथन किया जायगा।

चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषदिकमधर्मिष्ठेषु प्रयुञ्जीत ॥ १ ॥

कालकूटादिः विषवर्गः श्रेयदेशवेपशिल्पभाजनापदेशैः कुब्ज-
वामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छन्नाभिः म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः
स्त्रीभिः पुंभिश्च परशरीरोपभोगेऽवघातव्यः ॥ २ ॥

विजिगीषु, चातुर्वर्ण्यकी रक्षाके लिये, अधार्मिक पुरुषोंमें औपनिषदिकका प्रयोग करे ॥ १ ॥ कालकूट आदि (आदि शब्दसे वर्तमानम हलाहल आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये) विषसंग्रहको, अपने विश्वसनीय देश वेप शिल्प तथा सुपात्रत्व (योग्यता) को प्रकट करनेवाले, कुपद्दे, पीने पस्तकद गूगे बाहिरे मूखें तथा अन्धके घेपमें रहनेवाले, और म्लेच्छ जातिके प्रिय पुरुषों तथा स्त्रियोंके द्वारा, शत्रुके शरीरसे उपभोग्य वस्त्रों आदिमें संयुक्त करादिया जावे। तात्पर्य यह है, कि ये उपयुक्त, पुरुष या स्त्री आदि, शत्रुके वस्त्र आदिमें विष का ससर्ग करदेवें ॥ २ ॥

राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः
॥ ३ ॥ सत्त्राजीविनश्च रात्रिचारिणो ऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम्
॥ ४ ॥

शत्रु राजाके खेलनेकी वस्तुओंके रखनेके स्थानमें, भूषण रखनेके स्थानमें, तथा सुगन्धि द्रव्योंके रखनेके स्थानमें, गूढपुरुष हाथियोंको छिपा

कर रखदेवें । अथवा इस सूत्रका अर्थ इसप्रकार 'करना' चाहिये:—विजिगीषु के गूढपुरुष, शत्रुके खेलनेके समय, भूषण आदि धारण करनेके समय, तथा सुगन्धि, आदि द्रव्योंका उपभोग करनेके समयमें, उसपर (शत्रुपर) शत्रुओंका प्रयोग करें ॥ ३ ॥ और रात्रिमें इधर उधर घूमनेवाले, सत्री पुरुष, तथा लुहार आदि आदिजाँचों (आग्निके द्वारा अपत्नी जीविका करनेवाले) पुरुष, शत्रुस्थानमें आग्निको रख देनेका कार्य करें ॥ ४ ॥

चित्रमेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गके-
बलीशतकन्देधमकृकलासचूर्णं गृहगोलिकान्धाहिकेकृकणकपूतिकी-
टगोमारिकाचूर्णं भस्त्रातकावलगुकारसयुक्तं सद्यः प्राणहरमेतेषां वा
धूमः ॥ ५ ॥

चितकबरा मेडक, कौण्डिन्यक (एक प्रकारका कीड़ा, जिसका पेशाब और पखाना, विपके समान होता है), जंगली तीतर, कूटके पाँचों अंग (कूट एक वृक्ष होता है, उसके पत्ते फल फूल छाल और जड़ ये पाँच अंग), कान-खजूरा, इन सब चीजोंका चूर्ण; अथवा उच्चिदिङ्ग (एक प्रकारका कीड़ा); कम्बली (=कमछा=छोटी अंगुलीकी तरह लम्बा गोल कीड़ा होता है), शत (=शतमूली=शताघरी), जमीकन्द, हाफकी लकड़ी, और कृकलास (=करकंटा= गिरगट), इन सब चीजोंका चूर्ण; अथवा छपकली (किरली), अन्धाहिक (विपरहित साँप; त. गणपति शास्त्रमें इसका अर्थ 'एक प्रकारकी मउली' किया है), कृकणक (जंगली तीतर), पूतिकीट (एक प्रकारका कीड़ा), गोमारिका (एक प्रकारकी औषधि) इन सब चीजोंका चूर्ण; मिलाना और वावचीके रसके साथ मिला लिया जावे; ये चीजें, तथा इन चीजोंका धुआँ, तत्कालही प्राणोंको हरण करने वाला होता है ॥ ५ ॥

कीटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः ।

शोपयेदेप संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥ ६ ॥

ऊपर कहे हुए कीड़ोंमेंसे किसी एक कीड़ेको आग्निके तपाकर घ्राण भावसे यदि उसका उपयोग किया जावे, तो यह सूँघनेवालेके शरीरको सुशा देता है । यदि काले साँप और कांगनीके साथ इसका योग करदिया जावे, तो यह तत्कालही प्राणोंको हरण करनेवाला माना गया है ॥ ६ ॥

धामार्गवयातुधानमूलं भस्त्रातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः
॥ ७ ॥ व्याघातकमूलं भस्त्रातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः

॥ ८ ॥ कलामात्रं पुरुषाणां द्विगुणं सराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्यु-
द्गाणाम् ॥ ९ ॥

धामार्गव (=अधामार्गव=चिदचिदा=पुटठठा, या कटवी तोरहं), और
यागुधान (इस नामकी या राक्षक नामकी एक औषधि), की जटकी, यदि
'भिलादेके फूलोंके चूर्णके साथ मिला लिया जावे तो यह योग पन्द्रह दिनमें
प्राण हरलेता है ॥ ७ ॥ अमलतासकी जट, भिलादेके फूलके चूर्णके साथ
मिलाकर, उसमें यदि किसी भी तप्तकीटका योग करादिया जावे, तो यह
प्रयोग, एक महीनेतक प्राण हरण करता है । (इस सूत्रमें 'व्याघातकमूल' के
स्थानपर यदि 'व्याधिघातकमूल' ऐसा पाठ हो, तो युक्त मालूम होता है,
क्योंकि 'व्याधिघातक' शब्दही अमलतासका पर्याय है । प्राचीन व्यवसायकारों
ने 'व्याघातक' शब्दका भी अर्थ अमलतासही किया है ॥ ८ ॥ इस कीटयोग
'की मात्रा पुरुषको एक कल्प (घोड़ीसी) देनी चाहिये, उससे दुग्नी गधे और
घोड़ोंको, तथा चौगुनी हाथी और ऊँटोंको देनी चाहिये ॥ ९ ॥

शतकर्दमोच्चिदिङ्गकरवीरकडुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनक्रोद्रवप-
लालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यात्रच्च-
रति तावन्मारयति ॥ १० ॥

शतावरी, कर्दम =यक्षकर्दम, कपूर अगर कस्तूरी और ककोल
इन चारों चीजोंके विले हुए लेपको यक्षकर्दम वा कर्दम कहते हैं), उच्चिदिङ्ग,
कनेर, कटवी भूरी, और मछली इन सब चीजोंका धुआं, घत्रा कोदों और
पुरालके (धान आदिकी छालको काटकर नीचेके रहे हुए हिंसके) साथ,
अथवा धनिया टाक और पुरालके साथ, यदि सामने तेज हवाके चलते
हुए होनेपर किया जावे, तो यह धुआं अर्हातक जाता है, वहांतकके प्राणियोंको
मार देता है ॥ १० ॥

पूतिकीटमत्स्यकडुतुम्बाशितकर्दमेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटधुव्रा-
रालाहेमविदारीचूर्णं वा वस्तशृङ्गसुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः
॥ ११ ॥

पूतिकीट (एक प्रकारका कीटा, इसके ऊपर कुछ २ कटिले होते हैं)
मछली, कटवीतुम्बी, शतावरी, कर्दम, टाककी लकड़ी, और इन्द्रगोप
(मसमलकी तरह छाल रंगका कीटा, जिसको 'रामजीकी भैंस' कहते हैं),
इन सब चीजोंका चूर्ण, अथवा पूतिकीट, कटेहरी या कटेरी, राल, घत्रा
और विदारीकन्द, इन सब चीजोंका चूर्ण, यदि बकरेके सांग और शुरके

पूर्णके साथ मिलादिया जावे; तो इन सब वस्तुओंका किया हुआ धुआं प्राणियोंको अन्धा बनावेता है ॥ ११ ॥

पूतिकरञ्जपतहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपललान्या-
स्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः ॥ १२ ॥ सर्पनिर्मोकं
गोश्वपुरीपमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो धूमः ॥ १३ ॥

कांटेदार करंजुआ, पत्रक, हड़ताल, मनुसिल, चूटली (रत्ती), छाल
रंगकी (नरमा) कपास, और पलल (फल रहित धान आदिका काण्ड=पुराल),
इन सब चीजोंको, भासा भाक), काच तथा गोबरके रसमें पीसा जावे; इन
सब चीजोंका धुआं भी प्राणियोंको अन्धा करावेता है ॥ १२ ॥ सांपकी
कैचुली, गोबर और घोड़ेकी छीद, तथा अन्धाहिक (विपरहित सांप या विशेष
मउली) का सिर, इन सब चीजोंका पृथक् २ धुआं भी प्राणियोंको अन्धा
पनावेता है ॥ १३ ॥

पारावतपुवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं का-
सीसहिङ्गुपवतुपकणतण्डुलाः कार्पासकृटजकोशातकीनां च बीजा-
नि गोमूत्रिकाभाण्डीमूलं निम्बशिग्रुफणिजकाक्षीवपीलुकमङ्गः
सर्पशफरीचर्म हस्तिनखभृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवंपला-
लेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकश्चो यावच्चरति
तावन्मारयति ॥ १४ ॥

कपूतर, बतल, मिद्ध हाथी, मनुष्य और सूअर, इन सब प्राणियोंका
मूत्र और पुरीष; या कसीस, हींग, जौका छिलका, दूटा दाना (कण) तथा
पूरा दाना (अथवा जौका छिलका, दाना, और चावल), और कपास कृटज
(=कृटकी=कुरैभा) तथा कड़वी तोरई या पुठकंठे (चिरचिडा) के बीज; या
गोमूत्रिका (एक प्रकारकी घास जो कि गौके पेशाबकी तरह टेढ़ी २ जमीन
पर फैलती है) और संजीठकी जड़, या नीम, सेंजना, फणिज (जंघीरका
एक भेद=मफेद मरवा), काक्षीव (सेंजनेका ही एक भेद) और पीलु, इन
पाँचों पृक्षोंका छिलका; या सांप और मउलीकी छाल, या हाथीके नाखून
और दांतोंका पूरा; इन वस्तुओंके अपने प्रत्येक वर्गका धुआं, घट्टा कोदों
और पलाल (फल रहित धान आदिके पेशोंका नचिका हिस्सा=पुराल) के
साथ, अथवा धनिया पजारा और पलालके साथ बनायाहुआ, जितनी दूरतक
फैलता जाता है, उतने ही में सब प्राणियोंको मारता जाता है ॥ १४ ॥

कालीकुष्ठनडदातावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकेणपञ्चकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनाद्रिशुष्कपलालेन वा प्रणीतः संग्रामावतरणावस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षिप्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रैः ॥ १५ ॥

घकोतरा, कूट, मंसल, और दातावरी, इन चीजोंकी जड़का; या साप, मोरकी पूंछ, जंगली खैतर, कूटके पाँचों अंग ('कूट' एक वृक्षका नाम है, उसके पत्ते फल फूल छाल और जड़, वे पाँच अंग कहेजाते हैं), इन सब चीजोंके चूर्णका; एवंकल्प अर्थात् पहिले सूत्रमें बतलायेहुए योग (घनूरा, कोबें, पलाल; या धनिया, पलाश, पलाल; देखो सूत्र १४) के साथ मिलाकर जो धुमां बनाया जाता है; अथवा कुछ गीले और कुछ सूखे केवल पलाल (गुशल) के साथ जो धुमां बनाया जाता है; संग्राममें उतराने और रात्रिके थलाकार आक्रमणकी मोड़के समयमें, तेजनोंक (देखो अधि० १४, अध्या० १, सूत्र १) के सहारेसे आँखोंका प्रतीकार कियेहुए, पुरुषोंके द्वारा बनाया गयाहुआ यह धुमां, सब ही प्राणियोंके नेत्रोंको नष्ट करवाला है। तात्पर्य यह है, कि इन उपर्युक्त धुमोंका प्रयोग करते समय, प्रयोग करनेवाले पुरुष, इसके प्रतीकारका प्रयोग अपनी आँखोंपर अवश्य करले, नहीं तो उनकी भी आँखें नष्ट होजावेंगी (इस सूत्रमें 'आद्रिशुष्कपलालेन' इस पदके स्थानपर किसी पुस्तकमें 'आद्रै शुष्कपलाले' ऐसा सहायन्त पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं, आता) ॥ १५ ॥

शारिकाकपोतबकमलाकालण्डमर्काक्षिपीलुकस्नुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्जनमुदकदूषणं च ॥ १६ ॥

मैना, कयूतर, माला और बगली, इन पक्षियोंकी चिछाकी; आख (धाक), लक्षी (सँजने या यहँहेकी किलमका एक पेड़), पीछु, तथा सँड, इन चारों वृक्षोंके दूधमें पीसकर, अंजन तैयार किया जावे, यह अंजन प्राणियोंके अन्धा करनेवाला, तथा जलको सूचित करनेवाला होता है ॥ १६ ॥

यवकशालिमूलमदनफलजातीपवनरमूत्रयोगः पृक्षविदासीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवकाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशकाथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १७ ॥

यवक (जौ, अथवा जलपीपल) और शाली (धान) की जड़, मैनाक, बमेली, पत्रक, और नरमूत्र (आत्मी का पेशाब) इन सब चीजों की

मिलाकर, तथा इनमें पिलखन या लास-देने वाले पीपल और विदारी-की जड़ का योग करके, अथवा मलिन जल में बने हुए गूलर धतूरा और कोदों के स्वाध का योग करके, अथवा धनियां और पलारा के स्वाध का योग करके, 'मदनयोग' तैयार होजाता है । अर्थात् यह योग चित्त का उन्मादक, चित्त को भ्रममें डालने वाला होता है ॥ १७ ॥

शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारमयूरपदीयोगो गुञ्जालाङ्गलीविषमू-
लिकेङ्गदीयोगः कर्वीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनको-
द्रवकाथयुक्तो हास्तिकर्णपलाशकाथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १८ ॥
समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूपणाः ॥ १९ ॥

शृङ्गी नामकी मछलीका पिप्ता (=शृङ्गिगौतम), लोध, सिंभल और मोरशिला (अजमोदी) इन चीजों का योग, तथा चोंटली (रत्ती), जलपीपल या नारियल (गणपति शास्त्रीने ' लाङ्गली ' का अर्थ ' पृथक्पर्णी ' अर्थात् पिठवन किया है), कालकूट आदि त्रिप और इगुदी (द्विगनबेठ, या गोंदी । गणपति शास्त्री ने इसका अर्थ ' कंटभी ' अर्थात् मालकगनी किया है), इन सब चीजों का योग, कर्वीर (कनर), अर्शा (सेंजना या बड़ेटे की किस्म का एक पेड़), पीलु, आक, मृगमारणी (मृगको मारने वाली कोई ओपधि विशेष), इन सब चीजोंका योग, धतूरा और कोदोंके स्वाध के साथ, अथवा धनिया और पलारा के स्वाधके साथ ' मदनयोग ' अर्थात् उन्माद कर देने वाला योग होजाता है ॥ १८ ॥ अथवा ये सब ही मदनयोग, पशुओंके चारे, ईन्धन और जल को भी दूषित करने वाले होते हैं ॥ १९ ॥

कृतकण्डलकृकलासगृहगोलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं
च करोति ॥ २० ॥

•• पकाई हुई नस नाटियोंवाले (जिनके स्नायु अर्थात् नस नाटियोंको पका लिया गया है वेते) गिरगट, छपकली और अन्धाहिक का धुआं नेत्रों को नष्ट कर देता है, तथा उन्माद का करने वाला भी होता है ॥ २० ॥

कृकलासगृहगोलिकायोगः कृष्टकरः ॥ २१ ॥ स एव चित्रमे-
कान्द्रमधुयुक्त प्रमेहमापादयति ॥ २२ ॥ मनुष्यलोहितयुक्तः
शोषम् ॥ २३ ॥

गिरगट और छपकली का योग, अर्थात् इन दोनों का धुआं कृकलासेदा कानेवाला होता है ॥ २१ ॥ यही योग (अर्थात् गिरगट और छपकली का योग),

चित्तकवरे मँदककी आंत और मधुसे युक्त हुआ २, प्रमेद रोगको उत्पन्न करता है ॥ २२ ॥ यदि इस योग में मनुष्य का रक्त मिला दिया जावे, तो यह योग, क्षयरोग को उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥

द्वीविषं मदनकोद्रवचूर्णमृपजिह्विकायोगः 'मातृवाहकाञ्ज-
लिकारप्रचलाकमेकाक्षिपीलुकयोगो विपूचिकाकरः ॥ २४ ॥
पञ्चकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षमधुपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः ॥ २५ ॥

शोषधि आदिके योगसे हृनिशक्ति हुआ २ विष (अर्थात् शुद्ध हुआ २ विष). धत्रा, और कौशंका चूर्ण, शैमकके साथ युक्त करके, फिर मातृवाहक (एक विशेष पक्षी), अञ्जलिकार (एक शीघ्रि विषेय), प्रचालक (भोरपंच=भोर की पूल का चंद्रावा) मँदक, अक्षी (सँतने या बदेदे की क्लिप्त का एक पेड़), और पीलुके साथ मिलाकर योग तैयार किया जावे; यह योग, विपूचिका अर्थात् हैजा करने वाला होता है ॥ २४ ॥ कूटके पाँचों अंग (कूट एक वृक्ष का नाम है, उसके पत्ता फल फूल छाल आर जड़, ये पाँचों अंग), कौण्डिन्यक (एक प्रकारका कौटा, जिसका मल मूत्र विपके समान होता है) राजवृक्ष (अमलतास), शहद और पुष्पमधु (=मधुक=महुआ) इन सब चीजों का योग, ज्वर उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २५ ॥

भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो भूकवधिरकरो
मासार्धमासिकः ॥ २६ ॥ कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं
पूर्वेण ॥ २७ ॥

गिद्ध, नेवला, और मंजीठ, इन चीजोंको मिलाकर, इन्हें गंधीके दूधमें पीसा जावे, यह योग एक महीने या पन्द्रह दिनके अन्दर मनुष्यको गूंगा और बहिरा बना देता है ॥ २६ ॥ इन सब ही योगोंकी मात्रा पुरुषोंके लिये एक कला हीनी चाहिये, शेष पूर्ववत् जान लेंगे। अर्थात् थोड़े गंधे आदिके लिये मनुष्योंसे दुगनी, और ऊट हाथी, आदिके लिये चौतुनी मात्रा देनी चाहिये ॥ २७ ॥

भङ्गकाथोपनयनमौपधानां चूर्णं प्राणभृताम् ॥ २८ ॥ सर्वेषां
वा काथोपनयनमेवं दीर्यवत्तरं भवति ॥ २९ ॥ इति योगसंपत्
॥ ३० ॥

उपर्युक्त सबही योगोंमें, औषधोंका उपयोग कूटकर स्वल्प बनाकर लेना चाहिये। और प्राणियोंका उपयोग चूर्ण बनाकर लिया जावे ॥ २८ ॥

अथवा सबही चीजोंका द्वाय (काड़ा) बनाकर ही उपयोग लिया जावे । क्योंकि इसप्रकार उपयोग करनेसे औषधमें बहुत शक्ति आजाती है ॥ २९ ॥ यहाँतक योगसम्पत्ति (विशेष २ योगों) का निरूपण कर दिया गया ॥३०॥

शाल्मलीविदारीघान्धसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरी-
शोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति स विद्धोऽन्यान्दशपु-
रुषान्दशति ॥ ३१ ॥ ते दष्टाश्चान्यान्दशन्ति पुरुषान् ॥ ३२ ॥

सिंभल, विदारी और घनिधेमें सिद्ध किया हुआ (अर्थात् भावना दिया हुआ), तथा पिच्छीमूल और वरसनाभ (इसी-नामसे प्रसिद्ध एक प्रकारका विष) से युक्त, और छतूंदरके रक्तके लेपसे बना हुआ बाण जिसको जाकर लगता है (अर्थात् विंघता है), वह बाणसे चोट खाया हुआ आदमी अन्य दश पुरुषोंको काट लेता है ॥ ३१ ॥ काटे हुए वे दश पुरुष, अन्य दश २ पुरुषोंको काट खाते हैं, (इसी प्रकार विष फैल जानेसे शत्रुकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो जाती है ॥ ३२ ॥

भल्लातकयातुधानापामार्गवाणानां पुष्पैरेलकाक्षिगुग्गुलुहा-
लाहलानां च कपायं वस्तनशोणितयुक्तं दंशयोगः ॥ ३३ ॥

भिल्लावा, यातुधान (इस नामकी या राक्षस नामकी एक विशेष औषधि), अपामार्ग (चिरधिदा=पुठकंठा) और बाण (अर्जुनवृक्ष), इन सब चीजोंके फूँडोंसे सिद्ध किया हुआ, और इलायची, अक्षी, गुग्गुल तथा इलाइल विष इन सब चीजोंका बनाया हुआ काड़ा, बकरे और मनुष्यके रक्तसे युक्त करदिया जावे । यह दंशयोग अर्थात् काटनेके लिये काममें लाये जानेवाला योग है । यह काड़ा, जिसके शरीरमें चलाजाय, वह पुरुष भी अन्य अनेक पुरुषोंको काट लेता है ॥ ३३ ॥

ततोऽर्धधराणिको योगः सूक्तुपिण्याकास्यामुदके प्रणीतो
धनुःशतायाममुदकाशयं दूषयति ॥ ३४ ॥ मत्स्यपरम्परा क्षेत्रेन
दष्टाभिमृष्टा वा विपीभवन्ति ॥ ३५ ॥ यश्चेत्तदुदकं पिबति स्पृ-
शति वा ॥ ३६ ॥

उस कपाय (काड़े) से आधा धराणिक प्रमाण योग, सत् और तिड-
बुटके साथ जलमें बनाया हुआ; सौधनुः (धनुष एक परिमाण होता है, देखो:-
अधि. २, अध्या. २० । धराणिक एक तोलका नाम है, देखो:-अधि. २,
अध्या. १९) पर्यन्त लम्बे चीड़े जलाशयको दूषित करेता है ॥ ३४ ॥ इसके

दूषित होनेसे वहांकी मछलियां, लगातार एक दूसरेको काटने और स्वर्ण करनेसे विषयुक्त होजाती हैं । (सूत्रके 'विपीभवन्ति' पदके स्थानपर कहीं २ 'विपीभवति' ऐसा एकवचनान्त पाठ भी है) ॥ ३५ ॥ और जो इस जलको पीता है, अथवा स्पर्श करता है, वह भी विषयुक्त होजाता है ॥ ३६ ॥

रक्तश्वेतसर्पपैर्गोधा त्रिपक्षमुष्टिकायां भूमौ निखातायां निहि-
ता वध्येनोद्धृता यावत्पश्यति तवित्मारयति ॥ ३७ ॥ कृष्ण-
सर्पो वा ॥ ३८ ॥

लाल और सफेद सर्पोंके साथ एक गोधा (गोइ) को, तीन पक्ष अर्थात् पैंतालिस दिनतक, ऊंटोंसे जुक्त (अर्थात् जहांपर ऊंट आदि बंधते हों, ऐसी) भूमिमें एक गद्दा खोदकर, घड़े आदिमें बन्द करके रखें; (अथवा 'उष्टिका' शब्दका ही अर्थ सूझाएइ करना चाहिये) । नियत अथधिके बाद किसी वष्य पुरुषके द्वारा उसे निकलवावे, वह निकालनेवाला जबतक उसे देखता है, उतने ही में वह गोधा, उस पुरुषको मारदेती है । तारपयं यह है, कि उसके देखते ही पुरुष मरजाता है ॥ ३७ ॥ गोइ को तराइ काळा सांप भी, इसी तरह पाड़कर उखाड़ा जावे, तो वह भी पुरुषको मारदेता है । अर्थात् उसके भी देखनेसे पुरुष तरकाल ही मरजाता है ॥ ३८ ॥

विद्युत्प्रदग्धोङ्गारोऽज्वालो वा विद्युत्प्रदग्धैः काष्ठैर्गृहीतथा-
नुयासितः कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेण कर्मणाभिहुतोऽग्निः
प्रणीतश्च निष्प्रतीकारो दहति ॥ ३९ ॥

अथवा बिजलीते जले हुए ज्वाला (लपट) रहित अंगारकी (अर्थात् दहकते हुए अंगारमें प्रविष्ट हुई २) अग्निको, बिजलीसेही जली हुई लकड़ियोंके द्वारा लेकर उसे लूष घटाया जावे ; अर्थात् उस भागको बिजलीकी जली लकड़ियोंमें ही लगाकर सुलगाया जावे ; और कृत्तिका अथवा भरणी नक्षत्रमें, रौद्रकर्मके द्वारा (रद्र देवताको लक्ष्य करके विशेष कर्मके द्वारा) उस अग्निमें हवन किया जावे । इसप्रकार बनाई हुई इस भागका प्रतीकार नहीं होसकता । अर्थात् अग्निके दुर्ग आदिमें लगाये जानेपर, बिना किसी प्रतीकारके, यह उसको जला देती है ॥ ३९ ॥

कर्मारदाग्निमाहृत्य रौद्रेण जुहुयात्पृथक् ।

सुरया शौण्डिफादग्निं भार्गवोर्गिं घृतेन च ॥ ४० ॥

अब चार श्लोकोंसे एक और योगका निरूपण करते हैं;—जुम्हारके यहाँसे भाग लेकर, पृथक् (अर्थात् आगे घटाई जानेवाली भागोंसे पृथक्

रत्नकर) ही, शहरसे उसमें हवन करे; इसीप्रकार शराय बेचनेवालेके घरसे आग लेकर, उसमें शराबसे हवन करे; तथा जुहारके यहांसे आग लेकर उसमें भार्गी (भारंगी नामकी औषधि) तथा फूतसे हवन करे ॥ ४० ॥

माल्येन चैकपत्न्यग्निं पुंश्चल्यग्निं च सर्पपैः ।

दध्ना च सूतिकास्वग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः ॥ ४१ ॥

पतिव्रता स्त्रीके पाससे लाई हुई अग्निको, माल्य (फूलोंकी माला) से हवन करे । स्वभिचारिणी स्त्रीके पाससे लाई हुई आगमें सरसोंसे हवन करे । सूतिकागृह (जघाघर) में विद्यमान अग्निको लाकर, उसमें दहीसे हवन करे । अग्निहोत्रीके घरसे लाई हुई आगमें चावलसे हवन करे ॥ ४१ ॥

घण्डालाग्निं च मांसिन चिताग्निं मानुषेण च ।

समस्तान्वस्तवसया मानुषेण ध्रुवेश च ॥ ४२ ॥

घण्डालके यहांसे लाई हुई आगमें मांससे हवन करे; चिताकी अग्निमें मनुष्यसे हवन करे । फिर इन सब अग्नियोंको इकट्ठा करके, इनमें बकरेकी मजा (चर्बी), मनुष्य और ध्रुव (सूली लकड़ी, या सालवनकी लकड़ी) गणपति शास्त्रीने 'ध्रुव' का अर्थ 'घट' अर्थात् घरगद या बड़ किया है) से हवन करे ॥ ४२ ॥

जुहुयादाग्निमन्त्रेण राजवृक्षस्य दारुभिः ।

एष निष्प्रतिकारो ऽग्निर्द्विपतां नेत्रमोहनः ॥ ४३ ॥

तयम अमकतासकी लकड़ियोंसे, अग्निकी स्तुति करनेवाले मन्त्रोंके द्वारा इस अग्निमें हवन करे । इस अग्निका प्रतीकार नहीं होसकता । अर्थात् शत्रुके दुर्ग आदिमें लगाई हुई इस आगका प्रतीकार करनेके लिये, शत्रु संबंधी असमर्थ होता है । यह अग्नि न केवल दुर्ग आदिकोही जकाता है; किन्तु शत्रुओंको उसके देखने मात्रसे, मूढ़ भी बना देता है । अर्थात् उसके देखनेपर शत्रुकी विचेकराष्टि नष्ट होजाती है ॥ ४३ ॥

अदिसे नमस्ते ॥ ४४ ॥ अनुमते नमस्ते ॥ ४५ ॥ सरस्वति

नमस्ते ॥ ४६ ॥ सवितर्नमस्ते ॥ ४७ ॥ अग्नये स्वाहा ॥ ४८ ॥

सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥ भूः स्वाहा ॥ ५० ॥ भुवः स्वाहा ॥ ५१ ॥

होपनिषदिके षतुर्दशे ऽधिकरणे परघातप्रयोगः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितः पृथक्त्वारिंशदुत्तराशतः ॥ १४६ ॥

हवन करनेके लिये इन मन्त्रोंका उपयोग करना चाहिये ॥ ४४-५१ ॥

औपनिषदिक षतुर्दश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१७८ प्रकरण

प्रलम्भनमें अद्भुतोत्पादन

{ औषध तथा मन्त्रोंके प्रयोगके द्वारा, भूलप्पासके नष्ट करने या आकृति आदिके बवल लेनेसे शत्रुको डगाना 'प्रलम्भन' कहाता है। इसके दो भेद हैं, अद्भुतोत्पादन और भेषज्यमन्त्रप्रयोग। इसीकी लेकर यह प्रकरण, दो अध्यायोंमें विभक्त कर दिया है। अब इस पहिले अध्यायमें अद्भुतोत्पादनका निरूपण किया जायगा।

शिरीषोदुम्बरशमीचूर्ण सर्पिषा संहृत्यार्धमासिकः क्षुद्योगः
॥ १ ॥ कशेरुकोत्पलकन्देक्षुमूलविसर्वाक्षीरघृतमण्डासिद्धो मा-
सिकः ॥ २ ॥

शिरीष (सिरस), उदुम्बर (गुलर), और शमी (छोंकरा), इनके चूर्णको घीके साथ मिलाकर खायेसे, पन्द्रह दिनतक भूख नहीं लगती ॥ १ ॥ कशेरक (कसेरु, यह भीठा, छोटासा कन्द होता है, जगली तालायोंके किनारे अधिकतर पैदा होता है), कमलकी जड़, गन्धकी जड़, कमलकी डंठी (विस=भिस=में) दूध घास, दूध, घी तथा भाँड़, इन सब चीजोंको मिलाकर तैयार किया हुआ योग, खालेनेपर एक महीनेतक भूख नहीं लगने देता ॥ २ ॥

मापयवकुलुत्यदर्भमूलचूर्णं वा क्षीरघृताम्याम् ॥ ३ ॥ बल्ली-
क्षीरघृतं वा समसिद्धं, सालपृश्निपर्णांमूलकल्कं पयसा पीत्वा ॥४॥
पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताम्यामशित्वा मासमुपवसति ॥ ५ ॥

उद्द, जौ, कुलघी और दाभकी जड़, इन चीजोंको दूध घीके साथ मिलाकर पीलेनेपर एक महीनेतक पुरुष, उपवास करसकता है ॥ ३ ॥ अथवा अजमोद, दूध और घीकी बराबर २ मिलाकर पीलेनेपर भी एक महीनेतक भूख नहीं लगती। इसीप्रकार तालपर्णी और पृश्निपर्णी (इन्होंने नामोंसे प्रसिद्ध भेषधि पिप्लव, हिन्दीमें इनको पयाक्रम सालवन और पिठवन कहाजाता है। गणपति शास्त्रोंने 'सा२' शब्दको पृथक् और पृश्निपर्णीको पृथक् मानकर, सालका अर्थ अहुँन, और पृश्निपर्णीका अर्थ छाङ्गली किया है। छाङ्गलीके दो अर्थ हैं—जलपीपल और नारियल) की जड़के कण्डको दूधसे पीकर भी एक महीनेतक भूख नहीं लगती ॥ ४ ॥ अथवा सालपर्णी और पृश्निपर्णीके साथ

दूधको पकाकर, शहद और घीके साथ मिलाकर खालेनेसे भी, एक महीनेतक उपवास करसकता है ॥ ५ ॥

श्वेतवस्तमूत्रे सप्तरात्रोपितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कडुका-
लायौ मासार्धमासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां विरूपकरणम् ॥ ६ ॥
तक्रयवभक्षस्य सप्तरात्रादूर्ध्वं श्वेतगर्दभस्य लण्डयवैः सिद्धं गौर-
सर्पपतैलं विरूपकरणम् ॥ ७ ॥

सफेद बकरेके पेशाबमें सात राततक रक्खी हुई सरसोंसे निकाला हुआ तेल, कडवी तुंधीमें एक महीना या पन्द्रह दिनतक रक्खी जावे, तदनन्तर उस तेलको जिन चीपायों या दुपायोंपर लगाया जायगा, उनकी आकृति अर्थात् रंग रूपमें भेद पड़जायगा । यह विरूपकरण योग होता है ॥ ६ ॥ इसीप्रकार मठा (छाछ) और जो खानेवाले भादमीके, सात दिनके बाद (अर्थात् सात दिनतक मठा और जो खानेपर, तदनन्तर) सफेद गधेके लेंड (छीदके गोलेसे) और जीके साथ पकाये हुए सफेद सरसोंके तेलको लगाने या खानेसे, आकारमें भेद पड़जाता है ॥ ७ ॥

एतयोरन्यतरस्य मूत्रलण्डरससिद्धं सिद्धार्थतैलमर्कतूलपतङ्ग-
चूर्णप्रतिवापं श्वेतीकरणम् ॥ ८ ॥ श्वेतकुक्कुटाजगरलण्डयोगः
श्वेतीकरणम् ॥ ९ ॥

सफेद बकरा और सफेद गधा, इन दोनोंमेंसे किसी एकके, पेशाब और लेंडके रसके साथ पकाया हुआ सरसोंका तेल ; आक, पारसपीपल, और घानके चूर्णके साथ मिलाया जाकर, श्वेतीकरण योग बनजाता है । अर्थात् इस प्रकारसे तैयार किया हुआ तेल, लगानेवाले या खानेवालेको सफेद बनादेता है ॥ ८ ॥ सफेद मुर्गा और अजगर सांप इन दोनोंकी विष्टाको मिलाकर तैयार किया हुआ योग भी, सफेद बनादेता है ॥ ९ ॥

श्वेतवस्तमूत्रे श्वेतसर्पपाः सप्तरात्रोपितास्तक्रमर्कक्षीरमर्कतूल
कडुकमत्स्यविलङ्गाश्च, एष पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १० ॥
समुद्रमण्डूकाशहसुधाकदलीक्षारतक्रयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ११ ॥

सफेद बकरेके पेशाबमें, सात रात्रि पर्यन्त सफेद सरसोंको रक्ख जावे, तदनन्तर पन्द्रह दिनतक, उस सरसोंको मठा, अर्कक्षीर (आकक दूध), आक, पारसपीपल, पटोल (कडवा परवल), मरस्य, तथा वायविडंग इन सब चीजोंके साथ मिलाकर रक्खजावे, इसके बाद तैयार किया हुआ या

योग भी सफेद करनेवाला होता है ॥ १० ॥ समुद्रकी मेंढकी, शंख, सुभा (=मूर्वा=मरोरफली), कदली (केला), धार (जवारार) और मटा (छाछ), इन सब चीजोंका योग भी सफेद करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

कदल्यवल्लुजधाररसशुक्ताः सुरायुक्तास्तक्रार्कतूलस्तुहि-
लवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १२ ॥
कटुकालाची वल्लीगते नगरमर्धमासस्थितं गौरसर्पपिष्टं रोम्णां
श्वेतीकरणम् ॥ १३ ॥

केली, दावची जवारार, पारद, और कोई कठिन खट्टी, चीस (फल मूल आदि), इन सब वस्तुओंको शराबमें मिगेंदियाजावे; तदनन्तर छाछ, भाक, पारसपीपल, सेंड, नमक और कांतीको उसमें मिलाकर पन्द्रह दिनतक रखना रहने दियाजावे । इसतरह बनाया हुआ यह योग भी सफेद करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ बेळमें लगीहुई कदवीतूबीमें, पन्द्रह दिनतक सोंटको रखदियाजावे, बादमें निकालकर सफेद सरसों (बंगा सरसों) के साथ उसे पीसलिया जावे, यहभी श्वेतीकरण योग होता है ॥ १३ ॥

अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगोलिका ।

एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शङ्खपाण्डराः ॥ १४ ॥

भाक, पारसपीपल, अर्जुनपृक्षपर उरपन्न होनेवाला एक प्रकारका कीड़ा, और सफेद छपकली, इन सब वस्तुओंको पीसकर यदि धातोंपर लगाया जावे, तो बाल, शंखके समान सफेद होजाते हैं ॥ १४ ॥

गोमयेन तिन्दुकारिष्टकल्केन वा मर्दिताङ्गस्य भल्लातकरसानु-
लिस्रस्य मासिकः कुष्ठयोगः ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पमुखे गृहगोलि-
कामुखे वा सप्तरात्रोपिवा गुञ्जाः कुष्ठयोगः ॥ १६ ॥ शुकपित्ता-
ण्डरसाम्यङ्गः कुष्ठयोगः ॥ १७ ॥ कुष्ठस्य प्रियालकल्कपायः
प्रतीकारः १८ ॥

गोबर अधवा तिन्दुक (टेंदुरना=छोटा तेंदुभा) और नीमके कल्कसे अंगोंका मर्दन करनेके बाद भिलावा और पारेको मिलाकर देहपर लगालेने वाले पुरपको एक महीने तक कोढ़ होजाता है ॥ १५ ॥ काले सर्पके मुंहमें अधवा छपकलीके मुंहमें, सात रात तक रखीहुई चोंटली (रती) भी कुष्ठ-योग होता है; अर्थात् इसको फिर देहपर लगानेसे कोढ़ होजाता है ॥ १६ ॥ ताँतेके पित्त तथा अण्डके रससे, शरीरपर मालिश करनेपर कुष्ठ होजाता है

॥ १७ ॥ चिह्नंजीके कलकसे बनाया हुआ काढ़ा, कुष्ठका प्रतीकार होता है ॥ १८ ॥

कुक्कुटकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति ॥ १९ ॥ बटकपायस्नातः सहचरकलकदिग्धः कृष्णो भवति ॥ २० ॥ शकुनकङ्गुतैलयुक्ता हरितालमनःशिलाः श्यामीकरणम् ॥ २१ ॥ खद्योतचूर्णं सूर्यपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति ॥ २२ ॥

'सुरी', तथा कश्ची तोरई या परवल और शतावरीकी जड़को खाता हुआ पुरुष, एक महोनेमें गौरवणं होजाता है ॥ १९ ॥ बरगाद (बड़) के काढ़से नहायाहुआ, तथा पियावांपके कलककी मालिश करके, पुरुष काला होजाता है । (इस सूत्रके 'सहचर' शब्दकी व्याख्या करतेहुए, गणपति शास्त्रीने 'अव्यथा' और 'कुरवक' को पर्यायवाची लिखदिया है । परन्तु अव्यथा दरदको कहते हैं, और 'कुरवक' कुंठे या पियावांपेका नाम है ॥ २० ॥ गिद्ध (पक्षी) और कांगनीके तेलसे युक्त इड़ताल और मनसिल भी 'श्यामीकरण' योग है । अर्थात् इड़ताल और मनसिलको गिद्ध तथा कांगनीके तेलमें मिखाकर लगानेसे, पुरुष काला होजाता है ॥ २१ ॥ खद्योत (शुगन्-पट-बीजना) का चूर्ण, सरसोंके तेलके साथ मिला देनेपर, रातमें जलने लगता है ॥ २२ ॥

खद्योतगण्डूपदचूर्णं समुद्रजस्तृतां भृङ्गकपालानां खदिरक-
र्णिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकङ्गुतैलयुक्तं तेजनचूर्णम् पारिभ-
द्रकत्वग्नापी मण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना ॥ २३ ॥

शुगन् और गेंडू (यह लम्बा २ कौड़ा वर्षा वस्तुमें होता है) का चूर्ण, समुद्रके इक्षीतरहेके छोटे २ जानघरोंका चूर्ण, भृङ्ग (मस्तकचूड़) नामक पक्षीके सिरकी हड्डियोंका चूर्ण, खैर और कनेरके फूलोंका चूर्ण गिद्ध (पक्षी) और कांगनीके तेलसे युक्त वासका चूर्ण, मंडककी चर्बीसे युक्त नीमकी डालकी स्याही, इन सब वस्तुओंमें से प्रत्येक, भाषिके द्वारा शरीरके चमकाने या जलानेके समय काम आती है । अर्थात् इन औषधोंको देहपर मलकर, देहमें विना ही किसी पीड़ाके अग्नि प्रज्वालन किया जासकता है ॥ २३ ॥

पारिभद्रकत्वग्ज्वकदलीतिलककप्रदिग्धं शरीरमग्निना
ज्वलति ॥ २४ ॥ पीलुत्वग्मपीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति ॥ २५ ॥
मण्डूकवसादिग्धो ऽग्निना ज्वलति ॥ २६ ॥ तेन प्रदिग्धमङ्गं

कुशाग्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डूकीफेनकसर्जरसचूर्णयुक्तं वा ज्वल-
ति ॥ २७ ॥

नीमकी छाल, घोहर, कदली और तिलके कदकसे लिपटाहुआ शरीर
अग्निके संसर्गसे जलने लगता है । अर्थात् बिना ही किसी कष्टके अग्निकी
तरह धमकने लगता है ॥ २४ ॥ पीलु वृक्षकी छालकी स्वाहिका बनाहुआ
गोला, बिना ही अग्नि संसर्गके, हाथमें जलने लगता है ॥ २५ ॥ मेंढककी
चर्बीसे बनाहुआ वही गोला, अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ २६ ॥ उस
गोलेसे बनाहुआ भंग, कुशके तैल और आम्रफल (आम) के तैलसे गीला
कियाहुआ, अथवा समुद्रकी मेंढकी, समुद्रशाग, और राख, इनके चूर्णसे
युक्त हुआ २, अग्निका संसर्ग होनेपर जलने लगता है ॥ २७ ॥

मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया समभागं तैलं
सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम् ॥ २८ ॥ मण्डूकवसादि-
ग्धोऽग्निना ज्वलति ॥ २९ ॥

मेंढककी चर्बीके साथ पकेहुए दूध, तथा कैंकड़े आदिकी चर्बीसे,
समभागमें बराबर २ मिलाहुआ तैल (अर्थात् उस दूध और चर्बीसे तुल्य
परिमाणमें मिलाहुआ तैल), शरीरपर मालिश कियाहुआ, अग्निके समान
प्रज्वलित करदेता है । अर्थात् इस तैलकी मालिश करलेनेसे देह अग्निके समान
दीप्त होजायी है ॥ २८ ॥ मेंढककी चर्बीसे बनाहुआ पुरुष, अग्निके संसर्गसे
जलने लगता है ॥ २९ ॥

वेषुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति
॥ ३० ॥ पारिभद्रकप्रतिबलावञ्जुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकव-
सादिग्धेन तैलेनाभ्यक्तपादोऽङ्गारेषु गच्छति ॥ ३१ ॥

बांसकी जड़ और सिरवालसे लिप्त भंग, तथा मेंढककी चर्बीसे युक्त
भंगवाला पुरुष अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ ३० ॥ नीम, खरौरी, वञ्जुल
(तिबल या तेंदुआ, बैत, अथवा अशोरु, वञ्जुल शब्दके ये तीनों अर्थ हैं),
घोहर और कदली, इन सब वृक्षोंकी जड़का कलक बनाकर, उसमें मेंढककी
चर्बीके साथ तैल मिलाकर, उस तैलकी पैरोंमें मालिश करके पुरुष, अंगारोंके
ऊपर चल सकता है ॥ ३१ ॥

उपोदका प्रतिबला वञ्जुलः पारिभद्रकः।

एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह ॥ ३२ ॥

साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ ।

अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसंचये ॥ ३३ ॥

पोर्दाना, खरंटी, घञ्जुज (तेंदुआ, बेंत अथवा बशोक), नीम, इन सब वृक्षोंकी जड़का कटक बनाकर, तथा इनके साथ मेंढककी चर्बी मिलाकर, इन सब चीजोंमें तैलको सिद्ध किया जावे, अर्थात् इन वस्तुओंमें तैलको मिलाकर पकाया जावे । निर्मल धूले हुए पैरोंको इस तैलसे मालिश करके पुरुषोंके ढेरपर उसी तरह घूम सकता है, जैसे कि फूलोंके ढेरपर ॥३२-३३॥

हंसकौञ्चमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकप्लवानां
पुच्छेषु बद्धा नलदीपिका रात्रायुल्कादर्शनम् ॥ ३४ ॥ वैशुतं
भस्माग्निशमनम् ॥ ३५ ॥

हंस, कौञ्च (कुंज), और मयूरों (मोरोंकी), अथवा अन्य जलमें घूमने वाले बतख आदि बड़े २ पक्षियोंकी पूंछोंमें बांधी हुई नलदीपिका (नरसलका नाम 'नल' है, उस पर लगाई हुई छोटीशी, दीपिका=बत्ती) रातमें उड़काके समान दीपती है । अर्थात् रातमें दूरसे यह मनुष्योंको भयभीत कर देती है; ये समझते हैं, कि कोई भयंकर राक्षस आदिही इस कृत्यको कर रहे हैं (एक लकड़ीके सिरेमें आग लगाकर, उस लकड़ीको इधर उधर घुमाने या हिलानेसे आगकी जो शकल होजाती है; उसीको अलास या उड़का कहते हैं) ॥ ३४ ॥ बिनलीसे जली हुई लकड़ीकी राख, आँसुको शान्त करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

स्त्रीपुष्पयायिता माया व्रजकुलीमूलमण्डूकवसामिश्रं चुल्लयां
दीप्तायामपाचनम् ॥ ३६ ॥ चुल्लीशोधनं प्रतीकारः ॥ ३७ ॥

खोरजसे मिले हुए उड़द; आर मेंढककी चर्बीसे मिली हुई, गोष्ट (गोभीके रहनेकी जगह) में उरपत होने वाली बड़ी कटेहलीकी जड़, इस हालतमें ये दोनों चीजें, चूल्हेके अच्छी तरह जलने परभी नहीं पकतीं । अर्थात् इन चीजोंके नीचे चाहे जितनी आग लगाई जाय, इनमें पाक नहीं होता ॥ ३६ ॥ चूल्हेसे उतारकर इनको साफ करनेनाही, इस पाकप्रतिबन्धका प्रतीकार दे ॥ ३७ ॥

पीलुमयो मणिरग्निगर्भः सुवर्चलामूलग्रन्थिः सूत्रग्रन्थिर्वा
पिचुपरिधेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ ३८ ॥ कुशात्रफलतैल-
सिक्तोऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति ॥ ३९ ॥

पॉलुकी लकड़ीमें बनाया हुआ मटका भस्मिगर्भ होता है; (अर्थात् इसमें अग्नि का अश आधिक होनेसे, बाहरकी थोड़ी आगका संगर्भ भी, इसपर तत्कालही प्रभाव कर देता है), अलसोधी जड़की गांठ, अथवा अलसोधीके सूनों की गांठ, इन्से लिपटा हुई, मुँहस भाग और धुआं छोड़नेका साधन होती है ॥ ३८ ॥ कुमा (एक प्रकारकी घास, जिसके आमन आदि बनाये जाते हैं) आश्रफल (आम), और तेलके सहारेसे जलाई हुई भाग, आंघी और चर्मों में जलती रहता है ॥ ३९ ॥

समुद्रफेनकत्तिलयुक्तो ऽग्निः प्रवृत्तः प्रवृत्तः ॥ ४० ॥

प्रवृत्तमानामसिपु कल्मापवेणुना निर्मथितो ऽग्निर्नोदकेन शाम्यत्युदकेन च ज्वलति ॥ ४१ ॥

समुद्रझाग, तेलसे युक्त हुआ २, पानीमें तैरना हुआ भी जलता रहता है ॥४०॥ बन्दरको हांडुवोंमें, विचित्र वर्णके बांससे निर्मथन करके उत्पन्न की हुई अग्नि, जलसे शान्त नहीं होती, प्रस्युत जलसे और भी जलने लगती है ॥४१॥

शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपशुकासिपु कल्मापवेणुना निर्मथितोऽग्निर्वत्र त्रिरपसव्यं गच्छति न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ४२ ॥

इधियार (तलवार भाड़े आदि) से मारेहुए, या जिसके वेहमें शूलो आदिका प्रवेश किया गया हो, ऐसे पुरुषके, बाईं ओरकी पसलीकी हाडुवोंमें विचित्र वर्णके बांससे निर्मथन करके निकाली हुई अग्नि; अथवा स्त्री या पुरुषकी हाडुवोंमें मनुष्यकी पसलीसे निर्मथन करके पैदा कीहुई अग्नि; जहाँपर तिनवार बाईं ओरकी घुमादी जाती है, वहाँपर दूसरी आदिका प्रभाव नहीं होसकता; अर्थात् और कोई अग उस जगह नहीं लगसकती । (इसका उपयोग 'भारमरक्षितक' प्रकरणमें बताया गया है । देखो-अधि० १, अध्या० २१) ॥ ४२ ॥

चुचुन्दरी खञ्जरीटः खारकीटश्च पिप्यते ।

अश्वमूत्रेण संसृष्टा निगलानां तु भञ्जनम् ॥ ४३ ॥

चुचुन्दर, खञ्जन (कचूरकी बराबर, नाममा कपासकेसे रंगका एक पक्षी, प्रायः जलके किनारे रम्य जंगलोंमें रहता है), और खारकीट (ऊसर भूमिमें उत्पन्न होने वाला एक प्रकारका कीड़ा), इनको घोड़ेके पेशाबके साथ अलहदा २ पीसलिया जावे, फिर इनको मिला लिया जावे, इनका यह मिश्रण घोड़े या मनुष्य आदिको बांधने वाली संझों को ताड़ देता है ॥ ४३ ॥

अयस्कान्तो वा पापाणः ॥ ४४ ॥

अथवा अयस्कान्त नामक पापाण (मणि) भी सकलाको तोड़ने वाला होता है ॥ ४४ ॥

कुलीराण्डदुर्दुरखारकीटवसाप्रदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कङ्कमासपार्श्वोत्पलोदकपिष्टशतुष्पदाद्विपदानां पादलेपः, उलूकगृध्रवसाभ्यामुष्द्रूर्मोपानहावभ्यज्य वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पञ्चाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति ॥ ४५ ॥

केंकड़े के अण्ड और मेढक तथा खाकीटकी चर्बी से बढाए हुए, अच्छीतरह घनताको प्राप्त हुए २ सूकरगर्भको, कक (इसी नामसे प्रसिद्ध एक पक्षी), और गिद्धका पसलियों तथा कम्बुके जलम पोसकर, चौपाया या दुपायोंके पैरोंमें उसका लेप कर लिया जाव, और उल्लू तथा गिद्धकी चर्बसे, ऊटके घमटकी घनाहुई जूतियाका चुपडकर, तथा बरूके पत्तम टककर, उन जूतियाका पदनकर, पैरोंमें उपयुक्त लेप करया हुआ पुरुष, पचास योजन तक (एक योजन=चारकोस) बिना थकावट क चला जाता है ॥ ४५ ॥

श्येनकङ्ककाकगृध्रहंसक्रौञ्चवीचिरल्लानां मज्जानो रेतंसि वा योजनशताय ॥ ४६ ॥ सिंहव्याघ्रडीपिकाकोल्कानां मज्जानो रेतंसि वा सार्वघर्णिकानि गर्भपतनान्युष्टिकायामभिषूय श्मशाने प्रेतशिशून्वा तत्समुत्थितं भेदो योजनशताय ॥ ४७ ॥

याज, कक, कौआ, गिद्ध, हंस, कुज, वीचिरल (एक प्राणी, जिसकी पीठ मर लडरों की तरह कम्बल की सी रेखाएँ होती हैं, इन प्राणियोंकी चर्बी और रेतस (वीर्य) को मिलाकर, पूर्ववत् पैरों में लेप किया जावे, तथा जूतियों पर चुपडा जावे, इससे, पुरुष सी योजन तक बिना थकावट के जा सकता है ॥ ४६ ॥ सिंह, घघेरा, गेंडा, कौआ और उल्लू, इनकी चर्बी और रेतस, अथवा सब ही पशुओंके गिरे हुए गर्भोंको मिट्टीके किसी पात्रमें अभिषेक करके, अथवा मरे हुए छोटे बच्चोंको श्मशान भूमिमें ही अभिषेक करके, उनसे उत्पन्न हुआ २ सर्पों उनके शरीरसे निकाला हुआ मेदस (शरीरकी मज्जा नामक धातु), इन दोनों ही वस्तुओंको पैर आदिमें लेप करके चलने व ला पुटप, बिना थकावट के सी योजन तक चला जा सकता है । (४५-१७ इन तीन सूत्रोंका अर्थ बहुत स्पष्ट है । मूल पाठ में की भिन्न २

भयभीत बनावे, जिससे उसके प्रदेशमें अराजकता फैल जावे। इसप्रकार का व्यापार, अनिष्टकारक तथा कलङ्कका हेतु होनेपर भी, परस्पर राजाओं के द्वेषभाव के बढ़नेपर करना ही पड़ता है; इसीलिये इसका यहांपर निरूपण कर दिया गया है ॥ ४७ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय ।

२५८ प्रकरण ।

प्रलम्भनमें भैषज्यमन्त्रयोग ।

{ वायु को घोला देने के लिये, इस प्रकरण में भैषज्य और मन्त्रों के योग का निरूपण किया जायगा ॥

मार्जारोष्णवृकवराहश्चाविद्वागुलीनष्टृकाकोल्कानामन्येषां वा निशाचराणां सन्वानामेकस्य द्वयोर्बहूनां वा दक्षिणानि वामानि वाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ १ ॥ ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति ॥ २ ॥

पहिले भैषज्ययोग का कथन किया जाता है:—बिलाच, कंट, भेदिधा, सूअर, सेही, बगली, नत्ता (एक प्रकार का पक्षी) कोजा और बल्ह, अथवा रात्रिमें विचारण करने वाले अन्य प्राणियों में से, एक दो या बहुतों की दाईं पाईं आंखों का लेकर, उनका पृथक् २ दो जगह चूर्ण बना लेवे ॥ १ ॥ तदनन्तर दाईं आंखों के चूर्णसे दाहिनी आंखको आजकर, और दाईं आंखों के चूर्णसे बाईं आंखको आजकर, रातमें अन्धकारके समय भी पुरुष, प्रत्येक वस्तु को देख सकता है ॥ २ ॥

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा ।

एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ॥ ३ ॥

एक बटल (या बड़हल, यह एक प्रसिद्ध फल, गेन्प से रंगका मीठा होता है), सूअर की आंख, जुगनु, और काला शारिवा (इसी नाम से प्रसिद्ध एक औषधि), इन सब चीजों को मिलाकर जाल में लंगान से पुरुष, रात में भी रूपों को अच्छी तरह देख सकता है ॥ ३ ॥

पुस्तकों में बहुत भेद है। हमलिये और भी अर्थका ठीक निश्चय नहीं होता। ४५ वें सूत्रमें, शासनाधी आदि की सम्पादित पुस्तकों में 'नारकगर्भः' ऐसा पाठ है, परन्तु गणपति शास्त्री की सम्पादित पुस्तकमें 'दारकगर्भः' पाठ है। शासनाधी तो यहां पर प्रायः विधायनीय सब ही शब्दोंके भागें यह (?) सन्देहघोतक चिन्ह लगा गये हैं। आपने अपनी सम्पादित मूल पुस्तक में 'नारकगर्भः' पाठ रखकर भी अंग्लित अनुवादमें 'नारक' शब्दके भागें संदेह चिन्ह लगाकर, भागें A Donkey (=गधा) लिखा हुआ है, न मालूम यह अर्थ आप किस शब्द का कर रहे हैं, मालूम ऐसा होता है, कि कहीं आप 'गर्भ' का अर्थ 'गर्भ' समझ रहे हैं। इसी तरह सूत्रोंकी पूर्वापरके साथ योजना भी बहुत उलट पुलट की है। ४७ वें सूत्र में तो गर्भपती ऊंटनीको भूतकर, बहुत बड़ी अर्थ सम्बन्धी गद्गद् की है। उस जगह का पाठ आपके मूल पुस्तक में इस प्रकार है—'साध्वर्षिकानि गर्भपतनान्युष्टिकायामि-दूय'। इन वाक्यों में से यह अर्थ न मालूम आपने किस दिग्दर्शनीके आधार पर निकाला है इसी सूत्रके लिख्यार्थ आदि लम्बेमें पदका अर्थ करना आप बिलकुल ही भूल गये हैं। गणपति शास्त्रीके भी अर्थ कुछ निश्चयारमक प्रतीत नहीं होते। ४५ वें सूत्रमें 'उररल' का अर्थ 'मरुत' किया है, फिर उसके भागें के 'उरक' शब्दका सम्बन्ध न मालूम क्या होगा। ४७ वें सूत्रमें जहां शासनाधीने ऊंटनी भूनी है, वहांका मूलपाठ गणपति शास्त्रीकी पुस्तक में इस प्रकार है—'साध्वर्षिकानि गर्भपतनान्युष्टिकायामिपूर्व'। हमने भी इसी पाठके अनुसार सूत्र का अर्थ कर दिया है, पर आधिक वास्तविकता का कुछ निश्चय नहीं हुआ। इसी तरह ४५वें सूत्रमें 'दारकगर्भः' का अर्थ गणपति शास्त्री ने 'सूकरगर्भः' कर दिया है, पर इससे भी अर्थ स्पष्ट नहीं सुलभता। तार्क्य यह है, कि इन तीनों ही सूत्रों में, व्याख्याकारों और मूल सम्पादकोंके अनेक स्तलन दोष रहे हैं। विचारशील विद्वान् पाठक, स्वयं ही गोता लगाकर इसमें से कुछ रहस्य ढूँढने का यत्न करें) ॥ ४७ ॥

अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमाचरेत् ।

आराज्यापेति निर्वादः समानः कोप उच्यते ॥ ४८ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे अधिकरणे प्रलम्बान् अद्भुतोत्पादनं द्वितीयो अध्यायः ॥

अदितः सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार आश्रयचकित करने वाले इन अद्भुत, तथा अनिष्टकारक उत्पातों से विभिर्गणु, शत्रुको भयभीतर रह बचाने करे। अर्थात् उसको तुन

भयभीत बनावे, जिससे उसके प्रदेशमें अराजकता फैल जावे। इसप्रकार का व्यापार, अनिष्टकारक तथा कलङ्का हेतु होनेपर भी, परस्पर राजाओं के द्वेषभाव के बढ़नेपर करना ही पड़ता है; इसीलिये इसका यहाँपर निरूपण कर दिया गया है ॥ १७ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय ।

१७८ प्रकरण ।

प्रलम्भनमें भैषज्यमन्त्रयोग ।

{ शत्रु को धोखा देने के लिये, इस प्रकरण में भैषज्य और मन्त्रों के योग का निरूपण किया जायगा ॥

मार्जारोष्द्रशुकवराहश्वाविद्ध्वागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्वहूनां वा दक्षिणानि वामानि वाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥१॥ ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति ॥२॥

पहिले भैषज्ययोग का कथन किया जाता है:—चिल्लाव, ऊँट, भेड़िया, सूअर, सेड़ी, बगली, गता (एक प्रकार का पक्षी) कोमा और बहलू, भयवा रात्रिमें विचारण करने वाले अन्य प्राणियों में से, एक दो या बहुतों को दाईं बाईं आंखों का लेकर, उनका पृथक् २ दो जगह चूर्ण बना लेवे ॥ १ ॥ तदनन्तर दाईं आंखों के चूर्णसे दाहिनी आंखको आंजकर, और दाईं आंखों के चूर्णसे बाईं आंखको आंजकर, रातमें अन्धकारके समय भी प्रश्य, प्रत्येक वस्तु को देख सकता है ॥ २ ॥

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा ।

एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ॥ ३ ॥

एक बदल (या बड़हल, वह एक प्रसिद्ध फल, गेरू से बनाका मीठा होता है), सूअर की आंख, लुगनू, और काला शारिवा (इसका नाम से प्रसिद्ध एक औषधि), इन सब चीजों को मिलाकर आंख में लगाने से पुरष, रत्न में भी रूपों को अष्टों तरह देख सकता है ॥ ३ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये शस्त्रहतस्यशूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-
कपाले मृत्तिकायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत् ॥ ४ ॥ ततो
यवविरूढमालामाघद्वय नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ५ ॥

तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त काल में हाथियार से मारे हुए, अथवा शूलप्रोत पुरुषके (जिसके शरीर में शूल का प्रवेश किया गया हो, ऐसे) शिर की हड्डी में मट्टी भरके उसमें जौ बोकर, उन्हें भेड़के दूध से सोंच ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन उपजे हुए जौओं की माला को गले में बांधकर, छाया और रूख से रहित होकर विचरण करता है । अर्थात् उसकी छाया और रूख किसी पुरुष को नहीं देखते, तथा वह सबको देख लेता है ॥ ५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण श्वमार्जारोल्कवागुलीनां दक्षिणानि
वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्ण कारयेत् ॥ ६ ॥ ततो यथास्वम-
भ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ७ ॥

अथवा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त कालमें, कुत्ता बिलब, उल्लू और वागुली (एक प्रकारका पक्षी संभवतः बगली का यह नाम हो), इन चारों जानवरोंकी दाईं और बाईं आंखोंको पृथक् २ दो जगह चूर्ण धराये ॥ ६ ॥ तदनन्तर दाईं आंख के चूर्ण को दाईं आंख, और बाईं आंखके चूर्णको बाईं आंख में लगाकर, छाया और रूपसे रहित होकर विचरण करता है ॥ ७ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण पुरुषघातिनः काण्डकस्य शलाकाम-
ञ्जनीं च कारयेत् ॥ ८ ॥ ततो अन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो
नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ९ ॥

अथवा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त कालमें, पुरुषको मारने वाले बणके छोहेकी एक सुरमा डालनेकी सलाह और एक सुरमादानी बनवाये ॥ ८ ॥ तदनन्तर कुत्ता, बिलाव, उल्लू और वागुली, इन चारोंमेंसे किसी एककी दाईं बाईं आंखोंका पृथक् २ चूर्ण बनाकर उसी सलाह और सुरमादानीके द्वारा उसे आंखोंमें आजकर वह पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर विचरण करता है ॥ ९ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण कालायसीमञ्जनीं शलाकां च कार-
येत् ॥ १० ॥ ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरः

कपालमञ्जनेन पूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत्
॥११॥ तदञ्जनं पुष्येणोद्ध्युत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात् ॥१२॥
तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १३ ॥

अथवा तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्त कालमें, फौलाद (लोहे) की एक सुरमादानी और सलाई बनवावे ॥ १० ॥ तदनन्तर, रातमें धूमने वाले जनवरोंमेंसे किसी एक की खोपड़ीको अञ्जनसे भरकर, उसे मीठुई खी को योनिमें प्रविष्ट करके जला देवे ॥ ११ ॥ बादमें पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें उस अञ्जनको वहाँसे उठावे, और उस लोहेकी सुरमादानीमें रख देवे ॥ १२ ॥ उस अञ्जनको, उसी पूर्वोक्त सलाईसे आंखोंमें भाँजकर पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर सर्वत्र विचरण करता है ॥ १३ ॥

यत्र ब्राह्मणमाहिताग्निं दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्तत्र त्रिरात्रो-
पोपितः पुष्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चिताभसना
पूरयित्वा तमात्रध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १४ ॥

अथवा जहाँपर आहिताग्नि (अग्निहोत्री) ब्राह्मणको जला हुआ या जलता हुआ देखे, वहाँपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य-
नक्षत्रसे युक्तकालमें, स्वयं मरेहुए किसी मनुष्यके वस्त्रसे एक पोटली (गैली-
सी) बनाकर, उसको उसी मनुष्यकी चिताकी राखसे भरलेवे, और उस पो-
टलीको अपने शरीरमें किसी जगह बाँधलेवे; ऐसा करनेसे वह पुरुष, छाया
और रूपसे रहित होकर सर्वत्र विचरण करता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये वा गौः मार्यते तस्या अस्थिमज्जाचूर्ण-
पूर्णाहिमस्त्रा पशुनामन्तर्धानम् ॥ १५ ॥ सर्पदष्टस्य भसना
पूर्णा प्रचलाकमस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणके प्रेतकार्य अर्थात् श्राद्धमें जो गाय मारी जाती है, उसकी हड्डी
और मज्जाके चूर्णसे, साँसकी काँचरीको भर दिया जावे; यह पशुओंके अन्त-
र्धान करनेका योग है । अर्थात् उस चूर्णसे भरी हुई साँसकी काँचलीका संसर्ग
होनेपर पशु, किसीकी भी नहीं देखता (इस सूत्रमें 'या गौः मार्यते तस्या
अस्थि' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'या गौः मार्यते तस्यास्थि' ऐसा पुष्टि
पाठ भी है) ॥ १५ ॥ सर्पसे काटेहुए किसी जानवरकी राखसे, मोरपेचकी
बनाई हुई धलीका भरदिया जावे, यह योग सभी जंगली पशुओंके अन्तर्धानके
लिये है ॥ १६ ॥

उलूकवागुलीपुच्छपुरीपजान्त्रस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणा-
मन्तर्धानम् ॥ १७ ॥ इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः ॥ १८ ॥

उलूक और वागुलीकी पूछ, विष्टा, जानु (घोंटू, टांग) और हड्डियोंके चूर्णसे, सांपको कैचलीको भर दिया जाये; यह योग ममी पक्षियोंके अन्तर्धान-
के लिये होता है। अर्थात् उस चूर्णसे भर्राहुँ सांपको कैचलीका ससर्ग होनेपर,
वह पक्षी किसीको भी नहीं देखता ॥ १७ ॥ यहाँतक अन्तर्धानके लिये आठ
योगोंका निरूपण कर दिया गया ॥ १८ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमार्यं च शम्भरम् ।

भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च ॥ १९ ॥

देवलं नारदं वन्दे वन्दे सावर्णिंगालम् ।

एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २० ॥

यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमृतलाः ।

तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ २१ ॥

भण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च ।

इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीभासन्तु भाण्डकाः ॥ २२ ॥

नमस्कृत्वा च मनवे वध्ना शुनकफेलकाः ।

ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः ॥ २३ ॥

अद्धधयनपारगाः सिद्धा ये च कैलामतापसाः ।

एतेभ्यः सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २४ ॥

अतिगच्छति च मय्यपगच्छन्तु संहताः ॥ २५ ॥

अलिते पलिते मनवे स्वाहा ॥ २६ ॥

अथ इसके भागे सबको मुला देनेके चार योगोंका निरूपण किया जायगा; इन योगोंमें मन्त्रोंका भी प्रयोग करना पड़ता है, १९ से २६ संख्या तक आठ मन्त्र यहाँ बतलाये गये हैं, जिनमें पहिला मन्त्र 'बलिं वैरोचनं वन्दे, से प्रारम्भ होता है, और आठवा मन्त्र 'अलिते पलिते मनवे स्वाहा' पर समाप्त होजाता है। इन मन्त्रोंके अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हैं, और इनका यहा उपयोगभी केवल पाठ मात्रमेंही पर्यवसित होजाता है; ये आठों मन्त्र पहिले दो योगोंके लिये साधारण हैं, अर्थात् निम्न प्रतिपादित दोनों योगोंमें इन्हीं मन्त्रोंका उप-

योग होना चाहिये । २४वें श्लोकमें 'एतेभ्यः' के स्थानपर 'एते च' और २६ वें मन्त्रमें 'वलिते' के स्थानपर 'वलिते' पाठान्तर है ॥ १९—२६ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ २७ ॥ त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां
पुष्ययोगिन्यां श्रपाकीहस्ताद्विलखावलेखनं क्रीणीयात् ॥ २८ ॥
तन्मापैः सह कण्डोलिकायां कृत्वासङ्कीर्णं आदहने निखानयेत्
॥ २९ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य कुमार्या पेपयित्वा गु-
लिकाः कारयेत् ॥ ३० ॥ तत एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा
यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्थापयति ॥ ३१ ॥

इस मन्त्र समूहका प्रयोग इसतरह समझना चाहिये ॥ २७ ॥ तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्त, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, किसी चाण्डालीके हाथसे चूहेका एक टुकड़ा खरीदलेवे ॥ २८ ॥ उसको उड़वोंके साथ एक छोटीसी पिटारीमें रखकर, खुले विस्तृत शमशानमें गड़ा छोड़कर वहां इसे गाढ़ देवे ॥ २९ ॥ दूसरी चतुर्दशीमें (अर्थात् जिस चतुर्दशीमें गाढ़ा था, उससे अगली चतुर्दशीमें) वहांसे इसे उखाड़कर, किसी कुमारी से इसको पिसवावे, और इसको गोली बनवा लेवे ॥ ३० ॥ तदनन्तर एक गोलीको मन्त्रोसे अभिमन्त्रित करके, जहाँपर इस उक्त मन्त्र-समूहको पढ़ता हुआ गोलीको फेंक देता है, वहां वह पुरुष, सबको सुला देता है । अर्थात् उस स्थानमें विद्यमान सब ही प्राणी, उस मन्त्रयुक्त गोलीके प्रभावसे सोजाते हैं । यहाँतक पाहिके योगका निरूपण किया गया ॥३१॥

एतेनैव कल्पेन श्राविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमसङ्कीर्णं
आदहने निखानयेत् ॥ ३२ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य दह-
नभस्सना सह यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्थापयति ॥३३॥

पूर्वोक्त प्रकारके अनुसारही (अर्थात् निरपत समयतक उपवास करके पुष्ययुक्त कृष्ण चतुर्दशीमें), चाण्डालीके हाथसे, तीन जगहसे काली और तीन जगहसे सफेद सेहीके कांटे खरीदें; और उसे खुले विस्तृत शमशानमें गड़ा छोड़कर गाढ़ देवे ॥ ३२ ॥ उससे अगली चतुर्दशीमें उसे उखाड़कर, शमशानकी राखके साथ जहां उनको मन्त्रपूर्वक फेंक देता है, वहीं शल्यके सुला देता है । यह दूसरे योगका निरूपण किया गया ॥३३॥

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्मणीं ब्रह्मणं च कुशधजम् ।

सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वाश्च तापसान् ॥ ३४ ॥

वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः ।

वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे मदा ॥ ३५ ॥

स्वाहा आमिले किमिले वयुजारे त्रयोगे फः वयुश्चे विहाले
दन्तकटके स्वाहा ॥ ३६ ॥

सुखं म्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।

श्वाविधः शल्यकं चैतत्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३७ ॥

प्रसुमाः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्थापनं कृतम् ।

यावद्ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ॥ ३८ ॥

स्वाहा ॥ ३९ ॥

पहिले और दूसरे योगमें समानही मन्त्रोंका उपयोग होता है । तीसरे योगके लिये मन्त्र भिन्न हैं, वे मन्त्र ३४ वीं संख्यामें लगाकर ३९ वीं संख्या तक समझने चाहिये इन मन्त्रोंका प्रारम्भ 'सुवर्णपुष्पीं ब्रह्मणीं' और समाप्ति 'सूर्यस्याद्गमनादिति स्वाहा' है । अर्थ सबके स्पष्ट हैं; यहाँ इनका उपयोग, केवल इनके पाठमात्रसे है । ३६ वीं संख्याके मन्त्रवाक्यमें 'वयुजारे' के स्थानपर 'वसुजारे' या 'वयुचारे'; और 'वयुरथे' के स्थानपर 'वयुहे' या 'धुट' तथा 'कटके' के स्थानपर 'कटके पाठान्तर है ॥ ३४-३९ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४० ॥ श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि
सप्तरात्रोपितः कृष्णचतुर्दश्यां सादिराभिः सभिधामिरग्निमेतेन
मन्त्रेणाष्टशतसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ४१ ॥
तत एकमेतेन मन्त्रेण ग्रामद्वारि गृहद्वारि वा यत्र निरुन्यते तत्सर्वं
प्रस्वापयति ॥ ४२ ॥

इस मन्त्रमसूत्रका प्रयोग इसप्रकार समझना चाहिये—॥ ४० ॥ पूर्ववत्सी
तीन उगड़ने गकर सहीके काठको इनका न भूमिमें गाड़ देवे । सात रात
पर्यन्त उगवाम रखना हुआ पुरण, कृष्णारक्षकी प्युर्दशीमें खैर आदि
वृक्षाग ममिवाशोम इम मन्त्रमसूत्रके द्वारा; गहद और घा मिल कर
उपली एकमौ आठ बार अग्नि वाहुति देवे ॥ ४१ ॥ इस कृत्यके अनन्तर
शपशानमें गड़े हुए काटाको उस गकर, उनमेंसे एक काटा लेकर, इस
मन्त्रमसूत्रके द्वारा उसको जडांकी, किमी प्राग या घाके दरवाजेपर गाड़ देता है,
यहाँपर सबको सुखा देता है । यह तीसरे योगका निरूपण करदिया गया ॥ ४२ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
 निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥ ४३ ॥
 अर्मालवं प्रमीलं च मण्डोलूकं घटोद्दलम् ।
 कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥ ४४ ॥
 अभिमन्त्रय गृह्णामि सिद्धार्थं शवशारिकाम् ।
 जयतु जयति च नमः शलकभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ४५ ॥
 सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ ४६ ॥
 सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गियामहे ।
 यावदस्तमयादुदयो यावदर्थं फलं मम ॥ ४७ ॥
 इति स्वाहा ॥ ४८ ॥

अब चाँधे योगका निरूपण किया जाता है । इसमें उपयोग करनेके लिये 'बलिं वैरोचनं वन्दे' से लगाकर 'यावदर्थं फलं मम । इति स्वाहा' तक मन्त्र निर्दिष्ट है । इनमें ४४ वीं संख्याके मन्त्रमें 'घटोद्दलम्' के स्थानपर 'घटोच्छलम्'; ४५ वीं संख्याके मन्त्रमें 'अभिमन्त्रय' के स्थानपर 'अभिमन्त्रयित्वा' और 'शवशारिकाम्' के स्थानपर 'शवशारिकाम्' ये पाठान्तर हैं ॥ ४३-४८ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४९ ॥ चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्या
 नैसंकीर्ण आदहने बलिं कृत्वा एतेन मन्त्रेण शवशाेरिकां गृहीत्वा
 पोत्रीपोद्दलिकां बध्नीयात् ॥ ५० ॥ तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन
 विध्वा यत्रैतेन मन्त्रेण निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ५१ ॥

इस मन्त्रसमूहका प्रयोग, इसप्रकार समझना चाहिये—॥ ४९ ॥
 चार रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, विस्तृत
 खुले इमरानके मैदानमें बलि देकर, इस मन्त्रसमूहके द्वारा एक मरी हुई
 मैनाको लेकर, छोटसे कपड़ेमें उसको पोटली बांध लेवे ॥ ५० ॥ उसके बीचमें
 सेहीका कुछ बाँटा धोकर, जहाँकहीं भी इस मन्त्रसमूहको पढ़ता हुआ, उसे
 गाय देता है, वहाँपर रुबको मुला देता है । यदातक मुला देनेके धारों
 योग्यका, माननिर्देशापूर्वक वर्णन करविया गया ॥ ५१ ॥

उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशो दश ।

अपयान्तु च सर्वाणि वशतां यान्तु मे सदा ॥ ५२ ॥

स्वाहा ॥ ५३ ॥

अब इसके आगे दरवाजा खोल देनेके योगका निरूपण करते हैं, ५२ और ५३ संख्यासे, उनके मन्त्रका निर्देश किया गया है ॥ ५२-५३ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ५४ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शर्करा एकविंशतिसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ५५ ॥ ततो गन्धमाल्येन पूजयित्वा निखानयेत् ॥ ५६ ॥ द्वितीयेन पुष्येणोद्घृत्यैकां शर्करामभिमन्त्रय्य क्वाटमाह्नयात् ॥ ५७ ॥ अभ्यन्तरं चतसृणां शर्कराणां द्वारमपात्रियते ॥ ५८ ॥

इस मन्त्रका प्रयोग निम्नलिखित रीतिले समझना चाहियेः—॥५४॥ तीन रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक, पुष्यनक्षत्रके योगमें बहुतसे कंकड़ियोंको लेकर (=शर्करा)। इस शब्दका अर्थ गणपति शास्त्रोंने खोपड़ी भी किया है), उनके ऊपर आग्नि, दाहद बार घीसे इक्षोसवार आहुति डालकर हवन करे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर, गन्ध और मालाओंसे उनकी (कंकड़ियों, या खोपड़ियोंकी) पूजा करके, एक रादा खोदकर उसमें उन्हे गाढ़देवे ॥ ५६ ॥ जब दूसरीवार पुष्यनक्षत्रका योग होवे, तो उन्हें उखाड़कर, उनमेंसे एक कंकड़ीको, मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके किचाड़पर मारे। अर्थात् मन्त्रपूर्वक उस कंकड़ीको, किचाड़ोंपर आघात करे ॥ ५७ ॥ उस आघातसे चार कंकड़ियोंकी परापर जगहमें, किचाड़में छेद होजायगा। इसीतरह सम्पूर्ण द्वारको, चुपचाप किचाड़ तोड़कर खोला जासकता है ॥ ५८ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां भग्नस्य पुरुषस्यास्थना ऋषभं कारयेत् ॥ ५९ ॥ अभिमन्त्रयेच्चतेन ॥ ६० ॥ द्विगोयुक्तं गोयानमाहृतं भवति ॥ ६१ ॥ ततः परमाकाशे विक्रामति ॥ ६२ ॥

इसी मन्त्रका एक और भी प्रयोग बताया हैः—चार रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक राता हुआ पुरुष, कृष्णवक्षकी चतुर्दशीमें, दूटे हुए पुरुषकी हड्डिले एक बैलकी मूर्ति बनवावे। (किसी २ पुरुषकमें 'चतुर्नक्तोपवासी' के स्थानपर 'चतुर्नक्तोपवासी' भी पाठ है। अर्थ दोनोंका एकही है) ॥ ५९ ॥ इस उपयुक्त मन्त्रके द्वारा, उस मूर्तिको अभिमन्त्रण करे। अर्थात् उपयुक्त विधिसे होम पूजा आदि करके, उसको सिद्ध करे ॥ ६० ॥ ऐसा करनेसे जो बैलोंसे युक्त

एक बैल गाधी वहां उपस्थित होजाती है ॥ ६१ ॥ तदनन्तर उसके द्वारा पुरुष, परम आकाशमें घूम सकता है; और सर्वत्र प्रवेश करसकता है; अर्थात् उसे द्वार आदि, कहीं बाधा नहीं दे सकते ॥ ६२ ॥

सदारविरविः सगण्डपरिघाति सर्व भणति ॥ ६३ ॥

चण्डालीकुम्भीतुम्भकडुकसारीषः सनारीभगो ऽसि स्वाहा ॥ ६४ ॥

अब एक मन्त्र ताला खोलने, और सुला देने, इन दोनों कामोंमें आनेवाला बताते हैं, यह मन्त्र ६३ और ६४ संख्यासे बताया गया है । ६४ वीं संख्याके वाक्यमें 'कुम्भीतुम्भ' के स्थानपर 'कुम्भीसम्भ' ऐसा पाठान्तर भी है ॥ ६३-६४ ॥

तालोद्घाटनं प्रस्वापनं च ॥ ६५ ॥

इस मन्त्रका प्रयोग ठीक उसी तरह करना चाहिये, जैसाकि दरवाजा खोलनेके मन्त्र वा पहिला प्रयोग बतलाया गया है । इसी रीतिसे इस मन्त्रके द्वारा ताला भी खोला जासकता है, और लोगोंको सुलाया भी जासकता है ॥ ६५ ॥

त्रिरात्रोपोपितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-
कपाले मृत्तिकायां तुवरीरा वास्योदकेन सेचयेत् ॥ ६६ ॥ जातानां
पुष्येणैव गृहीत्वा रज्जुकां वर्तयेत् ॥ ६७ ॥ ततः सज्यानां
धनुषां यन्त्राणां च पुरस्ताच्छेदनं ज्याच्छेदनं करोति ॥ ६८ ॥

अब धनुषकी रस्सी काट देनेका योग बतलाते हैं:—तीन रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक रहता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रके युक्तकालमें, हथियारसे मारे हुए, या शूलप्रोत (जिसके शरीरमें लोहेकी शलाका, या सूली आदिका प्रवेश हुआ हो, ऐसे) पुरुषकी खोपड़ीमें मट्टी भरकर उसमें घोर या अरहर बोदेवे और जलसे उसको सींचता रहे ॥ ६६ ॥ जब वह अद्भुत होजावे तो, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमेंही उसे उखाड़कर उनकी रस्सी बटवाने ॥ ६७ ॥ उस रस्सीके द्वारा वह पुरुष, घोर सडित धनुषोंका, और अन्य यन्त्रोंका भी सामनेसे छेदन करसकता है; तथा धनुषकी घोरिका भी छेदन करसकता है ॥ ६८ ॥

उदकाहिभस्त्रायुच्छवासमृत्तिकया स्त्रियाः पुरुषस्य वा पूरयेत्
॥ ६९ ॥ नासिकाग्रन्धनं मुखग्रहश्च ॥ ७० ॥ वराहवस्ति-
मुच्छवासमृत्तिकया पूरयित्वा मर्कटस्त्रायुना बध्नीयात् ॥ ७१ ॥
आनाहकारणम् ॥ ७२ ॥ कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रहताया गोः कपि-

लायाः पित्तेन राजवृक्षमयीममित्रप्रतिमां अञ्ज्यात् ॥ ७३ ॥
अन्धीकरणम् ॥ ७४ ॥

जलके सांपकी केंचुलीको, किसी खी या पुरूपकी चिताके ऊपरकी मिट्टामें भर देवे ॥ ६९ ॥ यह योग नगसिका और मुखका निरोध करनेवाला होता है ॥ ७० ॥ इसीतरह सूअरकी बरतोंमें चिताके ऊपरकी मिट्टी भरकर उसे किसी बन्दरकी नावोंमें बांध दिया जावे ॥ ७१ ॥ यह योग मलके रोकनवाला होता है ॥ ७२ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, छाथंयारसे मारी हुई कपिला गायके पित्तसे, अमलतासखी लकड़ीसे बनी हुई शत्रुकी प्रतिमाको भजि । अर्थात् उस प्रतिमाको आंखमें, उस पित्तको अंजनकी तरह लगावे ॥ ७३ ॥ शत्रुको अन्धा बना देनेके लिए यह योग है, अथवा ऐसा करनेसे शत्रु अन्धा हो जाता है ॥ ७४ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां बलिं कृत्वा शूलप्रोतस्य
पुरुषस्यास्थना कीलकान्कारयेत् ॥ ७५ ॥ एतेषामेकः पूरीषे
मूत्रे वा निखात आनाहं करोति ॥ ७६ ॥ पादे ऽस्यासने वा
निखातः शोषेण मारयति ॥ ७७ ॥ आपणे क्षेत्रे गृहे वा वृत्ति-
च्छेदं करोति ॥ ७८ ॥ एतेन कल्पेन विद्युद्गधस्य वृक्षस्य कीलका
व्याख्याताः ॥ ७९ ॥

चार रात्रिपर्यन्त उरयास-पूर्वक रहता हुआ पुरूप, कृष्णपक्षकी चतु-
र्दशीमें निधिपूर्वक बलि देकर, शूलप्रोत पुरूपकी हड्डीसे बहुतसी कीलें बनवावे
॥ ७५ ॥ इनमेंसे एक कील, जिसके पास्ताने या पेशाबमें गाड़ देता है, उसी
का पालाना बन्द हो जाता है ॥ ७६ ॥ यदि किसीके पैर अथवा आसनमें
इस कीलको गाड़ देता है, तो वह पुरूप सूख २ कर मर जाता है ॥ ७७ ॥
जिसकी वृत्तान खेत वा घरमें यह कील गाड़ दी जाती है, उसकी भाजीविका
को नष्ट कर देगी है ॥ ७८ ॥ इसीप्रकार निजलीसे जले हुए वृक्षकी बनावट
हुई कीलका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ७९ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्नः काकमधुश्रयः ।

कपिरोम मनुष्यास्थि बध्वा मृतकवाससा ॥ ८० ॥

निरान्येत गृहे यस्य पिण्डा वा यं प्रपाययेत् ।

सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पद्यान्नातिवर्तते ॥ ८१ ॥

दक्खिनकी ओर होनेवाला पुनर्नवा (इसी नामसे प्रसिद्ध एक बूटी) और जिसका फल कोओंके लिए बहुत मीठा लगानेवाला हो, ऐसा नीम ('काकमधु' के स्थानपर कहीं २ 'काममधु' भी पाठ है), चन्द्रके बाल और मनुष्यकी हड्डी; इन सब चीजोंको, मृतक पुरुषके कपड़ेमें बांधकर; ॥ ८० ॥ जिसके घरमें गाड़ दिया जाता है, अथवा जिसको पीसकर पिला दिया जाता है, ('प्रपाययेत्' की जगह किसी पुस्तकमें 'पदं नयेत्' भी पाठ है) तो वह पुरुष, अपने पुत्र स्त्री और धनके सहित, तीन पक्ष अर्थात् डेढ़ महीना समयको भी पार नहीं कर सकता । तात्पर्य यह है, कि इतने समयके अन्दर २, वह अपने पुत्र स्त्री और धन सहित नष्ट हो जाता है ॥ ८१ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्नः काकमधुश्च यः ।
 श्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥ ८२ ॥
 द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा ।
 सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८३ ॥

दक्खिनकी ओर होनेवाला पुनर्नवा, काकमधु, नीम, धमासा (=श्वयंगुप्ता=कच्छुरा, हिन्दी नाम धमासा है), और मनुष्यकी हड्डी, इन सब चीजों को जिसके स्थानपर गाड़ दिया जाता है ॥ ८२ ॥ अथवा जिस किसी घर, सेना, गाँव या नगरके दरवाजेपर गाड़ दिया जाता है, वहाँका निवासी पुरुष अपने पुत्र स्त्री और धनके सहित डेढ़ महीनेके अन्दर २ अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ८३ ॥

अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च ।
 ज्ञाक्षणाणां श्यपाकानां काकोलूकस्य चाहरेत् ॥ ८४ ॥
 एतेन विष्टावक्षुष्णा सद्य उत्सादकारिका ।

यकरा, चन्द्र, बिलास, नेवला, माक्षण, चाण्डाल, कौआ और उल्लू, इन सब प्राणियोंके रोम अर्थात् बालोंको इकट्ठा करे ॥ ८४ ॥ फिर जिन पुरुषको मारना हो, उसकी विष्टाको, इन सब बालोंके साथ पीस लिया जावे, उस पिसी हुई चीजको स्त्री कराते ही वह पुरुष तरकाल मर जाता है ।

प्रेतनिर्मालिकाकिण्वं रोमाणि नकुलस्य च ॥ ८५ ॥
 पृश्निकावहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते ।
 भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥ ८६ ॥

मुँदपर टाली हुई माला, सुरबीज, और नेवलेके बाल ॥ ८५ ॥

तथा चिच्छू, भौरा और सांप, इन तीनों जानवरोंकी खाल, इन सब चीजोंको मिलाकर जिसके स्थानपर गाढ़ दिया जाता है, वह पुरप तरकालही अपुरुप हो जाता है, जबतक कि उन गाढ़ी हुई चीजोंको वहांसे हटाया न जावे । (अपुरुप होनेका तात्पर्य यही मालूम होता है, कि वह अपने आपको पुरपसम्बन्धी कार्योंके करनेमें असमर्थ समझने लगता है) ॥ ८६ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः
शिरःकपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत् ॥८७॥
जातानाममावास्यायां पौर्णमास्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्ली-
र्ग्राहयित्वा मण्डलिकाभि कारयेत् ॥ ८८ ॥ तेष्वन्नपानभाजनानि
न्यस्तानि न क्षीयन्ते ॥ ८९ ॥

तीन रात्रि पर्यन्त उपवास पूर्वक रहता हुआ पुरुप, पुष्य नक्षत्र से युक्त समयमें, हथियार स मारे हुए अथवा शूलप्रोत पुरुप की खोपड़ी में मट्टी भरकर, उसमें गुञ्जा (चौटली=रत्ती) बोदेवे, और उन्हीं जलसे बराबर सींचता रहे ॥ ८७ ॥ जब वह उत्पन्न होजायें तब पुष्यनक्षत्र से युक्त अमावस्या अथवा पौर्णमासी में गुञ्जा की उन बेलों को उखड़वाकर, उनके द्वारा चारों ओर गोल घेरे बनवावे ॥ ८८ ॥ उन घेरोंके बीचमें रखे हुए, खाने पीनेके पात्र, क्षीणताको प्राप्त नहीं होते ॥ ८९ ॥

रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपान्निषु मृतघेनोः स्तनानुत्कृत्य
दाहयेत् ॥ ९० ॥ दग्धान्वृषमृत्रेण पेपयित्वा नवकुम्भमन्तर्ले-
पयेत् ॥ ९१ ॥ तं ग्राममपमव्यं परिणीय यत्तत्र न्यस्तं नवनी-
त्तमेपां तत्सर्वमागच्छतीति ॥ ९२ ॥

रातको तमाशा होनेके समयमें, प्रदीप की भागों पर, मरी हुई गाय के धनों को काटकर जलावे ॥ ९० ॥ जले हुए अर्थात् भुने हुए उन धनों को, बैलके पैशवके साथ पीसकर, एक नये घड़ेके भीतर चारों ओर लीप देवे ॥ ९१ ॥ उस घड़े को चाई और से उस गांव की परिक्रमा कराके जहाँ रख देता है; ग्रामीण पुरुषों का सब मखन, वहीं पर (अर्थात् उस घड़े में) भाजाता है (१) ॥ ९२ ॥

कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ काला-
यसीं मुद्रिकां प्रेषयेत् ॥९३॥ तां स्वयं पतितां गृहीयात् ॥९४॥
तया वृक्षफलान्याकारितान्यागच्छन्ति ॥ ९५ ॥

पुण्य नक्षत्र से युक्त, कृष्णपक्ष की चतुर्दशीमें, कामासक्त कुत्ती की योनि में (सूत्र में 'शुनः' शब्द पुल्लिङ्ग निर्देश किया गया है, परन्तु योनि शब्दके निर्देश से यहाँ लिंगकी अविवक्षा ही समझनी चाहिये), लोहे की बनी हुई एक मुद्रिका (अंगूठी सी) लगा देवे ॥ ९३ ॥ जब वह अपने आप वहाँ से निकलकर गिर पड़े, तो उसे लेलेवे ॥ ९४ ॥ उसके द्वारा वृक्षोंके फल, बुलाए जानेपर, आजाते हैं ॥ ९५ ॥

मन्त्रमैपज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये ।

उपहन्यादामित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ॥ ९६ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे अधिकरणे प्रलम्बने मैपज्यमन्त्रयोगः तृतीयो
अध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टचत्वारिंशच्छतः ॥ १४८ ॥

मन्त्र और ओपधियों से युक्त, जिन योगों का निरूपण किया गया है, और मायासे युक्त जिन योगोंका निरूपण किया गया है; (अपने शरीर को जलाना, अंगारों के ढेर पर चलना; इत्यादि प्रयोगोंको ही मायाकृत योग समझना चाहिये) । उन सब योगों से शत्रुका नाश करे, और स्वजनों की परिपालना करे ॥ ९६ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय ।

१७६ प्रकरण

शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर कियेगये घातक
प्रयोगों का प्रतीकार ।

{ शत्रुका नाश करनेके लिये जिन उपायों को पीछे पताया गया है यदि शत्रुही, विजिगीषुके नाशके लिये उन उपायों का प्रयोग करने लगे, तब ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको उनका क्या प्रतीकार करना चाहिये ? इन्हीं सब बातों का इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविपगराणां प्रतीकारे श्रेष्मातकक
पितृधदन्तिदन्तशठगोजीशिरापपाटर्लात्रलास्योनाकपुनर्नचाश्वेता-

वरणक्वाथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजमोदकं राजोप-
भोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विपक्षतीकारः ॥ २ ॥

राज्यके द्वारा प्रयुक्त किये गये, जलादि द्रूपक तथा विष भादि प्रयोगों का अपने पक्षमें प्रतीकार करने की अभिलाषा होने पर; विपक्षे प्रतीकारके लिये निम्नलिखित तेजनोदक का उपयोग करे । यह इसप्रकार बनाना चाहिये:—दहसोदा, कैथ, जमालगोटा, जभीरी नीचू, गोभी, सिरस, काली पांढरी या पाटल, खैटी, सोनापाटा, पुनर्नवा, शराब और चरना नामक पृक्ष, इन सब चीजों का वषाध बनाया जाये, और चन्दन तथा सालावृकी (इस शब्दके तीन अर्थ हैं, बन्दरी, गीदड़ी और कुत्ती; इन तीनोंमें से किसी एक का खून लेना चाहिये) का खून एक जगह मिलाकर रखा जाये, उस वषाध और इस रक्तसे मिला हुआ तेजनोदक (तेजन, रक्त को कहते हैं, उसके पानीमें इन सब चीजोंको हल करना होता है, इसीलिये यह तेजनोदक कहाता है), राजाके उपभागमें आने वाला स्त्रियोंके गुह्यस्थानों को साफ करने वाला, तथा सेना सम्बन्धी अर्थात् सेनामें प्रयुक्त किये हुए विपक्षा प्रतीकार करने वाला होता है ॥ १ ॥

पृषत्तनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मपीराजिचूर्णं सिन्दुवारि-
रितवरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोपहरः
॥ २ ॥ सृगालविन्नामदनसिन्दुवारितवरणवारणवल्लीमूलकपाया-
णामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोपहरम् ॥३॥

चीतल(एक प्रकारका मृग,जिसके ऊपर दागसे होते हैं), नेवला, मोर और गोह, इन सब जानवरोंके पित्तासे युक्त, काले संभालू और राईका चूर्ण; उन्मादक द्रव्योंसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको अपहरण करनेवाला होता है । तथा संभालू, चरना, वृषघास, चौलाई, चांसका अग्रभाग और मैमफळ, इन सब चीजोंका योग भी उन्मादकद्रव्यजन्य दोषोंका अपहरण करनेवाला होता है ॥ २ ॥ सृगालविन्ना (एक औषधिका नाम है), धतूरा, संभालू, चरना, और गजपीपल, इन पाँचों चीजोंकी अर्धकों मिलाकर, या पृथक् २ एक २ काही काड़ा, दूधके साथ पीलेनेसे, उन्मादकद्रव्यजन्य दोषोंका अपहरण करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

कैडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म ॥ ४ ॥ त्रियङ्गुन-
क्तमालयोगः कुष्ठहरः ॥५॥ कुष्ठलोध्रयोगः पाकशोषणः ॥ ६ ॥
कद्फलद्रवन्तीविलङ्गचूर्णं नस्तःकर्म शिरोरोगहरम् ॥ ७ ॥

कायफल, कांटेदार करंजुआ और तिल; इन चीजोंका तैल, नासिकाके द्वारा उपयुक्त किया हुआ, उम्माद अर्थात् चित्तविभ्रमको हरण करनेवाला होता है ।
 ॥ ४ ॥ मिमगु (मैंहदी या कांगनी) और नक्तमाल (करंजुआ), इन दोनोंका योग कुष्ठको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ५ ॥ घूट और लोध, इन दोनोंका योग, पाक (पकना), घाल आदिका सफेद होजाना तथा शोष (क्षयरोग) का नष्ट करनेवाला होता है ॥ ६ ॥ कायफल, द्रवन्ती (भूषापणी नामकी एक वृद्धी), और चायविंडग, इन तीनों चीजोंका चूर्ण, नासिकाके द्वारा उपयुक्त किया हुआ, सिरके रोगोंको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

प्रियङ्गुमञ्जिष्ठतगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूद-
 कविपप्रहारपतनानिःसंज्ञानां पुनः प्रत्यानयनाय ॥ ८ ॥ मनु-
 प्याणामक्षमात्रं गवाश्वानां द्विगुणं चतुर्गुणं हस्त्युपद्राणाम् ॥ ९ ॥

मैंहदी या कांगनी, मंजीठ, तगर, लाक्षा, (लास), महुआ, इलदी, और पाहद, इन सब चीजोंका योग । रस्सी, दूधितजल, विष, प्रहार, तथा ऊपरसे गिरने के कारण बेहोश हुए २ पुरुषोंको फिर होशमें लानेके लिये, अत्यन्त उपयुक्त होता है ॥ ८ ॥ प्रतीकारके लिये दी जानेवाली औषधियोंकी मात्रा, मनुष्यके लिये केवल एक अक्ष (सोलह मापकका एक अक्ष होता है । मापक तोलके लिये, देखो—अधि० २, अध्या० १९) होनी चाहिये । गाय और घोड़ोंके लिये मनुष्यसे दुगनी, तथा हाथी और ऊटोंके लिये चौगुनी होनी चाहिये ॥ ९ ॥

रुक्मगर्भक्षैपां मणिः सर्वविपहरः ॥ १० ॥ जीवन्तीश्वेतामु-
 प्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीचे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविपहरः
 ॥ ११ ॥

आठवें सूत्रमें बेहोशीको दूर करनेवाला जो योग बताया गया है, उसको यदि सोनेके पत्तरके बीचमें रखकर ताबीज बना लियाजाय, तो उस ताबीजको धारण करनेसे सब तरहके विषोंका प्रतीकार होता है ॥ १० ॥ गुड़ची (गिलोय), सफेद संभलू या चोरबेल, काली पांढरी, पुष्प (औषधि विशेष), और अमरबेल, इन सब चीजोंका ताबीज (=मणि) ; अथवा सेंह-जने या नांमके पेंचपर पैदा हुए २ पापलका ताबीज, सब तरहके विषोंको अथहरण करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विपविनाशनः ।

लिप्तश्च जं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विपः ॥ १२ ॥

एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसेन्यानामथात्मनः ।
आमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्युदूपणान् ॥ १३ ॥

इत्थोपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे स्वसलोपघातप्रतीकारः चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥
आदित एकोनपञ्चाशच्छतः ॥ १४९ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्यौ-
पनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

जीवन्ती (गिलोय) आदि औषधियोंसे पोते हुए (लिबड़े हुए)
बाजों का शत्रु, विषको नष्ट करने वाला होता है । इसीप्रकार इन औषधियों
से लिप्त शिखरपाली झंडीको देखकर भी विषका प्रभाव नहीं रहता ॥ १२ ॥
इन औषधियोंके द्वारा, अपनी सेना और अपने आपकी रक्षा करके, विजिगीषु,
विष धूम और अलदूपणों का सदा शत्रुओंमें ही प्रयोग करे ॥ १३ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण समाप्त ।



तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

१८० प्रकरण ।

तन्त्रयुक्ति ।

{ प्रकृतमें 'तन्त्र' का अर्थ 'अर्थशास्त्र' है । इस शास्त्रमें अर्थके निर्णयके लिये उपयोगी युक्तियों का, लक्षण और उदाहरण निरूपण, इस प्रकरणमें किया जायगा ॥

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः ॥१॥ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः ॥२॥
तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ॥ ३ ॥
तद्वात्रिंशद्युक्तियुक्तम् ॥ ४ ॥ अधिकरणं विधानं योगः पदार्थो
हेत्वर्थ उद्देशो निर्देश उपदेशो ऽपदेशो ऽतिदेशः प्रदेश उपमान-
मर्थापत्तिः संशयः प्रसङ्गो विपर्ययो वाक्यशेषो ऽनुमतं व्याख्यानं
निर्वचनं निदर्शनमपवर्गः स्वसंज्ञा पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष एकान्तो
ज्जागतावेक्षणमतिक्रान्तावेक्षणं नियोगो विकल्पः समुच्चय उल्ल-
मिति ॥ ५ ॥

मनुष्योंके व्यवहार या जीविकाको 'अर्थ' कहते हैं ॥ १ ॥ मनुष्यों
से युक्त भूमिका भी नाम 'अर्थ' है ॥ २ ॥ इस भूमिको प्राप्त करने और
रक्षा करनेके उपायोंका निरूपण करने वाला शास्त्र 'अर्थशास्त्र' कहाता
है ॥ ३ ॥ यह वृत्तोंके प्रकारकी युक्तियों से युक्त है ॥ ४ ॥ ये युक्तियाँ ये हैं :—
अधिकरण, विधान, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश, निर्देश, उपदेश, अपदेश,
अतिदेश, प्रदेश, उपमान, अर्थापत्ति, संशय, प्रसंग, विपर्यय, वाक्यशेष,
अनुमत, व्याख्यान, निर्वचन, निदर्शन, अपवर्ग, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष,
एकान्त, ज्जागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, नियोग, विकल्प, समुच्चय,
और उल्ल ॥ ५ ॥

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदाधिकरणम् ॥ ६ ॥ पृथिव्या लामे
पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि तूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायश्स्ता-
नि संहृत्यैकाभिदमर्थशास्त्रं कृतमिति ॥ ७ ॥

जिस अर्थका अधिकार करके कथन किया जाय, इसे अधिकरण
कहते हैं ॥ ६ ॥ जैसे सबसे पहिले सूत्रमें पृथिवीके लाभ का कथन करके,
सम्पूर्ण शास्त्रको एक अधिकरण बताया गया है। इसीप्रकार प्रधानतया
उन २ अर्थोंका निरूपण करने से, विनयाधिकारिक, अप्यक्षप्रचार आदि
अधिकरण हैं। इस सूत्रका अर्थ देखनेके लिये, देखो, अधि० १, अध्या० १,
सूत्र० १ ॥ (आगे सब युक्तियोंके लक्षणोंके साथ २ उदाहरण बतानेके लिये,
हम केवल उन २ स्थलोंका पता लिखते जायेंगे, पाठक, उनको वहाँ से देख
लेवें ॥ ७ ॥

शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम् ॥ ८ ॥ विद्यासमुद्देशो
वृद्धसंयोग इन्द्रियजयोऽमात्योत्पात्तिरित्येवमादिकमिति ॥ ९ ॥

प्रकरणानुसार शास्त्र ही अनुपूर्वी का कथन करना 'विधान' कहाता
है ॥ ८ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १, सू. ३-६ ॥ ९ ॥

वाक्ययोजना योगः ॥ १० ॥ चतुर्वर्णाश्रमो लोक इति
॥ ११ ॥

वाक्यों की योजनाको 'योग' कहते हैं ॥ १० ॥ देखो—अधि. १,
अध्या. ४, सू. १९ ॥ ११ ॥

पदावधिकः पदार्थः ॥ १२ ॥ 'मूलहर' इति पदम् ॥ १३ ॥
यः पितृपैतामहमर्थमन्त्रायेन भक्षयति स मूलहर इत्यर्थः ॥ १४ ॥

केवल पदके अर्थको 'पदार्थ' कहते हैं ॥ १२ ॥ जैसे 'मूलहर' यह
एक पद है ॥ १३ ॥ इसका अर्थ, 'पदार्थ' होगा; इसके जाननेके लिये, देखो—
अधि. २, अध्या. २, सू. २४ ॥ १४ ॥

हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः ॥ १५ ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामा-
विति ॥ १६ ॥

अर्थको सिद्ध करने वाला हेतु ही 'हेत्वर्थ' कहाता है ॥ १५ ॥ देखो
अधि. १, अध्या. ७, सू. ११ ॥ १६ ॥

समासवाक्यमुद्देशः ॥ १७ ॥ विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजय
इति ॥ १८ ॥

संक्षिप्त वाक्य का कहना 'उद्देश' कहा जाता है ॥ १७ ॥ देखो—

अधि. १, अध्या. ६, सू. १ ॥ १८ ॥

व्यासवाक्यं निर्देशः ॥ १९ ॥ कर्ण त्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजय इति ॥ २० ॥

विस्तृत वाक्यका कथन करना 'निर्देश' कहाता है ॥ १९ ॥ देखो—

अधि. १, अध्या. ६, सू. २ ॥ २० ॥

एवं वर्तितव्यमित्युपदेशः ॥ २१ ॥ धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यादिति ॥ २२ ॥

'इस प्रकार वर्तना चाहिये' ऐसे कथनको 'उपदेश' कहते हैं ॥ २१ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ७, सू० ६, ७ ॥ २२ ॥

एवमसावोहेत्युपदेशः ॥ २३ ॥ मन्त्रपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतिति मानवाः ॥ २४ ॥ षोडशेति बार्हस्पत्याः ॥ २५ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ २६ ॥ यथासामर्थ्यमिति कौटल्य इति ॥ २७ ॥

'अमुक पुरुषने इस विषयमें यह कहा है' ऐसा कथन करना 'उपदेश' कहाता है ॥ २३ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १५, सू. ५२-५५ ॥ २४-२७ ॥

उक्तेन साधनमतिदेशः ॥ २८ ॥ दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातमिति ॥ २९ ॥

कही हुई बातसे न कही हुई बातको भी सिद्ध करनेना 'अतिदेश' कहाता है ॥ २८ ॥ देखो—अधि. ३, अध्या. १६, सू. १ ॥ २९ ॥

वक्तव्येन साधनं प्रदेशः ॥ ३० ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्याम इति ॥ ३१ ॥

आगे कही जायेवाली बातसे, न कही गई बातको सिद्ध करना 'प्रदेश' कहाता है ॥ ३० ॥ देखो—अधि. ७, अध्या. १४, सू. २४ ॥ ३१ ॥

दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम् ॥ ३२ ॥ निवृत्तपरिहारान्पितृवानुगृहीयादिति ॥ ३३ ॥

• देखी हुई वस्तुसे, न देखी हुई वस्तुको सिद्ध करना 'उपमान' कहाता है ॥ ३२ ॥ देखो-अधि. २, अध्या. १, सू. २० ॥ ३३ ॥

• यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः ॥ ३४ ॥ लोकयात्रावि-
द्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत् ॥ ३५ ॥ नाप्रि-
यहितद्वारेणाश्रयेतेत्यर्थादापन्नं भवतीति ॥ ३६ ॥

न वहाँ हुई बात, जो अर्थसे आपन्न (प्राप्त) होजाय, उसे 'अर्थापत्ति' कहते हैं ॥ ३४ ॥ देखो-अधि. ५, अध्या. ४ सू. १ ॥ ३५ ॥ अर्थात् अप्रिय और अहित पुरुषके द्वारा, राजाका आश्रय न लेने, यह वहाँ अर्थापत्ति से जाना जाता है ॥ ३६ ॥

उभयतोहेतुमानर्थः संशयः । ३७ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमप-
चरितप्रकृतिं वेत्ति ॥ ३८ ॥

किसी अर्थमें दोनों (विस्तर) पक्षके हेतुओंका होना 'संशय' कहाता है ॥ ३७ ॥ देखो-अधि. ७, अध्या. ५, सू. १८ ॥ ३८ ॥

प्रकरणान्तरेण समानो ऽर्थः प्रसङ्गः ॥ ३९ ॥ कृपिकर्मप्र-
दिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वणेति ॥ ४० ॥

दूसरे प्रकरणके साथ अर्थकी समानता होना 'प्रसङ्ग' कहाता है ॥ ३९ ॥ देखो-अधि. १, अध्या. ११, सू. १३ ॥ ४० ॥

प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः ॥ ४१ ॥ विपरीतमतुष्टस्येति
॥ ४२ ॥

कही हुई बातके विपरीत्यसे किसी वस्तुका निर्देश करना 'विपर्यय' कहाता है ॥ ४१ ॥ देखो-अधि. १, अध्या. १६, सू. १४ ॥ ४२ ॥

येन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः ॥ ४३ ॥ छिन्नपक्ष-
स्येव राज्ञश्चेष्टानाशश्चेति ॥ ४४ ॥ तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः
॥ ४५ ॥

जिम्के द्वारा वाक्यकी समाप्ति हो, वह 'वाक्यशेष' कहाता है ॥ ४३ ॥ देखो-अधि. ८, अध्या. १, सू. ९ ॥ ४४ ॥ वहाँपर सामर्थ्यसे प्राप्त (=अध्याहत) 'शकुनि' पद वाक्यशेष है ॥ ४५ ॥

परवाक्यमगतिपिद्धमनुमतम् ॥ ४६ ॥ पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह
इत्यौशनसो व्यूहविभाग इति ॥ ४७ ॥

प्रतिषेध न किया हुआ दूसरेका वाक्य 'अनुमत' कहाता है ॥ ४६ ॥
देखो—अधि १०, अध्या ६, सू १ ॥ ४७ ॥

अतिशयवर्णना व्याख्यानम् ॥ ४८ ॥ विशेषतश्च संघानां
संघर्षमिणां च राजकुलानां शूतनिमित्तो भेदः ॥ ४९ ॥ तन्नि-
मित्तो त्रिनाश इत्यसत्पारिग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्ब-
ल्यादिति ॥ ५० ॥

सिद्ध किये हुए अर्थका, आधिक्य युक्तियोंसे विस्तारपूर्वक समर्थन
करना 'व्याख्यान' कहाता है ॥ ४८ ॥ देखो—अधि ८, अध्या ६, सू ६८, ६९
॥ ४९-५० ॥

शुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम् ॥ ५१ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस
इति व्यसनमिति ॥ ५२ ॥

शुणके द्वारा (अर्थान्वयपूर्वक) किसी शब्दकी सिद्धि करना 'निर्वचन'
कहाता है ॥ ५१ ॥ देखो—अधि ८, अध्या १, सू ४ ॥ ५२ ॥

दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम् ॥ ५३ ॥ विगृहीतो हि
ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैतीति ॥ ५४ ॥

दृष्टान्त सहित दृष्टान्तका निर्देश करना 'निदर्शन' कहाता है ॥ ५३ ॥
देखो—अधि ७ अध्या ३, सू ४ ॥ ५४ ॥

अभिप्युतेव्यपकर्षणमपवर्ग ॥ ५५ ॥ नित्यमासन्नमरिचलं
वासयेदन्यत्राम्यन्तरकोपशङ्काया इति ॥ ५६ ॥

। किसी विधिको सामान्यतया व्यापक रूपसे कहते हैं, उसके विषयका
सकोच करदेना (अपवर्ग) कहाता है ॥ ५५ ॥ देखो—अधि ९, अध्या ३, सू
३३, ॥ ५६ ॥

परैरसंज्ञितः शब्दः स्वसंज्ञा ॥ ५७ ॥ प्रथमा प्रकृविस्तस्य
भूम्यन्तरा द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीयिति ॥ ५८ ॥

दृष्टताते सकेत न किया हुआ शब्द, 'स्वसंज्ञा' कहाता है ॥ ५७ ॥
देखो—अधि ६, अध्या २, सू ॥ ५८ ॥

प्रतिषेद्धव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः ॥ ५९ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसन-
योरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ६० ॥

प्रतिषेध किया जानेवाला वाक्य 'पूर्वपक्ष' कहाता है ॥ ५९ ॥ देखो—
अधि ८, अध्या १, सू ७ ॥ ६० ॥

तस्य निर्णयनवाक्यमुत्तरपक्षः ॥६१॥ तदायत्तत्वात् ॥६२॥
तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥ ६३ ॥

उस पूर्वपक्षका निर्णय करनेवाला वाक्य 'उत्तरपक्ष' कहाता है ॥६१॥
देखो-अधि. ८, अध्या. १, सू. १८ ॥ ६२ ॥-॥ ६३ ॥

सर्वत्रायत्तमेकान्तः ॥ ६४ ॥ तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वतेति
॥ ६५ ॥

जो अर्थ किसी देश या कालमें न छोटा जासके, उसे 'एकान्त' कहते
है ॥ ६४ ॥ देखो-अधि. १, अध्या. १९, सू. ५ ॥ ६५ ॥

पश्चादेवं विहितमित्यनागतावेक्षणम् ॥ ६६ ॥ तुलाप्रतिमानं
पौतवाध्यक्षे वक्ष्याम इति ॥ ६७ ॥

'पण्डितों इसप्रकारका विधान किया जायगा' ऐसा कथन करना 'अना-
गतावेक्षण' कहाता है ॥ ६६ ॥ देखो-अधि. २, अध्या. १३, सू. ३३ ॥ ६७ ॥

पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम् ॥ ६८ ॥ अमात्य-
संपदुक्ता पुरस्तादिति ॥ ६९ ॥

'इस बातका पहिले निरूपण करदिया गेवा है' ऐसा कथन करना
'अतिक्रान्तावेक्षण' कहाता है ॥६८॥ देखो-अधि. ६, अध्या. १, सू. ७ ॥६९॥

एवं नान्यथेति नियोगः ॥ ७० ॥ तस्माद्धर्ममर्थ चास्योप-
दिशेन्नाधर्ममनर्थं चेति ॥ ७१ ॥

'अमुक कार्य इसीतरह करना चाहिये, अन्यथा नहीं' ऐसा कथन
करना 'नियोग' कहाता है ॥७०॥ देखो-अधि. १, अध्या. १७, सू. ३५ ॥७१॥

अनेन चानेन चेति विकल्पः ॥ ७२ ॥ दुहितरो वा घर्भि-
ष्टेषु विवाहेषु जाता इति ॥ ७३ ॥

'अमुक कार्य इसतरह किया जासकता है, अथवा इसतरह' ऐसा
कथन करना 'विकल्प' कहाता है ॥ ७२ ॥ देखो-अधि, ३, अध्या. ५, सू.
९ ॥ ७३ ॥

अनेन चानेन चेति समुच्चयः ॥ ७४ ॥ स्वसं (यं) जातः
पितृवन्धूनां च दायाद इति ॥ ७५ ॥

'अमुक कार्य इसतरह भी होसकता है, और इसतरह भी' ऐसा कथन
करना 'समुच्चय' कहाता है ॥ ७४ ॥ देखो-अधि. ३, अध्या. ७ सू. १३ ॥७५॥

अनुक्तकरणमूहम् ॥ ७६ ॥ यथावदाता प्रतिगृहीता च
नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुरिति ॥ ७७ ॥

न कहीहुई घातका करलेना 'ऊहवे' कहाता हे ॥ ७६ ॥ देखो-अधि.

३, अध्या. १६, सू. ४ ५ ७७ ॥

एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः ।

अवाप्तौ यालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च ॥ ७८ ॥

धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च ।

अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च ॥ ७९ ॥

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।

अमर्षणोद्भूतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥ ८० ॥

इति तन्त्रयुक्तौ पञ्चदशेऽधिकरणे तन्त्रयुक्तयः प्रथमोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितः पञ्चाष्टाष्टतमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ एतावता

कौटलीयद्वयार्थशास्त्रस्य तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशम-

धिकरणं समाप्तम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार यह शास्त्र, इन तन्त्रयुक्तियोंसे युक्त है । इस कोक और परलोककी प्राप्ति तथा रक्षा करनेमें यही शास्त्र साधन मताया गया है ॥७८॥ क्योंकि यह धर्मशास्त्र, धर्म अर्थ और कामकी प्रवृत्त करता है, तथा उनकी रक्षा करता है । और अर्थके साथ विरोध रखनेवाले अधर्मोंको नष्ट करता है ॥ ७९ ॥ जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्दराजाके अधीन हुई २ भूमिका क्रोधके कारण बहुत जल्दी उद्धार करविया; उसी विष्णुगुप्त कौटल्यने इस शास्त्रको बनाया है ॥ ८० ॥

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण समाप्त

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम् ।

स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

कौटलीय अर्थशास्त्र समाप्त .



चाणक्य प्रणीत सूत्र

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २ ॥
 अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥
 इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं बृद्धोपसेवा
 ॥ ६ ॥ बृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं संपादयेत्
 ॥ ८ ॥ संपादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वो-
 र्थसंयुज्येत ॥ १० ॥ अर्थसंपत्प्रकृतिसंपदं करोति ॥ ११ ॥
 प्रकृतिसंपदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोप-
 संसर्वकोपेभ्योः गरीयान् ॥ १३ ॥

सुखका मूल (कारण) धर्म है ॥ १ ॥ धर्मका मूल, अर्थ है ॥ २ ॥
 अर्थका मूल राज्य है ॥ ३ ॥ इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनाही राज्यका मूल
 है ॥ ४ ॥ इन्द्रियोंके विजयका मूल, विनय है ॥ ५ ॥ बृद्धोंकी सेवा करना,
 विनयका मूल है ॥ ६ ॥ बृद्धोंकी सेवाका मूल, विज्ञान है ॥ ७ ॥ इसलिये
 पुरुष, विज्ञानसे अपने आपको संपन्न बनाने ॥ ८ ॥ जो पुरुष विज्ञानसे
 संपन्न होता है, वह अपने ऊपर काबू पासकता है ॥ ९ ॥ अपने ऊपर काबू
 रखनेवाला पुरुष, सब अर्थोंसे समुक्त हाजाता है ॥ १० ॥ अर्थसम्पत्ति,
 प्रकृतिसम्पत्ति (अमात्य, सेना, मित्र आदि सम्पत्ति) को बरपन्न करनेवाली
 होती है ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपत्तिके द्वारा, नेतारहित राज्यका भी संचालन
 किया जासकता है ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोप, सब कोंसे बढवान् होता है ॥ १३ ॥

अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ संपाद्या-
 त्मानमन्विच्छेत्सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः
 ॥ १६ ॥ नैकं चक्र परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायस्समसुखदुःखः
 ॥ १८ ॥

विनयहीन स्वामीके छात्रसे, स्वामीका लाभ न होनाही अच्छा है
 ॥ १४ ॥ अपने आपको शक्तिपन्पन्न बनानेकर, फिर सहायकोंकी इच्छा करे

(सूत्रमें 'सहायवान्' के स्थानपर 'सहायकान्' पाठ संगत मालूम होता है)
 ॥ १५ ॥ क्योंकि सहायकहीन राजाके मन्त्रका, कभी निश्चय नहीं होसकता
 ॥ १६ ॥ एक पहिया कभी गाड़ीको धुमा नहीं सकता ॥ १७ ॥ सहायक चही
 होता है, जो अपने सुख और दुःखमें बराबर साथी रहे ॥ १८ ॥

मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥१९॥
 अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥ श्रुतवन्तमुपघाशु-
 ङ्गं मन्त्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मन्त्रमूलास्त्वरारम्भाः ॥ २२ ॥
 मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ॥ २३ ॥ मन्त्रविस्त्रावी कार्यं नाश-
 यति ॥ २४ ॥ प्रमादात् द्विपतां वशमुपयास्यति ॥ २५ ॥ सर्व-
 द्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपदा राज्यं वर्धते
 श्रेष्ठतमां मन्त्रगुप्तिमाहुः ॥ २८ ॥ कार्यान्धस्य प्रदीपो मन्त्रः
 ॥ २९ ॥ मन्त्रचक्षुषा परच्छिद्राप्यवलोकयन्ति ॥ ३० ॥

मानी पुरप, अपने समान दूसरे मानी पुरुषकोही अपना सलाहकार
 बनावे ॥ १९ ॥ विनयहीन पुरुषको, केवल खेदके कारण, कभी मन्त्र (सलाह
 करने) में सम्मिलित न करे ॥ २० ॥ विद्वान् तथा सब तरहसे परीक्षा किये
 हुए शुद्ध हृदय पुरुषको, मन्त्री बनावे ॥ २१ ॥ सब कार्य, मन्त्रपरही निर्भर
 होते हैं ॥ २२ ॥ मन्त्रकी रक्षा करनेमें कार्यकी सिद्धि होती है ॥ २३ ॥
 मन्त्रको फोड़ देनेवाला पुरप, कार्यको नष्ट करदेता है ॥ २४ ॥ प्रमादसे
 शत्रुओंके वशमें चला जाता है ॥ २५ ॥ इसलिये सब ओरसे, मन्त्रकी
 अवश्य रक्षा करना चाहिये ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपत्तिले (अर्थात् मन्त्रके सुरक्षित
 रहनेसे) राज्य बढ़ता है ॥ २७ ॥ मन्त्रको गुप्त रखना सबसे श्रेष्ठ बात कही
 गई है ॥ २८ ॥ कार्यके (कर्मण्यकर्मण्यके) विषयमें अन्धे हुए २ पुरुषके
 लिये, मन्त्र प्रदीप होता है ॥ २९ ॥ मन्त्ररूपी चक्षुसेही, पुरुष, शत्रुके
 दोषोंको देखपाते हैं ॥ ३० ॥

मन्त्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३१ ॥ त्रयाणामेकवाक्ये
 संप्रत्ययः ॥ ३२ ॥ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिणः ॥ ३४ ॥
 यद्गुणान्द्रियते मन्त्रः ॥ ३४ ॥

मन्त्रके समयमें किसीसे डाह नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ तीन
 पुरपोंकी एक सम्मति होनेपरही, किसी अर्थका निश्चय किया जासकता है
 ॥ ३२ ॥ कार्य और अकार्यके वास्तविक अर्थको देखनेवालेही मन्त्री होते हैं

॥ ३३ ॥ छः कानोंसे मन्त्र छूट जाता है, अर्थात् छः कानोंमें जातेही मन्त्र,
प्रकट होजाता है ॥ ३४ ॥

आपत्सु स्नेहसंयुक्त मित्रम् ॥ ३५ ॥ मित्रसंग्रहणे घलं संप-
घते ॥ ३६ ॥ बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३७ ॥ अलब्धला-
भो नालसस्य ॥ ३८ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितं न शक्यते
॥ ३९ ॥ स चालसस्य रक्षितं विवर्धते ॥ ४० ॥ न भृत्यान्
प्रेषयति ॥ ४१ ॥

जो पुरुष आपत्तिकालमें भी, स्नेह पूर्वक अपने साथ रहे, वही मित्र
कहाता है ॥ ३५ ॥ मित्रों का संग्रह कर लेने पर अपना बल बढ़ जाता है
॥ ३६ ॥ बलवान् पुरुष, अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता
है ॥ ३७ ॥ आलसी पुरुष को कभी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं होसकती ॥ ३८ ॥
आलसी को, अपनी प्राप्त वस्तु की रक्षा करनी भी अशक्य होजाती है ॥ ३९ ॥
आलसी पुरुष का, रक्षित (रक्षा किया हुआ) भी अर्थ कभी वृद्धि को प्राप्त
नहीं होता । (मूल पुस्तक में 'स चालसस्य' पाठ छपा हुआ है, परन्तु
यह पाठ असंगत मालूम होता है; 'न चालसस्य' पाठ होना चाहिये ॥ ४० ॥
वृद्धि को प्राप्त न होनेके कारण ही, आलसी पुरुष अपने भृत्यों तक को भी
धन वितरण नहीं कर सकता ॥ ४१ ॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम् ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्रा-
यत्तं नीतिशास्त्रम् ॥ ४३ ॥ राज्यतन्त्रेष्वायत्तौ तन्त्रावापौ ॥ ४४ ॥
तन्त्रं स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४५ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः
॥ ४६ ॥ सन्धिविग्रहयोर्निर्मण्डलः ॥ ४७ ॥

अलब्धलाभ आदि चारों वस्तु (अलब्धलाभ, लब्ध परिक्षण, रक्षित
विवर्धन, और घर्षित का भृत्योंमें वितरण) ही राज्य तन्त्र हैं, अर्थात् राज्यकी
परिस्थिति यही है, इन्हींका नाम राज्यसत्ता है ॥ ४२ ॥ राज्य तन्त्र (राज्य-
सत्ता या राज्य परिस्थिति) का आधार, नीति शास्त्र ही होता है ॥ ४३ ॥
तन्त्र और आवाप, राज्यसत्ता के ही अधीन होते हैं ॥ ४४ ॥ अपने देशके
कार्यों में ही तन्त्र, आयत्त है । अर्थात् अपने देशमें, सामदान आदि उपायों
का प्रयोग करने में तन्त्र (राज्यकी सत्ता) का निर्भर है ॥ ४५ ॥ मण्डल
(भारत प्रकार के राज मण्डल) में निविष्ट (प्रयुक्त=प्रयोग किये गये), साम
आदि को ही आवाप कहते हैं ॥ ४६ ॥ मण्डल, सन्धि और विग्रह का कारण

होता है; अर्थात् सन्धि और विग्रह का होना, मण्डल (राज समूह) पर ही निर्भर होता है । (सन्धि विग्रह यहां उपलक्षण मात्र हैं, यान, आसन, संग्रह, द्वैधीभाव, इन शेष चार गुणों का भी ग्रहण कर लेना चाहिये) ॥४७॥

नीतिशास्त्रानुगो राजा ॥४८॥ अनन्तरप्रकृतिदशत्रुः ॥४९॥
एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥५०॥ हेतुतदशत्रुमित्रे भविष्यतः ॥५१॥
हीयमानस्सन्धिं कुर्वीत ॥ ५२ ॥ त्रेजो हि संघानहेतुस्तदर्थानाम्
॥ ५३ ॥ नातमलोहो लोहेन संघीयते ॥ ५४ ॥

नीति शास्त्रके अनुसार कार्य करने वाला, राजा होता है अर्थात् राजा, उसी को कहा जा सकता है, जो नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करे ॥ ४८ ॥ अपने देशके, साथ लगे हुए (=अन्तर=अभ्यर्थाह) देशमें राज्य करने वाला राजा, मित्र होता है ॥ ५० ॥ शत्रु और मित्र, किसी कारणसे ही बन जाते हैं ॥ ५१ ॥ क्षीण शक्ति होता हुआ पुरुष, सन्धि कर लेवे ॥ ५२ ॥ उन २ अर्थोंके जोड़ने का कारण, तेज ही होता है ॥ ५३ ॥ बिना तपा हुआ लोहा, लोहेके साथ जुड़ नहीं सकता ॥ ५४ ॥

बलवान् हीनेन विगृह्णीयात् ॥५५॥ न ज्यायसा समेन वा
॥ ५६ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः । ५७ ॥ आसपात्रमा-
मेन सह विनश्यति ॥ ५८ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५९ ॥
संग्रायैकत्रो वा ॥ ६० ॥

बलवान्, राजा, हीन (दुर्बल) के साथ विग्रह (झगड़ा) कर देवे ॥५५॥ अपने बड़े या बराबर वालेके साथ कभी झगड़ा न करे ॥ ५६ ॥ बलवान्के साथ लड़ाई करना, हाथी (हाथी सवार) और पैदल की लड़ाईके समान होता है ॥ ५७ ॥ लड़ा बर्तन, बड़े बर्तनके साथ भिड़कर टूट जाता है, इसलिये बराबर वालेके साथ भी लड़ाई नहीं करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ शत्रुके प्रयत्नका संदा, अच्छा तरह निरीक्षण करता रहे ॥ ५९ ॥ अथवा एक और से सन्धि करके रहे । अर्थात् अनेक शत्रु होने पर एक शत्रुसे सन्धि कर लेवे ॥ ६० ॥

अमित्रविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६१ ॥ शक्तिहीनो बल-
वन्तमाश्रयेत् ॥ ६२ ॥ दुर्बलाश्रयो दुःखमावहति ॥ ६३ ॥
अमित्रद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६४ ॥ राज्ञः प्रतिकूलनाचरेत् ॥ ६५ ॥

उद्धतवेपथरो न भवेत् ॥ ६६ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६७ ॥
द्वयोःपीर्ष्यतोः द्वैधीभावं कुर्वीत ॥ ६८ ॥

राशुके द्वारा किये जाने वाले विरोधसे, अपने आपकी रक्षा करे ॥ ६७ ॥
शक्तिहीन राजा, बलवान् का आश्रय लेलेवे ॥ ६८ ॥ दुर्बलका आश्रय लेने
वाला राजा, सदा हु ए उठाता है ॥ ६९ ॥ अग्निके समान ही राजा का आश्रय
लेवे । अर्थात् भागके समीप जिस तरह पुरुष रहता है, उसी तरह राजाके
समीप रहे ॥ ६९ ॥ राजाके प्रतिकूल, कदापि आश्रय न करे ॥ ६९ ॥
उद्धत वेपथको कभी धारण न करे; अर्थात् सदा साम्यवेप ही रखे ॥ ६६ ॥
देवताओंके चरित की नकल न उतारे ॥ ६७ ॥ परस्पर ईर्ष्या रखने वाले
दो राजाओं में फूट डाल देवे ॥ ६८ ॥

न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६९ ॥ इन्द्रियवशवर्ती च-
तुरङ्गवानपि विनश्यति ॥ ७० ॥ नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ॥ ७१ ॥
मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७२ ॥ अर्थेपणा न व्यसनेषु
गण्यते ॥ ७३ ॥ न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७४ ॥
अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यात्स-
र्वजनद्वेष्यो भवति ॥ ७६ ॥ अर्थतोपिणं श्रीः परित्यजति ॥ ७७ ॥

व्यसनमें फसे हुए राजाकी कार्यसिद्धि कभी नहीं होती ॥ ६९ ॥
इन्द्रियोंके वशमें हुआ २ राजा, चतुराग सेनाके होने पर भी नष्ट होजाता है ॥
७० ॥ जुएमें लग्न हुए राजा का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ७१ ॥
शिकारमें ही तत्पर रहने वाले राजा के धर्म और अर्थ नष्ट होजाते हैं ॥ ७२ ॥
अर्थकी अभिलाषाको व्यसनमें नहीं गिना जाता ॥ ७३ ॥ कामासक्त (कामी)
राजा के कार्य, कभी नहीं किये जाते ॥ ७४ ॥ घाणों की कठोरता, अग्निके
जलाने से भी बढ़कर हाती है ॥ ७५ ॥ दण्डकी कठोरतासे, राजा, सब जनता
का द्वेष्य होजाता है ॥ ७६ ॥ अर्थके विषयमें सम्योप रखने वाले राजाको
सहमी छोट देती है ॥ ७७ ॥

अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन्
प्रजास्संरक्षति ॥ ७९ ॥ दण्डस्संपदा योजयति ॥ ८० ॥ दण्डा-
भावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥ ८१ ॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥ ८२ ॥
दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८३ ॥ आत्मानि रक्षिते सर्व

रक्षितं भवति ॥ ८४ ॥ आत्मायत्तौ वृद्धिचिनाशौ ॥ ८५ ॥ दण्डो
हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८६ ॥

शासुकी अधीनता दण्डनीति पर ही निर्भर है ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिको ही भाव्य लेता हुआ राजा, सम्पूर्ण प्रजाओंकी रक्षा करता है ॥ ७९ ॥ दण्ड, संपत्तिसे युक्त करदेता है । अर्थात् संपत्ति का बढना, दण्ड नीति पर ही निर्भर है ॥ ८० ॥ दण्डकी शक्ति न रहने पर, मन्त्रिसमूह का अभाव होजाता है । अर्थात् वे लोग नियममें नहीं रहते ॥ ८१ ॥ दण्डके होने पर वे लोग, न करने योग्य कार्योंको नहीं करते ॥ ८२ ॥ अपनी रक्षाभी दण्डनीति पर निर्भर रहती है ॥ ८३ ॥ अपनी रक्षा होने पर, सबकी रक्षा की जासकती है ॥ ८४ ॥ वृद्धि और विनाश, अपने ही ऊपर निर्भर होते हैं ॥ ८५ ॥ अर्थात्तरह सोच विचार कालेने पर ही दण्ड का प्रयोग किया जाना चाहिये ॥ ८६ ॥

दुर्बलोपि राजा नावमन्तव्यः ॥ ८७ ॥ नास्त्यग्नेर्दौर्बल्यम्
॥ ८८ ॥ दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८९ ॥ वृत्तिमूलमर्थलामः
॥ ९० ॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ९१ ॥ अर्थमूलं कार्यम् ॥ ९२ ॥
यदल्पप्रयत्नात्कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वं न दुष्करं
स्यात् ॥ ९४ ॥ अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि नश्यति ॥ ९५ ॥
कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ॥ ९६ ॥ कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं
संपद्यते ॥ ९७ ॥ पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ॥ ९८ ॥ दैवं विना-
शतिप्रयत्नं करोति यच्चद्विफलम् ॥ ९९ ॥

राजाको दुर्बल समझकर, कभी उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ ८७ ॥ अग्नि, कभी दुर्बल नहीं होती ॥ ८८ ॥ व्यवहार, दण्डके आधारपर ही जाना जाता है ॥ ८९ ॥ अधकी प्राप्ति, व्यवहारमूलक होती है ॥ ९० ॥ धर्म और काम, अर्थमूलक होते हैं ॥ ९१ ॥ कार्यही अर्थका मूल होता है ॥ ९२ ॥ क्योंकि योद्धा भी प्रयत्न करनेसे कार्यकी सिद्धि होजाती है ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वक किया जाता हुआ कोई भी कार्य, कठिन मालूम नहीं होता ॥ ९४ ॥ जो कार्य, उपायसे नहीं किया जाता, वह किया कराया भी नष्ट होजाता है ॥ ९५ ॥ कार्यमें सफलता चाहनेवालोंके लिये, उपायही परम सहायक होता है ॥ ९६ ॥ कोई भी कार्य, पुरुषार्थके द्वाराही लक्ष्य बनसकता है ॥ ९७ ॥

दैव भी पुरुषार्थके पीछे २ चलता है ॥ १८ ॥ दैवके बिना, अत्यन्त प्रयत्नसे किया हुआ कार्य भी विफल होजाता है ॥ १९ ॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥ १०० ॥ पूर्व निश्चित्य पश्चात्कार्यमारभेत् ॥ १०१ ॥ कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ॥ १०२ ॥ न चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ॥ १०३ ॥ हस्तगतावमानात्कार्षव्यतिक्रमो भवति ॥ १०४ ॥ दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥ १०५ ॥ दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ॥ १०६ ॥

अज्ञानधान रहते हुए पुरुषका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता ॥ १०० ॥ पहिले निश्चय करके, फिर कार्यका आरम्भ करे ॥ १०१ ॥ दूसरे कार्यके करनेमें दीर्घसूत्रता न करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ चलचित्त पुरुषकी, कभी कार्यपिण्ड नहीं होती ॥ १०३ ॥ हाथमें आई हुई वस्तुका तिरस्कार करनेसे, काम विगड़ जाता है ॥ १०४ ॥ ऐसे कार्य, संसारमें बहुत दुर्लभ हैं, जो दोषोंसे सर्वथा रहित हों ॥ १०५ ॥ दुःख या कठिनताओंसे भरे हुए कार्योंका आरम्भ न करे ॥ १०६ ॥

कालचित् कार्यं साधयेत् ॥ १०७ ॥ कालातिक्रमात्काल एव फलं पिबति ॥ १०८ ॥ क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात्सर्वकृत्येषु ॥ १०९ ॥ देशफलविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥ ११० ॥ दैवहीनं कार्यं सुसाधमपि दुस्साधं भवति ॥ १११ ॥

समयको पहिचाननेवाला पुरुष, अपने कार्यको सिद्ध करे, तात्पर्य यह है, कि यही पुरुष अपने कार्यको सिद्ध करसकता है, जो समयकी गति या पहिचानतिको खूब पहिचानता है ॥ १०७ ॥ कार्यके उचित कालके चूक जाने से, कालही, उस कार्यके फलको पीजाता है ॥ १०८ ॥ इसलिये सषट्ही कामोंमें एक क्षण भी कालविक्षेप न करे ॥ १०९ ॥ देश और फलका विवेचन करकेही कार्यका आरम्भ करे ॥ ११० ॥ आसान भी काम, दैवके विपरीत होनेपर कठिन होजाता है ॥ १११ ॥

नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥ ११२ ॥ परीक्ष्यकारिणि श्रीधिरं तिष्ठति ॥ ११३ ॥ सर्वाश्च संपदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११४ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ ११५ ॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११६ ॥

नीतिज्ञ पुरप, देश और कालका दृष्टीतरह विचार करे ॥ ११२ ॥
 विचारपूर्वक कार्य करनेवाले पुरुषके पास, लक्ष्मी धिरकालतक निवास करती
 है ॥ ११३ ॥ सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका, सबहीं उपायोंसे (साम, दान, दण्ड भेद
 ये चार उपाय होते हैं) समग्र करे ॥ ११४ ॥ भाग्यशाली भी, अपरीक्ष्यकारी
 (बिना विचारेही काम करनेवाले) राजाको, लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ११५ ॥
 प्रत्येक वस्तुकी परीक्षा, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंसे करनी चाहिये
 ॥ ११६ ॥

यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेन योजयेत् ॥ ११७ ॥
 दुस्ताधमपि सुसाधं करोत्युपायज्ञः ॥ ११८ ॥ अज्ञानिना कृत-
 मपि न बहुमन्तव्यम् ॥ ११९ ॥ यादृच्छिक्तत्वात् वृमिरपि
 रूपान्तराणि करोति ॥ १२० ॥ सिद्धस्यै कार्यस्य प्रकाशनं
 कर्तव्यम् ॥ १२१ ॥ ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात्कार्याणि
 दुष्यन्ति ॥ १२२ ॥

जो जिस कार्यक करनेमें चतुर हो, उसको उसी कार्यपर लगाना
 चाहिये ॥ ११७ ॥ उपायोंका जाननेवाला पुरप, कठिन कामोंको भी सीधा
 बना लेता है ॥ ११८ ॥ अज्ञानीके द्वारा किये गये, कार्यको बहुत नहीं
 मानना चाहिये ॥ ११९ ॥ क्योंकि कीटा भी यदृच्छासेही, अनेक रूप रूपा-
 न्तरोंको बना देता है ॥ १२० ॥ सिद्ध हुए २ कार्यकाही प्रकाश किया जाना
 चाहिये ॥ १२१ ॥ ज्ञानी पुरपोंके भी कार्य, दैवदोष या मानुष दोषोंसे
 दूषित होजाते हैं, अर्थात् सफल नहीं होजाते ॥ १२२ ॥

दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिपेद्व्यम् ॥ १२३ ॥ मानुषीं कार्य-
 विपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥ १२४ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान्
 वर्णयन्ति बालिशाः ॥ १२५ ॥ कार्यार्थिना द्राक्षिण्यं न कर्तव्यम्
 ॥ १२६ ॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ॥ १२७ ॥
 अप्रयत्नात्कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥ १२८ ॥ न दैवप्रमाणानां कार्य-
 सिद्धिः ॥ १२९ ॥

शान्तिकर्मके द्वारा, देवका प्रतीकार करना चाहिये ॥ १२३ ॥ और
 अपने कार्योंमें, जो विपत्तियाँ, मनुष्यके द्वारा प्राप्त हों, उनका निवारण
 (प्रतीकार) अपने कौशल अर्थात् चातुर्यसे करे ॥ १२४ ॥ कर्षके समय

त्रिपत्ति आनेपर, मूर्ख पुरुषही, उनमें दोषोंका वर्णन करते हैं ॥ १२५ ॥ जो पुरुष, अपने कार्यमें सफलता चाहे, उसे सर्वथा सरल न होना चाहिये ॥ १२६ ॥ बछड़ा भी जब दूध चाहता है, अपनी माताके भयन (ऐन= ऊधसु) में आघात करता है ॥ १२७ ॥ प्रयत्न न करनेसे, अथवाही कार्योंमें विपत्ति या विघ्न आजाता है ॥ १२८ ॥ दैवकोही प्रमाण माननेवाले पुरुषकी कार्यसिद्धि कभी नहीं होती ॥ १२९ ॥

कार्यवाहो न पोषयत्याश्रितान् ॥ १३० ॥ यः कार्यं न पश्यति सोऽन्धः ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३२ ॥ अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ १३३ ॥ परीक्ष्य तार्या विपत्तिः ॥ १३४ ॥ स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥ १३५ ॥ स्वजनं तर्पयित्वा यज्ञेषुभोजी सोऽमृतभोजी ॥ १३६ ॥ सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्धन्ते ॥ १३७ ॥ नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥ १३८ ॥

कार्यसे पृथक् रहनेवाला पुरुष, अपने आश्रित व्यक्तियोंका कदापि पालन पोषण नहीं करसकता ॥ १३० ॥ जो अपने कार्यको नहीं देखता, वही अन्धा है ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्ष, परोक्ष (शब्द) और अनुमान प्रमाणोंसे कार्योंकी परीक्षा करे ॥ १३२ ॥ बिना विचारे काम करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ १३३ ॥ अच्छीतरह विवेकपूर्वक विपत्तिको पार करे ॥ १३४ ॥ अपनी शक्तिको समझकर, कार्यको आरम्भ करे ॥ १३५ ॥ अपने आश्रितोंको तृप्त कराके, जो दोष भूल खानेवाला होता, वही अमृतभोजी (अमृत खानेवाला) समझना चाहिये ॥ १३६ ॥ सब तरहके उचित कार्योंके करनेसे, आमदनीके रास्ते बढ जाते हैं ॥ १३७ ॥ भीरु (=अपरिश्रमी=कामचोर) पुरुषको, अपने कार्योंकी कोई चिन्ता नहीं होती ॥ १३८ ॥

'स्वामिनश्शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ॥ १३९ ॥ धेनोश्शीलज्ञः क्षीरं भुङ्क्ते ॥ १४० ॥ क्षुद्रे मुखप्रकाशनमात्मवान्न कुर्यात् ॥ १४१ ॥ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥ १४२ ॥ तीक्ष्णादण्डस्सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ॥ १४३ ॥ यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४४ ॥

कार्य करनेकी दृष्टा रखनेवाला पुरुष, अपने स्वामीके स्वभावको

जानकरहो, कार्यको सिद्ध करे, या कार्यको सफल बनावे ॥ १३९ ॥ जो पुण्य, गायके स्वभावसे परिचित होता है, वही उसके दूधका उपभोग करता है ॥ १४० ॥ आरमवान् (अपनी कुछ हैसियत रखनेवाला) पुरुष, छोटे विचार रखनेवाले आदमीपर, अपने छिपे भेदोंको प्रकट न करे ॥ १४१ ॥ जो राजा सरल स्वभावका हो उसका, उसके आश्रित पुण्यभी तिरस्कार कर देते हैं ॥ १४२ ॥ और जो राजा, तीव्र स्वभावका होता है, उसमें सभी पुरुष उद्विग्न (खिन्न=बेचैन) रहते हैं ॥ १४३ ॥ इसलिये राजाको, उचित दृष्ट देने वालाही होना चाहिये ॥ १४४ ॥

अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहुमन्यते लोकः ॥ १४५ ॥
 अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥ १४६ ॥ यस्संसदि परदोषं संसति
 स स्वदोषग्रह्यत्वं प्रख्यापयति ॥ १४७ ॥ आत्मानमेव नाशयत्य-
 नात्मवर्ता कोषः ॥ १४८ ॥ नास्त्यप्राप्यं सत्यवताम् ॥ १४९ ॥
 साहसेन न कार्यसिद्धिर्मवति ॥ १५० ॥ व्यसनातो विसरत्य-
 प्रवेशेन ॥ १५१ ॥

शास्त्रपारगामी भी दुर्बल राजाको, जनता बहुत नहीं मानती ॥ १४५ ॥ अधिक भार, पुरुषको खिन्न करदेता है ॥ १४६ ॥ जो पुरुष, सभामें दूसरेके दोषका कथन करता है, वह अपनेही दोषोंकी अधिकताको प्रसिद्ध करता है ॥ १४७ ॥ अपने आपको वशमें न रखनेवाले पुरुषोंका क्रोध, स्वयं उनकोही नष्ट करदेता है ॥ १४८ ॥ सत्यका आचरण करनेवाले पुरुषोंके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती ॥ १५० ॥ विपद्मस्त पुरुष, विपत्तियोंके टलजानेपर, उन्हें भूल जाता है ॥ १५१ ॥

नास्त्यनन्तरापः कालविक्षेपे ॥ १५२ ॥ असंशयविनाश-
 त्संशयविनाशश्चेयान् ॥ १५३ ॥ अपरधनानि निक्षेप्तः केवलं
 स्वार्थम् ॥ १५४ ॥ दानं धर्मः ॥ १५५ ॥ नार्यागतोऽर्थवद्विप-
 रीतोऽनर्थभावः ॥ १५६ ॥ यो धर्मार्थौ न विवर्धयति स कामः
 ॥ १५७ ॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥ १५८ ॥

समय चूरुजानेपर, कार्योंमें अवश्यही विघ्न, उपस्थित होजाते हैं ॥ १५२ ॥ संदेह रहित विनाशसे (अर्थात् अवश्यम्भावी विनाशसे) संदिग्ध विनाश (जिस विनाशमें संदेह हो, ऐसा विनाश) अच्छा होता है ॥ १५३ ॥ दूसरेके धनोंको अमानत रखनेवाले पुरुषका केवल स्वार्थही प्रयोजन होता है

॥ १५४ ॥ दान देना धर्म है ॥ १५५ ॥ वैश्यवृत्तिले किया हुआ वह धर्म, सफल नहीं होता । तथा दान धर्मका न करना, तो सर्वथाही अनर्थका हेतु होता है ॥ १५६ ॥ 'काम' वही होता है, जोकि धर्म और अर्थको नहीं घटाता ॥ १५७ ॥ धर्म और अर्थके घटानेवाले अथवा न बढ़ने देनेवाले 'काम' का सेवन करना तो, अनर्थकाही सेवन करता है ॥ १५८ ॥

• अजुखभावपरो जनेषु दुर्लभः ॥ १५९ ॥ अवमानेनागत-
मैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १६० ॥ बहूनपि गुणानेकदोषो प्रसति
॥ १६१ ॥ महात्मना परेण साहसं न कर्तव्यम् ॥ १६२ ॥ क-
दाचिदपि चारित्रं न लङ्घयेत् ॥ १६३ ॥ क्षुधाऽऽर्तो न तृणं
चरति सिंहः ॥ १६४ ॥ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥ १६५ ॥
पिशुनश्श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते ॥ १६६ ॥

मनुष्योंमें, सर्वथा सरल स्वभावका पुरुष, दुर्लभ होता है ॥ १५९ ॥ तिरस्कारपूर्वक भावे हुए ऐश्वर्यको, सज्जन पुरुष, तिरस्कृत करदेता है । अर्थात् उसे नहीं अपनाते ॥ १६० ॥ बहुतसे गुणोंको भी, अकेलाही दोष खाता है ॥ १६१ ॥ महात्मा श्रेष्ठ धर्म(त्मा) शत्रुके साथ, युद्ध नहीं करना चाहिये ॥ १६२ ॥ चरित्र (सदाचार) का कभी उल्लङ्घन न करे ॥ १६३ ॥ भूखा भी सिंह, कभी तिनके नहीं चरता ॥ १६४ ॥ प्राण देकर भी अपने विश्वासकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १६५ ॥ चुगली करनेवाले और सुननेवाले पुरुषको, उसके कौपुत्रादि भी छोड़ देते हैं ॥ १६६ ॥

बालादप्यर्थजातं शृणुयात् ॥ १६७ ॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न
वदेत् ॥ १६८ ॥ नाल्पदोषाद्बहुगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६९ ॥ विप-
श्चित्स्वपि सुलभा दोषाः ॥ १७० ॥ नास्ति रत्नमखण्डितम्
॥ १७१ ॥ मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ॥ १७२ ॥
अग्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७३ ॥ नमन्त्यपि तुला-
कोटिः कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७४ ॥

बालकसे भी उचित बातको सुनलेये ॥ १६७ ॥ विश्वासके अयोग्य सत्य भी न बोले ॥ १६८ ॥ थोड़ेसे दोषसे, बहुतसे गुणोंको छोड़ा नहीं जाता ॥ १६९ ॥ विद्वानोंमें भी दोषका होजाना आसान है ॥ १७० ॥ जैसे कोई भी रत्न अखण्डित नहीं होता ॥ १७१ ॥ कभी भी मर्यादासे अधिक विश्वास

न करे ॥ १७२ ॥ अग्निपुरण (अग्नि) के सम्बन्धमें किया हुआ प्रिय कार्य (उस शत्रुके अनुकूल) भी द्वेष्य (प्रतिकूल) ही समझा जाता है ॥ १७३ ॥ हुकती हुई भी डीकली, कुण्डके जलका क्षय करदेती है ॥ १७४ ॥

सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७५ ॥ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोपि गुणी भवति ॥ १७६ ॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥ १७७ ॥ मृत्पिण्डोपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७८ ॥ रजतं कनकसंगात्कनकं भवति ॥ १७९ ॥ उपकर्तव्यं परकर्तुमिच्छत्यबुधः ॥ १८० ॥ न पापकर्मणामाक्रोशमयम् ॥ १८१ ॥

श्रेष्ठ पुरणोंके मन्तव्यका अतिक्रमण न करे ॥ १७५ ॥ गुणी पुरणका आश्रय लेनेसे, गुणहीन भी गुणी होजाता है ॥ १७६ ॥ दूधके आश्रित (अर्थात् दूधमें मिला हुआ) जल भी, दूधही होजाता है ॥ १७७ ॥ मट्टीका, डेला भी, पाटली (एक प्रकारका फूल) के गन्धको उत्पन्न करता है ॥ १७८ ॥ चांदी भी, सोनेके साथ मिलनेसे सोना होजाती है ॥ १७९ ॥ बुद्धिहीन पुरण, उपकार करनेवालेपर भी, अपकारही करना चाहता है ॥ १८० ॥ पाप कर्म करनेवाले पुरणोंको निन्दा का भय नहीं होता ॥ १८१ ॥

उत्साहवतां शत्रवोपि वशीभवन्ति ॥ १८२ ॥ विक्रमधना राजानः ॥ १८३ ॥ नास्त्यलसस्यैहिकामुष्मिकम् ॥ १८४ ॥ निरुत्साहाद्वैवं पतति ॥ १८५ ॥ मत्स्यार्थं जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८६ ॥ अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ १८७ ॥ विपं विपमेव सार्वकालम् ॥ १८८ ॥

उत्साही राजाओंके, शत्रु भी, वशमें होजाते हैं ॥ १८२ ॥ राजाओंका मुह्यधन विक्रम (बहादुरी) ही होता है ॥ १८३ ॥ आलसी व्यक्तिको, न ऐदौर्लौकिक और न पारलौकिकही सुख मिलता है ॥ १८४ ॥ उत्साहहीन होनेसे भाग्य भी गिर जाता है ॥ १८५ ॥ मछियारा जैसे जलको, इसी प्रकार पुरण उपयोग करके अर्थको ग्रहण करे । अथवा उपयोगमें आनेके योग्य अर्थको ग्रहण करे ॥ १८६ ॥ अविश्वस्त पुरणोंपर कभी विश्वास न करना चाहिये ॥ १८७ ॥ क्योंकि विप प्रत्येक समयमें विपही रहता है ॥ १८८ ॥

अर्थसमादाने वैरिणां सङ्ग एव न कर्तव्यः ॥ १८९ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत् ॥ १९० ॥ अर्थाधीन एव नियत-

संबन्धः ॥ १९१ ॥ शत्रोरपि सुतस्सखा रक्षितव्यः ॥ १९२ ॥
 यावच्छत्रोच्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा बाह्वः ॥ १९३ ॥
 शत्रुं छिद्रे परिहरेत् ॥ १९४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत्
 ॥ १९५ ॥ छिद्रप्रहारिणश्शत्रवः ॥ १९६ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं
 न विश्वसेत् ॥ १९७ ॥

अर्थका समग्र करनेमें, शत्रुओंका साथही न करना चाहिये ॥ १८९ ॥
 अर्थकी प्राप्ति होजानेपर भी शत्रुका विश्वास न करे ॥ १९० ॥ निश्चित सम्बन्ध,
 अर्थकेही अधीन होता है ॥ १९१ ॥ शत्रुका भी पुत्र यदि अपना मित्र हो, तो
 उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १९२ ॥ जबतक शत्रुके दोष या उसकी
 निर्बलताको नहीं देख लता, तबतक उसको अपने हाथ या कन्धेसे षडन करे
 ॥ १९३ ॥ जहा शत्रुकी दुर्बलता देखे, वही उसपर प्रहार करे ॥ १९४ ॥ अपने
 दोष या दुर्बलताको कभी प्रकट न होने देवे ॥ १९५ ॥ जो छिद्र (दोष या
 दुर्बलता) पर प्रहार करनेवाले होते हैं, वेही शत्रु समझे चाहियें ॥ १९६ ॥
 अपने हाथमें भाये हुए शत्रुका भी कभी विश्वास न करे ॥ १९७ ॥

स्वप्नस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९८ ॥ स्वजनावमानोपि
 मनस्विनां दुःखमावहति ॥ १९९ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसाद-
 यति ॥ २०० ॥ शत्रुं जयति सुवृत्तता ॥ २०१ ॥ निकृतिप्रिया
 नीचाः ॥ २०२ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या ॥ २०३ ॥ तेषु
 विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०४ ॥ सुपूजितोपि दुर्जनः पीडयत्येव
 ॥ २०५ ॥ चन्दनादीनपि दावोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०६ ॥

अपने भाइयोंके दुर्च्यवहारको रोके ॥ १९८ ॥ अपन भाइयोंका
 अपमान भी, मनस्वी पुरुषोंके छिय दुःखदाई होता है १९९ ॥ एक अंगका
 दोष भी पुरुषको नष्ट करदेता है ॥ २०० ॥ सद्ब्यवहारही शत्रुको जीतता है
 ॥ २०१ ॥ नीच पुरुषोंको तिरस्कार करनाही अच्छा मालूम होता है ॥ २०२ ॥
 नीच पुरुषको कभी सुमति न देनी चाहिये ॥ २०३ ॥ भार न उगपर कभी
 विश्वास करना चाहिये ॥ २०४ ॥ सत्कार किया हुआ भी दुष्ट पुरुष, पीडाही
 पहुँचाता है ॥ २०५ ॥ जगलकी भाग, चन्दन भाइको भी जलाही
 देती है ॥ २०६ ॥

कदाऽपि पुरुषं नावमन्येत ॥ २०७ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं
 न बाधेत ॥ २०८ ॥ मर्त्राऽधिकं रहस्युक्तं वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः

॥ २०९ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २१० ॥ प्रज्ञाफलमै-
श्वर्यम् ॥ २११ ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्लेशेन दास्यति
॥ २१२ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१३ ॥
नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥ २१४ ॥

पुरुषका कभी भी तिरस्कार न करे ॥ २०७ ॥ 'क्षमा करदेना चाहिये'
इसप्रकार पुरुषको कभी बाधित न करे ॥ २०८ ॥ अपने मालिकके द्वारा
एकान्तमें कही हुई बातका, बुद्धिहीन पुरुष, बहुत अधिक कहना चाहते हैं
॥ २०९ ॥ अनुराग अर्थात् प्रेम, परिणामके द्वाराही प्रतीत होता है ॥ २१० ॥
बुद्धिकाही परिणाम पेश्वर्ध होता है ॥ २११ ॥ देने योग्य वस्तुको भी, मूर्ख
पुरुष, बड़े क्लेशसे देता है ॥ २१२ ॥ मझान पेश्वर्धको प्राप्त करके भी धैर्यहीन
पुरुष नष्ट हाजाता है ॥ २१३ ॥ धैर्यहीन पुरुषको न ऐहलौकिक और न पारलौ-
किकही सुख मिल सकता है ॥ २१४ ॥

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१५ ॥ शौण्डहस्तगतं
पयोप्यवमन्येत ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः
॥ २१७ ॥ मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥ २१८ ॥ पथ्यमपथ्यं वाजीर्णे
नाश्रीयात् ॥ २१९ ॥ जीर्णभोजनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥ २२० ॥
जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२१ ॥ अजीर्णे भोजनं
दुःखम् ॥ २२२ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२३ ॥

दुर्जनोंके साथ कभी संसर्ग न करना चाहिये ॥ २१५ ॥ कलालके
हाथमें गया हुआ दूध भी बुरा समझा जाता है ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटोंमें
अर्थको निश्चय करनेवाली ही, बुद्धि होती है ॥ २१८ ॥ परिमित भोजन करना
ही स्वास्थ्य समझना चाहिये ॥ २१८ ॥ अजीर्ण होनेपर, पथ्य या अपथ्य
कुछ न खाये ॥ २१९ ॥ पहिला खायाहुआ पचजानेपर खानवाले पुरुषको
कोई व्याधि नहीं सताती ॥ २२० ॥ घूटे शरीरमें बढतीहुई व्याधि की, कभी
दवेक्षा न करनी चाहिये ॥ २२१ ॥ अजीर्ण होनेपर भोजन करना दुःखदाई
होता है ॥ २२२ ॥ व्याधि शत्रुसे भी अधिक कष्टपद होती है ॥ २२३ ॥

दानं निधानमनुगामि ॥ २२४ ॥ पदुतरे वृष्णापरे सुलभ-
मत्तिसन्धानम् ॥ २२५ ॥ वृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२६ ॥
कार्ष्ण्ये बहुव्ये बहुफलमायत्रिकं कुर्यात् ॥ २२७ ॥ स्वयमेवावस्कन्धं

कार्य निरीक्षेत ॥२२८॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥२२९॥ मूर्खेषु
विवादो न कर्तव्यः ॥ २३० ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३१ ॥
आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३२ ॥ नास्त्यधीमतस्सखा ॥ २३३ ॥

दान, कोशका अनुगामी होता है। अर्थात् जैसा अपना कोश हो,
उसके अनुसार ही दान किया जाता है ॥ २२४ ॥ जो पुरुष अत्यन्त तृष्णापर
हो, अर्थात् जिसकी तृष्णा बहुत बड़ी हुई हो, उसको वशमें करलेना, बहुत
आसान होता है ॥ २२५ ॥ तृष्णा, वृद्धिको ठक लेती है ॥ २२६ ॥ बहुतसे
कार्योंके होनेपर उनमेंसे उसी कार्यको करना चाहिये, जो अविषयमें अधिक
फल देनेवाला हो ॥ २२७ ॥ आक्रमण आदिके कार्यका, राजा स्वय ही निरी-
क्षण करे ॥ २२८ ॥ मूर्खोंमें निश्चित ही साहस (लड़ाई झगड़ा करनेका साहस)
होता है ॥ २२९ ॥ मूर्खोंमें कभी विवाद न करना चाहिये ॥ २३० ॥ मूर्खोंमें
मूर्खके समान ही कहना चाहिये ॥ २३१ ॥ लोहेको लोहेसे ही काटाजा-
सकता है ॥ २३२ ॥ बुद्धिहीन पुरुषका कोई मित्र नहीं होता ॥ २३३ ॥

धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३४ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुग-
च्छतः ॥ २३५ ॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३६ ॥ धर्ममूले
सत्यदाने ॥ २३७ ॥ धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३८ ॥ मृत्यु-
रपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३९ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र यत्र प्रस-
ज्यते तत्र धर्माधमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २४० ॥ उपस्थितविना-
शानां प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४१ ॥ आत्मविनाशं सूचय-
त्यधर्मबुद्धिः ॥ २४२ ॥

धर्मने ही लोकको धारण किया हुआ है ॥ २३४ ॥ धर्म और अधर्म,
मृत पुरुषके साथ २ जाते हैं ॥ २३५ ॥ दया ही धर्मकी जन्मभूमि है
॥ २३६ ॥ सत्य और दान, धर्ममूलक ही होते हैं ॥ २३७ ॥ धर्मके द्वारा
लोकोंको जीतलेता है ॥ २३८ ॥ मृत्यु भी धर्मात्मा पुरुषकी रक्षा करती है
॥ २३९ ॥ धर्मके विरुद्ध पापका जहाँ २ प्रसार होता है, वहाँ धर्मका महान
विरुद्धकार होता है ॥ २४० ॥ उपस्थित विनाशोंकी परिस्थिति, स्वभावसे या
कार्यसे पहिचानी जाती है। ('प्रकृत्या कार्येण' के ह्यानपर 'प्रकृतिराकारेण'
पेसा पाठ सामशास्त्रिने ठीक माना है। 'होनेवाले विनाशोंकी प्रकृति, आकारसे
पहिचानी जाती है' यही उसका अर्थ करना चाहिये) ॥ २४१ ॥ अधर्मबुद्धि
अपने (अधर्मात्माके) विनाशकी सूचना देती है ॥ २४२ ॥

मजबूत जंजीर है ॥ ३५६ ॥ जो जिस कार्यमें चतुर हों, उसको उसी कार्यपर लगाना चाहिये ॥ ३५७ ॥ दुष्ट स्त्री, मनस्वी पुरुषोंके शरीरको घूसनेवाली होती है ॥ ३५८ ॥

अप्रपत्तो दारान् निरीक्षेत ॥ ३५९ ॥ स्त्रीषु किञ्चिदपि न विश्वसेत् ॥ ३६० ॥ न ममाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ॥ ३६१ ॥ गुरूणां माता गरीयसी ॥ ३६२ ॥ सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ॥ ३६३ ॥ वैदुष्यमलङ्कारेणाच्छाद्यते ॥ ३६४ ॥ स्त्रीणां भूषणं लज्जा ॥ ३६५ ॥ विप्राणां भूषणं वेदः ॥ ३६६ ॥ सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥ ३६७ ॥ भूषणानां भूषणं सविनया विद्यते ॥ ३६८ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६९ ॥ साधुजनबहुलो देशः ॥ ३७० ॥

प्रमादरीहत होकर स्त्रीका निरीक्षण करे ॥ ३५९ ॥ स्त्रियोंपर कुछ भी विश्वास न करे ॥ ३६० ॥ स्त्रियोंमें निश्चलता तथा व्यवहारपटुता नहीं होती ॥ ३६१ ॥ सब बड़ी चीजोंमें माता ही सबसे बड़ी होती है ॥ ३६२ ॥ सब अवस्थाओंमें माताका श्रम पोषण करना चाहिये ॥ ३६३ ॥ विद्वत्ता, अलङ्कार (आभूषण आदि) से ढकदी जाती है ॥ ३६४ ॥ स्त्रियोंका भूषण लज्जा है ॥ ३६५ ॥ ब्राह्मणोंका भूषण वेद है ॥ ३६६ ॥ सबका भूषण धर्म है ॥ ३६७ ॥ लज्जा आदिका, विनयसे सहित होना, भूषणोंका भी भूषण होता है ॥ ३६८ ॥ उपद्रववाहित देशमें निवास करे ॥ ३६९ ॥ जहाँ साधुजन बहुत रहते हों, वही देश होता है ॥ ३७० ॥

राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ॥ ३७१ ॥ न राज्ञः परं दैवतम् ॥ ३७२ ॥ सुदूरमपि दहति राजबद्धिः ॥ ३७३ ॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७४ ॥ गुरुं च दैवं च ॥ ३७५ ॥ कुडुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७६ ॥ गन्तव्यं च सदा राजकुलम् ॥ ३७७ ॥ राजपुरुषैस्संबन्धं कुर्यात् ॥ ३७८ ॥ राजद्राप्सी न सेवितव्या ॥ ३७९ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत ॥ ३८० ॥ पुत्रे गुणवति कुडुम्बिनः स्वर्गः ॥ ३८१ ॥ पुत्रा विद्यानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८२ ॥

राजासे सदा डरना चाहिये ॥ ३७१ ॥ राजासे बदकर कोई दैवत नहीं होता ॥ ३७२ ॥ राजारूपी आग, बहुत दूर रहतेहुए भी जलादेती है

कार्यं निरीक्षेत ॥२२८॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥२२९॥ मूर्खेषु
विवादो न कर्तव्यः ॥ २३० ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३१ ॥
आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३२ ॥ नास्त्यधीमतस्सखा ॥ २३३ ॥

दान, कोशका अनुगामी होता है । अर्थात् जैसा अपना कोश हो,
उसके अनुसार ही दान किया जाता है ॥ २२४ ॥ जो पुरुष अत्यन्त वृष्णापर
हो, अर्थात् जिसकी वृष्णा बहुत बड़ी हुई हो, उसको नशर्म करलेना, बहुत
भासान होता है ॥ २२५ ॥ वृष्णा, वृद्धिको एक लेती है ॥ २२६ ॥ बहुतसे
कार्योंके होनेपर उनमेंसे उसी कार्यको करना चाहिये, जो भविष्यमें अधिक
फल देनेवाला हो ॥ २२७ ॥ आक्रमण आदिके कार्यका, राजा स्वय ही निरी-
क्षण करे ॥ २२८ ॥ मूर्खोंमें निश्चित ही साहस (लड़ाई झगडा करनेका माहा)
होता है ॥ २२९ ॥ मूर्खोंमें कभी विवाद न करना चाहिये ॥ २३० ॥ मूर्खोंमें
मूर्खके समान ही कहना चाहिये ॥ २३१ ॥ लोहेको लोहेसे ही काटाजा-
सकता है ॥ २३२ ॥ बुद्धिहीन पुरुषका कोई मित्र नहीं होता ॥ २३३ ॥

धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३४ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुग-
च्छतः ॥ २३५ ॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३६ ॥ धर्ममूले
सत्यदाने ॥ २३७ ॥ धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३८ ॥ मृत्यु-
रपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३९ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र यत्र प्रस-
ज्यते तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २४० ॥ उपस्थितविना-
शानां प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४१ ॥ आत्मविनाशं सूचय-
त्यधर्मबुद्धिः ॥ २४२ ॥

धर्मेण ही लोकको धारण किया हुआ है ॥ २३४ ॥ धर्म और अधर्म,
मृत पुरुषके साथ २ जाते हैं ॥ २३५ ॥ दया ही धर्मकी जन्मभूमि है
॥ २३६ ॥ सत्य और दान, धर्ममूलक ही होते हैं ॥ २३७ ॥ धर्मके द्वारा
लोकोंको जीतलेता है ॥ २३८ ॥ मृत्यु भी धर्मारामा पुरुषकी रक्षा करती है
॥ २३९ ॥ धर्मके विरुद्ध पापका जहा २ प्रसार होता है, वहाँ धर्मका महान
तिरस्कार होता है ॥ २४० ॥ उपस्थित विनाशोंकी परिस्थिति, स्वभावसे या
कार्यसे पहिचानी जाती है । ('प्रकृत्या कार्येण' के स्थानपर 'प्रकृतिराकारेण'
पेक्षा पाठ शांताशास्त्रिने ठीक माना है । 'होनेवाले विनाशोंकी प्रकृति, आकारसे
पहिचानी जाती है' यही उसका अर्थ करना चाहिये) ॥ २४१ ॥ अधर्मबुद्धि
शपने (अधर्मात्माके) विनाशकी सूचना देदेती है ॥ २४२ ॥

॥ २०९ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २१० ॥ प्रज्ञाफलमै-
श्वर्यम् ॥ २११ ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्रेशेन दास्यति
॥ २१२ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१३ ॥
नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥ २१४ ॥

पुरुषका कभी भी तिरस्कार न करे ॥ २०७ ॥ 'क्षमा करदेना चाहिये'
इसप्रकार पुरुषको कभी बाधित न करे ॥ २०८ ॥ अपने मालिकके द्वारा
पृकान्तमें कही हुई बातको, बुद्धिहीन पुरुष, बहुत अधिक कहना चाहते हैं
॥ २०९ ॥ अनुराग अर्थात् प्रेम, परिणामके द्वाराही प्रतीत होता है ॥ २१० ॥
बुद्धिकाही परिणाम ऐश्वर्य होता है ॥ २११ ॥ देने योग्य वस्तुको भी, मूर्ख
पुरुष, बड़े क्रेशसे देता है ॥ २१२ ॥ महान ऐश्वर्यको प्राप्त करके भी धैर्यहीन
पुरुष नष्ट होजाता है ॥ २१३ ॥ धैर्यहीन पुरुषको न ऐहलौकिक और न पारलौ-
किकही सुख मिल सकता है ॥ २१४ ॥

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१५ ॥ शौण्डहस्तगतं
पयोप्यवमन्येत ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः
॥ २१७ ॥ मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥ २१८ ॥ पथ्यमपथ्यं वाजीर्णे
नाश्रीयात् ॥ २१९ ॥ जीर्णभोजनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥ २२० ॥
जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२१ ॥ अजीर्णे भोजनं
दुःखम् ॥ २२२ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२३ ॥

दुर्जनोंके साथ कभी संसर्ग न करना चाहिये ॥ २१५ ॥ कलालके
हाथमें गया हुआ दूध भी बुरा समझा जाता है ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटोंमें
अर्थको निष्पन्न करनेवाली ही, बुद्धि होती है ॥ २१७ ॥ परिमित भोजन करना
ही स्वास्थ्य समझना चाहिये ॥ २१८ ॥ अजीर्ण होनेपर, पथ्य या अपथ्य
कुछ न खावे ॥ २१९ ॥ पहिला खायाहुआ पचजानेपर खानेवाले पुरुषको
काई व्याधि नहीं सताती ॥ २२० ॥ बूढ़े शरीरमें बढ़तीहुई व्याधि की, कभी
उपेक्षा न करनी चाहिये ॥ २२१ ॥ अजीर्ण होनेपर भोजन करना दुःखदाई
होता है ॥ २२२ ॥ व्याधि शत्रुसे भी अधिक कष्टदा होती है ॥ २२३ ॥

दानं निधानमनुगामि ॥ २२४ ॥ पटुतरे तृष्णापरे सुलभ-
मतिसन्धानम् ॥ २२५ ॥ तृष्णया मतिश्लघ्यते ॥ २२६ ॥
कार्यशुद्धौ बहुफलमायुषिकं कुर्यात् ॥ २२७ ॥ स्वयमेवावस्कम्भं

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ २ भी धनी पुरुष, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषसे बड़ा समझा जाता है ॥ २६० ॥ नीच पुरुषको अपने तिरस्कारका डर नहीं होता ॥ २६१ ॥ ज्ञानवान् चतुर पुरुषको, अपनी जीविकाका भय नहीं होता ॥ २६२ ॥ जितेन्द्रिय पुरुषको, विपयोंसे भय नहीं होता ॥ २६३ ॥ कृतकृत्य अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुषको मृत्युका भय नहीं होता ॥ २६४ ॥

कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः ॥ २६५ ॥ परविभवे-
ष्वादरो न कर्तव्यः ॥ २६६ ॥ परविभवेष्वादरोपि नाशमूलम्
॥ २६७ ॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ॥ २६८ ॥ परद्रव्या-
पहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ॥ २६९ ॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः
॥ २७० ॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ॥ २७१ ॥
न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ॥ २७२ ॥ समकाले स्वयमपि प्रभु-
त्वस्य प्रयोजनं भवति ॥ २७३ ॥

सज्जन पुरुष, किसी भी दूसरेके अर्थको, अपने ही अर्थके समान समझता है ॥ २६५ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंपर कभी दांत न लगाना चाहिये ॥ २६६ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंको अपनानेका विचार भी नाशका कारण होता है ॥ २६७ ॥ पुरालके समान भी दूसरेका द्रव्य, द्रव्य नहीं करना चाहिये ॥ २६८ ॥ दूसरेके द्रव्योंका अपहरण करना, अपने द्रव्योंके नाशका हेतु होता है ॥ २६९ ॥ चोरीसे अधिक और कोई भी, दुःखमें डालनेवाला बन्धन नहीं होता ॥ २७० ॥ समयपर लपसी भी प्राणोंको धारण करनेमें सहारा होती है ॥ २७१ ॥ मरेहुए आदमीका दवाईसे कुछ मतलब नहीं रहता ॥ २७२ ॥ किसी २ समयमें अपने आप भी, प्रभुताका प्रयोजन होता है ? ॥ २७३ ॥

नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ॥ २७४ ॥ पयः-
पानमपि विषवर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ॥ २७५ ॥ न हि
धान्यसमो ह्यर्थः ॥ २७६ ॥ न क्षुधासमश्ननुः ॥ २७७ ॥
अकृतेर्नियता क्षुत् ॥ २७८ ॥ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ २७९ ॥
इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २८० ॥ सानुक्रोशं भर्त्सारमा-
जीवेत् ॥ २८१ ॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं घमति ॥ २८२ ॥
विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८३ ॥

पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४३ ॥ पररहस्यं नैव
 श्रोतव्यम् ॥ २४४ ॥ वल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥ २४५ ॥
 स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥ २४६ ॥ माताऽपि दुष्टा त्याज्या
 ॥ २४७ ॥ स्वहस्तोपि विपदिग्धश्लेघः ॥ २४८ ॥ परोपि च
 हितो बन्धुः ॥ २४९ ॥ कक्षादप्यौषधं गृह्यते ॥ २५० ॥ ना-
 स्ति चोरेषु विश्वासः ॥ २५१ ॥ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्यः
 ॥ २५२ ॥ व्यसनं मनागपि वाधते ॥ २५३ ॥

सुगलखोर आदमीकी बात कभी छिपी नहीं रहती ॥ २४३ ॥ दूसरे
 की छिपी हुई बातको कभी न सुनना चाहिये ॥ २४४ ॥ मालिकका कठोर
 होना, अधर्मयुक्त होता है (?) ॥ २४५ ॥ अपने आदमियोंमें व्यवहारका
 बलघन नहीं करना चाहिये ॥ २४६ ॥ दुष्ट माताको भी छोड़ देना चाहिये
 ॥ २४७ ॥ विपत्ते भरे हुए अपने हाथको भी काट देना चाहिये ॥ २४८ ॥
 दूसरा आदमी भी हित करनेवाला अपना बन्धु ही होता है ॥ २४९ ॥ सूखे
 जगलसे भी औषधका ग्रहण किया जाता है ॥ २५० ॥ चोरोंमें कभी विश्वास
 नहीं होता ॥ २५१ ॥ विग्रहित कार्योंके करनेमें कभी उपेक्षा न करनी
 चाहिये ॥ २५२ ॥ थोड़ा भी व्यसन अवश्य पीड़ा पहुँचाता ही है ॥ २५३ ॥

अमरवदर्यजातमार्जयेत् ॥ २५४ ॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य
 बहुमतः ॥ २५५ ॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहुमन्यते लोकः
 ॥ २५६ ॥ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५७ ॥
 विरूपोऽर्थवान् सुरूपः ॥ २५८ ॥ अदातारमप्यर्थवन्तमार्थिनो
 न त्यजन्ति ॥ २५९ ॥ अकुलीनोपि कुलीनाद्विशिष्टः ॥ २६० ॥
 नास्त्यमानभयमनार्यस्य ॥ २६१ ॥ न चेतनवतां वृत्तिभयम्
 ॥ २६२ ॥ न जितेन्द्रियाणां विषयभयम् ॥ २६३ ॥ न कृतार्थानां
 मरणभयम् ॥ २६४ ॥

अपने भापको अमर समझकर अर्थोंका संग्रह करे ॥ २५४ ॥ धनवान्
 पुरुष, सब ही लोगोंका बहुत मान्य होता है ॥ २५५ ॥ अर्थहीन इन्द्रको
 भी, संसार बड़ा नहीं मानता ॥ २५६ ॥ पुरुषकी दरिद्रता, निश्चित ही, जीते
 हुए ही मरना है ॥ २५७ ॥ रूपहीन भी धनी पुरुष सुन्दर रूपवाला समझा
 जाता है ॥ २५८ ॥ न देनेवाले भी धनी पुरुषको, पाचक नहीं छोड़ते ॥ २५९ ॥

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ २ भी धनी पुरुष, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषसे बड़ा समझा जाता है ॥ २६० ॥ नीच पुरुषको अपने तिरस्कारका डर नहीं होता ॥ २६१ ॥ ज्ञानवान् चतुर पुरुषको, अपनी जीविकाका भय नहीं होता ॥ २६२ ॥ जितेन्द्रिय पुरुषको, विपयोंसे भय नहीं होता ॥ २६३ ॥ कृतकृत्य अर्थात् आरम्भज्ञानी पुरुषको मृत्युका भय नहीं होता ॥ २६४ ॥

कस्यचिदर्यं स्वमिव मन्यते साधुः ॥ २६५ ॥ परविभवे-
ष्वादरो न कर्तव्यः ॥ २६६ ॥ परविभवेष्वादरोपि नाशमूलम्
॥ २६७ ॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ॥ २६८ ॥ परद्रव्या-
पहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ॥ २६९ ॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः
॥ २७० ॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ॥ २७१ ॥
न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ॥ २७२ ॥ समकाले स्वयमपि प्रभु-
त्वस्य प्रयोजनं भवति ॥ २७३ ॥

सज्जन पुरुष, किसी भी दूसरेके अर्थको, अपने ही अर्थके समान समझता है ॥ २६५ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंपर कभी दांत न लगाना चाहिये ॥ २६६ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंको अपमानका विचार भी नाशका कारण होता है ॥ २६७ ॥ पुरालके समान भी दूसरेका द्रव्य, हठप नहीं करना चाहिये ॥ २६८ ॥ दूसरेके द्रव्योंका अपहरण करना, अपने द्रव्योंके नाशका हेतु होता है ॥ २६९ ॥ खोरीसे अधिक और कोई भी, दुःखमें डालनेवाला बन्धन नहीं होता ॥ २७० ॥ समयपर लपसी भी प्राणोंको धारण करनेमें सहारा होती है ॥ २७१ ॥ मरेहुए आदमीका दवाईसे कुछ मतलब नहीं रहता ॥ २७२ ॥ किसी २ समयमें अपने आप भी, प्रभुताका प्रयोजन होता है ? ॥ २७३ ॥

नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ॥ २७४ ॥ पयः-
पानमपि विपवर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ॥ २७५ ॥ न हि
धान्यसमो ह्यर्थः ॥ २७६ ॥ न क्षुधासमश्शत्रुः ॥ २७७ ॥
अकृतेर्नियता क्षुत् ॥ २७८ ॥ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ २७९ ॥
इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २८० ॥ सानुक्रोशं भर्तारमा-
जीवेत् ॥ २८१ ॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया सद्योतं धमति ॥ २८२ ॥
विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८३ ॥

नीच पुरुषकी विद्याएँ, उसको पापकर्ममें लगा देती है ॥ २७४ ॥
 मापको दूध पिलाना भी विप बढानेवाला ही होता है, यह अमृत कमी
 नहीं बनसकता ॥ २७५ ॥ धान्य (अन्न) के समान कोई अर्थ (धन)
 नहीं है ॥ २७६ ॥ भूखके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २७७ ॥ धनहीन
 पुरुषको निर्धन ही भूख बहुत सताती है ॥ २७८ ॥ भूख आदमीके लिये
 कोई वस्तु अमध्य नहीं होती ॥ २७९ ॥ इन्द्रिया पुरुषको बुढ़ापेके अधीन
 करदेती हैं ॥ २८० ॥ दयालु मालिकके पास अपनी जीविका करे ॥ २८१ ॥
 छोभी मालिककी सेवा करनेवाला पुरुषभी, वहा हालत होता है, जो आगके
 लिये, जुगनूको लेकर उसमें फूक मारनेवालेही होती है ॥ २८२ ॥ खूब
 समझदार मालिकका आश्रय लेंवे ॥ २८३ ॥

पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥२८४॥ स्त्रीणाममैथुनं जरा ॥२८५॥
 न नीचोत्तमयोर्वैवाहः ॥२८६॥ अगम्यागनादायुर्यशःपुण्यानि
 क्षीयन्ते ॥ २८७ ॥ नास्त्यहङ्कारसमदशत्रुः ॥ २८८ ॥ संसदि
 शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥ २८९ ॥ शत्रुच्यसनं श्रमणसुखम् ॥२९०॥
 अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९१ ॥ हितमप्यधनस्य वाक्यं न
 गृह्यते ॥ २९२ ॥ अधनस्त्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९३ ॥
 पुण्यहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः ॥ २९४ ॥ विद्या
 धनमधनानाम् ॥ २९५ ॥ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ॥ ॥२९६॥
 विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९७ ॥ यशश्शरीरं न विनश्यति
 ॥ २९८ ॥

मैथुन, पुरुषका बुढ़ापा है ॥ २८४ ॥ अमैथुन स्त्रियोंका बुढ़ापा है
 ॥ २८५ ॥ नीच और उत्तमका आपसमें विवाह नहीं होना चाहिये ॥२८६॥
 अगम्य स्त्रीके साथ गमन करनेसे अयु, यश और पुण्य, क्षीण होजाते हैं
 ॥ २८७ ॥ अहङ्कारके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २८८ ॥ सभामें शत्रुकी
 निन्दा न करे ॥ २८९ ॥ शत्रुका विपत्ति, कानोंके लिये बड़ी सुखदाई होती
 है ॥ २९० ॥ धनहीन पुरुषके बुद्धि नहीं होती ॥ २९१ ॥ धनहीन पुरुषका
 हितकारक वाक्य भी ग्रहण नहीं कियाजाता ॥ २९२ ॥ धनहीन पुरुष अपनी
 भार्यासे भी तिरस्कृत होता है ॥ २९३ ॥ भीरे, पुण्यहीन अश्रवणके पास
 भी, नहीं फटकते ॥ २९४ ॥ धनहीन पुरुषोंका विद्या ही धन है ॥ २९५ ॥
 विद्याको, चोर भी नहीं छेसकते ॥ २९६ ॥ विद्यासे सर्वत्र यश फैलजाता
 है ॥ २९७ ॥ यश रूची शरीरका कभी नाश नहीं होता ॥ २९८ ॥

यः परार्थमुपसर्पति न सत्पुरुषः ॥ २९९ ॥ इन्द्रि-
याणां प्रशमं शास्त्रम् ॥ ३०० ॥ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुशं
निवारयति ॥ ३०१ ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०२ ॥
म्लेच्छभाषणं न शिक्षेत ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छानामपि सुवृत्तं
ग्राह्यम् ॥ ३०४ ॥ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३०५ ॥ शत्रोरपि सुगुणो
ग्राह्यः ॥ ३०६ ॥ विपादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०७ ॥ अवस्थया
पुरुषस्समान्यते ॥ ३०८ ॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥ ३०९ ॥
आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३१० ॥ कदाऽपि मर्यादां नातिक्रमेत्
॥ ३११ ॥

जो दूसरोंके लिये कार्य करता है, वही सत्पुरुष कहाता है ॥ २९९ ॥
इन्द्रियोंको शान्त करनेवाला शास्त्र होता है ॥ ३०० ॥ अशास्त्रीय कार्य
करनेमें लगजानपर, शास्त्ररूपी अंकुश ही उसको रोकता है ॥ ३०१ ॥ नीच
पुरुषको विद्या ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छोंके समान षोलचाल
की शिक्षा, न लेनी चाहिये ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छोंका भी अच्छा व्यवहार ग्रहण
करलेना चाहिये ॥ ३०४ ॥ गुणमें कभी मात्सर्य न करना चाहिये ॥ ३०५ ॥
शत्रुका भी अच्छा गुण ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०६ ॥ विपसे भी अमृतका
ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०७ ॥ अवस्था से ही पुरुषका सम्मान होता है
॥ ३०८ ॥ अपने स्थानपर ही पुरुषोंकी पूजा होती है ॥ ३०९ ॥ सदा श्रेष्ठ पुरुषोंके
आचारका ही अनुष्ठान करे ॥ ३१० ॥ मर्यादाका उलंघन कभी न करे ॥ ३११ ॥

नास्त्यर्षः पुरुपरत्नस्य ॥ ३१२ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम्
॥ ३१३ ॥ सुदुर्लभं रत्नम् ॥ ३१४ ॥ अयशो भयं भयेषु
॥ ३१५ ॥ नास्त्यलसस्य शास्त्राधिगमः ॥ ४१६ ॥ न स्त्रैणस्य
स्वर्गाभिर्धर्मकृत्यं च ॥ ३१७ ॥ स्त्रियोपि स्त्रैणमवमन्यन्ते ॥ ३१८ ॥
न पुष्पार्थी सिञ्चति शुष्कतरुम् ॥ ३१९ ॥ अद्रव्यप्रयत्नो बालु-
काकथनादनन्यः ॥ ३२० ॥ न महाजनहासः कर्तव्यः ॥ ३२१ ॥
कार्यसंपदं निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२२ ॥ नक्षत्रादापि निमि-
त्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२३ ॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥ ३२४ ॥

पुरुष रत्नका (पुरुषरूपी रत्नका, अर्थात् पुरुषोंमें जो रत्नके समान
श्रेष्ठ हो) कोई मूल्य नहीं होता ॥ ३१२ ॥ स्त्री रत्नके समान कोई रत्न

मजबूत जंजीर है ॥ ३५६ ॥ जो जिस कार्यमें चतुर हो, उसको उसी कार्यपर लगाना चाहिये ॥ ३५७ ॥ दुष्ट स्त्री, मनस्वी पुरुषोंके शरीरको चूसनेवाली होती है ॥ ३५८ ॥

अप्रपत्तो दारान् निरीक्षित ॥ ३५९ ॥ स्त्रीषु किञ्चिदपि न विश्वसेत् ॥ ३६० ॥ न ममाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ॥ ३६१ ॥ गुरूणां माता गरीयसी ॥ ३६२ ॥ सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ॥ ३६३ ॥ वैदुष्यमलङ्कारेणाच्छाद्यते ॥ ३६४ ॥ स्त्रीणां भूपणं लज्जा ॥ ३६५ ॥ विप्राणां भूपणं वेदः ॥ ३६६ ॥ सर्वेषां भूपणं धर्मः ॥ ३६७ ॥ भूपणानां भूपणं सविनया विद्यते ॥ ३६८ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६९ ॥ साधुजनबहुलो देशः ॥ ३७० ॥

प्रमादरीहित होकर स्त्रीका निरीक्षण करे ॥ ३५९ ॥ स्त्रियोंपर कुछ भी विश्वास न करे ॥ ३६० ॥ स्त्रियोंमें निब्रलता तथा व्यवहारपटुता नहीं होती ॥ ३६१ ॥ सब बड़ी चीजोंमें माता ही सबसे बड़ी होती है ॥ ३६२ ॥ सब अवस्थाओंमें माताका शरण पापण करना चाहिये ॥ ३६३ ॥ विद्वत्ता, भलङ्कार (भाभूषण आदि) से ढकदी जाती है ॥ ३६४ ॥ स्त्रियोंका भूपण लज्जा है ॥ ३६५ ॥ ब्राह्मणोंका भूपण वेद है ॥ ३६६ ॥ सबका भूपण धर्म है ॥ ३६७ ॥ लज्जा आदिका, चित्तसे सहित होना, भूपणोंका भी भूपण होता है ॥ ३६८ ॥ उपद्रवराहित देशमें निवास करे ॥ ३६९ ॥ जहाँ साधुजन बहुत रहते हों, वही देश होता है ॥ ३७० ॥

राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ॥ ३७१ ॥ न राज्ञः परं दैवतम् ॥ ३७२ ॥ सुदूरमपि दहति राजबहिः ॥ ३७३ ॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७४ ॥ गुरुं च दैवं च ॥ ३७५ ॥ कुटुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७६ ॥ गन्तव्यं च सदा राजकुलम् ॥ ३७७ ॥ राजपुरुषैस्संबन्धं कुर्यात् ॥ ३७८ ॥ राजदासी न सेवितव्या ॥ ३७९ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत् ॥ ३८० ॥ पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः ॥ ३८१ ॥ पुत्रा विधानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८२ ॥

राजासे सदा डरना चाहिये ॥ ३७१ ॥ राजासे बढकर कोई दैवत नहीं होता ॥ ३७२ ॥ राजारूपी भाग, बहुत दूर रहतेहुए भी जलादेती है

॥ ३७३ ॥ खाली हाथ राजाके पास न जावे ॥ ३७४ ॥ गुरु और देवताके पास भी रीते हाथ न जावे ॥ ३७५ ॥ कुटुम्बीसे डरना चाहिये ॥ ३७६ ॥ और राजकुलमें सदा जाना चाहिये ॥ ३७७ ॥ यथाशक्ति राजपुरषोंके साथ सम्बन्ध करे ॥ ३७८ ॥ राजाकी दासीके साथ संग न करे ॥ ३७९ ॥ राजा को भी आंखसे ' अर्थात् उसकी ओर आंख बढाकर) न देखे ॥ ३८० ॥ पुत्रके गुणवान् होनेपर कुटुम्बी पुरुषका यहीं स्वर्ग होजाता है ॥ ३८१ ॥ पुत्रोंको विद्याओंके पार पहुँचादेना चाहिये अर्थात् उसको पूरा विद्वान् बना देना चाहिये ॥ ३८२ ॥

जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत् ॥ ३८३ ॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते ॥ ३८४ ॥ अतिलाभः पुत्रलाभः ॥ ३८५ ॥ दुर्गतिः पितरौ रक्षति स पुत्रः ॥ ३८६ ॥ कुलं प्रख्यापयति पुत्रः ॥ ३८७ ॥ नानपत्यस्य स्वर्गः ॥ ३८८ ॥ या प्रसूते भार्या ॥ ३८९ ॥ तीर्थसमवाये पुत्रपतीमनुगच्छेत् ॥ ३९० ॥ सतीर्थाभिगमनाद्ब्रह्मचर्यं नश्यति ॥ ३९१ ॥ न परक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत् ॥ ३९२ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ३९३ ॥

जनपदके हितके लिये गाँवको छोड़देवे ॥ ३८३ ॥ गाँवके लिये कुटुम्ब छोड़ दिया जाता है ॥ ३८४ ॥ पुत्रका लाभ, बहुत बड़ा लाभ है ॥ ३८५ ॥ दुर्गतिसे जो अपने माता पिताकी रक्षा करता है, वही पुत्र है ॥ ३८६ ॥ पुत्र, अपने कुलको प्रसिद्ध करदेता है ॥ ३८७ ॥ पुत्रहीन पुरुषको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३८८ ॥ जो स्त्री ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है, वही भार्या समझनी चाहिये ॥ ३८९ ॥ अनेक स्त्रियोंके एक साथही जन्मती होनेपर, उसी स्त्रीके पास जावे, जो पहिलेसे पुत्रवती हो ॥ ३९० ॥ रजस्वला स्त्रीके गमन करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होजाता है ॥ ३९१ ॥ दूसरेके खेतमें बीज न डाले । अर्थात् परस्त्रीके साथ कदापि संग न करे ॥ ३९२ ॥ पुत्रोंके लियेही स्त्रियां होती है ॥ ३९३ ॥

स्वदासीपरिग्रहो हि स्वदासभावः ॥ ३९४ ॥ उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३९५ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःस्ताभावः ॥ ३९६ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३९७ ॥ तिलमात्रमप्युपकारं शैलमात्रं मन्यते साधुः ॥ ३९८ ॥ उपकारोऽनार्षेष्वाकर्तव्यः ॥ ३९९ ॥ प्रत्युप-

कारभयादनायैश्शत्रुर्भवति ॥ ४०० ॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्यु-
प्रकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०१ ॥

अपनी दासीको स्वीकार करलेनाही, अपने आपको दास बना लेना
हे ॥ ३९४ ॥ जिसका विनाश उपस्थित होता है, वह हिचककर चायको नहीं
सुनता ॥ ३९५ ॥ प्राणियोंके सुख और दुःखका अभाव नहीं होता । अर्थात्
प्राणियोंके सुख और दुःख बनेही रहते हैं ॥ ३९६ ॥ जैसे दूधे माताके साथही
जाते हैं, इसी तरह सुख और दुःख, कर्त्ताके साथही लगे रहते हैं ॥ ३९७ ॥
तिलमात्र उपकारको भी साधु पुरुष पर्वतके समान मानता है ॥ ३९८ ॥
नीच पुरुषोंपर उपकार न करना चाहिये ॥ ३९९ ॥ उपकरका बदला देनेके
बदले, नीच पुरुष शत्रु होजाता है ॥ ४०० ॥ श्रेष्ठपुरुष, थोड़ेसे उपकारके
बदलेमें भी प्रत्युपहार करनेके लिये कभी चुप नहीं रहता ॥ ४०१ ॥

न कदाऽपि देवताऽवमन्तव्या ॥ ४०२ ॥ न चक्षुषः समं
ज्योतिरस्ति ॥ ४०३ ॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥ ४०४ ॥ अप-
चक्षुषः किं शरीरेण ॥ ४०५ ॥ नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०६ ॥
न नम्रो जलं श्विशेत् ॥ ४०७ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम्
॥ ४०८ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०९ ॥ अग्रावग्निं न
निक्षिपेत् ॥ ४१० ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४११ ॥ परदारान्
न गच्छेत् ॥ ४१२ ॥ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्षि ॥ ४१३ ॥
न वेदवाहो धर्मः ॥ ४१४ ॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत् ॥ ४१५ ॥

देवताका कभी तिरस्कार न करना चाहिये ॥ ४०२ ॥ चक्षुके समान,
कोई ज्योति नहीं है ॥ ४०३ ॥ चक्षुही प्राणियोंका नेता है ॥ ४०४ ॥ चक्षु
बुद्धि प्राणियोंके शरीरसे क्या ॥ ४०५ ॥ जलमें मूत्र न करे, ॥ ४०६ ॥ नंगा
होकर जलमें प्रवेश न करे ॥ ४०७ ॥ जैसा शरीर होता है, वैसाही ज्ञान होता
है ॥ ४०८ ॥ जैसी बुद्धि होती है, उसीके अनुसार विभव अर्थात् ऐश्वर्य होता
है ॥ ४०९ ॥ आगमें आगको न फेंके ॥ ४१० ॥ तपस्वियोंकी सेवा पूजा
करनी चाहिये ॥ ४११ ॥ परस्त्रियोंके साथ गमन न करे ॥ ४१२ ॥ अन्नका
दान करना, भ्रूणहत्याको भी साफ करदेता है ॥ ४१३ ॥ वेदवाह्य, धर्म नहीं
होता ॥ ४१४ ॥ सदाही धर्मकी सेवन करता रहे ॥ ४१५ ॥

“स्वर्गं नयति सुवृत्तम् ॥ ४१६ ॥ नान्ति सत्यात्परं तपः
॥ ४१७ ॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१८ ॥ संस्येन धार्यते

दुष्करं कर्म कारयित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३८ ॥
 नाकृतज्ञस्य नरकान्निवर्तनम् ॥ ४३९ ॥ जिह्वायत्तो वृद्धिविनाशो
 ॥ ४४० ॥ विषामृतयोराकरी जिह्वा ॥ ४४१ ॥ प्रियवादिनो
 न शत्रुः ॥ ४४२ ॥ स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४३ ॥
 अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४४ ॥ राजद्विष्टं न च वक्त-
 व्यम् ॥ ४४५ ॥ श्रुतिसुरात् कौकिलालापास्तुष्यन्ति ॥ ४४६ ॥
 स्वधर्महेतुस्मत्पुरुषः ॥ ४४७ ॥

नीच पुरुष, पहिले किसीसे कठिन कार्य कराकर फिर उस कार्यकर्ता
 को तिरस्कृत करदेता है । ४३८ ॥ कृतज्ञ पुरुष, कभी नरकसे नहीं लौटता
 ॥ ४३९ ॥ वृद्धि और विनाश, जिह्व केही अधीन है ॥ ४४० ॥ जिह्वा, विष
 और अमृत दोनोंकीही खान है ॥ ४४१ ॥ प्रियवादी पुरुषका कोई शत्रु नहीं
 होता ॥ ४४२ ॥ स्तुति किये जानेपर देवता भी सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ४४३ ॥
 शत्रु भी दुर्वचन चिरकालतक याद रहता है ॥ ४४४ ॥ राजाके विरुद्ध न
 कहना चाहिये ॥ ४४५ ॥ कानोंको सुख देनेवाले कोषलके समान आलापरु-
 पुरुष सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ४४६ ॥ अपनेही धर्मके कारण पुरुष, सत्पुरुष
 बड़ा है ॥ ४४७ ॥

नास्त्यर्थिनो गौरवम् ॥ ४४८ ॥ स्त्रीणां भूषणं सौभाग्यम्
 ॥ ४४९ ॥ शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ॥ ४५० ॥ अप्रयत्नो
 दकं क्षेत्रम् ॥ ४५१ ॥ एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत्
 ॥ ४५२ ॥ अतिप्रवृद्धा शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति । ४५३ ॥
 अतिदीर्घोपि कर्णिकारो न मुसली ॥ ४५४ ॥ अतिदीप्तोपि स्व-
 घोतो न पावकः ॥ ४५५ ॥ न प्रवृद्धत्वं गुणहेतुः ॥ ४५६ ॥
 सुजीर्णोपि पिशुमन्दो न शङ्कुलायते ॥ ४५७ ॥

पावकका कभी गौरव नहीं होता ॥ ४४८ ॥ सौभाग्यही स्त्रियोंका
 भूषण है ॥ ४४९ ॥ शत्रुके भी जीवननिर्वाहको, नष्ट न करना चाहिये ॥ ४५० ॥
 विशेष प्रयत्नके बिनाही जहाँ जल प्राप्त होसके, वहाँ खेत समझना चाहिये
 ॥ ४५१ ॥ एरण्डका सहारा लेकर हाथीको कुपित न करे ॥ ४५२ ॥ बहुत
 लम्बा बीडा या घटा दुभा भी सिंभलका वृक्ष, हाथीको रोकनेवाले स्तम्भका
 काम नहीं देता ॥ ४५३ ॥ बहुत बड़ा भी बनेरका वृक्ष, मूसल बनानेके